श्रीमद् भागवत रहस्य

卐

वक्ता :

पूज्य शास्त्रीजी श्री रामचन्द्र डोंगरे महाराज

बड़ोदरा

मूल्य रु. १३)- पोस्टेज ३)- अलग

चतुर्थ आवृत्ति

प्रकाशक : हिन्दी भागवत रहस्य प्रकाशन समिति, 334 Mint St., MADRAS-1

[illegible]

श्री कृष्ण शरणं मम
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

वंशीविभूषित करान् नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात।
पूर्णेन्दु सुन्दरमुखारविन्द नेत्रात्
कृष्णात्परं किमपितत्वमहं न जाने॥

—आचार्य मधुसुदन सरस्वती

जिनके करकमल वंसीसे शोभायमान हैं, नवीन बादल-सा जिनका स्वरुप है, जिनके वस्त्र पीले हैं, जिनके होंठ सूर्यकिरणोंकी भांति लाल हैं, जिनका मुख पूर्णचंद्र-सा सुंदर है और जिनके नयन कमल जैसे हैं वैसे भगवान श्रीकृष्णको छोड़ कर अन्य किसी तत्वको मैं नहीं जानता।

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धी
हे कृष्ण हे चपल हे करणकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा! हा! कदानुभविनासि पदं दृशोमे।

—श्रीकृष्ण कर्णामृतमेंसे

हे देव! हे दयालु! हे विश्वके अेकमात्र बंधु! ओ कृष्ण! अरे ओ चपल! हे करुणाके अेकमात्र सागर! हे नाथ! हे रमणकर्ता! हे मेरे नयनोंको सुख देनेवाले प्राणेश! आपके मनोहर स्वरुपके दर्शन देकर मेरे अिन नयनोंको कब भाग्यशाली करेंगे? (आप मुझे कब दर्शन देंगे?)

उमा कहौं मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना।
कह हनुमंत विपत्ति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई॥
कर सौ करम करिय बिधि नाना।
मन राखिय जहं कृपानिधाना॥

— रामचरित मानस

हों रसिया मैं तो शरण तिहारी,
नहिं साधन बल बचन चातुरी,
एक भरोसो चरणे गिरधारी।

—प्रेमसखीजी

आभार प्रदर्शन और निवेदन

प्रसिद्ध ज्ञानी, चिन्तक और दार्शनिक श्री डोंगरेजी महाराज ने श्रीमद् भागवत का सार रूप भागवत रहस्य नामक यह ग्रंथ मूलतः गुजराती में लिखा है। स्वर्गीय लालाजी ने इसका हिंदी अनुवाद धनबाद से प्रकाशित किया था। निश्चित नाम जप अर्थात् नगद रकम के बजाय सवा लाख भगवन् नाम लिखकर भेजने वाले को यह पुस्तक दिया करते थे।

देश में गुजराती भाषी लोग पौने तीन करोड़ हैं। इस पुस्तक की गुजराती में आजतक दस आवृत्ति हो चुकी है। भारत में हिंदी भाषी लोग इक्कीस करोड़ हैं लेकिन हिंदी में प्रथम आवृत्ति भी पूरी नहीं बिक पायी है। इसीलिए मुझे यह लगा कि निश्चित नाम जप के बजाय लागत दाम में यह पुस्तक लोगों को दी जाय तो इसका अधिक प्रचार हो सकता है। मेरी यह प्रार्थना मेरे भाई श्री केशर लालजी के द्वारा पूज्य शास्त्री डोंगरे जी महाराज से की गई और तुरन्त उन्होंने स्वीकृति दे दी। इसके लिये मैं और मेरा ट्रस्ट पूज्य शास्त्री जी के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता है। स्व० लालाजी का हिंदी अनुवाद अक्षरशः उपयोग करने के लिए भी मैं उनका आभारी हूँ।

श्रीअरविन्द आश्रम के श्री मदनलालजी और श्री बालकृष्णजी ने इस पुस्तक को करीब लागत दाम में ही प्रकाशित करने में हमें जो सहायता की है उसके लिये हम उनके भी आभारी हैं।

यह पुस्तक निम्न पतों से रु० ३) में खरीद सकेंगे। किन्तु अगर किसी भाई को इतना भी कष्ट न उठाना हो तो तीन रुपये पोस्टेज के मिलाकर रु० ६) मनिआर्डर भेजने पर पुस्तक उनको मिल जायगी। मनिआर्डर करने का पता –

१ हिंदी भागवत रहस्य प्रकाशन समिति 434, Mint Street, Madras-1.

२ प्रह्लाद दास खन्ना Flat 24A, New Kutub Road, Delhi-6

३ एन. चीमनलाल कं० 160, Princess Street, Bombay-2.

४ मातादीन हरलालका 1, Pratap Ghose Lane, Calcutta-7.

हमें आशा है कि इसी वर्ष में इस पुस्तक की आवृत्ति बिक जायगी और दूसरी आवृत्ति छपाने का सौभाग्य हमें शीघ्र ही मिलेगा। हिन्दी भाषी वैष्णव जनों की सेवा करने का यह शुभअवसर श्री कृष्णचन्द्र भगवान ने हमको दिया, इसके लिये स्वयं को अत्यंत भाग्यशाली मानता हूँ।

मद्रास

१९७८

परम पूज्य शास्त्रीजी श्री रामचंद्र डोंगरे महाराजकी
श्रीमद् भागवत सप्ताह प्रसंग पर की जाती दैनिक प्रार्थना.

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेषयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटेशयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

श्री गोविंद-दामोदर स्तोत्र

श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।
जीह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविंद दामोदर माधवेति ॥ १

विक्रेतुकामा किल गोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविंद दामोदार माधवेति ॥ २

गृहे गृहे गोपवधू कदम्बाः सर्वे मिलित्वा समावाप्य योगम ।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ३

सुखंशयना निलयेनिजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदान्त मर्त्याः ।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ४

जीह्वे सदैव भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
समस्तभक्तार्ति विनाशनानि गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ५

सुखावसाने इदमेव सारं दुःखावसाने इदमेव ज्ञेयम ।
देहावसाने इदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ६

श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो ।
जीह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ७

जीह्वे रसज्ञे मधुरप्रियात्वं सत्यं हित त्वां परमं वदामि ।
आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ८

त्वामेल याचे ममदेहि जीह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते ।
वक्तव्यमेवं मधुरं सुभाकत्या गोविंद दामोदर माधवेति ॥ ९

गोविंद माधव स्तोत्रका प्रेमसे पाठ करे,
दामोदर दयादानसे सहजही गोलोक संचरे

श्री गणेशाय नमः

श्री सरस्वत्यै नमः

श्री गुरुभ्यो नमः

ॐ नमः भगवते वासुदेवाय

श्रीकृष्णः शरणं मम

भागवतका उद्देश और उसका माहात्म्य

सच्चिदानंदरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

(माहात्म्य अ. १ श्लोक १)

जो जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके हेतु हैं, तथा जो तीनों प्रकारके तापोंके नाशकर्ता हैं ऐसे सच्चिदानंदस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम सब वंदन करते हैं।

परमात्माके तीन स्वरूप शास्त्रोंमें कहे गए हैं- सत्, चित् तथा आनंद। सत् प्रगट रूपसे सर्वत्र है। चित् मौन तथा आनंद अप्रगट हैं। जड़ वस्तुओंमें सत् तथा चित् हैं परंतु आनंद नहीं है। जीवमें सत् और चित् प्रगटता है परंतु आनंद अप्रगट रहता है अर्थात् अप्रगट-रूपसे रहता है, अव्यक्तरूपसे है। वैसे तो आनंद इसके अपने अंदर ही है, फिर भी आनंदको मनुष्य (अपने) बाहर ही खोजता है। मनुष्य नारीदेह, धनसंपत्ति आदिमें आनन्द खोजता है।

आनंद तो तुम्हारा अपना स्वरूप है। आनंद तो (तुम्हारे) अंदर ही है। इस आनंदको जीवनमें किस प्रकार प्रगट करें यही भागवतशास्त्र सिखाता है।

दूधमें मक्खन रहता है फिर भी वह दीखता नहीं है। परंतु दूधसे दही बनाकर, दही मंथन करनेपर मक्खन दीख जाता है। ठीक इसी प्रकारसे मानवदेह मनोमंथन करके आनंदको प्रगट करता है। दूधमें जैसे मक्खनका अनुभव नहीं होता है, इसी प्रकार ईश्वरका, कि जो सर्वत्र है, फिर भी उसका अनुभव नहीं होता है।

जीव है तो ईश्वरका ही, तो भी उस ईश्वरको पहचाननेका यत्न करता नहीं है। इसी कारणसे इसे आनंद नहीं मिलता है। कोई भी कैसा भी जीव हो उसे ईश्वरको मिलना है। नास्तिक भी (थक हारकर) अंतमें शांति ही खोजता है।

आनंदके अनेक प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद्में बताये गये हैं, परंतु इनमेंसे दो मुख्य आनंद हैं— (१) साधनजन्य आनंद (२) स्वयंसिद्ध आनंद।

साधनजन्य आनंद अर्थात् विषयजन्य आनंद, कि जो साधन या विषयके नाश होनेपर उस आनंदका भी नाश होता है और होगा। योगियोंके पास कुछ भी (साधन या विषय) नहीं होता फिर भी उनको, आनंद है अर्थात् सदा आनंदमें रहते हैं, इससे सिद्ध होता है कि आनंद अंदर है।

सत्, चित्, आनंद ईश्वरमें परिपूर्ण हैं। परमात्मा परिपूर्ण सत्‌रूप, परिपूर्ण चित्‌रूप, परिपूर्ण आनंदरूप हैं।

परमात्मा श्रीकृष्ण परिपूर्ण आनंद-स्वरूप हैं। विना ईश्वरका संसार अपूर्ण है। ईश्वरका अंश जीवात्मा भी अपूर्ण है। जीवमें चिद् अंश है फिर भी परिपूर्ण नहीं है। मनुष्यमें ज्ञान आता है परंतु वह ज्ञान स्थायी नहीं होता। श्रीकृष्ण परिपूर्ण ज्ञानी हैं। श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियोंके साथ बात करते समय भी वही ज्ञान था और जिस समय सारी द्वारिका आदिका नाश हो रहा था उस समय भी वही ज्ञान था। श्रीकृष्णका आनंद रानियोंमें या द्वारिकामें है ही नहीं। सबका विनाश हो रहा था तो भी श्रीकृष्णके आनंदका विनाश नहीं होता है। कारण श्रीकृष्ण तो स्वयं आनंदरूप हैं। सत् नित्य है, चित् यह ज्ञान है, चिद्‌ शक्ति अर्थात् ज्ञान-शक्ति। मनुष्य अपने स्वरूपमें स्थित नहीं है अतः इसे आनंद नहीं मिलता। मनुष्य जिस प्रकार बाहर विवेक रखता है वैसा घरमें रखता नहीं है। मनुष्य एकांतमें स्व-स्वरूपमें स्थित रहता नहीं, जब कि उत्पत्ति, स्थिति और संहारलीलामें श्री ठाकुरजीके स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं होता। श्री ठाकुरजी संहारको भी अपनी लीला ही मानते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और संहार श्री ठाकुरजीकी लीला है। परमात्मा तीनोंमें आनंद मानते हैं और अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं।

जिसका ज्ञान नित्य टिकता है उसे ही आनंद मिलता है। वही आनंदरूप होता है। जीवको यदि आनंदरूप होना हो तो उसे सच्चिदानंदका आश्रय होना है। यह जीव जबतक परिपूर्ण नहीं होता तबतक उसे शांति नहीं मिलती है। आनंद नहीं मिलता है। संसारका प्रत्येक पदार्थ परिणाममें विनाशी होनेके कारण परिपूर्ण नहीं हो सके हैं। परिणाम स्वरूप यह तो भगवान् श्री नारायण हैं। इस प्रभु नारायणको जो पहचानता है और उस नारायणके साथ मनको जो तदाकार करता है उसीका मन नारायणके साथ एक होता है। केवल वह जीवात्मा ही श्री नारायण-रूप बनता है और वही परिपूर्ण होता है तभी जीवका जीवन सफल होता है। जीव जबतक अपूर्ण है तबतक इसे शांति नहीं मिलती है। जीव जब ईश्वरसे मिलता है और उसका अपरोक्ष साक्षात्कार करता है तभी जीव परिपूर्ण होता है। परमात्मा श्रीकृष्णके दर्शन पानेके लिए ही यह मनुष्यका अवतार है। मानव ही श्री भगवान्‌का दर्शन कर सकता है। पशुको तो अपने स्वरूपका भी भान नहीं है, तो वह बेचारा परमात्माके दर्शन तो करे ही कैसे? परमात्माके दर्शनके विना जीवन सफल नहीं होता है। जो परमात्माका दर्शन करता है, उसीका जीवन सफल है। यह जीव अनेक वर्षोंसे (अनंत जन्मोंसे) भोग भोगता चला आ रहा है फिर भी इसे शांति तो मिली नहीं। यह शांति तो तब मिले कि जब जीवको परमात्माका दर्शन मिले। श्रीकृष्ण परमात्माके दर्शनके विना जीवको परिपूर्ण शांति नहीं मिलती हैं।

दर्शनके तीन प्रकार शास्त्रोंमें बताये गए हैं—

(१) स्वप्नमें प्रभुकी झांकी होती है। यह हुआ साधारण दर्शन।
(२) मंदिर और मूर्तिमें परमात्माके दर्शन हों तो यह मध्यम दर्शन है।
(३) ईश्वरका अपरोक्ष दर्शन, यह उत्तम दर्शन है।

परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार जब होता है तब जीवन सफल होता है। वेदांतमें साक्षात्कारके दो प्रकार कहे गये हैं— (१) परोक्ष ज्ञान, (२) अपरोक्ष ज्ञान।

ईश्वर किसी एक स्थानपर है ऐसा जो माने वह परोक्ष साक्षात्कार है। ईश्वरके बिना कुछ नहीं है। ईश्वर ही सब कुछ है। मैं भी ईश्वरसे भिन्न नहीं हूँ, यह है ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार।

जिसे "मैं स्वयं ब्रह्म हूँ" (अहम् ब्रह्मास्मि) ऐसा ज्ञान (अनुभव) होता है उसे (अपरोक्ष) साक्षात्कार हुआ है ऐसा कहा जाता है (माना जाता है)। देखनेवाला ईश्वरको देखते ही ईश्वरमय बनता है तभी उसे ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है। ईश्वरका ही सबमें अनुभव करते करते जो (उसीमें) एकरूप हो जाता है (केवल) वही ईश्वरके परिपूर्ण स्वरूपको जान सकता है (पहचान सकता है) और वेदांतमें इसीको अपरोक्ष साक्षात्कार कहते हैं। ईश्वर जगत्में किसी एक स्थानमें है यह ज्ञान भी अपूर्ण है। ईश्वर सर्व व्यापक हैं यह (केवल) एक मूर्तिमें या मंदिरमें रह नहीं सकते हैं (समा नहीं सकते हैं)। मंदिरमें प्रभुके दर्शन कर लेनेपर ज्ञानी पुरुष, जहाँ दृष्टि जाती है वहीं, भगवान्‌रूपका अनुभव करते हैं। मंदिरमें प्रभुके दर्शन करके बाहर आनेपर, प्रत्येकमें परमात्माका दर्शन करे, मन जहां जाये वहीं ईश्वरका दर्शन करे, यही है ईश्वरका असाधारण दर्शन। जो परमात्मा मुझमें है वही सबमें है इसी प्रकार अखिल जगत् जिसे ब्रह्मस्वरूप दीखता है वही ज्ञानी है। सबमें परमात्माका अनुभव करते करते उसे अपने स्वरूपमें भी परमात्माका अनुभव होता है। परमात्माके परोक्ष दर्शनसे कोई विशेष लाभ नहीं होता है परंतु जीव जब परमात्माका अपरोक्ष दर्शन करता है तभी कृतार्थ होता है। ज्ञानी पुरुषोंको तो अपने स्वरूपमें भी श्री भगवान् दीखते हैं। यही अद्वैत है। श्रीकृष्ण लीलाएं इसीलिए हैं कि इन लीलाओंका चिंतन करती गोपियाँ, अपने स्वरूपमें भी परमात्माका अनुभव करती हैं। "लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।" गोपियोंको अपने स्वरूपका विस्मरण हुआ है और कहती हैं, "मैं ही कृष्ण हूँ।" अपने (प्यारे) कृष्णका सबमें अनुभव करतीं गोपियां श्रीकृष्णमय बनी हैं। जिसे अपने अंदर परमात्माका दर्शन होता है, वही जीव परमात्मामें मिल जाता है। अपने अंदर जिसे परमात्मा दीख जाते हैं उसके बाद वह जीव ईश्वरसे जुदा नहीं रह सकता। वह ईश्वरमें मिल जाता है। यही श्री भागवतका फल है।

ज्ञानी ज्ञानसे परमात्माका (ब्रह्मका) अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं जब कि वैष्णव (भक्त) प्रेमसे परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार करते हैं।

ईश्वर जीवको अपनाकर जब अपने स्वरूपका दान करते हैं तभी यह जीव पूर्ण होता है। बिना ईश्वरका सारा संसार अपूर्ण है, जीव अपूर्ण है अतः इसे शांति नहीं है- नारायण ही पूर्ण हैं। सच्ची शांति नारायणमें है। नर नारायणका अंश है, अतः नर तो नारायणमें ही समा जाना चाहता है। श्री नारायणकी पहचान करानेवाला और श्रीनारायणमें लीन होनेका साधन यह श्री भागवत् शास्त्र है।

जीव नारायणका अंश है। इसे तो उसीमें मिल जाना है। इसके लिये शास्त्रोंने अनेक उपाय कहे हैं। (१) कर्ममार्ग, (२) ज्ञानमार्ग, (३) भक्तिमार्ग।

उपनिषद्से (उपनिषदोंके ज्ञानसे) ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है। परंतु श्री व्यासजीने विचार किया कि उपनिषदोंकी भाषा गूढ है, सामान्य मनुष्य इसे समझ नहीं सकेंगे। उपनिषदोंका ज्ञान तो दिव्य है। परंतु अपने जैसे विलासी लोग वैसे दिव्य ज्ञानका अनुभव नहीं कर सकेंगे, कारण मनुष्योंके जीवन अति विलासी हैं। इसलिए ज्ञानमार्गसे जीव ईश्वरके पास जा सके यह असंभव है। अति वैराग्यके बिना ज्ञानमार्गमें सफलता नहीं मिलती। ज्ञानकी बुनियाद है वैराग्य। ऐसा अति वैराग्य प्राप्त करना कठिन है। श्री शुकदेवजी महाराजको ऐसा (अति) वैराग्य प्राप्त हुआ था। जन्म होते ही उन्होंने वनकी ओर प्रयाण किया था और पितासे कहा था, "आप पिता नहीं हैं और मैं पुत्र नहीं हूँ"। वेद त्यागका उपदेश करते हैं। शास्त्र सब कुछ छोडनेको कहते हैं। शास्त्र तो कहते हैं, "काम छोडो, क्रोध छोडो।" परंतु मनुष्य कुछ नहीं छोड सकता। जो साधारण पान-सुपारी भी नहीं छोड सकते हैं वे काम, क्रोध, लोभ किस प्रकार छोडेंगे? वे घरका त्याग किस प्रकार करेंगे? (सर्व साधारण) मनुष्यको तो कुछ करना नहीं है और वह कुछ छोड भी नहीं सकता। परंतु वेदांत शास्त्र तो कहता है कि सब कुछ छोडकर, सर्वस्वका त्याग करके ईश्वरके पीछे पडोगे तभी तुम ईश्वरको पहचान सकोगे, उनसे मिल सकोगे। सर्वका त्याग, सर्वस्वका त्याग तो साधारण मनुष्यके लिए सुलभ नहीं है।

वेदके चार भाग हैं—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक, (४) भाष्य। वेदोंकी समाप्ति उपनिषदोंसे होती है अतः उसे वेदांत कहते हैं। आरण्यकमें उपनिषद्वाला भाग आता है। जिन ग्रंथोंका चिंतन ऋषि करते हैं उन्हें आरण्यक कहते हैं। बंगलोंमें भोग-विलासोंमें रहनेवालोंका उपनिषदोंमें (उपनिषदोंके अध्ययनमें) अधिकार नहीं है। अपने जैसे संसारमें फँसे जीव उपनिषदोंके ज्ञानको पचा नहीं सकते। इन सब बातोंका विचार करके भगवान् व्यासजीने श्रीमद्भागवत-शास्त्रकी रचना की है। उपनिषदोंका बताया मार्ग अपने जैसोंके लिए सुलभ नहीं है। उपनिषदोंका तात्पर्य त्यागमें है।

जो पान-सुपारी, चाय नहीं छोड सकते और जो दो चार घंटे कथामें बैठें तो भी नसवार (छींकणी) की डिब्बी छोड नहीं सकते हैं, वे कामक्रोधादि विकारोंको कैसे छोड सकेंगे?

जो कामसुखका उपभोग करते हैं वे योगाभ्यास कर नहीं सकेंगे। भोगी यदि योगी होने जाएगा तो वह रोगी हो जाएगा। ज्ञान मार्गमें जिसका पतन होता है वह नास्तिक बनता है। योगमार्गमें जिसका पतन होता है वह रोगी बनता है। भक्ति मार्गमें जिसका पतन होता है वह आसक्त बनता है। कलियुगी मनुष्य योगाभ्यास नहीं कर सकता। इस भागवत शास्त्रकी रचना कलियुगके जीवोंके उद्धार करनेके लिए की गई है।

श्रीमद् भागवतमें एक नवीन मार्गदर्शन कराया गया है। "हम घरबार और धंधा छोड नहीं सकते हैं" ऐसा कहनेवालोंको भागवतशास्त्र कहता है, "निराश न होना, सब कुछ छोडकर जंगलमें जानेकी जरूरत नहीं है। केवल जंगलमें जानेसे ही आनंद मिलता है ऐसा नहीं है।" जीव जब सब प्रकारकी प्रवृत्ति छोडकर निवृत्तिमें बैठता है तब भी मनमें प्रवृत्तिके विचार आते हैं।

श्री भागवतशास्त्रका आदर्श दिव्य है। गोपियोंने घर नहीं छोड़ा। गोपियाँ घरका काम करती थीं। उन्होंने स्वधर्मका त्याग नहीं किया। वे वनमें नहीं गईं। फिर भी वे श्री भगवान्‌को प्राप्त कर सकी हैं। श्री भागवत शास्त्र ऐसा मार्गदर्शन कराता है कि योगीको जो आनंद समाधिमें मिलता है, वही आनंद आप घरमें रहते हुए भी प्राप्त कर सकते हैं। घरमें रहकर भी आप प्रभुको प्रसन्न कर सकते हैं, प्राप्त कर सकते हैं। परंतु आपका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय हो जाना चाहिए। गोपियोंका प्रत्येक व्यवहार ही भक्तिमय बन गया था।

घरमें रहकर भी श्री भगवान्‌का दर्शन हो सकता है। गोपियोंको घरमें ही परमात्माका दर्शन हुआ है। गोपियाँ यही मानती थीं कि जहाँ हम जाती हैं, हमारा श्रीकृष्ण हमारे साथ है। व्रजमें ऐसी गोपियोंके दर्शन करके उद्धवजीका ज्ञानगर्व उतर गया था। गोपियोंके सत्संगके बाद उद्धवजी कहने लगे—

> वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
>
> तासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

नंद बाबाके व्रजमें रहनेवाली इन गोपियोंकी चरणरजको मैं बारबार प्रणाम करता हूँ। और इसे मस्तक पर चढाता हूँ। अरे, इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाओंके संबंधमें जो गुणगान किए हैं वे तो तीनों लोकोंको पवित्र कर रहे हैं और सदा सर्वदा पवित्र करते रहेंगे।

गोपियाँ सबमें श्री भगवान्‌को निहारती हैं। वे कहती हैं– इस वृक्षमें, लतामें, फूलमें, फलमें मुझे मेरा प्रभु दीखता है। मेरा कृष्ण तो मुझे छोडकर जाता ही नहीं है। गोपियोंको घरमें ही श्री परमात्मा साक्षात्कार हुआ है। श्री भागवतमें कहा है कि घरमें रहो, अपने व्यवहार करो, फिर भी परमात्माको प्राप्त कर सकोगे। घरमें रहना पाप नहीं है, परंतु घरको मनमें रखना पाप है। सबको साधु होनेकी जरूरत नहीं। यदि आप सब संन्यास ले लेंगे तो साधु-संन्यासिओंका स्वागत कौन करेगा? उनका सम्मान कौन करेगा?

गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति ऐसी दिव्य है कि उनको घरमें रहते हुए भी प्रभुकी प्राप्ति हुई है। श्रीकृष्णरूप बनी हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णमें जिसका मन मिलेगा वह श्रीकृष्णरूप हो जायगा। ऐसे अलौकिक भक्तिमार्गका भगवान् व्यास नारायण इस भागवतशास्त्रमें वर्णन करेंगे और इसी भक्तिद्वारा परमात्माका साक्षात्कार होगा।

श्रीमद् भागवत आपके प्रत्येक व्यवहारको भी भक्तिमय बना देगा। भागवत व्यवहार और परमार्थका समन्वय कर देगा। आपको घरमें भी वही आनंद देगा कि जो आनंद योगी वनमें बैठकर भोगते हैं। योगी समाधिमें जैसा आनंद पाते हैं वैसा आनंद गृहस्थको भी प्राप्त हो सके इसलिए भागवतशास्त्रकी रचना की गई है। संसारके विषय-सुखोंके प्रति वैराग्य हो और प्रभुके प्रति प्रेम जागे यही श्री भागवतकी कथालीलाओंका उद्देश्य है।

भागवत अर्थात् भगवान्‌को मिलने-मिलानेका साधन। संतोंका आश्रय लेनेवाला संत बनता है, भागवतका आश्रय लेनेवाला भगवान् होता है।

भक्ति केवल मंदिरमें नहीं अपितु जहाँ भी बैठ जाओ वहीं हो सकती है। इस भक्तिके लिए कोई देश (स्थान) या काल (समय) की जरूरत नहीं है। भक्ति तो चौबीसों घंटे करनी है। भक्तिके काल (समय) और भोगके काल (समय) ऐसा जो भेद रखता है वह भक्ति नहीं कर सकता है। भक्ति सतत करो, निरंतर करो। चौबीसों घंटे ब्रह्मसंबंध बनाए रखो। हमेशा ध्यान रखो, सदा सावधान रहो कि मायाके साथ संबंध न हो जाय।

जब वसुदेवजीने श्रीकृष्णको मस्तक पर पधराया तब उनका ब्रह्मसंबंध हुआ, जिससे उनके हाथ-पैरकी बेडियाँ टूट गईं। परंतु योगमायाको लेकर जब वापस पहुंचे तो फिर बंधनमें पड गए। वसुदेवजीका ब्रह्मसंबंध तो हुआ परंतु वे इसको टिकाए न रख सके। ब्रह्मसंबंधको टिकाये रखना चाहिए। ईश्वरका स्मरण छोडना नहीं चाहिए। वैष्णव (भक्त) भगवान्‌के साथ खेलते हैं। जीव जो क्रिया करता है (जब वह सब) ईश्वरके लिए करता है तो उसकी प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाती है। भक्तिका विशेष संबंध मनके साथ है और जिससे भक्ति मनसे नहीं होती है उसे तनसे सेवा करनेकी जरूरत है। मानसिक सेवा श्रेष्ठ है। साधु-संत तो मानसिक सेवामें तन्मय रहते हैं। यदि ऐसी सेवातन्मयता हो जाय तो जीव कृतार्थ होता है। भक्ति-मार्गकी आचार्या गोपियां हैं। उनका आदर्श मन और आँखोंके सामने रखो। ज्ञानमार्गसे, योग-मार्गसे जिस ईश्वरके आनंदका अनुभव होता है, उसी आनंदका अनुभव इस भक्तिसे सहज प्राप्त होता है। ज्ञानी योगियोंको जो ब्रह्मानंद प्राप्त होता है वही इस साधारण जीवात्माको भी प्राप्त हो ऐसे उद्देश्यसे श्री भागवतकी रचना की गई है। इसमें तो भगवान्‌का स्वरूप बताया है। भगवान् कैसे हैं ?

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः।

परमात्माके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है- तापत्रयविनाशाय। दुःख मनका धर्म है, आत्माका नहीं। मनुष्य दुःखमें ईश्वरका स्मरण करता है जिससे उसका परमात्माके साथ अनुसंधान होता है, और उसे आनंद मिलता है। जीवका स्वभाव सुंदर नहीं है। परमात्माका शरीर तो हो सकता है कि कभी सुंदर न भी हो। कूर्मावतार, वराह अवतारके शरीर सुंदर नहीं थे। परंतु श्री परमात्माका स्वभाव सुंदर, अतिशय सुंदर है। दूसरोंके दुःख दूर करनेका परमात्माका स्वभाव है। इसीलिए तो श्री भगवान् वंदनीय हैं।

आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक-तीनों प्रकारके तापोंके नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी हम वंदना करते हैं। बहुत लोग पूछते हैं कि वंदना करनेसे क्या लाभ है ? वंदना करनेसे पाप जलते हैं। श्री राधाकृष्णकी वंदना करेंगे तो आपके सारे ताप नष्ट होंगे। परंतु वंदना अकेले शरीरसे नहीं, मनसे भी करो। अर्थात् श्री राधाकृष्णको हृदयमें पधराओ और उनको प्रेमसे नमन करो। नमन प्रभुको बंधनमें डालता है। दुःखमें जो साथ दे वह ईश्वर है और सुखमें जो साथ दे वह जीव है। ईश्वर सर्वदा दुःखमें ही साथ देते हैं। अतः ईश्वर वंदनीय हैं। ईश्वरने जिस जिसको सहायता दी है उसको दुःखमें ही सहायता दी है। पांडव जब तक दुःखमें थे तब तक श्रीकृष्णजीने उनकी मदद की। पर पांडव जब सिंहासनपर बैठे तब श्री कृष्ण भी वहाँसे चले गए। ईश्वर जिसे भी मिले हैं, दुःखमें ही मिले हैं। सुखका साथी जीव है और दुःखका साथी ईश्वर है इस बातका सतत मनन करो। मनुष्य धन पानेके लिए जितना

प्रयत्न करता है (और दुःख सहन करता है) उससे भी कहीं कम प्रयत्न यदि ईश्वरके लिए भी करे तो उसे ईश्वर अवश्य मिलेंगे। कन्हैया तो बिना बुलाए गोपियोंके घर जाता था, परंतु वह मेरे घर क्यों नहीं आता है ऐसा कभी विचार भी किया है? आप भी निश्चय कीजिए कि मैं भी ऐसे सत्कर्म करूंगा कि कन्हैया मेरे घर भी आएगा। श्री भगवान्के आगे हाथ जोड़ना, मस्तक नमाना इसका क्या अर्थ है? हाथ क्रियाशक्तिका प्रतीक है। हाथ जोड़नेका अर्थ है कि मैं अपने इन हाथोंसे सत्कर्म करूंगा। मस्तक नमानेका अर्थ है- मैं अपनी बुद्धि-शक्तिको, हे नाथ! आपको अर्पित करता हूँ। वंदना करनेका अर्थ है- अपनी क्रियाशक्ति और बुद्धिशक्ति श्री भगवान्को अर्पित करनी चाहिए। श्री भगवान्को वंदन करनेसे पाप-तापका नाश होता है। निर्भय होना हो तो प्रेमसे भगवान् श्री कृष्णकी वंदना करो। मेरे भगवान् दयाके सागर हैं। केवल वाणी और शरीरसे नहीं, परंतु हृदयसे भी वंदना करो। हृदयसे वंदना करनेसे श्रीभगवान् के साथ ब्रह्मसंबंध होता है।

जब भी घरसे बाहर निकलो, श्री ठाकुरजीकी वंदना करके ही निकलो। ईश्वर प्रेम चाहते हैं और प्रेम ही देते हैं। ईश्वर यही मानते हैं कि यह मेरा है और मुझसे भीख मांगता है। वंदना करनेसे ईश्वरके साथ संबंध होता है। इस जीवका स्वभाव ऐसा है कि यह वंदना नहीं करता है। घरमें प्रवेश करते ही पत्नी घरमें न हो तो अपने बालकसे पूछता है कि तेरी माता कहाँ गई? परंतु इसकी क्या आवश्यकता है। वह बाहर गई हो तो तू बैठकर राम राम कर। बाहरसे घरमें आओ तो उस समय भी ईश्वरकी वंदना करो। मार्गमें चलते हुए भी वंदना करो। परमात्मा श्रीकृष्णकी आरंभमें वंदना करे, यह जीव जो प्रेमसे प्रणाम करे परमात्माको, तो उस पर श्री परमात्मा प्रसन्न होते हैं। यह जीव चाहे और कुछ न करे, इतना तो करो ही कि श्री परमात्माको बारबार वंदन करे। वंदना करो तो सद्भावसे करो। प्रभुके मुझपर अनंत उपकार हैं। श्री परमात्माने हम पर कितने उपकार किये हैं। बोलने और खानेको जीभ दी है। देखनेके लिए आँखें दी हैं। सुननेके लिए कान दिये हैं। विचार करनेके लिए मन दिया है। बुद्धि और विचारशक्ति भी परमात्माने ही दी है। ईश्वरके उपकारोंको याद करो, याद रखो और कहो कि हे भगवन्, मैं आपका ऋणी हूँ। ऐसी उत्तम भावनाके साथ वंदना करो। कहो कि मेरे परमात्मा तूने मुझपर कृपा की है। तेरी कृपासे मैं सुखी हूँ। मेरे पाप तो अनंत हैं, परंतु हे नाथ, आपकी कृपाएं भी अनंत हैं।

श्री परमात्माकी वंदना उत्तम भावपूर्वक करें तो वह अवश्य सफल होती है।

विचार करो कि प्रभुने मुझे जो दिया है, क्या मैं उसके योग्य हूँ। नाथ, मैं तो योग्य नहीं हूँ, मैं तो पापी हूँ फिर भी श्री ठाकुरजीने मुझे संपत्ति और प्रतिष्ठा जगत्में दी है। जीव योग्य नहीं है फिर भी जीवको प्रभुने अधिक दे रखा है। नाथ, आपके उपकार अनंत हैं। नाथ, मैं इसका बदला नहीं चुका सकूँगा। मैं तो प्रभु, आपकी केवल वंदना ही करता हूँ। वंदन करनेसे अभिमानका बोझ (भार) कम होता है। श्री ठाकुरजीका बिलकुल वजन (भार) नहीं है कारण उनमें कोई अभिमान नहीं है। श्रीकृष्ण तो बोडाणाकी पत्नीकी नाककी नथसे ही तुल गए थे। श्री भागवतका आरंभ भी वंदनासे किया गया है और वंदनासे ही समाप्ति भी की गई है।

नमामि हरिं परम् ।

अकेले श्रीकृष्णकी वंदना नहीं की हे अपितु कहा है— " श्रीकृष्णाय राधाकृष्णाय वयं नुमः । " श्रीजीका अर्थ है राधाजी । श्री राधाजीके साथ विराजमान श्री ठाकुरजीकी मैं वंदना करता हूँ । परमात्माकी वंदना कर लेनेके वाद श्रीमद् भागवतके वक्ता श्री शुकदेवजीकी वंदना की गई है। वंदन करके तुम्हारी क्रियाशक्ति और बुद्धिशक्ति अर्पण करनेके पश्चात् कुछ अघटित कार्य या विचार न किया जाय ।

पढने और विचारनेकी अपेक्षा जीवनमें आचरण अधिक श्रेष्ठ है ।

वेदोंका अंत नहीं और पुराणोंका पार नहीं है । मनुष्यजीवन लघु है और शास्त्रका कोई पार नहीं है । परंतु उस एकको अर्थात् ईश्वरको जान लोगे तो सब कुछ जान जाओगे । कलियुगका मनुष्य कम समयमें भी श्री भगवान्को प्राप्त कर सकता है । यह हैं जो श्री भागवतमें बताया है ।

सूतजी कहते हैं–सात ही दिनोंमें राजा परीक्षितने सद्गति प्राप्त की थी जो मैंने अपनी आँखोंसे देखा है । परीक्षितजीका उद्धार हुआ। फिर भी हम सबका उद्धार क्यों नहीं होता है ? हमें परीक्षित जैसे श्रोता होना चाहिये और वक्ता भी श्री शुकदेवजी जैसा बने तो उद्धार हो जाय।हम सब परीक्षित ही हैं। यह जीव गर्भमें आया और जिसने मेरी रक्षा की, वह चतुर्भुज स्वरूपवाला पुरुष कहाँ है ? कहाँ है ? ऐसा कहते कहते ईश्वरकी खोजमें निकले वह जीव परीक्षित है। परीक्षित अर्थात् श्री भगवान्के दर्शन करनेके लिए आतुर हुआ है ऐसा जीव । परीक्षितजीकी आतुरताका एक कारण था कि उन्हें मालूम हो गया था कि सात दिनोंमें (सातवें दिन) मेरी मृत्यु होनेवाली है । तक्षक नाग मुझे डसनेवाला है । जीवमात्रको तक्षक नाग डसनेवाला है । तक्षक कालका स्वरूप है ऐसा भागवतके एकादश स्कंधमें कहा है । कालरूपी तक्षक किसीको नहीं छोडता । वह सातवें दिन डसता ही है । सप्ताहके कुल सात दिन हैं । इन सात दिनों (वार) मेंसे किसी एक वार (दिन) को यह काल अवश्य डसेगा ही । इन सात वारोंमेंसे कोई एक वार हमारे लिए भी निश्चित तो है ही। तो फिर परीक्षितजीकी तरह कालको मत भूलो । कोई भी जीव क्यों न हो, उसे कालका भय तो लगताही है। मृत्युका भय केवल मनुष्यको है ऐसा नहीं है । ब्रह्माजीको भी कालका भय लगता है।

श्री भागवत मनुष्यको निर्भय बनाता है । भागवतमें लिखा है कि ध्रुवजी मृत्युके सिर पर पांव रखकर स्वर्गमें गये थे । परीक्षित राजा समाप्तिमें बोले हैं कि मुझे अब कालका भय नहीं रहा है, मुझे कालका भय नहीं लगता है । भागवत सुनकर परमात्माके साथ प्रेम करनेपर उसे कालका भय नहीं लगता है । जो भागवतका आश्रय लेते हैं वे निर्भय बनते है ।

लोग मृत्युको अमंगल मानते हैं, परंतु यह मृत्यु अमंगल नहीं है । मृत्यु (काल) परमात्माकी सेवक है अतः मंगल भी है । श्री ठाकुरजीको लगता है कि मेरा बालक अब योग्य बना है तो वे मृत्युको आज्ञा देते हैं कि उस जीवको पकडकर ले आओ। जिसे पाप करनेका विचार भी नहीं आता है उसका मृत्यु मंगलमय होता है । जीवनमें मनुष्य मृत्युका सच्चा भय नहीं रखता है इसीसे उसका जीवन भी बिगडता है और मरण भी । अंतकालमें मनुष्यको जो घबराहट

होती है वह कालके डरसे नहीं, किंतु अपने किए हुए पापोंकी यादसे होती है। पाप करते समय तो मनुष्य डरता नहीं है। डरता है तब जब कि पापोंकी सजा भुगतनेका समय आता है। व्यवहारमें लोग एक दूसरेका भय रखते हैं। मुनीम सेठका भय रखता है, कारकुन अधिकारीका आदि। जब कि मनुष्य किसी भी दिन ईश्वरका भय नहीं रखता है इसीलिए वह दुःखी होता है।

भागवत मनुष्यको निर्भय बनाता है। श्री भागवतका आश्रय लेनेसे निर्भयता प्राप्त होती है। मैं अपने परमात्मा श्रीकृष्णका अंश हूँ, मैं भगवान्‌का हूँ। कुछ पैसे जेबमें आ जाएं तो मनुष्यको हिम्मत आ जाती है तो जब आप परमात्माको हमेशा साथ ही रखकर फिरेंगे तो आप निर्भय बन ही जाएंगे इसमें क्या आश्चर्य है। भय बिना प्रभुमें प्रीति होती ही नहीं है। कालका भय रखो। कालके, मृत्युके भयसे प्रभुमें प्रीति होती है। अतः कालकी, पापकी, धर्मकी भीति रखो। मनुष्य यदि सदा कालका भय रखे तो इससे पाप नहीं होगा। निर्भय होना हो तो पाप छोड दो। श्री भागवत शास्त्र हमें निर्भय बनाता है। मनुष्यको और किसीका भय चाहे न लगता हो फिर भी कालका भय तो इसे लगा ही रहता है। कामका नाश करके भक्ति और प्रेममय जीवन जो जीता है वह कालपर भी विजय पाता है। कालको जो मारता है वह कालकी मार नहीं खाता। कामकी, कालकी मारसे छूटना हो तो परमात्माके साथ अतिशय प्रेम करना होगा। ईश्वरसे प्रेम किये बिना ये विकार, काम, क्रोध आदि जाते नहीं हैं। परमात्माके साथ प्रेम करेंगे तो कालका भय लगेगा ही नहीं। ध्रुवजी मृत्युके सिरपर पांव रखकर वैकुंठ धाममें गए थे। काल ही तक्षक नागका स्वरूप है। काल-तक्षक किसीको नहीं छोडता। किसी पर भी इस कालको दया नहीं आती। अतः इसी जन्ममें ही इस कालपर विजय प्राप्त करो। जब जन्म होता है उसी समय ही मृत्युकाल और मृत्युकारण निश्चित किए जाते हैं।

पाप करनेमें मनुष्य जितना सावधान (होशियार) रहता है उतना पुण्य करनेमें नहीं रहता है। पाप प्रकट हो गया तो जगत्‌में अप्रतिष्ठित हूँगा ऐसा सोचकर पापको एकाग्रचित्त होकर वह करता है। और इसी कारणसे अंतकालमें उसे पापोंकी याद आती है। इसीसे अंतकालमें जी घबडाता है। उसे अपने किए हुए पाप प्रत्यक्ष दीखते हैं। वह समझता है कि मैंने मरनेकी तो कोई तैयारी की ही नहीं। मेरा अब क्या होगा! मनुष्य और तो सभी कामोंके लिए तैयारी करता है, परन्तु मरनेकी तैयारी करता ही नहीं है। जिस प्रकार शादीकी तैयारी करते हो उसी प्रकार (खुशीसे) धीरे धीरे मरनेकी भी तैयारी करो। मौतके लिए सदा सावधान रहो। मृत्यु अर्थात् परमात्माको बीते हुए जीवनका हिसाब देनेका पवित्र दिन। श्री भगवान् पूछेंगे – मैंने तुम्हें आँखें दी थीं, तुमने उनसे क्या किया? कान दिए थे, तुमने उनका क्या उपयोग किया? तुम्हें मन और धन दिए थे तो उनका तुमने क्या किया? इस हिसाबमें जो गडबड होगी तो घबराहट होगी ही। साधारण इनकमटैक्स ऑफीसरको हिसाब देना होता है तो भी मनुष्यको घबराहट होती है और वह ठाकुरजीकी प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, मैंने तो अलग अलग बही बना रखी है, परंतु तुम मेरा ध्यान रखना। एक वर्षके हिसाब देनेमें इतनी घबराहट होती है तो फिर सारे जीवनका हिसाब देते समय क्या दशा होगी? प्रभुने हमें जो दिया है उसका हिसाब देना ही पडेगा।

मृत्युको उज्ज्वल करना हो तो प्रतिक्षणको उजागर करो। आंखका सदुपयोग करो, धनका सदुपयोग करो, वाणीका सदुपयोग करो तो मृत्यु उज्ज्वल होगी। प्रतिक्षण जो ईश्वरका स्मरण करता है उसीकी मृत्यु सुधरती है। श्री भागवत मृत्यु सुधारता है। रोज स्मशानमें जानेकी जरूरत नहीं है परंतु स्मशानको रोज याद करनेकी जरूरत है। श्री शंकर स्मशानमें विराजते हैं। वे ज्ञानके देवता होनेसे स्मशानमें विराजते है। स्मशान तो ज्ञानभूमि है। स्मशानमें समभाव जागते हैं, अतः ज्ञान प्रगट होता है। इसीलिए स्मशान ज्ञानभूमि है। जहाँ समभाव जागे उसीका नाम स्मशान। समभावका अर्थ है असम भावका अभाव। समभाव ही ईश्वरभाव है। मनुष्य सबमें समभाव रखकर व्यवहार करे तो उसका मरण सुधरता है। सर्वमें (समभाव) ईश्वरभाव जागे तो जीव दीन बने (दैन्यभाव आए)। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन भी दैन्य (भाव) ही है। मनुष्यको अमर होना है। श्रीमद् भागवतकी कथा अमर है। अमरकथाका जो आश्रय लेता है वह अमर हो जाता है। राजा परीक्षित और शुकदेवजी अमर है। श्री भागवतकी कथा आपको अमर बनाती है और भक्तिरसका दान करती है। भक्तिसे ही मीराबाई द्वारिकाधीशमें और गौरांग प्रभु जगदीशमें सदेह समा गए और अमर हो गए। श्री भागवतकी कथा सुनो तो अनायास ही समाधि लग जाती है। योग और तपके बिना ही श्री भगवान्से मिलनेका कोई साधन है तो वह है भागवतशास्त्र।

भागवतके भगवान् इतने सरल हैं कि वे सबके साथ बोलनेको तैयार हैं, जब कि वे तो किसी अधिकारीके साथ ही बोलते है। भागवत शास्त्र मनुष्यको निःसंदेह बनाता है। इस कथामें सब आ जाता है— बुद्धिका परिपाक, ज्ञानका परिपाक, जीवनका परिपाक आदि हो जाने पर भगवान् व्यासजीने इस ग्रंथकी रचना की है। भगवान्के नामका जाप करते हुए प्रेमसे इस कथाका श्रवण करो। तुम निःसंदेह हो जाओगे। भागवत नारायणस्वरूप है। परिपूर्ण है। इसके श्रवणसे आस्तिकको मार्गदर्शन मिलेगा और नास्तिक होगा वह आस्तिक बनेगा। शुकदेवजी जैसे आत्माराम मुनिने सर्वस्व छोडा, परंतु वे भी इस कथाको नहीं छोड सके। आत्माराम कोटिके महात्मा भी इस श्रीकृष्ण कथामें मस्त बने हैं, पागल बने हैं। सिद्ध, आस्तिक, नास्तिक, पामर प्रत्येकको यह कथा जीवनका दान करती है। व्यवहारका ज्ञान भी भागवतमें आयेगा। भागवतमें ज्ञानयोग, कर्मयोग, समाजधर्म, स्त्रीधर्म, आपद्धर्म, राजनीति आदिका ज्ञान भरा है। यह एक ऐसा शास्त्र है कि जिसके श्रवण और मनन करने पर कुछ जानने जैसा बाकी रहता ही नहीं है। साधकको साधनमार्गमें कैसे कैसे संशय आते हैं इन सबका विचार करके व्यास भगवान्जीने यह कथा रची है। व्यासजी ऐसा मानते हैं कि जो कुछ मेरे इस भागवतमें नहीं है, वह जगत्के अन्य किसी ग्रंथमें भी नहीं है। जो भागवतमें है केवल वही अन्य ग्रंथोंमें है। – यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्। भागवतशास्त्र यह परिपूर्ण नारायणका स्वरूप है, यह अतिशय दिव्य है।

व्यासजीके आश्रममें गणपतिजी महाराज प्रगट हुए। व्यासजीने कहा– मुझे भागवत-शास्त्रकी रचना करनी है, परंतु इसे लिखेगा कौन? गणपतिजीने कहा– बहुत खुश! मैं लिखनेको तैयार हूँ। परंतु मैं एक क्षण भी खाली नहीं बैठूंगा। श्री गणपतिजीका वाहन तो चूहा है। चूहेका अर्थ है उद्योग। जो उद्योग पर बैठता है उसकी सिद्धि और बुद्धि दासी बनती हैं। सतत (निरंतर) उद्योग करोगे तो ऋद्धि–सिद्धि आपकी दासी बनेंगी। एक क्षण भी ईश्वरके

चिंतन बिना न बैठो। प्रत्येक कार्यके प्रारंभमें गणपतिकी पूजा की जाती है। गणपतिजी विघ्नहर्ता हैं। गणपतिका पूजन करनेका अर्थ है जितेन्द्रिय होना। गणपतिजी कहते हैं कि मैं खाली (बिना कामके) बैठता नहीं हूँ। जो हमेशा कार्यरत रहता है उसका अमंगल नहीं होता। श्री गणपतिजी बने हैं लेखक और व्यासजी बने हैं वक्ता। श्री गणपतिजीने कहा है कि मैं तो एक क्षण भी खाली नहीं बैठूंगा। आपको चौबीसों घंटे कथा कहनी होगी। तब व्यासजीने कहा, मैं जो कहूँ वह योग्य है या अयोग्य उसका पहले विचार करें और विचारपूर्वक लिखें। सौ श्लोक हो जाने पर व्यासजी एक ऐसा कूट श्लोक कह देते थे कि जिससे गणपतिको विचार करनेमें समय लग जाता था और इतने समयमें व्यासजी अपने अन्य काम पूरे कर लेते थे।

देवताओंको अपरोक्षता बहुत प्रिय है। लिखा है कि राजा चित्रकेतुकी एक करोड़ रानियां थीं। संसारके विषयोंको जो मनमें रखता है वही चित्रकेतु है। संसारके सर्व चित्र जिसके मनमें बैठ गए हों वही चित्रकेतु है। ऐसा मन जब विषयोंमें तन्मय हो जाता है तभी वह मन एक करोड़ रानियोंके साथ रमण करता है। ऐसा इसका अर्थ है (कि चित्रकेतुकी करोड़ रानियाँ थीं)। श्री भागवतमें अनेकों बार ऐसे प्रसंग आते हैं जिनका श्रोता और वक्ता विचार करें कि उनका लक्ष्यार्थ क्या है। इस बातका हम भी विचार करें इसके लिए व्यासजीने अतिशयोक्ति भी की है और लिखा है। जैसे कि, हिरण्याक्षके मुकुटका अग्रभाग स्वर्गसे स्पर्श करता था और उसके शरीरसे दिशाएं आच्छादित हो जाती थीं। लोभ दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है यह तत्त्व बतानेका उनका (इस कथनसे) उद्देश्य था।

सत्कर्ममें विघ्न आते हैं इसलिए सात दिनकी कथाका क्रम बताया गया है। अन्यथा सूतजी और शौनकादिकी कथा एक हजार दिवस चली थी। विघ्न न आए इसलिए व्यासजी सर्वप्रथम श्री गणेशाय नमः कहकर गणपति महाराजकी वंदना करते हैं। इसके पश्चात् सरस्वतीजीकी वंदना करते हैं। सरस्वतीकी कृपासे मनुष्यमें समझ आती है। फिर सद्गुरुकी वंदना करते हैं, और इसके बाद श्री भागवतके प्रधान देव श्रीकृष्णकी वंदना करते हैं। मैंने श्री भागवतशास्त्रकी रचना तो कर दी परंतु इस ग्रंथका प्रचार कौन करेगा? व्यासजीने वृद्धावस्थामें इस ग्रंथकी रचना की है। अतः वे स्वयं तो इस ग्रंथका प्रचार कर नहीं पायेंगे। वृद्धावस्थामें इस ग्रंथकी रचना कर लेने पर उनको चिंता हुई। यह शास्त्र अब मैं किसको दूं? श्री भागवत-शास्त्र मैंने मानवसमाजके कल्याणके लिए रचा है। श्री भागवतकी रचना करके मैंने कलम बंद की है। अबतक मैं बहुत बोला, मैंने बहुत कुछ लिखा, अब मैं ईश्वरके साथ अपना संबंध जोड़ूंगा। मेरा जीव जो प्रभुसे अलग हो गया था वह श्रीकृष्णके संमुख हो इसलिए मैंने भागवत शास्त्र बनाया है। भागवत यह प्रेमका शास्त्र है। इस प्रेमशास्त्रका प्रचार वो नहीं कर सकता है जो अतिशय विरक्त हो। श्रीकृष्णको छोड़कर अन्यके साथ प्रेम करनेवाले इस कथाके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा कौन मिलेगा? संसार सुख भोगनेके बाद तो बहुतोंको वैराग्य आता है, परंतु जन्मसे जिसने वैराग्य अपनाया है वैसा कौन मिलेगा? किसी योग्य पुत्रको यह ज्ञान दे दूं कि जिससे वह जगत्‌का कल्याण करे। ऐसा विचार करके पुत्रप्राप्तिके लिए व्यास-जीको पुत्रेच्छा जागी। भगवान् शंकर वैराग्यके स्वरूप हैं। शिवजी मुझपर कृपा करें और मेरे यहां पुत्ररूपमें आयें तभी यह कार्य हो सकता है। रुद्रका अंश है परंतु महारुद्रका अंश नहीं है। भगवान् शिव परब्रह्म हैं। उनका अंश नहीं है। अब शिवजी महाराज जन्म धारण करें तो इस

*

भागवतका प्रचार करें। भागवतशास्त्रका प्रचार तो शिवजी ही कर सकते हैं कारण उनमें ही संपूर्ण वैराग्य है। जन्मसे जिसे वैराग्य हो वही श्री भागवतका प्रचार कर सकता है। श्री शुकदेवजीमें संपूर्ण वैराग्य है। व्यासजीने श्री शंकरकी आराधना की। शिवजी महाराज प्रसन्न हुए। व्यासजीने मांगा, "समाधिमें जो आनद आप भोगते हैं, वही आनद जगत्‌को देनेके लिए आप मेरे घर पुत्ररूपसे पधारिए।" भगवान् शंकरको तो इस संसारमें आना प्रिय नहीं लगता है। संसारमें आनेपर माया गले लग जाती है। कोयलेकी खदानमें जानेपर हाथ-पैर काले होते ही हैं। विना काले हुए नहीं रह सकते। व्यासजीने कहा, "महाराज, आपको तो संसारमें आनेकी कोई जरूरत नहीं है, परंतु अनंत जीवोंके कल्याण करनेके लिए आप कृपा कीजिए और आइए। आपको माया कैसे प्रभावित कर सकती है? शिवजीने विचार किया कि समाधिमें मैं जिस आनंदका अनुभव करता हूँ, यदि वैसा आनंद जगत्‌को न दूं तो मुझे स्वार्थी कहा जाएगा। समाधिके आनंदका दान मुझे जगत्‌को करना चाहिए। ऐसा विचार करके शिवजी महाराज अवतार लेनेको तत्पर हो गए। श्री शुकदेवजी भगवान् शिवजीके अवतार थे, अतः वे जन्मसे ही पूर्ण निर्विकार थे। जो जन्मसे विरक्त होता है वही सोलह आने वैरागी कहलाता है।

ज्ञानी पुरुष मायाका संग नहीं रखते हैं। ज्ञानी पुरुष मायासे सदा असंग रहनेका प्रयत्न करते हैं। अतः वैष्णव भक्त मायामें भी ईश्वरका अनुभव करते हैं। श्री शुकदेवजीके जन्मकी कथाएं दूसरे पुराणोंमें भी हैं।

श्री शुकदेवजी सोलह वर्ष पर्यंत माताके पेटमें रहे थे। मांके पेटमें सोलह वर्ष तक परमात्माका ध्यान किया है। श्री व्यासजीने पूछा कि तुम बाहर क्यों नहीं आते हो? श्री शुकदेवजीने उत्तर दिया, "मैं संसारके भयसे बाहर नहीं आता हूँ। मुझे मायाका भय लगता है।" इसपर श्री द्वारिकानाथने आश्वासन दिया कि मेरी माया तुझे नहीं लग सकेगी। तब श्री शुकदेवजी माताके गर्भसे बाहर आए। श्री शुकदेवजीकी ब्रह्मनिष्ठा वैराग्य, अलौकिक प्रेमलक्षणा भक्ति देखकर व्यासजी भी श्री शुकदेवजीको मान देते हैं। जन्म होते ही श्री शुकदेवजी वनकी ओर जाने लगे। अरणी देवी माताने प्रार्थना की कि मेरा पुत्र निर्विकार ब्रह्मरूप है। यह मेरे यहांसे दूर न जाय। इसे रोको इसे रोको। व्यासजी उसे समझाते हैं, "जो हमें अति प्रिय लगता हो वही परमात्माको अर्पण करना चाहिए। वह तो जगत्‌का कल्याण करने जा रहा है। तत्पश्चात् श्री व्यासजी भी विह्वल हो उठे हैं, विचार करते हैं। अब यह तो जाता है फिरकर आनेवाला नहीं है। व्यासजी महाज्ञानी थे फिर भी पुत्रके पीछे दौडे हैं। व्यास नारायण श्री शुकदेवजीको बुलाते हैं, "हे पुत्र, हे पुत्र, वापस लौटो। मुझे छोडकर जाना नहीं, मैं तुम्हें लग्न (विवाह) करनेके लिए आग्रह नहीं करूँगा, तो भी श्रीकृष्णका ध्यान करते करते और सबका भान भूले हैं। (उस उन्मत्त अवस्थामें) भान भूली अवस्थामें कौन किसका पिता? कौन माता? लौकिक संबंधका विस्मरण होता है तभी ब्रह्मसंबंध होता है। जबतक लौकिक संबंधका स्मरण रहता है तबतक ईश्वरमें आसक्ति (भक्ति) होती नहीं है।

सर्वव्यापक हो चुके श्री शुकदेवजी वृक्षों द्वारा उत्तर देते हैं, 'हे मुनिराज, आपको पुत्रके वियोगसे दुःख हो रहा है, परंतु हमको तो जो पत्थर भी मारता है, हम उसे फल देते हैं। वृक्षोंके पुत्र उनके फल हैं। पत्थर मारनेवालेको भी फल दे वही वैष्णव है। तो आप पुत्र-

वियोगसे किसलिए रोते हैं ? आपका बेटा तो जगत्कल्याण करने चला है। व्यासजी अभी तक व्यग्र हैं, इसपर शुकदेवजीने कहा, "यह जीव तो अनेक बार पुत्र बना और अनेकों बार पिता बना है। वासनाओंसे बंधा जीव अनेक बार पिता-पुत्र-स्त्री बनता है। अनेकों बार पूर्व-जन्मके शत्रु भी घरमें आ जाते हैं। अपनी वासनाओंके कारण दादा ही पौत्र बनकर आता है। वासना ही सदा पुनर्जन्मका कारण बनती है। पिताजी, मेरे और आपके अनेक जन्म हुए हैं। पूर्वजन्म याद नहीं रहते हैं यही अच्छा है। पिताजी, न तो आप मेरे पिताजी हैं और न ही मैं आपका पुत्र। आपका और मेरा सच्चा पिता तो श्री नारायण है। वास्तवमें तो जीवका सच्चा संबंध ईश्वरके साथ ही है। पिताजी मेरे पीछे न पडो, श्री भगवान्के पीछे पडो। आप अपना जीवन परमात्माके लिए बनाइए। मुझे जो आनंद मिला है वह आनंद मैं जगत्को देने जाता हूं। तब श्री शुकदेवजी वहाँसे नर्मदा तटपर आए हैं। श्री शुकदेवजीने कहा है कि (नर्मदाके) इस किनारे पर मैं बैठता हूँ और सामनेके किनारे आप विराजिए। पिताजी, अब मेरा ध्यान छोड दो। मेरा ध्यान न करो। दूरसे चाहे आप मुझे देखते रहें परंतु ध्यान तो परमात्माका ही करो। जो परमात्माके पीछे पडते हैं वह ज्ञानी है। पैसेके पीछे मत पडो। परंतु परमात्माके पीछे पडो। भागवतकी कथा सुननेके बाद आप भी परमात्माके पीछे पडो। तभी कथाश्रवण सार्थक होगा। यह नर जो नारायणके पीछे पडे तो कृतार्थ होता है। व्यासजी अपनी पत्नीको समझाते हैं कि यदि शुक (श्री शुकदेवजी) तुम्हें अति प्रिय है तो इसे अंतर्यामीको अर्पण करो। जो हमें अति प्रिय लगता हो वह प्रभुको दें तो हम भी प्रभुको प्रिय लगेंगे। ऐसे सर्वभूतहृदय स्वरूप मेरे सद्गुरु श्री शुकदेवजीके चरणोंमें मैं बारबार वंदन करता हूं।

सूतजीने श्री शुकदेवजीको प्रणाम करके इस कथाका आरंभ किया है।

एक बार नैमिषारण्यके क्षेत्रमें शौनकजीने सूतजीसे कहा कि आजतक कथाएं तो बहुत सुनी हैं। अब कथाका सारतत्त्व सुननेकी इच्छा है। हमें अब कथा नहीं सुननी है, सब कथाओंका सारभूत क्या है वह सुनना है। "कथासारं मम कर्णरसायनम्।" ऐसी कथा सुनाइए कि हमारी भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति दृढ हो। हमें श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो। जैसे मक्खन सबका सार (तत्व) है वैसे सबका सार (तत्व) श्रीकृष्ण भगवान् हैं।

श्री ठाकुरजीको मक्खन बहुत प्रिय है। लाला (लल्ला) को मक्खन प्रिय है। लालाको मक्खन भावे रे, कुछ और न काम आवे रे। मक्खन सबका सार है और परमात्मा सारभोगी हैं। आज तक बहुत ग्रंथ पढे हैं। जिसे परमात्माको प्राप्त करना है ऐसे साधकको आज्ञा है कि वह बहुत ग्रंथ न पढे। अनेक ग्रंथ पढनेसे बुद्धिमें विक्षेप खडा हो जाता है। हमारे भगवान् श्री बालकृष्ण सारभोगी हैं। अतः वैष्णव भक्त सारभोगी हैं। अतः सर्व कथाओंका सारतत्त्व सुननेकी इच्छा हुई है। जीव प्रकृतिके भोग छोडे और श्रीकृष्णसे मन जोडे तो जीव भी शिव बन जाए।

भागवत मक्खन है। दूसरे शास्त्र दूध-दही जैसे हैं। सारे शास्त्रोंमें साररूप यह श्री कृष्णकथा है। शौनकजी कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति बढे ऐसी सारभूत कथा सुनाओ। ज्ञान बढे, भक्ति बढे ऐसा सारतत्त्व सुनाएं कि जिससे हम भगवानका प्रत्यक्ष दर्शन करें। ज्ञान वैराग्यके साथ भक्ति बढानेके लिए यह कथा है। कथा सोनेके लिए होती है। महान् भक्तोंके, महान् पुरुषोंके चरित्र सुनकर हमें भान होता है कि ओह मैंने अपनी आत्माके उद्धारार्थ तो कुछ किया ही नहीं है।

कथा सुननेके बाद यदि अपने पापोंके लिए पश्चात्ताप हो और प्रभुके प्रति अपने हृदयमें प्रेम जगे तभी कथाश्रवण सार्थक होता है। संसारके विषयोंके प्रति यदि वैराग्य न हो और प्रभुके प्रति प्रेम न जागे तो ऐसी कथा कथा ही नहीं है। ब्रह्माजीने नारदजीसे आज्ञा की है, "बेटा, कथा ऐसी कर कि जिससे लोगोंको मेरे प्रभुके प्रति भक्ति जागे। कथा मनुष्यके जीवनको सुधारती है। जीवनका परिवर्तन करती है। कथा मनुष्यके जीवनमें क्रांति करती है। कथा सुनकर भी यदि जीवनमें कुछ परिवर्तन न हो तो मानो कि तुमने कथा सुनी ही नहीं है। शौनक मुनिने इसीलिए प्रार्थना की है कि मेरा ज्ञान बढे, मेरी भक्ति बढे ऐसी कथा कर। अकेली भक्ति बढे ऐसा नहीं कहा है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके साथ साथ बढे।

हलवेमें लौकिक दृष्टिसे गेहूंकी कीमत कुछ अधिक नहीं है। किंतु आटेके बिना हलवा नहीं बन सकता। तत्त्वकी दृष्टिसे विचार करें तो आटेकी कीमत भी घी जितनी ही है। हलवा बनानेमें घी, गुड और आटेकी जरूरत एक सी है। इसी प्रकार ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी जरूरत एक समान ही है और जीवनमें इन तीनोंकी जरूरत है। सोलह आने ज्ञान और वैराग्य आए तभी जीवका जीवभाव जाता है। जिसमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य परिपूर्ण हो वही उत्तम वक्ता है।

अनेक ऋषि-मुनि वहां गंगाके किनारे बैठे थे परंतु कथा करनेको कोई तैयार नहीं हुआ तो भगवान्‌ने श्री शुकदेवजीको प्रेरणा दी कि वहां जाओ। श्री शुकदेवजीमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य परिपूर्ण है।

भागवतशास्त्र यह प्रेमका शास्त्र है। प्रेम तो पांचवां पुरुषार्थ है। श्रीकृष्णके प्रेममें देह-भान भूले तो मानो प्रेम सिद्ध हुआ। परमात्मा प्रेमको ही अपना स्वरूप कहते हैं।

ज्ञानमार्गमें प्राप्तकी प्राप्ति है। ज्ञानमार्गमें जो प्राप्त है उसीका अनुभव करना है। भक्तिमार्गमें भक्ति द्वारा भेदका विनाश करना है। भक्तिमार्गमें भेदका विनाश है। ज्ञानमार्गमें भेदका निषेध है। ज्ञानमार्गमें ज्ञानसे भेदका निषेध करनेमें आया है। ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गका लक्ष्य एक ही है।

सूतजी कहते हैं— आप सब ज्ञानी हैं। परंतु लोगोंपर उपकार करनेके लिए आप प्रश्न पूछते हैं तो कृपया सावधान होकर कथा सुनिए। पूर्व जन्मोंके पुण्यका उदय होता है तभी इस पवित्र कथाके सुननेका योग मिलता है।

कलियुगके जीवोंको कालरूपी सर्पके मुखसे छुडानेके लिए श्री शुकदेवजीने श्री भागवतकी कथा कही है। जिस समय श्री शुकदेवजी परीक्षित राजाको यह कथा सुना रहे थे तो उस समय अमृत लेकर स्वर्गके देवतागण वहाँ आए। उन्होंने कहा— स्वर्गका यह अमृत हम राजाको देते हैं और बदलेमें यह कथामृत आप हमें दीजिए। शुकदेवजीने परीक्षितजीसे पूछा कि यह कथामृत पीना है या स्वर्गका अमृत? तो परीक्षितजीने श्री शुकदेवजीसे पूछा कि स्वर्गका अमृत पीनेसे क्या लाभ? श्री शुकदेवजीने कहा, "स्वर्गका अमृत पीनेसे स्वर्गके सुख मिलते हैं। परंतु स्वर्गका अमृत दुःखमिश्रित है। स्वर्गका अमृत पीनेसे पुण्योंका क्षय होता है परंतु पापोंका क्षय नहीं होता है। कथामृतके पानसे पापोंका नाश होता है। कथामृतसे भोग-वासनाका विनाश होता है। अतः स्वर्गके अमृतसे यह कथामृत श्रेष्ठ है।

सनत्कुमार ब्रह्मलोकमें रहते थे। एक बार वे भी इस कथाका आनंद लेने भारतमें आए। इससे लगता है कि ब्रह्मलोकमें भी इस कथाके आनंद जैसा कोई आनंद नहीं है। तब परीक्षित राजाने कहा, "भगवन्, मुझे यह स्वर्गका अमृत नहीं पीना है। मैं तो इस कथामृतका ही पान करूंगा।

सात ही दिनोंमें ज्ञान और वैराग्यको जाग्रत करनेके लिए यह कथा है। ज्ञान और वैराग्य अपने अंदर ही है परंतु वे सोये हुए हैं। उन्हें जाग्रत करना है। आगे कथा आएगी कि ज्ञान और वैराग्यको मूर्छा आई हुई है। सात दिनमें ही इस ज्ञान और वैराग्यको जाग्रत करके भक्तिरस उत्पन्न करना है। इसके लिए यह कथा है। ऐसा और कोई ग्रंथ नहीं है कि जो सात ही दिनोंमें मुक्ति दिलाए।

सूतजी कहते हैं कि सात ही दिनोंमें परीक्षितजीको जिस कथासे मुक्ति मिली थी वही कथा आपको सुनाता हूँ। सात दिनोंमें ही परीक्षितको मुक्ति मिली कारण उनके लिए यह निश्चित था कि ठीक सातवें ही दिन उनका काल आनेवाला है। परंतु हम तो कालको भूल जाते हैं।

वक्ता श्री शुकदेवजी जैसा अवधुत हो और श्रोता परीक्षितजी जैसा अधिकारी हो तो सात दिनमें मुक्ति मिलती है। वक्ता और श्रोता दोनों अधिकारी होने चाहिए। बिजलीका प्रवाह और गोला (बल्ब) दोनों ठीक होने चाहिए। वक्ता और श्रोता दोनों ही अधिकारी हों तभी यह कथा मुक्ति दिलाती है। कथा सुनी तो परीक्षितको लेने विमान आया। और उनको सद्-गति मिली। परीक्षित महाराज विमानमें बैठकर श्री परमात्माके धाममें गए। आजकल लोग कथा तो बहुत सुनते हैं परंतु उनको लेनेके लिए विमान क्यों नहीं आते हैं? इसका कारण यही है कि वक्ता और श्रोता अधिकारी नहीं मिलते हैं। मनुष्य जब वासनाओंमें फँसा है तब तक विमान कैसे आएंगे? और यदि (इससे पहले) विमान आ भी जाए तो भी इनपर कोई बैठेगा नहीं। कदाच स्वर्गमेंसे विमान लेनेके लिए आ भी जाए तो भी मनुष्यकी जानेकी तैयारी भी तो कहाँ है? हम सब विकार और वासनाओंमें बंधे हुए हैं। मनुष्य पत्नी, पुत्र, धन, घर आदिमें फँसा है। जबतक यह आसक्ति छूटेगी नहीं तब तक मुक्ति नहीं है। जिसका मन परमात्माके रंगमें रंग गया है उसके लिए तो वह जहाँ बैठा है वहीं मुक्ति है। ऐसोंके लिए तो विमान आए भी तो क्या और न आए तो भी क्या? ईश्वरके साथ तन्मयता हो जाय उसीमें ही आनंद मिलता है। उससे बढ़कर आनंद तो वैकुंठमें भी नहीं है।

भक्त तुकारामको लेनेके विमान आया तो तुकारामने अपनी पत्नीसे कहा कि इस जीवनमें तो मैं तुम्हें कोई सुख दे न सका। परंतु परमात्माने हमारे लिए विमान भेजा है। तो चलो, तुम्हें विमानमें बिठाकर परमात्माके धाममें ले चलूं। आओ, मेरे साथ चलो। परंतु पत्नीने न माना। उसने कहा कि महाराज, आपको जाना हो तो जाइए। मुझे जगत्‌को छोड़कर नहीं जाना है स्वर्गमें। और वह नहीं गई।

संसारका मोह छोड़ना बड़ा कठिन है। जबतक वासना निर्मूल न हो जाय तबतक शांति नहीं मिल सकती। कथाका प्रकाश सिद्धांत भी यदि दिलमें उतर जाए तो जीवन मधुर

बन जाये । वासनाएं बढती हैं, भोग बढते हैं इसीसे संसार कटु विष बन जाता है । जबतक वासनाए क्षीण न हो जायें तबतक मुक्ति नहीं मिल सकती । पूर्वजन्मका शरीर तो चला गया है परंतु पूर्वजन्मका मन नहीं गया है । लोग अपने तनकी, कपडोंकी खूब चिंता रखते हैं परंतु मरनेके बाद भी जो साथ आता है उस मनकी चिंता नहीं रखते हैं । मरनेके बाद जिसे साथ आना है उसीकी फिक्र करो । धनशरीरादिकी चिंता मत करो । मरनेके बाद तो जो अंगूठी तुम्हारी उंगलीमें होगी वह भी लोग निकाल लेंगे ।

आचार-विचारके बिना मनकी शुद्धि नहीं होती है । जबतक मनकी शुद्धि न हो तबतक भक्ति नहीं हो सकती है । ज्ञान और वैराग्यको दृढ करनेके लिए यह भागवतकी कथा है ।

विवेकसे जबतक संसारका अंत न लायें तबतक संसारका अंत आनेवाला नहीं है । जीवनमें संयम और सदाचार जबतक न आए तबतक पुस्तकोंसे मिला ज्ञान किसी काम लगेगा नहीं । केवल ज्ञान भी किस कामका ?

एक गृहस्थके पुत्रका अवसान हुआ । गृहस्थ रोता है । उसके घर कोई ज्ञानी साधु आता है और उपदेश करता है, "आत्मा अमर है, मरण शरीरका होता है अतः तुम्हारे पुत्रकी मृत्युका शोक करना अनुचित है ।" कुछ समयके बाद उस साधुकी बकरी मर गई जिससे वह रोने लगा । साधुको रोता हुवा देखकर उस गृहस्थने साधुसे पूछा कि महाराज, आप तो मुझे उपदेश देते थे कि किसीकी मृत्यु पर शोक नहीं करते । तो फिर आप किसलिए रुदन कर रहे हैं ? साधुने कहा कि बालक तुम्हारा था और बकरी तो मेरी थी अतः रोता हूँ। ऐसा 'परोपदेशे पांडित्यम्' किस कामका ?

ज्ञानका अनुभव करो, मुक्त होनेके लिए ज्ञानका उपयोग है । कथा जीवनको सुधारती है । जीवनको पलट देती है । कथा सुननेपर जीवन पलट न जायँ तो मानो कि कथा बराबर सुनी ही नहीं है । कथा मुक्ति देती है यह बात बिलकुल सच है ।

रोज मृत्युको एक-दो बार याद करते रहो । शायद आज ही मुझे यमदूत पकडने आ जाएं तो मेरी क्या दशा होगी ? यदि ऐसा आप रोज सोचेंगे तो पाप नहीं होगा । मनुष्य मरणका विचार तो रोज करता ही नहीं है, परंतु भोजनका विचार रोज करता है ।

इस भागवतशास्त्रकी महिमाका वर्णन दूसरे बहुतसे पुराणोंमें किया गया है । परंतु सामान्यतः पद्मपुराणके अंतर्गत माहात्म्यका वर्णन करते है । अब श्री भागवतकी महिमाका वर्णन करना है । इस श्री भागवतकी महिमाका अब वर्णन करते हैं । इस श्री भागवतकी कथाका माहात्म्य एक बार सनत्कुमारोंने श्री नारदजीसे कह सुनाया था । माहात्म्यमें ऐसा लिखा है कि बडे बडे ऋषि और देवता ब्रह्मलोक छोडके विशालाक्षेत्रमें इस कथाको सुननेके लिए आए थे । इस कथामें जो आनंद मिलता है वह ब्रह्मानंद से भी श्रेष्ठ है । (अर्थात्) योगी तो केवल अपना ही उद्धार करता है जब कि सत्संगी अपने साथ अपने संगमें आए हुए सभीका उद्धार करता है । बद्रिका आश्रममें सनत्कुमार पधारे हैं । जिसे लोग बद्रिकाश्रम कहते हैं वही विशालाक्षेत्र है ।

बदरीविशालकी जय।

स्कंदपुराणमें कथा आती है कि बद्रीनारायण विशाल राजाके लिए पधारे थे। पुंडलीकके लिए विट्ठलनाथ आए थे। जिस भक्तके लिए भगवान् आए, वह धन्य है। बद्री-नारायणजी तप-ध्यानका आदर्श जगत्को बताते हैं। वे कहते हैं कि मैं ईश्वर हूँ तो भी तप करता हूँ ध्यान लगाता हूँ। तपश्चर्याके बिना शांति नहीं मिलती। जीव कठिन तपश्चर्या नहीं कर सकता है, अतः श्री भगवान् आदर्श बताते हैं। बालक जब दवाई नहीं खाता तो माता स्वयं उसे खाकर दिखाती है, जिससे बालक समझे कि दवाई भी एक खानेकी वस्तु है। वैसे तो माताको दवाई खानेकी कोई जरूरत नहीं है परंतु बालकको समझानेके लिए वह भी खा लेती है।

श्री बद्रीनारायणके मंदिरमें लक्ष्मीजीकी मूर्ति मंदिरके बाहर है। स्त्री और बालकका संग तपश्चर्यामें विघ्नरूप है। इसमें स्त्रीकी कुछ निंदा नहीं है परंतु कामकी निंदा है। किसीको पत्नी और बालकोंका त्याग नहीं करना है, इसलिए कहना पड़ता है कि पत्नी और बच्चोंके साथ रहकर घरमें ही भगवान्का भजन करो। इसी तरह तपस्विनी स्त्रीके लिए भी पुरुषका संग त्याज्य है।

विशालपुरीमें जहां सनत्कुमार विराजते थे वहाँ एक दिन नारदजी घूमते हुए आ गए। वहीं सनकादि ऋषियोंके साथ नारदजीका मिलन हुआ। नारदजीका मुख उदास देखकर सनकादिने उनसे उदासीनताका कारण पूछा कि आप चिंतामें क्यों हैं? कुतश्चिंतातुरो? आप हरिदास हैं। श्रीकृष्णका दास, कभी होवे नहीं उदास। वैष्णव तो सदा प्रसन्न रहता है। जो चिंता न करे वही तो वैष्णव है। वैष्णव तो प्रभुका चिंतन करता है। फिर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं? नारदजीने कहा कि मेरा देश दुःखी है। सत्य, तप, दया, दान रहे नहीं हैं। मनुष्य बोलता है कुछ और, उसके मनमें कुछ और ही होता है और करता भी कुछ और ही है। और कुछ क्या कहूँ? उदरम्भरिणो जीवाः। जीव केवल अपने अपने पेट भरनेवाले और स्वार्थी हो गए हैं।

समाजमें किसीको भी सुख-शांति रही नहीं है। मैंने अनेकों स्थानका परिभ्रमण किया है। फिर भी मुझे शांति नहीं मिली। आज सारा देश दुःखी क्यों हो रहा है? नारदजीने इसके कई कारण बताए हैं। धर्म और ईश्वरमें जबतक आस्थावान् नहीं बने, तब तक देश सुखी नहीं हो सकता। जिसके जीवनमें धर्मका स्थान प्रधान नहीं है उसे जीवनमें कभी शांति नहीं मिलती। धर्म और ईश्वरको भूलनेवाला मानव कभी सुखी नहीं होता। जगत्में अब धर्म रहा ही कहाँ है!

नारदजीने यह दुःखसे कहा है कि अब इस जगत्में सत्य नहीं रहा है। सत्यं नास्ति। जगत्में असत्य बहुत बढ़ गया है। असत्यके समान कोई पाप नहीं है। उपनिषदोंमें कहा है कि असत्यभाषीको न केवल पाप ही लगता है अपितु उसके पुण्योंका भी क्षय होता है। यदि सच्चा आनंद पानेकी इच्छा रखते हो तो सत्यमें निष्ठा रखो। असत्य बोलनेवाला व्यक्ति न तो कभी सुखी हुआ है और न कभी होगा।

मितभाषी बनोगे तो सत्यभाषी बन सकोगे।

जगत्में कहीं भी पवित्रता दिखाई नहीं देती। शरीर और वस्त्र जिस प्रकार साफ सुथरे रखते हैं उसी प्रकार मनको भी पवित्र रखना चाहिए। मनुष्य कपडोंको तो स्वच्छ रखता है किंतु मनको स्वच्छ नही रखता है। मनको बिल्कुल पवित्र रखो क्योंकि मन तो साथ साथ आएगा।

जगत्में कहीं भी नीतिका दर्शन नहीं होता है। नीति और अनीतिसे बहुत कुछ धन-संपत्ति जुटानी है और कुमार्गमें खर्च भी करनी है। कुटुंबसुखके उपरांत भी कोई सुख है या नही, इसका विचार भी मनुष्य करता नही है। वह तो यही सोचता है कि इस धनसंपत्तिसे मैं तो अपने कुटुंबको सुखी करूँगा। अपनी इन्द्रियोंका वह इतना तो दास बन जाता है कि उसे कोई पवित्र विचार आता ही नहीं है। शरीर और इन्द्रियोंके सुखमे वह ऐसा तो फँसा है कि शांतिसे विचार भी नही कर सकता कि सच्चा और श्रेष्ठ आनंद कौन-सा है और कैसे मिल सकता है। जीवनमें जब तक कोई पवित्र लक्ष्य निश्चित नहीं होगा तब तक पाप रुकेंगे ही नहीं। जो लक्ष्यको लक्षमें रखता है, वही पापसे बच सकता है।

मनुष्यको अपने जीवनका लक्ष्य मालूम नही है। वह मंदबुद्धि करने योग्य कामको करता ही नही है। जगत्में अन्नविक्रय होने लगा है। जगत्में पाप बहुत बढ गया है। इसीसे धरतीमाताने अन्नको अपनेमे समेट लिया है। अन्नविक्रय पाप है।

ज्ञानका भी विक्रय होने लगा है। ज्ञानका विक्रय मत करो। ब्राह्मणको चाहिए कि वह निष्काम भावसे जगत्को ज्ञानका दान करे। अन्नदानसे भी ज्ञानदान श्रेष्ठ है। कारण, ज्ञानसे सदा शांति मिलती है।

जबसे अन्न और ज्ञानका विक्रय होने लगा है तबसे पवित्रता नष्ट हो गई है और पाप बढ रहा है।

मनुष्यकी भावना जबसे बिगडी है तबसे विश्वमें उसका जीवन भी विकृत हो गया है।

संसारमें मुझे कहीं भी शांति नजर नहीं आई। इस प्रकार कलियुगके दोष देखता हुआ घूमता-फिरता मैं वृंदावनमें आया। वहाँ एक कौतुक देखा। एक युवतीको देखा, उसके पास दो पुरुष मूर्छामें पडे हुए थे। वह स्त्री चारों ओर देख रही थी। उस स्त्रीने मुझे (नारदजीको) बुलाया, अतः मैं उसके पास गया। साधु पुरुष किसी स्त्रीके पास नहीं जाते हैं अतः नारदजी बिना बुलाए उस स्त्रीके पास नहीं गए। इस युवतीने मुझसे कहा कि ठहरो। क्षणं तिष्ठ।

दूसरोंके काम सिद्ध करोगे तो तुम साधु बनोगे। सुवर्णसे भी अधिक मूल्यवान् समयको माने वह साधु है। जिसे समयकी कोई कीमत नहीं है वह अंतकालमें खूब पछताता है। किसीका एक भी क्षण नही बिगाडना चाहिए।

अतः जब एक क्षण ठहरनेके लिए कहा गया तो मैंने उस युवतीसे पूछा कि देवीजी, आप कौन हैं। उस युवतीने मुझसे कहा कि मेरा नाम भक्ति है। ये ज्ञान और वैराग्य मेरे पुत्र है। ये अब वृद्ध हो गए हैं। मेरा जन्म तो द्रविड देशमें हुआ है। महान् आचार्य दक्षिण भारतमें प्रगट हुए थे। श्री शंकराचार्यजी और श्री रामानुजाचार्यजी दक्षिणमें उत्पन्न हुए थे। दक्षिण देश भक्तिका देश है।

कर्णाटकमें मेरा परिपालन हुआ है, और मेरी वृद्धि भी वहीं हुई। आचार और विचार जहाँ शुद्ध होते हैं वहाँ भक्तिको पुष्टि मिलती है। आचार-विचार शुद्ध हों तो भक्ति हो सकती है। विचारोंके साथ साथ आचार भी शुद्ध होने ही चाहिए। कर्णाटकमें आज भी आचारकी शुद्धि देखनेमें आती है। भगवान व्यासजीको कर्णाटकके प्रति कोई पक्षपात नहीं था। परंतु जो सच था उसीका उन्होंने वर्णन किया है। अब भी कर्णाटकमें लोग निर्जला एकादशी करते हैं। एकादशीका अर्थ दीवाली नहीं है।

मेरी एक एक करके सभी इंद्रियां भगवान्‌को अर्पण करनी है ऐसी भावनासे एकादशीका व्रत रखो।

महाराष्ट्रमें किसी किसी स्थान पर मेरा सम्मान हुआ। महाराष्ट्रमें कहीं कहीं भक्तिको सम्मान मिला है। पंढरपुर जैसे स्थल पर भक्तिका दर्शन होता है। गुजरातमें तो मैं जीर्ण हो गई हूँ। 'गुर्जरे जीर्णतां गता।' गुजरातमें मैं अपने दोनों पुत्रोंके साथ वृद्ध हुई। धनका दास प्रभुका दास नहीं हो सकता। गुजरात कांचनका लोभी हो गया है, अतः भक्ति छिन्न भिन्न हो गई है।

भक्तिके प्रधान अंग नव हैं। इसमें प्रथम है श्रवण। केवल कथा सुन लेनेसे भक्ति पूरी नहीं होती है। जो सुना है उसका मनन करो। मनन करके जितना जीवनमें उतारा हो, उतना ही भागवतश्रवण सार्थक हुआ कहा जाएगा। कथा सुननेसे पाप जलते हैं परंतु मनन करके जीवनमें उतारनेसे तो मुक्ति मिलती है।

श्रवणभक्ति छिन्न-भिन्न हो रही है क्योंकि मनन नहीं रहा है। मनन नहीं करनेसे श्रवण सफल नहीं होता। मननके अभावमें श्रवणभक्ति क्षीण होती जा रही है।

कीर्तनभक्ति भी नहीं रही है क्योंकि कीर्तनमें भी कीर्तन और कांचनका लोभ आ गया है, और तभीसे कीर्तनभक्ति भ्रष्ट हो गई है।

ज्ञानी पुरुषोंको अपमानसे भी सम्मान अधिक बुरा लगता है। धनके लोभकी अपेक्षा कीर्तिका मोह छूटना बड़ा कठिन है। कीर्तिका मोह तो ज्ञानीको भी सताता है। मैं अपने मनको समझाता हूँ। जब तक तुम अपने मनको स्वयं न समझाओगे तब तक वह मानेगा ही नहीं।

कथा-कीर्तनमें जगत् अनायास ही विस्मृत हो जाता है। मनुष्य सब कुछ छोड़कर जब माला लेकर बैठता है तभी उसे जगत् याद आता है। कथामें जब बैठें तो तो संसार-व्यवहारके विचारोंको मनसे निकाल दो। मैं अपने श्रीकृष्णके चरणोंमें बैठा हूँ, ऐसी भावना रखो। कीर्तन-भक्ति निष्काम होनी चाहिए। संत तुलसीदासजीने कहा है कि स्वांतःसुखाय। मैं अपने सुखके लिए कथा करता हूँ। दूसरोंको कथा सुन मिलता है इसकी मुझे कोई खबर नहीं है। मेरे मनको आनंद मिले इसलिए मैं कथा करता हूँ।

वंदनभक्ति अभिमानके कारण चली गई। अभिमान बढ़ने ही वंदनभक्तिका नाश हुआ। सबमें श्रीकृष्णकी भावना रखकर सबको वंदन करो। वंदन करनेसे विरोध नष्ट होता है।

भक्त नरसिंहने भक्तका लक्षण बताते हुए कहा है कि 'सकल लोकमां सहुने वंदे' वही सच्चा वैष्णव है। जो वंदन करता है वही वैष्णव है और जो वंदन करवाना चाहता है वह वैष्णव नहीं है। मनके भीतर जब तक अभिमान रहेगा तब तक भक्तिकी पुष्टि नहीं होगी।

आजकल तो लोग देहकी बहुत पूजा करते हैं। श्री ठाकुरजीकी सेवाके लिए, पूजाके लिए अब उनको समय नहीं मिलता है। देहपूजा बढी कि देवपूजा गई। लोगोंने भांति भांतिके साबुन बनाए हैं। चाहे जितना साबुन मलो किंतु देहका जो रंग है वही रहेगा। परमात्माने जो रंग दिया है वही सच्चा रंग है, और वही ठीक भी है। मनुष्य बहुत विलासी हो गया है इस कारण ही अर्चनभक्तिका ह्रास हुआ है। शरीरको लोग बहुत सजाने-संवारने लगे हैं तभीसे अर्चनभक्ति चली गई। अतः जीवन सादा रखो।

इसी प्रकार भक्तिके एक अंगका विनाश हुआ है। अर्थात् जीव ईश्वरसे विभक्त हुआ (जुदा हुआ है), श्री ठाकुरजीसे विमुख हुआ है। बुद्धिका जब बहुत अतिरेक होता है तो भक्तिका विनाश होता है। भक्ति छिन्न-विभिन्न हुई तो जीवन भी विभक्त हो गया।

भक्तिके दो बालक हैं : ज्ञान और वैराग्य। भक्तिका आदर ज्ञान और वैराग्यके साथ करो। ज्ञान और वैराग्य मूर्छित होते हैं तो भक्ति भी रोती है। कलियुगमें ज्ञान और वैराग्य क्षीण होते हैं, बढते नहीं हैं।

जबसे पुस्तकोंमें आकर समा गया, तबसे ज्ञान चला गया। नारदजी कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्यको मूर्छा क्यों आई है यह मैं जानता हूँ। इस कलिकालमें जगत्मे अधर्म बहुत बढ गया है। इसीसे इनको मूर्छा आई है। इस वृंदावनकी प्रेमभूमिमे तुमको पुष्टि मिली है। कलि-युगमें ज्ञान और वैराग्यकी उपेक्षा होती है, अतः वे निरुत्साहित होकर वृद्ध और जीर्ण हो गए हैं।

ज्ञान और वैराग्यके साथ मैं भक्तिको जाग्रत करूँगा। ज्ञान-वैराग्यके साथ मै भक्तिका प्रचार करूँगा। नारदजीने ज्ञान-वैराग्यको जगानेके लिए अनेक प्रयत्न किए। परंतु कुछ बना नही है। वेदोंके अनेक पारायण किए तो भी ज्ञान-वैराग्यकी मूर्छा गई नही।

कुछ थोडा-सा विचार करेंगे तो यह ध्यानमें आ जाएगा कि ऐसी कथा तो प्रत्येक घरमें होती है। अपना यह हृदय ही वृंदावन है। इस हृदयके वृंदावनमें कभी कभी वैराग्य जाग्रत होता है। परंतु वह जागृति (स्थिर) स्थायी नही रहती है।

उपनिषदो और वेदोंके पठनसे अपने हृदयमें क्वचित् ज्ञान और वैराग्य जागता है। परंतु फिरसे वे मूर्छित हो जाते हैं।

वेदके पारायणसे वैराग्य तो आता है परंतु वह स्थायी नही रहता है। स्मशानभूमिमें जब चिता जल रही होती है तो उसे देखकर कई व्यक्तियोंको वैराग्य हो आता है। परंतु वह वैराग्य टिकाउ नही होता।

काम-सुखको भोग लेनेके बाद भी बहुतोंको वैराग्य आता है। संसारके विषयके उपभोग कर लेने बाद बहुतोंको वैराग्य आता है। परंतु वह भी स्थायी नही होता है। विषय-भोगके बाद अरुचि तो होती है परंतु वह अरुचि विवेक और वैराग्यसे रहित होनेके कारण टिकती नहीं है।

ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि सब कुछ वेदोंसे ही उत्पन्न हुए हैं। परंतु वेदोंकी भाषा गूढ होनेके कारण सामान्य मनुष्यकी समझमें कुछ नहीं आता। कलियुगमें तो श्रीकृष्ण-कथा और श्रीकृष्ण-कीर्तनसे ही ज्ञान और वैराग्य जाग्रत होते हैं।

नारदजी चिंतामें फँसे हैं कि ज्ञान और वैराग्यकी मूर्छा उतरती नहीं है। उसी समय आकाशवाणी हुई कि तुम्हारा प्रयत्न उत्तम है। ज्ञान-वैराग्यके साथ भक्तिका प्रचार करनेके लिए आप कुछ सत्कर्म कीजिए। नारदजीने पूछा कि मैं क्या सत्कर्म करूं। तो आकाशवाणीने बताया कि तुम्हें संत महात्मा सत्कर्म क्या है वह बताएँगे।

नारदजी अनेक साधु संतोंसे पूछते हैं कि ज्ञानवैराग्य सहित भक्तिको पुष्टि मिले ऐसा कोई उपाय बताएं। परंतु निश्चित उपाय कोई भी नहीं बता सका। तो नारदजी चिंतामें पड गए। वे सोचने लगे कि निश्चित उपाय बतलानेवाले संत मुझे कहाँ मिलेंगे, और वे क्या साधन बताएंगे? ऐसा विचार करते करते नारदजी घूमते-फिरते बद्रिकाश्रममें आए। वहाँ सनकादि मुनिओंके साथ उनका मिलन हुआ। नारदजीने सनत्कुमारोंको यह सारी कथा सुनाई।

नारदजी कहते हैं कि मैंने जिस देशमें जन्म लिया है उसी देशके लिए यदि उपयोगी न बन सकूं तो मेरा जीवन वृथा है। आप बताएं कि मैं क्या सत्कर्म करूं।

सनकादि मुनि कहते हैं कि देशके दुःखसे तुम दुःखी हो। तुम्हारी भावना दिव्य है। भक्तिका प्रचार करनेकी तुम्हारी इच्छा है। आप भागवतज्ञानमार्गका पारायण कीजिए। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तुम भागवत ज्ञानयज्ञ करो और भागवतका प्रचार करो। इसीसे लोगोंका कल्याण होगा। इस कथासे ज्ञान और वैराग्यकी जागृति होगी। श्रीभागवतकी कथा ज्ञान, भक्ति और वैराग्यको बढानेवाली है।

वेदोंका पारायण करना अच्छा है। उससे आपकी इच्छा पूर्ण होगी। परंतु वेदोंके अर्थ जल्दी समझमें नहीं आ सकते। इसलिए सर्व वेदोंके साररूप इस श्रीभागवतका ज्ञानयज्ञ करो।

श्रीभागवत-कथाका अमृतपान करनेके लिए वे वहाँसे गंगाजीके किनारे गए। शुद्ध भूमिमें सात्त्विक भाव जागते हैं। भूमिका प्रभाव सूक्ष्म रीतिसे मन पर अवश्य पडता है। भोगभूमि भक्तिमें बाधक है। श्रीगंगाजीका तट ज्ञानभूमि है। अतः आज्ञा की कि गंगा किनारे चलो।

श्री नारदजी सनत्कुमारोंके साथ आनंदवनमें आए हैं। सनत्कुमार श्री व्यासाश्रममें आए हैं। नारदजी हाथ जोडे बैठे हैं। यहाँ ऋषि मुनि भी श्री भागवत-कथाका पान करने आए हैं। जो नहीं आए थे उन सभीके घर भृगु ऋषि जाते हैं और विनीत भावसे वंदन करके उनको कथामें ले आते हैं। सत्कर्ममें दूसरोंको प्रेरणा दे उसे भी पुण्य मिलता है।

कथाके आरंभमें भगवान्का जयजयकार करते हैं, और " हरये नमः " का जुओच्चार करते हैं। यह " हरये नमः " महामंत्र है।

सारी प्रवृत्तियोंको छोडकर मनुष्य ध्यानमें बैठता है। यहाँ भी माया विघ्न करती है। अनादिकालसे मनुष्यका मायाके साथ युद्ध होता आया है। जीव ईश्वरके पास जाता है, तो मायाको वह अप्रिय लगता है। जीव सब प्रकारके मोह छोडकर प्रभुके पास आए, यह मायाको प्रिय नहीं लगता है। मायाका कोई एक रूप नहीं है। ईश्वर जिस प्रकार व्यापक हैं वैसे ही माया भी व्यापक जैसी है।

जीव और ईश्वरके मिलनमें माया विघ्न करती है।

माया सबको भोगत बनाती है। माया मनुष्यको समझाती है कि स्त्री-बालक और धन-संपत्ति आदिमें ही सुख है। मनुष्यको माया पराश्रित कर देती है। मनुष्यकी हार होती है

और मायाकी जीत होती है। इसका कारण यह है कि मनुष्य प्रभुका जयजयकार करता नहीं है। कथा, भजनमें प्रेमसे ईश्वरकी जयकार करना चाहिए कि जिससे मायाकी हार हो और अपनी जीत हो।

प्रभुका जयजयकार करोगे तो तुम्हारी भी जीत होगी और तुम्हारा भी जयजयकार होगा।

भूख और तृष्णाको भूलोगे नहीं, तो पाप होते ही रहेंगे। भूख और प्यासको सहन करनेकी आदत होनी चाहिए। आगे कथा आएगी कि राजा परीक्षितजीकी बुद्धि भूख और प्यासके कारण ही बिगडी थी।

सूतजी सावधान करते हैं। हे राजन्, नारदजी आज श्रोता बनकर बैठे हैं, और सनकादि आसन पर विराजमान हैं। अतः जयजयकार शुद्ध होने लगा है।

यह भागवतकी कथा अति दिव्य है। इस कथाको जो प्रेमसे सुनेगा उसके कानमेंसे परमात्मा हृदयमें उतरेंगे।

नेत्र और श्रोत्रको जो पवित्र रखते हैं उनके हृदयमें श्री परमात्मा आते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कानमेंसे, आंखमेंसे मनमे आते हैं। बार बार जो श्रीकृष्णकी कथा सुनता है उसके कानमेंसे श्रीकृष्ण हृदयमें पधारते हैं।

पाप भी कानमेंसे ही मनमें आता है। कानको कथा श्रवण कराओगे, आप श्रीभगवान् की कथाएं सुनेंगे तो मन भगवान्में स्थिर होगा। कानमेंसे भगवान् हृदयमें आएंगे। श्री भगवान्के हृदय-प्रवेशके लिए हमारे देहमें आँखें और कान द्वार हैं; साधन हैं। कई लोग आँखोंसे ही प्रभुके स्वरूपको मनमें उतारते हैं तो और कुछ लोग कानसे श्रवण करके श्री भगवान्को हृदयमें उतारते हैं। अतः आँख और कान दोनोंको पवित्र रखो। वहाँ श्रीकृष्णको पधराओ।

प्रत्येक सत्कर्मके आरंभमें शांतिपाठ किया जाता है। उसका मंत्र है– ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः। हे देव, कानोंसे हम कल्याणकारी वचन सुनें। कान और आँख पवित्र हों। फिर सत्कर्मोंका आरंभ हो। इसीलिए तो पूजामें गुरु महाराज कान और आँखोंको पानी लगानेको कहते हैं।

विशुद्ध इन्द्रियोंमें ही परमात्माका प्रकाश होता है। इसलिए इन्द्रियोंको शुद्ध करो और शुद्ध रखो। मनको भी शुद्ध करो और शुद्ध रखो। काल नहीं बिगडा है, मन ही बिगडा है। नेत्र और श्रोत्रको पवित्र करनेके बाद कथाका आरंभ होता है।

सनकादि मुनि कहते हैं कि इस भागवतशास्त्रमें अठारह हजार श्लोक हैं। अठारहकी संख्या परिपूर्ण है। श्री रामकृष्ण परिपूर्ण हैं अतः नवमीके दिन प्रगट हुए हैं। श्रीकृष्ण नवमीके दिन ही गोकुलमें आए हैं, तभी नंद-महोत्सव करनेमें आया है। श्री रामजीकी बारह कला है और श्रीकृष्णजीकी सोलह कला ऐसा भेद नहीं करना चाहिए।

श्री भागवतमें मुख्य कथा है नंदमहोत्सवकी। इस कथाके भी अठारह श्लोक हैं। श्री भागवतपर प्राचीन और उत्तम टीका श्रीधर स्वामीजीकी है। उन्होंने किसी सांप्रदायिक सिद्धांतोंका सहारा न लेकर स्वतंत्र रीतिसे भागवत-तत्त्वका विचार किया है। इस श्रीधरी

टीकापर बंसीधर महाराजकी टीका है। उन्होंने कहा है कि हमारे ऋषिमुनिओंने केवल निःस्वार्थ भावसे इस ग्रंथकी रचना की है।

श्रीमद् भागवतकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? भागवत तो श्री नारायणका ही स्वरूप है। श्री भगवान् जब गोलोक पधारे तब उन्होंने अपने तेजस्वरूपको इस ग्रंथमें रखा था ऐसा एकादश स्कंधमें लिखा हुआ है। अतः भागवत भगवान्की शब्दमयी साक्षात् मूर्ति है, श्रीकृष्णकी वाङ्मय मूर्ति है।

उद्धवजीने जब पूछा कि आपके स्वर्गधाम गमनके बाद इस पृथ्वीपर अधर्म बढ़ेगा तो धर्म किसकी शरणमें जाएगा? श्री भगवान्ने तब कहा था कि मेरे भागवतका जो आश्रय लेगा उसके घरमें कलि नहीं जा सकेगा।

श्री भागवत भगवान्का नामस्वरूप है। नाम स्वरूपसे ही अन्य रूप सिद्ध होते हैं। मनके मैलको दूर करनेके लिए ही यह भागवतशास्त्र है। मनको शुद्ध करनेका साधन भागवत कथा है। यह कथा सुननेके बाद भी यदि पाप करना चालू रखेंगे तो यमदूतोंकी ओरसे दो चांटे और खाने पड़ेंगे।

ईश्वरके साथ प्रेम करनेका साधन यह भागवतशास्त्र है। मनुष्य पत्नी, धनसंपत्ति, भोजन आदिके साथ तो प्रेम करता है, परंतु प्रभुके साथ प्रेम नहीं करता है। इसलिए वह दुःखी है।

श्री रामानुजाचार्यके जीवनमें एक प्रसंग हुआ था। रंगदास नामका एक सेठ था जो एक वेश्यापर अतिशय आसक्त था। एक दिन रंगदास और वह वेश्या प्रभु श्री रंगनाथजीके मंदिरके पाससे निकले। श्रीमंत सेठ रंगदास वेश्याके सिरपर छाता पकडे हुए जा रहे थे। ठीक उसी समय श्री रामानुजाचार्यजी मंदिरसे बाहर निकले। उन्होंने यह दृश्य देखा। ये भी ईश्वरके ही जीव हैं और ये भी ईश्वरसे मिल जाएं तो उनका भी उद्धार हो जाए ऐसा सोचके वे उनसे मिलने गए। रास्तेपर जाकर वे उस रंगदाससे मिले और बोले कि आप इस वेश्यासे जो प्रेम करते हैं उसे देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ। अस्थि और विष्ठासे भरी इस स्त्रीसे तुम प्रेम करते हो। इस स्त्रीकी तुलनामें मेरे प्रभु श्री रंगनाथजी अति सुंदर हैं। इस स्त्रीसे जैसा प्रेम करते हो ऐसा प्रेम मेरे प्रभुसे करो। प्रेम करने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं। ऐसा कहकर उन्होंने रंगदासके एक चांटा मारा। रंगदासको वहीं समाधि लग गई। उसे श्री रंगनाथजीका दर्शन हुआ। उस दिनके बाद रंगदासने किसी भी दिन स्त्रीसे प्रेम नहीं किया।

मनुष्य अपना प्रेमपात्र हर क्षण बदलता है। परंतु कहीं भी इसे संतोष और शांति नहीं मिलती है। बाल्यावस्थामें मातासे प्रेम करता है। कुछ बडे होनेपर मित्रोंसे प्रेम करता है। विवाह हुआ तो पत्नीसे प्रेम करता है। कुछ समय जानेके बाद अपनी उसी प्यारी पत्नीका तिरस्कार करने लगता है और उससे कहता है कि मेरे साथ विवाह करनेमें मैंने बडी भारी भूल की है। उसके बाद वह पुत्रोंसे प्रेम करता है। उसके बाद वह धनसे प्रेम करता है। अतः ईश्वरको ही प्रेमका पात्र बनाओ कि जिससे प्रेमका पात्र परिवर्तनका प्रसंग ही न आए।

श्री भागवतशास्त्र बारबार सुनोगे तो परमात्मासे प्रेम बढ़ेगा। आजकल लोग भक्ति तो बहुत करते हैं परंतु भगवान्को साधन और सांसारिक सुखोंको साध्य मानकर ही करते हैं। अतः भक्ति सार्थक नहीं होती है और लोग दुःखी होते हैं। श्री भगवान्को ही साध्य मानो, संसारके सुखोंको नहीं।

कथामें हास्य रस गौण है। कथा किसीको हँसानेके लिए नहीं है। कथा तो ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए है।

श्रोताओंके हृदयमें जो शोक जाग्रत करे वह शुक। कथा शुद्ध हृदयसे रोनेके लिए है।

मेरा आज तकका जीवन निरर्थक ही निकल गया आदि भाव हृदयमें जागें तो ऐसी कथाका श्रवण सार्थक हुआ। कथा सुननेके वाद पाप न छूटे और वैराग्य उत्पन्न न हो तो कथाका श्रवण किस कामका ?

श्री भागवतके दर्शनसे, श्रवणसे, पूजनसे पापोंका नाश होता है। श्रीमद् भागवतके श्रवणमात्रसे ही सद्‌गति मिलती है। कथा–श्रवणका लाभ आत्मदेव ब्राह्मणका चरित्र कहकर वतलाया गया है। विना दृष्टांतका सिद्धांत मनको नहीं छूता। अतः आत्मदेव ब्राह्मणका चरित्र कहा गया है। कथा केवल रूपक नही है। कथाकी लीला सच्ची है और उसमें कहा गया अध्यात्म सिद्धांत भी सत्य है।

तुंगभद्रा नदीके किनारे एक ग्राम था। वहाँ आत्मदेव नामक एक ब्राह्मण अपनी पत्नी धुंधलीके साथ रहता था। आत्मदेव पवित्र था। परंतु वह धुंधली स्वभावकी क्रूर, झगडनेवाली और दूसरोंकी नुक्ताचीनी करनेवाली थी। आत्मदेव निःसंतान थे। संतानके अभावसे आत्मदेव दुःखी थे। संतानके लिए आत्मदेवने वहुत प्रयत्न किए, परंतु कोई सफलता नही मिली। अतः उसने आत्महत्या करनेका निश्चय किया। आत्मदेवने वनकी ओर प्रयाण किया। घूमते–फिरते रास्तेमें नदीका किनारा आया। वहां उसे एक महात्मा मिले। आत्मदेव उस महात्माके पास गया और रोने लगा। महात्माने उससे उसके दुःखका कारण पूछा।

आत्मदेवने कहा कि मेरे पास खाने–पीनेके लिए तो वहुत कुछ है, परंतु मेरे वाद खाने-वाला कोई नहीं है, अतः मैं दुःखी हूँ। इसलिए मरनेकी इच्छासे आत्महत्या करनेके लिए यहाँ आया हूँ। महात्माने कहा कि तुम्हें कोई संतान नहीं है यह तो परमात्माकी कृपा है। पुत्र परिवार न हो तो समझ लो कि श्री ठाकुरजीने तुम्हारे हाथोंसे ही सव कुछ करानेको तुम्हारे भाग्यमें लिखा है, और इसीलिए तुम्हें कोई संतान नहीं दी है। पुत्र तो दुःखरूप है।

ईश्वर जेसी भी स्थितिमें तुम्हें रखें वैसी ही स्थितिमें संतोष मानकर ईश्वरका स्मरण करना चाहिए। तुकाराम महाराज कहते हैं—

ठेवीले अनंते तैसेची रहावे।
चिती असो द्यावे समाधान॥

अतः ईश्वर जिस स्थितिमें रखे उसीमें आनंद मानना चाहिए।

एक वार एकनाथ महाराज विठ्ठलनाथजीके मंदिरमें दर्शन करने गए। एकनाथजीको सुयोग्य पत्नी मिली थी इसलिए वे श्री भगवान्‌का उपकार मानते थे। वे कहते थे कि मुझे स्त्रीका संग नहीं, सत्संग दिया है। थोडी देर वाद उस मंदिरमें भक्त तुकारामजी दर्शन करने आए। तुकारामकी पत्नी कर्कशा थी। कर्कशा पत्नीके लिए भी तुकारामजी भगवान्‌का उपकार मानते थे। वे कहते थे कि हे भगवन्, यदि तुमने अच्छी और सुंदर पत्नी दी होती तो मैं सारा दिन उसीके पीछे लगा रहता और तुमको भी भूल जाता। अतः मेरा तो कर्कशा पत्नी मिलने पर भी भला ही हुआ है।

एकनाथजीको अनुकूला पत्नी मिली तो उन्हें इसीमें आनंद है और तुकारामजीको प्रतिकूला पत्नी मिली तो भी उन्हें आनंद है। दोनोंको अपनी अपनी परिस्थितिसे संतोष है और भगवान्का उपकार मानते हैं।

अपनी पत्नीकी मृत्यु हुई तो नरसिंह मेहताने भी आनंद ही माना और कहा—

भलुं थयुं भांगी जंजाल।
सुखे भजीशुं श्री गोपाल॥

अर्थात् अच्छा हुआ कि कुटुंबकी झंझट छूट गई। अब तो मैं बडे सुखसे, निश्चिन्त मनसे श्री गोपालका भजन कर सकूँगा।

एक संतकी पत्नी अनुकूला थी, दूसरेकी प्रतिकूला थी और तीसरेकी संसारको छोडकर चली गई, फिर भी ये तीनों महात्मा अपनी अपनी परिस्थितिसे संतुष्ट हैं।

सच्चा वैष्णव वही है कि जो किसी भी परिस्थितिमें परमात्माकी कृपाका ही अनुभव करता है और मनको शांत और संतुष्ट रखता है। मनको शांत रखना भी बडा पुण्य है।

माता और पिताको अपने पुत्रके लिए बहुत चिंता रहती है। परंतु पुत्रैषणाके साथ साथ अनेक वासनाएं भी आती हैं। पुत्रैषणाके पीछे वित्तैषणा और वित्तैषणाके पीछे लोकैषणा जागती है।

आत्मदेवने उस महात्मासे कहा कि मुझे पुत्र दो क्योंकि पुत्र ही पिताको सद्गति देता है। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। वे महात्मा आत्मदेवको समझाते हैं कि श्रुति भगवती एक स्थान पर कहती है कि पुत्रसे मुक्ति नहीं मिलती।

वंशके रक्षणके लिए सत्कर्म करो। यदि पुत्र ही सद्गति दे सकता हो तो संसारमें प्रायः सभीके पुत्र होते हैं अतः उन सभीको सद्गति मिलनी चाहिए। पिताको ऐसी आशा कभी नहीं रखनी चाहिए कि मेरा पुत्र श्राद्ध करेगा तो मेरी सद्गति हो जाएगी। श्राद्ध करनेसे यह जीव अच्छी योनिमें तो जाता है परंतु ऐसा मत समझो कि वह जन्म-मृत्युके फेरेसे छूट ही जाएगा।

श्राद्ध और पिंडदान मुक्ति नहीं दिला सकते। श्राद्धकर्म धर्म है। श्राद्ध करनेसे नरकसे तो छुटकारा मिलता है परंतु केवल श्राद्ध करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। श्राद्ध करनेकी मनाई नहीं करते हैं। श्राद्ध करनेसे पितृगण प्रसन्न होते हैं और आशीर्वाद देते हैं।

पिंडदानका सही अर्थ कोई समझता नहीं है। इस शरीरको पिंड कहते हैं। इसे परमात्माको अर्पण करना ही पिंडदान है। यही निश्चय करना है मुझे मेरा जीवन ईश्वरको अर्पण करना है और इसी प्रकार जीवन जो ईश्वरको अर्पण करे उसीका जीवन सार्थक है और इसीका पिंडदान सच्चा है। अन्यथा यदि केवल आटेके पिंडदानसे ही मुक्ति मिल जाती तो ऋषि, मुनि ध्यान, योग, तप आदि साधनोंका निर्देश करते ही क्यों?

जीवन-मृत्युके त्राससे छुडाता है केवल सत्कर्म और वह सत्कर्म भी अपना ही किया हुआ। स्वयं ही अपनी आत्माका उद्धार करना है। जीव स्वयं ही अपना उद्धार कर सकता है।

श्री गीताजीमें स्पष्ट कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

—गी. अ. ६ श्लोक ५

स्वयं अपने द्वारा ही अपनी आत्माका संसारसमुद्रसे उद्धार करें और अपनी आत्माको अधोगतिकी ओर न ले जाएं। जीवका उद्धार वह स्वयं न करेगा तो और कौन करेगा ? मनुष्यका अपने सिवा और कौन बड़ा हितकारी हो सकता है ? यदि वह स्वयं अपना श्रेय न करेगा तो पुत्रादि क्या करेंगे ?

ईश्वरके लिए जो जीता है उसे अवश्य मुक्ति मिलती है।

श्रुति भगवती तो कहती है— जब तक ईश्वरका अपरोक्ष अनुभव न हो, ज्ञान न हो तब तक मुक्ति मिलती ही नहीं है।

मृत्युके पहले जो भगवान्का अनुभव करते हैं उन्हें ही मुक्ति मिलती है। परमात्माका अपरोक्ष साक्षात्कार बिना मुक्ति नहीं मिलती।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय।

उसे जानकर ही मनुष्य मृत्युका उल्लंघन कर जाता है। परमपदकी प्राप्तिके लिए इसके सिवा अन्य कोई मार्ग है ही नहीं। श्री भगवान्को जाने बिना दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्यथा केवल श्राद्ध करनेसे कोई मुक्ति मिलती नहीं है।

तुम्हारे पिंडका दान करोगे अर्थात् तुम्हारे शरीरको ही श्री परमात्माको अर्पण करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा।

अपना पिंडदान तुम स्वयं अपने हाथोंसे ही करो वही उत्तम है। जो पिंडमें है वही ब्रह्मांडमें है। निश्चय करो कि इस शरीररूपी पिंडको श्री परमात्माको अर्पण करना है। तुम अपना पिंडदान स्वयं ही क्यों नहीं करते हो ? घरमें जो कुछ है वह सब काममें लगा दो और नारायण नारायण करो।

आत्मदेवको महात्माकी यह बात न जँची। उसने कहा कि पुत्रसुखसे आप संन्यासी लोग अपरिचित हैं अतः आप ऐसा कहते हैं।

मातापिताकी गोदको बालक चाहे जिस तरह गंदी करे फिर भी वे प्रसन्न होते हैं। असुखमें सुखका अनुभव करना ही संसारियोंका नियम है।

महात्माने सुंदर उपदेश दिया, फिर भी आत्मदेवने दुराग्रह करते हुए कहा कि मुझे पुत्र दो वरना मैं प्राणत्याग करूँगा। महात्माको दया आई। उन्होंने एक फल देकर कहा कि इस फलको तुम अपनी पत्नीको खिलाना। तुम्हारे यहाँ योग्य पुत्र होगा।

आत्मदेव फल लेकर अपने घर लौटा। पत्नीको फल दिया। धुंधली फल खानेके बजाय अनेक तर्क-कुतर्क करने लगी। वह सोचती है कि फल खाने पर मैं गर्भवती होऊंगी और परिणामतः दुःखी होऊंगी और बालकके लालन-पालन करनेमें भी कितना बड़ा दुःख है। उसने अपनी छोटी बहनसे यह बात कही तो उसने युक्ति बताई कि मुझे बालक होने ही वाला है। उसे मैं तुझे दे दूंगी। तू गर्भवती होनेका नाटक कर।

धुंधलीको पुत्र (फल) की इच्छा तो है किंतु बिना कोई दुःख झेले। यह मनुष्यका स्वभाव है कि उसको सुखकी तो इच्छा है किंतु बिना किसी प्रयत्नके और बिना किसी कष्टके।

मनुष्य पुण्य करना नहीं चाहता फिर भी पुण्यके फलकी इच्छा करता है और पाप करता है फिर भी पापके फलको नहीं चाहता।

छोटी बहनके कहने पर धुंधलीने वह फल गायको खिला दिया और स्वयं गर्भवती होनेका नाटक करने लगी। बहनका पुत्र ले आई और जाहिर किया कि यह मेरा पुत्र है। धुंधलीने अपने पुत्रका धुंधुकारी नाम रखा। दूसरी ओर जिस गायको वह फल खिलाया गया था, उसने गाय जैसे कानोंवाले मनुष्याकार बालकको जन्म दिया। उसका नाम गोकर्ण रखा गया। दोनों बालक बड़े हुए। गोकर्ण पंडित और ज्ञानी हुआ और धुंधुकारी दुष्ट निकला।

श्री भागवतकी कथा तीन प्रकारसे है : आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। जरा सोचेंगे तो समझमें आएगा।

मानवकाया ही तुंगभद्रा है। भद्राका अर्थ है कल्याण करनेवाली और तुंगका अर्थ है अधिक। अत्यधिक कल्याण करनेवाली नदी ही तुंगभद्रा नदी और वही मनुष्यका शरीर है।

मानव अपनी कायाके द्वारा ही आत्मदेव हो सकता है।

अपनी आत्माको स्वयं देव बनाये वही आत्मदेव है। आत्मदेव ही जीवात्मा है। हम सब आत्मदेव हैं। नर ही नारायण बनता है। मानवदेहमें रहा हुआ जीव देव बन सकता है और दूसरोंको भी देव बना सकता है।

पशु अपने शरीरसे अपना कल्याण नहीं कर सकते। मनुष्य बुद्धिवाला प्राणी होनेके कारण अपने शरीरसे अपना तथा दूसरोंका कल्याण कर सकता है।

गुस्सा करनेवाली और कुतर्क करनेवाली धुंधुली बुद्धि ही है। प्रत्येक घरमें यह धुंधुली होती है। धुंधुली कथामें भी ऊधम मचाती है। द्विधा बुद्धि, द्विधा वृत्ति ही यह धुंधुली है। ऐसी द्विधा बुद्धि जब तक होती है तब तक आत्मशक्ति जाग्रत नहीं होती।

बुद्धि दूसरोंकी बातोंमें नाहक टांग अड़ाती है। यह बहुत बड़ा पाप है।

मैं कौन हूँ, मेरे स्वामी कौन हैं इसका विचार बुद्धि नहीं करती है।

बुद्धिके साथ आत्माका विवाह (संबंध) तो हुआ किंतु जब तक उसे कोई महात्मा न मिले, सत्संग न हो, तब तक विवेक नहीं आता है और विवेकरूपी पुत्रका जन्म नहीं होता।

विवेक ही आत्माका पुत्र है।

बिना सत्संग विवेक न होई।

आत्मा और बुद्धिके संबंधसे विवेकरूपी पुत्रका यदि जन्म नहीं होता, तो संसाररूपी नदीमें जीव डूब मरता है। जिसके घरमें विवेकरूपी पुत्र नहीं होता वह संसाररूपी नदीमें डूब जाता है। इसीसे तो आत्मदेव गंगाके किनारे पर डूब मरनेके लिए जाता है।

विवेक सत्संगसे जाग्रत होता है और विवेक आत्माको आनंदित करता है।

स्वयं देव बननेकी और दूसरोंको देव बनानेकी शक्ति आत्मामें है। किन्तु इस आत्म-शक्तिको जाग्रत करना है। हनुमानजी समर्थ थे किन्तु जाम्बवानने उनकी आत्म-शक्तिका ज्ञान कराया तभी उन्हें अपने स्वरूपका भान हुआ।

*

आत्मशक्ति सत्संगसे जाग्रत होती है। सत्संगके विना जीवनमें दिव्यता आती नहीं है।

संतमहात्मा द्वारा दिया गया विवेकरूपी फल बुद्धिको पसंद नहीं है।

बुद्धि धुंधुलीकी छोटी बहन है। मन बुद्धिकी सलाह लेता है तो दुःखी होता है। मन कई बार आत्माको धोखा देता है। मन स्वार्थी है। मन कहे वह मत करना। सलाह सिर्फ ईश्वरकी ही लेनी चाहिए।

कुछ विचार करो। आत्मदेवकी आत्मा भोली है। उसे मन-बुद्धि बारबार धोखा देते हैं। मनकी सलाह मत लो। आत्मदेव मन-बुद्धिका छल समझ नहीं सका।

फल गायको खिलाया। गो अर्थात् गाय-इन्द्रिय-भक्ति आदि अर्थ होता है। फल गायको अर्थात् इन्द्रियको खिलाया।

सूतजी समझाते हैं कि सत्संगसे तुरंत ही इन्द्रियोंकी शुद्धि नहीं होती। मन और बुद्धि जब भागवत और भगवान्का आसरा लेंगे तभी शुद्ध होंगे।

धुंधुकारी कौन? सारा समय द्रव्यसुख और कामसुखका चिंतन करे वही धुंधुकारी है। जिसके जीवनमें धर्म नहीं किंतु कामसुख और द्रव्यसुख प्रधान है वही धुंधुकारी है।

सूतजी सावधान करते हैं और कहते हैं कि बडा होने पर धुंधुकारी पांच वेश्याओंमें फँस जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गंध ये पांच विषय ही वेश्याएं हैं। ये पांच विषय ही धुंधुकारी अर्थात् जीवको बांधते हैं।

वह शवके हाथोंसे खाता था। साफ लिखा है— शवहस्ते भोजनम्। शवके हाथ कौनसे? जो हाथ परोपकार नहीं करते वही हाथ शवके हाथ हैं।

जिन हाथोंसे श्रीकृष्णकी सेवा न हो, जो हाथ परोपकार न करे, वे हाथ शवके हाथ ही हैं।

धुंधुकारी स्नान और शौचक्रियासे हीन था। कामी था अतः स्नान तो करता ही होगा। परंतु स्नानके बाद संध्या सेवा न करे तो वह स्नान व्यर्थ ही है। अतः कहा गया है कि वह स्नान करता नहीं था।

स्नान करनेके पश्चात् सत्कर्म न हो तो वह स्नान पशुस्नान है। स्नान करनेके बाद यदि सत्कर्म न किया जाय तो वह स्नान किस कामका? स्नान केवल शरीरको ही स्वच्छ रखनेके लिए नहीं है।

स्नान करनेके बाद सेवा, संध्या, गायत्री न हो तो वह स्नान भी पाप हो जाता है। शास्त्रोंमें तीन प्रकारके स्नान बताए गए हैं। उसमें ऋषिस्नान श्रेष्ठ है। उषःकालमें ४ से ५ बजेके समयमें जो स्नान किया जाय वह ऋषिस्नान है। इसके बाद ५ से ६॥ बजे तकके समयमें किया गया स्नान मनुष्यस्नान है और ६॥ बजेके बाद किया जानेवाला स्नान राक्षसी स्नान है।

भगवान् सूर्यनारायणके उदयके पश्चात् दंतधावन, शौच आदि करना योग्य नहीं है।

सूर्य बुद्धिके स्वामी देव हैं। उनकी संध्या करनेसे बुद्धि सतेज होती है। स्नान और संध्या नियमित करो। सम्यक् ध्यान ही संध्या है।

नित्य सत्कर्म किये बिना किया जानेवाला भोजन भोजन नहीं है। ऐसा मनुष्य भोजन नहीं करता है किंतु पापका प्राशन करता है।

गीताजीमें कहा गया है—

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ।

—गीता अ. ३ श्लोक १३

जो पापी लोग अपने शरीरके पोषणके लिए अन्नोत्पादन करते हैं वे पापका भोजन कर रहे हैं। अतः हमेशा सत्कर्म करो। आयुष्यका सदुपयोग करो।

तन और मनको दंड दोगे तो पापका क्षय होगा और पुण्यकी वृद्धि होगी। अपने मनको आप स्वयं दंड नहीं देंगे तो और कौन देगा ?

पुत्रके दुराचरणोंको देखकर आत्मदेवको ग्लानि हुई। उसने सोचा कि वह पुत्रहीन ही रहता तो अच्छा होता। धुंधुकारीने सारी संपत्तिका व्यय कर दिया। अब तो वह माता-पिताको भी पीटने लगा।

पिताके दुःखको देखकर गोकर्ण पिताके पास आया। गोकर्ण पिताको वैराग्यका उपदेश देता है। यह संसार असार है और दुःखरूप तथा मोहसे बांधनेवाला है। किसका पुत्र और धन भी किसका?

संसारको वंध्यासुतकी उपमा दी गई है। संसार मायाका पुत्र है और जब माया मिथ्या है तो संसार वास्तविक कैसे हो सकता है ?

गोकर्ण आत्मदेवसे कहता है कि तुम अब घरबार छोडकर वनगमन करो। नरके मोहका अब त्याग करो। सब कुछ समझ-बूझकर स्वयं छोड दो, नहीं तो काल बलात् छुड़ाएगा।

देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतं त्यज त्वं
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुंच ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥

—भागवत माहात्म्य अ. ४ श्लोक ७९

यह देह हाड, मांस और रुधिरका पिंड है। इसे अपना मानना छोड़ दो। स्त्री-पुत्रादिकी ममता छोड़ो। यह संसार क्षणभंगुर है। इसमेंसे किसी भी वस्तुको स्थायी समझ कर उसमें राग, मोह न करो। केवल वैराग्यके रसिक बनो और भगवान्की भक्तिमें डूब जाओ।

संसारमोहके त्याग बिना भक्ति नहीं होती।

किसी भी प्रकारसे मनको सांसारिक विषयोंमेंसे वीतरागी करके प्रभु प्रेममें लगाओ। संसारासक्ति नष्ट न होगी तब तक भगवदासक्ति सिद्ध न होगी। संसारके विषयोंमें मत फँसे रहो। साधु पुरुषोंके चरणोंमें रहो।

यह देह अपना नहीं है। कारण इसे हम हमेशा रख नहीं सकेंगे। तो और तो अपना होगा ही कौन ?

पिताजी, अब बहुत गुजर गई और थोडी ही रही। गंगा किनारे जाकर ठाकुरजीकी सेवा करो। मनको विक्षेप होनेपर उसे कृष्ण-लीलाकी कथामें लगा दो। भावना रखोगे तो हृदयका परिवर्तन होगा। सेवा और सत्कर्ममें परदोषदर्शन विघ्नकर्ता है। अतः परदोषदर्शनका त्याग करो।

पिताजी, अब तुम श्री भगवान्‌का आश्रय लेकर भगवान्‌मय जीवन बिताओ। भगवान्‌मय जीवन जीनेके लिए ध्यान, जप और पाठ अति आवश्यक है।

उत्तम पाठके छ अंग हैं: मधुरता, स्पष्ट अक्षरोच्चार, पदच्छेदका ज्ञान, धीरज, लय सामर्थ्य और मधुर कंठ। पाठ शांत चित्तसे करो। समझे बिना और अतिशय शीघ्रतासे पाठ मत करो।

आत्मदेव गंगाकिनारे आया। मानसी सेवा करने लगा। एकांतमें बैठकर मनको एकाग्र करने लगा।

चंचल मनको विवेकरूपी बोधसे सभालो और ध्यानमग्न रखो। संकल्प-विकल्पसे मनको दूर रखो। मानसिक सेवामें मनकी धारा अटूट रहनी चाहिए। ऐसी सेवा दिव्य होती है। उच्च स्वरसे जपपाठ करनेसे मन एकाग्र होता है, निरोध होता है।

आत्मदेव सतत भागवत-ध्यानमें तन्मय बने हैं।

निवृत्तिमें सतत सत्कर्म होना चाहिए। अन्यथा निवृत्तिमें भी पाप प्रगट होगा।

आत्मदेव दशम स्कंधका पाठ करते हैं। इसका नित्य पाठ करनेसे वह सचमुच देव बना।

आत्मा परमात्मासे मिलती है तो वह देव बनती है। आज जीव और शिव एक हुए। जीव और शिवका मिलन हुआ।

भागवतका जो आसरा ले, वह भगवान् बनता है। जो ईश्वर होता है उसे परमात्मा अनेक बार अपनेसे भी बडा बनाता है।

श्री परमात्माके दो स्वरूप हैं: एक अर्चनास्वरूप और दूसरा नामस्वरूप। श्रीमद् भागवत भगवान्‌का नामस्वरूप है। सामग्रीसे जिसकी अर्चना (पूजा) हो, वह अर्चनास्वरूप है।

नामस्वरूपके बिना स्वरूपसेवा फलवती नहीं होती है, स्वरूपसेवा ठीक तरहसे भी होती नहीं है। उसका कारण यह है कि मनकी शुद्धि नहीं हुई है। मनकी शुद्धिके बिना स्वरूप-सेवामें आनंद नहीं मिलता है। सेवक जब तक संसारके साथ भी संबंध रखता है, माया रखता है, तब तक उसे स्वरूपसेवाका आनंद नहीं मिलता है।

यदि सेवा करनी ही है तो संसारका स्नेह, मोह छोडना होगा। संसारके विषयोंसे स्नेह करो तो विवेकके साथ करो। अग्नि वैसे तो सब कुछ भस्मीभूत करती है, फिर भी उसका यदि विवेकपूर्वक उपयोग किया जाए तो अग्नि उपयोगी होती है। अग्नि न हो तो मनुष्यका पोषण नहीं हो सकता।

मनुष्य इस संसारमें जब तक अपने शरीरके प्रति सभान है तब तक वह इस संसारको छोड नहीं सकता। जो मन मायाका स्पर्श करता है वह मन मनमोहनकी सेवामें जा नहीं सकता। मन तो बारबार मायाका विचार करता है। अतः वह मलिन होता है। नामसेवा मनकी शुद्धिके लिए ही है।

जब तक स्वरूपसेवामें मन एकाग्र न हो सके तब तक नामसेवा करो।

स्वरूपसेवामें आनंद नहीं आता है क्योंकि मन व्यग्र है, चंचल है। अपना मन ईश्वरको छोडकर बारबार विषयोंकी ओर ही जाता है। मनुष्यका मन संसार-व्यवहारके साथ इतना तो तद्रूप हो जाता है कि जिसके कारण वह पाप करता है और उसे अपने पापोंका भान भी नहीं रहता है।

स्वरूपसेवा करते करते हृदय पिघले, आँखें गीली हों, आनंद हो और हृदयमें सात्त्विक भाव जागे तो मानो कि सेवा सफल हुई। हृदयकी भावना बिना की गई सेवा फलवती नहीं होती। जीव शुद्ध होकर परमात्माकी सेवा करे तो श्री ठाकुरजी प्रेमसे प्रसन्न होते हैं।

मनमें अनेकों जन्मोंका मैल भरा होता है। और स्वरूपसेवामें मनकी शुद्धि अति आवश्यक है। मन शुद्ध नहीं है परिणामतः स्वरूपसेवा फलवती नहीं होती है। मनको शुद्ध करनेके लिए नामसेवाकी आवश्यकता है। मनकी अशुद्धि नष्ट करता है श्रीमद् भागवत।

कलियुगमें नामसेवा प्रधान है। श्री भागवत भगवान्का ही नामस्वरूप है। नाम ही ब्रह्म है। नाम ही परमात्मा है। और अधिक क्या कहूँ? नाम परमात्मासे भी श्रेष्ठ है। ईश्वर तो अदृष्ट है। उनके साथ स्नेह करना कठिन है। नामस्वरूप तो स्पष्ट दीखता है।

जिसका प्रत्यक्ष दर्शन न हुआ हो उसके नामको पकडोगे तो वह अवश्य दृष्टिगोचर होगा। ईश्वरका स्वरूप सबके लिए अनुकूल और सुलभ नहीं है परंतु नामस्वरूप सुलभ है। ज्ञानी पुरुष नाममें निष्ठा रखते हैं। वे नामका आश्रय लेते हैं। नाम ही ईश्वरका स्वरूप है। श्री रामजीने तो कुछ ही जीवोंका उद्धार किया था, परंतु उनके बाद उनके नामसे अनेकोंका उद्धार हो गया। श्रीकृष्णजी जब पृथ्वी पर विराजमान थे तब जितने जीवोंका उद्धार हुआ था उसकी तुलनामें उनके नामसे अनगिनत लोग संसार-सागरको पार कर गए।

बडेसे बडा पाप कौनसा है? ईश्वरके नामके प्रति निष्ठाका अभाव। नामसाधन सरल है। श्री भागवत भगवान्का नामस्वरूप है। श्रीमद् भागवतका आश्रय ही नामका आश्रय है।

जो भागवतका आश्रय करता है वह भगवान् बनता है।

आत्मदेव श्री भागवतका आश्रय लेकर दशम स्कंधका पाठ करता था। केवल दशम स्कंधके पाठसे ही उसे मुक्ति मिली थी।

यदि संस्कृतका ज्ञान हो तो प्रतिदिन दशम स्कंध, विष्णु सहस्रनाम और शिव महिम्न स्तोत्रका पाठ करो। पाठ अर्थके ज्ञानके साथ करो। अर्थज्ञान बिना किया गया पाठ अधम पाठ है।

भगवान् जल्दी प्रसन्न नहीं होते हैं, वे जल्दी कृपा नहीं करते हैं क्योंकि आप उनके लिए कष्ट सहन नहीं करते हैं। जीव कष्ट सहन करनेसे घबराता है। भगवान्की कृपाके लिए दुःख सहन करो। जो स्वेच्छासे कष्ट सहन करता है उसे यम दुःखी नहीं कर सकते।

आत्मदेव आसन लगाकर ग्यारह-बारह घंटे बैठता था।

आसन पर [illegible] स्थिर बैठो। ज्ञानियोंको जो आनंद समाधिमें मिलता है वह आनंद आपको भी कथामें मिलेगा। जिन लोगोंको यह कथा है वह प्रत्यक्ष ही हो रही है [illegible] आनंद मिलेगा। मानो कि मेरा मन ईश्वरसे तदाकार हो गया है।

दृश्यमेंसे दृष्टि हट जाए और द्रष्टामें स्थिर हो तो मनका निरोध होगा और आनंद प्रगटेगा।

गोकर्णको लगा कि धुंधुकारीका व्यवहार उसे भी विक्षेपरूप होगा तो वह भी वनमें जा बसा। इधर धुंधुकारी वेश्याओंको प्रसन्न रखनेके लिए चोरी करने लगा।

सूतजी सावधान करते हैं।

जीव प्रत्येक इन्द्रियोंका स्वामी है। परंतु इन्द्रियाँ जीव पर प्रभुत्व जमा लें और मनुष्य इन्द्रियोंके आधीन हो जाए तो जीवन कलुषित हो जाता है। मन ईश्वरके साथ मैत्री करे तभी सुखी होता है। ईश्वरसे अलग होनेपर वह दुःखी होता है। जीवमात्र मनसुखा है।

धुंधुकारी अनिष्ट मार्गोंसे अर्थोपार्जन कर रहा है। वह राजाके महलमें चोरी करने गया। अलंकार आदि चुरा लाया और वेश्याओंको दिया। वेश्याएं सोचती हैं कि यदि यह जीवित रहेगा तो हम किसी भी दिन पकडी जाएंगी। ऐसा होने पर राजा हमारा सारा धन छीन लेंगे और शायद और भी दंड भुगतना पडेगा। सो इसे (धुंधुकारीको) हम मार ही डालें तो अच्छा रहेगा। ऐसा सोचके उन्होंने धुंधुकारीको रस्सीसे बांधा और उसके गलेमें फांसीका फंदा डाला। फिर भी धुंधुकारी मरता नहीं है।

अति पापीकी मृत्यु भी जल्दी नहीं होती।

वेश्याओंने जलते हुए अंगारे धुंधुकारीके मुखमें भर दिए और मार भी डाला।

पांच इन्द्रियाँ ही अंतकालमें जीवको मारती हैं, कष्ट देती हैं और उस समय जीव तडपता है, छटपटाता है।

और उसके बाद वेश्याओंने धुंधुकारीके शरीरको पृथ्वीमें गाड दिया। उसके शरीरका अग्निसंस्कार भी वेश्याओंने नहीं किया।

जिसके चरित्रको देखनेमात्र ही से घृणा हो जाय वह ही है धुंधुकारी। धुंधुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयंकर प्रेत बना है। पापी ही प्रेत बन जाता है। पापी तो यमपुरीमें भी नहीं जा सकता। वह तो प्रेत ही होता है।

गोकर्णने धुंधुकारीकी मृत्युका समाचार सुना। वह गयाजी गया और उसने वहाँ धुंधुकारीकी श्राद्धक्रिया की।

गयाश्राद्ध श्रेष्ठ है। वहाँ श्री विष्णुपाद है। इसकी कथा इस प्रकार है। गयासुर नामका एक राक्षस था कि जिसने तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया। ब्रह्माजीने वर मांगनेको कहा। तब उसने ब्रह्माजीको कहा कि आप क्या वरदान मुझे देंगे। आपको कुछ मांगना हो तो मुझसे मांगिए। उसकी तपश्चर्यासे देवता भी भयभीत हो गए कि यह असुर कैसे मरेगा? ब्रह्माजीने सोचा कि इसके शरीर पर दीर्घकाल तक यज्ञ कराने पर ही वह मरेगा। अतः ब्रह्माजीने यज्ञके लिए उससे उसका शरीर ही मांगा। यज्ञकुंड गयासुरकी छाती पर बनाया गया। सौ वर्ष तक यज्ञ चलता रहा फिर भी गयासुर नहीं मरा। यज्ञकी पूर्णाहुती होने पर वह उठने लगा। ब्रह्माजी चिंतातुर हुए। ब्रह्माजी भयभीत भी हुए। उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया। उन्होंने श्री नारायणका ध्यान किया। नारायण भगवान् प्रगट हुए और गयासुरकी छाती पर

दोनों चरण रखे। गयासुरने मरते समय भगवानसे वर मांगा कि इस गयातीर्थमें जो कोई श्राद्ध करे उसके पितृगण सद्‌गति प्राप्त करें। भगवान्‌ने उसे वर दिया कि जो तेरे शरीर पर पिंडदान करेगा उसके पितरोंकी मुक्ति होगी। भगवान्‌ने गयासुरको भी मुक्ति दी। भगवान्‌के वरदानके कारण गयाजीमें पितृश्राद्ध करनेवालेके पितरोंकी मुक्ति होती है।

गोकर्ण बादमें अपने घरको लौटा। रातमें उसने किसीके रोनेकी आवाज सुनी।

मनुष्य पाप करता हुआ तो हँसता है, पर पापका दंड जब भुगतना पड़ता है तब वह रोता है।

एक ही मातापिताके पुत्र होने पर भी गोकर्ण देव बना और धुंधुकारी प्रेत।

देव होना या प्रेत होना तुम्हारे अपने हाथोंमें है।

गोकर्णने पूछा कि तू कौन है? तेरी ऐसी दशा क्यों हुई? तू भूत है, पिशाच है या राक्षस?

प्रेतने कहा कि मैं तुम्हारा भाई धुंधुकारी हूं। बहुत पाप करनेके कारण मेरी यह हालत हुई है। मुझे प्रेतयोनि मिली है।

गोकर्णने पूछा कि तेरे लिए मैंने गयामें पिंडदान किया फिर भी तू प्रेतयोनिसे मुक्त क्यों न हुआ?

प्रेतने कहा– "गयाश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति।" चाहे कितने भी गयाश्राद्ध करो फिर भी मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी।" केवल श्राद्धमात्र उद्धार नहीं कर सकता।

गोकर्णने पूछा–" तुझे सद्‌गति कैसे मिलेगी? क्या करूं? फिर सोच कर कहता है कि मैं कल सूर्य नारायणसे पूछूंगा।

दूसरे दिन गोकर्णने सूर्य नारायणको अर्घ्य दिया और उनसे कहा कि महाराज, जरा रुकिए। सूर्य नारायण रुक गए। यह त्रिकाल संध्याका फल है।

ब्राह्मणको चाहिए कि वह त्रिकाल संध्या कभी न चूके। त्रिकाल संध्या करनेवाला न तो कभी मूर्ख रहता है और न तो कभी दरिद्र।

सूर्य नारायणने पूछा– क्या काम है मेरा!

गोकर्णने कहा कि मेरे भाईके उद्धारका कोई उपाय बताइए।

सूर्य नारायणने कहा– तेरे भाईको सद्‌गति दिलानेकी इच्छा हो तो भागवतकी विधि-पूर्वक कथा कर। श्राद्धसे जिस आत्माकी मुक्ति नहीं होती है उसे भागवत मुक्त करता है। भागवतशास्त्र मुक्तिशास्त्र है। भागवतसे मुक्ति मिलती है।

धुंधुकारीको पापसे मुक्त करानेके लिए गोकर्णने भागवत सप्ताहका आयोजन किया। धुंधुकारी वहाँ आया किन्तु उसे बैठनेके लिए जगह न मिली तो सात गांठवाले बांसमें वह प्रविष्ट हुआ। रोज एकके बाद एक गांठ टूटती गई। सातवें दिन परीक्षित मोक्षकी कथा हुई। बांसमेंसे दिव्य पुरुष बाहर निकला। गोकर्णको प्रणाम करके वह बोला— " भाई! प्रेतयोनिसे तूने मुझे मुक्त किया।"

धन्य है भागवत कथा।

जड बांसकी गांठ टूटती है तो फिर चेतनकी क्यों न टूटे ? विवाहमें दो व्यक्तिके दामन बांधे जाते हैं। पतिपत्नीका स्नेह ही ग्रंथि है। इस ग्रंथिका छूटना कठिन है। परमात्माकी सेवा करनेके लिए एक-दूजेका साथ मिला है ऐसा सोचें तो पति-पत्नी सुखी हो सकते हैं।

बांसमें अर्थात् वासनाओंमें धुंधुकारी रहा था। बांसकी सात गांठ अर्थात् वासनाओंकी सात गांठ। वासना ही पुनर्जन्मका कारण है। अतः वासनाको नष्ट करो। वासना पर विजय पाना ही सुखी होनेका उपाय है, मार्ग है। मनुष्य मोहको नही छोड सकता। वासना अर्थात् आसक्ति सात प्रकारकी होती है : (१) नारीकी आसक्ति (पति-पत्नीकी आसक्ति) (२) पुत्रकी आसक्ति (पिता-पुत्रकी आसक्ति) (३) व्यावसायिक आसक्ति (४) द्रव्यकी आसक्ति (५) कुटुंबकी आसक्ति (६) घरबारकी आसक्ति (७) गांवकी आसक्ति। इन सभी आसक्तिओंका त्याग करो।

शास्त्रमे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अविद्याको सात गांठ कहा गया है। इनमें जीव बंधा हुआ है जिसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना है।

बांस वासनाका रूप है। जीव वासनाओंमे फॅसा हुआ है। वासनासे ही जीवमे जीव-भाव आया है। वह निष्कामसे सकाम बना। वासनाओंकी ग्रंथियाँ जब तक न छूटे तब तक जीवभाव निर्मूल नहीं होता।

श्री भागवतकी कथाके श्रवणसे वासनाकी हरेक ग्रंथि टूटती है। भागवत कथासे ये ग्रंथियाँ टूटती हैं। प्रभुसे प्रेम बढे तो आसक्तिकी ग्रंथियां टूटने लगे। श्री भगवान्के नामका जप करेंगे और वही एक सत्य है ऐसा मानकर उसका नित्य स्मरण करेंगे तो वासनाओंकी ग्रंथियाँ छूट जाएंगी।

एक गृहस्थका नियम था और वह बारह वर्षोंसे कथा सुनता आया था। एक ब्राह्मण रोज कथा करनेके लिए आता था। एक दिन सेठको बाहर जानेका प्रसंग उपस्थित हुआ। कथाश्रवणके नियमका भंग कैसे किया जाय ? उसने ब्राह्मणसे कहा कि मैं कल कथा नहीं सुन सकूंगा। मेरे नियमका क्या होगा ? ब्राह्मणने कहा कि तुम्हारा पुत्र कथा सुनेगा तो चल जाएगा। गृहस्थने पूछा कि कथा सुननेसे वह वीतरागी बन गया तो ? ब्राह्मणने कहा– बारह वर्षोंसे तुम कथा सुनते आए हो फिर भी तुम्हें वीतराग न हुआ तो फिर एक ही दिनकी कथासे तुम्हारा पुत्र कैसे विरागी हो जायेगा ? यजमान कहता है, " हम तो रोज कथा सुनते हैं किंतु मनकी गांठ नहीं छोडते हैं।" ऐसा मत करो। कथा सुनकर मनकी गांठ छूटनी चाहिए।

जीव जब तक संसारसुखका त्याग मनसे भी न करे तबतक भक्ति सिद्ध नही होती है। भोगका त्याग भी नही करना है और भक्ति भी करनी है। यह कैसे हो सकता है। धीरे धीरे मनको, स्वभावको सुधारना चाहिए। स्वभावके सुधरने पर ही भक्ति सिद्ध होती है।

ज्ञान और वैराग्यको पुष्ट करनेके लिए ही यह भागवत कथा है।

परमात्माके चरणोंमें आसरा लेकर ही महापापी धुंधुकारी देवता जैसा बना। धुंधुकारी कहता है कि इस कथासे ही मेरे जैसे पापीको भी परम गति प्राप्त हुई।

धुंधुकारीको लेनेके लिए पार्षद विमान लेकर आए। गोकर्णने पार्षदोंसे पूछा– केवल धुंधुकारीको लेनेके लिए ही विमान क्यों आए और किसीको लेनेके लिए क्यों नही ?

पार्षद कहता है– वह (धुंधुकारी) एक आसन पर बैठता था, अनशन करता था और रोज कथाका मनन करता था ।

प्रभुके चरणोंमें– मनमें निवास करना ही उपवास है । उपवासके समय कुछ भी खाने पर पूर्ण उपवास नहीं होता है ।

कथा सुनकर केवल धुंधुकारीको ही मुक्ति क्यों मिली ? कथा धुंधुकारीकी ही तरह सुननी चाहिए । उसने कथाका मनन और निदिध्यासन किया, अतः उसे मुक्ति मिली ।

श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे ज्ञान दृढ होता है ।

अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ।
संदिग्धो हि हतो मंत्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ॥

बिना दृढताका ज्ञान व्यर्थ है । उसी भांति लापरवाहीसे किया गया श्रवण भी व्यर्थ ही है । संदेहयुक्त मंत्र व्यर्थ है । व्यग्रचित्तसे किए गए जपका भी कोई फल नहीं मिलता । संदेह करनेसे मंत्र और चित्तके इधर-उधर भटकनेसे जप फलदायी नहीं होते । कथामें मन बिना बैठ कर श्रवण करनेसे क्या लाभ ? वह फलदायी नहीं होता । कथा सुनते समय तन, मन और घरकी सभानता भूल जानी चाहिए । देह-गेहात्मक विस्मृतिसे और तन्मयतासे कथा सुनना चाहिए । मैं ईश्वरके साथ तन्मय होना चाहता हूँ ऐसी भावना रखो । कथा सुनकर और मनन करके जीवनमें उतारोगे तो कथाश्रवण सार्थक होगा । कथा सुनकर जीवनमें एक लक्ष्य निश्चित किया जाय । श्री भागवत भगवान्की कथा सुनकर कुछ ग्रहण करो । कथाका कोई एक शब्द भी मनमें कुरेदोगे तो जीवनका उद्धार हो जाएगा ।

सबको प्रतीति हुई कि धुंधुकारीकी तरह हमने कथा सुनी नहीं, अतः हमें उस जैसी गति नहीं मिली । कथाका मनन करें तो यह तो उत्तम है ही, परंतु मनन न करें तो भी लाभ तो है ही । इसके पश्चात् गोकर्णने श्रावण मासमें दूसरी बार कथा कराई और सबका उद्धार हुआ ।

उस समय महारानी भक्ति वहाँ प्रगट हुई । ज्ञान और वैराग्यके साथ आई । इस कथासे महारानी भक्ति प्रगट होती है । ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति बढे तो मुक्ति मिले । ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति करनेसे मुक्ति नहीं मिलती । भक्ति महारानी आनंदित हुई और ज्ञान-वैराग्यके साथ नृत्य करने लगी ।

मूर्छित और क्षीण ज्ञानको फिरसे पुष्ट करनेके लिए, जाग्रत करनेके लिए यह श्री भागवतकी कथा है ।

गोकर्णके सभामंडपमें भगवान् प्रगट हुए । उन्होंने गोकर्णसे कहा कि मैं तुम्हारे कथा कीर्तनसे प्रसन्न हुआ है । तुम कोई वरदान मांगो ।

उस समय सनत्कुमार कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीकृष्णकी कथा करे, कीर्तन करे ऐसे वैष्णव भक्तोंके हृदयमें आप विराजमान हों । सबको सद्गति मिली है ।

वैकुंठमें जो आनंद मिलता है वही आनंद श्री भागवत कथामें मिलता है । परंतु शर्त यह है कि प्रेमपूर्वक इस कथाका श्रवण किया जाय । कथा श्रवणके समय इस जगत्को विस्मृत

*

करना चाहिए। श्री भागवत ऐसा ग्रंथ नहीं है जो मृत्युके पश्चात् ही मुक्ति दिलाए। यह तो मृत्युके पहले ही मुक्ति दिलाता है।

भागवत मुक्ति प्राप्त करानेका शास्त्र है।

वेदांतके दिव्य सिद्धांत व्यासजीने इस माहात्म्यमे ही भर दिए हैं। छठा अध्याय विधि बतानेके लिए है।

सत्कर्म विधिपूर्वक किया जाए तो दिव्य बनता है। सत्कर्म कालके नियमसे अबाधित है। सत्यनारायणकी कथामें भी कहा है—

सत्कार्य करनेमें देर न करो।

धर्मराजके पास आकर एक याचकने दान मांगा। धर्मराजने उसे अगले दिन आनेको कहा। भीमसेनने इस बातचीतको सुनते ही विजयदुंदुभि बजानी शुरु कर दी। सबने सोचा कि भीमसेन कहीं पागल तो नहीं हो गया है, क्योंकि विजयदुंदुभि विजयके समय ही बजाई जाती है। भीमसेनने इसका कारण बताते हुए कहा कि आज हमारे बडे भाईने कालको भी नियंत्रणमें कर लिया। वे जान गए हैं कि वे अगले दिन भी जीनेवाले हैं। धर्मराजके इस कालविजयके उपलक्ष्यमे मैं यह दुंदुभि बजा रहा हूँ। धर्मराजको अपनी इस भूलका तुरंत ज्ञान हो गया।

कहा गया है :— " न जाण्युं जानकीनाथे सवारे शुं थवानुं छे। " अर्थात् जानकी-नाथ भगवान् श्री राम भी नहीं जान सके कि कल प्रातःकाल क्या होगा।

धर्मराजने याचकको तुरंत वापस बुलाया और यथायोग्य दान दिया।

सत्कर्म तत्काल करो।

भवरोगकी औषधि है भागवतकथा।

जीवमात्र रोगी है। सबसे दुःखदायी रोग है जीवका ईश्वरसे वियोग। इस रोगके निवारणके लिए श्री भागवतका आसरा लो। श्रीकृष्णसे विरहरूपी रोगको दूर करनेकी औषधि यह भागवतशास्त्र है। रोगकी परिचर्याके समय आहार–विहार आदिके कुछ नियम हमें मानने पडते हैं वैसा ही कुछ इस कथाके लिए भी जरूरी ही है। शुभ मुहूर्तमें कथाका आरंभ होना चाहिए।

कथाके वक्ताके लिए भी कुछ जरूरी लक्षण बताए गए हैं। पहला लक्षण है विरक्तभाव। श्री शुकदेवजी जगत्से अस्पृष्ट नहीं थे फिर भी वे निर्विकार थे। हम भी जगत्में रहते हैं, देखते हैं परतु हमारी आँखें विकाररहित नहीं है। श्री शुकदेवजी ब्रह्मदृष्टिवाले थे। प्रत्येक स्त्री–पुरुषको वे भगवद्भावसे देखते थे।

प्रत्येक नर–नारीको भगवद्भावसे देखो।

सूतजी सावधान करते हैं।

क्या अर्थ है वैराग्यका? उपभोगके लिए अनेक पदार्थ सुलभ होने पर भी मन उनके प्रति आकर्षित न हो, वही वैराग्य है। जगत्का त्याग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु भोगदृष्टिसे देखनेके वृत्तिका त्याग करना है। हमारी विकारी दृष्टिको बदलना है। जगत्को

कामदृष्टिसे, भोगदृष्टिसे मत देखो। जब तक दृष्टिका दोष नहीं जाता तब तक हमारी दृष्टि देवदृष्टि नहीं होगी।

उपदेशकर्ता ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञ होना चाहिए। वह धीर, गंभीर और दृष्टांतकुशल होना चाहिए।

वक्ता अति निस्पृही भी होना चाहिए। द्रव्यका मोह तो छूट जाता है परंतु कीर्तिका मोह छोडना बडा कठिन कार्य है। जीव कीर्तिका मोह रखता ही है। जो मनुष्य कीर्तिके मोहमें फँसा हुआ है, वह भक्ति नहीं कर सकता।

जब भी कथाश्रवण करें संसारसे निर्लिप्त होकर करें। कथामें बैठकर भी घरबार और धंधेकी बात ही सोचते रहनेसे मन विकृत होता है। कथामंडपमें केवल कथाका ही विचार करो। अन्य सभी चिंताएं छोडकर कथामें बैठो।

वक्ता और श्रोताको चाहिए कि वे आँख, मन, वाणी, कर्म और प्रत्येक इन्द्रियोंसे भी ब्रह्मचर्यका पालन करें।

मन स्थिर करनेके लिए ऊर्ध्वरेता होना जरूरी है। ब्रह्मचर्यपालनसे ऊर्ध्वरेता हो सकते हैं। क्रोधित होनेसे पुण्यका क्षय होता है। वक्ता और श्रोता क्रोध न करें। विधिपूर्वक कथा-श्रवण करनेसे उसका फल प्राप्त होता है। कथाका श्रवण करनेवाले वैष्णव यमपुरीमें नहीं जाते। वे वैकुंठमें जाते हैं।

भागवतकी कथाका श्रवण जो प्रेमसे करता है उसका संबंध भगवान्से जुडता है। भागवत भगवान्का साक्षात् स्वरूप है। यह श्री भगवान्का वाङ्मयरूप है।

वेदांतमें अधिकार और अधिकारीकी अच्छी चर्चा की गई है।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

सबको वेदांतका अधिकार नहीं है। नित्यानित्य–वस्तु–विवेक, शमदमादिषट्संपत्ति, इहामुत्रफलभोगविराग बिना वेदांताधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। वेदोंके तीन विभाग किये गये हैं: कर्मकांड, ज्ञानकांड, उपासनाकांड। उसी प्रकार उनके अधिकारी भी निश्चित किए गये हैं।

भागवत हर किसीके लिए है। भागवतका आश्रय लोगे तो भागवत तुम्हें भगवान्की गोदमें बिठलाएगा। वह तुम्हें निर्भय और निःसंदेह करेगा।

भागवतके श्लोक १८००० क्यों हैं? आठ प्रकृतियाँ आठ और नौवां ईश्वर अतः पूर्णता हुई। मानव अेक पूर्णतादर्शी है। खानपान, व्यवहार, पत्रलेखन आदि सभी व्यवहारकी विधियाँ भागवतमें बतायी गई हैं। एक इसी ग्रंथका अवलंबन करनेसे सभी प्रकारका ज्ञान प्राप्त होगा।

यह ग्रंथ पूर्ण है। भागवत भगवान् नारायणका ही स्वरूप है। जगत् और ईश्वर, जीव और जगत्, जीव और ईश्वर आदि संबंधित ज्ञान भागवतसे प्राप्त होगा।

भागवत कितना सुना तो कहेंगे कि जितनी बातोंको जीवनमें उतारा गया। श्रवण की गई बातोंका मनन करो और उन्हें व्यवहारमें कार्यान्वित करो।

केवल ज्ञान व्यर्थ है। जीवन–व्यवहारके काममें लाया हुआ ज्ञान ही सार्थक होगा।
गांधीजी भी कहते थे : ढाई मन ज्ञानकी अपेक्षा तोला भर आचरण श्रेष्ठ है।
प्रभुके दिव्य सद्‌गुणोंको जीवनमें उतारो। पूर्वजन्मका विचार न करो।

जनक राजाने याज्ञवल्क्य ऋषिसे पूर्वजन्मोंकी जीवनलीला देखनेकी मांग की। याज्ञ-वल्क्यने मना करते हुए कहा कि उसे देखनेसे दुःख ही होगा। फिर भी जनक राजाने दुराग्रह किया। ऋषिने राजाको उनके पूर्वजन्मोंका जीवन दिखाया। जनकराजाने देखा कि उनकी अपनी पत्नी ही पिछले जन्ममें उनकी माता थी। उन्हें दुःख हुआ।

अतः यही अच्छा है कि पूर्वजन्मोंका विचार न करें। इसी जन्मको सार्थक करनेका प्रयत्न करें।

भगवान् ही के साथ विवाह करो और औरोंके भी विवाह कराओ। तुलसी राधा-रानीका स्वरूप है। तुलसी–विवाहका अर्थ है अपना भगवान्‌के साथ विवाह (संबंध)। चातुर्मासमें संयम और तप करनेके पश्चात् ही तुलसी विवाह हो सकता है।

संयमका पालन करोगे, तप करोगे तो ईश्वर मिलेंगे।
आत्माका तो धर्म है प्रभुके संमुख जाना।

॥ हरये नमः हरये नमः हरये नमः ॥

प्रथमः स्कंधः

मंगलाचरण

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

सत्कर्मोंमें अनेक विघ्न आते हैं । उन सभीके निवारणके लिए मंगलाचरणकी आवश्यकता है । कथामें बैठनेसे पहले भी मंगलाचरण करो ।

शास्त्र कहते हैं कि देवगण भी सत्कर्ममें विक्षेप करते हैं । देवोंको ईर्ष्या होती है कि नारायणका ध्यान यह करेगा तो यह भी अपने समान ही हो जाएगा । अतः देवोंसे भी प्रार्थना करनी आवश्यक है : हे देवो ! हमारे सत्कार्यमें विक्षेप न करना । सूर्य हमारा कल्याण करें, वरुणदेव हम पर कृपा करें ।

जिसका मंगलमय आचरण है उसका ध्यान करनेसे, उसे वंदन करनेसे, उसका स्मरण करनेसे मंगलाचरण होता है । जिसका आचरण मंगल है उसका मनन और चिंतन करना ही मंगलाचरण है । ऐसे एक परमात्मा हैं । श्रीकृष्णका नाम और धाम मंगल है ।

संसारकी किसी वस्तु या जीवका चिंतन न करो । ईश्वरका चिंतन-ध्यान मनुष्य करे तो उसकी शक्ति मनुष्यको मिले ।

क्रियामें अमंगलता कामके कारण आती है । काम जिसको स्पर्श करे, जिसे प्रभावित करे उसका सब कुछ अमंगल होता है । श्रीकृष्णको काम स्पर्श नहीं कर सकता । अतः उनका सभी कुछ मंगल है । जिसके मनमें काम हो उसका स्मरण करनेसे उसका काम तुम्हारे मनमें भी आएगा । सकामके चिंतनसे अपनेमें सकामता आती है और निष्कामके चिंतनसे मन निष्काम बनता है । शिवजीका सब कुछ अमंगल है फिर भी उनका स्मरण मंगलमय है क्योंकि उन्होंने कामको जला कर भस्मीभूत कर दिया है । मनुष्य जब तक सकाम है तब तक उसका मंगल नहीं होता ।

ईश्वर पूर्णतः निष्काम है अतः उनका ध्यान करो, स्मरण करो । परमात्मा सृष्टिमें पर है । श्रीकृष्णका ध्यान करनेवाला निष्काम बनता है । श्री कृष्णका सतत ध्यान न हो सके तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु जगत्के स्त्री-पुरुषोंका ध्यान कभी न करो ।

थोड़ा सा सोचनेसे ध्यानमें यह बात आ जाएगी कि मन क्यों बिगड़ा हुआ है । संसारका चिंतन करनेसे मन मलिन होता है । प्रभुका चिंतन-स्मरण करनेसे मन सुधरता है ।

जीव अमंगल है, प्रभु मंगलमय है । मनुष्यकी कामवृत्ति नष्ट हो जाय तो सब कुछ मंगल हो जाता है । जो कामके आधीन नहीं है उसका सदा मंगल ही होता है ।

काम जिसे मार सके, पराजित कर सके वह जीव और कामको जो पराजित कर सके वह ईश्वर।

मनुष्यका अपना अमंगल कार्य ही विघ्नकर्ता होता है, किसी औरका नहीं।

प्रत्येक कार्यका आरंभ मंगलाचरणसे करो। भागवतमें तीन मंगलाचरण हैं : प्रथम स्कंधमें व्यासदेवका, द्वितीय स्कंधमें शुकदेवजीका और समाप्तिमें सूतजीका।

शैयामें सोया हुआ मनुष्य पाप अधिक करता है।

प्रभातके समय मंगलाचरण करो, मध्याह्नमें मंगलाचरण करो और रातको सोनेसे पहले मंगलाचरण करो।

धीमहि। व्यासजीने ध्यान करते हुए कहा कि एक ही स्वरूपका बार बार चिंतन करो। मनको प्रभुके स्वरूपमें स्थिर करो। एक ही स्वरूपका बार बार चिंतन करनेसे मन शुद्ध होता है। परमात्माके किसी भी स्वरूपको इष्ट मान कर उसका ध्यान करो।

ध्यानका अर्थ है मानसदर्शन। राम, कृष्ण, शिव या किसी भी स्वरूपका ध्यान करो। सर्वश्रेष्ठ सत्यस्वरूप प्रभुका ध्यान करता हूँ ऐसा श्री व्यासजीने मंगलाचरणमें कहा है। व्यासजी ऐसा आग्रह नहीं करते हैं कि एक मात्र श्रीकृष्णका ही ध्यान करो। वे किसी भी विशिष्ट स्वरूपका आग्रह नहीं करते हैं। जो व्यक्ति जिस किसी स्वरूपके प्रति आस्थावान् हो उसका ही वह ध्यान धरे। ठाकुरजीके जिस रूपमें हमें आनंद हो वही रूप उत्तम है। एक ही स्वरूपके अनगिनत नाम हैं। सनातन धर्मके अनुसार देव अनेक होते हुए भी ईश्वर तो एक ही है। मंगलाचरणमें किसी एक देवका नामोल्लेख नहीं है।

ईश्वर एक ही हैं, केवल उनके नाम और स्वरूप अनेक हैं।

वृषभानुकी आज्ञा थी कि राधाके पास जानेका किसी भी पुरुषको अधिकार नहीं है। अतः साडी पहनके और चंद्रावलीका शृंगार धारण करके कृष्णजी राधासे मिलने जाते हैं। कृष्ण साडी पहनते हैं सो माता बनते हैं।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति।

ईश्वरके अनेक स्वरूप हैं किंतु तत्त्व एक ही है। दीपकके आगे जिस किसी रंगका शीशा (कांच) रखेंगे उसी रंगका प्रकाश दिखाई देगा।

हर किसी देवका पूजन करो किंतु ध्यान तो एक ईश्वरका ही करो।

रुक्मिणीकी भक्ति अनन्य है। पूजन देवीका करती हैं फिर भी ध्यान तो कृष्णका ही धरती हैं।

वंदन हर किसी देवको करो किंतु ध्यान तो किसी एक ही देवका करो। जिस किसी रूपमें आस्था और रुचि हो उसी रूपका ध्यान करो।

ध्यान, ध्याता और ध्येयमें एकत्व होना आवश्यक है और ऐसे एकत्व होने पर ही परमानंदकी प्राप्ति होती है।

ध्यानके समय किसी औरका चिंतन मत करो। किसी चेतनका ध्यान करो, जडका नहीं।

ध्यान करना ही है तो श्रीकृष्णका ध्यान करो। अनेक जन्मोंसे इस मनको भटकने रहनेकी आदत हो गई है। ध्यानमें पहले तो संसारके विषय ही उभरते हैं। ये मनमें न आएं ऐसा करनेके लिए ध्यान करते समय परमात्माके नामका बारबार चिंतन करो कि जिससे मन स्थिर हो सके। उच्च स्वरसे कीर्तन करो। कृष्णके कीर्तनसे जगत्का विस्मरण होता है।

परमात्माके मंगलमय स्वरूपका दर्शन करते हुए कीर्तन करो। वाणी कीर्तन करे और आंख दर्शन करे तो मन शुद्ध और पवित्र होता है।

परमात्माका ध्यान करनेसे मन शुद्ध होता है। दान या स्नानादिसे मनशुद्धि नहीं होती है। संसारका चिंतन करते रहनेसे विकृत हुआ मन ईश्वरके सतत चिंतन किए बिना शुद्ध नहीं होगा।

इस शरीर जैसी मलिन वस्तु और कोई नहीं। इस मलिन शरीरसे परमात्मासे मिलन नहीं हो सकता। इस शरीरका बीज अपवित्र है। ठाकोरजीको मनसे मिलना है। बिना ध्यानके मनोमिलन नहीं हो सकता।

आँखसे श्री भगवान्का दर्शन और मनसे स्मरण करोगे तो परमात्माकी शक्ति तुम्हें मिलेगी। ईश्वरका ध्यान करनेसे ईश्वरकी शक्ति जीवको मिलती है। ध्यान करनेसे ईश्वर और जीवका मिलन होता है। बिना ध्यानके ब्रह्मसंबंध नहीं हो सकता।

ध्यानकी परिपक्व दशा ही समाधि है। वेदांतमें इसे जीवनमुक्ति माना गया है। समाधि दीर्घसमय तक रहनेसे ज्ञानियोंको जीते जी मुक्तिका आनंद मिलता है।

भागवतमें बार बार कहा गया है कि ध्यान करो और जप करो। हरेक चरित्रमें इस सिद्धांतका वर्णन किया गया है। पुनरुक्ति दोष नहीं है। किसी सिद्धांतको बुद्धिमें दृढ करनेके लिए उसे बार बार कहना पडता है। भागवतके प्रत्येक स्कंधमें इस जप ध्यानकी कथा है।

बिना ध्यानके ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। वसुदेव-देवकीने ग्यारह वर्षों तक ध्यान किया तो उन्हें परमात्मा मिले। भागवतका आरंभ ध्यानयोगसे किया गया है।

जो मनुष्य ईश्वरका ध्यान करेगा वही ईश्वरको प्रिय होगा।

साधनमार्गका आश्रय लेकर ज्ञानी मुक्त होते हैं। ज्ञानसे ज्ञानी भेदका निषेध करते हैं। ज्ञानमार्गका लक्ष्य है ज्ञानसे भेदको दूर करना। भक्तिसे भेदको दूर करना भक्तिमार्गका लक्ष्य है। ध्येय एक ही है। सो भागवतका अर्थ ज्ञानपरक और भक्तिपरक हो सकता है। मार्ग और साधन भिन्न-भिन्न हैं किंतु ध्येय तो एक ही है।

इसी कारण सगुण और निर्गुण दोनोंकी आवश्यकता है। वैसे तो ईश्वर अरूप हैं किंतु जिस रूपकी भावनासे वैष्णवजन तन्मय होते हैं वैसा स्वरूप भी ईश्वर धारण करते हैं। सगुण निर्गुण दोनों स्वरूपोंका भागवतमें निरूपण है। निर्गुणरूपमें प्रभु सर्वत्र हैं और सगुण रूपसे श्रीकृष्ण गोलोकमें बिराजते हैं। हृदयमें पूर्णतः विश्वास रख कर ऐसा विश्वास रखो कि जगत्के जड और चेतन सभी पदार्थोंमें प्रभुका वास है। मंगलाचरणका सगुण-निर्गुणपरक अर्थ हो सकता है।

क्रिया और लीलामें अंतर है। प्रभु जो करे वह है "लीला" और जीव जो करे वह है "क्रिया"।

क्रिया बंधनरूप है कारण उसके साथ कर्ताकी आसक्ति, स्वार्थ और अहंकारका संबंध होता है। ईश्वरकी लीला बंधनसे मुक्त करती है। कारण यह कि ईश्वरको स्वार्थ और अभिमान

छू नहीं सकते। जिस कार्यमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता वह है लीला। केवल जीवोंको परमानंदका दान करनेके लिए प्रभु लीला करते हैं। यही कारण है कि मक्खनचोरी, रास आदि सभीको व्यासजी लीला कहते हैं। श्रीकृष्णजी मक्खनकी चोरी तो करते हैं किंतु अपने लिए नहीं, मित्रोंके लिए।

व्यासजी ब्रह्मसूत्रमें लिखते हैं: "लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।" दैवी जीवोंके कल्याण करनेके लिए ही भगवान् लौकिकजीवों जैसी लीला करते हैं।

जगत्‌की उत्पत्ति लीला है, स्थिति लीला है और विनाश भी लीला है।

विनाशमे भी आनंद है। सबका द्रष्टा मैं हूँ। 'मैं' का नाश नहीं होता। अहम् (मैं) का विनाश न हो उसे भी ज्ञानी पुरुष लीला ही कहते हैं। 'मैं' भी ईश्वरका अंश है। किंतु यह 'मैं' अहंकार न बनना चाहिए।

कृष्ण गांधारीसे मिलने गए तो गांधारीने उन्हें शाप दिया कि तुम्हारे वंशमें भी कोई नहीं रहेगा क्योंकि तुमने मेरे वंशमें भी किसी एकको भी रहने नहीं दिया है। परंतु कृष्ण इसमें भी आनंदित हैं। वे कहते हैं। कि माताजी, मैं भी यही सोचता था कि इस सबका विनाश कैसे करूं। ठीक ही हुआ कि आपने शाप दिया।

"शांताकारम् भुजगशयनम्।" यदि सर्प पर शयन करना पडे तो भी परमात्माको शांति ही मिलती है। लोगोंको शैया और पलंग मिले तो भी शांति नहीं मिलती। श्रीकृष्णकी शांति कैसी है।

लय भी भगवान्‌की लीला है। जीवको उत्पत्ति और स्थिति भाती है, परंतु लय नहीं।

ब्रह्माजीको वेदतत्त्वका ज्ञान देनेवाले और जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, संहारके कारणभूत श्री परमात्माका हम ध्यान करते हैं। आदिकवि ब्रह्माको जिस दिव्यज्ञानका दान किया उसका वर्णन हम करते हैं।

भगवान्‌के ध्यानमें तन्मयता न होगी ता संसारका ध्यान होता रहेगा। उसे छोडनेका प्रयत्न करो। ध्यानके प्रारंभमें संसार दिखाई देगा। प्रत्येक साधकको ऐसा ही अनुभव होता है। ईश्वरका ध्यान न हो सके तो कुछ आपत्ति नहीं है किंतु संसारका, नर-नारीका, धन-संपत्तिका ध्यान न होना चाहिए।

दर्शन करनेके बाद भी ध्यानकी आवश्यकता है। मंदिरके चौके पर बैठनेकी प्रथाका कारण भगवान्‌के ध्यानका है, सांसारिक बातचीत नहीं। मंदिरमें जिस स्वरूपका दर्शन किया हो उसीका ध्यान और चिंतन चौके पर बैठ कर करें। आरंभमें व्यासजी ध्यान करनेकी आज्ञा देते हैं।

सत्कर्म करते समय अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं जिनका नाश परमात्माके ध्यानसे होता है।

मंगलाचरणमें व्यासजी लिखते हैं – "सत्यम् परम् धीमहि।" सत्यस्वरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं। सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करता हूँ ऐसा श्री व्यासजीने लिखा, क्योंकि यदि वे श्रीकृष्णका ही ध्यान करनेकी बात लिखते तो शिवभक्त, दत्तात्रेयभक्त, देवीभक्त आदि ऐसा मानते कि भागवत तो श्रीकृष्णके भक्तोंका ही ग्रंथ है।

व्यासजीने किसी विशिष्ट स्वरूपके ध्यानका निर्देश नहीं किया है । केवल सत्यस्वरूप प्रभुका ध्यान धरनेको ही कहा है। जिसे जिस किसी स्वरूपके प्रति आस्था हो उसीका ध्यान वह करे।

संसारमें विभिन्न लोगोंकी रुचि एक सी नहीं होती । शिवमहिम्न स्तोत्रमें कहा है :

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

सांगोपांग वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतशास्त्र वैष्णवशास्त्र, आदि भिन्न शास्त्रों की आस्थावाले लोग अपने अपने शास्त्रोंको सर्वोत्तम मानते हैं और अपनी अपनी मनोवृत्तिके अनुसार सरल या कठिन मार्ग बताते-मानते हैं, किंतु सच तो यह है कि इन सभी शास्त्रानुसारी मतोंका प्राप्तिस्थान, लक्ष्य तो एक ही है कि जिस तरह सरल और टेढी मेढी-सभी नदियां एक ही समुद्रमें जा मिलती हैं !

हर किसी की रुचि और आस्था भिन्न भिन्न होनेके कारण शिव, गणेश, रामचंद्र आदि विविध स्वरूपोंको परमात्मा धारण करते हैं।

सत्य अविनाशी, अबाधित, अपरिवर्तनशील है। सुख, दुःख, लाभ, हानि आदिके कारण परमेश्वरके स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

गीताजीमें भगवान् कहते हैं :

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

दुःखकी प्राप्तिके समय जिसका मन उद्वेगरहित रहता है और सुखके समय जिसका मन स्पृहारहित रहता है वही स्थितप्रज्ञ है । श्रीकृष्णने अपने वचनके अनुसार ही जीवन जिया। श्री रामचंद्रजीको भी राज्याभिषेक और वनवासके समय एकसा आनंद था। श्रीकृष्णको सोलह हजार रानियोंसे सेवा पाते समय, सुवर्णकी द्वारिकासे और सर्वनाशके समय एक सा ही आनंदानुभव हुआ था।

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं : उद्धव, यह सब (जगत्) मिथ्या है, केवल मैं ही एक सत्य हूँ।

जगत् असत्य है, परमात्मा सत्य है। भूत, वर्तमान और भविष्यमें जो एक ही स्वरूप धारण करे, वही सत्य है। इसीसे ही भगवान् व्यासजी कहते हैं कि हम सत्यका ही ध्यान करते हैं, किसी और देवका नहीं। तो सत्यसे ही स्नेहभाव रखो। यदि सुखी होना है तो सत्य-स्वरूप परमात्माके साथ प्रेम करो। जगत् असत्य है। दुनियाके पदार्थ दुःखदायी हैं। व्यवहारमें जगत् सत्य सा ही लगता है किंतु परमार्थ दृष्टिसे, तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो जगत् सत्य नहा है। यही कारण है कि ज्ञानी पुरुष जगत्‌का चिंतन नहीं करते और जगत् अनित्य है ऐसा बार बार सोचते हैं।

जिसे परमात्माका अपरोक्ष ज्ञान होता है वे जगत्‌का सत्यभास नहीं करते। स्वप्नके टूट जानेके बाद ज्यों स्वप्न मिथ्या लगता है वैसे ही भगवानके साक्षात्कारके बाद जगत् मिथ्या

लगता है। मनुष्य सदा एक स्वप्नमें नहीं रहता। ईश्वरका एक ही स्वरूप है। उसपर काम, क्रोध लोभ आदि असर नहीं डाल सकते। वह स्वयं आनंदरूप है। ईश्वरके विना जो भी दिखाई देता है वह सब माया है, असत्य है और भासमात्र है।

नकली रुपियेसे किसीको कोई मोह नहीं होता। उसी प्रकार इस असत्य, नकली संसारसे मोह न करो। स्त्री-पुरुष मिलन सुखद है किंतु वियोग अति दुःखद है। वियोग अवश्यंभावी है ऐसा समझकर इस जगत्के जीवोंसे प्रेम न करो। परमात्मा अविनाशी हैं इसलिए उन्हींसे प्रेम करो।

अंधेरेमें रस्सी सर्प सी लगती है किंतु प्रकाश होने पर, ज्ञान होनेसे ही यथार्थ स्वरूपका ज्ञान होता है। इस सर्परज्जुन्यायकी दृष्टिसे ही इस असत्य संसारको अज्ञानी मानव सत्य मानता है। जगत्का भास ईश्वरके प्रति अज्ञान होनेके कारण ही होता है। ईश्वरका ज्ञान न होनेसे ही तुम्हें यह जगत् सत्य लगता है। वैसे तो यह दृश्य जगत् भ्रामक है, मिथ्या है। किंतु परमात्मासे आधारित होनेके कारण यह सत्य सा लगता है।

परमात्मा सत्य है इसलिए जगत् असत्य होने पर भी सत्य सा ही लगता है। जगत्का अधिष्ठान, आधार ईश्वर है और ईश्वर सत्य है सो जगत् भी सत्य लगता है। यदि राजा नकली मोतियोंका हार पहने, फिर भी उसकी प्रतिष्ठाके कारण जनता तो उस हारको असली मोतियोंका ही मानेगी। गरीब व्यक्तिका सच्चे मोतियोंका हार उसकी गरीबीके कारण नकली ही समझा जाएगा। इस तरह यह जगत् नकली मोतियोंका हार है जिसे परमात्माने अपने गलेमें पहन रखा है।

जगत्में रहते हुए भी उसे मिथ्या समझो। दृश्यमान वस्तु नाशवंत ही होती है। यद् दृष्टम् तद् नष्टम्। इसलिए बाह्य दृश्यमान जगत्को आभासमात्र समझो।

भागवतके प्रथम स्कंधके पहले अध्यायका दूसरा श्लोक भागवतका प्रस्तावनारूप है। भागवतका मुख्य विषय क्या है, भागवतका अधिकारी कौन है आदिका वर्णन इस दूसरे श्लोकमें किया गया है।

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां।
वैद्यं वास्तवमत्र वस्तुशिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥

श्रीमद् भागवतमें प्राणीमात्र पर दया करनेवाले और मत्सररहित सत्पुरुषोंके एकमात्र आधाररूप, ईश्वर आराधनरूप, निष्काम परमधर्म वर्णित किया गया है और जो परमार्थरूप, जानने योग्य, परमसुखदायी, आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तापको हरनेवाले उस परमात्मारूप तत्त्वका भागवतमे वर्णन किया गया है। प्रोज्झितकैतवो धर्मः। जिस धर्ममें कोई कपट नहीं है ऐसा निष्कपट धर्म भागवतका मुख्य विषय है।

मनुष्य जिस सत्कर्मके फलकी अपेक्षा करता है वह सत्कर्म, वह धर्म निष्कपट नहीं है। निष्काम कर्ममें दोष क्षम्य हैं, सकाम कर्ममें दोष अक्षम्य हैं।

नारदजीने वाल्मीकिजीसे 'राम' मंत्रका जाप करनेको कहा। वाल्मीकिने भूलसे 'राम' के बदले 'मरा' कर दिया और 'मरा मरा' जपने लगे। फिर भी उनको फल तो 'राम' मंत्रके जापका ही मिला।

अतिशय पापीके मुखसे आसानीसे 'राम' नाम नहीं निकलता है। भगवान्का हृदयमें प्रवेश होने पर पापको बाहर निकलना पडता है सो पाप भगवान्का नाम नहीं लेने देता। सेवाका फल सेवा है। मुक्तिकी भी आशा मत करो।

भागवतका मुख्य विषय है निष्काम भक्ति। जहां भोगेच्छा है वहां भक्ति नहीं होती। भोगके लिए की गई भक्तिसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। भोगके लिए भक्ति करनेवालेको संसार प्यारा है, भगवान् नहीं।

भगवान्के लिए ही भक्ति करो। भक्तिका फल भगवान् होना चाहिए, संसारसुख नहीं। जो ऐसा सोचते हैं कि भगवान् मेरा काम कर दें या भगवान् मेरे काम आएं उसे वैष्णव नहीं कहा जा सकता। भगवान्से कोई संतान मांगता है तो कोई धन। तो भगवान् सोचते हैं मेरे लिए तो मंदिरमें कोई आता ही नहीं है, सब अपना अपना मनोरथ मुझसे पूरा करानेके लिए ही आते हैं।

सच्चा वैष्णव तो भगवान्से कहेगा कि मैं तो अपनी ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन आदि सब कुछ तुम्हारे चरणोंमें अर्पित करनेके लिए आया हूँ। सच्चा वैष्णव भगवान्से न तो दर्शन मांगता है और न तो मुक्ति। वह यदि कुछ मांगेगा तो केवल इतना ही कि वह भगवान्की सेवामें ही तन्मय होता रहे।

मांगनेसे प्रेमकी धारा टूट जाती है, प्रेमका प्रमाण घटने लगता है। इसलिए प्रभुसे कुछ भी नहीं मांगो। भगवान्को अपना ऋणी बनाओ। श्री रामचन्द्रजीने राज्याभिषेकके प्रसंग पर सभी वानरोंको भेंट दी किंतु हनुमान्जीको कुछ नहीं दिया। इस घटनासे सीताजीको दुःख हुआ। उन्होंने रामसे कहा कि हनुमान्को भी तो कुछ दीजिए। रामजीने कहा कि उसे मैं क्या दूँ। उसने तो मुझपर कितने ही उपकार किए हैं और मुझे ऋणी बनाया है।

श्री राम हनुमान्जीसे कहते है :

प्रति उपकार करूं का तोरा।
संमुख हो न सकत मुख मोरा ॥

शुद्ध प्रेममें लेनेकी भावना नहीं होती, देनेकी होती है। मोह भोगकी इच्छा करता है जब कि प्रेम भोग देता है। प्रेममें मांग नहीं होती। प्रेममें अपेक्षाका भाव जगा कि सच्चा प्रेम भागा ही समझें। भक्तिसे मांगी हुई वस्तु मिलेगी तो जरूर किंतु भगवान् हाथसे निकल भागेंगे। नित्य देनेवाला चला जाएगा।

गीतामें कहा है :

देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि।

गी. अ. ७ श्लोक २३

सकामी भक्त जिस किसी देवताओंकी पूजा करते हैं, उन सभी देवताओं द्वारा मैं इच्छित भोगोंकी पूर्ति करता हूँ। किंतु मेरी निष्काम भक्ति करनेवाले भक्त मुझे ही प्राप्त करते हैं।

भगवान्से धन मांगोगे तो धन तो मिलेगा किंतु भगवान् स्वयं नहीं मिलेंगे।

भगवान्के पास जितना मांगोगे तो उतना ही वे देंगे किंतु प्रेम कम हो जाएगा। व्यवहारमें भी हम यह अनुभव करते हैं कि जब तक कुछ मांगा न जाय तब तक ही दो मित्रोंकी मैत्री प्रेमपूर्ण रहती है।

गोपियाँ नयन (दृष्टि) भी कृष्णको ही देती हैं और मन भी। वे श्रीकृष्णसे कुछ भी मांगनेकी अपेक्षा सर्वस्व अर्पण ही करती हैं। भगवान्से कुछ मांगोगे तो प्रेम खंडित होगा। हमेशा ऐसा ही मानिए कि प्रभुने मुझे बहुत कुछ दिया है।

कई लोग हर वर्ष डाकोरजी तीर्थकी यात्रा करते हैं। वे रणछोडजीसे कहते हैं कि मैं छ वर्षोंसे आपके दर्शनार्थ आता रहता हूँ फिर भी मुझे पुत्र नहीं मिला है। भगवान् उसे पुत्र तो देते हैं किंतु साथ साथ कहते हैं कि अब मेरा और तेरा संबंध टूट चुका।

डाकोरजी अपेक्षासे कुछ कम दें तो मानिए कि वे तो परिपूर्ण हैं किंतु मेरी पात्रता अधूरी होनेसे ही मुझे कम मिला है।

निष्काम भक्ति उत्तम है। वैष्णव मुक्तिकी भी अपेक्षा नहीं करता। हरिके जन तो मुक्ति भी नहीं मांगते। मुक्तिकी अपेक्षासे भक्तिमें अलौकिक आनंद है। भक्तिमें जिसे आनंद मिलता है उसे मुक्तिका आनंद तुच्छ नगण्य लगता है।

वेदांती तो मानते हैं कि इस आत्माको बंधन है ही नहीं तो फिर मुक्तिका प्रश्न ही कैसे उठता है। वैष्णव मानते हैं कि मुक्ति तो मेरे भगवान्की दासी है। दासीकी अपेक्षा मेरे भगवान् गुरुतर हैं।

भगवान् मेरा काम करे ऐसी अपेक्षा कभी न करो।

रामकृष्ण परमहंसको कैंसरकी बीमारी लग गई। शिष्योंने कहा कि माताजीसे कहिये, वे आपकी बीमारीका इलाज करेंगे। रामकृष्णने कहा कि अपनी माताको मैं मेरे लिये कोई तकलीफ न दूंगा।

भक्तिका अर्थ यह तो नहीं है कि अपने सुखके लिए डाकोरजीको हम त्रास दें, परिश्रम दें।

मांगनेसे सच्ची मैत्रीके गौरवकी हानि होती है। सच्चा समझदार मित्र कभी कुछ नहीं मांगता।

सुदामाकी भगवान्के प्रति सच्ची भक्ति थी। वे दरिद्र थे। पत्नीने कुछ मांगनेके लिए उन्हें भगवान्के पास भेजा। सुदामा भगवान्के पास आये किंतु मांगनेके लिए नहीं, मिलनेके लिए। उन्होंने द्वारिकापतिका वैभव देखा फिर भी जुबान तक न खोली। सुदामाने सोचा कि मैत्री-मिलनसे ही यदि भगवान्की आँखें भीग गई हैं तो फिर अपनी दरिद्रताकी बात बताने पर तो उन्हें कितना गहरा दुःख होगा। मेरे दुःखका कारण मेरे कर्म ही हैं। मेरे दुःखकी गाथा सुनकर उन्हें दुःख ही तो होगा ऐसा सोचकर सुदामाने भगवान्से कुछ नहीं मांगा।

सुदामाकी तो यही इच्छा थी कि अपने द्वारा लाए गए मुट्ठीभर तांदुलका भगवान् प्रेमसे प्राशन करें। भगवान् जानें कि वह कुछ लेने नहीं, देने ही आया है।

ईश्वर पहले हमारा सर्वस्व लेता है और फिर अपना सर्वस्व हमें देता है। जीवके निष्काम होने पर ही भगवान् उसकी पूजा करते हैं। भक्त जब निष्काम होता है तो भगवान् अपने स्वरूपका दान भक्तको देता है।

जीव जब अपना जीवत्व छोडकर ईश्वरके द्वारपर जाता है तब भगवान् भी अपना ईश्वरत्व भूलकर भक्तसे मिलते हैं।

सुदामा दस दिनका भूखा था। फिर भी उसने अपना सर्वस्व (मुट्ठीभर तांदुल) प्रभुको दे दिया। सुदामाके तांदुल चाहे मुट्ठीभर ही थे फिर भी वही तो उस समय उसका सर्वस्व था। वैसे मुट्ठीभर तांदुलकी कोई इतनी बडी कीमत नहीं है किंतु मूल्य तो सुदामाके प्रभु-प्रेमका है।

यदि मेरे लिए श्री ठाकुरजीको थोडासा भी श्रम उठाना पडेगा तो मेरी भक्ति व्यर्थ है, निष्फल है ऐसा मानो। भगवान्से कुछ भी न मांगो। न मांगनेसे भगवान् तुम्हारे ऋणी होंगे।

गोपियोंने भगवान्से कुछ भी नहीं मांगा था। उनकी भक्ति निष्काम थी। अतः भगवान् गोपियोंके ऋणी थे। गोपीगीतमें भी वे भगवान्से कहती हैं कि हम तो आपकी निःशुल्क, क्षुद्र दासियाँ हैं। अर्थात् निष्काम भावसे सेवा करनेवाली दासियाँ हैं। इसी तरह कुरुक्षेत्रमें भी जब वे भगवान् श्रीकृष्णसे मिलती हैं तो वहाँ भी वे कुछ मांगती नहीं हैं। वे तो केवल इतनी ही इच्छा करती हैं।

संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहंजुषामपि मनस्युदियात् सदा नः।

संसाररूपी कुएंमें गिरे हुओंको, उसमेंसे बाहर निकलनेके अवलंबन रूप आपके चरणकमल, घरमें रहते हुए भी हमारे मनमें सदा बसा रहे।

एक सखी उद्धवजीसे पूछती है कि तुम किसका संदेश लेके आए हो। कृष्णका? वे तो यहाँ पर ही उपस्थित हैं। लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा गए हैं वह बात गलत है। मेरे ठाकुरजी हमेशा मेरे साथ ही हैं। चौबीसों घंटोंका हमारा उनके साथ संयोग है।

गोपियोंका प्रेम शुद्ध है। वे जब भी भगवान्का स्मरण करती हैं, ठाकुरजीको प्रगट होना ही पडता है गोपियोंकी निष्काम भक्ति इतनी सत्वशील है कि भगवान् खिंचे हुए चले आते हैं।

ठाकुरजीको सदा साथ रखोगे तो जहाँ भी जाओगे, भक्ति कर सकोगे। तभी तो तुकाराम भगत कहते हैं, मुझे चाहे भोजन न भी मिले, परंतु हे विट्ठलनाथ, मुझे एक भी क्षण तुम अपनेसे अलग मत रखना।

भगवान् उद्धवजीसे कहते हैं: उद्धव, मेरी गोपियाँ मुझमें तन्मय चित्तवाली मदर्थे त्यक्त-देहिकाए हैं। गोपियोंका आदर्श आँखके सामने रखो और भगवान्की भक्ति करो। सुदामाकी निष्काम भक्तिको याद रखकर प्रभुकी भक्ति करो। सुदामा और गोपियोंकी जैसी भक्ति सीखो। सुदामाकी भक्ति भी निष्काम थी।

तुम अपना सर्वस्व भगवान्को अर्पण करो। ऐसा होने पर भगवान् भी अपना सर्वस्व तुम्हें देंगे।

निष्काम भक्ति ही भागवतका मुख्य विषय है। निष्काम भक्ति ही श्रेष्ठ भक्ति है। निष्काम भक्तिका श्रेष्ठ दृष्टांत है श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी निष्काम ममता, निष्काम प्रेम। गोपियाँ तो मुक्तिकी भी इच्छा नहीं रखती थीं।

श्रीकृष्णका सुख ही अपना भी सुख है ऐसा गोपियाँ मानती थीं।

एक सखीने उद्धवजीसे कहा कि श्रीकृष्णके वियोगमें हमारी कैसी दशा है यह तो आपने देख लिया। मथुरा जाने पर श्रीकृष्णजीसे कहना कि यदि आप मथुरामें सुखसे रहते हैं तो हमारे सुखके लिए व्रजमें आनेका कष्ट न करें। हमारा प्रेम अपने सुखके लिए नहीं है किंतु श्रीकृष्णको ही सुखी करनेके लिए है। श्रीकृष्णके वियोगसे हम दुःखी हैं और विलाप भी करती हैं परंतु हमारे विरहमें यदि वे मथुरामें सुखसे रहते हैं तो वे सुखी रहें। हमारे सुखके लिए वे यहां न आयें। यदि उनके अपने सुखके लिए ही वे यहां आना चाहें तो अवश्य ही पधारें।

दूसरोंके सुखमें सुखका अनुभव करना ही सच्चे प्रेमका लक्षण है।

शांडिल्य मुनिने अपने भक्तिसूत्रमें लिखा है—

तत्सुखे सुखित्वम् प्रेमलक्षणम्।

धन्य हैं वे व्रजवासी भक्तजन जो श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए मथुरा नहीं गए। गोपी प्रेमकी पागल अवस्थामें भगवान्‌की निकटताका अनुभव करती है। सखी सोचती है कि मैं वहाँ मिलने गई और मेरे मिलनसे ठाकुरजीको कुछ कष्ट हुआ तो? उनको कुछ लज्जा हुई कि गांवकी इस ग्वालनसे मैं खेलता था तो। नहीं, मुझे मथुरा नहीं जाना है। मेरे प्रेममें कुछ न कुछ न्यूनता ही रह गई है। इसीलिए वे मुझको छोडकर चले गए हैं।

मेरा प्रेम यदि सच्चा है तो वे अवश्य ही गोकुल लौटेंगे। उस समय तक मैं विरह दुःख सहन करती रहूँगी।

इसीलिए श्रीकृष्णजी कहते हैं। मुझे गोकुलमें जो आनंद गोपियोंसे मिला है वह द्वारिकामें नहीं है। गोपियोंका प्रेम निष्काम है। भगवान्‌का जो आश्रय लेता है वह निष्काम बनता है। गोपियोंकी ऐसी निष्काम भक्तिसे परमात्मा गोपियोंके ऋणी हुए। गोपीप्रेमकी महिमा दर्शनीय है।

श्रीकृष्ण एक बार बीमार हो गए (बीमार होनेका नाटक किया)। कोई भी औषधि सफल नहीं हुई। तब प्रभुने वैष्णवभक्तकी चरणरज औषधिके रूपमें मांगी। कोई वैष्णव अपनी चरणरज दे तो भगवान्‌की बीमारी दूर हो सके। भगवान्‌की रानियोंसे चरणरज मांगी गई। सभी रानियोंको आश्चर्य हुआ। प्राणनाथको चरणरज दें तो महापाप होगा और नरकमें जाना पडेगा। नरकमें कौन जाय? हम तो चरणरज नहीं देंगी। दूसरोंसे भी चरणरज मांगी गई। कोई तैयार न हुआ।

अंतमें बात गोपियों तक पहुँची। गोपियोंने सुना कि उनके कृष्ण बीमार हैं। यदि वे भलेचंगे हो सकते हैं तो हम अपनी चरणरज देनेको तैयार हैं। इसके लिए हम कोई भी दुःख सहनेको तैयार हैं। जो अपना कन्हैया सुखी (भलाचंगा) होता हो तो हम नरकयातना भी भुगत लेंगी। उन्होंने अपनी चरणरज दी। श्रीकृष्णकी बीमारी दूर हो गई। सच्चे निष्काम प्रेमकी परीक्षा भी हो गई।

भागवतका फल है निष्काम भक्ति। निष्काम भक्ति भगवान्‌को प्रसन्न करती है। गोपियोंकी जैसी निष्काम भक्तिकी आदत डालो।

भक्तिसे मुक्ति मिलती है। भक्तिके विना ज्ञान और वैराग्य प्राप्त नहीं हो सकते। विना ज्ञानकी भक्ति अँधी है और विना भक्तिके ज्ञान पंगु है। आदत और हाजत (जरूरत) पर नियंत्रण रखा जाय तो मानव प्रभुमें लीन हो सकता है।

भागवतका मुख्य विषय है निष्काम भक्ति। भागवत सबके लिए है। वेदांत सबके लिए नहीं है। वेदांतका अधिकार सबको नहीं दिया गया। जिसे ब्रह्मको जाननेकी जिज्ञासा हो, उसीके लिए वेदांत है। वेदांतका अधिकारी कौन? जिसने षट्संपत्ति आदिकी प्राप्ति की हो वही वेदांतका अधिकारी है। किंतु भागवत तो सभीके लिए है।

भागवतका अधिकार वैसे तो सभीके लिए बताया गया है फिर भी " निर्मत्सराणां सतां "–शुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषोंके जाननेके योग्य परमात्माका निरूपण इसमें किया गया है।

निर्मत्सराणाम्– निर्मत्सर होके कथा सुनो। मत्सर सबसे बडा शत्रु है। मत्सर सबको सताता हैं। ज्ञानी और योगी दोनोंको मत्सर परेशान करता है।

स्वयं प्राप्त की हुई योगसिद्धिके बलसे चांगदेव १४०० वर्ष जीए थे। उन्होंने मृत्युको चौदह बार वापस लौटाया। वे सिद्धियोंमे फँसे हुए थे। उन्हें प्रतिष्ठाका मोह था। उन्होंने संत ज्ञानेश्वरकी कीर्ति सुनी। चांगदेव ज्ञानेश्वरके प्रति मत्सर करने लगे। क्या यह बालक मुझसे भी बढ गया? ज्ञानेश्वरकी आयु सोलह वर्षकी थी। चांगदेवकी इच्छा हुई कि वह ज्ञानेश्वरको पत्र लिखे। किंतु पत्रमें संबोधन क्या किया जाए? ज्ञानेश्वर अपनेसे छोटे– केवल सोलह वर्षके– सो ' पूज्य ' तो कैसे लिखा जाय? और ऐसे महाज्ञानीको ' चिरंजीवी ' भी कैसे लिखा जाय? और इस उलझनको वे सुलझा न सके सो विना लिखे ही पत्र भेज दिया।

संतकी भाषा संत जान सकते है। वे कोरा भी पढ लेते हैं।

मुक्ताबाईने पत्रका उत्तर दिया। १४०० सालकी तेरी आयु हुई फिर भी तू कोरा ही रह गया।

चांगदेवने सोचा कि ऐसे ज्ञानी पुरुषसे मिलना ही चाहिए। अपनी सिद्धियोंके प्रदर्शनके लिए उन्होंने बाघ पर सवारी की और सर्पकी लगाम बनाई। और इस प्रकार वे ज्ञानेश्वरसे मिलनेके लिए आ रहे थे।

इस ओर ज्ञानेश्वरसे किसीने कहा कि चांगदेव बाघ पर सवारी करके आपसे मिलने आ रहे हैं। ज्ञानेश्वरने सोचा कि इस बूढेको अपनी सिद्धियोंका अभिमान हो गया है।

चांगदेवने अपनी सिद्धियोंके अभिमानके कारण ज्ञानेश्वरको पत्रमें ' पूज्य ' शब्दसे संबोधित नही किया था।

ज्ञानेश्वरने सोचा कि चांगदेवको कुछ पाठ पढाना चाहिए। संत मिलने आए तो उनकी आवभगत करनी ही चाहिए। उस समय ज्ञानदेव चौके पर बैठे हुए थे। उन्होंने चौकेसे चलनेकी आज्ञा दी। पत्थरका चौका चल दिया। चौकेको चलता हुआ देखकर चांगदेवका अभिमान नष्ट हो गया।

चांगदेवने महसूस किया कि मैंने तो हिंस्र पशुओको ही बसमें किया जय कि ज्ञानेश्वरके पास तो ऐसी शक्ति है जो जड पदार्थको भी चेतन बना देती है। दोनोंका मिलन हुआ। चांगदेव ज्ञानेश्वरके शिष्य बन गए।

यह दृष्टांत सिखाता है कि हठयोगसे मनको नियंत्रित करनेकी अपेक्षा प्रेमसे मनको वसमें करना उत्तम है। चांगदेव हठयोगी थे। हठात्–बलात्कारसे उन्होंने मनको वसमें किया था।

योग मनको एकाग्र कर सकता है किंतु हृदयको विशाल नही कर सकता। यही कारण है कि चांगदेव ज्ञानेश्वरसे ईर्ष्या करते थे।

हृदयको विशाल करती है भक्ति। भक्तिसे हृदय पिघलता है, विशाल भी होता है।

मत्सर करनेवालोंके तो इहलोक और परलोक दोनों बिगडते है। मनमें मत्सर मत रखो। मनसे मत्सर निकाल दोगे तो मनमोहनका स्वरूप मनमें सुदृढ होगा।

कथा सुनकर उसे जीवनमें चरितार्थ करनेवाले लोग बहुत कम होते हैं।

कथा सुनो और कथाके सिद्धांतोंका जीवनमें आचरण करो। केवल 'शुश्रूभिः' नहीं किंतु 'कृतिभिः' भी बनो। इसीलिए कहा गया है कि जब सुकृति पुरुष उन्हें सुननेकी इच्छा करता है उसी समय ईश्वर अविलंब उसीके हृदयमें आकर बंदी हो जाता है। भागवतकथाका श्रोता निष्काम और निर्मत्सर बन जाता है।

किसी भी जीवके प्रति रखा गया कुभाव ईश्वरके प्रति रखा गया कुभाव है। मनुष्य जब तक निर्मत्सर न बने तब तक उसका उद्धार नहीं होता। जैसी भावना आप दूसरोंके लिए रखोगे वैसी ही भावना वे आपके लिए भी रखेंगे। दूसरोंके साथ वैरभाव करनेवाला व्यक्ति अपने साथ ही वैरभाव करता है। क्योंकि सबके हृदयमें ईश्वरका वास है।

गीतामें कहा गया है :

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

नैमिषारण्यमें ८८००० ऋषियोंका ब्रह्मसूत्र हुआ। उस ब्रह्मसूत्रमें एक बार सूतजी पधारे। शौनकजीने सूतजीसे प्रश्न पूछा कि जीवमात्रका कल्याण कैसे हो सकता है? कल्याणका सुलभ और सरल मार्ग बताइए। मनुष्यमात्रके कल्याणका उपाय बताइए। कलियुगके शक्तिहीन मनुष्य भी जिसका उपयोग कर सकें ऐसा कोई साधन बताइए। इस कलियुगके मानवी मंदबुद्धि और मंदशक्ति हैं सो कठिन मार्ग नहीं अपना सकेंगे। कलियुगके मनुष्य भोगी होनेसे वे मंदबुद्धि कहे गए हैं। कलियुगके मानव ऐसे भोगी हैं कि एक ही आसन (बैठक) पर बैठकर आठ घंटे ध्यान नहीं कर सकते। वे अपनेको चतुर मानते हैं, किंतु व्यासजी ऐसा माननेको तैयार नहीं हैं।

संसारके विषयोंके पीछे ही जो लगा रहे उसे प्रवीण कैसे कहा जाय? शास्त्र कहता है कि सौ काम छोडकर भोजन करो, हजार काम छोडकर स्नान करो, लाख काम छोडकर दान करो और करोड काम छोडकर प्रभुका स्मरण करो, ध्यान करो, सेवा करो।

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानं आचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

घरके कामोंको करनेके बाद माला मत फेरो, किंतु प्रभुनामका जाप करनेके बाद सब काम करो। करोड कामोंको छोडकर भगवानका स्मरण करो। कलियुगके मनुष्य, जो काम करना

है उसे, नहीं करते हैं और जिसे नहीं करना है वही पहले करते हैं। इसीसे व्यासजीने उन्हें मंदबुद्धि कहा है।

विस्तारपूर्वक आप श्रीकृष्णकथा सुनाइए। कृष्णकथासे तृप्ति नहीं होती। वैसे ही दर्शनमें तृप्ति नहीं होती। द्वारिकाके कृष्णका स्वरूप दिव्य है। श्री नाथजीका स्वरूप मनोहर है। दर्शनसे तृप्ति नहीं होती। भगवान्‌की मंगलमय अवतार-कथाओंका वर्णन करो। भगवान्‌की लीला कथा सुन कर हम कभी तृप्त होते ही नहीं हैं।

कलियुगमें जब अधर्म बढता है तब धर्म किसका आश्रय लेता है? प्रथम स्कंधका प्रथम अध्याय 'प्रश्नाध्याय' कहलाता है।

समुद्र पार करनेवालेको जैसे कर्णधारका आसरा है वैसे आप हमें मिले हैं। आप भगवान् हमारे केवट हैं। कुछ इस रीतिसे आप कथा सुनाएं कि जिससे हमारे हृदय द्रवित हो जायँ। प्रभुकी कृपाके कारण ही आप हमें मिले हैं।

परमात्माका मिलनेकी आतुरताके कारण ही संतका मिलन होता है। जीव जब परमात्मासे मिलनेके लिये आतुर होता है तो परमात्माकी कृपासे संत मिलते हैं।

स्वाद भोजनमें नहीं है, भूखके कारण ही है।

मनुष्यको परमात्मामिलनकी भूख जब तक न लगे तब तक संत मिलने पर भी उसके प्रति सद्भाव नही जगता। इसका एक ही कारण है कि जीवको भगवत्-दर्शनकी इच्छा ही नहीं हुई है।

वक्ताका अधिकार सिद्ध होना चाहिये और श्रोताके भी अधिकार सिद्ध होने चाहिये।

श्रवणके तीन प्रधान अंग हैं :

(१) श्रद्धा : श्रोताओंको चाहिये कि वे मनको एकाग्र करके श्रद्धासे कथा सुनें।

(२) जिज्ञासा : श्रोताको जिज्ञासु होना चाहिये। जिज्ञासाके अभावमें मन एकाग्र नहीं होगा और कथाका कोई असर भी न होगा। बहुत कुछ जाननेकी जिज्ञासा न होगी तो कथाश्रवणसे कोई विशेष लाभ न होगा।

(३) निर्मत्सरता: श्रोताके मनमें जगत्‌के किसी भी जीवके प्रति मत्सर नहीं होना चाहिये। कथामें दीन और विनम्र होकर जाना चाहिये। पापको छोडकर, भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र आतुरताकी भावनासे कथाश्रवण करोगे तो भगवान्‌के दर्शन होंगे।

प्रथम स्कंधमें शिष्यका अधिकार वर्णित है।

एक महात्मा रामायणकी कथा सुना रहे थे। कथा समाप्त होने पर किसी श्रोताने महात्मासे पूछा कि कथा तो सुनी पर मुझे यह नहीं समझमें आया कि राम राक्षस थे या रावण। तो महात्माने उसे उत्तर दिया कि न तो राम राक्षस थे और न रावण। राक्षस तो मैं ही हूँ कि जो तुझे कुछ भी समझा न सका।

परमात्माकी कथा बार बार सुनोगे तो प्रभुके प्रति प्रेमभाव जगेगा।

शौनक मुनिने सूतजीसे कहा : भागवत-कथामें हमको श्रद्धा है। आपके प्रति हमें आदर है। अनेक जन्मोंके पुण्योंका उदय होने पर ही अधिकारी वक्ताके मुखसे कथा सुननेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

*

प्रथम श्रवणभक्ति है। रुक्मिणीने अपने पत्रमें लिखा था कि तुम्हारी कथा सुनकर ही तुमसे विवाह करनेकी इच्छा हुई थी। 'श्रुत्वा' शब्द वहाँ है।

भगवान्के गुण सुननेसे उनके लिए प्रेमभाव उत्पन्न होता है।

श्रोता और वक्ता दोनो विनयी होने चाहिए। सूतजी श्रोताओंको साधुवाद देते हैं। वे कहते हैं— कथा सुनकर तुम्हें जो करना चाहिए वह तो तुम करते हो। तुम शांतिसे सुनते हो तो मेरा मन भी भगवान्में स्थिर होता है। तुम ज्ञानी हो। प्रभुप्रेममें पागल हो। परन्तु मेरा कल्याण करने लिए प्रश्न पूछते हो। कथा सुनाकर मै तो अपनी वाणीको पवित्र करूंगा।

मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः।
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता॥

शिवमहिम्न स्तोत्रमें पुष्पदंतने भी कहा है कि शिवतत्त्वका वर्णन वैसे तो कौन कर सकता है। मै तो अपनी वाणीको पवित्र करने चला हूँ।

आरंभमें सूतदेवजी शुकदेवजीको वंदन करते है। फिर भगवान् नारायणको वंदन करते हैं। नारायणं नमस्कृत्य।

भारतके प्रधान देव नारायण हैं। श्रीकृष्ण गोलोकमें पधारे। सभी अवतारोंकी समाप्ति हुई। किंतु नारायणकी न तो समाप्ति हुई है और न तो होगी। भारतकी प्रजाका कल्याण करनेके लिए वे आज भी तपश्चर्या कर रहे हैं।

श्री शंकराचार्यजीको नर–नारायणका दर्शन हुआ तो उन्होंने कहा कि मैं तो महान् योगी हूँ इससे आपका दर्शन कर सका हूँ। किंतु कलियुगके भोगीजन भी आपके दर्शन कर सकें ऐसी कृपा कीजिए। भगवान्ने उस समय बद्रीनारायणके नारद कुंडमें स्नान करनेका आदेश दिया। वहांसे तुम्हें मेरी जो मूर्ति मिलेगी उसकी स्थापना करना। बद्रीनारायण भगवान्की स्थापना शंकर स्वामीने की है। शंकराचार्यका प्रथम ग्रंथ है विष्णुसहस्रनामकी टीका।

मनसे मानसदर्शनका पुण्य बहुत लिखा गया है। नारायणको मनसे प्रणाम करो। जो जाए बद्री, उसकी काया सुधरी।

बद्रीनारायण तीर्थमें लक्ष्मीकी मूर्ति मंदिरके बाहर है। तपश्चर्यामें स्त्री, द्रव्य, बालकका संग बाधादायी है। नारायणने लक्ष्मीजीसे कहा– तुम बाहर बैठकर ध्यान धरो, मै अंदर बैठकर ध्यान धरूंगा।

एक भक्तने बद्रीनारायणके पूजारीसे पूछा कि इतनी कडाकेकी सर्दीमें चंदनसे ठाकोरजीकी पुजा क्यों करते हो? पुजारीने उत्तर दिया–अपने ठाकोरजी कठोर तपश्चर्या करते हैं जिससे शक्ति बढती है सो ठाकोरजीको बहुत गर्मी लगती है सो चंदनसे पूजा की जाती है।

सूतजी सरस्वती और व्यासजीको वंदन करके कथाका आरंभ करते हैं:

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति

भा. १–२–६

जिस धर्मसे मनुष्यके दिलमें श्रीकृष्णके प्रति भक्ति जगे, वही धर्म श्रेष्ठ है। भक्ति भी ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें किसी भी प्रकारकी कामना न हो। निष्काम तथा निरंतर भक्तिसे हृदय आनंदरूप परमात्माकी प्राप्ति करके कृतकृत्य हो जाता है।

सूतजी कहते हैं— जीवात्मा अंश है और परमात्मा अंशी। अंशीसे अंश अलग हो गया है और इसीलिए वह दु:खी है अंशी अर्थात् परमात्मामें मिल जानेपर ही जीव कृतार्थ होता है। परमात्मा कहते हैं : ममैवांशो जीवलोके। तू मेरा अंश है तू मुझसे मिलकर कृतार्थ होगा। नर नारायणका अंश है। अंश (नर) अंशी (नारायण) में जब न मिल जाय तब तक उसे शांति नहीं मिलेगी। मैंने यह नियम निश्चित किया है कि अपने परमात्माका आश्रय लेकर उनके साथ मुझे एक होना है, किसी भी प्रकारसे ईश्वरके साथ एक होना है। ज्ञानी ज्ञानसे अभेद सिद्ध करता है तो वैष्णव महात्मा प्रेम द्वारा अद्वैत (अभेद) सिद्ध करते हैं। प्रेमकी परिपूर्णता अद्वैतमें ही है। भक्त और भगवान् अंततः एक ही हो जाते हैं। गोपी और कृष्ण एक हो गए थे।

जीव और ईश्वर कैसे अलग हो गए इसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। ईश्वरसे जीवका वियोग हुआ है यह सत्य है। यह वियोग कैसे और कबसे हुआ इसके विवादमें समयका व्यय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है और इससे कोई लाभ भी नहीं है। धोती पर दाग लगने पर वह कब और कैसे लगा इस पर ही सोचते रहनेसे वह दाग दूर नहीं होगा। उस दागको दूर करने पर ही धोती स्वच्छ होगी। इस तरह ईश्वरसे मिलनेका प्रयत्न करें यही इष्ट है।

जब जीव निर्भय बनता है तभी वह भाग्यशाली होता है। जिसके सिर पर कालका भय है वह निर्भय कैसे हो सकता है? भाग्यशाली तो वह है, जिसे मृत्युका भय नहीं है। ध्रुव, पांडव, व्रजभक्त धन्य है कि जिनके अधीन काल था।

ईश्वरको यह पृच्छा और अपेक्षा होती है कि मनुष्यको दी गई बुद्धि और मनका उसने क्या किया? जीवको मृत्युके दिन अर्थात् हिसाब देनेके दिन भय लगता है। जिसका जीवन साफ है उसका हिसाब साफ है। जिस दिन इन्कमटेक्सका अधिकारी किसी गृहस्थसे लाख-दो लाख रुपयेका हिसाब मांगता है तो वह गृहस्थ डर जाता है। तो फिर जब ईश्वर सारे जीवनका हिसाब मांगेगा तो क्या दशा होगी? क्या इसका भी कभी विचार किया है? किये हुए पापोंकी याद अन्तकालमें जब आने लगती है तो जीव भयभीत हो जाता है।

जब तक मृत्युका भय है तब तक जीवको शांति नहीं मिलेगी।

भगवान् जब जीवको अपना लेते हैं तब भगवान्का सेवक काल जीवका कुछ भी बिगाड नहीं सकता।

उपनिषद्में कहा है : जीव और ईश्वर साथ साथ बैठे हुए हैं फिर भी जीव ईश्वरको पहचानता नहीं है। जीव बहिर्मुखकी अपेक्षा अंतर्मुख बने तो वह अंतर्यामी को पहचान सके।

एक व्यक्तिको मालूम हुआ कि गंगा किनारे रहनेवाले एक संतके पास एक पारसमणि है। पारसमणि पानेकी इच्छासे वह व्यक्ति संतकी सेवा करने लगा। संतने कहा कि मैं गंगास्नान करने जा रहा हूँ। वापस आकर तुझे मैं पारसमणि दूंगा। संत तो ऐसा कह कर

चले गए। अब इस व्यक्तिके मनमें पारसमणिके लिए अकुलाहट बढ़ती गई। उसने संतकी गैरहाजिरीमें सारी झोपडी छान डाली। परंतु पारसमणि उसके हाथ न लगी। संत वापस आए। संतने यह जान लिया तो पूछा कि क्या इतना भी धीरज नहीं है। पारसमणि तो मैंने उस डिबियामें रखी है। ऐसा कह कर उन्होंने एक डिबिया नीचे उतारी। वह डिबिया तो लोहेकी थी। तो उस व्यक्तिने सोचा कि यह कैसी पारसमणि है। क्योंकि जिस डिबियामें वह पारसमणि रखी गयी थी वह तो लोहेकी थी। इस पारसमणिने उस डिबियाको सोनेकी क्यों न बनाया? क्या यह पारसमणि असली है या यह संत मजाक कर रहे हैं? उसने संतसे पूछा कि यह डिबिया पारसमणिका स्पर्श होने पर भी लोहेकी ही क्यों रह गई और सोनेकी क्यों न बनी? तो संतने उसे बताया कि वह पारसमणि एक गुदडीमें रखी थी, वह आवरणमें था सो डिबिया सोनेकी बनने न पाई। इसी प्रकार ईश्वर और जीव हृदयमें, एक ही स्थानमें रहते हैं। परंतु दोनोंके बीच वासनाका परदा है और फलतः दोनोंका मिलन नहीं हो पाता। अर्थात् ईश्वरको जीव पहचान नहीं सकता और जीवका ईश्वरसे मिलन नहीं हो पाता। जीवात्मा डिबिया है और ईश्वर पारसमणि। दोनोंके बीच परदा है जिसे हटाना आवश्यक है। अहं और ममतारूपी चिथडा दूर करना है।

साधना करने पर भी सिद्धि न मिले तो साधनाके प्रति साधकके मनमें उपेक्षाभाव जगता है। जीव साधक है, सेवा, स्मरण साधन है। श्रीकृष्ण साध्य हैं। विष्णु भगवान्की भक्ति करना पुरुषोंका परम धर्म है।

लोग मानते हैं कि भक्ति मार्ग बिलकुल आसान है। सुबहमें भगवान्की पूजा की कि बस हो गई छुट्टी। फिर वे सारा दिन भगवान्को भुलाए रहते हैं। यह भक्ति नहीं है। चौबीसों घंटे ईश्वरका स्मरण रहे यही भक्ति है।

भक्तिमें आनंद है। किंतु मनुष्य केवल शरीरसे भक्ति करता है, मनसे नहीं। वाणी भगवान्के नामका उच्चार करे परंतु मन भगवान्का उच्चार न करे तो वह सब व्यर्थ है।

मन संसारके विषयोंमें रमता रहे और शरीर ठाकोरजीकी सेवा करे तो वैसी सेवामें कोई आनंद नहीं रहेगा। सेवामें क्रिया मुख्य नहीं है, भाव ही प्रधान है। सब विषयोंमेंसे मनको हटाओगे तब सेवामें आनंद आएगा।

सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे। सेवा करने बैठो तो पहले भावना करो। सेवा करने पर भी भगवान्के दर्शन न हो सकें तो दोष अपना ही है। सेवकको सेवा करनेके बाद मेरा पाप गया, मेरा दुःख गया, मेरा दारिद्र्य मिटा, मैं कृतार्थ हुआ ऐसी भावना होनी चाहिए। सेवा करने पर ऐसा भाव नहीं हो तो सेवापूजासे कोई आनंद नही होगा।

संसारके विषयोंको मनसे हटाओ। जब तक नहीं हटाओगे तब तक सेवामें आनंद नहीं होगा। सेवा यह भावना है। परमात्माकी सेवा तभी होगी जब संसारके विषयोंका प्रेम कम होगा।

परमात्मासे प्रेम करना है तो विषयोंका प्रेम छोडना ही होगा।

प्रेमगली अति सांकरी
तामें दो न समाहिं।

प्रेमकी संकरी गलीमें दोनोंका निर्वाह नहीं होगा। जगत्का बंधन न छोडोगे तब तक ब्रह्मसंबंध नहीं होगा।

संसारके विषयोंका मोह धीरे धीरे छोडो। संसारको छोडके कहाँ जाओगे ? संसारका त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। विषयोंका मोह छोडनेकी जरूरत है।

व्रतमें त्याग करनेकी आज्ञा है वह हमेशाके त्यागके लिए। हमेशाका त्याग हो नहीं सकता सो व्रतविधि बतायी गई है। धीरे धीरे संयम बढाओगे, वैराग्य बढाओगे, तो ईश्वर सेवामें, ध्यानमें अनूठा आनंद आ गा।

एक समय एक चौबेजा मथुरासे गोकुल जानेको निकले। नौकामें बैठ कर यमुनाजीको पार करना था। चौबेजी भंगके नशेमें थे। वे नौकामें बैठे और चप्पु चलाने लगे। अपने बाहुबल पर पूर्ण विश्वास होनेसे कहने लगे कि नाव अभी गोकुल पहुंच जाएगी। चौबेजीने सारी रात नाव चलाई। सुबह हुई। चौबेजी सोचने लगे कि यह मथुरा जैसा कौनसा गांव आया। किसीसे पूछा कि यह कौनसा गांव है। उत्तर मिला कि मथुरा है। वही विश्रामघाट और वही मथुरा। नशा उतरने पर चौबेजीको अपनी मूर्खताका भान हुआ। चौबेजीने सारी रात नाव तो चलाई किंतु नाव तो रस्सीके जरिये घाटसे बंधी हुई थी। नशेके असरसे वे नाव खोलनाही भूल गए थे और सारी रात चलाने पर भी वहींके वहीं रह गए।

यह कथा हँसनेके लिए नहीं कही गई। मत हँसो। यह अवस्था चौबेजीकी नहीं, हम सबकी है। सभी इंद्रियसुखके नशेमें चूर हैं। जीवको एक इंद्रियसुख भोगनेका नशा चढ गया है। स्पर्शसुखका, संसारके विषयसुखका नशा चढा हुआ है। धनके नशेमें मनुष्य मंदिर जाता है। वह नशेमें होनेके कारण ठाकुरजीका सच्चे मनसे चिंतन नहीं करता है, अतः उसे भगवान्के दर्शनका आनंद नहीं होता। दुनियाके विषय सुंदर नहीं हैं। केवल परमात्मा ही सुंदर है। वासनारूपी डोरीसे विषयोंमें बंधी हुई इन्द्रियोंको छुडाना है।

वासना किसीको आगे बढने नहीं देती। वासनाकी डोरीको नहीं तोडोगे तब तक आगे बढ नहीं सकोगे। वासनारूपी डोरीसे इस जीवकी गांठ संसारके साथ बंधी हुई है उसे छोडना है।

हृदयमें कोई वासना नहीं रहेगी तब भक्तिसे आनंद मिलेगा।

सर्वोत्तम वस्तुका भगवान्को अर्पण करना ही भक्ति है।

विना वैराग्यके भक्ति रोती है। भोग भक्तिमें बाधक है। संयम और सदाचार बढाओगे तो भक्तिसे आनंद मिलेगा। सुखी होना है तो संसारके विषयोंके साथ ज्यादा प्रेम मत करो। घरमें ही वैराग्यकी साधना करो। विना वैराग्यके ज्ञान और भक्तिकी शोभा नहीं है। ज्ञान और वैराग्य सहित भक्ति बढे तो ईश्वरका साक्षात्कार होता है।

ज्ञानमार्गमें इन्द्रियोंका निरोध करना पडता है। भक्तिमार्गमें इन्द्रियोंको प्रभुमार्गमें ले जाना होता है।

सुगंध लेनेकी इच्छा हो तो ठाकोरजीको फूल अर्पण करनेके बाद उसका सुवास लो।

ब्रह्मसंबंधको सतत बनाए रखनेसे ही जीवात्माका कल्याण होता है। वेद भी उसी वासुदेव भगवान्का वर्णन करते हैं। उत्तमोत्तम तत्त्व अद्वैततत्त्व है जिसे श्रीकृष्ण कहते हैं।

लौकिक व्यवहारके ज्ञानमें द्वैत है, ईश्वरके स्वरूपसंबंधी ज्ञानमें अद्वैत है। व्यवहारके स्वरूपका ज्ञान द्वैतभावसे भरा हुआ है। व्यावहारिक ज्ञानमें ज्ञाता और ज्ञेय भिन्न भिन्न हैं। परमात्माके ज्ञान होने पर ज्ञाता और ज्ञेय एक बनते हैं। सेवा – स्मरण करनेसे तन्मयता होती है। ईश्वरका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है जिससे वह जीव ईश्वरमें मिल जाता है। इसके बाद वह यह नही कह सकता कि मै ईश्वरको जानता हूँ। वह ऐसा भी नहीं कह सकता कि मैं ईश्वरको नहीं जानता।

गोपी सबमें श्रीकृष्णको देखकर जीवभाव भूल गई थी।

लाली मेरे लालकी सब जग रही समाई,
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

श्रुति वर्णन करती है कि वहां न तो मैं रहता हूँ और न तू। वृत्ति ब्रह्माकार हो जाती है।

श्रीकृष्णके स्वरूपका जिसे अच्छी तरहसे ज्ञान होता है वह ईश्वरसे अलग नहीं रह सकता। सबमें ईश्वरका ही दर्शन करनेवाला स्वयं भी ईश्वर ही बन जाता है।

जीवका जीवभाव न जाय तब तक अपरोक्षानुभव नही होता। इस प्रकार अद्वैतका ज्ञान बताया है। जीव और ब्रह्मका अद्वैत पीछे सिद्ध होगा, उससे पहले जीव और गुरुका अद्वैत होना चाहिए। मनसे एक होना है, शरीरसे नहीं। शुद्ध ब्रह्म मायाके संसर्ग बिना अवतार नहीं ले सका। सौ टचका सोना नरम होता है कि उससे जेवरकी घरावट (बनावट) नहीं घडी जा सकती। घाट घडना हो तो उसमें दूसरी धातु मिलानी पडती है। इसलिये परमात्मा भी मायाका आश्रय लेकर प्रगट होते हैं। परन्तु ईश्वरको यह माया बाधक नहीं होती। जीवको माया बाधक होती है। योगी जिसे परमात्मा कहते हैं, उसी परमात्मासे जो मिलता है वह जीव कृतार्थ होता है। भगवान्‌के प्रति प्रेम बढाना हो तो भगवान्‌के अवतारोंकी कथा सुनो। परमात्माके २४ अवतारोंकी कथा है। धर्मकी स्थापना करने और जीवका उद्धार करनेको परमात्मा अवतार धारण करते हैं। ठाकुरजी का अवतार तुम्हारे घरमें होना चाहिये मन्दिरमें नही। मानव शरीर यह घर है।

भागवतमें मुख्यतः कृष्णकथा करनी है परन्तु यह कथा आखिरमें आती है। भगवान्‌के अवतारोंकी कथा सुननेसे जीवन सुधरता है। भगवान्‌के सारे धर्म जीवमें उतर आयें यही अवतार हुआ। तीसरे अध्यायमें २४ अवतारोंकी कथा संक्षेपमें कही गई है। पहला अवतार सनत्कुमारोंका। वह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्य पहले आता है। ब्रह्मचर्यके सिवा मन स्थिर नहीं रहेगा। ब्रह्मचर्यसे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पवित्र होते हैं। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है। पहला कदम है ब्रह्मचर्य। दूसरा अवतार वाराहका है। वाराह अर्थात् श्रेष्ठ दिवस कौनसा ? जिस दिन सत्कर्म हो वह दिन श्रेष्ठ। सत्कर्ममें लोभ विघ्न करने आता है। लोभको संतोषसे मारो। वाराह अवतार संतोषका अवतार है। प्राप्तस्थितिमें संतोष मानो। लोभको मार कर, प्रभु जिस स्थितिमें रखे उसीमें संतोष मानो। यह वाराह अवतारका रहस्य है। तीसरा अवतार है नारदजीका। यह भक्तिका अवतार है। ब्रह्मचर्यका पालन करे और प्राप्त स्थितिमें संतोष माने, उसे नारद अर्थात् भक्ति मिले। नारदजी भक्तिके आचार्य हैं।

चौथा अवतार नरनारायणका। भक्ति मिले तो उससे भगवान्का साक्षात्कार होता है। भक्ति द्वारा भगवान् मिलते है। परन्तु भक्ति ज्ञान और वैराग्य विना होगी, तो दृढ नहीं होगी। भक्ति ज्ञान और वैराग्य सहित होनी चाहिए। भक्तिमें ज्ञान और वैराग्यकी जरूरत है। इसलिये पाँचवा अवतार कपिलदेवका है। ज्ञान वैराग्यका। वैराग्यको जीवनमें उतारो। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति आयेगी तो भक्ति सदाके लिये स्थिर रहेगी। छट्ठा अवतार है दत्तात्रेयजीका। ऊपर बतलाये हुए पाँच गुण ब्रह्मचर्य, संतोष, ज्ञान, भक्ति, और वैराग्य आपमें आयेंगे तो आप गुणातीत होंगे, और आप अत्रि होंगे तो भगवान् आपके यहाँ आयेंगे। ऊपरके छ अवतार ब्राह्मणके लिये हैं। सातवाँ अवतार यज्ञका। आँठवाँ अवतार ऋषभदेवका। नवाँ अवतार पृथुराजाका। दसवाँ मत्स्य नारायणका। यह चार अवतार क्षत्रियोंके लिये हैं। धर्मका आदर्श बतानेके लिये है। ग्यारहवाँ अवतार कूर्मका है। बारहवां अवतार धन्वंतरीका। तेरहवाँ अवतार मोहिनी नारायणका। यह अवतार वैश्योंके लिये है। प्रभुने वैश्योंके जैसी लीला की है। चौदहवाँ अवतार नरसिंह स्वामीका है। नृसिंह अवतार यह पुष्टिका अवतार है। भक्त प्रह्लाद् पर कृपा करनेके लिये यह अवतार हुआ है। भगवान्ने नृसिंह अवतारमें प्रह्लाद पर कृपा की है। प्रह्लाद जैसी दृष्टिसे देखेंगे तो स्तंभमें भी भगवान्का दर्शन होगा। ईश्वर सर्वव्यापक हैं, ऐसा केवल बोलो नहीं उसका अनुभव करो। फिर तुमसे पाप नहीं होगा। संत भी व्यवहार करते हैं। जबतक शरीर है, तबतक व्यवहार करना ही पडता है। ईश्वरको मनुष्य मनशक्ति या बुद्धिशक्तिसे जीत नहीं सका, केवल प्रेमसे ही जीत सका है। यशोदाके प्रेमके सामने श्रीकृष्ण दुर्बल बनते हैं और बँध जाते हैं। बालकके प्रेमके सामने माताका बल दुर्बल होता है। प्रेमके सामने शक्ति दुर्बल बनती है। आप भी परमात्मा पर खूब प्रेम बढाओ, वह भगवान् दुर्बल होकर आपके पास आयगा। पंद्रहवाँ अवतार वामन भगवान्का है। जो पूर्ण निष्काम है। जिसके उपर भक्तिका, नीतिका छत्र है, जिसने धर्मका कवच पहना है। जिसे भगवान् भी नहीं मार सके हैं।

बलिराजाकी तरह। यह है– वामन चरित्रका रहस्य। परमात्मा बडे हैं तब भी बलिराजाके आगे वामन अर्थात् छोटे बनते हैं। सोलहवाँ अवतार परशुरामका। यह अवतार आवेशका अवतार है। सत्रहवाँ व्यास नारायणका ज्ञानका अवतार है। अठारहवाँ रामजीका अवतार है। यह मर्यादापुरुषोत्तमका अवतार है। रामकी मर्यादाका पालन करो जिससे तुम्हारा काम मिटेगा। अर्थात् कनैया मिलेगा। उन्नीसवाँ अवतार श्रीकृष्णका। "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।" श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं। राम और कृष्ण एक हैं। मनुष्य दिनमें दो वार भान भूलता है। दिनके बारह बजे भूखसे भान भूलता है और रातको निवृत्तिमें कामसुख याद आता है, इसलिये भान भूलता है। इन दोनों समयोंको संभालना है। सबेरे श्री रामजीको याद करो और रातको श्रीकृष्णको। वे दोनों समय बचायेंगे। रामजीकी मर्यादाका पालन करो तो श्रीकृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम पुष्टि अर्थात् कृपा करेंगे। संत एकनाथजी महाराजने इन दोनो अवतारोंकी सुन्दर तुलना की है। रामजी राजमहलमें पधारे और कन्हैया कारागृहमें। एकके नामके अक्षर सरल और दूसरेके नामके अक्षर जुडे हुए हैं। पढाते समय सरल अक्षर पहले पढाते है और जुडे हुए बादमें। राम ये सरल अक्षर हैं। श्रीकृष्ण ये जुडे हुए अक्षर हैं। रामजीकी मर्यादाका पालन करो तब श्रीकृष्णावतार होगा। जिसके घरमें रामजी न पधारे

वहाँ कृष्ण भी नहीं आते। रामजीका अवतार अर्थात् रामजीकी मर्यादाका पालन। ये दोनों साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तमके अवतार हैं। बाकीके सब अवतार अंशावतार है। पूर्ण अवतार और अंशावतारका रहस्य यह है। अल्पकालके लिये, अल्प जीवोंके उद्धारके लिये जो अवतार होता है वह अंशावतार है। और अनन्तकालके लिये तथा अनन्त जीवोंके कल्याणके लिये जो अवतार होता है वह पूर्णावतार है ऐसा संत मानते हैं। भागवत्में कथा तो करनी है कनैयाकी। परन्तु क्रम क्रमसे दूसरे अवतारोंकी कथा सुनाकर। अधिकार प्राप्त हो तो कन्हैया आये। इसके पीछे हरि, कल्कि, बुद्ध आदि अवतार हुए हैं। कुल मिलाकर २४ अवतार हुए हैं।

परमात्माके २४ अवतार, परमात्मा शब्दमेंसे ही नीकलते हैं। (प = ५; र = २; मा = ४।।, त = आठ, मा =४।।) ब्रह्मांड भी ईश्वरका अवतार है। कई, तो ब्रह्मांडमें ईश्वरको देखते हैं कई संसारके सब पदार्थोंमें भागवत् स्वरूपका दर्शन करते हैं। सारा ब्रह्मांड भागवतरूप मानते हैं। सबका द्रष्टा परमात्मा मायाके कारण दृश्य जैसा दीखता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अविद्यासे आत्मामें आरोप करनेमें आया है। जो आत्मामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाय, जो हो सका है उस समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इति 'तद् ब्रह्म दर्शनम्' का सिद्धांत समझमें आयेगा।

भगवान् वेदव्यासजीने भागवत् चारित्रोंसे परिपूर्ण, भागवत् नामका पुराण बनाया है। भगवान् श्रीकृष्ण धर्म, ज्ञान आदि सहित स्वधाम पधारे, तो इस कलियुगमें अज्ञानरूपी अंधकारसे लोग अंधे हुए। उस समय भागवत् पुराण प्रगट हुआ है। यह पुराण सूर्य रूप है। शुकदेवजीने राजा परीक्षितको यह कथा सुनाई है। उस समय मैं वहाँ हाजर था। यथामति यह पुराण कथा मैं आपको सुनाता हूँ।

शोनकजीने पूछा : व्यासजीने भागवत्की रचना किस अभिप्रायसे की ? और रचना करनेके बाद इसका प्रचार किस तरहसे किया ? आदि कथा हमें सुनायें।

अतिशय लोभी प्रतिपल ईश्वरका ध्यान करता है वैसे ज्ञानी प्रतिपल ईश्वरका ध्यान करता है, स्मरण करता है। ज्ञानी एक पल भी ईश्वरसे अलग नहीं रह सकता। शुकदेवजीकी जन्मसे ही ब्रह्माकारवृत्ति है। वे भागवत् पढने गये, यह हमें आश्चर्य लगता है। शुकदेवजीकी प्रशंसा खूब की गई है। शुकदेवजीकी देव दृष्टि थी। देह दृष्टि नहीं थी। जबतक देह दृष्टि है तबतक दुःख है। शुकदेवजी स्नान करती अपसराओंके आगेसे निकले तब भी निर्विकार थे। एक समय ऐसा हुआ कि एक सरोवरमें अपसरायें स्नान करतीं थीं, वहाँसे नग्न अवस्थामें शुकदेवजी निकले। अपसराओंने पूर्ववत् स्नान चालू रखा और किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नहीं किया। कपडे भी नहीं पहने। थोडी देर बाद व्यासजी वहाँसे निकले, उन्होंने कपडे भी पहने थे परन्तु व्यासजीको देखकर अपसराओंने तुरंत ही अपने वस्त्र पहन लिये। व्यासजीने इस बातको देखा तो वे आश्चर्यमें पड गये कि ऐसा क्यों हुआ ? अपसराओंसे उसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि आप वृद्ध हैं, पूज्य हैं, पिता तुल्य हैं परन्तु आपके मनमें यह पुरुष है यह स्त्री है ऐसा भेद है। जबकि शुकदेवजीके मनमें कोई ऐसा भेद नहीं है। शुकदेवजी केवल ब्रह्मज्ञानी नहीं है, ब्रह्मदृष्टि रखकर घुमते हैं। शुकदेवजीको अभेददृष्टि सिद्ध हो चुकी है। उसे वह खबर नहीं कि यह स्त्री है, यह पुरुष है।

संतके दर्शन करनेवाला भी निर्विकारी बनता है। शुकदेवजीका दर्शन करके अपसरायें भी निर्विकारी बनी हैं। निष्काम हुई हैं। अपसराओंको लगा कि धिक्कार है हमें। इस महापुरुषको तो देखो। यह महापुरुष प्रभुप्रेममें कैसे पागल बने हैं।

जनक राजाके दरबारमें एक समय शुकदेवजी और नारदजी पधारे। शुकदेवजी ब्रह्मचारी हैं और ज्ञानी हैं। नारदजी भी ब्रह्मचारी हैं और भक्तिमार्गके आचार्य हैं। दोनों महापुरुष हैं। मगर इन दोनोंमें श्रेष्ठ कौन? जनक राजा समाधान नहीं कर सके। परीक्षा किये बिना कैसे फैसला हो? जनकराजाकी राणी सुनयनाने निश्चय किया कि मैं दोनोंकी परीक्षा करूंगी। सुनयना राणीने दोनोंको अपने घर बुलाया और झूले पर बिठाया। इसके बाद सुनयना राणी शृंगार सजके आई। और झूलेपर उन दोनोंके बीच बैठ गई। इससे नारदजीको कुछ संकोच हुआ। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। मुझ जैसे तपस्वीका इस स्त्रीसे स्पर्श हो गया? और कहीं मेरे मनमें विकार आ जाये तो? इस विचारसे वे कुछ दूर हट गये। परन्तु शुकदेवजीको वहाँ आकर काई बैठा है इसका भान तक नहीं हुआ। उसे तो स्त्री पुरुषका भी भान नही है। वे दूर भी नहीं हटते हैं। राणी सुनयनाने निर्णय दिया कि इन दोनोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी हैं। इनको तो स्त्रीत्व या पुरुषत्वका भी भान नहीं है। स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान न जाय तब तक ईश्वर नहीं मिलते। स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान भूले तभी भक्ति सिद्ध हुई मानो। शुकदेवजीको स्त्रीमें स्त्रीत्व नहीं दिखता है, उनको सबमें ब्रह्मभाव हो गया है। सबमें ब्रह्म दिखता है। जबतक पुरुषत्व और स्त्रीत्वका स्मरण है तबतक काम है। जब यह स्मरण जाता है, तब काम जाता है, अर्थात् काम करता है। ब्रह्मचर्चा करनेवाले सुलभ है। ब्रह्मज्ञानी सुलभ नहीं हैं। शुकदेव जैसी दृष्टि रखनेवाले सुलभ नहीं हैं।

ब्रह्मदृष्टि रखना कठिन है। ऐसे पुरुषको तो भागवत् पढनेकी जरूरत नहीं है। फिर भागवत पढने क्यों गये? शुकदेवजी भिक्षा वृत्तिके लिये बाहर निकलते हैं तो भी गोदोहन कालसे अर्थात् ६ मिनिटसे अधिस कहीं भी रुकते नहीं। फिर भी सात दिन तक बैठकर उन्होंने यह कथा राजा परीक्षितको कैसे सुनाई? हमने सुना है कि राजा परीक्षित भगवान्का भारी प्रेमी भक्त था। उसे शाप लगा। किस लिये यह हमें कहो।

सूतजी कहते हैं—

श्रवण करो— द्वापरकी समाप्तिका समय था। बद्रीनारायण जाते हुए रास्तेमें केशवप्रयाग आता है। वहाँ व्यासजीका आश्रम है। व्यासनारायण सरस्वतीके किनारे व्यासाश्रममें विराजते थे। एक समय उनको कलियुगका दर्शन हुआ। उनको पाँच हजार वर्ष बाद संसारमें क्या होगा इसका दर्शन हुआ। बारहवें स्कंधमें इसका वर्णन किया है। व्यासजीने जैसा देखा वैसा लिख दिया है। व्यासजीने सोचा कि कलियुगके लोग विलासी होंगे। मनुष्य बुद्धिहीन होंगे। वेद शास्त्रोंका अध्ययन नही कर सकेंगे। इसलिये वेदके चार विभाग किये। वेदोंका कभी अध्ययन कर भी लें परन्तु वेदके तत्त्वका ज्ञान, उसका तात्पर्य उनको नहीं होगा। इसलिये सत्रह पुराणोंकी रचना की। वेदोंको समझानेके लिये पुराणोंकी रचना की। पुराण तो वेदोंपर भाष्य हैं।

×

स्त्री, शूद्र, पतित, द्विजाति, वेद श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इन सबका भी कल्याण हो ऐसा विचार कर महाभारतकी रचना की गई। महाभारत यह समाजशास्त्र है। महाभारत यह पाँचवा वेद है। भा का अर्थ होता है ज्ञान, रत अर्थात् रचना। ज्ञानमें और भक्तिमें रमनेकी कला जिसमें बतायी गई है वह ग्रन्थ भारत। ज्ञानमें जी जब रमण करने जाता है तब कौरव विघ्न करते हैं। धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे यह शरीरक्षेत्र है। धर्म और अधर्मका इसमें युद्ध होता है। महाभारत प्रत्येकके मनमें और घरमें चल रहा है। सद् वृत्तियो और असद् वृत्तियोंका युद्ध यही है महाभारत। जीव धृतराष्ट्र है (जिसकी आंख नहीं वह धृतराष्ट्र नही) जिसकी आँखमें काम है वह अंधा धृतराष्ट्र है। 'को अंधः यो विषयानुरागी' अर्थात् अंधा कौन? जो विषयानुरागी है वह। दुःख रूप कौरव अनेक बार धर्मको मारने जाते हैं। युधिष्ठिर और दुर्योधन रोज लडते हैं। दुर्योधन आज भी आता है। प्रभुभजनके लिये सवेरे ठाकुरजी ४ बजे जगाते है। धर्मराजा कहते हैं कि उठो और सत्कर्म करो। परन्तु दुर्योधन आकर कहता है पिछले प्रहरकी मीठी नींद आ रही है। सवेरे उठनेकी क्या जरुरत है? तू अभी आराम कर। तेरा क्या बिगडता है? धर्म और अधर्म इसी प्रकार अनादि कालसे लडते चले आ रहे हैं। दुष्ट विचार रूपी दुर्योधन मनुष्यको उठने नहीं देता। निद्रा और निंदा पर जो विजय प्राप्त करते हैं वही भक्ति कर सके हैं। दुर्योधन यह अधर्म है। युधिष्ठिर यह धर्मका स्वरूप है। धर्म धर्मराजकी तरह प्रभुके पास ले जाता है और अधर्म दुर्योधन मनुष्यको संसारकी ओर ले जाता है और इसका विनाश करता है। धर्म ईश्वरके शरणमें जाय तो धर्मकी विजय होती है। अधर्मका विनाश होता है। इतने ग्रन्थोकी रचना कर लेने पर भी व्यासजीके मनको शांति मिलती नहीं। ज्ञानी पुरुष अपनी अशांतिका कारण अपनेमें ही खोजते हैं। उद्वेगका कारण अपनेमें ही खोजते है। अपने दुःखका कारण बाहर नहीं है। आपके दुःखका कारण आपके अंदर ही है। अज्ञान और अभिमान यह दुःखके कारण है। व्यासजी अशांतिका कारण अंदर खोजते हैं। मैंने कोई पाप तो नही किया है? जबकी अज्ञानी पुरुष अशान्तिका कारण बाहर खोजता है। वह बाहरके कारणोंमें ही अशान्तिका मूल पाता है।

लोग किये गये पुण्योंको फिर फिर याद करते हैं, परन्तु किये हुए पापको कोई याद नही करता। पापका कोई विचार नहीं करता। व्यासजीको चिंता हुई है मेरे हाथसे कोई पाप तो नहीं हुआ है। नहीं, नहीं, मैं निष्पाप हूँ। परन्तु मेरे मनमें कुछ खटकता है कि मेरा कोई न कोई काम अधूरा रह गया है। मनुष्यको अपनी भूल जल्दी नहीं मिलती है। इसलिये तो कहा है:— "कृपा भयी तब जानिये, जब दिखे अपना दोष" जगत्के किसी भी जीवका दोष नहीं देखो। अपने मनको सुधारो। जो कोई आपको भूल बताये तो उसका उपकार भूलना नही। व्यासजी ज्ञानी हैं फिर भी अपनेको निर्दोष नहीं मानते। मनुष्यका सबसे बडा दोष यही है कि वह अपनेको निर्दोष मानता है। निर्दोष एक परमात्मा ही हैं। ब्रह्माजीकी सृष्टि गुण दोषोंसे रहित नहीं है। दैवी सृष्टि और आसुरी सृष्टि अनादि कालसे चली जा रही हैं। व्यासजी सोचते हैं कि मुझे कोई संत मिले जो मेरी भूल मुझे दिखाये। सत्संग बिना मनुष्यको अपने दोषोंका भान नही होता है। सत्संगमें मनुष्यको अपनी भूल सूझती है। व्यासजीके संकल्पसे परमात्माने नारदजीको उनके पास जानेकी प्रेरणा की। कीर्तन करते करते नारदजी वहाँ पहुँचे। गंगाजीको आनंद हुआ। महापुरुषोंसे मिलनेसे कथागंगा प्रगट होगी। अनेक जीवोंका उद्धार होगा। आज गंगाजी शांत है ताकि इन दो महापुरुषोंके

सत्संगमें विघ्न न पडे। यह महावैष्णव मेरे कृष्णकी कथा करेंगे और उपकथासे अनेक जीवोंका कल्याण होगा। नारदजीने व्यासजीसे कुशलताका समाचार पूछा फिर कहा, मैं तो आपको अभिनंदन देने आया था। परन्तु आपको चिंतामें देखकर आश्चर्य हो रहा है। मुझे लगता है कि आप किसी गहरी चिंतामें हैं। आप आनन्दमें नहीं हैं। व्यासजीने कहा कि आपकी परीक्षा सच्ची है। मेरी कोई भूल हुई है परन्तु मेरी वह भूल मुझे समझमें नहीं आ रही है। कृपा करके आप मुझे मेरी भूल समझा दें। स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व।

मुझमें जो अपूर्णता है, आप इस पर विचारो अर्थात् मुझे बताओ। मेरी भूल मुझे बताओ आपका बहुत उपकार होगा। व्यासजीकी विवेकबुद्धि देखकर नारदजीको आनंद हुआ। नारदजीने कहा– महाराज, आप नारायणके अवतार हैं। आपसे क्या भूल हो सकती है? आप ज्ञानी है। आपकी कोई भूल नहीं हुई है। फिर भी आप आग्रह करते हैं तो एक बात कहता हूँ। आपने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें वेदान्तकी खूब चर्चा की है। आत्मा अनात्माका बहुत विचार किया है। योगसूत्रके भाष्यमें योग की बहुत चर्चा की है। समाधिके भेदोंका बहुत वर्णन किया है, परन्तु धर्म ज्ञान और योगके आधार श्रीकृष्ण हैं, इन सबका आत्मा श्रीकृष्ण है। उनकी कथाका आपने प्रेमपूर्वक वर्णन नहीं किया है। आपने भगवान्का निर्मल यश पूर्ण रीतिसे प्रेमसे वर्णन नहीं किया है। मानता हूँ कि जिससे भगवान् प्रसन्न न हों, वह शास्त्र और ज्ञान अपूर्ण ही है। कलियुगके जीवोंके उद्धारके लिये आपका जन्म हुआ है। आपके इस अवतारका कार्य अभीतक आपके हाथसे पूरा नहीं हुआ है। इसलिये आपके मनमें खटका है।

ज्ञानी पुरुष भी परमात्माके प्रेममें पागल न हो जाय तबतक उनको आनन्द मिलता नही। प्रभुमिलनके लिये जो आतुर नहीं होता उसका ज्ञान किस कामका? कलियुगमें भोगी जीव आपका ब्रह्मसूत्र आदि नहीं समझ सकेंगे। कलियुगके विलासी मनुष्य आपके गहन सिद्धांत किस प्रकार समझ सकेंगे? आपने तो योग ज्ञान आदिकी खूब चर्चा की है परन्तु भगवानकी लीलाओं और कथाओंका आपने प्रेमसे विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया है।

प्रेमरहित ज्ञानकी शोभा नहीं है। परमात्मा जिसे अपना मानते हैं उसीको ही अपना असली स्वरूप दिखाते हैं। परमात्माने अपना नाम तो प्रगट रखा है परन्तु अपना स्वरूप छिपा रखा है। जब परमात्माके अपने प्यारे भक्त उसकी बहुत भक्ति करते हैं तब परमात्मा उनको अपने स्वरूपका दर्शन कराते हैं। सामान्य मनुष्य भी जहाँ प्रेम होता है वहाँ अपना स्वरूप प्रगट करता है। बाहरके मनुष्यको देखने पर कोई दिल खोलता नहीं है। जिसके लिये प्रेम होता है उसको तो बिना पूछे सब बता देता है। मनुष्य परमात्माके साथ प्रेम नहीं करता। इसलिये वह प्रभुका अनुभव नहीं कर पाता। बडा ज्ञानी होनेपर भी जबतक वह परमात्मासे प्रेम नहीं करता तबतक उसे परमात्माका अनुभव नहीं होता है। जूतोंसे, कपडोंसे, पैसेसे प्रेम करता है वह कोई ज्ञानी कहलाता है? आजकल लोग पुस्तकें पढकर ज्ञानी बन जाते हैं, उनको गुरुकी सेवा नहीं करनी पडती। उनको ब्रह्मचर्य पालनेकी जरूरत नही लगती। श्रीकृष्णकी लीलाओं और कथाओंका आपने प्रेमसे गान नहीं किया इसलिये आपको दुःख होता है। यही तुम्हारी अशांतिका कारण है। ज्ञानकी शोभा प्रेमसे है, भक्तिसे नहीं है। जो सर्वमें भगवत् भाव न जागे तो यह ज्ञान किस कामका? श्रीकृष्ण प्रेममें पागल बनोगे तो शांति मिलेगी। आपने प्रेममें पागल होकर कृष्णकथाका परिपूर्ण वर्णन नहीं किया है। जीवसे ईश्वर दूसरा कुछ नहीं माँगता, केवल प्रेम चाहता है। कलियुगके मनुष्यको स्नानके लिये गरम पानी नहीं मिलता तो वह गुस्सेसे पागल हो जाता है ऐसे मनुष्य योग क्या सिद्ध करेंगे। जिसकी

भोगमें आसक्ति है उसकी तन्दुरस्ती नही रहती। द्रव्यमें जिसकी आसक्ति है उसका मन ठीक नहीं रहता। ऐसे मनुष्यसे योग सिद्ध नही होता। चित्तवृत्तिके निरोधको योग कहते हैं। इसे सिद्ध करना मुश्किल है। वातें ब्रह्मज्ञानकी करे, प्रेम पैसेसे करे उसे परमात्मा नहीं मिलता। उसे आनन्द नहीं मिलता। तो अव आप ऐसी कथा करो कि जिससे सवको प्रभु प्रति प्रेम जागे। ऐसी दिव्य कथा करो, ऐसा प्रेमशास्त्र रचो कि जिससे सव कृष्णप्रेममें पागल वने। कथा सुननेवालोंको कन्हैया प्यारा लगे। संसारकी उपेक्षा करें। ऐसी कथा आप करेंगे तो आपको शांति मिलेगी।

महाभारतमें श्रीकृष्णचरित्र है। वहाँ धर्म, सदाचारको महत्त्व दिया गया है वहाँ प्रेम गौण है। ऐसी कथा करो कि आपको भी शान्ति मिले और सव जीवोंको भी शांति मिले। व्यासजीने भी जबतक भागवत् शास्त्रकी रचना नहीं की तवतक उनको शान्ति नहीं मिली। कलियुगमें कृष्णकथा और कृष्णकीर्तनके सिवा दूसरा कोई उद्धारका उपाय नहीं है। कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार दूसरे साधनोंसे नही हो सकता। केवल कृष्णकीर्तन कृष्णस्मरणसे ही कलियुगमें मनुष्योंका उद्धार होगा। परमात्माकी लीला कथाका वर्णन आप अतिप्रेमपूर्वक करो। सब साधनोंका फल प्रभुप्रेम है। आप तो ज्ञानी है। महाराज, मैं आपको अपनी कथा सुनाता हूँ। मैं कैसा था और कैसा हो गया।

व्यासजीको विश्वास दिलानेके लिये नारदजी अपनाही दृष्टांत देते हैं। अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनाते हैं। कथा श्रवण और सत्संगका फल वताते हैं। कथा सुननेसे संतोकी सेवा करनेसे जीवन सुधरता है। मैं दासीपुत्र था परन्तु मैंने चार मास कन्हैयाकी कथा सुनी। मुझे सत्संग मिला तो मेरा जीवन दिव्य वना। कृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा। मैं दासीपुत्र था। आचार-विचारका कुछ भान न था, परन्तु मैंने कथा सुनी इससे मेरा जीवन पलट गया। यह मेरे सद्गुरुकी कृपा थी। व्यासजी नारदजीसे कहते हैं। अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनाओ। नारदजी कहते हैं कि सुनो-मैं सात आठ सालका था कि मेरे वचपनमें ही मेरे पिताकी मृत्यु हो गयी। मेरी माता दासीका काम करती थी। मैं भिल वालकोके साथ खेलता था मेरे पुण्योंका उदय हुआ। हम जिस गॉवमें रहते थे, वहाँ घूमते फिरते साधु आये। गॉवके लोगोंने उन्हें उस गाँवमें चातुर्मास ठहरनेको कहा, और कहा इस वालकको आपकी सेवामें सौंपते हैं। यह पूजाके फूल लानेमें मदद करेगा। दूसरे काम भी करेगा। विधवाका लडका है प्रसाद भी आपके पास ही ले लेगा। मुझे संतोका केवल दर्शनही नहीं, उनकी सेवाका भी लाभ मिला। जबतक किसी महापुरुषकी प्रत्यक्ष सेवा नहीं करो तबतक मनमेंसे वासना नहीं जाती। अंदरके विकार नहीं जाते। मेरे गुरुदेव सच्चे संत थे। प्रभुभक्तिमें रंगे थे। मुझे सच्चे संतकी सेवा करनेका लाभ मिला। पहलेतो सच्चे संतोके दर्शन मिलते नही और दर्शन हो भी जाय तव भी उनके प्रति सद्भाव नहीं जागता। गुरुदेव अमानी थे इसलिए दूसरोको मान देते थे। उनके संगसे मुझे भक्तिका रंग लगा। गुरुने मेरा नाम हरिदास रखा।

शुकदेवजीने जन्मते ही व्यासजीसे कहा कि आपसे मेरा कोई संवन्ध नहीं है। आप मेरे पिता नहीं हैं। मेरे पिता तो प्रभु परमात्मा हैं। मुझे जाने दो। परन्तु यह मार्ग सरल नहीं हैं। इस मार्गको सामान्य मनुष्य अनुकरण कर सके ऐसा नही है। आसान मार्ग तो यह है कि सबके साथ प्रेम करो। अथवा एक प्रभुके साथ प्रेम करो। आत्मा और परमात्मा एक हैं। गुरुदेव प्रेमकी मूर्ति थे। गुरुजीसे उठनेसे पहले मै उठता था। गुरुजीकी सेवाके समय मैं

फूलतुलसी ले आता। मेरे गुरुजी दिनमें दो बार कीर्तन करते थे। सवेरे ब्रह्मसूत्रकी चर्चा करते थे। परन्तु रातको रोज कृष्ण कथा, कृष्णकीर्तन करते। कन्हैया उनको बहुत प्यारा था। मेरे गुरुदेवके इष्टदेव बालकृष्ण थे। ये ऋषि, बालस्वरूपकी आराधना करते थे। बालक जल्दी प्रसन्न होते है। बालकृष्ण जल्दी प्रेम करते हैं और जल्दी प्रसन्न होते हैं। कन्हैयाका कोई भक्त उसे बुलाता है तो कन्हैया दौडकर जाता है। मैं कीर्तनमें जाता और कथा सुनता। मैं बहुत कम बोलता था बहुत बोलना संतोको अच्छा नहीं लगता। वाणीसे शक्तिका खर्च मत करो। अर्थात् कम बोलो। मौन रखो।

सेवा करनेवाले पर संत कृपा करते हैं। यह तीनो गुण नारदजी कहते हैं कि मुझमे थे। मैं तो कौल और भील बालकोंसे खेलता था। एक दिन मैं कथामें गया। मेरे गुरु कृष्ण कथाका वर्णन करते थे। मैंने कथामें बाल लीला सुनी। छोटे छोटे बालक कन्हैयाको बहुत प्यारे लगते है। कथा सुनकर प्रभुके प्रति मेरा सद्भाव जागा। कृष्णकथा यह प्रेम कथा है। कृष्णकथामें योगियोंको, स्त्रियोको बालकोंको सबको आनंद आता है। श्रीकृष्णकी कथा ही ऐसी दिव्य है कि यह सबको आनन्द देती है। श्रीकृष्ण कथामे ऐसा आनन्द आने लगा कि मेरा खेलना छूट गया।

श्रीकृष्णकथामे गुरुदेव पागल बने हैं। मनुष्य संसारके पीछे पागल बनते हैं। और उस दशासे मुक्त नहीं हो सकते। भगवान्के पीछे जीव पागल बने तो जीव शिव एक होते हैं। संतकी आँखे शुद्ध होती है। पवित्र होती हैं। संत आँखोंसे पाप नहीं करते। संतकी आँखमें श्रीकृष्ण बिराजते हैं। संत तीन प्रकारसे कृपा करते हैं। संत जिसकी ओर बार बार दृष्टिपात् करते हैं, उसका जीवन सुधरता है। माला फेरते जिस शिष्यकी याद आयेगी उसका जीवन सुधरेगा। मेरे गुरु मुझे बार बार निहारते थे। गुरुजी कहते थे यह बच्चा बडा समजदार है। गुरुजीको आनन्द होता है। वे बहुत प्रसन्न थे।

यह जीव जाति हीन है। परन्तु कर्म हीन नही है। संत जिस पर प्रेमकी नजर डालते हैं उसका कल्याण होता है। एक दिन प्रसाद ले लेनेके बाद मैं उनकी झूठी पत्तले उठाता था। मैं दासीपुत्र था। कहे बिना मुझे खानेको कौन देता ? गुरुजीने मुझे इस प्रकार सेवा करते देखा। संतका हृदय पीघला। गुरुजीने पूछा कि हरिदास तुमने भोजन किया है। मैंने ना कही। गुरुदेवको मुझ पर दया आई। यह बालक कितना समझदार है। गुरुदेवने मुझे आज्ञा दी कि पत्तलोंमें मैंने महाप्रसाद रखा है यह तुम खाओ। मैंने वह प्रसाद खाया। शास्त्रकी आज्ञा है कि गुरुजीकी आज्ञाके सिवा उनका उच्छिष्ट नहीं खाना। संत जब कल्याणकी भावनासे प्रसाद देते हैं तो कल्याण होता है। संत हृदय पिघलने पर बुलाकर देते हैं। तब वे प्रसन्न हुये है ऐसा मानना। मैंने प्रसाद ग्रहण किया। मेरे सब पाप नष्ट हुये। मुझे भक्तिका रंग लगा। मुझे कृष्णप्रेमका रंग लगा। उस दिन मैं कीर्तनमें गया। मुझे नया अनुभव हुआ। कीर्तनमें एक निराला आनंद आया मैं आनंदमें थै थै नाचने लगा। अति आनंदमें देहाध्यास छूटता है। कीर्तन भक्ति श्रीकृष्णजीको अतिशय प्रिय है। भक्तिका रंग मुझे उसी दिन लगा, मुझे राधाकृष्णका अनुभव हुआ। शुकदेवजी कहते हैं, नारदजी व्यासजीको अपना आत्मचरित्र सुनाते हैं। मैं कम बोलता था, इसलिये मुझ पर संतोंकी कृपा हुई। मैं सेवामें सावधान रहता था। संत सेवामें सद्भाव रखते हैं। परन्तु गुरुदेवकी मुझ पर खास कृपा हुई। मुझे वासुदेव

गायत्रीका मंत्र दिया। पहले स्कंधमें पाँचवें अध्यायका ३७ वाँ श्लोक यह वासुदेव गायत्रीका मंत्र है। इस वासुदेव गायत्रीका हमेशा जप करो।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥

चार मास इसी प्रकार गुरुदेवकी सेवा की। गुरुजीका वह गाँव छोडकर चले जानेका दिन आया। गुरुजी अब चले जायेंगे यह सोचकर मुझे दुःख हुआ। मैंने गुरुजीसे कहा– गुरुजी आप मुझे साथ ले चलिये। मुझे मत छोडो। मैं आपके शरणमें आया हूँ। मैं आपके चौके पर सोया करूँगा। मैं आपका नीचसे नीच काम भी करूँगा। मुझे सेवामें साथ ले चलो। मेरी उपेक्षा न करो। गुरुदेवने विधाताका लेख पढकर मुझे कहा कि तू तेरी माताका ऋणानुबंधी पुत्र है। इस जन्मसे तुमने उसका ऋण चुकाना चाहिये इसलिये माताका त्याग नहीं करना। तू यदि माताको छोडकर आयेगा तो तुझे दूसरा जन्म लेना पडेगा। तुम्हारी माताकी आहें हमारे भजनमें विक्षेप करेंगी। तुम घरमें रहो। घरमें रहकर भी प्रभुका भजन हो सकता है। नारदजी कहते हैं, आपने तो कथामें कहा था कि प्रभुभजनमें जो विघ्न करे उसका त्याग कर दो। प्रभुके भजनमें जो साथ दे उसका ही संग करो। ईश्वरके मार्गमें ले जाय वही सच्चा स्नेही है। मेरी माता जो मेरे भजनमें विक्षेप करनेवाली हो तो क्या मुझे मेरी माताका त्याग नहीं करना चाहिये? संसारी माँ-बापकी यही इच्छा रहती है कि मेरा पुत्र विवाह करके वंशकी वृद्धि करे। उनको यह इच्छा तो होती ही नहीं कि हमारा पुत्र परमात्मामें तन्मय हो। मेरी माता मेरे भजनमें विक्षेप करनेवाली है। आपने कथामें एक दिन कहा था कि अपने स्नेही भी जो कथामें विक्षेप करनेवाले हो तो ऐसे स्नेहियोंका भी त्याग कर दो। मीरांबाईको लोगोंने बहुत त्रास दिया तब मीरांबाईने घबडाकर संत तुलसीदासको पत्र लिखा कि मैं तीन साल की थी तबसे मैंने गिरधर गोपालके साथ शादी की है। ये मेरे संबंधी मुझे कष्ट देते हैं। मुझे अब क्या करना चाहिये? तुलसीदासने चित्रकूटसे ही पत्र लिखा कि कसौटी सोनेकी होती है पीतलकी नहीं। तुम्हारी यह कसौटी होती है। "जाके प्रिय न रामवैदेही, सो छांडिये कोटि वैरी सम जदपि हो परम स्नेही"। जिसे सीताराम प्यारे न लगे, जिसे राधाकृष्ण प्यारे न लगे ऐसा जो सगा भाई हो तब भी उसका संग छोड देना चाहिये। दुःसंग सर्वथा त्यागने योग्य है। "दुःसंग सर्वथा त्याज्यः"।

मीरांबाईने यह पत्र पढकर मेवाडका त्याग कर दिया और वृन्दावन आ गयीं। भक्ति बढानी हो तो मीरांबाईका चरित्र बार बार पढो। संसारी मातापिता भी पुत्रको संसारका ही ज्ञान देते हैं। माताके संगमें रहूँगा तो भजनमें विक्षेप होगा। गुरुजीने कहा तू माँका त्याग करे यह मुझे अच्छा नही लगता। ठाकुरजी सब जानते हैं। तुम्हारी माता तुम्हारे भजनमें विघ्न करेगी तो ठाकुरजी कोई लीला करेंगे। संभव है ये तुम्हारी माताको उठा लेंगे। अथवा तेरी माताकी बुद्धिको भगवान् सुधार देंगे। घरमें रहना और इस महामंत्रका जप करना। मां का अनादर नहीं करना। जप करनेसे प्रारब्ध बदलता है। जप की धारा टूटे नहीं इसका ध्यान रखना। मैंने गुरुजीसे कहा आप जप करनेको कहते हैं मगर मैं तो अनपढ दासीपुत्र हूँ। मैं जप कैसे करूँगा? जपकी गिनती कैसे करूँगा। गुरुदेवजीने कहा, जप करनेका काम तुम करो और जप गिननेका काम श्रीकृष्ण करेंगे। जप तुम करना, गिनेगा कन्हैया। जो प्रेमसे भगवान्‌का

स्मरण करते हैं उनके पीछे पीछे भगवान् फिरता है। मेरे प्रभुको और कोई काम नहीं है। जगत्की उत्पत्ति और संहारका सारा काम मायाको सौंप दिया है। परमात्माके नामका जो जाप करता है परमात्मा उसके पीछे पीछे फिरते हैं। जपकी गिनती तो नहीं करनी है। जप गिनोगे तो किसीको कहनेकी इच्छा होगी। किसीको जपकी संख्या कहोगे तो थोडा पुण्य चला जायेगा। पुण्यका क्षय होगा। गुरुजीने मुझे वासुदेव गायत्रीमंत्रका बत्तीस लाख जप करनेको कहा। बत्तीस लाख जप होगा तो विधाताका लेख भी मिटेगा। पापका नाश होगा। बेटा, इस मंत्रका सदा जप करना। मंत्रका जाप करनेसे ईश्वरके साथ जीवका संबंध होता है। रुद्रसे संबंध पहले होता है इसके बिना ब्रह्मके साथ संबंध नहीं होता है। फिर ब्रह्म साक्षात्कार होता है। रोज यही भावना रखना कि श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं। श्रीकृष्ण प्रेमका स्वरूप है। तेरा कल्याण करेंगे। बेटा, तू बालकृष्णका ध्यान करना। श्रीकृष्णका बालस्वरूप अति मनोहर है। बालकको थोडा दो तो भी वह राजी होता है। इसलिये गुरुदेवने बाल उपासना की। बाल-स्वरूपका ध्यान करनेकी आज्ञा दी। भावनासे बालस्वरूपका ध्यान करो। मेरे गुरुजी मुझे छोडकर चले गये। मुझे अति दुःख हुआ। पूर्वजन्मके गुरुका नाम लेते ही नारदजी रोने लगे।

सच्चे सद्गुरुको कोई स्वार्थ नहीं होता है। मैंने निश्चय किया और जप शुरू कर दिया। मैं सतत जप करता। जप किये बिना मुझे चैन नहीं आता। घूमते फिरते और स्वप्नमें भी जप करता था। शैया पर सोनेसे पहले हमेशा जप करो। जपकी धारा न टूटे। एक वर्ष तक वाणीसे जप करना। तीन वर्ष कंठसे जप करना। तीन वर्षके बाद मनसे जप होता है। इसके बाद अजपा जाप होता है। जो इसके बाद होता है।

मां को यह रुचता न था। फिर भी मैंने बारह वर्ष तक सोलह अक्षरी महामंत्रका जप किया। मनुष्य जप करते हुये भी छलकपट बहुत करते हैं। इसीसे उनके पुण्योंका नाश होता है। मां की बुद्धि भगवान् बदल देंगे यह सोचकर मांको मैंने कभी कुछ न कहा। मैंने मेरी माताका कभी भी अनादर नहीं किया। उसके बाद माता एक दिन गौशालामें गई। वहाँ उसको सर्पने काट लिया। सूतजी सावधान करते हैं। सर्प अपराधीको काटता है। माताने शरीरका त्याग किया। प्रभुने कृपा की। 'अनुग्रहं मन्यमानः'। मैंने माना कि मेरे भगवान्का मुझ पर अनुग्रह हुआ है। माताजीके देहका अग्नि संस्कार किया। मुझे आनन्द हुआ। मैं मातृ-ऋणसे मुक्त हुआ। घरमें जो कुछ रखा था मैंने माताके काममें ले लिया। मुझे प्रभुमें श्रद्धा थी अतः मैंने कुछ संग्रह नहीं किया। जन्मसे पहले मेरे लिये माताके स्तनमें दूध पैदा करनेवाला दयालु भगवान् मेरे पोषणकी व्यवस्था करेगा। वह क्यों नहीं करेगा? परमात्मा विश्वंभर हैं। मैं अपने भगवान्का हूँ तो क्या भगवान् मेरा पोषण नहीं करेंगे? मैंने कुछ नही लिया। पहने हुये कपडोंके साथ मैंने गृहत्याग किया। जिसका जीवन केवल ईश्वरके लिये है, वह कभी भी संग्रह नहीं करेगा। भगवान् नास्तिकका भी पोषण करता है। नास्तिक कहता है मैं ईश्वरमें नहीं मानता, परन्तु मेरा परमात्मा कहता है बेटा, तू मुझे नहीं मानता मगर मैं तुझे मानता हूँ उसका क्या होगा? जीव भले अज्ञानमें जो चाहे सो बोले मगर ठाकुरजी कहते है तू भगवान्का अंश है। जो ईश्वरका नियम पालता नहीं, धर्मको जो मानता नहीं ऐसे नास्तिकका भी परमात्मा पोषण करते हैं। मेरा क्या कन्हैया पोषण नहीं करेगा?

मैंने कभी भीख मांगी नहीं, मगर मेरे प्रभुकी कृपासे मैं कभी भूखा न रहा। मैंने किसी चीजका संग्रह नहीं किया, परन्तु मेरे भगवानने किसी दिन मुझे भूखा नहीं रखा। भगवत् स्मरण करता मैं फिरता था। बारह वर्षतक मैंने अनेक तीर्थोंका भ्रमण किया। इसके बाद मैं घूमता फिरता गङ्गा नदीके तट पर पहुँचा। गंगास्नान किया, इसके बाद एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर मैं जप करता था। जप ध्यानमें करता था। गुरुदेवने आज्ञा की थी कि खूब जप करना। मैंने जाप नहीं छोडा। गुरुने कहा था प्रभु दर्शन दे तो भी जप छोडना नहीं। गंगा किनारे बारह वर्ष रहा।

चौबीस सालसे भावना करता था कि कन्हैया मेरे साथ है। मेरे पूर्वजन्मके पाप बहुत होंगे इसलिये मुझे प्रभुके दर्शन नहीं हो रहे हैं। परन्तु श्रद्धा संपूर्ण थी इस कारण एक दिन प्रभु मुझे दर्शन अवश्य देंगे। भावनामें भावसे मुझे श्रीकृष्ण दीखते थे। मगर मुझे बालकृष्णके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहे थे। अपने श्रीकृष्णका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन करना था। मुझे लगा कि श्रीकृष्ण मुझे कब अपनायेंगे? कब मुझे मिलेंगे? मुझे श्रीकृष्ण दर्शनकी तीव्र इच्छा जागी। क्या ही अच्छा हो कि मुझे श्रीकृष्णकी झांकी हो।

मेरे लल्लाने कृपा की। एक दिन ध्यानमें मुझे सुंदर नीला प्रकाश दीखा। प्रकाशको देख मैं जप करता था। वहाँ प्रकाशमेंसे बालकृष्णका स्वरूप प्रगट हुआ। मुझे बालकृष्णलालके मनोहर स्वरूपकी झांकी हुई। मेरे कृष्णने कस्तूरीका तिलक लगाया था। वक्षस्थलमें कौस्तुभमणिकी माला धारण की थी। नाकमें मोती था। आँखें प्रेमसे भरी थीं। मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करनेकी शक्ति सरस्वतीमें भी नहीं है। मुझे हुआ कि मैं दौडता जाऊँ और श्रीकृष्णके चरणोंमें वन्दन करूँ। मैं जैसे ही वन्दन करने गया तो कृष्ण अंतरध्यान हो गये। मुझे लगा मेरा श्रीकृष्ण मुझे क्यों छोडकर चला गया? वहाँ मुझे आकाशवाणीसे आज्ञा मिली, तेरे मनमें सूक्ष्म वासना रही है। जिसके मनमें सूक्ष्म वासना रह गई हो ऐसे योगीको मैं दर्शन नहीं देता। इस जन्ममें अब मेरा दर्शन तुझे नहीं होगा। यों तो तेरी भक्तिसे प्रसन्न हुआ हूँ, तेरे प्रेमको, भक्तिको पुष्ट करनेके लिये तुम्हें दर्शन दिया है। परन्तु तुझको अभी एक जन्म और लेना पडेगा। अभी तेरे बहुतसे जप बाकी हैं। अगले जन्ममें तुझे मेरा दर्शन होगा। दृष्टि और मनको सुधार। सतत विचार कर कि मैं तेरे साथ हूँ। जीवनके अंतिम श्वास तक जप करना। भजन विनाका भोजन पाप है। सत्कर्मकी समाप्ति नहीं हुआ करती। जिस दिन जीवनकी समाप्ति उसी दिन सत्कर्मकी समाप्ति। इसके बाद मैं गंगाकिनारे रहा। मरनेसे पहले मुझे अनुभव होने लगा कि इस शरीरमें मैं जुदा हूँ। जड-चेतनकी ग्रंथि छूट गयी। जड और चेतनकी, शरीर और आत्माकी जो गांठ लगी है यह गांठ भक्तिके सिवा नहीं छूटती। शरीरसे आत्मा जुदा है यह सब जानते हैं पर उसका अनुभव कौन करता है?

ज्ञानका अनुभव भक्तिसे होता है। संत तुकाराम महाराज कहते हैं कि मैंने अपनी आँखोंसे मेरा मरण देखा है। अपने आत्म-स्वरूपको निहारा है। मन ईश्वरमें लगा हो और ईश्वर-स्मरण करते करते शरीर छूट जाय तो मुक्ति मिलती है। मनको ईश्वरका स्मरण करानेके लिये जप बगैर कोई साधन नहीं है। जब जीभसे जप करो तभी मनसे स्मरण करना ही चाहिये। सारा जीवन जिसके पीछे गया होगा वही अन्तकालमें याद आयेगा। अंतकाल तक मेरा जप चालू ही बना रहा। जपकी पूर्णाहुति नहीं होती। भजनकी समाप्ति नहीं होती है।

शरीरकी समाप्तिके साथ ही भजनकी समाप्ति। जीवनके अंत तक भजन करना। अंतकालमें राधाकृष्णका चिंतन करते मैंने शरीरका त्याग किया। मेरी मृत्यु मैंने प्रत्यक्ष देखी। मुझे मृत्युका कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद मैं ब्रह्माजीके यहाँ जन्मा। पूर्वजन्मके कर्मोंका फल मुझे इस जन्ममें मिला। मेरा नाम नारद रखा गया। पूर्वजन्ममें किये गये भजनसे मेरा मन स्थिर हुआ है। मेरा मन संसारकी ओर जाता ही नहीं। अब मेरा मन चंचल नहीं होता है। अब तो मैं सतत परमात्माका दर्शन करता हूँ।

एक दिन मैं गोलोक धाममें गया, जहाँ सतत रास-लीला होती है। वहाँ श्रीराधाकृष्णका मुझे दर्शन हुआ। मैं कीर्तनमें तन्मय हुआ। श्रीकृष्णकीर्तनमें मुझे अति आनन्द हुआ। प्रसन्न होकर राधाजीने मेरे लिये प्रभुसे सिफारिश की कि नारदजीको प्रसाद दें। श्रीकृष्णजीने मुझे प्रसाद दिया। व्यासजीने पूछा, प्रसादमें प्रभुने तुम्हें क्या दिया? नारदजीने कहा कि प्रसादीमें प्रभुने मुझे यह तम्बूरा दिया। प्रभुने मुझे कहा- कृष्णकीर्तन करते करते जगत्में भ्रमण करो, और मुझसे जुदा हुये अधिकारी जीवोंको हमारे पास लाओ। संसार-प्रवाहमें बहते हुये जीवोंको हमारी ओर लाओ।

भगवान्को कीर्तनभक्ति अतिप्रिय है। यह वीणा लिये मैं जगत्में भ्रमण करता हूँ। नादके साथ कीर्तन करता हूँ। अधिकारी जीवोंको या कोई योग्य चेला मिले उसे प्रभुके धाममें ले जाता हूँ। मुझे रास्तेमें ध्रुव मिला उसको प्रभुके पास ले गया। मुझे प्रह्लादजी मिले तो उनको प्रभुके पास ले गया। ऐसे भक्त मिले उन्हें मैं प्रभुके पास ले गया। जो कोई भक्त मिलते हैं उनको प्रभुके पास ले जाता हूँ।

सत्संगमें मैंने भगवत् कथा सुनी। श्रीकृष्णकथा सुनी फिर मैंने कृष्णकीर्तन किया, और प्रेमलताको पुष्ट किया। अब तो जब मैं इच्छा करूँ तभी कन्हैया मुझे झांकी देता है। मेरे साथ कन्हैया नाचता है। संत नामदेव महाराज जब कीर्तन करते थे उस समय श्री विठ्ठलनाथजी नाचते थे। मैं अपने ठाकुरजीका काम करता हूँ इसलिये उनको अतिप्रिय लगता हूँ। कीर्तनमें संसारका भान भूले तो आनन्द आये। कीर्तनमें तन्मय हुआ मनुष्य संसारको भूलता है। कीर्तनसे संसार सम्बन्ध छूटता है? और प्रभुके साथ सम्बन्ध बंधता है। संसारका ध्यान छोडनेका प्रयत्न करो। कीर्तनमें आनंद कब आता है? जब जीभसे प्रभुका कीर्तन, मनसे उसका चिंतन करेंगे और दृष्टिसे उसके स्वरूपको देखेंगे तभी आनन्द आयेगा। कलियुगमें नामकीर्तन करनेसे पाप जलते हैं। हृदय शुद्ध होता है। परमात्मा हृदयमें समाता है। परमात्माकी प्राप्ति होती है। अतः कथामें कीर्तन होना ही चाहिये। कीर्तन विना कथा परिपूर्ण नहीं होती। कलियुगमें स्वरूपसेवा जल्दी नहीं फलती। स्मरण-सेवा अर्थात् नामसेवा तुरंत फलती है। हे व्यासजी, इस सबका मूल सत्संग है। सत्संगकी यह बडी महिमा है। जो सत्संग करता है वही संत बनता है।

श्रीकृष्णकथासे मेरा जीवन सुधरा है। कृष्णकथा सुनकर मुझे सच्चा जीवन मिला है। कथा सुनकर वैराग्य करो और स्वभावको सुधारो। संयम बढाकर ज्यादा भजन करोगे तो सफलता जरूर मिलेगी। नारदजी व्यासजीसे कहते हैं, आप मुझे जो मान देते हैं यह सत्संगका मान है। सत्संगसे ही मैं मानके योग्य हुआ हूँ। भील बालकोंके साथ आवारा घूमनेवाला मैं सत्संगसे ही देवर्षि बना हूँ।

नारदजी दासीपुत्र थे। सच्चे साधुसंतकी सेवासे उनका जीवन सुधरा। संत स्वयं तीर्थ रूप हैं। संत जंगम तीर्थ हैं। पारसमणि लोहेको सोना बनाता है फिर भी लोहेको अपने जैसा नहीं बनाता है। परंतु संत अपने संसर्गमें आये हुओंको अपने जैसा बनाते हैं। "संत करे आपु समाना"। मनुष्य, देव होनेके लिये बनाया गया है। मनुष्यको देव होनेके लिये चार गुणोंकी आवश्यकता है। (१) संयम (२) सदाचार (३) स्नेह और (४) सेवा। ये चार गुण सत्सग बिना नहीं आते हैं। सत्संगका फल भागवत्में बताया गया है।

सत्संगसे नारदजी दासीपुत्रसे देवर्षि हुये हैं। मनुष्य मायाका दास बना है। सत्संगसे वह इससे छुटकारा पा सकता है। सच्ची भक्तिका रंग लगता है। फिर इसे प्रभु विना चैन नहीं मिलता। नारदजीका चरित्र यह भागवत्का बीजारोपण है। सत्संग और सेवाका फल बतानेका इस चरित्रका उद्देश्य है। अतः विस्तार किया है। हमने यह देख लिया कि जप बिना जीवन सुधरता नहीं। दानसे धनकी शुद्धि होती है। ध्यानसे मनकी शुद्धि होती है और शरीरकी शुद्धि स्नानसे होती है। परोपकारसे भी मनकी–मलिनता पूर्णतः नहीं धुलती है, इसलिये ध्यान और जपकी आवश्यकता है।

जप करनेवालेकी स्थिति कैसी होनी चाहिये? श्रीब्रह्मचैतन्य स्वामीने कहा है कि "सहज सुमिरन होत है, रोम रोमसे राम।" जपकी प्रशंसा करते गीतामें भगवान्ने कहा है कि "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" गी अ. १९ श्लोक २५। रामदास स्वामीने दासबोधमें लिखा है कि जप करनेसे जन्मकुंडलीके ग्रह भी सुधरते हैं। एक करोड जप करनेसे तन सुधरता है अर्थात् आरोग्य प्राप्त होता है। दो करोड जप करनेसे द्रव्य सुख मिलता है अर्थात् धनकी प्राप्ति होती है। तीन करोड जप करनेसे पराक्रम सिद्ध होता है, यशकीर्ति मिलती है। चार करोड जप करनेसे सुखकी प्राप्ति होती है। पाँच करोड जप करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। छ करोड जप करनेसे अन्दरके शत्रुओंका विनाश होता है। सात करोड जप करनेसे स्त्रीको सौभाग्य सुख मिलता है। स्त्रीको पति सुख, और पुरुषको पत्नी सुख मिलता है। आठ करोड जप करनेसे मरण सुधरता है। अपमृत्यु टलती है। मृत्युस्थान सुधरता है। नव करोड जप करनेसे इष्टदेवकी झांकी होती है। अपरोक्षानुभूति होती है। जिस देवका जप करते हैं। उस देवके सगुण स्वरूपका साक्षात्कार होता है। दश, ग्यारह, बारह करोड जप करनेसे संचित प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म जल जाते हैं। इन कर्मोंका नाश होता है। तेरह करोड जप करनेसे भगवान्का साक्षात् दर्शन होता है।

नारदजी व्यासजीसे कहते हैं कि अब आप ऐसी कथा करो कि जिससे सुननेवालोंका पाप जले। उनका हृदय पिघले। आपने अब तक ज्ञान–प्रधान कथा बहुत की है परंतु अब प्रेम प्रधान कथा करें–आप ऐसी कथा करें कि जिससे सबके हृदयमें कृष्णप्रेम प्रगट हो। कथाका तात्पर्य नारदजीने बताया है– कथा सुननेसे प्रभु प्रति प्रेम जागे और संसारके विषयोंके प्रति विराग जागे तो कथा सुनी कहलाये। नारदजीने व्यासजीको ऐसी आज्ञा दी है दि कृष्णप्रेममें लीन होकर कथा करेंगे तो आपका और सबका कल्याण होगा। व्यासजीने कहा कि आप मुझे ऐसी कथा सुनायें। नारदजी कहते हैं आप ज्ञानी हैं, आप अपना स्वरूप भूले तो नहीं हैं न? आप समाधिमें बैठिये और समाधिमें जो दीखे वही लिखिये। बहिर्मुख इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करनेसे समाधि ईश्वरके समीप पहुँचाती है। ईश्वरके साथ एक होना ही समाधि है। ईश्वरमें लीन होना यही समाधि है। नारदजी जब तक न मिलें, नारायणका दर्शन होता नहीं है। संसारमें

आनेके बाद यह जीव अपने स्वरूपको भूलता है कोई संत कृपा करें तब जीवको अपने स्वरूपका भान कराते हैं। व्यास नारायणको भी नारदकी जरूरत पडी थी। इसके बाद नारदजी ब्रह्मलोकमें सिधार गये। व्यासजीने प्राणायामसे दृष्टि अंतर्मुख की। वहां हृदयगुफामे बालकृष्णके दर्शन हुये। व्यासजीको सब लीलाओंका दर्शन हुआ है। व्यासजीको नारदजीने स्वरूपका भान कराया। इसके परिणामस्वरूप व्यासजीने श्रीमद्भागवत्की रचना की। भागवत्में तत्त्वज्ञान भी बहुत है, परन्तु इसका प्रधान विषय तो प्रेम है। दूसरे पुराणोंमें ज्ञान, कर्म, आचार, धर्म आदि प्रधान हैं, परन्तु भागवत् पुराणमे प्रेम प्रधान है, भक्ति प्रधान है। वालिमकी रामायण आचारधर्म-प्रधान ग्रंथ है, जबकि तुलसी रामायण भक्तिप्रधान ग्रन्थ है। वालिमकीजीको अपने जन्ममें कथा करनेसे तृप्ति न हुई। भगवान्की मंगलमय लीलाकथाका भक्तिसे प्रेमपूर्वक वर्णन करना बाकी रह गया, इसलिये उन्होंने कलियुगमें तुलसीदासके रूपमें जन्म लिया।

कलि, कुटिल जीव, निस्तार हित वालिमकी तुलसी भयो। वेदस्वीकृत भागवत्का यह फल है। यह तो सबको विदित है कि वृक्षकी खाल तथा पत्तोंमें जो रस होता है उससे वृक्षके फलमें विशेष रस होता है। रसपूर्ण इस श्रीमद् भागवतरूप फलका मोक्ष मिलने तक आप बारबार पान कीजिये। पिबत भागवतरसमालयं। भ १ १.३.। जबतक जीव और ईश्वरका मिलन न हो जाय तब तक इस प्रेमरसका पान करो। ईश्वरमें जबतक तुम्हारा लय न हो जाय, तबतक इस प्रेमरसका पान करो। भागवकात आस्वादन किया करो। भागवत रसका पान करो। वेदान्त अधिकारीके लिये है। सबके लिये सरल नहीं है। वेदान्त त्यागकी आज्ञा करता है। वेदान्त कहता है सर्वका त्याग करके भगवान्के पीछे पडो। जबकि संसारियोंसे कुछ छूटता नहीं। ऐसोंके उद्धारके लिये कौनसा उपाय? हां, है उपाय। त्याग न कर सको तो कोई हरकत नहीं, परंतु अपना सर्वस्व ईश्वरको समर्पण करो, और अनासक्त रहकर ही उसे भोगो। व्यासजीने ब्रह्मसूत्र बनाया, योगदर्शन पर भाष्य रचा, परन्तु उनको लगा कि कलियुगके मानवी भोगपरायण होंगे और उसीकारण उनसे इस योगमें प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी, उनके लिये करुणा करके यह भागवतशास्त्र रचा। परीक्षितको निमित्त बनाकर संसारमें फँसे लोगोंके लिये व्यासजीने यह भागवत्की कथा की है। भागवत खास कर संसारियोंके लिये है।

इस भागवत् पुराणका संसारियों पर करुणाके कारण शुकदेवजीने वर्णन किया है प्रभुप्रेमके सिवा शुष्क ज्ञानकी शोभा नहीं। यह बतानेका भागवत्का उद्देश है। भक्तिके सिवा ज्ञानकी शोभा नहीं है। जब ज्ञान वैराग्यसे दृढ किया हुआ नहीं होता, तो ऐसा ज्ञान मरण सुधारनेके बदले संभव है कि मरण बिगाडे। संभव है कि ऐसा ज्ञान अंतकालमें धोखा दे। मरणको भक्ति सुधारती है। भक्ति बिना ज्ञान शुष्क है। वह मरण बिगाडता है। विधि निषेधकी मर्यादा त्याग चुके, बडे बडे ऋषि भी भगवान्के अनंत कल्याणमय गुणोंके वर्णनमे सदा रत रहते हैं। ऐसी है भक्तिकी महिमा।

नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः। भा २.१.७। ज्ञानीको अभिमान सताता है भक्तको नहीं। भक्ति अनेक सद्गुणोंको लाती है, भक्ति सर्वगुणोंकी जननी है। भक्त नम्र होता है, भक्त विनीत बनता है। भागवत कथा-जो कथा पाप दूर करे और प्रभुके प्रति प्रेम जाग्रत करे वही सच्ची भागवत कथा। भगवान्की कथा और भगवान्के स्मरणसे हृदयको आर्द्र बनाओ उसके मंगलमय नामका जप करो। यही कलियुगमें मुक्ति पानेका मार्ग है। विषयोंका बन्धन

मनुष्य छोडे, तभी मनको सच्चा आनंद सुख मिलता है। संयम और सदाचारको धीमे धीमे बढाते जाओ तो भक्तिमें आनन्द आयेगा। वैराग्यके बिना भक्ति सफल नहीं होती। आचार विचार शुद्ध होगा तो भक्तिको पुष्टि मिलेगी। जीवन विलासमय हुआ तो मान लो कि भक्तिका विनाश हुआ है। भागवत शास्त्र मनुष्यको कालके मुखसे छुडाता है। यह मनुष्यको सावधान करती है। कालके मुखसे छूटना हो तो कालके भी काल श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ। जो सर्वस्व भगवान् पर छोडते हैं उनकी चिंता भगवान् स्वयं करते हैं। महाभारतके युद्धमें दुर्योधनके ताना देने पर भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा की थी कि- कल मैं अर्जुनको मारूँगा, या मैं मरूँगा। इस प्रतिज्ञासे सब घबराये, कारण कि यह भीष्मपितामहकी प्रतिज्ञा थी। यह सुनकर कृष्ण भगवान्को चैन नहीं आया। रातको निद्रा नहीं आयी। भीष्मकी प्रतिज्ञा सुनकर अर्जुनकी क्या दशा हुई होगी, यह सोचकर भगवान् अर्जुनकी स्थिति देखने आये। जाकर क्या देखते हैं कि अर्जुन तो शांतिसे गहरी नींद सो रहा है। भगवान्ने सोचा कि भीष्मने ऐसी प्रतिज्ञा की है, भीषण प्रतिज्ञा की है, तो भी यह तो शांतिसे सो रहा है। उन्होंने अर्जुनको जगाया और पूछा- तुमने भी भीष्मकी प्रतिज्ञा सुनी है न? अर्जुनने कहा- हां, सुनी है। श्रीकृष्णने कहा- तो तुम्हें मृत्युका भय नहीं है, चिंता नहीं है? अर्जुनने कहा- मेरी चिंता करनेवाला मेरा स्वामी है। वह जागता है इसलिये मैं शयन करता हूँ। वह मेरी चिंता करेगा मैं किसलिये चिंता करूँ। इस तरह सब ईश्वर पर छोडो। मनुष्यकी चिंता जब तक ईश्वरको न हो जाय, तब तक वह निश्चिंत नहीं होता।

प्रथम स्कंध यह अधिकार लीला है। अधिकार बिना संत मिले तो उसकी ओर सद्भाव नहीं जागता। संतोंको खोजनेकी जरूरत नहीं है। खोजनेसे संत नहीं मिलते हैं। केवल प्रभुकृपासे ही संत मिलते हैं। आखिर जबतक मन शुद्ध नहीं होगा तबतक प्रभुकी कृपा नहीं होगी। तबतक मन दुर्जन रहेगा जबतक संत मिलते नहीं। संत बनोगे तो संत मिल जायेंगे। संत देखनेकी दृष्टि देते हैं कि संसारके पदार्थोंको देखनेमें आनन्द है, उनके उपभोगमें आनंद नहीं है। संसार यह ईश्वरका स्वरूप है। इस कारण जगत्को ईश्वरमय देखो।

शुकदेवजी और अप्सराओंका प्रसंग पहले कह चुके हैं। महाप्रभुजीने वैष्णवके लक्षण बताये हैं कि जिसके दर्शनसे कन्हैया याद आये वह वैष्णव, जिसके संगमें आने पर प्रभु याद आयें वह वैष्णव। अप्सराओंको शुकदेवजीके दर्शनसे वैराग्यकी उत्पत्ति हुई, कृष्णकथाके पीछे वह पागल बनी है। जगत्में संतोंका अभाव नहीं है परन्तु सद्शिष्योंका अभाव है। जिसका अधिकार सिद्ध हुआ है, उसे संत पुरुष मिल जाते हैं। मनुष्य संत बनता है तभी उसे संत मिलते हैं। संत बननेसे पहले संत मिले तो उसमें सद्भाव नहीं बनता है। जिसकी आंखमें ईश्वर है वह सर्वमें ईश्वरका अनुभव करता है। इस जगत्में निर्दोष एक परमात्मा ही हैं। ईश्वरके सिवा कोई निर्दोष नहीं है। संतोंमें कोई एकआध दोष होगा, कारण पूर्ण सत्वगुण प्रगट होनेपर तो यह जीव इस शरीरमें नहीं रह सकता है। ईश्वरसे यह अलग नहीं रह सकता। यह ब्रह्माजीकी सृष्टि गुणदोषसे भरी हुई है। जगत्में सब प्रकारसे कोई सुखी हो ही नहीं सका है। यदि सर्व प्रकारसे कोई सुखी हो जाय तो सुखका भान भी भूल बैठेगा। जगी सर्व सुखी असा कोण आहे विचारी मना तुज शोधोनी पाहे।

संसारके प्रत्येक पदार्थमें दोष हैं, और गुण भी हैं। दृष्टिको ऐसी गुणमयी बनाओ कि किसीका दोष देख न सको। जबतक तुम्हारी दृष्टि गुणदोषोंसे भरी हुई है तबतक संतमें भी आपको

दोष दीखेंगे। इसलिये " दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत् "। जिसकी दृष्टि गुणमयी है, वही संत है। अभिमान आये तो पतन होता है। सतत दीनता आये उसकी आवश्यकता है। संभव है, कि ईश्वर भी संतमें एकाध दोष इरादापूर्वक रखता हो। संभव है कि ईश्वर भी अपने भक्तोंमें एकाध दोष रहने देता हो कि जिससे मेरे भक्तोंको नजर न लगे। माता बालकका शृंगार करके दूसरोंकी नजर न लगे इसलिये गाल पर काले काजलका टीका जैसा लगा देती हैं। मनुष्यमें जब कोई दोष नहीं रहता तो उसके मनमें अभिमान आता है (कि मेरे दोष दूर हो गये)। अपनी दृष्टिको गुणमय बनाओ। किसीके दोषोंको मत देखो। किसीके पापका विचार न करो, या वाणीसे उन पापोंका उच्चार करना नहीं। संत होना, क्या घर छोडना है? घर छोडनेकी जरूरत नहीं है। घर छोडनेसे ही कोई संत बनता है ऐसा नहीं है। घरमें रहकर संत बन सकते हो। घरमें रहकर भी ईश्वरको प्राप्त किया जा सकता है। संत तुकाराम महाराज, संत एकनाथ, गोपियां आदिने घरमें रहकर ही प्रभुको प्राप्त किया है। गेरुए कपडे पहन लेनेसे कोई संत नहीं हो जाता है। कपडे बदलनेकी जरूरत नहीं है। कलेजा बदलनेकी जरूरत है। उसके लिये मनको बदलनेकी जरूरत है।

मनके गुलाम मत बनो, मनको गुलाम बनाओ। परीक्षित राजाने मनको सुधार लिया। अतः उसको शुकदेवजी मिल गये। सब छोडनेकी जरूरत नहीं है। सब छोडनेसे निवृत्तिके समय इन्द्रियां बहुत त्रास देती हैं। संसारमें जो लक्ष्यको याद रखता है वही संत है। मनुष्य-जीवनका लक्ष्य है परमात्मासे मिलन। जो इस लक्ष्यके लिये प्रतिक्षण सावधान है वह संत है। आत्मा यह मनका साक्षी है, द्रष्टा है। जिसने अपना मन सुधारा है वह संत है। मनको सुधारोगे तो तुम भी संत बनोगे। मनको सुधारनेकी जरूरत है। जगत् नहीं बिगडा है, अपना मन बिगडा है। मन पर विश्वास मत करो। मन पर अंकुश रखो जिस दिन मन शुद्ध है चरित्र शुद्ध है ऐसा साक्षी तुम्हारी आत्मा दे तो मानो कि तुम संत हो। मनको सुधारनेके अनेक उपाय हैं जो शास्त्रोंने बताये हैं। मनको मृत्युका भय दिखाओ तो मन सुधरेगा। मृत्युके स्मरणसे मन सुधरता है। मृत्युको भूलने पर मन बिगडता है। परीक्षित राजाने जब सुना कि सातवें दिन मरनेवाला हूँ, सुनते ही तुरंत उसके विलासी जीवनका अंत आ गया। अब विलासी जीवन विरक्त जीवन हुआ है। परीक्षितको मृत्युका भय लगा, तो उसका जीवन सुधरा। मृत्युका दुःख भयंकर है। जीव शरीर छोडता है उस समय हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारते हों ऐसी वेदना होती है।

जन्म दुःखं जरा दुःखं जाया दुःखं पुनः पुनः।
अन्तकालं महादुःखं तस्मात् जागृहि जागृहि ॥

जन्म दुःख है, वृद्धावस्था दुःखमय है, और स्त्री (स्त्री पुत्रादि कुटुंबजन) दुःखरूप है, और अंतकाल भी बडा दुःखद है। इसलिये " जागो "–" जागो "। इस अंतकालको रोज याद करो। नित्य विचार करो कि यदि आज यमदूत मुझे पकडने आये तो मैं कहां जाऊंगा, " नरकमें, स्वर्गमें या वैकुंठमें "। मृत्युका निवारण शक्य नहीं है तो फिर पाप किसलिये करते हो? कई एक तो बहुत समझदार बनते हैं। दो सेर सागसब्जी लेनी हो, तो सारा बाजार घूमते हैं। माथा धुनते हैं, कि करेला लूं या तोरई? जिसके विचार करनेकी जरूरत थी उसका तो विचार नहीं किया और सागसब्जीका विचार कर रहा है। मृत्युको रोज याद करो,

मृत्युका भय रहेगा तो तुम्हारा पाप दूर होगा और जिस दिन तुम्हारा पाप दूर हो जायगा तब मान लेना कि तुम संत हो गये।

पाप-पुण्यके अनेक साक्षी हैं। सूर्य, चंद्र, धरती, वायुदेव सब साक्षी हैं। मेरे भगवान्के अनेक सेवक हैं। वे जहाँ तुम जाओगे, साथ आते हैं। मनुष्य यह मानता है कि जो मैं पाप करता हूँ उसे कोई देखता नहीं है। अरे भाई, एकान्त कैसा भी हो, वहाँ वायु है और वहाँ भी तेरे अन्दर परमात्मा विराजमान हैं। "यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्।" आखिर तो मनुष्य इस लोकमें मरणकी शरण ही जाता है फिर भी वह पाप आचरण छोडता नहीं है। शंकराचार्य स्वामी कहते हैं कि मनुष्य यह जानता है कि एक दिन मरना है, यह सब छोडकर एक दिन जाना है ऐसा होने पर भी वह पाप क्यों करता है? मुझे इसका आश्चर्य होता है। इसलिये अपने जीवनको सम्हालो।

परीक्षितका अधिकार सिद्ध होने पर शुकदेवजी वहाँ पधारे हैं। शुकदेवजीको आमंत्रण नहीं देना पडा। शुकदेवजी ऐसे नहीं कि किसीके आमंत्रण पर आये। राजाका जीवन बदल गया है। शुकदेवजीने जब यह जाना कि परीक्षित राजा अब राजा नहीं रहा है, महर्षि हुआ है तो वह आ गये। राजर्षि और ऋषि एक हैं। राजा जबतक महलोंमें विलासी जीवन बिताता था तबतक शुकदेवजी नहीं आये, परन्तु तक्षकके भयसे संसार छूटा कि तुरंत ही शुकदेवजी पधारे। राजा होता और उस समय शुकदेवजी कथा करने गये होते, तो राजा कहता- "आप आये हैं, ठीक किया है। एक घंटा कथा करें और विदा ले लें। मुझे बहुत काम है।" परीक्षित राजाको विश्वास था कि अब सात दिनके बाद मरना है। हमें तो अपनी यह खबर भी नहीं है। जीवन पानीका बुलबुला है। पानीके बुलबुलेको फूटते देर नहीं लगती। इसी प्रकार जीवनके अंत आनेमें भी देर नहीं लगती।

प्रथम स्कंध अधिकार लीलाका है। श्रीमद् भागवतके ज्ञानके संपादनका अधिकारी कौन? यह ज्ञान देनेका अधिकारी कौन? आदि बताया है। पहले स्कंधमें तीन प्रकरण हैं। उत्तमाधिकार, मध्यमाधिकार और तीसरा कनिष्ठाधिकार। शुकदेवजी और परीक्षित उत्तम वक्ता श्रोता नारद और व्यास मध्यम श्रोता वक्ता और सूतजी शौनकजी कनिष्ठ वक्ता तथा श्रोता हैं। व्यासजी समाज सुधारनेकी भावनासे कथा करते हैं। इसलिये उनको मध्यम वक्ता कहा है। समाजको सुधारनेकी इच्छा अनेक बार प्रभुभजन, प्रभुमिलनमें बाधक होती है। दूसरेको सुधारने-की भावना प्रभुभजनमें विघ्न करती है। दूसरोंको सुधारनेकी झंझटमें नहीं पडना, तुम अपना जीवन सुधारो। कथा करते समय शुकदेवजीको खबर नहीं थी कि मेरी कथा सुननेके लिये सामने कौन कौन बैठा है। शुकदेवजीकी कथासे बहुतोंका जीवन सुधरता है परन्तु इसका विचार शुकदेवजी नहीं करते। शंकराचार्यजीने कहा है कि ब्रह्मज्ञानी महात्मा एक क्षण भी ब्रह्मचिंतन नहीं छोड सके हैं। ऐसी दशा शुकदेवजी की है। सोलह आने वैराग्य न हो तो दृष्टि ब्रह्माकार नहीं होती। जगतमें ब्रह्मज्ञानी मिल सके हैं, परन्तु ब्रह्मदृष्टि रखकर विचारनेवाले शुकदेवजी जैसे नहीं मिलते।

कथनी और करनी एक न हो और वर्तन एक न हो तबतक शब्दमें शक्ति नहीं आती। "आधी केलें मग सांगितलें" रामदास स्वामीने कहा है कि मैंने किया है मैंने अनुभव किया है, इसके बाद आपको कहा है। शुकदेवजी महाराज जो बोले हैं, वह जीवनमें उतारकर बोले हैं। शुकदेवजी उत्तम वक्ता हैं कारण कि वाणी और वर्तन उनका एक है। इसीलिये किसी संतने

कहा है " बोले तैसा चाले, त्याचि वन्दाविता पाउलै " । ऐसा व्यक्ति वन्दनीय है । एक समय एक माता अपने पुत्रको संत एकनाथजीके पास लायी । कहने लगी– " महाराज मेरे पुत्रको गुड खानेकी बहुत आदत पड गई है । अब वह यह आदत छोडता नहीं है । वह गुड खाना छोड दे ऐसा आशीर्वाद दीजिये ।" महाराजने उस समय आशीर्वाद नहीं दिया, कारण वे स्वयं गुड खाते थे । उन्होंने उस मातासे कहा कि कुछ दिनके बाद तुम पुत्रको लेकर आओ । उस समय मैं आशीर्वाद दूँगा । आज नहीं । उन्होंने स्वयं गुड खाना छोड दिया । विठ्ठलनाथ कृपा करो । आजसे मैंने गुड छोडा है, ताकि मेरी बातमें शक्ति आये । फिर कुछ दिनोंके बाद वह माता अपने पुत्रको लेकर आई । महाराजने उस समय उस बालकको आशीर्वाद दिया ।

प्रसादकी प्रसादी करते, अजीर्ण हो इतना प्रसाद नहीं लेना चाहिये। भगवान् योगी हैं, और भोगी भी हैं, और यह जीव भोगी है, योगी नहीं है। इसलिये भगवान् छप्पन भोगका भोग लगाये तो भी कोई हर्ज नहीं है । हमसे ऐसा नही हो सकता । त्यागसे अलौकिक शक्ति आती है । विषय भोग हमारे हाथसे निकल जाये, छूट जाये, तो दुःख होता है, और विषय प्राप्त हो और हम उसको छोड दें तो आनन्द होता है । शुकदेवजीमें सोलह आने वैराग्य है, अतः वह उत्तम वक्ता हैं ।

महाप्रभुजीने कहा है कि भागवतमें समाधिभाषा मुख्य है । ईश्वरके ध्यानमें जिसे थोडासा भी आनंद है, उसे भागवतका अर्थ जल्दी समझमें आता है । व्यासजीने एक एक लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन किया है। व्यासजीने अंतर-दृष्टिसे यह सब देखा है। भगवान्का स्वरूप अलौकिक है । अपनी आँखें लौकिक हैं । अतः लौकिक आँखे अलौकिक ईश्वरको नहीं देख सकतीं । बाहरकी आँखें बंद करने पर अन्दरकी आँखें खुलती हैं । तभी परमात्माका दर्शन होता है ।

सूतजीने कहा– व्यासजीने अठारह हजार श्लोकोंका यह भागवत ग्रन्थ बनाया । व्यासजीको लगा कि अब हमारा अवतार कार्य पूरा हुआ । जो मेरे भागवतका आश्रय लेगा उसको कलिका भय नही लगेगा । परन्तु व्यासजीको एक चिंता हुई कि ग्रन्थ तो मैंने बना दिया, परन्तु इसका प्रचार कौन करेगा ? इस ग्रन्थमें मैंने सब कुछ भर दिया है। यह भागवत प्रेमशास्त्र है । मायाके साथ-संसारके साथ प्रेम करनेवाला भागवतशास्त्रका प्रचार नहीं कर सकेगा । जन्मसे जिसे मायासे संसर्ग नहीं हुआ है वही इस ग्रन्थका प्रचार कर सकेगा । भागवत परमहंसकी संहिता है । श्रीकृष्ण तो महापरमहंस हैं । प्रह्लाद, भरत, ऋषभदेव, आदि सब परमहंस हैं । अतः निर्विकारी ही इस ग्रंथका प्रचार कर सकता है । बहुत सोचने पर व्यासजीको लगा कि ऐसा योग्य तो मेरा पुत्र ही है । शुकदेवजीको रंभा भी चलायमान न कर सकी ।

नारियोंमें श्रेष्ठ तो रंभा ही है । ऐसी रंभा शुकदेवजीको चलित करने आयी । शुकदेवजीने कहा– वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।

शुकदेवजी कहते है कि विषयभोगीका जीवन वृथा नही है । सुनो देवी कि किसका जीवन वृथा है ।

नारायणः पंकजलोचनः प्रभुः
केयूरहारैः परिशोभमानः ।
भक्त्या युतो येन सुपूजितो नहि
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ॥

नीलकमलसे सुंदर जिनके नेत्र है, जिनके आकर्षक अंगों पर केयूर हार आदि अलंकार शोभायमान हैं ऐसे सर्वांतर्यामी नारायण प्रभुके चरणकमलोंमें, जिसने भक्तिपूर्वक स्वयंको अर्पण करके इस आवागमनके चक्रको नष्ट नहीं किया, ऐसे लोगोंका मनुष्यदेह धारण करना व्यर्थ है। ऐसे लोगोंका जीवन वृथा ही है।

श्रीवत्सलक्ष्मीकृहृत्प्रदेशस्ताक्ष्र्यध्वजश्चक्रधरः परात्मा ।
न सेवितो येन क्षणं मुकुंदो वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ॥

जिनके वक्षस्थल पर लक्ष्मीजी शोभायमान हैं, जिनकी ध्वजामें गरुडजी विराजित हैं, जो सुदर्शन चक्रधारी हैं ऐसे परमात्मा मुकुंद भगवान्‌का जिसने क्षणमात्र भी स्मरण नहीं किया ऐसे मनुष्योंका जीवन वृथा ही मानो।

रंभाने जब नारीदेहकी अति प्रशंसा की तो शुकदेवजीने रंभासे कहा, स्त्रीका शरीर इतना सुगंधीमय और सुंदर होता है यह तो मैंने आज ही जाना। मुझे तो पहले खबर ही न थी कि स्त्रीका शरीर इतना सुंदर होता है। परमात्माकी प्रेरणासे यदि अब मुझे जन्म लेना होगा तो मैं तेरी जैसी माता ही पसंद करूंगा।

शुकदेवजी जन्मसे ही निर्विकारी है। जिस पुत्रने जन्मके समय ही पितासे कहा कि आप मेरे पिता नही हैं और मैं भी आपका पुत्र नही हूँ, ऐसे शुकदेवजी (पुत्र) घर आये तो कैसे ? शुकदेव जन्मसिद्ध योगी हैं। जन्म हुआ कि तुरंत ही तपश्चर्याके लिये वनकी ओर उन्होंने प्रयाण किया। शुकदेवजी सदा ब्रह्मचिन्तनमें लीन रहते थे। उनको वनसे बुलायें कैसे? वह वनमेंसे घर आये तो मैं उनको भागवतशास्त्र पढाऊं और फिर वे इसका प्रचार करें, व्यासजीको यह विचार आया। श्रीकृष्णके स्वरूपका वर्णन नही हो सकता है। भगवान्‌के स्वरूपका कौन पार पा सका है ? योगी लोगोंका मन उस प्रभुका कुछ अनुभव कर सका है कारण यह है कि

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनंदं ब्राह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन ॥

अर्थात् उसका पार पानेके लिए जानेवाला मन भी वाणीसहित वापस लौट आता है। श्रीकृष्णका स्वरूप अद्‌भुत है। योगियोंके चित्तको भी आकर्षित करता है। ऐसा वह स्वरूप है। तो वह कन्हैया, शुकदेवजी जैसे योगीको क्यों नही आकर्षेगा ? शुकदेवजी निर्गुण ब्रह्मके चिंतनमें लीन थे। उसमेंसे उनके चित्तको हटाने, सगुण ब्रह्म की ओर उसे खींच लानेको श्रीकृष्णलीलाके श्लोक सुनाने चाहिये। उन श्लोकोंका कोई और ही जादुई प्रभाव श्रीव्यासजीने निश्चित किया। व्यासजीके शिष्योंको जंगलमें जब वे दर्भसमिध लेने जाते तब हिंसक

पशुओंका भय लगता। उन्होंने यह बात व्यासजीसे कही। व्यासजीने कहा– जब जब तुमको भय लगे तब तब इस भागवतके श्लोकोंका पाठ किया करो। श्रीकृष्ण मेरे साथ हैं ऐसा विचार करो। ईश्वर सतत हमारे साथ है ऐसा विचार करोगे और अनुभव करोगे तो तुम निर्भय बनोगे। राधारमण श्रीकृष्णका स्मरण करो। इसके बाद जब ऋषिकुमार वनमे जाते तो बर्हापीडम् आदि श्लोक बोलते तो वनमें हिंस्र–बाघ आदि सब पशु वैरको भूल जाते थे और शान्त बन जाते थे। पशुओंके मन पर भी इन श्लोकोंका प्रभाव पडता है परन्तु दुःखकी बात यह है कि आज मनुष्यों पर भी इसका प्रभाव नही पडता है। जिन मंत्रोंसे पशुओंका आकर्षण हुआ उन मंत्रोंसे शुकदेवजीका आकर्षण कैसे नही होता ? देहका भान भूले नहीं तबतक देवका दर्शन नही होता है। शुकदेवजी ज्योतिर्मय ब्रह्मका चिंतन करते है उनको देहाभिमान नहीं है। शुकदेवजी परमहंसोंके आचार्य है इसलिये ब्रह्मचिंतन करते हैं। उनके मनका आकर्षण करनेके लिये व्यासजीने युक्ति सोची। व्यासजीने शिष्योंसे कहा कि शुकदेवजी जिस वनमें समाधिमे बैठे हों वहाँ आप जाईये और वे सुनें इसप्रकार इन दो श्लोकोंका गान कीजिये। ये दो श्लोक उनको सुनाइये। शुकदेवजीका हृदय गंगाजल जैसा शुद्ध है। जल शुद्ध और स्थिर हो तो उसमें शुद्ध प्रतिबिंब पडता है। अपने हृदयरूपी दीवार पर बहुत गंदगी लग गई है। इसे बिलकुल साफ करनेकी जरूरत है। इसे साफ करो जिससे परमात्माका प्रतिबिंब उसमें पडेगा। अपने हृदयमें हजारों जन्मोंका मैल भरा है। इसलिये हृदयकी दीवारको खूब रगडो और इस मैलको दूर करो। मैलको दूर करनेसे परमात्माका प्रतिबिंब उसमें पडेगा। अत शुद्ध बनो। शब्दमेंसे रूपका दर्शन होता है। नामसृष्टि पहले और रूपसृष्टि उसके बाद। शिष्य आज्ञा पा कर उस वनमें गये। शुकदेवजीका चित्त आकर्षित करनेके लिये शिष्य श्लोकोंका गान करने लगे। शुकदेवजी स्नान संध्या करके समाधिमें बैठनेकी तैयारीमें थे। जो वे समाधिमें बैठ जाते और समाधि लग जाती तो वे यह श्लोक नहीं सुन पाते। अतः शिष्योंने तुरंत ही गान प्रारम्भ किया।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृंदैः
वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

भा. १०–२१–५ (वेणुगीत)

श्रीकृष्ण गोप बालकोंके साथ वृन्दावनमे प्रवेश कर रहे हैं। उन्होंने मस्तक पर मोर मुकुट धारण किया है और कानों पर कनेरके पीले पीले पुष्प, शरीर पर पीला पीताम्बर, और गलेमें पाँच प्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे बनी वैजयन्तीमाला पहनी है। रंगमंच पर अभिनय करनेवाले श्रेष्ठ नट जैसा क्या सुन्दर वेष है। बांसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे पीछे गोप बालक इनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुंठसे भी श्रेष्ठ यह वृन्दावनधाम इनके चरण–चिह्नोसे अधिक रमणीय बना है। मोर श्रीकृष्णको प्यारा लगता है। मोर कामसुख इन्द्रियोंसे नहीं भोगता है। संसारके काम सुखको भूलनेवाला ही ईश्वरका दर्शन कर सका है। प्रभुके साथ मैत्री करनी हो तो "काम" के साथ

मैत्री छोडनी होगी। ज्ञानी ललाटमें दृष्टि स्थिर करके वहाँ ब्रह्मका दर्शन करते हैं और वैष्णव हृदयमें श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं। शुकदेवजीने श्लोक सुने। श्रीकृष्णका स्वरूप मनोहर लगा। शुकदेवजीको ध्यानमें अति आनन्द आता है। वाह! मेरे प्रभु! उन्होंने तुरंत निश्चय किया कि निराकार ब्रह्मका चिंतन नहीं करेंगे। अब सगुण साकारका चिंतन करेंगे। परंतु सोचा कि सगुण ब्रह्मकी सेवामें सब वस्तुओंकी अपेक्षा रहती है। कन्हैया तो मिश्रीमाखन माँगेगा। मैं तो यह कहाँसे लाऊँगा? मेरे पास तो कुछ नहीं है। मैं निर्गुण ब्रह्मका उपासक हूँ। मैंने तो लंगोटीको भी त्याग किया है। यह कन्हैया तो बहुत माँगा करेगा तो वह सब मैं कहाँसे लाऊँगा? यशोदाके घरमें माखन क्या कम था? फिर भी कन्हैया कहता था, मा, मुझे घरका माखन अच्छा नहीं लगता। मुझे बाहरका माखन अच्छा लगता है। गोपियोंके माखनमें नहीं, गोपियोंके प्रेममें मिठास थी। गोपियोंके प्रेममें स्वाद था। यह कन्हैया तो मांगकर प्रेमसे भोग लगाता है। वह मुझे कहेगा कि तुम माखन लाओ, मिश्री लाओ। तो मैं सब कहांसे लाऊँगा? इसलिये साकार ब्रह्मका चिंतन नहीं करूँगा। इस निर्गुण ब्रह्मका ही चिंतन करूँगा। निराकार ब्रह्मको कुछ देना नहीं पडता है इसलिये मेरे लिये तो यही उत्तम है। किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार शुकदेवजी विचार कर रहे थे कि वहाँ व्यासजीके शिष्योंने दूसरे श्लोकका गान शुरू किया।

> अहो बकी यं स्तनकालकूटं
> जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
> लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
> कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥

भा. ३–२–२३

अहो! आश्चर्य है कि दुष्ट पूतनाने स्तनोंमें विष भरकर जिनको मारनेकी इच्छासे ही दुग्धपान कराया था, उस पूतनाको भी उन्होंने ऐसी गति दी, जो उसे किसी धायको देनी चाहिये थी। अर्थात् उसे सद्गति दी। भगवान् श्रीकृष्णके सिवा ऐसा कौन दूसरा दयालु है कि जिसका शरण ग्रहण करे? अर्थात् उनसा दयालु कोई दूसरा नहीं है कि जिसकी शरण ग्रहण कर सके। पूतना स्तनोंमें विष लगाकर आयी थी। ईश्वरके धाममें आई है। वासनाका विष मनमें रखकर, हृदयमें रखकर मनुष्य परमात्माके सन्मुख जाता है, उसे परमात्माका दर्शन नहीं होता। पूतना विष लगाकर तो आयी परन्तु वह मातृभावना लेकर आयी थी। माताका काम किया था पूतनाने। इसलिये उसे यशोदा जैसी गति दी है। विष देनेवाली पूतनाको भी मेरे प्रभुने सद्गति दी थी। मेरे प्रभुको माखन मिश्रीकी तो क्या किसी भी चीजकी जरूरत नहीं है। वे केवल प्रेम चाहते है। "प्रेमके वश अर्जुन रथ हांक्यो भूल गये ठकुराई", प्रेमसे वश करके अर्जुनने महाभारतके युद्धमें अपना रथ चलवा लिया। वहाँ प्रभु अपनी ठकुराई भूल गये। पदार्थसे प्रसन्न हो वह जीव, और प्रेमसे प्रसन्न हो वह ईश्वर। प्रेम करने योग्य एक परमात्मा ही है। ऐसे परम कृपालुको छोड मैं किसकी शरणमें जाऊँ?

शुकदेवजीके मनमें शंका थी कि कन्हैया सब माँगेगा, तो मैं क्या दूँगा? उस शंकाका निवारण हुआ। शुकदेवजी इधर उधर देखने लगे कि यह श्लोक कौन बोल रहे हैं। वहाँ उनको

व्यासजीके शिष्योंका दर्शन हुआ। शुकदेवजीने उनसे पूछा कि आप कौन हैं ? आप जो श्लोक बोल रहे थे वे किसके रचे हुये हैं ? शिष्योंने कहा, हम व्यासजीके शिष्य हैं। व्यासजीने हमें ये मंत्र दिये हैं। यह दो श्लोक तो उदाहरणके लिये है, दूसरे श्लोक गोदाममें भरे रखे हैं। व्यास भगवान्ने ऐसे श्लोकोंसे भरपूर श्री भागवत पुराणकी रचना की है। शुकदेवजीने पूछा कि ऐसे कितने श्लोक उन्होंने बनाये हैं। शिष्योंने कहा कि ऐसे अठारह हजार श्लोक उन्होंने बनाये हैं। आँखें खुली रहते भी इन श्लोकोंसे समाधि लगती है। आँखें बन्द हो और समाधि लगे यह बात आसान है। पर यह तो आँख खुली हो और समाधि लगे ऐसी समाधि लगती थी। साधो सहज समाधि भली। शुकदेवजीने सोचा व्यासजी मेरे पिता हैं, मैं उनका उत्तराधिकारी हूँ। मैं पिताके पास जाकर यह पुराण सुनूँगा।

आज शुकदेवजीको भागवतशास्त्र पढनेकी इच्छा हुई है। कन्हैयाकी लीला सुनकर उनका चित्त आकर्षित हुआ है। योगियोंका मन भी इस कृष्णकथासे खिचता है। निर्ग्रंथ शुकदेवजीको भागवतशास्त्र सुननेकी और अध्ययन करनेकी इच्छा हुई। भागवतके श्लोक सुनकर शुकदेवजीका चित्त आकर्षित हुआ। निर्गुण ब्रह्मका उपासक सगुण ब्रह्मके पीछे पागल हो रहा है। बारह सालके बाद आज शुकदेवजी व्यासजीके आश्रममें दौडते हुये आये हैं। शुकदेवजीने व्यासजीको साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। व्यासजीने शुकदेवजीको छातीसे लगाया और माथा चूमा। शुकदेवजीने कहा, पिताजी ये श्लोक मुझे पढाओ। शुकदेवजी कथा सुनते हैं और कृतार्थ होते हैं। व्यासजीने शुकदेवजीको भागवतका अध्ययन कराया और इस प्रकार व्यासजीकी चिंताका अंत आया कि भागवत पुराण शास्त्रका प्रचार कैसे होगा। इस ग्रंथका सच्चा अधिकारी आत्माराम है कारण कि श्रीकृष्ण सबकी आत्मा रूप हैं। विषयारामको इस ग्रन्थको सुननेकी इच्छा ही नहीं होती है।

सूतजी कहते हैं, शौनकजी आश्चर्य मत करो। भगवान्के गुण ऐसे मधुर हैं कि सबको वह अपनी ओर खींच लेते हैं फिर इनसे शुकदेवजीका मन आकर्षित हुआ इसमें क्या नई बात है ?

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

जो ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गांठ खुल गई है, और जो सदा आत्मामें ही रमण करते हैं वह भी भगवान्की हेतुरहित (निष्काम) भक्ति करते है, क्योंकि भगवान्के गुण ऐसे मधुर हैं कि सबको अपनी ओर खींच लेते हैं। भगवान्के कथामृतका पान करते भूख और प्यास भी भूल जाती है, इसीलिये तो दसवें स्कंधके पहले अध्यायमें राजा परीक्षित भी कहते हैं, कि पहले मुझे भूख और प्यास लगती थी, परन्तु भगवान्के कथामृतका पान करते करते अब मेरी भूख अदृश्य हो गयी है।

नैवातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ।
पिबतं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥

मेरा पानी भी छूट गया है। फिर भी मैं आपके मुखसे निकलते श्री हरिकथारूपी अमृतका पान कर रहा हूँ। इसीलिये यह दुःसह भूख भी मुझे पीडा नहीं देती है। भोजन

भजनका साधनमात्र है इसलिये भूख न सताये इतना भोजन करना चाहिये। सूतजी वर्णन करते हैं इसके वाद यह कथा शुकदेवजीने राजा परीक्षितको सुनाई। मेरे गुरुदेव भी वहाँ थे। उन्होंने यह कथा मुझे सुनायी। अव मैं यह कथा तुमको सुनाता हूँ।

श्रवण करो। अव मैं तुम्हें राजा परीक्षितके जन्म, कर्म और मोक्षकी कथा तथा पांडवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ। पाँच प्रकारकी शुद्धि वतानेके लिये पंचाध्यायिनी कथा शुरू करते हैं। पितृशुद्धि, मातृशुद्धि, वंशशुद्धि, अन्नशुद्धि और आत्मशुद्धि। जिनके यह पाँच शुद्ध होते हैं उन्हींमे प्रभुदर्शनकी आतुरता जागती है। आतुरताके विना ईश्वरदर्शन होता नहीं। राजा परिक्षितमें ये पाँच शुद्धियाँ मौजूद थीं। यह वात दिखलानेके लिये अगली कथा कही जा रही है। ७ से ११ अध्यायोंमें "वीज" शुद्धिकी कथा है। वारहवें अध्यायमें परीक्षितजीके जन्मकी कथा है। परीक्षित कहेंगे कि यह कथा सुनते सुनते मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। उत्तम श्रोता वही है कि जो भजनमें भूख और प्यास भूल जाते है।

प्रभुभजनमें आनन्द आये तो भूख, प्यास भूलती है, आत्माकार-वृत्ति हो जानेपर देहधर्मका भान नही रहता है। कौरव और पांडवोंका युद्ध समाप्त हुआ है। अश्वत्थामाने विचार किया कि मैं भी पांडवोंको कपटसे मारूँगा। पांडव जव सो जायेंगे तव उनको मारूँगा। अरे! जिसे भगवान् रखे उसे कौन मार सकता है? प्रभुने सोये हुये पांडवोंको जगा दिया और कहा कि मेरे साथ गंगाकिनारे चलो। पांडवोंको श्रीकृष्ण पर कितना दृढ विश्वास! द्वारकानाथ जो कहते थे वे करते थे। वे कोई प्रश्न भी नहीं करते थे। पांडवोंको प्रभुमें पूर्ण विश्वास था। पांडव स्वतंत्र नहीं थे मगर प्रभुके अधीन थे। आजकल स्वतंत्रताका अलग अर्थ करते हैं। जिनके जीवनमें संयम है, जो परमात्माके आधीन हैं वही स्वतंत्र हैं। ऐसे पांडवोंके कुलमें परीक्षितका जन्म हुआ है। पांडवोंको लेकर श्रीकृष्ण गंगाकिनारे आते हैं। प्रभुके कहने पर भी द्रौपदीके पुत्र नहीं आये। वालक वुद्धि है न? वे वोले कि आपको तो नींद नहीं आती है हमको तो नींद आती है। आपको जाना हो तो जाओ। परिणाम यह हुआ कि अश्वत्थामाने द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको मार दिया। दुःखमें समझदारी आती है।

प्रभुसे एकाध दुःख माँगो कि जिससे अक्ल ठिकाने रह सके। जो सव प्रकारसे सुखी हो जाता है वह दीन वनकर प्रभुके सामने नमन नहीं करता। आज कृष्ण निष्ठुर वने हैं। द्रौपदीके आँसुओंको देखते भी नही। आज द्रौपदी रो रही है, परन्तु द्वारकानाथको दया नहीं आती हैं। नही तो द्रौपदीका रुदन श्रीकृष्णसे सहन नहीं होता था। पहले तो जव जव जरूरत पडी, तव तव द्रौपदीके आँसू पोंछने दौडते चले आते थे। यह जीव सव प्रकारसे सुखी हो यह योग्य नही। एक दुःख मनुष्यके हृदयमें होना ही चाहिये कि जिस दुःखसे विश्वास हो कि भगवान्के सिवा मेरा और कोई नही है।

हर एक महापुरुष पर दुःख आये हैं। परमात्माने सोचा कि पांडवोंको पृथ्वीका राज्य मिला है संतति है और संपत्ति भी भरपूर है। सव प्रकारसे पांडव सुखी हों यह ठीक नही है। पांडवोंको इस अति सुखमें शायद अभिमान हो जायगा तो उनका पतन होगा। ऐसे शुभ हेतुसे ठाकुरजी कभी कभी निष्ठुर हो जाते हैं। सुखमें पांडव भगवान्को न भूलें इसलिये उन्होंने उनको यह दुःख दिया। भगवान् दुःखमें जीवकी गुप्तरीतिसे सहायता करते हैं। अश्वत्थामा और अर्जुनका युद्ध हो रहा है। अर्जुनने अश्वत्थामाको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। परन्तु मारनेकी हिम्मत नही हो रही थी। गुरुपुत्र गुरुका स्वरूप है। अश्वत्थामाको

बाँधकर उसे खींच कर द्रौपदीके पास लाया। द्रौपदी आंगनमें बैठी है, पुत्रशोकमें डूबी हुयी है। अश्वत्थामाकी यह दशा देख द्रौपदी दौडकर आयी। अश्वत्थामाको वन्दन करती है और कहती है कि मेरे आंगनमें ब्राह्मणका अपमान नहीं करो। अपने पाँच बालकोंकी हत्या करनेवालेको द्रौपदी वंदन करती है। यह कोई साधारण वैरी नहीं है। पाँच बालकोंको मारनेवाला आँगनमें आया है फिर भी वह ब्राह्मण है इसलिये प्रणाम करती है। आपका वैरी क्या आपके घरआँगनमें आया हो तो क्या आप जय श्रीकृष्ण कहेंगे?

भागवतकी कथा सुन सुनकर जीवनको सुधारो। वैरकी शांति निर्वैरसे होती है। प्रेमसे होती है। वन्दनासे होती है। वही वैष्णव है कि जो वैरका बदला प्रेमसे देता है। जय श्रीकृष्णका अर्थ यह है कि मुझे जो कुछ दीखता है यह सब कृष्णमय है। अश्वत्थामा सोचते हैं कि सचमुच द्रौपदी ही वन्दनीय है। मैं वन्दनीय नहीं हूँ। अश्वत्थामा कहते हैं द्रौपदी, लोग जो तुम्हारी प्रशंसा करते हैं वह बहुत कम है। तुम वैरका बदला प्रेमसे देती हो। द्रौपदीके गुणोंसे आज व्यासजी भी तन्मय बने हैं। द्रौपदीको उद्देशकर कहते हैं, 'वामस्वभावा'। कोमल स्वभाववाली, सुन्दर स्वभाववाली। जिसका स्वभाव अति सुन्दर हो वही श्री भगवान्‌को प्यारा है। शरीर जिसका सुन्दर हो वह ठाकुरजीको सर्वदा प्रिय नहीं लगता है परन्तु जिसका स्वभाव सुन्दर है वह ठाकुरजीको सर्वदा प्रिय लगता है। स्वभाव सुन्दर कब बनता है? अपकारका बदला भी उपकारमें देंगे तब। द्रौपदी बोल उठी कि उनको छोड दो। उन्हें मारो नहीं, वे गुरुपुत्र हैं। जो विद्या गुरु द्रोणाचार्यने अपने पुत्रको नहीं दी वह आपको दी है। क्या आप यह सब भूल गये हैं? ब्राह्मण परमात्माका स्वरूप है। गाय लूली, लंगडी, बॉझ हो तो भी गायका शगुन मनाते हैं। भैंसका शगुन कभी नहीं मानते है। गाय और ब्राह्मण वन्दनीय हैं। द्रौपदी तो दयाका स्वरूप है। ' दयारूप ' द्रौपदीके साथ जबतक हृदय शादी न करे तबतक श्रीकृष्ण उसके सारथि नहीं बनते। अर्जुन जीवात्मा गुडाकेश और श्रीकृष्ण हृषिकेश है। यह जोडी तो इस शरीररूपी रथमें बैठी है। इन्द्रियरूपी घोडोंका रथ प्रभुको सौंपेंगे तो कल्याण होगा। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण हैं– ' हृषिकेश '। युधिष्ठिर यही धर्म है, भीम यही बल है। सहदेव–नकुल यही बुद्धि और ज्ञान हैं। इन चार गुणोवाला जीव यह अर्जुन है। ये गुण कब शोभायमान होते हैं कि जब द्रौपदी दया उनकी पत्नी बनती है, जीव दया द्रौपदीके साथ विवाह करता है तभी। द्रौपदी कब कैसे मिले? जब धर्मको बडा माने तभी। परमात्मा सारथि भी तब बनता है और उसीका होता है कि जो धर्मको बडा मानता है। आज तो लोग धर्मको बडा नहीं मानते हैं। धनको बडा मानते है, उसी कारण संयम और सदाचार जीवनमेंसे निकल गये हैं। मानव जीवनमें धन मुख्य नहीं है धर्म मुख्य है। धन धर्मकी मर्यादामें रह कर ही प्राप्त करना चाहिये। आपको कोई कार्य करना हो तो पहले धर्मसे पूछो कि यह कर्म करनेसे मुझे पाप तो नहीं लगेगा? आप अर्जुन जैसा जीवन गुजारोगे तो भगवान् आपका सारथि बनेगा। द्रौपदीने अश्वत्थामाको बचाया और अर्जुनको कहा उनको मार भी देंगे तो भी मेरे पाँच पुत्रोंमेंसे एक भी वापस नहीं आयेगा परन्तु अश्वत्थामाको मारनेसे उनकी माता गौतमीको अति दुःख होगा। मैं अभी सधवा हूँ। अश्वत्थामाकी माता विधवा है। वह पतिकी मृत्युके बाद पुत्रके आश्वासन पर जीती है। वह जब रोयेगी तो मैं नही देख सकूंगी। किसीका आशीर्वाद नहीं लें तो कुछ नहीं मगर किसीकी ठंडी सांस नही लेना। कोई ठंडी सांस दे ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये।

जगत्में दूसरोंको रुलाना नहीं, आप रो लेना, रोनेमें पाप जलता है। रोनेसे एक दिन परमात्मा सुनता है, कृपा करता है। रोनेसे सुखी हुआ जा सकता है। भीम अर्जुनसे कहते हैं, ऐसे बालहत्यारे पर भी दया होती है क्या? तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ गई? द्रौपदी बार बार कहती है 'मारना नहीं'। अब अर्जुन सोचमें पड गये। श्रीकृष्णने आज्ञा दी कि द्रौपदी जो कह रही है बराबर है। द्रौपदीके दिलमें दया है। भीमसेनजी कहते हैं कि मनुस्मृतिमें कहा है आततायीको मारनेमें पाप नहीं। धर्म प्रमाणसे भी आततायीको-अश्वत्थामाको मारनेमें पाप नहीं। श्रीकृष्ण भी मनुस्मृतिको मान्य रखकर उत्तर देते हैं कि ब्राह्मणका अपमान यह भी उसकी मृत्युके बराबर है अतः अश्वत्थामाको मारनेकी जरूरत नहीं है। उसका अपमान करके निकाल दो। अश्वत्थामाका मस्तक नहीं काटा परन्तु उसके माथेमें जन्मसिद्ध मणि थी वह निकाल ली। अश्वत्थामा तेजहीन हो गये। अब भीमसेनने भी सोचा कि अब उसको मारनेसे क्या बाकी रहा है? अपमान तो मरणसे भी विशेष है। अपमान प्रतिक्षण मारनेके बराबर है। अश्वत्थामाने सोचा इससे तो मुझे मार दिया होता तो अच्छा था।

शुकदेवजी सावधान करते हैं कि हे राजन्! अश्वत्थामाने सोचा कि पांडवोंने मेरा अपमान किया है। मैं इसका बदला लूँगा। अपना पराक्रम दिखाऊँगा। उत्तराके पेटमें गर्भ है और वह पांडवोंका उत्तराधिकारी है। उसका नाश होने पर पांडवोंके वंशका नाश होगा। यह सोचकर उसने उस गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोडा। उत्तरा व्याकुल हुई है। हरिस्मरण, हरि आश्रय लेते हैं तो भगवान् मार्ग दिखाते हैं। ईश्वर स्मरण बार बार किया जाय तो भाव शुद्ध होते हैं। ब्रह्मास्त्र उत्तराके शरीरको जलाने लगा। उत्तरा दौडती हुई श्रीकृष्णके पास आयी है। श्रीकृष्ण उत्तराके गर्भमें जाकर परीक्षितका रक्षण करते हैं। जीवमात्र परीक्षित है। सबकी गर्भमें कौन रक्षा करता है? जीवमात्रका रक्षण गर्भमें ईश्वर करता है। बाहर आनेपर भी जीव मात्रकी रक्षा भगवान् ही करता है। जीवमात्र परीक्षित जैसे हैं। भगवान् उत्तराके गर्भवाले परीक्षितका रक्षण करते हैं उतना ही नहीं वे तो जीवमात्रका रक्षण करते हैं। गर्भमें तो जीवात्मा तो हाथ जोडकर भगवान्को सतत नमन करता है। और बाहर आनेके बाद दोनों हाथ छूट जानेसे उसका नमन भी छूट जाता है। प्रभुको वह भूल जाता है गर्भावस्थामें जीवकी रक्षा परमात्मा करता है। बाल्यावस्थामें भी जीवनकी रक्षा परमात्मा ही करता है यह तो युवावस्थामें मानवी होश भूलता है और अकडकर चलता है और कहता है कि मैं धर्ममें नहीं मानता, ईश्वरमें मानता नहीं।

द्रौपदीने उत्तराको सीख दी थी कि जीवनमें दुःखका प्रसंग आनेपर ठाकुरजीके चरणोंका आश्रय लेना। दुःखके प्रसंगके समय श्रीकृष्णकी शरणमें जाना। कन्हैया दयामय है। वह तेरी अवश्य सहायता करेगा।

अपने दुःखकी कथा द्वारिकानाथके सिवा अन्य किसीसे कभी मत कहो।
उत्तराने देखा था कि अपनी सासजी रोज द्वारिकानाथको रीझाती हैं।
बालक जल्द अनुकरण करता है। उसके सामने कभी पाप मत करो।
उत्तरा रक्षाके लिये पांडवोंके पास नहीं किंतु परमात्माके पास गयी।
माताके पेटमें ही परीक्षितको परमात्माके दर्शन हुये थे अतः वे उत्तम श्रोता हैं।
भगवान् किसीके गर्भमें नहीं जाते। परमात्माकी लीला अप्राकृत है।

देवकीके पेटमें प्रभु गये नहीं थे। देवकीको भास (भ्रांति) कराया था कि वे पेटमें गये थे। किंतु आज जरूरत आ पडी थी। आज भक्तकी रक्षा करनी थी। सो परमात्माने गर्भमें जाकर रक्षा की।

परम आश्चर्य हुआ है।

श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रसे ब्रह्मास्त्रका निवारण किया। परीक्षितकी रक्षा करनेके बाद वे द्वारिका पधारनेको तैयार हुये।

कुंती मर्यादा-भक्ति है, साधन-भक्ति है।

यशोदा पुष्टि-भक्ति है। यशोदाका सारा व्यवहार भक्तिरूप था। प्रेमलक्षणा भक्तिमें व्यवहार और भक्तिमें भेद नही रहता। वैष्णवकी सारी क्रियायें भक्ति ही बन जाती हैं।

प्रथम मर्यादा-भक्ति आती है। उसके बाद पुष्टि-भक्ति। मर्यादा-भक्ति साधन है सो वह आरंभमें आती है। पुष्टिभक्ति साध्य है अतः वह अंतमें आती है।

भागवतमें नवमस्कंध तक साधन-भक्तिका वर्णन है। दशमस्कंधमें साध्य-भक्तिका वर्णन है। साध्यभक्ति प्रभुको बांधती है। पुष्टिभक्ति प्रभुको बांधेगी। उसकी कथा भागवतके अंतमें आती है। हरेक व्यवहारको भक्तिरूप बनाये सो पुष्टिभक्ति है।

भक्तिमार्गमें भगवद्‌वियोग सहन नहीं होता। भक्तिमें भगवान्‌का विरह सहन नहीं होता। वैष्णव वह है जो प्रभुके विरहमें जलता है।

द्वारिकानाथ द्वारिका जानेको तैयार हुये। कुंतीका दिल भर आया। उनकी अभिलाषा है कि चौबीसों घंटे मैं श्रीकृष्णको निहारा करूं। मेरे श्रीकृष्ण मुझसे कहीं दूर न जायँ। जिस मार्गसे भगवान्‌का रथ जानेवाला था वहीं कुंती आयीं और हाथ जोडकर रास्तेमें खडी हो गयीं।

प्रभुने दारुक सारथिसे रथ रुकवाया और कुंतीसे कहा कि फूफीजी, आप मार्गमें क्यों खडी हैं? वे रथसे नीचे उतरे। कुंतीजीने वंदन किया:

वंदनसे प्रभु बंधनमें आते हैं। वंदनके समय अपने सारे पापोंको याद करो। हृदय दीन, नम्र होगा।

सूतजी वर्णन करते हैं।

नियम तो ऐसा है कि रोज भगवान् कुंतीजीको वंदन करते हैं। किंतु आज कुंती भगवान्‌को वंदन कर रही हैं। भगवान्‌ने कहा कि यह आप क्या कर रही हैं? मैं तो तुम्हारा भतीजा हूँ। तुम मुझे प्रणाम करो यह शोभास्पद नहीं है।

कुंती कहती हैं कि मैं आज तक आपको अपना भतीजा मानती थी। किंतु आज समझमें आया कि आप ईश्वर हैं। योगीजन आपका ही ध्यान करते हैं। आप सबके पिता हैं।

कुंतीकी भक्ति दास्यमिश्रित वात्सल्यभक्ति है। हनुमान्‌जीकी भक्ति दास्यभक्ति है। दास्यभक्तिके आचार्य हनुमान्‌जी हैं। दास्यभावसे हृदय दीन बनता है। अपने स्वामीको देखनेकी हिंमत मुझमें नही है। मैं तो उनका दास हूँ। दास्यभक्ति अधिकारी महात्माको प्राप्त होती है। दास्यभक्तिमें दृष्टि चरणोंमें स्थिर करनी होती है। बिना भावके भक्ति सिद्ध नहीं हो सकती। ईश्वरके साथ कुछ भी संबंध जुडना चाहिये। मर्यादा-भक्तिसे दास्यभाव मुख्य है।

कुंती वात्सल्यभावसे कृष्णका मुख निहारती हैं। मेरे भाईका पुत्र, यही वात्सल्य भाव हुआ। मेरे भगवान् हैं यह भी दास्यभाव ही है। चरणदर्शनसे तृप्ति नहीं हुई सो मुख देख रही हैं। कुंती भगवान्की स्तुति करती हैं।

नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने ।
नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजाङ्घ्रये ॥

भा. १-८-२२

जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रगट हुआ है, जिन्होंने कमलोंकी माला धारण की है, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं और जिनके चरणोंमें कमलचिह्न है ऐसे, हे कृष्ण, आपको बार बार वंदन।

भगवान्की स्तुति रोज तीन बार करो- सुबहमें, दोपहरमें और रातको सोनेसे पहले। इसके अलावा सुख, दुःख और अंतकालमें भी स्तुति करो। अर्जुन दुःखमें स्तुति करता है, कुंती सुखमें स्तुति करती हैं और भीष्म अंतकालमें स्तुति करते हैं।

सुखावसाने, दुःखावसाने, देहावसाने स्तुति करो।

कुंती कहती हैं: प्रभुने हमें सुखी किया है। हमें कैसे कैसे संकटोंसे उबारा? भगवान्के उपकारोंका वे स्मरण कर रही हैं। वे भगवान्के उपकारोंको भूली नहीं हैं। मैं विधवा हुई तब मेरी संतान नन्हींसी थी। उस समय भी आपने ही मेरी रक्षा की थी।

सामान्य मनुष्य अतिसुखमें भगवान्को भूल जाता है। जीवमात्र पर भगवान् अनेक उपकार करते हैं। किंतु वह सब कुछ भूल जाता है। परमात्माके उपकार भूलने न चाहिये। हम जब बीमारीसे अच्छे होते हैं तो अमुक औषधिसे बीमारी टली ऐसा मानते हैं। अमुक डॉक्टरने हमें बचाया ऐसा मानते हैं। किंतु भगवान्ने ही बचाया है ऐसा नहीं मानते। भगवान्का उपकार नहीं मानते हैं। विचार करो कि डॉक्टरकी दवाई और इंजेक्शनमें बचानेकी शक्ति कुछ है भी क्या? ना, ना, बचानेवाला तो कोई और ही है। डॉक्टरके पास जो बचानेकी शक्ति होती तो उसके घरसे कभी अंतिमयात्रा निकलती ही नहीं।

विना जलके नदीकी शोभा नहीं है, प्राणके विना शरीर नहीं शोभा देता, कुंकुमका टीका न हो तो सौभाग्यवती स्त्री नहीं सुहाती। इसी प्रकार पांडव भी आपके विना नहीं सुहाते। नाथ, आपसे ही हम सुखी हैं।

गोपगीतमें गोपियाँ भी भगवान्के उपकारका स्मरण करती हैं। गोपियाँ कहती हैं- विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्। यमुनाजीके विषमय जलसे होनेवाली मृत्युसे, अजगरके रूपमें खा जानेवाले अंघासुरसे, इंद्रकी वर्षा, आंधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारी रक्षा की है।

कुंतीजी याद करती हैं कि जब भीमको दुर्योधनने विषमिश्रित लड्डू खिलाये थे उस समय भी आपने ही इसकी रक्षा की थी। लाक्षागृहसे भी हमें बचाया। आपके उपकार अनंत हैं। उसका बदला हम कभी चुका नहीं सकते।

मेरी द्रौपदीको दुःशासन सभामें खींच लाया। उस समय दुर्योधनने कहा कि द्रौपदी अब अपनी दासी है। उसे निर्वस्त्र करो। दुःशासन वस्त्र खींचने लगा। किंतु भगवान् जिसे ढकता है उसे कौन उघाड सकता है। दुःशासन थक गया। लोग भी आश्चर्यमें डूब गए। सब सोचने लगे—

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
सारी की ही नारी है कि नारीकी ही सारी है।

जीव ईश्वरको कुछ भी नहीं दे सकता। जगत्का सब कुछ ईश्वरका ही है। भगवान् कहते हैं कि जो मेरा है वही मुझे देनेमें क्या बडी बात हुई?

रोज तीन बार भगवान्की प्रार्थना करो कि हे नाथ, मैं आपका हूँ। मुझ पर आपके अनंत उपकार हैं कुंती कहती हैं कि आपके उपकारका बदला मैं किस तरह चुकाऊँगी? मैं आपको बारबार वंदन करती हूँ।

नाथ, हमारा त्याग न करो। आप द्वारिका जा रहे हैं किंतु एक वरदान मांगनेकी मेरी इच्छा है। वरदान देकर आप चाहे चले जाइए। कुंती सा वर कभी दुनियामें आज तक किसीने मांगा नहीं है और मांगेगा भी नही।

विपदः सन्तु नः शाश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

भा. १-८-२५

हे जगद्गुरु, हमारे जीवनमें प्रतिक्षण विपदा आती रहें, क्योंकि विपदावस्थामें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके होने पर जन्म-मृत्युके फेरे टल जाते हैं।

दुःखमें ही मनुष्यको सयानापन आता है। दुःखमें ही प्रभुके पास जानेका मन होता है। विपत्तिमें ही उनका स्मरण होता है। सो विपत्ति ही सच्ची संपत्ति है।

मनुष्यमें प्रभुके विना चैन आता है क्योंकि वह भक्तिरसको समझा नहीं है।

कुंती मांगती हैं कि बडी भारी विपत्तियाँ आती रहें ऐसा वरदान दीजिए।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह क्या मांगती हो तुम। आपकी बुद्धि चकरा तो नहीं गई है? आजतक दुःखके कई प्रसंग आए हैं। अब सुखकी बारी आई है। अब दुःखी होनेकी इच्छा है?

हर प्रकारका अभिमान छोडकर जो दीन बनता है वह भगवान्को प्यारा लगता है। कुंती दीन बनी हैं। नाथ, मैं जो मांग रही हूँ वही ठीक है। दुःख ही मेरा गुरु है। दुःखमें मनुष्य सयाना बनता है। दुःखसे जीवको परमात्माके चरणोंमें जीनेकी इच्छा होती है।

जिस दुःखमें नारायणका स्मरण हो वह तो सुख है, उसे दुःख कैसे कहें?

विपत्तिमें आपका स्मरण होता है सो उसे मैं संपत्ति मानती हूँ।

सुखके माथे शिल पडो । हरि हृदयसे जपाय ।
बलिहारी वह दुःखकी जो पल पल नाम जपाय ॥
जो पल पल नाम जपाय ॥

हनुमान्‌जीने रामचंद्रसे कहा था कि आपके ध्यानमें सीताजी तन्मय हैं इसीसे मैं कहता हूँ कि सीताजी आनंदमें हैं ।

कह हनुमंत विपत्ति प्रभु सोई ।
जब तव सुमिरन भजन न होई ॥

नाथ, जब आपका स्मरण, भजन न हो सके वही सच्ची विपत्ति है ऐसा समझो ।

मेरे सर पर विपत्तियाँ आए कि जिससे आपके चरणोंका आश्रय लेनेकी भावना जागे । दुनियाके महापुरुषोंके जीवनमें दुःखके प्रसंग ही पहले आते हैं ।

चार प्रकारके मदसे मनुष्य भान भूला-सा हो जाता है : (१) विद्यामद (२) युवानीका मद (३) द्रव्यमद (४) अधिकारमद । इन चार प्रकारके मदोंके कारण जीव भगवान्‌को भूल जाता है ।

अपने रोते हुए बालकको ताली बजाकर शांत रखनेका प्रयत्न करता हुआ प्रोफेसर उस समय यह भूल जाता है कि वह एक बडा विद्वान् प्रोफेसर है । किंतु उसी प्रोफेसरको प्रभुकीर्तनके समय ताली बजानेमें लज्जा होती है । पढेलिखे लोगोंको भजन-कीर्तनमें लज्जा आये तो उससे बडा पाप कौन-सा होगा ?

भगवान्‌ने कहा है कि उन चार प्रकारके मदसे जीव उन्मत्त बनता है और मेरा अपमान करता है ।

ऐसे मदवालोंकी जीभको कीर्तनके समय पाप पकड रखता है । पाप उससे कहता है कि तू बोलेगा तो मुझे बाहर निकलना पडेगा ।

महाभारतमें कहा है कि हर प्रकारके रोग मदके कारण ही होते हैं । अतः दीन होकर प्रार्थना करो । तुम्हारे जन्मके कई प्रयोजन बताए जाते हैं किंतु मुझे लगता है कि दुष्टोंका विनाश करना ही प्रधान कार्य नही है । किंतु अपने भक्तोंको प्रेमका दान करनेके लिए आप आए हैं ।

कुंती बनकर स्तुति करो ।

मुझसे वासुदेवजीने कहा था कि कंसके त्रासके कारण मैं गोकुल नहीं जा सकता । तुम गोकुलमें जाकर कन्हैयाका दर्शन करना । जब आप गोकुलमें बाललीला कर रहे थे उस समय मैं आपके दर्शनके लिये आयी थी । आपका बालस्वरूप भुलाये नहीं भूलता । उस समय यशोदाने आपको बांधा था । उसकी झांकी मैं आज तक नहीं भूली ।

काल भी जिससे कांपता है वे कालके काल श्रीकृष्ण आज थर थर काँप रहे हैं ।

मर्यादाभक्ति पुष्टिभक्तिकी इस प्रकार प्रशंसा करती है । कुंती यशोदाकी प्रशंसा कर रही है । प्रेमका बंधन भगवान् भी नहीं भूल सकते ।

सगुण ब्रह्मके साक्षात्कार करनेके बाद संसारमें आसक्ति रह जाती है। सगुणस्वरूप और निर्गुणस्वरूप दोनोंका आराधन करे उसीकी भक्ति सिद्ध होती है। स्नेहपाशमिम छिन्धि। स्वजनोंके साथ जुडी हुयी स्नेहकी दृढ रस्सीको आप तोड दें।

आप ऐसी दया करें कि मुझे अनन्य भक्ति प्राप्त हो।

स्तुतिके आरंभ और समाप्ति दोनोंमें नमस्ते है। सांख्यशास्त्रके २६ तत्त्वोंका प्रतिपादन २६ श्लोकोंकी स्तुतिमें किया गया है।

भगवान् सब कुछ करते हैं किंतु वैष्णवको नाराज नहीं करते।

कुंतीका भाव जानकर भगवान् वापस लौटे। कुंतीके महलमें पधारे। अतिशय आनंद हुआ। अर्जुन वहाँ आया। वह अपनी मातासे कहता है कि भगवान् मेरे सखा हैं अतः मेरे लिये ही वे वापस लौटे हैं।

कुंती कहती हैं, रास्ता रोककर मैंने विनति की इसलिये वे वापस आये हैं।

द्रौपदी कहती है कि कृष्णकी अँगुलि कट गयी थी तो मैंने अपनी साडी चीरकर पट्टी बांधी थी इसलिये वे वापस आये हैं।

सुभद्रा कहती हैं कि मैं तुम्हारी भांति मुँहबोली नहीं किंतु सगी बहन हूँ अतः वे वापस आये हैं। मुझे मिलने आये थे उस समय मैं कुछ बोल न सकी थी सो वे वापस आये हैं।

परमात्मासे प्रेम करोगे तो वे तुम्हारे होंगे।

सबका प्यारा किंतु किसीका भी न होनेवाला। वह सबसे न्यारा है। वह तो सबसे ऊँची प्रेम सगाईके सिद्धांतमें मानते हैं।

भीष्माचार्यका प्रेम अति दिव्य था। कृष्ण कहते हैं मैं कोई सगाई-संबंधको नहीं मानता। मैं तो प्रेम-सगाईको ही मानता हूँ। मैं तो अपने भीष्मके लिये वापस आया हूँ। मेरा भीष्म मुझे याद कर रहा है, पुकार रहा है।

भीष्मपिता उस समय बाणशैया पर सोये हुये हैं। उनका मरण सुधारनेके लिये भगवान् वापस आये हैं।

महात्माओंकी मृत्यु मंगलमय होती है। संतोंका जन्म अपनी तरह सामान्य ही होता है। अतः संतोंकी जन्मतिथि पर उत्सव नहीं मनाया जाता। किंतु संतोंकी मृत्यु मंगलमय होती है, पुण्यमय होती है अतः उनकी पुण्यतिथि मृत्युतिथि मनायी जाती है।

भीष्मपिताकी मृत्यु किस प्रकार होगी उसे देखनेके लिये बडे बडे संत और ऋषि-मुनि वहाँ पधारे हैं।

प्रभुने धर्मराजाको उपदेश दिया। उन्हें सांत्वना नहीं मिल रही। अतः उन्हें भीष्मपिताके पास जानेके लिये भगवान् कहते हैं।

बाणगंगाके किनारे जहाँ भीष्म सोये हैं उस स्थान पर सब आये।

भीष्म सोचते हैं कि उत्तरावस्थामें उत्तरायणमें मुझे मरना है। भीष्मपितामहने कालसे कहा कि मैं तेरा नौकर नहीं हूँ। मैं तो अपने श्रीकृष्णका सेवक हूँ। भीष्म द्वारकानाथका ध्यान

करते हैं। मुझे भगवान्ने वचन दिया है कि अन्तिम समयमें मैं अवश्य आऊँगा किंतु वे तो मैं उनके दर्शन करता हुआ प्राणत्याग करूं ऐसा सोचते हैं, उसी समय धर्मराज वहाँ आते हैं।

धर्मराजसे भीष्म कहते हैं : श्रीकृष्ण तो साक्षात् परमात्मा हैं। वे तेरा निमित्त करके मेरे लिये आये हैं। मेरी मृत्यु सुधारने आये हैं।

भगवान्को भीष्मने वचनबद्ध किया था। कौरव-पांडवयुद्धके समय दुर्योधन भीष्मपितामहसे कहते हैं : दादाजी, आठ दिन तो हो गये फिर भी आप किसी पांडवको मार नहीं सके हैं। आप ठीक तरहसे लडते ही नहीं हैं। भीष्म आवेशमें आ गये। और आवेशावस्थामें ही उन्होंने दुर्योधनसे कहा कि रातको बारह बजे जब मैं ध्यानमें बैठूं तब अपनी रानीको आशीर्वाद लेनेके लिये भेजना। मैं अखंड सौभाग्यका वरदान दूँगा।

श्रीकृष्णको यह जानकर चिंता हुई। दुर्योधनकी पत्नी भानुमतीसे वे मिले और उससे कहा कि दादाजी तो घरके ही तो हैं। उनसे मिलनेके लिये आज जानेकी जल्दी क्या है। कल जाना उनके दर्शनके लिये। भानुमती मान गयी और न गयी।

महात्मा कहते हैं उसी समय कृष्णने द्रौपदीको जगाया। एक स्वरूपसे द्रौपदीको लेकर वे भीष्मपितामहके पास गये और दूसरे स्वरूपसे वे द्रौपदी बनकर अर्जुनकी शैयापर सो रहे। श्रीकृष्ण रूपरहित होते हुए भी अनेक रूपोंवाले हैं।

भीष्मपितामह ध्यान कर रहे हैं। आज द्वारिकाधीशका स्वरूप दीखता नहीं है। किंतु काली कमली, हाथमें दीपक आदि स्वरूपवाले भगवान् दीखते हैं। आज द्रौपदीके रक्षक बनकर भगवान् आये हैं। द्वारपालने उनको रोका। कोई भी पुरुष अंदर जा न सके ऐसी आज्ञा थी। द्रौपदीने अंदर जाकर प्रणाम किया। दुर्योधनकी पत्नी भानुमती ही आयी है ऐसा मानकर भीष्मपितामहने आशीर्वाद दिया कि अखंड सौभाग्यवती भव।

द्रौपदीने पूछा– दादाजी, आपका आशीर्वाद सच होगा? भीष्मने पूछा कि देवी, तू कौन है। द्रौपदीने उत्तर दिया मैं पांडवपत्नी द्रौपदी हूं।

भीष्मपितामहने कहा कि मैंने तुझे आशीर्वाद दिये हैं तो सच ही होंगे। पांडवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा मैंने आवेशवश की है, सच्चे हृदयसे नहीं। तुझे सच्चे हृदयसे आशीर्वाद दिये हैं वे सच ही होंगे। किंतु मुझे तू यह तो बता कि तू अकेली यहाँ कैसे आयी। तुझे द्वारकानाथके सिवा और कौन लाया होगा?

भीष्मपितामह दौडते हुये बाहर आये। श्रीकृष्णको उन्होंने कहा कि आज तो मैं आपका ध्यान करता हूँ किंतु अंतकालमें आपका स्मरण न जाने रहेगा या नहीं। प्राणप्रयाणके समय वातपित्त आदिके प्रकोपसे गला रुंध जायेगा तो वैसे समयमें आपका स्मरण कैसे होगा? सो अंत समयमें मेरी लाज रखनेको पधारियेगा। अंतकालमें भयंकर स्थिति होगी उस समय मुझे लेनेके लिये आइयेगा। उस समय श्रीकृष्णने भीष्मपितामहको वचन दिया कि मैं अवश्य आऊँगा। उनको दिये गये वचनका पालन करने द्वारकानाथ पधारे थे।

प्रभुसे रोज प्रार्थना करो कि मेरी मृत्युके समय जरूर आना। शरीर ठीक हो तो ध्यान, जप हो सकता है। अंतकालमें दुःखसे देहानुसंधान होता है। जिससे परमात्माका ध्यान करना कठिन है।

भीष्मपिता श्रीकृष्णकी स्तुति करते हैं : नाथ, कृपा करो। जैसे खडे हैं वैसे ही रहना।

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।

कृष्ण सोचते हैं कि मुझे बैठनेके लिये भी नहीं कहा? पुंडलीककी सेवा मुझे याद आती है। तुकारामने प्रेमसे एकबार पुंडलीकको उलाहना दी थी कि मेरे विठ्ठलनाथ तेरे द्वार पर आये तो तूने उनकी कदर न की। मेरे प्रभुको तूने आसन भी नहीं दिया।

रोज रोज प्रभुसे प्रार्थना करो कि मेरी मृत्युको सुधारनेके लिये आना। शरीरमें जब शक्ति है तो खूब भक्ति करो और प्रभुको मनाओ।

श्रीकृष्ण कहते हैं : दादाजी, इन धर्मराजाको लगता है कि मैंने ही सबको मारा है। मेरे कारण ही सबका सर्वनाश हो गया। उन्हें शांति मिले ऐसा उपदेश आप करें।

भीष्मपिता कहते हैं : रुकिये। धर्मराजाकी शंकाका निवारण मैं बादमें करूंगा। मेरी एक शंकाका समाधान पहले करें। मेरे एक प्रश्नका पहले उत्तर दें। मेरा जीवन निष्पाप है। मेरा मन पवित्र है, मेरा तन भी पवित्र है, मेरी इन्द्रियाँ भी शुद्ध हैं। मैं उनसे यह बात कर रहा हूँ जो मनकी बातें भी जानते हैं। भीष्म कहते हैं कि मैंने पाप किया ही नहीं है तो फिर मुझे यह दंड क्यों मिल रहा है। मुझे बाणशैया पर क्यों सोना पडा? मुझे अतिशय वेदना क्यों होती है? मैं निष्पाप हूँ फिर भी मुझे क्यों सजा देते हैं।

भगवान् कहते हैं; दादाजी, आपने कोई पाप नहीं किया है यह सच है। इसी कारणसे तो मैं आपसे मिलनेके लिए आया हूं। आपने स्वयं कोई पाप नहीं किया। फिर भी आपने अपनी आंखोंसे पाप होता हुआ देखा है। आपने जो पाप देखा उसीकी यह सजा है।

कोई पाप करे उसे देखना भी पाप है। किसीके पापका विचार करना भी पाप है। किसीका पाप देखना नहीं, सुनना भी नहीं और किसीसे कहना भी नहीं।

भीष्म कहते हैं कि वह पाप मुझे याद नहीं आ रहा है। मैंने कौनसा पाप देखा है?

कृष्ण कहते हैं कि दादाजी, आप भूल गए होंगे किंतु मैं तो नहीं भूला। मैं ईश्वर हूँ। मुझे तो सब कुछ याद रखना ही पडता है। याद करें दादाजी कि एकबार जब आप सभामें बैठे थे वहाँ दुःशासन द्रौपदीको ले गया था। आप उस समय वहीं थे। द्रौपदीने कहा था कि द्यूतमें सब कुछ हारा हुआ पति अपनी पत्नीको दाँव पर लगा नहीं सकता। दुर्योधनने कहा था कि अब द्रौपदी दासी बनी है, उसे निर्वस्त्र करो।

उस समय द्रौपदीने आपसे कहा था कि हारे हुए पतिको अपनी स्त्री दाँव पर लगानेका अधिकार नहीं है। दादाजी, आप न्याय करें कि मैं जिता हूँ या अजिता? उस समय आपने कहा था कि दुर्योधनका अन्न ग्रहण करनेसे मेरी बुद्धि कुंठित हो गई है और आप चुप रह गए। ऐसा घोर पाप सभामें हो रहा हो और आप उसे देखते रहें यह आप जैसे ज्ञानीको शोभा नहीं देता। द्रौपदीका अपमान आप सभागृहमें देखते रहे। द्रौपदीको तो आशा थी आप जैसे ज्ञानी सभामें हैं तो वे न्याय करेंगे ही। आपने उस समय द्विधावश होकर अन्यायको रोका नहीं। अतः निराश होकर द्रौपदीने पुकारा—

हे कृष्ण! द्वारिकावासिन्! क्वासि यादवनंदन।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥

द्रौपदीकी पुकार सुनकर मैं वहाँ गुप्तरूपसे आया था। मैंने सब कुछ देखा। दुःशासन द्रौपदीकी साडी खींच रहा था और आप केवल देखते हुए बैठे थे। सभामें हो रहे अन्यायको आपने चुपचाप होने दिया। इसी पापका आपको यह दंड मिल रहा है।

भीष्मपिताने नमन किया। उन्होंने फिर धर्मराजाको उपदेश दिया। स्त्रीधर्म, आपद्-धर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, आदि समस्याओंका महाभारतके शांतिपर्वमें बोध है और फिर परधर्म बताया।

युधिष्ठिरने पूछा कि सभी धर्मोंमेंसे कौनसे धर्मको आप श्रेष्ठ मानते हैं? किससे जप करनेसे जीव जन्ममरणरूपी सांसारिक बंधनसे मुक्त होता है?

भीष्मपिताने कहा– स्थावर-जंगम रूप संसारके स्वामी, ब्रह्मादि देवोंके देव, देश–काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, क्षर-अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमके सहस्रनामोंका निरंतर तत्परतासे गुणसंकीर्तन करनेसे मनुष्य सभी दुःखोंसे मुक्त होता है।

विष्णुसहस्रनामका पाठ करना ही परमधर्म है। शिवमहिम्न और विष्णुसहस्रनामका रोज पाठ करो। शिवजीकी स्तुति करनेसे ज्ञान मिलता है। ज्ञानसे भक्ति दृढ होती है। विष्णु भगवान्‌की स्तुति करनेसे पाप जल जाता है। विष्णुसहस्र नामके पाठ करनेसे ललाट पर लिखे हुए विधाताके लेख भी बदल जाते हैं। जन्ममरणके बंधनसे जीवको वह मुक्त करता है। भगवान् शंकराचार्यको विष्णुसहस्रनामका पठन बहुत प्रिय था। उन्होंने सबसे पहले विष्णुसहस्रनाम पर ही भाष्य लिखा है। उनका अंतिम ग्रंथ है ब्रह्मसूत्रका भाष्य–शांकरभाष्य। और फिर उन्होंने कलम छोड दी।

विष्णुसहस्रनामका पाठ रोज दो बार करो। बारहवर्ष तक ऐसा करनेसे अवश्य फल मिलेगा। एक बार रातको सोनेसे पहले पाठ करो। इसमें दिव्यशक्ति है। ललाट पर लिखे गए लेखोंको मिटाने और बदलनेकी शक्ति इसमें है। गरीब आदमी विष्णुयाग कैसे कर सकता है? परंतु वह विष्णुसहस्रनामका पंद्रह हजार पाठ करे तो उसे एक विष्णुयागका पुण्य मिलता है।

भोजनकी भांति भजनका भी नियम होना चाहिए। बारहवर्ष तक नियमपूर्वक सत्कर्म करो। फिर अनुभव होगा। चाहे कोई भी काम हो, भगवान्‌का भजन नियमित करो। जिस परमात्माकी कृपासे सुख मिला, पुत्र मिला उस ठाकुरजीकी सेवा–स्मरण जीव न करे तो इससे बडा पाप और कौनसा होगा?

फिर भीष्मपितामहने भगवान्‌की स्तुति की और बोले कि हे नाथ, आपका दर्शन मैं खाली हाथोंसे कैसे करूं? मैं आपको क्या अर्पण करूं?

भगवान् जीवसे धनसंपत्ति नहीं मांगते। वे तो मन–बुद्धि ही मांगते हैं।

भीष्मपितामहने कहा कि मैं अपना मन और बुद्धि आपके चरणोंमें रखता हूँ।

यह जीव बडा कपटी है। और क्या कहूँ? कोई संकट आ जाये तो रणछोडरायजीका दर्शन करने जाता है। वहाँ ग्यारह रुपये भेंट करता है। और कहता है कि हे नाथ, मैंने अदालतमें अपने भाई पर दावा दायर किया है, मेरा ध्यान रखना। ध्यान रखनेसे उसका मतलब कि अदालतमें साथ जाना। वह वकीलको तो ३०० रुपये देगा। और ठाकुरजीको ११ रुपयेमें ही समझा देना चाहता है।

भगवान् कहते हैं कि मैं तो सब कुछ देखता, जानता और समझता हूँ। मैं तो तुम्हारे दादाका भी दादा हूँ। लक्ष्मीजी जब भगवान्से पूछती हैं कि आप अपने भक्तोंको दर्शन क्यों नहीं देते हैं? तब भगवान् कहते हैं कि वह दाता बदलेमें क्या लेना चाहता है वह भी तो देखो।

भगवान्को तुम अपना मन, अपनी बुद्धि, अपना हृदय अर्पित करो।

भीष्मपितामह स्तुति करते है कि हे भगवन्, केवल एक बार मुझसे कहा कि मैं तुम्हारा हूँ।

भक्ति ही मृत्युको सुधारती है, सार्थक करती है। ज्ञान पर भरोसा मत रखो। आत्मा शरीरसे अलग है यह तो सब जानते हैं परंतु इसका अनुभव सबको नहीं होता। दुःख होता है तब मनमें देहाध्यास होता है। देहावसानके समय बीस करोड बिच्छुओंके डंक सी वेदना होती है।

भक्ति मृत्युको सुधारती है। कई बार ज्ञान मृत्युको बिगाडता है।

भीष्मपितामह ज्ञान पर भरोसा नहीं रखते थे। वे भगवान्के शरणमें गये। वे भगवान्से कहते हैं कि मैं आपकी शरणमें आया हूँ। वे ऐसा नहीं कहते कि वे ब्रह्मरूप हैं। वे तो कहते हैं कि मैं आपका हूँ। आपकी शरणमें आया हूँ। भगवान् उन्हें कुछ उलाहना देते हैं। वे कहते हैं कि मैं आपको अपना कैसे मानूँ। आपने तो अर्जुन पर भी बाण चलाये हैं। अपने भक्त पर चलाये गये बाणोंको मै कैसे भूलूं?

भीष्मजी कहते हैं कि यह सारा जग जानता है कि पांडवों पर मेरा कितना प्रेम है। और आप भी तो यह जानतेही हैं। युद्धमें मेरा शरीर कौरवोंके पक्षमें था किंतु मेरा मन तो पांडवोंके पक्षमें ही था। पांडवों पर मैं बाण तो चलाता था पर मनसे मैं यही चाह रहा था कि विजय पांडवोंको ही मिले। जयोऽस्तु पांडुपुत्राणाम् ऐसा बोलकर ही मैं बाण छोडता था।

कृष्ण कहते हैं कि फिर भी आप शरीरसे तो पांडवोंके पक्षमें नहीं थे। आपने कौरवोंके पक्षमें रहकर मेरे पांडवोंके साथ युद्ध किया है। आप जब मनसे पांडवोंके साथ थे तो फिर तनसे भी पांडवोंके साथ क्यों न रहे?

भीष्मपितामह कहते हैं कि हे प्रभो, मैं उस समय आपके दर्शन करना चाहता था। आप अर्जुनके रथ पर थे। मैंने सोचा कि यदि मैं पांडवोंके पक्षमें रहूंगा तो सामनेसे आपके दर्शन कैसे कर सकूँगा? आपका सतत दर्शन करते रहनेके लिये ही मैं पांडवोंके विरुद्ध कौरवोंके पक्षमें जा मिला। पांडवोंके पक्षसे लडता तो आपके दर्शन मैं अच्छी तरह नही कर पाता।

भीष्मजी स्तुति करते हैं :

त्रिभुवनकमन तमालवर्ण रविकरगौरवराम्बरं दधान।
वपुरलककुलावृताननाब्ज विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

जिसका शरीर त्रिभुवनसुंदर और नीलतमाल जैसा है, नीलवर्ण है, जिसके तन पर सूर्यकिरण सा श्रेष्ठ पीतांबर शोभित है और मुख पर कमलके समान उलझी हुई लटें बिखरी हुई है, ऐसे अर्जुनसखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो।

पार्थसखे रतिर्ममास्तु ऐसा स्वरूपवान् पार्थसारथिको रोज अपने संमुख रखो। इन्द्रियोंके घोडोंको भगवान्को सौंप दो। शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोडे हैं।

अपनी निष्काम बुद्धि और मन आपको अर्पित करता हूँ। मतिरूपकल्पिता वितृष्णा। मन तो केवल भगवान्को ही देनेकी वस्तु है। फिर भी जगत्में कोई स्त्रीको मन देता है तो कोई पुरुषको। भगवान् तो कहते हैं तुम अपना धन आदि नहीं किंतु मन ही मुझे दो।

भगवान् कृष्ण सोचने लगे कि वयोवृद्ध भीष्मपितामह बहुत समझदार हैं। कितना मीठा बोलते हैं। यह जीव जब ठाकुरजीको कुछ अर्पण करता है तो उन्हें बड़ा संकोच होता है।

भगवान् आगे सोचते है कि युद्धके समयकी भीष्मपितामहकी विलक्षण मूर्ति मुझे याद आती है। उनके मुख पर बिखरी लटें घोडोंके पांवसे उडती हुई धूलसे मटमैली हो रही थी। और मुख पर पसीनेकी छोटी छोटी बूँदें झलक रही थी।

सुंदर कवचधारी कृष्णके प्रति मेरा शरीर अंतःकरण और आत्मा समर्पित हो जाये। प्रभुसे प्रार्थना करो कि मेरे शरीररथ पर आप विराजें। मेरे शरीररथ पर द्वारिकाधीश विराजे हैं ऐसा भाव मनमें करो। मेरे इन्द्रियरूपी घोडे अकुंशमें न रहें तो प्रभु उनको तुम अंकुशित कर देना। मैंने धुरा आपके हाथमें रख दी है। मेरी इन्द्रियोंको वशमें रखना। मेरा रथ सकुशल पार कर दो।

प्रभुकी शरण ग्रहण करनेवालेका ही मरण सुधरता है।

हे नाथ, जगत्में आपने मेरी प्रतिष्ठा कितनी बढा दी? मुझे कितना संमान दिया! मेरी प्रतिज्ञा रखनेके लिये आपने अपनी प्रतिज्ञा छोड दी।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुम्।

श्रीकृष्णने महाभारतके युद्धमें कोई भी अस्त्र-शस्त्र धारण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। भीष्मने कहा कि मैं तो गंगापुत्र हूँ। मैं तो ऐसा युद्ध करूँगा कि कृष्णको अस्त्र-शस्त्र धारण करने ही पडेंगे। मैं उनसे हथियार चलवा कर ही रहूँगा। भीष्मके बाणोंसे अर्जुन मूर्च्छित हो गया फिर भी वे बाणवर्षा करते रहे। कृष्णने सोचा कि यदि भीष्म बाण चलाते रहेंगे तो मेरे अर्जुनकी मृत्यु हो जाएगी महा अनर्थ होगा। मेरी प्रतिज्ञा चाहे टूट जाय।

भगवान् रथ परसे कूद पडे। सिंहकी भांति दहाडते हुये वे रथचक्र लेकर भीष्मकी ओर दौड पडे। भीष्मने उसी समय कृष्णको नमस्कार किया और भगवान्का जयजयकार किया।

भक्तोंकी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये भगवान् अपनी प्रतिज्ञाको तोड देते हैं। ठाकुरजीकी यह भी एक लीला है। भगवान् भक्तोंका पूरा पूरा संमान करते है। वे मानते हैं कि चाहे मेरी पराजय हो, पर भक्तोंकी विजय होनी ही चाहिए।

भीष्म कहते हैं कि मेरी और कृष्ण दोनोंकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। उस समय भगवान्के दो रूप मैं एकसाथ देख रहा था। एक स्वरूप रथ पर विराजित था और दूसरा रथसे कूदकर चक्र लेकर दौड रहा था। अर्जुन मूर्च्छित होनेसे घोडे रथको कहीं गढेमें न गिरा दें ऐसा सोचकर भगवान्का एक स्वरूप रथ संभालता था और उस रूपने तो कोई भी शस्त्र धारण नहीं किया था।

भीष्म अर्थात् भयंकर। भयंकर कौन है? मन ही भयंकर है। अतः भीष्मका अर्थ है मन। अर्जुन जीवात्मा है। मन आवेशयुक्त होने पर संकल्प-विकल्प बहुत करता है। मन ही संकल्प-विकल्पके बाणोंकी बौछार करता है। अतः जीवरूपी अर्जुन घायल होता है और मूर्च्छित होता है। ईश्वर जब मनको मारने लगते हैं तभी वह अंकुशित होता है। भगवान् मनको सुदर्शन चक्रसे मारने जाते हैं तब कहीं मन शांत होता है।

जीवात्मा जब परमात्माकी शरणमें जाता है तो मनको वे शांत करते हैं। मन संकल्प-विकल्प करना छोड दे तो यह मन आत्मरूपमें तदाकार हो जाता है। तभी जीवनको भी शांति मिलती है।

जो स्तुति भीष्मजीने की थी वह अनुपम है। वह स्तुति कंठस्थ करने योग्य है। इसे भीष्मस्तवराजस्तोत्र भी कहते हैं।

इसके बाद भीष्मने उत्तरायणमें देहको छोड दिया। भीष्माचार्य भगवत् स्वरूपमें तदाकार हो गए। वे कृतार्थ हो गए।

उत्तरायणमें मृत्युका अर्थ है ज्ञानकी अथवा भक्तिकी उत्तरावस्थामें, परिपक्व दशामें मृत्यु। कई पापी लोग भी वैसे तो उत्तरायण कालमें मरते हैं फिर भी उनको सद्गति नही मिलती और कई योगीजन दक्षिणायनमें मरते हैं फिर भी उनकी दुर्गति नहीं होती।

दक्षिण दिशामे यमपुरी है, नरकलोक है। नरकलोकका अर्थ है अंधकार। जिन्हें परमात्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, जिन्होने परमात्माका अनुभव नहीं किया है और वैसे ही मर जाते हैं उनकी मृत्यु दक्षिणायन कहलाती है।

संतोंका जन्म तो हमारी ही भांति साधारण होता है किंतु उनकी मृत्यु मंगलमय होती है।

भीष्म महाज्ञानी थे फिर भी प्रभुप्रेममें तन्मय होकर मरे थे। यह बात हमें बतलाती है कि भक्ति ही श्रेष्ठ है।

साधन-भक्ति करते करते ही साध्य-भक्ति सिद्ध होती है।

जिसकी मृत्युके समय देवगण बाजे बजाते हैं उसकी मृत्यु ही कृतार्थ जानो। भीष्मके प्रयाणके समय देवोंने ऐसा ही किया था। ऐसे काम जगमें करो कि

जब तुम आये जगमें तो वह हँसा, तुम रोए।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो, जग रोए॥

मानवजीवनकी अंतिम परीक्षा उसकी मृत्यु ही है। जिसका जीवन सुंदर होगा, उसकी मृत्यु भी मंगलमय होगी।

जिसका मरण बिगडा उसका जीवन भी व्यर्थ रहा। मरण तब सुधरता है जब मानव प्रत्येक क्षणको सुधारता चलता है जिसको समयके मूल्यका भान होता है। विगत संपत्ति फिर प्राप्त हो सकती है, किंतु विगत समय फिर कभी नहीं मिलता। प्रत्येक क्षणका जो सदुपयोग करेगा उसीकी मृत्यु मांगलिक होगी।

कण कणका सदुपयोग करो और क्षण क्षणका भी। एक भी कणका और एक भी क्षणका दुरुपयोग न करो। कणका जो दुरुपयोग करता है वह दरिद्र बनता है और क्षणको व्यर्थ खर्चनेवाला जीवन बिगाडता है। प्रतिदिन संयमको बढाओ। प्रतिपल जो ईश्वरका स्मरण करता है उसकी मृत्यु भी सुधरती है।

भीष्म आजीवन संयमी रहे थे। संयम बढाकर प्रभुके सतत स्मरणकी आदत होनेसे मरण सुधरेगा।

जीवनका अंतकाल बडा कठिन है। उस समय प्रभुका स्मरण करना आसान नहीं है।

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं,

अंत राम कहि आवत नाहिं।

समस्त जीवन जिसकी लगनमें बीता होगा वही अंतकालमें उसे याद आएगा।

ईश्वर तबतक कृपा नहीं करते कि जब तक मनुष्य स्वयं कोई प्रयत्न करे। सारा जीवन भगवत् स्मरणमें बीते और कदाचित् वह व्यक्ति अंतकालमें भगवान्‌को भूल जाय तो भी भगवान् उसे याद करेंगे।

सत्कर्म कभी व्यर्थ नहीं होता।

भक्त मुझे भूले तो भी मैं उसको नहीं भुलाता ऐसा भगवान्‌ने कहा है। भीष्मपितामहकी मृत्युको उजागर करनेके लिए द्वारिकाधीश पधारे थे। भीष्मपितामहने महाज्ञानका विश्वास न किया और उन्होंने प्रभुकी शरण ली।

भीष्मपितामहकी मृत्युसे युधिष्ठिरको दुःख तो हुआ किंतु उनकी सद्‌गतिसे उसको आनंद भी हुआ।

धर्मराज राजसिंहासन पर बैठे। हस्तिनापुरका शासन करने लगे। उनके राज्यमें अकाल नहीं है। न तो अतिवृष्टि होती है और न अनावृष्टि। धर्मराजके राज्यमें न तो कोई भूखा है और न कोई बीमार।

धर्मकी मर्यादाका पालन करनेवाला कभी भी दुःखी या बीमार नहीं होता।

अनेक जन्मोंकी भोगवासना अभी मनमें है। उसका बिलकुल नाश तो नहीं हो सकता किंतु विवेकसे उपभोग करोगे तो अंतकाल तक इन्द्रियाँ स्वस्थ रहेंगी। धर्मकी मर्यादामें रह कर मनुष्य अर्थ और कामका उपभोग करेगा तो वह दुःखी नहीं होगा। संयम और सदाचार नहीं बढे तो तो धनसंपत्ति भी आनंद नहीं दे सकेगी।

सूतजी सावधान करते हैं।

धर्मराजाके राज्यमें धर्मकी भी शिक्षा दी जाती थी।

आरोग्यं भास्करात् इच्छेत्

मोक्षं इच्छेत् जनार्दनात्।

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान् हैं और बाकी सभी देव भावनासे सिद्धि देते हैं। सूर्यनारायणका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शनके लिये भावनाकी वैसी कोई आवश्यकता नहीं है। इसी प्रत्यक्ष देवकी आराधना करो।

धर्मराज भी सूर्यनारायणकी उपासना करते थे।

सूर्यनारायणकी अराधना किये विना बुद्धि शुद्ध नहीं होती। ज्यादा नहीं तो कमसे कम रोज बारह सूर्यनमस्कार करो।

मेरे सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। कृष्ण ही सूर्यनारायण हैं। श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वयं ही गीतामें कहा है कि ज्योतिषां आदित्यो।

इस सूर्यनारायणकी उपासनाका क्रम कहा गया है। उनकी उपासना करनेवाला कभी दरिद्र नहीं बनता।

महाभारतके वनपर्वमें एक कथा है। युधिष्ठिर सूर्यनारायणकी उपासना करते थे। वनमें सूर्यदेवने उनको एक अक्षयपात्र दिया।

रामको भी सूर्य ही ने शक्ति दी थी और उसी शक्तिसे उन्होंने रावणको मारा। रामने भी यही आदर्श सामने रखा है कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ फिर भी सूर्यनारायणकी उपासना करता हूँ।

धर्मके साथ नीतिका विवाह अर्थात् संबंध न हो तब तक नीति विधवा जैसी ही है। और विना नीतिका धर्म विधुर है।

अर्थोपार्जन वैसे तो धर्म है परंतु वह धर्मानुकूल होना चाहिये।

धर्मराजाके पवित्र राज्यमें किसीके भी घरमें कोई क्लेश न था। पुत्र मातपिताकी आज्ञाका पालन करता था। उस समय राजा धर्मनिष्ठ होनेके कारण प्रजा भी धर्मनिष्ठ थी।

युधिष्ठिरका राजतिलक करके श्रीकृष्ण द्वारिका गये। वहाँकी जनताने रथयात्राका दर्शन किया।

रथमें विराजित द्वारिकाधीशके रोज दर्शन करो। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं। रथ सोनेका है। एक झांकी सी करें तो हमारा हृदय पिघलेगा। इस शरीररथमें श्रीकृष्णकी झांकी करो। हृदयसिंहासन पर बिठाकर भक्तजन प्रभुका दर्शन करते हैं। ज्ञानीजन समाधिकी अवस्थामें ललाटमें ब्रह्मदर्शन करते हैं।

द्वारिकाधीशने द्वारिकामें प्रवेश किया। नगरजन कहते हैं कि आपकी कृपासे वैसे तो सब ठीक था। एकमात्र दुःख यही था कि आपका दर्शन नहीं कर सकते थे।

सभीको कृष्णदर्शनकी आतुरता है।

भगवान्ने अनेक रूप धारण किये और सोलह हजार रानियोंके साथ राजप्रसादमें प्रवेश किया। भगवान् वाणीचतुर हैं। सभी रानियोंसे कहते हैं कि मैं तेरे ही घरमें पहले आया हूँ।

दूसरे दिन रानियोंके बीच प्रेमकलह हुआ। भगवान्की यह दिव्य लीला है। उस समय कामदेव लडने आया। रासलीलामें कामदेव पराजित हुआ था फिर भी उसे मनमें असंतोष रह गया था कि उस समय तो कृष्ण बालक ही थे। उस समय मैं हारा था वह कोई अचरजकी बात नहीं थी।

कामदेवने श्रीकृष्णसे कहा कि जब सुंदर युवतियाँ आपकी सेवा कर रही हों उसी समय मुझे झगडना है। सुंदर प्रेमल हावभावसे रानियोंने श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया। किंतु श्रीकृष्ण तो अजेय ही रहे।

वनमें वृक्षोंके तले बैठ कर कामका दमन करना तो ठीक है किंतु अनेक रानियोंके साथ रहकर कामको जीते वह तो परमात्मा है।

श्रीकृष्णका चिंतन-मनन करनेवालेको काम सता नहीं सकता तो श्रीकृष्णको तो वह कैसे सतायेगा? ईश्वर वह है कि जिसे काम कभी आधीन न कर सके। कामके आधीन हो जाय वह जीव है।

श्रीकृष्णको कामदेव पराजित न कर सका। उसने अपने धनुष-बाणका त्याग करना पडा।

श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। शंकर भी योगीश्वर है। प्रवृत्तिमें पूर्णतः रह कर भी उसमें आसक्त न बने, वही है योगीश्वर। संपूर्ण निवृत्त रहकर स्वरूपमें स्थिर रहे वह है योगीश्वर।

बारहवें अध्यायमें परीक्षितके जन्मकी कथा है। उत्तराने बालकको जन्म दिया। वह चारो ओर देखने लगा। माताके उदरमें मुझे चतुर्भुज स्वरूप जो पुरुष दीखता था वह कहाँ है? परीक्षित भाग्यशाली था कि उसको माताके गर्भमें ही भगवान्‌के दर्शन हुए। यही कारण है कि वह उत्तम श्रोता है।

युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे पूछा कि बालक कैसा होगा? ब्राह्मणोने कहा— वैसे तो सभी ग्रह दिव्य हैं किंतु मृत्युस्थानकी कुछ गडबडी है। उसकी मृत्यु सर्पदंशसे होगी। यह सुनकर धर्मराजाको दुःख हुआ। मेरे वंशका पुत्र सर्पदंशसे मरे यह ठीक नहीं है। ब्राह्मणोंने उनको आश्वस्त किया। चाहे सर्पदंशसे उसकी मृत्यु हो किंतु उसे सद्‌गति मिलेगी। उसके अन्य ग्रह शुभ हैं। इन ग्रहोंको देखकर लगता है कि इस जीवात्माका यह अंतिम जन्म है।

नवं स्थानमें स्वगृहे उच्चक्षेत्रका बृहस्पति जिसके हो वह धर्मात्मा बनता है।

परीक्षित दिनोंदिन बडे हो रहे हैं।

चौदहवें और पंद्रहवें अध्यायमें धृतराष्ट्र-पांडवमोक्षकी कथा है। सोलहवें अध्यायसे परीक्षित चरित्रका आरंभ होता है।

विदुरजी तीर्थयात्रा करते हुए प्रभास क्षेत्रमें आए। उन्हें खबर हुई कि सभी कौरवोंका विनाश हुआ है और धर्मराजा राजसिंहासन पर बैठे हैं। केवल मेरा भाई धृतराष्ट्र ही धर्मराजाके यहां मुठ्ठी भर खानेके लिए रह गया है।

विदुर आए। धर्मराजाने उनका स्वागत किया। विदुरजी संमान मांगने नही आए थे। अपने बंधुको बंधनमुक्त करानेके लिए आए थे। उन्होंने छत्तीस बरसों तक तीर्थयात्रा की।

संत तीर्थोंको पावन करते हैं। वैसे तो—

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यानधारणा।
अधमा मूर्तिपूजा च, तीर्थयात्राऽधमाऽधमा।

इसका कारण यह है कि यात्रामें अन्य चिंताओंके कारण परमात्माका नियमित ध्यान नहीं हो पाता। सत्कर्म नियमपूर्वक नहीं होता है इससे तीर्थयात्राकी अपेक्षा भगवान्का ध्यान श्रेष्ठ है।

देवी भागवतमें लिखा है कि घरकी अपेक्षा अधिक सत्कर्म तीर्थयात्रामें न हो सके तो वह तीर्थयात्रा व्यर्थ ही है।

विदुरजीने छत्तीस वर्ष तक यात्रा की फिर भी बात तो अति संक्षेपमें ही कही।

आत्मप्रशंसा मृत्यु है। अपने सत्कर्मोंका स्वयं अपने मुखसे वर्णन न करो।

विदुरजीने छत्तीस वर्षकी यात्राका छत्तीस शब्दोंमें ही वर्णन किया है। आजकल तो लोग हमने इतनी यात्रा की ऐसी बात बार बार करते हैं।

अपने हाथसे जो भी पुण्यकार्य हो उसे भूल जाओ और जो पाप हो उसे याद रखो। सुखी होनेका यह मार्ग है। किंतु मनुष्य पुण्यको तो याद रखता है किंतु पापको भूल जाता है।

युवावस्थामें जिसने बहुत पाप किए हों उसे वृद्धावस्थामें नींद नहीं आती।

मध्यरात्रीके समय विदुरजी धृतराष्ट्रके पास गए। वे जाग ही रहे थे। विदुरजीने पूछा कि नींद नहीं आ रही है क्या। जिस भीमको तुमने विषभरे लड्डू खिलाए उसीके घरमें तुम अब मीठे लड्डू खा रहे हो। धिक्कार है तुम्हें। पांडवोंको तुमने दुःख दिया। तुम ऐसे दुष्ट हो कि राजसभामें द्रौपदीको बुलानेकी तुमने संमति दी थी। पांडवोंको छोडकर अब यात्रा करो।

धृतराष्ट्र कहता है कि मेरे भतीजे बडे अच्छे हैं। मेरी खूब सेवा करते हैं। उन्हे छोडकर जानेको दिल ही नहीं होता।

विदुरजी कहते हैं। अब तुम्हें भतीजा प्यारा लग रहा है। याद करो कि तुमने पांडवोंको मारनेके लिए कितने प्रयत्न किए थे। भीमसेनको लड्डूमें विष दिया। लाक्षागृहमें आग लगायी। आदि। यह धर्मराजा तो धर्मकी मूर्ति है सो तुम्हारे अपकार बदला उपकारसे दे रहे हैं। मुझे लगता है कि कुछ ही दिनोंमें पाण्डव प्रयाण करेंगे और तुम्हें सिंहासन पर बिठलायेंगे। तुम अब मोह छोडो। तुम्हारे सिर पर काल मंडरा रहा है। तुम्हारे मुख पर मुझे मृत्युका दर्शन हो रहा है। समझ-बूझ कर गृहत्याग करोगे तो कल्याण होगा नहीं तो कालके धक्केके कारण घर छोडना पडेगा। छोडे विना कोई चारा नहीं है। खुद समझ-सोचकर घर छोडे वह बुद्धिमान् है। कुछ ही समयमें तुम्हारी मृत्यु होगी।

यह जीव ऐसा अनाडी है कि सोच-समझकर स्वयं कुछ छोडना नही चाहता। किंतु जब डॉक्टर कहता है कि ब्लडप्रेशर है, कामकाज बंध करो। आराम नहीं करोगे तो जोखिम है, तब वह डरके मारे घरमें बैठ जाता है। इस तरह लोग डाक्टरके कहने पर धंधा-कामकाज छोडते है।

धृतराष्ट्र कहता है- भाई, तेरा कहना ठीक है किंतु मैं तो अंध हूं। अकेला कहां जाऊँ?

विदुरजी कहते हैं कि दिनको तो धर्मराजा तुम्हें जाने नहीं देंगे सो मैं मध्यरात्रिको ही तुम्हें ले चलूं।

धृतराष्ट्र और गांधारीको लेकर विदुरजी सप्तस्रोततीर्थ गए।

सुबह हुई तो युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके महलमें आए। चाचाजी दिखाई नहीं देते। युधिष्ठिरने सोचा कि हमने उनके सौ पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया अतः उन्होंने आत्महत्या की होगी। जब तक चाचा-चाचीका समाचार न मिलेगा तब तक मैं पानी भी नहीं पीऊंगा।

धर्मात्मा व्यथित होता है तो उससे मिलने संत आते हैं। धर्मराजाके पास उस समय नारदजी आए। धर्मराजाने उनसे कहा कि मेरे पापोंके कारण ही चाचाजी चले गए।

वैष्णव वह है जो अपने ही दोषोंको सोचे, दूसरोंके दोषोंको नहीं।

नारदजी समझाते हैं कि धृतराष्ट्रको तो सद्गति मिलनेवाली है। चिंता मत कर। हर एक जीव मृत्युके आधीन है जहां चाचा जाएंगे वहां तुम्हें भी जाना है। आजसे पांचवें दिन चाचाकी सद्गति होगी और फिर तुम्हारी बारी आएगी। चाचाके लिए अब रोना नहीं। अब तुम अपना ही सोचो।

मृत्युसे ग्रसित व्यक्ति कभी वापस नही आता। जीवित अपने ही लिए रोए वह ठीक है। एककी मृत्युके पीछे दूसरा रोता है। किंतु रोनेवाला यह नहीं समझता कि जो वहां गया है उसके पीछे उसे भी जाना है। रोज सोचो कि मुझे अपनी मृत्यु उजागर करनी है तुम्हारे लिए अब छ महिने बाकी हैं। तुम अपनी मृत्युकी सोचो।

सूतजी सावधान करते हैं।

शैयामें सोनेके बाद अर्थात् अंतकालमें आया हुआ सयानापन किस कामका? वह निरर्थक है।

नारदजी कहते हैं: तुम्हें मैं भगवत् प्रेरणासे सावधान करनेके लिये आया हूँ। विदुरजी धृतराष्ट्रको सावधान करने आये थे। मैं तुम्हें सावधान करने आया हूँ। छ मासके पश्चात् कलियुगका प्रारंभ होगा। अब तुम किसीकी भी चिंता न करो। तुम अपनी चिंता करो।

युधिष्ठिरने कई यज्ञ किये। भगवान् द्वारिका गये तो साथमें अर्जुनको भी ले गये। प्रभुकी इच्छा थी कि यदुकुलका नाश हो तो अच्छा हो। और यदुकुलका सर्वनाश हो गया।

युधिष्ठिरने भीमसे कहा कि नारदजीने कहा था वह समय अब आ रहा है ऐसा लगता है। मुझे कलियुगकी परछाई दिखायी दे रही है। मेरे राज्यमें अधर्म बढ रहा है। मंदिरमें ठाकुरजीका स्वरूप आनंदमय नहीं दीखता है। सियार और कुत्ते मेरे समक्ष रोते हैं। तुझे मैं और क्या कहूँ?

मैं कल घूमने गया था। एक लोहारके पास एक वस्तु देखी। मैंने पूछा कि यह क्या है। तो उसने कहा कि यह तो ताला है। लोगोंके घरोंसे चोरी होने लगी है सो ताले लगाने पडते हैं।

आजसे छ महिने पहलेकी बात है। एक वैश्यने एक ब्राह्मणको एक घर बेचा था। उस घरकी बुनियादमेंसे कुछ सोना मिला। ब्राह्मण वह सोना लेकर सेठके पास गया। सेठ धर्मनिष्ठ था। उसने कहा कि मैंने तो मकान तुम्हें बेच दिया था सो उसमेंसे जो कुछ भी मिला वह सब तुम्हारा ही है। ब्राह्मणने कहा कि उस संपत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं है।

मेरे राज्यकी जनता कितनी धर्मनिष्ठ थी। उसी समय मैंने कहा था कि छ महिनेमें ही इन दोनोंका मन कलुषित हो जायेगा। वैसा ही हुआ। कल वे दोनों मेरे पास आये थे और धन पर अपना अपना अधिकार जता रहे थे और अपने साथ एक एक वकील भी लेते आये थे। लगता है कि मेरे पवित्र राज्यमें कलिका प्रवेश अब तो हो ही गया है।

कलि अर्थात् कलहका रूप। जिस घरमें कृष्णकीर्तन, कृष्णकी कथा होती है वहां कलि नहीं जा सकता।

अर्जुन अब तक आया नहीं था और भीमसेन तथा धर्मराजा वैसी बातें कर रहे थे। इतनेमें अर्जुन भी आ गया! उसके मुख पर तेजका आभासमात्र भी नहीं दीखता था। युधिष्ठिरने उससे पूछा कि तेरा तेज कहां गया। अर्जुन, तूने द्वार आए हुए अतिथिका सत्कार किए बिना ही तो कहीं भोजन नहीं कर लिया है न?

अतिथि भगवान्का स्वरूप है। द्वार पर आए हुए अतिथि भूखे रहें तो यजमानके पुण्यका क्षय होता है। नचिकेता यमराजके घर तीन दिन तक भूखा-प्यासा बैठा रहा था। यमराजने आकर पूछा कि तुमने क्या खाया इन तीन दिनों। तो उसने कहा– आपका पुण्य।

मनुष्य शरीरकी अपेक्षा आंख और मनसे अधिक पाप करता है।

गीताजीमें भगवानने अर्जुनको प्रमाणपत्र दिया है कि वह अपापी है, पवित्र है। इसीलिए तो भगवानने उसको गुह्यतम ज्ञान दिया।

एक बार रातके समय उर्वशी अर्जुनसे मिलने आई। अर्जुनने उसका मुख तक न देखा। उसने उर्वशीसे कहा कि माताजी, मैं तो भरतखंडका वासी हूं। मेरे लिए परस्त्री माता समान है।

एकांतमें जो कामको पराजित करे वही वीर है।

मुझे पूरा भरोसा है कि परस्त्री-गमनका पाप अर्जुन नहीं कर सकता। फिर भी वह आज निस्तेज क्यों है? मुझे तो यह लक्षण कलियुगके लगते हैं।

धर्मराज अर्जुनसे पूछते हैं– तेरे आत्मस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण कुशल तो हैं न? वे द्वारिकामें ही हैं क्या?

अर्जुनने कहा– क्या बताऊं भाई? मेरे प्रभुने मेरा त्याग किया है। जिन्होंने लाक्षा-गृहसे हमें बचाया था वे अब तो स्वधाम पधारे हैं। प्रभु मुझे अंतःकालमें साथ नहीं ले गए। उन्होंने मुझसे कहा कि तू जब मेरे साथ आया ही नहीं था तो फिर मैं तुझे अपने साथ कैसे ले जा सकता हूं? मैंने तुझे गीताशास्त्रका जो ज्ञान दिया है वही तेरी रक्षा करेगा। बडे भैया, आजतक मैं कभी हारा नहीं था। किंतु कृष्णविरहसे व्याकुल हुआ मैं आज द्वारिकासे लौट रहा था तो रास्तेमें काबा लोगोंने मुझे लूट लिया। मुझे लगता है कि मुझमें जो शक्ति थी वह मेरी नहीं थी किंतु द्वारिकाधीशकी ही थी, और उनके चले जानेसे वह शक्ति भी चली गई है। मुझे प्रभुके उन अनंत उपकारोंकी याद आ रही है। लाक्षागृहदहन आदि कई संकटा-वस्थामें उन्होंने हमारी रक्षा की थी।

कृष्णकृपाको याद करते करते अर्जुन कृष्णविरहमें रो रहा है।

धर्मराजासे अर्जुन कह रहा है कि द्रुपदराजाकी राजसभामें मैंने जो मत्स्यवेध किया था, वह भगवान्की शक्तिके बल पर ही किया था।

कई महाराजा मत्स्यवेध न कर सके थे। कर्णने सोचा कि मैं मत्स्यवेध करूं। कृष्णने सोचा कि कर्णने मत्स्यवेध कर दिया तो मेरा अर्जुन रह जायेगा और द्रौपदी कर्णकी हो जायेगी। ऐसा सोचकर ही श्रीकृष्णने सभामें कर्णका अपमान करवाया। कृष्णने एक दासीको द्रौपदीके पास भेजा। द्रौपदीने हीनजातिके कर्णसे विवाह करनेसे इन्कार कर दिया।

मुझमें तो हिंमत ही न थी। किंतु मुझ पर भगवान्‌की कृपादृष्टि थी जिससे मुझमें शक्तिसंचार हुआ और मैं उस दिन मत्स्यवेध कर सका।

लाक्षागृहकी आगमें पांडव जल कर मर गये हैं ऐसा मानकर दुर्योधनने तो उनका श्राद्ध भी कर दिया था।

ससारमें मनरूपी मत्स्य घूमता-फिरता है, उसको विवेकरूपी बाणसे मारो। जिसे द्रौपदी मिलती है उसका सारथी भगवान्‌को होना पडता है। द्रौपदी कृष्णभक्तिका ही नाम है। मनको जबतक न मारोगे, कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होगी। मनको जो प्रिय है वह मत करो। मनकी इच्छाके वश नहीं होगे तो धीरे धीरे वह अकुशमे आता जाएगा।

आजतक मौजशौकमें (आनंद-प्रमोदमें), भोगमें, पापमें कितना खर्च कर दिया उसका जीव कोई हिसाब ही नहीं रखता। ब्राह्मणको कुछ दिया हो तो उसे वह याद रखता है। हम और क्या कर सकते हैं? हजार रुपयेका दान दिया है। अंतकालमें जीव चिंता करता है कि मेरी बेटीका क्या होगा? मेरे भानजेका क्या होगा? किंतु तू यह तो सोच कि तेरा क्या होगा?

जिस पर भगवान्‌की कृपावृष्टि होती है वही इस मनमत्स्यको मार सकता है। भगवान्‌की कृपादृष्टि जब तक न हो तब तक मन नहीं मरता।

प्रभुकी कृपादृष्टि होगी तो मनमत्स्य मरेगा। मन मरेगा तो भक्तिरूपी द्रौपदी प्राप्त होगी। परमात्माकी कृपादृष्टि होने पर ही जीव मनको वशमें कर सकता है। प्रभुकी प्रार्थना न करनेसे मन मनुष्यको अधोगतिकी गर्तमें फेंक देता है।

अर्जुनको कृष्णके कई उपकार याद आ रहे हैं। उन्होंने मुझे गीताका उपदेश दिया था। बडे भैया, एक बार भगवान्‌ने मुझसे कहा था कि कुछ मांगो। बडे बडे ऋषि और महात्मा जन्ममरणके फेरोंसे मुक्ति पानेकी इच्छासे जिनका ध्यान करते हैं उनसे मैंने मांगा कि युद्धमें मुझे जीत मिले। अफसोस, मुझे मांगना ही नहीं आया।

किरातवधके समय मैं शंकरके साथ युद्ध कर सका वह भी श्रीकृष्णके ही प्रतापसे।

बडे भैया, द्रौपदीसे भी कृष्णको कितना स्नेह था? द्रौपदीके केश पकडकर दुष्टजन उसे सभामें खींच लाए। आंसूभरी आंखोंसे द्रौपदी कृष्णके चरणोंमें जा गिरी। उन्होंने सभामें ही प्रतिज्ञा की कि इस अपमानका मैं बदला लूंगा, और कृष्णने उन दुष्टोंकी ऐसी दशा की कि उनकी पत्नियां विधवा बनीं और उन्हें अपने केश स्वयं ही छोडने पडे।

बडे भैया, याद करो वह प्रसंग कि जब हमारा नाश करनेके लिए कपट करके दुर्योधनने दुर्वासाको भेजा था। भाजीके एक ही पत्तेसे अक्षयपात्र भरके कृष्णने हमें उस सकटसे बचाया था।

दुर्योधनने चार महिनों तक दुर्वासाको अपने यहां भोजन कराया। वे प्रसन्न हुए। उन्होंने दुर्योधनसे वर मांगनेको कहा। दुर्योधनने सोचा कि दुर्वासाके शापसे पांडवोंका नाश करनेका यह अच्छा अवसर है। कल इस ऋषिका एकादशीका अनशन था। वैसे तो सूर्यदेवका अक्षयपात्र पांडवोंके पास है, किंतु द्रौपदीके भोजन कर लेनेके बाद उसमेंसे कुछ भी नहीं मिलता। दुर्वासा द्रौपदीके भोजन करनेके बाद वहां पहुंचेंगे और द्रौपदीसे भोजन न मिलने पर क्रोधित होंगे और पांडवोंको शाप देंगे, जिससे पांडवोंकी दुर्गति होगी।

दुर्योधनने ऐसा कुविचार करके दुर्वासासे विनति की कि आप अपने दस हजार शिष्योंको साथ ले जाकर युधिष्ठिरका आतिथ्य स्वीकार करें क्योंकि अपने कुटुंबके वे ही गुरुजन हैं। और हां, द्रौपदी बेचारी भूखी न रह जाय इसलिए पांडवोंके भोजन करलेनेके बाद ही वहां आप जाइएगा।

संतकी सेवा सद्भावसे करेंगे तो फलीभूत होगी किंतु दुर्भावसे करेंगे तो सफल नहीं होगी।

चार मास तक दुर्वासाको अपने यहाँ भोजन कराकर दुर्योधनने पांडवोंके सर्वनाशकी इच्छा की। इसी दुर्भावनाके कारण उसकी अपनी ही हानि हुई। अन्यथा संतको भोजनदान करनेसे पुण्य मिलता है। दुर्योधनने संतकी सेवा तो की किंतु किसीके सर्वनाशके हेतु की थी सो उसे पुण्य नहीं मिला।

दुर्योधनकी विनतिके अनुसार दुर्वासा दस हजार शिष्योंके साथ पांडवोंके आँगनमें पधारे। दुर्वासाने युधिष्ठिरसे कहा– राजन् ! कल एकादशीका अनशन था सो आज हमें बडी भूख लगी है। आपके घर हम भोजन करनेकी इच्छासे आये हैं।

सूर्यनारायण द्वारा दिये गये अक्षयपात्रसे पांडव मध्याह्नकालमें आये हुये ब्राह्मणोंको भोजन कराते है। अक्षयपात्र संकल्पानुसार भोजन देता था।

पांडव तो ऐसे भक्त हैं कि विपदावस्थामें भी ईश्वरकी कृपाका ही दर्शन और अनुभव करते हैं।

आज द्रौपदी भोजन कर चुकी है सो अक्षयपात्रसे कुछ भी मिलनेकी संभावना थी नहीं। फिर भी युधिष्ठिरजीने दुर्वासासे कहा कि बडी कृपा हुई हम पर कि आपने हमारा आंगन पावन किया। आप सब गंगास्नान कर लें इतनेमें भोजन तैयार कर देंगे।

धर्मराजाका धैर्य तो देखो कि घरमें अन्नका एक कण भी नहीं है फिर भी उन्होंने दस हजार ब्राह्मणोंको भोजनके लिये आमंत्रण दिया।

युधिष्ठिरको विश्वास है कि मैंने आज तक कभी अपने धर्मकी उपेक्षा नहीं की है। इससे धर्मस्वरूप प्रभु मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। भीम, अर्जुन, द्रौपदी आदि चिंता कर रहे हैं कि इन सबको भोजन कैसे करायेंगे। द्रौपदी भी सोचती है कि अब अक्षयपात्र भी काम नहीं आ सकता क्योंकि मैंने भोजन कर लिया है। द्रौपदी दुःखसे कातर हो रही थी कि भोजन न मिलनेसे क्रोधित होकर दुर्वासा शाप देंगे और मेरे पांडवोंका सत्यानाश हो जायेगा।

×

द्रौपदी द्वारिकाधीशकी प्रार्थना करने लगी। नाथ, मेरी लाज रखना, नहीं तो जगत् तुम्हारी भी खिल्ली उडायेगा। द्रौपदीने आर्तनाद किया कि जिस प्रकार आज तक तुमने हमारी सहायता करके लाज रखी है उसी तरह आज भी हमारी लाज रखना। आज जो हम इन दस हजार संतोंको भोजन न दे सकेंगे तो दुर्वासा शाप देंगे और हमारा सर्वनाश होगा।

जीव जब तक प्रभुको प्रेमसे घबडाकर पुकारता नहीं है तब तक कुछ नहीं होता। जीव संकटावस्थामें प्रभुको पुकारता है।

द्रौपदीने दुःखसे कातर होकर घबडाकर प्रभुको पुकारा। परमात्माने द्रौपदीकी आर्त-वाणी सुनी तो उसकी सहायता करनेके लिये आनेको तैयार हो गये।

भक्त जब हृदयपूर्वक कीर्तन करता है तो भगवान्का सिंहासन भी डोलने लगता है।

भगवान् जानेकी तैयारी कर रहे थे तब उत्थानका समय हो रहा था। रुक्मिणिजी थालमें मेवा लेकर आई थीं। एक ओर रुक्मिणि कृष्णसे भोग लगानेका आग्रह कर रही थीं और भोगके बाद जानेको कहती थीं तो दूसरी ओर द्रौपदी आर्तनाद कर रही थी। कृष्णने वहां जानेका सोचा तो रुक्मिणी पहले भोगका आग्रह करने लगी। तो भगवान्ने कहा कि दस हजार ब्राह्मणोंको द्रौपदी वनमें भोजन कैसे करायेगी? मैं तो चला, भोजन मैं भी वहीं कर लूंगा।

द्वारिकानाथ दौडते हुए द्रौपदीकी वह कुटियामें आये जहां वह बडी तन्मयतासे प्रार्थना कर रही थी। भगवान् वहीं प्रगट हुए।

इस प्रकार तन्मयतासे कीर्तन करो कि भगवान् बांहोंमें लेकर तुमसे कहे कि आंखें खोलो, मैं आ गया हूँ।

भगवान्ने द्रौपदीसे कहा कि देख मैं आ गया हूँ। मुझे बडी भूख लगी है। कुछ खाने-को तो दे। द्रौपदीने हाथ जोडकर कहा कि हम तो लुट गये है। हमारे घरमें कुछ भी नहीं है। आप मजाक न करें। दस हजार संतोंको भोजन कराना है इसीलिये मैंने आपको पुकारा है। आप उसकी व्यवस्था करके हमारी लाज रखें तो बडी कृपा होगी।

तो भगवान् कहते हैं कि उन संतोंके भोजनका प्रबंध तो बादमें होता रहेगा किंतु पहले मेरे लिए खानेकी तो कुछ बात कर। तू अपने भोजनसे पहले मेरे लिए हमेशा कुछ न कुछ रख लेती है तो आज जो भी तूने रख छोडा हो वह मुझे दे।

द्रौपदी कहती है कि नाथ, आज तो मैं भूल ही गई थी सो आपके लिए भी कुछ भी नहीं रहा है।

भगवान्ने कहा कि वह तुम्हारा अक्षयपात्र मुझे दिखाओ। शायद मेरे लिए उसमें कुछ हो। द्रौपदीने प्रभुके हाथमें अक्षयपात्र रख दिया। उन्होंने उसमें देखा तो सब्जीका एक पत्ता उसमें रह गया था।

वैसे तो अक्षयपात्रमें वह पत्ता कहांसे आ सकता था? किंतु भगवान्ने प्रेमपयोगसे पत्ता उत्पन्न कर लिया। उन्होंने उस पत्तेका प्राशन किया।

परमात्माको जीव जब प्रेमसे कुछ भी देता है तो उन्हें तृप्ति हो जाती है। अंतर्यामी रूपसे वे सभी जीवोंमें व्याप्त हैं अतः उनकी जब तृप्ति होती है तो सभी जीव भी तृप्त होते हैं। परमात्माको हजारों बार मनाओ तब कहीं किसी दिन वे भोग लगाते हैं। कन्हैयाको रोज भोग लगाओ। किसी दिन कुछ भी वे ग्रहण करेंगे तो भी तुम्हारा बेडा पार हो जाएगा। परमात्माको अल्पमात्रामें भी भोजन कराओगे तो सारे जगत्को भोजन करानेका पुण्य मिलेगा।

भगवान् द्रौपदीसे कहते हैं कि आज जगत्के सभी जीव तृप्त हो गए। भगवान्, दुर्वासा और अन्य दस हजार संत सभी तृप्त हो गए।

युधिष्ठिरने जाते हुए ब्राह्मणोंको रोकनेकी आज्ञा दी। भीम संतोंको बुलाने गया तो वहां वे तृप्तिकी डकार ले रहे थे। वे भोजन करनेके लिए आनेका नाम ही नहीं लेते थे।

दुर्वासाने सोचा कि यह काम कृष्णका ही हो सकता है। उन्होंने भीमसे पूछा कि कहीं द्वारिकासे कृष्ण तो नहीं आए हैं न। भीमने कहा कि वे तो कभीके आए हुए हैं और द्रौपदीसे बातचीत कर रहे हैं। वे तो कहते हैं कि दुर्वासा तो मेरे गुरु हैं सो मैं उनको आज प्रेमसे भोजन कराना चाहता हूं।

दुर्वासाने कहा कि कृष्ण मेरे गुरुके भी गुरु हैं। मैं उनका गुरु नहीं हूं। अब मुझे भोजन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा संयम, सदाचार, धर्मपालन, कृष्णभक्ति, कृष्णप्रेम देखकर मुझे विना भोजन किए ही तृप्ति हो गई है। मैं संतुष्ट हुआ हूं। दुर्वासाने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी (पांडवोंकी) विजय होगी और कौरवोंका विनाश होगा।

बडे भैया, सेवा दुर्योधनने की और आशीर्वाद आपको मिला।

शंकर स्वामी कहते हैं कि यदि जीव और ब्रह्म एक न हों तो श्रीकृष्ण पत्तोंका प्राशन करें और दुर्वासा तृप्त हों ऐसा कैसे हो सकता है? जीव और ईश्वरका भेद आभासमात्र है और तत्त्व तो एक ही है।

भगवान्के स्वधामगमन और यदुवंशके विनाशका समाचार सुनकर युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया। परीक्षितको राजसिंहासन दे दिया। पांडवोंने द्रौपदीको साथ लेकर स्वर्गारोहणके लिए हिमालयकी दिशामें प्रयाण किया। केदारनाथमें उन्होंने भगवान् शिवजीकी पूजा की। जीव और शिवका मिलन हुआ। उसके आगे निर्वाण पंथ है। पांडवोंने वही रास्ता लिया। चलते चलते सबसे पहले द्रौपदीका पतन हुआ क्योंकि वैसे तो वह भी पतिव्रता थी किंतु अर्जुनके प्रति उसे अधिक प्रेम था सो वह उसकी ओर पक्षपातका भाव रखती थी।

दूसरा पतन हुआ सहदेवका। क्योंकि उसे अपने ज्ञानका अभिमान था। तीसरा पतन हुआ नकुलका क्योंकि उसे अपने रूपका अभिमान था। फिर पतन हुआ अर्जुनका। उसे अपने बलका अभिमान था।

फिर पतन हुआ भीमका। उसने धर्मराजसे पूछा कि मेरा पतन क्यों हुआ। मैंने तो कभी कोई पाप किया ही नहीं था।

युधिष्ठिरने कहा कि खाता बहुत था सो तेरा पतन हुआ।

खानेके समय आँखें खुली रखो, किंतु संतोंको और देवोंको भोजन कराते समय आँखें बंद रखो।

धर्मराज अकेले आगे बढने लगे। धर्मराजाकी परीक्षा करनेके लिए यमराज कुत्तेका रूप लेकर उनके पास आये। उन्होंने दूसरा भी रूप लिया और युधिष्ठिरसे कहा कि मैं तुम्हें स्वर्गमें ले जाऊंगा किंतु तुम्हारे पीछे पीछे जो कुत्ता चला आ रहा है उसे स्वर्गमें प्रवेश न मिलेगा। तो युधिष्ठिरने कहा कि जो मेरे साथ साथ चला आया है उसे मैं अकेला कैसे छोड दूँ। उसे छोडकर मैं स्वर्गमें नहीं आ सकता।

सात कदम साथ चलनेवाला मित्र बन जाता है।

धर्मराजा सदेह स्वर्ग गये। तुकाराम भी सभीको राम राम कहते हुये स्वर्ग गये थे।

आम्हीं जातो आमुच्या गांवा,
आमचा राम राम घ्यावा।

ऐसा कहते हुये वे स्वर्ग गये।

मीराबाई भी सदेह स्वर्गमें गयीं थीं। वे द्वारिकाधीशमें सदेह समा गयी थीं, लीन हो गयी थीं। मेवाडमें उनको बहुत कष्ट मिला था सो उन्होंने मेवाड छोड दिया। उनके जानेके बाद मेवाड बहुत दुःखी हुआ। वहां यवनोंका आक्रमण हुआ। राणाजीने सोचा कि मीरा फिर मेवाड आये तो देश सुखी हो। राणाजीने ब्राह्मणोंको और भक्तोंको मीराको बुलानेके लिये भेजा। मीराने उनसे कहा कि कल यदि मेरे द्वारिकानाथकी अनुज्ञा मिलेगी तो मैं आपके साथ आऊँगी।

अगले दिन मीराने दिव्य शृंगार किया। वे आतुर थीं कि आज उन्हें अपने गिरिधर गोपालसे, अपने प्राणप्रियतम श्रीकृष्णसे मिलना है। मैं इस संसारमें अब रहना नहीं चाहती। कृपा करो मेरे नाथ! कीर्तनके साथ साथ वे नर्तन भी करने लगीं। आज उनका अंतिम कीर्तन था। द्वारिकानाथने उनको अपने हृदयसे लगा लिया। मीरा सदेह द्वारिकाधीशमें विलीन हो गयीं। कृष्णभक्तिसे उनका शरीर इतना दिव्य हुआ था कि वह सशरीर कृष्णमें विलीन हो गयीं।

आत्मा और परमात्माका मिलन कोई आश्चर्यकी बात तो नहीं है। किंतु कृष्णप्रेमसे जड शरीर भी चेतन बनता है और चेतनमें विलीन हो जाता है। दिव्य पुरुष सशरीर परमात्मामें जा मिलते हैं। प्रयाण और मरणमें भेद है। अंतिम श्वास तक नित्यकर्म करता रहे उसका प्रयाण कहा जायेगा और मलिन अवस्थामें हाय हाय करता हुआ देह छोडे उसका मरण कहा जायेगा।

पांडव प्रभुके धाममें गये। उनकी मृत्यु उजागर हो गयी। क्योंकि उनका जीवन श्रेष्ठ था और शुद्ध था। उन्होंने अपने जीवनकालमें कभी धर्मको छोडा नहीं था।

धनकी अपेक्षा धर्म श्रेष्ठ है। धन इस लोकमें कुछ सुख देता है और कभी कभी दुःख भी देता है। किंतु धर्म तो जीवन और परलोक दोनोंको उजागर करता है। धर्म मृत्युके बाद भी साथ साथ आता है।

अब परीक्षित राज करने लगे। उन्होंने धर्मसे प्रजापालन किया। तीन अश्वमेध यज्ञ भी किये।

अश्वमेध यज्ञके समय घोडेको मुक्तासे विचरण कराया जाता है। वासना ही घोडा है। वासना कभी कहीं बंधती ही नहीं है। आत्मस्वरूपमें विलीन होनेपर ही वह अंकुशित होती है। किसी विषयमें वासना फंस न जाय उसका ध्यान रखना जरूरी है।

इन्द्रिय, शरीर और मनोगत वासनाका नाश ही तीन यज्ञ हैं।

परीक्षितने यही तीन यज्ञ किये। चौथा यज्ञ बाकी था। बुद्धिगत वासनाका नाश तो शुकदेवजी जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी कृपासे ही होता है। अतः चौथा यज्ञ अभी तक हुआ नहीं था।

शुद्ध आचार हों तो विचार शुद्ध होते हैं। जलशुद्धि और अन्नशुद्धिकी मर्यादाओंके पालनसे सिद्धि मिलती है। आचार शुद्ध रखो। स्वेच्छाचारीका पतन होता है।

परीक्षितके आचार अति शुद्ध थे अर्थात् धर्मशास्त्रकथित मर्यादाके अनुसार थे। सो उनमें कलिपुरुषका प्रवेश न हो सका। कलिने सोचा कि परीक्षित कुछ पाप करे तो मैं उसमें प्रवेश पा जाऊंगा। राजाके मनमें पहले प्रवेश करूं तो प्रजामें भी प्रविष्ट हो सकूंगा।

समाजको सुधारना अब अशक्य सा हो गया है। किंतु व्यक्तिगत जीवन तो सुधर सकता है। आचार और विचारसे जो शुद्ध होता है उसके घरमें कलि नहीं आ सकता। जिसके घरमें कृष्णकीर्तन, कृष्णसेवा नित्य होती हो उसके घरमें कलि प्रवेश नहीं कर सकता। आज भी कुछ वैष्णव घर ऐसे हैं जिसमें कलि प्रवेश नहीं पा सका है।

शास्त्रकी रचना मनुष्यके कल्याणके लिए ही की गई है। जो आचारधर्म छोड देता है उसके विचार भी अशुद्ध हो जाते हैं। धर्म माता-पिता है। पत्नीकी पसंदगी हो सकती है माता-पिताकी नहीं। धर्मका परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वर्णाश्रमधर्मके पालनसे आचार शुद्ध हो सकते हैं।

गायकी सेवा करो। गाय खाती तो है घास, किंतु देती है दूध। जो भगवान्ने संपत्ति दी हो तो गौपालन करो। आजकल लोग धनसंपत्ति मिलने पर कुत्ते पालते हैं। कुत्तेका अनादर करनेकी बात नहीं है किंतु मर्यादाको छोडकर अधिक प्रेम न करो। आंगनमें आए हुए कुत्तेको रोटी खिलाना धर्म है किंतु कुछ लोग उसे अपनी मोटरमें बिठाकर घूमते-फिरते हैं। और तो हम क्या कह सकते हैं ऐसे लोगोंके लिए? किंतु अगले जन्ममें स्वयं ही कुत्ता होनेकी यह तैयारी है।

जीवमात्रमें परमात्मा है। किंतु प्रत्येकका शरीर भिन्न है और कर्म भी भिन्न भिन्न है इसलिए हरेकके साथ पीना और खाना इष्ट नहीं है।

एकादशीके दिन अन्न नहीं खाना चाहिए। एकादशीके दिन अनशन करना धर्म है। किंतु हम अपने ही शास्त्रोंकी बात नहीं मानते। और जब डॉक्टर कहता है कि विषमज्वर (टाइफोइड) है और इक्कीस दिन भोजन मत करना तो उसकी बात मान लेते हैं और इक्कीस दिनका अनशन कर लेते हैं।

जिस तरह पापीके मनमें कलि प्रवेश कर लेता है उसी तरह शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवालेके घरमें भी घुस जाता है।

यदि आचार-विचार शुद्ध हों तो कलि तुममें प्रवेश नहीं कर सकेगा। व्यवहार भी शुद्ध ही होना चाहिए। सत्यपूर्ण, शुद्ध व्यवहार न करे और केवल हर पूर्णिमाके दिन सत्यनारायणकी पूजा करे तो उससे क्या लाभ होगा? असत्यभाषीकी पूजा सत्यनारायणको अस्वीकार्य है।

एक दिन एक आश्चर्यजनक घटना हुई। परीक्षित दिग्विजय करने निकले हैं। घूमते फिरते वे सरस्वती नदीके किनारे पर आये। वहां गाय-बैलोंको एक काला पुरुष लकडीसे पीट रहा था।

बैल धर्मका स्वरूप है और गाय पृथ्वीका स्वरूप है।

गायकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। धर्मरूप बैल उससे दुःखका कारण पूछता है। पृथ्वी कहती है श्रीकृष्णने इस पृथ्वीलोकसे अपनी लीला समेट ली है सो यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हुआ है।

धर्मकी मर्यादाका पालन ठीक तरहसे करोगे तो ज्ञान अपने आप ही प्रकट होगा। धर्मारूढ रहोगे तो ज्ञानगंगाका अवतरण होगा। शिवजी नंदी पर अर्थात् धर्म पर आरूढ हैं सो उनके सिर पर ज्ञानगंगा है।

धर्मके चार अंग मुख्य हैं- (१) सत्य (२) तप (३) पवित्रता और (४) दया। इन चारोंका योगफल ही धर्म है। इन चारों अंगों पर जब धर्म आधारित था तब सत्ययुग था। तीन अंगों पर आधारित था तब त्रेतायुग आया, दो अंगों पर ही आधारित रहा तब द्वापरयुग आया और एक ही अंग पर धर्म आधारित रह गया तो कलियुग आया।

सत्य : सत्य ही परमात्मा है। सत्य और परमात्मा भिन्न नहीं हैं। जहां सत्य है वहीं परमात्मा है। जो असत्य बोलता है उसके पुण्योंका क्षय होता है। सत्यके सहारे नर नारायणके पास जा सकता है। जो हितभाषी और मितभाषी है वह सत्यवादी हो सकता है।

तप : तप करो। हर प्रकारके सुखोंका उपभोग न करो। थोडीसी तपश्चर्या रोज करो। जो हरेक प्रकारके लौकिक सुखोंका उपभोग करता है उस पर परमात्मा कृपादृष्टि नहीं करते। दुःख सहकर परमात्माकी आराधना करना ही तप है। दुःख सहता हुआ प्रभुभजन करे वही श्रेष्ठ है। जीभ जो मांगे वह सब कुछ उसे देते मत रहो। कुछ सहन करना भी सीखो। इन्द्रियोंका स्वामी आत्मा है। इन्द्रिय जो कुछ मांगे वह उसे देनेसे तो आत्मा उसका गुलाम बन जायेगा। विधिपूर्वक अनशन करनेसे पाप भस्मीभूत होते हैं। भगवान्के लिए कष्ट सहना, दुःख सहना ही तप है। वाणी और वर्तनमें संयम और तप होने ही चाहिए।

पवित्रता : कलियुगमें पवित्रता रही ही कहां है? बाहरसे सब पवित्र लगते हैं और अंदरसे सब मलिन हो गए हैं। वस्त्रोंका दाग तो मिट सकता है किंतु कलेजे पर पडा दाग कभी नहीं मिटता। जीवात्मा वैसे तो सबकुछ छोडकर जाता है किंतु मनको तो वह अपने साथ ही लेकर जाता है। पूर्वजन्मका शरीर नहीं रहता किंतु मन तो रहता ही है।

लोग वस्त्र, अन्न, आचार आदिकी देखभाल बहुत करते हैं किंतु मृत्युके बाद भी जो साथ आनेवाला है उस मनकी कोई देखभाल नहीं करता। मृत्युके बाद जो साथ आनेवाला है उसीकी चिंता करो, उसीकी देखभाल करो। जिस तरह कपडोंको स्वच्छ रखते हो उसी तरह मनको भी स्वच्छ रखो।

जिस तरह संसार-व्यवहार निभाती हुई माता अपने बच्चेकी देखभाल करती है उसी तरह व्यावहारिक कर्म करते हुए भी ईश्वरके साथ संबंध बनाये रखो। हमेशा सोचते-संभालते रहो कि अपना मन कभी न बिगडे।

दया : धर्मका चौथा अंग है दया। श्रुति कहती है जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है वह अन्न नहीं, पाप खाता है।

धर्मके इन चार चरणोंमें सत्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोपरि है।

महाभारतमें सत्यदेवकी कथा है।

लक्ष्मी चंचल है। वह किसी न किसी पीढीके हाथोंसे चली ही जायेगी।

एक दिन प्रातःकाल सत्यदेव जब जगा तो उसने अपने घरसे एक सुंदरीको बाहर जाते हुये देखा। राजाको आश्चर्य हुआ। उसने स्त्रीसे पूछा कि वह कौन है ! उसने उत्तर दिया कि उसका नाम लक्ष्मी है, मैं अब तेरे घरसे जा रही हूँ। राजाने अनुज्ञा दी।

कुछ देर बाद एक सुंदर पुरुष घरसे बाहर निकला। राजाने जब उससे पूछा कि वह कौन है, तो उसने कहा कि वह दान है। जब लक्ष्मीजी यहांसे चली गयीं तो तुम दान कैसे कर सकोगे ? सो मैं भी लक्ष्मीके साथ ही जा रहा हूँ। राजाने उसे भी जाने दिया। फिर एक तीसरा पुरुष बाहर जाने लगा। उसने बताया कि वह है सदाचार। जब लक्ष्मी और दानही न रहे तो मैं रहकर क्या करूंगा ? राजाने उसे भी जानेकी अनुमति दे दी। फिर एक और सुंदर पुरुष बाहर जाते हुए दीखा। पूछने पर उसने अपना नाम बताया कि वह यश है। वह बोला– 'जहां लक्ष्मी, दान और सदाचार न हों वहां मैं नहीं रह सकता।' राजाने उसे भी जाने दिया।

कुछ देर बाद एक और सुंदर युवक घरसे निकलकर जाने लगा। पूछने पर उसने अपना परिचय दिया कि वह सत्य है। जब आपके यहां लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश नहीं रहे तो मैं अकेला कैसे यहां रहूं ? मैं भी उनके साथ जाऊँगा।

तो सत्यदेव राजाने कहा कि मैंने तो आपको कभी छोडा ही नहीं फिर आप मुझे क्यों छोडकर जा रहे हैं। आपको अपने पास रखनेके लिये ही मैंने लक्ष्मी–यश आदिका त्याग किया है। मैं आपको जाने नहीं दूँगा। आप मुझे छोडकर चले जायेंगे तो मेरा तो सर्वस्व लुट जायेगा। राजाकी इस प्रकारकी प्रार्थनाके कारण सत्य नहीं गया और जब सत्य ही नही गया तो लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश भी राजाके घर वापस लौट आये।

जहाँ सत्य होता है वहाँ लक्ष्मी, दान, सदाचार और यशको आना ही पडता है। बिना सत्यके ये सब व्यर्थ हैं। इसलिये यह स्पष्ट ही है कि सत्य ही सर्वस्व है। बाकीकी चार संपत्तियां चली जायें तो कोई चिन्ता नहीं, किंतु सत्य नहीं जाना चाहिये। सत्य रहेगा तो सब कुछ रहेगा।

सूतजी वर्णन करते हैं। इस अध्यायमें धर्मकी व्याख्या की गयी है। सत्य, तप, पवित्रता और दान ये चार ही धर्मके प्रधान अंग हैं। इन चारोंका समन्वय ही धर्म है। इन चार तत्त्वोंसे जो परिपूर्ण है वही धार्मिक है।

सत्ययुगमें ये चारों तत्त्व थे। फिर त्रेतामें सत्य चला गया। द्वापरमें सत्य और तप न रहे। और कलियुगमें सत्य और तपके साथ साथ पवित्रता भी चली गयी। कलियुगमे केवल दान ही रह गया। कलियुगमें दान ही प्रधान है। दानं एकं कलियुगे। कलियुगमें केवल दान और दयाके सहारे ही धर्म रह गया है।

परीक्षित राजाने देखा कि एक बैल केवल एक ही पांव पर खडा है और एक व्यक्ति उसे लकडीसे मार रहा है। राजाने बैलसे पूछा कि तेरे तीन चरण किसने काट दिये? धर्मरूपी बैलने कहा कि राजन्, मैं अभी तक यह निर्णय नहीं कर सका हूँ कि मेरे पांव किसने काटे और कौन मुझे दुःखी कर रहा है? कोई कहता है कि काल दुःख दे रहा है तो कोई कहता है कि कर्म ही मनुष्यको दुःख देता है। कोई दुःखका कारण स्वभाव बतलाता है।

अपना स्वभाव शांत रखो। काल, कर्म और स्वभाव ही जीवको दुःख देते हैं।

राजन्, मेरे दुःखका कारण आप ही सोचे। राजा समझ गए कि वह कठोर पुरुष जो कि गाय-बैलोंको सता रहा है कलि ही है। यह कलि ही धर्मनिष्ठोंको सताता है। वे कलिको दंड देनेको तैयार हुए तो कलि राजाकी शरणमें आया। कलिने परीक्षितके चरणोंका स्पर्श किया और यही कारण है कि परीक्षित राजाकी मति भ्रष्ट हुई।

जिस मनुष्यके स्वभाव और चरित्रसे हम अनजान हों उसका हमें कभी स्पर्श न करना चाहिए। जिस व्यक्तिका तुम स्पर्श करोगे उस व्यक्तिके कुछ न कुछ परमाणु तुम्हारे शरीरमें प्रविष्ट हो जाएंगे। पुण्यशाली व्यक्तिके परमाणु पवित्र होते हैं और पापी व्यक्तिके परमाणु अपवित्र होते हैं। जैसे व्यक्तिका स्पर्श करोगे वैसे व्यक्तिके परमाणु तुम्हारे शरीरमें घुस जाएंगे।

परीक्षित राजाने कलिको स्पर्श करने दिया तो उनकी बुद्धिमें विकार आ गया। राजा जानते थे कि यह कलि है, अपवित्र है सो उसे दंड देना चाहिए। दुष्टोंको दंड देना राजाका धर्म है। फिर भी उन्होंने कलिके प्रति दया जताई। उन्होंने कलिसे कहा कि तुझे मारूंगा नहीं किंतु तू मेरे राज्यकी सीमासे बाहर चला जा। मेरे राज्यमें लिए तेरे कोई स्थान नही है।

कलिने राजासे प्रार्थना की और कहा कि मैं अब कहां जा सकता हूं? तो परीक्षितने उसे चार स्थानोंमें रहनेकी अनुमति दी। वे स्थान हैं, द्यूत, मदिरा, नारीसंग और हिंसा। इन चार स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता ये चार अधर्म रहते हैं।

जुए और सट्टेका धन जिसके घरमें आता है वहां साथ साथ कलि भी आ जाता है। जहां सट्टा वहां बट्टा (दाग) और यह बट्टा (दाग) जीवनमें पक्की तरह लग जाता है।

कई लोग ऐसे भी हैं जो जुए और सट्टेमें कमाते हैं और फिर उस धनका दान करते हैं। वे मानते हैं कि चलो, दान किया और मेरी शुद्धि हो गई। परंतु यह सब व्यर्थ ही है। यह सब अनीतिका धन है, ऐसे धनके दानसे कभी जीवन शुद्ध नहीं होता।

अधर्मका धन प्रभुको स्वीकार्य है ही नहीं।

शास्त्रनिषिद्ध भोज्य वस्तुएं जहां खाई जाती है, जहां जानबूझकर हिंसा की जाती है वहां कलि अवश्य रहता है।

इन चार स्थानोंकी प्राप्ति होने पर भी कलिको संतोष न हुआ। उसने राजासे कहा कि ये चार स्थान तो गंदे हैं। कोई अच्छा-सा स्थान मुझे रहनेको मिले तो ठीक है। तो परीक्षितने उसे सुवर्णमें रहनेकी अनुमति दे दी।

अशुद्ध साधनसे जब सुवर्ण घरमें आता है तो कलि भी उसके साथ आ धमकता है। अनीति और अन्यायसे प्राप्त धनमें कलि है। अनीति द्वारा धन कमानेवालेको तो कलि दुःखी करता ही है पर जो यह धन अपने वारिसके लिए रखता है वह वारिस भी दुःखी होता है

असत्य, मद, काल, वैर और रजोगुण यह पांच जहां न हों, वहां आज भी सत्ययुग ही है।

जिसके घरमें नित्य प्रभुकी सेवा और स्मरण होता है, जिसके घरमें आचार-विचारका पालन होता है उसके घरमें कलिका प्रवेश कभी नहीं होता।

बैलके तीनों पग परीक्षितने फिर लगा दिए अर्थात् धर्मकी फिर स्थापना की।

कलिने सोचा कि राजाने पांच स्थान रहनेके लिए दिए हैं। अब कोई तकलीफ नहीं है। अब परीक्षित राजाके घरमें भी कभी घुस जाऊँगा।

एक दिन परीक्षितको जिज्ञासा हुई कि देखूं तो सही कि मेरे दादाने मेरे लिए घरमें क्या क्या रख छोडा है। एक पेटीमेंसे सुवर्णमुकुट मिला। विना कुछ सोचे ही राजाने मुकुट पहन लिया। यह मुकुट तो जरासंधका था। जरासंधके पुत्रने सहदेवसे वह मुकुट मांगा था कि मेरे पिताका मुकुट मुझे दे दो। मुकुट लौटानेकी सहदेवकी इच्छा न थी। फिर भीम जबर्दस्ती यह मुकुट लाया था। सो यह धन अनीतिका। अनीतिका धन उसके कमानेवालेको और वारिसको भी दुःखी करता है। इसीलिए उस मुकुटको पेटीमें बंद करके रखा गया था। आज परीक्षितने देखा तो उसे पहन लिया। वह मुकुट अधर्मसे लाया गया था इसलिए उसके द्वारा कलिने परीक्षितकी बुद्धिमें प्रवेश किया।

इस मुकुटको पहनकर परीक्षित राजा वनमें शिकार करने गए। यहां 'एकदा' शब्दका प्रयोग किया गया है। राजा वैसे तो कभी शिकार करनेके लिए जाते नहीं थे किंतु आज गए हैं। अनेक जीवोंकी हत्या की। मध्याह्नकाल होने पर राजाको भूख और प्यास सताने लगी।

उन्होंने एक ऋषिके आश्रममें प्रवेश किया। शामीकऋषि समाधिमें लीन थे।

कोई संत जप-ध्यानमें बैठे हों वहां मत जाना। यदि जाना पडे तो प्रणाम करके लौट आओ। उस समय लौकिक बात न छेडो। प्रभुके साथ एक होनेकी इच्छा संतकी होती है। लौकिक बातें उनके तप-ध्यान-भजनमें बाधारूप बनेगी।

परीक्षितने सोचा कि इस देशका मैं राजा हूँ फिर भी ऋषि मेरा स्वागत क्यों करते नहीं हैं? शायद स्वागत न करनेका नाटक ही वे कर रहे हों। राजाकी बुद्धिमें कलिने प्रवेश किया था। अतः शामीकऋषिकी ही सेवा करनेकी अपेक्षा राजा ऋषिसे सवाकी अपेक्षा कर रहे हैं। उन्हें दुर्बुद्धिने आ घेरा। उन्होंने एक मरा हुआ सांप शामीकऋषिके गलेमें पहना दिया। उन्होंने तपस्वीका अपमान किया।

अन्यको अपमानित करनेवाला स्वयं अपना ही अपमान करता है। अन्यको छलनेवाला खुद अपनेको ही छलता है। क्योंकि सभीमें आत्मा तो एक ही है।

राजाने शामीकऋषिके गलेमें ता मरा हुआ सांप पहनाया किंतु ऐसा करके उन्होंने अपने गलेमें तो मानो जीवित सांप ही पहन लिया। सर्प कालका स्वरूप है।

सर्प साक्षात् कालका स्वरूप है। सभी इन्द्रियवृत्तियोंको अंतर्मुख करके प्रभुमें स्थिर हुआ ज्ञानी जीव ही शामीकऋषि है। ऐसे ज्ञानी जीवके गलेमें सर्प पहनानेका अर्थ है कालको

+

मारना। जितेन्द्रिय योगीका काल स्वयं मरता है अर्थात् काल उसे प्रभावित नहीं कर सकता। राजाका अर्थ है रजोगुणमें फँसा, भोगप्रधान विलासी जीव। ऐसोंके गलेमें सर्प लटकता है अर्थात् जीवित सर्प उसके गलेमें हैं।

शमीकऋषिके पुत्र शृंगीने जब यह बात जानी तो वह क्रोधसे भडक उठा कि ऋषिका अपमान करनेवाला यह राजा क्या समझता है अपने मनमें। उसने सोचा कि ब्रह्मतेज अब भी जगत्में विद्यमान है। मैं राजाको शाप दूँगा। शृंगीने शाप दिया राज को कि तूने तो मेरे पिताके गलेमें मरा हुआ सांप पहना दिया, किंतु आजसे सातवें दिन तुझे तक्षकनाग डंसेगा।

परीक्षितने अपने सिरसे मुकुट उतारा तो तुरंत उसे अपनी भयंकर भूलका भान हुआ। मैंने आज पाप किया। मैंने मतिभ्रष्ट होकर ऋषिका अपमान किया।

जब मति भ्रष्ट हो जाय तो मान लो कि कुछ न कुछ अशुभ अवश्य होगा। पाप हो जाय तो उसका विचार करके अपने शरीरको सजा दो। भोजन करनेसे पहले सोच लो कि कि मेरे हाथोंसे कुछ पाप तो नहीं हो गया है न? जिस दिन पाप हुआ हो उस दिन अनशन करो। तो फिर कभी पाप नहीं होगा।

धन्य है परीक्षित राजा, उसने जीवनमें केवल एकबार ही पाप किया था। किंतु पाप हो जानेके बाद उसने पानी तक नही पिया। ऋषिकुमार द्वारा दिए गए शापकी बात सुनकर उसने सोचा कि अच्छा ही हुआ कि मुझे मेरे पापकी सजा मिल गई।

परीक्षित सोचते हैं कि मैं संसारके विषय सुखोंमें फंस गया था अतः मुझे सावधान करनेके लिए ही प्रभुने मुझ पर यह कृपा की है। मुझे अगर शाप न मिला होता तो मैं भला कब वैराग्य धारण करता? मेरे लिए प्रभुने शापावतार धारण किया है।

मृत्यु सिर पर मंडरा रही है ऐसा सोचते रहोगे तो पाप नहीं होगा।

परीक्षितने गृहत्याग किया और वे गंगातट पर आए। उन्होंने गंगास्नान किया और यह निश्चय किया कि अन्नजलका त्याग करके अब प्रायश्चित्तव्रत करूंगा। बडे बडे ऋषियोंने यह बात सुनी तो बिना बुलाए ही वे राजासे मिलने आ गए। उन्होंने सोचा कि परीक्षित अब राजा नहीं, राजर्षि बन गए हैं। राजाके विलासी जीवनका अब अंत हुआ है। राजाका जीवन अब बदल गया है और इसीलिए वे सब परीक्षितसे मिलने आए। परीक्षितने खडे होकर सबको प्रणाम करके उनकी पूजा की।

राजाने अपने पापकी बात उन ऋषियोंसे बता दी।

वैसे तो सभी लोग पापको छुपाते हैं और अपने पुण्यकी बातें सबके सामने प्रकट करते रहते हैं। पापको छुपाओ मत और पुण्यको तुम प्रकट मत करो। समाजके सामने पाप स्वीकारनेसे पाप करनेकी आदत छूट जाती है।

परीक्षितने कहा कि मैंने पवित्र संतके गलेमें मरा हुआ सांप पहना दिया। मैं अधम हूँ। मेरा उद्धार कीजिए। मैंने सुना है कि पापीको यमदूत मारते-पीटते ले जाते हैं। मेरा मरण सुधरे ऐसा कोई उपाय बताएं। मुझे डर लगता है। मने मरनेकी अभी तक कोई तैयारी भी नहीं की है।

परीक्षितने मृत्युकी वेदनाका विचार किया। जन्म-मरणके दुःखके विचारसे पाप छूटेगा। उन्होंने ऋषियोंसे कहा कि आप कुछ ऐसा करें कि सात दिनमें मुझे मुक्ति मिल जाए। आसन्नमृत्युके कर्तव्य आदि मुझे बताइए। समय अधिक नहीं है ज्ञानकी लंबी-चौडी बातें करेंगे तो समय पूरा हो जाएगा। मुझे ऐसी बातें बताइए और मुझे ऐसा मार्ग बताइए जिससे परमात्माके चरणोंमें मैं लीन हो जाऊँ। मुझे ऐसी कथा सुनाइए कि जिससे मेरी मुक्ति हो।

ऋषिगण सोचने लगे। हम कई वर्षोंसे तपश्चर्या कर रहे हैं फिर भी मुक्ति मिलेगी या नहीं, उसकी चिंता रहती है। हम भी मृत्युसे डरते हैं। अंत समयमें प्रभुका नाम होठों पर आना मुश्किल बात है। मात्र सात ही दिनमें राजाको कैसे मुक्ति मिलेगी? यह तो अशक्य ही है। इससे सब ऋषि चुप हो गए हैं।

सात हीं दिनमें मुक्तिका पाना असंभव-सा ही है। मृत्युके पासका समय अति नाजुक होता है। महाज्ञानियोंको भी मृत्युका डर लगता है। रामका नाम जल्दी होठों पर नहीं आता।

रामचरितमानसमें वालिने कहा है—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं।

अंत राम कहीं आवत नाहीं॥

कोई भी ऋषि राजाको उपदेश देनेको तैयार न हुआ। किसीमें भी बोलनेकी हिंमत नहीं थी। परीक्षित सोचते हैं कि समर्थ होने पर भी ये ऋषि मुझे उपदेश क्यों नहीं दे रहे हैं?

वे सोचते है कि जगत्के जीव चाहे मेरा त्याग करें, मैं भगवान्का आसरा लूंगा। भगवान् नारायण कृपा करेंगे। अब समय अधिक नहीं है। मैं किसकी शरण लूं? मैं अपने परमात्माकी ही शरण लूं। वे तो मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे। मैं पापी तो हूं किंतु पांडववंशी हूं। अब विना ईश्वरके मेरा कोई नहीं है।

परीक्षितने ईश्वरका आसरा लिया। भगवान्की स्तुति की। द्वारिकानाथको याद किया मैंने कोई सत्कर्म नहीं किया। ये ब्राह्मण मुझे उपदेश नहीं दे रहे हैं क्योंकि मैं अधम हूं। जिस परमात्माने, जब माताके गर्भमें मैं था तव ब्रह्मास्त्रसे मेरी रक्षा की थी वे आज भी मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। मैं पापी तो हूं किंतु भगवान्का हूं। नाथ, मैं आपका हूं।

दुष्टतमोऽपि दयारहितोऽपि कृष्ण तवाऽस्मि न चास्मि परस्य।

हे द्वारकानाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूं। आपने जब मेरा जन्म उजागर किया है तो मेरी मृत्यु भी सुधारिए।

परमात्माने शुकदेवजीको प्रेरणा दी कि वहां जाओ। शिष्य योग्य है। परीक्षितके जन्मको सुधारनेके लिए द्वारिकानाथ स्वयं आए थे। किंतु मुक्ति देनेका अधिकार केवल शिवजीका है इसलिए भगवान् शिवजीसे कहा। सो भगवान् शिवजीके अवतार शुकदेवजी वहां पधारे। संहारका काम शिवजीका है अतः परीक्षितकी मृत्युको सुधारनेके लिए शुकदेवजी पधारे।

शुकदेवजी दिगंवर हैं। वासनाका वस्त्र छूट गया था। सोलह वर्षकी अवस्था है। कमर पर न तो मेखला है और न लंगोटी। आजानवाहु हैं। वक्षःस्थल विशाल है। दृष्टि नासिकाके अग्रभाग पर स्थिर है। मुख पर वालोंकी लट विखरी हुई है। वर्ण कृष्णकी भांति श्याम है और तेजस्वी भी है।

शुकदेवजी पर बालक धूल उडा रहे थे। नागाबाबा चला, नागाबाबा चला। किंतु शुकदेवजी मानो यह सब कुछ जानते हो नहीं है। वृत्ति ब्रह्माकार है। वे ब्रह्मचिंतन करते हुये देहसे अभान हो गये है।

परमात्माके ध्यानमें जो देहभान भुलाता है उसके शरीरकी देखभाल परमात्मा स्वयं करते हैं। सोचते हैं कि इसे देहकी जरूरत नहीं है किंतु मुझे तो है।

चारों ओर प्रकाश फैल गया। सूर्यनारायण तो कहीं धरती पर उतरे नहीं है न? मुनि जान गये कि ये तो शंकरके अवतार श्री शुकदेवजी पधारे हैं। सभामें शुकदेवजी पधारे। व्यासजी भी उस सभामें थे। उन्होंने खडे होकर शुकदेवजीको वंदन किया।

शुकदेवजीका नाम सुनते ही व्यासजी भी भावविभोर हो गये।

शुकदेवजीके लिये प्रयुक्त विशेषण तो देखो: "अनपेक्षः, निजलाभतुष्टो, अवधूतवेश·"।

व्यासजी सोचते हैं: भागवतका रहस्य शुकदेवजी जानता है यह मैं नहीं जानता। कैसा निर्विकार है? मेरा बेटा भागवत कहेगा और मैं सुनूँगा।

राजाके कल्याणके हेतु पधारे हुये शुकदेवजी सुवर्ण सिंहासन पर विराजे। परीक्षितने आँखें खोलीं। मेरा उद्धार करनेके लिये इन्हें प्रभुने भेजा है। अन्यथा मुझ जैसे पापी और विलासीके यहाँ वे नही आते।

परीक्षितने शुकदेवजीके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया। परीक्षितने अपना पाप उन्हें कह सुनाया। मैं अधम हूँ। मेरा उद्धार करो। आसन्नमरणको क्या करना चाहिये? मनुष्य-मात्रका कर्तव्य क्या है? उसे किसका श्रवण, जप, स्मरण और भजन करना चाहिये?

गुरुदेव शुकजीका हृदय पिघल गया। शिष्य सुयोग्य है।

अधिकारी शिष्य मिलने पर गुरुका दिल कहता है कि उसे अपना सर्वस्व दे दूँ। गुरु ब्रह्मनिष्ठ हो और निष्काम भी हो तथा शिष्य प्रभुदर्शनके लिये आतुर हो तो सात दिवस तो क्या सात मिनटमें प्रभुदर्शन हो सकते हैं। अन्यथा गुरु लोभी हो और शिष्य लौकिक सुखकी इच्छा करता हो तो दोनों नरकवासी होते हैं।

लोभी गुरु और लालची चेला,
दोनोंका नरकमें ठेलमठेला।

शुकदेवजी कहते हैं: राजन्, तू घबडाता क्यों है? अभी सात दिन बाकी हैं: मैं तेरे पाससे कुछ लेने नहीं, देने आया हूँ। मैं निरपेक्ष हूँ। मुझे जो आनंद मिला है और परमात्माके जो दर्शन हुये हैं वही दर्शन तुझे कराने आया हूँ। मुझे जो मिला है वह तुझे देने आया हूँ। मेरे पिताजी भूख लगने पर दिनमें एक बार बेर खाते थे। किंतु इस कृष्णकथामें भजनानंद इतना मिलता है कि मुझे तो बेर भी याद नही आते। मेरे पिताजी वस्त्र पहनते थे। प्रभु-चिंतनमें मेरा वस्त्र कब और कहां छूट गया वह भी मुझे खबर नहीं है। सात दिनमे तुझे कृष्णदर्शन कराऊँगा। मैं बादरायणि हूँ। कृष्ण आनंदमे मस्त होनेके बाद बेर खाना भी कहाँ रहा?

भगवान् बादरायणिः । शुकदेवजीका संपूर्ण वर्णन वैराग्य शब्दसे व्यक्त हो सकता है। बादरायणिके स्थान पर शुक शब्दका प्रयोग चल सकता था क्या? भागवतमे एक भी शब्दका प्रयोग निरर्थक नहीं है । शुकदेवजीके वैराग्यको दिखलानेके लिये ही इसका प्रयोग किया गया । शुकदेवजी बादरायण–व्यासजीके पुत्र है। व्यासजीका तप और वैराग्य कैसा था? व्यासजो सारा दिन जपतप किया करते थे और भूख लगने पर सारे दिनमें केवल एक बार बेर खाते थे । केवल बेरका ही आहार करते थे अतः वे बादरायण कहलाये । वैसे बादरायणके शुकदेवजी पुत्र हैं । जिसमें खूब ज्ञान–वैराग्य हो, वह दूसरेको सुधार सकता है । शुकदेवजीमें वे दोनों पूर्णतः थे ।

आजके सुधारकमें त्याग और संयम दिखायी ही नही देता । वह दूसरोंको क्या सुधारेगा ? मनुष्य पहले अपने आपको ही सुधारनेका प्रयत्न करे ।

राजन्, जो समय बीत गया उसका स्मरण मत करो । भविष्यका विचार भी मत करो। सिर्फ वर्तमानको सुधारो। सात दिन बाकी रहे हैं। मेरे नारायणका स्मरण करो, तुम्हारा जीवन अवश्य उजागर होगा ।

लौकिक रसके भोगीको प्रेमरस नहीं मिलता, भक्तिरस भी नहीं मिलता । जिसने कामका त्याग किया है वही रसिक है जगत्का रस कटु है, प्रेमरस ही मधुर है । जो इन्द्रियोंके आधीन होता है उसे काल पकडता है ।

भागवतका वक्ता शुकदेवजी जैसा ही होना चाहिये ।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

द्वितीय स्कंधः

सत् यह परमात्माका नाम है। सभीमें जो ईश्वरका दर्शन करे वही सद्गुरु है। अधिकारी शिष्यको सद्गुरु अवश्य मिलता है।

प्रथम स्कंधमे अधिकारलीलाका वर्णन किया था। परीक्षित अधिकारी थे अतः उनको शुकदेव मुनि जैसे सद्गुरु मिले। परीक्षितमें पांच प्रकारकी शुद्धियां है, मातृशुद्धि, पितृशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, अन्नशुद्धि और आत्मशुद्धि।

सद्शिष्यको ही गुरुकृपा मिलती है और ईश्वरदर्शन होते हैं।

सद्गुरुतत्त्व और ईश्वरतत्त्व एक है। ईश्वर जिस तरह व्यापक हैं उसी तरह गुरु भी व्यापक हैं। जिसका कही भी अभाव न हो वही व्यापक है। परमात्मा सनातन सद्गुरु भी व्यापक हैं।

व्यापकको खोजनेकी नही किंतु पहचाननेकी आवश्यकता है।

परमात्माकी भांति गुरु भी व्यापक हैं किंतु वह अधिकारीको ही मिलता है।

स्वयं संत बने विना संतको पहचाना नहीं जा सकता। तुम्हें संत दिखाई नहीं देते क्योंकि तुम संत नहीं हो। जो संत बने उसे संत मिले। संत बननेके लिए व्यवहारको अतिशुद्ध करना चाहिए। जबतक मुट्ठी भर चने तककी भी जरूरत है तबतक व्यवहार छूटता नहीं है।

जो प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाए वही सच्चा वैष्णव है।

संत होनेके लिए मनको सुधारनेकी जरूरत है। मनको बदलनेकी जरूरत है। जो अपने हृदयका परिवर्तन करता है वह संत बनता है। मन शुद्ध होने पर संत मिलता है। संतसे मिलनेके लिए संत आता है। विलासीको संत नही मिलते।

गुरुदेव ब्रह्मा है। गुरुदेव नया जन्म देते हैं। नया जन्म देनेका अर्थ है कि वे मनको और स्वभावको सुधारते हैं। गुरुदेव विष्णु है क्योंकि गुरुदेव शिष्यकी रक्षा करते हैं। गुरुदेव शिष्यको मोक्ष भी देते हैं। इसीसे वे शिवजीके भी स्वरूप हैं। गुरु किए विना न रहो। तुम लायक होगे तो भगवानकी कृपासे सद्गुरु मिलेंगे ही।

तुकारामजीने अपने अनुभवका वर्णन किया है। कथा—वार्ता सुनते हुए प्रभुके नामसे मेरी प्रीति हो गई। मैं भी 'विठ्ठल विठ्ठल' का सतत जप करने लगा। प्रभुको मुझ पर दया आई। मुझे स्वप्नमें मेरे सद्गुरु मिले, मेरे सद्गुरु मुझे रास्तेमें मिले। मैं गंगास्नान करके आ रहा था कि वे रास्तेमे मिले। उन्होंने मुझसे कहा कि विठ्ठलनाथकी प्रेरणासे मैं तुझे उपदेश देनेके लिए आया हूं। मैने गुरुदेवसे कहा कि मैंने तो भगवान्की कोई सेवा नहीं की है। फिर भी गुरुदेवने मुझ पर कृपा की और 'रामकृष्ण हरि' का मंत्र दिया।

गुरुदक्षिणामे उन्होने पावभर तूप अर्थात् घी मांगा। क्या तुकारामके गुरुको पाव भर घी भी मिलता नहीं था क्या? किंतु तुकारामकी वाणी गूढार्थसे भरी हुई है। तूपका अर्थ

है तेरापन और मेरापन (अर्थात् अहम्) तू मुझे दे दे। आजसे तू भूल जा कि तू पुरुष है। तू अपना पुरुषत्व भूल जा। मेरे गुरुदेवने मेरापन और तेरापन मुझसे मांग लिये। मुझे आज्ञा दी कि तू अपना अभिमान मुझे दे दे। आजसे अहम्को मत रखना। तू पुरुष नहीं है और तू स्त्री भी नहीं है। तू किसीका पुत्र भी नहीं है। देहके सारे भाव तू मुझे अर्पण कर दे। तू शुद्ध है, ब्रह्म है, ईश्वरका अंश है।

जीवका ईश्वरके साथ संबंध सिद्ध कर दिया, जोड दिया।

जिसकी प्रत्येक क्रिया ज्ञानमय हो वह उत्तम गुरु है। ज्ञानी भक्तोंकी प्रत्येक क्रिया ज्ञान और बोध रूप होती है। संतोंका सब कुछ अलौकिक होता है।

शुकदेवजी मात्र ब्रह्मज्ञानी ही नहीं थे। परंतु उनकी दृष्टि भी ब्रह्मदृष्टि थी। शुकदेवजी हरेकको समभावसे, ब्रह्मभावसे देखते हैं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। जिसकी दृष्टि ब्रह्ममय हो उसे जगत्का भास नहीं होता। शुकदेवजी गुरु ही नहीं, सद्गुरु भी हैं। शुकदेवजी जैसे ब्रह्मदृष्टिवाले सुलभ नहीं हैं। वैसे ब्रह्मज्ञानी-ब्रह्मज्ञानकी बातें करनेवाले तो सुलभ हैं।

शुकदेवजी जैसे गुरु मिले तो सात दिवसमें तो क्या सात मिनटोंमें भी मुक्ति दिला सकते हैं। किंतु शिष्य परीक्षित जैसा अधिकारी होना चाहिये। गुरु और शिष्य दोनों अधिकारी होने चाहिये।

मंत्रदीक्षा अधम है; स्पर्शदीक्षा उत्तम है।

ब्रह्मभावमें तल्लीन होकर शुकदेवजीने परीक्षितके सिर पर वरदहस्त रखा कि तुरंत उनको ब्रह्मका दर्शन हुआ।

प्रथम स्कंधमें अधिकारकी कथा बतायी है। भागवतका श्रोता कैसा होना चाहिये वह बताया गया है। वक्ता कैसा होना चाहिये वह भी बताया है।

आगे कथा आयेगी कि ध्रुवजीको मार्गमें नारदजी मिले और प्रचेताओंको शिवजी मिले। अधिकारी शिष्यको सद्गुरु मिलते हैं। परीक्षितके लिये भी शुकदेवजी आये। अन्यथा लाख आमंत्रण देने पर भी शुकदेवजीको आँखें उठाकर देखने तककी फुरसत नहीं है। क्योंकि सच्चा ज्ञानी एक क्षण भी परमात्माके दर्शन किये बगैर नहीं रह सकता।

तीन प्रकारके श्रोतावक्तामें व्यासजीका क्रम दूसरा है, क्योंकि वे समाजसुधारणाकी दृष्टिसे कथा करते थे। शुकदेवजी दूसरोंको सुधारनेकी नहीं किंतु अपने अंतःकरणको सुखी करनेकी वृत्तिसे कथा करते थे।

शुकदेवजीने कथाका आरंभ तो किया किंतु मंगलाचरण नहीं किया। कारण देहभान बिलकुल नहीं था। तीन अध्यायोंके बाद शुकदेवजीने मंगलाचरण किया।

भागवतमें तीन मंगलाचरण हैं। प्रथम व्यासजीका, दूसरा शुकदेवजीका और अंतमें तीसरा सूतजीका। यौवनमें मंगलाचरण, मंगल आचरणकी बहुत जरूरत है। इसलिये ही शुकदेवजीका मंगलाचरण बारह श्लोकोंका है और अन्य सभीका एक एक श्लोकका है।

उत्तम वक्ता कौन होता है? जो संपूर्णतः वैराग्यमय हो, वह वक्ता उत्तम है।

संसारके किसी भी विषयमें मन न जाय, वह वैराग्य है। संसारके विषयोंको देखते हुये भी जिसका मन उसमें नहीं रमता, उसने ही सच्चा वैराग्य सिद्ध किया है। विना वैराग्यके दृढता नहीं आती। वैराग्यसे ज्ञान शोभित होता है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्य परिपूर्ण होने पर मनुष्य ब्रह्ममय बनता है।

शुकदेवजीमे पूर्णतः ज्ञान, भक्ति और वैराग्य थे।

ज्ञानीका हृदय कृष्णप्रेममें न पिघले तो वह ज्ञान किस कामका?

परीक्षित राजा शुकदेवजीसे पूछते हैं; जिसकी मृत्यु समीप हो उसका कर्तव्य क्या है? उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है?

शुकदेवजीने कहा: राजन्, तूने अच्छा प्रश्न किया है। सुन। अंतकालमें वात, पित्त और कफसे त्रिदोष होता है। मृत्युकी वेदना भयंकर होती है। जन्ममरणके दुःखोंका विचार करेंगे तो पाप नहीं होगा। सो मृत्युसे डरते रहो। उसको स्मरण रखो। सोचो कि मैंने मृत्युके स्वागतकी तैयारी की है या नहीं। ऐसा चिंतन करनेसे वैराग्य आता है।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिके दुःखोंका वार वार विचार करो तो वैराग्य उत्पन्न होगा और पाप छूटेंगे। वर्ना पापके संस्कार जल्दी नहीं छूटते। सोचेसमझे विना विवेक-वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता।

कालको सिर पर रखकर हमेशा ईश्वरका चिंतन करो। कालको याद रखोगे तो पापवृत्तिका उद्भव नहीं होगा।

भजनके लिए अनुकूल समयकी प्रतीक्षा न करो। कोई भी क्षण भजनके लिए अनुकूल है। कोई तकलीफ न रहने पर मैं भजन करूंगा ऐसा मानना अज्ञान है।

एक मनुष्य स्नान करनेके लिए समुद्रके किनारे पर गया। किंतु स्नान करनेके बजाय वह वहां वैठा ही रहा।

लोगोंने उससे पूछा कि क्यों इस तरह वैठा हुआ है? स्नान कव करेगा?

उस मनुष्यने कहा कि समुद्रमें एकके बाद एक तरंगें उठ रही हैं। तरंगोंके बंद होने पर स्नान करूंगा।

क्या समुद्रकी मौजें कभी रुकती हैं? मौजें कब रुकेंगी और कब स्नान होगा?

संसार भी एक समुद्र है। उसमें असुविधारूपी तरंगें आती ही रहेंगी। इसलिए यदि कोई कहे कि अनुकूलता होने पर भगवान्का भजन करूंगा तो वैसी सर्वांगी अनुकूलता तो आएगी ही नहीं। जिस तरह वह मनुष्य स्नान नहीं कर सका उसी तरह ऐसे मनुष्य ईश्वरभजन किए विना रह जाते हैं।

जीवनमें चाहे मुश्किलें आएं किंतु इस लक्ष्यको मत भूलना कि मुझे परमात्मासे मिलना है, प्रभुसे मुझे एक होना है। लोभी जिस तरह पैसोंपर लक्ष्य रखता है उसी तरह महापुरुष परमेश्वरपर लक्ष्य रखते हैं।

भगवान्‌ने भी गीतामें कहा है :

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

गीता अ. ८ श्लोक ५

अंतकालमें जो मेरा स्मरण करता हुआ देहत्याग करता है वह मुझे पाता है। अंतकालका अर्थ जीवनका नहीं परतु प्रत्यक क्षणका अंतकाल। सो प्रत्येक क्षण ईश्वरका चिंतन, ध्यान, स्मरण करना चाहिए।

प्रत्येक क्षणको सुधारेंगे तो मृत्यु भी सुधरेगी। प्रत्येक क्षणको सुधारनेका अर्थ है हर क्षण ठाकुरजीको अपनी दृष्टिमें रखना।

लोग मानते हैं कि सारा जीवन कामधंधा करेंगे, उल्टा-सीधा करके धन कमाएंगे और अंतकालमें भगवान्‌का नाम लेकर संसार पार कर लेंगे। यह गलत विचार है इसलिए तो स्पष्टता की गई है कि 'सदा तद्भावभावितः।' हमेशा जिस भावका चिंतन करोगे उसीका अंतकालमें भी स्मरण होगा।

भगवान्‌ने भी आज्ञा की है कि 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु माम् अनुस्मर।' इसीलिए सारा समय तू निरंतर मेरा स्मरण कर।

यह तो सर्वविदित बात है जिस बातका सर्वदा चिंतन किया गया है मृत्यु समय भी उसीका ही स्मरण होता रहेगा।

एक सुनारका दृष्टांत है। एक सुनार बीमारीके कारण शैयामें पड़ा हुआ था। कई महिनोंसे वह बाजार नहीं जा सका था सो उसे सोना और सोनेके बाजारभावका ही विचार आता रहता था। अंतकाल आया। बुखार बढता जा रहा था। डॉक्टरने आकर बुखार नापकर कहा कि एकसो पांच (१०५ डीग्री) है। सोनी समझा कि किसीने सोनेका भाव बताया है। वह अपने पुत्रसे कहने लगा कि बेच दे, बेच दे। हमने अस्सीके भावमें लिया था। अब एकसौ पांच हुआ है तो बेच दे। ऐसा बोलते बोलते ही वह मर गया। सुनारने सारा जीवन सोना खरीदने-बेचने और सोनेके विचारमें ही गुजारा था सो अतकालमें उसे सोनेका ही विचार आता रहा।

धन-सपत्तिकी ही चिंता करनेवालेको, रुपया-पैसा पेदा करनेवालेको अंतकालमें भी उसीका विचार आता है। धन कमाना कोई पाप नहीं है किंतु उसे कमाते समय भगवान्‌को भुला देना पाप है।

शुकदेवजीने कहा कि हे राजन्, मनुष्यकी आयु इसी तरह समाप्त हो जाती है। निद्रा और विलासमें रातें गुजर जाती हैं और धनप्राप्तिके प्रयत्नमें तथा कुटुंबके परिपालनमें दिन गुजरते जाते हैं।

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवसायेन च वा वयः।
दिवा चार्थेहया राजन्, कुटुंबभरणेन वा॥

भा. २-१-३

×

मनुष्यका अधिकतर समय निद्रा और अर्थोपार्जनमें चला जाता है उसका बहुत-सा समय बातें करनेमें चला जाता है। बहुतोंका समय पढनेमें गुजरता है बहुत पढना भी अच्छा नहीं है। अति वाचनसे शब्दज्ञान तो बढता है किन्तु साथ साथ अभिमान भी बढता है।

राजन्, जो समय चला गया है उसके लिए अब मत रोओ। उसका विचार भी न करो। भूतकालकी बातें ही सोचते रहनेसे कोई लाभ नहीं है। तुम अपने वर्तमानको सुधारो। सात दिनोंका जो यह समय मिला है उसीका सदुपयोग कर लो।

मनुष्य इन्द्रियोंके सुखमें ऐसा फंसा हुआ है कि उसे अपने लक्ष्यका ध्यान ही नहीं रहता। शरीर, स्त्री, संतान आदि सब कुछ असत्य है फिर भी उन सबके मोहमें ऐसा पागल बन गया है कि उसे समय और लक्ष्यका भी भान नहीं रह गया है। तुम्हें क्या करना है, कहा जाना है, क्या बनना है उसका विचार आज ही कर लो। इच्छाशुद्धिके बिना कर्मशुद्धि नहीं होती। तुम निश्चय कर लो कि मुझे भगवान्से मिलना है, मुझे प्रभुके धाममें जाना है, मुझे पुनर्जन्म नही लेना है।

जगत्में विकार और वासनाके बढ जानेके कारण त्याग और संयम कम हो गया है।

काल मनुष्योंको धक्का दे और उन्हें रो रोके घर छोडना पडे उससे यह अच्छा है कि वे विवेकसे स्वेच्छापूर्वक ही घर छोड दें। शंकरस्वामीने कहा है : निजगृहात् तूर्णं विनिर्गम्यताम्।

हे राजन्, मानव-जीवनकी अंतिम परीक्षा मृत्यु है। मनुष्यकी प्रतिक्षण मृत्यु होती रहती है। जो प्रत्येक क्षणको सुधारता है उसकी मृत्यु सुधरती है और जिसकी मृत्यु सुधर गई उसका जीवन भी उजागर हो जाता है।

प्रभुका स्मरण प्रत्येक क्षणके अंतकालमें करना चाहिए-क्षणस्य अंतकाले मात्र जीवनके अंतकालमें नहीं। क्षण-क्षणको जो सुधारता है उसीका जीवन सुधरता है। यह शरीर प्रतिक्षण बदलता रहता है अर्थात् प्रतिक्षण शरीरका नाश होता रहता है। अंतकालमें अर्थात् प्रत्येक पलके अंतमे मनुष्यकी मृत्यु होती रहती है सो प्रभुका स्मरण प्रतिक्षण करो। शंकराचार्यजीने शांकरभाष्यमें यही कहा है।

अन्यथा जिसका जीवन निद्रा धनोपार्जन और कुटुंबके परिपालनमें ही गुजर गया हो उसे अंतकालमें वही सब कुछ याद आता रहता है। सारा जीवन जिसमें बीता हो वही अंतकालमें याद आता है।

एक बूढा बीमार हो गया। उसका सारा जीवन द्रव्य आदिके पीछे ही बीता था। अंतकाल नजदीक आया। उसके पुत्रादि कहते हैं कि पिताजी, अब आप श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवका जप कीजिए। किंतु उस बूढेके मुँहसे ये शब्द निकलते ही नहीं हैं। जीवनमें कभी भगवान्का नाम लिया हो तब वह नाम याद आये न ?

वह बूढा मनसे द्रव्यका ही चिंतन कर रहा है। उसकी दृष्टि आंगनमें गई। उसने देखा कि बछडा झाड्रू चबा रहा है। इतना छोटा सा नुकसान भी वह बूढा कैसे सह सकता था ? उसका दिल जलता है कि मैंने कैसे कैसे धन कमाया है यह ये लोग क्या जानें ? उसे लगा कि रुपये-पैसोंकी तथा अन्य चीजवस्तुओंकी इन लोगोंके लिए कोई कीमत ही नहीं है। मेरे जानेके बाद ये लोग घरको लुटा ही देंगे।

वह बूढा कुछ स्पष्ट बोल तो सकता नहीं था इसलिये कुछ बडबडाने लगा। उसके एक बेटेने सोचा कि पिताजी भगवान्‌का नाम लेना तो चाहते हैं किंतु कुछ बोल नहीं सकते। दूसरे बेटेने सोचा कि पिताजी कभी भगवान्‌का नाम तो लेते नहीं सो वे कुछ मिलकतके बारेमें कहना चाहते हैं। कुछ धन छुपा रखा होगा उसके बारेमें कुछ कहना होगा उन्हें। पुत्रोंने डॉक्टर बुलाकर उससे विनति की कि कुछ ऐसा करो कि पिताजी दो-चार शब्द बोल सकें। डॉक्टरने इंजेक्शन देनेके लिये हजार रुपयेकी फीस मांगी। पुत्रोंने सोचा कि कहीं गाडकर रखा हुआ धन बतायेंगे। अतः हजार रुपये खर्च कर डाले।

पिताकी बात सुननेके सभी आतुर थे। दवाईने अपना काम किया। कुछ शक्ति मिली तो वह बूढा बोला : सब मेरी ओर क्या देख रहे हो? वहाँ देखो। वह बछडा कबसे झाडू खा रहा है। और इस तरह बछडा-झाडू, झाडू-बछडा करते हुये बूढेने देह त्याग दिया।

आप देखें, ध्यान रखें कि कहीं आपकी भी ऐसी दशा न हो।

यह बात हँसनेके लिये नहीं, सावधान करनेके लिये कही गई है।

लक्ष्मीजी अकेली आती हैं तो रुलाती हैं किंतु साथमें ठाकुरजी भी आयें तो सुखी करती हैं।

लोग कहते हैं कि आनेवाले कालकी खबर कैसे हो सकती है? किंतु वह तो पहलेसे ही सावधान करके आता है। काल सभीको सावधान करता है। किंतु लोग मानते ही नहीं हैं। काल आगमनके पहले पत्र लिखता है। किंतु कालका पत्र पढना कोई नहीं जानता। बाल श्वेत होने लग जाएं तो मानो कि कालकी नोटिस आ गयी है। दांत गिरने लगें तो मानो कि कालकी नोटिस आ पहुंची है और सावधान बनो। दांत गिर जाते हैं तो लोग नकली दांत लगवाते हैं। दांत गिरने लग जायं तो समझ लेना चाहिए कि अब तो दूध-भात खाकर प्रभुभजन करनेका समय आ गया है। लेकिन लोग नकली दांत बनवाकर इसलिए लगवाते हैं कि पापड खानेका मजा आयेगा। ऐसे कहाँ तक चलेगा? खानेसे शांति तो मिलती ही नहीं, इसके विपरीत वासना और अधिक भडकती ही है।

मृत्युकी कई निशानियाँ बताई गई हैं। अरुंधतिका तारा न दिखायी दे तो मानना चाहिए कि एक वर्षमें मृत्यु होगी। स्वप्नमें कीचडमें शरीर धँसता हुआ दीखे तो मानो कि नौ मासमें मृत्यु होगी। स्वप्नमें कुम्हारके हाथी अर्थात् गधे पर सवारी करनेका दृश्य दिखायी दे तो मानो कि छै मासमें मृत्यु हो जाएगी। कानमें उंगलि डालनेके बाद अंतर्ध्वनि न सुनायी दे तो समझो कि आठ दिनोंमें मृत्यु हो जाएगी। मृत्युके लक्षण जानकर भयभीत मत होना। सावधान होनेके लिये ही ये लक्षण बताए गये हैं। सावधान होनेके लिये ही यह भागवतकी कथा है।

भागवतकी कथा सुनकर परीक्षित कृतार्थ हुये। मरणको सुधारनेके लिये भागवतशास्त्र है। जीवनको जो सुधारता है उसीका मरण सुधरता है।

राजन्! मरणको सुधारना हो तो प्रत्येक क्षणको सुधारो। रोज सोचो, विचारो, मनको बार बार समझाओ कि ईश्वरके बिना मेरा कोई नहीं है। इस शरीरको भी एक दिन मुझे छोडना पडेगा अतः यह भी मेरा नहीं है। जब शरीर भी मेरा नहीं है तो मेरा है ही कौन? क्योंकि सभी संबंध शरीरके कारण ही उत्पन्न हुये हैं।

भावना करो कि न तो मैं किसीका हूँ और न कोई मेरा है। इस तरह ममताको हटाओ। संग्रहसे ममता बढती है इसलिए अपरिग्रही बनो। तृप्ति भोगमें नहीं, त्यागमें है।

समता सिद्ध करनेके लिये सबसे ममता रखो। व्यक्तिगत ममता दूर करो।

प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह प्रतिक्षण सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका ही श्रवण, कीर्तन और मनन करे।

इन्द्रियोंको भोगसे नहीं प्रभु-स्मरणसे-प्रभुसेवासे ही शांति मिलती है।

दुःखका कारण देह ही है। दुःख भोगनेके लिये ही तो देह मिली है न? पाप ही न किये होते तो यह देह और यह जन्म ही क्यों मिला होता?

रामदास स्वामीने दासबोधमें लिखा है: देह धारण करना ही पाप है। मनुष्य हर तरहसे सुखी नहीं हो सकता।

हे राजन्, मानव शरीर सुखके उपभोगके लिए नहीं मिला है। मानवशरीर तो भजन करके भगवान्को प्राप्त करनेके लिए ही मिला है।

इन्द्रियसुख सभी प्राणियोंको एक-सा ही मिलता है। शरीरसंगसे जो सुख स्त्री-पुरुषको मिलता है वही सुख कुत्तेको भी कुतियाके संगसे मिलता है। अतः मनुष्यजीवन पाकर प्रभु स्मरणमें लीन रहो। तुम जीवनको कुछ ऐसे सांचेमें ढालो कि मृत्युके क्षणमें भगवान्की ही याद आए।

जीव शिव बननेका प्रयत्न ही नहीं करता, अन्यथा वह तो शिव बननेके लिए ही जन्मा है।

जीव जब ईश्वरसे कहता है कि मैं आपका हूं तो वह संबंध अपूर्ण है। परंतु ईश्वर जब जीवसे कहता है कि तू मेरा है तभी वह संबंध परिपूर्ण होता है।

पापको टालो, पुण्यकार्य तुरंत करो। ईश्वर हमें पापकी प्रवृत्तिओंसे कभी नहीं जोडता। परंतु जन्मोंके संचित संस्कार ही पाप करनेके लिए प्रेरणा देते हैं।

एकांतमें ईश्वरभजन करो। मनको एकांत जल्दी एकाग्र बनाता है एक ईश्वरमें ही सबका अंत करना एकांत है। ईश्वर एक और अद्वितीय है। मनको एकाग्र करनेके लिए एकांतमें रहनेकी जरूर है। गृहस्थ घरमें समभाव नहीं रख सकता, वह फिर चाहे गीताका पाठ ही क्यों न करे? "समत्वम् योग उच्यते"। गृहस्थाश्रमके व्यवहार विषमतासे भरे हुए हैं। वहां समता नहीं रखी जा सकती। गृहस्थके घरमें भोगके परमाणु भरे हुए होनेके कारण घरमें रहकर परमात्माका सतत ध्यान करना कठिन है। भागवतमें शुकदेवजीने स्पष्ट कहा है कि जिसकी मृत्यु समीप आ गई हो वह घर छोड दे: "गृहात् प्रव्रजितो धीरः।" धैर्यसहित घर छोडो, पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करो और पवित्र एकांत स्थलमें आसन जमाकर बैठ जाओ। मनसे प्रणवका जप करो। प्राणायामसे प्राणवायुको वशमें करो। मनको अन्य विचारोंसे रोककर भगवान्के मंगलमय रूपसे जोड दो। मीराबाईने एकांतमें गिरिधरके आगे नाचना तय किया था। उसकी टेक थी "मैं गिरिधरके आगे नाचूंगी।" तभी उसकी भक्ति सिद्ध हुई।

एकांतमें बैठकर पहले प्राणायाम करो। मनका प्राणसे संबंध है। प्राणसे मन भी स्थिर होता है। प्राणायामके तीन भेद होते हैं। प्रथम पूरक प्राणायाम करना होता है दाहिनी नासिका द्वारा बाहरकी हवा अंदर खींचो। यह सब योगकी प्रक्रियाएं हैं।

महाप्रभुजीने सुबोधिनीमें कहा है कि योगको भी भक्तिका सहकार चाहिये। योगको जो भक्तिका साथ न मिले तो वह योगी रोगी बन जाता है। विना भक्तिका योग रोग उत्पन्न करता है। विना भक्ति किये योग साधक नहीं होता, इतना ही नहीं, वह कभी कभी बाधक भी हो जाता है। भक्तिसे योग किया जाय तो प्रभुके साथ संयोग होता है। योगसे योगी मनको स्थिर कर सकता है किंतु हृदय विशाल नहीं होता। हृदयकी विशालता तो भक्ति और ज्ञानसे ही होगी। इसलिए पूरक प्राणायामसे ऐसी भावना करो कि प्रभुका तेजोमय स्वरूप तुम्हारे हृदयमें उतर रहा है। भगवान्‌का व्यापक तेज तुम्हारे हृदयमें आ रहा है।

फिर जब कुंभक करो तब भावना करो कि मैं ईश्वरका आलिंगन कर रहा हूँ। प्राणको शरीरमें रोके रखना ही कुंभक है। उस समय ब्रह्मसंबंधकी भावना करो। उस समय सोचो कि मेरे प्रभुके साथ मेरा मिलन हुआ है। मेरे प्रभुने मेरा आलिंगन किया है। यह ब्रह्मसंबंध सतत टिक जाए तो मुक्ति मिलती है। मनुष्य इस ब्रह्मसंबंधको सदा बनाये नहीं रख सकता। संसारके विषयोंमें मनको जाने देनेसे ब्रह्मसंबंध भंग हो जाता है।

फिर रेचक प्राणायाम करना होता है। बाईं नाकसे श्वास बाहर छोडना रेचक कहलाता है। उस समय ऐसी भावना करो कि मैं प्रभुके साथ एक हो गया हूँ। मैं भगवान्‌से एकरूप हो गया हूँ, भगवान्‌का बन गया हूँ, इसलिये मेरे पाप बाहर निकल रहे हैं, वासना बाहर निकल रही है। मेरे मनके सारे विकार बाहर निकल रहे हैं और अब मैं शुद्ध हो रहा हूं।

जब तक कुछ न कुछ लौकिक व्यवहार भी करना है तब तक मन स्थिर नहीं हो सकता बाहरका संसार तो भजनमें, कीर्तनमें विक्षेप नहीं करता किंतु मनका संसार अवश्य विक्षेप करता है।

ब्राह्मण संध्यामें अघमर्षण करता है। वह सोचता है कि मेरे पाप बाहर निकल रहे हैं।

मनकी मलिनता दो प्रकारकी होती है :

स्थूल मलिनता—साधारण साधन तप, व्रत, अनशन आदिसे यह मलिनता दूर होती है।

सूक्ष्म मलिनता :— तीव्र भक्ति ही उसे दूर कर सकती है।

शुकदेवजीने इसीलिये आरंभमें विराट् पुरुषका ध्यान धरनेकी बात कही है। विराट् पुरुषकी धारणा किये विना मन शुद्ध नहीं होता।

शुकदेवजी कहते हैं कि वैसे तो मेरी निष्ठा निर्गुणमें है तथापि नंदनंदन यशोदानंदन मेरे मनको बार बार अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीकृष्ण भगवान्‌की मधुर लीलायें मेरे मनको, मेरे हृदयको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करती हैं। इसी कारणसे मैंने भागवत-पुराणका अध्ययन किया और मैं वह आपको सुनाउंगा।

भगवान्‌के नामका प्रेमसे संकीर्तन करना ही सभी शास्त्रोंका सार है।

सभी शास्त्र पढो, उन पर विचार करो किंतु याद रखो कि नारायण हरि ही सच्चा है।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः ॥

मैंने सब शास्त्र देख डाले, कई बार विचार किया, फिर भी सार तो एक ही निकला कि उन सभीके ध्येय केवल नारायण हरि ही है। सभी शास्त्रोंके वाचन-मननके बाद मैंने तय किया है कि केवल भगवान्‌का ही ध्यान करना चाहिए।

निर्गुणके प्रति जबतक निष्ठा न हो सके तब तक मनके रागद्वेष नहीं जायेंगे। जिसकी सगुणमें तो निष्ठा हो किंतु वह निर्गुणको न माने तो उसकी भक्ति अपूर्ण ही रहती है।

ध्यानके आरंभमें मनकी सेवा करो। ध्यानके समय मन शुद्ध न हो तो आनंद नहीं मिलता। मनकी बाहरी विषयोंमें भटकते रहनेकी आदत पड गयी है। वर्तमानकालमें जीवन भोगप्रधान बन गया है। अतः मनको अंतर्मुख करना बडा कठिन है। ज्ञानी पुरुष मनकी मलिनता धोनेके लिये विराट् पुरुषकी धारणा करते हैं। विराट् पुरुषकी धारणाका अर्थ है सारे जगत्को ब्रह्मरूप मानना। ब्राह्मण उस विराट् पुरुषका मुख है, क्षत्रिय हाथ है वैश्य जघा है, शूद्र पग है, नदियां नाडी हैं। इस प्रकार जगत्के प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूप देखकर मनको शुद्ध करना है। साधारण साधकके लिए इस विराट् पुरुषकी कल्पना और धारणा कठिन है अतः कुछ लोग अति सुंदर नारायण भगवान्का ध्यान करते हैं।

जगत्को जबतक ब्रह्मरूप नहीं मानेंगे तबतक रागद्वेष नहीं मिटेंगे। कुछ लोग जगत्को ब्रह्ममय मानते हैं तो कुछ लोग प्रत्येक पदार्थमें ब्रह्मस्वरूपका अनुभव करते हैं। रागद्वेषके नाशके लिये विराट् पुरुषका ध्यान करो। सारा विश्व उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है ऐसी भावना मनमें दृढ हो जाय तो जगत्की किसी भी वस्तुके प्रति हीनभाव या कुभाव न हो।

हरि ही जगत् है। ब्रह्मदृष्टिसे जगत् सत्य है। ब्राह्मण भगवान्के मुखसे निकला है, वैश्य जंघासे निकला है, शूद्र चरणसे निकला है अतः किसीका भी अपमान भगवान्का ही अपमान है। इसलिए किसीका भी अपमान और तिरस्कार न करो। जगत्में जड और चेतनका जबतक भेद रखोगे तब तक ध्यानमें एकाग्रता नहीं आयेगी।

इसके बाद भागवतमें वैराग्यका उपदेश दिया गया है। बिना वैराग्यके ध्यान नहीं हो सकता, ध्यानमें एकाग्रता नहीं हो सकती।

संसारका स्मरण ही दुःख है और संसारका विस्मरण ही सुख है।

ज्ञानमार्गमें तीव्र वैराग्य होना चाहिये। भक्ति-प्रेममार्गमें समर्पणकी प्रधानता है। भक्ति करनी हो तो वह वैराग्यके बिना तो चल सकती है किंतु सबके साथ प्रेम तो करना ही पडेगा। वैराग्यसे यह काम अधिक कठिन है। सबके साथ प्रेम करो अथवा अकेले ईश्वरसे प्रेम करो। जगत्के प्रत्येक पदार्थके साथ प्रेम करना भक्तिमार्ग है।

ज्ञानमार्ग त्यागप्रधान है। भक्तिमार्गमें समर्पणका प्राधान्य है। ज्ञानी सबका निषेध करता हुआ परिनिषेधमें जो शेष रहता है उसीमें मनको दृढ करता है। साधारण मनुष्यके लिये ज्ञानमार्ग सुलभ नहीं है। मनुष्य सर्वस्व त्याग तो कर नहीं सकता।

शरीरसे आत्मा भिन्न है ऐसा सब समझते तो हैं किंतु उसका अनुभव आसान नहीं है। भक्त मानता है कि गायमें बसे हुए श्रीकृष्णकी सेवा घासमें बसे हुए श्रीकृष्णसे करूँगा।

भक्तिमार्गमें सद्भाव आवश्यक है। सभीके प्रति सद्भाव रखना कठिन कार्य है। श्रीकृष्ण भगवान् तो स्वयंको लात मारनेवालेको भी सद्भावकी दृष्टिसे ही देखते हैं।

मनकी मलिनता धोनेके लिये विराट् पुरुषका ध्यान धरना है। विराट् पुरुषके ध्यान करनेका अर्थ है इस जगत्में जो कुछ दीख रहा हो उसमें परमात्माका वास है ऐसा समझकर व्यवहार करना। सारा जगत् उसी विराट् पुरुषका स्वरूप है। विराट् पुरुषके ध्यानके लिये तीव्र वैराग्य जरूरी है।

सारा विश्व ब्रह्मरूप है ऐसा मानकर ज्ञानी पुरुष ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करता है। वैष्णवजन हृदयमें चतुर्भुज द्वारिकानाथके दर्शन करते हैं।

प्रभुके एक अंगका चिंतन करना ध्यान है और प्रभुके सर्वांगका चिंतन करना धारणा है।

दास्यभक्ति द्वारा हृदय जल्दी दीन बनेगा। पहले भगवान्‌के चरणारविंदका ध्यान करो, फिर मुखारविंदका और अंतमें सर्वांगका ध्यान करो।

ध्यानयोगकी कथा कपिल गीतामें विस्तारसे दी गयी है जिसका यहां संक्षेप किया गया है।

साधक सावधान होकर ध्यान करेगा तो उसकी समझमें यह बात आ जाएगी कि मायाकी शक्ति भ्रांतिमय ही है।

ईश्वरका चिंतन न हो सके तो भी कोई नहीं है किंतु संसारका चिंतन तो कभी भी नहीं करना चाहिए। ईश्वरका ध्यान चाहे न हो सके किंतु संसारका ध्यान छोडनेकी आदत डालनी चाहिए।

ध्यानके विना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिस तरह रुपये-पैसोंका ध्यान करते हो उसी तरह परमात्माका ध्यान करो।

आरंभावस्थामें आँखोंके सामने अंधकार-सा छा जायेगा। किंतु धैर्यसे योगधारणा करके मनको वशमें करो। बुद्धि द्वारा प्रभुके सर्वांगोंकी धारणा करो। ज्यों ज्यों बुद्धि स्थिर होती जायेगी, त्यों त्यों मन भी स्थिर होने लगेगा। धारणा स्थिर होने पर ध्यानमें प्रभुका मंगलमय स्वरूप दीखता है और भक्तियोगकी प्राप्ति होती है।

ध्यानमें मन यदि स्थिर न हो सके तो उस मनको मृत्युसे भयभीत करो। तभी वह स्थिर होगा। मनको किसी भी तरह समझाओ और स्थिर करो।

> क्षणभंगुर जीवनकी कलिका, कल प्रातः समय खिली न खिली;
> मलयाचलकी शुचि शीतल गंध समीर चली न चली।
> कलिकाल कुठार लिए फिरता तन नम्र है चोट झिली न झिली;
> रट ले हरिनाम अरी रसना, फिर अंत समयमें हिली न हिली॥

ज्ञानदेवने मनको गुरु बनाया है। मनका सच्चा गुरु आत्मा है।

एकनाथ महाराजके पास एक वैष्णव आया। उसने महाराजसे पूछा कि आपका मन ईश्वरमें, सदासर्वदा श्रीकृष्णमें कैसे स्थिर रहता है? मेरा मन तो आधा घंटा भी प्रभुमें स्थिर नहीं रह सकता। मनको स्थिर करनेका कोई उपाय बतायें।

एकनाथने सोचा कि उपदेश क्रियात्मक होना चाहिये। उन्होंने कहा कि जाने दे इस बातको अभी। मुझे लगता है कि तेरी मृत्यु समीप आ रही है। मृत्युके पहले वैर और वासनाका त्याग करना चाहिए। वैर और वासना मृत्युको बिगाडती है। सात दिनोंके बाद फिर मेरे पास आना।

मृत्युका नाम सुनते ही उस वैष्णवके तो मानो होश ही उड गये। वह घर लौटा। धन-संपत्ति आदि सब कुछ पुत्रके हाथोंमें सौंप दिया। उसने सबसे क्षमा-याचना की और वह ईश्वरका ध्यान करने लगा। सात दिनोंके बाद वह एकनाथ महाराजके पास आया।

महाराजने पूछा कि इन सात दिनोंमें तूने क्या क्या किया? तूने कुछ पाप तो नहीं किया? वैष्णवने उत्तर दिया कि मैं मृत्युसे ऐसा डर गया कि सब कुछ छोडकर प्रभुके ध्यानमें लग गया।

तो एकनाथने कहा कि मेरी एकाग्रताका यही रहस्य है। मैं मृत्युको रोज याद करता हूँ। मैं मृत्युका मनमें डर रखकर सतत ईश्वरभजन करता हूँ अतः सभी विषयोंसे मेरा मन हट जाता है और वह सदासर्वदा श्रीकृष्णमें एकाग्र रहता है।

परमात्मामें मन तन्मय न हो सके तो कोई बात नहीं है किंतु संसारके साथ कभी तन्मय न बनो।

परमात्माके ध्यानसे जीव ईश्वरमें मिल जाता है। ध्यान करनेवाला ध्येयमें मिल जाता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों एक होते हैं। यही मुक्ति है, यही अद्वैत है।

दृष्टि, द्रष्टा और दर्शन एक होने चाहिए। साधन, साधक, साध्य एक बनने चाहिए।

ध्याता, ध्यान और ध्येय तथा दर्शन, द्रष्टा और दृश्य एक बने तो समझो कि ध्यानमें और दर्शनमें एकतानता उत्पन्न हो गई है। एकतानता होनेसे वह अन्य सब कुछ भूल जाता है और उसे ईश्वरके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं दीखता।

लोग परमात्माको धन देते हैं किंतु वे तो मन मांगते हैं। व्यवहार तो करो किंतु ईश्वरमें-कृष्णमें मन रखकर करो। पनिहारिनें पानीसे भरे घडे सिर पर रखकर बातचीत करती हुई चलती हैं फिर भी उनका ध्यान सिर पर रखे हुए घडोंमें रहता है कि कहीं वे गिर न पडें। इसी तरह संसारके व्यवहार करते समय भी हमेशा ईश्वरका स्मरण भी करते रहो। जगत्‌के पदार्थोंमें आसक्ति न रखो।

विषयानंदी व्यक्ति ब्रह्मानंदको समझ नहीं सकता। ब्रह्मानंदका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उपनिषद्‌में दृष्टांत दिया गया है कि शक्कर (मिश्री) से बनी हुई गुडियाने सागरकी गहराईको जाननेका प्रयत्न किया। किंतु वह सागरमें जो गई सो गई ही। उसीमें वह विलीन हो गई। जो ईश्वरमें लीन हो गया हो, उस जीवको कोई ईश्वरसे भिन्न नहीं कर सकता। ज्यों ज्यों ध्यान किया जाता है त्यों त्यों जीवका परमात्मामें लय होता जाता है और फिर जीवका जीवत्व रहता ही नहीं है।

भागवतमें ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों बताए गए हैं।

ज्ञानमार्गमें जीव ईश्वरके साथ एक होता है, और ईश्वरमें विलीन हो जाता है। दूसरी ओर कतिपय वैष्णवाचार्य कुछ द्वैत रखकर अद्वैतको मानते हैं। भक्तिका आरंभ भले ही द्वैतसे हो, किंतु उसकी समाप्ति तो अद्वैतसे ही होती है। भक्त और भगवान् अलग नहीं रह सकते। जो जीव ईश्वरमें विलीन हो गया है उसे भगवान् अपने स्वरूपसे अलग नहीं कर सकते। उपनिषद्‌में ईश्वरका वर्णन करते हुए कहा है— रसो वै सः। अर्थात् ईश्वर रसरूप हैं।

वैष्णव आचार्य अभेदभावमें श्रद्धा रखते हैं। जलमें रहनेवाली मछली पानी नहीं पी सकती। इस तरह जो ब्रह्मरसमें डूब गया है, जो ब्रह्मरूप हो चुका है वह फिर परमात्माके रसात्मक स्वरूपका अनुभव नहीं कर सकता। ब्रह्मरूप होनेसे जीवकी दुःखनिवृत्ति तो होती है किंतु वह आनंदका अनुभव नहीं कर सकता। रसात्मक और आनंदात्मक ब्रह्मका अनुभव करनेके लिए जीवको कुछ अलग रहना पडेगा, थोडा-सा द्वैत रखना ही होगा। तब भक्त कहता है कि मैं अपने प्रभुका अंश हूं, मैं अपने भगवान्‌की गोपी हूँ। मुझे परमात्माके साथ एक नहीं होना है। मुझे तो परमात्माकी सेवा करनी है मुझे गोलोक धाममें जाना है।

भक्त जब लौकिक देहको छोडकर अप्राकृत शरीर धारण करके गोलोक-धाममें प्रवेश करता है तो भगवान्‌को आनंद होता है। वे कहते हैं मेरा अंश मुझमें मिलने आया है। इसलिए भगवान् उत्सव मनाते हैं।

भक्ति करता तुका झाला पांडुरंग।

किंतु तुकाराम कहते हैं कि कीर्तन करनेमें मुझे जो आनंद मिलता है वह विट्ठल बननेमें नहीं मिलता।

जीव ईश्वरका अनुभव कब कर सकेगा? जब ईश्वरसे वह भिन्न रहेगा तभी वह उस रसका अनुभव कर सकेगा। वैष्णवाचार्य चाहते हैं कि जीव ईश्वरसे कुछ अलग रहे।

कीडा भंवरीका चिंतन करता हुआ स्वयं भंवरीरूप बन जाता है। उसी तरह ब्रह्मका चिंतन करता हुआ जीव स्वयं ब्रह्मरूप बन जाता है। यह तो है कैवल्यमुक्ति। किंतु वैष्णवजन ऐसी कैवल्यमुक्तिकी इच्छा नहीं रखते। वे ईश्वरकी सेवा-पूजा और उसका रसास्वादन करनेके लिए थोडा-द्वैतभाव रखते ही हैं।

जो व्यापक ब्रह्ममें लीन हो चुका है वह उससे अलग कैसे हो सकता है? पानीके जड या ठोस होनेके कारण मछली अलग रह सकती है। किंतु जो पानीमें हर तरहसे डूब गया हो वह पानीका आस्वाद नहीं ले सकता। उसी तरह ईश्वरमें डूबा हुआ जीव ईश्वरके स्वरूपका रसानुभव नहीं कर सकता। इसीलिए वैष्णव महापुरुष थोडा-सा द्वैत रखकर भगवान्‌की सेवा-स्मरणमें कृतार्थताका अनुभव करते हैं।

यह दोनों सिद्धांत सत्य हैं। खंडन-मंडनके पचडेमें मत पडो। गौरांग प्रभु भी इस भेदाभेद भावको मानते हैं। लीलाभेदको मानते हैं। परंतु तत्त्व दृष्टिसे अभेद हैं। अभिन्न होने पर भी उन दोनोंमें सूक्ष्म भेद है।

एकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें उस सिद्धांतको समझानेके लिए एक दृष्टांत दिया है।

अशोक वनमें रामके विरहमें सीताजी रामका अखंड ध्यान-स्मरण करती हैं। सीताजी रामके ध्यानमें तन्मय हैं। विरहमें तन्मयता विशेष होती है। सर्वत्र राम दीखते हैं। माताजी भूल जाती हैं कि वे सीता हैं।

सभीमें रामका अनुभव करनेवाला रामरूप बनता है। यही कैवल्यमुक्ति है।

सीताजीको कई बार लगता है कि वह रामरूप हैं। वे अपना स्त्रीत्व भी भूल जाती हैं।

+

एक बार सीताने त्रिजटासे पूछा कि मैंने सुना है कि कीडा भंवरीका चिंतन करता हुआ स्वयं भंवरी बन जाता है तो इसी भांति रामजीका सतत चिंतन करनेसे मैं भी यदि राम बन गई तो क्या होगा ?

सीताजी रामके ध्यानमें ऐसी तन्मय हो जाती हैं कि मानो वे स्वयं राम ही हो जाती हैं।

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

त्रिजटाने कहा कि माताजी, आप रामरूप हो जायें तो अच्छा ही होगा। जीव और शिव एक हो जाय तो जीव कृतार्थ हो जाता है।

तो सीताजी कहती हैं कि यदि मैं रामका चिंतन करती हुई स्वयं राम बन गई तो फिर श्री रामजीकी सेवा कौन करेगा ? सीता रहकर रामकी सेवा करनेमें जो आनंद है वह स्वयं रामस्वरूप बननेमें नहीं है। मुझे राम होनेमें आनंद नहीं है। मुझे तो रामजीकी सेवा करनी है।

सीताजीको दुःख होता है कि उनका युगलभाव खंडित हो जाएगा। उस हालतमें सीतारामका युगलभाव नहीं रह सकेगा।

तब त्रिजटाने कहा : अन्योन्य प्रेम होनेके कारण रामजी आपका चिंतन करते हुए सीतारूप बन जाएंगे और इस तरह आपका युगलभाव जगत्‌में अखंडित ही रहेगा।

यही भागवती मुक्तिका रहस्य है।

वैष्णव आचार्य प्रथम द्वैतका नाश करते हैं और अद्वैत प्राप्त करते हैं। फिर काल्पनिक द्वैत बनाए रखते हैं कि जिसके कारण कन्हैयाकी गोपीभावसे पूजा की जा सके।

ज्ञानीजन ज्ञानसे अद्वैत सिद्ध करते हैं। यह अद्वैतमुक्ति है, कैवल्यमुक्ति है।

भक्त भक्तिसे अद्वैत सिद्ध करते हैं। यह भागवती मुक्ति है।

इस प्रकार दो भक्तियोंका वर्णन हुआ है। सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्म शरीर है। स्थूल और सूक्ष्म शरीरका नाश होने पर मुक्ति प्राप्त होती है।

विचारप्रधान मनुष्य ज्ञानमार्ग पसंद करता है। भावनाप्रधान मनुष्य कोमल हृदयी होनेके कारण भक्तिमार्ग पसद करता है।

ईश्वरसे विमुख न होना ही भक्ति है। सभी साधनोंमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। भक्तिशून्य पुरुषोंके सभी साधन निष्फल ही रहते हैं। जीव और ईश्वरका मिलन करानेका साधन है कथा। भागवतमें जहाँ भी भक्ति शब्दका प्रयोग किया गया है वहाँ तीव्र शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। भक्ति तीव्र होनी चाहिए। विना तीव्रताके साधारण भक्तिसे कुछ नहीं होता।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।

वैराग्यकी इच्छावाला मुमुक्षु भक्त हो तो उसे तीव्र भक्तियोगसे परम पुरुष पूर्ण परमात्माका पूजन करना चाहिए।

शुकदेवजी कहते हैं—

हे राजन् ! मुक्ति प्राप्त करनी ही है तो आरंभमें भोगोंका त्याग करना ही पडेगा। भोगी ज्ञान या भक्तिमार्गमें आगे नहीं बढ सकता। भोग भक्तिमें भी बाधक है और ज्ञानमें भी। भोगकी अपेक्षा त्यागमें अनंत गुना सुख है।

इन्द्रियजन्य सुख सभी प्राणियोंमें एक सा ही होता है। पशुका, मनुष्यका और देवगंधर्वका त्वचेन्द्रियका स्पर्शसुख और जिह्वेन्द्रियका रससुख समान ही होता है। इन्द्रिय-सुखके उपभोगके समय जो आनंद मनुष्यको मिलता है वही आनंद पशुको भी मिलता है। छप्पन मन रुईकी गद्दीवाले पलंग पर सोनेवाले सेठको जो आनंद मिलता है वही आनंद कचरे-कूडेके ढेरमें पडे हुए गधेको भी मिलता है। इसीलिये मनुष्यको चाहिये कि वह बुद्धि-पूर्वक भोग छोडे।

भोगमें क्षणिक सुख मिलता है पर त्यागसे हमेशाके लिये अनंत सुखकी प्राप्ति होती है।

भोगसे शांति नही मिलती त्यागसे शांति मिलती है। पशु, पंखी, मनुष्य सभीके लिए इन्द्रिय सुख तो एक समान ही है। मनुष्यको जो सुख श्रीखंड खानेसे मिलता है वही सुख सुअरको विष्ठा खानेमें मिलता है।

राजन्! तुमने आज तक अनेक भोगोंका उपभोग किया। अब तुम अपनी एक एक इन्द्रियोंको भक्तिरसका पान कराओ। इन्द्रियरूपी पुष्प तुम भगवान्को अर्पित करो।

राजन्! जिसकी मृत्यु समीप है उसे चाहिए कि वह संसारको भूलनेका और परमात्मामें मन लगानेका प्रयत्न करे।

राजन् धीरे धीरे संयमको बढाओ। श्रीकृष्णका सतत ध्यान धरना ही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है। जो ईश्वरमें तन्मय होता है उसे मुक्ति मिलती है।

राजन्, जन्म उसीका सफल हुआ जानो कि जिसे दूसरी बार माताके गर्भमें जानेका अवसर ही न मिले। गर्भवास नरकवास है। कर्म और वासनाको साथ लेकर जो जन्म लेता है उसके लिए गर्भवास नरकवास ही है।

शुकदेवजी जनकराजाके राजगृहमें विद्या सीखनेके लिये गये। विद्याभ्यास समाप्त हुआ। शुकदेवजीने गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की। जनक राजाने कहा मुझे कोई गुरुदक्षिणाकी इच्छा नहीं है। फिर भी तुम आग्रह करते ही हो तो जगत्में जो वस्तु बिलकुल निरुपयोगी हो वही मुझे दे दो।

जनक राजाने निरुपयोगी वस्तु मांगी तो शुकदेवजी उसकी खोजमें निकल पडे। उन्होंने प्रथम मिट्टी उठायी तो उसने कहा कि मेरे तो कई उपयोग हैं। पत्थरने भी वैसा ही कहा। जो भी वस्तु उठायी वह सभी उपयोगी निकल पडी। अंतमें हार कर शुकदेवजीने विष्ठा उठायी। तो उसने भी कहा कि मैं भी उपयोगी हूँ। मनुष्यके पेटमें जानेसे ही मेरी यह अवदशा हुई है। फिर भी मैं निरुपयोगी नहीं हूँ।

सोचते सोचते शुकदेवजीने पाया कि यह देहाभिमान ही निरुपयोगी है।

परमात्माकी सेवा करते हुए पुरुषत्व और स्त्रीत्वका भान चला जाए तो गोपीभाव सिद्ध होता है और परमात्माकी नित्य लीलामें प्रवेश मिल जाता है। 'संगं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।'

शुकदेवजीने जनक राजासे कहा कि मैं अपना देहाभिमान गुरुदक्षिणामें अर्पित करता हूँ। यह सुनकर जनकराजाने शुकदेवजीसे कहा कि अब तुम कृतार्थ हो गये हो।

शुकदेवजीने देहाभिमान छोड दिया। देहभान न होनेके कारण ही उन्होंने मंगलाचरण नहीं किया। चौथे अध्यायमें मंगलाचरण किया है बारहवें श्लोकसे।

(स्कंध २ अध्याय ४ श्लोक १२)

साधकको कथा मार्गदर्शन कराती है। इतना ही नहीं सिद्ध पुरुषोंको भी कथा सुननेकी जरूरत रहती है। शुकदेवजीकी कथामें भी पराशरजी, व्यासजी आदि बैठे थे।

द्वितीय स्कंधमें अध्याय १-२-३ में भागवतका पूरा सार और सारा बोध आ गया है। राजाको जो उपदेश देना था वह इन तीन अध्यायोंमें विदित है। फिर उसके बाद तो परीक्षित राजाका मन विषयकी ओर न चला जाय इसलिए सभी चरित्र कहे गये हैं।

शुकदेवजी स्तुति करते हैं।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥

भा. २-४-१४

जो महान् भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधनावाले मनुष्य जिसकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर सकते, जिसके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है तो फिर अधिक तो कैसे हो सकेगा। तथा जो ऐश्वर्य-युक्त होकर निरंतर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार कर रहे हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार बार नमस्कार करता हूं।

प्रेममें पक्षपात हो ही जाता है। शुकदेवजी राधाकृष्णको दो बार नमस्कार करते हैं। क्योंकि राधाजी श्रीशुकदेवजीकी गुरु हैं। राधाजीने शुकदेवजीका ब्रह्मसंबंध करवा दिया था। इस श्लोकके 'राधसा' शब्दका अर्थ कुछ महात्मा राधिकाजी भी करते हैं।

शुकदेवजी पूर्वजन्ममें तोता थे। वे रात-दिन हरेभरे निकुंजमें राधाका नाम सतत रटते रहते थे। शुकदेवजी श्री राधाजीके शिष्य हैं। यही कारण है कि भागवतमें राधाजीके नामका उल्लेख तक नहीं है। गुरुका प्रकट रूपसे नाम लेनां शास्त्रनिषिद्ध है।

भागवतके टीकाकार श्रीधर स्वामी इन पांच वस्तुओंको नित्य मानते हैं। भगवान्का स्वरूप, भगवान्की लीला, भगवान्का धाम, भगवान्के काम और परिकर।

परीक्षित राजाने पूछा कि अपनी मायासे भगवान् इस सृष्टिकी रचना कैसे करते हैं। इस सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा कहिए।

शुकदेवजीने कहा : राजन्, तुमने जो प्रश्न मुझसे पूछा है वही प्रश्न नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछा था। तुम उसकी कथा सुनो। ब्रह्माजीने नारदजीसे सृष्टिके आरंभकी कथा कही थी।

भगवान्की इच्छा हुई कि वे एकसे अनेक बनें— एकोऽहम् बहु स्याम्। उन्होंने २४ तत्त्व उत्पन्न किए। वे सभी तत्त्व कुछ न कर सके तब प्रभुने उन सभी तत्त्वोंमें प्रवेश किया। तभी उन तत्त्वोंमें चेतनशक्ति प्रकट हुई।

सातवें अध्यायमें भगवान्के लीला-अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन है।

ब्रह्माजीकी निष्कपट तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया। आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिए उन्हें परम सत्य परमार्थ वस्तुका जो उपदेश किया उसकी कथा सुनाता हूं।

आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्मस्थान कमल पर बैठकर सृष्टि रचनेकी इच्छासे सोचमें डूबे हुए थे। फिर भी जिस ज्ञानदृष्टिसे सृष्टिकी रचना की जा सकती थी वह प्राप्त न हो सकी। ऐसेमें ब्रह्माजीने आकाशवाणी सुनी : तप तप। ब्रह्माजीने समझा कि मुझे तप करनेका आदेश मिला है। ब्रह्माजीने सौ वर्ष तक तप किया और उन्हें चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए।

तप किए विना किसीका भी काम नहीं बनेगा। जो तप नहीं करता उसका पतन होता है। (तप शब्दके अक्षरोंको पलट देने पर पत होता है।)

नारायण भगवान्ने ब्रह्माजीको चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया। द्वितीय स्कंधके नवें अध्यायके ३२ से ३५ श्लोक ही चतुःश्लोकी भागवत है।

भगवान् आँखमिचौनी खेलते हैं। आरंभमें सभी जीव भगवान्में निहित थे। भगवान् प्रत्येक जीवको खोज खोज कर उसके कर्मानुसार शरीर उसे देते हैं। फिर कहते हैं कि अब मैं छुप जाता हूँ, तू मुझे खोज लेना।

जब जगत् अस्तित्वमें नहीं था तब भी मैं था। जब जगत् नहीं रहेगा तब भी मैं रहूँगा। जिस तरह स्वप्नमें एक ही अनेक स्वरूपसे देखता है उसी तरह जागृत अवस्थामें भी अनेकमें एक ही तत्त्व है ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका अनुभव है। आभूषणके आकार भिन्न भिन्न होने पर भी सभी एक ही प्रकारके सुवर्णसे बने हुए होते हैं। मूल्य भी उस सुवर्णका ही है, आकारका नहीं।

ईश्वरके सिवा जो भी कुछ दिखायी देता है वह असत्य है। ईश्वरके सिवा दूसरा जो कुछ भी दिखायी दे, वह ईश्वरकी माया ही है। अस्तित्व न होने पर भी जो दिखायी देता है और सभीमें व्याप्त होते हुए भी ईश्वर दिखायी नहीं देता यह ईश्वरकी माया ही है। यह मायाका ही कार्य है। उसे ही महापुरुष आवरण और विक्षेप कहते हैं।

सभीका मूल उपादानकारण प्रभु है। प्रभुमें भासमान संसार सत्य नहीं है, किंतु मायाके कारण आभासित होता है।

मायाकी दो शक्तियाँ हैं :-

(१) आवरण शक्ति :- मायाकी आवरण शक्ति परमात्माको छुपाए रहती है।

(२) विक्षेप शक्ति :- मायाकी विक्षेप शक्ति ईश्वरके अधिष्ठानमें ही जगत्का भास कराती है। ईश्वरमें जगत्का भास कराती है।

अंधकारके दृष्टांत द्वारा यह सिद्धांत समझाया गया है। जो नहीं है वह भूलसे दीखता है और जो है वह दीखता नहीं है।

आत्मस्वरूपका विस्मरण ही माया है। अपने स्वरूपकी विस्मृति स्वप्न ही है। जो स्वप्न देखता है वह देखनेवाला सच्चा है। स्वप्नमें एक ही पुरुष दो दिखाई देता है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो स्वप्नका साक्षी और प्रमाता एक ही है। वह जब जागता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि मैं तो घरमें सेज पर ही सोया हुआ हूं। स्वप्नका पुरुष भिन्न है। जगत्का ब्रह्म तत्त्व एक ही है किंतु मायाके कारण अनेकत्वका भास होता है। माया जीवनसे लगी हुई है। यह माया जीवनसे कब लगी ? कहा नहीं जा सकता, क्योंकि माया अनादि है। उसका मूल खोजनेकी जरूरत नहीं है।

मायाका अर्थ है अज्ञान। अज्ञान कबसे शुरु हुआ वह जाननेकी क्या जरूरत है? माया जीवसे कबसे लगी है उसका विचार न करो। उसका पार कोई भी नहीं पा सकता। कब विस्मरण हुआ यह कहा नहीं जा सकता। उसी तरह अज्ञानका कब आरंभ हुआ वह भी नहीं कहा जा सकता। पर अज्ञानका तात्कालिक विनाश करना जरूरी है।

कपडों पर दाग लग जाय तो वह कैसे लगा, किस जगह लगा, कौन सी स्याही होगी आदिका विचार करनेकी अपेक्षा उस दागको तुरंत दूर करना ही हितावह है।

मायाके बारेमें सोचते रहनेकी अपेक्षा मायाको दूर करनेके लिए परमात्माकी शरण लेना अच्छा है।

मायाका दर्शन करनेकी सुदामाकी इच्छा होने पर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि आपकी मायाका मैं दर्शन करना चाहता हूँ। वह कैसी होती है? श्रीकृष्णने कहा कि समय आने पर उसका दर्शन कराऊँगा। चलो, पहले हम गोमतीमें स्नान कर लें।

वे दोनों गोमती तट पर आए। स्नान करने लगे। भगवान् तो स्नान करके पीतांबर पहनने लगे। सुदामाने गोमतीके जलमें गोता लगाया। उसी समय भगवान्‌ने अपनी मायाका दर्शन कराया।

सुदामाको लगा कि गोमतीमें बाढ आ गई है। वे उसमें बहे चले जा रहे हैं। उन्होंने एक घाटका आसरा लिया। घूमते-फिरते वे एक गांवके पास आए। वहां एक हथिनीने उनके गलेमें फूलमाला पहनाई। लोगोंने सुदामासे कहा कि हमारे देशके राजाकी मृत्यु हो गई है। इस गांवका नियम है कि पहले राजाकी मृत्युके बाद हथिनी जिसको माला पहनाए वही राजा हो। इसलिए आप हमारे देशके राजा हो गए हैं।

सुदामा राजा बन गए। एक राजकन्याके साथ उनका विवाह भी हो गया। बारह वर्षके दांपत्य जीवनमें दो पुत्र भी उत्पन्न हो गए। फिर एक दिन बीमार होनेसे रानीकी मृत्यु हो गई। सुदामा दुःखसे रोने लगे क्योंकि वह रानी सुंदर और सुशील थी। लोगोंने सुदामासे कहा कि मत रोओ। हमारी मायापुरीका नियम है कि आपकी पत्नी जहां गई है वहां आप भी भेजे जायँ। पत्नीकी चितामें आपको भी प्रवेश करना होगा।

अब सुदामाने पत्नीका रोना बंद कर दिया और वे अपना रोना ही रोने लगे। हाय अब मेरा क्या होगा? उन्होंने लोगोंसे कहा कि मैं तो परदेशी हूं। आपके गांवका कानून मुझ पर नहीं लग सकता। मुझे एक बार स्नान-संध्या करने दो फिर चाहे मुझे जला देना। वे स्नान करने गए तो चार पुरुष निगरानी करने लगे कि सुदामा कहीं भाग न जाएं। सुदामा खूब डर गए। घबडाहटके मारे वे परमेश्वरको याद करने लगे।

वे रोते हुए नदीसे बाहर आए। उस समय भगवान् तो तट पर खडे हुए पीतांबर पहन रहे थे। भगवान्‌ने पूछा कि तुम क्यों रो रहे हो? सुदामाने कहा कि वह सब कहां चला गया? यह सब क्या है? मेरी समझमें तो कुछ नहीं आता। भगवान्‌ने कहा कि यही मेरी माया है। मेरे बिना जो आभास होता है वही मेरी माया है।

मायाका अर्थ है विस्मरण। 'मा' निषेधात्मक है औ 'या' हकारात्मक, इसप्रकार जो न हो उसे दिखाये वह माया है।

मायाके तीन प्रकार है :

(१) स्वमोहिका (२) स्वजन मोहिका (३) विमुखजन मोहिका।

जो सतत ब्रह्मदृष्टि रखता है उसे माया पकड नहीं सकती। माया जीवसे लगी हुयी है यह सिद्धान्त तत्त्व-दृष्टिसे सच्चा नहीं है।

माया नर्तकी है। वह सबको नचाती है। नर्तकी-मायाके मोहसे छूटना है तो नर्तकी शब्दको उलट दो और तब होगा कीर्तन। कीर्तन करोगे तो माया छूटेगी। कीर्तन-भक्तिमें हरेक इन्द्रियको काम मिलता है। इसलिए ही महापुरुषोंने कीर्तन-भक्तिको श्रेष्ठ माना है।

मायाका पार पानेके लिए, माया जिसकी दासी है उस मायापति परमात्माको पानेका प्रयत्न करो। मायाकी पीडासे मुक्ति पाना चाहते हो तो माधवरायकी शरणमें जाओ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

मुझे ही जो भजते हैं वे इस दुस्तर माया अथवा संसारको पार कर जाते हैं।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥

राजन्, इसीलिये मनुष्यको चाहिये कि वह हरकोई स्थानमें और हर किसी समय, अपनी संपूर्ण शक्तिसे भगवान् श्री हरिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करता रहे।

मायाकी अधिक चर्चा न करो। ब्रह्माजीने नारदजीको ऐसी आज्ञा दी थी कि माया जिनकी दासी है ऐसे मायापति परमात्माके चरणोंका आसरा लेकर प्रभु भक्ति बढे उस तरहसे इस सिद्धांतका प्रचार करो। नारदने वह उपदेश व्यासजीको दिया। व्यासजीने उन चार श्लोकोंके आधार पर हजार श्लोकोंका भागवतशास्त्र रचा।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

तृतीयः स्कंधः

आत्माको यह शरीर बंधनमें रखता है। शरीर जड है, आत्मा चेतन है। किंतु जड-चेतनकी यह ग्रंथि असत्य है, गलत है। क्योंकि चेतनको जड वस्तु किस प्रकार बांध सकती है? यह ग्रंथि असत्य होने पर भी, जिस तरह स्वप्न हमें रुलाते हैं वैसे ही यह भी हमें रुलाती है। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो हम यह नहीं कह सकते कि जड शरीर चेतन आत्माको बांधकर रख सकता है। चेतन आत्माको जड शरीर बंधनमें नहीं रख सकता। आत्मा शरीरसे भिन्न है, यह बात सभी जानते हैं, किंतु इसका अनुभव बहुत कम लोग कर पाते हैं।

शुकदेवजी कहते हैं- हे राजन्, तुम जो प्रश्न करते हो, वैसे ही प्रश्न विदुरजीने मैत्रेयजीसे पूछे थे। ये विदुरजी ऐसे हैं कि आमंत्रणके बिना भी भगवान् उनके घर गए थे।

परीक्षितने कहा कि विदुरजी और मैत्रेयजीका मिलन कब हुआ वह मुझे बताइए।

शुकदेवजी कहते हैं कि आमंत्रण पाए बिना ही भगवान् विदुरजीके घर गए थे, उस प्रसंगकी बात पहले बता दूं।

धृतराष्ट्रने पांडवोंको लाक्षागृहमें जला देनेका प्रयत्न किया था। विदुरजीने धृतराष्ट्रको उपदेश दिया किंतु उसका धृतराष्ट्र पर कुछ भी असर नहीं हुआ। विदुरजीने सोचा कि यह धृतराष्ट्र दुष्ट है। उसके कुसंगसे मेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाएगी। फिर भी उन्होंने उसको कई बार उपदेश दिया, किंतु धृतराष्ट्रने एक भी न सुनी तो विदुरजीने उसके घरको ही छोड दिया।

विदुरजी अपनी पत्नी सुलभाके साथ समृद्ध घरका त्याग करके वनमें चले गए। वनवासके बिना जीवनमें सुवास नहीं आ सकता। इसीलिए तो पांडवोंने और भगवान् रामचंद्रजीने भी वनवास किया था।

विदुरजी तो पहलेसे ही तपस्वी-सा जीवन बिताते थे और भगवान्का कीर्तन करते थे। इसलिए दुर्योधनके छप्पन भोगोंको छोडकर श्रीकृष्णने विदुरजीके घर भाजीका प्राशन किया।

विदुर और सुलभा वनमें नदीके किनारे कुटिया बांधकर रहने लगे और तपश्चर्या करने लगे। वे हररोज तीन घंटे कृष्ण-कथा, तीन घंटे कृष्णसेवा, तीन घंटे प्रभुका ध्यान, तीन घंटे प्रभुका कीर्तन और तीन घंटे प्रभुकी सेवा करने लगे। बारह वर्ष तक वे इस प्रकार भगवान्की आराधना करते रहे।

मनको सतत सत्कर्ममें लगाए रखो। मन निठल्ला होकर पाप करेगा। भगवान्का वे कीर्तन करते थे और भूख लगने पर भाजी खाते थे।

भोजन करना पाप नहीं है। भोजनमें ही खो जाना और भोजन करते समय भगवान्को भूल जाना पाप है। कई लोग कढी खाते खाते उसीमें खो जाते है और अगले दिन माला फेरते हुए भी कढीको याद करते हैं। मनमें सोचते है कि कलकी कढी कितनी स्वादिष्ट थी।

विदुरजीने सुना कि द्वारिकानाथ संधि करानेके लिए हस्तिनापुर आ रहे हैं।

धृतराष्ट्रने सेवकोंको आज्ञा दी कि कृष्णके स्वागतकी तैयारी करो। छप्पन भोग लगाओ।

धृतराष्ट्र यह सेवा कुभावसे करते हैं। सेवा सदा सद्‌भावसे करनी चाहिए। कुभावसे सेवा करनेवाले पर भगवान् प्रसन्न नही होते। जो सद्‌भावसे सेवा करते हैं उसकी सेवासे वे प्रसन्न होते हैं।

विदुरजी गंगास्नान करने गये थे। वहाँ उन्होंने सुना कि कल तो रथयात्रा निकलेगी। पूछने पर लोगोंने बताया कि कल द्वारिकासे भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं।

विदुरजी घर लौटे। वे बडे ही आनंदमें मग्न दीख रहे थे। उनकी पत्नीने पूछा : क्या बात है कि आज आप बडे खुश दिखायी दे रहे हैं।

विदुरजीने कहा : सत्संगमें सारी बात कहूँगा। मैंने कथामें सुना था कि जो बारह वर्षों तक सतत सत्कर्म करे उस पर भगवान् कृपा करते हैं। बारह वर्ष एक ही स्थानमें रह कर ध्यान करनेवालेको प्रभु दर्शन देते हैं। मुझे लगता है कि द्वारिकानाथ दुर्योधनके लिए नहीं किंतु मेरे ही लिए ही आ रहे हैं।

सुलभाने कहा कि मुझे स्वप्नमें रथयात्राके दर्शन हुए थे। वह स्वप्न सच होगा। बारह वर्षोंसे मैंने कभी अन्न नहीं खाया।

विदुरजी कहते हैं कि देवी! तुम्हारी तपश्चर्याका फल कल मिलेगा। कल परमात्माके दर्शन होंगे।

सुलभादेवीने विदुरजीसे पूछा कि आपका प्रभुके साथ कोई परिचय भी है।

विदुरजीने कहा कि जब मैं कृष्णको वंदन करता हूँ तो वे मुझे "चाचा" कह कर पुकारते हैं। मैं तो उनसे कहता हूँ कि मैं अधम हूँ, आपका दासानुदास हूँ। मुझे चाचा मत कहो।

जीव जब नम्र होकर प्रभुकी शरणमें जाता है तो ईश्वर उसका सम्मान करते हैं।

सुलभाके मनमें एक ही भावना है कि ठाकुरजी मेरे घर पर भोजन करें और मैं उन्हें प्रत्यक्ष निहारुं।

सुलभा कहती हैं कि वे आपके परिचित है तो उनको हमारे घर पधारनेका न्यौता दीजिये। मैं भावनासे तो रोज भगवान्‌को भोग लगाती हूँ। अब मेरी यही इच्छा है कि मेरी दृष्टिके समक्ष वे प्रत्यक्षरूपसे भोजन करें।

विदुरजी कहते हैं कि मेरे आमंत्रणको अस्वीकार तो वे नहीं करेंगे, किंतु इस छोटी-सी झोपडीमें हम उनका आदर-सत्कार कैसे करेंगे? उनके आगमनसे हमें तो आनंद होगा किंतु उनको तो कष्ट ही होगा। मेरे भगवान् छप्पन भोगोंका प्राशन करते हैं। धृतराष्ट्रके घर उनका भलीभाँति स्वागत होगा। मेरे पास तो भाजीके सिवा कुछ नहीं है। मैं उन्हें क्या अर्पण करूँगा? हमारे यहाँ आनेसे ठाकुरजीको परिश्रम होगा। अपने मेरे सुखके लिए मैं भगवान्‌को जरा भी कष्ट नहीं देना चाहता। यही पुष्टिभक्ति है।

+

सुलभाने कहा कि मेरे घरमें चाहे दूसरी कुछ भी चीज भले ही न हो किंतु मेरे हृदयमें प्रभुके लिए अपार प्रेम तो है ही। वह प्रेम ही मैं तो भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दूंगी। हम जो भाजी खाते हैं, वही मैं ठाकुरजीको प्रेमसे खिलाऊंगी।

जीभके सुधरने पर जीवन भी सुधरता है और जीभके विगडने पर जीवन भी विगड जाता है। सीधा सादा भोजन करनेसे जीवन शुद्ध होता है।

यदि आहार सादगीपूर्ण और शुद्ध होगा तो शरीरमें सात्त्विक गुणकी वृद्धि होगी। सत्त्वगुणके वढनेसे सहनशक्ति भी वढती है और अंतमें बुद्धि स्थिर होती है।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि ,
सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।

अतः विदुरजीकी भाँति अतिशय सादगीभरा जीवन जीओ। जिसका जीवन सीधा-सादा है वह अवश्य साधु वनेगा।

सुलभाने कहा कि मैं गरीब हूँ तो क्या हुआ? गरीब होना कोई अपराध है क्या? आपने कथामें कई बार कहा है कि प्रभु प्यारके भूखे है। भगवान् गरीबोंसे अधिक प्यार रखते हैं।

विदुरजीने कहा: भगवान् राजप्रासादमें जाएंगे तो वहाँ सुखसे रहेंगे। मेरे घरमें उनको कष्ट होगा। इसलिये मै भगवान्‌को यहॉ लाना नही चाहता। देवी, हमारे अन्दर कुछ पाप अभी बाकी हैं। मैं तुम्हें कल कृष्णके दर्शन करानेके लिए ले जाऊंगा। किंतु ठाकुरजी अपने घर आयें ऐसी आशा अभी मत कर। वे बादमें कभी हमारे यहॉ आयेंगे अवश्य, पर कल नही।

वैष्णव इस आशाके सहारे ही जीता है कि मेरे प्रभु आज नहीं तो पांच-दस वर्षोंके वाद कभी तो आयेंगे ही। और नहीं तो कम-से-कम मेरे जीवनके अंतकालमें तो आयेंगे ही।

सुलभा सोचती है कि पति संकोचवश आमंत्रण नहीं दे रहे हैं। किंतु मैं तो मनसे आमंत्रित करूँगी।

अगले दिन विदुर और सुलभा वालकृष्णकी सेवा करते है। वालकृष्ण स्मित कर रहे हैं। विदुर और सुलभा भगवान्‌की प्रार्थना करते हैं—

रथारूढो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः
स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिंधुर्वंधुः सकलजगतां सिंधु-सदयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥

रथयात्राके समय मार्गमें इकट्ठे हुए ब्राह्मणवृंदोंके द्वाराकी गई स्तुतिको सुनकर हर कदमके साथ जो द्रवित हो रहे हैं वे दयाके सागर, अखिल ब्रह्मांडके वंधु और समुद्रपर कृपा करनेके हेतु, उसके तटपर निवास करनेवाले श्री जगन्नाथ स्वामी सदा मेरे नेत्रोंके संमुख रहें।

हमेशा रथारूढ द्वारिकानाथके दर्शन करो।

भगवान् रथमें बैठकर जा रहे हैं।

जब तक जीव शुद्ध नहीं होता तब तक परमात्मा उससे आंख नहीं मिलाते। और जब चार आंखें एक न हों तब तक दर्शनमें आनंद नहीं मिलता।

विदुर और सुलभा भी रथ देख रहे हैं। विदुरजी सोचते हैं कि मेरी ऐसी तो पात्रता नहीं है कि भगवान् मेरे घर आएं। किंतु क्या एक नजर मुझे देखेंगे तक नहीं? मैं पापी हूं किंतु मेरे भगवान् तो पापीके उद्धारक हैं, पतितपावन हैं। उनके लिए मैंने सभी विषयोंका त्याग कर दिया है। नाथ, आपके लिए मैंने क्या क्या न सहा? बारह वर्षोंसे मैंने अन्न नहीं खाया। क्या भगवान् मेरी ओर एक दृष्टि भी नहीं करेंगे? कृपा कीजिए। हजारों जन्मोंसे मैं आपसे जुदा रहा हूं पर आज आपकी शरणमें आया हूं।

लोगोंकी भीडमेंसे रथ आगे बढ रहा था। प्रभुकी आंखें तो नीचेकी ओर देख रहीं थीं। विदुर-सुलभाने दर्शन किया। श्रीकृष्णने भी विदुरचाचाको देखा। विदुर कृतार्थ हो गए कि चलो मेरी ओर भी भगवान्‌ने दृष्टि की। भगवान्‌का दिल भी भर आया। दृष्टि प्रेमसे आर्द्र हो गई। भगवान्‌ने सोचा कि मेरे विदुर न जाने कबसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सुलभाको लगा कि मेरे प्रभु मेरी ओर देखकर ही हंस रहे थे। मेरे प्रभुने मेरी ओर देखा। भगवान् जानते हैं कि मैं विदुरकी पत्नी हूँ और इसीलिये उन्होंने मुझ पर दृष्टिपात किया।

प्रभुने दृष्टिसे ही विदुरजीसे कहा कि मैं आपके घर आऊँगा। किंतु अति आनंदमें डूबे हुए सुलभा-विदुरजी भगवान्‌का संकेत समझ न पाये।

कृष्ण हस्तिनापुर गए। वहां धृतराष्ट्र और दुर्योधन प्रभुके स्वागतके लिए एक महिनोंसे तैयारी कर रहे थे। प्रभुका आगमन हुआ। प्रभुने धृतराष्ट्र-दुर्योधनको बताया कि मैं द्वारिकाके राजाकी हैसियतसे नहीं, अपितु पांडवोंका दूत बनकर आया हूँ। पांडवोंका नाम सुनते ही दुर्योधनने भगवान्‌का अपमान कर दिया। दुष्ट दुर्योधनने भगवान्‌का अपमान करते हुए कहा कि भीख मांगनेसे राज्य नहीं मिलता। सुईकी नोकपर रखी जा सके उतनी भूमि भी मैं पांडवोंको नहीं दूंगा। मैं युद्धके लिए तैयार हूँ। उसने श्रीकृष्णकी एक न मानी। संधि करानेके प्रयत्नमें श्रीकृष्ण सफल न हो सके।

धृतराष्ट्रने भगवान्‌से कहा कि इन भाईयोंके झगडेसे आप दूर ही रहें। आपके लिए छप्पन भोग तैयार हैं, आरामसे भोजन कीजिए।

श्रीकृष्णने कहा कि तुम्हारे घरका अन्न खानेसे तो मेरी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। पापीके घरका अन्न खानेसे किसी भी व्यक्तिकी बुद्धि भ्रष्ट हो सकती है।

छप्पन प्रकारकी खाद्य वस्तुएं भगवान्‌के लिए तैयार की गई थीं, फिर भी उन्होंने खानेसे इन्कार कर दिया। अन्य राजाओंने आशा की कि कृष्ण उनके घर भोजन करेंगे। किंतु कृष्णने तो उनको और सभी ब्राह्मणोंको भी निराश कर दिया।

द्रोणाचार्यने तब पूछा कि आप सभीके आमंत्रणसे इन्कार कर रहे हैं तो फिर कहां जाएंगे? भोजनका समय हो गया है। कहीं न कहीं भोजन तो करना ही पडेगा। यदि दुर्योधनके यहां भोजन करनेमें आपको कोई ऐतराज है तो आप मेरे घर चलिए।

भगवान्‌ने उनसे भी इन्कार कर दिया और कहा कि मैं तो मेरा एक भक्त जो गंगा किनारे पर रहता है उसीके घर जाऊंगा।

द्रोणाचार्य समझ गए कि हम वेदशास्त्रसंपन्न ब्राह्मण आज हार गए।

धन्य हैं विदुरजी!

भगवान्‌ने सोचा कि विदुरजी दीर्घकालसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं तो मैं आज उनके पास ही चला जाऊं।

इस तरफ विदुरजी सोच रहे हैं कि मैं अभीतक अपात्र ही रह गया हूं अतः भगवान् मेरे घर नहीं आते।

आज सुलभाका हृदय भी बडी कातरता और आर्द्रतासे सेवा कर रहा है। वह भगवान्‌से प्रार्थना कर रही है कि मैंने आपके लिए सर्वस्वका त्याग कर दिया है फिर भी आप नहीं आ रहे। गोपियां सच कहती हैं कि कन्हैयाके पीछे जो लग जाता है उसीको वह रुलाता है। आपके लिए मैंने संसारसुखको त्याग दिया, सर्वस्व आपके चरणोंमें रख दिया, फिर भी मेरे घर आपका आगमन क्यों नहीं हो रहा है?

कीर्तनभक्ति श्रीकृष्णको अति प्रिय है। सूरदासजी भजन करते हैं तो श्रीकृष्ण आकर उनके हाथमें तंबूरा देते हैं। सूरदास कीर्तन करते हैं और कन्हैया सुनता है।

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान् नारदसे कहते हैं कि न तो मेरा वैकुंठमे वास है और न तो योगियोंके हृदयमें। मैं तो वहीं पर रहता हूं जहां मेरा भक्तजन प्रेमसे आर्द्र होकर मेरा कीर्तन करता है।

झोपडीमें विदुर-सुलभा भगवान्‌के नामका कीर्तन कर रहे हैं। किंतु वे नहीं जानते कि जिसका वे कीर्तन कर रहे हैं वह आज साक्षात् उनके द्वार पर खडा है।

मनुष्यका जीवन पवित्र होगा तो भगवान् विना आमंत्रण पाए भी उसके घर आएंगे। जो परमात्माके लिए जीता है उसके घर परमात्मा स्वयं आते हैं।

विना बुलाए ही भगवान् आज विदुरजीके द्वार पर आ खडे हुए हैं। बाहर प्रतीक्षा करते हुए दो घंटे निकल गये। कडी भूख लगी रही थी। भगवान् सोच रहे थे कि इनका कीर्तन कब समाप्त होगा? विदुर-सुलभाका जीवन तो प्रभुके लिए ही था।

अंतमें व्याकुल होकर श्रीकृष्णने झोंपडीका द्वार खटखटाया। और कहा, चाचाजी, मैं आ गया हूं।

कीर्तन करो तो ऐसा करो कि भगवान् स्वयं आकर तुम्हारे घरका द्वार खटखटाएं।

विदुरजीने कहा: देवी, द्वारिकानाथ आए हैं ऐसा लगता है।

द्वार खोलने पर चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। अति हर्षके आवेशमें विदुर-सुलभा आसन तक न दे सके, तो प्रभुने स्वयं अपने हाथोंसे दर्भासन विछा लिया और विदुरजीको भी हाथ पकड कर पासमें विठा लिया।

ईश्वर जिसका संमान करता है उसका मान चिरंजीवी होता है।

भगवान्‌ने कहा कि मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ खाना दो।

भक्ति इतनी सशक्त है कि वह निष्काम भगवान्‌को भी सकाम बना देती है। वैसे तो भगवान्‌को भूख नहीं लगती किंतु भक्तके कारण ही उन्हें खानेकी इच्छा होती है।

विदुरजीने पूछा कि आपने दुर्योधनके घर भोजन नही किया क्या?

कृष्णने कहा : चाचाजी, जिसके घर आप नहीं खाते, वहां मैं भी नही खा सकता।

ईश्वर भूखे नहीं होते ऐसा उपनिषद्‌का सिद्धांत है। जीवरूपी पक्षी विषयरूपी फल खाता है अतः दुःखी होता है। उपनिषद्‌का यह सिद्धांत गलत नहीं है। ईश्वर नित्य आनंद-स्वरूप हैं। भागवतका सिद्धांत भी सच्चा है।

ईश्वर तृप्त हैं किंतु जब किसी भक्तका हृदय प्रेमसे भर आता है तो वे निष्काम होनेपर भी सकाम बनते हैं। सगुण और निर्गुण एक है। निराकार साकार बनता है। ईश्वर प्रेमके भूखे हैं। अतः ज्ञानसे प्रेम श्रेष्ठ है। प्रेममे ऐसी शक्ति है कि वह जडको भी चेतन बना देता है, निष्कामको सकाम बना देता है, निराकारको साकार बना देता है। वस्तुका परिवर्तन करनेकी शक्ति ज्ञानमें नहीं, प्रेममें ही है।

पति-पत्नी सोचने लगे कि भगवान्‌का स्वागत कैसे करें। वे दोनों तो तपस्वी थे और केवल भाजी ही खाते थे। उनको संकोच हो रहा था कि कृष्णको भाजी कैसे खिलायें? दोनोंको कुछ सुझाई नहीं दे रहा था।

इतनेमें तो द्वारिकानाथने चूल्हेसे भाजीका बर्तन उतार लिया और उसे खाने भी लगे।

स्वादिष्टता और मिष्टता वस्तुमें नहीं, प्रेममें है। शत्रुकी हलवा-पूरी भी विष जैसी ही लगती है।

भगवान्‌को दुर्योधनके घरके मिष्टान्न अच्छे नहीं लगे। किंतु विदुरजीकी भाजी खाई। अतः लोग आज भी गाते हैं :

सबसे ऊंची प्रेमसगाई ॥
दुर्योधनको मेवा त्यागो साग विदुर घर पाई।
जूठे फल शबरीके खाये बहुविधि प्रेम लगाई।
प्रेमके बस नृप-सेवा किन्हीं आप बने हरि नाई।
राजसुयज्ञ युधिष्ठिर किन्हों तामें जूठ उठाई।
प्रेमके बस अर्जुन-रथ हांक्यो भूल गये ठकुराई।
ऐसी प्रीत बढी वृंदावन गोपीन नाच नचाई।
सूर क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लगी करौं बडाई ॥

शुकदेवजी कहने लगे : राजन्, संगका रंग मनको भी लगता है। मनुष्य जन्मसे ही भ्रष्ट नहीं होता। जन्मके समय तो वह शुद्ध होता है। बडे होने पर वह जिसके संग रहता है उसीका रंग उस पर लगता है। जैसा संग होगा वैसे ही बनोगे। सत्संगसे जीवन उजागर होता है और कुसंगसे भ्रष्ट होता है।

सोचिए कि बालकका जब जन्म होता है तो उस समय तो वह निर्व्यसनी होता है। उसमे न तो कोई बुरी आदत होती और न तो कोई अभिमान। बडे होने पर जैसा संग मिलता है वैसा ही उसका जीवन बनने-बिगडने लगता।

आम्रवृक्षके चारों ओर बबूल लगाओगे तो आम नहीं मिलेंगे। विलासीका संग होगा तो मनुष्य विलासी हो जाएगा और विरक्तका संग होगा तो विरक्त। चाहे सब कुछ बिगड जाए किंतु मन, बुद्धिको मत बिगडने दो। दिल पर लगा दाग तीन-जन्मोंमें भी शायद नहीं मिटेगा।

संगका रंग मनको लगता ही है। ज्ञान, सदाचरण, भक्ति, वैराग्य आदिमें जो महापुरुष तुमसे बढकर हो उन्हींका आदर्श अपनी दृष्टिसमक्ष रखो। रोज इच्छा करो कि भगवान् शंकराचार्य-सा ज्ञान, महाप्रभुजी जैसी भक्ति और शुकदेवजी जैसा वैराग्य मुझे भी मिले। प्रातःकालमें ऋषियोंको याद करनेसे उनके सद्गुण हमारे जीवनमें उतरते हैं। अपने अपने गोत्रके ऋषिको भी याद करना चाहिए। आज तो लोगोंको अपने गोत्रका भी नाम मालूम नहीं है।

रोज गोत्रोच्चारण करो। रोज पूर्वजोंका वंदन करो। हमेशा सोचते रहो कि मुझे ऋषि जैसा जीवन जीना है, ऋषि होना है, विलासी नहीं होना है।

राम भी रोज वसिष्ठजीको वंदन करते हैं, उनका संमान करते हैं।

सांसारिक व्यवहार निभाते हुए ब्रह्मज्ञान निभाना और भक्ति करना कठिन है। संगका असर भी खूब होता है। चोरी और व्यभिचार महापाप माने गए हैं। ऐसा पाप करनेवाला यदि अपना भाई भी हो तो उसे भी छोड दो।

किसी जीवका तिरस्कार मत करो, पर उसके पापका तिरस्कार अवश्य ही करो।

धृतराष्ट्र जैसे दुष्ट व्यक्तिके संगसे मेरा जीवन भी भ्रष्ट हो जाएगा, यह सोचकर ही विदुरजीने गृहत्याग किया था और गंगातटपर रह कर भक्ति करते थे। भाजी खाकर ही वे संतुष्ट थे। इन्द्रिय-सुखमें फँसा मनुष्य भक्ति नहीं कर सकता। आहार ऐसा करो कि जो इन्द्रियोंको और जीवनको स्वस्थ रखे।

धृतराष्ट्रने विदुरजीके लिए वैसे तो बहुत कुछ भेजा था किंतु उन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया था।

पापीके घरका कुछ भी खाया नही जाता। अन्न दोष प्रभुके भजन-कीर्तनमें बाधक है।

भगवान् जब कृपा करते हैं तो धन-संपत्ति नहीं देते किंतु सच्चे साधुका सत्संग करवा देते हैं। सत्संग ईश्वरकृपासे ही प्राप्त होता है। किंतु कुसंगमें न रहना तो अपने हाथकी बात है, अपने बसकी ही बात है। कुसंगका अर्थ है नास्तिकका संग, कामीका संग। पापीका संग मत करो।

आगे कथा आएगी कि विदुरजीने धृतराष्ट्र-दुर्योधनका त्याग किया और तीर्थयात्रा करने चले गये, क्योंकि वे कुसंगमें रहना नहीं चाहते थे।

जीव (मनुष्य) जब तक लौकिक सुखोंका त्याग नहीं करता है तब तक प्रभुको उसके प्रति दया नहीं आती। सर्वस्वका त्याग करके विदुर-सुलभा परमेश्वरकी आराधना कर रहे थे, तप कर रहे थे।

तपश्चर्या करनेसे पाप जलते हैं। जीव शुद्ध होता है। गृहस्थका यही धर्म है कि वह वर्षके ग्यारह मास घर-गृहस्थीमें बिताये और एक मास किसी पवित्र तीर्थस्थानमें एकांतमें रह कर भगवान्‌की आराधना करे, तप करे। उस समय वह भक्ति-तपमें ही लगा रहे, अन्य प्रवृत्तियाँ छोड दे। जो भी काम करो प्रभुके लिए ही करो। तप करनेसे परमात्मा प्रसन्न होते हैं।

तपका प्रथम चरण है जिह्वा पर अंकुश। जिस व्यक्तिकी आवश्यकताएं अधिक हैं वह कभी तप नहीं कर सकता। आजकल लोग अपनी आवश्यकताएं बढाते चले जा रहे हैं। परिणाम यह होता है कि संपत्ति और समयका व्यय इन्द्रियोंको बहलानेमें हो जाता है। मनुष्य साधना तो करता नहीं है और ऊपरसे फरियाद करता है कि भगवान् दर्शन ही नहीं दे रहे हैं। भगवान् सुलभ नहीं, दुर्लभ हैं।

विदुरजीने परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए बडी भारी तपश्चर्या की थी और तभी भगवान्‌को दया आई कि मेरे इस भक्तने मेरे लिए कितने कठिन कष्ट उठाए हैं और वे विना बुलाए ही विदुरजीके घर आ पहुँचे। विदुरजीका प्रेम ही ऐसा सच्चा था कि उनसे कुछ मांगनेकी स्वयं प्रभुकी भी इच्छा हुई।

जब भगवान्‌के हृदयमें हमसे कुछ मांगनेकी इच्छा जागे तभी समझो कि तुम्हारी भक्ति सच्ची है। जहां प्रेम है वहांसे मांगकर भी खाया जाता है। प्रेम हो तो कन्हैया मक्खन मांगेगा। जहां प्रेम न हो वहांसे विना मांगे मिलने पर भी खानेकी इच्छा नहीं होगी। परमात्मा प्रेमके आधीन हो जाते हैं। जो ईश्वरके साथ प्रेम करनेकी इच्छा रखता है उसे चाहिए कि वह जगत्‌के साथ अधिक प्रेम न करे। जगत्‌के प्रति न तो तिरस्कार करो और न उससे अधिक प्रेम करो। प्रेम करनेके लिए पात्र है केवल ईश्वर। उसीसे तुम अधिकसे अधिक प्रेम करो।

विदुरजीके घर परमात्माका आगमन हुआ। विदुरजी और सुलभाकी भावना और भक्ति सफल हो गयी। ठाकुरजीने उनके घरकी भाजीका भोजन किया।

सत्कार्य ऐसा करो कि विना बुलाए भी भगवान् आनेकी इच्छा करें। मैत्री समान व्यक्तियोंमें होती है। जीव जो ईश्वरके समान बने तो उससे मिलनेके लिए भगवान् स्वयं आयेंगे।

प्रभुने धृतराष्ट्रके घरका पानी तक न पिया, सो कौरवोंका नाश हो गया।

शुकदेवजी राजाको कथा सुना रहे हैं।

दुर्योधनने पांडवोंका राज्य हडप लिया। पांडवोंको वनवास मिला। वहांसे लौटनेके बाद युधिष्ठिरने राज्यका अपना हिस्सा मांगा। किंतु धृतराष्ट्र और कौरवोंने हिस्सा देनेसे इन्कार कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण पांडवोंकी ओरसे संधि करानेके लिए आये। किंतु कुरुराजने उनकी बात अनसुनी कर दी। फिर विदुरजीने भी धृतराष्ट्रको समझाया। विदुरजीने धृतराष्ट्रको जो न्याय और धर्मकी बातें समझाई थीं, वह विदुरनीति कहलाती है।

जो औरोंके धनका हरण करता है वही धृतराष्ट्र है। जिसकी आंखें केवल रुपया-पैसा ही देखती हैं वह आंखें होते हुए भी अंधा ही है। पापी पुत्र पर प्रेम रखनेवाला पिता धृतराष्ट्र है। उस युगमें तो शायद एक ही धृतराष्ट्र था, आज तो हजारों-लाखों हैं।

विदुरजी धृतराष्ट्रसे कहने लगे-दुर्योधन पापी है। वह तेरा पुत्र नहीं है किंतु तेरा पाप ही पुत्रका रूप लेकर आया है।

कई बार अपना पाप ही पुत्रका रूप लेकर आता है और सताता है। शास्त्रने कहा है कि दुराचारी पुत्र माता-पिताकी दुर्गति करता है। सदाचारी पुत्र माता-पिताकी सद्गति करता है। दुराचारी पुत्रका संग छोड दो। मान लो कि यह मेरा पुत्र नहीं है किंतु मेरा पाप ही पुत्ररूपसे आया हुआ है। छोटे बच्चोंको पापका डर बताते रहनेसे वे मान जाएंगे। आज-कलका युवक पापका डर नहीं रखता है अतः वह मार भी खाता है।

विदुरजी कहते हैं- हे धृतराष्ट्र! दुर्योधन दुराचारी है। वह तेरे वंशका विनाश करनेके लिए ही आया है।

चोरी और व्यभिचार महापाप हैं। और सभी पाप क्षम्य हो सकते हैं किंतु ये दोनों पाप क्षम्य नहीं हो सकते। कुछ चोर जेलकी हवा खाते हैं तो कई महलकी। चोर कौन है? जो स्वयं परिश्रम नहीं करता और पराया धन हडप कर जाता है वही चोर है। जिसका है उसे दिए विना ही जो खाता है वह चोर है। किसीका कुछ भी मुफ्तमें मत खाओ। मेहनत किए विना जो खाता है वह चोर है। स्थितिपात्र होने पर भी जो अतिथियोंका भलीभांति सत्कार नहीं करता वह भी चोर ही है। जो अपने लिए ही पकाता है और खाता है वह भी चोर है। अग्निको आहुति दिए विना जो खाता है वह चोर है। मुनाफाखोर भी चोर है। सोचो कि इनमेंसे तुम भी किसी प्रकारके चोर तो नहीं हो?

धृतराष्ट्र! दुर्योधन चोर है। प्रभु तो पांडवोंको ही राजसिंहासन पर बिठाएंगे क्योंकि प्रभुने उनको अपनाया है। धर्मराज तुम्हारे अपराधको क्षमा करनेको तैयार हैं।

धर्मराजा अजातशत्रु हैं। भागवतने दो अजातशत्रु बताए हैं— एक तो धर्मराजा युधिष्ठिर और दूसरे प्रह्लादजी।

धृतराष्ट्र, तुम दुर्योधनका मोह छोडो। अन्यथा सारे कौरवकुलका विनाश होकर ही रहेगा।

दुर्योधन ऐसा दुष्ट था कि द्रौपदीके सौंदर्यको देखकर जल रहा था।

शंकराचार्यने महाभारतके गीता, विष्णुसहस्रनाम, उद्योगपर्व और सनत्सुजातपर्व इन अंगों पर टीका रची है।

धृतराष्ट्र कहता है-भाई तेरी बात तो सच्ची है किंतु मेरे पास दुर्योधनके आते ही मेरा ज्ञान गायब हो जाता है।

पापका पिता है लोभ और माता है ममता। लोभ और ममता ही पापकी प्रेरणा देते हैं।

सेवकोंने दुर्योधनको समाचार सुनाया कि विदुरचाचा आपके विरुद्ध बोल रहे थे। दुर्योधन आगबबूला हो गया और तुरंत ही उसने विदुरचाचाको राजसभामें बुलाकर उनका अपमान किया।

यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा था कि हमेशाके लिए नरकमें किसे रहना पडता है। युधिष्ठिरने कहा था- आमंत्रित करके, इच्छापूवक, दुर्बुद्धिसे किसीका अपमान करनेवालेको हमेशाके लिए नरकमें रहना पडता है।

दुर्योधन विदुरचाचासे कहता है : तुम दासीपुत्र हो। मेरा अन्न खाकर मेरी ही निंदा करते हो ? मेरे घरमें रहकर मेरे ही विरुद्ध काम करते हो !

विदुरजी तो ऐसे धीर-गंभीर थे कि निंदाको सहन कर लेते थे।

सभामें निंदासे विचलित न होकर उसे सह ले वह संत है। समर्थ होते हुए भी जो सहे वह संत है। वह भगवान्‌का अवतार ही है।

वैसे तो विदुरजीमें इतनी तो शक्ति थी कि एक ही दृष्टिपातसे दुर्योधनको जलाकर भस्मीभूत कर दें। किंतु विदुरजीने अपनी इस शक्तिका उपयोग नहीं किया।

शक्तिका दुरुपयोग करनेवाला दैत्य है। शक्ति, संपत्ति और समयका विवेकपूर्वक सदुपयोग करनेवाला देव बन सकता है।

कष्ट सहते रहोगे तो संत बनोगे। कुछ सासें ऐसी भी होती हैं जो अपनी बहुओं पर जुल्म ढाती रहती हैं। उनका कहना है कि बहूसे हम बडी हैं अतः उन पर हुक्म चलानेका हमें हक है। हमेशा ऐसा सोचो कि बहू और सास एक समान हैं। सास बहूसे बडी नहीं है। किसी भी जीवको छोटा या हलका मत समझो। जीव ईश्वरका ही स्वरूप है।

विदुरजीकी भांति बारह वर्ष तप करोगे तो सहनशक्ति आएगी। सात्त्विक आहार करनेवाला ही सहनशक्ति प्राप्त कर सकता है। विदुरजीने बारह वर्ष भाजीका ही भोजन किया। तुम कमसे कम बारह महिने भाजी पर रहोगे तो सहनशक्ति पाओगे। तेल-मिर्ची अधिक खानेवालेका स्वभाव भी मिर्च जैसा ही हो जाता है। अत्यधिक सहन करोगे तो सुखी होगे। सहनशक्ति तब आती है जब आहारविहार बहुत सात्त्विक हों। इस जीवका स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जो कुछ मिला है उतनेसे वह संतुष्ट नहीं होता। बुद्धि यदि ईश्वरमें स्थिर रखोगे तुम सब कुछ सहन कर सकोगे और संतुष्ट भी हो सकोगे। विदुरजीने केवल भाजीमें ही संतोष माना और ईश्वरकी आराधना करते रहे।

अपमानसे विदुरजीको न तो दुःख हुआ और न तो ग्लानि। दुर्योधनने राजसभामें उनका अपमान किया फिर भी वे क्रोधित नहीं हुए। विदुरजीने सिर्फ भाजी ही तो खायी थी न ?

दुःख और क्रोधको पी जानेकी शक्ति सात्त्विक आहारसे ही प्राप्त होती है। सुखी होना है तो कम खाओ और गम खाओ। मनुष्य सब कुछ खा जाता है किंतु गम नहीं खा सकता, क्रोध नहीं पचा सकता।

तुम्हारी कोई निंदा करे तो उसे शांतिसे सह लो। उस समय ऐसा मान लो कि वह निंदक मुझे मेरे दोषोंका भान करा रहा है, मेरा पाप धो रहा है। कुछ लोगोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि निंदारसमें डूबे विना उनका खाना पचता ही नहीं है। इस दुनियाने किसीको नहीं छोडा, सभीकी निंदा की। निंदा करनेवाले पर क्रोध मत करो। ऐसा मानो कि इसमें भी प्रभुका ही कुछ संकेत है।

भगवान् वडे दुःखसे कहते हैं कि मानवकल्याणके लिए मनुष्य-अवतार लेकर मैं इस धरती पर आया था, फिर भी लोगोंने मेरी निंदा की। विदुरजी भी अपमानमें प्रभुकी कृपाका ही अनुभव करते हैं।

×

विदुरजीने सोचा कि दुर्योधन मेरी निंदा नहीं कर रहा है अपितु उसके अंदर बसे हुए नारायण मुझे कौरवोंका कुसंग छोडनेका आदेश दे रहे हैं। कौरवोंका कुसंग छोडनेकी यह प्रभुप्रेरणा है।

महापुरुष निंदामें भी सारतत्त्व खोजते हैं। जो अच्छी वस्तुओंमें अच्छाई देखे वह साधारण वैष्णव है, किंतु जो बुरी वस्तुओंमें भी अच्छाई देखता है वह उत्तम वैष्णव है। प्रतिकूल परिस्थितिमें भी वैष्णव प्रभुके अनुग्रहका ही अनुभव करता है। भगवान्ने सोचा कि यदि कौरवोंके साथ ही विदुरजी रहेंगे तो कौरवोंका विनाश न हो सकेगा। इसलिए ही विदुरजीको वह स्थान छोडनेकी प्रभुने प्रेरणा दी।

रामायणमें रावणने बिभीषणका और भागवतमें दुर्योधनने विदुरजीका अपमान किया था। इस प्रकार संतोंका अपमान करनेके कारण ही उनका विनाश हुआ।

कुटुंबमें कम-से-कम एक ही व्यक्ति पुण्यशाली हो तो उस कुटुंबका नाश नहीं हो सकता, कोई उसका अहित नहीं कर सकता।

विदुरजीके जानेसे कौरवोंका सर्वनाश हुआ और बिभीषणके जानेसे लंकाके रावण और अन्य सभी राक्षसोंका संहार हुआ।

दुर्योधनने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस विदुरको धक्के मारकर बाहर निकाल दो। किंतु विदुरजी समझ-बूझकर पहले ही घरसे निकल गए। धनुष्य-बाण भी वहीं छोड गए। कौरवोंको इस प्रकार उपदेश दिया गया था कि पांडवोंके साथ धनुष-बाण लेकर मत लडो। अगर लडना ही हो तो वाणीसे लडो।

विदुरजी तीर्थयात्राके लिए चल पडे। धृतराष्ट्र द्वारा भेजा गया धन उन्होंने लौटा दिया।

आवश्यकताएं कम करते जाओगे तो पाप भी घटते रहेंगे और जरूरत बढाओगे तो पाप भी बढते ही रहेंगे। प्राप्त स्थितिसे असंतोषका अनुभव ही मनुष्यको पाप करनेकी प्रेरणा देता है। इसीलिए तो कहा है कि पापका पिता असंतोष और लोभ है।

जो पाप नहीं करता वह पुण्य ही करता है।

विदुरजी छत्तीस वर्षकी यात्रा करने निकले किंतु अपने साथ उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। जब कि आजकलके लोग यात्रा करने निकलते हैं तो छत्तीस चीज साथ लेकर चलते हैं। अपनी जरूरतकी लंबी लंबी सूची बनाते हैं और उसमेंसे कोई चीज बाकी न रह जाय इसके लिए पूरी पूरी कोशिश करते हैं।

यात्राका अर्थ है: याति त्राति। इन्द्रियोंको प्रतिकूल विषयोंसे हटाकर अनुकूल विषयोंमें लगा देना ही यात्रा है। तीर्थयात्रा उसीकी सफल होती है जो तीर्थं जैसा ही पवित्र होकर वहांसे लौटता है।

केवल यात्रा करनेसे ही पुण्य नहीं हो जाता। कई बार तो मनुष्य यात्रा करते करते पापकी गठरी बांधकर भी आता है। यात्रा विधिपूर्वक करनी चाहिए। विधिपूर्वक यात्रा करनेसे ही पुण्य प्राप्त होता है। यात्रा करनेके लिए निकलनेसे पहले प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मैं अब ब्रह्मचर्यका पालन करूंगा, कभी क्रोध न करूंगा, असत्य नहीं बोलूंगा, व्यर्थभाषण नहीं करूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करनेके पश्चात् ही यात्राका आरंभ किया जाए।

आजकल तो धन-संपत्ति बढ जानेपर धनिक लोग यात्राके नामपर घूमने-फिरने निकल पडते हैं। इस तरह तो कौआ भी काशी-मथुराका चक्कर लगा लेता होगा।

तीर्थोंके सच्चे साधुसंतों-ब्राह्मणोंकी निंदा करनेवालों को तीर्थयात्राका पुण्य प्राप्त नहीं हो सकता। साधुसंतोंके प्रति सद्भाव न हो तो तीर्थयात्रा विफल रहती है। गुरु शब्दका अपभ्रंश है गोर। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो गोरको पत्र लिखकर सूचना देते हैं कि हम इतने व्यक्ति यात्राके लिए आ रहे हैं इसलिए भोजन आदिकी व्यवस्था कर देना। तीर्थके गोर आपके नौकर नहीं हैं।

तीर्थस्थानमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए। वहां कुल्ले करना और साबुन लगाकर नहीं नहाना चाहिए।

महाप्रभुजी दुःखसे कहते हैं कि अतिशय विलासी और पापी लोग तीर्थस्थानोंकी ओर जाने लगे और वहां रहने भी लगे। यही कारण है कि तीर्थस्थानोंकी महिमा लुप्त होने लगी।

जब विदुरजी यात्रा करने गए तो साथमें क्या ले गए थे? कुछ नहीं। केवल कौरवोंका पुण्य ही साथमें ले गए थे।

स: निर्गत: कौरवपुण्यलब्धो।

कौरवोंका पुण्य साथ ले गए। क्योंकि उन्होंने विदुरजीका अपमान किया था, निंदा की थी।

तुम्हारी कोई निंदा करे, अपमान करे और तुम उसे सह लोगे तो तुम्हारा पाप उस निंदकके पास जाएगा और उसका पुण्य तुम्हें मिलेगा।

तीर्थमें जाओ तो उस दिन अनशन करो। ब्राह्मणोंका अपमान मत करो। सच्चे साधु-संत-ब्राह्मणोंका अपमान करनेसे तीर्थयात्रा विफल रहती है। अनशन करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है, पाप जल जाते हैं और सात्त्विकभाव जाग्रत होता है।

विदुरजी प्रत्येक तीर्थमें अनशन करते थे और विधिपूर्वक स्नान करते थे। यात्रा किस प्रकार की जाय इस विषयमें विदुरजी कहते हैं :

गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽध शयनोऽवधूतः।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥

भा० ३-१-१९

पृथ्वी पर वे अवधूत वेषमें परिभ्रमण करते थे जिससे स्नेही-संबंधी उन्हें पहचान न सकें। शरीरका श्रृंगार भी करते न थे। वे अल्पमात्रामें बिलकुल पवित्र भोजन करते थे। शुद्ध वृत्तिसे जीवननिर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, भूमि पर ही शयन करते और भगवान् जिनसे प्रसन्न हो सकें ऐसे व्रत करते थे।

संत तीर्थको पावन करते हैं। भारद्वाज मुनि स्नान करनेके लिए आते थे तो गंगाजी पच्चीस सीढियां ऊपर आ जाती थीं। गंगाजीको ज्ञात था कि और लोग तो अपने पाप मुझे देनेके लिए आते हैं जब कि भारद्वाज मुनि तो मुझे पावन करनेके लिए आते हैं।

अति संपत्ति अनर्थका मूल है। इसी कारण भगवान्‌ने सुवर्णकी द्वारिका जलमें डूबा दी थी।

द्वारिकामें भगवान्‌की मूर्ति मनोहर है, उसका स्वरूप अद्‌भुत है। देखते रहने पर भी मन तृप्त नहीं होता। द्वारिकाधीशका दर्शन लोगोंको अवश्य करना चाहिए।

काशीका महात्म्य भी अधिक है। काशीके प्रमुख देव हैं भैरवनाथ।

विश्वेशं माधवं ढुंढिं दंडपाणिं च भैरवम् ॥

इस श्लोकका रोज पाठ करनेसे काशीवासका फल मिलता है। काशीमें नव मास रहनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। काशीके मणिकर्णिका घाटपर यह श्लोक लिखा हुआ है :

मरणं मंगलं अत्र।

सफलं जीवनं अत्र ॥

शिवजी ज्ञानके मुख्य देव हैं। काशीमें ज्ञान शीघ्र ही सिद्ध होता है। ज्ञान पाना चाहते हो तो तुम्हें श्मशानमें रहना पडेगा। श्मशान ज्ञान-भूमि है। श्मशानमें रहनेकी नहीं, उसे सदा याद करते रहनेकी आवश्यकता है। दिनमें तीन-चार बार श्मशानको याद करते रहोगे तो बुद्धिमें परिवर्तन होगा। कल्पना करो कि तुम काशीमें ही रहते हो। यहां बैठ कर मनसे ही गंगास्नान करो। कलियुगमें तो मनसे सत्कर्म करनेवालेको भी पुण्य मिलता है।

तीर्थक्षेत्रोंमें गयाजी (पितृगया) प्रसिद्ध तीर्थ है। वहां अनेक श्राद्ध करने होते हैं। प्रथम श्राद्ध फल्गु किनारे किया जाता है और अंतिम श्राद्ध अक्षयवट तले करना होता है कि जहां करारविन्द तथा पादारविंदवाले बालकृष्ण निवास करते हैं। श्राद्धक्रिया करानेवाला पुरोहित किसी एक वस्तुका त्याग करवाता है और भगवानसे कुछ मांगनेको कहता है।

पहले कुछ त्याग किया जाए फिर उसके बाद ही कुछ मांगा जाए। जो भगवान्‌के लिए कुछ त्याग कर सकता है, उसे ही उनसे मांगनेका अधिकार मिलता है। अधिकतर लोग अपनी जिस वस्तुसे रुचि न हो उसे ही छोडनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। खाने-पीनेकी सामान्य चीज छोडनेकी प्रतिज्ञा अधिकतर लोग करते हैं। किंतु इस तरह साग-सब्जी या फल आदिके त्यागसे कोई लाभ नहीं होगा। यदि पाप और विकारका त्याग करोगे तो लाभ होगा। ऐसा कहो कि काशीविश्वनाथके दर्शन करके मैंने काम छोड दिया और गोकुल-मथुराकी यात्रामें क्रोधको त्याग दिया। एक एक तीर्थमें एक एक पाप छोड दो। एक एक त्याग करो। प्रभुके लिए अति प्रिय वस्तुका त्याग करोगे तो वे प्रसन्न होंगे।

काशी ज्ञानभूमि है। अयोध्या वैराग्यभूमि है। व्रज प्रेमभूमि है। व्रजरजमें कृष्णप्रेम भरा हुआ है।

नर्मदाका किनारा तपोभूमि है। "रेवातीरे तपः कुर्यात्।" नर्मदाके किनारे पर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों सिद्ध हो सकते हैं।

तीर्थमें क्रोध मत करो। तीर्थमें ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका पालन करोगे तभी तीर्थयात्राका फल मिलेगा।

यात्रा करते हुए विदुरजी यमुना किनारे वृंदावन आए। ठाकुरजीकी कृपासे तुम्हें समय मिल सके तो चार मास वृंदावनमें रहकर प्रभुभजन करो।

कन्हैया व्रजमें नंगे पांव घूम रहा था, यशोदाने समझाया कि नंगे पांव वनमें घूमनेसे कांटे-कंकड चुभ जाएंगे, इसलिए पगरखा पहनकर जा। तो कन्हैयाने कहा कि गायोंकी सेवा करनेके लिए ही तो मैं तो आपके घर आया हूं। गत जन्ममें मैं राजाके घरमें राम बनकर जन्मा था तो मुझे किसीने गौसेवाका अवसर ही नहीं दिया। इसलिए मैंने सोचा कि अब भविष्यमें मैं किसी गोपालकके घर जन्म लूंगा और गौसेवा करूँगा। जब वे पांच वर्षके बालक थे, तभीसे गायोंको खिलानेके बाद खानेका उनका नियम था कन्हैय्याने कहा कि मेरी गायोंके पैर भी तो खुले ही हैं तो फिर मैं ही कैसे पगरखे पहन सकता हूं ?

लालाके यों तो कई नाम हैं किंतु एक वैष्णवने कहा है कि मुझे तो गोपालकृष्ण नाम ही बडा पसंद है। कृष्ण व्रजमें खुले पांव फिरते रहते हैं, अतः व्रजरज अति पावन है। द्वारिकामें तो राजा थे अतः खुले पांव घूम नहीं सकते थे।

विदुरजी व्रजकी कृष्ण-रमणसे पवित्र रजमें लोटते हैं। रमण-रेतीमें गोपियोंकी भी चरण-रज है। विदुरजी कृष्णकी मंगलमय लीलाओंका चिंतन करते हैं। यमुनाके किनारे लौकिक बातें करना पाप है। यह भूमि अतिशय पवित्र है। श्रीकृष्ण यहां गायें चराने आते थे। व्रजकी लीला नित्य है। भागवतके प्रमुख टीकाकार श्रीधर स्वामीने कहा है कि भगवान्का नाम, लीला, स्वरूप, धाम, परिकर नित्य हैं। आज भी भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें हररोज लीला करते हैं।

भगवान् कहते हैं कि जगत्के किसी भी स्त्री, पुरुष, जड या चेतन वस्तुमें आनंद नहीं है। तुम मेरे पास आओ। मैं ही आनंदरूप हूं।

श्रीकृष्ण आनंदरूप हैं।

विदुरजीने अनुभव किया कि मेरे श्रीकृष्ण गायोंको लेकर यमुनाके किनारे आए हैं। यह कदम्बका वृक्ष है। वैष्णव इसे टेर कदम्ब कहते हैं। कदम्ब पर झूलते हुए श्रीकृष्ण बंसी बजाते हैं और अपनी प्यारी गायोंको बुलाते हैं कि हे गंगी, हे गोदावरी आओ। विदुरजीकी ऐसी भावना थी कि वे लीलाको प्रत्यक्ष देखें। अतः उन्हें यह सब अनुभव हुआ।

गायोंके बीचमें खडे हुए गोपालकृष्णका ध्यान करो। ऐसे कृष्णका ध्यान करनेसे तन्मयता शीघ्र प्राप्त होती है।

इन्द्रियोंका विवाह परमात्माके साथ करो, विषयोंके साथ नहीं।

भगवान्का एक नाम है हृषिकेश। उसका अर्थ है- हृषिक माने इन्द्रिय और ईशका अर्थ है स्वामी। इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। ये पांच इन्द्रियां सच्चे पति नहीं हैं। इन्द्रियां पति होना चाहती हैं। संसारका कोई भी रूप जबतक आंख देखती रहेगी तबतक नींद नहीं आती। इसका अर्थ यह है कि रूप आंखका पति नहीं है।

विदुरजी सोचते हैं कि मेरी अपेक्षा ये पशु श्रेष्ठ हैं जो परमात्मासे मिलनेके लिए आतुर होकर दौडते हैं। गायें भी कृष्णमिलनके लिए व्याकुल हैं। धिक्कार है मुझे कि अभी तक मुझमें कृष्णमिलनकी तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं हुई है। गायें दौडती हैं और मैं पत्थर-सा बैठा हुआ हूं। उनकी आँखें प्रेमाश्रुसे गीली हो गयीं। ऐसा प्रसंग कब आयेगा कि मैं भी इन

गायोंकी भाँति कृष्णमिलनके लिए दौड लगाऊँगा। वे कृष्णलीलाका चिंतन करते हुये कृष्णप्रेममें पागल हो गये हैं, अति तन्मय हो गये हैं।

किसी भी तरह जगत्‌को भूल जाओ और प्रभुप्रेममें तन्मय हो जाओ। सभी साधनोंका यही रहस्य है। विरह जब अतिशय तीव्र होता है तभी परमात्मासे मिलन होता है।

प्रभु उस समय प्रभासमें थे। उद्धवको ज्ञानका उपदेश दिया। भागवत धर्मका उपदेश दिया। फिर उद्धवसे बद्रिकाश्रम जानेको कहा। तो उद्धवने कहा कि अकेले जानेमें मुझे डर लगता है, आप भी मेरे साथ चलिए।

जीव ईश्वरको अपने पास ही रखे तो वह कभी भयभीत नहीं होगा।

उद्धवको भागवतधर्मका उपदेश मिला फिर भी उसका मन शांत न हो सका। वह भगवान्‌से कहता है कि मैं अकेला तो कैसे जा सकता हूँ। हम दोनों साथ ही जायेंगे।

मात्र निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान कुछ अधिक उपयोगी नहीं हो सकता है। सगुण ब्रह्मका सहारा लेकर ही निर्गुण ब्रह्मको पहचानना है।

श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा कि मैं क्षेत्रज्ञ रूपसे तेरे साथ ही हूँ। मैं तुझमें समाया हुआ हूँ मेरा स्मरण करने पर उसी क्षण मैं उपस्थित हो जाऊंगा। तो उद्धवजीने प्रार्थना की कि विना किसी आधारके भावना नहीं कर सकता। मुझे कुछ आधार दीजिये, तव श्रीकृष्णने उसे अपनी चरण-पादुका दी। उद्धवने मान लिया कि अब द्वारिकानाथ मेरे साथ ही हैं अब मैं अनाथ नहीं, सनाथ हूँ। ये पादुकायें नहीं, प्रत्यक्ष प्रभु ही मेरे साथ हैं। उद्धवजीका प्रभुके प्रति प्रेम इतना प्रगाढ था कि भगवान्‌की पादुकामें भी वे प्रभुका ही दर्शन करते हैं। उन्होंने अपने मस्तक पर पादुकायें रख लीं।

मस्तक बुद्धिप्रधान है। इसपर प्रभुको बिठलानेसे तुम्हारे मनमें कोई विकार नहीं घुसेगा।

शुकदेवजी कहते हैं : राजन्, उद्धवजी बद्रिकाश्रम जा रहे थे। उनको मार्गमें यमुनाजी और व्रजभूमिके दर्शन हुए। मेरे ठाकुरजीकी यही तो लीला है।

तीर्थस्थानमें मात्र स्नान करनेसे मन पूरा शुद्ध नहीं होता। वहां बसे हुए किसी भजनानंदी संतका सत्संग करनेसे मन और अधिक शुद्ध होता है।

उद्धवजीने सोचा कि मैं यहां कुछ दिन रहूँगा और किसी संतका, किसी वैष्णवका सत्संग करूंगा। वे निश्चय करते हैं कि कोई प्रभुका लाडला वैष्णव मिलेगा तभी मैं बोलूंगा अन्यथा मौन रहूगा।

वृंदावनमें अनेक साधु आज भी राधाकृष्णकी गुप्त-लीलाओंका दर्शन करते फिरते हैं। यमुना किनारे रमणरेतीमें विदुरजी बैठे थे। दूरसे उद्धवजीने उन्हें देखकर सोचा कि लगता है कि यह कोई वैष्णव बैठा हुआ है और उसके हृदय कृष्णप्रेमसे भरा हुआ है। समीप जाने पर उद्धवजीने पहचान लिया कि ये महान् भगवद्भक्त विदुरजी हैं और उन्होंने विदुरजीको वंदन किया। उसी समय विदुरजीने आँखें खोलीं और उद्धवजीसे कहा कि यह ठीक नहीं है कि आप मुझे वंदन करें। विदुरजीने उद्धवजीको प्रणाम किया।

संतोंका मिलन भी कैसा मधुर होता है।

चार मिले चौंसठ खिले,
बीस रहे कर जोड ।
हरिजनसे हरिजन मिले,
विहँसे सात करोड ॥

चार : चार आँखें; चौंसठ : चौंसठ दांत । बीस : हाथ-पैरकी अगुँलियाँ; सात करोड : सात कोटि रोम शरीरमें सात करोड रोम (रोंगटे) होते हैं। हरिजनका अर्थ है हरिके लाडले।

विदुरजी और उद्धवजीका दिव्य सत्संग हुआ ।

मनुष्य सत्संगमें जितना समय बिताता है, उतना ही वह सही अर्थमें जिया है। संतोंके मिलनमें केवल परमात्माकी ही चर्चा होती है। संतसे मिलन होने पर तुम अपनी लौकिक बातें मत करो।

यमुनाजीको आनंद हो रहा है कि ये भक्त आज मेरे प्रभुकी लीलाका वर्णन करेंगे। मेरे श्रीकृष्णकी बातें करेंगे। मेरे श्यामसुंदरका गुणानुवाद करेंगे, लीलागान करेंगे मैं अपने कृष्णका लीलाओंका वर्णन सुनूँगी। यमुनाजी शांत, गंभीर हो गईं। उन दो भक्तोंने प्रथम बाललीला, फिर पौगंडलीला, प्रौढलीला आदि सारी लीलाओंका वर्णन संक्षेपमें किया।

उद्धवजी कहते हैं : मुझे प्रभुने प्रभासमें भागवतधर्मका उपदेश देकर बद्रिकाश्रम जानेकी आज्ञा दी थी। आपके दर्शनसे मुझे बहुत आनंद हुआ है।

विदुरजी कहते हैं : जिस भागवतधर्मका उपदेश आपको भगवान्ने दिया था वह मैं सुनना चाहता हूँ। मैं जातिहीन और कर्महीन हूँ। किंतु आप जैसे वैष्णव तो दयाके सागर होते हैं। भगवान्ने थोडी-सी कृपा मुझ पर की थी। आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। मैं अधम हूँ। फिर भी जो उपदेश आपको प्रभुने दिया था, मैं आपसे श्रवण करनेकी इच्छा रखता हूँ। आप कृपया मुझे सुनाईये।

उद्धवजी कहते हैं कि आप साधारण मानव नहीं हैं।

मनुष्य जब तक दीन और नम्र नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान्को नहीं भाता। जहां भी दृष्टि पहुचे वहां श्रीकृष्णके दर्शनकी भावना करोगे, तभी दैन्यभाव आएगा।

विदुरजी, आपसे और तो क्या कहूं? जब मुझे उपदेश दिया था तब मैत्रेयजी वहां बैठे थे। भगवान्ने जब स्वधामगमन किया उस समय उन्होंने वसुदेव, देवकी, रुक्मिणी सत्यभामा आदि किसीको भी याद नहीं किया किंतु आपको तीन बार याद किया था। वे मुझसे कहते थे कि मुझ अपने विदुरकी याद आ रही है। वह मुझे नहीं मिला। एक बार जो भाजी मैंने उसके घर खाई थी उसका स्वाद मैं अभी तक नहीं भूल पाया। वह भाजी मुझे आज भी याद आती है।

भगवान् जिसको अपना कहें और अपना मानें उसका बेडा पार ही है।

साधारण व्यवहारमें कोई किसीसे नहीं कहता कि तू मेरा है। जीव मंदिरमें जाकर भगवान्‌से कहता है कि मैं तेरा हूँ और घर लौटकर अपनी पत्नीसे कहता है कि मैं तेरा हूँ। मंदिरमें जो भगवान्‌का था वह घर आनेपर किसी औरका हो गया। इसीलिए भगवान् न तो प्रसन्न होते हैं और न तो कहते हैं कि तू मेरा है। मंदिरमें जो भगवान्‌का था वह घर लौटने पर यह भी भूल गया कि वह किसका है।

भगवान्‌को वैसे तो कई कई मनुष्य कहते हैं हम आपके हैं किंतु ऐसा कोई नहीं कहता कि मैं केवल आपका ही हूं और अन्य किसीका नहीं हूँ।

कृष्ण तवाऽस्मि न चास्मि परस्य।

जगत्‌में जब तक मनुष्य किसी अन्यका है तब तक वह भगवान्‌का नहीं हो सकता। भगवान् जिसे अपना समझें वह मायाके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान्‌से हररोज प्रार्थना करो कि आप एक बार कह दें कि तू मेरा है। भगवान् जब कहें कि तू मेरा है तभी सच्चा ब्रह्मसंबंध होता है।

तुलसीदासजी कहते हैं कि मुझ जैसे कामीको अपना कहनेमें रामजीको लज्जा होती है। आप राजाधिराजके आंगनमें पडा हुआ कुत्ता हूं मैं तो। मुझे अपने आंगनमें पडा रहने दीजिए। मुझे अपनाइए।

तुलसी कुत्ता रामका मोतिया मेरा नाम,
कंठे दोरी प्रेमकी, जित खींचो उत जाना।

मैंने आपकी पट्टी गलेमें बांध ली है। मैं पापी हूं फिर भी आपका हूं। मैं कुत्ता हूं किंतु रामजीका। परमात्माने मुझे अपनाया है।

परमात्मा जब आपको अपना ले, तब उन्हें जो काम पसंद आए वे ही काम करो।

भोगमें संतोष मान लो किंतु भगवान्‌के भजनमें कभी संतुष्ट मत होओ। भक्तिमें जो संतोष मान लेता है, वह प्रभुके मार्गमें कभी आगे नहीं बढ सकता। भक्ति ऐसी करो कि भगवान् तुम्हें स्मरण करे, भगवान्‌को तुम्हारी याद सताए।

भगवान्‌ने विदुरजीको तीन बार याद किया था?

विदुरजी उद्धवजीसे पूछते है कि क्या मुझे सचमुच भगवान्‌ने याद किया था?

उद्धवजी कहते है: आप बडे भाग्यशाली हैं। भगवान्‌ने आपको एक बार नहीं, तीन तीन बार याद किया था। उन्होंने यह भी कहा कि सभीको मैंने कुछ न कुछ दिया है किंतु विदुरजीको मैं कुछ न दे सका। इसलिए मैत्रेयजीको उन्होंने आज्ञा दी कि– " जब विदुरजी तुमसे मिलें तो उन्हें इस भागवतधर्मका ज्ञान देना।

इस बातको सुनकर विदुरजीकी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली। प्रेमसे विह्वल होकर वे रो पडे।

आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ।
ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ।

भा. ३-४-३५

परम भक्त उद्धवजीके मुखसे भगवान्के प्रशंसनीय कार्योंकी बात तथा प्रभुके अंतर्ध्यान होनेके समाचार सुनकर तथा परमधाम जाते समय भी प्रभुने मुझे याद किया ऐसा जानकर और उद्धवजीके चले जानेसे विदुरजी प्रेमविह्वल होकर रोने लगे ।

उद्धवजी बद्रिकाश्रम गए और विदुरजी मैत्रेयऋषिके आश्रमको जानेके लिए निकले । यमुनाजीने कृपा करके विदुरजीको भक्तिका दान दिया । यमुनाजीने नवधा भक्ति दी । ज्ञान और वैराग्यके बिना भक्ति दृढ भी नहीं होती और सफल भी नहीं होती । ज्ञान और वैराग्यका दान गंगाजी करती हैं ।

विदुरजी गंगाके किनारे मैत्रेय ऋषिके आश्रममें आए । गंगाजीकी बडी महिमा है । विदुरजीने गंगाजीमें स्नान किया । गंगाजीके किनारेके ये पत्थर भाग्यशाली हैं क्योंकि मैत्रेय ऋषि जैसोंके चरणोंका उन्हें स्पर्श-लाभ होता रहा है । इन पत्थरों पर वैष्णवोंकी चरणरज गिरती रही है ।

विदुरजी सोचमें डूबे हुए हैं कि जातिहीन होनेसे मुझे मैत्रेय ऋषि उपदेश देंगे या नहीं । मैं जातिहीन अवश्य हूँ, किंतु कर्महीन नहीं हूँ । मैं पापी हूँ, अधम हूँ किंतु परमात्माने मुझे अपनाया है । अतः मैत्रेय ऋषि मुझे अवश्य उपदेश देंगे ।

भक्तिमार्गकी श्रेष्ठताका यही कारण है कि जब तक परमात्माका प्रत्यक्ष मिलन न होने पाए तबतक मुक्त ऐसा ही मानता है कि मेरे ही दोषके कारण मिलन नहीं हो रहा है । भक्तिसे दैन्यकी उत्पत्ति होती है । ज्ञानमार्गमें योगी ब्रह्मरूप होने लगता है, किंतु अभिमान आनेके कारण बहुतोंका पतन भी होता है ।

आश्रममें आकर विदुरजीने मैत्रेयजीको साष्टांग प्रणाम किया है । उनके विनय-विवेकसे सभीको आनंद हुआ ।

मैत्रेय ऋषि कहते हैं : विदुरजी, मैं आपको पहचानता हूँ । आप साधारण व्यक्ति नहीं हैं । आप तो यमराजाके अवतार हैं । मांडव्य ऋषिके शापके कारण दासीपुत्रके रूपमें शूद्रके घर आपका जन्म हुआ था ।

एक बार कुछ चोरोंने राजकोषसे चोरी की । चोरी करके वे भागने लगे । राजाके सेवकोंको इस चोरीका समाचार मिला तो उन्होंने चोरोंका पीछा किया । राजाके सैनिकोंको पीछे आते हुए देखकर चोर घबडा गए । चोरीके मालके साथ भागना मुश्किल था । इतनेमें रास्तेमें मांडव्य ऋषिका आश्रम आया । तो चोरोंने चुराई हुई वह सारी धन-संपत्ति उसी आश्रममें फेंक दी और भाग खडे हुए । राजाके सैनिक पीछा करते हुए आश्रममें आए । वहां राजकोषसे चुराई गई सारी धन-संपत्तिको देखकर उन्होंने मान लिया कि यह मांडव्य ऋषि ही चोर है । उन्होंने ऋषिको पकडा और धनसंपत्तिके साथ राजाके समक्ष उपस्थित कर दिया । राजाने देहांत दंड दिया ।

अब मांडव्य ऋषिको वधस्तंभ पर खडा कर दिया गया। वे वहीं पर गायत्री मंत्रका जाप करने लगे। मांडव्य मरते ही नहीं हैं। ऋषिका दिव्य तेज देखकर राजाको लगा कि यह तो कोई तपस्वी महात्मा लगते हैं। राजा भयभीत हो गया। ऋषिको वधस्तंभसे नीचे उतारा गया। सारी बात जानकर राजाको दुःख हुआ और पश्चाताप होने लगा कि मैंने निरपराध ऋषिको शूली पर चढाना चाहा। उसने मांडव्य ऋषिसे क्षमा करनेके लिए प्रार्थना की।

मांडव्य ऋषि कहते हैं : राजन्, तुम्हें तो मैं क्षमा कर दूंगा, पर यमराजसे पूछूंगा कि मुझे ऐसा दंड क्यों दिया? मैंने कोई पाप नहीं किया फिर भी मुझे ऐसा दंड क्यों दिया? मैं यमराजको क्षमा नहीं कर सकता।

जिसने पाप किए हों उसे डर लगता है। पापीको यमराजा क्रूर लगते हैं।

मांडव्य कहते हैं : "मुझ निष्पापको सजा क्यों? मैं उस न्यायाधीश यमराजको दंड दूंगा।"

अपने चारित्र्य पर कैसा अटल विश्वास? भरतखंडका एक पवित्र संत आज न्यायाधीशसे ही उत्तर मांगने जा रहा है।

यमराजकी सभामें आकर ऋषिने यमराजसे पुछा कि जब मैंने कोई भी पाप नहीं किया है तो भी मुझे शूलीपर क्यों चढाया गया? शूलीपर लटकानेकी सजा मुझे मेरे कौन-से पापके लिए दी गई?

यमराजा घबडा गए। उन्होंने सोचा कि यदि कहूंगा कि भूल हो गई तो ये मुनि मुझे शाप दे देंगे। अतः उन्होंने ऋषिसे कहा कि जब आप तीन बरसके थे तब आपने एक तितलीको कांटा चुभोया था, उसी पापकी यह सजा दी गई है।

जाने या अनजाने जो भी पाप किया जाय उसका दंड भुगतना ही पडता है। भगवान् पापको नहीं स्वीकार करते। पुण्यके उपभोगकी इच्छा न करें तो कोई बात नहीं किंतु पाप तो भोगना ही पडेगा।

पुण्य कृष्णार्पण हो सकता है, पाप नहीं। पाप तो भोगना ही पडेगा। अन्यथा पापका नाश नहीं हो सकता।

लोग शामको दूकानसे घर लौटते समय मंदिरमें जाते हैं और हाथ जोडकर प्रार्थना करते हैं : सारे दिन मैं जो कुछ झूठ बोला हूंगा, किसीको ठगा होगा, जो कुछ भी कुकर्म किए होंगे, वे सभी तुम्हें अर्पित करता हूं।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतेः स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥

काया, वाचा और मनसे जो किया जाय अर्थात् इनसे जो पुण्य किया जाय वह प्रभुको अर्पण करना है। पुण्य समर्पित हो सकता है, पाप नहीं। भगवान् पाप नहीं लेते। सामान्य सरकार पुरस्कार वापस लेती है किंतु किसीको दी गई सजा वापस नहीं लेती।

भगवान् कहते हैं कि यह कैसा मूर्ख व्यक्ति है जो मुझे अपने पाप अर्पित करने चला है। परमात्माको हमेशा पुण्य समर्पित करो। सदा यही सोचो कि पापकी सजा मैं सह लूंगा और ठाकुरजीको पुण्य अर्पित करूंगा।

ठाकुरजीको सर्वोत्तम वस्तु अर्पित करनी चाहिए। इसका नाम ही भक्ति है। भगवान्‌को पुण्य ही समर्पित किए जाने चाहिए।

मांडव्य ऋषिने यमराजसे कहा: शास्त्रकी आज्ञा है कि यदि अज्ञानावस्थामें कोई मनुष्य कुछ पाप कर दे तो, उसका उसे स्वप्नमें दंड दिया जाए। मैं बालक था अतः अबोध था। इसलिए उस समय किए गए पापकी सजा तुम्हें मुझे स्वप्नमें ही देनी चाहिए थी। तुमने मुझे अयोग्य प्रकारसे दंड दिया है। अतः मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम्हारा जन्म शूद्रयोनिमें होगा।

इस प्रकार मांडव्य ऋषिके शापके कारण यमराजको विदुरजीके रूपमें दासीके घर जन्म लेना पडा।

देवसे भूल होने पर उसे मनुष्य बनना पडता है और मनुष्य भूल करे तो उसे चार पगवाला पशु बनना पडता है। पापी मनुष्य पशु बनता है।

विदुरजी कहते हैं कि एक बार मुझसे भूल हो गई तो मुझे देवसे मनुष्य बनना पडा। और अगर अब भी मैं असावधान रहा तो मुझे पशु बनना पडेगा।

फिर इसके बाद मैत्रेयजीसे विदुरजीने अनेक प्रश्न पूछे: भगवान् अकर्ता हैं, फिर भी कल्पके आरंभमें इस सृष्टिकी रचना उन्होंने कैसे की? संसारमें सभी लोग सुखके लिए प्रयत्न करते हैं, फिर भी न तो उनका दुःख दूर होता है और न तो उन्हें सुख मिलता है। ऐसा क्यों? इन प्रश्नोंका उत्तर मिले ऐसी कथा कीजिए और भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन कीजिए।

मैत्रेयजीने कहा: सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा भागवतमें बार बार आती है। तात्त्विक दृष्टिसे जगत् मिथ्या है। अतः साधुओंने उसका अधिक विचार नहीं किया है। किंतु सृष्टिके कर्ताका बार बार विचार किया है।

परमात्माको मायाका स्पर्श हुआ सो उसने संकल्प किया कि मैं एकसे अनेक बनूँ। एकोऽहम् बहु स्याम्। पुरुषमेंसे प्रकृति, प्रकृतिमेंसे महत् तत्त्व, महत् तत्त्वमेंसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारके चार प्रकार हैं। फिर पंचतन्मात्रासे पंच महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई। किंतु ये तत्त्व स्वयं कुछ भी क्रिया नहीं कर सकते थे, अतः ईश्वरने हरेक वस्तुमें प्रवेश किया।

उपनिषद्‌में कहा है कि प्रत्येक वस्तुमें प्रभुने प्रवेश किया है अतः सारा जगत् परमात्माका मंगलमय स्वरूप है।

भगवान्‌की नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ। उसमेंसे ब्रह्मा प्रकटे। ब्रह्माजीने कमलका मुख खोजनेका प्रयत्न किया तो चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। ब्रह्माजीने उनका स्तवन किया।

संतति और संपत्ति भगवत्कृपाका फल नहीं है, प्रारब्धका फल है। भगवान् जिस पर कृपा करते हैं उसका मन शुद्ध होता है। बिना मनःशुद्धिके ईश्वरका दर्शन नहीं होता। ईश्वरके दर्शनके बिना जीवन सफल नहीं होता।

जिसने मुझे जन्म दिया उसीको जाननेका मैंने प्रयत्न भी नहीं किया। मेरे जैसा मूर्ख और कौन होगा ?

ब्रह्माजीको डर लगा कि ससारमें आने पर इन्द्रियां कहीं गलत रास्ते पर न चली जाएं।

ब्रह्माजीने सृष्टिका निर्माण किया। कामको जन्म दिया। कामने प्रथम पिताको मोहित किया।

प्रथम हुए स्वायंभु मनु और शतरूपा रानी। उस समय पृथिवी तो रसातलमें डूबी हुई थी। ब्रह्माने सोचा कि प्रजाका निर्माण तो करूं, किंतु उसे बसाऊं कहां ? अतः नासिकामेंसे वराह भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने पृथ्वीको पानीमेंसे बाहर निकला। रास्तेमें मिले हिरण्याक्षको मारा और पृथ्वीका शासन मनुके हाथमें सौंपकर भगवान् स्वधाम लौट गये।

विदुरजीने कहा कि आपने तो बहुत संक्षिप्त कथा सुनाई। इस कथाका रहस्य क्या है ? वह हिरण्याक्ष कौन था ? धरती रसातलमें क्यों डूबी थी ? वराहनारायणका चरित्र मुझे सुनाइए।

यह कथा मैत्रेयजीने विदुरजीको सुनाई थी और शुकदेवजीने परीक्षितको।

दिति कश्यप ऋषिकी धर्मपत्नी थीं। एक दिन सायंकालको दिति शृंगार करके पतिके आई और कामसुखका उपभोग करनेकी इच्छा प्रकट की, क्योंकि वह कामातुर हो गई थी।

कश्यपने कहा : देवी, यह समय सायकालका है यह समय कामसुखके लिए उपयुक्त नहीं है। इस समय कामाधीन होना ठीक नहीं है। जाओ, दीपक जलाओ।

शास्त्रमें कहा गया है कि सौभाग्यवती स्त्रीमें लक्ष्मीका अंश है। सायंकालके समय लक्ष्मीनारायण घर आते हैं। उस समय घर बंद होगा तो लक्ष्मीजी 'जय श्रीकृष्ण' कहती हुई वापस लौट जाएंगी। आजकल तथाकथित सुधरे हुए लोग खास करके शामको ही ताला लगाकर बाहर निकल पडते हैं। घूमने जाना ही हो तो सूर्यास्तके पहले घरमें लौट आना चाहिए। स्त्रियोंको चाहिए कि शामको घर बाहर भटकती न फिरें। संध्या समय तुलसीकी पूजा करो और वहां दीपक जलाओ। भगवान्के आगे धूपदीप जलाओ।

मनुष्यके हृदयमें अंधकार है। वहा प्रकाश जलाना है।

दशम स्कंधमें कथा है। गोपियां यशोदाजीसे फरियाद करती हैं कि कन्हैया हमारा माखन चुराकर खा जाता है। तो यशोदा कहती हैं कि अंधेरेमें माखन रखा करो कि जिससे कन्हैया उसे देख ही न पाए। गोपियां कहती हैं कि माखन तो अंधेरेमें ही रखा था किंतु कन्हैयाके आते ही वहां उजियारा छा गया।

ईश्वर परप्रकाशी नहीं है वह तो स्वयंप्रकाशी है। परमात्माको दीपककी आवश्यकता नहीं है। दियेकी जरूरत तो मानवको है।

सायंकालको सूर्य और चद्रके तेज क्षीण होते हैं, दुर्बल होते हैं सूय बुद्धिका स्वामी है और चंद्र मनका। मन और बुद्धिके स्वामी सूर्य-चन्द्रके सायंकालमें दुर्बल होनेके कारण मन और बुद्धिमें काम उस समय प्रवेश पा जाता है। काम मनमें सांझकी वेलामें प्रवेश करता है और रात्रिको प्रकट होता है। संध्याकालमें प्रभुके नामका जप करोगे तो मनमें कामका प्रवेश नहीं हो पाएगा।

कश्यप ऋषि दितिको समझाते हैं कि मानिनी मान जाओ। भगवान् शंकर इस समय जीवमात्रको निहारनेके लिए भ्रमण करते हैं। अतः इस समय स्त्रीसंग करनेसे शंकर भगवान्का अपमान होगा और अपमानके कारण अनर्थ होगा। शंकर भगवान् देख लेंगे तो दंड देंगे।

"भस्मांतम् शरीरम्।" इस शरीरका अंतमें तो भस्म ही होगा। अतः शिवजी भस्म लगाते हैं और जगत्को वैराग्यका बोध कराते हैं। शरीरका अतिशय लालन न करो। हमेशा याद रखो कि इस शरीरको एक-न-एक दिन श्मशानमें ही जाना है। गृहस्थाश्रम विलासके लिए नहीं है किंतु मर्यादामें रह कर, विवेकसे कामसुखका उपभोग करके कामका विनाश करनेके लिए है, वैराग्यके लिए है। नियमपूर्वक कामके विनाशके लिए यह गृहस्थाश्रम है। काम ऐसा दुष्ट है कि एक बार हृदयमें प्रवेश करनेके बाद वह बाहर निकलता ही नहीं है। एक बार कामके अंदर प्रविष्ट होने पर तुम्हारा सारा सयानापन हवा हो जाएगा। अतः जीवन ऐसा सादा और पवित्र बनाओ कि मन-बुद्धिमें प्रवेश करनेका अवसर काम कभी पा ही न सके।

उल्लुओंकी एक सभामें उन्होंने प्रस्ताव पास किया कि सूर्यनारायणका अस्तित्व है ही नहीं, क्योंकि वे हमें दिखाई नहीं देते। उल्लू सूर्यको देख न सके तो क्या इसका अर्थ यह है कि सूर्यका अस्तित्व ही नहीं है? धर्ममें आस्था न रखनेवाले, ईश्वरको न माननेवाले इसी उल्लूके बडे भाई ही हैं।

दितिकी भेद बुद्धिमेंसे ही इन हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका जन्म हुआ है। सभीमें मेरे नारायणका वास है ऐसा अभेदभाव रखोगे तो पाप नहीं होगा।

दितिने कश्यपकी बात न मानी और कश्यप भी दितिके दुराग्रहके आगे झुक गए। अंतमें दितिको अपनी क्षतिका भान हुआ। वह पछताई। उसने कश्यपकी पूजा कि और भगवान् शिवजीसे क्षमायाचना की।

कश्यपने कहा कि तुम्हारे गर्भसे दो राक्षस उत्पन्न होंगे।

पति और पत्नी उचित संयमका पालन न करें तो उनसे पापी प्रजाकी उत्पत्ति होती है। पवित्र दिवस जैसे कि दोनों पक्षोंकी दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चौदश, पूर्णिमा अमावास्या तथा पर्वोके दिन ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करें। लोग कहते हैं कि काल बिगड गया है अतः पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है। वैसे काल भी कुछ कुछ बिगडा तो है ही किंतु लोगोंका दिल ज्यादा बिगड गया है। एकादशी, पूर्णिमा या पवित्र दिनोंका विचार किए बिना ही कामांध हो जाते हैं। अतएव पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है।

कामको हृदयमें प्रवेश करनेका अवसर ही न दिया जाये। एक बार कामका हृदयमें प्रवेश हो गया कि सयानापन निरर्थक हो जाता है।

दितिने भी कामांध होनेके कारण ही सयानापन गँवा दिया था।

मनुष्य केवल इस शरीरका ही विचार करेगा तो भी उसके हृदयमें शरीर-सुखके प्रति तिरस्कार उत्पन्न होगा और वैराग्यके भावों की उत्पत्ति होगी। यह शरीर कैसा है? इसमें हड्डियां टेढी-तिरछी बिठा दी गई हैं। उस पर मांस रख दिया गया है और फिर त्वचासे मढ

दिया गया है। अतः अंदरकी चीजें नहीं दीखतीं। अन्यथा रास्तेमें पडे हुए हड्डीके टुकडेको कोई छूएगा भी नहीं। वह सोचेगा कि उसे छूनेसे शरीर अपवित्र हो जाएगा। किंतु वही मनुष्य देहमें छिपी हुई हड्डियोंसे प्रेम करता है। ऐसी मूर्खता दूसरी और क्या होगी?

भागवतमें एक स्थानपर कहा गया है कि यह शरीर तो कुत्ते और लोमडीका भोजन है। अग्निसंस्कार न हो तो इसे कुत्ते ही खाएंगे। ऐसे शरीरका मोह छोडो।

जब दितिने जाना कि उसके गर्भसे राक्षस उत्पन्न होंगे तो वह घबडा गई। तो कश्यपने कहा कि उनका संहार करनेके लिए भगवान् नारायण आएंगे। तो दितिने कहा कि तब तो मेरे पुत्र बडे भाग्यशाली होंगे।

कश्यपने दितिको ऐसा भी आश्वासन दिया कि तेरा पौत्र महान् भागवत-भक्त और महान् वैष्णव होगा और प्रह्लाद नामसे जगत्में विख्यात होगा।

जो ठाकुरजीका सेवा-स्मरण अकेला करे वह साधारण वैष्णव है। किंतु जिसके संगसे दूसरोंको भी ईश्वरकी सेवा और स्मरण करनेकी प्रेरणा मिले और इच्छा जागे वह महान् वैष्णव है।

भक्तोंने एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्यजीसे कहा कि हमें वैष्णवका लक्षण बताइए। तो महाप्रभुजीने कहा कि जो ठाकुरजीकी सेवा करे वही वैष्णव है। भक्तोंने कहा कि यह बात तो हम भी जानते हैं। हमें कुछ विशिष्ट लक्षण बताइए। तो महाप्रभुजीने कहा कि महान् वैष्णव वह है कि जिसके संगमें आनेवालेको ठाकुरजीकी सेवासे प्रीति हो जाय और उसपर भी कृष्ण भक्तिका रंग लग जाय।

प्रह्लाद महान् वैष्णव हैं।

प्रह्लादके संगमें आनेवाले पर भी भक्तिका रंग लग जाता था। तुम्हारी संगत करनेवाले पर भक्तिका रंग न लगे तो मानो कि तुम्हारी भक्ति अभी कच्ची ही है। किंतु दूसरोंको सुधारनेकी तकलीफमें पडनेकी साधारण मनुष्यको कोई जरूरत नहीं है। तुम अपना ही मन शुद्ध कर लो बस, यही काफी है।

व्यसन जैसा कोई पाप नहीं है। जो व्यसनको पराजित कर सकता है वही भक्ति कर सकता है। आजकल तो फैशन और व्यसनमें ही समय और संपत्तिका व्यय किया जाता है। व्यसनके पीछे पागल बना हुआ व्यक्ति भगवान्की सेवा नहीं कर सकता। वैष्णव तो वह है कि जो निर्व्यसनी हो। जो भगवान्की आराधना करना चाहता है उसे लौकिक व्यसनसे प्रीति नहीं करनी चाहिए। जिसे ईश्वरकी आराधना करनी है उसे चाहिए कि वह फैशन और व्यसनमें न फँसे। व्यसन हो तो एक ही हो और वह व्यसन हो कृष्णभक्तिका।

विद्याव्यसनम् अथवा हरिपादसेवनम् व्यसनम्।

तुकाराम महाराजको भक्तिका ऐसा ही व्यसन था। उनकी आंखोंकी ऐसी आदत पड गई थी कि जहां भी उनकी नजर जाती वहां उन्हें मुरलीमनोहरका स्वरूप दिखाई देता है।

भक्ति व्यसनरूप हो जाएगी तो तुम्हें मुक्ति दिलाएगी। भक्ति व्यसन-सी हो जाती है तो तुरंत मुक्ति मिलती है।

राज्यशासनसे समाज नहीं सुधरता। संत ही सद्भावके द्वारा उसे सुधार सकते हैं। प्रह्लादके संगमें जोभी आए उन सभीका उन्होंने कल्याण किया।

दिति गर्भवती हुई। उसने सोचा कि मेरे पुत्र देवोंको कष्ट देंगे, अतः इनका जन्म शीघ्र न हो। इस विचारसे दितिने सौ वर्षों तक गर्भ धारण किए रखा। सूर्य-चंद्रका तेज क्षीण होने लगा। देव घबडाए। वे ब्रह्माजीके पास आए और उनसे पूछा कि दितिके गर्भमें कौन हैं? उन्हे ब्रह्माजीने, दितिके गर्भमें जो थे, उनकी कथा सुनाई। ब्रह्माजी बोले कि—

एक बार मेरे मानसपुत्र सनकादि ऋषि घूमते-फिरते वैकुंठ-लोकमें गए।

अंतःकरण चतुष्टयके शुद्ध होने पर ही ईश्वरके दर्शन होते हैं। ईश्वरदर्शन करनेके लिए जाते समय इन चारोंको शुद्ध करके जाओ। अंतःकरणके चार विभाग (प्रकार) हैं। अंतःकरण जब संकल्प-विकल्प करता है तब उसे मन कहा जाता है, वह जब किसी वस्तुका निर्णय करता है तब उसे बुद्धि कहते हैं, श्रीकृष्णका चिंतन करने पर उसे चित्त कहते हैं और उसमें जब क्रियाका अभिमान जगता है तब उसे अहंकार कहते हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारोंको शुद्ध करो। बिना इन चारोंको शुद्ध किए परमात्माके दर्शन नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्यके बिना इन चारोंकी शुद्धि नहीं होती। ब्रह्मचर्य तभी सिद्ध होता है कि जब ब्रह्मनिष्ठा सिद्ध होती है।

सनत्कुमार ब्रह्मचर्यके अवतार हैं। वे महाज्ञानी हैं फिर भी बालक जैसे दैन्यभावसे रहते हैं।

सनत्कुमार आदि नारायणके दर्शन करनेके लिए वैकुंठमें जाते हैं।

काम और काल वैकुंठमें प्रवेश नहीं पा सकते। जहां बुद्धि कुंठित होती है, वह वैकुंठ है। वैकुंठके वृक्ष और पुष्प दिव्य हैं। छ ऋतुएं सखियां बनकर उस धामकी सेवा करती हैं। वहां सात बडे बडे किले हैं जिन्हें लांघकर जाना पडता है।

दक्षिणमें रंगनाथका मंदिर इस वर्णनके आधारपर ही बनाया गया है।

सनत्कुमारोंको अलौकिक वैकुंठधामका दर्शन हो रहा है। यहां भ्रमर भी प्रेमसे ईश्वरके गुणगान करते हों ऐसा लगता है। वे भ्रमर गुन गुन कर रहे हैं। मानों श्रीकृष्णका दर्शन-कीर्तन ही कर रहे हों। वैकुंठमें विषमता नहीं है। यहांके पार्षद भगवान् जैसे हैं और दासियां लक्ष्मीजी जैसी हैं। पार्षद भी शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज हैं।

ईश्वर जब कुछ प्रदान करने लगते हैं तब वे देनेमें कुछ भी संकोच नहीं करते। भगवान् जब देते हैं तब लेनेवाला लेते लेते थक जाता है। मनुष्य आखिर कितना ले सकता है?

ईश्वरकी राजसभामें विषमता नहीं है तुम भी भोजन आदिमें विषमता मत करो। कई सेठ घरमें तीन प्रकारके चावल रखते हैं: नौकरानीके लिए अलग, साधु-बावाओंको देनेके लिए अलग और स्वयंके खानेके लिए दिल्लीके बासमतीके चावल। इस तरह तीन प्रकारके चावल रखते हैं। ऐसा भेद कभी नहीं रखना चाहिए। सबके लिए समान भावसे एक ही तरहका भोजन पकाओ। हमारी माताएं परोसनेमें बडी चतुर हैं। अपनी या अपनोंकी रोटीपर कुछ ज्यादा घी लगाती हैं।

भोजनमें विषमता मत करो। विषमता करनेवालेको संग्रहणीका रोग होता है। विषमता ही वैरको उत्पन्न करती है, विषमता करनी ही पडे तो सद्भावसे करो। व्यवहारमें संपूर्ण समानता नहीं होती। वैकुंठमे विषमता नही होती। लक्ष्मीजी भी वैकुंठमें प्रमाद नहीं करतीं। वहां लक्ष्मीजी स्वयं सेवा करती हैं, झाड़ू बुहारती हैं।

शुकदेवजी कथा नहीं कर रहे अपितु वे लक्ष्मीनारायणका दर्शन कर रहे है। प्रतिबिंबको देखनेसे बिंबका मोह होता है। तब बिंबको देखनेसे कितना आनंद होता होगा? वैष्णव भाग्यशाली हैं कि वे प्रतिबिंबको देख सकते हैं। भगवान् अपना बिंब नहीं देख सकते। कन्हैया दर्पणमें अपना प्रतिबिंब देखता है। कन्हैया यशोदाजीसे कहता है कि यह बालक बहुत सुंदर है, मैं उसके साथ खेलना चाहता हूं। माता समझाती है कि वह कोई और बालक नहीं है। वह तो तेरा ही प्रतिबिंब है। अपने प्रतिबिंबका दर्शन करनेसे जब भगवान् स्वयं मुग्ध हो जाता है तो गोपियां बिंबका दर्शन करके भान भूल जायें इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है?

सनत्कुमार वैकुंठके छ द्वार पार करके सातवें द्वारपर आए। वहां जय-विजय खडे थे। सनत्कुमार भगवान्के प्रासादमें प्रवेश कर ही रहे थे कि भगवान्के द्वारपाल जय और विजयने उन्हें रोका।

सनत्कुमारोंने कहा कि हम तो माता और पिता- लक्ष्मी और नारायणसे- मिलने जा रहे हैं।

सनत्कुमार कौपीनधारी थे। कौपीनका अर्थ केवल लंगोटी नहीं है। जितेन्द्रिय ही कौपिनधारी हैं।

भगवान्का दर्शन करनेके लिए जितेन्द्रिय होकर ही जाना पडता है।

द्वारपालोंने सनत्कुमारोंसे कहा कि अंदरसे आज्ञा मिलने पर हम आपको प्रवेश करने देंगे। तब तक आप यहीं रुकिए। सनत्कुमार यह सुनकर क्रोधित हो गए।

क्रोध कामानुज-कामका छोटा भाई है। अति सावध रहने पर कामको तो मारा जा सकता है किंतु उसके छोटे भाई क्रोधको मारना कठिन है। कामका मूल संकल्प है। ज्ञानी किसी औरके शरीरका चिंतन नहीं करते अतः काम उन्हें पीडा नहीं दे पाता। ज्ञानी पुरुषका पतन काम द्वारा नहीं; क्रोधके कारण ही होता है।

छ द्वार पार करके ज्ञानी पुरुष आगे बढता है किंतु सातवें द्वार पर जय-विजय उसे रोकते हैं।

योगके सात प्रकारके अंग ही वैकुंठके सात द्वार है। वे हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा। इन सातों द्वारोंको पार करनेके बाद ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। योगके इन सातों अंगोंको सिद्ध करने पर वैकुंठमें प्रवेश मिलेगा।

ध्यानका अर्थ है एक अंगका चिंतन। शरीर और आंखको स्थिर रखना ही आसन है। धारणाका अर्थ है सर्वांगका चिंतन। धारणामें अनेक सिद्धियाँ विघ्न डालती हैं। सर्वांगका दर्शन ही धारणा है। साधकको जीवनकी अंतिम साँस तक सावधान रहनेकी जरूरत है। जय-विजय प्रतिष्ठाके दो स्वरूप हैं। सर्वांगके चिंतनमे सिद्धि-प्रसिद्धि बाधा उपस्थित करती हैं। सिद्धिके मिलने पर प्रसिद्धि होती है। सेवामें प्रमाद करनेवालेका पतन होता है।

जय अर्थात् स्वदेशमें प्रतिष्ठा और विजय अर्थात् परदेशमें विजय।

जगत् मेरे लिए क्या कहेगा, इसकी चिंता मत करो, किंतु जगदीश्वर क्या कहेंगे उसीका ख्याल रखो। जो लौकिक प्रतिष्ठामें फँसता है, वह परमात्मासे दूर हो जाता है।

भगवान्‌के राजमहलके सातवे द्वार पर जीवको जय और विजय रोकते हैं।

जय-विजयका अर्थ है कीर्ति और प्रतिष्ठा। कीर्ति और प्रतिष्ठाका मोह मनुष्य नहीं छोड सकता। वह घरका नाम तो रखता है अशोकनिवास, किंतु वह अशोकभाई कब तक उसमें बने रहेंगे? घरको ठाकुरजीका नाम दो। घर पर भी नाम है और कथामें बैठनेके लिए रखे हुए आसन पर भी नाम है। घर और आसन पर लिखे हुए ये नाम कितने दिन तक रह पाएंगे? घरका मोह छूटता है किंतु प्रतिष्ठाका मोह नहीं छूट पाता।

शिष्य कुछ प्रशंसा कर देते हैं तो गुरु मानने लगता है कि वह ब्रह्मरूप हो गया। सो सेवा-स्मरणकी वह धीरे धीरे उपेक्षा करने लगता है और वह पतित हो जाता है।

मनुष्यका मन नामरूपमें फँसा हुआ है। नाम और रूपका मोह जब तक न छूट पाए तब तक भक्ति नहीं हो सकती। मन श्रीकृष्णके रूपमें फँस जाए तभी मुक्ति मिलती है। प्रतिष्ठाका मोह आया नहीं कि भगवान्‌को द्वार परसे ही वापस लौट जाना पडता है।

क्रोध करनेसे सनत्कुमारोको प्रभुके सातवें द्वारसे वापस लौटना पडा। किंतु उनका क्रोध सात्त्विक था। वे द्वारपाल भगवान्‌के दर्शनमें बाधा उपस्थित कर रहे थे अतः वे क्रोधित हुए। अतः भगवान् अनुग्रह करके द्वार पर आए और सनत्कुमारोंको दर्शन दिया। किंतु वे भगवान्‌के राजमहलमे तो प्रवेश पा ही न सके।

महाप्रभुने इस चरित्रकी समाप्ति करते हुए कहा है: ज्ञानीके लिए ज्ञान-मार्गमें अभिमान विघ्नकर्ता है। अभिमानके मूलमें यही क्रोध है। कुछ अज्ञानावस्थामें मरते हैं तो कुछ लोग ज्ञानी होकर अभिमानवश होकर मरते हैं। ब्राह्मणको शिक्षा न मिले तो वह अज्ञानी रहता है और शिक्षा कुछ अधिक पा ले तो कभी कभी अभिमानी होकर भी मरता है।

कर्ममार्गमें विघ्नकर्ता काम है। कश्यप और दितिके मार्गमें कामने ही बाधा डाली थी। कामसे कर्मका नाश होता है।

भक्तिमार्गमें लोभ बाधक बनता है। लोभ भक्तिका नाश करता है।

ज्ञान-मार्गमें क्रोध विघ्न करता है। सनत्कुमारके मार्गमें क्रोधने ही बाधा डाली। क्रोधसे ज्ञानका नाश होता है।

देहदृष्टिसे काम उत्पन्न होता है। ज्ञानीके मार्गमें काम बाधा नहीं डालता, किंतु क्रोध बाधा डालता है।

इन तीनोंके कारण पुण्यका लय (क्षय) होता है। विवेकसे काम नष्ट होता है किंतु क्रोधको नष्ट करना कठिन है।

एकनाथजी महाराजने भावार्थ- रामायणमें लिखा है कि कामी और लोभीको तो कुछ न कुछ तात्कालिक लाभ हो सकता है, किंतु क्रोध करनेवालेको तो कभी कुछ भी लाभ नहीं हो सकता, इतना ही नहीं, उसके पुण्यका क्षय भी हो जाता है।

वल्लभाचार्यजीने इस चरित्रकी समाप्तिमें कहा है :

कामेन कर्मनाशः स्यात् क्रोधेन ज्ञाननाशनम् ।
लोभेन भक्तिनाशः स्यात् तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत् ॥

इसी कारणसे ही गीताजीमें काम, क्रोध, लोभको नरकद्वार कहा है :

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

गी. अ. १६ श्लोक ११

भक्तिमार्गमें लोभ विघ्नरूप है। मनुष्य भगवानके लिए अथवा दान देनेके लिए घटियासे घटिया चीज–वस्तुओंका उपयोग करता है। पुत्रके लिए कपडे बनवाने हों तो सात या सत्रह रुपये मीटरवाला कपडा ले आता है और ठाकुरजीके वस्त्र–शृंगार बनवाने हों तो दो–तीन रुपये मीटरवाला कपडा ढूंढता है। एक गृहस्थ बाजारमें ठाकुरजीके लिए फूल लेने जाता है। माली कहता है कि गुलाबके फूलकी कीमत चार आना है। तो ग्राहक कहता है कि कनेरका फूल ही दे दो, क्योंकि मेरे भगवान् तो भावनाके भूखे हैं। किंतु जब पत्नी कहती है कि मेरे लिए एक अच्छी–सी वेणी (सिरमें लगानेके लिए फूलोंका गजरा) ला दो। तो बहुतसा खर्च करके भी वह अच्छी मनपसंद वेणी ले आता है।

सत्यनारायणकी कथा करानी हो तो वह दो सौ रुपयोंका पीतांबर पहनकर बैठता है। और जब ठाकुरजीको वस्त्र परिधान करनेका प्रसंग आता है तो वह कहेगा कि वह कलावा (डोरी विशेष) कहां है? वही लाओ। भगवान कहते हैं कि बेटेजी, मैं सब समझता हूं। मैं भी तुझे एक दिन लंगोटी ही पहनाऊंगा। मैंने तेरी लंगोटीके लिए डोरी अनामत ही रख छोडी है।

ऐसा नहीं करना चाहिए। भगवान्को उत्तमोत्तम वस्तु अर्पित करो।

"२५२ वैष्णवनकी वार्ता" में जमनादास भक्तका एक दृष्टांत है। एक बार वे ठाकुरजीके लिए फूल लेनेके लिए बाजारमें निकले। मालीकी दूकानपर एक अच्छा–सा कमल देखा। उन्होंने सोचा कि आज अपने ठाकुरजीके लिए यही सुंदर कमल ले जाऊं। उसी समय वहां एक यवनराज आया जो वेश्याके लिए फूल लेना चाहता था। जमनादास भक्तने उस कमलफूलकी कीमत पूछी तो मालीने कहा कि पांच रुपये है इसकी कीमत। तो यवनराजने बीचमें ही कह दिया कि मैं इस फूलके लिए दस रुपये दूंगा। तू यह फूल मुझे ही दे। तो उस जमनादास भक्तने कहा कि मैं पच्चीस रुपये देनेको तैयार हूं। फूल मुझे ही देना। इस प्रकार फूल लेनेके लिए दोनोंके बीच होड–सी लग गई।

यवनराजने दस हजार की बोली लगाई तो भक्त जमनादासने कहा कि एक लाख। वेश्याके लिए यवनराजको वैसा कोई सच्चा प्रेम नहीं था, केवल मोह था। उसने सोचा कि मेरे पास लाख रुपये होंगे तो कोई दूसरी स्त्री भी मिल ही जाएगी पर उधर जमनादास भक्तके लिए तो ठाकुरजी ही सर्वस्व थे। उनका प्रभुप्रेम सच्चा था, शुद्ध था। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति बेच दी और लाख रुपयेमें वह कमलफूल खरीद कर श्रीनाथजीकी सेवामें अर्पित कर दिया। फूल अर्पित करते ही श्रीनाथजीके सिरसे मुकुट नीचे गिर गया। इस प्रकार भगवान्ने बताया कि भक्तके इस फूलका वजन मेरे लिए अत्यधिक है।

सनत्कुमार क्रोधित हुए अतः उनका पतन हुआ। प्रभुके द्वार तक पहुँच कर उन्हें वापस लौटना पडा।

मन और बुद्धि पर कभी विश्वास मत करो। वे बार बार दगा दे जाते हैं। अपनेको निर्दोष माननेके समान दोष और कोई नही है।

काम-क्रोध अंदरके विकार हैं। वे बाहरसे नहीं आते। सनत्कुमारोंका क्रोध बाहरसे नहीं आया है। अवसर मिलते ही ये विकार बाहर आ जाते हैं। अतः मन पर सत्संगका, भक्तिका अंकुश रखो। सतत ईश्वर-चिंतन करनेसे अंदरके विकार शांत हो जाते हैं।

सनत्कुमारोंने क्रोधित होकर जय-विजयको शाप दिया कि राक्षसोंमें ही विषमता होती है। तुम दोनोंके मनमें भी विषमता है। अतः तुम राक्षस हो जाओ।

मंदिरमें थोडा-सा पाप किया जाय तो वह भी महापाप ही होता है। सनत्कुमारोंने तो वैकुंठमें क्रोध किया।

शुकदेवजी सावधान करते है: राजन्, ऐसा पाप कभी मत करना।

सनकादिक ऋषियोने शाप दिया कि दैत्यकालमें तुम्हें तीन बार जन्म लेना पडेगा। भगवान्ने सोचा कि इन्होंने मेरे आंगनमें ही पाप किया है अतः वे घरमें आनेके पात्र नही हैं इन्होंने अभी तक क्रोध पर विजय नही पाई है। अतः वे मेरे धाममें आनेकी पात्रता गँवा चुके हैं। मैं बाहर जाकर उन्हें दर्शन दे आऊँ।

सनकादिकोंको अंदर प्रवेश न मिल सका। यदि वे अंदर जा सके होते तो फिर बाहर आनेका प्रश्न उपस्थित हीं नहीं होता, कारण भगवान्का परमधाम तो है– "यद्गत्वा न निवर्तन्ते।"

भगवान्ने लक्ष्मीजीसे कहा कि लगता है कि बाहर कुछ झगडा हो रहा है। वे दोनों बाहर आए। ठाकुरजीने सनत्कुमारोंकी ओर नहीं देखा। आज नजर धरती पर है।

अपने द्वारा किए हुए पापोंके लिए सच्चे हृदयसे जीव जब तक पछताए नही, तबतक ठाकुरजी दर्शन नही देते।

अगर खुदा नजर दे
तो सब खुदाकी है।

लोग अपनेको वैष्णव कहलाते है किंतु पाप करना नही छोडते। स्वदोष-दर्शन यह ईश्वरदर्शनका फल है। सनत्कुमार वंदन करते हैं किंतु प्रभुजीने उनकी ओर नही देखा। दोनों ऋषि भगवान्से क्षमायाचना कर रहे हैं। प्रभुने कहा कि भूल तुमसे नही हुई। तुम्हारा अपमान मेरा अपमान है।

ब्राह्मण भगवान्को प्रिय हैं क्योंकि वे भगवान्की पहचान कराते है। भगवान् कहते हैं कि आपने मेरी भक्ति और ज्ञानका प्रचार किया है। ब्रह्मा, लक्ष्मीसे भी मुझे मेरे भक्त अधिक प्रिय हैं। भगवान् वाणीचतुर है। लक्ष्मीजीको कहीं बुरा न लग जाए इसलिए सोचकर वे फिर कहते है कि "पर यदि भक्ति अनन्य न हो तो वह मुझे प्रिय नहीं है।" लक्ष्मीजीकी भक्ति अनन्य

है। वे निष्काम भावसे प्रेम करती है अतः वे भगवानको विशेष प्रिय हैं। ” भगवान् कहते है “ निष्काम भक्ति मुझे अतिशय प्रिय है। यदि लक्ष्मीजीकी भी भक्ति निष्काम न हो तो मुझे वे भी प्रिय नहीं लगती। ”

चंचल लक्ष्मी ठाकुरजीके चरणोंमें स्थिर हो जाती है। तुलसीजी राधाजीका स्वरूप हैं। तुलसी विवाहका तात्पर्य जीवात्मा और परमात्माका विवाह ही है।

सनकादिक सोच रहे हैं कि हमारी प्रशसा तो बहुत की जा रही है किंतु हमें धामके अंदर तो बुलाते ही नही हैं। हमें अभी तपश्चर्या करनेकी आवश्यकता है। अभी तक हमारा क्रोध नष्ट नही हो पाया है। वे ब्रह्मलोकमें पधारते हैं।

जय-विजयको सांत्वना देते हुए नारायण भगवान्ने कहा : तुम्हारे तीन अवतार होंगे।

सनकादिकोंके शापसे जय और विजय क्रमशः हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके रूपमें अवतरित हुए हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

दितिके गर्भमें जय-विजय आए। दो बालकोंका जन्म हुआ। उनका नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रखा गया।

असमयमें किए गये कामोपभोगके कारण दिति- कश्यपके यहां राक्षसोंका जन्म हुआ। अतः कामके अधीन मत होओ। एकादशी द्वादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, जन्मतिथि, आदि दिवसोंमें ब्रह्मचर्यका पालन करो।

महाप्रभुजीने इस चरित्रके अंतमें कश्यपके सिरपर तीन दोष आरोपित किए हैं : कर्मत्याग, मौनत्याग और स्थानत्याग।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रोज चार-चार हाथभर बढते थे। यदि सचमुच ही ऐसा होने लगे तो माता-पिताकी दुर्गतिकी कल्पना कर सकते हैं ? और मुसीबतोंको नजरअंदाज कर भी दें, तो भी रोज रोज कपडे छोटे पडने लगें।

किंतु यह तो भागवतकी समाधिभाषा है। भागवतमें समाधिभाषा ही मुख्य है तथा लौकिकभाषा गौण है।

इससे लोभका स्वरूप बताया गया है। चार-चार हाथभर रोज बढते थे अर्थात् लोभ रोज रोज बढता ही जाता है। लाभसे लोभ बढता है। बिना प्रभुकृपासे लोभका अंत नहीं होता। वृद्धावस्थामें शरीरके जीर्ण हो जानेके कारण काम तो मर जाता है किंतु लोभका नाश नहीं हो पाता।

लाभसे लोभ और लोभसे पाप बढता है। पापके बढनेसे धरती रसातलमें जाती है। धरती माने मानव-समाज दुःखरूपी रसातलमें डूब जाता है।

हिरण्याक्षका अर्थ है संग्रहवृत्ति और हिरण्यकशिपुका अर्थ है भोगवृत्ति।

हिरण्याक्षने बहुत कुछ एकत्रित किया और हिरण्यकशिपुने बहुत कुछ उपभोग किया।

भोग बढता है तो भोग भी बढता है और भोगके बढनेसे पाप बढता है। जबसे लोग मानने लगे हैं कि रुपये-पैसेसे ही सुख मिलता है तबसे जगत्में पाप बहुत बढ गया है। केवल धनसे सुख मिलता हो ऐसी बात नहीं है।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके संहारके लिए भगवान्‌ने क्रमशः वराह और नृसिंह अवतार धारण किया था। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु लोभके ही अवतार हैं।

भगवान्‌ने कामको मारनेके लिए एक ही अवतार लिया अर्थात् रावण-कुंभकर्णको संहारनेके लिए रामचंद्रजीका अवतार लिया। क्रोधको मारनेके लिए-शिशुपालके वधके लिए एक कृष्णावतार ही लिया। किंतु लोभको मारनेके लिए दो अवतार लेने पडे: वराह और नृसिंह अवतार।

काम-क्रोधको मारनेके लिए एक-एक अवतार ही लेना पडा। किंतु लोभको मारनेके लिए दो अवतार लेने पडे, यही बताता है कि लोभको पराजित करना बडा दुष्कर है।

वृद्धावस्थामें तो कई लोगोंमें सयानापन आता है, किंतु जो जवानीमें ही सयाना बन जाए वही सच्चा सयाना है। शक्तिके क्षीण होने पर कामको जीतनेमें कौन-सी बडी बात है? कोई कहना माने ही नहीं तो यदि बूढेका क्रोध मिटे तो उसमें कौन-सी अचरजकी बात हुई? किंतु यह लोभ तो वृद्धावस्थामें भी अंत तक नहीं छूट पाता। लोभको मारना कठिन है। सत्कर्ममें विघ्नकर्ता लोभ है अतः संतोषके द्वारा उसे मारना चाहिए। लोभ संतोषसे ही मरता है। इसलिए संतोषकी आदत डालो।

लोभ आदिके प्रसारसे पृथ्वी दुःखरूपी सागरमें डूब गयी थी। अतः भगवान्‌ने वराह अवतार लेकर उसका उद्धार किया। वराह भगवान् संतोषके अवतार हैं।

वराह अवतार यज्ञावतार है। वर + अह। वर अर्थात् श्रेष्ठ और अहका अर्थ है दिवस। कौन-सा दिवस श्रेष्ठ है? जिस दिन तुम्हारे हाथोंसे सत्कर्म हो वही दिन श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ कर्म करनेसे दिवस भी श्रेष्ठ बन जाएगा। जिस कार्यसे प्रभु प्रसन्न हो वही सत्कर्म है। सत्कर्मको ही यज्ञ कहते हैं।

हिरण्याक्ष सत्कर्ममें विघ्नकर्ता है। मनुष्यके हाथों सत्कर्म नहीं होता क्योंकि उसे लगता है कि प्रभुने उसे बहुत कुछ दिया है। हिरण्याक्ष लोभका स्वरूप है।

समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वीको वराह भगवान्‌ने बाहर तो निकाला किंतु उसे अपने पास न रखा। उन्होंने पृथ्वी मनुको अर्थात् मनुष्योंको सौंप दी। जो कुछ अपने हाथोंमें आया उसे औरोंको दे दिया। यही संतोष है।

वराह भगवान् यज्ञके दृष्टांतरूप हैं। यज्ञ करनेसे चित्तशुद्धि होती है। लोभ आदिका नाश करके चित्तशुद्धि करनी चाहिए। चित्तशुद्धि होनेसे कपिलमुनिकी अर्थात् ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति होती है।

यज्ञपूर्वक जीवन जीओगे तो ज्ञान मिलेगा। यज्ञावतारके विना मनकी शुद्धि नहीं होती और मनशुद्धि या चित्तशुद्धिके विना ज्ञान नहीं मिलता। और तब ज्ञानावतार भी नहीं होता और कपिल देव भी नहीं आते। अज्ञानको दूर करनेका काम वराह अवतार बताता है। अज्ञानको दूर करनेके लिए यज्ञ करो। सत्यभाषण भी यज्ञ है। यज्ञ करोगे तो कपिल भगवान्‌की ब्रह्मविद्या बुद्धिमें स्थिर होगी।

कर्म चित्तशुद्धिके लिए है। भक्ति मनकी एकाग्रताके लिए है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी जीवनमें जरूरत है। कर्मसे चित्तशुद्धि होनेके बाद ब्रह्मजिज्ञासा जागती है।

श्री शंकराचार्य कहते हैं कि- "लोग त्वचाकी मीमांसा तो बहुत करते हैं परंतु आत्माकी मीमांसा कोई नहीं करता।"

हिरण्याक्षकी इच्छा हुई कि स्वर्गमेंसे संपत्ति ले आऊँ। दिन-प्रति-दिन उसका लोभ बढ़ता जाता था। एक बार वह पातालमें गया। वहां उसने वरुणसे लड़ना चाहा।

वरुणने कहा कि तू वराह नारायणसे युद्ध कर।

हिरण्याक्षने वराह भगवान्‌के पास आकर उनसे कहा कि तू सुअर जैसा है। तो वराह नारायणने उससे कहा कि तू कुत्ता जैसा है। और बात बढ़ गई।

सभी पापोंका मूल वाणी है। वाणीदोष होनेसे वीर्य दूषित होता। उच्चारके बिना पाप नहीं होता। पहले मनके द्वारा उच्चार जाने पर ही पाप होता है।

मुष्टिप्रहार करके वराह भगवान्‌ने हिरण्याक्षका संहार किया और पृथ्वीका राज्य मनु महाराजको सौंप दिया। मनुसे उन्होंने कहा कि धर्मसे पृथ्वीका पालन करना। और वे बद्रिनारायणके स्वरूपमें लीन हो गए।

मनुष्यमात्रका धर्म है समाजको सुखी करना। यह आदर्श वराह भगवान्‌ने अपने ही आचरण द्वारा मनुष्योंको सिखाया।

लोभको मारनेके लिए वराह नारायणके चरणोंका आश्रय लो। वराहके चरण संतोषके स्वरूप हैं।

मनुष्यके जीवनमें जब तक लोभ है तब तक पाप है। और पाप जब तक है तब तक शांति प्राप्त हो नहीं सकती। जिसका जीवन निष्पाप है उसे ही शांति मिलती है।

केवल अर्थोपार्जनके लिए ही बुद्धिका उपयोग न करो। उसका उपयोग ईश्वरोपासनाके लिए करो। अन्यथा उस जौहरी जैसी ही तुम्हारी दशा भी होगी।

एक बार किसी राजाके दरबारमें एक जौहरी आया। उसके पास एक हीरा था। उस हीरेकी कीमत ठहरानेके लिए कई जौहरियोंको बुलाया गया। सभीने अलग अलग कीमत बताई। राजा निराश हुआ। इतनेमें एक वृद्ध जौहरी आया। उसने हीरेकी कीमत निन्यानवे लाख रुपये बताई। तो राजाने पूछा कि पूरे एक करोड रुपये क्यों न कहा? तो उस वृद्ध जौहरीने और सौ हीरे मंगवाकर उस हीरेके आसपास रख दिए। तो उस हीरेका तेज निन्यानवे हीरों पर पडा किंतु एकपर न पडा। वृद्ध जौहरीने कहा कि यही कारण है कि मैंने एक लाख कम कहा।

राजाको लगा कि यह जौहरी कितना बुद्धिमान् है। वह बोला- मंत्रीजी, इन्हें कुछ पुरस्कार दो। तभी वहां बैठे हुए एक महात्माने कहा कि इस जौहरीके सिरपर धूल (खाक) डालो। महात्मासे ऐसे विचित्र प्रस्तावका कारण पूछा गया।

महात्माने कहा : इस जौहरीने अपनी बुद्धिका उपयोग केवल पत्थरोंका विचार करनेके लिए ही किया है, ईश्वरका भजन करनेके लिए नहीं। जिस बुद्धिका उपयोग उसने केवल पत्थरोंको देखने-परखनेमें किया है उसका उपयोग यदि उसने ईश्वरको पहचाननेके लिए किया होता तो उसका उद्धार हो जाता। आप इस जौहरीको चतुर मानते हैं किंतु मैं उसे मूर्ख मानता हूँ।

हिरण्याक्षकी मृत्यु होगी तभी पाप मरेगा और तभी ब्रह्मविद्याका ज्ञान बुद्धिमें स्थायी होगा। बुद्धिके निष्काम होने पर ही ब्रह्मज्ञान स्थायी हो सकता है।

मनुष्यके शरीरमें नौ छेद हैं। जिसके द्वारा ज्ञान बाहर निकल जाता है। इन्द्रियोंके द्वारा ज्ञान बाहर न निकल सके इसलिए इन्द्रियोंका निरोध करो और उन्हें प्रभुके मार्गकी ओर मोड दो।

तृतीय स्कंधमें दो प्रकरण हैं : पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा।

पूर्व मीमांसामें वराह नारायणके अवतारकी बात कही गई है और उत्तर मीमांसामें कपिल नारायणके चरित्रका वर्णन है।

यज्ञ किए बिना कपिल नारायणकी विद्या बुद्धिमें स्थिर नहीं होती।

मन, वचन और कायासे किसीको भी पीडा न देना, यही यज्ञ है। जो कारण बिना ही दिल जलाता है वह आत्मघात कर रहा है। सदासर्वदा प्रसन्न रहना भी यज्ञ ही है।

यज्ञ किए बिना, सत्कर्मके बिना चित्तशुद्धि नहीं होती और चित्तशुद्धिके बिना ज्ञान टिकता नहीं। सत्कर्मसे सभी इन्द्रियाँ शुद्ध होंगी। जिसका मन कलुषित है उसे परमात्माका अनुभव नहीं हो सकता।

मानवशरीर एक गगरी है। इसमें नौ छेद हैं। यदि गगरी छेदवाली हो तो वह कभी भरी नहीं जा सकती। हरेक छेदसे ज्ञान बह जाता है। ज्ञानका प्राप्त होना कठिन नहीं है। ज्ञान आता तो है किंतु वह रह नहीं पाता। विकार-वासनाके वेगमें वह कई बार बह जाता है।

वैसे तो सबकी आत्मा ज्ञानमय है अतः अज्ञानी तो कोई नहीं है किंतु ज्ञानको सतत बनाए रखनेके लिए, इन्द्रियोंके द्वारा बही जाती हुई बुद्धिशक्तिको रोकना है। ज्ञानी इन्द्रियोंको विषयकी ओर नहीं जाने देता। जब कि वैष्णव इन्द्रियोंको प्रभुके मार्गकी ओर मोडता है।

ज्ञान टिक नहीं पाता क्योंकि मनुष्यका जीवन विलासी हो गया है। साराका सारा ज्ञान पुस्तकमें ही पडा रहता है, मस्तकमें जाता ही नहीं है।

जो पुस्तकोंके पीछे दौडे वह विद्वान् है और भक्तिपूर्वक परमात्माके पीछे दौडे वह संत है। विद्वान् शास्त्रके पीछे दौडता है जब कि शास्त्र संतके पीछे दौडते हैं। शास्त्र पढकर जो बोले वह विद्वान् है। प्रभुको प्रसन्न करके उसीमें पागल होकर जो बोलता है वह संत है।

गीतामें भगवानने अर्जुनसे कहा है- अर्जुन, ज्ञान तो तुझीमें है।

हृदयमें सात्त्विक भाव जागे, मन शुद्ध हो जाये तो हृदयमेंसे ज्ञान अपने आप ही प्रकट होता है।

मीराबाईने अपने भजनमें कहीं पर भी लिखा नहीं है कि उनका कोई गुरु था या किसीके घर वे शास्त्र पढनेके लिए गई थीं। तुकाराम महाराज भी किसीके घर शास्त्र पढनेके लिए नहीं गए थे।

हृदयमें स्थित हुए लोभको मारनेसे कपिल भगवान् अपने आप आए।

ज्ञानका शत्रु है हिरण्याक्ष। भागवतमें बताए गए अवतारोंके क्रममें भी रहस्य है। ज्ञानको बुद्धिमें स्थिर करना है तो हिरण्याक्षको मारना होगा। पहले हिरण्याक्षको मारनेपर फिर कपिल भगवान् आते हैं।

अपने मनसे पूछो कि प्रभुसे मुझे जो सुख-संपत्ति मिली है उसके लिए मैं पात्र भी हूँ या नहीं। उत्तर नकारात्मक ही होगा। लोभको संतोषसे मारो। ज्यादा पानेकी इच्छा न करो। पाप इसलिए होता है कि मनुष्य मानता है कि प्रभुने मुझे जो दिया है वह बहुत कम है। पाप नहीं होंगे तो इन्द्रियोंकी शुद्धि होगी और तभी इन्द्रियोंमें ज्ञान-भक्ति टिक पाएगी। यज्ञादि-सत्कर्मसे चित्तशुद्धि होती है। इसके बाद ब्रह्मज्ञान बुद्धिमें टिक पाता है।

पूर्वमीमांसाके बाद इस उत्तरमीमांसाका आरंभ किया गया है। उत्तरमीमांसामें ज्ञान-प्रकरण है। कपिल मुनि ज्ञानके अवतार हैं।

स्वयंभू मनुकी रानीका नाम शतरूपा था। मनु महाराजके दो पुत्र थे- प्रियव्रत और उत्तानपाद। तीन कन्याएँ भी थीं- आकृति, देवहूति तथा प्रसूति। आकृतिका रुचिसे, देव· हूतिका कर्दमसे और प्रसूतिका दक्षसे विवाह हुआ।

कर्दमऋषि और देवहूतिके घर कपिल भगवान् आए थे।

विदुरजी प्रश्न करते हैं कि हे मैत्रेयजी, आप कर्दम और देवहूतिके वंशकी कथा कहिए। कपिल भगवान्की इस कथाको सुननेकी मेरी इच्छा है।

मैत्रेयजी कहते हैं :– कपिल ब्रह्मज्ञानके स्वरूप हैं। कर्दम बनोगे तो तुम्हारे घर कपिल आएंगे। कर्दम अर्थात् इन्द्रियोंका दमन करनेवाला। कर्दम अर्थात् जितेन्द्रिय। जब तक मनुष्य कर्दम नहीं बन पाता, तब तक उसे कपिल नहीं मिलता। शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धि होने पर अपने आप ज्ञानका झरना फूट पडता है, ज्ञान प्रकट होता है।

शरीरमें सत्त्वगुणकी वृद्धिसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। शुद्ध आहार, शुद्ध आचार और शुद्ध विचारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। सत्त्वगुण बढेगा तो ज्ञान मिलेगा। सत्त्वगुण बढता है संयमसे, सदाचारसे। सत्त्वगुणके बढनेसे अंदरसे ज्ञानका स्फुरण होता है। जीभके सुधरनेसे जीवन सुधरता है। जीभ जो कुछ मांगे वह सभी उसे मत दो। सोने पर दो-चार मिनटमेंही नींद आ जाएगी ऐसा महसूस हो तभी सोना चाहिए। सोने पर तुरंत नींद न आएगी तो जीव कामसुखका चिंतन करेगा। आगे कथा आएगी कि घरकामके पूरे होने पर गोपियाँ कृष्णकीर्तन करती थीं।

जीवन-सात्त्विक बनाओ।

जितेन्द्रिय बननेके लिए सरस्वतीके किनारे रहना होगा। सरस्वतीका किनारा सत्कर्मका किनारा है। यमुनाजी भक्तिका स्वरूप हैं, गंगा ज्ञानका और सरस्वती सत्कर्मका स्वरूप हैं।

शुकदेवजी राजर्षिको सुनाते हैं :– राजन्, कर्दम ऋषि सारा दिवस तप करते थे। उनके तपसे भगवान् प्रसन्न हुए। भगवान् ऋषिके घर पधारे। विदुरजीके घर भी द्वारिकानाथ गये थे।

भगवान् श्रीकृष्ण हर तरहसे उदार हैं। किंतु समय देनेमें उदार नहीं हैं। सुवर्णकी अपेक्षा समयको अधिक मूल्यवान् मानो। लक्ष्यको लक्षमें रखोगे तो जीवन सफल होगा। विना लक्ष्यका मनुष्य विना पतवारकी नाव जैसा है।

कर्दम जितेन्द्रिय महात्मा थे। उनकी तपश्चर्या सफल हो गई। उनके सामने भगवान् प्रकट हुए। सिद्धपुरके पास कर्दम ऋषिका आश्रम था। उन्होंने बडी तपश्चर्या की। शरीरमें केवल हड्डियाँ ही रह गईं। ऐसी कठोर तपश्चर्यासे भगवान् प्रसन्न हुए। आंखोंसे हर्षाश्रु निकल आए। उन्हीं आंसुओंसे बिंदु सरोवर बना। सिद्धपुरकी यात्रा करते समय इस बिंदु सरोवरमें स्नान करना पडता है।

तुम भी अधिक ध्यान करोगे तो भगवान् तुम पर भी प्रसन्न होंगे और तुम्हें दर्शन भी देंगे। भगवान्का ध्यान न हो सके तो कोई बात नहीं है किंतु सावधान रहो कि तुम्हारा मन कहीं सांसारिक विषयोंमें स्थिर न हो जाये। आंखरूपी रतनका जतन करो। आंखोंकी शक्तिका दुर्व्यय मत करो।

संसारका सौंदर्य क्षणिक है।

धन-संपत्तिके बढने पर लोगोंमें विवेकका अभाव होने लगता है। एक भाई मिले। उन्होंने कहा कि कश्मीर सुंदर प्रदेश है। देखना चाहते हैं तो चलिए हमारे साथ।

जगत्की कोई भी वस्तु सुंदर नहीं है। आंखोंमें विकार होनेके कारण वस्तु सुंदर लगती है। मनुष्य सौंदर्यके पीछे पागल होता है। किंतु जिस व्यक्तिके सौंदर्यमें वह पागल होता है, उसका मुख यदि चेचकके दागसे बिगड जाए तो उसे देखनेका भी दिल नहीं होगा।

शरीरकी नहीं, हृदयकी सुंदरता देखो। जगत्की अपेक्षा जगत्का सर्जनहार अधिक सुंदर है।

लोग कश्मीरका सौंदर्य देखने जाते हैं। किंतु उस कश्मीरको बनानेवाला मेरा श्यामसुंदर कितना अधिक सुंदर होगा?

श्रीकृष्ण सुंदर हैं ऐसा बार बार विचारकरनेसे भक्तिका उदय होता है। एक ईश्वर ही नित्य-सुंदर है।

ठाकुरजीके दर्शन करनेसे आंखें सफल होती हैं। कर्दम कहते हैं :- महाराज, आपके दर्शन करनेसे मेरी आंखें सफल हुई हैं। आपको प्राप्त करनेके बाद संसारकी मांग करनेवाला मूर्ख है। संसारके जिस सुखका भोग नरकके कीडे भी करते हैं वैसे सुखकी इच्छा परमात्मासे करनेवाला मूर्ख कौन होगा?

लौकिक कामसुखकी इच्छापूर्तिके लिए श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाला तुच्छ है।

कर्दमने भगवान्से कहा कि मैं आपसे स्त्रीसंग नहीं, सत्संगकी इच्छा करता हूं। मुझे ऐसी स्त्री दीजिए कि जो मुझे प्रभुकी ओर ले जाये। ऐसी पत्नी मुझे मिले कि जब कभी मेरे मनमें पाप आ जाए तो वह मुझे उस पापकर्मसे रोके और प्रभुके मार्गमें ले चले। मेरा विवाह संसार सागरमें डूबनेके लिए नहीं, किंतु तैरनेके लिए हो। कृष्णसेवा महान् धर्म है। मैं कामसुख नहीं मांगता। शास्त्रमें पत्नीको कामपत्नी नहीं किंतु धर्मपत्नी कहा गया है। ब्रह्माजीने विवाह करनेके लिए मुझे आज्ञा दी है। मैं पत्नी नहीं, घरमें सत्संग चाहता हूँ। स्त्रीसंग कामसंग नहीं, सत्संग है। धर्मके आचरणके लिए पत्नी है।

अकेला पुरुष या अकेली स्त्री धर्ममार्गमें आगे नहीं बढ सकते। नाविकके बगैर अकेली नाव संसार सागरको पार नहीं कर सकती। नाविक भी अकेला संसारसागर पार नहीं कर सकता। स्त्री नौका है पुरुष नाविक। दोनोंको एक-दूसरेके सहारेकी जरूरत है। पुरुषमें विवेक होता है और स्त्रीमें स्नेह। विवेक और स्नेहके मिलनसे भक्ति प्रकट होती है। पुरुष कमा सकता है। पुरुष ज्ञानस्वरूप है। स्त्रीका हृदय कोमल होनेके कारण वह समर्पण करती है। स्त्री क्रियाशक्ति है :

बहुतोंको आश्चर्य होगा कि कर्दमने इतने सारे वर्षकी तपश्चर्याके बाद भगवान्से मुक्ति क्यों न मागी? कर्दमने सोचा कि हजारों जन्मोंकी कामवासनाएं सुषुप्त रीतिसे मनमें जमा हो गई हैं उसे संतुष्ट करके मनुष्य पर जो तीन प्रकारके ऋण हैं उनमेंसे मुक्त होना अच्छा है और उसके बाद मुक्तिकी इच्छा करनी चाहिए।

भगवान्ने कहा : दो दिनके बाद मनुमहाराज तुम्हारे पास आएंगे और अपनी पुत्री देवहूति तुम्हें देंगे। परमात्माने आज्ञा दी कि मनुमहाराज कन्या लेकर आएं तब नखरे मत करना। आजकलके लोग नखरे दिखाते हैं कि हमें विवाह नहीं करना है।

पति-पत्नी पवित्र जीवन जीएं तो उनके यहां जन्म लेनेकी भगवान्की इच्छा होती है।

भगवान्ने कहा कि मैं पुत्ररूपमें तुम्हारे यहां आऊंगा। जगत्को मुझे सांख्यशास्त्रका उपदेश करना है। ऐसा कहकर श्री हरि वहांसे विदा हो गए।

नारदजी मनु महाराजके पास आए और उनसे कहा कि तुम कर्दमको कन्यादान दो।

मनु महाराज शतरूपा और देवहूतिके साथ कर्दम ऋषिके आश्रममें आए।

कर्दमने देवहूतिके विवेककी परीक्षा की। उन्होंने तीन आसन बिछाए। सभीको बैठनेके लिए कहा तो मनु-शतरूपा तो बैठ गए किंतु देवहूति नहीं बैठी। तो कर्दमने उनसे कहा-देवी, यह तीसरा आसन तुम्हारे लिए ही है, बैठो।

देवहूतिने सोचा कि भविष्यमें यह तो मेरे पति होनेवाले हैं। पति द्वारा बिछाए गए आसनपर बैठूंगी तो पाप होगा। इस आसनपर बैठना मेरा धर्म नहीं है और आसन पर न बैठनेसे आसन देनेवालेका अपमान होगा। सो अपना दाहिना हाथ आसन पर रखकर आसनके पास वह बैठ गयी।

वह बेचारी पुराने जमानेकी थी। आजकलके जमानेकी होती तो उस आसन पर पहलेसे ही बैठ जाती। आज तो पत्नी पतिको पुत्रको झुलानेकी आज्ञा देती है। संतानको पतिके पास रखकर अकेली घूमने-फिरने निकल पडती है। ऐसा मत करो।

आर्यनारीके सच्चे संस्कार आज भुलाये जा रहे हैं। आज कन्यापरीक्षाकी रीति भी बदल गई है।

कर्दमने सोचा कि कन्या योग्य है, विवाह करनेमें कोई हरकत नहीं है।

मनु महाराजने कहा कि इस कन्याका मैं आपको अर्पण करना चाहता हूँ।

कर्दम ऋषिने कहा : विवाह करनेकी इच्छा मेरी भी है किंतु पहले एक प्रतिज्ञा करनी है। मेरा विवाह विलासके लिए नहीं, किंतु कामका नाश करनेके लिए हागा।

विवाहका प्रयोजन कामविकास नहीं, किंतु कामविनाश है। कामभावको एक ही स्थान पर संकुचित करके, कामका उपभोग करके उसका विनाश करना ही गृहस्थाश्रमका आदर्श है।

कर्दम ऋषि कहते हैं : मेरा विवाह कामके विनाशके लिए है। काम कृष्णमिलनमें विघ्नकर्ता है। उसी कामको मुझे मारना है। एक पुत्रके होने तक लौकिक संबंध बनाए रखूंगा। एक पुत्रके हो जाने पर लौकिक संबन्धका त्याग करूंगा और संन्यास ले लूंगा।

कन्यादानके मंत्रमें लिखा है : संतत्या इति एकवचनम्। संततिभिः ऐसा नहीं कहा है। वंशकी रक्षा करनेके लिए एक ही पुत्रके लिए कन्याको अर्पित करता हूँ। शास्त्रने पहले पुत्रको ही धर्मपुत्र कहा है। अन्य सभी पुत्र कामज पुत्र हैं। कामाचरणके लिए नहीं, धर्माचरणके लिए विवाह है। पिता पुत्रसे कहता है कि तू मेरी आत्मा है। एक पुत्र होनेके बाद पत्नी माता समान होती है।

काम ईश्वरकी भाँति व्यापक होना चाहता है। जहां सुंदरता दीखती है वहीं काम उत्पन्न होता है। उसे एक ही स्त्रीमें संजोकर नाश करनेके लिए विवाह करना है।

विवाहके समय "सावधान" कहा जाता है। क्योंकि सभी जानते हैं कि विवाहके बाद वह सावधान नहीं रहेगा। विवाहके बाद सावधान रहे, वही जीत जाता है। अथवा जो पहलेसे सावधान होता है वह जीतता है।

रामदास स्वामी विवाहके पहले ही सावधान हो गए थे। विवाह-मंडपमें पुरोहितजीने 'सावधान-सावधान' कहा और वे सावधान होकर मंडपसे भाग खडे हुए।

भोगके बिना रोग नहीं होता। पूर्वजन्मके पापके कारण भी कुछ रोग होते हैं। तो कुछ रोग इस जन्मके भोग-विलासके कारण होते हैं। "भोगे रोगभयम्।" भोगोपभोगमें रोगोंका भय है। भोग बढनेसे आयुष्यका क्षय होता है। हम भोगका उपभोग नहीं कर पाते, भोग ही हमारा उपभोग कर जाता है।

जबसे वरराजा मोटरमें बैठकर विवाह करने जाने लगा है तबसे घरसंसार बिगड गया है। आजके वरराजाको घोडे परसे गिर जानेका डर लगता है। उससे पूछो कि एक ही घोडा तुझे गिरा देगा तो वे ग्यारह घोडे तेरी क्या दशा करेंगे? एक घोडेको अंकुशमें नहीं रख सकता तो फिर उन ग्यारह घोडोंको कैसे अंकुशमें रख सकेगा? ग्यारह इन्द्रियाँ ही ग्यारह घोडे हैं। जितेंद्रिय होनेके लिए विवाह करना है। आज तो हम विवाहका हेतु ही भूल गए हैं।

कर्दमऋषिने आदर्श बताया कि मेरा विवाह एक सत् पुत्रके लिए है। उसके बाद मैं संन्यास लूंगा। मेरी यह प्रतिज्ञा तुम्हारी कन्याको मान्य हो तो मैं विवाह करनेके तैयार हूँ।

मनु महाराजने पुत्रीसे कहा- ये तो विवाहके समय ही संन्यासकी बात करने लगे हैं।

किंतु देवहूति भी असाधारण थी।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

देवहूतिने कहा- मुझे ऐसे ही पतिकी जरूरत थी। कामांध होकर संसार सागरमें डूबनेके लिए गृहस्थाश्रम नहीं है। मेरी ऐसी ही इच्छा थी कि मुझे कोई जितेन्द्रिय पति मिले।

देवको बुलानेवाली शक्ति ही देवहूति है। निष्काम बुद्धि ही देवको बुला सकती है।

मनु महाराजने विधिपूर्वक कन्यादान कर दिया। देवहूति-कर्दमका विवाह हो गया।

देवहूति कर्दमके आश्रममें रहने लगीं। उसने सोचा कि मेरे पति तपस्वी हैं, अतः मुझे भी तपस्विनी होना होगा। वे दोनों बारह वर्ष एक ही घरमें रहते हुए भी संयमी और निर्विकार रहे।

दक्षिण प्रदेशमें आजसे ग्यारह सौ वर्ष पहले वाचस्पति मिश्र नामके एक ऋषि हो गए हैं। षड्शास्त्रों पर उन्होंने टीकाएं लिखी हैं जो आज भी प्रख्यात हैं।

वे सारा दिन तपश्चर्या और ग्रंथलेखनमें बिताते थे। विवाह होनेके बाद छत्तीस बरस गुजर गए किंतु वे यह भी नहीं जानते थे कि उनकी पत्नी कौन है? छत्तीस वर्ष साथ रहने पर भी वे अपनी पत्नीको पहचानते नहीं थे।

एक दिवस वे ब्रह्मसूत्रके शांकरभाष्य पर टीका लिख रहे थे। भाष्य लिख रहे थे किंतु एक पंक्ति कुछ ढंगसे लिखी नहीं जा रही थी। दिया भी कुछ धुंधला हो चला था अतः ठीक तरहसे दीखता भी नहीं था। उनकी पत्नी दिएकी लौ बढा रही थी। इतनेमें वाचस्पतिकी नजर उस पर पडी तो उन्होंने पूछा-देवी, तुम कौन हो?

विवाह हुए छत्तीस बरस बीत चुके थे फिर भी वे पत्नीको पहचानते नहीं थे। कितने संयमी और जितेन्द्रिय होंगे वे!

पत्नीने कहा-कभी आपका विवाह हुआ था, वह याद आता है?

वाचस्पतिने कहा-हां, कुछ कुछ याद आ रहा है।

पत्नीने कहा: मेरे ही साथ आपका विवाह हुआ था। मैं आपकी दासी हूं। आजसे छत्तीस बरस पहले हमारा विवाह हुआ था।

पत्नीने विवाहकी याद दिलाई तो वाचस्पतिके मनमें प्रकाश जगा और उन्होंने पत्नीसे कहा- तेरे साथ मेरा विवाह हुआ है। छत्तीस वर्ष तूने मौन ही रहकर मेरी सेवा की। तेरे उपकार अनंत हैं। तेरी क्या इच्छा है?

पत्नी भामतिने कहा: नाथ, मेरी तो कोई भी इच्छा नहीं है। आप जगत्के कल्याणके लिए शास्त्रोंकी टीकाएं रचते हैं। मैं आपकी सेवा करके कृतार्थ हुई हूँ। आपकी सेवा करते करते ही मेरी मृत्यु हो।

वाचस्पतिका हृदय भर आया। पत्नीसे और एक बार कुछ मांगनेको कहा, किंतु उसने कुछ भी नहीं मांगा।

वाचस्पति: - देवी, तुम्हारा नाम क्या है?

भामति:- इस दासीको सब भामति कहते हैं।

वाचस्पति: - मैं शांकर-भाष्य पर जो टीका लिख रहा हूँ उसका नाम मैं 'भामति-टीका' रखूंगा।

आज भी वाचस्पतिकी वह टीका 'भामति-टीका' के नामसे प्रसिद्ध है।

ऐसा था हमारा देश भारतवर्ष। एक ही घरमें छत्तीस वर्ष तक साथ साथ रहकर भी संयमका उन्होंने पालन किया था। ऐसे संयमीको ही ज्ञान मिलता है। ज्ञान बाजारमें नहीं मिलता। आजकल पुस्तकोंके द्वारा ज्ञानका प्रचार और प्रसार तो बहुत हो रहा है किंतु किसी भी व्यक्तिके मस्तकमें ज्ञान दिखाई नहीं देता।

पूर्ण संयमके बिना ज्ञान नहीं पाया जा सकता। पूर्ण संयमके बिना परमात्मा भी प्रकट नहीं होते।

एक ही घरमें रहकर भी कर्दम-देवहूतिने बारह वर्ष तक और वाचस्पति-भामतिने छत्तीस वर्ष तक संयमका पालन किया। आजकलका मनुष्य तो छत्तीस घंटे भी संयमित नहीं रह सकता।

कर्दम जीवात्मा है और देवहूति बुद्धि है। देवहूति देवको बुलानेवाली निष्काम बुद्धि है। एक दिवस कर्दमने देखा कि देवहूतिका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है, उसने मेरी सेवा करते करते अपना शरीर सुखा दिया है। यह यह देखकर उनका दिल भर आया। उन्होंने देवहूतिसे कहा कि देवी कुछ वरदान मांगो। तुम जो भी मांगोगी वही मैं दूंगा।

देवहूतिने कहा : आप जैसे ज्ञानी पति मुझे मिले हैं वही वरदान है। मैं तो पूजा करके बस इतना ही मांगती हूं कि मेरा सौभाग्य अखंडित रहे।

पहला पेट है या पेटका दाता परमात्मा ?

स्त्रीका धर्म है कि रोज वह तुलसी और पार्वतीकी पूजा करे। आजकी स्त्री तुलसीकी पूजा तो करती होगी किंतु चाय-नाश्ता करनेके बाद ही।

यह सुनकर कर्दम बोले– " कुछ न कुछ तो तुम्हें मांगना ही होगा। "

पतिके आग्रह करने पर देवहूतिने कहा कि आपने प्रतिज्ञा की थी कि एक संतानके होने पर आप संन्यास लेंगे। अब यदि इच्छा हो तो एक बालकका मुझे दान दें।

मनुष्यशरीरकी रचना ही ऐसी है कि वह भोगोंका मर्यादित प्रमाणमें ही उपभोग कर सकता। मर्यादाका उल्लंघन करेगा तो वह रोगिष्ठ हो जाएगा। कर्दम बोले– " मैं तुझे दिव्य शरीर अर्पित करूंगा। "

देवहूती सरस्वतीके किनारे पर स्नान करने गईं। सरस्वतीमेंसे अनेक दासियां निकलीं। देवहूतिने स्नान किया और उनका शरीर बदल गया। कर्दम ऋषिने संकल्पके बलसे विमान बनाया और दोनों बैठे गए उस पर।

कथामें शांत और करुण रस प्रधान है। शृंगार और हास्य रस गौण है। कथामें शृंगार रसका वर्णन करनेकी आज्ञा महात्माओंने नहीं दी है।

श्रोताओंको संसारके विषयोंके प्रति अरुचि हो और ईश्वरके प्रति प्रेम हो यह लक्ष्ममें रखकर वक्ताको कथा करनी चाहिए।

कथाश्रवणके बाद विषयोंके प्रति अरुचि और ईश्वरके प्रति रुचि न हुई तो समझो कि कथा सुनी ही नहीं है। कथा सुनकर वैराग्य होता है। भागवतके दूसरे स्कंधमें ब्रह्माजीने नारदको बताया है कि कथा किस प्रकार की जानी चाहिए।

इन सौ वर्षोंमें देवहूतिकी नौ कन्यायें हुईं किंतु पुत्र एक भी न हुआ। जो नौ कन्याओं का पिता होता है उसके यहां कपिल आते है। जिसकी नौ पुत्रियों होती हैं उसे ज्ञान मिलता है। नौ कन्याओंका अर्थ नवधा भक्ति। नवधा भक्तिके विना ज्ञान नहीं होता। सामान्य अर्थ करें तो कह सकते हैं कि नौ कन्याओंका विवाह करते करते पिताकी अक्ल ठिकाने आ जाती है कि मैंने यह क्या कर दिया।

नवधाभक्तिके न होने तक कपिल अर्थात् ज्ञान नहीं आता। श्रवण, कीर्तन, स्मरण पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ये नौ अंग नवधा भक्तिमें आते हैं। नवधा भक्तिके सिद्ध होने पर ही कपिल भगवान् पधारते हैं। भक्ति ही ज्ञानरूपमें बदलती है। भक्तिकी उत्तरावस्था ही ज्ञान है। अपरोक्ष ज्ञानकी पूर्वावस्था ही भक्ति है। भक्तिके बाद ज्ञान आता है। ज्ञानकी माता भक्ति है। जिसकी नवधा भक्ति सिद्ध नहीं होती उसे ज्ञान नहीं मिलता। भक्ति द्वारा ही ज्ञान मिलता है। 'भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते।' तात्त्विक दृष्टिसे अंतमें ज्ञान और भक्तिमें अंतर नहीं है। भक्तिमें पहले "दासोऽहम्" है और फिर "सोऽहम्" है।

नौ कन्याओंके जन्मके बाद कर्दम संन्यास लेनेके लिए तैयार हुए। एक दिवस कर्दमने सोचा कि अब तो इस विलासी जीवनका अंत आए तो अच्छा हो।

"सत्त्वप्रधानाः ब्राह्मणाः।" वैश्य विलासी जीवन जीए तो कोई बात नहीं, किंतु ब्राह्मणको यह शोभा नहीं देता। अतः कर्दमने सोचा कि एकांतमें बैठकर मैं तप करूं। देवहूतिने कहा– मैं भी त्याग करना चाहती हूँ। विवाहका अर्थ है तन दो किंतु मन तो एक ही।

देवहूति बोली– "नाथ, आपने तो वचन दिया था कि एक पुत्रके जन्मके बाद आप संन्यास लेंगे। पुत्रका जन्म तो अभी तक हो ही नहीं पाया है। फिर इन कन्याओंकी ओर मेरी देखभाल कौन करेगा? इन कन्याओंकी व्यवस्था करनेके बाद ही संन्यास लीजिए।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं:

कर्दम-देवहूतिने विकारका त्याग किया। उन्होने कई वर्षों तक परमात्माकी आराधना की, इसके बाद देवहूतिके गर्भमें साक्षात् नारायणने वास किया। नौ मासका समय समाप्त हुआ। आचार्यों, योगियों और साधुओंके आचार्य प्रकट होनेवाले थे। ब्रह्मादि देव कर्दम ऋषिके आश्रममें आए। ब्रह्माजीने कर्दम ऋषिसे कहा कि तुम्हारा गृहस्थाश्रम सफल हुआ। तुम अब जगत्के पिता बन गए हो। वह बालक जगत्को दिव्यज्ञानका उपदेश करेगा।"

जीव भगवान्के लिए जब आतुर होता है तब भगवान्का अवतार होता है। आतुरताके कारण भगवान्के दर्शन होते हैं।

कर्दम और देवहूतिकी तपश्चर्या और आतुरतासे भगवान उनके यहां पुत्ररूपसे आए।

योगीजन योगसे ब्रह्माकेदर्शन कर सकते हैं किंतु संसारी लोग शुद्ध भक्तिसे भगवान्को पुत्ररूपसे प्राप्त कर सकते हैं और भगवान्का लालन-पालन कर सकते हैं।

कपिल भगवान्के जन्म लेने पर देवहूतिने कर्दमसे कहा– "अब गृहस्थाश्रमका त्याग कर सकते हैं।"

कर्दम कहते हैं कि अब मुझे इन नौ कन्याओंकी चिंता सता रही है।

एक युगल था। प्रभु पर पतिकी दृढ श्रद्धा नहीं थी। पत्नीने श्याम वस्त्र पहने। पतिने कारण पूछा तो उसने कहा कि तुम्हारे दृष्टिमें भगवान् नहीं हैं, अतः मैंने काले कपडे धारण किए हैं।

महाभारतमें एक कथा है। भीष्मने प्रतिज्ञा की कि कल मैं अर्जुनका वध करूंगा। भीष्माचार्यकी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं हो सकती। पांडवसेनामें हाहाकार मच गया। अर्जुन तो नित्य नियमानुसार भगवत्-चिंतन करते हुए सो गए। श्रीकृष्णको चिंता होने लगी कि कल मेरे अर्जुनका क्या होगा? वे अर्जुनसे मिलने आए। अर्जुन तो सोये हुए थे। श्रीकृष्णने उन्हें जगाकर पूछा कि तुम सो कैसे रहा हो? तुम्हें आज नींद कैसे आ रही है? तो अर्जुनने कहा कि मेरे लिए जब आप स्वयं जागरण कर रहे हैं तो मुझे क्या चिंता हो सकती है? मैंने अपना कर्तव्य निभा लिया, अब आपको अपना कार्य निभाना है?

मनुष्यका कर्तव्य है अनन्य शरणागति। वह सदा यही सोचे कि मेरे मरनेसे श्रीकृष्णकी ही अपकीर्ति होगी।

कर्दम कहते हैं मुझे नौ कन्याओंकी चिंता है। तो ब्रह्माने कहा: "तुम क्यों चिंता करते हो? तुम्हारे घर तो स्वयं भगवान् पधारे हैं। तुम चिंता करनेके बदले प्रभुका चिंतन करो।"

वल्लभाचार्यजीने कहा है कि 'चिंता कापि न कार्या'। सेवा-स्मरण करते हुए जो वैष्णव तन्मय होते हैं उनकी चिंता ठाकुरजी करते हैं।

ब्रह्मा नौ ऋषियोंको अपने साथ लाए थे। सभी ऋषियोंको एक एक कन्या दे डाली, अत्रिको अनसूया, वसिष्ठको अरुंधती आदि। कर्दम ऋषिने सोचा कि अब अपने सिरसे सारा भार उतर गया। वे कपिलके पास आए और कहने लगे कि मुझे संन्यास लेना है।

संन्यासका अर्थ है परमात्माके दर्शनके लिए सभी सुखोंका त्याग।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

केवल ईश्वरके लिए जो जीए, वही संन्यासी है।

कपिलने कहा कि आपकी इच्छा योग्य ही है। संन्यास लेनेके बाद आप किसी प्रकारकी चिंता न करें। आप अपना जीवन ईश्वरको अर्पित कर दें।

मुक्ति दो प्रकारकी है:

(१) कैवल्य मुक्तिः- इसमें जीव ईश्वरमें लीन होता है और दोनों एक बन जाते हैं।

(२) भागवती मुक्ति- इसमें भी ईश्वरसे जीव प्रेमसे एक तो होता है किंतु थोडा-सा द्वैत रखकर नित्यलीला, नित्यसेवामें मग्न रहता है।

कर्दम ऋषिने संन्यास ग्रहण कर लिया।

परमात्माके लिए सभी संसारसुखोंका त्याग ही संन्यास है। त्यागके बिना संन्यास उजागर नहीं होता। कई लोग निवृत्त होने पर (पेन्शन पर जाने पर) भी दूसरी नौकरीकी तलाश करते हैं। सरकारने जब कह दिया कि तुम नौकरी करने योग्य नहीं रहे हो, तो फिर दूसरी नौकरी क्यों ढूंढते हो? अब तो भगवान्‌का भजन करनेके दिन आए हैं।

संन्यासकी विधि देखनेसे भी वैराग्य होता है। संन्यासकी क्रियामें विरजा होम करना पडता है। देव, ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि आदिकी साक्षीमें विरजा होम किया जाता है। फिर नदीमें स्नान करके, लंगोटी फेंक कर नग्नावस्थामें ही बाहर निकलना पडता है।

आदि नारायणका चिंतन करते करते कर्दम ऋषिको भागवती मुक्ति मिली।

कपिलगीताका आरंभ हुआ। प्रसंग दिव्य है। पुत्र माताको उपदेश दे रहा है। भागवतके इस महत्त्वके प्रकरणके नौ अध्याय हैं। कपिल गीताका प्रारंभ २५ वें अध्यायसे होता है। इसमें सांख्यशास्त्रका उपदेश है। तीन अध्यायोंमें पहले वेदांतका ज्ञान आता है और अंतमें भक्तिका वर्णन किया गया है। फिर उसके बाद संसारचक्रका वर्णन है।

देवहूतिने सोचा कि ऋषियोंने मुझसे कहा था कि यह बालक माताका उद्धार करनेके लिए आया है। तो मैं कपिल भगवान्से प्रश्न पूछूं जिसका वे अवश्य उत्तर देंगे। देवहूतिने कपिल भगवान्के पास आकर उनसे कहा कि यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपसे प्रश्न पूछना चाहती हूं।

कपिलने कहा– माता, संकोच मत करो। तुम जो कुछ पूछना चाहती हो, पूछो।

माता देवहूतिने आरंभमें ही शरणागति स्वीकार कर ली।

बिना ईश्वरका आसरा लिए जीवका उद्धार नहीं हो सकता। गीतामें अर्जुनने भी पहले शरणागति स्वीकार की थी और भगवान्से कहा था—

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वाम् प्रपन्नम्।

देवहूतिने पूछा– जगमें सच्चा सुख कहां है? जगत्में सच्चा आनन्द कहां है? नित्य आनन्द कहां है? जिसका नाश न हो सके ऐसा आनन्द बताओ।

अनेक बार इन्द्रियोंका लालन-पालन करने पर भी मुझे शांति नहीं मिली है। समय बीतते जाने पर भान होता है कि विषयोंके आनन्दमें कोई सार नहीं है। इन्द्रियोंने जो कुछ मांगा, वह सभी मैंने दिया फिर भी तृप्ति नहीं हुई है।

इन्द्रियां हररोज नए नए विषय मांगती हैं। जीवको रससुखकी ओर खींचती हैं। आंखें रूपसुखकी ओर और त्वचा स्पर्शसुखकी ओर खींचती है। कई लोग याद करते रहते हैं कि दो महीनेसे अमुक चीज खायी नहीं है। दो महीनेसे वह चीज खाई नहीं है यह तो वे याद रखते हैं किंतु वही चीज आज तक कितनी बार खायी है वह याद नहीं रखते। खा-पीकर जीभको संतोष दिया नहीं कि आंखें सताने लगेंगी कि दो महीनेसे फिलम नहीं देखी है। ऐसा सोच ही रहे होते हैं कि इतनेमें पत्नी कहती है कि पास-पडौसके लोग तो महीनेमें चार बार फिलम देखने जाते हैं। नई फिलम तक उन्होंने देख ली। हम कब जाएंगे?

रुपये-पैसे खर्च करके फिलम देखनेके लिए अंधेरेमें बैठते हैं। उन्हें सुधरा हुआ कहें या बिगडा हुआ? कुछ तो कहते हैं कि हम तो धार्मिक फिलम देखते हैं। धार्मिक चित्र भी देखने नहीं चाहिए क्योंकि रामका अभिनय करनेवाला राम तो नहीं होता। रामका अभिनय करनेवाला यदि परस्त्रीको काम भावसे देखता हो तो उसकी फिल्में क्यों देखी जाएं? राम जैसा ही कोई पुरुष रामका अभिनय निभाए तभी प्रभाव अच्छा रहेगा। आप कहेंगे कि मैं कटु बातें

कर रहा हूं। किंतु मैं तो जो देख रहा हूं वही कह रहा हूं। विलासी चित्र देखनेसे जीवन बिगडता है।

एक स्थान पर शंकर स्वामीने कहा है कि ये इन्द्रियां चोर हैं। इन्द्रियां तो चोरसे भी अधिक बुरी हैं। चोर तो जिसके घरमें, जिसके सहारे रहता है वहां चोरी नहीं करता, जब कि इन्द्रियां तो अपने पतिके समान आत्माको ही धोखा देती हैं। देवहूति कहती है कि इन चोर-सी इन्द्रियोंसे मैं उकता गई हूं। मुझे बताओ कि जगत्में सच्चा सुख, सच्चा आनन्द कहां हैं और उसे पानेका साधन कौन-सा है।

कपिल भगवान्को आनन्द हुआ। वे बोले- माताजी, किसी जड वस्तुमें आनन्द नहीं रह सकता। आनन्द तो आत्माका स्वरूप है। अज्ञानवश जीव जड वस्तुमें आनन्द ढूंढता है। जड वस्तुमें आनन्द रह नहीं सकता। संसारके विषय सुख तो देते हैं किंतु आनन्द नहीं देते। जो तुम्हें सुख देगा वही तुम्हें दुःख भी देगा। किंतु भगवान् हमेशा आनन्द ही देंगे। आनन्द परमात्माका स्वरूप है।

संसारका सुख खुजली (चमडीकी एक बीमारी) जैसा है कि जब तक आप खुजाते रहते हैं तब तक अच्छा लगता है। किंतु खुजानेसे नाखूनमें रहे हुए जहरके कारण खुजलीका रोग बढता जाता है। सर्वोत्तम मीठाईका स्वाद भी गले तक ही रहता है।

जगत्के पदार्थोंमें आनन्द नहीं है, उसका भासमात्र है। यह जगत् दुःखरूप है। गीताजीमें भी कहा है :

अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्।

भगवान् कहते हैं- हे अर्जुन ! क्षणभंगुर और सुखरहित इस जगत्को और मनुष्य शरीरको प्राप्त करके तू मेरा ही भजन कर।

आरंभमें जड वस्तुमें सुख-सा अनुभव होता है किंतु वह सुख विषमय ही है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

गी. अ. १८ श्लोक ३८

विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे जो सुख उत्पन्न होता है वह आरंभमें (भोगकालमें) तो अमृत जैसा लगता है किंतु परिणामकी दृष्टिसे तो वह विष समान ही है। इसी कारणसे इस सुखको राजस कहा गया है।

इन्द्रियोंको सुखसे तृप्ति नहीं होती। विवेकरूपी धनका हरण करके इन्द्रियां जीवको संसाररूपी गर्तमें फेंक देती हैं। बाहरके विषयोंमें न तो आनन्द है और न तो सुख। आनन्द बाहर नहीं, अंदर है, आत्मामें है। आनन्द अविनाशी अंतर्यामीका स्वरूप है। कपिल आगे कहते हैं- हे माता, यदि शरीरमें आनन्द होता तो उसमेंसे प्राणोंके निकल जानेके बाद भी लोग उसे संजोकर अपने पास रखते।

+

विषय जड हैं। जड पदार्थमें आनन्द रह नहीं सकता। चैतन्यके स्पर्शके कारण ही जड पदार्थमें आनन्द-सा प्रतीत होता है।

दो शरीरोंके स्पर्शसे सुख नहीं मिलता, किंतु दो प्राणोंके एक होनेसे आनन्दका अनुभव होता है। यदि दो प्राणोंके इकट्ठे होनेपर सुख मिलता है तो जिसमें अनेक प्राण समाये हुए हैं ऐसे परमात्माके मिलनसे कितना अधिक आनन्द होता होगा ?

बाहरके विषयोंमें आनन्द नहीं है, किंतु चित्तमें, मनमें आत्माका प्रतिबिंब पडनेसे आनन्द-सा अनुभव होता है। इन्द्रियोंको मनचाहा पदार्थ मिलने पर विषयोंमें वे तद्रूप हो जाती हैं, अतः कुछ समयके लिए एकाग्र व एकाकार होता है। उस समय चित्तमें आत्माका प्रतिबिंब पडता है जिससे आनन्दका भास होता है। जगत्के विषयोंमें जब तक मन फँसा हुआ है तब तक आनन्द नहीं मिल सकेगा। आनन्द आत्माका उसी प्रकार सहज स्वरूप है कि जिस प्रकार शीतलता जलका सहज स्वरूप है। आनन्द आत्मामें ही है।

आत्मा और परमात्माका मिलन ही परमानन्द है। भगवान्में मन फँसे, और डूबने लगे तभी आनन्द मिलता है।

बार बार अपने मनको तुम समझाओ कि संसारके जड पदार्थोंमें सुख नहीं है। सोने पर सब भूल जानेसे आनन्द मिलता है। सारे संसारको भूलनेके बाद ही गाढी नींद आती है।

आत्मा तो नित्य, शुद्ध और आनन्दरूप है। सुख-दुःख तो मनके धर्म हैं। मनके निर्विषय होने पर आनन्द मिलता है। दृश्यमेंसे दृष्टिको हटाकर द्रष्टामें स्थिर किया जाए तो आनन्द मिलेगा। आनन्द परमात्माका स्वरूप है।

आदत-हाजत कम करोगे तो सुखी होगे।

कपिल कहते हैं- माताजी, यदि विषयोंमें ही आनन्द समाया हुआ हो तो सभीको सदा एक समान आनन्द मिलना चाहिए। तृप्त व्यक्तिके आगे यदि श्रीखंड भी रखा जाएगा तो उसे पसन्द नहीं आएगा। बीमार व्यक्तिके सामने मालपुए रखें जायें तो भी वह नहीं खाएगा। अतः श्रीखंडमें, मालपुओंमें अर्थात् विषयोंमें, जड पदार्थोंमें आनन्द नहीं है। यदि श्रीखंडमें आनन्द समाया हुआ होता तो बीमारको भी उसे खानेसे आनन्द मिलना चाहिए था। किंतु उसे आनन्द नहीं मिलता, अतः आनन्द श्रीखंडमें नहीं। इसी प्रकार सभी विषयोंके बारेमें भी समझना चाहिए।

संसारके पदार्थोंमें तो आनन्द नहीं है किंतु इन्द्रियोंको मन चाहे विषय, पदार्थ मिलने पर वे अंतर्मुख होती हैं। अन्तर्मुख हुए मनमें ईश्वरका प्रतिबिंब पडता है अतः आनन्द होता है। मनके अंदर आने पर सुख मिलता है और बाहर जाने पर सुख उड जाता है। कल्पना करो कि एक सेठ श्रीखंड-पूरीका भोजन कर रहा है इतनेमें कहींसे तार आता है कि उनका कारोबार डूब गया तो वही श्रीखंड उसे जहर जैसा लगेगा और खानेको दिल ही नहीं होगा।

संसारके जड पदार्थोंमें आनन्द नहीं है। जब जब आनन्द मिलता है, चेतन परमात्माके संबंधके कारण ही मिलता है। परमात्माके साथ संबंध होने पर ही आनन्द मिलेगा। जीव कपटी है, परमात्मा भोले हैं। जीव उपेक्षा करेगा तो भी परमात्मा उसके अपराधको क्षमा कर देंगे। आनन्द नारायणका स्वरूप ही है।

आनन्दका विरोधी शब्द नहीं मिलेगा। आनन्द यह ब्रह्मस्वरूप है। जीवात्मा भी आनन्द-रूप है। अज्ञानके कारण जीव आनंदको ढूंढनेके लिए बाहर जाता है बाहरका आनन्द लंबे समय तक टिक नहीं सकता।

आत्माके लिए कोई वास्तविक सुख-दुःख नहीं है। सुख-दुःख मनमें ही होते हैं। सुख-दुःख मनका धर्म है। जन्म-मरण शरीरका धर्म है। भूख और प्यास आत्माके धर्म हैं। मनमें सुख-दुःख होने पर आत्मा कल्पांत करती है कि मुझे दुःख होता है। मन पर हुए सुख-दुःखका आरोप अज्ञानसे आत्मा अपने पर करती है। आत्मस्वरूपमें उपाधिके कारण सुख-दुःखका भास होता है : आत्मा स्फटिक मणि जैसी श्वेत, शुद्ध है। उसमें विषयोंका प्रतिबिंब पडनेसे मनके कारण आत्मा मानती है कि उसे दुःख-सुख हुआ है। स्फटिक मणिके पीछे जिस रंगका फूल रखोगे वैसा ही वह दीखेगा। वह रंग स्फटिकका नहीं, फूलका ही है। स्फटिक मणि श्वेत है। उसके पीछे लाल गुलाबका फूल रखोगे तो वह लाल दीखेगा। गुलाब-के संसर्गसे वह लाल हो जाता है।

जलमें चंद्रमाका प्रतिबिंब पडता है। जलके हलन-चलनके कारण वह प्रतिबिंब भी हलचल करता हैं, कंपित होता है। किंतु वास्तविक चंद्रमा पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पडता। इसी तरह देहादिके धर्म, स्वयंमें न होते हुए भी जीवात्मा उन्हें अपनेमें कल्पित कर लेता है। अन्यथा जीवात्मा तो निर्लेप है। जीवात्मामें देखे जाते हुए देहादिके धर्म इस प्रकार दूर होंगे। निष्काम भागवत धर्मके अनुसरणसे, भगवान्‌की कृपासे और उसीसे प्राप्त भगवान् परके भक्तियोगसे धीरे धीरे वह प्रतीति दूर होती है। जो भक्तिनिष्ठ है वह समस्त लोकमें व्याप्त परमात्माको देख सकेगा।

संसारके विषयोंमेंसे सभी प्रकारसे हटा हुआ मन ईश्वरमें लीन होता है। जब मन निर्विषय होता है तभी वह आनन्दरूप होता है।

जीव जैसा कपटी और ईश्वर जैसा भोला और कोई नहीं है।

दूसरोंके लिए कुछ करना पडे तो तकलीफ सी होती है परन्तु अपनोंके लिए करना हो तो आनन्द होता है। रातको ग्यारह बजे कोई साधु आयगा तो उनसे पूछा जाएगा कि महाराज, चाय लाऊं या दूध लाऊं। मन कहेगा कि इतनी रात गए यह बला कहांसे आ पडी। विवेक तो करना ही पडता है। महाराज सरल होंगे तो कहेंगे कि सुबहसे भूखा हूँ, पूरी बना डालो। किसीका पत्र लेकर आये हैं अतः बनाना तो पडेगा ही, किंतु खाना बनानेके साथ साथ बर्तनोंकी ठोकपीट भी सुनाई देगी।

पर यदि नैहरसे अपने भाई आयेंगे और कहेंगे कि मैंने नाश्ता कर लिया है अतः भूख नहीं है, फिर भी वह कहेगी कि नहीं, तू भूखा होगा। मैं अभी हलवा-पूरी बना देती हूँ। कोई देरी नहीं होगी। अपने भाईओंको तो हलवा-पूरी खिलायेगी और महाराजको चायसे ही टाल देगी।

यह सब मनका खेल है। मन बडा कपटी है। 'मेरा और तेरा' का खेल इस मनने ही रचा है। सचमुच मन ही बंधन और मोक्षका कारण है।

कपिल कहते हैं- हे माता, मनको ही इस जीवके बंधन और मोक्षका कारण माना गया है। मन जो विषयोंमें आसक्त हो जाये तो वह बंधनका कारण बनता है और यही मन यदि परमात्मामें आसक्त हो तो मोक्षका कारण बन जाता है।

चेतः खल्वस्य बंधाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बंधाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥

भा. ३-२५-१५

भगवान् मनुष्यका शरीर या घर नहीं, बल्कि हृदय देखते हैं। मन विशाल हो तो भगवान् आते हैं। मनमें छिपी हुई अहंता-ममता, अपना-परायाकी भावना ही मनको दुःखी करती है। मनके ये धर्म आत्मस्वरूपमें भासमान होनेके कारण आत्मा स्वयंको सुखी-दुःखी मानती है। परतु वास्तवमें वह आनंदरूप है।

मनके सुधरने पर सब कुछ सुधरता है और मनके बिगडने पर सब कुछ बिगडता है। सुख-दुःखके दाता हैं अहंमन्यता और ममता। उसे छोड देने पर ही आनंदरूप मिलता है।

पाप करनेके लिए किसीको प्रेरणा देनेकी जरूरत नहीं पडती, किंतु पुण्य करनेके लिए प्रेरणा देनी पडती है। मन अधोगामी है।

मनुष्यका मन पानीकी भांति गड्ढेकी ओर ही बहता है। जलकी तरह मन भी अधोगामी है। जलकी भांति मनका स्वभाव भी ऊपर नहीं, नीचे की ओर जानेका है। इस मनको ऊपर चढाना है। उसे परमात्माके चरणों तक ले जाना है। यंत्रके संगमें आनेसे पानी ऊपर चढता है उसी तरह मंत्रके संगमें आने पर मन ऊपर चढता है। मनको मंत्रका संग दो। मंत्रका संग होगा तो अधोगामी मन ऊर्ध्वगामी बनेगा। जिसने अपना मन सुधारा है वह दूसरोंको भी सुधार सकेगा। मनको सुधारनेका और कोई साधन नहीं है। मन शब्दके अक्षरोंको उलट दोगे तो शब्द बनेगा नम। नम और नाम ही मनको सुधारेंगे।

मनको स्थिर करनेके लिए नामजपकी आवश्यकता है। जपसे मनकी मलिनता और चंचलता दूर होती है। अतः किसी भी मंत्रका जाप करो। सांसारिक विषयोंके संगसे बिगडा हुआ मन ईश्वरका ध्यान करनेसे सुधरता है। सभीके अंतरमें परमात्मा है फिर भी वे सभीका दुःख दूर नहीं करते हैं। अंदर विराजे हुए चैतन्यरूप परमात्मा मन-बुद्धिको प्रकाश देते हैं। भगवान्का स्वरूप ऐसा तेजोमय है कि हम जैसे साधारण जीव उन्हें देख नहीं पाते।

भगवान्का निर्गुण स्वरूप सूक्ष्म होनेके कारण दिखाई नहीं देता और भगवान्का सगुण स्वरूप तेजोमय है अतः वह भी नहीं दीखता। इस कारणसे हम जैसोंके लिए तो भगवान्का नामस्वरूप, मंत्रस्वरूप ही इष्ट है। भगवान् चाहे स्वयंको छुपा लें, किंतु अपने नामको छुपा नहीं सकते। नामस्वरूप प्रकट है अतः परमात्माके किसी नामस्वरूपका दृढ मनसे आश्रय ले लो।

मंत्रके विना मनशुद्धि नहीं हो सकती। बिगडा हुआ मन ध्यानके साथ तप करनेसे सुधरेगा। लौकिक वासनासे मन बिगडता है और अलौकिक वासनाके जागने पर वह सुधरेगा। वासनाका नाश वासनासे ही करना पडता है। असत् वासनाका विनाश सद् वासनासे होगा।

जब मनुष्य सोचेगा कि मुझे जन्म-मरणके फेरोंसे मुक्त होना है, मुझे गोलोकधाममें जाना है, मुझे किसी माताके गर्भमें नहीं जाना है, मुझे इसी जन्ममें परमात्माके दर्शन करने हैं ऐसी भावना रखनेसे मन सुधरेगा। कांटा कांटेसे निकलता है उसी तरह वासना ही वासनाको

निकाल बाहर करती है। फिल्म देखनेकी वासना दूर करनी है तो परीक्षामें पहला नंबर आनेकी वासना रखो। ऐसी वासनासे अध्ययनमें रुचि पैदा होगी और अध्ययनकी रुचिसे फिल्म देखनेकी वासना छूट जाएगी।

किसी एक राजाके पास एक बकरा था। राजाने एक बार एलान किया कि इस बकरेको जंगलमें चराकर जो उसे तृप्त करके लाएगा उसे मैं आधा राज्य दूंगा। किंतु बकरेका पेट पूरा भरा है या नहीं इसकी परीक्षा मैं खुद करूंगा।

इस एलानको सुनकर एक मनुष्यने राजाके पास आकर कहा कि बकरा चराना कोई बडी बात नहीं है। और वह बकरेको लेकर जंगलमें गया। वहां सारा दिन उसने कोमल हरी घास बकरेको खिलायी। शाम होने पर उसने सोचा कि अब तो बकरेका पेट भर गया होगा क्योंकि सारा दिन उसे चराता फिरा हूं। बकरेके साथ वह राजाके पास आया। राजाने थोडी-सा हरी घास बकरेके आगे रखी। तो बकरा उसे खाने लगा। इस पर राजाने उस मनुष्यसे कहा कि तूने उसे पेटभर खिलाया ही नहीं है वर्ना वह घास क्यों खाने लग जाता?

बहुतोंने बकरेका पेट भरनेका प्रयत्न किया। परंतु ज्योंही दरबारमें उसके सामने घास डाली जाती कि वह खाने लगता।

एक सत्संगीने सोचा कि राजाके इस एलानमें कोई रहस्य है, तत्त्व है। मैं युक्तिसे काम लूंगा। वह बकरेको चरानेके लिए ले गया। जब भी बकरा घास खाने जाता तो वह उसे लकडीसे मार देता। सारे दिनमें कई बार ऐसा हुआ। अंतमें बकरेने सोचा कि यदि मैं घास खानेका प्रयत्न करूंगा तो मार खानी पडेगी।

शामको वह सत्संगी बकरेको लेकर राजदरबारमें लौटा। बकरेको घास बिल्कुल खिलायी नहीं थी फिर भी उसने राजासे कहा मैंने उसे भरपेट खिलाया है, अतः वह अब बिल्कुल घास नहीं खाएगा। कर लीजिए परीक्षा।

राजाने घास डाली लेकिन उस बकरेने खाया तो क्या, उसे देखा और सूंघा तक नहीं। बकरेके मनमें यह बात बैठ गयी थी कि घास खाऊंगा तो मार पडेगी। अतः उसने घास नहीं खायी।

यह बकरा हमारा मन ही है। बकरेको घास चराने ले जानेवाला जीवात्मा है। राजा परमात्मा है। मनको मारो। मन पर अंकुश रखो। मन सुधरेगा तो जीवन सुधरेगा। मनको विवेकरूपी लकडीसे रोज पीटो। भोगसे जीव तृप्त नहीं हो सकता। त्यागमें ही तृप्ति समाई हुई है।

मन अहंता और ममतासे भरा हुआ है। मन जब कुछ मांगे तब उसे विवेकरूपी लकडीसे मारोगे तो वह वशमें हो जाएगा।

रामदास स्वामीने मनको बोध दिया है। दृढ वैराग्य, तीव्र भक्ति और यमनियमादिके अभ्याससे चित्त वशमें होता है और स्थिर होता है। और अंतमें धीरे धीरे प्रकृति भी अदृश्य होती जाती है।

संसार पर वैराग्य लानेका एक ही उपाय है:

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।

इस जगत्में सुखी होनेके दो ही मार्ग हैं: एक ज्ञानमार्ग और दूसरा भक्तिमार्ग।

ज्ञानमार्ग कहता है कि सब कुछ छोडकर परमात्माके पीछे पडो। बिना वैराग्यके ज्ञान नहीं मिलता। ज्ञानमार्गमें वैराग्य मुख्य है। इसमें सब कुछ छोड देना पडता है। ज्ञानी सब कुछ छोडकर एक भगवान्को ही पकडे रहता है। इस मार्गमें त्याग मुख्य है। इस मार्गके आचार्य शिवजी हैं। सर्वस्वका त्याग करना बडा कठिन काम है।

भक्तिमार्ग कहता है कि सर्वस्वका त्याग कठिन है। इसकी अपेक्षा तो बेहतर है कि सभी कुछमें ईश्वर है ऐसा मानकर सभीसे विवेकपूर्वक प्रेम करो। इस मार्गमें भगवद्भाव रखकर समर्पण करना है। भक्तिमार्गमें कुछ भी छोडनेकी बात नहीं है। वैष्णव कहेगा कि केलेकी छालमें भी भगवान् हैं। मैं इसे गायको खिलाऊंगा।

भक्तिमार्गमें समर्पण मुख्य है। इस मार्गके आचार्य श्रीकृष्ण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण हर। किसी पर प्रेम रखते हैं। इस मार्गमें हर किसीके साथ प्रेम करना होता है। भगवान् जैसा प्रेमी न तो कोई हुआ है और न कोई होगा।

एक बार भृगु ऋषि वैकुंठमें गए। भगवान् सो रहे थे। लक्ष्मीजी चरणसेवा कर रही थीं। भृगुको लगा कि यह तो कोई विलासी लगता है, उसे बडा देव कौन कहे? ऋषि तो परीक्षा करने ही आए थे, अतः उन्होंने सोए हुए भगवान्की छाती पर लात मार दी।

भृगु ऋषिने लात मारी, किंतु उस लात मारनेवाले सभी मेरा कन्हैया तो प्रेम ही करता है। भगवान्ने ऋषिसे कहा- मेरी छाती तो बडी कठोर है और आपके चरण-कोमल हैं। शायद आपके चरणोंमें चोट आई होगी और इतना कहकर भगवान् ऋषिके चरण दबाने लगे।
है कोई जगत्में ऐसा प्रेम करनेवाला दूसरा।

विष देनेवालेसे भी कन्हैया प्यार करता है। लक्ष्मीजीको बुरा लगा। वे बोली- ऐसी भी कहीं परीक्षा हो सकती है? परीक्षा करनेका यह ढंग अच्छा नहीं है। मैं ब्राह्मणोंके घर नहीं जाऊंगी। लक्ष्मीने ब्राह्मणोंको त्याग दिया। इसीलिये सामान्यतः ब्राह्मण गरीब रह गये हैं।

ज्ञानी मानते हैं कि जबसे यह शारीरिक संबंध हुआ है तबसे इसीसे दुःख हुआ है। अतः वे शरीरसे प्रेम नहीं करते।

प्रेम करना ही है तो सबसे प्रेम करो। किसीसे भी प्रेम नहीं करना हो तो कोई बात नहीं, किंतु अपने शरीरसे तो प्रेम करो ही नहीं। एक परमात्मासे प्रेम करो। सभीसे प्रेम करो अथवा सभीका त्याग करो। और यदि तुम सभीका त्याग नहीं कर सकते हो तो सभीमें ईश्वरभाव रखकर सभीसे प्रेम करो। सभीमेंसे ममताका त्याग करो अथवा सब कुछ ईश्वरको समर्पित करके सभी कर्मफलोंका त्याग करो।

सभीके प्रति ममता-मेरापन होना ही समर्पणमार्ग है। अमुकके प्रति ही ममता होना स्वार्थमार्ग है आज तो सभी स्वार्थमार्गी हैं।

पैसो मारो परमेश्वर ने पत्नी मारी गुरु,
छैयां-छोकरां मारां शालिग्राम, पूजा कोनी करुं ?

अर्थात् धन-संपत्ति मेरा परमेश्वर है, मेरी पत्नी ही मेरी गुरु है और मेरे संतान मेरे शालिग्राम हैं। अब मैं पुजा करूं भी तो किसकी?

जो संसारमेंसे जागृत नहीं होता वह कभी कन्हैयाको पा नहीं सकता। कंस काम और अभिमान है। वही सभीको कारागृहमें रखता है।

जागृत कौन है? जो मनसे विषयसुखका त्याग करके भगवान्के नामका जाप करे वही।
जगत्में कौन जाग्रत हुआ है? तुलसीदासजी कहते हैं :

जानिए तबहि जीव जग जागा।

जब सब विषय विलास विरागा॥

जब सभीमें विषय–विलासके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाए, तब मानो कि वह जीव जागा है। कपिल कहते हैं– माताजी, यह मन अनादिकालसे संसारमें भटकता आया है। सत्संगसे मन सुधरता है। वासनाका त्याग करनेसे मन सुधरता है। विवेकी पुरुष संग अथवा आसक्तिको आत्माका बंधन मानते हैं। किंतु संत–महात्माओंके प्रति जब आसक्ति या संग हो जाए तब मोक्षके द्वार खुल जाते हैं। अतः सत्संग करो।

देवहूतिने कहा, आप सत्संग करनेकी आज्ञा देते हैं, किंतु मुझे तो इस संसारमें कहीं भी कोई संत दिखाई नहीं पडता।

कपिल भगवान्ने कहा– माता, तब मानो कि तुम्ही पापी हो। पाप होने पर तो संतका मिलन होने पर भी सद्भावना नहीं होती। संतको ढूंढने तुम कहां जाओगी? तुम ही संत बनोगी तो तुम्हें संत मिलेंगे।

एकनाथ, तुकाराम, नरसिंह आदि गृहस्थाश्रमी थे। वे घरमें रहकर ही संत बने थे। संतोंके लक्षण जीवनमें उतारोगे तो संत बन सकोगे।

विना सत्संगके सुख नहीं मिलता। स्वयं संत बने विना सच्चा संत नहीं मिलेगा। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। क्रोधके कारण हनुमान्जीको श्वेत फूल भी लाल दिखाई दिए थे।

एकनाथ महाराज रामायणके सुंदरकांडकी कथा कर रहे थे।

इस सुंदरकांडमें सभी कुछ सुंदर है। सुंदरकांडका यह नाम इसलिए रखा गया है इसमें हनुमान्जीको माता सीताजीकी पराभक्तिके दर्शन हुए हैं।

ब्रह्मचर्य और रामनाम हो तो इस संसारसागरको पार किया जा सकता है। हनुमान्जी जैसे ही इस सागरको पार कर सकते हैं। सागर पार करके हनुमान्जी अशोकवनमें आए। एकनाथ महाराज कथामें कहते हैं कि जब हनुमान्जी अशोकवनमें आए तब वहां वाटिकामें सफेद फूल खिल रहे थे। जहां सीताजी वहां अशोकवन। जहां भक्ति वहां अ–शोक (शोकका अभाव)।

हनुमान्जी वहां कथा सुननेके लिए आए थे। उन्होंने प्रकट होकर विरोध करते हुए कहा कि महाराज, आप गलत कह रहे है। अशोकवनमें उस समय लाल फूल खिले हुए थे, सफेद नहीं। मैने अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष देखा था। एकनाथ महाराजने कहा कि मैं तो अपने सीतारामको मनाकर कथा कर रहा हूं। और मुझे जैसा दिखाई दे रहा है वैसा कह रहा हूं। अंतमें इस झगडेको लेकर वे दोनों श्री रामके पास गए। रामचंद्रजीने कहा कि आप दोनोंकी बात सही है। क्रोधावेशसे लाल आंखें होनेके कारण हनुमान्जीने फूल लाल देखे थे, अन्यथा फूल तो सफेद ही थे।

जिसकी दृष्टि जैसी होगी उसे वैसी ही सृष्टि दिखाई देगी। दुर्योधनको जगत्में कोई संत न मिला, उसने सभीको दुर्जन ही पाया। युधिष्ठिरको कोई दुर्जन नहीं मिला, उसने सभीको सज्जन ही पाया।

संतोंके धर्म (लक्षण) में तितिक्षाको प्राधान्य दिया गया है। सहन करोगे तो सुखी होगे।

संतोंका चरित्र पढो। संतोंको कई दुःख सहने पडे हैं। किंतु उन दुःखोंका संतों पर कुछ असर नहीं होता। अतिशय सहन करे वही संत है।

एकनाथ महाराज पैठणमें रहते थे। गोदावरी नदीकी ओर जानेवाले मार्ग पर एक पठान रहता था। एकनाथ महाराज उसी रास्तेसे स्नान करनेके लिए जाते थे। वह पठान महाराजको बहुत सताता था। किंतु महाराज सभी कुछ सहते रहते थे।

एक दिन उस पठानने सोचा कि यह ब्राह्मण क्रोधित नहीं होता है तो आज मैं उसे क्रोधित करके ही रहूँगा। महाराज स्नान करके वापस आ रहे थे। तो उस पठानने महाराज पर थूका। महाराज दूसरी बार स्नान करने गए। फिर उस पठानने महाराज पर थूका। कई बार ऐसा होता रहा किंतु महाराज क्रोधित न हुए। गोदावरीसे वे कहने लगे कि तेरी कृपा है कि तू मुझे स्नान करनेके लिए बार बार बुला रही है। वह पठान चाहे दुर्जनता करता रहे, मैं अपनी सज्जनता नहीं छोडना चाहता। पठान एक सौ आठ बार महाराज पर थूका और उतनी ही बार महाराजने गोदावरी-स्नान किया। अंतमें वह पठान शरमाया। उसने महाराजके पांव छूए और क्षमा मांगी। उसने कहा, महाराज, आप संत हैं, ईश्वर हैं। मैं आपको पहचान न सका। महाराजने उत्तर दिया कि क्षमाका कोई सवाल नहीं है। तुम्हारे कारण तो आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरी-स्नानका पुण्य मिला।

शांति उसीकी बनी रहती है जो अंदरसे ईश्वरके साथ संबद्ध रहे। जो ईश्वरसे दूर है उसे शांति कहांसे मिलेगी ?

कपिलजी कहते हैं-माता, जो बहुत सहन करता है वही संत बन सकता है। अतिशय विपत्तिमें भी जो ईश्वरका अनुग्रह समझे वही महान् वैष्णव है।

दुष्ट लोग किसीको भी अच्छा नहीं देख सकते। दुष्टोंने तुकारामको गधे पर बिठाया, तो तुकारामकी पत्नीको दुःख हुआ। किंतु तुकाराम तो उससे बोले कि मेरे विठ्ठलनाथजीने मेरे लिए जो गरुड भेजा है उसी पर बैठा हूं मैं तो। सभीने गधा देखा किंतु तुकारामकी पत्नीने गरुड देखा।

जगत्में सब कुछ सहते रहो।

जगत्में अँधकारका अस्तित्व है अतः प्रकाशका मूल्य है।

संतोंका पहला लक्षण तितिक्षा है तो दूसरा है करुणा। तीसरा लक्षण है सभी देहधारीके प्रति सुहृद्भाव। अजातशत्रु, शांत सरल स्वभाव आदि भी संतोंके लक्षण हैं। शांतिकी परीक्षा प्रतिकूलतामें होती है। अर्थ-धनसंपत्तिसे तो प्रतिदिन संबंध रखते हो किंतु उसके साथ साथ परमात्मासे भी संबंध रखोगे तो संपत्ति भी मिलगी और शांति भी। भागवतकार कहते हैं कि इस जीवनगाडीकी केवल पटरी ही बदलनी है। ईश्वरके लिए कुछ न कुछ त्यागो।

संत पुरुष प्रभुके हितार्थ सर्वस्वका त्याग करते हैं। "मत्कृते त्यक्तकर्माणः त्यक्तस्वजन-बांधवाः।" संत मेरे अर्थात् परमात्माके लिए संपूर्ण कर्म तथा अपने सगेसंबंधियोंका त्याग करते हैं। संत परमात्माके लिए संसारके विषयोंका बुद्धिपूर्वक त्याग करते हैं।

भगवान् परीक्षा करके ही अपनाते हैं।

भूखे मारुं, भूखे सुवाडुं,
तननी पाडुं छाल, पछी करीश न्याल।

मैं भूखसे व्याकुल करूंगा, भूखा ही सुलाऊंगा, तनको गला दूंगा और तब उसे मालामाल करूंगा।

भगवान्ने नरसिंह मेहताकी कई बार परीक्षा की थी।

पर, हे भगवान्, इस कलियुगमें आप ऐसी परीक्षा करेंगे तो कोई भी आपकी सेवा नहीं करेगा।

भगवत् परायण रहकर भगवान्की कथाओंका श्रवण-कीर्तन करे, भगवान्में ही चित्त रमाता रहे तो भक्तिका विकास होता है। भगवान्की कथा सुननेसे श्रद्धा दृढ होती है। उसके बाद भगवान्के लिए आसक्ति बढती है। आसक्ति बढनेसे व्यसनात्मिका भक्ति प्राप्त होती है। और जिसकी भक्ति व्यसनात्मिका बने उसकी मुक्ति सुलभ होती है। भक्ति जब व्यसन-सी उत्कट बनती है तब ईश्वरके पास ले जाती है।

हे माता, तीव्र भक्तिके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। तीव्र भक्तिका अर्थ है, व्यसनात्मिका भक्ति।

तुकारामने भक्तकी बडी अच्छी व्याख्या दी है। एक क्षण भी जो भगवान्से विभक्त न हो पाए वह भक्त है। व्यवहारका कामकाज निभाते हुए भी जो भगवान्से विभक्त न हो पाए वही भक्त है। "तीव्रेण भक्तियोगेन"

माता देवहूतिको तीव्र भक्ति करनेकी आज्ञा दी है। तीव्र भक्तिका अर्थ है एक भी क्षण ईश्वरसे विभक्त न होना।

इस तरह, प्राकृतिक गुणोंसे निष्पन्न शब्दादि विषयोंका त्याग करके, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की गई सुदृढ भक्तिसे मनुष्य अपने इसी देहमें, अपनी अंतरात्माके समान मुझे प्राप्त कर लेता है।

भगवान्की अहैतुकी निष्काम भावना भक्तिसे भी श्रेष्ठ है।

कपिल भगवान् माता देवहूतिसे कहते हैं: यह सब जो दृश्यमान है वह सत्य नहीं है। स्वप्नके असत्य होते हुए भी सुख-दुःख देता है। जिस प्रकार स्वप्न देखनेवालेको अपना मस्तक बिना कटे भी उसके कट जानेकी भ्रांति होती है और वह रोने लगता है, उसी प्रकार अविद्याके कारण जीवात्माको सब भ्रांति होती है। इसे ही माया कहते हैं। वस्तु न होने पर भी वह स्वप्नमें दिखाई देती है उसी तरह तात्त्विक दृष्टिसे कुछ भी न होते हुए भी जागृता-वस्थामें माया और अज्ञानके कारण सब कुछका आभास होता है।

कपिल आगे कहते हैं– माता, जगत् स्वप्न जैसा है। यह सिद्धांत भागवतमें बार बार इसलिये कहा गया है कि जिससे जगत्के पदार्थके लिये मोह न जागे। संसारके विषयों के प्रति पूर्णतः वैराग्य हो, इसीलिये यह कहा गया है।

सांसारिक सुखके उपभोगकी लालसा जब तक बनी रहे तब तक मानो कि तुम सोये हुए हो। जागे हुओंको ही कन्हैया मिलता है। सुख भोगनेकी इच्छा बडी दुःखद है। भागवत-ध्यानमें जगत् विस्मृत हो जाये तभी ब्रह्मसंबंध जुड पाता है। ध्यानमें प्रथम शरीरको स्थिर करो, फिर आंखोंको स्थिर करो और अन्तमें मनको स्थिर करो।

जब तक शरीर और आंखें स्थिर नहीं हो पातीं तब तक मन स्थिर नहीं हो पाता। आंखोंमें श्रीकृष्णके स्थिर होने पर मन शुद्ध होता है। भागवत गोवर्धननाथका स्वरूप है। श्रीकृष्णके स्वरूपमें ध्यान रखकर कथा सुनो। आंखें श्रीकृष्णमें और प्राण कानोंमें स्थिर कर कथा सुनो।

जिसे ध्यान करना है वह एक आसन पर बैठे और मनको स्थिर करे। ध्यान करते समय संसारको मनसे निकाल बाहर करो।

ध्यान करनेसे मन स्थिर होता है। बिना ध्यानके दर्शन परिपूर्ण नहीं होता।

भोगभूमिमें रहकर भगवान्का ध्यान करना टेढा काम है। संसारमें रहकर ज्ञान-भक्तिमें निष्ठा रखना सरल नहीं है। भूमिका मन पर प्रभाव पडता ही है। ध्यान करनेवालेको चाहिये कि वह पवित्र और एकांत स्थानमें बैठकर ध्यान करे।

कपिल कहते हैं- माता, जिसे ध्यान करना है, वह पवित्र भोजनका परिमित मात्रामें सेवन करे। आहार सात्त्विक और अल्प होना चाहिए। जिसे अजीर्ण हो वह ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता।

जिसे ध्यान करना हो वह चोरी न करे। अस्तेयम्। मनुष्य कई बार आंख और मनसे भी चोरी करता है। अन्यकी वस्तुका मानसिक चिंतन भी चोरी ही है।

जो ध्यान करना चाहता है उसे ब्रह्मचर्यका भी पालन करना चाहिये। सभी इन्द्रियोंसे ब्रह्मचर्यका पालन किया जाये। कई लोग शारीरिक ब्रह्मचर्यका पालन करते है किंतु मानसिक ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते। ब्रह्मचर्यका मानसिक भंग, शारीरिक भंग जैसा ही है। मनसे करो या आंखोंसे, किंतु चोरी तो चोरी ही है। अतः प्रत्येक इन्द्रियसे ब्रह्मचर्यका पालन करो। केवल शरीरसे नहीं, मनसे भी ब्रह्मचर्यका पालन करो। एक दिनके ब्रह्मचर्यभंगसे चालीस दिन तक मन स्थिर नहीं हो पाता। जबतक देहका भान है तबतक धर्मको न छोडो।

इसके बाद ध्यानकी विधि बताई गई जिसका वर्णन पहले हो गया।

कपिल भगवान्ने माता देवहूतिको ध्यान करनेकी आज्ञा दी। ध्यानके विना ईश्वरका अनुभव नहीं होता। रात्रिको सोनेसे पहले प्रभुका ध्यान करो।

वे कहते हैं- माता, परमात्माके अनेक स्वरूप हैं जिनमेंसे किसीको भी इष्टदेव मानकर उसका ध्यान करो।

व्यासजीने किसी विशेष स्वरूपका आग्रह नहीं किया है। तुम्हें जो भी स्वरूप पसंद आए उसीका ध्यान करो।

हे माता, तुम चतुर्भुज नारायणका ध्यान करो।

ध्यान करनेसे पहले ठाकुरजीके साथ संबंध स्थापित करना जरूरी है। दास्यभक्तिमें पहले चरणोंमें दृष्टि स्थिर करनी पडती है।

बार बार मनको किसी भी एक स्वरूपमें स्थिर करो। ध्यानमें तन्मयता होने पर संसारका विस्मरण हो जाता है। ध्यानमें देहभान और जगत्‌भान विस्मृत होता जाता है। ज्यों ज्यों संसारका विस्मरण होता जाता है त्यों त्यों प्रभुस्मरणमें आनन्द आने लगता है।

शक्करकी एक गुडिया सागरकी गहराई जो नापने अंदर गई सो गई ही। परमात्मा समुद्रके समान व्यापक है, विशाल है। ज्ञानी पुरुष परमात्म-स्वरूपके साथ ऐसे घुलमिल जाते हैं कि फिर वे यह कह नहीं सकते कि ये जानते हैं या नहीं जानते। ध्यान करनेवाला ध्यान करते हुए ध्येयमें मिल जाता है। यही अद्वैत है। ध्यान करनेवालेका "अहम्-मेरापन" ईश्वरसे मिल जाता है। देहभानके विस्मृत होने पर जीव और शिव एक हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी लोग भेदभावसे ध्यान करते हैं तो कुछ ज्ञानी लोग अभेदभावसे। पहले भेदभावसे ध्यान करते हैं और फिर अभेदवादसे।

फिर जीवका जीवत्व ईश्वरमें मिल जाता है, जीवत्व स्वतंत्र नहीं रह पाता। जिस प्रकार कीडा भंवरीका स्मरण करते हुए स्वयं भंवरी बन जाता है उसी प्रकार जीव ईश्वरका चिंतन करते करते प्रभुमय बन जाता है। दोनोंका मिलन होनेके बाद जीवभाव नहीं रह जाता।

तुलसीदासजीने भी रामचरितमानसमें कहा है :

सोई जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुमही होइ जाई॥

किंतु उसे कौन जान सकता है? जिस पर वह (प्रभु) स्वयं कृपा करता है, वही उसको (प्रभुको) जान सकता है। और फिर उसे (प्रभुको) जानकर वह उसीमय (ईश्वरमय) हो जाता है।

ध्याता जिस स्वरूपका ध्यान करता है उसी ध्येयकी शक्ति ध्याता (ध्यानकर्ता) में आती है।

शंकराचार्यके जीवनका एक प्रसंग है। एक यवन उनसे मिला और बोला कि मैं भैरव-यज्ञ करना चाहता हूँ। भैरव-यज्ञमें पृथ्वीके चक्रवर्ती सम्राट्‌के मस्तककी आहुति देनी पडती है। वह तो अप्राप्य है अतः तुम ही अपना मस्तक मुझे दे दो। तुम्हींने कहा है कि आत्मा देहसे भिन्न ह, परमात्मासे भिन्न है। देहदानसे तुम मर नहीं जाओगे अतः मस्तक मुझे दे दो।

शंकराचार्यने कहा-मेरे शारीरिक मस्तकसे अगर तेरा काम बन सकता हो तो, ले जा।

शंकराचार्यजीका देहाध्यास दूर हो चुका था, अतः वे मस्तक देनेको तैयार हो गए। वे बोले कि जब शिष्य न हों और मैं ध्यानमग्न होऊं तभी आकर मस्तक ले जाना।

एक दिन यवन मठमें जब अन्य कोई नहीं था तब वह मस्तक लेने आया।

भगवान् शंकरके शिष्य पद्मपाद-जो नृसिंह स्वामीके भक्त थे-को गंगा-किनारे कई बार अपशुकन हुए। अतः वे दौडते हुए आश्रममें वापस आए। उन्होंने वहां देखा कि एक यवन तलवारसे गुरुजीका मस्तक काटनेकी तैयारी कर रहा है, पद्मपादने क्रोधसे सिंह बनकर उस यवनको चीर-फाडकर मार डाला।

यह प्रसंग हमें बताता है कि उपासकमें उपास्यकी शक्ति आरोपित होती है। नृसिंह स्वामीका ध्यान करनेसे पद्मपादमें नृसिंहका आवेश उतर आया।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

मदिरासे मदांध बने व्यक्तिको देहभान नहीं रहता। उसी प्रकार ध्यान करता हुआ जो देहभान भूलता है वह भगवान्‌के पीछे पड जाता है। प्रभुप्रेममें जो पागल हुआ है वह सुखी है और अन्य सब दुःखी हैं।

भगवान्‌के सिवा और कोई है ही नहीं। उस समय द्रष्टा भी भगवत्‌रूप हो जाता है। यह अपरोक्ष साक्षात्कार है। ऐसी तन्मयता होने पर भक्ति सुलभ हो जाती है।

कपिल उपदेश देते हैं- माता, इन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए जो व्यक्ति देहभान भूल जाता है, वह सर्वश्रेष्ठ है। भगवद्-भक्त प्रारब्धकर्मोंको भी मिथ्या कर सकते हैं अतः वे श्रेष्ठ हैं।

प्रेम अन्योन्य होता है। तुम ठाकुरजीका स्मरण करोगे तो वे भी तुम्हें नहीं भूलेंगे।

एक बार नारदजी वैकुंठलोकमें आए। लक्ष्मीजी तो वहां थीं किंतु भगवान् नजर न आए। इधर-उधर ढूंढने पर उन्होंने देखा कि भगवान् ध्यान लगाए हुए बैठे हैं। नारदजीने उनसे पूछा- किसका ध्यान कर रहे हैं आप?

भगवान्‌ने कहा- मै अपने भक्तोंका ध्यान कर रहा हूँ।

भगवान् अपने प्रिय भक्तोंका ध्यान करते हैं।

नारदजीने पूछा कि ये वैष्णव क्या आपसे भी श्रेष्ठ हैं जो आप उनका ध्यान कर रहे हैं?

भगवान्‌ने कहा- हां, वे मुझसे भी श्रेष्ठ हैं।

तो नारदजीने कहा कि सिद्ध करके दिखाइए अपनी बात।

भगवान्‌ने पूछा- जगत्‌में सबसे बडा कौन है?

नारदने कहा- पृथ्वी।

प्रभुने कहा- पृथ्वी तो शेषनागके सिर पर आधार रखती है फिर वह कैसे श्रेष्ठ मानी जाए?

नारदजी- तो शेषनाग बडे हैं।

भगवान्- वह कैसे बडा हो गया? वह तो शंकरजीके हाथका कंगन है। अतः शेषसे शिवजी महान् हैं। उनसे बडा रावण है क्योंकि उसने कैलास पर्वत उठा लिया था। रावण भी कैसे बडा कहा जाए, क्योंकि वाली उसे अपनी बगलमें दबाके संध्या करता था। वाली भी कैसे बडा माना जायेगा क्योंकि उसको रामजीने मारा था।

नारदजी- तब तो आप ही श्रेष्ठ हैं।

भगवान्- ना, मैं भी श्रेष्ठ नहीं हूँ। मेरी अपेक्षा मेरे भक्तजन श्रेष्ठ हैं। क्योंकि सारा विश्व मेरे हृदयमें समाया हुआ है किंतु मैं भक्तोंके हृदयमें समाया हुआ हूँ। मुझे अपने हृदयमें रखकर ये भक्तजन सारा व्यवहार निभाते हैं, अतः ये ज्ञानी भक्त ही मुझसे और सभीसे श्रेष्ठ हैं।

भगवान्‌के भक्त भगवान्‌से भी आगे हैं, बढकर हैं।

रामसे अधिक रामकरदासा।

मेरे निष्काम भक्त किसी भी प्रकारकी मुक्तिकी इच्छा नहीं करते हैं। विना मेरी सेवाके वे कोई और इच्छा नहीं रखते।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारुप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

भा. ३।२९।१३

मेरे निष्काम भक्त मेरी सेवाको छोडकर सालोक्य, सार्ष्टि सामिप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्तिको भी स्वीकार नही करेंगे।

नरसिंह मेहताने गाया है :-

हरिना जन तो मुक्ति न मांगे, मांगे जनम-जनम अवतार रे,
नित सेवा, नित कीर्तन, ओच्छव, निरखवा नंदकुमार रे,
धन्य वृंदावन, धन्य ए लीला, धन्य ए व्रजना वासी रे,
अष्ट महासिद्धि आंगणीये ऊभी, मुक्ति छे एमनी दासी रे,
भूतळ भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोकमां नाहीं रे।

अर्थात् हरिजन मुक्ति नहीं, जन्म जन्ममें अवतार चाहते हैं कि जिससे प्रभुकी नित्य सेवा, कीर्तन, उत्सव करके नंदकुमारका दर्शन किया जा सके। वृंदावन धन्य है, लीला धन्य है और वे व्रजवासी भी धन्य हैं कि जिनके आंगनमें अष्ट महासिद्धि खडी हैं और मुक्ति जिनकी दासी है। ब्रह्मलोकमें भी जो प्राप्त नही हो सकता ऐसा श्रेष्ठ पदार्थ भक्ति केवल पृथ्वी पर ही प्राप्य है।

मेरे भक्तजन मेरे प्रेमरूपी अप्राकृत स्वरूपको प्राप्त करते है। जब कि देह-गेहमें आसक्त पुरुष अधोगति पाते हैं।

कपिलजी कहते हैं माता और मैं क्या कहूं ? ईश्वरसे विभक्त हुआ जीव कभी सुखी नहीं हो सकता।

वृद्धावस्थामें यह शरीर तो जर्जर होता है किन्तु मन और बुद्धि जवान ही रह जाते है। यौवनमें जिनका उपभोग किया था उन सुखोंका बार बार मन चिंतन करता रहता है। भगवान्का चिंतन न हो सके तो कोई हर्ज नहीं है किंतु सांसारिक विषयोंका चिंतन तो कभी मत करो। वृद्धावस्थामें दुःख सहना पडता है, सेवा कोई नही करता।

यदि तुम अपने माता-पिताकी सेवा करोगे तो तुम्हारी वृद्धावस्थामें तुम्हारी संतानें तुम्हारी सेवा करेंगी। माता-पिता, गुरु, अतिथि और सूर्य ये चार इस संसारमे प्रत्यक्ष देव हैं। उनकी सेवा करो।

मनुष्यके पास वृद्धावस्थामे धन नहीं होगा तो उसकी दशा कुत्ते जैसी होगी। "गृहपाल इवाहरन्।" वृद्धावस्थामें दुःखी होने पर भी ममता नहीं छूटती है। औरोंको सुखी करोगे तो सुखी होगे।

वृद्धावस्थामें शरीरके दुर्बल हो जाने पर भी सत्संग और भजन करनेसे मन और जीभ युवा होंगे।

वृद्धावस्थामें यह जीभ बडी सताती है। पाचनशक्तिके ठीक न होने पर भी बारबार खानकी इच्छा होती है। शरीर ठीक रहे तबतक बाजी हाथमें है। इतनेमें प्रभुको प्रसन्न करोगे तो बेडा पार हो जाएगा।

बूढा खटिया पर पडा है। मलशुद्धि भी सेजपर ही करनी पडती है। कुछ पापी लोगोंको इसी लोकमें नरकयातना भुगतनी पडती है। मृत्युके छ मास पहले यमदूतका स्वप्नमें दर्शन होता है। अति पापीको वृद्धावस्थामें यमदूत दिखाई देता है। जिनके लिए पानीकी तरह पैसे बहाए हों, वेही लोग उस मरणके किनारे पहुंचे हुए बूढेके मरणकी बेसब्रीसे राह देखते हैं। मरते मरते हमें कुछ देता जाएगा ऐसा सोचकर ही आप्तवर्ग उसकी सेवा करता है। सभी स्वार्थी रिश्तेदार आ पहुंचते हैं। रिश्तेदारोंको भागवतने लोमडी-कुत्तोंसा कहा है। पुत्रियां भी बडी लालची होती हैं। पिताकी बीमारीकी खबर सुनते ही दौड आती हैं। पिताजी, मैं आपकी मणी, मुझे नहीं पहचाना? किंतु मणीबहेन कुछ भी उजाला दे नहीं सकीं। वह बूढा रो रहा है। वह जानता है कि स्त्री या संतान कोई साथ नहीं आएंगे। मुझे अकेले ही जाना पडेगा। फिर भी विवेक नहीं आ पाता।

यमदूत इस जीवात्माको देहमेंसे बाहर खींच निकालते हैं। अंतकालमें दो यमदूत आते हैं- पुण्यपुरुष और पापपुरुष। दोनों यमदूत जीवात्माको मारते हैं। पुण्यपुरुष जीवसे कहता है कि पुण्य करनेका तुझे अवसर दिया गया था फिर भी तूने पुण्य नहीं कमाया। मरते समय जीव बडा ही छटपटाता है। यमदूतोंकी गति पगसे आंख तक होती है।

ब्रह्मरंध्रमे जो अपने प्राणको स्थिर कर सकता है उसका यमदूत कुछ नहीं कर सकते।

मृत्युके बाद पूर्वजन्म याद नहीं आता।

स्थूल शरीरके अंदर सूक्ष्म शरीर होता है और सूक्ष्म शरीरके अंदर कारण शरीर। सूक्ष्म शरीरके अन्दर रहती हुई वासनाएं ही कारण शरीर हैं।

यमदूत जीवात्माको उसके साथ ही यमपुरी ले जाते हैं। अतिशय पापी व्यक्तिके लिए यमपुरीका मार्ग भयंकर होता है। पापीको गर्म बालुपर चलना पडता है।

जीवात्माको, उसके द्वारा किए गए पापोंकी सूची यमकी राजसभामे चित्रगुप्त सुनाते हैं। चौदह साक्षी भी उपस्थित किए जाते हैं। वे साक्षी हैं पृथ्वी, चंद्र, सूर्य आदि। जीवात्माको उसके पापोंके अनुसार नरक दंड दिया जाता है। जो किसीके पाप-पुण्य समान हो तो उसे चंद्रलोकमें भेजा जाता है। पुण्यके समाप्त होने पर जीवको फिर मनुष्यलोकमें जन्म लेना पडता है। कई जन्म-मरणका दुःख उसे भुगतना पडता है।

वृंदावनमें एक महात्मा रहते थे। वे एक बार ध्यानमें बैठे थे कि एक चूहा उनकी गोदमें छुप गया, क्योंकि उसके पीछे बिल्ली दौडी रही थी। महात्माने दयासे उस चूहेको कहा कि तू जैसा चाहे वैसा तुझे बना दूँ। चूहेकी बुद्धि भी आखिर कैसी हो सकती है। उसने सोचा यदि मैं बिल्ली बन जाऊं तो फिर किसीकी भी ओरसे कोई डर नहीं रहेगा। चूहेकी मांग पर महात्माने उसे बिल्ली बना दिया। एक बार उस बिल्लीका एक कुत्तेने पीछा किया तो उसने कुत्ता बनना चाहा। वह कुत्ता हो गया। जंगलमें एक बार एक शेरने उसका पीछा किया तो महात्मासे शेर बनना चाहा। महात्माने उसे शेर बना दिया। अब उसकी मति भ्रष्ट हो गई और हिंसकवृत्ति जाग्रत हुई। उसने सोचा कि मैं इस महात्माको खा जाऊं अन्यथा वे कहीं मुझे फिरसे चूहा न बना दें। अब वह महात्माको खानेके लिए आया तो महात्माने कहा

कि तू मुझे ही खाना चाहता है। उन्होंने बाघको फिर चूहा बना दिया।

यह कथा केवल चूहा-बिल्लीकी ही नहीं, हमारी भी है। यह जीव कभी चूहा था, बिल्ली था और अब मानव हो गया तो कहने लगा कि मैं ईश्वरको नहीं मानता। धर्म मुझे स्वीकार्य नहीं है। तो भगवान् भी सोचते हैं कि अब तू कहाँ जाएगा। मैं तुझे फिर चूहा-बिल्ली बना दूंगा। इस मनुष्यजन्ममें जीव ईश्वरको पहचानने और प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करेगा तो उसे फिर पशु ही बनना पडेगा।

पशु-पक्षियोंके अवतारोंमें कई प्रकारके कष्ट सहन करनेके बाद जीव मनुष्ययोनि पाता है। गर्भाधानके दिन जीव पानीके बुलबुलेसा सूक्ष्म होता है। दस दिनोंके बाद वह फल-सा बडा होता है। एक मासके बाद गर्भ सिरवाला होता है। दो मासके बाद हाथ-पांव, तीन महिनोंके बाद बाल-नाखून, चार महिनेके बाद सात धातु, पांच महिनेमें भूख-प्यासका ज्ञान, छ महिनेमें माताके पेटमें भ्रमण ऐसा क्रम है। अनेक जंतु उत्पन्न हो सके ऐसे विष्ठा-मूत्रसे भरे हुए भागमें जीवको रहना पडता है। जंतुके काटनेसे वह मूर्छित भी हो जाता है। माताके द्वारा खाए हुए मिर्ची कट्ठ, खट्टा, गर्म आदि आहारसे भी उसके अंगोंमें वेदना होती है। इस तरह गर्भमें वह कई प्रकारके कष्ट झेलता है। पिंजडेमें बंद पक्षीकी भांति वह कुछ भी करनेमें असमर्थ है। सातवें महिनेमें जीवात्माको पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। वह गर्भमें प्रभुकी स्तुति करता है। नाथ, मुझे बाहर निकालो। गर्भवास और नरकवास एक समान ही हैं। मुझे बाहर निकालोगे तो मैं आपकी सेवा करूंगा, भक्ति करूंगा। गर्भमें जीव ज्ञानी होता है। भगवान्के आगे वह अनेक प्रतिज्ञाएं करता है। मुझे बाहर निकालिए, मैं बडा दुःखी हूँ। प्रसव समयकी पीडाके कारण वह पूर्वजन्मका ज्ञान भूल जाता है। जीव अनादिकालसे बाल्यावस्थामें, यौवनमें और वृद्धावस्थामें दुःख झेलता आया है।

जन्म-मरणके दुःख एक ही समान भयंकर हैं। उनका कभी अंत नहीं हो पाता।

जन्म होते ही मायाका स्पर्श हो जाता है। संसारमें माया किसीको भी नहीं छोडती।

जीव एक ही वस्तुसे प्रेम करे तो ईश्वर खुश होते हैं। जीव बाल्यावस्थामें मातासे और फिर खिलौनेसे प्रेम करता है। फिर कुछ बडे होने पर पुस्तकोंसे प्रेम करने लगता है। पुस्तकोंका मोह उतरते उतरते रुपये-पैसोंसे प्रेम करने लगता है। फिर पत्नीसे प्रेम करने लगता है। उससे वह कहता है कि मैं तेरे लिए हजारों रुपये खर्च कर सकता हूँ। वह पत्नीके इशारों पर नाचने लगता है। किंतु पत्नीप्रेम भी हमेशा नहीं रहता। दो-चार बच्चोंके होने पर व्याकुल हो जाता है। संतानोंके होने पर पत्नीका मोह घटने लगता है। प्रभुकी माया बडी ही विचित्र है। विवाहित भी पछताता है और अविवाहित भी।

अनेक जन्मोंसे यह जीव इसी तरह भटकता आया है। अतः कपिल भगवान् कहते हैं- माता, अब भी तुम्हें कब तक भटकना है? अपने मनको संसारके विषयोंमेंसे हटाकर प्रभुमें स्थिर करो।

परमात्माके चरणोंका आश्रय ग्रहण करके जन्ममरणके चक्रसे जो मुक्त हुआ है, उसीका जीवन सफल हुआ है ऐसा मानो।

माताको उपदेश देकर कपिल भगवान् वहांसे चलने लगे। माताजीसे आज्ञा मांग ली जानेके लिए।

कपिल भगवान् कलकत्ताके समीप संगम तीर्थ पर आए। आज भी उनके वहां दर्शन होते हैं। समुद्रने कपिल नारायणका स्वागत किया।

माता देवहूति सरस्वतीके किनारे जा विराजीं। स्नान करती है, ध्यान करती हैं अतः मनकी शुद्धि होती है। मनको नारायणका चिंतन करते करते मुक्ति मिल गई। उन्हें सिद्धि मिलनेके कारण उस गांवका नाम सिद्धपुर पडा। देवहूतिके उद्धारके कारण उसका दूसरा नाम मातृगया भी पड गया।

इस कपिल गीताको सुननेसे श्रोता-वक्ताओंके अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं।

अनेक प्रकारके कर्म, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदविचार, मन-इन्द्रियोंका संयम, कर्मत्याग, अनेक प्रकारोंका योगाभ्यास, भक्तियोग, प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग, सकाम और निष्काम धर्म, आत्मतत्त्वका ज्ञान तथा दृढ वैराग्य- इन सभी साधनोंसे सगुण-निर्गुणरूप परमात्माकी प्राप्ति की जाती है। इन सभी मार्गोंसे प्राप्त करनेका तत्त्व तो एक ही है- परमात्मा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

चौथा स्कंध

प्रथम स्कंधमें अधिकारका वर्णन किया है। भागवतका श्रोता कैसा होना चाहिए आदि बातें बतलायी गई हैं, दूसरे स्कंधमें ज्ञानलीला बतलाई है। मृत्यु जब समीप आ गई हो तब जीव कैसा व्यवहार करे उस समय मनुष्यमात्रका क्या कर्तव्य है आदिका ज्ञान गुरुने द्वितीय स्कंधमें दिया है।

पात्रताके अभावमें ज्ञान टिकता नहीं है। सुपात्रके अभावमें ज्ञान शोभा नहीं पाता है। धन और ज्ञान सुपात्रके विना शोभा नहीं पाते हैं।

जबतक ज्ञान क्रियात्मक नहीं होता तबतक वह अज्ञान जैसा ही होता है। बहुत जाननेकी अपेक्षा तो जितना जान लिया है उसे जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान जबतक क्रियात्मक न बन जाए तबतक उसकी कोई कीमत नहीं होती। जब ज्ञान क्रियात्मक होता है तभी वह शान्ति देता है। ज्ञानको शब्दरूप ही मत रहने दो, उसे क्रियात्मक बनाओ। विचार करनेपर ज्ञान होता है, कि ज्ञानका अंत न कभी हुआ और न कभी होनेवाला ही है। परन्तु ज्ञान जब क्रियात्मक बनता है, तभी शान्ति मिलती है।

गुरुके द्वारा दिए गए ज्ञानको क्रियामें और जीवनमें किस प्रकार उतारना चाहिये यह बात तीसरे स्कंधमें बतायी गई है। ज्ञान और क्रियाका मधुर मिलन कैसे करना चाहिये यह बात तीसरे स्कंधमें बताई गई है।

कपिल अर्थात् जो जितेन्द्रिय है, वही ज्ञानको पचा सकता है। विलासी जन ज्ञानका अनुभव नहीं कर सकते। वेदान्त ज्ञानका अधिकार सबको नहीं है, वेदज्ञानका अधिकार विरक्तको ही है।

वेदका संहिताभाग मंत्ररूप है। ब्राह्मण संहिताका भाष्य है। आरण्यकमें उपनिषद् आते हैं। अत्यन्त सात्त्विक जीवन बितानेवाले ऋषि जो चिंतन करते हैं वह उपनिषद् है। वही वेदान्त है। वेदका अन्त ही वेदान्त है। अंतका अर्थ है समाप्ति। वेदकी समाप्ति उपनिषद् है।

वैराग्य और संयमके अभावमें ज्ञान पचता नहीं है। उस ज्ञानको जीवनमें उतारकर, भक्तिमय जीवन बितानेवाले जन बहुत ही विरले हैं।

ज्ञान प्राप्त करना हो तो सरस्वतीके किनारे रहना पडेगा। कर्दम होना पडेगा। आप कर्दम बनेंगे तो आपकी बुद्धि देवहूति बनेगी अर्थात् यदि आप जितेन्द्रिय बनेंगे तो आपकी बुद्धि निष्काम बनेगी। ज्ञान सिद्ध होगा। ज्ञानके सिद्ध होनेके बाद पुरुषार्थ सिद्ध होगा, अतः चौथे स्कंधमे ऐसे चार पुरुषार्थकी कथा कही है।

तृतीय स्कंधमें सर्गलीला थी और इस चौथे स्कंधमें विसर्गलीला है। पुरुषार्थ चार हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अतः चौथे स्कंधमें चार प्रकरण हैं। धर्म अर्थ, काम और मोक्ष।

धर्म-प्रकरणमें सात अध्याय हैं। सात प्रकारकी शुद्धि होनेपर धर्मकी सिद्धि होती है। सात प्रकारकी शुद्धि जिसकी होती है उसीको धर्मकी सिद्धि होती है। सात शुद्धियां ये हैं (१) देशशुद्धि (२) कालशुद्धि (३) मंत्रशुद्धि (४) देहशुद्धि (५) विचारशुद्धि (६) इन्द्रिय-शुद्धि और (७) द्रव्यशुद्धि।

अर्थ– प्रकरणमें पांच अध्याय हैं जो यह बताता है कि अर्थकी प्राप्ति पांच साधनोंसे होती है। अर्थकी प्राप्तिके पांच साधन ये हैं–(१) मातापिताके आशीर्वाद (२) गुरुकृपा (३) उद्यम (४) प्रारब्ध और (५) प्रभुकृपा। इन पांच प्रकारके साधनोंसे ध्रुवको अर्थकी प्राप्ति हुई थी।

काम–प्रकरणमें ग्यारह अध्याय हैं। ये अध्याय यह बताते हैं कि काम ग्यारह इन्द्रियोंमें बसा हुआ है। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और ग्यारहवां मन। इन ग्यारह ठिकानोंमें काम बसा हुआ है। रावणके दस मस्तक थे, अतः रावण अर्थात् काम इन्द्रियोंमें बसा हुआ है। जो सबको आनन्द देता है वह राम और जो सबको रुलाता है वह रावण। काम जीवमात्रको रुलाता है।

काम मनमेंसे जाता नहीं है, यही विघ्नरूप है। मनमें काम आंख द्वारा प्रवेश करता है, इसलिए आंखोंमें रावण–कामको मत आने दो।

राम जैसे निर्विकारी बनोगे तो रावण अर्थात् काम मरेगा। काम मरेगा तो राम मिलेंगे।

मोक्ष–प्रकरणके आठ अध्याय हैं। महाप्रभुजीने कहा है कि—

प्रकृतिके आठ प्रकार हैं। 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इति' पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार। इस अष्टधा प्रकृतिको जो काबूमें रखता है, उसे मोक्ष मिलता है। जो अष्टधा प्रकृतिके बन्धनमेंसे मुक्त होता है वह कृतार्थ होता है।

प्रकृति पर विजय पानेवालेको मुक्ति मिलती है। पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, तेज मन, बुद्धि तथा अहंकारको काबूमें रखो। प्रकृतिका अर्थ है स्वभाव। अनेक जन्मोंके संस्कार मनमें संचित रहते हैं। बडे बडे ऋषि भी प्रकृतिको अर्थात् स्वभावको वशमें नहीं रख सके हैं। इसलिए वे बन्धनमें पडे हैं। अष्टधा प्रकृति पर विजय पानेवालेको मुक्ति मिलती है। प्रकृतिके वशमें जो होता है वह जीव है और जो प्रकृतिको वशमें रखता है वह ईश्वर है। श्रवण, कीर्तन और आठ प्रकारकी भक्ति जिसको सिद्ध होती है वह ईश्वरका हो जाता है। तुम भगवान् जैसे न बन सको तो कोई हर्ज नहीं, मगर भगवान्के तो होकर रहो।

इस प्रकार इकतीस अध्यायोंका चौथा स्कंध है।

चार पुरुषार्थोंमें पहले धर्म है और अन्तमें मोक्ष। बीचमें अर्थ और काम हैं। इस क्रमको लगानेमें भी रहस्य है। धर्म और मोक्षके बीचमें काम और अर्थको रखा गया है। यह क्रम यह बतलाता है कि अर्थ और कामको धर्म और मोक्षके अनुसार प्राप्त करना है। धर्म और और मोक्ष ये दोनों पुरुषार्थ मुख्य हैं। बाकीके दोनों– अर्थ और काम– गौण हैं। धर्मके विरुद्ध कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता। धर्मका हमेशा स्मरण रखो। सबसे पहला पुरुषार्थ धर्म है। धर्मानुसार ही अर्थ और कामकी प्राप्ति करनी है।

पैसा मुख्य नहीं है, धर्म ही मुख्य है। मानवजीवनमें धर्म ही प्रधान है। धनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है अच्छे संस्कारोंसे, संयमसे और सदाचारसे। प्रभुभक्तिसे और त्यागसे सुख मिलता है। धर्मसे धन कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। धर्म इहलोक और परलोकमें सुख देता है। मरनेके बाद धन साथ नहीं जाता, धर्म ही साथ जाता है। अतः धनसे धर्म श्रेष्ठ है। जबसे लोग अर्थको महत्त्व देने लगे हैं तबसे जीवन बिगड गया है। स्वामी श्री शंकराचार्यने एक जगह अर्थको अनर्थ कहा है। अर्थं अनर्थं भावय नित्यम्। जब मनुष्य धर्मको धनसे विशेष समझता है तब जीवन सुधरता है।

अर्थको धर्मानुकूल रखो। जो अर्थ धर्मानुकूल नहीं होता वह अनर्थ है। देशको संपत्तिकी जितनी जरूरत है इससे अधिक अच्छे संस्कारोंकी जरूरत है। तुम अपने जीवनमें धर्मको सबसे पहला स्थान दो। जीवनमें जब कामसुख और अर्थ गौण बनता है तभी जीवनमें दिव्यता आती है। दिव्यताका अर्थ है देवत्व।

धर्मकी गति सूक्ष्म है। धर्म भी अनेकों बार अधर्म बन जाता है। सद्भावनाके अभावमें किया गया धर्म सफल नहीं होता। सत्का अर्थ है ईश्वर। ईश्वरका भाव जो सबमें प्रत्यक्ष सिद्ध करे उसीका धर्म पूर्णतः सफल होता है।

मनुष्योंके शत्रु बाहर नहीं हैं, वे तो मनके अन्दर ही हैं। अन्दरके शत्रुओंको मारोगे तो जगत्में तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा।

धर्मक्रिया सद्भावके बिना सफल नहीं होती। जगत्के किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखोगे तो वह जीव तुम्हारे प्रति भी कुभाव ही रखेगा।

सभी क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ रूपसे परमात्मा बसे हुए हैं, इसलिये किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखना ईश्वरके प्रति कुभाव रखनेके बराबर है। शास्त्रमें तो यहां तक कहा गया है कि किसी जीवके साथ तो क्या, किसी जड पदार्थके प्रति भी कुभाव नहीं रखना चाहिए। कहा गया हैः " सुहृदः सर्वभूतानाम् "। ऐसा नहीं कहा गया कि " सुहृदः सर्वजीवानाम् "। जड पदार्थोंके साथ भी प्रेम करना है। सबमें सद्भाव रखो अर्थात् जड पदार्थोंके प्रति भी प्रेम रखो।

मनुष्यमें जब स्वार्थबुद्धि जागती है तब वह दूसरेका विनाश करनेके लिए तत्पर होता है। तुम यदि दूसरेके प्रति कुभाव रखोगे तो उसके मनमें भी तुम्हारे प्रति कुभाव जागेगा।

इस पर विचार करने योग्य एक दृष्टांत है। एक देशमें वहांके राजा और नगरसेठ गाढ मित्र थे। दोनों सत्संग करते थे। दोनोंका एक दूसरे पर खूब प्रेम था। उस बनियेका व्यापार चंदनकी लकडी बेचनेका था। सेठका धंधा अच्छा नहीं चल रहा था। चार पांच साल तक घाटा हुआ। आखिर मुनीमजीने बताया कि अब तो लकडीमें दीमक लग गई। बिगडा हुआ माल कोई लेता नहीं है। यदि इस सालमें पूरे प्रमाणमें चंदन नहीं बिकेगा तो व्यापार ठप्प हो जाएगा। अब चंदन जैसी कीमती लकडी ज्यादा प्रमाणमें राजाके सिवा और कौन लेता?

स्वार्थ मनुष्यको पागल बना देता है। मनुष्य-मनमें जब स्वार्थ जगता है, तब वह दूसरेका विनाश करनेको भी तैयार हो जाता है। दूसरेका नुकसान करनेवालेको कभी फायदा नहीं होता। मनुष्यके हृदयमें जब स्वार्थ जागता है, तब विवेक नहीं रहता। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें स्वार्थ तो रहता ही है मगर उसमें विवेक तो रखना ही चाहिए। जिसे बोलनेमें शर्म आए वैसा सोचना भी नहीं चाहिए। नगरसेठने सोचा कि इस राजाको कुछ हो जाये तो बहुत अच्छा हो। वह मर जायेगा तो उसको जलानेके लिए चन्दनकी लकडीकी जरूरत पडेगी। इस प्रकार मेरा सारा चन्दन बिक जायेगा और व्यापार ठीक चलेगा। इस तरह सेठके मनमें राजाके प्रति कुभाव उत्पन्न हुआ।

दूसरी ओर राजाके मनमें सेठके प्रति कुभाव जागा। उस दिन जब वह सेठ राजासे मिलनेके लिए आया, तब राजाके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि यह सेठ निःसंतान है, यह यदि मर जाए तो उसका सारा धन राज्यभंडारमें आ जाए। रोजके नियमानुसार सत्संग हुआ तो सही, मगर किसीको आनंद नहीं आया।

दो तीन दिनके बाद राजाके मनमें विचार पैदा हुआ कि जो पहले कभी नहीं उत्पन्न हुआ था ऐसा दुष्ट विचार मुझे नगरसेठके बारेमें कैसे उत्पन्न हुआ ?

मनुष्य पापको मनमें छुपाए रखता है, जिससे उसका जीवन बिगडता है। राजाने सारी हकीकत सेठसे कह दी। राजाने कहा तुम्हारे बारेमें मेरे मनमें बुरे विचार कभी नहीं आये। इसका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आ रहा है। क्या तुमने भी मेरे बारेमें कुछ बुरे विचार किये थे।

सेठने कहा कि मेरा चन्दनका व्यापार चलता नहीं है। सबका पोषण करना है। कोई माल लेता नहीं है, सो मैंने विचार किया कि यदि आप मर जाएं तो कितना अच्छा हो। आप मरेंगे तो आपको जलानेके लिए चन्दनकी जरूरत पडेगी और मेरा सारा चन्दन बिक जायेगा। राजाने सेठको उलाहना दी कि खराब विचार तुमने क्यों किया ? वैष्णव होकर ऐसे दुष्ट विचार करते हो, यह वैष्णवको शोभा नहीं देता। तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों न आया कि राजा अपने महलके दरवाजे चन्दनके बनवाये और इसलिए चंदन खरीद ले। राजा ठाकुरजीके लिए चन्दनका झूला बनवाये और मेरा चन्दन बिक जाए। इस प्रकार राजाका भी मन शुद्ध हो और बनिया सेठका मन भी। इसके बाद दोनोंमें एक दूसरेके प्रति शुभभावना जागी और दोनों सुखी हो गये।

भावशुद्धि सबसे बडा तप है। मानवजीवन तपके लिए ही है। जगत्‌के किसी भी जीवके प्रति वैर मत रखो। शुद्धभावनासे रहित किया गया सत्कर्म भी किसी कामका नहीं होता। उससे कई बार धर्म भी अधर्म बन जाता है। सत्कर्म करनेमें यदि हेतु शुद्ध नहीं हो, तो वह सत्कर्म भी पाप बन जाता है।

दक्ष प्रजापतिने शिवजीके प्रति कुभाव रखा अतः उसका धर्म अधर्ममें बदल गया। उसका यज्ञ उसको ही मारनेवाला हो गया।

प्रत्येक मनुष्यके प्रति सद्भाव रखनेसे कार्य सफल होता है। सबका कल्याण हो यही सत्य और सत्कार्य है।

' सत्यं भूतहितं प्रोक्तम् '

अनेकमें एकका दर्शन करना ही सबसे उत्तम है। एक ब्राह्मण यदि रास्तेमें किसी स्त्रीको देखकर उसमें लक्ष्मीकी भावना करेगा तो इससे उस स्त्रीमें बसे हुए अंतर्यामी ईश्वर उसको आशीर्वाद देंगे। जब कि एक कामी पुरुष कामभावसे उस स्त्रीको देखेगा तो उस स्त्रीमें बसा हुआ परमात्मा उसे शाप देगा। सभीमें ईश्वरभाव रखो। यदि तुम सबमें ईश्वरभाव रखोगे तो दूसरे भी तुममें ईश्वरभाव रखेंगे। कई बार धर्म भी अधर्म बन जाता है। उसका कारण यह है कि धर्म करनेवाला सबमें समभाव नहीं रखता। सबमें समभाव रखनाही सबसे उत्तम धर्म है। सबमें समभाव रखोगे तो सुखी होगे। सद्भावका अर्थ है ईश्वरका भाव। सबमें जो ईश्वरका भाव रखता है वह सुखी होता है। उसका धर्म भी सफल होता है। किसी भी जीवमें कुभाव रखनेवालेका धर्म सफल नहीं होता। महाभारतमें हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण कई बार अधर्म करते हैं। किन्तु उनके मनमें सबके लिये सद्भाव ही होता है, इसलिये उनका अधर्म भी धर्म बन जाता है। सबमें सद्भाव रखकर किया हुआ अधर्म भी धर्म बन जाता है।

महाभारतके कर्णपर्वमें और द्रोणपर्वमें इसी विषयके दृष्टांत मिलते हैं।

कर्णपर्वमें कहा गया है कि जिस समय कर्ण अपने रथका पहिया जमीनसे निकाल रहा था और निःशस्त्र था उसी समय भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि तू इस कर्णको मार।

कर्ण कहता है :– युद्धशास्त्रका नियम है कि जब शत्रु निःशस्त्र हो उस समय उस पर प्रहार न करो। अतः अर्जुनको मुझ पर प्रहार नहीं करना चाहिए।

तब श्रीकृष्ण कर्णसे कहते हैं :– कर्ण, तुमने आज तक धर्मका कितना पालन किया है? तुमने स्वयं तो धर्मका पालन किया नहीं है और दूसरेको धर्मपालन करनेका उपदेश देते हो। भरी सभामें द्रौपदीका अपमान किया गया उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?

इस प्रकार द्रोणपर्वमें कथा आती है। द्रोणाचार्य पांडवसेनाका विनाश कर रहे थे। श्रीकृष्णने सोचा यह बुड्ढा मरेगा नहीं तो अनर्थ होगा। इतनेमें अश्वत्थामा नामका हाथी मारा गया। श्रीकृष्णने सोचा कि यदि द्रोणाचार्यको कहा जाये कि तुम्हारा पुत्र मारा गया है तो पुत्रशोकके कारण वे युद्ध बन्द कर देंगे। यह सोचकर उन्होंने घोषणा करवा दी कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोणाचार्यने सोचा कि बेटा तो मार दिया गया है अब युद्ध क्यों करूँ? परन्तु यदि धर्मराज युधिष्ठिर कह दें कि अश्वत्थामा मार दिया गया है, तो मैं सच मानूं। युधिष्ठिरसे भगवान् कहते हैं– बोलो, अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिर कहते हैं कि राज्यके लिये मैं असत्य कैसे बोलूँ?

भगवान् कहते हैं कि दुर्योधन पापी है। वह मरेगा तो सुखी होगा और जीवित रहेगा तो अधिक पाप करेगा और दुःखी होगा। जिससे सबका कल्याण हो वही सत्य है। द्रोणाचार्य ब्राह्मण होकर भी अधर्मी दुर्योधनकी सहायता कर रहे हैं। वे पाप कर रहे हैं। द्रोणाचार्य अगर युद्ध छोड दें तो उनसे ज्यादा अधर्म नहीं होगा। इसलिये कहता हूँ कि बोलो कि 'अश्वत्थामा हतः'। भगवान्‌ने बहुत आग्रह किया इसलिये युधिष्ठिरको बोलना पडा कि 'अश्वत्थामा हतः'। असत्य बोलनेका पाप न लगे इसलिए वे उसके बाद बोले कि 'नरो वा कुंजरो वा'। परन्तु ये अंतिम शब्द किसीको सुनाई दें इससे पहले ही प्रभुने जोरसे शंखनाद कर दिया, अतः ये शब्द किसीको सुनाई न दिये।

दक्ष प्रजापतिका यज्ञरूप धर्म शिवजीके प्रति कुभाव रखकर करनेके कारण अधर्म बनकर उसको ही मारनेवाला बना। दूसरी तरफ श्रीकृष्णका असत्यभाषणरूप अधर्म भी सबके कल्याणके लिये किया गया होनेके कारण धर्मरूप बन गया।

सत्कर्म करते समय भाव शुद्ध रखो। हृदय शुद्ध रखो। शुद्ध भाव रखना ही सबसे बडा तप है। इसलिये तो 'सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे' यह मंत्र बोलकर प्रत्येक सत्कर्मका आरंभ किया जाता है। सबके प्रति सद्‌भाव रखो। सबको सद्‌भावसे देखो। सद्‌भावके बिना किया हुआ सत्कर्म सफल नहीं होता।

मैत्रेयजी कहते हैं :– मनु भगवान्‌के यहां तीन कन्याएं हुई। एक आकूति, दूसरी देवहूति और तीसरी प्रसूति। देवहूतिकी शादी कर्दमके साथ हुई थी। उनकी नौ कन्याएं हुई थीं। उन नौ कन्याओंका ब्याह नौ ब्रह्मर्षियोंके साथ हुआ था। प्रसूतिका ब्याह दक्ष प्रजापतिके साथ हुआ था। यह सब कथा कह चुके हैं। इन कर्दमकी कन्याओंके वंशका वर्णन करता हूं। मरीचि और कलाके यहां कश्यप और पूर्णिमा नामके दो पुत्र पैदा हुए। अत्रिकी पत्नी अनसूयाके यहां दत्तात्रेय, दुर्वासा और चंद्रमा नामके तीन पुत्र हुए। वे अनुक्रमसे विष्णु, शंकर और ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न हुए थे।

विदुरजी पूछते हैं कि— इन सर्वश्रेष्ठ देवोंने अत्रि मुनिके यहां क्या करनेकी इच्छासे अवतार लिया था, वह कथा कहिए।

मैत्रेयजी कहते है :— दत्तात्रेय अत्रिके घर आये है। पुरुष यदि अत्रि जैसा तपस्वी बने और स्त्री अनसूया जैसी तपस्विनी बने तो आज भी उनके घर दत्तात्रेय आनेको तैयार हैं।

न-त्रि वह अत्रि। सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंका जो नाश करे और निर्गुणी बने वही अत्रि है। सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें जीव मिल गया है। इन तीन गुणोंसे जीवको अलग होना है।

तर्जनी उंगली जीवभाव बनाती है- अभिमान बताती है। जीवमें अभिमान प्रधान है। पांचवीं उंगली सत्त्वगुण है। अंगूठा ब्रह्म है, इसीलिए पुष्टिसंप्रदायमें प्रभुको तिलक अंगूठेसे लगाया जाता जाता है। वेदमें ब्रह्मका 'नेति' कहकर वर्णन किया गया है। इस जीव ब्रह्मका संबंध सतत होना चाहिए।

इन तीन गुणोंमें जीव मिलता है। और इन तीन गुणोंको छोडकर ब्रह्म संबंध करना है। जो त्रिगुणातीत ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुआ है वह अत्रि है।

शरीरमें जो तमोगुण है उसे रजोगुणसे मारो, दूर करो। रजोगुणको सत्त्वगुणसे मारो। रजोगुण काम और क्रोधका जनक है। सत्कर्मसे सत्त्वगुण बढता है। सत्त्वगुण भी बंधनकर्ता है। इसमें भी थोडा अहंभाव रह जाता है। अतः अंतमें सत्त्वगुणसे ही सत्त्वगुणको मारना है। सत्त्वगुणका भी त्याग करना है और निर्गुणी होना है। यदि जीव अत्रि हो तो उसकी बुद्धि अनसूया हो। असूयासे रहित बुद्धि ही अनसूया है। बुद्धिमें सबसे बडा दोष असूया-मत्सर है। दूसरोंका भला देखकर ईर्ष्या करना, जलना यही असूया या मत्सर है।

दूसरोंके दोषोंका विचार श्रीकृष्णदर्शनमें विघ्नकर्ता है। बुद्धिमें जबतक असूया-मत्सर होगा, तबतक ईश्वरका चिंतन नहीं कर सकेंगे। भगवान्का दर्शन सबमें करना है। यदि जीव सबमें ब्रह्मका दर्शन करे तो वह कृतार्थ होता है।

जिसकी बुद्धि असूयारहित होती है वही अत्रि बनता है। तत्पश्चात् दत्तात्रेय पधारते हैं। जीव तीन गुणोंका त्याग करके निर्गुणी बने और बुद्धि असूयारहित बने, तब ईश्वर प्रकट होते हैं।

प्रभुके स्मरणसे बुद्धि जागृत होती है। असूया ईश्वरके मार्गमें आगे बढनेमें रुकावट करनेवाली है। असूया ज्ञानशक्तिके मार्गमें रुकावट करती है। इसलिए किसीसे असूया मत करो। जब बुद्धि अनसूया बनती है तब वह ईश्वरका चिंतन कर सकती है।

अनसूया महान् पतिव्रता हैं। एक बार देवर्षि नारद कैलासमें आए। शंकर समाधिमें थे। पार्वतीजी पूजन कर रही थीं। पार्वतीजीने नारदजीको प्रसाद दिया। नारदजी कहते हैं कि लड्डू बहुत स-रस हैं। आज आपके हाथका प्रसाद मिला है। परन्तु उस अनसूयाके घरके लड्डू आपके लड्डूसे श्रेष्ठ हैं। पार्वतीजी पूछती हैं कि यह अनसूया है कौन ? नारदजी कहते हैं कि आप पतिव्रता हैं मगर अनसूया महान् पतिव्रता हैं। पार्वतीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई। अनसूया मुझसे भी बढकर हैं। श्रीशंकर जब समाधिसे जागे तो पार्वतीने वन्दन किया।

घरके आदमी बहुत वंदना करे तो समझ लेना कि गड्ढेमें उतारनेकी तैयारी है। शंकरने पूछा— देवी, क्या बात है ? पार्वतीने कहा कि किसी भी प्रकारसे अनसूयाका पातिव्रत्य भंग हो ऐसा करो।

शिवजी कहते हैं :— जो दूसरोंका बुरा करनेकी इच्छा करता है, उसका ही बुरा होता है। इसमें कल्याण नहीं है देवी। परन्तु तेरी इच्छा है तो प्रयत्न करूंगा।

इस ओर नारदजी वैकुंठमें आये। लक्ष्मीजीसे मिले। उन्होंने नारदजीसे पूछा कि आज इतने आनन्दमें क्यों हैं? नारदजी कहते हैं कि वैकुंठकी महिमा तो पहले थी परन्तु अब तो अनसूयाके आश्रमके सिवा कहीं भी जानेकी इच्छा नहीं होती। मैं उनके आश्रमसे आ रहा हूं अतः अति आनन्दमें हूं। लक्ष्मीजी पूछती हैं कि यह अनसूया है कौन? नारदजी कहते हैं कि वह तो महान् पतिव्रता है। लक्ष्मीजीने श्रीविष्णुसे कहा कि आप कुछ ऐसा करें कि जिससे अनसूयाका पतिव्रत भंग हो।

पार्वतीका अर्थ है बुद्धि। बुद्धि-विद्यामें मत्सर है। लक्ष्मीका अर्थ है द्रव्य। द्रव्यमें ईर्ष्या अर्थात् असूया रहती है। ब्रह्माणी रजोगुण है।

सावित्रीने भी इसीप्रकार ब्रह्माजीसे विनती की।

शंकर-विष्णु-ब्रह्मा तीनों देवता चित्रकूटमें एक साथ मिले। तीनों देवता अनसूयाके आश्रममें आये। भिक्षा मांगते हुए उन्होंने कहा कि हम भिक्षा मांगते हैं मगर आप नग्न होकर भिक्षा दें तो हम लेंगे। अनसूया सोचती है कि यदि नग्न होकर भिक्षा दूंगी तो मेरा पातिव्रत्य भंग होगा और अगर भिक्षा नहीं दूं तो घर-आंगनमें आये हुए अतिथि वापस जायेंगे तो यह महापाप होगा। मुझे पाप लगेगा।

प्रभु कहते हैं कि हमें नग्न होकर भिक्षा दो। अर्थात् वे कहते हैं कि वैष्णव, मुझे वासनारहित होकर भिक्षा दो। ईश्वरको वासनारहित होकर निष्काम होकर सब कुछ अर्पण करना है।

अनसूयाके मनमें कोई वासना नहीं थी। सूक्ष्म वासना भी यदि मनमें हो तो ये तीन देवता उसके पास नहीं आते।

अनसूयाने ध्यान किया और तीनों देवताओं पर पानी छिडका। तीनों देव बालक बन गये। पतिव्रतामें इतनी शक्ति होती है।

पार्वती सोचती हैं कि शिवजी प्रातःकालके गये हैं फिरभी अभी तक आये नहीं हैं। लक्ष्मी और सावित्री भी अपने अपने पतियोंको खोजने निकली हैं। तीनों देवियां चित्रकूटमें आयीं। इतनेमें नारदजी भी वहां आ पहुंचे और अनुष्ठानमें बैठे। देवियोंने उससे पूछा हमारे पतिका कुछ समाचार जानते हो। नारदजी कहते हैं कि पहले यह तो बताओ कि बडी कौन हैं, आप या अनसूया। देवियां कहती हैं कि अनसूया बडी हैं। परन्तु हमारे पति हैं कहां? नारदजीने कहा-सुना है कि आपके पति बालक बन गये हैं। वे अनसूयाके घरमें मिलेंगे।

दूसरोंसे असूया करनेवालोंको शान्ति नहीं मिलती। देवियां डरती हैं। सोचती हैं कि यदि हम वहा जायें और अनसूया यदि शाप दे तो? नारदजी कहते हैं कि आप भले मत्सर करें परन्तु अनसूया मत्सर नहीं करेंगी। अनसूया तो आपको सद्भावसे देखेंगी। आपके प्रति सद्भाव रखेंगी। देवियां आश्रममें आती हैं। अनसूयाने देवताओंसे अनेक प्रतिज्ञायें करवायीं हैं। आजसे प्रतिज्ञा करो कि पतिव्रताको कभी कष्ट नहीं दोगे। जगत्की किसी भी स्त्रीको नहीं सताओगे। इतनेमें अत्रि ऋषि पधारते हैं। ये तीन बालक कौन हैं? अनसूया कहती हैं ये तीन मेरे बालक हैं और ये तीन बालकोंकी स्त्रियां हैं। अत्रि ऋषि कहते हैं, देवी, ऐसा न

कहा। ये तीन महान् देवता हैं। इसके बाद जल छिडका और तीनों देवता प्रकट हुए। तीनों देवता कहते हैं कि आपके आंगनमें हम बालक होकर खेलते थे। वह सुख सदाके लिये आपको हम देंगे। इन तीनों देवताओंके तेज मिलकर दत्तात्रेयके रूपमें प्रकट हुए हैं।

जब यह जीव कुछ मांगता नहीं है तब परमात्मा उसको अपने स्वरूपका दान करते हैं।

मार्गदर्शन गुरुकृपाके सिवा मिलता नहीं है। गुरु दत्तात्रेय मार्गदर्शन करानेवाले हैं। इसलिए उनका जन्म मार्गशीर्ष मासमें हुआ है।

पहले अध्यायमें कर्दम ऋषिकी कन्याओंके वंशका वर्णन किया गया है।

दक्ष प्रजापति और प्रसूतिके यहां सोलह कन्यायें हुईं। उनमेंसे तेरह उन्होंने धर्मको, एक अग्निको, एक पितृगणको और सोलहवीं सती श्रीशंकरजीको दी।

धर्मकी तेरह पत्नियां कही गई हैं। उनके नाम हैं– श्रद्धा, दया, मैत्री, शांति, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, स्मृति, तितिक्षा; धृति और मूर्ति। धर्मके तेरह ब्याह हुए हैं। इन तेरह गुणोंको जीवनमें उतारनेसे धर्म जरूर फलता है। इन तेरह गुणोंके साथ ब्याह करोगे तो भगवान् मिलेंगे।

धर्मकी पहली पत्नी है श्रद्धा। ईश्वरमें श्रद्धा रखो। धर्मकी प्रत्येक क्रिया श्रद्धासे करो। श्रद्धा दृढ होनी चाहिए।

एक दिन नामदेवजीके पिताजीको कहीं बाहर जानेका प्रसंग आया। नामदेवजी उस समय छोटी उम्रके थे। घरमें देवपूजा रखी हुई थी। उस पूजाका काम नामदेवको सौंप दिया गया था। पिताजीने नामदेवको पूजाकी विधि समझा दी। उसी तरह नामदेवजी भगवान्‌को दूधके प्रसादका भोग धरते हैं। भगवान् दूध पीते नहीं हैं। नामदेवजी बहुत मिन्नते करते हैं। रोज तो पिताजीके हाथसे आप भोगको स्वीकार करते हैं। आज मुझसे कुछ भूल हुई है क्या? आप दूध क्यों नहीं पीते?

पिताजीने नामदेवसे कहा था कि भगवान् विट्ठलनाथ शरमाते हैं उनको मनाना पडता है। इसलिए नामदेव बहुत मनाते हैं। विट्ठलनाथ, यदि आप दूध नहीं पीयेंगे तो मेरे पिताजी मुझे मारेंगे। विट्ठल, दूध पीओ ना! पर जब सब विनती व्यर्थ हो गई तो नामदवजी मूर्तिके आगे अपना सर फोडनेको तैयार हो गए। वे बोले– विट्ठल, दूध पीना है कि नहीं? दूध नहीं पीओगे तो मैं अपना सिर फोड लूंगा।

भगवान् नामदेवजीकी दृढ श्रद्धा और भक्ति देखकर प्रसन्न हुए। ज्योंही नामदेव सिर पटकनेको तैयार हुए वहां भगवान् प्रकट हो गये। भगवान्‌ने दूधका कटोरा ले लिया और दूध पीने लगे। पांच वर्षके नामदेव भगवान्‌को दूध पिलाते हैं। जब नामदेवको लगा कि भगवान् विट्ठलनाथ सारा दूध पी जायेंगे, तो उन्होंने प्रभुको जोरसे आवाज दी– विट्ठल, तुम तो सारा दूध पीये जा रहे हो। क्या मुझे प्रसादी नहीं दोगे? पिताजी तो मुझे रोज प्रसादी देते हैं। नामदेवका प्रेम देखकर विट्ठलनाथजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभुने नामदेवको गोदमें ले लिया और दूध पिलाया।

दृढ श्रद्धाभक्तिसे, दृढ प्रेमसे जड भी चेतन बनता है।

जीवमात्रके साथ मैत्री रखो।

श्रीधरस्वामीने कहा है: सबके साथ मैत्री रखना तो शक्य नहीं है पर यदि सबके साथ मैत्री न हो सके तो कोई हर्ज नहीं मगर किसीके साथ वैर मत रखो। किसीसे वैर न करना भी मैत्री करनेके समान है।

धर्मकी तेरहवीं पत्नी है मूर्ति और उनके घर नर-नारायण प्रकट हुए हैं। नारायणके माता-पिता मूर्ति और धर्म हैं। मूर्तिमें प्रेम रखो। जो मूर्तिको माता और धर्मको पिता मानेंगे उनके यहा नारायणका जन्म होगा। बद्रिनारायण भगवान् सालमें एक बार मूर्तिदेवीसे मिलनेके लिये आते हैं। धर्म पिता है और मूर्ति माता है। यदि धर्मका बराबर पालन करोगे तो तुम्हारे घर नारायण प्रकट होंगे।

दक्षप्रजापतिकी छोटी कन्या सतीका विवाह शिवजीके साथ हुआ है। दक्ष प्रजापतिने शिवजीका अपमान किया, इसलिए सतीने अपना शरीर यज्ञमें भस्म कर दिया। भगवान् शंकर महान् हैं। सचराचर जगत्के गुरु हैं। संत ज्ञानेश्वरजीने ज्ञानेश्वरीमें कहा है : जगत्में जितने धर्म-संप्रदाय हैं उनके आदि गुरु श्रीशंकर हैं। गुरु किए विना मत रहो। सभी मंत्रोंके आचार्य शिवजी हैं। इसलिए उनको गुरु मानकर मंत्रदीक्षा लेनी चाहिए।

विदुरजी पूछते हैं-देवोंमें सबसे श्रेष्ठ शिवजीके साथ दक्ष प्रजापतिने वैर किया इस बातको सुनकर बहुत आश्चर्य होता है। यह कथा मुझे विस्तारसे सुनाइए।

मैत्रेयजी कहते हैं प्राचीनकालमें प्रयागराजमें बडा ब्राह्मसत्र हुआ था। त्रिग्रहोंका योग जब होता है तब कुम्भ होता है। गरुड जब अमृत लेकर जा रहा था तब चंद्र, सूर्य और गुरु इन तीनोंने अमृतकुंभकी रक्षा की थी।

ज्ञान और भक्ति जब मिलते हैं तब मानवसमाजमें सुख और शांति होती है।

प्रयागराजमें बडा ब्रह्मसत्र हुआ। सभामें शिवजी अध्यक्षके स्थान पर थे। उस समय दक्ष प्रजापति वहां आये। जहां भी मनुष्य बैठा हो वहीं भक्ति करे, वह उत्तम भक्त है। शिवजी महाराज भगवान् नारायणका ध्यान कर रहे थे। सभामें कौन आया और कौन गया इसका उनको भान नहीं था। दक्ष वहां आये। दूसरे देवोंने उठकर उनका सम्मान किया, परन्तु शिवजी खडे नहीं हुए। उस समय क्रोधमें आकर दक्षने शिवजीकी निंदा की। श्रीधरस्वामीने तो निंदामेंसे भी स्तुतिके अर्थ निकाले हैं। अर्थात् इन निंदाके शब्दोंमेंसे भी शिवजीकी स्तुतिरूप अर्थ निकाले हैं। श्रीमद् भागवत पर सबसे उत्तम टीका श्रीधरस्वामीकी मानी गयी है। वे नृसिंह भगवान्के भक्त थे।

दशम स्कंधमें श्रीकृष्णकी शिशुपालने निंदा की है। उसका श्रीधरस्वामीने स्तुतिपरक अर्थ किया है क्योंकि निंदा सुननेसे भी पाप लगता है। निंदा नरकके समान है। जो व्यक्ति उपस्थित न हो उसके दोषोंके वर्णन करनेको निन्दा कहते हैं। शिवजीकी निन्दा भागवत जैसे ग्रंथमें शोभास्पद नहीं है।

दक्ष प्रजापतिने निंदा करते हुए कहा : " शिव श्मशानमें रहनेवाला है।" परन्तु यह तो स्तुतिरूप है। सारा जगत् श्मशान समान है। काशी महान् श्मशान है। देह भी श्मशान है। घर भी श्मशान है। इस प्रकार श्मशानका अर्थ है सारा जगत्। अर्थात् शिवजी संसारकी हरएक चीजमें विराजे हुए हैं। सारा जगत् श्मशानरूप है और शिवजी जगत्के प्रत्येक पदार्थमें व्याप्त हैं इसलिए वे व्यापक ब्रह्मरूप हैं। जगत्की प्रत्येक चीजमें शिवतत्त्व है। ब्रह्मतत्व व्यापक है।

भगवान् शंकर आशुतोष हैं। शिवजीके दरबारमें हरेकको प्रवेश मिलता है। ऋषि, देव, दानव और भूतपिशाच भी आते हैं। शिवजीका दरबार सबके लिए खुला रहता है। शिवजीका दरबार सबके लिए यदि खुला न होता तो ये बेचारे भूतपिशाच कहां जाते?

+

रामजीके दरबारके दरवाजे पर हनुमान्‌जी गदा लेकर खडे रहते हैं कि जिसने मेरे रामजीकी तरह भाई पर प्रेम रखा हो, रामजीकी तरह मर्यादाका पालन किया हो, परस्त्रीको माता समान माना हो उसे ही अंदर जानेका अधिकार है। रामजीकी प्रत्येक मर्यादाका पालन करोगे तो रामजीके दरबारमें प्रवेश मिलेगा। इस प्रकारका वर्ताव न हो तो हनुमान्‌जी गदा मारकर बाहर निकाल देते हैं। रामजी राजाधिराज हैं। उनके दर्शन रात्रिके बारह बजेके बाद नहीं होते। शिवजीके दर्शन जिस समय चाहो उसी समय हो सकते हैं। शिवजी कहते हैं कि तुझे जब भी समय मिले तब आ। मै ध्यान धरकर बैठा हूं। कृष्णके दरबारकी बात दशम स्कंधमें आती है। कन्हैया कहता है, मेरे दरबारमें आना हो तो साडी पहननी पडेगी, नाकमें बाली पहननी पडेगी। वह कहता है कि, मेरे दरबारमें आना हो तो गोपी बनो। गोपी बनकर आओगे तो मेरे दरबारमें प्रवेश मिलेगा।

जिसकी अपेक्षा कम होती है वह उदार बन सकता है।

एक बार कुबेर भंडारी शिवजीसे पूछते हैं– "आपकी क्या सेवा करूं ?" शिवजी कहते हैं– "जो दूसरोंके पाससे सेवा मांगता है और लेता है वह वैष्णव नहीं है। दूसरोंकी सेवा करता है वही वैष्णव है। मेरी तरह "नारायण नारायण" करो। "माताजीने (पार्वतीजीने) कुबेरसे कहा– 'मेरे लिए सुवर्णमहल बांध दो। कुबेरने सुवर्णमहल बनवा दिया। वास्तुपूजा किए बिना तो महलमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। वास्तुपूजाके लिए रावणको बुलाया गया। रावणने वास्तुपूजा कराई।

शिवजीने रावणसे कहा :— 'जो मांगना हो वह मांग लो।' रावण कहता है 'यह अपना महल ही मुझे दे दो।'

पार्वतीजी कहती हैं– 'मैं जानती थी कि ये लोग कुछ भी रहने नहीं देंगे।'

मांगनेवालेको नहीं देना मरणके समान है। शिवजीने सुवर्ण महल रावणको दे दिया। रावण जैसा कोई मूर्ख नहीं हुआ है। रावणने कहा– महाराज, महल तो सुन्दर दिया अब इस पार्वतीको भी मुझे दे दो। शिवजीने कहा– तुमको जरूरत हो तो ले जाओ।'

जगत्‌में ऐसा दानवीर कोई नहीं हुआ। रावण माताजीको कंधे पर बिठाकर ले जा रहा है। पार्वतीने श्रीकृष्णका स्मरण किया। श्रीकृष्ण ग्वाल बनकर मार्गमें आए। उन्होंने रावणसे पूछा– 'तुम किसे ले जा रहे हो ?' रावण बोला– 'शंकर भगवान्‌ने मुझे पार्वती दे दी है।'

श्रीकृष्णने कहा– 'तू कितना भोला है ? शिवजी क्या तुझे पार्वती दे देंगे ? असल पार्वतीको तो वे पातालमें छिपाकर रखते हैं। यह तो तुमको पार्वतीकी दासी दे दी है। दासी देकर तुमको बहला दिया है। असल पार्वतीके देहमेंसे तो कमलकी सुगंध आती है। इसके शरीरमेंसे क्या ऐसी सुगंध आती है ?

रावण दुविधामें पड गया। पार्वतीजीकी रावणके साथ जानेकी इच्छा नहीं थी। उन्होंने शरीरमेंसे दुर्गंध निकाली। रावणने उसी जगह पार्वतीको छोड दिया। रावण चला गया। बादमें प्रभुने उसी जगह माताजीकी स्थापना की, वही द्वैपायनी देवी है।

दक्ष बोला– 'शिव स्वैरचारी तथा गुणहीन हैं।'

प्रकृतिके कोई भी गुण शिवजीमें नहीं हैं अतः वे निर्गुणब्रह्म विधिनिषेधातीत परमात्मा हैं। शास्त्रकी प्रवृत्ति, विधिनिषेधकी प्रवृत्ति अज्ञानी जीवके लिए है, शिवजीके लिए नहीं।

दक्ष प्रजापतिने कहा– " आजसे किसी भी यज्ञमें दूसरे देवोंके साथ शिवजीको आहुति नहीं दी जायगी। " श्रीधरस्वामीने अर्थ किया है– सब देवताओंके साथ नहीं। शिवजी सभी देवोंसे श्रेष्ठ हैं अतः महादेव हैं। इतर देवोंसे पहले शिवजीको आहुति दी जायगी और यज्ञके बाद जो बचेगा वह भी समाप्तिमें शिवजीको दिया जायेगा।

शिवपुराणमें कथा है। शंकर और पार्वतीकी शादी हो रही थी। विवाहके समय तीन पीढीका वर्णन करना पडता है। शिवजीसे कहा गया कि अपने पिताका नाम बताइये। शिवजी सोचमें पड गये। ' मेरा पिता कौन '? महारुद्र शिवका जन्म नहीं है। नारदजीने कहा – बोलो ' मेरे पिता ब्रह्मा हैं। ' शिवजीने कहा – मेरे पिता ब्रह्मा हैं। फिर पूछा गया – तुम्हारे दादा कौन हैं? शंकर बोले ' विष्णु दादा हैं। ' फिर पूछा गया– ' आपके परदादा कौन हैं? यह सुनकर शिवजी बोले– मैं ही सबका परदादा हूँ। '

जगतः पितरौ वंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।

शिवजी महादेव हैं। सूतजी वर्णन करते हैं राजन्, शिवजीके मस्तकमें ज्ञानरूपी गंगा थी, अतः निंदा सुनकर भी सहन कर ली। शंकरके मस्तकमें ज्ञानगंगा है।

श्रीकृष्णके चरणोंमें ज्ञानगंगा है। अतः वे शिशुपालकी निंदा सहन करते हैं।

प्रतिकार करनेकी शक्ति होने पर भी जो सहन करता है वही महापुरुष है। वह धन्य है।

जिसके सिरपर ज्ञानगंगा हो, वही निंदा सहन कर सकता है। निंदा सहना बहुत कठिन है। निंदा सहन करोगे तो प्रगति कर सकोगे।

जो कलह बढाता है वह वैष्णव नहीं है अतः शिवजी सभामें एक भी शब्द नहीं बोले।

सभामें नंदिकेश्वर विराजे थे। उनसे यह सब नहीं सहा गया। उन्होंने दक्षको तीन शाप दिये। जिस मुखसे तूने निंदा की है वह तेरा सिर टूट जायगा। तेरे सिरके बदलेमें बकरेका सिर लगाया जायेगा और तुझको ब्रह्मविद्या कभी प्राप्त न होगी।

शिवजी की निंदा करनेवालेको कभी मुक्ति नहीं मिलती। शिवतत्त्वको छोडनेवाली बुद्धिको संसारमें भटकना पडता है। उसे दुःख होता है और कभी शांति नहीं मिलती। शिवनिंदा करनेवाला कामका विनाश नहीं कर सकता।

शिवजी कहते हैं– ' तुम क्यों शाप दे रहे हो? ' शिवजीने सोचा मैं नहीं बोलूंगा तो नंदिकेश्वर दूसरे देवोंको भी शाप देंगे। तुरंत ही वे कैलास आ गए। शिवजीने मनमें कुछ नहीं रखा। सतीसे भी कुछ न कहा। भूतकालका जो विचार करता है उसे भूतने घेर रखा है ऐसा ही समझना चाहिए।

इसके बाद दक्षने कनखल क्षेत्रमें यज्ञका आरंभ किया। उसने ऐसा दुराग्रह किया कि यज्ञमें मैं विष्णुकी तो पूजा करूंगा किंतु शिवजीकी पूजा नहीं करूंगा। देवोंने उससे कहा कि तेरा यह यज्ञ सफल नहीं होगा। फिर भी दुराग्रहसे उसने यज्ञ किया ही। जिस यज्ञमें शिवपूजा न हो, वहां विष्णु भी नहीं पधारते। ब्रह्मदधीचि भी यज्ञमें नहीं गए। कुछ देवता कलह देखनेमें आनंद आएगा ऐसा सोचकर उधर जानेको निकले। विमानमें बैठकर देवता जा रहे थे। सतीने इन विमानोंको देखा। सतीने सोचा कि ये देवकन्याएं कितनी भाग्यवाली हैं। ये लोग कहां जा रहे होंगे? एक देवकन्याने कहा– आपके पिताके यहां यज्ञ है वहां हम जा रहे

हैं। क्या आपको मालूम नहीं है ? क्या आपको आमंत्रण नहीं दिया गया है ? दक्षने द्वेषबुद्धिसे शिवजीको आमंत्रण नहीं दिया था। सतीको मालूम नहीं था कि पति और पिताके बीच अनबन हो गई है। उसका मन पिताके यहां जानेके लिए अधीर हो उठा। शिवजी समाधिसे जागे। शिवजीने कहा, देवी, आज बहुत आनन्दमें हो ?

सतीने कहा : आपके ससुरजी महायज्ञ कर रहे हैं।

शंकरने कहा : देवी, इस संसारमें किसीके घर विवाह, तो किसीके घर मरण। संसार दुःखसे भरा हुआ है। सुखरूप तो एक परमात्मा ही हैं : तेरे और मेरे पिता तो नारायण ही हैं।

सतीने कहा- महाराज ! आप कैसे निष्ठुर हैं। आपको किसी भी संबंधियोंसे मिलनेकी इच्छा तक नहीं होती।

शंकर- देवी, मैं सबसे मनसे मिलता हूं। किसीको शरीरसे नहीं मिलता। प्रत्यक्ष शरीरसे किसीसे मिलनेकी इच्छा नहीं होती।

सती- आप तत्त्वनिष्ठ है, ब्रह्मरूप हैं। किन्तु नाथ, मेरी वहां जानेकी बहुत इच्छा है। आप भी चलिये, आपका संमान होगा।

शिवजी- मुझे संमानकी इच्छा नहीं है।

सती- नाथ, आप सर्वज्ञ हैं, मगर व्यवहारका ज्ञान नहीं है। हम किसीके घर नहीं जायेंगे तो हमारे घर कोई नहीं आयेगा।"

शिवजी- बहुत अच्छा। कोई नहीं आएगा तो बैठे बैठे राम राम करेंगे।

सती- बुरा न मानो तो कहूं। कन्याको मायकेमें जानेसे कितना सुख मिलता है इसका आपको ज्ञान नहीं है। आप यदि कन्या हो जाएं और आपका विवाह हो तभी आपको मालूम हो कि कन्याको मायके जानेमें कितना आनन्द मिलता है। आपको आना ही पडेगा।

शिवजी- देवी, जगत्‌में भटकनेसे शान्ति नहीं मिलती। एक जगह बैठकर प्रभुको खुश करो। मनमें जबतक जड पदार्थ या दूसरा जीव रहता है तबतक परमात्मा वहां नहीं आते। बहुत भटकनेवालोंका मन और बुद्धि बहुत भटकती है।

सती अर्थात् बुद्धि शंकर-भगवान्‌को छोडकर जाती है तो बहुत भटकती है।

शिवजी कहते हैं- तेरे पिताने मेरा अपमान किया है। वहां जानेमें कोई भलाई नहीं है।

सती- नाथ, आपकी कुछ भूल हुई होगी। मेरे पिता मूर्ख नहीं हैं कि बिना कसूर आपको अपशब्द कहें।

शिवजी- मैंने उनका कोई अपमान नहीं किया।

शिवजीने यज्ञप्रसंग कह सुनाया।

सतीचरित्रमें पितृस्नेह और पतिनिष्ठाकी खींचतान है।

सती- आपने मेरे पिताको क्यों मान नहीं दिया ?

शिवजी- मैंने तेरे पिताको मनसे मान दिया था। मैं कभी किसीका अपमान नहीं करता।

सती- यह तो वेदान्तकी परिभाषा लगती है। मेरे पिताके अंतरमें बसे हुए वासुदेवको आपने वंदना की थी यह मेरे पिताको कैसे मालूम हो सके ? आप यह बात अब भूल जाएं।

शिवजी- देवी, मैं भूल गया हूं मगर तेरे पिता अब तक नहीं भूले हैं।

शिवजीने सतीको बहुत समझाया कि जहां मुझे मान नहीं मिलता है वहां जानेसे तेरा अपमान होगा। तू मानिनी है । अपमान सहन न कर सकेगी । वहां मत जा । अनर्थ होगा ।

सती न मानी । उसने सोचा कि यज्ञमें नहीं जाऊंगी तो पति और पिताके बीच वैर बढेगा । सबको यह वैरकी बात मालूम होगी । उसने सोचा कि मैं वहां जाकर पिताजीसे कहूंगी कि मैं तो बिना आमंत्रणके ही आ गई हूं किन्तु मेरे पति नहीं आएंगे, अतः भाईको उनको बुलानेके लिए भेज दो। पिता पतिके बीच जो वैर उत्पन्न हो गया है, उसे मैं शांत करूंगी। आज पतिकी आज्ञाके विरुद्ध मैं पिताके घर जाऊंगी । सतीने घर छोडा । जिस दिन घरमें झगडा हुआ हो उस दिन घर छोडना नहीं चाहिए । जो घर छोडता है वह बाहर सुखी नहीं हो सकता । शिवजीने सोचा सती जा रही है तो अब वापस नहीं आएगी । जाने दो । किंतु वह अकेली जाए यह ठीक नहीं है। शिवजीने उनके गणोंको आज्ञा दी कि तुम भी साथ जाओ।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं :- राजन्, शिवगण आ गये । उन्होंने कहा, मां, तुम चल कर जाओ यह ठीक नहीं है । सती नंदिकेश्वर पर सवार हो गई । शिवजीने सतीकी साडी आदि चीजें गठरीमें बांध दीं । यह शिव और सतीका अंतिम मिलन था । शिवजीने सोचा, सतीकी कोई चीज यहां रहेगी तो मेरे कृष्णभजनमें विक्षेप करेगी ।

मनमें विकार उत्पन्न हो ऐसा कोई चित्र घरमें नहीं रखना चाहिए । वह चित्र मनमें आयेगा तो कृष्णभजनमें विघ्न करेगा । सतीने कहा- इन सब चीजोंकी क्या जरूरत है ?

शिवजीने कहा- देवी, तुमको जरूरत पडेगी, सब साथ ले जाओ ।

सतीको बहुत जल्दी जाना था । इसलिए व्यासजीने रास्तेका वर्णन नहीं किया है। सतीजी यज्ञमंडपमें पधारती हैं । वह शंकरकी अर्धांगिनी हैं । सारा जगत् उनका संमान करता है । ऋषि मुनि भी उनका संमान करते हैं, मगर सतीको इससे संतोष नहीं हुआ ।

आदिशक्ति जगदंबाने दक्षको प्रणाम किया है । सतीको देखकर दक्ष क्रोधित हुआ । वह गरबा क्यों इधर आयी है ? और यह कहकर उसने मुंह फेर लिया । दक्ष, दक्ष नहीं, अदक्ष है । शिवमहिम्न स्तोत्रमें लिखा है :—

> क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता–
> मृषीणामार्त्विज्यं शरणदसदस्याः सुरगणाः ।
> क्रतुभ्रंषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
> ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥

श्रीधरस्वामीने कहा है : क्रिया दक्षः अपि अदक्षः मूर्खः । दक्ष क्रियादक्ष नहीं अपितु क्रिया अदक्ष था ।

सती सोचती हैं, मेरे पिताजी मेरे सामने भी नहीं देखते । मेरी अब यहां रहनेकी इच्छा नहीं है । मैं घर जाऊंगी । शिवजी उदार हैं, वे मुझे स्वीकार करेंगे । माता सती यज्ञमंडपमें भ्रमण करती हैं । सब देवताओंकी स्थापना की गई थी। केवल शिवजीकी स्थापना नहीं थी। सतीने देखा कि यज्ञमें सब देवताओंको यज्ञभाग दिया गया है परन्तु शिवजीको नहीं दिया गया है । शिवजीके लिए आसन भी नहीं रखा गया था । आज ईशान दिशा खाली

थी। दक्ष प्रजापतिने सतीका अपमान किया, पर वह सतीने सहन किया। परन्तु सतीसे अपने पतिका अपमान न सहा गया। सतीको बहुत दुःख हुआ। जगदंबा क्रोधित हुईं। सिर पर बंधी हुई फूलोंकी वेणी भी छूट गई। यह देखकर देवता माताजीको वंदन करने लगे और बोले माताजी क्रोध न कीजिए। " सती कहती हैं आप गभराईए नहीं। अब मैं क्रोध अपने शरीर पर करूंगी। इस शरीरसे मैंने पाप किया है। पतिकी आज्ञाका मैंने भंग किया है। इस शरीरको अब मैं जला दूंगी। सभामें जगदंबाने तेरह श्लोकोंमें भाषण दिया। अरे, तेरे जैसा विषयी शिवतत्त्वको क्या जानेगा? जो शरीरको आतमा मानता है। वह शिवतत्त्वको क्या जाने? बडे बडे देवता शिवके चरणोंका आश्रय लेते हैं। शिवकृपाके सिवा कृष्णभक्ति सफल नहीं होती। प्रवृत्ति निवृत्तिसे परे होकर स्वरूपमें मग्न रहनेवाले शिवजी परब्रह्म परमात्मा हैं। मुझे दुःख हो रहा है कि शिवानिंदा करनेवाले दक्षकी मैं पुत्री हूं।

सती उत्तर दिशाके प्रति मुख रखकर बैठी हैं। देहको छोडनेके लिए योगमार्गमें स्थित होकर बैठी हैं। शिवजीका ध्यान करते करते उन्होंने शरीरमें अग्नितत्त्वकी भावना की है। अंदरसे क्रोधाग्नि बाहर आयी। शरीर जलने लगा। आदिशक्ति जगदंबाका अपमान हुआ। अब दक्षका कल्याण नहीं।

नारदजी कैलासमें शिवजीके पास पधारे हैं। भगवान् शंकर सनकादि ऋषियोंको ब्रह्म-विद्याका उपदेश कर रहे हैं। नारदजी कथामें बैठे हैं। वे सोच रहे हैं कि शिवजी कैसे भोले हैं, सतीने शरीरको जला दिया फिर भी उनको दुःख नहीं हुआ। नारदजी रो रहे हैं। वे शिवजीसे कह रहे हैं- आप विधुर हो गए हैं। आपका अपमान हुआ वह सतीसे नहीं सहा गया। सतीने अपनी देह जल डाली है। आदिशक्तिका नाश नहीं होता। सती अदृश्य रूपसे शिवमें मिल गयी हैं।

नारदजी कहते हैं: आप इन लोगोंको दंड दीजिए। शिवजी कहते हैं: मुझे किसीको भी सजा नहीं देनी है। जो गंगाजीको सिर पर रखता है उसे क्रोध कैसे आयेगा? शिवजी परमात्मा हैं, उन्हें क्रोध नहीं आ सकता। काम कष्ट नहीं दे सकता।

बहुत सरल मनुष्यको जगत्में लोग दुर्बल मानते हैं। नारदजीने जब कहा कि आपके गणोंको मारा गया है तब वे कुछ क्रोधित हुए। उन्होंने जटासे वीरभद्रको प्रकट किया। शिवजीने उससे कहा, दक्ष प्रजापतिके यज्ञका यजमानसहित तुम नाश कर दो। वीरभद्र वहां आये। उसने बडा संहार किया। यज्ञभूमि श्मशानभूमि बन गई। यज्ञका विध्वंस हुआ। दक्षको पकड कर उसका मस्तक अलग कर दिया गया। देवता घबडा गये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने सबको उपालंभ दिया कि जिस यज्ञमें शिवजीकी पूजा नहीं होती थी वहां तुम क्यों गये? जाओ, जाकर शिवजीसे क्षमा याचना करो। देवता कहते हैं- हमारी अकेले जानेकी हिम्मत नहीं है। आप हमारे साथ चलिए।

भगवान् शंकरकी कृपाके बिना सिद्धि नहीं मिलती। कैलासकी तलहटीमें सिद्ध महात्माओंके आश्रम हैं।

सब देवता कैलासमें आते हैं। महादेवजी ब्रह्माजीको साष्टांग प्रणाम करते हैं। देवता सदाशिवको नमन करते हैं। ब्रह्माजी हंसते हुए कहते है- यज्ञको उत्पन्न करनेवाले आप हैं और विध्वंस करनेवाले भी आप ही हैं। अतः अब यज्ञ परिपूर्ण हो ऐसा कीजिए। आप भी वहां पधारिए। शिवजी भोले हैं। आनेके लिए तैय्यार हो गए। यज्ञमंडपमें रुधिरकी नदियां बहती

हुई देखी तो वीरभद्रको उलाहना दी। मैंने तो तुझे शांतिसे काम लेनेके लिए कहा था। वीरभद्र क्षमा याचना करता है। दक्षके धड पर बकरेका सिर लगाया गया। बकरा अति कामी होता है। शिवजीकी निंदा करनेवाला दूसरे जन्ममें बकरा बनता है।

अजका दूसरा अर्थ होता है परब्रह्म। दक्षके धड पर अजका मस्तक रखा गया अर्थात् दक्षको परब्रह्म दृष्टि प्राप्त हुई। अज मस्तकका अर्थ है ब्रह्मदृष्टि।

दक्ष होशमें आया और शिवकी स्तुति करने लगा। दक्ष प्रजापतिने शिवपूजन किया। उसने कहा- मैं अपनी पुत्री सतीका दर्शन करना चाहता हूं।

शिवजीने सतीसे पूछा- तू बाहर आना चाहती है? जगदंबाने इनकार कर दिया। शिवपूजन किया गया तो कृष्णभगवान् प्रकट हुए। कृष्णका मत है कि शिवमें और मुझमें जो भेद रखता है वह नरकगामी होता है। इस सिद्धांतका भागवतमें अनेक बार वर्णन किया गया है।

हरि और हरमें दक्षने जो भेद किया था वह अब दूर हो गया। एकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें हरिहरका अभेद दिखाया है। सत्त्वगुणका रंग श्वेत है। तमोगुणका रंग काला है। विष्णु भगवान् सत्त्वगुणके स्वामी हैं अतः उनका रंग श्वेत होना चाहिए फिर भी वे काले हैं और शिवजी तमोगुणके स्वामी हैं इसलिए उनका रंग काला होना चाहिए फिर भी वे गौर हैं। ऐसा क्यों हुआ? विष्णु काले और शिवजी गोरे। एकनाथजी महाराज लिखते हैं कि शिवजी सारा दिन नारायणका ध्यान करते हैं और नारायण सतत शिवजीका ध्यान करते हैं इसलिए शिवजीको श्वेत रंग मिला और नारायणको शिवजीका काला रंग मिला। इस प्रकार ध्यानमें ऐसा गुण है कि जो जिसका ध्यान करता है उसे उसका वर्ण मिल जाता है। अतः दोनोंमें अभेद है। हरिहर एक हैं। शिवकृपाके बिना सिद्धि नहीं मिलती। ब्रह्मविद्या भी शिवकृपाके बिना नहीं मिलती। शिवतत्त्व एक ही है यह जीवमात्रको बतानेका भगवान्का उद्देश है। जीवमात्रको शिवजीसे मिलनेकी इच्छा होती है।

निवृत्तिधर्मके आचार्य हैं शिवजी और प्रवृत्तिधर्मके आचार्य हैं श्रीकृष्ण। सब प्रकारकी प्रवृत्तिमें रहने पर भी प्रवृत्तिका जरा भी रंग न लगे इसका आदर्श श्रीकृष्णने जगत्को दिखाया है।

दक्षके यज्ञप्रसंगमें देखा कि अनन्य भक्तिका अर्थ यह नहीं है कि एक ही देवकी भक्ति करो और दूसरेकी नहीं। अनेकमें एक ही देवका दर्शन करो। भक्तिका यही अर्थ है। प्रभु सर्वव्यापक हैं। जो सर्वमें प्रभुका दर्शन करे वही उत्तम वैष्णव है।

अपने एक इष्टदेवमें परिपूर्ण भाव रखना और दूसरे देवोंको अपने इष्टदेवका अंश मान कर वंदना करना। पत्नी अनन्य भाव पतिमें रखती है और दूसरे संबंधियोंमें सामान्य प्रेम रखती है। कई वैष्णव कहते हैं कि हम शिवजीका पूजन करेंगे तो हमको अन्याश्रयका दोष लगेगा। यह भूल है।

पांच देव एक ही हैं, उनमें भेदबुद्धि मत रखो। शिव और पार्वतीके विवाहके समय भी श्रीगणेशका पूजन किया गया था। गणपति भी ब्रह्मस्वरूप हैं। वे तो नित्य हैं परन्तु पार्वतीके यहां उनका अवतार हुआ था। भले ही इन सबकी भक्ति करो परन्तु यदि बालकृष्णकी

सेवा न करोगे तो सभी पूजा निष्फल होगी। बालकृष्ण प्रेमका दान करते हैं। इस प्रेमके बिना ज्ञान शुष्क है। प्रेमके बिना ज्ञानकी शोभा नहीं। दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया मगर उसने भेद-बुद्धि रखनेके कारण शिवजीकी पूजा नहीं की, अतः उसके यज्ञमें विघ्न आया।

यह शरीर पंचायतन है। पंचतत्त्वोंका यह शरीर बना हुआ है। एक एक तत्त्वका एक एक देव है।

इस पंचायतनके पांच प्रधान देव निम्न है।

पृथ्वीतत्त्व-गणेश। गणेशकी उपासनासे विघ्नोंका नाश होता है। गणेश विघ्नहर्ता है। गणेशपूजनसे तुम्हारे सत्कार्यमें विघ्न नहीं आयेगा।

जलतत्त्व-शिव। शिवकी उपासना करनेसे ज्ञान मिलता है

तेजतत्त्व-सूर्य। सूर्यकी उपासना हमें निरोगी बनाती है। "आरोग्यं भास्करात् इच्छेत्।" पृथ्वी पर सूर्य प्रत्यक्ष साक्षात् देव हैं। एक नास्तिकने मुझसे भगवान्‌के दर्शन करानेके लिए कहा। मैंने सूर्यकी ओर इंगित करके कहा कि यही साक्षात् परमात्मा हैं। प्रति-दिन कम-से-कम ग्यारह सूर्यनमस्कार करो।

नमस्कारप्रियो भानुः जलधाराप्रियो शिवः।
अलंकारप्रियो कृष्णः ब्राह्मणो मोदकप्रियः॥

वायुतत्त्व-माता। माता पार्वतीकी उपासना धन देती है।

आकाशतत्त्व- विष्णु। विष्णुकी उपासना प्रेम देती है और प्रेम बढाती भी है।

सूर्यकी पूजासे तुम्हें अच्छा आरोग्य मिलेगा। शिवजीके पूजनसे तुम्हें ज्ञान-लाभ होगा। पार्वतीकी पूजासे संपत्ति होने पर भी प्राप्त होगी। बुद्धि, शरीर, संपत्तिके होने पर भी श्रीकृष्णकी सेवा न करोगे तो बात नहीं बनेगी। श्रीकृष्ण प्रेमदाता हैं।

द्वारिकाधीशकी सेवा-स्मरणमें तन्मय होनेके बाद यदि प्रजापति दक्षने शिवजीकी पूजा छोड दी होती तो कोई हर्ज नहीं था। किंतु उसके दिलमें वैरभाव था। उसने कुभावसे यज्ञ किया अतः वह यज्ञ पापरूप हुआ।

जीव ही दक्ष है और सद्‌गुरु शिवजी हैं। शरीरको सादगीमय रखो। शरीर एक मुट्ठीभर भस्म है। अतः उसका अनावश्यक शृंगार और लालन छोड दो। यही है शिवजीका उपदेश। इसलिए तो वे अपने शरीर पर भस्म लगाते हैं। शरीरका शृंगार छोड दो। मानव-जीवन तपश्चर्याके लिए है। जो तप नहीं करता, उसका पतन होता ही है।

मानवजीवनका लक्ष्य भोग नहीं, भजन है, ईश्वरभजन है, समभाव और सद्‌भाव सिद्ध करनेके लिए सत्संगकी जरूरत है। समभाव तब सिद्ध होता है कि जब हरेक जड-चेतनकी ओर ईश्वरकी भावना जागे।

मानव-अवतार परमात्माकी आराधना और तप करनेके लिए है। पशु भी भोगोंका उपभोग करते है। यदि मनुष्य केवल भोगके पीछे ही दीवाना हो जाए तो फिर उसमें और पशुमें कौन-सा भेद रह जाएगा? प्रभुने मनुष्यको बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है। पशुको कुछ नहीं दिया है। आनेवाली कलकी चिंता मानव कर सकता है, पशु नहीं।

न तो देव तप कर सकते हैं और न तो पशु। देव पुण्यका उपभोग कर सकते हैं। तपश्चर्याका अधिकार केवल मनुष्यको ही है। मनुष्य विवेकपूर्वक भोगका भी उपभोग कर सकता है।

मनुष्यजीवनकी विविध प्रकारके तप करनेके लिए है। तपके कई प्रकार हैं।

कष्ट सहते हुए सत्कर्म करना तप है। उपासना भी तप है। पूर्णिमा-अमावास्याके दिन पवित्र माने गए हैं। उन दिनों अनशन करना चाहिए। परोपकारमें शरीरको लीन करना भी तप है।

गीताजीमें तपकी व्याख्या करते हुए कहा गया है।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।

भावसंशुद्धि बडा तप है। सभीमें ईश्वरका भाव रखना भी तप है। सभीमें ईश्वर विराजित हैं ऐसा अनुभव करना महान् तप है। अर्थात् अंतःकरणकी पवित्रतासे हृदयमें सदा सर्वदा शांति और प्रसन्नता रहेगी। प्रिय और सत्य बोलना वाणीका तप है। पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा शरीरसंबंधी तप है।

सभीके प्रति समभाव और सद्‌भाव रखनेवालेके मनमें कभी काम प्रवेश नहीं पा सकता। विकार और वासनाको नष्ट करनेका यही श्रेष्ठ उपाय है। जो सभीकी ओर सद्‌भाव रखे और सभीमें ईश्वरके अंशका अनुभव करे तो वह सफल होता है।

प्रजापति दक्षने यज्ञमें शुद्धभाव, समभाव न रखा अतः उसे दुःख सहना पडा। उसका यज्ञसे कल्याण न हो पाया क्योंकि उसने शिवजीके प्रति कुभाव रखकर यज्ञ किया था। दक्षने यज्ञ करते हुए भी हृदयमें दुर्भावना रखी कि शिवजीकी वह पूजा नहीं करेगा। इसी कारणसे यज्ञकार्यमें बाधा उपस्थित हुई। अतः किसकी भी ओर कुभाव न रखो। तभी धर्म सफल होता है। सद्‌भावरहित होनेके कारण दक्षका धर्मकार्य अधर्मकार्य हो गया। प्रजापति दक्षके यज्ञकी कथाका उद्देश्य हरिहरका अभेद बतलानेका है।

शिवचरित्रकी यह कथा वक्ता और श्रोताके पापोंको भस्मीभूत करनेवाली है।

अधर्मके वंशजोंसे सावधान रहो। चौथे स्कंधके आठवें अध्यायके प्रथम पांच श्लोकोंमें अधर्मके वंशजोंका उल्लेख है। यह श्लोक महत्त्वके हैं। पुण्य न कर सको तो कोई बात नहीं किंतु पाप तो कभी मत करो।

अधर्मकी पत्नीका नाम है मृषादेवी। मिथ्याभाषण करनेका बुरा स्वभाव। उसीमेंसे दंभका जन्म हुआ। लोग वैष्णव तो कहलाना चाहते हैं किंतु सच्चा वैष्णव होनेकी इच्छा कोई नहीं रखता।

दंभका पुत्र लोभ और लोभका पुत्र है क्रोध।

क्रोधकी पुत्री दुरुक्ति अर्थात् कर्कश वाणी है। महाभारतके युद्धके और रामायणके करुण प्रसंगोंके मूल इस कर्कश वाणीमें ही हैं।

पैर फिसलनेसे जब दुर्योधन गिर पडा तो भीमने कहा– "अंधस्य पुत्रः अंधः।" दुर्योधनने इन शब्दोंसे लज्जा और अपमानका अनुभव किया और परिणामतः महाभारतका दारुण युद्ध छिड गया।

×

सीताजीने वनमें लक्ष्मणकी कर्कश वाणीसे भर्त्सना की तो उनको इच्छा न होते हुए भी मारीच राक्षसके छलभरे शब्दोंका पीछा करना पडा। लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें रावण सीताको उठा ले गया और रामायणका आरंभ हुआ।

अतः कर्कश वाणीका प्रयोग कभी मत करो। मात्र इस दुर्गुणसे बच पाओगे तो भी बहुत कुछ हो सकेगा। कर्कश वाणीसे कलि उत्पन्न होता है। कलि कलहका ही रूप है।

भागवतका उद्देश्य है इन्द्रियोंको हरिरसमें डूबो रखना।

नामदेव दर्जीका, गोरा कुम्हारका, सेना नाईका काम करते थे। उन्होंने अपने-अपने कामधंधोंसे ज्ञान पाया और व्यवहारशुद्धिके कारण उनका बेडा पार हो गया।

अब अर्थप्रकरणका आरंभ होता है। शांति संपत्तिसे नहीं, किंतु संयम, सदाचार और अच्छे संस्कारोंसे प्राप्त होती है। संपत्तिसे विकारवासना बढती है। अतः धर्मका प्रकरण पहले आता है और अर्थका बादमें।

अब ध्रुवजीका आख्यान आ रहा है। उत्तानपादकी कथा जीवमात्रकी कथा है।

: ध्रुवाख्यान :

मैत्रेयजीने मनु महाराजकी तीन कन्याओंके वंशका वर्णन किया। मनु महाराजके दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद। प्रियव्रतके वंशका वर्णन पाँचवें स्कंधमें होगा। इस चौथे स्कंधमें उत्तानपादकी कथाका वर्णन है।

उत्तानपादकी दो पत्नियाँ थीं-सुरुचि और सुनीति। सुरुचिके पुत्रका नाम था उत्तम और सुनीतिके पुत्रका नाम था ध्रुव।

जीवमात्र उत्तानपाद है। माताके गर्भमें रहनेवाले सभी जीव उत्तानपाद हैं। जन्मके समय पहले सिर और फिर पांव बाहर आते हैं। जिसके पैर पहले ऊपर हों और फिर नीचे हो गए हों वही उत्तानपाद है। जिसके पांव ऊपर और नीचे हों वह उत्तानपाद है। जन्मके समय सभीकी ऐसी ही दशा होती है।

जीवमात्रकी दो पत्नियाँ होती हैं- सुरुचि और सुनीति। मनुष्यमात्रको सुरुचि ही प्रिय लगती है। इन्द्रियाँ जो भी मांगें उन विषयोंका उपयोग करनेकी इच्छा ही सुरुचि है। सुरुचिका अर्थ है वासना। आजकल तो सभीको रुचि ही प्यारी लगती है। मनको, इन्द्रियोंको जो अच्छा लगता है, वही मनुष्य करने लगता है। वह न तो शास्त्रसे पूछता है न तो धर्मसे पूछता है और नहीं संतोंसे। रुचिका अर्थ है मनपसंद इच्छा। मन जो भी मांगे, उन्हीं भोगोंमें लीन होनेके लिए जो आतुर बने वह रुचिका दास है। जिसे रुचिसे प्यार होगा उसे नीति कैसे प्यारी लग सकती है? नीति भले ही विरोध करे, फिर भी इन्द्रियाँ तो स्वभावतया विषयोंकी ओर ही दौडती हैं। जीभ जो भी मांगे वह सब उसे मत दो। कई लोग सुपारी खाए बिना नहीं रह सकते। सुपारी वैसे तो ठीक है, किंतु प्रमाणसे अधिक खाने पर वह मनुष्य संयमी नहीं रह सकता।

मनुष्यमात्रको सुनीति अर्थात् नीतिसे अधिक प्रेम नहीं है। वह प्यारी रानी नहीं है।

मनुष्यको सुनीतिसे नहीं, सुरुचिसे ही प्रेम है। जीवमात्रके लिए यही बात सच्ची है। उसे सदाचारयुक्त, संयमभरा जीवन नहीं भाता। जीव वासनाके अधीन होकर विलासी जीवन जीना चाहता है। जीवमात्र नीतिके अधीन नहीं रहना चाहता। वह सोचता है कि सुरुचिके अधीन होनेसे उत्तम फल मिलेगा। सुरुचिका फल उत्तम है। इसीसे सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम है। उद् = ईश्वर, तम = अंधकार। अंधकार अज्ञान है। ईश्वरके स्वरूपका अज्ञान ही उत्तमका स्वरूप है। इन्द्रियोंके दास होने पर ईश्वरस्वरूपका ज्ञान नहीं हो पाएगा। जो सुरुचिमें फँसा है, और विलासी जीवन जीता है उसे ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता। वह ईश्वरको पहचान नहीं सकता। ईश्वरका ज्ञान विलासीको नहीं हो सकता, विरक्तको ही हो सकता है।

गीताजीसे पूछो कि कैसे व्यक्तिको ईश्वरका ज्ञान हो सकता है? जिसमें सात्त्विक गुणकी वृद्धि होती है उसीको ज्ञान प्राप्त होता है। सात्त्विक गुणकी वृद्धि संयमपूर्ण सदाचारी जीवन जीनेसे ही होती है। केवल शब्दज्ञान ज्ञान नहीं है। उत्तम विषय क्षणिकसुख देता है और वह उत्तम सुख क्षणिक विषयानंद है।

इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे जो क्षणिकसुख मिलता है वह सुख नहीं सुखका केवल आभास ही होता है। खुजलीको खुजलानेसे सुख नहीं सुखका आभास ही हो पाता है। मनुष्यकी हरेक इन्द्रियोंको विषयोपभोगकी आकांक्षा होती है। सयानापन वैसे आता तो है किंतु वह स्थायी नहीं हो पाता। इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे क्षणिकसुख मिल पाता है। भोजन सरस होगा तो जरूरतसे भी ज्यादा खा लिया जाएगा जिससे अजीर्ण होगा। फिर ऊपरसे अन्नपाचनके लिए गोलियां लेनी पडेगी। ऐसे समयमें रुचि और खानेको कहती है किंतु नीति मना करती है।

स्वामी शंकराचार्य इसीलिए तो आज्ञा देते हैं कि-

स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात्प्राप्तेन संतुष्यताम्।

स्वादिष्ट। अन्नकी याचना मत करो। दैववशात् जो भी प्राप्त हो, उसीसे संतुष्ट हो जाओ। स्वादिष्ट भोजन करनेवाला भजन नहीं कर पाएगा। नीतिका फल आरंभमें कष्टदायी होते हुए भी अन्तमें सुखदायी है। जबकि विषयानन्दका आरंभमें परिणाम सुखदायी होनेपर भी उसका परिणाम दुःख ही होता है।

जिसका जीवन शुद्ध है, पवित्र है उसीको भजनानन्द मिलता है और वही आनन्द टीकाऊ होता है।

नीतिके अधीन रहकर जो पवित्र जीवन जीता है, उसीको ईश्वरका ज्ञान मिलता है।

सुनीतिसे ध्रुव मिलता है। सुनीतिका फल ध्रुव है, सुनीतिका पुत्र ध्रुव है। ध्रुवका तात्पर्य है अविनाशी। अनंत सुखका, ब्रह्मानंदका कभी विनाश नहीं होता। जो नीतिके अधीन रहेगा उसे ध्रुव-सा ब्रह्मानंद प्राप्त होगा।

मनुष्य यदि सुनीतिके अधीन होता है तो सदाचारी बनता है और यदि वह मात्र रुचिके अधीन होता है तो दुराचारी होता है।

तुम्हारे सामने ये दो आनन्द हैं। विषयानन्द और परमानन्द। तुम किसे पसन्द करोगे? भजनानन्द ही पसन्द करने योग्य है। पहला आनन्द क्षणिकसुख देता है और उसका परिणाम दुःखद होता है। दूसरा आनन्द शुरूमें तो कष्टदायी है किंतु अंतमें सुखदायी है।

दो मित्र यात्रा करने चले। एककी आदत ही ऐसी थी कि पलंग-तकियेके बिना उसे नींद ही नहीं आती थी। उसने बोरिया-बिस्तर बांध तो लिया, किंतु उसे ढोनेके लिए मजदूर न मिला, अतः वह सारा सामान उसे खुद ही उठाना पडा। रास्तेमें एक सज्जन मिले। इस महाशयकी दशा देखकर उससे कहा कि यह बोझ कितना कष्टदायी है। इसके बिना ही यात्रा क्यों नहीं करते ? तो उसने उत्तर दिया- चाहे यह बोझ मुझे ही क्यों न उठाना पडे किंतु रातको सोते वक्त तो बडा मजा आता है। रात्रिके आनन्दके लिए सारा दिन वह बोझ उठाए फिरता था। फिर रातको कैसा आनन्द आता होगा ?

यह कथा किसी औरकी नहीं, अपनी ही है। जीवात्मा यात्रा करने निकला है। क्षणिक सुखके लिए मनुष्य सारा दिन गधेकी भांति मेहनत करता है। सारा दिन दुःखका पर्वत सिर पर लेकर चलता रहता है। क्षणिक सुखके लिए कितनी चिंता और कितना कष्ट उठाता है वह। विषयसुख क्षणिक ही नहीं, तुच्छ भी है।

ध्रुव अविनाशी ब्रह्मानन्दका, भजनानन्दका स्वरूप है। जीव जब ब्रह्मानन्दकी ओर जाता है तो सुरुचि विघ्न उपस्थित करती रहती है। जीव और ब्रह्मका मिलन सुरुचि नहीं होने देती। जो मनुष्य सुरुचिके अधीन है, समझो कि वह कामधीन भी है।

उत्तानपाद राजाकी दो रानियां और दो पुत्र थे। राजाको सुनीति नहीं, सुरुचि ही प्यारी थी। हम सभीकी भी यही बात है। हमें नीतिसे प्रेम नहीं है किंतु इन्द्रियों और वासनाको बहकानेवाली सुरुचिसे ही प्रेम है।

एक बार उत्तानपाद सिंहासन बैठे हुए थे। सुरुचि भी वहीं बैठी हुई थी। उत्तम राजाकी गोदमें खेल रहा था। ध्रुवने यह देखा तो उसने सोचा कि मैं भी पिताजीके पास जाऊं तो तो मुझे भी वे गोदमें उठा लेंगे। उसने दौडते हुए आकर पितासे अपनी गोदमें बिठानेके लिए कहा।

बालक बालकृष्णका ही स्वरूप है। उसका कभी अपमान मत करो। बडे बडे महात्मा भी बच्चोंसे खेलते थे। रामदास स्वामी जब बच्चोंसे खेल रहे थे, तो शिष्योंने पूछा कि यह क्या कर रहे हैं आप ? तो स्वामीजीने कहा-

वये पोर ते थोर होउनी गेले,
वये थोर ते चोर होउनी मेले।

इन बालकोंके साथ खेलनेमें मुझे आनन्द मिलता है। बच्चे अपने मनमें जो होता है वैसा ही बोलते हैं और जैसा बोलते हैं वैसा ही करते भी हैं। मन, वाणी और क्रिया एक समान होने पर ही तुम भगवान्‌की भक्ति सही ढंगसे कर सकोगे। वैसी भक्ति ही तुम्हें आनंदित करेगी। बालक निर्दोष होता है। उसे कपट मत सिखाना। उन पर बचपनमें अच्छे संस्कार डालो। उनसे अनुचित लाड मत करो।

उत्तानपादने आनन्दसे ध्रुवको अपनी गोदमें लेना चाहा। किंतु सुरुचिको यह बात न भाई।

जीवके पास जब भी भजनानन्द आता है, सुरुचि बाधा उत्पन्न करती है। पूजा करते समय मन रसोईघरकी ओर गया या तो प्रभुभजन करते हुए मन विषयोंकी ओर बह गया तो समझ लेना कि सुरुचि आ गई है।

ध्रुवको राजा गोदमें बिठाए यह सुरुचिको पसन्द नहीं था। उसने सोचा कि राजा (जीवात्मा) को ध्रुव (भजनानन्द) मिलेगा तो वे वासनाधीन नहीं होंगे और मेरा कुछ भी काम नही बन पाएगा। सुरुचिने राजाको ध्रुवको गोदमें लेनेसे रोका। राजा रानीके अधीन था। वह कामांध था। उसने सोचा कि मैं ध्रुवको गोदमें बिठाऊंगा तो सुरुचि नाराज होगी। चाहे कुछ भी हो, मेरी रानी नाराज नहीं होनी चाहिए। जरूरतसे ज्यादा स्त्रीके अधीन रहना पाप है। शास्त्र तो यहां तक कहता है ऐसे स्त्री-अधीन पुरुषको देखना भी पाप है। वह था तो राजा, किंतु रानीका तो दास ही था। अकसर सभीकी ऐसी ही दशा होती है। साहब बाहर तो अकड कर फिरते हैं और घरमें पत्नीके आगे भीगी बिल्ली बन जाते हैं।

राजाने ध्रुवकी अवहेलना की और मुंह मोड लिया। ध्रुवजीको तो बडी आशा थी। उसने हाथ बढाकर कहा भी कि मुझे गोदमें बिठा लीजिए। सुरुचिने ध्रुवकुमारसे कह दिया- भाग जा यहांसे। राजाकी गोदमें बैठनेकी पात्रता तुझमें नहीं है। तू राजाकी अप्रिय रानी सुनीतिका पुत्र है, सो तू उसकी गोदमें नहीं बैठ सकता।

ध्रुवजीने पूछा- माता, क्या मैं अपने पिताका पुत्र नहीं हूं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

सुरुचिने उस समय ताना दिया कि तेरी माता रानी नहीं है। रानी मै हूँ। तेरी माता दासी है। राजाकी गोदमें बैठनेकी इच्छा है तो तुझे मेरी कोखसे जन्म लेना होगा। तू वनमें जाकर तप कर और ईश्वरकी आराधना कर और मेरी कोखसे जन्म पानेकी मांग कर।

भगवान् जब प्रसन्न होते ही हैं तो फिर तेरे घरमें जन्म लेना ही क्यों मांगा जाए? किंतु सुरुचि मूर्ख जो थी इसलिए ऐसा बोल रही थी।

ध्रुवको आशा थी कि पिताजी कुछ पलके लिए तो गोदमें लेंगे ही, किंतु सुरुचिके अपमानसे रोता हुआ वह अपनी माता सुनीतिके पास लौट आया। तो सुनीतिने पूछा- बेटा, तू क्यों रोता है? क्या हुआ है तुझे?

बालक संस्कारी है, इसलिए वह कुछ बोलता नहीं है। बार बार रो रहा है। सुनीति समझती है कि मेरा सयाना बेटा मेरी दशा अच्छी तरह समझता है। जिसकी माता सुनीति हो वह सुशील ही होता है। वंशमें जब कई लोगोंका पुण्य इकट्ठा होता है तभी पुत्र उदार निकलता है।

ध्रुवने सोचा कि मै सारी बात बताऊंगा तो परंपराके कारण मातापिताकी निंदा करनेका पाप होगा। तभी एक दासीने आकर सारी बात बता दी।

सारी बात सुनकर सुनीतिके मनमें विचार आया कि मैंने तो सुरुचिका कुछ नहीं बिगाडा। मेरे मुंहसे मेरी सौतके लिए यदि कुछ कटु वचन निकल पडेंगे तो ध्रुवके मनमें हमेशाके लिए वैरभावके संस्कार जम जाएंगे और भविष्यमें अनर्थ होगा। इस प्रसंगसे सुनीतिको दुःख तो बहुत हुआ, किंतु वह अपने बालकको अच्छे संस्कार देना चाहती थी। वह चाहती थी कि अपने बालकको राज्य और संपत्ति चाहे न मिल पाए किंतु संस्कार तो अच्छे ही मिलने चाहिए।

यदि माता सुनीति हो तो अपने बालकको हजार शिक्षकोंकी अपेक्षा भी अधिक अच्छी शिक्षा दे सकती है।

सुनीतिने दुःखके आवेगको दबाकर धीरजसे कहा– तेरी विमाताने वैसे तो कुछ बुरा नहीं कहा है। उसने तुझे जो उपदेश दिया है वह अच्छा है और मैं भी तुझे यही उपदेश देती हूं। बेटे, यदि भिक्षा मांगनी ही है तो फिर भगवान्से ही क्यों न मांगी जाए? मनुष्यसे बहुत कुछ मांगने पर भी बहुत कम ही मिलेगा और कई बार तो अपमान या उपेक्षा ही मिलेगी। अतः ठाकुरजीसे ही मांगो। भगवान् जब देता है तो इतना अधिक दे देता है कि जीव वह सब कुछ ले भी नहीं पाता। बेटे, भगवान् तुझ पर कृपा करेंगे, तुझे प्रेमसे बुलाएंगे, गोदमें भी बिठाएंगे। तेरे ही नहीं, जीवमात्रके सच्चे पिता परमात्मा ही हैं।

मैंने तुझे नारायणको सौंप दिया है। जो पिता तेरा मुंह तक नहीं देखना चाहता, उसके घरमे पडा रहना निरर्थक है। इस घरमे तू रहेगा तो तेरी सौतेली माता तुझे हमेशा कष्ट देती रहेगी। किंतु तू रोना नहीं, अन्यथा मुझे भी दुःख ही होगा। तेरी विमाताने तुझे जो वनमें जानेके लिए कहा है, वह ठीक ही किया है। इसमें तेरा कल्याण है।

आराधयाधोक्षजपादपद्म
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा।

तू यदि उत्तमकी भांति राजसिंहासन पर बैठनेकी इच्छा रखता है तो श्री भगवान्के चरणकमलोंकी आराधना कर।

अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम्॥

भा. ४-८-२२

स्वधर्मपालनसे पवित्र बने हुए तेरे चित्तमें पुरुषोत्तम भगवान्की स्थापना कर और अन्य सभीका चिंतन छोडकर केवल प्रभुका ही भजन कर।

अब इस घरमें मत रह। वनमें जाकर भगवान् नारायणका भजन कर।

तो ध्रुवने मातासे कहा कि विमाताने हम दोनोंका अपमान किया है। इस घरमें न तो मेरा संमान है और न तो तेरा। क्यों न हम दोनों ही वनमें जाकर प्रभुका भजन करें?

सुनीतिने इस पर कहा–बेटे, मैं तो स्त्री हूँ। मेरे पिताने तेरे पिताको मेरा दान किया है। मुझे उनकी ही आज्ञामें रहना है। चाहे मेरा पति मेरा अपमान क्यों न करे, मुझसे पतिका त्याग नही हो सकता। तू स्वतंत्र है, मैं परतंत्र। मुझे तो मेरी सौतकी भी कि जो मेरे पतिकी प्रिय पत्नी है सेवा करनी है। मैं तुझे अकेला तो नहीं भेज रही हूं। तेरे साथ मेरे आशीर्वाद भी तो है। परमात्मा तुझे अपनी गोदमें बिठलाएंगे। जब तू मेरे गर्भमें था उस समय जिन्होंने तेरी रक्षा की थी, वे वनमें भी तेरी रक्षा करेंगे। अतः तू वनमें जा और परमात्माकी वहाँ आराधना कर। मेरे नारायण तुझे अपनी बांहोंमें समा लेंगे।

किंतु ध्रुवको अब भी डर लग रहा है।

तो सुनीति पुत्रसे कहती है– तू अकेला नहीं है। मेरे नारायण तेरे साथ ही हैं।

जीव यह अनुभव नहीं करता है कि भगवान् उसके साथ ही हैं। किंतु जीवामात्रका सच्चे मित्र तो नारायण ही हैं। भगवान् यह नहीं देखते कि अमुक व्यक्ति धनिक है या गरीब शिक्षित है या अशिक्षित, छोटा है या बडा। भगवान् तो यही देखते हैं कि इस जीवके हृदयमें मेरे लिए प्रेम है या नहीं। प्रभुको प्रेमसे पुकारोगे तो वे दौडते हुए चले आएंगे।

अपने दुःखकी कथा प्रभुसे तुम एकांतमें ही कहना। प्रभुको मनाओ। उनसे कहो कि मेरा पाप करनेका स्वभाव छूट नहीं पाता है। कृपा करो। वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। ध्रुवने पूछा- माता, मुझ जैसे अबोध बालकको भी भगवान् मिलेंगे क्या ?

ध्रुवको समझाते हुए सुनीतिने कहा- हां बेटे, भगवान् तुझे अवश्य मिलेंगे। दिल लगाकर भगवान्का भजन करना। भगवान् भावनाके भूखे हैं। ईश्वरको जो प्रेमसे पुकारता है उसके समक्ष वे अवश्य प्रकट होते हैं।

बिना आतुरताके भगवान् नहीं मिलते। आर्त होकर आरती करो।

उपनिषद्में ईश्वरने कहा है- यह जीव मेरा पुत्र है "अमृतस्य पुत्राः।" मैं तो जीवको अपनी गोदमें बिठलानेके लिए तैयार हूँ, किंतु वही मेरे पास नहीं आता।

श्री नाथजीने एक हाथ ऊपर उठाया हुआ था, उसे देखकर एक वैष्णवने उनसे पूछा- आपने एक हाथ इस तरह ऊपर क्यों उठा रखा है ?

तो श्री नाथजीने उत्तर दिया मेरे सभी बालक मुझे भूल गए हैं। मैं एक हाथ ऊपर उठाकर रोज उन्हें बुलाता हूँ। किंतु वे मेरे पास आते ही नहीं हैं।

सुनीतिने सोचा कि बालक मुझे तो वंदन कर रहा है किंतु विमाताको भी वह सद्भाव से वंदन करे तो उसका कल्याण होगा।

किसीके भी प्रति द्वेष रखकर ईश्वरकी आराधना नहीं की जा सकती और ऐसी आराधना सफल भी नहीं हो सकती।

सुरुचिके प्रति मनमें यदि यह अरुचि कुभाव रखकर जाएगा तो वह नारायणका ध्यान नहीं कर सकेगा। वह बार बार सुरुचिकी बातें ही सोचता रहेगा।

सुनीतिने ध्रुवको समझाया— तू मेरा सयाना पुत्र है। अपने पूर्वजन्मके फलके कारण ही तुझे अपमान सहन करना पडा है। किसी जन्ममें तूने अपनी विमाताका अपमान किया होगा, अतः उसने इस जन्ममें बदला ले लिया।

लाभ हानि, सुख-दुःख, मान अपमान आदि सब कुछ पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। ज्ञानी उसे हंसते हुए सह लेते हैं और अज्ञानी रोते हुए। जैसा बीज बोया होगा वैसा ही फल मिलेगा।

बेटे, तू अपने मनमें कुछ भी न रखना। तेरी विमाता तेरे पिताको प्यारी है। तू क्या उसे प्रणाम नहीं करेगा ? तूने जिसप्रकार मुझे प्रणाम किया, उसी प्रकार अपनी विमाताको भी प्रणाम कर कि जो तेरे पिताजीको प्रिय है। जो तू मुझे प्रणाम नहीं भी करेगा तो भी मैं तुझे आशीर्वाद तो दूंगी ही। किंतु तेरी विमाता तो तेरे प्रणाम करने पर ही आशीर्वाद देगी। उसे वंदन करके तू जाएगा, तो भगवान् जल्दी प्रसन्न होंगे। सभीके आशीर्वाद लेकर वनमें जाएगा तो परमेश्वर जल्दी कृपा करेंगे।

जिस सुरुचिने बालकका अपमान किया, उसी सुरुचिको वंदन करनेके लिए अपने पुत्रको सुनीति भेज रही है। धन्य है सुनीति। ऐसी सुनीति जिसके भी घरमें होगी वहां कलि नहीं आ सकता।

पांच वर्षका बालक ध्रुवकुमार विमाता सुरुचिको वंदन करने गया। वह तो आसन पर अकड कर बैठी थी। ध्रुवजीने उसे साष्टांग प्रणाम किया। सुरुचिने पूछा कि मुझे वंदन क्यों कर रहा है?

ध्रुवजीने बताया- माता, मैं वनमें जा रहा हूं अतः आपसे आशीर्वाद लेने आया हूं।

एक पलभरके लिए तो सुरुचिका हृदय पिघल गया कि कैसा सयाना है यह। अपमानित होने पर भी यह मुझे प्रणाम कर रहा है। किंतु वह स्वभावसे दुष्ट थी और स्वभाव जल्दी सुधर नहीं पाता। उसने सोचा कि ध्रुव यदि यहीं पर रहेगा तो उत्तमके राज्यमेंसे वह हिस्सा मांगेगा। अतः उसने ध्रुवसे कह दिया-ठीक है। वनमें जा ही रहा है तो जा। मेरा आशीर्वाद है तुझे।

बालकके प्रणाम करने पर भी सुरुचिके दिलमें कुछ भी विशेष भाव नहीं जागा। स्वभावको सुधारना बडा मुश्किल काम है। इसीलिए तो कहा है—

कस्तूरीकी क्यारी करी, केशरकी बनी खाद।
पानी दिया गुलाबका, तऊ प्याजकी प्याज॥

सत्कर्मका पुण्य जब तक ठीक ठीक न बढ पाए, तब तक स्वभाव नहीं सुधर पाता।
शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

पांच वर्षका बालक माताके आशीर्वाद लेकर वनमें गया।

भागवतकी माता पुत्रको तपश्चर्या करनेके लिए वनमें भेजती है जैसे कि सुनीतिने ध्रुवको भेजा। आजकलकी माताएं बालकोंको सिनेमा देखनेके लिए भेजती हैं-पैसे भी देकर कि जा तेरा कल्याण हो। अरे, सिनेमा देखनेसे क्या खाक कल्याण होगा? इससे तो आंखें शरीर और अंतमें जीवन तक बिगड जाएगा। पैसोंको खर्च करके अंधेरेमें बैठना अज्ञान नहीं तो और क्या है? यह हंसनेकी, या मजाककी बात नहीं, रोनेकी बात है। सिनेमा देखनेके लिए अपने बालकको भेजनेवाली स्त्री माता नहीं, शत्रु है।

धन्य हैं सुनीति जैसी माताएं, जो अपने संतानोंको अच्छे संस्कार देती हैं।
बालक माताके दोषके कारण चरित्रहीन, पिताके दोषके कारण मूर्ख, वंशके दोषके कारण कायर और स्वयंके दोषके कारण दरिद्र होता है।

दुःशीलो मातृदोषेण, पितृदोषेण मूर्खता।
कार्पण्यं वंशदोषेन, आत्मदोषाद् दरिद्रता॥

अपनी दोनों माताओंसे आशीर्वाद लेकर ध्रुव वनमें जा रहा है। देखिए, मात्र पांच वर्षका बालक वनमें जा रहा है।

ध्रुव कभी सोचता है कि वनमें तो हिंसक पशु होंगे। वे मुझे खा तो नहीं जाएंगे? तो दूसरे ही पल सोचता है–नहीं, नहीं। मैं अकेला तो हूँ नहीं। मेरी माताने ही तो कहा था कि मैं जहाँ जहाँ जाऊंगा, नारायण भी साथ साथ ही होंगे।

सभीको प्रणाम करके, सभीसे आशीर्वाद लेकर जो व्यक्ति वनमें जाता है, उसे रास्तेमें संत मिलते हैं। घरमें जो झगडा करके जाता है उसे संत नहीं मिलते। झगडा करके गृहत्याग करनेवालेको न तो राम मिलते हैं और न तो माया।

मार्गमें ध्रुवजी सोच रहे हैं कि घरमें तो माता मुझे बेटा कहकर पुकारती थी किंतु यहां वनमें मुझे बेटा कौन कहेगा? यहां मुझे गोदमें कौन बिठाएगा? कौन मुझे प्यार करेगा?

वे आगे बढते ही जा रहे थे कि रास्तेमें सामनेसे नारदजी आ मिले। ध्रुवजीने सोचा कि यह कोई संत हैं। अच्छे संस्कारके कारण ध्रुवने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

प्रणाम साष्टांग ही करना चाहिए। प्रकृति अष्टधा है। अष्टधा-प्रकृति-स्वरूप परमात्मामें मिल जानेकी इच्छा व्यक्त करनेके लिए साष्टांग प्रणाम करना है। प्रणाम करनेसे आत्मनिवेदन होता है।

अधिकारी शिष्यको मार्गमें ही गुरु मिल जाते हैं। सद्‌गुरुत्व और ईश्वरत्व एक ही है। परमात्मा और सद्‌गुरु दोनों व्यापक हैं। सर्वव्यापीको खोजनेकी नहीं, पहचाननेकी आवश्यकता है।

बालककी विनम्रतासे नारदजी प्रसन्न हुए। उनका संतहृदय द्रवित हुआ। उस बालकको उन्होंने गोदमें उठा लिया। सिर पर हाथ फेरने लगे। महापुरुषका हाथ जब मस्तक पर फिरता है तो मनके सारे विकार शांत हो जाते हैं। ध्रुवको लगा कि अपनी माताके आशीर्वादसे यहां मार्गमें एक और माता मिल गई।

जन्मदाता माता बालकको स्तनपान कराके पुष्ट करती है तो गुरुरूपी माता हमेशाके लिए स्तनपान छुडाती है अर्थात् जन्ममृत्युके चक्रसे मुक्त कराती है। मोक्ष दिलाए, अतः फिर कभी जन्म लेकर स्तनपान करना ही न पडे। स्तनपान करानेवाली माता श्रेष्ठ है या स्तनपान छुडानेवाली माता? स्तनपान छुडानेवाली माता–गुरु ही श्रेष्ठ है। गुरु तो कहते हैं कि बेटा, तुझे मैं ऐसा उपदेश दूंगा कि फिर कभी स्तनपान करना ही न पडे।

नारदजीने पूछा– बेटे, तू कहाँ जा रहा है?

ध्रुवजीने कहा– भगवान्‌के दर्शन करनेके लिए मैं वनमें जा रहा हूँ। मेरी माताने बताया है कि मेरे सच्चे पिता तो भगवान् नारायण हैं। मैं उन्हींकी गोदमें बैठनेके लिए जा रहा हूँ।

ध्रुवकी बात सुनकर नारदजीने उसकी परीक्षा लेनी चाही। सद्‌गुरु परीक्षा लेनेके बाद ही शिष्यको उपदेश देते हैं। नारदजीने उससे कहा– अरे, अभी तो तू छोटा-सा बच्चा है। यह तेरी खेलने-कूदनेकी अवस्था है, प्रभुका जप करनेकी नहीं। और भगवान् तो–

यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥

मेरा विचार है कि साधारण पुरुषोंके लिए ईश्वरको प्रसन्न करना बडा ही कठिन कार्य है। तू जिनकी कृपाकी इच्छा कर रहा है वे तो दुराराध्य हैं। बडे बडे ऋषि कई जन्मों तक ईश्वरका आराधन करते हैं फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिल पाते। वे भगवान्‌का मार्ग ढूंढते तो हैं किंतु जान नहीं सकते।

तू बडा होकर पहले हरप्रकारके सुखोंका उपभोग कर और वृद्धावस्थामें निवृत्त होकर वनमें चले जाना। तब शांतिसे भजन करना, रामनाम जपना और भगवान्का दर्शन कर लेना।

तू चाहता है कि भगवान् तुझे गोदमें बिठा लें। किंतु बडे बडे ऋषि मुनि हजारों वर्षोंकी तपश्चर्या करनेके बाद भी उन्हें पा नहीं सकते हैं, तो फिर तेरे जैसे बालकको तो वे मिलेंगे ही कैसे? अतः यही अच्छा है कि तू अपने घर वापस चला जा।

ध्रुवकुमारने कहा– जी नहीं, जिस घरमें मेरा अपमान होता है वहां मैं नहीं रह सकता। मेरे पिताजीके राजसिंहासन पर न बैठनेका मैंने निश्चय किया है। इसी जन्ममें प्रभुके दर्शन करनेका निश्चय किया है। गुरुजी, मार्गदर्शन कराएं।

ध्रुवका अटल निश्चय देखकर नारदजीने कहा :

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्॥

—भा. ४-८-४१

जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र साधन है श्री हरिके चरणोंकी सेवा।

तू मधुवनमें जा।

वृन्दावनमें यह मधुवन है जहां ध्रुवजीको नारायणके दर्शन हुए थे।

यमुना कृपालु है। यमुना महारानी कृपादेवीका अवतार है।

भागवतमें कुछ ऐसे स्थानोंका निर्देश है जहां परमात्मा अखंड रूपसे विराजते हैं। मधुवनमें, श्रीरंगम्में आदि। श्रीरंगम्में "अनंतशयनम् पद्मनाभम् हैं। द्वारिकामें भी भगवान् विराजते हैं। उन्होंने द्वारिका त्यागी नहीं है। बोडाणाकी भक्ति अनन्य थी अतः उनका एक स्वरूप डाकोर आया था। गंडक नदीके किनारे पुलक ऋषिके आश्रममें भी उनका अखंड वास है ऐसा भागवतके पांचवें स्कंधमें कहा गया है।

वृन्दावनमें भगवान्का अखंड वास है। यमुनाजी तेरा ब्रह्मसंबंध सिद्ध करेंगी। यमुनाजी तेरे लिए सिफारिश करेंगी। अपात्र होनेपर भी माता मानेंगी कि तू उसका हुआ है। अतः वे कृपा करेंगी।

नारदजीने ध्रुवको आज्ञा दी—

तस्मात् गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुभम्।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः॥

वत्स, तेरा कल्याण हो। यमुना नदीके तट पर स्थित परम पवित्र मधुवनमें तू जा वहाँ श्री हरिका नित्य निवास है।

वृंदावन प्रेमभूमि है। वहाँ रह कर भजन करनेसे मन जल्दी शुद्ध होता है।

वृंदावन दिव्यभूमि है। वहाँ जीव और ईश्वरका मिलन शीघ्र होता है।

ध्रुवजीने पूछा- वृंदावन जाकर वहाँ परमात्माकी आराधना किस प्रकार करनी है।

नारदजीने कहा- ध्यान करनेसे पहले मानसी सेवा करना। चतुर्भुज नारायणकी मानसी सेवा करना। उस समय मनकी धारा कहीं टूट न जाए इसका खयाल रखना। ईश्वरमें मन सतत संलग्न रहना चाहिए। मानसी सेवा श्रेष्ठ मानी गई है। भगवान् शंकराचार्य भी कृष्णकी मानसी सेवा करते थे।

जो अपने पास कुछ नहीं रखते, वैसे विरक्त संन्यासी मानसी सेवा करें, वह उत्तम है। किंतु गृहस्थके मात्र मानसी सेवा करनेसे कुछ नहीं बन सकता। गृहस्थको चाहिए कि वह मानसी और प्रत्यक्ष दोनों सेवा करे।

मानसी सेवाके लिए उत्तम समय है प्रातःकालके चारसे साढे पांच बजेका। किसी भी व्यक्तिका मुख देखे बिना सेवा करनी चाहिए। प्रातःकाल उठकर ध्यान करो कि तुम गंगा किनारे बैठे हो। मनसे ही गंगाजीमें स्नान करो। अभिषेकके लिये चाँदीके कलशमें गंगाजल। लाओ ठाकुरजीके जगने पर आचमन कराओ। मंगलके बाद माखन-मिसरीकी जरूरत पडेगी। भोलेनाथ शंकरको कुछ नहीं चाहिए, किंतु कन्हैया तो सभी कुछ मांगता है। फिर कृष्णको स्नान कराओ। शंकर तो शीतल जलसे स्नान कर लेते हैं, किंतु बालकृष्णको तो उष्ण जलसे ही स्नान कराओ। फिर ठाकुरजीका शृंगार करो। शृंगार न करने पर भी कृष्ण तो सुंदर ही लगते हैं किंतु शृंगार करनेसे तुम्हारा मन भी सुंदर होगा। अपने विकृत मनको सुधारनेके लिये ही शृंगार करना है। शृंगारसे समाधि-सा आनन्द मिलता है। शृंगारके बाद भगवान्‌को सुंदर भोग लगा करके तिलक करो। आरती उतारो। उस समय तुम्हारा हृदय आर्द्र बनना चाहिये। पद्मपुराणमें आरतीका क्रम बताया गया है। चरण, जंघा वक्षस्थल, मुख और उसके बाद सर्वांगोकी आरती उतारी जानी चाहिए। आरती करते समय प्रभुदर्शनके लिये आर्त बनना चाहिए।

भगवान्‌के दर्शन करते हुए ध्यान करना है। श्री हरिका धीर मनसे ध्यान करो। जप ध्यानसहित होना चाहिए। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो जप करते समय भी संसारका ही चिंतन करते रहते हैं। ऐसा करनेके कारण जप निष्फल तो नहीं माना जा सकता, किंतु जैसा फल मिलना चाहिए वैसा फल मिल नहीं पाता।

स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है।

दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है।

ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है।

जप और ध्यान एक साथ होने चाहिए। जप करते समय जिस देवका तुम ध्यान कर रहे हो उसकी मूर्ति तुम्हारे मनसे हटनी नहीं चाहिए। जीभसे भगवान्‌का नाम लिया जाये और मनसे भगवान्‌का स्मरण किया जाये। आंखोंसे उनका दर्शन करो और कानोंसे उनका श्रवण।

मैं तुम्हें एक मंत्र भी दे रहा हूं।

ॐ नमः भगवते वासुदेवाय।

तू बडा होकर पहले हरप्रकारके सुखोंका उपभोग कर और वृद्धावस्थामें निवृत्त होकर वनमें चले जाना। तब शांतिसे भजन करना, रामनाम जपना और भगवान्‌का दर्शन कर लेना।

तू चाहता है कि भगवान् तुझे गोदमें बिठा लें। किंतु बडे बडे ऋषि मुनि हजारों वर्षोंकी तपश्चर्या करनेके बाद भी उन्हें पा नहीं सकते हैं, तो फिर तेरे जैसे बालकको तो वे मिलेंगे ही कैसे? अतः यही अच्छा है कि तू अपने घर वापस चला जा।

ध्रुवकुमारने कहा- जी नहीं, जिस घरमें मेरा अपमान होता है वहां मैं नहीं रह सकता। मेरे पिताजीके राजसिंहासन पर न बैठनेका मैंने निश्चय किया है। इसी जन्ममें प्रभुके दर्शन करनेका निश्चय किया है। गुरुजी, मार्गदर्शन कराएं।

ध्रुवका अटल निश्चय देखकर नारदजीने कहा:

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्॥
—भा. ४-८-४१

जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र साधन है श्री हरिके चरणोंकी सेवा।

तू मधुवनमें जा।

वृन्दावनमें यह मधुवन है जहां ध्रुवजीको नारायणके दर्शन हुए थे।

यमुना कृपालु है। यमुना महारानी कृपादेवीका अवतार है।

भागवतमें कुछ ऐसे स्थानोंका निर्देश है जहां परमात्मा अखंड रूपसे विराजते हैं। मधुवनमें, श्रीरंगम्‌में आदि। श्रीरंगम्‌में "अनंतशयनम् पद्मनाभम् हैं। द्वारिकामें भी भगवान् विराजते हैं। उन्होंने द्वारिका त्यागी नहीं है। बोडाणाकी भक्ति अनन्य थी अतः उनका एक स्वरूप डाकोर आया था। गंडक नदीके किनारे पुलक ऋषिके आश्रममें भी उनका अखंड वास है ऐसा भागवतके पांचवें स्कंधमें कहा गया है।

वृन्दावनमें भगवान्‌का अखंड वास है। यमुनाजी तेरा ब्रह्मसंबंध सिद्ध करेंगी। यमुनाजी तेरे लिए सिफारिश करेंगी। अपात्र होनेपर भी माता मानेंगी कि तू उसका हुआ है। अतः वे कृपा करेंगी।

नारदजीने ध्रुवको आज्ञा दी—

तस्मात् गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुभम्।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः॥

वत्स, तेरा कल्याण हो। यमुना नदीके तट पर स्थित परम पवित्र मधुवनमें तू जा वहाँ श्री हरिका नित्य निवास है।

वृंदावन प्रेमभूमि है। यहाँ रह कर भजन करनेसे मन जल्दी शुद्ध होता है।

वृंदावन दिव्यभूमि है। वहाँ जीव और ईश्वरका मिलन शीघ्र होता है।

ध्रुवजीने पूछा- वृंदावन जाकर वहाँ परमात्माकी आराधना किस प्रकार करनी है।

नारदजीने कहा- ध्यान करनेसे पहले मानसी सेवा करना। चतुर्भुज नारायणकी मानसी सेवा करना। उस समय मनकी धारा कहीं टूट न जाए इसका खयाल रखना। ईश्वरमें मन सतत संलग्न रहना चाहिए। मानसी सेवा श्रेष्ठ मानी गई है। भगवान् शंकराचार्य भी कृष्णकी मानसी सेवा करते थे।

जो अपने पास कुछ नहीं रखते, वैसे विरक्त संन्यासी मानसी सेवा करें, वह उत्तम है। किंतु गृहस्थके मात्र मानसी सेवा करनेसे कुछ नहीं बन सकता। गृहस्थको चाहिए कि वह मानसी और प्रत्यक्ष दोनों सेवा करे।

मानसी सेवाके लिए उत्तम समय है प्रातःकालके चारसे साढे पांच बजेका। किसी भी व्यक्तिका मुख देखे बिना सेवा करनी चाहिए। प्रातःकाल उठकर ध्यान करो कि तुम गंगा किनारे बैठे हो। मनसे ही गंगाजीमें स्नान करो। अभिषेकके लिये चाँदीके कलशमें गंगाजल। लाओ ठाकुरजीके जगने पर आचमन कराओ। मंगलके बाद माखन-मिसरीकी जरूरत पडेगी। भोलेनाथ शंकरको कुछ नहीं चाहिए, किंतु कन्हैया तो सभी कुछ मांगता है। फिर कृष्णको स्नान कराओ। शंकर तो शीतल जलसे स्नान कर लेते हैं, किंतु बालकृष्णको तो उष्ण जलसे ही स्नान कराओ। फिर ठाकुरजीका शृंगार करो। शृंगार न करने पर भी कृष्ण तो सुंदर ही लगते हैं किंतु शृंगार करनेसे तुम्हारा मन भी सुंदर होगा। अपने विकृत मनको सुधारनेके लिये ही शृंगार करना है। शृंगारसे समाधि-सा आनन्द मिलता है। शृंगारके बाद भगवान्को सुंदर भोग लगा करके तिलक करो। आरती उतारो। उस समय तुम्हारा हृदय आर्द्र बनना चाहिये। पद्मपुराणमें आरतीका क्रम बताया गया है। चरण, जंघा वक्षस्थल, मुख और उसके बाद सर्वांगोकी आरती उतारी जानी चाहिए। आरती करते समय प्रभुदर्शनके लिये आर्त बनना चाहिए।

भगवान्के दर्शन करते हुए ध्यान करना है। श्री हरिका धीर मनसे ध्यान करो। जप ध्यानसहित होना चाहिए। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो जप करते समय भी संसारका ही चिंतन करते रहते हैं। ऐसा करनेके कारण जप निष्फल तो नहीं माना जा सकता, किंतु जैसा फल मिलना चाहिए वैसा फल मिल नहीं पाता।

स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है।

दान करनेसे धनकी शुद्धि होती है।

ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है।

जप और ध्यान एक साथ होने चाहिए। जप करते समय जिस देवका तुम ध्यान कर रहे हो उसकी मूर्ति तुम्हारे मनसे हटनी नहीं चाहिए। जीभसे भगवान्का नाम लिया जाये और मनसे भगवान्का स्मरण किया जाये। आंखोंसे उनका दर्शन करो और कानोंसे उनका श्रवण।

मैं तुम्हें एक मंत्र भी दे रहा हूं।

ॐ नमः भगवते वासुदेवाय।

इस महामंत्रका तुम सतत जाप करते रहो। भगवान् अवश्य प्रसन्न होंगे। मेरा आशीर्वाद है। तुम्हें छ महिनेमें भगवान् मिलेंगे।

संचित प्रारब्धकर्मको जलानेके लिए तीन जन्म लेने पडते हैं।

गीताजीमें भगवान्ने कहा है कि कई जन्मोंके बाद जीव मुझे प्राप्त करता है। 'बहूनां जन्मनामेन्ते।' विद्वानोंने यहां ऐसा अर्थ किया है कि बहूनाम् अर्थात् तीन जन्म। अपने कर्मोंके क्षयके लिए योगियों-ज्ञानियोंको तीन जन्म तो लेने ही पडते हैं। किंतु भागवतमें वर्णित ध्रुवचरित्रमें कहा गया है कि जप करनेसे छ महिनेमें भगवान् मिलते हैं।

मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः।

ध्रुवजीने कहा है कि भगवत्चरणोंकी छाया मैंने छ महिनेमें ही प्राप्त की थी।

यह सही बात है। तुम भी अनुभव करके देखो। किंतु जिस प्रकार ध्रुवने तपश्चर्या की थी, उसी प्रकार तपश्चर्या करो। साधना करनसे सिद्धि प्राप्त होती है।

ध्रुवजीने कई जन्मों तक तपश्चर्या की थी। पूर्व जन्ममें छ मासमें ही उन्हें परमात्माके दर्शन होनेवाले थे। उस योगके लिए अभी छ मास बाकी थे। पूर्वजन्ममें वे ध्यान कर ही रहे थे। कि वहीं पर राजा-रानी आ गए। ध्रुवजी सोचने लगे इन राजा-रानीने जो सुखोपयोग किया है वैसा मैंने तो कभी नहीं किया। इसी कारणसे उन्हें राजाके घर जन्म मिला।

नारदजी अब उत्तानपाद राजाके पास गए। वियोगमें सभीको बिछडे व्यक्तिके गुणोंकी याद आती है। उत्तानपाद पश्चात्ताप करते हुए बैठे हैं और ध्रुवके गुणोंको याद कर रहे हैं।

नारदजीने सोचा- चाहे जो कुछ भी हो, किंतु यह मेरे शिष्यके पिता हैं। मुझे इनका भी उद्धार करना ही होगा। यह सुरुचिके अधीन हो गया है। यह जीभको वशमें करेगा तो उसकी साधना सफल होगी। जीभपर काबू पानेसे सुरुचिका मोह कम हो जाएगा।

उत्तानपादसे नारदजीने कहा- तुम छ मास केवल दूध ही पीना। और अनुष्ठान करना।

ध्रुवजी मधुवनमें आए। प्रथम दिवस उन्होंने अनशन किया। और फिर तीन दिन एक आसन बैठ कर ध्यान किया। केवल फलाहार ही किया।

अन्नाहारसे रजोगुणकी और फलाहारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है।

दूसरे महिनेमें और संयम किया। एक साथ छ दिनों तक ध्यानमें बैठने लगे। तीसरे महिनेमें एक साथ नौ दिनों तक ध्यान करने लगे। फलाहार छोड दिया। केवल वृक्षोंके पत्ते ही खाते रहे। धीरे धीरे संयम बढानेसे भक्ति भी बढती ही जाती है। जिस विषयका एक बार त्याग किया हो उसमें मन-इन्द्रियोंको फिर कभी नहीं लगने दो।

चौथे मासमें केवल यमुनाजल पीकर बारह दिन एक ही आसन बैठ कर जप किया। पांचवें मासमें जल भी छोड दिया और वायुभक्षण करके पंद्रह दिन तक एक ही आसनसे जाप करते रहे।

अब छठा मास आया तो उन्होंने निश्चय किया कि जब तक परमात्मा नहीं मिलेंगे तब तक मैं आसन पर ही बैठा रहूँगा और वे ध्यान-जपमें मग्न हो गए।

निश्चय अटल होगा तो भगवान् अवश्य मिलेंगे।

वृत्ति ब्रह्माकार तो होती है किंतु उसे वैसी ही बनाए रखना बडा कठिन काम है।

ध्रुवजीने छ मास तक परमात्माका सतत ध्यान किया। अपने हृदयमें भगवान् नारायणके स्वरूपका दर्शन किया। अब जीभसे नहीं, मनसे जप करने लगे।

ध्रुवजीकी तपश्चर्यासे प्रभावित होकर देवगणने नारायणसे प्रार्थना की कि आप ध्रुव-कुमारको शीघ्र ही दर्शन दीजिए।

तो भगवान्ने देवोंसे कहा- मैं ध्रुवको दर्शन देने नहीं, उसका दर्शन करनेके लिए आ रहा हूँ।

स्वयं भगवान्को ध्रुवका दर्शन करनेकी इच्छा हुई है। लिखा है-

मधोर्वनं मर्त्यदिदृक्षया गतः।

एक बार पंढरपुरके श्री विट्ठलनाथ और रुक्मिणीके बीच एक संवाद हुआ था।

रुक्मिणीजी कहती हैं- रोज रोज इतने सारे भक्तजन आपके दर्शनके लिए आते हैं फिर भी आप तो दृष्टि झुकाकर ही रहते हैं, किसीसे भी नहीं मिलाते। आखिर ऐसा क्यों ?

यह सुनकर भगवान्ने कहा- जो केवल मुझसे ही मिलने आते हैं, उन पर ही मैं कृपा-दृष्टि करता हूँ। लोग मंदिरमें कौन-कौन-से भाव लेकर आते हैं वह सब मैं जानता हूँ। मंदिरमें सभी लोग अपने लिए ही कुछ-न-कुछ मांगते हैं। मुझसे मिलनेके लिए तो शायद ही कभी कोई आता है। जो मात्र मुझसे मिलनेके लिए आता है उसीसे मैं नजरें मिलाता हूँ।

भगवान्के दर्शनके लिए पंढरपुरके मंदिरमें इतनी बडी भीड इकट्ठी होती है कि सुबह वहां पहुंचा हुआ व्यक्ति शामको ही दर्शन कर पाता है।

एक बार लक्ष्मीजीने भगवान्से पूछा- इतने सारे भक्त आपके दर्शनार्थ मचल रहे हैं फिर भी आप उदास-से क्यों नजर आ रहे हैं ?

भगवान्ने कहा- ये जो आए हैं वे सभी स्वार्थी हैं। किंतु जिसके दर्शन करनेकी मेरी इच्छा है वह तुकाराम अभी तक नहीं आया है।

अब इधर तुकाराम बीमार थे। वे बिस्तर पर सोए हुए सोच रहे थे कि विट्ठलनाथजीके दर्शनके लिए मैं तो जा नहीं पाऊंगा। क्यों न वे ही दर्शन देनेके लिए मेरे घर पर ही आ जायें ?

प्रेम अन्योन्य और परस्परावलंबी होता है।

भगवान्ने लक्ष्मीजीसे कहा- तुकाराम बीमार होनेसे इधर आ नहीं सकता, तो चलो हम ही उसीके घर चलें।

लाखों वैष्णव पंढरपुरके मंदिरमें विट्ठलनाथजीके दर्शनके लिए उमड रहे हैं और विट्ठलनाथजी तो जा पहुंचे हैं तुकारामके घर पर।

जिस प्रकार सच्चा वैष्णव ठाकुरजीके दर्शनके लिए आतुर होता है उसी प्रकार सच्चे भक्तके दर्शनके लिए भगवान् भी आतुर होते हैं।

ध्रुवजीके समक्ष भगवान् नारायण प्रकट हुए। किंतु ध्रुवजीने आँखें नहीं खोलीं। भगवान्ने सोचा कि इस तरह तो मैं कब तक खडा रहूँगा? ध्रुवजीके हृदयमें जो तेजोमय प्रकट स्वरूप था उसको प्रभुने अंतर्ध्यान कर दिया। अब ध्रुवजी व्यथित हो गए। सोचने लगे कि वह दिव्यस्वरूप कहाँ अदृश्य हो गया? ध्रुवजीने आंखें खोलीं, तो अपने सामने चतुर्भुज नारायणको देखा। अब तो ध्रुवजी मानो भगवान्का दर्शन नहीं कर रहे हैं किंतु उनकी रूप-ज्योतिको पी रहे हैं। बहुत कुछ बोलनेकी इच्छा है किंतु कैसे बोला जाए क्योंकि अज्ञानी जो ठहरे।

अपने शंख द्वारा भगवान्ने बालके गालका स्पर्श किया और उसके मनमें सरस्वती जागृत की। तो ध्रुवजीने स्तुति की—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणन्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

भा. ४-९-६

प्रभु! आप सर्वशक्तिसंपन्न हैं। आप ही मेरे अंतःकरण प्रवेश करके अपने तेजसे मेरी इस सुषुप्त वाणीको चेतन युक्त करते हैं तथा मेरे हाथ, पैर कान, त्वचा आदि अन्य सभी इन्द्रियोंको और प्राणोंको चैतन्य देते हैं। ऐसे आप अंतर्यामी भगवान्को मैं वंदन करता हूँ।

मेरी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर उसे सत्कर्मकी प्रेरणा देनेवाले प्रभुको मैं बारबार वंदन करता हूं।

आपका कृतज्ञ आपको कैसे भूल सकता है? जो आपकी स्तुति नहीं करता वह सचमुच ही कृतघ्न है। आप तो मनुष्यको जन्ममरणके चक्रसे मुक्त करते हैं। आपको कामादि विषयोंकी इच्छासे भजनेवाला मूर्ख है। आप तो कल्पवृक्ष हैं। फिर भी वे मूर्खजन देहोपभोगके हेतु ऐसे सुखोंकी इच्छा करते हैं कि जिन सुखोंके कारण ही प्राणीको नरकलोकमें जाना पडता है।

जब आप कृपा करेंगे, तभी यह जीव आपको पहचान सकता है। आपकी कृपा प्राप्त होने पर ही यह जीव आपका दर्शन कर सकता है, आपको प्राप्त कर सकता है।

मात्र साधनासे ईश्वरदर्शन नहीं पाता। कृष्ण कृपासाध्य है, साधनासाध्य नहीं। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम साधना न करो। साधना तो अवश्य करो किंतु उस साधना पर विश्वास मत करो, अभिमान मत करो। साधना तो करना ही है। साधना करते करते थका हुआ जीव दीन होकर जब रो पडता है तभी भगवान् कृपा करते हैं।

उपनिषद्में भी कहा है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमैवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनू स्वाम् ॥

यह आत्मा न तो वेदाभ्याससे मिलती है, न तो बुद्धिचातुर्यसे मिलती है और न तो कई शास्त्रोंके श्रवणसे । किंतु जिसका वह वरण करती है उसीको इस आत्माकी प्राप्ति होती है । आत्मा उसीको अपना स्वरूपदर्शन कराती है ।

साध्यकी प्राप्ति होनेके पश्चात् कई लोग साधनाकी उपेक्षा करते हैं । साधनाकी उपेक्षा करनेसे फिर माया प्रविष्ट हो जाती है । अद्वैत-भावकी सिद्धिके पश्चात् भी वैष्णव तो भगवान्‌की भक्ति करता ही रहता है । ईश्वरप्राप्ति हो जाने पर भी साधनाका त्याग न किया जाये । साधनाकी ऐसी आदत हो जाती है कि वह छूट भी नहीं पाता ।

तुकारामने कहा है—

आधीं केला सत्संग तुका झाला पांडुरंग ।
त्याचे भजन राहिना मूळ स्वभाव जाईना ॥

सत्संगसे तुकाराम पांडुरंग जैसे हो गए हैं । अब उन्हें भजन करनेकी आवश्यकता नहीं है । किंतु तुकारामको भजन करनेकी आदत ही ऐसी पड गई है कि भजन करना छूट ही नहीं पाता ।

तुकारामने प्रारंभमें सत्संग किया तो उन्हें जप करनेकी आज्ञा मिली । जपसे भगवान्‌ने दर्शन दिए और कृपा की । अब तुकाराम और पांडुरंगमें द्वैतभाव नहीं है । फिर भी वे भजन करना छोड नहीं सकते क्योंकि वे आदतसे मजबूर जो हैं । ऐसी उन्नतस्थिति पर पहुंचकर भी ज्ञानी भक्त भक्तिका त्याग नहीं करता ।

ज्ञानी भक्तके लिए भक्ति एक व्यसन-सी होती है । भक्ति व्यसन-सी बन जाए तो बेडा पार लग जाता है ।

प्रभो ! आपके दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् भी सच्चे ज्ञानी भक्तजन आपकी भक्ति छोड नहीं सकते । आपके दर्शन प्राप्त करनेके पश्चात् जो आपका स्मरण नहीं करता वह कृतघ्न है । शुकदेवजीसे राधाकृष्णका ध्यान एक क्षणमात्रके लिए भी छोडनेको कोई कहेगा तो वे ऐसा नहीं कर सकेंगे । अपरोक्ष साक्षात्कार करनेके बाद भी भजन छोडा नहीं जा सकता ।

ध्रुवकुमारने सुंदर स्तुति की । नाथ, जब आपके लाडले भक्त आपका दर्शन करते हुए, स्मरण करते हुए आपकी कथा करें, तब वह सुननेका सुयोग मुझे देनेकी कृपा करें । वह आनंद तो योगियोंके ब्रह्मानंदसे भी श्रेष्ठ है ।

ध्रुवकुमारने विद्वानोंकी कथा सुननेकी इच्छा व्यक्त नहीं की है । उनकी तो इच्छा है कि जिनका हृदय कृष्णप्रेमके रसमें लीन हो गया है वह कथा सुनाए । ज्ञानीकी कथा और भक्त-हृदयकी कथामें अंतर है । आपकी कथाका आनंद ब्रह्मानन्दसे भी श्रेष्ठ है ।

श्रीधर स्वामीको इस श्लोकका अर्थ करनेमें कुछ कठिनाई–सी लगी है। उपनिषद्के सिद्धान्तका यहां पर कुछ विरोध–सा किया गया है। उपनिषद्में कहा है कि ब्रह्मानन्द ही सर्वश्रेष्ठ है। कोई भी आनन्द ब्रह्मानन्दसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता। तैत्तिरीय उपनिषद्में आनन्दका वर्णन किया है। मनुष्यके आनन्दकी अपेक्षा गन्धर्वोंका आनन्द श्रेष्ठ है। इसकी अपेक्षा स्वर्गके देवोंका आनन्द श्रेष्ठ है। देवोंके आनन्दसे बढकर है इन्द्रका आनन्द। इन्द्रके आनन्दकी अपेक्षा बृहस्पतिका आनन्द सौ गुना श्रेष्ठ है। किंतु ब्रह्मानन्द तो सर्वश्रेष्ठ आनन्द है।

जो निष्काम है, निर्विकार है और जिसके मनका निरोध हो चुका है उसे जो आनन्द मिलता है वही ब्रह्मानन्द है। यह सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। ब्रह्माकारवृत्तिवाले योगियोंको जो ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है वह श्रेष्ठ आनन्द है। जहां द्वैत, प्रपंच, " मैं " और " तू, " नहीं है, वह आनन्द श्रेष्ठ है। जब तक " मैं " और " तू " का अस्तित्व है, तब तक श्रेष्ठ आनन्द नहीं मिल पाता। ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होने पर सांसारिकताका, जगत्का अस्तित्व नहीं रह पाता।

भागवतमें ध्रुवजी कहते हैं कि भगवान्की कथाश्रवणका आनन्द ब्रह्मानन्दसे भी श्रेष्ठ है।

यह विरोधाभास क्यों है ? इसमें कौन–सी बात सच्ची है ? महापुरुषोंने अपनी अपनी दृष्टिसे समाधान किया है कि ब्रह्मानन्द सर्वश्रेष्ठ है। किंतु इसमें एक दोष है। यह आनन्द एकभोग्य है, सर्वभोग्य नहीं। जिसकी वृत्ति ब्रह्माकार हुई हो, उसे ही वह आनन्द मिल सकता है। अतः यह आनन्द गौण है। कथाकीर्तनका आनन्द अनेकभोग्य है। भजनानंद सर्वभोग्य होनेके कारण सभीको एक साथ आनन्दित करता है। इसी कारणसे कथानन्दको ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। वैसे तो तात्त्विकदृष्टिसे तो ब्रह्मानन्द ही सर्वश्रेष्ठ कहा जाएगा।

ब्रह्मानन्द एक ही व्यक्तिको आनन्दित कर सकता है। जो आनन्द समाधिमें लीन योगी प्राप्त कर सकता हैं; वह आनन्द योगीके सेवकको नहीं मिल पाता। समाधिलीन योगी अकेला ही संसार पार करता है जबकि संत्संगी स्वयं भी पार होता है अन्योंको भी पार ले जाता है।

कथाश्रवण सभीको एक–साथ आनन्द देता है। यह अनेक भोग्य है। अतः कथा-श्रवणका आनन्द, कथानन्द भी श्रेष्ठ कहा गया है।

कुछ टीकाकारोंने कहा है कि ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा अन्य कोई भी आनन्द श्रेष्ठ नहीं है किंतु सत्संगकी महिमा वृद्धिगत करनेके लिए ऐसा भागवतमें कहा गया है।

प्रभुने ध्रुवजीसे कहा– मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हुआ हूँ। तू मुझसे चाहे जो मांग सकता है।

ध्रुवजीने कहा– क्या मांगू और क्या नहीं, यह मेरी समझमें नहीं आ रहा है। आपको जो भी प्रिय हो वही मुझे दीजिए।

भगवान् शंकर जब प्रसन्न हुए थे, तब उन्होंने नरसिंह मेहतासे वर मांगनेको कहा था। नरसिंह मेहताने भी ध्रुव जैसा ही उत्तर दिया था। तो शिवजीने कहा था कि मुझे तो रासलीला प्रिय है अतः मैं तुझे उसीका दर्शन कराऊंगा। और शिवजीने मेहताको रासलीलाके दर्शन कराए थे।

ध्रुवजीसे भगवान्‌ने कहा– तू कुछ कल्पोंके लिए अपने राज्यका शासन कर। उसके पश्चात् मैं तुझे अपने धाममें ले चलूंगा।

ध्रुवजीने आशंका व्यक्त करते हुए कहा– मुझे अपना पूर्वजन्म याद आ रहा है। राजारानीके दर्शनसे मेरा मन विचलित हुआ था, अतः मुझे यह जन्म लेना पडा। अब जो राजा बना तो फिर रानियोंकी मायामें फंस जाऊंगा और असावध हो जाऊंगा। मैं राजा नहीं बनना चाहता।

प्रभुने कहा– तू चिंता न कर। ऐसा कभी नहीं होगा। तेरी राजा बननेकी इच्छा न भी हो तो, किंतु मैं तुझे राजा बना हुआ देखना चाहता हूं। यह माया तुझे प्रभावित नहीं कर सकेगी। मेरा नियम है कि जो मेरा पीछा करता है, मैं भी उसीका पीछा करता हूं। मैं तेरी रक्षा करूंगा।

छोटे बच्चोंको चाहे आनन्द न होता हो किंतु माताको तो उसका शृंगार करनेमें आनन्द मिलता ही है। मैं जगत्‌को यह दिखलाना चाहता हूं, कि जो व्यक्ति मेरा हो जाता है उसे मैं लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकारके आनन्द प्रदान करता हूं। मैं अपने भक्तोंको अलौकिक सुखके साथ साथ लौकिक सुखसे भी लाभान्वित करता हूं।

शबरी और मीरा जैसा अटल भक्तिभाव होने पर भगवान् कहते हैं कि मैं रक्षा करता रहूंगा।

जीवकी रक्षा जब तक भगवान् स्वयं नहीं करते, तब तक वह कामका नाश नहीं कर पाता।

जेहिं राखे रघुवीर ते उबरे तिहि काल महुं।

श्रीरामने जिनकी रक्षा की है वे कभी कामांध नहीं हुए हैं।

फूल चुननेके लिए आए हुए एक राजसेवकने ध्रुवको देखा तो उसने राजासे ध्रुवके आगमनका समाचार दिया। अनुष्ठानमें बैठे हुए उत्तानपाद राजा दौड पडे।

जरा देखिए तो सही। छ मास पूर्व जिस उत्तानपाद राजाने ध्रुवको अपनी गोदमें क्षणमात्र भी बैठने नहीं दिया था, वही राजा अब भगवान्‌के दर्शन करके आए हुए ध्रुवके स्वागतके लिए दौडते हुए जा रहे हैं।

जो ईश्वरसे संबंध जोड लेता है, जगत् उसीके पीछे दौडने लगता है। परमात्मा जिसे अपना बनाते हैं, उसको शत्रु भी वंदन करते हैं। यदि तुम पीछे लग जाओगे तो जगत् तुम्हारे पीछे लग जाएगा।

वही उत्तानपाद कि जिन्होंने ध्रुवका कभी अपमान किया था, आज उसका स्वागत करनेके लिए दौड पडे हैं। वे सोचते हैं मेरे पांच वर्षके बालकने भगवान्‌का दर्शन पा लिया और मैं आधी जिंदगी गुजार चुका फिर भी सुरुचिकी मायामें फंसा हुआ हूं। धिक्कार है मुझे!

राजाकी आंखोंसे आनन्दाश्रु बह रहे हैं। कहां है मेरा ध्रुव? कहां है मेरा बेटा?

सेवकने कहा– देखिए महाराज, राजकुमार आपको वन्दन कर रहे हैं। तो राजाने बालकको गले लगाकर कहा कि मैं वन्दनके लिए अपात्र हूं।

+

शुकदेवजी वर्णन करते हैं। उस समय परमानंदकी वर्षा हो रही है।

अब ध्रुव माताओंको वन्दन करनेके लिए जा रहे हैं। वे सोचते हैं कि मेरी माताने तो कहा था कि उसे मैं वन्दन न करूं तो कोई वैसी बडी बात नहीं है किंतु विमाता सुरुचिको तो मुझे वन्दन करना ही चाहिए। अतः ध्रुवने जब सुरुचिको प्रणाम किया तो उसका दिल भर आया। कितना सयाना है यह!

सुनीताका हृदय तो हर्षके मारे इतना भर आया कि वह तो कुछ बोल भी न पाई। उसे लगा कि आज ही वह पुत्रवती हुई है, क्योंकि उसका पुत्र आज भगवान्को प्राप्त करके आया है।

रामचरितमानसमें भी कहा गया है—

पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुवरभगत जासु सुत होई॥

जो सभीका आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है वही सर्वेश्वरको भी प्रिय लगता है।

लोगोंने कहा कि ध्रुवजीने नारायणके दर्शन किए हैं अतः हम उनका दर्शन करके कृतार्थ हो जाएंगे तो ध्रुवजीकी नगरयात्राका आयोजन किया गया।

ध्रुवजीको हाथी पर सवार होनेके लिए कहा गया तो उन्होंने कहा कि मैं अकेला सवार नहीं हो सकता। अपने भाई उत्तमको भी पासमें बिठलाओ। उत्तमको हाथी पर पहले बिठाकर ध्रुव ऊपर सवार हुए।

जो अपने भाई-बहनोंमें, नाते-रिश्तेदारोंमे परमात्माका दर्शन नहीं कर सकता, उसे मूर्ति आदिमें भी भगवान्का दर्शन नहीं हो सकता।

शब्दात्मक उपदेशका प्रभाव शीघ्र नहीं पडता। क्रियात्मक उपदेशका प्रभाव शीघ्र पडता है।

सुरुचि अब पश्चात्ताप करने लगी है। सुनीतिके चरणोंमें मस्तक नमाकर रो रही है। उसके आंसूके साथ साथ उसके मनका मैल भी धुल गया।

ध्रुवकुमारका राज्याभिषेक किया गया और भ्रमिके साथ विवाह भी किया गया।

एक बार उत्तम शिकार करनेके लिए वनमें गया। वहां यक्षके साथ युद्ध होने पर उसकी मृत्यु हो गयी। ऐसा दुःखद समाचार सुनकर ध्रुव वहां पहुंचा और भीषण युद्ध करके वह यक्षोंका संहार करने लगा।

उस समय ध्रुवके पितामह महाराज मनु वहां पधारे। उन्होंने ध्रुवसे कहा- बेटे, वैष्णव वैर नहीं करते। विष्णु भगवान् प्रेमके स्वरूप हैं। अपनी छाती पर लात मारनेवाले भृगुऋषिको भी विष्णु भगवान्ने प्रेम ही दिया था।

शिवजी वैराग्यके स्वरूप हैं।

अति प्रेम और अति वैराग्य दोनोंका निर्वाह कठिन है। ज्ञानीको चाहिए कि वह अतिशय वैराग्यसे रहे और वैष्णवको चाहिए कि वह अतिशय प्रेम करे।

महाराज मनु कहते हैं :

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजंतुषु ।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् संप्रसीदति ॥

सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥

– भा. ४।११।१३–१४

अपनोंसे बडोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, समान वयस्कोंके साथ मैत्री और समस्त जीवके साथ समान बर्ताव करनेसे सर्वात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ।

तितिक्षा–सहनशीलता, सर्वजनके प्रति करुणा और जगत्‌के प्रत्येक जीवसे मैत्री– इन तीन गुणोंसे संपन्न व्यक्ति सुखी होता है और उस पर भगवान् भी प्रसन्न होते हैं । प्रत्येक प्राणीके प्रति स्वभाव रखनेसे प्रभु प्रसन्न होते हैं और भगवान्‌के प्रसन्न होने पर, प्राकृतिक गुणों तथा लिंग शरीरसे मुक्त होकर पुरुष सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति करता है ।

मनु महाराजके उपदेशको सुनकर ध्रुवने संहार रोका ।

ध्रुवजी विशालक्षेत्रमें आए । ये जब बालक थे, तब यमुनाजीके किनारे पर गए थे, अब वृद्धावस्थामें गंगाजीके तट पर आए हैं । गंगाजी मृत्यु सुधारती है । भागवतकी कथा प्रेमसे सुननेसे सभी यात्राओंका फल मिलता है ।

गंगाके किनारे बैठकर ध्रुवजी भजन–कीर्तन करने लगे । गंगाजीके प्रवाहके निनादसे ध्रुवजीके ध्यानमें विक्षेप होने लगा । वे गंगाजीका किनारा छोडनेको उद्यत हुए । तो गंगाजी वहां प्रकट हुई । ध्रुवने कहा, माता, तुम्हारा यह कलकल निनाद मेरे भजन–ध्यानमें विक्षेप करता है ।

तो गंगाजीने ध्रुवसे कहा– तू शांतिसे ध्यान करता है तो मैं भी अब शांतिसे ध्यान करूंगी । अब मैं कभी सशब्द नहीं बहूंगी । तू यहांसे जाना नहीं ।

गंगाजी शांत हो गई । ऋषिकेशके समीप ध्रुवाश्रमके पास गंगाजी आज तक शांत ही हैं । केवल ध्रुवाश्रमके निकट ही गंगा शान्त हैं और किसी स्थान पर नहीं ।

एक बार भगवान्‌की आज्ञासे ध्रुवकुमारको अपने साथ ले जानेके लिए विमान लेकर पार्षद आए । गंगातट छोडकर वैकुंठ जानेकी ध्रुवकी इच्छा नहीं हो रही है । वे सोचते हैं कि गंगातट पर रहकर सत्संग, भजन, ध्यान आदिमें जो आनन्द मुझे मिला है वह वैकुंठमें कैसे प्राप्त होगा ? गंगाजीको साष्टांग प्रणाम करके वे अंतिम स्नान करने लगे । गंगाजीको छोडते हुए उन्हें वेदना हो रही है, उनका हृदय भर आया है ।

उस समय गंगाजी प्रकट हुई । ध्रुवने कहा– भगवान्‌की आज्ञाके कारण मैं तुम्हें छोड कर वैकुंठ जा रहा हूं । तुम्हारे तट पर जैसा आनन्द मिला है वैसा तो वहां वैकुंठमें कैसे मिलेगा ? यह सुनकर गंगाजीने प्यारसे कहा– यह तो मेरा भौतिक स्वरूप है वैकुंठमें मैं आधिभौतिक स्वरूपसे रहती हूं । ध्रुवने गंगाजीको प्रणाम किया ।

सभीको वन्दन करके ध्रुवजी वैकुंठ गए। वे विनयकी मूर्ति हैं।

ध्रुवके समीप आकर मृत्युदेवने सिर नमाया, तो ध्रुवने उनके मस्तक पर एक पैर रखकर दूसरा पैर विमानमें रखा। विमानमें बैठकर भगवान्के धाममें गए। ध्रुवके वैकुंठ-गमनसे सभीको आनन्द हुआ।

नारदजी कुछ अप्रसन्न-से हैं। वे सोचते हैं कि मृत्युदेवके सिर पर पांव रखकर विमानमें बैठकर मेरा शिष्य वैकुंठमें पहुंच गया। मेरा शिष्य मुझसे भी आगे निकल गया। उसे लेनेके लिए वैकुंठसे विमान आया और मुझे तो अब भी इस संसारमें भटकना पड रहा है।

यह वात सिद्ध करती है कि बहुत कथा करनेसे भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। ध्यानके विना, प्रभुदर्शनके विना शांति नहीं मिलती। एकांतमें बैठकर ध्यान करनेकी आवश्यकता है।

प्रभुके लाडले भक्त मृत्यु अर्थात् कालके मस्तक पर पांव रखकर वैकुंठमें जाते हैं। भागवतके चौथे स्कंधके बारहवें अध्यायके तीसवें श्लोकमें स्पष्ट कहा है कि मृत्युके सिर पर पांव रखकर ध्रुवजी विमानमें बैठे थे।

मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम्।

भगवान्के भक्त मृत्युसे नहीं डरते। मनुष्य निर्भय नहीं बन पाता है क्योंकि वह ईश्वरका नहीं होता है। जो ईश्वरकी शरणमे गया है वह निश्चिंत बनता है, निर्भय बनता है।

सुतीक्ष्ण ऋषि मानसमें कहते हैं- मेरा अभिमान प्रतिदिन वृद्धिंगत हो। कौन-सा अभिमान? मैं भगवान्का हूं और भगवान् मेरे हैं ऐसा अभिमान।

अस अभिमान जाई जनि मोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

जो भगवान्का आश्रय ग्रहण करता है वह निर्भय बनता है। उसे कालका भय नहीं सता सकता। काल तो परमात्माका दूत है। कालके काल परमात्माकी शरणमें जानेके पश्चात् काल भी क्या बिगाड सकता है?

ध्रुव अर्थार्थी भक्त हैं। ध्रुवने भगवान्की शरणागति स्वीकार की तो भगवान्ने उनको दर्शन दिये, राज्य दिया और अंतमें वैकुंठवास भी दिया। यह है भगवान्की अनन्य शरणागतिका फल।

ध्रुवका दृष्टांत बताता है कि अटल निश्चयसे कठिनतम कार्य भी सिद्ध होता है। किंतु यह निश्चय कैसा होना चाहिए?- "देहं वा पातयामि कार्यं वा साधयामि।" कार्य सिद्ध करूंगा और नहीं तो देहत्याग करूंगा।

यह दृष्टांत यह भी बताता है कि बाल्यावस्थासे ही जो भगवान्की भक्ति करता है उसे ही वे मिल पाते हैं। वृद्धावस्थामें भजन-ध्यान करनेवालेका अगला जन्म सुधरता है। किंतु इसी जन्ममें भगवान्को प्राप्त करना है तो बाल्यावस्थासे ही भक्ति की जानी चाहिए।

बाल्यावस्थाके अच्छे संस्कार नष्ट नहीं होते। सुनीतिकी भांति तुम भी अपने बालकोंमें बचपनसे ही धार्मिक संस्कारोंका सिंचन करो।

ध्रुवचरित्रकी समाप्ति करते हुए मैत्रेयजीने कहा कि नारायण सरोवरके किनारे नारदजी तप कर रहे थे, वहां प्रचेताओंका मिलन हुआ।

विदुरजीने पूछा– ये प्रचेता कौन थे ? किसके पुत्र थे ? विस्तारसे सब कुछ बताइए।

मैत्रेयजी विदुरजीको और शुकदेवजी परीक्षित राजाको कथा सुना रहे हैं।

ध्रुवजीके ही वंशज थे प्रचेता।

ध्रुवजीके वंशमें एक राजा हुआ था अंग। अंगके यहां हुआ वेन। अंग सदाचारी था और वेन दुराचारी। वेनके शासनकालमें प्रजा बहुत दुःखी हो गई।

वेन राजाके शासनकालमें अधर्म बढ गया तो ब्राह्मणोंने शाप देकर उसका नाश किया। राजाके बिना प्रजा दुःखी होने लगी। वेन राजाके शरीरका मंथन किया गया। प्रथम एक काला पुरुष प्रकट हुआ। नीचेके भागमें पाप होनेके कारण उसका मंथन करके प्रथम तो पाप निकाल दिया गया। नाभिसे नीचेका भाग उत्तम नहीं है। उसके ऊपरका भाग उत्तम कहा गया है।

नाभिसे नीचेके भागका सुख लेने जैसा नहीं है। मनुष्यके ऊपरका भाग पवित्र है।

फिर ऊपरके पवित्र भागका–बाहुओंका मंथन वेदमंत्रों द्वारा किया गया। उससे पृथु महाराजका प्राकट्य हुआ।

श्रीधर स्वामीने कहा है कि इन लोगोंने बाहुओंका मंथन किया अतः अर्चन–भक्तिरूप पृथु महाराज प्रकट हुए। यदि हृदयका मंथन किया गया होता तो साक्षात् नारायण प्रकट हुए होते।

पृथु महाराज अर्चन भक्तिके स्वरूप हैं, अतः उनकी रानीका नाम अर्चि है। अर्चन–भक्तिमें पृथु श्रेष्ठ हैं। वे नित्य महा-अभिषेक करते थे, अतः उनके शासनकालमें प्रजा सुखी हुई। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया। इस यज्ञमें अश्वको बंधनरहित करके उसकी इच्छानुसार घुमाया जाता है। यदि अश्व कहीं बांधा न जाए तो यज्ञमें उसका बलिदान किया जाता है।

अश्व वासनाका स्वरूप है। यदि वह किसी विषयके बंधनमें न फंसे तो आत्मस्वरूपमें लीन होता है। यदि वासना किसी विषयके बंधनमें फंस जाये तो विवेकसे युद्ध करके उसे शुद्ध करना होता है।

पृथुके इस अश्वमेध यज्ञमें इन्द्रने बाधा उपस्थित की। वे उस अश्वको ले गए। उस यज्ञमें अत्रि महाराज बैठे हुए थे। पृथुका पुत्र घोडा वापस ले आया। उस समय भगवान् प्रकट हुए।

पृथुने भगवान्से प्रार्थना की– मैं मोक्षकी इच्छा नहीं रखता क्योंकि वहां आपकी कीर्तिकी कथा सुननेका सुख नहीं मिल पाता। मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आपकी कथाके श्रवणके लिए मुझे दस हजार कान दें कि जिससे मैं आपकी लीलाकथा सुनता रहूं। आपके एक चरणकी सेवा चाहे लक्ष्मीजी करें किंतु दूसरे चरणकी सेवा मैं करना चाहता हूं।

पृथुराजाने धर्मानुसार प्रजाका पालन किया और पृथ्वीमें समाहित कई प्रकारके

रसोंका युक्तिपूर्वक दोहन किया। उन्होंने अपनी प्रजाको बार बार धार्मिक शिक्षा दी। वे चाहते थे कि उनकी प्रजा धर्मकी मर्यादाओंका पालन करे।

पृथु महाराज गाय तथा ब्राह्मणोंका पालन करते थे।

गाय घास खाकर दूध देती है। ब्राह्मण साधारण भिक्षासे जीवन निर्वाह करके सभीको ज्ञानदान करता है। गाय और ब्राह्मणके संतुष्ट होने पर प्रजाको शक्ति और ज्ञान मिलते हैं और प्रजा सुखी होती है। आजकलके राज्यकर्ता ऐसा सोचें, तो प्रजा सुखी हो सकती है।

जब संपत्तिकी अपेक्षा अच्छे संस्कार और धर्मकी आवश्यकता अधिक महसूस होगी और वृद्धिगत भी होगी, तभी देश सुखी होगा।

पृथु महाराज एक बार रानी अर्चिके साथ बैठे हुए थे। कि वहां सनतकुमार आए। उनके सत्संगसे राजाको वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे अर्चिके साथ वनमें गए। पृथु महाराज स्वर्गमें गए।

सनत्कुमारोंके उपदेशसे उन्होंने वनवास लिया।

प्राचीन कालमें तो राजा भी राज्यत्याग करके वनमें बसकर प्रभुभजन करते थे। किंतु इस अर्थ और भोगप्रधान कालमें वनवास करनेकी इच्छा किसीको होती ही नहीं है। फिर सुखशांति मिले तो कैसे मिले?

पृथुके पश्चात् उनका पुत्र विजिताश्व राजा बना। वे तीन बंधु थे: हर्यक्ष, धूम्रकेश और वृक। इसके पश्चात् अंतर्धानके यहां हविर्धान और हविर्धानके यहां प्राचीन बर्हिराजा हुआ। प्राचीन बर्हिराजाके यहां प्रचेता हुए।

प्रचेता नारायण सरोवरके किनारे आए। नारदजीने उनको रुद्रगीताका उपदेश दिया। उससे भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाओंसे कहा कि- तुम तप करो। बिना तप किए सिद्धि नहीं मिल पाती। तप न करनेवालेका पतन होता है। शंकर भगवान् ऐसी आज्ञा देकर अदृश्य हो गए। शंकरके बताए हुए स्तोत्रोंका जाप करते हुए प्रचेता तपश्चर्या करने लगे।

नारदजीने उस समय बर्हिराजासे प्रश्न किया- तुमने यज्ञ तो अनेक किए हैं। क्या तुम्हें शांति मिली?

राजाने कहा- नहीं।

नारदजी- तो फिर तुम ये यज्ञ क्यों कर रहे हो?

राजा- मुझे प्रभुने बहुत कुछ दिया है अतः मैं यज्ञ कर रहा हूं। यज्ञोंके द्वारा मैं ब्राह्मणोंकी सेवा कर रहा हूं। यज्ञके द्वारा मैं संपत्तिका समाजसेवामें सदुपयोग कर रहा हूं। यज्ञसे भी वैसे तो शांति नहीं मिल पाती है।

नारदजी प्राचीन बर्हिराजाको समझा रहे हैं— जन्ममृत्युके चक्रसे जीव मुक्त हो पाए तभी पूर्ण शांति प्राप्त हो सकती है। यज्ञसे तेरा कल्याण नहीं होगा। कल्याणके लिए चित्तशुद्धि आवश्यक है। चित्तशुद्धि होनेके पश्चात् एकांतमें बैठकर ध्यान करनेकी आवश्यकता है। केवल यज्ञ करनेसे ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता। तू स्वर्गमें तो जाएगा किंतु तेरे

पुण्योंका क्षय होगा। अतः स्वर्गमेंसे तुझे निकाल दिया जाएगा। इसलिए शांतिसे बैठकर तू आत्म-स्वरूपका चिंतन कर। तुझे तेरे अपने ही आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं है। अब यज्ञ करनेकी आवश्यकता नहीं है। शांतिपूर्वक ईश्वरकी तू आराधना कर।

राजाने कहा– आप बडा अच्छा उपदेश दे रहे हैं।

नारदजी कहते हैं– तुझे अपने ही स्वरूपका ज्ञान नहीं है। जो स्वयंके स्वरूपको पहचान नहीं सकता, वह ईश्वरको कैसे पहचान सकेगा? मैं एक कथा सुनाता हूँ ध्यानसे सुन।

प्राचीनकालमें एक पुरंजन नामका राजा था। उसके एक मित्र था अविज्ञात। पुरंजनको सुखी करनेके लिए अविज्ञात हमेशा प्रयत्नशील रहता था। फिर भी अपने प्रयत्नकी उसे भनक भी न पडे उसका भी वह ध्यान रखता था।

ईश्वर ही अविज्ञात है। ईश्वर अज्ञातरूपसे जीवकी सहायता करता है। जीवात्मा-पुरंजनको सुखी करनेके लिए ईश्वर-अविज्ञात वृष्टि करता है, अनाज उत्पन्न करता है। फिर भी वह पुरंजनको खबर तक नहीं होने देता। पुरंजन भी यह नहीं सोचता कि वह किसीकी सहायताके कारण सुखी है।

परमात्माकी लीला अविज्ञात है। वहां बुद्धि कुछ काम नहीं दे सकती। भगवान् कहते हैं कि अशन करनेका काम तेरा है और पाचन करनेका काम मेरा है। "पचामि अन्नं चतुर्विधम्।" जीव भोजन करता है और परमात्मा पाचन करते हैं। पेटमें ठाकुरजी अग्निके रूपमें बसे हुए हैं। भोजन कर लेनेके बाद भगवान् कहते हैं कि अब तेरा काम है सोनेका और मेरा काम है जागनेका।

मान लो कि हम गाडी हैं। जीवात्मा यात्री है और परमात्मा चालक। यदि भगवान् सो जाए तो 'अच्युतम् केशवम्' हो जाए। रेल्वे इंजनका चालक सो जाए तो गाडी रुक जाती है। यात्री सो सकता है, चालक-सूत्रधार-ईश्वर नहीं। फिर भी जीव कभी सोचता तक नहीं है कि उसे सुख-सुविधा देनेवाला है कौन?

सत्कर्मका संकल्प करनेवालेको तो भगवान् भी बल देते हैं। प्रभुका भजन प्रातःकालमें किया जाता है। सूर्योदयके पश्चात् तो औरोंके रजोगुण, तमोगुणके रजकण तुम्हें प्रभावित करेंगे। अतः तुम अच्छे ढंगसे भजन नहीं कर पाओगे।

जीव चाहे सो जाए, भगवान् कभी नहीं सोते।

पुरंजन जीवात्मा है। वह सोचता है कि मैं किसके कारण सुखी हूँ। सदा सर्वदा उपकार करनेवाले ईश्वरको भूल कर घूमता-फिरता हुआ वह नौ द्वारवाली एक नगरीमें प्रविष्ट हुआ। यह नगरी है मानव-शरीर।

वहां पहुँचने पर एक सुंदरीसे मिलन हुआ। पुरंजनने उससे उसका परिचय पूछा। स्त्रीने कहा कि मैं यह तो नहीं जानती कि मैं कौन हूँ। किंतु मैं तुम्हें सुखी अवश्य करूंगी।

पशु जातिभेद मानते हैं। भैंसको देखनेसे बैल विकारी नहीं होता।

लोग गीताजी पढते तो हैं किंतु उसे व्यावहारिक रूप नहीं देते। भगवान्ने कहा है कि ये जातियां और वर्णाश्रम मैंने बनाए हैं। फिर भी आजकलके सुधरे हुए लोग कहते हैं कि हम वर्णाश्रमकी व्यवस्थाको नहीं मानते। जिसके जीवनमें संयम नहीं है, सदाचार नहीं है, धर्मनिष्ठा नहीं है, प्रभुप्रेम नहीं है, वह सुधरा हुआ माना जाए या बिगडा हुआ? उनका जीवन सुधरा

नहीं, बिगडा ही है। सुधरे हुए लोग कहते हैं कि यह स्त्री बडी सुंदर है। सुंदर होनी चाहिए फिर जाति चाहे कोई भी हो।

कुल-गोत्रका विचार किए बिना पुरंजनने उस स्त्रीसे विवाह किया। उस सुंदरीमें वह इतना आसक्त हो गया कि उसके घर ग्यारह सौ पुत्रोंका जन्म हुआ। उस स्त्रीका नाम था पुरंजनी। वे पुत्र आपसमें झगडते रहते थे।

बुद्धि ही पुरंजनी है। ग्यारह इन्द्रियोंके सुखोपभोगकी इच्छा ही ग्यारह सौ संतानें हैं। एक एकके सौ सौ पुत्र। इन पुत्रोंका पारस्परिक युद्धका अर्थ है संकल्प-विकल्पोंका संघर्ष। एक विचार उत्पन्न हुआ नहीं कि दूसरा उसे दबोचने दौडता है। ग्यारह इन्द्रियोंमें यह जीव फंस गया है। पंच प्राण शरीरकी रक्षा करते हैं। इन्द्रिय सुखोपभोगके संकल्प-विकल्प ही ग्यारह सौ संतानें हैं। संकल्प-विकल्पसे जीव बंधनमें पडता है। बुद्धिगत संकल्प-विकल्प जीवात्माको रुलाते हैं।

कई वर्षोंतक पुरंजनने इस प्रकार सुखोपभोग किया।

कालदेव मृत्युकी पुत्री जराके साथ विवाह करनेकी इच्छा कोई नहीं करता। पुरंजनकी अनिच्छा होते हुए भी जराने उससे विवाह कर ही लिया।

जो भोगोपभोगका सुख लूटता है उसे जरासे अर्थात् वृद्धावस्थासे विवाह करना ही पडता है। हमेशा याद रखो कि कभी न कभी वृद्धावस्था तो आएगी ही? "जवानी तो जवानी।" अर्थात् यौवन तो जाएगा ही। योगी कभी वृद्धावस्था नहीं पाता।

फिर एक दिन मृत्युका सेवक प्रज्वर आया। प्रज्वर है अंतकालका ज्वर। स्त्रीमें अतिशय आसक्त रहनेवाले पुरंजनने अंतःकालमें भी स्त्रीका ही चिंतन करते हुए देहत्याग किया, परिणामतः विदर्भ नगरीमें उसे कन्यारूपमें जन्म लेना पडा।

स्त्रीका चिंतन करनेसे पुरंजनको स्त्री बनना पडा। यह बात पुरुषोंको चेतावनी देती है कि वे किसी स्त्रीका अधिक चिंतन न करें। अन्यथा अगले जन्ममें साडी पहननी पडेगी, किसीकी पत्नी बनना पडेगा, संतानें होंगी। कई कठिनाइयां झेलनी पडेंगी, जिनका विचार-मात्र कंपकंपी करानेवाला है।

पुरंजन पुरुष था किंतु बार बार स्त्रियोंका चिंतन करते रहनेसे उसे अगले जन्मम स्त्री बनना पडा। कोई हमेशाके लिए पुरुष या स्त्री नहीं रह सकता। वासनाके अनुसार शरीर बदलता रहता है।

पुरंजनने केवल जवानीमें ही पाप किया था। बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें तो उसने सत्कर्म किया था। इन्हींके पुण्योंके कारण उसका जन्म एक ब्राह्मणके घरमें कन्यारूपमें हुआ। विदर्भ देशवासी उस कर्मकांडी ब्राह्मणके घरमें दर्भका विशेष उपयोग होता था। मर्यादाधर्मका पालन करने पर उसका विवाह द्रविड देशके पांड्य राजाके साथ हुआ। कर्म करनेसे चित्तशुद्धि होनेके बाद विवाह हुआ। द्रविड देश तो है महारानी भक्तिका नैहर। पांड्य राजा अर्थात् भक्त पतिसे विवाह हुआ।

कर्म करनेसे चित्तशुद्धि हो, तो भक्ति की जा सकती है। लोग मानते हैं कि भक्तिमार्ग सरल है किंतु यह तो अतिशय कठिन मार्ग है। मर्यादाधर्मका पालन किए बिना भक्तिका उदय

नहीं हो पाता। चित्तकी शुद्धि हुए बिना भक्तिका उदय नहीं होता। अंतमें परमात्माका अनुभव करनेके लिए ज्ञान आवश्यक है।

भक्तपतिके साथ विवाह होने पर एक कन्या और सात पुत्रोंका जन्म हुआ। कन्या है कथाश्रवणमें, सत्संगमें रुचि। इस प्रकार भक्तिका जन्म हुआ। सात पुत्र भक्तिके सात प्रकार हैं- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य। अर्थात् सात प्रकारकी भक्ति सिद्ध हुई।

भगवान्के नाम, रूप, गुण, प्रभाव लीलाओंका कानसे श्रवण, मुखसे कीर्तन और मनसे स्मरण करने पर क्रमशः श्रवण, कीर्तन और स्मरण भक्ति सिद्ध होती है। प्रभुकी सेवा करनेसे अर्चनभक्ति सिद्ध होती है। प्रभुकी मूर्तिको वंदन करनेसे वंदनभक्ति सिद्ध होती है। इन सात प्रकारकी भक्ति मनुष्य अपने प्रयत्नसे प्राप्त और सिद्ध कर सकता है। किंतु आठवीं सख्यभक्ति और नवीं आत्मनिवेदनभक्ति प्रभुकृपासे ही प्राप्त और सिद्ध हो सकती है।

श्रवणादि सात प्रकारकी भक्ति सिद्ध करनेके बाद, एक बार पतिकी मृत्युके समाचारसे दुःखी हुई उस कन्याको परमात्माने सद्गुरुके रूपमें आकर बोध दिया। भक्तिके सात प्रकार सिद्ध होने पर परमात्मा सख्यका दान करते हैं, आत्मनिवेदनका दान करते हैं।

अर्थात् जिस मित्रको, जिस अविज्ञातको यह जीव मायाके कारण भूल गया था, वही सद्गुरुके रूपमें आया। इसका अर्थ यह है कि अविज्ञातके रूपसे परमात्माने वहां आकर ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया कि तू मुझे छोडकर मुझसे दूर हुआ और नौ द्वारवाली नगरीमें रहने गया, तबसे तू दुःखी हो रहा है तू अपने स्वरूपको पहचान।

लौकिक सुखमें मनुष्य इतना तो फंसा हुआ रहता है कि वह अपने आत्मस्वरूपका विचार ही नहीं करता। "तत् त्वमसि।" तू मेरा मित्र है, मेरा अंश है, मेरा स्वरूप है। तू स्त्री-पुरुषरूप नहीं है। तू मेरी ओर देख।

पुरंजन प्रभुके संमुख हुआ। जीव और ब्रह्मका मिलन हुआ। जीव कृतार्थ हुआ। तू पुरंजन राजा है। तू कई बार स्त्री बना और कई बार पुरुष। फिर भी तुझे तृप्ति नहीं हुई, अब भी जगत्में कब तक और कितना भटकना है? परमात्माका आश्रय लेकर उसका चिंतन करते हुए उसके स्वरूपमें लीन होगा तो तू कृतार्थ हो जाएगा।

भक्तमालमें अमरदासजीकी एक कथा है। एक बार अमरदासजीने अपनी मातासे पूछा- माता, मैं तेरे विवाहके समय कहां था? तो माताने कहा बेटा, मेरे विवाहके पश्चात् तेरा जन्म हुआ है। तो पुत्रने कहा था, माता, तू गलत कहती है। उसी समय भी मैं कहीं पर तो था ही। मेरा वह मूल निवास कहां है?

हमारी यह बुद्धि जानती नहीं है कि हमारा मूल निवासस्थान कहां है। अतः जीव जगत्में भटकता फिरता है।

नारदजीने प्राचीन बर्हिराजाको पुरंजनका आख्यान कह सुनाया।

विषयोंमें जीव ऐसा फंसा हुआ है कि वह सोचता तक नहीं है कि वह कौन है। फिर वह परमात्माको तो पहचान ही कैसे सकेगा? अपनेको जो पहचान नहीं पाता है वह भगवान्को कैसे पहचान सकेगा?

इस तरह जीवात्माकी कथा सुनकर प्राचीन बर्हिराजाको आनन्द हुआ और बोला कि मैं अब कृतार्थ हो गया। अब मैं मात्र यज्ञ नहीं करता रहूंगा। वे अब भगवद्-चिंतन करते हुए भगवान्में लीन हो गए। कथा मनुष्यको उसके दोषोंसे परिचित कराती है और मुक्त भी कराती है।

पूर्वजन्मका प्रारब्ध तो झेलना और ऐसा प्रयत्न करना है कि नया प्रारब्ध उत्पन्न ही न हो। ऐसा पवित्र और सादगीभरा जीवन जीओ कि जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाए।

आत्मा परमात्माका अंश है। जीवात्मा देहसे भिन्न है। जीवात्मा न तो ब्राह्मण है और न तो वैश्य, न तो पुरुष है और न तो स्त्री। आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाए और देहका विस्मरण हो जाए तो मनुष्यको जीते जी मुक्ति प्राप्त होती है।

जगत् नहीं है ऐसा बोध (अनुभव) तो मनुष्यको होता है किंतु अपने स्वयंके अनस्तित्वका बोध उसे नहीं हो पाता। अहम्का विस्मरण नहीं होता।

दस हजार वर्षों तक प्रचेताओंने नारायण सरोवरके किनारे जप किया, तभी उनके समक्ष नारायण प्रकट हुए थे।

जपसे मनकी शुद्धि होती है। जपके बिना जीवन नहीं सुधरता। रामदास स्वामीने अनुभवसे दासबोधमें लिखा है कि तेरह करोड जप करनेसे ईश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं।

जप पूर्वजन्मोंके पापोंको भी जलाता है। जपका फल तत्काल न मिल पाए तो मानो कि पूर्वजन्मके पाप अभी तक बाकी हैं जिनका अभी नाश होना बाकी है। इस विषयमें स्वामी विद्यारण्यका दृष्टांत दृष्टव्य है।

स्वामी विद्यारण्य बडे गरीब व्यक्ति थे। अर्थप्राप्तिके हेतु उन्होंने गायत्री मंत्रका चौबीस पुरश्चरण किया, किंतु अर्थप्राप्ति न हो सकी। अतः उन्होंने थकहार कर संन्यास ले लिया। उस समय उन्हें माता गायत्रीके दर्शन हुए। माताजीने कहा– मैं तुझ पर प्रसन्न हुई हूँ। जो चाहे सो मांग ले।

स्वामी विद्यारण्यने कहा– माताजी, जब आवश्यकता थी तब आप न आईं। अब तो आपकी आवश्यकता ही क्या है? हां, इतना बताइए कि उस समय आप क्यों प्रसन्न नहीं हुई थीं।

माताने कहा– जरा पीछे मुडकर तो देख।

स्वामीने पीछे देखा तो वहां चौबीस पर्वत जल रहे थे। उन्होंने माताजीसे पूछा– यह क्या कौतुक है?

गायत्री माताने कहा– ये तो तेरे कई पूर्वजन्मोंके पाप हैं, जो तेरी तपश्चर्यासे जल रहे हैं। चौबीस पर्वतोंके समान महान् तेरे पापोंके क्षय होने पर मैं शीघ्र ही आ गई। जब तक पापोंका क्षय नहीं होता और जीवकी शुद्धि नहीं हो पाती, तब तक मेरे दर्शन नहीं हो सकते।

विद्यारण्यने कहा– माताजी, मैं अब शुद्ध हुआ। अब मुझे कुछ भी मांगना नहीं है।

और आगे जाकर उन्होंने पंचदशी नामका वेदांतका उत्तम ग्रंथ लिखा।

भगवान् नारायणने प्रचेताओंको दर्शन देकर आज्ञा दी कि तुम विवाह करो।

विवाह करना पाप नहीं है। गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नहीं, साधक है। एक-दो संतानें होनेके बाद संयमका पालन करो।

यह जीवात्मा कई जन्मोंसे कामवासना भुगत रहा है। विवाह करनेसे कामसुखकी सूक्ष्म वासना दूर होती है। ईश्वरकी माया दो तरहसे जीवको मारती है : विवाहित भी पछताता है और अविवाहित भी।

गृहस्थाश्रमका वातावरण ऐसा होता है कि विषमता करनी ही पडती है। भगवान्ने कहा है- रोज तीन घंटे, नियमपूर्वक मेरी सेवा, स्मरण करोगे तो मैं तुम्हें पाप करनेसे रोकूंगा और रक्षा भी करूंगा।

एक साथ तीन घंटे भगवद्-स्मरण करनेवालेको भगवान् पाप करनेसे रोक लेते हैं। पाप करते समय मनको कुछ खटका-सा लगे तो मान लो कि प्रभुकी साधारण कृपा हुई है। पाप करनेकी आदत छूट जाए तो समझो कि प्रभुकी पूर्ण कृपा हुई है। पाप न करना भी महान् पुण्य ही है। पापकी माता है ममता और पिता है लोभ। उनका अवश्य त्याग करो।

प्रभुसेवा जगत्सेवा है। प्रभुसेवाके विना देशसेवा सफल नहीं होती, अतः रघुनाथकी कृपा प्राप्त करनेका हमेशा प्रयत्न करो।

जितने तारे गगनमें उतने शत्रु होय।
जिस पे कृपा रघुनाथकी बाल न बांका होय॥

कोई कार्य भी बुद्धि और शक्तिके विना नहीं हो सकता और बुद्धि तथा शक्ति ईश्वरकी आराधना किए विना प्राप्त नहीं हो सकती।

केवल परोपकारसे ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती। परोपकार कई बार तो ईश्वरकी प्राप्तिमें बाधक होता है- भरतमुनिको इस बातका बडा अच्छा अनुभव हुआ था।

यामका अर्थ है घंटा। प्रहरका अर्थ है तीन घंटे। मनुष्यको चाहिए कि कमसे कम तीन घंटे वह प्रति दिन जप-स्मरण करे। भगवान् तुमसे संपत्ति नहीं, समय मांगते हैं। उन्हें समय देना ही चाहिए।

दुःखका कारण मनुष्यका अपना स्वभाव ही है। स्वभावको सुधारना बडा टेढा काम है। तीर्थस्नानसे, विष्णुयाग करनेसे स्वभाव नहीं सुधरता। परमात्माका ध्यानसे, जप करनेसे स्वभाव सुधरता है। अनेक जन्मोंसे यह जीव पाप करता आया है। पाप करनेका स्वभाव भगवान्के जपसे भगवान्की कृपा होनेसे ही छूटता है।

गृहस्थोंको प्रचेताओंकी कथा द्वारा बोध दिया गया।

भगवान् कहते हैं- तुम मेरे लिए तीन घंटे खर्च करो, मैं इक्कीस घंटे तुम्हारी निगरानी करूंगा। हे जीव, मैं तुझे पापसे रोकूंगा।

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम्।
मद्वार्तायातयामानां न बंधाय गृहा मताः॥

- भा. ४-३०-१९

जो मनुष्य भगवदर्पण बुद्धिसे कर्म करता है और जिसका समय मेरी कथावार्तामें व्यतीत होता है उसके लिए, गृहस्थाश्रमी होने पर भी, घर बंधनका कारण नहीं होता। (वह इस संसारमें नहीं फसता और यह संसार उसे नहीं फंसा पाता।)

अन्यथा गृहस्थाश्रममें कामासक्ति और अर्थासक्ति बढती है।

सभीको पूर्वके प्रारब्धकर्मानुसार ही संतति और संपत्ति मिलती है। अतः उसका हर्ष-शोक मनाना नहीं चाहिए। उसकी चिंता छोड कर भगवान्‌के भजनमें लग जाओ।

मनके शुद्ध होने पर जानो कि भगवान्‌की कृपा हुई है। अन्यथा मनुष्यकी वृत्ति तो अहरन (वह लोहेका टुकडा, जिस पर रखकर लोहार लोहेपर घन चलता है) चोरी और सुईका दान करनेकी होती है। ऐसी वृत्ति छोडनी चाहिए और समलोष्टाश्मकांचन अर्थात् मिट्टी, पत्थर और कांचनको एक समान माननेकी दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए। रांका-बांका जैसा वैराग्य होना चाहिए।

रांका और बांका नामक पति-पत्नी कहीं जा रहे थे। रांका आगे था और बांका पीछे। रास्तेमें रांकाने देखा कि एक सुवर्णहार पडा हुआ है। उसने सोचा कि हारको देखकर बांकाकी दृष्टि-मति भ्रष्ट हो जाएगी। तो वह उस हारको धूलसे ढांकने लगा। उसे ऐसा करते देखकर बांकाने पूछा- तुम यह धूल क्यों इकट्ठी कर रहे हो ? रांकाने कहा कि वैसे तो कोई बात नहीं है। किंतु बांकाने जब सच्ची बात जानी तो उसने कहा- धूलको धूलसे क्यों ढांक रहे हो ? क्या अभी तक तुम्हारी दृष्टिमें सुवर्ण और धूल दो भिन्न भिन्न वस्तुएं हैं ? ऐसी भावना तुम्हारे मनमें कैसे रह गई ?

तो रांकाने कहा- तू तो मुझसे भी आगे बढ गई। तेरा वैराग्य तो बांका है। और पत्नीका नाम ही बांका पड गया।

संतोंके मनमें धूल और सुवर्ण एक समान होते हैं। ऐसा ही अनासक्तिभाव होना चाहिए।

किए हुए सत्कर्मोंको-पुण्योंको भूल जाओ। पुण्यका अहंकार अच्छी बात नहीं है। इस अहंकारके गए विना चित्तशुद्धि शक्य नहीं है। पुण्यको भूल जाओ, किंतु किए हुए पापोंको सदा याद रखो।

महाभारतमें वर्णित राजा ययातिका उदाहरण द्रष्टव्य है।

अपने किए हुए पुण्योंके बलसे राजा ययाति सशरीर स्वर्गमें गए। उन्होंने इन्द्रासन पर बैठना चाहा। इंद्र भयभीत होकर बृहस्पतिके पास गया और सारी परिस्थिति बताकर मार्गदर्शन मांगा। तो बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा- तू ययाति राजासे पूछ कि उन्होंने पृथ्वी पर कौन-कौनसे पुण्य किए हैं, जिनके बलसे वे इंद्रासन पर बैठना चाहते हैं। अपने पुण्योंका वर्णन करनेसे उन पुण्योंका क्षय होगा।

इंद्रने बृहस्पतिके परामर्शके अनुसार ययातिसे पूछा। ययातिने अपने पुण्योंका स्वयं ही वर्णन किया, अतः उन पुण्योंका क्षय हो गया और फलतः उनका स्वर्गसे पतन हुआ।

हमेशा याद रखो कि अपने द्वारा किए हुए सत्कर्मोंका-पुण्योंका स्वयं वर्णन कभी मत करो।

यह श्लोक हमेशा याद रखो।

षडंगादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या
कवित्वादिगद्यं सुपद्यं करोति।
हरेरंघ्रि पद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किम् ततः किम् ततः किम् ततः किम् ॥

षडंगादि वेदोंका ज्ञान हो, शास्त्र-वर्णित सर्वविद्या मुखपाठ हो, कवित्वमय वाणीमें सुंदर गद्य-पद्य रचनेकी शक्ति हो, किंतु चित्त हरिचरणमें लगा हुआ न हो तो उन सभीका क्या अर्थ है ? कुछ भी नहीं।

भगवान्‌ने प्रचेताओंको विवाह करनेकी आज्ञा दी। वे अपने घर गए। सभीका विवाह हो गया और सभीके एक एक पुत्र भी हुआ।

सभी प्रचेता फिर नारायण सरोवरके किनारे आए। उन्होंने नारदजीसे कहा- गृहस्थाश्रमके विलासी वातावरणमें अपने सारे ज्ञानको, अपने लक्ष्यको हम भूल गए हैं। गृहस्थाश्रममें विषमता रखनी पडती है जिसके कारण ज्ञान विस्मृत हो जाता है। शिवजीने और भगवान् नारायणने हमको उपदेश दिया था वह भी हम भूल चुके हैं। आप हमें फिरसे उपदेश दीजिए।

सारे जगत्‌को कोई कभी खुश नहीं कर सकता। जगत्‌को प्रसन्न करना बडा कठिन है।

एक बार कोई पिता-पुत्र एक घोडेको लेकर जा रहे थे। पुत्रने पितासे कहा- तुम घोडे पर बैठ जाओ, मैं चलता रहूँगा। पिता घोडे पर सवार हो गया। रास्तेमें कुछ लोगोंने कहा- यह पिता कितना निर्दय है! स्वयं घोडे पर सवार है और छोटे-से पुत्रको धूपमें चला रहा है। यह सुनकर पिता चलने लगा और उसने पुत्रको घोडे पर बिठा दिया। आगे रास्तेमें फिर कुछ लोग मिले, जिन्होंने कहा कि यह पुत्र कितना निर्लज्ज है जो जवान होकर भी घोडे पर सवार है और बूढे बापको पैदल चला रहा है। इनकी बात सुनकर पिता-पुत्र दोनों घोडे पर सवार हो गए। रास्तेमें फिर कुछ आदमियोंने कहा- कितने निर्दय हैं ये लोग। दोनों भैंसे जैसे हैं और छोटेसे घोडे पर सवार हैं। इनके भारसे बेचारा घोडा दब जाएगा। इनकी बात सुनी तो पिता-पुत्र दोनों पैदल चलने लगे। रास्तेमें आगे फिर कुछ लोगोंने सुनाया- कितने मूर्ख हैं ये लोग! साथमें घोडा है फिर भी पैदल चल रहे हैं। एक बैठा तो भी टीका, दो बैठे तो भी निंदा और दोनों पैदल चले तो भी जलीकटी सुननी पडी।

जगत्‌में कैसा व्यवहार रखें, कैसा वर्तन रखें यह समझमें नहीं आता। किंतु परमात्माको प्रसन्न करना इतना कठिन नहीं है। जो परमात्माको प्रसन्न कर सकता है वह जगत्‌को भी प्रसन्न कर सकता है। क्योंकि भगवान् ही जगत्‌के उपादान-कारण हैं।

रामचंद्रजी कुटिलके साथ भी सरल व्यवहार करते थे, किंतु कृष्ण सरलके साथ सरल और कुटिलके साथ कुटिल व्यवहार रखते थे।

कृते प्रतिकृतम् कुर्यात् एष धर्मः सनातनः।

यह है इन दोनोंके अवतारोंकी भिन्नता।

जगत्‌को तो रामचंद्रजी भी प्रसन्न नहीं कर सके थे, तो सामान्य मनुष्य तो कर ही क्या सकता है ? समाजको राजा नहीं, संत ही सुधार सकता है। रामदास स्वामी मनको बोध (उपदेश) देते हैं- " बहु हिंडता सख्य होणार नाहि।" इसलिए जगत्‌को खुश करनेकी वृत्ति और इच्छा छोडकर ईश्वरको ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करो।

प्रभुको प्रसन्न करनेके तीन मार्ग नारदजीने चौथे स्कंधमें बताए हैं।

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन या वा।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः॥

भा. ४-३१-१९

जीवमात्रके प्रति दया, जो कुछ भी मिले उससे संतुष्टि, सभी इन्द्रियोंका संयम-इन तीन उपायोंसे परमात्मा शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। इन बातोंको कार्यान्वित करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं।

सभी इन्द्रियोंको संयमित करो और विषयोंमें उनको रमने न दो। संयमके बिना जीवन सरल नहीं हो सकता।

विषको खानेसे ही मनुष्य मरता है, उसके चिंतनसे नहीं। किंतु उपभोग न करते हुए भी विषयोंके चिंतनमात्रसे भी मनुष्य मरता है। अर्थात् विषय विषसे भी बुरे हैं। उनका विषवत् त्याग करो।

विदुरजीने कहा- मैंने सुना कि उसका मुझे चिंतन करना है। मैं ही ईश्वरसे विभिन्न हो गया हूँ। मैं ही पुरंजन हूं ऐसा सोचकर कथाका बार बार चिंतन करो।

मैत्रेयजीने विदुरजीको यह पवित्र कथा सुनाई। विदुरजीको मुक्ति मिली।

प्रचेताओंकी कथा वक्ता और श्रोताओंके पापोंको जलाती है।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
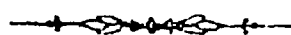
पंचम स्कंध

श्री शुकदेवजीने कहा- श्रीमद् भागवतकी कथा सात दिनोंमें मुक्ति देती है।

वक्ता अधिकारी हो और श्रोता सावधान होकर कथा सुने, तो सांसारिक विषयोंके प्रति धीरे धीरे अरुचि और परमात्माके प्रति रुचि जगती है। प्रभुके प्रति प्रेमभाव जाग जाए तो सात दिनोंमें यह कथा मुक्ति दिलाती है।

भागवतकी कथा सुननेके बाद भी मुक्ति न मिले तो मानो कि पूर्वचित्ति अप्सरा मनमें अभी तक बैठी हुई है।

अब पूर्वचित्ति अप्सराकी कथा सुनिये।

पूर्वजन्मोंमें जिनका उपभोग किया था, उन विषयोंकी वासना अब भी चित्तमें निहित रहती है, वही इस पूर्वचित्ति अप्सराका स्वरूप है। जीव और ईश्वरके मिलनमें वासना बाधारूप है। मनुष्यको चाहिए कि वह सुख दुःख भोग कर प्रारब्धका नाश तो करे, किंतु नया प्रारब्ध उत्पन्न न करे। मनुष्य इसी जन्ममें अगले जन्मकी तैयारी करता है। अतः ज्ञानीजन संसर्ग-दोषसे दूर रहते हैं।

परमहंस ऋषभदेवजी ज्ञानी हैं। परमहंस भरतजी भगवद्‌जन हैं।

ज्ञानी पुरुषोंको लगता है कि सांसारिक प्रवृत्तियां ज्ञाननिष्ठा और भक्तिमें बाधक है।

सांसारिक प्रवृत्तियोंको सहसा मत छोडो, किंतु विवेकसे कम करते जाओ।

परमहंस की यह निष्ठा है कि जगत्‌में जो कुछ दिखाई देता है, वह सब मिथ्या है। जगत्‌को मिथ्या माननेसे वैराग्य उत्पन्न होता है। संसारको सत्य माननेसे मोह उत्पन्न होता है। जगत्‌में जो दिखाई देता है वह सब मिथ्या है, किंतु इन सबको देखनेवाली आत्मा सुखरूप है।

दृश्य विनाशी और फलरूप होनेके कारण ज्ञानी अपनी दृष्टि दृश्यमें नहीं रखते। ज्ञानीजन अपने मनको दृश्य वस्तुमें नहीं रमने देते, किंतु इन सभीके साक्षी परमात्मामें दृष्टिको स्थिर करते हैं।

मनको आत्मस्वरूपमेंसे सत्ता मिलती है। मनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्माकी अनुज्ञा मिलने पर ही मन पाप करता है। आत्मा मनकी द्रष्टा है और साक्षी है। मनको पाप करनेकी अनुमति कभी मत दो।

ऋषभदेव मनको दृश्यमें कभी जाने नहीं देते थे और मनको ईश्वरमें स्थिर रखते थे, कि जिससे मन प्रभुमें मिल जाए और सुखदुःखका स्पर्श न हो।

निद्रामें मन निर्विषय बन जाता है। निद्रावस्थामें मन जिस प्रकार होता है वैसा ही जागृतावस्थामें भी रहे तो समझ लो कि मुक्ति ही है। सभी विषयोंमेंसे मनको हटाना ही होगा।

दृश्यमेंसे हटकर मन द्रष्टामें मिल जाता है। मनका ईश्वरमें लय होने पर मुक्ति मिलती है।

ज्ञानी पुरुषोंके लिए संसार बाधक नहीं। ज्ञानी पुरुष स्वेच्छासे नहीं अपितु अनिच्छासे प्रारब्धके कारण जीते रहते हैं।

भगवान्के भक्त परमहंस ज्ञानी प्रारब्धके कारण ही जीते रहते हैं। ये दोनों निष्ठायें वैसे तो एक ही हैं फिर भी भिन्न भिन्न हैं। मार्ग भिन्न हैं। ज्ञानी जगत्को असत्य मानते हैं, तो भगवद्जन जगत्को सत्य मानते हैं।

ज्ञानी और भगवद्भक्त परमहंसके लक्ष्य तो एक ही हैं, किंतु साधन भिन्न भिन्न हैं। ज्ञानी परमहंस जगत्को मिथ्यारूप अनुभव करते हैं। भागवत परमहंस जगत्को वासुदेव-स्वरूप समझते हैं।

भागवत परमहंस मानते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति।

भा. अ. ७-११

भागवत परमहंस कहते हैं कि जगत् मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है और वासुदेवमय है।

शंकर स्वामीने जगत्को मिथ्या माना है।

इन दोनों निष्ठाओंमें शाब्दिक भेद है, तत्त्वतः नहीं।

जगत् असत्य और सभीका द्रष्टा ईश्वर सत्य है, ऐसा ज्ञानी मानते हैं।

वैष्णव-भागवत मानते हैं कि जगत् ब्रह्मका ही स्वरूप है।

वेदांतीका विवर्तवाद है और वैष्णवोंका परिणामवाद।

ज्ञानियोंका विवर्तवाद है। दूधसे दही बनता है किंतु दही दूध नहीं है।

भागवत कहते हैं : ईश्वरमेंसे जगत्का जो परिणाम (जन्म) हुआ है वह दहीकी भांति नहीं किंतु सुवर्णसे बने हुए आभूषणोंकी भांति हुआ है। सुवर्णका टुकडा सुवर्ण ही था और आभूषण बननेके पश्चात् भी सुवर्ण ही रहा। सुवर्णके टुकडेके सुवर्णमें और आभूषणके सुवर्णमें कोई भेद नहीं होता। जगत् ब्रह्मका ही परिणाम है, अतः सत्य है।

सूतजी सावधान करते हैं।

शंकराचार्य कहते हैं कि नामरूप मिथ्या है और अन्य सभी कुछ सत्य है। मिट्टी सत्य है, घडा नहीं। इसी प्रकार जगत् सत्य नहीं है।

वैष्णव कहते हैं कि ब्रह्मरूप जगत् सत्य है। ये लोग जगत्को ब्रह्मरूप मानकर जगत्के प्रत्येक पदार्थको ब्रह्मरूप ही देखते हैं और जगत्के सभी पदार्थोंसे प्रेम करते हैं।

ज्ञानी पुरुष जगत्को मिथ्या मानकर, जगत्के पदार्थोंसे प्रेम नहीं करते। वे केवल ईश्वरसे प्रेम करते हैं और विकार-वासनाको नष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि शरीर विष्ठा-मूत्रसे भरा हुआ है और इस आधारसे वे देहका मोह छोडकर परमात्मामें लीन होते हैं।

किंतु वैष्णवोंके लिए तो सारा जगत् ब्रह्मरूप है।

सियाराममय सब जग जानी।

करउं प्रनाम जोरि जुग पानि॥

ज्ञानीकी दृष्टि नारीकी ओर जाएगी तो वह समझ लेगा कि यह तो हड्डी-मांसकी पुतली है, जो मलमूत्रसे भरी हुई है। इससे क्या लेना-देना है? और ऐसा सोचता हुआ वह ज्ञानी उस स्त्रीकी ओरसे दृष्टि फेर लेगा।

यदि वैष्णव किसी नारीको देखेगा तो वह मानेगा कि यह तो साक्षात् लक्ष्मी है।

ज्ञानी परमहंसोंका मार्ग साधारण गृहस्थके लिए कुछ कठिन ही है। वैष्णवोंका मार्ग हम जैसोंके लिए सरल है। जगत्को ब्रह्मरूप समझना सरल है। जो दृष्टिगोचर हो रहा है उसे मिथ्या मानना कठिन कार्य है। माना कि स्त्री सुंदर है किंतु ज्ञानी कहेगा कि वह तो विष्ठामूत्रसे भरी हुई पुतली है अतः उसमेंसे मन हटा लो। सौंदर्य कल्पनामें है। ज्ञानी स्त्रीकी उपेक्षा करेगा। कभी नारी देखनेमें आएगी तो ज्ञानी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखेगा, तिरस्कारसे देखेगा।

किंतु यदि वैष्णव किसी नारीको देखेगा तो उसे वह लक्ष्मीदेवी समझेगा और ऐसा मानकर निर्विकार होकर उसे वह वंदन करेगा। वैष्णव नारीके प्रति सम्मान और सद्भावकी दृष्टिसे देखेगा।

किसी भी वस्तुके प्रति तिरस्कारसे देखनेकी अपेक्षा, प्रत्येकको भागवत-भावसे निर्विकार होकर वंदन करना अधिक अच्छा है।

महाप्रभुजी कहते हैं : प्रत्येक पदार्थ श्रीकृष्णका अंश है अतः यह जगत् सत्य है।

किंतु खंडन-मंडनके ऐसे संघर्षसे दूर रहना ही अच्छा है। अन्यथा रागद्वेष बढनेकी आशंका है।

ज्ञानी परमहंस ज्ञानसे उपदेश देता है तो भागवत परमहंस क्रियासे उपदेश देता है। जड भरतकी भांति उसकी प्रत्येक क्रिया उपदेशरूप होती है।

ऋषभदेव आदर्श ज्ञानी परमहंस हैं तो भरतजी आदर्श भागवत परमहंस। सभी कुछका त्याग करके ऋषभदेव पागल जैसा होकर जगत्में भ्रमण करते हैं। सभीमें ईश्वरका भाव रखकर भरतजी सभीकी सेवा करते हैं। भरतजी कहते हैं : " मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामी भगवंत। "

ऋषभदेवको देहाध्यास ही नहीं है। वे आदर्श ज्ञानी परमहंस हैं। पहले इन्हींकी कथा आएगी। ऋषभावतार ज्ञानका आदर्श स्थापित करनेके लिए है।

पंचम स्कंध भागवतका ब्राह्मण अर्थात् भाष्यरूप या व्याख्यारूप है।

द्वितीय स्कंधमें गुरुने साधन दिया और उसके बाद ज्ञान दिया। ज्ञानको जीवनमें कैसे उतारा जाए यह तृतीय तथा चतुर्थ स्कंधके सर्ग-विसर्ग लीलामें बताया गया।

अब प्रश्न यह है कि ज्ञानको किस रीतिसे स्थायी करें। ज्ञानको स्थिर करनेकी, स्थायी करनेकी रीति पंचम स्कंधके स्थितिलीलामें बतायी गई है। स्थिति अर्थात् प्रभुकी विजय। सर्व सचराचर प्रभुकी मर्यादामें है।

परीक्षित राजा आरंभमें प्रश्न करते है- मनुके पुत्र राजा प्रियव्रतकी विवाह करनेकी इच्छा नहीं थी फिर भी उन्होंने विवाह क्यों किया? गृहस्थाश्रम निभाते हुए भी उन्होंने सिद्धिकी प्राप्ति कैसे की? किस प्रकार कृष्णमें उनकी भक्ति दृढ हुई?

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

घर भक्तिमें बाधारूप है। घरमें गृहस्थको विषमता (पक्षपात) करनी पडती है। गृहस्थ सभीकी ओर समभाव नहीं रख सकता। वह शत्रु, मित्र, चोर, सेठ आदि सभीके प्रति समभाव नहीं रख सकता।

श्रीकृष्णका गृहस्थाश्रम ऐसा था कि वे सभीके प्रति समभाव रखते थे। एक बार दुर्योधन उनसे सहायता मांगने आया। वैसे उसने श्रीकृष्णका कुछ समय पहले अपमान किया था, फिर भी निर्लज्ज होकर वह सहायताकी याचना करने चला आया। सामान्य गृहस्थ अपना अपमान भूल नहीं पाता किंतु श्रीकृष्ण दुर्योधनको सहायता देनेके लिए तैयार हो गए। अर्जुन भी सहायता मांगने आया था। दुर्योधनने कहा कि मैं अर्जुनसे पहले आया हूं, अतः मांगनेका अधिकार पहला मेरा ही है।

श्रीकृष्णने कहा– मैं तो तुम दोनोंकी सहायता करूंगा। एकके पक्षमें मेरी नारायणी सेना होगी और अन्यके पक्षमें निःशस्त्र मैं।

दुर्योधनने सोचा कि कृष्ण तो बातें ही बनाते रहेंगे और मुझे तो युद्ध करनेवालेकी आवश्यकता है, बातूनीकी नहीं। उसने नारायणी सेना मांग ली। अर्जुनने श्रीकृष्णको मांगा।

इस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुन और दुर्योधन दोनोंके प्रति समभाव रखा। श्रीकृष्ण गृहस्थाश्रमी नहीं, आदर्श संन्यासी हैं।

गृहस्थाश्रमी होने पर भक्ति-कार्यमें कुछ-न-कुछ बाधा उपस्थित होती ही रहती है, अतः राजा प्रियव्रतने सोचा कि इस व्यवहारका मुझे त्याग करना होगा।

परमार्थमें अभेदबुद्धि और व्यवहारमें भेदबुद्धिका निर्वाह करना पडता है। व्यवहार भेदभाव जगाता है। भेदभाव होने पर काम, क्रोध आदि विकार पैदा होते हैं। ज्ञानी पुरुष सभीको अभेदभावसे देखते हैं। व्यवहार और परमार्थको एक करना टेढी खीर है। भेदभावके कारण व्यवहारमें वैर और असमानता उत्पन्न होते ही हैं, अतः ज्ञानीजन सभी प्रवृत्तियोंका त्याग करके एकांतमें भक्ति करते हैं।

घरमें भक्ति नहीं हो पाती, क्योंकि कई विक्षेप आते रहते हैं। तुम गृहत्याग करके गंगा-किनारे जा नहीं सकते, अतः कहना पडता है कि घरमें ही रहकर भजन करो। जीव जब प्रभुके साथ एक होता है तभी साक्षात्कार कर सकता है। एकांतमें ईश्वरकी आराधना करनेसे यह शक्य होता है।

राजा प्रियव्रतकी इच्छा हुई कि मैं एकांतमें ईश्वरकी आराधना करूं। वहां ब्रह्माजीने आकर राजासे कहा– प्रारब्धको भुगतना ही पडता है। मैं भी परमात्माकी आज्ञासे प्रारब्ध भुगत रहा हूं। मुझे भी प्रवृत्ति करनेकी इच्छा नहीं है। तुम्हारे लिए अभी वनगमनकी आवश्यकता नहीं है। सावधानीसे व्यवहार करो। जितेन्द्रिय तो घरमें रहकर भी ईश्वरकी आराधना कर सकता है और जो जितेन्द्रिय नहीं है, वह तो वनमें भी प्रमाद ही करेगा।

स्त्री-पुत्रका त्याग करके वनमें जाकर भी भरतने वहां संसार बसाया था। भरतजी वनमें भी भटक गए। प्रह्लादने दैत्योंके साथ रहकर, कई प्रकारके कष्ट सहकर घरमें ही भक्ति की थी।

भागवत सभीके लिए है– गृहस्थके लिए भी और गृहत्यागी वनवासीके लिए भी।

भागवतकी कथा मार्गदर्शक है। ऐसा नहीं है कि गृहत्यागीको ही भगवान् मिलते हैं।

पवित्र और सदाचारपूर्ण जीवन जीनेवालेको तो घरमें रहते हुए भी भगवान् मिलते हैं। घरका वातावरण प्रतिकूल होते हुए भी प्रह्लादजीने घरमें रहकर भक्ति की और भगवान्का दर्शन किया।

अपने जीवनका लक्ष्य निश्चित करना बडा आवश्यक है। लक्ष्यको ध्यानमें रखकर ही जीवनव्यवहार किया जाए। मानव-जीवनका लक्ष्य है प्रभुकी प्राप्ति।

प्रह्लादने प्रतिकूल परिस्थिति होने पर भी भक्ति की। जब कि घरको भक्तिमें बाधारूप मानकर गृहत्याग करने पर भी भरतजी वनवासमें भक्ति न कर सके। मनुष्य कहीं भी जाए पंचविषय तो साथ साथ आएंगे ही। घरमें रहकर ही भक्ति करनी है तो प्रह्लादका आदर्श दृष्टिके समक्ष रखो और वनवासी होकर भक्ति करनी है तो भरतजीका जीवन लक्ष्यमें रखो।

जीवके पीछे छै चोर लगे हुए हैं। वे छै चोर हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। इन विकारोंके वश जो नहीं होता उसके लिए घर बाधारूप नहीं है।

गृहस्थाश्रम एक किला है। पहले उसमें रहकर ही लडना उत्तम है। ये छै शत्रु तो वनमें भी साथ साथ आकर सताते हैं। अतः उन छै शत्रुरूपी विकारोंको हराना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरको जीतना है। इन छै शत्रुओंका विजेता गृहस्थ होते हुए भी वनवासी जैसा ही होता है। गृहस्थाश्रमी रहकर इन छै विकारोंको कुचलना सरल है।

सुखी होना है तो अपने चालीसवें वर्षसे संसारके व्यवहारोंका धीरे धीरे त्याग करने लगो और इक्यावनवें वर्षमें वनगमन करो।

ब्रह्माजी राजा प्रियव्रतसे कहते हैं– तुम विवाह करो। विवाह किए विना विकारवासना नष्ट नहीं हो सकती। कुछ समयके लिए संसारके सुखोंका उपभोग करनेके पश्चात् परमात्माकी आराधना करो।

व्यवहार करो किंतु ऐसा करो कि पुनर्जन्मका बीजारोपण न हो जाए। रागद्वेषरहित किया गया व्यवहार मनुष्यको मुक्ति दिलाता है।

जीवनमुक्त पुरुष शारीरिक अभिमानसे रहित होता है। वह वासना नहीं रखता, अतः उसे दूसरी देह नहीं मिलती है।

आज्ञा मिलने पर प्रियव्रतने विवाह किया। उसके घर कई बालक उत्पन्न हुए। प्रियव्रतके पश्चात् आग्विध्रने शासन संभाला।

वे तपश्चर्या करनेके लिए वनमें जा बसे। उनके तपमें पूर्वकी वासना-पूर्वचित्ति बाधायें उपस्थित करने लगी।

चित्तमें रहनेवाली पूर्वजन्मकी वासना ही पूर्वचित्ति है, भोगे हुए विषयसुखका स्मरण और उनके कारण मनमें बसी हुई सूक्ष्म वासना ही पूर्वचित्ति है। पूर्वकी वासना शीघ्र छूट नहीं सकती। इन्द्रियोंको मिला हुआ सुख वे बार बार मांगती रहेंगी। ऐसी वासना जगने पर मनको समझाना होगा कि तूने आज तक कितना सुखोपभोग किया फिर भी तृप्ति नहीं हो पाई है क्या? जब तक विषयोंका आकर्षण है तब तक विषयेच्छा नष्ट नहीं हो पाती। विषयोंके प्रति

आकर्षण न रहने पर विषयेच्छा नष्ट होती है। सांसारिक विषयोंमें जब तक रुचि रहती है, तब तक यह जीव ज्ञान-भक्तिके मार्गमें आगे नहीं बढ सकता। पूर्वचित्ति सभीको सताती है। पूर्वचित्तिका अर्थ है पूर्वके संस्कार। निवृत्ति होने पर भी पूर्वकी वासनाका स्मरण होते रहना ही पूर्वचित्ति है।

आग्विध्र राजा पूर्वचित्तिमें फंसे हुए हैं।

आग्विध्रके घर नाभि हुए। नाभिके घर पुत्ररूपमें ऋषभदेव हुए। ऋषभदेवजी ज्ञानके अवतार थे। ज्ञानी परमहंसोंका व्यवहार-वर्तन किस प्रकारका होता है, बतानेके लिए भगवान्ने ऋषभदेवजीके रूपमें जन्म धारण किया। वे जगत्को ज्ञानी परमहंसका आदर्श बताना चाहते थे। ऋषभका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ।

ऋषभदेव बार बार उपदेश देते हैं कि मानवजीवन भोगके लिए नहीं, तपश्चर्याके लिए है। तप करो और सभीमें ईश्वरको देखो। विषयसुखोंमें ही मानवशरीरका दुर्व्यय मत करो।

जगत्में ज्ञानी परमहंसोंको किस प्रकार रहना चाहिए, यह बतानेके लिए ऋषभदेवजीने सभी संगोंका और सर्वस्वका त्याग किया। अनेक सिद्धियां उनके पास आईं, फिर भी वे उनमें नहीं फंसे।

गृहस्थके लिए धनत्याग और कामसुखका त्याग करना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है महात्माओंके लिए सिद्धियोंका त्याग।

ऋषभदेवजी नग्नावस्थामें ही घूमते-फिरते हैं, खडे खडे ही खा लेते हैं, बैलकी भांति सब्जीका आहार करते हैं। किसीके द्वारा पीटे जाने पर वे मान लेते हैं शरीर ही पीटा गया है। मैं शरीरसे भिन्न हूं, ब्रह्मनिष्ठ हूं, सभी जानते हैं कि शरीरसे आत्मा भिन्न है, किंतु इसका अनुभव तो बहुत कम व्यक्ति कर सकते हैं।

श्रीफल-नारियलमें अन्दरका सफेद गोला और उसका कठोर आवरण एक न होने पर भी जब तक अंदर पानी है, तब तक वे एक-दूसरेको छोडते नहीं हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्यको विषयमें रस है, विषयकी आसक्ति है, तब तक शरीर और आत्माकी भिन्नताका अनुभव नहीं हो सकता। शरीर आवरण है, आत्मा गोला है, विषयरस पानी है। संसारकी किसी भी वस्तुमें जब तक रस है, तब तक शरीर और आत्माकी भिन्नताका अनुभव नहीं हो पाता।

शारीरिक उपभोगोंमें आनंद नहीं है। आत्मा ही आनंदरूप है।

नामरूपका मोह जब तक नहीं छूटता तब आत्मा और देहकी भिन्नता समझमें नहीं आती, इसके विपरीत देहाध्यास बढता ही है। संसारके जड पदार्थोंसे अति स्नेह करनेसे जडाध्यास भी बढता ही है।

वैराग्यके बिना ब्रह्मज्ञान स्थायी नहीं हो पाता। ब्रह्मज्ञानकी बातें करनेवाला, धन और प्रतिष्ठासे भी प्रेम करनेवाला सच्चा ज्ञानी नहीं है। सच्चा ज्ञानी तो वही है जो ईश्वरसे प्रेम करता है। ईश्वरके बिना संसारके जड पदार्थोंसे स्नेह हो जाता है, और वह शरीरसे भिन्न आत्माको नहीं देख सकता। ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर भी यदि सांसारिक विषयोंमें मोह होगा तो उसे ब्रह्मानन्द प्राप्त नहीं होगा। ब्रह्मज्ञान होनेके बाद ईश्वरसे प्रीति होने पर ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है।

ज्ञानी पुरुषको चाहिए कि किसी भी वस्तुसे वह स्नेह न करे। किसी वस्तुका संग्रह न करे। यह मनुष्यजन्म तप करनेके लिए है। मनुष्यदेहसे तप करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है। अंतःकरणकी शुद्धिसे अनन्त ब्रह्मसुखकी प्राप्ति होती है।

महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है। कामियोंका संग नरकद्वार है।

इस मृत्युरूप संसारमें फंसे हुए अन्य लोगोंका जो उद्धार करनेमें असमर्थ है, वह गुरु, गुरु नहीं हैं, वह स्वजन, स्वजन नहीं हैं, वह माता-पिता, माता-पिता नहीं हैं। अर्थात् वह मनुष्य गुरु, स्वजन, माता, पिता होनेके लिए अपात्र है।

योगवासिष्ठ रामायणमें ज्ञानकी सात भूमिकाएं इस प्रकार निर्दिष्ट हैं : (१) शुभेच्छा (२) सुविचारणा (३) तनुमानसा (४) सत्त्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पदार्थभाविनी (७) तुर्यगा।

(१) शुभेच्छा- आत्मकल्याणके हेतु, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाकर, उनके उपदेशानुसार शास्त्रोंका अवलोकन-अध्ययन करके आत्मविचार और आत्माके साक्षात्कारकी उत्कट इच्छा करना ही शुभेच्छा है।

(२) सुविचारणा- सद्गुरुकथित उपदेश वचनोंका तथा मोक्षशास्त्रोंका बार बार चिंतन और विचार करना ही सुविचारणा है।

(३) तनुमानसा- श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे शब्दादि विषयोंके प्रति जो अनासक्ति होती है और सविकल्प समाधिमें अभ्याससे बुद्धिकी जो तनुता-सूक्ष्मता प्राप्त होती है वही तनुमानसा है।

(४) सत्त्वापत्ति- उपर्युक्त तीनसे साक्षात्कार पर्यंत स्थिति अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूप स्थिति ही सत्त्वापत्ति है। ज्ञानकी चौथी भूमिकावाला पुरुष ब्रह्मवित् कहलाता है।

(५) असंसक्ति- चित्त विषयक परमानंद और नित्य अपरोक्ष ऐसी ब्रह्मात्म भावनाका साक्षात्काररूप चमत्कार असंसक्ति है। इसमें अविद्या तथा उसके कार्योंका संबंध नहीं होता, अतः इसका नाम असंसक्ति है।

(६) पदार्थभाविनी- पदार्थोंकी दृढ अप्रतीति होती है वही पदार्थभाविनी है।

(७) तुर्यगा- तीनों अवस्थासे मुक्त होना, तुर्यगा है। ब्रह्मको जिस अवस्थामें आत्मरूप और अखंड जाने वही अवस्था तुर्यगा है।

इन सातों भूमिकाओंमेंसे प्रथम तीन भूमिकाएं साधनकोटिकी हैं और अन्य चार ज्ञानकोटिकी है। तीन भूमिकाओं तक सगुण ब्रह्मका चिंतन करो। ज्ञानकी पांचवीं भूमिका तक पहुंचने पर जड और चेतनकी ग्रंथि छूट जाती है और आत्माका अनुभव होने लगता है। आत्मा शरीरसे भिन्न है। इन भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर देहभान भूलता जाता है और अंतमें उन्मत्त दशा प्राप्त होती है। ऋषभदेवजीने ऐसी दशा प्राप्ति की थी।

ज्ञानीजन भी इन्द्रियोंसे डरते हैं। वे इन्द्रियोंका विश्वास नहीं करते। मनका विश्वास कभी मत करो। बोलनेकी इच्छा ही न होने पाए, इसलिए ऋषभदेवजी अपने मुंहमें पत्थर रखते थे।

यौवनमें ही वैराग्य न आए, सांसारिक विषयोंके प्रति अरुचि न हो पाए तो प्रभुभक्ति प्राप्त नहीं होती। विषयोंके प्रति जब तक वैराग्य न जगे, तब तक भक्तिका आरंभ नहीं होता।

आँखको शक्ति देता है मन। मनको बुद्धि शक्ति देती है, और बुद्धिको शक्ति देते हैं परमात्मा। आंखके साथ मन न हो तो वस्तु दीखाई नहीं देती।

ऋभदेवजी कर्णाटक आए। दावाग्निमें बुद्धिपूर्वक प्रवेश किया। "देह जलती है, पर आत्माको तो कुछ नहीं होता" ऐसी आत्मनिष्ठा परमहंसोंके लिए ही है। ऋषभदेवजीका चरित्र सामान्य मनुष्यके लिए अनुकरणीय नहीं है।

ऋषभदेवजीका सबसे श्रेष्ठ पुत्र था भरत। इसी भरतके नामसे अपने देशका नाम भरतखंड पडा। ऋषभदेवजीके पश्चात् भरतने देशका शासन संभाला। उनकी कथा वर्तमानकालके लिए विशेष उपयोगी है। भरतजी महाभागवत हैं। उनके संगसे सभीमें भगवत-भाव जगता था। उनके संगमें आनेवाले भक्तिरंगमें रंग जाते थे।

भरतजीने व्यवहारकी मर्यादाका कभी उल्लंघन किया न था। वे महा वैष्णव होने पर भी यज्ञ करते थे। अग्नि ठाकुरजीका मुख है। प्रत्येक देवको इष्टदेवका ही स्वरूप मानकर अन्य देवोंमें कृष्णका अंश मानकर पूजा करते थे। अनेक यज्ञ करके उसका सारा पुण्य श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पित करते थे।

कर्मफल परमात्माको अर्पित करोगे तो आनन्द होगा। कर्मफल प्रभुको अर्पित करनेसे कर्मका अभिमान नष्ट होता है। ईश्वरसे अत्यधिक प्रेम करो। तभी किए हुए कर्मोंका पुण्य परमात्माको अर्पित कर सकोगे। पत्नी श्रम करती है और उसका फल दे देती है अपने पतिको।

कर्म करो किंतु कर्मके फलके उपभोगकी इच्छा न रखो कर्मफलके उपभोगकी इच्छा रखोगे तो कर्मका अल्प फल ही मिलेगा। पर यदि वह कर्मफल भगवान्को अर्पित करोगे तो अनन्त फल मिलेगा। सकाम कर्मकी भागवतमें कई स्थानों पर निंदा की गई है। सकाम कर्ममें क्षति होने पर क्षमा नहीं मिल पाती। भरत निष्कामभावसे कर्म करते थे और उसका पुण्य श्रीकृष्णको अर्पित करते थे।

सत्कर्मकी समाप्तिमें कहना है–

अनेन कर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रियताम् न मम, न मम।

ऐसा कहते तो कई लोग हैं किंतु अर्थ नहीं समझते। कर्म कृष्णार्पण करनेकी भावनासे ही भरतजी यज्ञ करते थे।

भरतजीको युवावस्थामें ही एक दिन वैराग्य हो आया। जिसे युवावस्थामें ही वैराग्य हो और जो संयम करके भजनप्रवृत्ति बढाए, उसे वृद्धावस्थामें भगवान्की प्राप्ति होती है। वृद्धावस्थामें शारीरिक अशक्ति हो जानेके कारण तुम भक्ति कर नहीं सकोगे। तपश्चर्या यौवनमें ही की जा सकती है। वृद्धावस्थामें तपश्चर्या करनेसे अगला जन्म सुधरेगा। शरीर दुर्बल होनेके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करनेका कोई अर्थ नहीं है। रामचंद्रजी युवावस्थामें ही वनमें गए थे। वनवासके समय उनकी आयु सत्ताइस वर्षकी थी और सीताजीकी अठारह वर्षकी। रामचंद्रने यौवनमें ही रावणको मारा था। तुम भी अपनी युवावस्थामें कामरूपी रावणका नाश करो।

वृद्धावस्थामें आनेवाला वैराग्य सच्चा वैराग्य नहीं होता। जवानीमें ही वैराग्यकी परीक्षा होती है। जिसके पास कुछ नहीं है वह त्याग करे उसका कोई अर्थ नहीं है। जवानी-में सुख-संपत्ति होने पर भी विषयसुखमें मन न रमे, वही सच्चा वैराग्य कहला सकता है।

भरतजीका दिल घरमें नहीं लगा। राजवैभव, सुख-संपत्ति, स्त्री, पुत्र आदि सभी कुछ है, परंतु आंखें बंद होने पर इनमेंसे कुछ भी नहीं रह जाता। जन्मके पूर्व जीवका रिश्तेदार कोई भी नहीं था। मृत्युके पश्चात् भी कोई रिश्तेदार नहीं रहेगा। प्रारंभ और परिणाम (अंत) में कोई न था। माया ही बीचमें भरमाती रहती है।

भरतजी सोच रहे हैं कि सांसारिक सुखका उपभोग तो मैंने कई वर्षों तक किया। अब विवेकपूर्वक उसका त्याग करूंगा। उन्होंने यौवनमें बुद्धिपूर्वक त्याग किया। विषयोंको अनिच्छासे बलात् छोडना पडे तो दुःख होता है। किंतु विषयोंका समझ-बूझकर स्वैच्छिक त्याग करनेसे शांतिकी प्राप्ति होती है। यदि विषय हमें छोड जाएं तो अशांति होती है किंतु यदि स्वयं हम उन्हें छोड दें तो शांति प्राप्त होती है।

परमात्माने इन छ वस्तुओंमें माया रखी है कि जिनमें मन फंसता रहता है :

(१) भोजन (२) द्रव्य (३) वस्त्र (४) स्त्री (५) घर और (६) पुस्तक। इनमें प्रथम चार प्रधान हैं और अन्य दो गौण। इसमें स्त्रीकी निंदा नहीं है, कामसुखकी निंदा है।

ईश्वरकी माया विचित्र है।

भरत मुनिने राज्यका त्याग किया, रानियोंका त्याग किया। सर्वस्वका त्याग करके वनमें आये। वनमें एक मृगबालसे स्नेह हो गया और अपने मनमें उसे स्थान दे बैठे। इस आसक्तिके कारण उनका भजन-ध्यान आदि खंडित हो गए और उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पडा।

अतः अपने घरमें चाहे किसीको भी रख लो, किंतु मनमें तो किसीको भी बसने मत दो। मनमें किसीको बसाओगे तो प्रभुभजनमें वह बाधारूप होगा।

जगत्के किसी भी पदार्थसे इतना तो स्नेह मत करो कि जिससे वह स्नेह तुम्हारी प्रभुभक्तिमें बाधा बन जाए।

भरतमुनिके मनमें मृगबालके लिए जो आसक्तिने जन्म लिया वह उनके लिए पुनर्जन्मका भी कारण बनी। सकल्प (वासना) पुनर्जन्मका कारण बनता है।

मनमें अन्य किसी भी वस्तुके प्रवेश होने पर मनमोहन वहांसे भाग निकलते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे कि संसारमें नौकाकी भांति रहना चाहिए। पानी पर रहनेसे नौका तैरती रहेगी; किंतु यदि नौकामें पानी आ जाए तो वह डूब जाएगी। इसी प्रकार संसारमें तुम रहो किंतु उसे अपनेमें रहने मत दो। अर्थात् निर्लेपभावसे संसारमें रहो। शरीर नौका है, संसार समुद्र है और विषय जल है।

विषयोंका चिंतन करते रहनेसे आत्मशक्ति नष्ट होती है।

ममता बंधनकर्ता है। मनके मरने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है। बंधन मनका होता है, आत्माका नहीं। आत्मा तो मुक्त ही है।

गृहत्यागकी आवश्यकता नहीं है। गृहमें सावधान होकर रहना है।

प्रतिकूल परिस्थितिमें भी प्रह्लाद घरमें रहे और उनकी भक्तिमें कोई बाधा न डाल सका। जब कि वनमें एकांतमें भी भरतजी मृगबाल पर आसक्त हुए और भजन न कर सके।

प्रतिकूल संजोगमें, प्रतिकूल वातावरणमें भजन किस प्रकार किया जाये यह प्रह्लादने जगत्को बताया है। और अनुकूल वातावरणके होनेपर भी मनुष्य सावधान न रहे तो वह भजन नहीं कर सकता, ऐसा हम भरतके दृष्टांतसे समझ सकते हैं।

घरमें समाहित वस्तुएं भजनमें बाधारूप नहीं हैं किंतु मनमें बसी हुई वस्तुएं बाधारूप हैं।

गृहत्यागी महात्माओंको माया किस प्रकार सताती है वह यह कथा बताती है। भरतजीने सोचा कि एकांतमें बैठकर मैं ईश्वरकी आराधना करूंगा। वे नेपालमें गंडकी नदीके किनारे आए। वहां वे आदिनारायण भगवान्की आराधना करने लगे।

ईश्वरके सिवा अन्य किसीका भी संग भजनमें विक्षेप करेगा। जिसे तप करना है वह अकेला ही तप करे। सदा यही सोचो कि मैं अकेला नहीं हूं, मेरे भगवान् भी मेरे साथ हैं। ईश्वरके सिवा अन्यका संग रखोगे तो दुःखी होगे।

भरतजी अकेले ही तप करने गए थे। गंडकीका दूसरा नाम है शालिग्रामी।

भरतजीका नित्य नियम था। चार बजे ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान करते थे। कटितक जलमें खडे रह कर सूर्यनारायणका ध्यान और गायत्रीमंत्रका जप करते थे।

सूर्यनारायणकी कृपासे बुद्धि उज्ज्वल होती है, अतः उनकी हमें उपासना करनी चाहिए। सूर्यनारायणके उपकारके कारण हम उनके ऋणी हैं। वे जगत्को सतत प्रकाशदान करते हैं। उनका उदय न होने पर जगत्में प्रलय होता है। समस्त स्थावर-जंगमकी आत्मा सूर्य है। सूर्यनारायण सभीको प्रकाश देते हैं। किंतु वे बिजलीकी कंपनीकी भांति बिल (नोटिस) नहीं भेजते हैं। वे रविवारकी छुट्टी भी नहीं मनाते। जिस दिन वे छुट्टी मनाएंगे, जगत्का प्रलय हो जायगा।

सूर्य परमात्माका साकार स्वरूप है।

मनुष्य और कौएमें एकबार झगडा हो गया था। तो उस समय कौएने कहा था- वैसे तो तू अधिक बुद्धिशाली है, किंतु तुझसे हममें एक गुण अधिक है। हम सूर्योदयके पहले ही निद्रात्याग करते हैं।

सूर्योदयके पूर्व ही स्नानादि करके सूर्यनारायणको अर्घ्यदान करो। रात्रिके ग्यारह बजेके बादका समय राक्षसकाल कहा गया है। इस निषिद्ध-कालमें भोजन मत करो। आजकल तो लोग सिनेमा देखनेके बाद ग्यारह बजे भोजन करते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है।

सूर्य-चंद्र-समुद्र ईश्वरकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते। हे मानव, परमात्माकी मर्यादाका पालन करनेके लिए तुझे सुखसमृद्धि दी गई है।

भरतजी प्रार्थना करते हैं : मेरी बुद्धि, मेरा मन कहीं कुमार्गी न हो जायें। भगवान्के तेजोमय रूपका मैं चिंतन करता हूं।

अर्थ और ज्ञानके साथ जप करो।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं

राजन्! भरतजी द्वारिकाधीशकी मानसी सेवा करने लगे। प्रत्यक्ष सेवा तो बहुत की थी, अतः अब मानसी सेवा करने लगे।

मानसी सेवा सरल नहीं है।

अधिकतर पाप शरीरसे नहीं, मनसे ही होता है। अतः मानसी ध्यान, मानसी सेवा श्रेष्ठ है। ईश्वरमें मनसे तन्मय होना ही मानसी सेवा है।

एक बार एक बनियेने गोसाईंजीके पास जाकर कहा-महाराज, मैं प्रभुसेवा करना तो चाहता हूं, किंतु एक भी पैसेके खर्चके विना सेवा हो सके ऐसा मार्ग बताइए।

तो गोसाईंजीने मानसी सेवाका मार्ग बताते हुए उस बनियेसे कहा-तू मानसी सेवा विना खर्चके कर सकेगा। केवल मनसे संकल्प करते रहना कि मैं भगवान्‌को स्नान करा रहा हूं, वस्त्र पहना रहा हूं, पूजा कर रहा हूं, भोग लगाता हूं, भगवान् भोजन कर रहे हैं आदि।

फिर गोसाईंजीने उससे पूछा- तुझे भगवान्‌का कौन-सा स्वरूप अधिक प्रिय है।

बनियेने उत्तर दिया- मुझे तो भगवान्‌का बालकृष्णस्वरूप अधिक प्रिय है।

गोसाईंजीने कहा- प्रातःकालमें ऐसी भावना कर कि ठाकुरजीके लिए यमुनाजल ले आया हूं। घर आने पर ऐसा भाव जगाया जाय कि ठाकुरजी स्नान कर रहे हैं। यशोदाजी जैसी भावना रखके बालस्वरूपकी सेवा करना। बालसेवामें वात्सल्यभाव मुख्य है। सेवामें दूध और माखन लाना। बादमें कनैयाको मंगलगीत गाकर जगाना।

जागो बंसीवाले ललना मोरे प्यारे ॥
रजनी बीती भोर भयो है घर घर खुले किवारें।
गोपी दही मथत सुनियत है कंगनके झनकारें ॥
उठो लालजी भोर भयो है सुरनर ठाढे द्वारे।
ग्वालवाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे ॥
माखन-रोटि हाथमें लिन्हीं गउअनके रखवारे।
मीराके प्रभु गिरधर नागर शरण आयाकू तारे ॥
जागो बंसीवाले ललना मोरे प्यारे ॥

यशोदाजी लालाको मनाती थीं कि इतना माखन खा लेगा तो तेरी चोटी दाउजीसे भी जल्दी बढ जाएगी।

उष्णोदकसे लालाको मांगलिक स्नान कराना। फिर ठाकुरजीका शृंगार करना। कन्हैयासे पूछना कि आज वह कौन-सा पीतांबर पहनेगा। कन्हैया जो कहे वह पीतांबर पहनाना। शृंगारमें तन्मयता होने पर ब्रह्मानंद-सा आनंद प्राप्त होता है।

कन्हैयाको नैवेद्य देकर भावना करो कि लाला प्राशन कर रहा है। फिर आरती करके क्षमाप्रार्थना की जाए।

गोसाईंजीद्वारा बतायी हुई रीतिके अनुसार बनिया श्रीकृष्णके बालस्वरूपकी मानसी सेवा करने लगा। प्रतिदिन प्रेमसे मानसी सेवा करता था। वह इतना तो तन्मय होने लगा कि सभी वस्तुयें प्रत्यक्ष दीखने लगीं। इस सेवामें मनकी धारा टूटनी नहीं चाहिए। कोई लौकिक विचार आ जाये तो समझ लो कि सेवा खंडित हो गयी। बारह वर्षों तक उसने मानसी सेवा की।

अब एक दिन वह दूध लाया और उसमें चीनी डाली। किंतु उसे लगा कि लालाके दूधमें आज कुछ अधिक चीनी पड गयी है। बनिया यह कैसे सह सकता था? स्वभावसहज कृपणता कैसे मिट सकती है? प्राण और प्रकृति (स्वभाव) साथ-साथ ही तो जाते हैं। उसने सोचा जरूरतसे अधिक जो चीनी दूधमें जा पडी है उसे निकाल लूँ, कभी दूसरे काममें उपयोगी होगी। अब वहां न तो बर्तन था, न तो दूध था और न तो थी चीनी। क्योंकि वह तो मानसी सेवा ही करता था न। फिर भी तन्मयताके कारण उसे ये सारी वस्तुएं प्रत्यक्ष दिखाई देती थीं, अतः मन ही मन कल्पनामें उस चीनीको निकालने लगा।

कन्हैयाने सोचा कि जैसा भी हो किंतु इस बनियेने मेरी बारह वर्षों तक मानसी सेवा की है। अतः उन्हें प्रकट होनेकी इच्छा हुई। बालकृष्ण प्रसन्न हुए थे। उन्होंने प्रकट होकर बनियेका हाथ पकडा और कहा कि चीनी अधिक चली गई तो क्या हुआ? तूने एक पैसे का भी तो खर्च नहीं किया है।

भगवत्-स्पर्श होनेसे वह बनिया सच्चा वैष्णव बन गया। वह भगवान्‌का अनन्य सेवक बन गया।

बारह वर्षों तक जो भी सत्कार्य नियमपूर्वक किया जाए, उसका फल अवश्य मिलता है। शंकराचार्य भी श्रीकृष्णकी मानसी सेवा करते थे।

भरतजी भी मानसी सेवा करते हुए तन्मय हुए हैं। सेवा करते हुए थक जाते थे, तो ध्यान और कीर्तन करने लग जाते थे।

प्रभुके पीछे जो लगता है उसे ही माया सताती है। सांसारिक विषयोंमें जो फंसा हुआ है, उसे माया नहीं सताती, क्योंकि माया मानती है कि यह तो मरा हुआ ही है फिर उसे और क्यों मारूं?

जो व्यक्ति प्रभुके पीछे पडा हुआ है, उसे ही माया अधिक सताती है किंतु जो मायाके प्रवाहमें बहता होता है, उसके लिए वह बाधारूप नहीं होती। माया मानती है कि वह तो मेरा बंदी है ही।

मायाकी गति बडी विचित्र है।

कमर तक जलमें भरतजी खडे हुए थे। ग्रीष्म ऋतु थी। एक गर्भवती हरिणी प्रातः-काल जलपान करने आई। इतनेमें कहींसे सिंहने गर्जना की, जिससे वह हरिणी भयभीत हो गई। उसने सोचा कि गंडकी नदी पार कर लूं। उसने जोरसे छलांग मारी। प्रसवकाल समीप था, अतः हरिणबालका जन्म हो गया और नदीके जलमें गिर पडा। दूसरे किनारे पर हरिणीकी भी मृत्यु हो गई।

भरतजीने उस मृगबालको नदीके जलमें पडा हुआ देखा। उन्होंने इस बच्चेमें भी श्रीहरिका दर्शन किया। वे सोचने लगे कि इसकी माताकी तो मृत्यु हो गई है, सो जगत्‌में इसका तो कोई नहीं रहा है। अब इसका लालन-पालन-रक्षा आदि कौन करेगा? वे दयावश होकर उस बच्चेको अपने आश्रममें ले आए।

वे सोचने लगे कि यह बच्चा मेरे सिवाय किसी औरको तो पहचानता नहीं है। इसका पालन-पोषण करना अब मेरा ही धर्म है। मैं इसकी उपेक्षा करूंगा तो यह मर जाएगा। मैं ही

इसका पिता हूं और मैं ही इसकी माता हूं। इसका पालन-पोषण-रक्षा करना मेरा ही कर्तव्य है। उन्होंने सोचा " मैं ही उस मृगबालका रक्षक पिता हूं। अतः हर प्रकारसे मुझे इसकी रक्षा करनी ही है।

जीव मानता है कि मैं दूसरोंकी रक्षा करता हूं। अरे, तू क्या रक्षा करेगा ? तू भी तो कालका ग्रास है। रक्षा करनेवाले तो वह (प्रभु) ही हैं। कर्ताहर्ता तो श्री हरि ही हैं। पालक और संहारक भी श्री हरि ही हैं। तुम घरमें रहो या वनमें, तुम्हारी रक्षा करनेवाले श्री हरि हैं।

भागवतके सातवें स्कंधके दूसरे अध्यायके चालीसवें श्लोकमें यमराजने राजा सुयज्ञके रिश्तेदारोंको यह उपदेश दिया था, ऐसा कह कर हिरण्यकशिपुने कहा है।

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥

यदि परमेश्वरकी कृपा हो तो जो अनाथ हो या वनवासी हो तो भी वह जीवित रहता है और परमेश्वर द्वारा मारा गया जीव घरमें सुरक्षित होने पर भी जीवित नहीं रहता, मरता ही है।

मृगबालको पानीसे बाहर निकालनेका तो भरतजीका धर्म था। उन्होंने रक्षक पिता बननेका जो रिश्ता जोड लिया वह अच्छा नहीं किया। जीवमात्रका रक्षकपिता तो ईश्वर ही है। सभी दोष अभिमानके कारण ही उत्पन्न होते हैं।

भरतजी उस मृगबालका लालनपालन करने लगे। धीरे धीरे वह बडा होने लगा। भरतजी उसे अपनी गोदमें बिठलाते थे और उसके साथ खेलते रहते थे।

भरतजीने अपनी पूर्वावस्थामें बच्चोंका लालनपालन किया था। यह पूर्वचित्ति अप्सरा यहां आ गई। पुराने संस्कारोंको भूलना बडा कठिन काम है। सूक्ष्म संस्कार मनमें अभी तक बसे हुए थे। अतः उनका मन उस हिरणके बच्चेमें फँस गया। अब उनका मन प्रभुभजनमें स्थिर नहीं हो पाता था। ध्यानमें हर पांच-दस क्षणके बाद वह बच्चा ही दिखाई देने लगा। वासनाका विषय तो बदल गया किंतु वासना तो मनमें ही रह गई। ऐसी हालतमें इसकी अपेक्षा गृहजीवनमें कौन-सी बुराई थी ? ज्ञानीको तो मनको भी मारना पडता है।

भरतजीने जो मृगबालको घरमें रखा वह ठीक तो हुआ, किंतु उसे जो मनमें भी रखा, वह ठीक नहीं किया।

संसारको छोडकर कहां जाओगे ? जहां भी जाओगे, संसार वहीं उपस्थित हो जाएगा। इसी कारणसे महापुरुषोंने कहा है कि संसारको अपने मनमेंसे धीरे धीरे हटा दो। संसारको मनमें कभी मत रखो। किसीको घरमें चाहे रख लो, किंतु मनमें मत रखो। मनमें या तो कामको ही रखो या फिर ईश्वरको ही। दोनों साथ-साथ नहीं रह पाएंगे। कहा भी है—

तुलसी दोनों नहि रहे, रवि रजनी इक ठाम।

भजन और भक्तिमें बाह्य संसार नहीं, आंतर संसार ही बाधारूप है।

वह मृगबाल भरतजीकी कुटियामें ही नहीं, मनमें भी बस गया। उन्होंने घर, राज्य, पत्नी, संतान आदि सभीका त्याग किया तो सही पर अन्तमें वे उस बच्चेकी मायामें फंस गए।

परोपकारकी भावनाकी अति साधकके लिए उसकी साधनामें बाधक होती है। परोपकारके पचड़ेमें अधिक मत फंसो। वैसे तो परोपकार करना सभीका धर्म है, परंतु परोपकार ऐसे तो न किया जाय कि जिससे प्रभुका विस्मरण हो जाए। संसारमें मनुष्य कपटी न बने, किंतु अति सरल भी न बने। परमात्माका ध्यान कदाचित् न हो सके तो कोई बात नहीं, किंतु जगत्‌के स्त्री, पुरुष या जड़ वस्तुओंका ध्यान कभी मत करो। शत्रु तो मित्र नहीं बनता किंतु मित्र कभी भी शत्रु बन सकता है।

भरतजीका प्रारब्ध ही हिरण्यबालके रूपमें सामने आया। प्रारब्धको तो झेलना ही पड़ता है। ज्ञान होनेके पश्चात् वासना नष्ट न हो सके तो ज्ञान दृढ नहीं हो पाता। ज्ञानको दृढ करनेके लिए प्रथम वासनाको नष्ट करना आवश्यक है। वासनामें मन फंसा हुआ है। भरतजी वैसे तो महाज्ञानी हैं। किंतु ज्ञान होनेके बाद भी यदि मन वशमें न हो, तो ज्ञान स्थिर (स्थायी) नहीं हो सकता। जब तक ज्ञानी मन और वासनाका नाश न कर सके तब तक उसकी भक्ति और ध्यानमें स्थिरता नहीं आ सकती। वासनाके वेगमें कई बार ज्ञान बह जाता है। जो वैराग्यके बिना गृहत्याग करता है वह वनमें भी नया संसार बसा लेता है। भरतजी ज्ञानी तो हैं किंतु वासनाको अंकुशित नहीं कर सके हैं। घरमें रहकर वैराग्यकी पूर्णतः प्राप्तिके पश्चात् ही गृहत्याग करो।

ज्ञानीके दो प्रकार हैं। जिसने अधिक उपासना की है वह कृतोपास्ति ज्ञानी है। उसे माया नहीं सताती। किंतु जो अकृतोपास्ति ज्ञानी है, उसके लिए माया विघ्नकर्ता है। वासनाके नाशके विना तत्त्वानुभव नहीं होता। वासनाके नाश किए बिना तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होने पर भी ब्रह्मनिष्ठा नहीं होती। भरतचरित्र इसका दृष्टांत है।

भरतजीको अब तक अपरोक्ष साक्षात्कार नहीं हुआ था। यदि यह साक्षात्कार हुआ होता तो उनका मन हिरणबालमें नहीं फंसता।

भरतजी अब दिनोंदिन उस बच्चेके लालन-पालनमें व्यस्त रहने लगे, परिणामतः संध्या-पूजा आदि नित्यकर्म छूटने लगे। भरतजी उसे हरी कोमल घास खिलाते। वह चौकड़ी भरता या मुनिके अंग चाटता तो भरतजी सोचते- वाह, कैसा सुंदर और सयाना है यह।

दिनप्रतिदिन यह आसक्ति बढ़ती चली। एक दिन वह बच्चा खेलता-कूदता घने वनमें जो चला गया तो रात होने पर भी वापस न आया। मुनिको चिंता होने लगी कि मेरे बच्चेका क्या हुआ होगा? कब लौटेगा?

कालको किसी पर भी दया नहीं आती। काल सदा सर्वदा सावधान रहता है।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतम् अस्य न वा कृतम्।

मृत्यु कभी यह नहीं सोचती कि इसने अपना कार्य समाप्त किया भी है या नहीं। अतः हर क्षण सावधान रहो। मृत्युके लिए हमेशा तैयार रहो। जीवन इस प्रकार जीना चाहिए कि तुम सावधान रहो और मृत्यु आए। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी तैयारी न हुई हो और मृत्यु तुम्हें उठा ले जाए।

भरतजीको पकड़नेके लिए काल आया। भरतजीको मृगबालका स्मरण हो आया। उन्होंने श्रीहरिका नहीं अपितु मृगबालका चिंतन करते हुए देहत्याग किया। इस मृगबालके

लालन-पालन करनेसे भरतजीको आत्मस्वरूपका विस्मरण हो गया। मृत्युके समय मृगबालका ही चिंतन करते रहनेके कारण उन्हें अगले जन्ममें मृगका ही शरीर मिला।

मनुष्य अगले जन्मकी अर्थात् पुनर्जन्मकी तैयारी अपने इसी जन्ममें करता है। इस जन्ममें बीज मिलते हैं, फल नहीं। पूर्वजन्ममें किया हुआ तप निष्फल नहीं होता। पूर्वजन्ममें किया हुआ भजन व्यर्थ नहीं होता।

भरतजीके मृगशरीरवाले जन्ममें भी पूर्वजन्मका ज्ञान था।

पशु-पंखीका अनादर कभी मत करो। हो सकता है कि किसी कारणवशात् कोई साधु महात्मा पशु-पंखी बन कर आए हों तो? अहल्या जैसी कोई महासती पत्थर बन कर आई हो तो? नृग राजा गिरगिट होकर आए थे और नल, कुबेर वृक्ष होकर आए थे। कोई सिद्ध पुरुष वृक्ष बनकर आए हों तो? किसी आत्मासे कुछ अपराध हो जाने पर वह पशु-पंखीकी योनिमें भ्रमण करती है।

भरतजी मृगके स्वरूपमें घूम रहे हैं। उन्हें पूर्वजन्मका ज्ञान है। वे सोच रहे हैं कि मैं इसी गंडकी नदीके किनारे तपश्चर्या करता था। इसी स्थल पर मैंने हिरणके बच्चेको उठा लिया था और उसे मैं अपने आश्रममें ले आया था। उसके प्रति अत्यंत आसक्ति होनेके कारण ही मुझे मृगयोनिमें जन्म लेना पडा। मैं कभी महाज्ञानी था, योगी था किंतु आज चौपाया पशु बना हुआ हूं। अब मुझे नया प्रारब्ध नहीं कमाना है। जो मैं साथ लाया हूं उसे ही सहना या भोगना है।

यह मृगबाल (भरतजी) नदीमें स्नान करता है, वृक्षोंके सूखे पत्ते खाता है। वह घास नहीं खाता है, क्योंकि उस पर जंतु होते हैं। हिंसा होने पर नया प्रारब्ध जुट जाएगा। इस मृगदेहमें भी वे एकादशीका व्रत करते थे। प्राचीनकालमें भारतमें पशु भी एकादशीव्रत करते थे। आज कल तो कई लोग एकादशीव्रत नहीं करते हैं।

फिर भरतजीने मृगदेहका भी त्याग किया और एक ब्राह्मणके घर जन्म लिया।

मानवजीवन अतिशय विलासी हो गया है। प्रजामें संयम, सदाचार, भगवद्भक्ति बढने पर ही संतोंका जन्म होता है। विलासी मातापिताके घर संतोंका जन्म नहीं होता। संत जन्म लेनेके लिए सुपात्र खोजते हैं।

पवित्र ब्राह्मणके घर भरतजीका जन्म हुआ। भरतजीका यह अंतिम जन्म था। उन्हें पूर्वजन्मका ज्ञान है कि हिरणकी मायामें फँसनेके कारण उन्हें पशुदेह धारण करनी पडी थी। पूर्वजन्ममें हिरणके साथ बातें करता था, अतः पशु होना पडा। अब तो इस जन्ममें किसीसे भी नहीं बोलूंगा। एक बार भूल हो गई। अब तो मैं बडा सावधान रहूंगा।

बचपनसे ही भरतजी भक्तिके रंगमें रंगे हुए हैं।

शास्त्रने अंतिम जन्मके कुछ लक्षण बताए हैं। बाल्यावस्थासे ही जिसे भक्तिका रंग लगे, तो मानो कि उसका यह अंतिम जन्म है। जिसकी बुद्धिने काम छोडा हो उसका भी यह अंतिम जन्म है। जब तक बुद्धिमें काम है, तब तक मान लो कि उसे अभी जन्म लेने बाकी हैं। प्रत्येक वस्तुमें जो भगवद्दर्शन करे, उसका वह जन्म अंतिम ही है। जहां भी दृष्टि जाए वहां किसीको भगवान् ही दृष्टिगोचर हों, उसके लिए यह जन्म अंतिम है। हृदयसे दीन और अभिमानरहित व्यक्तिका भी यह जन्म अंतिम जन्म है।

जड भरतजीका यह अंतिम जन्म था। एक हँसता हुआ बंदी बनता है तो दूसरा रोता हुआ। साधारण व्यक्ति (जीव) वासनाके आधीन होकर संसारमें आता है तो संत भगवद्-इच्छासे भगवद् कार्यके लिए संसारमें आते हैं।

परमन और परधनको आकर्षित करनेवाला व्यक्ति संसारकी दृष्टिमें चतुर है, किंतु यह कला तो एक सामान्य स्त्रीके लिए भी साहजिक है। सांसारिक दृष्टिमें संत जड होता है। परंतु आनंदमय चेतन प्रभुको भूल कर, सांसारिक सुखोंमें फँसा हुआ मनुष्य तो सचमुच जड है। प्रभुप्रेममें मस्त, देहभानसे अज्ञात महापुरुषको जड कैसे कहें ? किंतु संसारकी विपरीत मान्यताके कारण सांसारिक लोगोंने भरतजीका नाम जडभरत रख दिया।

लोग भरतजीको मूर्ख मानते हैं तो भरतजी सोचते हैं कि लोग मुझे मूर्ख मानें तो इसमें बुराई भी क्या है ? पूर्वजन्ममें ज्ञानका प्रदर्शन करने गया तो दुःखी हो गया। ज्ञान अन्यको उपदेश देनेके लिए नहीं, ईश्वरकी आराधना करनेके लिए है।

ज्ञान भोगके लिए नहीं, भगवान्‌के लिए है।

शंकराचार्यने कहा है :

विदुषाम् यच्च वैदुष्यम् मुक्तये न तु भुक्तये।

ज्ञान धन या प्रतिष्ठा कमानेके लिए नहीं, परमात्माकी प्राप्तिके लिए है। ज्ञानका फल धन और प्रतिष्ठा नहीं, परमेश्वर है। ज्ञान परमात्माके साथ एक होनेके लिए है।

जडभरतने सोचा कि पूर्वजन्ममें पशुके साथ वाणीव्यवहार निभाया था, अतः मुझे इस जन्ममें पशुका अवतार मिला, सो इस जन्ममें किसीके भी साथ मैं बातें नहीं करूंगा। यदि अब बातें करूगा तो मात्र प्रभुके साथ।

वाणी और पानीका दुरुपयोग करनेवाला व्यक्ति ईश्वरका अपराधी है। अंतःकालमें वाणी उसका विश्वासघात करती है।

मीराबाईने भी तो निश्चय किया था कि बात करूंगी तो केवल अपने गिरधर गोपाल-श्रीकृष्णके साथ ही। मैं तो बस अपने गिरिधर गोपालको ही मनाऊँगी। संसारके लोगों या रिश्तेदारोंको मनानेसे क्या लाभ होगा ?

राम नाम मेरे मन बसियो,
राम रसियो रिझाऊं रे माय।

जडभरत किसीसे भी बोलते नहीं थे।

अति बोलनेसे स्नेह उत्पन्न होता है। वैसे तो इस सृष्टिमें ईश्वरने एक एक कामके लिए दो दो इन्द्रियां दी हैं। एक आंखसे भी देखा जा सकता है फिर भी दो आंखें दी हैं। किंतु एक ही जीभको दो काम करने पडते हैं–बोलनेका और खानेका। अतः जीभ पर अधिक अंकुशकी आवश्यकता है।

दूसरोंके साथ बातें करनेसे, प्रेम करनेसे वासना उत्पन्न होती है। वैर और वासनासे नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है अतः दूसरी बार जन्म लेना पडता है।

जड भरत हर तरहसे मन पर अंकुश रखते हैं। तुम्हें स्वयं ही अपने मन पर अंकुश रखना होगा। तुम्हारे मनको दूसरा कौन अंकुशित कर सकेगा ?

रामदास स्वामीने कहा है कि अतिशय घूमने-घामनेसे शांति नहीं मिल पाती।

जड भरतके पिता उसे पढाने लगे और सोचने लगे कि लिख-पढकर मेरा पुत्र पंडित होगा। किंतु इसकी पंडिताई निराली ही थी। उसकी पंडिताई सच्ची थी। सच्ची पंडिताई कौन-सी है?

परधन परमन हरनकु वेश्या बडी चतुर।
तुलसी सोई चतुरता रामचरन लवलीन॥

भरतजी यों जानते तो सब कुछ हैं फिर भी मंत्रोच्चार अच्छे ढंगसे नहीं करते। वे अपना ज्ञान प्रसिद्ध नहीं करना चाहते थे।

जड भरतजी भगवान्‌के स्मरणमें ही लीन रहते थे। ज्ञान और भक्तिके परिपक्व होने पर ही जीव संसारवृक्षसे उसी तरह अलग हो सकता है, जिस प्रकार परिपक्व होने पर फल अपने आप वृक्षसे अलग होकर गिर पडता है।

मातापिताने शरीरका त्याग किया तो जडभरतजी पागलकी भांति घूमने लगे। पागल-से लगते तो थे, किंतु वे एक क्षणमात्रके लिए भी श्रीकृष्णको भूलते नहीं थे।

जडभरतजीने बताया है कि भोजन किस प्रकार किया जाय।

स्वादकी अपेक्षाके विना, केवल शरीरके पोषणके हेतु ही भोजन करना चाहिए। जडभरतके भाई उन्हें पीसे हुए तिल, धान्यका कूचा, सडे हुए उडद आदि खानेके लिए देते थे, तो उन वस्तुओंको भी अमृततुल्य मानकर वे खा लेते थे।

किस प्रकार चला जाए वह भी जडभरतजीने बताया है। किसी भी जीवकी हिंसा न हो पाए ऐसा सोचकर वे रास्ता देखकर चलते थे। धरती पर दृष्टि रखते हुए चलना चाहिए। हरदम सोचो कि कहीं मुझसे किसी जीवकी हिंसा न हो जाये।

भरतजी औरोंके काम भी करते थे। भाइयोंने उन्हें खेतके चारों ओर मेंड (मिट्टीकी छोटीसी दीवार) बनानेको कहा। भरतजीने सोचा कि मैं आज यह काम करूंगा तो कल मुझे दूसरा काम सौंपेंगे। अतः उन्होंने मेंड बांधनेकी जगह गड्ढा बना दिया।

एक दिन भाईने खेत-की देखभाल करनेको कहा तो भरतजीने गायोंको खेत-में चरने के लिए छोड दिया। भरतजी गायोंको रोकते नहीं थे। वे कहते थे:

खानेवाला राम, खिलानेवाला राम,
तो रोकनेका क्या काम?

जगत्‌के समक्ष मानों वे नाटक कर रहे थे कि वे पागल हैं। ज्ञानी पुरुषोंके ध्यानमें लोकसंग्रह बाधारूप है। सांसारिक व्यवहारकी कहीं माया न लग जाए, इस हेतुसे वे परमात्मा नारायणकी आराधना करते रहते थे। एकादिन वे खेत-में बैठे हुए थे।

एक भील राजा निःसंतान थे। उन्होंने मनौती मानी हुई थी कि संतान होगी तो मैं भद्रकालीको नरबलिकी भेंट चढाऊँगा। पुत्रका जन्म हुआ। राजाने आज्ञा दी कि किसी नरको ले आओ। राजसेवकोंने जडभरतको उस खेतमें देखा। उन्होंने सोचा कि यह अच्छा तगडा है। इसे ही हम पकड ले जायें।

संसारके लोगोंकी दृष्टिमें संत पागल हैं और संतोंकी दृष्टिमें संसारसुखमें फंसे हुए लोग पागल हैं।

उन भील राजसेवकोंने भी भरतजीको पागल ही मान लिया लिया। वे उन्हें पकड़कर भद्रकालीके मंदिरमें ले आए।

माताजीको बलिदान दो किंतु किसी जीवका नहीं। काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुण ही पशु है। उन्हींका बलिदान दो। देवी भागवतमें यही अर्थ बताया गया है बलिदानका।

भरतजीको स्नान कराया गया, पुष्पमाला पहनाई गई और भोजनके लिए अच्छे पकवान दिए गए।

भोजन करना पाप नहीं है किंतु स्वाद ले लेकर भोजन करना पाप है।

भोजन साधन है और भजन साध्य।

भरतजी भोजन करते थे किंतु उनका भोजन भजनके लिए था।

भील सोचते हैं कि दो घंटेके बाद तो इसे मरना है फिर भी यह बड़े आरामसे भोजन कर रहा है।

इसके बाद भरतजीको मंदिरके अंदर ले गए।

संतकी परीक्षा उनकी मनोवृत्तिके आधार पर हो सकती है, दाढ़ी-जटासे नहीं। जडभरतजीने माताजीको मन ही मन प्रणाम किया और सिर नंवाकर शांत चित्तसे बैठ गए। भील राजाने भद्रकालीकी प्रार्थना की और वह तलवार लेकर बलिदान देनेके लिए तैयार हो गया।

सबके प्रति समभाव सिद्ध करनेवाले भरतको देखकर माताजीका हृदय भर आया। उनसे यह हिंसा देखी न गई। भद्रकाली मूर्ति तोडकर प्रकट हुई और भील राजाकी तलवार लेकर उसीका मस्तक काट दिया तथा मस्तककी गेंद बनाकर वे खेलने लगीं।

ज्ञानी भक्त मानता है कि सहस्रबाहु भगवान् उसकी रक्षाके हेतु खड़े हुए हैं। दो हाथों-वाला मनुष्य क्या रक्षा कर पाएगा? ज्ञानी भक्त माताजीको बहुत प्यारे होते हैं। ज्ञानी पुरुष अपने मनको एक क्षणके लिए भी ईश्वरसे अलग नहीं होने देता। उसकी दृष्टि ब्रह्ममय होती है।

किसी एक समय सिंधुदेशके राजा रहूगण कपिल मुनिके पास ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए गए। तत्त्वज्ञानकी विद्या प्राप्त करनेके लिए वे पालकीमें बैठकर कपिल ऋषिके आश्रमकी ओर जाने लगे। पालकी उठाकर चलनेवाले चार सेवकोंमेंसे एक कहीं भाग गया, तो राजाने कहा कि जो भी मिले उसे पकड लाओ।

वैष्णवजन भगवद्-इच्छासे ही जीते हैं। ज्ञानी प्रारब्ध-कर्म भुगतनेकी इच्छासे जीते हैं। ज्ञानीजन अनिच्छासे प्रारब्धको देखते हैं तो वैष्णवजन इसमें भगवद् इच्छाके दर्शन करते हैं।

साधकके लिए स्पष्ट आज्ञा है कि चार हाथके आगे दृष्टि न चली जाए। दृष्टिके चंचल होनेसे मन भी चंचल हो जाता है।

राजसेवक पालकी उठानेके लिए जडभरतको पकड लाए कि यह तगडा है, अतः ठीक काम आएगा। उन्होंने पालकी उठाई। आज तक कई बार स्वयं ही जो पालकीमें बैठे

थे वे ही आज पालकी उठा रहे थे। यही उनका प्रारब्ध था। प्रारब्ध भुगतना ही पडता है। अंतिम जन्म होने पर भी पालकी उठानी पडी है। भरतजी नीचे देखते हुए चल रहे हैं कि कहीं मुझसे किसी जीवकी हत्या न हो जाए। उन्हें तो प्रत्येक जीवमें भगवान्के दर्शन होते हैं।

भरतजी सोचते है अब तो मेरा कुछ ही प्रारब्ध रह गया है। मरेगा तो मेरा शरीर ही। मैं तो नारायणसे मिल जाऊंगा। मुझे सावधान रहना है।

असावधान रहनेसे ही काम, क्रोध, लोभ आदि सिर पर सवार हो जाते हैं। निर्भय बनो। निर्भयता तभी आती है कि जब जीव हमेशा परमात्माके सान्निध्यका सतत अनुभव करता है।

भरतजी रास्तेमें भी प्रभुको मनाते चलते हैं।

मनको शुद्ध करनेके लिए भरतजीकी आतुरता बढा दी और भगवान् अदृश्य हो गए। भगवान्के दर्शन न होने पर भरतजी व्याकुल हो जाते हैं और रोने लगते हैं। मुझे जगत्में भटकना नहीं है। नाथ, मुझे कब अपनी शरणमें लोगे? मेरा प्रारब्ध कब समाप्त होगा? अब भी मुझे परमात्माके दर्शन क्यों नहीं होते? इन विचारोंसे वे रोते हैं।

रास्तेमें चींटी दीख पडती तो भरतजी कूद जाते थे। ऐसा करनेसे पालकीके ऊपरी हिस्सेसे राजाका सिर टकरा जाता था। राजाने सेवकोंसे कहा कि अच्छी तरहसे चलो, मुझे असुविधा हो रही है। उन पुराने तीन सेवकोंने कहा– हम तो ठीक तरहसे चलते हैं किंतु यह नया सेवक ठीक ढंगसे नहीं चलता है। कभी रुकता है, कभी दौडता है, कभी कूदता है, कभी हंसता है, कभी रोता है। यह पागल-सा ही है। यही सताता है।

राजाने जडभरतसे व्यंग्यमें कहा– तू तो बिलकुल दुबला-पतला है। तेरे अंग भी कितने दुर्बल हैं? अतः तू ठीक तरहसे कैसे चल सकता है?

रहूगणने सोचा कि अब मैं भरतजी पर दृष्टि रखूंगा। भरतजी सोचते हैं कि रास्तेमें कोई जीव कुचल जाएगा तो पाप होगा। भरतजी चींटीमें भी कन्हैयाको देखते हैं। कृष्ण किसी एक ही घेरेमें नहीं रहते। सभीमें कृष्णका दर्शन करे वही वैष्णव है।

जडभरतने राजाके कहने पर ध्यान न दिया। चींटीको देखकर भरतजीने छलांग लगाई तो राजाका सिर पालकीके ऊपरी दंडसे फिर टकरा गया। राजा यह सहन न कर सके। वे क्रोधित होकर जडभरतका अपमान करने लगे– "अरे, तू तो जीते जी मरा हुआ है। तुझे भान ही नहीं है। अच्छी तरहसे चल।

भस्ममें छुपी हुई अग्नि जिस प्रकार दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार ब्रह्मके चिंतनमें लीन ज्ञानी पहचाने नहीं जा सकते।

एक बार फिर राजाका सिर टकरा गया तो वह क्रोधित हो गया। उसने कहा– मैं रहूगण राजा हूं। तुझे दंड दूंगा।

राजासे न तो एक भी पैसा लिया है और न तो उसका कुछ खाया है। फिर भी वह भरतको मारनेको तैयार हो गया। उन्हें मारनेका राजाको क्या अधिकार है? राजा अभिमानी था। वह मदांध हो गया था।

कुछ भी बोलनेकी भरतजीकी इच्छा न थी। उन्होंने सोचा कि शरीर पुष्ट है दुबलापन भी शरीरका धर्म है। आत्माको तो कुछ भी नहीं होना है। यह राजा मेरे शरीरसे बातें करता है, अतः उसके साथ बोलना आवश्यक नहीं है। मैं मौन ही रहूंगा।

भरतजी फिर सोचने लगे कि मेरा अपमान कुछ भी महत्त्व नहीं रखता। किंतु मैंने जिसे उठाया है वह रहूगण राजा यदि नरकवासी होगा तो पृथ्वी परसे सत्संगकी महिमा नष्ट हो जाएगी। लोग कहेंगे कि महाज्ञानी जडभरतजीने जिसको अपने कंधेपर उठाया वह भी नरकवासी ही हुआ। जगत्में सत्संगकी बडी महिमा है। चाहे जो भी हो, किंतु राजाको जब मैंने अपने कंधे पर रखा ही है तो मैं उसका उद्धार भी करूंगा। उन्होंने राजाको उपदेश देनेका निश्चय किया। सत्संगकी महिमाको निभानेके लिए आज जडभरतने बोलना चाहा। आज तक वे मौन ही रहे थे। राजाके लिए उन्हें दया आई और बोलनेकी इच्छा हुई।

राजाका कल्याण हो। कपिल मुनिके आश्रममें तत्त्वज्ञानका उपदेश प्राप्त करनेके लिए राजा जा रहा है। उपदेश लेनेके लिए तो दीन होकर, नम्र होकर जाना जाहिए जब कि यह राजा तो अपना अहंभाव साथ लेकर जा रहा है। वह अभिमान लेकर जाएगा तो ऋषि उसे विद्या नहीं देंगे। आज मैं उसे अधिकारी बनाऊंगा।

रहूगण राजा भाग्यशाली हैं।

भागवतके संत मितभाषी होते हैं। सुदामा भी बहुत कम बोलते थे। मौन रखनेसे मायाका बंधन घटता है।

मुझ जैसे संतका अपमान तो मैं सह लूंगा, किंतु परमात्मा सहन नहीं करेंगे। वे इसे दंड देंगे। यह सोचकर आज भरतजीको बोलनेकी इच्छा हुई। राजाका कल्याण करनेकी उनकी उच्छा हुई।

बोलो तो ऐसा बोलो कि सुननेवालेका कल्याण हो।

भरतजी कहने लगे- हे राजन्! यह सत्य है कि मैं पुष्ट नहीं हूं। पर तुम्हारे कथनसे न तो मेरी निंदा हुई है और न तो उपहास। मोटापन या दुबलापन तो शरीरका धर्म है। इससे आत्माका कोई संबंध नहीं है।

हे राजन्! मैं जीते जी मरा हुआ हूं, ऐसा जो तुमने कहा है, वह भी सच ही है, क्योंकि सारा जगत् ही जीते जी मृत-सा ही होता है। यह पालकी भी मरी हुई है और उसमें बैठे हुए तुम भी जीते होने पर भी मरे हुए ही हो।

सभी विकारी वस्तुओंका आदि और अंत होता ही है। जो जन्मे हैं उन सभीको मरना ही है। राजन्! तुम भी मरे हुए-से ही हो। यह शरीर शवके समान ही है।

आत्मा और शरीरके धर्म भिन्न हैं। आत्मा निर्लेप है। आत्मा मनकी द्रष्टा है, साक्षी है। ज्ञानी पुरुष ईश्वरके सिवा अन्य किसी वस्तु या व्यक्तिको सत्य नहीं मानते। सभी जीवोंमें परमात्मा विद्यमान हैं, फिर इनमें कौन राजा है और कौन सेवक?

व्यावहारिक दृष्टिसे ये भेद हैं अन्यथा तात्त्विक दृष्टिसे तो "मैं" और "तुम" एक ही है।

राजन्, केवल ईश्वर ही सत्य है। तुमने जो मुझसे यह कहा कि तुम मुझे मारोगे तो बताओ कि शरीरको मारनेसे मेरी चाल तो नहीं बदल जायेगी? शरीरकी पिटाई होने पर भी मैं तो सुखी या दुःखी नहीं होता। ये सब तो शरीरके धर्म हैं। शरीरको शक्ति देता है मन। और मनको शक्ति देती है बुद्धि। बुद्धिको चेतना देनेवाली है आत्मा अर्थात् " मैं "। शरीरके धर्म मुझे प्रभावित नहीं कर सकते।

राजन्, मैं इस प्रकार इसलिए चल रहा हूँ कि चींटी आदि मेरे पांव तले आकर कहीं कुचल न जाएं। चलते हुए मुझसे कहीं पाप न हो जाए। ऐसा सोचकर ही मैं छलांग मारता हूं। मेरे श्रीकृष्ण सभी जगह विराजमान हैं। इन चींटियोंमें भी परमात्मा हैं। मैं चींटियों तथा अन्य जीवजंतुओंका खयाल करता हुआ चलता हूं कि कहीं ये कुचल न जाएं। चींटीमें भी ईश्वर है, ऐसा मानकर मैं अपने कृष्णका चिंतन करता हुआ चलता हूं, अतः मेरी चाल तो ऐसी ही रहेगी।

जडभरतके ऐसे विद्वत्तापूर्ण वचन सुनकर राजाने सोचा- " ना, ना, यह पागल नहीं, यह तो कोई परमहंस हैं। यह ज्ञानी महात्मा हैं। लगता है कि यह कोई अवधूत संत हैं। वेदांतके कठिन सिद्धांत बता रहे हैं। इनकी ब्रह्मनिष्ठा अलौकिक है। मैंने उनका अपमान करके बडी क्षति कर दी है। " यह सोचकर चलती हुई पालकीसे राजा कूद पडा। जो मारनेके लिए तैयार हो गया था, वही राजा अब वंदन कर रहा था।

भरतजी तो निर्विकारी हैं। रहूगण द्वारा अपमान होने पर और सम्मान होने पर अर्थात् दोनों ही अवस्थामें वे समस्थिति थे। न क्रोध, न दुःख, न सुख। संतकी परीक्षा उसकी मनोवृत्तिसे होती है, वस्त्रोंसे नहीं। सम्मान या अपमान होने पर भी वही समता। मानापमानमें संतकी वृत्ति सम ही रहती है।

वेश द्वारा संत होना सरल है, हृदयसे संत हो बडा कठिन है।

रहूगणने क्षमायाचना की। वह बोला- कि आपके अपमान करनेवालेका कल्याण कभी नहीं होगा।

राजा रहूगणने पूछा- यह सांसारिक व्यवहार तो सत्य है, इसे हम मिथ्या कैसे कहें? यदि वस्तु असत्य हो तो उससे कोई भी क्रिया नहीं हो सकेगी। जिस प्रकार कि मिथ्या घटसे जल लाना शक्य नहीं है।

आगे राजाने पूछा- आपने कहा कि शरीरको जो दुःख होता है वह आत्माको नहीं होता। परंतु मैं तो मानता हूं कि शरीरको कष्ट होने पर आत्माको भी कष्ट होता है। इसका कारण यह है कि इस शरीरका संबंध इन्द्रियोंके साथ है, इन्द्रियोंका संबंध मनके साथ है, मनका संबंध बुद्धिके साथ है और बुद्धिका संबंध आत्माके साथ है। अतः जो दुःख शरीरको होता है वह आत्माको भी होगा ही। चूल्हे पर बर्तन हो, बर्तनमें दूध हो, और दूधमें चावल हो तो चूल्हेकी अग्निसे पारस्परिक संबंधके कारण दूधमें पडे हुए चावल पक जाते हैं। तो शरीरको होनेवाला दुःख आत्माको भी होना ही चाहिए।

जडभरतजीने कहा- राजन्! यह मिथ्या है। आत्मा निर्लेप है। अग्नि पर रखे गए बर्तनके दूधमें पडे हुए चावल तो पकते हैं, किंतु दूधमें यदि पत्थर डाले जाए तो वे नहीं पकेंगे। क्योंकि वे निर्लेप हैं। आत्मा तो सर्वश्रेष्ठ और निर्लेप है।

संसार तो मनकी केवल कल्पना है।

राजन्, मनकी विकृति होने पर जीवन भी विकृत होता है। अतः जो मन यदि सुधर जाए, तो आत्माको मुक्ति मिलेगी।

एक बार मेरा मन मृगबालमें फंस गया तो मुझे भी मृगयोनिमें जन्म लेना पडा। अतः अबः मैं सावधान हो गया हूं।

राजन्! यह उपदेश व्यावहारिक मनका है। माताके अपनी संतानका बोझ नहीं सालता, क्योंकि वहां मनकी ममता काम कर रही है। माताको अपना पुत्र फूल-सा लगता है दूसरोंका पुत्र वजनदार। अपना पुत्र वजनदार होने पर भी माताको फूल-सा लगता है जब कि दूसरोंके पुत्रका वजन बोझ-सा लगता है। उसका कारण मन है। मन कहता है कि यह अपना है और वह पराया है।

राजन्, ये सब तो मनके धर्म हैं। ये सब तो मनके ही खेल हैं। मनके खेलके कारण ही मुझे कभी मृग होना पडा था। मनके सुधरने पर ही जगत् सुधरता है। मन मृगबालमें फंस गया था, अतः मुझे पशु बनना पडा था।

राजन्, तू तो केवल कच्छप देशका ही राजा है। मैं तो भरतखंडका राजा था। फिर भी मेरी अवदशा हुई थी।

गुणानुरक्तं व्यसनाय जंतोः तदेव नैर्गुण्यमथो मनः स्यात्।

भा. ५-११-८

विषयासक्त मन जीवको सांसारिक संकटमें फंसाता है और वही मन विषयरहित होने पर जीवको शांतिमय मोक्षपदकी प्राप्ति कराता है।

जीवके सांसारिक बंधनका कारणरूप जीव ही है और वही मनके मोक्षका कारणरूप भी है।

मनुष्यका मन जो विषयासक्त हो जाए तो वह सांसारिक दुःखदाता बन जाता है। वही मन विषयासक्त होनेके बदले यदि ईश्वरभजनमें लीन हो जाये तो मोक्षदाता बन जाता है।

विषयोंका चिंतन करता हुआ मन उसमें फंस जाता है तो उसका बंधन आत्मा अपनेमें मान लेती है, स्वयं पर आरोपित कर लेती है। यह सब मनकी ही दुष्टता है। अतः मनको परमात्मामें स्थिर करो।

तुम अपने मनको दंड दोगे तो यमराज तुम्हें दंड नहीं देंगे। जिस दिन जीभ असत्य बोले उस दिन उपवास करो। जिस दिन कुछ पाप हो जाए उस दिन माला अधिक फेरो।

भरतजी कहते है- राजन्, तुम मुझसे पूछते हो कि मैं कौन हूं। किंतु तुम स्वयंसे ही पूछो कि तुम कौन हो।

तुम शुद्ध आत्मा हो। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंका साक्षी आत्मा है।

राजन्, ज्ञानी जगतको सत्य नहीं मानते। संसारको वे मनकल्पित मानते हैं।

जगत् स्वप्न जैसा है। जिस प्रकार स्वप्न मिथ्या होने पर भी मनुष्यको रुलाता है उसी प्रकार यह मिथ्या जगत् भी मनुष्यको-जीवको रुलाता है।

मान लो कि एक मनुष्य सोया हुआ है। वह सपनेमें देखता है कि एक भयानक शेर हमला करने पर है। तो वह मनुष्य डर जाता है कि शेर मुझे खा जाएगा। ऐसा सोचकर वह चिल्लाने और रोने लगता है। उसकी नींद उड जाती है। जागने पर वह देखता है कि वह तो सपना था और सपनेके शेरसे ही वह डर गया था।

किंतु स्वप्न असत्य है यह बात मनुष्यके समझमें कब आती है? कि जब वह जाग जाता है। कौन-सा व्यक्ति जागा हुआ है? विषयोंमेंसे जिसका मन हट गया है, छूट गया है वही जागा हुआ है। इसीलिए तो तुलसीदासजीने भी कहा है।

जानिए तब जीव जग जागा।

जब सब विषय बिलास बिरागा ॥

राजन्, इसीलिए तो मैं कहता हूं कि ये सब तो मनके खेल हैं। मनको शुद्ध करनेके लिए संतोंका समागम करो। महापुरुषोंकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

महत्पादरजोऽभिषेकम्।

राजन्, सत्संगके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। अपने स्वरूपका परिपूर्ण ज्ञान ही एक सत्य वस्तु है। एक ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म सत्यस्वरूप, भेदसे रहित, परिपूर्ण, आत्मस्वरूप है। पंडित उसका भगवान् वासुदेव, कृष्ण आदि नामोंसे वर्णन करते हैं। अन्यथा जगत् तो मिथ्या है।

भरतजीने प्रथम राजर्षिको दिव्य तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया और फिर भवाटवीका वर्णन किया।

आत्माका विवेकरूपी धन एक एक इन्द्रिय लूट लेती है। कोई संत मिलने पर संसार-रूपी वनमेंसे बाहर निकालते हैं। संसारमें अकेले कभी मत घूमो। किसी संतका, सद्गुरुका आसरा लोगे तो संसार वनसे बाहर निकल सकोगे।

मायाके कारण जीव सुखकी आशामें इस संसाररूपी वनमें भटकता है, किंतु उसे सच्चा सुख नहीं मिल पाता।

जिस जीवका नेता (बुद्धि) असावधान और अपात्र है। उसे छ लुटेरे (इन्द्रियां) लूट लेते हैं। उसका धर्मरूपी धन लुट जाता है।

बडी-सी टोलीमेंसे भी प्रमादी भेडको जिस प्रकार भेडिया खींच ले जाता है उसी प्रकार जीवसंघके प्रमादी मनुष्यको शृगालादि (स्त्री-संतान) खींच ले जाते हैं।

यह वन (संसार) बेलों और आलोंसे (गृहस्थाश्रमसे) व्याप्त है। मच्छरोंसे (काम्य कर्मोंसे) यह जनसमुदाय पीडा पाता रहता है।

उस वनमें जीवसमुदाय गंधर्वनगरको देखता है (अर्थात् मिथ्या शरीरादिको सत्य मानता है) तथा पिशाचको (सुवर्णको) देखता है। कई बार तो धूलभरी आंखोंके कारण (रजोगुणसे व्याप्त दृष्टि होनेसे) और बवंडरसे उडती हुई धूलके कारण (बवंडरकी भांति भरमानेवाली स्त्रीके कारण) दिशाओंको (देवोंको) वह जान नहीं पाता।

वह जनसमुदाय भूखसे व्याकुल होने पर अपवित्र वृक्षोंका (अधार्मिक मनुष्योंका) आसरा लेता है। उसे जब तृषा सताती है तो मृगजलके (निष्फल विषयोंके) प्रति दौड पडता है। कई बार निर्जला नदीकी (दुःखदायी मार्गकी) ओर दौडता है। कभी जल पा जाता है तो वनके यक्ष (राजा) उसका प्राण (धन) हर लेते हैं।

चलते चलते उसके पांव कांटों–कंकरोंसे (कई प्रकारके संकटोंसे) वींध जाते हैं।

इस संघके मनुष्योंको कभी कभी सर्प (निद्रा) काटता है, अतः वह शव–सा हो जाता है, कभी उन्हें हिंसक पशु (दुर्जन) काटते हैं। कभी अंध (विवेक भ्रष्ट) बनकर वह अंधेर कुंएमें (मोहमें) गिर कर दुःखी होता है।

इसके अलावा यह जनसंघ इस जंगलमें लताकी शाखाओंका (नारीकी कोमल भुजाओंका) आसरा लेकर, वहीं अस्पष्ट किंतु मधुर मधुर शब्द करते पंछियोंकी (नारीकी गोदमें खेलते हुए नन्हें बच्चोंकी) इच्छा करते है। सिंहोंकी टोलियोंसे (कालचक्रसे उत्पन्न होने वाले जन्म–मृत्युसे) वह त्रास पाता है।

वृक्षोंके तले (घर–बारमें) वह खेलना चाहता है। कभी कभी पर्वतकी गुफाओंमें (रोगादि दुःखोंमें) जाकर वहां बसे हुए हाथीसे (मृत्युसे) वह भयभीत होता है।

जीवात्मा कभी सुखी होती है तो कभी दुःखी। जीव जब भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ग्रहण करता है, तभी कृतार्थ होता है।

संक्षिप्त शब्दोंमें कहें तो यह संसारमार्ग दारुण, दुर्गम और भयंकर है। मनको विषयासक्त किए बिना, श्री हरिकी सेवासे तीक्ष्ण बने हुए ज्ञानकृपाणको लेकर इस संसार-वनके उस ओर पहुँच जाओ।

भरतजीने प्रथम शिक्षा दी और फिर दी दीक्षा। भागवताश्रयीका आश्रय लेनेवाला कृतार्थ हो जाता है।

भरतजीने प्रभुका ध्यान करते हुए शरीरत्याग किया।

इसके आगे भरतवंशी राजाओंका वर्णन है। इसके बाद आता है भारतवर्षके उपास्य देवों और उपासक भक्तोंका वर्णन।

भगवान् नरसिंहके भक्त इन भक्तोंका जाप करते हैं।

ॐ नमः भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे
आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् ।
रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा
अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्षौम् ॥

भा. ५-१८-८

मै ॐकार स्वरूप भगवान् श्री नरसिंहदेवको नमस्कार करता हूँ। हे देव! आप अग्नि आदि तेजोंके भी तेज हैं। आपको नमस्कार है। हे वज्रनख, हे वज्रसी दाढवाले, आप हमारे समक्ष प्रकट हों। हमारी कर्मवासनाओंको जला दीजिए। हमारे अज्ञातरूप अंधकारको नष्ट करें। हमारे अंतःकरणमें अभयदान देते हुए प्रकाशित होइए।

यह है नरसिंह भगवान्का मंत्र। इस मंत्रका जप करते करते श्रीधर स्वामीको वैराग्य हुआ था।

भागवतमें मानवशरीरकी कई स्थानों पर निंदा की गई है। मानवशरीरकी स्तुति केवल पांचवें स्कंधमें है और वह भी देवोंके द्वारा की गई है।

मानवशरीर मुकुंदकी सेवा करनेके लिए है। यदि मानव शुभ संकल्प करे तो वह नरसे नारायण हो सकता है।

देवा गायन्ति–
अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुंदसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

भा. ५-१९-२१

मनुष्यजन्म सभी पुरुषार्थोंका साधन है, ऐसा कहकर इस भारतवर्षमें जन्मे हुए मनुष्योंकी महिमा देवगण इस प्रकार गाते हैं— अहो इस भारतवर्षके मनुष्योंने कौनसे पुण्य किए होंगे! अथवा क्या श्री हरि उन पर स्वयं प्रसन्न हुए होंगे कि इन्होंने भगवान्की सेवाके योग्य मनुष्यजन्म इस भारतवर्षमें पाया है। यह मनुष्य जन्म श्री हरिकी सेवा करनेके लिए उपयोगी होनेके कारण हम भी इसकी इच्छा करते हैं। इस सौभाग्यके लिए तो हम भी सदा इच्छुक हैं।

इसके बाद आता है भौगोलिक वर्णन। इस खंडमें पृथ्वीके सात खंडोंका वर्णन किया गया है। सप्तद्वीप और सात समुद्रोंका वर्णन है।

भरतखंडके स्वामी हैं देव नारायण। भरतखंड कर्मभूमि है। अन्य खंड भोगभूमि हैं। भरतखंडमें जन्म प्राप्त करनेकी इच्छा तो देवोंको भी होती है। शरीरकी भागवतमें स्तुति भी की गयी है और निंदा भी। इस मानवशरीरसे भगवत्सेवा, मुकुंदसेवा हो सकती है।

इस स्कंधमें ग्रहोंकी स्थितिका भी वर्णन किया गया है।

इसी स्कंधमें सप्त पातालोंका प्रतिपादन किया गया है। इन पातालोंके नीचे हैं शेष नारायण।

राजाने पूछा– नरकलोक कहां है?

शुकदेवजी कहते हैं– राजन्, यह नरकलोक दक्षिण दिशामें है। नरक अनेक प्रकारके हैं। चोर तामिस्र नामक नरकमें जाता है और व्यभिचारी अंधतामिस्र नामक नरकमें। जितने पाप हैं, उतने ही नरक हैं।

कौनसे पापके कारण कौन-से नरकमें जाना पडता है उसका विगतवार वर्णन इस स्कंधमें किया गया है। इस प्रकार हजारों नरक और यमलोक हैं, ऐसा बताकर स्कंध समाप्त किया है।

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
बद्रिनारायण नारायण नारायण
भीमन्नारायण नारायण नारायण

छठा स्कंध

नारायण जिन नाम लिया, तिन औरका नाम लिया न लिया,
अमृत पान किया घट भीतर, गंगाजल भी पिया न पिया।

नरकोंका वर्णन सुनकर राजा परीक्षितने कहा– महाराज, मुझे ऐसा मार्ग बताइए कि जिसपर चलनेसे मुझे इन नरकोंमें जाना ही न पड़े। आपने प्रवृत्तिधर्म, निवृत्तिधर्म आदिकी कथा सुनाई, किंतु इन नरकलोकोंका वर्णन सुनकर मुझे डर लगता है। नरकमें जानेका प्रसंग कभी उपस्थित ही न हो ऐसा कोई उपाय बताइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं– राजन्, शास्त्रमें प्रत्येक पापका प्रायश्चित्त बताया गया है। पापका विधिपूर्वक प्रायश्चित्त किया जाए तो पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रायश्चित्त कर लेनेके पश्चात् फिर कभी पाप नहीं करना चाहिए, अन्यथा प्रायश्चित्त करनेका कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। दुःख सहकर ईश्वरका भजन करनेसे पाप जल जाते हैं।

राजाने पूछा– विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेके बाद भी पाप करनेकी इच्छा बनी रहती है। उसका क्या उपाय है? प्रायश्चित्त करनेसे पापका नाश तो होता है किंतु पाप करनेकी वासना–इच्छाका तो नाश नहीं हो पाता। प्रायश्चित्त करनेसे भी पापवासना नष्ट न हो पाए तो क्या करें? कुछ ऐसा मार्ग बताइए कि पाप करनेकी वासना ही न रहे। प्रायश्चित्तसे पाप तो जल जाता है किंतु पापवासना नष्ट नहीं होती, तो उसके लिए क्या जाए?

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

राजन्, मनका लेशमात्र भी विश्वास मत करो। मन बड़ा विश्वासघाती है। उसे अंकुशमें रखो। मनको कहीं एकाध बार भी छुट्टी मिलेगी तो वह फिरसे पाप करनेको तैयार हो जाएगा। पापवासना अज्ञानसे जागती है और अज्ञानका मूल अहंकार है।

जो व्यक्ति श्रीकृष्ण भगवान्को प्राणार्पण करता है, उसकी पाप करनेकी इच्छा ही नहीं होती। उसका अहंकार नष्ट हो जाता है।

तप (मन तथा इन्द्रियोंकी एकाग्रता), ब्रह्मचर्य, शम (मनका नियम), दम (बाह्य इन्द्रियोंका नियमन), मनकी स्थिरता, दान, सत्य, शौच, यम, नियम आदिसे पापकी वासना नष्ट होती है।

किंतु, हे परीक्षित,

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पुरुषनिषेवया॥

भा० ६-१-१६

भगवान्को आत्मसमर्पण करनेसे और भगवत्-भक्तोंकी सेवा करनेसे पापी जनोंकी जैसी शुद्धि तपश्चर्या आदि द्वारा नहीं हो पाती।

पापी मनुष्य भक्तिसे जैसा पवित्र हो सकता है वैसा शम, दम, तप आदिसे नहीं हो सकती।

राजन्, तुम अपना प्राण भगवान्‌को अर्पित करो। पापकी वासना चली जाएगी। भगवान् नारायणको जो अपना प्राण अर्पित करता है और जो प्रतिश्वास नारायणमंत्रका जप करता है उसको पाप कभी छूता तक नहीं है। जो अपना प्राण श्रीकृष्णको अर्पित करता है उसकी पाप करनेकी इच्छा कभी नहीं होती। प्राणार्पणका अर्थ है प्राण-प्राणसे, श्वास-श्वाससे ईश्वरके नामका जप करना। प्रत्येक कार्यमें ईश्वरसे संबंध बनाए रखो। सतत, प्रतिश्वास भागवत-स्मरण करते रहोगे तो पाप नहीं होगा, पापमें प्रवृत्ति नहीं होगी। गीताजीमें कहा गया है- मामऽनुस्मर युध्य च। प्रथम भगवान्‌का स्मरण करो और फिर सारे सांसारिक कार्य।

जब तक परमात्माका ज्ञान नहीं होता तब तक वासना नष्ट नहीं हो सकती। अज्ञानमेंसे वासनाका जन्म होता है। ईश्वर और जगत्‌के स्वरूपका ज्ञान होने पर ही वासना विनष्ट होती है। ईश्वर आनंदरूप है और संसार दुःखरूप, ऐसा अनुभव होनेके बाद वासना नष्ट होती है।

वासनाका मूल अज्ञान है। अज्ञानके नाश होने पर ज्ञान होता है। ज्ञानसे अज्ञानका नाश होता है। ज्ञानको सतत बनाए रखनेके लिए प्राण कृष्णको अर्पित कर दो। जब तक अज्ञानका नाश नहीं होता, तब तक वासनाका भी नाश नहीं होता और जब तक वासना नष्ट नहीं हो पाती तब तक पापका होना भी नहीं रुकता।

ज्ञानी केवल इन्द्रियोंको ही विषयोंकी ओर जानेसे रोकते हैं। किंतु इससे वासनाका नाश नहीं हो पाता। इन्द्रियको रोकनेसे नहीं किंतु उन्हें प्रभुकी ओर मोड देनेसे ही वासनाका नाश होता है। प्रत्येक इन्द्रियोंको परमात्माकी दिशामें मोड देनेसे वासनाका नाश होगा। मनको पवित्र करना है तो आंखोंको भागवतस्वरूपमें स्थिर करो।

प्रस्तुत स्कंधमें तीन प्रकरण हैं :

(१) ध्यान प्रकरण- चौदह अध्यायोंमें इस प्रकरणका वर्णन किया गया है। चौदह अध्यायोंका अर्थ है- पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन सभीको परमात्माके ध्यानमें रत रखें, तो ध्यान सिद्ध होता है।

(२) अर्चन प्रकरण- दो अध्यायोंमें सूक्ष्म अर्चन और स्थूल अर्चनका वर्णन किया गया है।

(३) नाम प्रकरण- गुण-संकीर्तन और नाम-संकीर्तनका तीन अध्यायोंमें वर्णन है।

परमात्माके मंगलमय नामका जप करो। चाहे ज्ञानमार्गी हो या भक्तिमार्गी, किंतु ईश्वरकी साधना और ध्यान किये विना काम नहीं बन पाता। किसी एकमें मन स्थिर होने पर मनकी शक्ति बढती है। इस प्रकार तीन साधन बताए गये हैं- ध्यान, अर्चन और नाम। इन तीन साधनोंके सहारे पापका नाश होता है और नरकमें जानेसे भी बचा जा सकता है। प्रभुके मंगलमय स्वरूपका ध्यान-जप करनेकी आदत डालो और नियमित सेवा करो। नरकमें जाना न पडे, इसलिए इन साधनोंका उपयोग करो।

प्रतिदिन ठाकुरजीकी सेवा करो। उनके नामका जप करो। उनका ध्यान करो।

ये तीनों साधन तुम्हारे लिए शक्य न हों, तो किसी भी एक साधन पर अटल श्रद्धा रखो।

+

इन्द्रियोंको भक्तिरसमें डुबोये विना वासना नष्ट नहीं होती। भक्तिके सहारे जीव भगवान्के पास जाता है। महारानी यमुना भक्तिका स्वरूप हैं। वह जीवका ईश्वरसे संबंध जोड देती है। भक्ति द्वारा जीवका ब्रह्मसंबंध हो पाता है।

ध्यान, अर्चन और नामस्मरण इन तीन साधनोंसे भक्ति दृढ होती है। परमात्माका ध्यान न किया जाये तब तक मन शुद्ध नहीं होता। व्रतसे द्रव्यशुद्धि होती है किंतु मनकी शुद्धि नहीं होती।

दान करनेसे भगवान्की प्राप्ति नहीं होती। दानका फल है लक्ष्मी। गीताजीमें भी कहा गया है—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न च इज्यया।

वेद, तप, दान और यज्ञसे मेरी (प्रभुकी) प्राप्ति नहीं हो सकती।

परमात्माका ध्यान करनेसे मनकी शुद्धि होती है। अतः प्रतिदिन ध्यान करनेकी आवश्यता है। ध्यानमें एकाग्रता न हो सके, तो नामस्मरणकी आवश्यकता है।

ये तीनों एक साथ न हो सके तो भी कोई बात नहीं, किंतु किसी भी एकको तो पकडना ही होगा। साधनके बिना सिद्धिकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

मनुष्यको चाहिए कि वह अपना जीवनलक्ष्य निश्चित कर ले। एक ही ध्येयके विना· जीवन बिना नाविककी नौकासा है। ध्येय निश्चित करके उसे सिद्ध करनेके लिए साधना करो। इस कलिकालमें और तो कुछ हो नहीं सकता, अतः नामस्मरणका ही आसरा लेना चाहिए। कलिकालमें नामसेवा प्रधान मानी गई है।

कलियुगमें स्वरूपसेवा शीघ्र फलदायी नहीं होती। स्वरूपसेवा है तो उत्तम, किंतु उसमें पवित्रताकी बडी आवश्यकता है। कलियुगमें मानव ऐसा पवित्र नहीं रह सकता। अतः कलियुगमें नामसेवा ही मुख्य कही गई है।

अदृश्य वस्तुका नाम घरे रहनेसे उस नामसे स्वरूप प्रकटेगा। प्रत्यक्ष साक्षात्कार होने तक प्रभुका नामाश्रय लेनेवालेको एक-न-एक दिन प्रभुसे साक्षात्कार अवश्य होगा।

सीताजी ध्यानसे इस प्रकार नामस्मरण करती थीं कि वृक्षोंके पत्तेपत्तेसे रामध्वनि होती थी।

परमात्माके नाममें निष्ठाका होना बडा कठिन है। नामस्मरणके समय जीभ रुक जाती है। पाप जीभको पकडे रहता है। घरमें पग पग पर भगवान्का नाम लो तो पग पग पर यज्ञका पुण्य प्राप्त होगा। यों तो यह दीखता है अतिशय सुलभ, पर है बहुत ही कठिन।

नाममें अटल निष्ठा रखो। परमात्माके नामका सतत जप करनेकी आदत होगी, तो मृत्यु भी उजागर होगी। अन्तकाल तक ब्रह्मनिष्ठा बनाये रखना आसान नहीं है। नामनिष्ठाके सिवा कलिकालमें अपने उद्धारका अन्य कोई उपाय नहीं है।

रामनामसे तो पत्थर भी तैर गये थे। किंतु राम द्वारा डाले गए पत्थर तैरे नहीं थे।

एक बार रामचंद्रजीके मनमें कुतूहल उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा कि मेरे नामसे पत्थर तैरे थे और वानरोंने समुद्र पर सेतु बनाया था। मैं भी तो देखूं कि मेरे स्पर्श होने पर पत्थर तैरते हैं या नहीं। यह सोचकर कोई भी जान न पाए इसतरह वे समुद्रकिनारे पर आए और उन्होंने समुद्रमें पत्थर फेंके। किंतु वे तो सबके सब पानीमें डूब गए। रामचंद्रजीको आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्यों हुआ? मेरा नाम लिखनेसे तो पत्थर तैरे थे।

हनुमानजी यह कौतुक वहीं कहीं छुपकर देख रहे थे। श्रीरामचंद्रको जब निराश होकर लौटते देखा तो हनुमानजीने रास्तेमें रोककर उनका दर्शन किया। रामचंद्रजीने उनसे पूछा–"मेरे नाममात्रसे पत्थर कभी तैर गए थे, किन्तु जब आज स्वयं मैंने पानीमें पत्थर फेंके तो वे डूब गए। आखिर ऐसा क्यों हुआ?"

हनुमानजीने उत्तर दिया–"यह तो स्वाभाविक ही है। जिसे रामचंद्रजी स्वयं फेंक दें, तिरस्कृत करें उसे भला कौन तैरा सकता है? जिसे रामचंद्रजी फेंक दें, जिसका वे त्याग कर दें उसे तो डूबना ही है। उन पत्थरोंका आपने त्याग किया अतः वे डूब गए। जिसे आप अपनाते हैं वे कभी नहीं डूब सकता। जिन पत्थरोंसे समुद्र पर सेतुका निर्माण किया गया था उन पर श्रीराम (आपका नाम) लिखा गया था अतः वे तैर गए। जो शक्ति आपके नाममें है वह आपके हाथोंमें नहीं है।"

रामनाममें जो शक्ति है वह स्वयं राममें भी नहीं है। अपने जीवनमें श्रीरामने कुछ ही लोगोंका उद्धार किया था, किंतु उनके नामने तो आज तक अनेकोंका उद्धार कर दिया।

नामजपकी महिमा अनोखी है। जप करनेसे जन्मकुंडलीके ग्रह भी बदल जाते हैं। हम और क्या कहें, तुलसीदासजीको ही सुनिए:

मंत्र महामनि विषय व्यालके। मेटत कठिन कुअंक भालके॥
भाव कुभाव अनख आलसहु। नाम जपत मंगल दिशि दशहु॥

जप तो जनाबाईने किया था। जनाबाई गोबरके उपले बनाती थीं, पर उन्हें कोई चुरा ले जाता था। जनाबाईने नामदेवसे इस विषयमें फरियाद की। नामदेवने कहा, उपले तो सभीके एकसे ही होते हैं, तो जो तेरे हैं उन्हें कैसे जाना जा सकता है? जनाबाईने कहा कि यह तो बड़ी आसान बात है। उपलेको कानके पास लाने पर यदि उसमेंसे 'विठ्ठल विठ्ठल' ऐसी ध्वनि सुनाई दे तो समझ लेना कि वे मेरे ही हैं। जनाबाई उपले बनानेके समय बड़ी लगनसे विठ्ठलके नामका जप करती थीं। नामदेवने भी उन उपलोंमेंसे विठ्ठलके नामकी ध्वनि सुनी। तो उन्होंने जनाबाईसे कहा– नामदेव मैं नहीं, तुम्हीं हो।

उपले बनाते समय जनाबाई विठ्ठलके नाम-जपमें ऐसी तल्लीन हो जाती थीं, कि उन जड़ उपलोंमेंसे भी 'विठ्ठल-विठ्ठल' की ध्वनि सुनाई देती थी।

जपकी संख्या और फलकी चर्चा इसके आगे की गई है।

दो नियमोंका पालन हमेशा करो– ब्रह्मचर्य और अस्तेय। पांच कोटि जप करनेवालेको ज्ञान प्राप्त होता है। केवल पढ़ते रहनेसे ज्ञानका अनुभव नहीं हो सकता। प्राचीन संतोंके चरित्रमें ऐसा कहीं भी नहीं है कि वे अमुक स्थान पर पढ़ाईके लिए गए थे। भगवद्भक्तिसे

चित्त शुद्ध होने पर उन्हें आंतरिक स्वयं-स्फुरणसे ज्ञान प्राप्त होता था। पंडित शास्त्रोंके पीछे दौडता है, जब कि मीराबाईकी वाणीके पीछे शास्त्र दौडता था।

तेरह कोटि जप करनेसे जीव और ईश्वरका मिलन होता है। कलिकालमें इसके सिवा अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

अधिकारी गुरु द्वारा मंत्र ग्रहण करनेसे मंत्रमें दिव्य शक्ति आरोपित होती है। अजामिल भी नामस्मरणसे ही तर गया था।

वेदान्तके सिद्धांतोंको समझना आसान नहीं है और समझनेके बाद उसका अनुभव करना तो और भी कठिन है। आत्मा केवल द्रष्टा है और दुःख तो मात्र शरीरको ही होता है, ऐसी बातें करना और समझना तो कदाचित् आसान है, किंतु इन सिद्धांतोंका अनुभव करना टेढी खीर है।

नामस्मरण बडा आसान है। भक्ति आसान और सरल है। वह मृत्युको उजागर करती है। जपके बिना जीवन सुधरता नहीं है।

जीवनमें कथा मार्गदर्शिका है। वह मनुष्यको अपने सूक्ष्म दोषोंका भान कराती है। किंतु उसका उद्धार तो नाम-जप और नाम-स्मरणसे ही होता है।

भगवान्‌का नाम ही परमात्माका स्वरूप है। नामके आश्रयसे पापोंका भी विनाश होता है।

सिद्धान्त दृष्टान्तके बिना बुद्धिग्राह्य नहीं हो पाता। अतः इस सिद्धांतको समझानेके लिए अजामिलका दृष्टांत कहा गया है। अजामिल जन्मसे तो अधम था, किन्तु प्रभुके नामका आश्रय ग्रहण करके कृतार्थ हो गया।

हम सब अजामिल ही हैं। यह जीव मायामें फंसा हुआ है। जो मायासे एकरूप हो गया है वही अजामिल है। जहां भी जाओगे, माया साथ-साथ जाएगी। कोयलेकी खानमें उतरें और हाथ स्वच्छ रहें, यह संभव नहीं है। संसारमें मायाके संसर्गमें तो आना ही पडता है। मायाका स्पर्श तो करना ही पडता है किंतु उसका स्पर्श अग्निकी भांति ही करना चाहिए। उसे विवेकरूपी चिमटेसे पकडना चाहिए। वैसे तो अग्निके बिना जीवनव्यवहार चल नहीं पाता, फिर भी उसे कोई हाथमें भी तो नहीं लेता।

माया हमारा पीछा करती है। पर उससे हमें बच निकलना है और ईश्वरके पीछे लगना है। हम ईश्वरका पीछा करेंगे तो माया हमारा पीछा छोड देगी। मायाका स्पर्श करते समय बडा सावधान रहना चाहिए। संसारमें रहते हुए मायाका त्याग करना तो अशक्य है। कनक और कांता ये दोनों मायाके ही दो रूप हैं। प्रयत्न ऐसा करो इन कि दोनोंमें मन न फँसे। चाहे शरीरसे पाप करो या मनसे, दंड तो भोगना ही पडेगा।

कनक और कांता इन दो वस्तुओंमें माया निहित है। इन दोनोंकी ओरसे जिसका मन हट जाता है। उसका मन मायाकी ओरसे भी हट जाता है।

अजामिल शब्दका अर्थ देखिए। अजाका अर्थ है माया और मायामें फँसा हुआ जीव ही अजामिल है।

अजामिल अनेक प्रकारके पाप करके जीवनयापन करता था। यह अजामिल पहले तो मंत्रवेत्ता, सदाचारी और पवित्र व्यक्ति था।

एक दिन वह वनमें गया था। रास्तेमें उसने देखा कि एक शूद्र वेश्याके साथ काम-क्रीडा कर रहा है। वेश्याकी साडी सरक गयी थी, अतः उसका स्वरूप उभरा हुआ दीखता था। इस दृश्यको देखनेसे अजामिल कामवश हो गया और कामांध हो गया। वेश्याके ऐसे लुभावने रूपको देखकर अजामिलका मन भ्रष्ट हो गया।

अजामिलने एक ही बार वेश्याको देखा फिर भी उसका मन भ्रष्ट हो गया। तो प्रति रविवारको फिल्म देखनेवालेके मनका तो क्या होता होगा! कई लोगोंने तो नियम-सा बना लिया है कि प्रति रविवारको फिल्म देखी ही जाए। कई लोग अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी साथ ले जाते हैं। अपना तो बिगडा ही है, अब तुम्हारा भी क्यों न बिगडे।

पाप प्रथम आंख द्वारा ही प्रविष्ट होता है। आंख बिगडी कि मन भी बिगडा और मन बिगडा तो जीवन भी बिगडेगा और नाम भी। रावणकी आंखें दुष्ट थीं अतः उसका नाम भी हमेशाके लिए बिगड गया। जो भी पाप मनमें आते हैं, आंखोंके द्वारा ही आते हैं। आंखें बिगडने पर मन बिगडता ही है।

कामको आंखोंमें आने नहीं दोगे, तो वह मनमें भी नहीं आ सकेगा। मनुष्य शरीरसे नहीं किंतु आंख और मनसे ही अधिक पाप करता है।

वेश्याको देखने मात्रसे अजामिल कूडा बन गया।

प्रयोजनके बिना किसीको भी आंखें मत दो अर्थात् उसे मत देखो। आंखोंमें रामको रखोगे तो वहां काम आ नहीं पाएगा। आंखोंके द्वारा ही सभी पाप प्रविष्ट हो जाते हैं।

कामांध अजामिल वेश्याके घर गया और उसे समझा-बुझा कर अपने घर ले आया। वह पापाचार करने लगा।

एक बार कुछ साधुजन घूमते-फिरते अजामिलके घर आए। वेश्याने देखा कि संत आए हैं तो उसने अन्नदान किया।

वैसे तो वेश्याका अन्न ग्रहण करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है। किंतु साधु जानते ही नहीं थे कि अन्नदाता नारी वेश्या है उन्होंने अन्न पकाया और भोजन भी कर लिया।

साधुजन तो जिससे अन्न ग्रहण करते हैं उसका कल्याण भी करते हैं।

वेश्याके कहने पर अजामिलने साधुओंको वंदन किया। साधुओंने कहा कि तेरे घरसे भोजन तो मिल गया, किंतु दक्षिणा अभी तक बाकी है।

तो अजामिलने कहा– "मेरी यही दक्षिणा है कि मैंने आपको लूटा नहीं है। मैं किसी भी साधुको धन नहीं देता और कुछ मांगोगे तो दूंगा।"

वेश्या सगर्भा थी। साधुओंकी इच्छा थी कि अजामिलका कल्याण हो जाए। तो उन्होंने कहा– "तेरे घर पुत्रका जन्म होने पर तू उसका नाम नारायण रखना।"

अजामिलने साधुओंसे पूछा– "महाराज, मैं अपने पुत्रका नाम नारायण रख दूं तो उससे आपको क्या लाभ होगा?

साधुओंने कहा– "हमारे भगवान्का नाम नारायण है। अतः यह नाम सुनकर हमें आनन्द होगा। और तुझे भगवान्का स्मरण होता रहेगा।"

अजामिलने कहा- " ठीक है, मैं अपने पुत्रका नाम नारायण रख दूंगा।

अजामिलके घर पुत्रका जन्म हुआ और उसका नाम रखा गया नारायण। संततिके प्रति माता-पिताका प्रेम कुछ विशेष होता ही है। अजामिल बार बार नारायणको पुकारता रहता था। नारायणका नाम लेनेकी उसे आदत-सी हो गई।

अतिशय पापी, अतिशय कामी व्यक्ति अपनी पूरी आयु जी नहीं सकता।

अजामिलके अभी बारह वर्ष शेष थे कि उसे लेनेके लिए यमदूत आ धमके। मृत्युकाल समीप आ गया। अपने छोटे-से पुत्र नारायणके प्रति उसकी अतिशय आसक्ति थी, अतः उसे नाम लेकर पुकारने लगा- नारायण, नारायण।

भोजन, द्रव्य, कामसुख, स्थान, संतति और पुस्तकोंमें यह जीव फँसा रहता है। माता-पिताका मन अपनी अंतिम संततिमें विशेष फँसा रहता है।

प्रतिदिनकी आदतके अनुसार अजामिलने नाम ले लेकर नारायणको कई बार पुकारा। उसका नारायण तो नहीं आया, किंतु वहां विष्णुदूत आ पहुंचे। उन्होंने यमदूतोंसे कहा कि अजामिलको वे छोड दें।

यमदूतोंने कहा- अजामिलका चरित्र भ्रष्ट है अतः वह जीनेके लिए अपात्र है।

विष्णुदूतोंने कहा- " यह सच है कि अजामिलने पाप किया है किंतु भगवान्का नाम लेकर इसने अपने पापोंका प्रायश्चित्त भी तो किया है। इस कारण उसके कुछ पाप जल गए हैं अतः इसे अब जीने दो। उसकी आयुके बार वर्ष अब भी शेष हैं। "

यमदूतोंने कहा- " अजामिलने 'नारायण नारायण' तो कहा है, किंतु वैकुंठवासी नारायणको नहीं, अपने पुत्र नारायणको पुकारा है। "

विष्णुदूतोंने कहा- उसके मुंहसे भगवान्का नाम अनजाने ही निकल पडा है। अग्नि पर अनजाने भी पैर पड जाए तो भी जलन तो होती ही है। इसी प्रकार अनजाने भी यदि प्रभुका नाम लिया जाय तो कल्याण ही होता है। भगवान्का नाम अनजाने लेने पर भी उसका फल मिलता ही है। अजामिलने नारायण शब्दसे चाहे अपने पुत्रको ही पुकारा हो, किंतु इस बहाने भी भगवान्के नामका उच्चार तो हो ही गया। "

सांकेत्यं परिहास्यं वा स्तोत्रं हेलनमेव वा।
वैकुंठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाः॥

भा. ६-२-१४,१५

बडे बडे महापुरुष भी जानते हैं कि संकेतसे, परिहाससे, तानके आलापके समय, किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि भगवान्के नामका उच्चार हो जाए, तो उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य गिरते समय, पैरके फिसलने पर, अंगभंग होने पर, तापादिके दाह पर, चोट लगने पर आदि कैसी भी विवशतावश भगवान्‌के नामका " हरि हरि " शब्दका उच्चार करता है, वह नरककी यातनाका पात्र नहीं रह जाता।

गिर जाने पर चाहे कितनी ही हानि हो, पर हाय-हाय मत करो, हरि हरि ही कहो।

चूल्हे पर उबलता हुआ दूध जब छलकने लगता है तो हमारी माताएं हाय-तोबा करने लगती हैं। पर 'हाय-हाय 'करनेसे अब होगा ही क्या ? 'हरि हरि ' बोलो। अनजानेमें भी हरि हरि करने पर यज्ञका फल तो मिलेगा ही। अन्यथा वैसे तो अग्निको आहुति कौन देता है ? 'हाय ' नहीं, ' हरि ' कहो। ऐसा करनेसे अनजाने ही भगवान्‌का स्मरण होगा और जप होगा।

वाल्मीकि रामायणमें लिखा है कि मृतात्माके पीछे 'हाय हाय ' अधिक करनेसे मृतात्माको कष्ट होता है, उसे दुःख होता है। 'हरि हरि ' बोलनेसे उसका फल मृतात्माको मिलता है।

विष्णुदूतोंने अजामिलको यमदूतोंके बंधनसे मुक्त किया और उसका उद्धार हो गया।

अपमृत्यु टल सकती है, पर महामृत्यु नहीं। अल्पायुके शेष होने पर पापके कारण आनेवाली अपमृत्युको सत्कर्मसे टाला जा सकता है।

अजामिलकी अपमृत्यु टल गई।

अजामिल बिछौनेमें सोया हुआ सब कुछ सुन रहा था। सब सुनकर उसे अतिशय पश्चात्ताप हुआ। हृदयसे प्रायश्चित्त करनेके कारण उसके सारे पाप जल गए। उसके बादसे वह सब कुछ छोडकर भगवद्स्मरण करने लगा।

पश्चात्ताप करनेसे तो अतिशय पापीका जीवन भी बदल जाता है। वह सुधरता है और इसी जीवनमें मुक्ति पा लेता है। अतः किसी भी पापीका तिरस्कार मत करो, पापका ही तिरस्कार करो।

हृदयसे पश्चात्ताप करने पर पाप जल जाते हैं। प्रायश्चित्त चित्तकी शुद्धि करता है।

उसके बादसे अजामिल नी-रस भोजन करने लगा।

जिसका भोजन सरस होगा उसका भजन नीरस होगा और जिसका भोजन नीरस होगा उसका भजन सरस होगा।

जीवन धन या कुटुंबके लिए नहीं, श्रीकृष्णके लिए है।

अजामिलकी बुद्धि अब त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे परे होकर भगवान्‌के स्वरूपमें स्थिर हो गई। उसे लेनेके लिए विमान लेकर पार्षद आए। विशिष्ट मान ही विमान है। अजामिल सोचता है कि उसने वैसे तो अनेक पाप किए थे फिर भी सद्गति मिली। नाममें निष्ठा रखनेका ही यह फल था।

अजामिलने 'नारायण नारायण' का जप करके जीभ और जीवन पवित्र बना लिया।

जीभको समझानेसे वह सुधरेगी। श्रीखंड मांगे तो उसे कडुवे नीमका रस दो। वह व्यर्थ का भाषण ही अधिक करती है, निरर्थक बक बक करती रहती है, भगवान्‌का नाम तो

कभी लेती ही नहीं है। जीभको यदि नीमका कड़ुवा रस पिलाओगे तो उस पर रामका नाम बस जाएगा।

भगवान्‌की भक्ति करनेवालोंको इहलोक और परलोक दोनोंमें मान प्राप्त होता है।

भगवान्‌का कीर्तन करनेसे अजामिल भगवद्‌धाममें पहुच गया। भगवान्‌के नामका आसरा लेकर वह तर गया। अजाका अर्थ पहले माया कहा था। पर अब भगवन्नामका सहारा लेने पर अजाका अर्थ हो गया ब्रह्म। आज अजामिल अज-ब्रह्मके साथ मिल कर ब्रह्मरूप हो गया। आज जीव और शिव एक हो गये।

अजामिल शब्दके दो अर्थ है- (१) मायामें फँसा हुआ जीव तथा (२) ब्रह्मरूप हुआ हुआ जीव। मायाका वर्णन तो कई तरहसे किया गया है।

श्रीमद् शंकराचार्यने मायाकी व्याख्या करते हुए कहा है कि कंचन और कामिनीमें फँसे हुए व्यक्तिको मायामें फँसा हुआ जानो।

किमत्र हेयं कनकं च कांता।

इस जगत्‌में कौन-सी वस्तुएं त्याज्य हैं? तो उत्तर देते है कि जीवको अधोगतिकी ओर ले जानेवाला कांचन और.कामिनी। इन दोमें जो फँसा, जान लो कि वह मायामें फँस गया।

मणिरत्नमालाके प्रश्नोत्तर अति उत्तम हैं। उसके एक एक शब्दमें उपदेश भरा पडा है।

बद्धो हि को वा विषयानुरागी का वा विमुक्तिर्विषये विरक्तिः।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति॥

बंधनयुक्त कौन है? जो पांच विषयोंमें आसक्त है। स्वतंत्र कौन है? जो विषयोंकी ओर वैराग्यकी दृष्टि रखनेवाला है। घोर नरक कौन-सा है? स्वदेह ही घोर नरक है। इस देहमें सुंदरता कहां है? यह तो मांस, रक्त आदि दुर्गंधयुक्त पदार्थोंसे भरा हुआ है। स्वर्गके सोपान कौन-से हैं? सभी तृष्णाओंका क्षय ही स्वर्गका सोपान है।

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः॥

दरिद्र कौन है? जिसकी तृष्णा विशाल है। श्रीमंत कौन है? जो सदाके लिए संपूर्ण संतोषी है।

को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव॥

कौन-सा रोग अधिक कष्टदायी है? जन्मधारणका रोग ही अत्यधिक कष्टदायी है। रोगकी औषधि क्या है? परमात्माके स्वरूपका बार बार चिंतन और स्मरण करना ही इस भयरूपी रोगकी औषधि है।

अब अजामिल शब्दका दूसरा अर्थ भी देख लें।

अजका अर्थ है ईश्वर। ईश्वरमें, ब्रह्ममें विलीन हुआ हुआ जीव ही अजामिल है।

साधु होना कठिन तो है किंतु सादगीपूर्ण जीवनसे साधु बना जा सकेगा। साधु होनेकी नहीं, अपितु सरल होनेकी आवश्यकता है।

जिसने रसोंको जीता है, समझो कि उसने जग भी जीत लिया है।

जितं सर्वं जिते रसे ।

लौकिक सुखके प्रयत्न सफल हो जायें तो मानो कि ईश्वरकी कृपा नहीं है। लौकिक सुखकी इच्छा और प्रयत्न असफल रहें तो समझो कि ईश्वरकी कृपा हुई है। इसका कारण यह है कि लौकिक सुखोंमें फंसा व्यक्ति ईश्वर भजन नहीं कर पाता।

अजामिलका जीवन सुधर गया। अन्तमें वह विमानमें बैठ कर वैकुंठधाम गया। अजामिल तो गया और साथ साथ संसारको उपदेश भी देता गया कि अतिशय पापीको भी निराश नहीं होना चाहिए। पापीको ऐसा कभी न सोचना चाहिए कि नामजपके लिए आवश्यक शुद्धि या निर्मलता उसमें नहीं है। अतः रामनाम जपनेसे क्या लाभ होगा? यदि वह ऐसा सोचता है, तो वह यह भूल जाता है कि हर प्रकारकी शुद्धिकी प्राप्तिके लिए रामनामका जाप ही तो एकमात्र उपाय है। अतिपापी होने पर भी प्रभुका आश्रय लेने पर उसका उद्धार हो जाएगा। पापका सच्चा प्रायश्चित्त होने पर पाप जल जाते हैं। भगवान्‌का नामजप पापको भस्मीभूत कर देता है।

श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।

यह महामंत्र है। अर्थके ज्ञान सहित इस मंत्रका जाप करो।

कृष्ण– हे प्रभो! आप सभीके मनको आकर्षित करनेवाले हैं, अतः आप मेरा मन भी आकर्षित कीजिए।

गोविंद– इन्द्रियोंके रक्षणहार भगवन्, आप मेरी इन्द्रियोंको स्वयंमें लीन करें।

हरे– हे दुःखहर्ता, मेरे दुःखोंका भी हरण करें।

(जिसका मन भगवान्‌में लीन हो जाता है, उसके सारे दुःखोंका हरण हो जाता है।)

मुरारे– हे मुर राक्षसके विजेता, मेरे मनमें बसे हुए काम-क्रोधादि राक्षसोंका नाश कीजिए।

हे नाथ– आप नाथ है और मैं आपका सेवक।

नारायण– मैं नर हूं और आप नारायण हैं।

वासुदेव– वसुका अर्थ है प्राण। मेरे प्राणोंकी रक्षा करें। मैंने अपना मन आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया है।

प्राचीनबर्हि राजाके यहां प्रचेता नामक दस पुत्र हुए थे। उनके दक्ष नामक एक पुत्र हुआ। प्रजापति दक्षने हंसगुह्य स्तोत्रसे आदिनारायण भगवान्‌की आराधना की तो उसके यहां हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए। दक्षने उन्हें प्रजा उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। किंतु नारायण सरोवरके जलका स्पर्श करनेके कारण उनकी परमहंसधर्मका आचरण करनेकी इच्छा हुई।

वहां उन्हें नारदजी मिल गए। दक्षके इन दस हजार पुत्रोंसे नारदजीने कूट प्रश्न पूछे। उन प्रश्नोंका इन पुत्रोंने उत्तर सोच निकाला। उनमेंसे कुछ प्रश्नोत्तर हम भी देखें :

×

प्रश्न : ऐसा कौन-सा देश है, जहां केवल एक ही पुरुष है ?

उत्तर : ईश्वररूप पुरुष इस देहरूप देशमें बसता है।

प्रश्न : ऐसी कौन-सी गुफा है जिसमें प्रवेश तो किया जा सकता है किंतु बाहर नहीं आया जा सकता ?

उत्तर : प्रभुके चरण। वहांसे कोई वापस नहीं आ सकता। "यद् गत्वा न निवर्तन्ते।

प्रश्न : वह कौन-सी नदी है जो परस्पर विरुद्ध दिशामें बहती है ?

उत्तर : संसार। संसाररूप नदीमें प्रवृत्ति विषयोंकी ओर खींचकर ले जाती है और निवृत्ति प्रभुके प्रति बहाकर ले जाती है।

प्रश्न : सिर पर जो चक्र मंडरा रहा है वह कौन-सा चक्र है ? क्या है ?

उत्तर : सभी जीवके सिर पर कालचक्र मंडराता रहता है।

नारदजीके कूट प्रश्नोंकी चर्चा-विचारणा करते हुए वे दस हजार पुत्र मोक्षमार्गकी ओर प्रवृत्त हुए। सभीको नारदजीने संन्यासकी दीक्षा दी।

जब दक्षके सभी पुत्र प्रवृत्तिमार्गकी ओरसे भ्रष्ट हो गए तो उन्होंने दस हजार पुत्र और उत्पन्न किए। वे भी नारदजीके उपदेशसे निवृत्ति परायण हो गए। ऐसा होने पर प्रजापति दक्षने क्रोधावेशमें नारदजीको शाप दिया कि तुम कभी भी एक स्थानमें नहीं रह पाओगे, तुम्हें हमेशा भटकते रहना पडेगा।

नारदजीने दक्षके शापको स्वीकार किया और दक्षसे कहा- मैं तुम्हें शापके बदलेमें वरदान देता हूं कि तुम्हारे घर बहुत-सी पुत्रियां उत्पन्न होंगी, अतः संन्यास उन्हें देनेका प्रश्न ही नहीं रहेगा।

नारदजीने दक्षको आशीर्वाद दिया।

जो शापका बदला आशीर्वादसे दे, वही संत है। सहनशीलताका निर्वाह ही साधुता है। सहन करना तो संतोंका धर्म है।

जड-चेतन सभीमें जो ईश्वरभावका अनुभव करता है, उसके मनमें रागद्वेष कभी उत्पन्न नहीं होते।

ब्रह्माने सभी इन्द्रियां बहिर्मुख बनाई हैं। ये इन्द्रियां जब अंतर्मुख हो जाती हैं, तभी आनन्दकी प्राप्ति होती है और तभी जीव और शिवका मिलन भी होता है। जब तक बाह्यद्वार बंद नहीं करोगे, तब तक अंतस्के द्वार खुल नहीं पाएंगे।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं

राजन्! फिर आगे चलकर दक्षके घर साठ कन्याओंका जन्म हुआ। इनमेंसे अदितिके घर बारह संतानें हुईं। इनमेंसे एकका नाम था त्वष्टा। इस प्रजापति त्वष्टाके पुत्र उत्पन्न हुआ विश्वरूप।

एक दिन जब इंद्र सिंहासन पर बैठे हुए थे तो वहां बृहस्पति आए। अपने और सारे देवोंके गुरु बृहस्पतिका आगमन हुआ, फिर भी इन्द्रने आसनसे उठ कर उनका स्वागत नहीं

किया। बृहस्पति मानकी अपेक्षा रखते हैं, धनकी नहीं। ऐसे अपमानके कारण बृहस्पतिने देवोंका त्याग किया और इन्द्रको शाप दिया कि तू दरिद्र होगा।

संपत्तिके मदमें सुधबुध और शान-भान भूला हुआ व्यक्ति दरिद्र होने पर ही सयाना होता है।

दैत्योंने तो इसे शुभ प्रसंग माना और देवोंके साथ युद्ध शुरु कर दिया। उन्होंने स्वर्ग जीत लिया। पराजित देवगण ब्रह्माके पास पहुंचे। ब्रह्माने देवताओंको कडी उलाहना दी, क्योंकि यह पराजय तो उस ऋषिके अपमानका ही फल था। उन्होंने ऋषि-ब्राह्मणोंकी सेवा करनेका आदेश देते हुए कहा- किसी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणको गुरु मानकर उसे बृहस्पतिका आसन दो।

देवोंने पूछा- ऐसा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण कौन है?

ब्रह्माने कहा- प्रजापति त्वष्टाका पुत्र विश्वरूप ब्रह्मनिष्ठ है।

विश्व याने जगत्। विश्व याने विष्णु भगवान्। विश्वके प्रत्येक पदार्थमें जो विष्णुका दर्शन करे, वही विश्वरूप है।

जिस प्रकार सुनारकी दृष्टिमें आकारका नहीं, सुवर्णका महत्त्व ही अधिक है। इसी भांति ज्ञानी पुरुष बाह्याकारको महत्त्व नहीं देते। आकारमेंसे ही विकार उत्पन्न होता है।

विश्वरूप सभी जड-चेतनमें ईश्वरकी झलक देखता था।

शत्रुको भी शत्रुभावसे नहीं, ईश्वरभावसे देखो। सभीके प्रति सद्भाव रखना कठिन है। मार्गमें किसी सौभाग्यवती नारीका दर्शन होने पर तो लक्ष्मीजीकी भावना मनमें उत्पन्न हो जाएगी, किंतु विधवा मिल जाए तो झुंझलाहटसे आंखें फेर लेते हैं। वे यूं नहीं सोचते कि विधवा भी तो गंगाके समान पवित्र है।

विश्वरूप ब्रह्मज्ञानी तो था ही, ब्रह्मनिष्ठ भी था। ब्रह्मद्रष्टा ही ब्रह्मोपदेश कर सकता है। इसी ब्रह्मरूपके सहारे देवोंने दैत्योंका पराभव किया।

दैत्य कौन हैं? काम, क्रोध आदि ही दैत्य हैं।

ब्रह्माके आदेशसे देवगण विश्वरूपके पास गये। उन्होंने देवोंको नारायण-कवच प्रदान किया। इसीके सहारे देवोंको अपना राज्य फिर प्राप्त हो गया, जो उन्होंने बृहस्पतिका अपमान करके गंवाया था। नारायण कवचसे समर्थ होकर इन्द्रने असुरोंकी सेनाको पराजित कर दिया।

योद्धा संग्राममें जाते हुए लोहेका कवच (बख्तर) धारण करता है। इसी प्रकार नारायण-कवच मंत्रात्मक बख्तर है।

इस मंत्रका जप करनेवालेको चाहिए कि वह पहले अंग न्यास करे, कर न्यास करे। शरीरके प्रत्येक अंगोंका न्यास करके इस मंत्रका जप करना है, जो नारायण-कवच कहलाता है—

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायाबटुवामनोऽवतु त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः॥

जलके अंदर रहनेवाले जलचर जंतुओंसे और वरुणके पाशसे मत्स्यमूर्ति भगवान् मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारी रूप धारण करनेवाले वामन प्रभु भूमि पर भी मेरी रक्षा करें। आकाशमें विश्वरूप त्रिविक्रम प्रभु मेरी रक्षा करें।

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥

यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारणसे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्री हरि सदा सर्वत्र सर्व स्वरूपोंने हमारी रक्षा करें ।

नारायण-कवचका यह अंतिम श्लोक महत्त्वपूर्ण है, याद रखने योग्य है । डर लगने पर, मनोद्वेगके समय इसका पाठ करो । मेरे एक ही भगवान् अनेक स्वरूप धारण करके क्रीडा कर रहे हैं ।

स्वप्नमें एकमेंसे अनेककी उत्पत्ति होती है । स्वप्नका साक्षी कल्पित होता है । जागृतावस्थामें जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब एकमेंसे ही निष्पन्न हुआ है । जब तुम ऐसा मानोगे कि यह सारा जगत् ईश्वररूप है तभी तुम निर्भय हो सकोगे ।

नारायण-कवचका आश्रय लेकर देवोंने दैत्योंका नाश किया और स्वर्गका राज्य फिरसे प्राप्त कर लिया ।

विश्वरूपका मातृगृह दैत्यकुलमें था । वे सभीमें ब्रह्मनिष्ठा रखते थे । राक्षसमें भी वे ईश्वरके स्वरूपका साक्षात्कार करते थे । उनका अभेदभाव सिद्ध हो गया था । अतः वे यज्ञमें दैत्योंको भी आहुति देते थे ।

सभीमें "मैं" है । इस "मैं" को व्यापक बनाओ । "मैं" को संकुचित करोगे तो दुःखी होंगे ।

विश्वरूपकी ब्रह्मनिष्ठा इतनी तो सिद्ध हुई थी कि वे राक्षसमें भी परब्रह्मका दर्शन कर लेते थे ।

उनका मातृगृह असुरकुलमें होनेके कारण विश्वरूप चोरी छिपे असुरोंको यज्ञभाग देते थे । इन्द्रको यह बात उचित न लगी । इससे इन्द्रादि देवोंकी ब्रह्मभावना सिद्ध न हुई । दैत्योंको यज्ञभाग देनेके लिए मना करने पर भी गुरु मानते नहीं थे, अतः उन्होंने (इन्द्रने) विश्वरूपका मस्तक काट दिया । यह समाचार सुनकर प्रजापति त्वष्टाको बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने संकल्प किया कि मैं ऐसा यज्ञ करूंगा कि जिससे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र प्राप्त हो ।

सकाम कर्मोंमे थोडी-सी भी क्षति होने पर भी विपरीत फल मिलता है । परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छासे कर्म करो । कोई भी काम करते हुए ऐसी इच्छा मत करो कि जगत् मेरी प्रशंसा करेगा । जगत्ने तो श्री रामचंद्रजीकी भी निंदा की थी । लोक-कल्याणके हेतुसे ही प्रभु रामने मानव शरीर धारण किया था, कई प्रकारके दुःख सहन किये थे, फिर भी जनताने उनकी कदर न की ।

तुम ऐसा ही निश्चय करो कि मेरे भगवान्‌को जो कुछ भाता है वही मुझे करना है । सकाम कर्ममें हुई थोडी-सी भी क्षति अनर्थकारी होती है । निष्काम कर्ममें क्षति क्षम्य है, पर सकाम कर्ममें थोडी-सी भी क्षति अक्षम्य होती है ।

यज्ञमंत्रमें कुछ ऐसी क्षति हो गयी कि इन्द्रकी हत्या करनेवाले पुत्रके बदले, इन्द्रके हाथोंसे ही मारा जानेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ । मंत्र था ।

इन्द्रशत्रो विवर्धस्व, इन्द्रशत्रो विवर्धस्व ।

इस मंत्रको बोलते समय ऋत्विजोंने "इन्द्र" शब्दको उदात्त कर दिया और "शत्रो" शब्दको अनुदात्त कर दिया। ऐसा होनेसे शब्दार्थमें परिवर्तन हो गया। और परिणामतः इंद्रघातक पुत्रकी अपेक्षा इंद्र द्वारा मरनेवाला पुत्र उत्पन्न हो गया।

यही कारण है कि वेदमंत्रका अधिकार सभीको दिया नहीं गया है। मंत्रोच्चारण या मंत्रपाठमें क्षति होने पर अनर्थ हो जाता है। केवल सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मण ही वेदका शुद्ध पाठ कर सकता है।

भागवतमें कर्मकी निंदा की गई है। भागवतशास्त्रमें केवल भक्तिकी ही महिमा हो और कर्मको गौण माना गया हो, ऐसी बात नहीं है। हां, सकाम कर्मको गौण माना गया है। कर्म करते समय एक ही हेतु होना चाहिए। वह यह कि ठाकुरजीको प्रसन्न करना है।

यज्ञकुंडमेंसे वृत्रासुर उत्पन्न हुआ। वह देवोंको सताने लगा। देवोंके सभी अस्त्र-शस्त्र उसके सामने प्रभावहीन सिद्ध हुए। घबराहटके मारे देव परमात्माकी शरणमें गए और परमात्मासे प्रार्थना करने लगे।

परमात्माने देवोंसे कहा- यदि दधीचिऋषिकी अस्थियोंसे वज्र बना सको तो उस वज्रसे वृत्रासुर मारा जा सकेगा।

साथ साथ भगवान्‌ने देवोंको उलाहना भी दी कि मुझे प्रसन्न करके भक्ति जैसा श्रेष्ठ वरदान मांगनेके बजाय तुमने एक तुच्छ वस्तुकी मांग की।

प्रभुने अपना दिव्य तेज वज्रमें निहित किया।

वृत्रासुरको मारनेके लिए इन्द्र वज्र लेकर युद्ध करने गया।

त्रासदायक वृत्ति ही वृत्रासुर है। वृत्ति अंतर्मुख हो जाए तभी जीवका ईश्वरसे मिलन हो सकता है। किसी भी अवस्थामें ईश्वरसे विभक्त मत होओ। वृत्तिकी बहिर्मुखता दुःखद है, त्रासदायक है। यह तो देवोंको भी त्रास देती है।

मनको स्थिर रखना है तो आंखोंको भी एक ही स्थानमें स्थिर करो। वृत्तिके बहिर्मुख होने पर कथामें या मंदिरमें दर्शन करनेमें आनन्द नहीं मिल पाता। बहिर्मुखवृत्तिको ज्ञानरूपी वज्रसे नष्ट कर दो।

ज्ञानप्रधान बल है। इसके सहारे विषयवृत्तियोंको, आवरण-वृत्तियोंको (वृत्रासुरको) मारो, तभी इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवोंको शांति मिलेगी।

भागवतमें पहले चरित्र कहा जाता है और उपसंहारमें सिद्धांत कहा जाता है।

ब्रह्मनिष्ठा ऐसी अटल होनी चाहिए कि अन्य विषयोंमें रमनेका मन ही न हो सके। मनुष्य विषयोंमें आनन्द खोजता है, इसीलिए वह मिलता नहीं है। प्रभुके भजनमें वज्र-सी अटल निष्ठा रखो।

दधीचि ब्रह्मनिष्ठ थे, अतः उनकी अस्थियोंमें भी दिव्यता थी।

एक करोड जप करने पर मालामें दिव्यता आती है, चेतनता आती है। शास्त्रोंने कहा है- मंत्र, मूर्ति और मालाको कभी मत बदलो। प्रत्येक मंत्रमें दिव्य शक्ति है। जो भी मंत्र प्राप्त हुआ हो, उसमें दृढ निष्ठा रख कर जप करो। मूर्ति भी कभी मत बदलो।

जिस स्वरूपमें रुचि हो उसमें पूर्णतः निष्ठा रखो। उसीमेंसे प्रभु प्रकटेंगे।

वज्र धारण करके इन्द्र वृत्रासुरसे युद्ध करने गया। दोनोंमें भयंकर युद्ध हुआ।

वृत्रासुर पुष्टि भक्त अर्थात् अनुग्रह है। इन्द्रके हाथमें वज्र है जिसमें नारायण हैं किंतु इन्द्रको नहीं दिखाई देते। वृत्रासुरको दिखाई देते हैं, क्योंकि वह पुष्टि भक्त है। वह इन्द्रसे कहता है- इन्द्र, तुम मुझ पर वज्रका प्रहार शीघ्र करो। चाहे तुम्हारी जीत हो, किंतु तुम्हारी अपेक्षा मुझ पर ही भगवान्‌की कृपा अधिक है।

लौकिक सुखोंकी प्राप्तिका प्रयत्न सफल न हो पाए तो मान लो कि ठाकुरजीने कृपा की है, परमेश्वर जिस किसी जीव पर अधिक कृपा करते हैं, उसे लौकिक सुख अधिक नहीं देते। लौकिक सुख मिलने पर जीव ईश्वरसे विमुख हो जाता है।

श्रीकृष्णका नामस्मरण लौकिक सुखोंकी प्राप्तिके लिए कभी मत करो। लौकिक सुखमें विघ्न उपस्थित होने पर समझ लो कि मुझे प्रभु अलौकिक सुख देने जा रहे हैं। जिस जीव पर प्रभुकी कृपा विशेष होती है, उसका लौकिक सुखप्राप्तिका प्रयत्न भगवान् सफल नहीं होने देते। जिस जीव पर वे साधारण कृपा करते हैं उसे लौकिक सुख देते हैं।

वृत्रासुरने इन्द्रसे कहा- इन्द्र, जीत तो तुम्हारी ही होनी है और स्वर्गका राज्य भी तुम्हें ही मिलेगा। किंतु मैं तो अपने ठाकुरजीके उस धाममें जाऊंगा, जहांसे मेरा पतन कभी न होगा। तुम्हारा स्वर्गसे पतन हो सकता है, किन्तु मेरा नहीं। भले ही मुझे लौकिक सुख न मिल सके, किंतु मै तो प्रभुके धाममें जाऊंगा।

वृत्रासुर श्री हरिकी स्तुति करने लगा। इस स्तुतिकी वैष्णवग्रंथोंने बडी प्रशंसा की है। इस स्तुतिके तीसरे श्लोकको कई महात्माओंने अपना प्रिय श्लोक माना है।

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमत्वरसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जसं त्वा विरहय्य कांक्षे ॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं यथा हि व्युषितं विषण्णा मनोऽरविंदाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्मायया‍ऽत्मात्मजदारगेहेष्वसक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥

भा. ६-११-२४ से २७

प्रभो! आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि जिससे आपके चरणकमलोंके सेवकोंकी अनन्य भावसे सेवा करनेके अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो सकें। प्राणवल्लभ, मेरा मन आपके मंगलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी आपका गुणगान करती रहे, मेरा शरीर आपकी सेवामें संलग्न रहे।

हे भगवन्! आपको छोड कर तो मुझे स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमंडल, रसातल, योगसिद्धि और यहां तक कि मोक्षकी भी इच्छा नहीं है। (आपकी अनुपस्थितिमें इन सबको मैं क्या करूं? आपको छोडकर मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।)

हे कमलनयन ! आपके दर्शनके लिए मेरा मन उसी प्रकार व्याकुल है कि जिस प्रकार पंखके विना पंखीके बच्चे अपनी माताकी राह तकते हैं, या भूखे बछडे दूध पीनेके लिए अपनी गौमाताकी प्रतीक्षा करते है, या विरहिणी पत्नी अपने परदेशवासी पतिसे मिलनेके लिए उत्कंठित रहती है। (प्रभुसे मिलनेकी आतुरता कितनी उत्कट होनी चाहिए, यह इन दृष्टांतोंके द्वारा बताया गया है।

प्रभो ! मुझे मुक्तिकी इच्छा नहीं है। अपने कर्मोंके फलस्वरूप मुझे जन्म–मृत्युके चक्रमें वार वार फंसना पडे, तो उसकी भी मुझे परवाह नहीं है। किंतु मै जहां जहां जाऊ, जिस किसी भी योनिमें जन्मूं, वहां मुझे भगवान्‌के प्रिय भक्तजनोंकी मैत्री मिलती रहे। भगवन्, मैं मात्र इतना ही चाहता हूं कि आपकी मायाके कारण शरीर, घर, स्त्रीपुत्रादिमें आसक्त मनुष्योंसे कहीं भी, किसी भी प्रकारका मेरा संबंध न होने पाए।

दीन होकर शरणमें जाने पर उस जीवको प्रभु अपनाते है। वृत्रासुर कितना दीन था ! वह कहता है कि मैं भगवान्‌की सेवा करनेके लिए तो अपात्र हूं, अतः भगवानके दासोंके दासकी सेवा करूंगा। मैं भगवान्‌के सेवक वैष्णवोंकी सेवा करूंगा। मैंने सभी इन्द्रियोंको भक्तिरसका दान किया। मेरी वाणी कृष्णकीर्तन करे। मेरे कान आपकी कथा सुनें।

वैराग्यके विना भक्ति दृढ नहीं हो पाती। भक्ति भोगके लिए मत करो। भक्ति तो भगवान्‌के लिए ही की जाती है। दूसरा श्लोक वैराग्यका है। वृत्रासुर भक्ति द्वारा इन्द्रका राज्य या मोक्ष पानेकी अभिलाषा नहीं करता।

भगवान्‌ने वृत्रासुरसे पूछा– कि वैष्णवोंकी सेवा करके तुझे कुछ मांगना है क्या ? तो उसने उत्तर दिया कि मुझे स्वर्ग तो क्या, ब्रह्मलोकके राज्यकी भी इच्छा नहीं है।

भोग भक्तिमें बाधक है।

आजकल तो शिक्षा ही ऐसी दी जा रही है कि जिससे विषयवासना बढती ही जा रही है। और विषयवासना बढनेके कारण जीवनभी विगडता जा रहा है।

वृत्रासुर कहता है कि मेरी तो कोई इच्छा नहीं है। मैं तो आपके लिए सेवा करना चाहता हूं। मैं आपके ही उपयोगमें आना चाहता हूं।

पहले श्लोकमें वृत्रासुरकी शरणागति है और दूसरे श्लोकसे उसका वैराग्य प्रकट होता है।

ज्ञानी शरणागतिके तीन भेद मानते है। नाथ, मैं आपका हूं। परमात्मा द्वारा अपनाए जाने पर जीव मानता है कि ठाकुरजी मेरे हैं। भगवान् मेरे हैं ऐसे भावके उदय होने पर अनुभव होता है कि जगत्‌में अब और कुछ भी नहीं है।

ज्ञान और वैराग्यके बढने पर सब कुछ भगवान्‌मय ही लगता है। 'मेरापन' चला जाता है। "अहम् ब्रह्मास्मि" की प्रतीति होने लगती है। जगत्‌में उसके लिए भगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं रह जाता। "मैं" नहीं रह पाता, वह "मैं" ईश्वरमें विलीन हो जाता है, वैराग्यके विना शरणागति दृढ नहीं हो सकती।

तीसरे श्लोकमें प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! आप अपने दर्शनके हेतु मुझे आतुर वनाए। परमात्मा पूर्ण प्रेम मांगते हैं, पर जीव उन्हें पूर्ण प्रेम नहीं देता अतः उनको वह भाता

नहीं है। जीव अपना प्रेम देता है स्त्री–पुत्रादिको। अतः वृत्रासुर कहता है कि मेरी तो एक ही इच्छा है कि आपके दर्शनोंके लिए मैं आतुर वनूं।

चौथे श्लोकमें वृत्रासुरने सत्सगकी अभिलाषा व्यक्त की है। वह कहता है कि यदि पुनर्जन्म मिलना ही है तो हे प्रभो! आप मुझे वैष्णवके घरकी गाय ही वनाएं। यदि मेरा दूध प्रभुके उपयोगमें आनेवाला हो तो मैं पशु भी वननेके लिए तैयार हू। पशु शरीरमें भी मुझे सत्सग ही मिले।

वृत्रासुरने तो ऐसी स्तुति की कि इन्द्रासन भी डोलने लगा।

भक्ति भगवान्को परतंत्र वना देती है। अर्थात् भक्ति भगवान्को भक्तके वशमें कर देती है। अतः भगवान् मुक्ति तो देते हैं, भक्ति नहीं। भगवान् जव कृपा करते हैं तव वे अन्तमें नष्ट होनेवाली सपत्ति नहीं, भक्ति ही देते हैं। भगवान् मुक्ति तो शीघ्र दे भी देते हैं, भक्ति नहीं। क्योंकि यदि भगवान् भक्ति दे दें, तो उन्हें भक्तका सेवक भी वनना पड जाता है। भक्ति स्वतंत्र परमात्माको प्रेमके वंधनसे बांध देती है।

स्तुतिके समाप्त होने पर इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया। वृत्रासुरके शरीरमेंसे निकला हुआ तेज भगवत्–शरीरमें विलीन हो गया। भगवान्ने वृत्रासुरका उद्धार किया।

छठे स्कंधमें पुष्टि लीलाका वर्णन है। भगवान्ने वृत्रासुरको पुष्टि भक्ति प्रदान की, अर्थात् उस पर कृपा की।

परीक्षितने पूछा– ऐसे महान् भक्त होने पर भी वृत्रासुरको राक्षसयोनिमें क्यों जन्म लेना पडा? उसे ऐसी तीव्र हरिभक्ति कैसे प्राप्त हुई? उसका पूर्ववृत्तांत क्या है?

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्! सुनो। वृत्रासुर अपने पूर्वजन्ममें चित्रकेतु नामका राजा था। उसकी रानीका नाम था कृतद्युति। उसके कोई संतान नहीं थी।

यहां शब्दार्थ नहीं, लक्ष्यार्थसे काम लेना चाहिए। जो चित्र–विचित्र कल्पनायें किया करता है, वही चित्रकेतु है। बुद्धि ही कृतद्युति है। मन अनेक विषयोंका विचार करता है उसी विषयाकार स्थितिमें चित्रकेतुका जन्म होता है।

मनमें जमे हुए वाहरके चित्र ही भजनमें विघ्नकर्ता हो जाते हैं।

एक वार राजा चित्रकेतुके घर अंगिराऋषि पधारे। राजाने उनसे पुत्र मांगा। अगिरा-ऋषिने राजासे कहा– पुत्रके मातापिताको भी तो शांति कहां है? तेरी कोई संतान नहीं है, यही अच्छा है।

राजाके मनमें ससारके कई चित्र जम गए थे, अतः उसने दुराग्रह किया। ऋषिकी कृपासे उसके घर पुत्रका जन्म हुआ। राजाकी और भी पत्नियां थीं। ईर्ष्यावश किसी विमाता-ने उस वालकको विष दे दिया, अतः उसकी मृत्यु हो गई। यह देखकर चित्रकेतु और कृतद्युति रोने लगे।

ऐसे शोकके समय वहां अंगिराऋषिके साथ नारदजी आए। पुत्रकी मृत्यु पर राजा–रानीको विलाप करते देखकर नारदजीने उन्हें उपदेश दिया कि अव पुत्रके लिए रोना व्यर्थ है। अव तुम अपने लिए आंसू वहाओ। वह पुत्र जहां गया है वहांसे वापस नहीं आएगा।

पुत्र चार प्रकारके बताये गए हैं।

(१) शत्रुपुत्र– पूर्वजन्मका कोई वैरी ही सतानेके लिए पुत्ररूपसे आता है।

(२) ऋणानुबंधी– पूर्वजन्मका ऋणदाता अपना बकाया वसूल करनेके लिए पुत्ररूपमें आता है।

(३) उदासीन पुत्र– जब तक यह अविवाहित होता है तब तक वह मातापिताके साथ रहता है। मातापितासे न तो वह कुछ लेता है और न उन्हें कुछ देता ही है। ऐसा पुत्र विवाहित होने पर मातापितासे पृथक् हो जाता है। मातापिताकी यह इच्छा रहती है कि पुत्रका विवाह होने पर उसके चार हाथ होंगे और वह उनकी सेवा करेगा। पर यह सोचते समय वह यह भूल जाता है कि चार हाथ होनेके साथ साथ चार पग भी तो हो जाते हैं। विवाहके बाद मनुष्य अधिकतर पशुवत् जीवन ही जीता है।

(४) सेवक पुत्र– पूर्वजन्ममें किसीने सेवा पायी होगी, अतः वह इस जन्ममें सेवा करनेके हेतु पुत्ररूपसे आकर सेवा करता है।

हम किसीकी सेवा न करें पर दूसरे लोग हमारी सेवा अवश्य करें ऐसी आशा करना निरर्थक है।

स्कंद पुराणमें पुंडलिकका चरित्र है। पुत्रको मातापिताकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिए इसका यह उत्तम दृष्टांत है।

पुंडलिकके दर्शन करनेके लिए भगवान् स्वयं पधारे थे। वह भगवान्‌के दर्शन करने नहीं गया था।

पुंडलिक मातापिताकी हमेशा सेवा करता था। वह मातापिताको ही सर्वस्व मानता था। मातापिताकी ऐसी सेवासे भगवान्‌ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये। जब भगवान् द्वार पर आए, तब पुंडलिक तो मातापिताकी सेवामें लीन था। वह तो बेचारा गरीब था। उसकी एक छोटी–सी कुटिया थी। अंदर बैठनेके लिए स्थान तक न था। भगवान् बाहर ही खडे खडे पुंडलिककी प्रतीक्षा करने लगे।

मातापिताकी सेवामें व्यस्त पुंडलिकने भगवान्‌से कहा– मातापिताकी सेवाके फल-स्वरूप आप मुझे मिले हैं अतः मुझे उनकी सेवा प्रथम करनी है। और उसने एक ईंट फेंकते हुए भगवान्‌से कहा– मैं जब तक मातापिताकी सेवा पूरी न कर लूं तब तक आप इसी पर खडे रहिए।

भगवान् साक्षात् प्रकट हुए फिर भी पुंडलिकने मातापिताकी सेवाका कार्य अधूरा न छोडा। भगवान् ईंट पर खडे रहे। ईंटसे वीट बना और उनका नाम पड गया विठोबा।

खडे खडे भगवान् जब थक गए तो उन्होंने एक हाथ अपनी कटि पर रख लिया। आज भी पंढरपुरमें वे वैसी ही मुद्रामें खडे हुए हैं। पुंडलिकने उन्हें जिस तरह खडे रहनेको कहा था वैसे ही वे आज भी खडे हुए हैं।

कटि पर हाथ रखकर वे बताते हैं कि मेरे पास आनेवालेके लिए, मेरा आसरा लेनेवालेके लिए संसार मात्र इतना (कटि तककी ऊंचाई जितना) गहरा है।

भगवान् पांडुरंगकी स्तुतिका स्तोत्र श्रीमद् शंकराचार्यने इस प्रकार रचा है।

*

भवाब्धेः प्रमाणं इदं मामकानाम् ।
नितंबं कराभ्यां धृतो येन यत्नात् ॥
समागत्य तिष्ठन्तं आनन्दकन्दम् ।
परब्रह्म लिङ्गं भजे पांडुरंगम् ॥

भवाब्धेः प्रमाणं इदम् । किंतु किसके लिए ? जो भगवान्‌का बन जाए उसके लिए ।

नारदजी राजा चित्रकेतुसे कहते हैं– राजन्, तुम्हारा शत्रु ही पुत्र बनकर जन्मा था । अच्छा हुआ कि वह मर गया । तुम्हें तो आनंद मनाना चाहिए ।

घर, धन, पत्नी, विविध ऐश्वर्य, शब्दादि विषय, राज्यसमृद्धि, सेवक, मित्रजन, रिश्तेदार आदि सभी शोक, मोह, भय और दुःखके दाता हैं । ये सभी नाशवान् हैं ।

जीवके तो हजारों जन्म हो गए, हो रहे हैं और होंगे । इनमें कौन किसका सगा और कौन किसका संबंधी है ?

जिस प्रकार जलप्रवाहमें बालूके कण कभी इकट्ठे होते है और कभी बिखर जाते हैं, उसी प्रकार समयके प्रवाहमें–ससारमें प्राणी इकट्ठे होते हैं और बिछडते जाते हैं ।

जब उस मृत राजकुमारकी जीवात्माको लाया गया तो वह किसीको भी पहचानता नहीं था । उसने कहा कि– मेरे तो हजारों जन्म हो गए हैं, मै उनमेंसे कौन–कौनसे [illegible] जन्मके माता–पिताको याद रखू और ऐसा कहकर वह जीवात्मा चली गई ।

नारदने कहा– राजन्, तुम जिसके लिए रो रहे हो, वह तो तुम्हारी ओर दृष्टि भी फेरनेको तैयार नहीं है । फिर भी तुम शोक कर रहे हो !

नारदजीने चित्रकेतुको दिव्यज्ञान दिया और तत्त्वोपदेश दिया तथा संक[illegible] मंत्रका भी उपदेश दिया ।

इसके पश्चात् चित्रकेतु राजाने तपश्चर्या की और भगवान्‌के नामका जप कि[illegible]या । अतः उसे भगवान्‌के दर्शन हुए । उसके सारे पापोंका क्षय हो गया । वह महाज्ञानी और मह[illegible]सिद्ध हो गया और भगवान्‌ने उसे पार्षद बना लिया ।

एक दिन चित्रकेतु आकाशमें विहार कर रहा था । वह घूमता–फिरता कैलासधाम आया । वहां उसने देखा कि पार्वतीजी शिवजीकी गोदमें बैठी हुई हैं । यह देखकर उसके मनमें कुभाव जागा ।

विषयवासनामेंसे चित्रकेतुका जन्म होता है । प्रत्येक स्त्री–पुरुषको नर–नारायणके रूपमें देखने पर वासना उत्पन्न नहीं होगी ।

चित्रकेतुने सांसारिक भावसे शिव–पार्वतीको देखा ।

इस चरित्रसे स्पष्ट होता है कि बिना ज्ञानकी भक्ति व्यर्थ है । मात्र सगुणके साक्षात्कार-से मन शुद्ध नहीं होता । साक्षात्कारसे मनकी चंचलता नष्ट नहीं हो पाती । सगुण और निर्गुण भक्तिके होने पर ही जीव शिव बन सकता है ।

चित्रकेतु शिव–पार्वतीको लौकिक दृष्टिवश कामभावसे देखने लगा ।

शिव–पार्वतीके इस प्रकार बैठनेका एक कारण था। एक वार कामदेवने फिर शिवसे युद्ध करना चाहा। शिवजीने कहा कि मैंने एक वार तो तुझे जला दिया है। तो कामदेवने कहा कि समाधिमें बैठ कर जलाना कोई बडी वात नहीं है। समाधिकी अवस्थामें तो कोई भी जीव मुझे जला सकता है। मेरे मनमें एक छोटी–सी आकांक्षा अभी शेष है। आप पार्वतीजीको आलिंगनबद्ध कीजिए, मैं उसी समय अपना वाण चलाऊं। यदि आप उस समय भी निर्विकार रह पाए तो मैं मान जाऊंगा कि आप महादेव हैं। शिवजी तैयार हो गए। पार्वतीको आलिंगन बद्ध करके वे अर्धनारीश्वर, नटेश्वर बन गए। कामने उन्हें विचलित करनेकी पूरी पूरी कोशिश की, किंतु उसे सफलता न मिली। शंकर निर्विकार ही रहे। कामदेवने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और शिवजीकी शरणमें आ गया।

चित्रकेतु इन सारी वातोंसे अनजान था, अतः वह शिवजीकी निंदा करते हुए बोला– कि भरी सभामें ये अपनी पत्नीको आलिंगनमें लेकर, गोदमें विठाकर वैठे हैं। इन्हें कोई लाज भी नहीं आती है क्या?

शिव–पार्वती तो निर्विकारी थे। किंतु उन्हें देखनेवालेकी आंखोंमें विकार था। किसीको लौकिक भावसे देखोगे तो मनमें विकार उत्पन्न होगा और विकृत चित्र मनमें उभरेंगे।

इसप्रकार लौकिक भावसे देखनेके कारण चित्रकेतुका पतन हुआ।

उसकी निंदासे शिवजीको तो कुछ बुरा न लगा। जिसके सिर पर गंगा–ज्ञानगंगा हो, उसे निंदारस प्रभावित नहीं कर सकता। किंतु पार्वतीके लिए यह वात असह्य थी। उन्होंने चित्रकेतुको शाप दिया– उद्धत, तेरा अव असुरयोनिमें जन्म होगा।

चित्रकेतु पार्वती मातासे क्षमा–याचना करने लगा। तो देवीने कहा– दूसरे जन्ममें तुझे अनन्य भक्ति प्राप्त होगी और तेरा उद्धार होगा।

पार्वतीके शापके कारण चित्रकेतुका वृत्रासुरके रूपमें जन्म हुआ।

मन–चित्रकेतु यदि शुभ कल्पना करे (कि जिस प्रकार चित्रकेतुने वृत्रासुर–रूपमें की थी) तो अंतमें सुखी हो सकता है और दुष्ट कल्पना करने पर दुःखी होता है।

नारदजी और अंगिरा जैसे संतोंके समागमसे मन–बुद्धि ऊर्ध्वगामी बनते हैं।

मनमें विषयोंके चित्र न उभरें और सात्त्विकभाव जागें इसके लिए लक्ष्मीनारायणका सतत पूजन करो। विष्णु सत्त्वगुणके अधिपति देव हैं। उनकी सेवा करनेसे मनमें सात्त्विक-भावकी जागृति होती है।

विषयोंके चित्र अंदर होते हैं। आँख मूंद कर वैठोगे तो वे वाहर आएंगे। इन चित्रोंको मिटानेके लिए लक्ष्मीनारायणकी सेवा करना आवश्यक है।

दितिके दोनों पुत्रोंकी मृत्यु हो गई। दितिने इन्द्रको मारनेके लिए व्रत किया। कश्यप ऋषिने इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न हो सके इस हेतु दितिको एक वर्षका व्रत वताया। उस व्रतका नाम था पुंसवन व्रत।

चंचल मनको ईश्वरमें स्थिर करनेका साधन ही व्रत है। व्रतसे मनकी चंचलता घटती जाती है और ईश्वरमें स्थिरता वढती जाती है। मनको ईश्वरमें लगाए रखनेका साधन ही व्रत है।

दितिने व्रत तो किया किंतु व्रतके नियमोंका बराबर पालन न करनेके कारण व्रतभंग हुआ। परिणामतः मरुत्‌गणोंकी उत्पत्ति हुई।

भेदबुद्धि ही दिति है। चंचल मनोवृत्तिको एक ही स्थान पर स्थिर करके, एकको अनेकमें निहारा जाए तभी व्रत सफल होता है।

भेदभावके कारण दितिके व्रतका भग हो गया। अब दितिने इन्द्रसे कहा– ये मेरी संतानें हैं, किंतु उनकी गणना देवोंमें होगी। अब दितिके मनमें इन्द्रके लिए कुभाव नहीं रहा।

इन मरुत्‌गणोंकी उत्पत्तिका वर्णन करके स्कंधकी कथा समाप्त की गई है।

श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे
श्री नाथ नारायण वासुदेव ॥

सातवां स्कन्ध

श्रीराम श्रीराम श्रीराम

छठे स्कंधमें पुष्टि-अनुग्रहकी कथा कही गई थी। भगवदनुग्रहके पश्चात् विकार-वासनाको नष्ट करके, अनुग्रहका यदि सदुपयोग किया जाए तो तभी वह पुष्ट हो पाता है। सेवा-स्मरणमें तन्मय बनकर ही जीव पुष्ट हो सकता है। ठाकुरजी कई जीवों पर अनुग्रह करते हैं किंतु उस अनुग्रहके सदुपयोग करनेकी रीति जीव जानता ही नहीं है। परिणामतः जीव पुष्ट तो बन नहीं पाता, अपितु दुष्ट बन जाता है।

अब हम हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी कथा सुनें। हिरण्यकशिपु दैत्य बना और प्रह्लाद देव। हिरण्यकशिपुने सारी संपत्तिका उपयोग भोग-विलासके लिए किया, अतः वह दैत्य बना। प्रह्लादने समय तथा अपनी शक्तिका उपयोग प्रभुकी भक्ति करनेमें किया, अतः वह देव बन गया।

सातवें स्कंधमें वासनाके तीन प्रकार बताये गए हैं— (१) असद् वासना (२) सद् वासना (३) मिश्र वासना।

इस सातवें स्कंधके आरंभमें परीक्षित राजाने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है। "आप कहते हैं कि ईश्वर सर्वत्र है और वह समभावसे व्यवहार करता है। यदि ऐसी ही बात है तो जगत्में यह विषमता क्यों दृष्टिगोचर हो रही है? चूहेमें भी ईश्वर है और बिल्लीमें भी। तो फिर बिल्ली चूहेको क्यों मारकर खाती है?

भगवान् यदि सम हैं तो जगत्में वे विषमता क्यों उत्पन्न करते हैं? यदि वे समभावी हैं तो फिर बार बार देवोंका पक्ष लेकर वे दैत्योंको क्यों मारते हैं? यदि वे ईश्वर हैं तो फिर विषमता वे क्यों करते हैं?

भगवान्की दृष्टिमें यदि सभी प्राणी समान हैं तो उन्होंने इन्द्रके लिए वृत्रासुरका वध क्यों किया?

मैं मानता था कि दैत्य तो पापी हैं, अतः हरि उनकी हत्या करते हैं। किंतु वृत्रासुर तो भगवद्-भक्त था, फिर उसकी उन्होंने हत्या क्यों की?

शुकदेवजी कहते हैं– राजन्, क्रियामें भले ही कदाचित् विषमता हो भी जाये, किंतु भावमें तो नहीं ही होनी चाहिए।

समता अद्वैतभावमें ही होती है, क्रियामें वह संभाव्य नहीं है। क्रियामें तो विषमता ही रहेगी। अतः भावमें समता रखनी चाहिए।

घरमें माता, पत्नी, संतान आदि होते हैं। पुरुष इन सभीके प्रति प्रेम तो एक समान ही रखता है, किंतु सभीके साथ एक समान बर्ताव नहीं कर सकता। वह माताको तो वंदन कर सकेगा, पर पुत्रीको नहीं।

प्रेम आत्माके साथ होता है, देहके साथ नहीं।

भावनाके क्षेत्रमें तो अद्वैतभाव होना ही चाहिए। समदर्शी बनना है, समव्यवहारी नहीं। समव्यवहारी होना तो संभव ही नहीं है।

शंकराचार्यने आज्ञा दी है—

भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित् ॥

भागवतको आधिभौतिक साम्यवाद मान्य नहीं है, मात्र आध्यात्मिक साम्यवाद ही मान्य है।

राजन्! तुम्हें लगता है कि देवोंका पक्ष लेकर भगवान्ने असुरोंका नाश किया। परंतु उन्होंने यह संहार तो उन असुरों पर कृपा करनेके हेतुसे ही किया था।

एक दृष्टांत सुनो। एक चोर चोरी करनेके हेतु घरसे निकला, किंतु मार्गमें ठेस लगनेके कारण वह गिर पडा और उसका एक पांव टूट गया। इस कारण वह चोरी न कर सका। यह भगवान्की कृपा थी या अवकृपा? इसे कृपा ही समझनी चाहिए। पर तो टूट गया किंतु उसके कारण वह पाप तो न कर सका।

राजन्! जैसे तुम होगे, ईश्वरका रूप भी तुम्हें वैसा ही दिखाई देगा। ईश्वरका कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं है। जीव जिस भावसे उन्हें देखता है, उसके लिए वे वैसे ही बन जाते हैं।

वल्लभाचार्यजी कहते हैं कि ब्रह्म ईश्वर लीला करते हैं, अतः वे अनेक स्वरूप धारण करते हैं।

शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक और निर्विकार है। उस ब्रह्मकी कोई क्रिया नहीं नहीं है। कलशमें रखा हुआ जल तो बाहर निकाला जा सकता है किंतु अंदर समाया हुआ अवकाश या आकाश नहीं। ईश्वरको कोई बाहर नहीं निकाल सकता।

ईश्वरमें मायासे इस क्रियाका अध्यारोप किया गया है। यह वेदान्तका सिद्धान्त है। मायाकी क्रिया ईश्वरके अधिष्ठानमें आभासित होती है। लोग गाडीमें बैठ कर अहमदावाद जाते हैं। अहमदावादमें गाडीके पहुंचने पर वे कहते हैं कि अहमदावाद आ गया। किंतु यह आनेकी क्रिया उस नगरकी नहीं, गाडीकी ही है।

ईश्वर निराकाररूपसे सर्वत्र व्यापक है। ईश्वर यदि किसी स्थान पर आवागमन करेगा, तो उन्हें सर्वव्यापक कैसे कहा जा सकेगा? किसी भी स्थान पर जिसका अभाव न हो उसे ही सर्वव्यापी कहा सकता है।

आचार्य शंकरका मत है कि ईश्वर निष्क्रिय है। मायाके कारण ही उनमें क्रियाका भास होता है, पर वास्तवमें भगवान् कुछ भी नहीं करते, अतः उनमें विषमता नहीं है।

अग्नि निराकार है। फिर भी जब लकडी जलती है तो लकडी जैसा ही आकार अग्नि-का भी आभासित होता है। उपाधिके कारण आकारका भास होता है।

परमात्माका वास्तविक स्वरूप व्यापक, निराकार और आनंदरूप है। आचार्य शंकरका यह दिव्य सिद्धांत है।

महाप्रभुजीका सिद्धांत भी दिव्य है। वैष्णव मानते है कि ईश्वरकी अक्रियात्मकताकी बात बराबर ही है। ईश्वर क्रिया तो नहीं कर सकते, किंतु लीला करते हैं। ईश्वर निष्क्रिय हैं यह बात सच है किंतु यह भी उतना ही सच है कि वे लीला करते हैं। जिस क्रियामें क्रियाका अभिमान नहीं होता, वही लीला है। ईश्वर स्वेच्छासे लीला करते हैं।

"मैं करता हूं" ऐसी भावनाके बिना निष्काम भावसे जो क्रिया की जाए वही लीला है। केवल अन्यको सुखी करनेकी भावनासे जो क्रिया की जाए वही लीला है। कृष्णका कार्य लीला है। ईश्वरको सुखकी इच्छा नहीं है। कन्हैया चोरी तो करता है, किंतु औरोंकी भलाईके लिए ही। क्रिया बंधनकारक है, लीला मुक्तिदायक।

जीव जो कुछ करता है वह क्रिया ही है, क्योंकि उसकी हर क्रियाके पीछे स्वार्थ वासना और अभिमान होते हैं।

दोनों सिद्धांत सत्य हैं। ईश्वर निराकार निर्विकल्प है और माया क्रिया करती है, यह सिद्धान्त भी दिव्य है। ईश्वर कुछ भी नहीं करते, किंतु उनमें क्रियाका अध्यारोप किया जाता है। मायाके कारण ईश्वरके व्यवहारमें विषमताका भास होता है। ईश्वर परिपूर्ण सम है। परमात्मा सम है और जगत् विषम।

समता ईश्वरकी है। विषमता मायाकी है। यों तो ईश्वर सम है, किंतु मायाके कारण उसमें विषमता दिखाई देती है। ईश्वरके अधिष्ठानमें माया क्रिया करती है, अतः माया जो भी क्रिया करती है उसका अध्यारोप ईश्वर पर भी किया जाता है। दीपक स्वयं तो कुछ नहीं करता, किंतु उसकी अनुपस्थितिमें भी तो कुछ नहीं किया जा सकता।

भगवान् दैत्यको मारते नहीं, तारते (उद्धार करते) है। विषमता क्रियामें है, भावमें नहीं। भगवान् दैत्योंको मारते हैं किंतु उनके प्रहारमें भी प्रेम भरा हुआ होता है।

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं।

जीवके उपभोगके लिए शरीरसर्जनकी इच्छा जब भगवान् करते है, तो रजोगुणके बलमें वृद्धि करते हैं। जीवोंके पालनके हेतु वे सत्त्वगुणके बलमें और संहारार्थ तमोगुणके बलमें वृद्धि करते हैं।

राजन्, जो प्रश्न आपने मुझसे पूछा, वही प्रश्न आपके पितामहने नारदजीसे पूछा था।

राजसूय यज्ञमें प्रथम श्रीकृष्णकी पूजा की जो शिशुपालको मान्य नहीं हुई, अतः वह भगवान्की निंदा करने लगा। वैसे तो भगवान् लंबे अरसे तक निंदा सहते रहे, किंतु अंतमें उन्होंने सुदर्शन चक्रसे शिशुपालका मस्तक उडा दिया। उसके शरीरमेंसे बाहर आया हुआ आत्मतेज द्वारिकाधीशमें विलीन हो गया और शिशुपालको मुक्ति मिली।

इस प्रसंगको देखकर युधिष्ठिरको आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारदजीसे पूछा– भगवान्से शत्रुत्व होने पर भी शिशुपालको सद्गति क्यों प्राप्त हुई? उसने भगवान्को गालियां दीं, फिर भी वह नरकवासी क्यों न हुआ? ऐसी सायुज्य गति उसे क्यों मिली? भगवान्से द्वेष करनेवाले शिशुपाल और दंतवक्त्र नरकवासी होने चाहिए थे। तो ऐसी उल्टी बात क्यों हो गई?

नारदजीने कहा– श्रवण करो, राजन्! परमात्मामें किसी भी प्रकार तन्मय होनेकी आवश्यकता है। परमात्माने कहा है कि जीव चाहे जिस किसी भावसे मेरे साथ तन्मय बने, मैं उसे अपने स्वरूपका दान करता हूं।

राजन्, किसी भी भावसे मन परमात्माके साथ एकाकार होना चाहिए।

जिस प्रकार भक्तिके द्वारा ईश्वरसे मन लगाकर कई मनुष्य परमात्माकी गतिको पा सके हैं, वैसे ही काम, द्वेष, भय या स्नेहके द्वारा भगवान्से नाता लगा कर कई व्यक्ति सद्गति पा गए हैं।

गोपियोंने मिलनकी तीव्र कामनासे, कंसने भयसे, शिशुपाल आदि कुछ राजाओंने द्वेषसे, यादवोंने पारिवारिक संबंधसे, आपने स्नेहसे और हमने भक्तिसे अपने मनको भगवान्से जोड लिया है।

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
संबंधाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो ॥

भा. ७-१-३५

कुछ गोपियां कृष्णको कामभावसे भजती थीं। श्रीकृष्णका स्वरूप देखकर भले ही उनके प्रति कामभाव जाग जाए, किंतु जिसका ध्यान करते हैं वह तो निष्काम है। निष्काम कृष्णका ध्यान करती हुई गोपियां भी निष्काम हो गईं। किंतु जगत्के स्त्री-पुरुषोंका ध्यान कामभावसे करोगे तो नरकमें जाओगे।

श्रीकृष्णके प्रति कामभाव रख कर सतत उनका चिंतन करती हुई भी गोपियां निष्काम बनी रहीं। परमात्माके पूर्ण निष्काम होनेके कारण उन्हें अर्पित किया गया काम भी निष्काम बन गया।

कामका जन्म रजोगुणमेंसे होता है। ईश्वर बुद्धिसे परे है। ईश्वरके पास काम नहीं जा सकता। सूर्यके पास अंधकार नहीं जा सकता।

जिनका चिंतन किया गया था, वह श्रीकृष्ण निष्काम होनेके कारण, उनका कामभावसे चिंतन करनेवाली गोपियां भी निष्काम बन गईं।

कंस डरके मारे तन्मय हो गया था। उसे देवकीका आठवां पुत्र ही हमेशा दीखता रहता था। शिशुपाल अपने शत्रुके रूपमें भगवान्का चिंतन करता रहता था।

इस प्रकार ईश्वरमें किसी भी भावसे तन्मय होना चाहिए।

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।

अतः हर किसी व्यक्तिको चाहिए कि वह श्रीकृष्णसे अपना मन जोड ले।

यह शिशुपाल साधारण व्यक्ति नहीं था वह तो विष्णु भगवान्का पार्षद था।

नारदजीने जयविजयके तीनों जन्मोंकी कथा संक्षेपमें सुनाई। जय और विजय पहले जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने, दूसरेमें रावण और कुंभकर्ण बने और तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दंतवक्त्र बने।

नारदजीने हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी कथाका आरंभ किया। वे कहने लगे कि दितिके दो पुत्र थे- हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। वराह भगवान्ने हिरण्याक्षका वध किया था।

धर्मराजाने नारदजीसे प्रार्थना की- "मैं प्रह्लादकी कथा विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं। वे महान् भगवद्भक्त थे, फिर भी हिरण्यकशिपुने उन्हें क्यों मारना चाहा?"

नारदजीने कहा– दिति वस्तुतः भेदबुद्धि है। भेदबुद्धिसे हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु– ममता और अहंकार उत्पन्न होते हैं। ये "मैं" और "मेरा" भेदबुद्धिकी संतानें हैं। सभी दुःखोंका मूल भेदबुद्धि है और सभी सुखोंका मूल अभेदभाव है। शरीरसे नहीं, अपितु बुद्धिसे यदि अभेद्भाव स्थापित हो सके तो सभीके प्रति समबुद्धि हो सकती है।

अहंकारको मारना कठिन है। विवेकसे ममताका तो नाश हो सकता है किंतु अहंभावका नहीं। पर यदि अर्पण करनेवाला व्यक्ति अपना "मेरापन" भी प्रभुको अर्पित कर दे, तो ठाकुरजी कृपा करते हैं। मुझमें अभिमान नहीं है ऐसा मानना भी अभिमान ही है।

हिरण्यकशिपु अहंकारका रूप है। उसका व्यवहार ही ऐसा है कि जिससे देवोंको, ज्ञानी पुरुषोंको और अन्य सभीको कष्ट होते हैं। अभिमान सभीको सताता और रुलाता है। ममता तो शीघ्र मर भी जाती है किंतु अहंकार शीघ्र मरता नहीं है। उसे मारना बडा कठिन है। वह न तो रातको मरता है न तो दिनमें। वह न तो घरके अंदर मरता है और न तो घरके बाहर। वह घरके बाहर भी होता है और अंदर भी। वह न तो शस्त्रसे मरता है और न तो अस्त्रसे। उसे मध्य स्थानमें ही मारना पडता है। मनुष्य यदि अहंकारको नष्ट कर दे तो वह ईश्वरसे दूर नहीं रहेगा।

अभिमान अंदर ही समाया हुआ रहता है। मनुष्यको दुःख देनेवाला यही है। इस अहंकारको मारना है। वह दरवाजेकी देहली पर ही मरेगा। रासकथामें कहा गया है कि हर दो गोपियोंके बीचमें (साथमें) श्रीकृष्ण हैं। इसी प्रकार यदि तुम दो वृत्तियोंके बीचमें श्रीकृष्णको रखोगे तो तुम्हारे अहंकारका नाश होगा। एक संकल्पके समाप्त होने तथा दूसरी वृत्तिके उत्पन्न होनेके पहले यदि श्रीकृष्णको रखोगे तो तुम्हारे अहंकारका नाश होगा। प्रत्येक इन्द्रियका मिलन जब तक परमात्माके साथ नहीं हो पाता, तब तक अहंकार बना ही रहता है। पुरुष ईश्वर-स्मरणमें तन्मय हो जाए और अन्य किसी भेदका अस्तित्व न रहे तो अहंकारकी मृत्यु अवश्य होगी।

ज्ञान सुलभ है, किंतु जब तक अहं और ममता नष्ट न हो पाए तब तक ज्ञान शोभा नहीं देता।

हिरण्यकशिपु ज्ञानी तो था किंतु उसका ज्ञान अहंभाव और ममतासे भरा हुआ था। अपने भाईकी मृत्युके अवसर पर भी उसने ब्रह्मोपदेश किया।

जो औरोंको उपदेश दे और स्वयं उसे अपने जीवनमें न उतारे, वह असुर है।

हिरण्यकशिपु अन्य मानवोंको तो ज्ञानोपदेश देता था किंतु स्वयं यह सोचता था कि मेरे भाईके हत्यारे विष्णुसे मैं कैसे बदला लूं।

एक गृहस्थके पुत्रकी मृत्यु हो गई तो किसी साधुने उस समय उपदेश दिया कि यह संसार तो मिथ्या है। कुछ दिनोंके पश्चात् उसी साधुकी एक भैंस मर गई तो वह रोने लगा। न जाने इस समय उसका ज्ञान कहां हवा हो गया? उस गृहस्थने वहां आकर साधुसे पूछा कि अब आप क्यों रो रहे हैं। तो साधुने कहा कि वह पुत्र तो तेरा था अतः मैंने तुझे उपदेश दिया, किंतु यह भैंस तो मेरी थी, अतः रो रहा हूं।

×

जब तक अहंभाव और ममता विद्यमान है, तब तक ज्ञानका पाचन नहीं हो पाता। भक्तिसे रहित ज्ञान शाब्दिक ही रह जाता है अतः उस ज्ञानसे जीवको कोई लाभ नहीं होता। वैराग्य और भक्तिके अभावमें ज्ञानका अनुभव नहीं हो पाता।

कोई व्यक्ति बातें तो वेदान्त और ब्रह्मज्ञानकी करे, किंतु प्रेम सांसारिक विषयोंके साथ करे तो समझो कि वह दैत्य ही है। वह दैत्य वंशका है।

हिरण्याक्षकी मृत्युका समाचार सुनकर हिरण्यकशिपुने कहा कि मैं अपने भाईके हत्यारे विष्णुसे युद्ध करूंगा। उसने माता दितिको कई प्रकारके उपदेशवचन सुनाकर संतुष्ट किया। उसने सोचा कि मै विष्णुसे अभी युद्ध नहीं करूंगा, अपितु पहले वरदान प्राप्त करके अमर हो लूं, फिर युद्ध करूं।

हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने चला तो उसकी पत्नी कयाधुने पूछा कि वापस कब लौटोगे? तो उसने उत्तर दिया कि कुछ निश्चित नहीं है। मैं दस हजार वर्षों तक तप करूंगा तपसे अनेक सिद्धियां प्राप्त करके ही घर वापस आऊंगा।

हिरण्यकशिपु मंदराचल पर्वत पर आया। यह कथा भागवतमें नहीं है। व्यासजीने विष्णुपुराणमें यह कथा लिखी है। हिरण्यकशिपुकी तपस्याका वृत्तान्त जानकर देवोंने बृहस्पतिसे प्रार्थना की– आप हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्यामें बाधा उपस्थित कीजिए। यह सुनकर बृहस्पति तोतेका रूप धारण करके मंदराचल पर्वत पर आए और जहां हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने बैठा हुआ था, वहीं किसी वृक्ष पर बैठ कर "नारायण नारायण" का जप करने लगे। जैसे ही हिरण्यकशिपु मंत्रजपका आरंभ करता कि तुरंत ही वह तोता "नारायण" की रट लगाना शुरू कर देता। यह देखकर हिरण्यकशिपुने सोचा कि विष्णुकी हत्या करनेके लिए तो मैं तपश्चर्या कर रहा हूं, और उसीका कीर्तन यह तोता कर रहा है। यह कहांसे आ गया इधर? हटता ही नहीं है। आज तपश्चर्या करनेके लिए शुभ दिवस नहीं है। वह सोचकर वह थक कर सायंकालको घर वापस लौट गया।

कयाधुको आश्चर्य हुआ कि मेरा पति आज ही क्यों वापस आ गया? पर वह पतिसे यह बात कैसे पूछे, क्योंकि वह क्रोधी जो था। शायद वह कह दे कि तुझे क्या लेना-देना है।

अतः कयाधुने सोचा कि मैं किसी युक्तिसे पूछ ही लूंगी। उसने रसोईघरके सेवकोंसे कहा कि आज मैं स्वयं ही रसोई बनाऊंगी।

पतिकी गुप्त बातें जाननी हो तो कयाधुके रास्ते पर चलो। भोजनमें बडा वशीकरण होता है।

लोभीको द्रव्यसे वशमें करो और अभिमानीको प्रशंसासे।

हिरण्यकशिपु अभिमानी था, अतः उसकी पत्नी उसकी सेवा करते हुए उसकी प्रशंसा करने लगी।

राजा भोजने एक बार कालिदाससे पूछा था कि चीनीसे भी अधिक मीठी वस्तु कौनसी है।

कालिदासका उत्तर था– प्रशंसा।

कयाधु कहने लगी—इन्द्र, चंद्र आदि देव तो आपसे थरथर कांपते हैं। आप जितेन्द्रिय हैं, ज्ञानी हैं। आपके जैसा वीर न तो कभी कोई हुआ है और न तो कभी होगा। मैं कितनी भाग्यशाली हूं कि आप जैसा पति मुझे मिला है। मैं जानती हूं कि निर्धारित कामको संपूर्ण किए विना आप लौट ही नहीं सकते। क्या आज वनमें कुछ ऐसा प्रसंग हो गया कि जिसके कारण आपको वापस लौटना पडा?

कयाधुने कुछ गर्म गर्म पकौडे आदि खिला दिए होंगे। राक्षसको ऐसा भोजन ही पसंद आता है।

जिसे सात्त्विक भोजन पसंद नहीं आता, वही राक्षस है।

हिरण्यकशिपु अपनी प्रशंसा सुनकर खिल उठा और कहने लगा— वैसे तो मैं अपने निश्चित कामको पूरा किए बिना नहीं लौटता किंतु एक बाधा आ गई, और अपशकुन भी हो गया सो वापस आ गया।

कयाधुके पूछा— कौन—सी बाधा आ पडी थी? क्या अपशकुन हो गया था?

हिरण्यकशिपुने कहा— मैं जिस वृक्षके नीचे बैठ कर तपश्चर्या कर रहा था, उसी वृक्ष पर बैठकर एक तोता "नारायण—नारायण" करने लगा।

कयाधुको बडा आनंद हुआ कि चाहे जैसे भी सही, आज इन्होंने नारायणका नाम तो लिया। क्योंकि मेरे पति तो बडे ही अभिमानी और नास्तिक हैं। यदि मैं उन्हें "नारायण" की धुन (जप) करनेको कहूंगी तो वे नहीं मानेंगे। अतः मुझे कोई युक्ति सोचनी पडेगी।

अपने पतिको पाप—प्रवृत्तिमेंसे युक्तिसे बचा ले, और उसे पाप करनेसे रोके, वही सच्ची पत्नी है। पतिको धर्म—परमात्माके मार्गसे ले जाए, वह पत्नी ही धर्मपत्नी है। पतिको पत्नी ही धर्म और मोक्षके मार्ग पर ले जा सकती है।

कयाधुने सोचा कि यह बडा अच्छा अवसर है कि इस बहाने मैं अपने पतिसे बार बार भगवानका नामोच्चार तो करा सकूंगी। वह चाहती थी कि उसका पति सुधर जाए। भोजनादिसे निवृत्त होकर शयनके समय उसने पतिकी चरणसेवा करते हुए कहा कि भोजनके समय आपकी बातोंमें मेरा पूरापूरा ध्यान नहीं था। हां, तो वनमें क्या हुआ था?

हिरण्यकशिपु— देवी, वहां एक तोतेने आकर नारायणके नामकी रट लगा दी।

कयाधु— तोता क्या बोलता था?

हिरण्यकशिपु— नारायण नारायण।

कयाधु— भला, ऐसा कैसे हो सकता है? क्या सचमुच वह तोता बोलता था?

हिरण्यकशिपु— हां, वह नारायण नारायण बोलता था।

बेचारा कामातुर पति! पत्नीने युक्तिसे बार बार यही बात उससे कहलाई।

कयाधुने इस प्रसंगसे लाभ उठाकर अपने पतिके मुखसे नारायणका एकसौ आठ बार नामोच्चार करवाया।

साधारणतः पुरुष कामांधताके कारण स्त्रीके अधीन ही होता है। अतः पत्नी चाहे तो अपने पतिको सुधार सकती है। पत्नी यदि सुपात्र होगी तो अपने पतिको भगवत् भजनमें लीन कर सकेगी।

माता—पिता (हिरण्यकशिपु— कयाधु) भगवान्का नामोच्चार कर रहे थे कि उसी समय माताके गर्भमें प्रह्लादजीकी स्थापना हुई। अतः पिताके राक्षस होने पर भी उसका पुत्र प्रह्लाद महान् भगवद्भक्त हुआ।

कयाधु सगर्भा हुई और हिरण्यकशिपु तपश्चर्या करने वनमें चला गया। उसने वहां छत्तीस हजार वर्ष तक तपश्चर्या की। अन्नजलका भी त्याग कर दिया। इस कलियुगमें प्राण अन्न और जलमय है किंतु उस सत्‌युगमें प्राण अस्थिमय था। अतः वैसी तपश्चर्या शक्य थी।

मात्र तप करनेसे ही मनुष्यका कल्याण नहीं हो सकता, वह शुद्ध नहीं हो सकता। तपके साथ साथ भावना और हेतु भी शुद्ध होने चाहिए।

हिरण्यकशिपुका हेतु अशुद्ध था। दुर्योधनने भी विष्णुयाग किया था किंतु वह धन तो पापमय ही था।

यदि योगकी साधना करते हुए योगीका हेतु अशुद्ध हो, तो निश्चयसे उसका पतन ही होगा। केवल योगसाधनासे हृदय विशाल नहीं हो सकता। योगसिद्धिसे अन्य शक्तियां तो प्राप्त होंगी, किंतु हृदयकी विशालता नहीं प्राप्त हो सकती। ब्रह्मानुभूतिके विना हृदय विशाल नहीं हो सकता।

हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्या तो देवोंको सताने और भोगविलासके हेतु ही थी। गीताजीकी परिभाषामें कहें तो उसका तप तामस्‌तप था। अतः जो फल मिलना चाहिए था. वह नहीं मिला।

हिरण्यकशिपुकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वहां आए। वह तो मिट्टीके ढेरमें ढका हुआ-सा था। ब्रह्माजीने जल छिडका तो वह वाहर आया। ब्रह्माजीने उससे पूछा कि उसकी क्या इच्छा है। तो हिरण्यकशिपुने कहा कि मुझे अजर-अमर वनाइए। ब्रह्माजीने कहा कि मरना तो सभीको है। जिसका भी जन्म हुआ है, उसे मरना तो पडता ही है। तू कुछ और मांग।

हिरण्यकशिपुने कहा- मुझे तो अमरत्वका ही वरदान चाहिए। अतः मुझे ऐसा वर दें कि मैं न तो दिनमें मरू और न रातमें, न जडसे मरूं, न चेतनसे; न तो मैं शस्त्रसे मरूं और न तो अस्त्रसे।

ब्रह्माजीने सोचा कि चूंकि इसने कठिन तपश्चर्या की है सो वर तो देना ही पडेगा। उन्होंने उसे अमरत्वका वर दे दिया।

अब हिरण्यकशिपु इतना शक्तिशाली हो गया कि उससे सभी देव पराभूत हो गए।

देवोंने दुःखके मारे प्रभुसे प्रार्थना की। भगवान्‌ने कहा कि जव भी मेरे प्रिय वैष्णव व्यथित होते हैं, मैं अवतार लेता हूं

यदि पापी दुःखी होता हो तो भगवान् उसकी उपेक्षा कर भी देंगे और अवतार नहीं भी लेंगे। पर वे अपने भक्तोंकी उपेक्षा कभी नहीं कर सकते। भक्तों पर विपत्ति आने पर उन्हें अवतार लेना ही पडता है। देवोंको भगवान्‌ने आश्वासन दिया कि जव कभी हिरण्यकशिपु अपने पुत्रसे शत्रुता करेगा और उसकी हत्याके लिए तत्पर होगा, तब मैं अवतार लूंगा और हिरण्यकशिपुका वध करूंगा।

दूसरी तरफ कयाधुके गर्भसे प्रह्लादका जन्म हुआ और वह दिनोंदिन वडा होने लगा। सभीको इससे आनंद-आह्लाद मिलता था, अतः उसका नाम प्रह्लाद रखा गया।

दैत्योंके गुरु थे शुक्राचार्य । उनके शंड और अमर्क नामक दो पुत्र थे । जब प्रह्लाद पांच वर्षके हुए तो हिरण्यकशिपुने शंडामर्कको बुलाकर उनसे कहा कि मेरे इस पुत्रको राजनीतिकी शिक्षा दो ।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं ।

राजन्, वैसे तो शंडामर्क प्रह्लादजीको राजनीति पढाते थे, किंतु प्रह्लाद तो गर्भवासके समयसे ही भक्तिके रंगसे रंगे हुए थे ।

प्रह्लादको भगवान् वासुदेवसे स्वाभाविक प्रीति थी । श्रीकृष्णके अनुग्रहरूप ग्रहने उनका हृदय इस प्रकार आकर्षित कर लिया था कि उन्हें जगत्से कुछ भी लगाव नहीं रह गया था ।

वैसे तो भक्तिका रंग शीघ्र लगता नहीं है, पर जब एक बार लग जाता है तो फिर सांसारिक प्रवृत्तियोंके प्रति वैराग्य हो जाता है ।

मीराबाईने कहा है कि मेरे कृष्णका रंग श्याम है और श्याम रंग पर किसी और रंगका प्रभाव नहीं पडता ।

प्रह्लादजी जन्मसे ही भक्तिके रंगमें रंगे हुए थे। वे महावैष्णव थे। वे गुरुजीकी शिक्षा सुनते तो थे, किंतु राजनीतिका चिंतन वे जरा भी नहीं करते थे ।

सच्चे ज्ञानी भक्तका यही तो लक्षण है कि जब तक देहभान है, उसके व्यवहारमें क्षति नहीं आती ।

गुरुजीने सोचा कि यह राजपुत्र तो बडा सयाना है, अतः उसकी शिक्षासे प्रभावित होकर उसके पिता उसे कुछ न कुछ पुरस्कार अवश्य देंगे। वे प्रह्लादको लेकर राजसभामें आए। प्रह्लादने पिताजीको प्रणाम किया, तो पिताजीने बालकको उठाकर गोदमें बिठाकर प्यार किया और पूछा– बेटे, तू गुरुजीके घर कल पढने गया था, तो कलकी पढाई तुझे याद है या नहीं ! जो भी पाठ (प्रकरण) तुझे अच्छा लगा हो, वह बोल जा ।

प्रह्लादजीने सोचा कि पिताजी उत्तम प्रकरणकी बात पूछते हैं और इधर गुरुजीने तो मारकाटकी बात ही सिखलायी है । वह मैं कैसे बता सकता हूं भला ? अतः उन्होंने पिताजीको अच्छी-सी बात बताई—

हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

भा. ७-५-५

अंधियारे कुएंके समान यह घर ही अपने अधःपतनका मूल कारण है । जीवोंके लिए यही श्रेयस्कर है कि वे गृहत्याग करके वनवासी बनें और वहां भगवान् श्री हरिका आश्रय ग्रहण करें ।

प्रह्लाद बोले– पिताजी, अनेक जन्मोंके अनुभवसे मैं यह कह रहा हूं कि यह जीव कई बार स्त्री, पुरुष, पशु, पंछी बना है । हजारों जन्मोंसे विभुसे विभक्त बना हुआ यह जीव लौकिक सुखोपभोगमें लीन है । फिर भी वह अतृप्त ही है। तृप्ति भोगसे नहीं, त्यागसे ही प्राप्त होती है । संसार तो दुःखका सागर है । प्रत्येक जीव व्यथित है । पाप और पुण्यके समान होने पर यह मानवदेह प्राप्त होती है । जैसे पाप भोगना पडता है वैसे ही पुण्य भी भोगना पडता ही है । संसार प्रतिक्षण परिवर्तनशील है ।

पिताजी, आज तक मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं अपने अनुभवसे कहता हूं कि स्वार्थ और कपटके सिवाय इस जगत्में और कुछ भी नहीं है। फिर भी जीव अविवेकी है। निःस्वार्थ प्रेमी मात्र परमात्मा ही हैं, अन्य सभीका प्रेम स्वार्थ और कपटसे भरा हुआ है। संसारमें रहकर कपट और छल करना ही पडता है। जहां कोई वासना आई कि छल–कपट करना ही पडता है।

पति–पत्नीके प्रेममें भी स्वार्थ और कपट होता ही है। जीव कितना स्वार्थी और कपटी है। मुझे एक सन्नारी मिली, जो बता रही थी कि उसकी सासजीने उसे चेतावनी दी है कि तीन पुत्रियां काफी हैं। अगर चौथी बार भी उसने पुत्रीको जन्म दिया तो किसी भी तरह उसे घरसे निकाल बाहर किया जाएगा।

वैसे तो पुत्रका जन्म हो या पुत्रीका, किसीके अपने बसकी बात तो नहीं है। पुत्र एक ही कुलका उद्धार करता है जब कि सुयोग्य पुत्री तो पिता और पति दोनोंके कुलोंका उद्धार करती है।

दुर्भाग्यवश यदि पत्नी बीमार पड जाए, तो वह चार–पांच हजारका खर्च कर देगा, दो–चार वर्ष प्रतीक्षा भी करेगा। फिर भी उसकी बीमारी न ठीक हो पाए, तो वह ठाकुरजीकी मनौती रखेगा कि इसका कुछ हो जाए तो अच्छा हो। उसके कुछ हो जानेका मतलब मर जाना। वह सोचता है मेरी आयु भी अधिक नहीं है। ४८ वां वर्ष ही तो अभी शुरू हुआ है। मेरा कारोबार भी ठीक ठीक ही चल रहा है, अतः दूसरी पत्नी तो मिल ही जाएगी।

पति–पत्नीके प्रेममें भी कपट है। पत्नी या पति एक दूसरेके लिए दुःखदायी हों तो वे सोचते हैं कि यह मर जाए तो कितना अच्छा हो

सुर नर मुनि सबकी यह रीति,
स्वार्थ लागी सबकी कर प्रीति।

पति और पत्नी एकदूसरेको सुख–सुविधा देते हैं अतः एकदूसरेको प्रिय लगते हैं। उनमेंसे किसीने भी दुःख देना शुरू किया कि उससे घृणा होने लगेगी। जगत्में स्वार्थ और कपटके सिवा और कुछ भी नहीं है।

इस प्रकारकी बातें ऋषि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयीकी बीच हुई थीं।

ऋषि याज्ञवल्क्यने सन्यासग्रहण करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी और कात्यायनीसे कहा– मैं अब संन्यासी होने जा रहा हूं। मेरी संपत्ति तुम दोनोंमें समान रूपसे बांट देता हूं कि जिससे कभी तुम दोनोंके बीच कोई झगडा न होने पाए।

मैत्रेयी तो ब्रह्मवादिनी थीं। उन्होंने पतिसे पूछा– इस धनसंपत्तिसे क्या मुझे मोक्ष प्राप्त होगा ? मैं अमर हो पाऊगी ?

याज्ञवल्क्य– अरे, धनसे भी कभी मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है क्या ? हां, इससे तुम्हें सुख–सुविधा–भोगके पदार्थ मिल सकेंगे अतः तुम आनदसे जीवन बिता सकोगी।

मैत्रेयी– जिस धनसे मोक्षकी प्राप्ति न हो उसे लेकर मैं क्या करूगी ? आप इसे कात्यायनीको ही दे दें।

मैत्रेयीकी जिज्ञासासे प्रभावित होकर मुनिने उसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया और मोक्षके साधन बताये।

याज्ञवल्क्यने कहा- हे मैत्रेयी। अपने स्वयंके सुखके हेतु ही घर, पुत्र, पत्नी आदि प्रिय लगते हैं। वैसे प्रिय तो मात्र आत्मा ही है।

आत्मा वै सर्वेषां प्रियः।
न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।
न वा अरे जायायाः कामाय जाया प्रिया भवति
आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।
न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति
आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रियाः भवन्ति॥

पतिसे पत्नीका जो प्रेम है वह पतिकी कामनापूर्तिके लिए नहीं, किंतु अपनी स्वयंकी कामनापूर्तिके लिए है। इसी प्रकार पतिका और माता-पिताका पुत्रप्रेम भी स्वयं अपनी कामनापूर्तिके लिए ही है। पत्नी पतिसे प्रेम करती है क्योंकि पति उसका जीवनयापन करता है। पति होगा तो मैं जी सकूंगी- इसी आशा और अपेक्षासे पत्नी पतिसे प्रेम करती है। इसी प्रकार पति भी मात्र पत्नीसे उसीके खातिर प्रेम नहीं करता है। वह उससे प्रेम इसलिए करता है क्योंकि वह उसकी इच्छाएं पूर्ण करती है। मातापिता पुत्रसे इसलिए स्नेह रखते हैं, क्योंकि उन्हें आशा है कि वह बडा होकर उनका पालन करेगा। मनुष्य कभी मनुष्यके साथ प्रेम नहीं करता, अपितु अपने स्वार्थके साथ ही प्रेम करता है।

प्रह्लादजीने कहा- कई जन्मोंके अनुभवसे मैं यह कहता हूं कि संसारमें किसीको भी सच्ची शांति प्राप्त नहीं है।

घरमें अच्छी तरहसे भजन नहीं किया जा सकता। अतः भजन घरमें नहीं, वनमें जाकर करना है। एकांतमें जाकर नारायणकी आराधना करनी चाहिए।

समाजसुधारकी भावना वैसे तो ठीक है किंतु इसके साथ साथ अहंकार भी उत्पन्न होता है और अहंकार अपने साथ सभी अवगुणोंको लेकर आता है। समाजको कोई भी सुधार नहीं सका है। अतः तुम यही भावना करो कि मैं अपने जीवन और मनको ही सुधारूंगा। साधारण मनुष्य जगत्को नहीं सुधार सकता। शंकराचार्य या वल्लभाचार्यका ही यह काम है।

प्रह्लादजीकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधित हो गया। उसने शंडामर्कको उलाहना दी कि मेरे बालकको उसने यह कैसा उपदेश दिया है, यह कैसी शिक्षा दी है।

शंडामर्क- मैंने तो ऐसी शिक्षा उसे कभी दी ही नहीं।

हिरण्यकशिपु- देखो, देव मुझसे डरते हैं। अतः वे सूक्ष्म रूप धारण करके विष्णुका प्रचार करते हैं, अतः उनसे सावधान रहना।

शंडामर्कने प्रह्लादजीसे पूछा- मैंने जो बातें तुम्हें कभी पढाई ही नहीं, वह तुम अपने पिताजीके समक्ष क्यों बोले?

प्रह्लादजी- गुरुजी, जीव न तो किसीके कहने पर भक्ति करता है और न ईश्वरकी ओर गति ही करता है। वैसे तो संतकृपा और सत्संगके विना भक्तिका रंग नहीं लगता। किंतु प्रभुकृपासे भी भक्तिका रंग लग जाता है।

कुछ दिनोंके पश्चात् हिरण्यकशिपुने फिर प्रह्लादसे पूछा- बेटे, गुरुजीसे इन दिनों तूने जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमेंसे कुछ अच्छी बातें मुझे भी तो बता।

प्रह्लाद कहने लगे- पिताजी, विष्णु भगवान्‌की भक्तिके नौ प्रकार हैं। भगवान्‌के नाम-गुण-लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, उनके स्वरूप-नाम आदिका स्मरण, चरणसेवा, पूजा-अर्चा, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। भगवान्‌के प्रति समर्पण भावसे यह नवधा भक्ति करना ही सर्वोत्तम अध्ययन है, ऐसा मैं मानता हूं।

नवधा भक्तिसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। प्रभुकी प्रसन्नतासे जीवन सफल होता है। मात्र भोगोपभोगसे शांति नहीं मिलती।

पुत्रकी ऐसी बातें सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधित हो गया और उसे उसने अपनी गोदसे फेंक दिया। उसने सेवकोंको आज्ञा दी कि इस बालकको मारो। यह मारे जाने योग्य है। यह मेरे शत्रुके नामका भजन करता है। आज्ञा पाते ही दैत्यसेवक प्रह्लादको मारने दौडे।

प्रह्लादकी दृष्टि तो दिव्य थी। उन्हें तो तलवारमें भी कृष्णका दर्शन हुआ और जिसके हाथमें तलवार थी, उस दैत्यमें भी कृष्णका दर्शन हुआ।

संसारमें बहुतसे सुंदर पदार्थ हैं, किंतु सभीको भगवत्‌भावसे देखो। जगत्‌के काम करते हुए भी ईश्वरसे संबंध बनाए रहो। बालककी अपेक्षा बालकृष्णसे संलग्न रहोगे तभी कृष्ण मिलेंगे और साथ ही लक्ष्मी भी। लौकिक नामरूपमें मनका फंसना आसक्ति है किंतु श्रीकृष्णके नामरूपमें फंसना भक्ति है। लौकिक नामरूपमें फंसा हुआ मन श्रीकृष्णके नामरूपमें लीन हो जाए, तभी मुक्ति मिलती है और मनुष्यका उद्धार होता है।

स्वरूपासक्तिके विना भक्ति फलवती नहीं हो पाती। सांसारिक विषयोंके प्रति प्रेम होना आसक्ति है। भगवान्‌के प्रति प्रेम होना भक्ति है। संसारासक्ति बंधनकर्ता है, भगवदासक्ति मुक्तिदाता है।

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

राजन्! आंखोंमें कामको स्थान मत दो, और मनमें स्वार्थको स्थान मत दो। जगत्‌को समतासे देखो। अगर आंखोंमें खराबी है तो जगत् भी खराब ही दीखेगा। संसार पर प्रीति होने पर भक्ति नहीं हो सकती। प्रभुके स्वरूपमें आसक्ति ही भक्ति है। यदि भक्ति हो तो मुक्ति भी मिल सकती है। भगवान् श्रीकृष्णके सिवाय अन्य कोई भी वस्तु सुंदर नहीं है।

दो व्यक्ति फूल खरीदनेके लिए बाजारमें गए। एकको भगवान्‌की पूजाके लिए फूल लेना था और दूसरेको पत्नीकी वेणीके लिए। पहला व्यक्ति भक्त है और दूसरा आसक्त। पहलेके हृदयमें परमात्माका शृंगार करनेकी भावना है, भक्ति है। दूसरा व्यक्ति पत्नीका शृंगार करना चाहता है, उसके मनमें सांसारिक विलासकी आसक्ति है। दोनों व्यक्तियोंकी क्रिया तो एक ही है- फूलोंकी खरीदी। फिर भी एककी क्रियामें भक्ति है और दूसरेकी क्रियामें आसक्ति।

दैत्य प्रह्लादको पीटने लगे फिर भी उनको तो जरा भी दुःख नहीं हुआ। प्रह्लादकी भक्ति दिव्य थी। वे निर्भय थे। उन्हें मारनेके हेतु कई उपाय किए गए, फिर भी वे तो मरे ही नहीं। हिरण्यकशिपुको लगा कि शायद यह जादूगर है। उसने आज्ञा दी कि प्रह्लादको अंधेरेमें बंद कर दो, वहां अन्न-जलके अभावसे मर जाएगा।

प्रह्लादजीको बंदी बना दिया गया, फिर भी उन्हें किसी तरहका डर नहीं लगा। उन्होंने सोचा, कि चलो अच्छा ही हुआ। अब मैं यहां शांतिपूर्वक भजन-कीर्तन कर सकूंगा।

सुखमें भगवत्कृपाका अनुभव करनेवाला सामान्य वैष्णव है, किंतु जो दुःखमें भी भगवत्कृपाका अनुभव करे वह तो महान् वैष्णव है। दुःखमें भी जो सेवा-स्मरण न छोडे, वही महान् वैष्णव है।

देवकी- वसुदेवको कितना कष्ट सहना पडा, फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं छोडा। हम तो छोटेसे दुःखसे भी घबराहट महसूस करने लगते हैं और सोचते हैं कि मैंने इतना तो सेवा-स्मरण किया, फिर भी भगवान्ने कष्ट ही दिया।

अतिशय दुःखदायी अवस्थामें भी प्रह्लाद यही सोचते हैं कि मेरे भगवान् तो मेरे संग ही हैं, फिर डरना कैसा?

भयाक्रांतसे ईश्वर दूर रहते है। गीताजीमें कहा है कि मैं तेरे निकट हूं, मैं तुझे देखता हूं, फिर भी तू मुझे देख नहीं पाता।

अंधेरेमें भी प्रह्लाद भयभीत नहीं हुए। वे कृष्णका कीर्तन करने लगे। उन्हें आज अपनी देहका भान भी नहीं था।

भगवत्प्रेममें जिसे देहभान नहीं रहता, उसे संसारके कोई भी विकार प्रभावित नहीं कर सकते।

आज ठाकुरजीने लक्ष्मीजीसे पूछा कि जगत्में कोई जीव भूखा तो नहीं रह गया है न? लक्ष्मीजीने कहा कि आपका भक्त प्रह्लाद कैदमें भूखा पडा हुआ है। तो भगवान्ने कहा- देवी, उसके लिए शीघ्र ही प्रसाद भेजो। लक्ष्मीजीने सेवकोंसे कह कर स्वादिष्ट प्रसाद भेजा। लक्ष्मीने प्रह्लादको अपना पुत्र मानकर अपना लिया। पार्षदोंने प्रह्लादसे कहा कि तुम्हारे लिए लक्ष्मीजीने यह प्रसाद भेजा है। प्रह्लादने प्रणाम किया। उसने सोचा कि प्रभुकी मुझ पर कितनी कृपा है, उन्हें मेरी कितनी चिंता है जो इधर कारावासमें भी मेरे लिए उन्होंने प्रसाद भेजा।

हिरण्यकशिपुके सेवकोंको आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि हम यहां चौकी कर रहे हैं फिर भी प्रह्लाद भोजन कैसे कर रहा है? यह जादूगर तो नहीं है कहीं? उन्होंने जाकर हिरण्यकशिपुसे बात कही। उसने कारावासमें जाकर देखा तो प्रह्लाद प्रसाद खा रहा था। उसने पुत्रसे पूछा- प्रह्लाद, सच सच बतला कि यह भोजन तुझे किसने दिया? प्रह्लादने कहा- माताके गर्भमें जिसने मेरा पोषण किया था, वही यहां पर भी मेरा पोषण कर रहा है।

पिताजी, यह कारावासका कमरा तो फिर भी बडा है जब कि गर्भवास तो कितना छोटा होता है। वहां जिसने मेरा पोषण किया, मेरी रक्षा की, वही यहां भी मेरा पोषण करेगा, मेरी रक्षा करेगा।

+

हिरण्यकशिपु सोचने लगा कि यह तो किसी भी उपायसे मरता नहीं है। कहीं मुझे मारनेके लिए ही तो यह नहीं आया है ? वह घबडा कर शंडामर्कके पास आया।

राजाका निस्तेज मुख देख कर शंडामर्कने आश्वासन देते हुए कहा :- पांच वर्षका एक छोटा-सा बच्चा भला तुम्हें कैसे मार सकता है ? हम उसे वरुणपाशसे बांध देंगे। और वे वरुणपाशसे प्रह्लादको बांध कर घर वापस आ गए।

प्रह्लादकी दृष्टि तो ऐसी मंगलमयी हो गई थी कि उन्हें तो सभी जगह श्यामसुंदरके ही दर्शन होते थे।

एक बार गुरुजी कहीं बाहर गए हुए थे, तो शिष्योंने गेंद खेलनेकी सोची। प्रह्लादने उनसे कहा कि मैं आज तुम्हें एक नया खेल खिलाऊंगा। उन्होंने उन बालकोंको भागवतधर्मका उपदेश दिया।

प्रह्लादने कहा—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदस्य ध्रुवमर्थदम्॥

भा. ७-६-१

मित्रो, इस संसारमें मानव-जन्म अति दुर्लभ है। इसके सहारे तो परमात्माकी भी प्राप्ति हो सकती है किंतु कोई यह जान नहीं पाता कि इसका अन्त कब आनेवाला है। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिए कि वह यौवन और वृद्धावस्थाका विश्वास न करे और बाल्यावस्थासे ही प्रभुप्राप्तिके लिए साधन करे।

प्रह्लादका चरित्र भी हमें यही सिखाता है कि बाल्यावस्थासे ही ईश्वरभजनमें लीन हो जाना चाहिए। मातापिताको चाहिए कि अपने संतानोंमें वे धार्मिक संस्कारोंको उत्पन्न करें।

वृद्धावस्थामें देहकी सेवा तो हो सकती है किंतु देवकी सेवा नहीं।

मानवशरीरकी प्राप्ति भोगोपभोगके लिए नहीं हुई है, अपितु इसकी प्राप्ति तो भगवद्-भजनके द्वारा प्रभुप्राप्तिके लिए ही हुई है।

शरीरके नाशवान् होने पर भी मनुष्यजन्म दुर्लभ है। कारण यह है कि वह जन्म इच्छित वस्तु दे सकता है। इस अनित्य और नाशवान् शरीरसे नित्य वस्तु- भगवान्की प्राप्ति हो सकती है।

यह मानवशरीर बडा कीमती है। कई बार जन्म-मरणकी पीडा सहता हुआ जीव इस शरीरमें आया है।

ईश्वर नित्य है और शरीर अनित्य। किंतु इसी अनित्यसे (शरीरसे) ही नित्यकी (ईश्वरकी) प्राप्ति हो सकती है, अतः मानवदेहकी भी बडी भारी महिमा है।

कहते हैं कि कभी मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी होती थी। आज तो वैसी बात नहीं है। आज तो आधी आयु निद्रावस्थामें, चौथे भागकी आयु बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें बीत जाती है। बाल्यावस्था अज्ञानमें और कुमारावस्था खेलकूदमें बीत जाती है। वृद्धावस्थाके वर्ष भी निरर्थक ही होते हैं क्योंकि शारीरिक क्षीणताके कारण वृद्धावस्थामें कुछ भी काम नहीं हो पाता। यौवनके वर्ष कामभोगमें गुजर जाते हैं। तो अब कितने कम वर्ष शेष रहे? और इन शेष वर्षोंमें आत्मकल्याणकी साधना कब और कैसे होगी?

अतः व्यक्तिको चाहिए कि वह हमेशा आत्मकल्याणकी प्रवृत्ति करे। कहा गया है—

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

जब तक यह शरीररूपी गृह स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं हो पाया है, जब तक इन्द्रियोंकी शक्ति भी क्षीण नहीं हुई है, आयुष्यका क्षय भी नहीं हुआ है, सयाने व्यक्तिको चाहिए कि तब तक वह अपने आत्मकल्याणका प्रयत्न कर ले। अन्यथा घरमें आग लग जाने पर कुआं खोदनेसे क्या लाभ होगा?

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय मयाश्रितः।
शरीरपौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम्॥

भा. ७-६-५

हमारे मस्तिष्कको कई प्रकारके भय घेरे हुए रहते हैं। अतः यह शरीर, जो भगवत् प्राप्तिके लिए पर्याप्त है, रोगग्रस्त बनकर मृत्युवश हो जाए, उसके पहले ही आत्मकल्याण करनेका प्रयत्न बुद्धिमानोंको करना चाहिए।

वैसे तो मनुष्य दुःख नहीं मांगता, फिर भी वह अचानक आ धमकता है। कोई ऐसी मनौती तो मानता नहीं कि मुझे बुखार आए तो मैं सत्यनारायणकी कथा कराऊं। फिर भी बुखार तो आता ही है। प्रयत्नके बिना भी जिस प्रकार प्रारब्धानुसार दुःख आता है उसी प्रकार सुख भी आता है। सुख और दुःख दोनों प्रारब्धके अधीन हैं। प्रारब्धके अनुसार ही वे प्राप्त होते हैं। इसके लिए प्रयत्न अनावश्यक है। पूर्वजन्मोंके कर्मोंका फल है प्रारब्ध। दरिद्र संपन्न हो जाता है और संपन्न दरिद्र। प्रारब्धानुसार जो मिलने जा रहा है उसके लिए प्रयत्न अनावश्यक है। अतः सांसारिक सुखभोगोंकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न न करके परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए ही प्रयत्न करो। परमात्माको पानेके लिए ही प्रयत्न करो।

प्रारब्धसे ही जो प्राप्त होने जा रहा है उसके लिए तो सब प्रयत्न करते हैं, किंतु जिसके लिए प्रयत्न करना चाहिए, उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। परमात्माके लिए कोई कुछ भी नहीं करता। सत्कर्ममें प्रयत्न प्रधान है, प्रारब्ध नहीं। सत्कर्ममें बाधा डालनेकी शक्ति प्रारब्धमें नहीं होती। मनुष्यकी अपनी दुर्बलताके कारण ही प्रभुभजनमें बाधा उपस्थित होती है।

बालकोंने प्रह्लादजीसे पूछा— कि यदि हम वृद्धावस्थामें ही भजन करें तो?

प्रह्लादजीने उनको समझाया कि भजन यौवनमें ही हो सकता है। वृद्धावस्थामें शारीरिक दुर्बलताके कारण ईश्वरकी आराधना नहीं हो पाती। वृद्धावस्थामें देहकी भक्ति तो हो सकती है, किंतु देवकी नहीं।

बालकोंने पूछा— तो फिर हम अभीसे भक्ति क्यों करें? युवावस्थामें ही कर लेंगे?

प्रह्लाद कहते हैं- यौवनमें मद उत्पन्न होता है। युवावस्थामें मनुष्य इन्द्रियोंसे प्यार करता है। वह इन्द्रियोंके अधीन हो जाता है। यौवनमें वह कई प्रकारके मोहमें फंस जाता है। अर्थोपार्जन और इन्द्रियोंके लालनमें ही उसकी आयु नष्ट हो जाती है। यों तो आत्मा इन्द्रियोंका स्वामी है पर तो भी मनुष्य इन्द्रियोंका दास बन जाता है।

यह बात सर्वसामान्य है। बडे बडे विद्वान् भी सारा दिन धनके पीछे मारे मारे फिरते हैं और रातको कामान्ध बन जाते हैं।। विद्याका फल तो जन्ममृत्युकी व्यथासे मुक्ति और परमात्माकी प्राप्ति ही है। विद्याका फल धन या प्रतिष्ठा नहीं है।

दैत्य बालकोंने पूछा- हम परमात्माको प्रसन्न कैसे करें?

प्रह्लादने कहा- सभीमें एक परमात्मा ही का दर्शन करो। जगत्को प्रसन्न करना कठिन है, पर कृष्णको प्रसन्न करना सरल है:

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यथा तुष्यत्यधोक्षजः॥

भा. ७-६-२४

इसलिए तुम अपने दैत्यत्व, आसुरी संपत्ति, आसुरी भावका त्याग करके सभी प्राणियोंके प्रति दया करो। प्रेमसे उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान् प्रसन्न होंगे।

भगवान् जब कृपा करते हैं तो मनुष्यकी पाशवी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते।

बालकोंने पूछा- प्रह्लाद, हमें भगवान् दिखाई तो देते नहीं, तो फिर उनकी आराधना हम कैसे करें?

प्रह्लादजी- भगवान्का ध्यान करते हुए तुम तन्मय हो जाओ। जिसे जगत् नहीं दीखता, उसे भगवान् दिखाई देते हैं।

प्रह्लादने दैत्यबालकोंको समझाया कि मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है, वह मेरा अपना नहीं, अपितु नारदजीका है।

बालकोंने पूछा- प्रह्लाद, तेरी आयु तो कितनी छोटी-सी है, फिर भी तू नारदजीसे कैसे मिल सका?

प्रह्लादजीने कहा- जब मेरे पिताजी मंदराचल पर्वत पर तप करने गए थे, तब इन्द्रादि देवोंने दानवों पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र मेरी माताको बंदिनी बना कर ले जा रहे थे कि मार्गमें नारदजी मिल गए। उन्होंने इन्द्रसे कहा कि इस कयाधुको मुक्त कर दो, क्योंकि उसके गर्भमें प्रभुका परम भक्त समाया हुआ है। इन्द्रने मेरी माताको मुक्त कर दिया।

मेरी माता नारदजीके आश्रममें गई। मैं जब गर्भवासी था, तब माताने संतोंकी बडी सेवा की। वह कथाकीर्तनमें जाती थी। वहां उसे भी कभी कभी नींद आ जाती थी, किंतु मैं तो बडी तत्परतासे सुनता रहता था।

यह निद्रादेवी कथाकीर्तनमें बाधा उपस्थित करती है।

कुंभकर्णकी पत्नी निद्रादेवीने विधवा होने पर रामचंद्रके पास आकर पूछा- अब मैं कहां जाऊं? रामचंद्रजीने कहा कि वह जहां चाहे वहां रह सकती है। तो निद्रादेवीने कहा कि मैंने निश्चय कर लिया है कि जहां आपका कथाकीर्तन होता होगा, वहीं जाकर अपना आसन जमाऊंगी।

पंचप्राणको कानमें रखकर कथा सुनो।

मैं तुम्हें और तो क्या कहूं? मेरे प्रभुको प्रसन्न करनेका साधन तो कीर्तन ही है।

एक बार मीराबाई अन्य भक्तोंके साथ कीर्तन कर रही थी। कई लोगोंका ताल ठीक न था। जब शरीरका ही भान नहीं रह पाता, तो तालकी तो बात ही क्या? किसीने बडे बडे अक्षरोंमें लिखा, "तालसे गाओ।" अगले दिन मीराबाईने यह पढा तो उन्होंने उसे रद्द करके लिखा, "प्रेमसे गाओ।" कीर्तनमें तालकी अपेक्षा प्रेम प्रधान है।

कीर्तन करनेसे मनकी अशुद्धि धुलती है और हृदय विशुद्ध होता है।

प्रह्लाद बालकोंको समझा रहे हैं:- नाम ही ब्रह्म है। ईश्वरका निर्गुण स्वरूप अति सूक्ष्म है। मन, बुद्धि जब तक अति सूक्ष्म नहीं हो पाते, तब तक ईश्वरके निर्गुण स्वरूपका अनुभव नहीं हो सकता। ईश्वरका सगुण स्वरूप अतिशय तेजोमय है। प्रभुके सगुण स्वरूपका साक्षात्कार करनेकी शक्ति मनुष्यमें नहीं है। अर्जुनने कहा था कि "भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।" अर्थात् आपका यह रूप देख कर मेरा मन भयसे बहुत व्याकुल हो रहा है।

नामब्रह्मका दर्शन और अनुभव तो सभी कर सकते हैं। कीर्तनमें तालियां बजानेसे नादब्रह्म होता है। नादब्रह्म और नामब्रह्म एक होने पर परब्रह्मका प्राकट्य होता है। नामब्रह्मके साथ नादब्रह्मका संयोग होने पर प्रभुको प्रकट होना ही पडता है।

तालियां बजा बजा कर कीर्तन करो। प्रभु सभीको देखते है। कीर्तनमें जो तालियां नहीं बजाता है उसके लिए भगवान् सोचते हैं कि मैं मूर्ख ही हूं जो मैंने इसे हाथ दिए। किंतु अगले जन्ममें मैं अपनी भूल सुधार लूंगा और उसे दो और पांव दूंगा। प्रभुभजनमें तालियां बजानेमें शर्म क्यों? पापसे शर्म करो। पाप करनेमें हेठी है। जो प्रभुभजनमें तालियां बजानेसे कतराता है, उसे अगले जन्ममें परमात्मा हाथकी जगह दो पांव और दे देते हैं। अतः प्रेमसे तालियां बजा कर संकीर्तन करो।

प्रह्लादजीने बालकोंको आज्ञा दी- प्रेमसे कीर्तन करो।

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥

भा. ७-७-५२

भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए दान, तप, यज्ञ, शौच, व्रत आदि ही पर्याप्त नहीं हैं। वे तो केवल निष्काम प्रेमभक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं। अन्य सब कुछ तो विडंबनामात्र है। अतः भक्ति करो।

प्रह्लादजी सभीसे कीर्तन-मंत्र जप कराने लगे।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

यह मंत्र कलिसंतरण उपनिषद्का है। यह महामंत्र है। इसके जप करनेके लिए किसी भी विधिकी आवश्यकता नहीं है। इस मंत्रका जप चाहे जिस स्थितिमें और स्नान किये बिना भी हो सकता है। रास्तेमें चलते चलते जूता सहित भी इसका जप किया जा सकता है।

सभी बालक तालियां बजाते हुए " हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे " का कीर्तन करने लगे।

कथामें कीर्तन भी होना चाहिए। कीर्तनके बिना कथा परिपूर्ण नहीं हो पाती। कीर्तनसे पाप जलते हैं, हृदय विशुद्ध होता है, परमात्मा हृदयमें आ बसते हैं। अतः कीर्तन प्रेमसे करो।

प्रह्लादजी तन्मय हो गए और राधाकृष्णका दर्शन करके थे थै नाचने लगे। बालक भी प्रभुभजनमें मग्न होकर नाचने लगे। इतनेमें शंडामर्क आए। उन्होंने सोचा कि हिरण्यकशिपुने कहीं यह जान लिया तो बडा अनर्थ होगा। उन्होंने प्रह्लादसे कहा कि यह क्या ऊधम मचा रहे हो? बंद करो यह भजन। परंतु उनकी कौन सुनता? मन तो श्रीकृष्णसे जा लगा था, तो प्रह्लादने भी नहीं सुना। शंडामर्कने दौड कर प्रह्लादका हाथ पकडा। प्रह्लादका शरीर तो दिव्य था। ज्यों ही शंडामर्कने उनका स्पर्श किया, तो वे भी नाचने लगे।

उसी दिन हिरण्यकशिपुने सोचा कि मैं भी तो जरा देखूं कि गुरुजी कैसी शिक्षा दे रहे हैं? उसने वहां एक सेवक भेजा। सेवकने वह समूहनृत्य देखा तो सोचमें पड गया। नामसंकीर्तनमें लीन होकर गुरुजी और सभी बालक नाच रहे थे। सेवकने सोचा कि राजाको तो यह बात अच्छी नहीं लगती, अतः यदि वे जान जाएंगे तो गुरुजीकी हत्या करवा देंगे। सेवकने गुरुजीका हाथ पकड कर उन्हें आसन पर बिठलानेका प्रयत्न किया। किंतु गुरुजीके स्पर्शसे वह भी नाचने लगा। वह भूल ही गया कि वह इधर क्यों आया था। सत्संगकी महिमा ही न्यारी है।

सेवकको लौटनेमें देरी हुई तो राजाने दूसरा सेवक भेजा। उसने भी देखा कि वहां सबके सब संकीर्तनमें पागल होकर नाच रहे हैं। उस भजनमंडलीमेंसे किसी व्यक्तिके स्पर्शसे वह भी नाचने लगा।

इस प्रकार राजा सेवक भेजता गया और वे भी सब उधर जाकर नाचने लगे। राजाने सोचा कि यह क्या रहस्य है? वह स्वयं वहां दौडता हुआ आया। उसने देखा कि गुरुजी, बालकगण और सभी सेवक नाम-संकीर्तनमें लीन होकर नाच रहे है। इस दृश्यको देखकर राजा आगबबूला हो गया। उसने उन नाचनेवालोंमेंसे किसी एकका हाथ पकड कर नीचे बिठा दिया। राजाको स्पर्शसे कुछ भी न हुआ। क्योंकि वह तो बिजलीके बिगडे हुये गोले जैसा था। बिजलीका गोला यदि चालू हालतमें हो, तभी बिजलीका प्रवाह असर कर पाता है, अन्यथा नहीं।

भजन-कीर्तन रुक गया। गुरुजीने राजाको सारी बात बताई। तो वह क्रोधित होकर प्रह्लादसे कहने लगा.- अब भी तू मेरे शत्रु विष्णुका कीर्तन कर रहा है। जगत्में मेरे सिवाय कोई ईश्वर है ही नहीं। दुष्ट, आज मैं तुझे मार डालूंगा।

मेरा यह बालक स्वयं तो सुधरता है नहीं और अन्य बालकोंको भी बिगाड रहा है। ऐसा सोच कर राजाने लपक कर प्रह्लादका हाथ पकडा। राजा पर पुत्रकी भक्तिका रंग चढ नहीं पाया। जब गोला ही बेकार हो तो फिर विद्युत्शक्ति ही क्या करेगी?

राजाने प्रह्लादको धरती पर पटका तो धरतीमाताने उसे अपनी गोदमें उठा लिया।

प्रह्लादजीने पिताको प्रणाम किया। तो हिरण्यकशिपुने कहा कि तू मुझे प्रणाम तो करता है किंतु मेरा कहा तो मानता नहीं है। बता तेरा रक्षक विष्णु है कहां?

प्रह्लादने कहाः— पिताजी, मेरे भगवान् तो सर्वत्र और सभीमें हैं।

पिताजी, शायद आप यह मानते है कि आप वीर हैं। किंतु वीर तो वही है जिसने अपने आंतरिक शत्रुओंको पराजित किया है। आप मानते हैं कि आपने जगत्को जीता है। किंतु जगविजेता तो वही है जिसने अपने मनको जीत लिया है। कामक्रोधादि छै चोर आपके मनमें घसे हुए हैं, जो आपके विवेकधनको लूट रहे हैं। क्रोध न करें। आपके मुख पर आज मृत्युकी छाया दीख रही है अतः रागद्वेषका त्याग करके नारायणकी आराधना करें। मेरे नारायणका भजन कीजिए।

हिरण्यकशिपु क्रोधित होकर चिल्लाने लगाः— मेरा पुत्र होकर मुझे ही उपदेश दे रहा है? कहां है तेरा रक्षक विष्णु?

प्रह्लादः— मेरे प्रभु तो सर्वव्यापक हैं। वे मुझमें हैं और आपमें भी हैं। आपमें वे हैं तभी तो आप बोल पाते हैं। विष्णु सर्वमें हैं, सर्वत्र हैं।

हिरण्यकशिपुः— तेरे भगवान् यदि सर्वत्र हैं तो फिर इस स्तंभमें उनका दर्शन क्यों नहीं हो रहा हैं?

क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तंभे न दृश्यते।

क्या तेरे भगवान् इस स्तंभमें हैं?

प्रह्लादः— जी हां, मेरे प्रभु इसमें भी हैं। आपकी आंखोंमें काम है, अतः वे दिखाई नहीं देते।

हिरण्यकशिपु : मैं इस स्तंभको तोड कर विष्णुकी हत्या करूंगा?

राजा तलवार लेने गया। तो इधर प्रह्लाद सोचने लगे कि मैंने कह तो दिया कि भगवान् इस स्तभमें हैं किंतु क्या इसमें उनका वास हो सकता है? उन्होंने स्तभ पर जो कान लगाया तो अंदरसे गुरु गुरुकी ध्वनि आई। और प्रह्लादको विश्वास हो गया कि भगवान् इस स्तंभमें भी हैं। उन्होंने उस स्तंभका आलिंगन किया। अंदर नृसिंह स्वामी विराजमान थे। उन्होंने प्रह्लादको आश्वस्त किया कि वे इसमें हैं और प्रह्लादकी रक्षा करेंगे?

इधर हाथमें तलवार लेकर हिरण्यकशिपु दौडता हुआ आया और चिल्लाने लगा— बता, वह तेरा विष्णु कहां है?

प्रह्लादः— वे इसी स्तंभमें विराजमान हैं।

हिरण्यकशिपुने क्रोधावेशमें उस स्तंभ पर तलवारका प्रहार किया। तुरंत श्री नृसिंह स्वामी गुरु गुरु बोलते हुए उस स्तंभमेंसे प्रकट हुए। उन्होंने हाथ बढाकर हिरण्यकशिपुको

गोदमें बिठा लिया और कहा कि यह न रात है और न तो दिन, न धरती है, न आकाश। घरमें भी नहीं बाहर भी नहीं किंतु देहली पर तुझे मारूंगा। अस्त्र या शस्त्रसे नहीं, नाखूनसे मारूंगा।

और भगवान्‌ने उस असुरको नाखूनसे चीर कर मार डाला।

नृसिंह भगवान्‌की जय।

मनुष्यके दुःखका कारण उसका देहाभिमान है। शरीर घर है। शरीरघरमें रहनेवाली जीभ देहली है। उसे न तो अंदर कहा जा सकता है और न बाहर। यदि अभिमानको मारना है तो जीभ पर ठाकुरजीका नाम रखो।

अपने भक्त प्रह्लादके वचनोंको कृतार्थ करने और अपनी सर्वव्यापकता सिद्ध करनेके हेतु भगवान् नृसिंहके स्वरूपमें वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन काष्ठस्तंभमेंसे प्रकट हुए थे।

पंजाबमें आजके मुलतान शहरमें हिरण्यकशिपुकी राजधानी थी, जहां नृसिंह स्वामीका प्राकट्य हुआ था। इसी कारणसे पंजाबवासी अपने नामके साथ सिंह शब्दका प्रयोग करते हैं। वे सिंहके समान बलवान् हैं। आज भी वे शक्तिशाली हैं। गुजरातकी जनता बकरी-सी भीरु बन रही है। सत्त्वहीन भोजन और चायपान करनेवाला शक्तिशाली कैसे बन सकता है? पंजाबवासी दूध और लस्सीका उपयोग अधिक करते हैं। किसी गुजराती युवासे दो सेर दूध पीनेको कहा जाएगा तो वह कहेगा– नहीं नहीं। इतना दूध मैं किस तरह पी सकता हूं? मेरे पेटमें गडबड हो जाएगी। जो दो सेर दूध नहीं पी सकता है वह देशसेवा कैसे करेगा?

बलवान् बनो। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" शक्तिहीन पुरुष आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता।

नृसिंह भगवान् भी 'गुरु गुरु' का उच्चारण करते थे। यही बताता है कि गुरुके बिना भगवान्‌के दर्शन शक्य नहीं हैं।

हर प्रकारकी साधना की जाए, विवेक-वैराग्य भी हो, षट्संपत्ति आदि भी हों, किंतु जब तक किसी संतकी, गुरुकी कृपा नहीं होती, तब तक मन शुद्ध नहीं हो पाता और भगवान्‌की प्राप्ति भी नहीं हो पाती।

मनुष्य चाहे जितनी साधना करे किंतु संतकी कृपा होने पर ही मन हमेशाके लिए शुद्ध हो सकता है।

मन तो बडेसे बडे साधुओंको भी सताता है। वह बडा ही चंचल है। इसलिए मन शुद्धिके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

मल, विक्षेप आवरण आदिसे मन कलुषित और मलिन होता है।

जिस प्रकार मलिन या चंचल जलमें प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार मिलन, चंचल और आवरणयुक्त मनमें परमात्माका प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता।

अतः किसी संतका आश्रय लो। किसी गुरुकी शरणमें जाओ।

गुरुकृपाके बिना हृदय शुद्ध नहीं हो सकता। साधना करने पर भी सद्गुरुकी कृपाके बिना काम नहीं बनेगा। मात्र साधन-साधनासे हृदय शुद्ध नहीं हो पाएगा।

नृसिंह स्वामीने गुरु शब्दका उच्चारण करके जगत्‌को बताया है कि सद्गुरुकी कृपाके बिना उनका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

नामदेवको भी गुरुके बिना ज्ञान नहीं हो पाया था।

आजकलके लोग पुस्तक पढकर ज्ञानी वन जाते हैं। उन्हें गुरुकी, ब्रह्मचर्यपालनकी, मौनव्रतकी, सदाचारकी संतसेवाकी, मानों आवश्यकता ही नहीं है। विस्तरमें लेट कर पुस्तक पढकर ज्ञानी वन जाते हैं ?

एक बार महाराष्ट्रमें संतोंकी एक मंडली-सी हो गई।

भक्तमंडलीके संतोंकी परीक्षा करनेके लिए मुक्तावाईने गोरा कुम्हारसे कहा।

नामदेवको अभिमान था कि वह भगवान्का प्यारा है और वे उससे बातें भी करते हैं।

गोराकुम्हार सभीके सिर पर एक एक चपत लगा कर परीक्षा करने लगा।

उसने नामदेवके मस्तक पर भी एक चपत लगाई। ऊपरसे तो नामदेवने कहा कुछ भी नहीं, किंतु उनका मुंह फुला गया। उन्होंने अभिमानवश सोचा कि कहीं मिट्टीके वर्तनकी भांति मेरी परीक्षा हो सकती है क्या ? अन्य भक्तोंके चेहरेके भाव अपरिवर्तित ही रहे।

गोराकुम्हारने अपना निर्णय सुनायाः– सभीके भांडे (मस्तक) पक्के हैं किंतु इस नामदेवका कच्चा है।

यह सुनकर नामदेव बोले– तुम्हारा सिर ही कच्चा है। तुम्हें शिक्षाकी आवश्यकता है।

नामदेवने विट्ठलनाथजीके पास आकर वह सारी घटना सुनाई।

विट्ठलनाथजीने कहा– नामदेव, यदि मुक्तावाई और गोराकुम्हार कहते हैं कि तेरा सिर कच्चा है, तो अवश्य तू कच्चा ही होगा।

नामदेव, तुझे अभी तक सर्वव्यापक ब्रह्मके स्वरूपका अनुभव ही नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि तूने अव तक किसी सद्गुरुका आश्रय नहीं लिया है। तू मंगलवेढामें रहनेवाले मेरे भक्त विसोबा खेचरके पास जा, वह तुझे ज्ञान देगा।

नामदेव उन्हें ढूंढते हुए शिव मंदिरमें पहुंचे। वहां देखा तो विसोबा खेचर शिवलिंग पर पांव पसारकर सोए हुए थे।

विसोबा पहलेसे ही जान गए थे कि नामदेव आ रहे है, अतः वे उन्हें शिक्षा देनेके हेतु ही शिवलिंग पर पांव पसार कर सोए हुए थे।

नामदेव यह दृश्य देखकर सोचने लगे कि जो व्यक्ति भगवान्का अपमान कर रहा है वह मुझे कौन-सी शिक्षा दे सकेगा ?

नामदेवने विसोबासे कहा कि वे शिवलिंग परसे पांव हटा लें। विसोवा खेचरने नामदेवसे कहा– तू मेरे पांव उठा कर किसी ऐसे स्थान पर या ऐसी दिशामें रख दे कि जहां शंकरका अस्तित्व ही न हो।

नामदेव विसोवाके पांव इधर उधर करने लगे। किंतु वे जहां भी खेचरका पांव रखते थे वहीं पर शिवलिंग प्रकट होता जाता था और इसप्रकार सारा मंदिर शिवलिंगोंसे भर गया।

नामदेव यह देखकर आश्चर्यमें डूव गए। विसोवाने उनसे कहा– तू वास्तवमें अभी कच्चा ही है। सभी स्थानोंमें तू अव भी ईश्वरका दर्शन नहीं कर सकता। विश्वमें भगवान् तो सूक्ष्म रूपसे हर जगह व्याप्त हैं। तू सभी जड-चेतनमें ईश्वरको निहार।

इस प्रकार जव भक्ति और ज्ञानका साथ मिल गया, तो नामदेव सभीमें और हर जगह ईश्वरका दर्शन करने लगे।

ज्ञान प्राप्त करनेके बाद नामदेव वापस लौटे। वापस लौटते हुए रास्तेमें किसी वृक्षके नीचे बैठ कर वे कहीं भोजनकी तैयारी कर रहे थे कि एक कुत्ता रोटी चुराकर भागा। पर आज तो नामदेवने उस कुत्तेमेंभी भगवान्‌का ही दर्शन किया। रोटी सूखी थी। अतः वे घी लेकर उस कुत्तेके पीछे यह चिल्लाते हुए भागे–रुक जा, रोटी तो सूखी है। मैं तुझे उस पर घी लगाकर दूं।

यदि गुरु ही सांसारिक बंधनोंमें और विषयोंमें फंसे हुए हैं, तो निश्चय जानो कि वे तुम्हें भी सांसारिक बंधनोंसे मुक्त नहीं करा पाएंगे।

यदि हम यह मानने लगें कि ईश्वर सर्वत्र सर्वव्यापी हैं तो पाप करनेके लिए कोई स्थान ही नहीं मिलेगा।

ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव हो जाने पर पाप करनेके लिए न तो कोई स्थान ही मिलेगा और न तो कोई समय ही।

हिरण्यकशिपुका संहार तो हो गया किंतु नृसिंह स्वामीका क्रोध अभी तक कायम ही था। उनका क्रोधित स्वरूप देखकर तीनों लोक भयभीत हो गए। किसीमें भी यह साहस नहीं था कि वह उनके पास जा सके। ब्रह्माजीने भी उन्हें शांत होनेके लिए प्रार्थना की। किंतु वे सुनें तब न?

आखिर ब्रह्माने लक्ष्मीजीसे कहाः– माताजी, आप ही इन्हें शांत कीजिए। देवोंने भी उनसे प्रार्थना की।

लक्ष्मीजीने सोचा कि वे मेरे स्वामी हैं, अतः यदि मैं उनके पास जाऊंगी, तो वे शांत हो जाएंगे। मनमें ऐसा अभिमान लेकर वे उनके पास पहुचीं। पर भगवान् तो नम्र व्यक्तिकी ही बात सुनते हैं, अभिमानीकी नहीं। आज उन्होंने लक्ष्मीजीकोभी पहचाननेसे इन्कार कर दिया।

अब भगवान् ब्रह्माने प्रह्लादसे ही कहा– बेटे, तेरे पिता पर ये क्रोधित हुए हैं, अतः तू ही उन्हें मना ले। प्रभु आज तेरे लिए ही प्रकट हुए हैं, अतः यदि तू उनके पास जाएगा तो वे शांत हो जाएंगे।

प्रह्लादने प्रभुके पास जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्हें देखकर प्रभुके हृदयमें आनन्दका सागर उमड आया। प्रह्लादको गोदमें बिठला कर वात्सल्यभावसे उनका शरीर चाटने लगे।

प्रह्लादकी भांति भगवान्‌की गोदमें जो विराजमान होता है, उसका काल कुछ भी नहीं बिगाड सकता।

परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए शुद्ध प्रेम आवश्यक है। ज्ञान आदिकी तो महत्ता कम ही है। शब्दज्ञान आवश्यक नहीं है। अनेक बार शब्दज्ञान प्रभुभजनमें बाधक हो जाता है।

अन्यकी क्षति ढँकनेके लिए ज्ञानी बनाया जाता है, क्षति खोल कर रखनेके लिए नहीं। प्रेम–भक्तिके विना ज्ञान निरर्थक है।

हिरण्यकशिपु जैसोंके लिए भगवान् भयंकर और क्रूर हैं। किंतु प्रह्लाद जैसोंके लिए तो वे कमलके समान कोमल हैं।

विष्णु सहस्रनाममें भी भगवान्‌को भयरूप, और भयकारकके साथ साथ भयनाशी भी बताया गया है ।

भगवान् दुष्टोंके लिए भयरूप और भयकारक हैं जब कि भक्तोंके लिए वे भयका हरण करनेवाले हैं ।

नृसिंह स्वामीने प्रह्लादसे कहा:- तेरे पिताने तुझे बहुत सताया । मुझे प्रकट होनेमें जो विलंब लगा, उसके लिए मैं तुझसे क्षमा मांगता हूं ।

प्रह्लादकी भक्तिकी दिव्यता तो देखिए कि आज भगवान् भी उनसे क्षमाप्रार्थना कर रहे हैं ।

जिस प्रकार गौमाता अपने बछडेको चाटती है, उसी भांति नृसिंह स्वामी प्रह्लादको चाटने लगे और धीरे धीरे उनका क्रोध कम होने लगा ।

प्रह्लाद सत्त्वगुण है । हिरण्यकशिपु तमोगुण है ।। सत्त्वगुण और तमोगुणका यह युद्ध है । इसमें भगवान प्रह्लादका-सत्त्वगुणका पक्ष लेते हैं । शुद्ध सत्त्वगुणके आगे तमोगुणका नाश अवश्य ही होता है ।

प्रह्लादजीके वचनकी सार्थकता और अपनी सर्वव्यापकताकी सिद्धिके हेतु नृसिंह स्वामी स्तंभमेंसे प्रकट हुए थे ।

सभी जानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक हैं । किंतु इस बातका अनुभव बहुत कम व्यक्तियोंको ही होता है । यदि ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव सभी करें तो घर ही वैकुंठ बन जाए । घरमें कोई झगडा ही न होने पाए । उस घरसे पापका नाम ही मिट जाए ।

सर्वव्यापकका अर्थ है सभीमें बसे हुए, सभीमें समाए हुए । दूधमें माखन दीखता नहीं है, फिर भी उसके अणुपरमाणुमें वह समाया हुआ है । इसीप्रकार ईश्वर भी जगत्‌के सभी स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंमें बसे हुए हैं । उनका अभाव कहीं भी नहीं है । ईश्वर तो अणुसे भी अणु और महान्‌से भी महान् हैं । उनका कहीं भी अभाव नहीं है, अतः वे सर्वव्यापी हैं ।

जो ईश्वरको सर्वत्र विराजमान समझता है उसके जीवनमें दिव्यता आती है । सबमें ईश्वरको निहारो । प्रथम मातृदेवो भव, फिर पितृदेवो भव, और अंतमें परस्पर देवो भव । ईश्वरका पारस्परिक दर्शन करो । लोग एक-दूसरेसे मिलने पर राम-राम कहते हैं । इसका अर्थ यही है कि मुझमें और तुममें राम निहित हैं ।

प्रत्येक जड-चेतन पदार्थमें ईश्वरका दर्शन करोगे, तो पाप तुम्हारे पास नहीं फटक सकेगा । विवाह करके आने पर वधूकी लक्ष्मीभावसे पूजा की जाती है । वर नारायण है और वधू लक्ष्मी । यदि लोग यह सोचें कि हमारे घरमें साक्षात् लक्ष्मी-नारायण पधारे हैं तो घर ही वैकुंठ बन जाए ।

सबमें ईश्वरका अनुभव करनेमें लाभ ही लाभ है । ऐसा अनुभव करनेसे मन विकार-वासनासे रहित हो जाएगा ।

ईश्वर कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं कि जो एक ही स्थानमें रह सके । वे तो सर्वव्यापी हैं और सर्वत्र हैं ।

ईश्वरकी सर्वव्यापकताको केवल जानने-मात्रसे विशेष लाभ नहीं होगा । उसका अनुभव भी करना चाहिए और उसे व्यवहारमें भी लाना चाहिए ।

भगवान्‌को केवल चन्दन, पुष्प आदिका अर्पण करना ही भक्ति नहीं है। सभीमें भगवत् भाव रखना ही सच्ची भक्ति है। किसी मूर्तिमें जो भगवान् तुम्हें दीखते हैं, वे ही सर्वत्र व्याप्त हैं। ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव जो करता या कर सकता है, उसीका जीवन धन्य है। ऐसा अनुभव करनेवाला कभी पाप नहीं कर सकता। तुम निश्चय करो कि तुम प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाओगे।

शुद्ध व्यवहार ही भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दंभ है, अभिमान है, उसका व्यवहार अशुद्ध है। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं है वह भक्तिका आनद पा ही नहीं सकता। ईश्वरकी सर्व-व्यापकताके अनुभवके विना व्यवहारशुद्धि नहीं हो सकती।

हमेशा यही सोचो कि हमारा प्रत्येक व्यवहार और प्रवृत्ति ठाकुरजी देखते हैं। कोई भी व्यवहार ऐसा न होना चाहिए कि जिसमें कोई उपदेश न हो।

व्यवसाय-कारोबार कोई अपराध नहीं है। सेना भगत नाईका धधा करते थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि मैं लोगोंके सिरसे तो मैलका बोझ उतारता हूं किंतु अपनी ही बुद्धिकी मलिनता मैं अभीतक दूर नहीं कर सका हूं।

कई महापुरुषोंने अपने व्यवसायमेंसे ज्ञान पाया है। महाभारतमें ऐसे कई दृष्टांत हैं कि जिनमें यह बताया गया है कि महाज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यादिके घर सत्संगके हेतु जाते थे।

जब महाज्ञानी जाजली ऋषिको अपने ज्ञान पर अभिमान हुआ, तो उन्होंने आकाश-वाणी सुनी कि तुम तुलाधर वैश्यसे जाकर मिलो। ऋषि वहां गए। बातों ही बातोंमें उन्हें ज्ञात हुआ कि ये भी ज्ञानी हैं। तो उन्होंने तुलाधरसे पूछा कि उन्होंने ऐसा ज्ञान कहांसे पाया है। तुलाधरने कहा– "वैसे तो मेरे माता-पिता ब्राह्मण हैं, फिर भी बहुत कुछ ज्ञान मुझे अपने व्यवसायमेंसे ही मिला है। मेरा व्यवसाय ही मेरा गुरु है। श्रमके अनुपातसे ही लाभ लेता हूं। तुलाकी डडीकी भांति मैंने अपने मन-बुद्धिको सरल और समान बना लिया है।" वैश्य लाभ (नफा) न कमाए तो अपने कुटुंबका परिपालन कैसे करेगा? नफा कमाना वैसे तो अपराध नहीं है किंतु अयोग्य नफा लेना गुनाह है।

वाणिज्य भी भक्ति है। ऐसा मत सोचो कि भक्ति केवल मंदिरमे ही की जा सकती है। भक्ति हर जगह की जा सकती है। ईश्वरसे अविभक्त रह कर किया गया व्यवहार भक्ति है। ईश्वरसे कभी अलग मत होओ।

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

यदि मनुष्य ग्राहकमें ईश्वरका दर्शन करके व्यापार करे, तो उसका वह व्यापार भी भक्ति ही है। योग्य लाभ कमाना वैश्यका धर्म है। किंतु जब भी ग्राहकके साथ व्यापारी बातचीत करने लगता है तो वह यह भूल जाता है कि इस ग्राहकमें भी भगवान् हैं। और इस प्रकार किया गया वह अयोग्य व्यापार पापमय हो जाता है। दुकानमें स्थापित प्रभुकी उपस्थितिमें ही बहुत-से व्यापारी पाप करते हैं। पांचका माल पच्चीसमें देते हुए कहते हैं कि "मैं यह मूल कीमतमें ही बेच रहा हूं।" ऐसा कभी न करें।

भगवत् कथा मनको सावधान करनेके लिए ही है।

अनुभव करो कि प्रभु सर्वव्यापी हैं, सर्वत्र हैं। मैं जो कुछ बोलता हूं उसे भगवान् सुनते हैं, और मैं जो कुछ देखता हूं उसे भगवान् भी देखते हैं।

मनुष्यका शारीरिक पाप तो समाज भी देख सकता है, किंतु उसका मानसिक पाप केवल परमात्मा ही देख सकते हैं। मानसिक पाप ही सबसे बुरा है। बिलकुल पाप न करना बडा पुण्य है।

नृसिंह भगवान् अवकाशसे नहीं, स्तंभमेंसे प्रकट हुए थे। मात्र चेतनमें ही नहीं, जडमें भी ईश्वरका दर्शन करो। ईश्वर जड और चेतन दोनोंमें हैं। लौकिक दृष्टिसे पृथ्वी जड है किंतु इसमें भी ईश्वरकी भावना करनी चाहिए।

एक महात्माके दो शिष्य थे। वे दोनों पढे-लिखे थे, कथाकार भी थे। जब महात्माकी मृत्यु निकट आई तो उनकी गद्दीके लिए उन दोनों शिष्योंके बीच झगडा शुरू हो गया। महात्मा भी सोचने लगे कि वारिस किसे बनाया जाय? आखिर उन्होंने दो फल मंगवाकर दोनोंको एक एक देते हुए कहा कि इस फलको किसी ऐसे स्थान पर जाकर खाना, जहां तुम्हें देखनेवाला कोई भी न हो।

वे दोनों फल लेकर चले गए। एक शिष्यने सोचा कि मैं कमरा बंद करके खा लूं, क्योंकि वहां मुझे कौन देखनेवाला है? और उसने कमरा बंद करके फल खा लिया।

दूसरा शिष्य सारा दिन फल लेकर इधर उधर घूमता फिरा किंतु उसे तो एक भी स्थान ऐसा नहीं मिला जहां कोई न हो। वह जहां भी गया वहीं पर उसे परमात्माकी उपस्थितिका अनुभव हुआ। वेदोंमें भी कहा गया है कि प्रभु सर्वत्र हैं, विश्वतोमुखी हैं। इस प्रकार दूसरे शिष्यने ज्ञान केवल पाया ही नहीं था, अपितु उसने वह ज्ञान आत्मसात् भी किया था।

पहला शिष्य मात्र कथा करता था। वह ईश्वरके व्यापक स्वरूपको समझ नहीं पाया था।

गुरुजीने उस दूसरे शिष्यको अपना वारिस बनाया।

कथा कहना आसान है किंतु ईश्वर सर्वत्र हैं ऐसा समझ कर व्यवहार करना कठिन है।

प्रह्लाद ऐसे अटल निष्ठावान् थे कि वे सभीमें ईश्वरको निहारते थे।

अनेकमें एक (प्रभु) का दर्शन करना ही भक्ति है। जो सभीमें उसी एक ही तत्त्वको देखे वही ज्ञानी है। ज्ञानी एकमें अनेकका लय करता है। तुम भी उसी तरह एकमें अनेकका लय करो। यह वेदांतकी प्रक्रिया है। अनेकमें एकको देखो।

वैष्णव अनेकमें एकको देखते हैं। शाब्दिक भिन्नता हो सकती है किंतु ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्गमें वैसी कोई भिन्नता नहीं है।

हनुमानजीने सीताको रामकी मुद्रिका दी, तो उन्होंने उसमें भी रामके दर्शन किए।

एक परमात्मा ही सत्य हैं जो अनेकोंमें बसे हुए हैं।

अनेकमें एकको देखना भक्ति है। एकमें अनेकको देखना ज्ञान है।

शरीर होते हुए भी यदि उसमें प्राण-आत्माका अभाव हो तो उस शरीरकी कीमत ही क्या? ज्ञानी बाह्य रूपरंग नहीं देखते। किंतु बाह्य रूपरंगकी सुंदरताके कारणभूत ईश्वरका ही चिंतन करते हैं।

भगवान् शंकराचार्यने दुःखसे कहा था कि लोग मांसकी (देहकी) मीमांसा तो करते हैं किंतु आत्माकी मीमांसा कोई भी नहीं करता।

एक गृहस्थका स्वभाव था कि वह साधुसंतको भोजन कराये विना स्वयं भोजन नहीं करता था। एक वार कोई महात्मा वहां घूमते-फिरते आए। उस गृहस्थने उनकी पूजा करके उन्हें भोजन करने बिठलाया। घरमें दूध नहीं था। उसने नौकरसे कहा कि दौड कर दूध ले आ। नौकर गया, पर तुरंत ही लौट कर उसने सेठसे पूछा- काली गायका ले आऊं या सफेद गायका? तो उन्होंने उत्तर दिया कि जरूरत दूधकी है, चाहे गाय जैसी भी हो। पर महात्मा भोजन पूरा करे उससे पहले ही ले आना। नौकर दौडा और फिर लौटकर पूछने लगा कि बूढी गायका लाऊं या जवान गायका। सेठ क्रोधित होकर मारने दौडे। महात्माने सेठसे क्रोधका कारण पूछा। सेठने कहा- कितना मूर्ख है यह नौकर। कई वार उसे दूध लेने भेजा फिर भी वह नहीं ला सका।

महात्माने कहा- जो परमात्मा इस सेवकमे है वही तुम्हारे शरीरमें भी हैं। हमें शरीरकी नहीं, शरीरमें वसे हुए परमात्माकी आवश्यकता है। तुम दोनोंमें एक ही प्रभुका वास है। उसे मत मारो।

सभीमें एक ही ईश्वरका वास है। प्रत्येक स्त्री-पुरुषमें, प्रत्येक जड-चेतन, स्थावर-जंगम वस्तुमें उसी प्रभुका दर्शन करो।

जगत्में मूर्ख कोई नहीं है। ईश्वरके ही सभी अंश है। जो अन्यको मूर्ख मानता है, वह स्वय मूर्ख है।

हमारे देशमें तो पशु तक की पूजा की जाती है। भैरवनाथका वाहन कुत्ता है और शीतला माताका वाहन है गधा। अतः कुत्ते और गधे भी तिरस्कार्य नहीं है।

ईश्वर चैतन्यरूपसे सभीमें हैं अतः तुम अनुभव ऐसा करो कि ऐसे स्वभाववालेकी प्रत्येक क्रिया भक्ति और ज्ञानमय होगी।

नृसिंह भगवान्ने प्रकट होते समय 'गुरु' शब्दका उच्चारण किया था। यह सच है कि ईश्वर सर्वत्र हैं। किंतु जब तक सद्गुरुकी ओरसे दिव्य दृष्टि न मिले, तब तक ईश्वरके दर्शन नहीं किए जा सकते। जो जितेन्द्रिय है, वही स्वतंत्र है। स्वातंत्र्य मनुष्यको स्वेच्छाचारी वनाता है। अतः स्वतत्र और स्वच्छदी न वनो।

बुद्धिका कभी विश्वास मत करो। किसी संतको गुरु वनाकर उसके अधीन रहो। जो तुम्हें पाप करनेसे रोके ऐसे किसी सतके अधीन रहो। गुरु करना ही चाहिए।

किंतु गुरु वनानेके पूर्व अच्छी तरहसे यह सोचना-परख लेना चाहिए कि जिस व्यक्तिको तुम गुरु वनाने जा रहे हो, वह योग्य और सुपात्र भी है या नहीं। किसीने कहा है-

पानी पीना छानके,
गुरु करना जानके।

वर्तमान जगत्के किसी महापुरुषमें यदि तुम्हें श्रद्धा नहीं है तो प्राचीन महात्माओंको ही गुरु मानकर उनके अधीन रहो। महापुरुष अमर होते हैं। शंकराचार्य और वल्लभाचार्य जैसे संत अमर हैं। उन्हें गुरु मानकर उनकी सेवा करो और उनका आश्रय भी लो।

गुरुके विना कल्याण नहीं हो सकता। किसी संतके चरणोंका आश्रय लेने पर सद्‌गुरु कृपा करेंगे। यदि वे संत कृपा करेंगे तो तुम्हारी मानसिक वासना और विकारोंका नाश होगा। मन-बुद्धिकी वासना संतसेवाके बिना दूर नहीं होती। मन पर सत्संग-सेवाका अंकुश रखो। बुद्धिको किसी संतके चरणोंमें लगा दो। जब तक बुद्धि परमात्मासे विवाहित न हो जाए तब तक उसे संतके आधीन ही रखो। सद्‌गुरुकी कृपाके विना हर किसीमें ईश्वरके दर्शन नहीं हो सकेंगे।

जगत्‌में वैसे तो कई संत है। किंतु उन सभी पर हमारे कल्याणका उत्तरदायित्व नहीं है। हम जिसे गुरु बनाएं, वही संत हमारे कल्याणार्थ उत्तरदायी हैं।

शीघ्रतासे, विना सोचे-समझे किसीका गुरु बनना भी अच्छा नहीं है। गुरु बननेसे शिष्यके पापोंका उत्तरदायित्व गुरुके नाम पर आ जाता है। शिष्यके पापोंका न्याय करनेके समय गुरुको भी वहां बुलाया जाता है और उनसे पूछा जाता है कि उन्होंने शिष्यको पाप करनेसे रोका क्यों नहीं, उसे सन्मार्ग पर क्यों नहीं ले जाया गया। तब शिष्यके साथ साथ गुरुको भी दंडित होना पडता है।

मंत्र, माला और मूर्ति तथा गुरु बार बार बदलना ठीक नहीं है। अपनी माला किसी औरको मत दो।

नृसिंह स्वामीका प्राकट्य स्तंभमेंसे हुआ था। तुम ही सोचो कि वे स्तंभमें कैसे रह पाए होंगे। स्तंभ तो ठोस था, पोला नहीं। तो ठाकुरजी अंदर कैसे रहे होंगे? ठाकुरजी तो उक्त स्तंभमें सूक्ष्म रूपसे बसे हुए थे, पर प्रह्लादजीकी भक्तिसे आकर्षित होकर उन्होंने स्थूल-रूप धारण किया था। प्रह्लादका प्रेम इतना शक्तिशाली था कि प्रभुको सूक्ष्मरूप छोड कर स्थूलरूप धारण करना पडा।

शिवजी उमासे कहते हैं:-

अगुन अरूप अलख जो जोई।
भगतप्रेम बस सगुन सो होई॥

जब सभी देव सोच रहे थे कि प्रभु कहां मिलेंगे, तो शंकर भगवान्‌ने कहा था-

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥

अतिशय प्रेमके विना प्रभु अपने स्वरूपका दर्शन नहीं देते। प्रभुके साथ प्रेम करना होगा।

सगुन निर्गुन नहीं कछु भेदा।

प्रह्लादजीकी प्रेमभक्तिसे आकृष्ट होकर भगवान् निराकारसे साकार बने।

बुद्धि जब तक सूक्ष्म नहीं हो पाती, उससे ईश्वरका चिंतन नहीं हो सकता। परमात्मा प्रेमके कारण ही साकाररूप धारण करते हैं। परमात्मा निर्गुण भी हैं और सगुण भी। निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही हैं। निर्गुण ही सगुण बनता है। प्रभु स्थूल भी हैं और सूक्ष्म भी। वे कोमल भी हैं और कठोर भी।

वेदान्ती मानते हैं कि यह सब धर्म मायाके कारण आभासित होते हैं। वैष्णवाचार्य मानते हैं कि विरुद्ध धर्माश्रयी परमात्मा हैं। जो नृसिंह स्वामी हिरण्यकशिपुके प्रति कठोर हो गए थे, वे ही प्रह्लादके कारण कोमल हो गए।

ज्ञानी पुरुष सभीमें भगवद्दृष्टि रखते हैं। दृश्य पदार्थमेंसे दृष्टिको हटा कर द्रष्टामें स्थिर करो। दृश्यमेंसे दृष्टिको हटा लो और सर्वद्रष्टा, सभीके साक्षी परमात्माके स्वरूपमें दृष्टि स्थिर करो।

एक थे महात्मा। उन्हें जो कुछ दिखाई देता था, ईश्वरमय दिखाई देता था। उनके निकट आकर एक गृहस्थने कहा- मैं ईश्वरके दर्शन करना चाहता हूं।

महात्मा- समझ लो कि तुम भी ईश्वर ही हो।

गृहस्थ- मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि मैं ईश्वर नहीं हूं।

महात्मा- तुम्हें ईश्वरका दर्शन करना है न? अतः तुम यदि ईश्वर नहीं हो तो तुम्हारे सिवाय जो भी कुछ दिखाई देता है उसीको ईश्वर मान लो। जगत्में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है उसमें ईश्वरका दर्शन करो। ऐसा ही मान कर सारा व्यवहार करो।

गृहस्थने वैसा किया तो उसका पाप कार्य अपने आप रुक गया। उसका व्यवहार शुद्ध हो गया।

एक बार उसी गृहस्थने फिर महात्मासे पूछा- सबमें ईश्वर है ऐसा अनुभव करनेसे शांति तो मिलती है, किंतु कभी कभी ऐसी शंका भी होती है कि यह सब जो दिखाई दे रहा है उसमें ईश्वर नहीं है। तो मैं क्या करूं?

महात्मा समझाने लगे- यदि तुझे लगता है कि जो कुछ दीखता है उसमें ईश्वर नहीं है, और तुझे ईश्वरके दर्शन भी करने हैं। तो अब ऐसा कर कि जो कुछ दृश्यमान है, उसमें ईश्वर नहीं है ऐसा मान कर सभी कुछका मोह छोड दे। दृश्यमानके साथ प्रेम न कर। दृश्य-वस्तु ईश्वर नहीं है। तू द्रष्टाके साथ प्रेम कर। संसारके दृश्यमान पदार्थोंके बदले दृश्यके द्रष्टाके साथ प्रेम कर। अब जो अदृश्यमान है वह ईश्वर है और ईश्वर द्रष्टा है ऐसा मान। ईश्वर दृश्य नहीं, द्रष्टा हैं।

वेदांत कहते हैं कि ईश्वर दृश्य नहीं, अपितु सबके द्रष्टा हैं। ईश्वरमें दृश्यत्वका आरोप मायाके कारण होता है। जो व्यक्ति सर्वद्रष्टामें दृष्टि स्थिर करे, उसे प्रभु मिलते हैं।

महात्माने दो मार्ग बताए। (१) जो दृश्यमान है वह ईश्वर है। (२) जो अदृश्य है वह ईश्वर है। ईश्वर द्रष्टा हैं। जो सभीका द्रष्टा और सभीका साक्षी है उसे आसानीसे कौन जान सकता है? पूर्ण वैराग्यके बिना ज्ञानानुभव नहीं हो पाता। अतः हम साधारण मनुष्योंके लिए तो भक्तिमार्ग ही अच्छा है। यह जो कुछ दृश्यमान है, वह सब ईश्वरमय है।

वैष्णव मानते हैं कि सभी पदार्थोंमें ईश्वर है। ऐसा मान कर व्यवहार करनेसे भक्ति-मार्गमें सफलता मिलेगी। ईश्वरके किसी भी स्वरूपके प्रति आसक्ति रखे बिना भक्ति नहीं हो पाएगी।

शंकर भगवान् समाधिमें बैठते थे। समाधिमें क्या है? अपने स्वरूपको स्वयं देखना ही समाधि है।

कोई भी एक मार्ग निश्चित कर लो। प्रत्येक दृश्य वस्तु विनाशी है, ऐसा मान कर मोहका त्याग करके द्रष्टाके साथ प्रेम करोगे तो वेदांतानुसार आत्म-साक्षात्कार होगा। द्रष्टामें दृष्टि स्थिर करो अथवा प्रत्येक पदार्थमें ईश्वरका अनुभव करो।

प्रह्लाद स्तुति करते हैं- हे प्रभु, बडे बडे सिद्ध महात्मा कई वर्ष तपश्चर्या करने पर भी आपका साक्षात्कार नहीं पा सकते है। किंतु राक्षसकुलमें जन्म मिलने पर भी मुझे आज आपने दर्शन देनेकी मुझ पर कृपा की।

भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए न तो अधिक शिक्षाकी आवश्यकता है और न तो अधिक अर्थोपार्जनकी। यदि धनके सहारे परमेश्वर मिलते होते तो ये धनिक लोग लाख दो लाख रुपयेमें प्रभुको खरीद लेते। अधिक शिक्षा या ज्ञानसे भी भगवान् नहीं मिलते। जो अधिक ज्ञानी है वह कई बार दूसरोंसे छल-कपट करनेसे भी बाज नहीं आता।

परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए संपत्ति, शिक्षा या उच्च कुलमें जन्म आवश्यक नहीं है। मात्र ब्राह्मण ही ईश्वरको पा सकते हों, ऐसा भी नहीं है। परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए आवश्यक है हृदयका शुद्ध प्रेम।

अधिक कमाना और उसको प्रभुसेवामें व्यय करना ठीक है, किंतु एक आसन पर बैठ कर परमात्माका ध्यान करना उससे भी अधिक अच्छा है।

संपत्तिसे परमात्मा नहीं मिल पाते। इसके विपरीत कई बार तो धन भगवद्सेवामें प्रभुभजनमें बाधारूप भी हो जाता है।

ज्ञानका आधिक्य तर्क-वितर्कका जन्मदाता है। अतः ज्ञानी भगवान्की स्मरण-सेवा ठीक तरहसे नहीं कर पाता। बहु ज्ञानी आरंभमें कुतर्क करता है। जब कि आरंभमें श्रद्धा आवश्यक है।

पढे-लिखे लोग अधिक कुतर्क करते हैं। वे कहते हैं कि पहले चमत्कार बताइए, बादमें हम आपके ठाकुरजीको नमस्कार करेंगे। दूसरोंको खुश करनेके लिए चमत्कारसे प्रारंभ करनेका काम वेश्याका है। क्योंकि उसे दूसरोंकी जरूरत है। ईश्वरको तो किसीभी भी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम्हें ईश्वरकी जरूरत है, तो श्रद्धासे सेवा-स्मरण करो और बादमें चमत्कार देखो। जादूगर भी चमत्कार दिखाता है। क्योंकि उसे धनकी जरूरत है। पहले चमत्कार और बादमें नमस्कार यह नियम इस जगत्के व्यवहारका तो हो सकता है, पर भगवान्के व्यवहारका नहीं।

परमेश्वरका व्यवहार है प्रथम नमस्कार और बादमें चमत्कार। विना चमत्कारका नमस्कार मानवता है। चमत्कारके बादका नमस्कार अभिमान है। कुछ तो सोचो। यह जगत् भी एक चमत्कार ही तो है। पुष्पमें सुगंध है तो बीजमें वटवृक्ष। माताके स्तनमें दूध कौन बनाता होगा? सारा जगत् ईश्वरका चमत्कार ही तो है।

और श्रद्धा-अंधश्रद्धा तो हमारे व्यावहारिक जीवनमें भी कहां नहीं है? कई बार डॉक्टरसे काम बिगड जाता है, फिर भी हम उसकी बातोंमें श्रद्धा रखते हैं। उससे तो कहा नहीं जा सकता कि पहले चमत्कार कर दिखाओ। डॉक्टरके प्रति श्रद्धा न होगी तो वह दवाई नहीं देगा और दवाईके विना बीमारी कैसे हटेगी?

इसीप्रकार सेवामार्गमें भी प्रथम आवश्यकता श्रद्धाकी है। परमार्थमें श्रद्धा आवश्यक है।

आजके शिक्षित लोग यह भी कुतर्क करते हैं कि भगवान् आहार तो करते नहीं। फिर उन्हें भोग क्यों लगाया जाता है? थालमेंसे कुछ कम तो होता नहीं है। पर वे यह नहीं जानते कि ठाकुरजी भोजन नहीं करते, किंतु सारतत्त्वका आहार कर लेते हैं। वे रसभोक्ता हैं। यदि वे सचमुच भोजन करने लगें, तो इस कलियुगमें कोई भोग लगाएगा भी या नहीं, इसीमें सन्देह है।

ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए अति ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। अंतकालमें ज्ञान कई बार विश्वासघात करता है। ज्ञानको यदि भक्तिका साथ है, तो ठीक बात है।

बीमार तो शरीर होता है, आत्मा नहीं, ऐसी बातें तो वेदांती भी नहीं कर सकता, क्योंकि यदि वेदांती बीमार हो जाता है तो उसे भी औषधि और फलादिकी आवश्यकता सताती ही है।

वेदांतके सिद्धांत निरर्थक नहीं हैं, परंतु उनका अनुभव भक्ति और प्रेमके अभावमें नहीं हो सकता। प्रेमकी, भक्तिकी आवश्यकता ज्ञानीको भी पडती है।

ज्ञानका उपयोग ईश्वरकी व्यापकताका अनुभव करनेके हेतु है।

ईश्वर सर्वत्र है ऐसा मानकर किया गया व्यवहार भक्ति बन जाता है।

स्वामी रामदासने दासबोधमें कहा है कि जो व्यवहारकुशल नहीं है वह परमार्थ कैसे कर पाएगा? पर जिसका व्यवहार अतिशय शुद्ध है वह परमार्थ ठीक तरहसे कर सकता है। पर जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं है वह भक्ति किस प्रकार कर सकेगा?

व्यवसाय या धंधा करना कोई पाप नहीं है। किंतु व्यवसायमें, धंधेमें ईश्वरको भूल जाना पाप है।

साधन-भक्तिमें सभी संत भी अपना अपना कामकाज करते थे। सेना नाई हजामतका धंधा करते थे, तो गोरा कुंभार मिट्टीके बर्तन बनानेका।

गजेन्द्र अनपढ पशु ही तो था। उसने न तो तपश्चर्या की थी और न तो अष्टांग योगकी साधना। पर उसकी भी प्रेमपुकार सुनकर, उसकी भक्तिके कारण भगवान् उस पर प्रसन्न हुए थे।

भक्तिसे भगवान् मिलते हैं। ईश्वरसे प्रेमभाव रखकर सेवा-स्मरण करते रहो। यदि भक्ति न हो तो ज्ञानीके ज्ञान और तपश्चर्याकी कोई सार्थकता नहीं है। ज्ञान तो चाहे जितना हो किंतु प्रभुप्रेम न हो तो उस ज्ञान और तपश्चर्याकी कोई कीमत नहीं है।

सभी साधन और साधनाका फल है श्रीकृष्ण-प्रेम। जो साधन प्रभु-प्रेम न जगा सके, उस साधनकी कोई कीमत नहीं है।

प्रभुमिलनके लिए जो आतुर नहीं है, ऐसे ब्राह्मणकी अपेक्षा प्रभुमिलनके लिए आतुर क्षुद्र व्यक्ति भी श्रेष्ठ है।

प्रभुको प्रसन्न करनेके दो साधन हैं। सेवा और स्मरण। प्रतिदिन तीन घंटे प्रभुकी सेवा और स्मरण करो। इन दो साधनोंसे भगवान् अवश्य मिलते हैं, और किसी वस्तुकी

आवश्यकता नहीं है। दक्षिणा देनेसे पुण्य नहीं मिल सकता। वह धनका सदुपयोग तो है किंतु स्वयं भी सेवा-स्मरण करना आवश्यक है। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन है प्रेम। सेवा और पूजामें धन नहीं, मन प्रधान है। स्नेह ही मुख्य वस्तु है।

श्री गोसाईंजी महाराजकी "दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता" में पद्मनाभदासकी कथा है। वे गरीब थे, लिहाजा भगवान्‌को चनेके छिलके भोगमें देते थे। ठाकुरजी उसमें भी मिष्टान्नका अनुभव करते थे।

भगवान् यह नहीं देखते हैं कि कोई उन्हें क्या देता है? वे तो मात्र यही देखते हैं कि कैसे भावसे दिया गया है।

सेवा-स्मरणसे भगवान् सेवकाधीन बन जाते हैं।

एकनाथ महाराज सारा दिन अविरत प्रभुसेवा और भजन करते रहते थे, सो थक जाते थे। उनकी ऐसी अविराम सेवासे प्रभु दयार्द्र हो गए। वे सोचने लगे मेरा भक्त मेरे लिए कितना श्रम करता है। बेचारा थककर चूर हो जाता है। चलो, मैं उसकी कुछ सहायता करूं, उसका श्रम कुछ कम कर दूं।

यह सोचकर भगवान्‌ने ब्राह्मणका रूप धरकर एकनाथके पास आकर कहा- भाई, मुझे अपना सेवक रख लोगे क्या?

एकनाथ बोले- मुझे नौकरकी जरूरत ही क्या है? मैं तो अपना सारा दिन प्रभुकी सेवा और स्मरणमें ही बिताता रहता हूं।

भगवान्- मैं तुम्हें ठाकुरजीकी सेवा करनेमें सहायता दूंगा।

एकनाथ- जैसी तेरी इच्छा। हां, तेरा नाम क्या है?

भगवान्- मेरा नाम है शिखंड्यो।

और इस प्रकार सेवा करते करते बारह वर्ष गुजर गए।

जिसे चंदनका तिलक लगाया जाता था वह स्वयं ही चंदन घिसने लगे। "तुलसीदास चंदन घिसे, तिलक लेत रघुवीर" वाली बात उल्टी हो गई। यही तो है भक्तिकी महिमा।

रुक्मिणीने सेवासे प्रभुको प्रसन्न करके वैसे तो आधीन कर लिया था फिर श्री मात्र एक ही तुलसीदलसे वे तुल गए थे।

श्री श्रीधरस्वामीने हरिविजयमें एक प्रसंगका वर्णन किया है।

एक बार सत्यभामाके मनमें अभिमान हो आया कि प्रभुको वही सबसे प्रिय है। एक दिन नारदजी घूमते-फिरते वहां आ पहुंचे, तो सत्यभामाने उनसे कहाः- मुझे हर जन्ममें यही पति मिले, ऐसा कोई उपाय बताएं।

नारदजी- आप जिस वस्तुका दान करेंगी, वही अगले जन्ममें आपको प्राप्त होगी। अतः यदि आप श्रीकृष्णको ही अगले जन्ममें पतिके रूपमें पाना चाहती हैं तो उनका दान कर दीजिए।

ऐसा दान देनेके लिए सत्यभामा तो तैयार हो गई किंतु ऐसे दानको कौन स्वीकार करता?

कोई भी व्यक्ति उस दानको लेनेके लिए इच्छुक नहीं था।

अन्तमें नारदजीको ही स्वीकार करनेके लिए समझाया गया। वे राजी हो गए।

सत्यभामाने संकल्प करके श्रीकृष्णका नारदजीको दान कर दिया।

श्रीकृष्णको दानमें पाकर नारदजी उन्हें अपने साथ ले जाने लगे।

सत्यभामा नारदजीसे पूछने लगीं- मेरे पतिको आप कहां लिए जा रहे हैं ?

नारदजी- आपने अभी अभी तो मुझे उनका दान किया है न, अतः वे मेरे हो गए। दानमें दी गई वस्तु दान लेनेवालेकी हो जाती है। अब कृष्ण पर मेरा अधिकार है।

अब सत्यभामाको अपनी क्षति समझमें आ गई। वे कृष्णको मांगने लगीं और नारदजी देनेसे इन्कार करने लगे।

उधर जब ये सारी बातें अन्य रानियों तक पहुंचीं, तो वे भी सभी दौड कर आ गईं, पर एक रुक्मिणी नहीं आई।

सभी रानियां नारदजीसे विनती करने लगीं कि उनके पतिको वापस दे दीजिए।

नारदजी- सत्यभामाने श्रीकृष्णका मुझे दान किया है, अतः अब तो वे मेरे हो गए हैं। हां, फिर भी यदि आप इन्हें वापस लेनेकी इच्छा करती हैं तो इनका जितना वजन है उतना सुवर्ण मुझे दे दें, तो मैं इन्हें लौटा दूं।

सत्यभामा प्रसन्न हो गईं। उन्होंने सोचा कि उनके पास तो ढेर-से आभूषण हैं और स्यमंतक मणि भी है। पतिका वजन होगा तो भी कितना होगा। वे अपने सारे आभूषण ले आईं।

किंतु यह क्या हुआ ? सत्यभामाने हीरा, मोती, स्यमंतक मणि सहित अपने सारेके सारे आभूषण तुलामें रख दिये, फिर भी कृष्णका पल्ला नीचा ही रहा।

अब तो सभी अन्य रानियां भी घबडा गईं और दौड दौड कर अपने अपने आभूषण ले आईं। उनके आभूषण भी तुलामें रख दिए गए, फिर भी कृष्णका पल्ला नीचे ही रह गया।

जीव जब अभिमानी हो जाता है, तो भगवान् भी भारी हो जाते हैं। उनके आगे हीरा, मोती और सुवर्णका मोल ही क्या है ?

रानियोंने आभूषणोंसे श्रीकृष्णका मोल करना चाहा, सो हजारों मन आभूषण रख देने पर भी उनका वजन श्रीकृष्णके वजनसे कम ही रहा।

सत्यभामाके अभिमानका नाश करनेके हेतु ही यह सारी लीला रची गई थी।

सभी रानियां सोचमें डूबी हुई थीं कि अब क्या किया जाए। सत्यभामाने श्रीकृष्णका दान करके अनर्थ कर डाला था।

अन्तमें सत्यभामाने रुक्मिणीका आसरा लिया। रुक्मिणी भी वहां आई।

रुक्मिणी सारा भेद समझ गई कि भगवानकी तुला क्यों हो नहीं हो रही है।

रुक्मिणीने अन्य रानियोंसे कहा- भगवानकी तुला क्या सुवर्णसे हो सकती है ? उन्होंने पल्लेमें प्रेमसे एक तुलसीदल रख दिया, तो भगवानकी तुला पूर्ण हो गई। रुक्मिणीने पूरे प्रेमसे तुलसीदल अर्पण किया था, अतः भगवानका पल्ला ऊपर उठ गया।

इसी प्रकार बोडाणाके लिए भगवान् सवा वाल (एक धान्य विशेष) के बराबर हो गए थे।

धन्य धन्य बोडाणाकी नारी
सवा वाल भए वनमाली।

ईश्वर कभी ऐसी इच्छा नहीं करते, कि कोई उनकी सेवा करे। वे तो निजलाभसे परिपूर्ण हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वे स्वयं आनंदरूप हैं। उन्हें ऐसी इच्छा या अपेक्षा नहीं है कि वैष्णव उन्हें भोग लगाए। उन्हें भोजनकी इच्छा भी नहीं होती। वे तो निष्काम हैं। भक्तोंको प्रसन्न रखनेके लिए ही वे भोजन करते हैं।

भगवद् – निवेदन किए बिना भोजन कभी नहीं करना चाहिए। ईश्वरको उनका ही पदार्थ अर्पण करना है। प्रेमसे अर्पण करोगे तो वे प्रसन्न होंगे। ईश्वरको अर्पित किए बिना खानेवाला व्यक्ति भूखा रह जाता है। तुम उन्हें अर्पित करोगे, तो वे कई गुना बढाकर वापस लौटाएंगे। वे कहते हैं कि मेरी ही बनाई हुई वस्तुएं मुझे अर्पित करनेमें वैसी कोई बडाई नहीं है। किंतु मुझे अर्पण किए बगैर खाना अनाधिकृत खाना है।

भगवान्के घर किसीकी कमी तो है नहीं। वे तो केवल तुम्हारी भावना ही देखते हैं।

भगवान्ने जो दिया है वही तो उन्हें अर्पित करना है। जीव स्वयं तो किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति कर नहीं सकता, सभी कुछ श्रीकृष्णका ही तो है।

दीपक जलानेसे या आरती करनेसे भगवान्के घर तो प्रकाश होगा नहीं। यह तो तुम्हारे ही हृदयमें प्रकाश करनेके लिए है। ईश्वर तो वैसे ही स्वयंप्रकाशी हैं।

सेवा करनेसे सेवकको सुख होता है। भगवान्को तो क्या सुख मिलेगा? वे तो परमानन्दस्वरूप हैं।

जीवको देनेवाला तो ईश्वर ही है, किंतु मनुष्यके निवेदनसे वे प्रसन्न होते हैं।

सेवा और पूजामें भेद है। जहां प्रेमका प्राधान्य है, वह सेवा है और जहां वेदमंत्रकी प्रधानता है वह पूजा है।

पूजा करो तो प्रेमसे करो। अन्यथा स्नेहादिका समर्पण व्यर्थ ही रहेगा। हमारे वस्त्र कहीं बिगड न जाएं, इस डरसे कई लोग तो मंदिरमें साष्टांग दंडवत् प्रणाम भी नहीं करते।

नर कपडनको डरत है
नरक पडनको नाहिं।

जो कुछ भी है, वह ईश्वरका ही तो है। केवल उन्हें ही अर्पित करना है। अर्पण करनेकी रीतिसे ही आपके मनकी भावनाका उन्हें पता लग जाएगा।

दक्षिणमें एक कथा प्रचलित है।

किसी भी शुभकार्यके आरंभमें विघ्ननाशके हेतु सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा की जाती है।

किसी एक गांवमें एक गृहस्थके घर विवाहका अवसर आया। ब्राह्मणने देखा कि गणपतिकी मूर्ति है ही नहीं। अब क्या किया जाए? वह ज्ञानी था। उसने सोचा कि ईश्वरकी प्रतिष्ठा प्रेमपूर्वक कहीं भी की जा सकती है। सुपारीमें भी भगवान् बसते ही हैं। उत्तमोत्तम वस्तु ठाकुरजीको अर्पित करना ही तो भक्ति है।

अतः उस ब्राह्मणने नैवेद्यके लिए रखे हुए गुडमेंसे ही गणपति बना लिया। यजमानसे पूजा कराई गई। धूप-दीप आदि भी हो गया। अब नैवेद्यका समय आया। नैवेद्यमेंसे तो गणपति बना लिए गए थे। अब क्या करें? तो उस गोर महाराजने गुडकी उस गणपति-मूर्तिमेंसे ही थोडा-सा गुड निकाल कर नैवेद्य बना लिया।

गुळाचा गणपति, गुळाचा नैवेद्य।

गणपति भी गुडके और नैवेद्य भी गुडका ही। ऐसी पूजासे भी गणपति प्रसन्न हुए। उस यजमानका कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया। कार्यकी भावना तो शुद्ध थी न?

महत्त्व वस्तुका नहीं, भावनाका है। सद्भावपूर्वक सेवा करोगे तो वह सेवा सफल होगी। सेवा करते समय रोंगटें खडे हो जायें, आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगे, तो समझो कि वही सच्ची सेवा है।

सेवा मात्र क्रियात्मक ही नहीं, भावात्मक भी होनी चाहिए। सेवा करते हुए आनन्द मिले वही सेवा है। जो भी कुछ करो, प्रेमसे करो। भगवान्के लिए भोजन बनाओ। भगवान्को अर्पित करनेके बाद भोजन करो।

साथमें प्रार्थना करो कि हे नाथ! आप तो विश्वंभर हैं। सभीके स्वामी है। आपको तो कौन खिला सकता है? तो भी यह पदार्थमें आपको मनसे अर्पण करता हूं।

जो ईश्वरका है वही तो उन्हें समर्पित करना है। यह जीव दूसरा कुछ तो लाएगा ही कहांसे? केवल भावनाका मूल्य है। परमात्मा तो परिपूर्ण हैं। उन्हें कोई अपेक्षा नहीं है। उन्हें किसी भी वस्तुकी क्षुधा नहीं है। वे तो मात्र भावनाके भूखे हैं। उन्हें तुम भावसे अर्पित करोगे, तो वे उसका कई गुना अधिक बना कर तुम्हें ही वापस देंगे।

भक्तिमार्गमें भावके विना सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। ज्ञानमार्गमें त्याग और वैराग्य आवश्यक है।

पिता बालकको रुपया देता है। वह कभी वापस भी मांगता है। यदि बालक रुपया वापस नहीं देगा तो पिताको दुःख होगा कि मैंने ही तो उसे दिया है फिर भी यह नहीं लौटाता। पर यदि बालक रुपया वापस दे देगा, तो पिताको हर्ष होगा। जो कि रुपया तो उसीका है, फिर भी वह रुपया पाकर उसे संतोष होता है।

ईश्वर जीवमात्रके पिता हैं। उन्होंने हमें जो कुछ दिया है, वही तो हमें उन्हें देना है। प्रतिज्ञा करो कि ठाकुरजीको अर्पित किए विना कुछ भी नहीं खाओगे।

कई बार ऐसा भी देखनेमें आता है कि घरके सारे लोग भोजनके लिए कहीं बाहर जा रहे हैं, तो भगवान्को मात्र दूध ही दे देते हैं और कहते हैं नाथ, दूध ही पी लीजिए आज, हम तो मोहनथाल खाने जा रहे हैं बाहर। पर यह कोई अच्छी बात नहीं है। चाहे सारे घरमें कोई भी भोजन नहीं करनेवाला हो, फिर भी भगवान्के लिए सभी कुछ पकाना ही चाहिए।

कथा सुनकर यदि कोई शुभ संकल्प नहीं किया जाता, तो श्रोताका सुनना और वक्ताका कहना दोनों निरर्थक ही होता है। कथा सुनकर उसे हृदयमें रखो।

किसी भी स्वरूपकी मूर्तिकी स्थापना करके उसकी प्रेम और भावपूर्वक सेवा करो। चित्त-स्वरूपकी अपेक्षा मूर्ति-स्वरूप अधिक अच्छा है। सेवा करते समय मनमें ऐसा ही भाव रहना चाहिए कि यह साक्षात् परमात्मा ही हैं। सेवाके आरंभमें ध्यान करो। संपत्तिके अनुसार खर्च भी करो। सुंदर सिंहासन बनाओ। ध्यानसे भावना करो कि भगवान् वैकुंठसे इधर आ रहे हैं और मेरे घरके सेव्य स्वरूपमें प्रविष्ट हो रहे हैं। सेवा करते समय किसी भी व्यक्तिके साथ बातचीत मत करो। उसे भी नमस्कार ही कर लेना।

न तो कोई परमात्मासे श्रेष्ठ है और न तो कोई परमात्माके समान ही है।

सेव्यमें मनको लगाए रखना ही सेवा है। तुम अपने शरीरसे जैसा प्रेम रखते हो वैसा ही प्रेम ठाकुरजीके स्वरूपसे भी रखो परमात्माके अनंत उपकार हैं। सदा यही सोचो कि मेरी कई बार प्रभुने ही रक्षा की है। मैं भगवान्‌का सेवक हूं, दासानुदास हूं। मैं तुम्हारा हूं। सेवामें दास्यभाव मुख्य है। दास्यभावसे हृदय शीघ्र ही नम्र बन जाता है। सेवामें दैन्यके आनेसे हृदय पिघलता है। कृष्णसेवामें जब तक हृदय पिघलता नहीं है, तब तक सेवा सफल नहीं हो सकती। दास्यभावके बिना सेवा नहीं फलती। सेवा स्नेह और समर्पण भावसे करो। जब तक मूर्तिके प्रति भगवद्‌भाव न जागे, तब तक प्रत्येक पदार्थके प्रति भी ईश्वरभाव नहीं जागेगा। सेवा करते समय लक्ष्यमें यही रहे कि यह तो प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

जिस दिन तुमसे कोई पाप हो गया होगा, उस दिन सेवा करते समय प्रभु अप्रसन्न-से लगेंगे। जीव पाप करता है तो उन्हें दुःख होता है, उन्हें कष्ट होता है। अतः शुद्ध होकर सेवा करो। जब तक मन मलिन होगा, तब तक आनन्दकी प्राप्ति नहीं होगी। मनसे मलिनता दूर करो।

प्रभुसेवामें भावना और अटलता कैसी होनी चाहिए, इस विषयमें नामदेव महाराजका एक जीवनप्रसंग द्रष्टव्य है।

नामदेव महाराजके घरमें प्रतिदिन विट्ठलनाथजीकी सेवा-पूजा की जाती थी। जब नामदेव तीन वर्षके बालक थे, तबकी यह बात है। उनके पिताजीको एक बार कहीं बाहर जाना पड़ा, तो सेवा-पूजाका काम वे नामदेवको सौंपते गए। पिताने नामदेवसे कहा— बेटा, विट्ठलनाथजी हमारे घरके स्वामी हैं। उनकी सेवा किए बिना भोजन करना पाप है। यह सुनकर नामदेवने सेवा करनेकी रीति पूछी।

पिताजीने कहा— श्री विट्ठलनाथ घरके प्रत्येक वस्तुके स्वामी हैं अतः उनके प्रसादके रूपमें ही वस्तुको ग्रहण करनेमें दोष नहीं है। ठाकुरजीको अर्पण न करना ही पाप है।

वेदांती ब्रह्मकी बात बताते हैं। जीव ब्रह्म है। जीव चाहे ब्रह्मरूप ही हो, किंतु मानव-शरीरके कारण आज तो यह प्रभुका दास ही है। परमात्मा उसे न जाने कब अपनाकर ब्रह्मरूप बनावेंगे। तब तक तो वह दास ही है।

दास्यभावसे जीवन सुधरता है और मृत्यु भी सुधरती है। भागवतमें वात्सल्यभाव, मधुरभाव आदिका वर्णन है। किंतु वे सभी दास्यभावसे मिश्रित ही हैं। दास्यभावके बिना ईश्वरको जीव पर दया नहीं आती।

पिताजी बोले— बेटे, प्रातःकालमें जल्दी जागकर स्नानादिसे पवित्र होनेके बाद भगवान्की प्रार्थना करना। प्रार्थना करके उन्हें जगाना।

उत्तिष्ठ मम गोविंद उत्तिष्ठ गरुडध्वज
उत्तिष्ठ कमलाकांत त्रैलोक्यं मंगलं कुरु।

किंतु प्रथम भोग–सामग्री तैयार कर लेना।
वैष्णवोंके हृदयमें प्रेमभाव जगने पर ही ठाकुरजीको भूख लगती है।
भगवान्के चरण धीरे धीरे धोना। कहीं उन्हें कोई तकलीफ न होने पाए। क्योंकि—

यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ।

स्नान कराकर धीरे धीरे उनके दर्शन करना। सद्भावसे सेवा करना। फिर उनका शृंगार करना। उनसे पूछना कि आज आप कौन–सा पीतांबर पहनेंगे?

शृंगारकर्ता भगवान्के साथ एक हो जाता है। प्रभुने यदि दिया है, तो फिर उन्हींके लिए खर्च करनेमें संकोच क्यों? योगीको जो आनंद समाधिसे मिलता है, वही आनन्द भक्तको ठाकुरजीका शृंगार करते हुए प्राप्त होता है। खुली आंखोंसे ही समाधि–सा आनन्द मिलता है। योगी प्राणायाम, प्रत्याहार आदि करते हैं, फिर भी उनका मन कई बार कुछ उल्टा ही कर बैठता है।

कन्हैयाको बार बार बुलाने पर ही वह बोलेगा। जगत्को भूलकर परमात्मामें तन्मय होनेसे आनन्द प्राप्त होगा। शृंगारके पश्चात् दूध और भोग अर्पण करना। विट्ठलनाथजी तो बडे शर्मीले है। बार बार विनती करने पर ही वे भोजन करते हैं। उनसे प्रार्थना करना कि भले ही उन्हें आवश्यकता न हो, फिर भी वे भोग अवश्य ग्रहण करें। जब कई बार इसतरह प्रार्थना करोगे, तभी ठाकुरजी दूधको स्वीकार करेंगे।

सेवाभक्तिमें प्रेम मुख्य है। सेवा भावसे करनी चाहिए— हे नाथ, आपने अजामिल जैसोंका भी उद्धार किया, तो क्या मेरा नहीं करोगे? मैं अधम तो हूं किंतु अजामिल जितना नहीं हूं। अजामिल तो वेश्याके साथ रहता था। मैंने वैसा तो कुछ किया नहीं है। तो क्या मुझ पर आप कृपा नहीं करेंगे?

स्तुतिके पश्चात् भगवान्को वंदन करना। स्तुतिमें कोई क्षति रह गई हो, तो प्रणाम करनेसे सब कुछ ठीक हो जाता है। सेवाकी समाप्तिमें बालकृष्णको साष्टांग प्रणाम करना।

नामदेव तो भोले–भाले बालक थे, सो उन्होंने पिताकी बातोंको अक्षरशः सच मान लिया।

नन्हें बालकको यदि ढंगसे समझाया जाएगा, तो उसे मूर्तिमें भी भगवान् दिखाई देंगे। बडा होनेके बाद समझाने लगोगे तो वह दलीलबाजी करने लगेगा। अतः बाल्यावस्थामें ही भक्तिके संस्कार दृढ करने चाहिए।

नामदेवके मनमें भी यह बात जम गई, कि विट्ठलनाथ दूध अवश्य पीयेंगे और वे भोजन भी करेंगे।

भक्त बना या बनाया नहीं जाता। भक्त तो जन्मसे ही बनते हैं। नामदेव बाल्यावस्थासे ही भक्त थे।

जिस दिन पिताजी बाहर गए, विट्ठलनाथकी सेवाकी धुनमें मस्त नामदेवको नींद ही नहीं आई। वह बालक प्रातःकाल चार बजे ही प्रभुकी सेवामें लीन हो गया। उसने प्रभुको प्रेमसे जगाया।

बालक बन कर भगवान्की सेवा करो। बालक प्रायः निर्दोष होते हैं। निर्दोषतासे सेवा करो।

नामदेवने ठाकुरजीके चरणोंको धोकर उनका सुंदर शृंगार किया। विट्ठलनाथजी प्रसन्न दीखने लगे। नामदेव गरीब घरके थे। तुलसीकी माला, जो ठाकुरजीको भी प्रिय है, पहना दी।

अल्प देने पर भी अधिक मान ले, वह ईश्वर है और अधिकको भी अल्प माने वही जीव है।

नामदेवने ठाकुरजीको गोपीचंदनका तिलक लगाया। शृंगारके बाद ठाकुरजीको भूख लगती है।

हमारे हृदयमें यदि प्रेम है, तो भगवान्की मूर्तिमें चेतना आ जाती है। प्रेम जडको भी चेतन और प्रेमका अभाव चेतनको भी जड बना सकता है।

नामदेव दूध लाकर प्रभुको अर्पित करते हुए कहने लगे– विट्ठलनाथ, आप तो जगत्के पालनकर्ता हैं, अतः मैं आपको क्या खिला सकता हूं? आपका जो है वही आपको दे रहा हूं।

त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।

नामदेव बार बार प्रभुको मनाने लगे, विनती करने लगे। पर नामदेवका प्रेम देखकर विट्ठलनाथ दूध पीनेकी अपेक्षा बालकको ही निहारने लगे।

विट्ठलको दूध पीते हुए न देखकर नामदेव बोले– मैं बालक हूं। मैंने आज तक कभी आपकी सेवा नहीं की है, अतः आप कहीं मुझसे नाराज तो नहीं हैं? आप दूध क्यों नहीं पीते? आपको भूख लगी होगी। दूध पी लीजिए।

कहीं दूधमें शक्कर तो कम नहीं है?

यह सोचकर उन्होंने घरमेंसे लाकर कुछ और शक्कर डाल दी उस दूधमें।

नामदेव फिर बोले– विट्ठलनाथ, यदि आप दूधपान नहीं करेंगे; तो मैं भी दूध पीना छोड दूंगा। आप दूध नहीं पीएंगे तो मैं आपके चरणमें अपना सिर फोड दूंगा।

बालक व्याकुल था कि विट्ठलनाथजी दूध नहीं पीएंगे, तो पिताजी उस पर क्रोधित हो जाएंगे। बालक अपना सिर फोडने ही जा रहा था कि परमात्माने दूधका बर्तन उठा लिया। आज जडमूर्ति भी चेतनमयी हो गई। नामदेवके प्रेमसे विट्ठलनाथजी प्रसन्न हो गए। विट्ठलनाथजीको दूध पीते हुए देखकर बालक प्रसन्न हो गया।

बालकको यह भी तो आशा थी विट्ठलनाथका कुछ–न कुछ प्रसाद तो मिलेगा ही। किन्तु आज तो विट्ठलनाथ सारा का सारा दूध पी जानेकी इच्छा कर रहे थे, यह देखकर नामदेव बोले–आपको आज क्या हो गया है? क्या आप ही सारा का सारा दूध पी जाएंगे? क्या मुझे थोडासा भी नहीं देंगे?

यह सुनकर विट्ठलनाथजीने नामदेवको उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और फिर दोनोंने एक-दूसरेको दूध पिलाया। इस प्रकार सेवाक्रम वताया।

प्रेम और सेवाके विना भक्ति सफल नहीं हो पाती। इस प्रेममें ऐसा तो वल है कि निष्कामको सकाम और निराकारको साकार वनना पडता है। ईश्वरके साथ प्रेम करो। ईश्वर जीवसे प्रेमकी मांग करते हैं। प्रेम करने योग्य तो मात्र ईश्वर ही हैं। सेवा करते करते यदि हृदय आर्द्र हो जाये और आंखोंसे अश्रुधारा वह निकले तो मानो कि सेवा सच्ची है।

ज्ञानसे वस्तुके स्वरूपका, पदार्थका ज्ञान होता है। किंतु ज्ञानसे उस वस्तुके स्वरूपमें परिवर्तन नहीं हो सकता।

पर भक्तिमें उस वस्तुके स्वरूपमें भी परिवर्तन कर देनेकी शक्ति है। प्रेममें, भक्तिमें जडमूर्तिको भी चेतनमय वना देनेकी शक्ति है।

विंवका शृंगार करोगे तो प्रतिविंव भी निखरेगा। ईश्वरको दोगे, तो वे भी तुम्हें कई गुना वढा कर वापस देंगे।

द्रौपदीकी लाज परमात्माने रख ली। उन दोनोंका किसी स्थान पर मिलन हुआ। मिलने पर द्रौपदीने भगवान्का आभार माना, तो भगवान्ने कहा— आभार ? उपकारकी तो कोई वात ही नहीं है। मै तो आज तेरे ऋणसे ही मुक्त हुआ। शायद तू यह वात भूल गई है, किंतु मुझे तो याद है। एक वार मेरी उंगलिसे रक्तकी धार वह निकली थी, तो सारी रानियां महलमें पट्टी ढूंढने निकल पडीं थीं, जव तूने तो अपना ही वस्त्र फाडकर मुझे पट्टी वांध दी थी। उस पट्टीमें ९९९ धागे थे, तो मैंने उस समय सोचा था कि मै अपनी इस वहनको ९९९ साडियां दूंगा। वह देकर आज मै ऋणमुक्त हो गया हूं।

मनुष्य ईश्वरको जितना भी देता है, ईश्वर उसे अनंत गुना वनाकर देते हैं। परमात्मा निजलाभ परिपूर्ण है। अतः परमात्मा अपनेको समर्पित की गई वस्तु कई गुना करके वापस देते हैं। वे अपने सिर पर किसीका भी ऋण नहीं रखते, इतना ही नहीं, अपितु वे उस ऋणको व्याजके साथ वापस करते हैं।

प्रह्लादजी स्तुति करते हैं- प्रभु, आपके मांगलिक सद्गुणोंका वर्णन मैं कैसे करूं ? ब्रह्मादि देव भी आपकी लीलाका पार नहीं पा सकते। आप शांत हो जाइए। मेरे पिताका तो, जो जगत्के लिए कंटकके समान थे, आपने वध कर दिया, वह अच्छा ही हुआ।

आपके इस भयंकर स्वरूपको देखकर देवोंको डर लग रहा है, किंतु मुझे कोई भय नहीं है। मुझे आपके उग्र स्वरूपका कोई भय नहीं है। मुझे तो इस संसारका ही भय है।

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुस्सहोग्रससारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः।
वद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥

भा. ७-९-१६

हे दीनवंधु, मुझे तो मात्र इस असह्य और उग्र संसारचक्रमें पिस जानेका ही भय है। मेरे कर्मपाशोंसे वांधकर मुझे इन भयंकर जंतुओंके बीच छोड दिया गया है। सव जीवोंके एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप ऐसे आपके चरणोंमें, हे नाथ, प्रसन्नतासे आप मुझे कव वुलाएंगे ?

आप ही सभीके आश्रय हैं। आप ही हमारे प्रिय सुहृद हैं। आप ही सभीके परमाराध्य हैं। आपकी लीला–कथाका गान करता हुआ मैं बडी सरलतासे इस संसारकी कठिनाइयोंको पार कर जाऊंगा।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना–
मायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम्।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः॥

भा. ७–९–२३

हे भगवान्, जिन्हें प्राप्त करनेके लिए संसारी लोग उत्सुक रहते हैं, वह स्वर्गमें पाये जाते सभी लोगपालकोंकी आयु, लक्ष्मी और वैभव मैंने देख लिया। मेरे पिताके लिए किस वस्तुकी कमी थी? आंखोंका एक ही संकेत सभी कुछ ला देनेके लिए समर्थ था। स्वर्गकी सारी संपत्ति भी उनके लिए प्राप्त थी। फिर भी उनका नाश हो गया। भोगोपभोगके ऐसे विनाशकारी परिणाम मैंने देख लिए। अतः मैं भोगोपभोग, दीर्घायुष्य, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, इन्द्रिय-भोग्य वस्तु या ब्रह्माका वैभव आदिकी इच्छा नहीं करता हूं। मैं तो कहता हूं—

आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् न इच्छामि ते।

भगवान्, यह संसार तो अंधकारसे भरा हुआ एक ऐसा कुंआ है, जिसमें काटनेके लिए हमेशा तत्पर एक कालसर्प घूमता रहता है। इस कुएमें विषयभोगोंकी इच्छावाले मनुष्य फंसे हुए हैं।

हे वैकुंठनाथ, मैं यह सब कुछ जानता हूं, फिर भी मेरा मन आपकी लीलाओंकी कथामें लग नहीं पाता। मेरे मनकी दुर्दशा हो गई है। वह पापवासनासे दूषित हो गया है और स्वयं भी दुष्ट है। वह कामवासनाके लिए ही आतुर रहता है। वह हर्ष–शोक, लोक–परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदिकी चिंतामें ही डूबा रहता है। मन इधर–उधर भटकता रहता है और उसे नियंत्रित करना बडा कठिन है। वह कामातुर है, भयत्रस्त है और भांति भांतिकी इच्छाओंसे दूषित और दुःखी है।

मनके इन विशेषणोंके विषयमें सोचो। मन तो " दुरितं दुष्टम् असाधु तीव्रम् कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं " है।

अतः आपकी कथाओंके प्रति मेरा मन उदासीन है। मनकी ऐसी स्थितिके कारण मैं दीन बन गया हूं। ऐसी दशामें मैं आपके तत्त्वका विचार कैसे करूं?

हे नाथ, मेरे ऐसे मनको नियंत्रित करनेकी शक्ति मुझे दीजिए और मेरी रक्षा कीजिए।

नृसिंह स्वामीने कहा— बेटे, बिगडा हुआ मन भगवान्के नामजपके बिना सुधरता नहीं है। प्रह्लाद, तेरा मन शुद्ध है अतः तू मेरा दर्शन कर सका।

मनकी दशाकी बात तो हो गई, अब इन्द्रियोंकी दशा देखें।

प्रह्लाद कहते हैं— वैसे तो मैं मात्र पांच वर्षका हूं, फिर भी मेरा पांच स्त्रियोंके साथ विवाह हो गया है। ये पांच पत्नियां मुझे चैनसे बैठने नहीं देतीं। ये मुझे नचाती रहती हैं। वे हमेशा अतृप्त ही रहती हैं।

भोजनसे तृप्ति नहीं होती। भोगसे ही यदि तृप्ति हो जाती होती, तो जीव तो कई जन्मोंसे भोगोपभोग करता आया है, फिर भी उसे तृप्ति नहीं हुई है। तृप्ति भोगसे नहीं त्यागसे ही हो सकती है।

यह लूली (जीभ) मुझे वहुत नचाती है। यदि इसे राजी करता हूं, तो आंखें सताने लगती हैं, कि जरा सिनेमा तो दिखा दो।

क्या सिनेमासे मनोरंजन प्राप्त हो सकता है? मनोरंजन तो तव मिलता है कि जब मन निर्विषय वनता है और इन्द्रियां आत्मस्वरूपमें लीन हो जाती हैं। सच्चा आनन्द तो तभी मिलता है।

मनुष्य यह जानता ही नहीं है कि सच्चा सुख और सच्चा आनन्द कहां है।

आंखोंको समझाता हूं तो कान चैन नहीं लेने देते। उन्हें तो रेडियोसे सिनेसंगीत सुनना है।

जो व्यक्ति मानवजीवन सफल करनेकी इच्छा रखता है, वह शृंगारी गीत कभी नहीं सुनता।

स्पर्श–सुख भी मुझे सताता है। मैं जानता हूं कि मेरा शरीर हाड–मांसके सिवा और कुछ भी नहीं है, फिर भी मैं लाचार हू, मेरा सयानापन न जाने कहां गायव हो जाता है!

इन इन्द्रियोंने अनेक पत्नियोंवाले पति–सी मरी दुर्दशा कर दी है। मेरी दुर्दशा तो देखो–

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥

भा. ७–९–४०

हे अच्युत! हमेशा अतृप्त रहनेवाली यह जीभ मुझे स्वादिष्ट रसोंकी ओर खींचती रहती है, जननेन्द्रिय विषयभोगके लिए सुदर स्त्रीकी ओर, त्वचा कोमल स्पर्शसुखकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर संगीतकी ओर, नाक भीनी भीनी सुगंधकी ओर और चपल नेत्र सौंदर्यकी ओर मुझे आकर्षित करते रहते हैं। कर्मेन्द्रियां भी अपने–अपने विषयोंकी ओर मुझे आकर्षित करती हैं। मेरी दशा तो ऐसी हो रही है जैसे कि कई पत्नियोंवाले किसी पुरुषको सारी पत्नियां अपने अपने शयनगृहकी ओर खींच रही हों।

कोई एक चोर किसीके घरमें चोरी करनेके लिए घुसा। किसी साहवका घर था वह। उसकी दो पतिनयां थीं। एक पत्नी साहवके केश पकड कर ऊपरकी ओर खींच रही थी तो दूसरी पत्नी साहवके पांव पकड नीचेकी ओर घसीट रही थी। चोरने जब यह दृश्य देखा व, तो वह अपनी हंसी रोक न सका। और वह हंसनेके कारण पकडा गया और उसे राजाके पास ले जाया गया। चोरने राजासे विनति की कि मुझे चाहे जो दंड दीजिए किंतु दो पत्नीवाले उस साहव जैसा दंड न देना।

यह कथा किसी और साहबकी नहीं, जीवमात्रकी है।

पांच इन्द्रियोंके पांच विषय सच्चे पति नहीं हैं किंतु पति होना चाहते हैं। वैसे तो पांचों इन्द्रियोंके पति तो परमात्मा ही हैं। इन्द्रियां परमात्माके साथ ही सोती हैं, वे विषयोंके साथ नहीं सो सकतीं।

तृप्ति भोगमें नहीं, त्यागमें है। इन्द्रियोंके आवेगको सह कर उसे नियंत्रित करोगे तो सुखी होगे।

भोगसे वासना बढती है। भोगोपभोगसे इन्द्रियोंकी रक्षा नहीं, क्षय ही होता है। भक्तिरससे ही इन्द्रियां पुष्ट हो सकती हैं। विषयोंका चिंतन करनेसे शक्तिका क्षय होता है। ईश्वरस्मरणसे शक्तिकी प्राप्ति होती है।

प्रह्लाद आगे कहते हैं:–

प्रभु, आप कहते हैं कि संसारका मोह त्याग कर मेरा ही भजन करो। किंतु भजन करें तो कैसे करें? आपने इस संसारमें विषयोंका ऐसा आकर्षण रचा है कि बडे बडे ज्ञानी भी भटक जाते हैं। मायाने इस संसारमें विषयोंका ऐसा आकर्षण रचा हुआ है कि बहुतसे विद्वान् भी भटक जाते हैं। ससारका सुख वैसे तो विष है फिर भी अमृत–सा ही लगता है। संसारके विषय ऐसे आकर्षक क्यों बनाये हैं आपने? जगत्में ऐसे सुंदर पदार्थोंको उत्पन्न ही क्यों किया? इन्हींसे तो इन्द्रियां ललचाती हैं लिहाजा वे फंसती हैं।

नाथ, मैं बालक हूं, मेरी त्रुटियां क्षमा करना। किंतु मैं कहता हूं कि जगत्को सुंदर बनाया है तभी तो इन्द्रियां मोहग्रस्त हो जाती हैं। इस जगत्के विषय ऐसे सुंदर हैं कि आंखने देखा नहीं कि चित्त चंचल हो जाता है। संसारको ऐसा सुंदर न बनाया होता, तो कितना अच्छा होता? आप इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिए कहते हैं किंतु इस सुंदर दृश्यको देख कर सारा सयानापन हवा हो जाता है।

परमात्माने सोच–समझ कर ही इस संसारको सुंदर बनाया है कि मेरी संतान सुखी हो। किंतु मर्यादाका उल्लंघन करके आसक्तिपूर्वक भोगोपभोग करके मनुष्य दुःखी हो जाये तो उसके लिए ईश्वर क्या करे? इसमें ईश्वरका क्या दोष?

जीव मर्यादा तोड कर विषयोंका भोग करे और दुःखी हो जाये तो ईश्वरका क्या दोष?

नृसिंह भगवान् प्रह्लादको समझा रहे हैं:–

जीवोंको सुखी करनेके हेतु ही मैंने संसारके सारे पदार्थ उत्पन्न किए हैं। मनुष्य यदि अमर्यादि रीतिसे आसक्तिपूर्वक पदार्थोंका उपभोग करे और दुःखी होता रहे, तो इसमें मेरा क्या दोष? मर्यादापूर्वक पदार्थोंको और विषयोंको भोगनेवाला मनुष्य सुखी होता है।

विषयोंके उपभोगके समय मनुष्यको यह न भूलना चाहिए कि संसारनिर्माता वह (भगवान्) हैं। संसारको त्याग कर मनुष्य कहां जाएगा? मैं भी रहूंगा और ससार भी रहेगा। संसारको भोगदृष्टिसे नहीं, किंतु भगवद्दृष्टिसे मनुष्य यदि देखे तो वह सुखी होगा। तू स्वयंको ही सुधार। तू सारे संसारको तो कैसे सुधार सकेगा?

एक बार अकबरकी पुत्रीके पांवमें कांटा चुभ गया, तो अकबरने बीरबलको बुलाकर आज्ञा दी मेरे साम्राज्यकी सारी भूमिको चमडेसे आच्छादित करा दो कि जिससे भविष्यमें फिर कभी शाहजादीके पैरमें कांटा चुभ न सके। बीरबल सिर खुजलाने लगा कि चमडेका इतना बडा टुकडा कहांसे लाया जाए। जो सारे साम्राज्यकी भूमिको आच्छादित कर दे। राजा कुछ तरंगी–से होते हैं। बीरबलने सोचा कि सारी भूमिको चमडेसे ढकनेकी अपेक्षा राजपुत्रीके पांव ही क्यों न चमडेसे ढक दिए जाए। और बीरबलने जूते बनवाकर राजपुत्रीको पहना दिये।

जगत्में कांटे हैं और रहेंगे भी, पर जिसके पांवमें जूते हैं उसको कांटे नहीं चुभ सकते। विवेकपूर्वक मर्यादामें रह कर मनुष्य सुखका उपभोग करे तो सुखी हो सकता है। सुखोंके उपभोगमें मर्यादा और विवेकका अनादर करनेपर मनुष्यको दुःखी होना पडता है।

सभीके सुखके हेतु ही संसारका निर्माण किया गया है। किंतु मनुष्य विवेकपूर्वक इसका उपभोग नहीं करता है, अतः दुःखी होता है।

किसी एक गांवमें पीनेके पानीकी बडी तकलीफ थी। अन्नदानसे भी जलदान श्रेष्ठ कहा गया है। अतः किसी एक सेठने पंद्रह–वीस हजार रुपयोंकी लागतसे जनताके हितार्थ एक कुंआ बनवाया। लोग जलका उपयोग करते हुए सेठको आशीर्वाद देने लगे।

एक दिन इत्तफाकसे खेलता–कूदता कोई लडका एक कुंएमें गिरकर पानीमें डूबकर मर गया। अति दुःखमें विवेक नहीं रह पाता। उस मृत लडकेका पिता सेठके साथ झगडा करने लगा, और उसे गाली देने लगा कि यदि उन्होंने कुंआ बनवाया ही न होता तो लडकेकी जान न जाती ! अब आप ही सोचिए। क्या सेठने किसी व्यक्तिके पुत्रको मारनेके लिए कुआ बनवाया था ? उसने तो सभीके लाभके लिए ही बनवाया था। ऐसा परोपकारी काम करनेके कारण सारा गांव उसकी प्रशंसा करता था, आभारी था। जो लडका मर गया, यह अच्छा तो नहीं हुआ, किंतु इसमें सेठका क्या दोष ?

यह संसार भी एक कुंआ ही है। किंतु किसीको डुबा देनेके लिए तो इसका निर्माण नहीं हुआ है।

प्रह्लादजी कहने लगे— प्रभु, आपको अपराधी तो कौन कह सकता है। किंतु इन विषयोंको सुंदर बना कर आपने ठीक नहीं किया। अतः अब तो आप हमें यही समझाए कि संसारके विषयोंमें मन फँसने न पाए, इसके लिए हम क्या करें ?

नृसिंह भगवान् कहने लगे— इस जगत्को सुखी करनेके हेतु मैंने दो अमृत बनाए हैं। उनका पान करनेसे तुम्हारा मन विषयोंकी ओर आकर्षित नहीं होगा और इन्द्रियां तुम्हें सताएंगी भी नहीं, ये दो अमृत हैं : (१) नामामृत और (२) कथामृत।

जब भी मनमें विषयका, पापका प्रवेश हो, तब कथामृत और नामामृतका आश्रय लो। जीवको मनुष्यको विषय सता न सके, इसी हेतुसे मैंने ये दो अमृत बनाये हैं। उनका नित्य सेवन करो।

स्वर्गमें जो अमृत मिलता है उसे पीनेसे सुख तो प्राप्त होता है किंतु कहते हैं कि उससे पुण्यका क्षय भी होता है। किंतु कथामृत स्वर्गके उस अमृतकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। इसे पीनेसे पापका क्षय होता है। लीलाकथा और नाम अमृत हैं। कथामृत पापको भस्मीभूत करके जीवनको शुद्ध करता है।

मृत्यु सभीका भक्षण करती है। किंतु श्री रामचंद्र मृत्युभक्षकके भी काल हैं। रावणको मारनेके लिए रामचंद्रको यह सब क्यों करना पडा ? रावणकी हत्याके लिए रामको ऐसी लीला क्यों रचनी पडी ? राम तो कालके भी काल हैं। ईश्वर तो अनंत शक्तिशाली हैं। वे संकल्पमात्रसेही रावणको मार सकते थे। किंतु रामचंद्रने यह सारी लीला इस हेतु रची थी कि जनता रामायणका पाठ करे। रामायण श्रवणके समय तो लोग जगत्को भूलेंगे ही। उन्होंने रावणकी हत्या करनके लिए नहीं, किंतु कलियुगके लोगोंको लीलाश्रवणमें तल्लीन करनेके हेतु जन्म लिया था। लीलाकथा मोक्षदाता है।

प्रत्येक इन्द्रियोंको प्रेमसे अपनी ओर खींच कर गोपियोंको परमानंदका दान करनेके लिए श्रीकृष्णकी लीला थी। वे चाहते थे कि गोपियां मेरी लीला सुनें, देखें और जगत्को भूल जाएं। उन्होंने गोपियोंको मरनेसे पहले परमानंदका दान दिया। रासलीला कामविजयकी लीला है। श्रीकृष्ण भगवान्की कामदेव पर यह विजय है। जगत्के सभी विषयोंको मन भूल जाये तो मनका निरोध होगा और वह ईश्वरमें लीन हो जाएगा। कृष्णलीलाका प्रयोजन ही यह है कि मनुष्य किसी भी रीतिसे जगत्को भूल जाये और कृष्णलीलामें तन्मय हो जाये। गोपियां इसी तरह तो सभी लीलाओंका श्रवण-स्मरण करती हुई प्रभुमें लीन हुई थीं।

जब नामब्रह्म और नादब्रह्म एक होते हैं, तब परब्रह्मका प्राकट्य होता है। नामामृत कुछ भी कर सकता है, इसके लिए क्या अशक्य है?

श्री राम नाम जपनसे सारे कष्ट जायें
श्री राम जपनसे सारा शुभ हो जाये
श्री राम रसना रटे जो सदा
श्री राम राममय विश्व सारा सुहाय।

मीराबाईने भी कहा है-

मेरो मन राम ही राम रटै रे
रामनाम जप लीजै प्रानी, कोटिक पाप कटै रे।

नामजपनमें, रामभजनमें वैसे किसी वस्तुकी आवश्यकता भी तो नहीं है। मीराबाईने एक भजनमें कहा है- मेरे पास कोई साधन नहीं है। मैं बिलकुल साधनरहित हूं। मेरे लिए तो बस एक तेरा नाम ही सब कुछ है।

डंको नाम सुरतकी डोरी, कलियां प्रेम चढाऊं ए माय
प्रेमको ढोल बन्यो अति भारी, मगन हो गुण गाऊं ए माय
तन करुं ताल मन करुं ढपली, सोती सुरत जगाऊं ए माय
कीर्तन करुं मैं प्रीतम आगे, सो अमरापुर पाऊं ए माय
मो अबला पर कीरपा कीजो, गुण गोविंदका गाऊं ए माय
मीराके प्रभु गिरधर नागर रज चरणोंकी पाऊं ए माय
रामनाम मेरे मन बसियो, रास रसियो रिझाऊं ए माय
रामरसियो रिझाऊं ए माय।

ये दो अमृत मैंने निःशुल्क ही दिये हैं। ये दो अमृत श्रेष्ठ हैं। कृष्णका नाम स्वर्गके अमृतसे भी श्रेष्ठ है। देव स्वर्गके अमृतका पान करते है फिर भी उन्हें शांति नहीं मिल पाती। कथामृतके पानसे विषय शांत हो जाते हैं। नामामृत और कथामृतका पान करो। जय जय

मनमें पाप उभरे और आंखोंमें विकार आए, तब तब इन दो अमृतोंका पान करो। इनके पान-से विषय तुम्हें नहीं सताएंगे। भोगी कभी योगी नहीं हो सकता। कलिकालमें मनुष्य भोगी है, अतः यदि वह योगी बननेका प्रयत्न करेगा तो भी उसे सफलता तुरंत नहीं मिल पाएगी। अतः नामामृत और कथामृत ही सरल उपाय है।

कथामृत और नामामृतके पानसे संसार सुखदायी और ब्रह्मरूप लगता है।

अज्ञानीको संसार दुःखरूप लगता है क्योंकि उसकी दृष्टिमें विकार है। ज्ञानीके लिए संसार सुखरूप है, क्योंकि उसकी दृष्टि ब्रह्ममय होती है।

प्रह्लाद कहने लगे-- प्रभु, आपने दो अमृत बनाये हैं यह तो ठीक है, किंतु मुझे तो इसका कोई लाभ है नहीं। मैं जानता हूं कि भगवान्‌की कथा और नाम अमृत हैं किंतु मेरा मन इस कथा-कीर्तनमें स्थिर ही नहीं हो पाता।

कीर्तनके बिना कथा परिपूर्ण नहीं हो सकती। कीर्तनके बिना कथा अपूर्ण है। अतिशय पापीको कृष्णकीर्तनमेंसे आनन्द नहीं मिलता। पाप और अभिमानको दूर करनेके लिए कथामें आना चाहिए। अभिमान जैसा शत्रु कोई नहीं है।

विवाह, मृत्यु और भोजनमें बदली (एकके बदलेमें दूसरा व्यक्ति) नहीं चल सकती है, तो फिर भजनमें कैसे चल सकती है ? विवाह, मृत्यु और भोजनकी भांति भजन भी स्वयं ही करना है।

मात्र ज्ञान निरर्थक है। जीवनमें ज्ञानको जितना भी उतार सकोगे उतना ही सार्थक होगा। भागवत् व्यक्तिको मृत्युके बाद मुक्ति देनेकी बात नहीं करता है। वह तो मृत्युसे पहले, इसी जीवनमें ही मुक्ति देता है। इन्द्रियोंके समुदायको शुद्ध करो। गो = इन्द्रियां और कुल = समुदाय। इन्द्रियां शुद्ध होने पर तुम्हारा हृदय ही गोकुल बन जाएगा और उसमें परमात्मा विराजमान होंगे।

प्रह्लाद कहते हैं— नाथ, मैं जानता हूं कि नामामृत और कथामृतका पान मन शुद्ध करता है और शुद्धमनको जगत् ब्रह्ममय दृष्टिगोचर होता है। किंतु मेरा मन ही ऐसा विचित्र है कि उन अमृतोंका शीघ्र आसरा नहीं लेता है।

सोचिए। क्या प्रह्लादजीका मन अशुद्ध था? नहीं। वे तो हम जैसे साधारण व्यक्तियोंकी बात कर रहे थे। वे हमारे मनकी कह रहे थे।

सांसारिक विषयोंके चिंतनसे हमारा मन विकृत हो गया है, अतः जगत् भी हमें विकृत ही दीखता है। सिद्ध ज्ञानीको जगत् विकृत नहीं, किंतु ब्रह्मरूप दिखाई देता है, क्योंकि वे परमात्माका सतत चिंतन करते हैं। साधकको भी जगत् दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह तो साधनामें लीन हो गया होता है।

जो ईश्वरसे विमुख है, उसीके लिए जगत् बिगडा हुआ है। नामका आश्रय लेने पर मन सुधरता है। हम जैसे साधारण मानवोंके लिए और कोई मार्ग नहीं है। संसारका चिंतन करनेसे मन बिगडा हुआ होता है। श्रीकृष्णके स्वरूपका चिंतन और स्मरण करनेसे वह मन सुधर सकता है।

जब हम कथामें बैठे हुए होते हैं, तो हमारी दृष्टि बार बार घडीकी ओर दौडती है, किंतु जब बातें करते होते हैं तब हाथ पर घडीके होने पर भी दृष्टि वहां जाती ही नहीं है और रातको डेढ भी बज जाता है। समयका नाश सर्वस्वका नाश है। यदि मरते समय कोई लक्षाधिपति भी ठाकुरजीसे कहे कि मैं लाख-दो लाख रुपये देनेको तैयार हूं, मुझे दो दिन और दीजिए तो क्या ठाकुरजी उसकी आयु बढा देंगे? नहीं, क्योंकि भगवान् समयका दान करनेमें बडे कृपण हैं।

यह मन बडा दुष्ट है, कामातुर है, सदा कामसुखका चिंतन करता रहता है। विषयोपभोगकी अपेक्षा कामसुखका चिंतन अधिक बुरा है। मन ऐसा बिगडा हुआ होता है कि वह कथामें स्थिर ही नहीं रहता। मन हर्ष, शोक और भयसे युक्त है। मन थोडा-सा भी लाभ होने पर खुशीके मारे उछल पडता है और थोडी-सी हानिसे भी आंसू बहाने लगता है।

किसीभी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा हुआ है कि भगवान्की कृपासे धन मिलता है। भागवतके आठवें स्कंधमें कहा गया है कि मैं (प्रभु) जिस पर कृपा करता हूं, उसकी सारी संपत्तिका नाश करता हूं। भगवत्कृपाका फल धन नहीं है। धन तो प्रारब्धसे मिलता है। भगवान्की कृपासे तो मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जिस पर कृपा करते हैं, उसे संपत्ति नहीं, दरिद्रता देते हैं। प्रभुकृपाके होने पर तो सत्कर्म करनेकी इच्छा होगी।

जीव ऐसा तो दुष्ट है कि वह साधारण आनन्दसे भी पागल हो जाता है और थोडे-से दुःखसे भी रोने लग जाता है।

संसारमें पाप है ऐसी कल्पना कभी मत करो। तुम्हें संसारके नहीं, अपने मनमें छिपे हुए पापका उत्तर देना पडेगा। तुम जगत्के पाप दूर नहीं कर पाओगे।

प्रह्लाद कहते है- मेरा मन असाधु है। मेरा मन कामातुर है। आपकी कथामें, आपके नामस्मरणमें वह स्थिर नहीं हो पाता। कृपया आप ही मेरे मनको सुधारिए।

अपकारका बदला उपकारसे देना साधुता है।

भगवत्सेवासे विमुख व्यक्तिको देखकर मुझे दुःख होता है। संसारके प्रायः सभी लोग जितना श्रम करके दुःख उठाते हैं, उतना श्रम यदि भगवत्सेवाके लिए करें, तो वे सुखी हो जाएंगे।

यह संसारका सुख कैसा है? सांसारिक सुख दाद-खुजलीको खुजलाने जैसा है। मैथुनसुख और अन्य इन्द्रियसुख भी इसी कोटिके है। जब तक खुजलीको खुजलाते रहोगे तब तक शांतिका आभास रहेगा। किंतु नाखूनके विषसे दाद बढती जाएगी और सताएगी भी अधिक। ये सभी सुख तुच्छ और दुःखदायी हैं।

यन्मैथुनादिगृहमेधिसुखं हि तद् तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखम्।

गीताजीमें भी कहा गया है—

ये ही संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

गी० ५-२२

इन्द्रियों तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होते हुए भोग निःसंदेह दुःखके कारण हैं। वे आदि और अंतयुक्त अर्थात् अनित्य हैं अतः हे अर्जुन, ज्ञानी, मनुष्य इन सुखोंमें कभी नहीं भटकते। वे ऐसे सुखोंकी इच्छा भी नहीं करते।

जब इन्द्रियां ललचाने लगें, उस समय मानव यदि मनको शांत रखे और सावधान रहे तो वह सुखी हो सकता है।

प्रह्लाद प्रार्थना करने लगे — हे नाथ, मैं इन सब झंझटोंसे थक गया हूं।

तब प्रभु बोले— चल, मैं तुझे अपने धाममें ले चलूं।

प्रह्लाद— मैं वहां अकेला नहीं आ सकता। मैं इतना स्वार्थी नहीं हूं जो अपने इन बालमित्रोंको यहीं छोडकर आपके साथ अकेला ही चल दूं। मैं अकेला मुक्ति पाना नहीं चाहता।

प्रह्लादजी अपने सहपाठी असुर बालकोंका भी विचार करते हैं। वे सबकी मुक्ति चाहते हैं।

मात्र स्वयंके कल्याणार्थ वनमें साधन करनेवाला व्यक्ति स्वार्थी है। एकांतमें तप, साधना, भजन, जप करनेवाला मात्र अपने आपका ही उद्धार कर पाता है। मात्र अपने आपका उद्धार करनेवाला स्वार्थी है।

अपने संसर्गमें, संगमें जो कोई आए, उसका भी उद्धार करे वही सच्चा वैष्णव है।

अपनी जन्मभूमिको, जगत्के अन्य किसी भी जीवको सन्मार्गकी ओर न ले जाए और एकांतमें बैठकर तप, ध्यान करता रहे, वह चाहे कैसा भी ज्ञानी क्यों न हो, किंतु स्वार्थी ही है।

अतः प्रह्लाद बोले— हे प्रभु, मैं स्वार्थी नहीं हूं। मैं आपके धाममें आऊंगा तो अपने इन सभी मित्रोंको साथ लेकर ही।

नाथ, मैं तो आपकी क्या स्तुति कर सकता हूं? वेद भी आपकी स्तुति ठीकसे नहीं कर पाते हैं, फिर मैं तो बालक हूं।

अनन्य भक्तिके छै साधन हैं (१) प्रार्थना (२) सेवा-पूजा (३) स्तुति (४) वंदन (पापोंको याद करते हुए वंदन) (५) स्मरण (व्यावहारिक कामकाज करते हुए भी प्रभुका स्मरण) (६) कथाश्रवण। इन छै साधनोंसे परमहंस गति मिलती है। कुछ साधन करो, साधनके विना अनुभव नहीं होगा। इन साधनोंका आश्रय लेनेवाला प्रभुके चरण पाता है।

स्तुतिके अंतिम श्लोकमें प्रह्लादजीने ये छै साधन बताये हैं। जो इन साधनोंको कार्यान्वित करता है, उसे परमात्माके चरणोंमें अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

(१) प्रार्थना— प्रातःकालमें आंखें खुलने पर भगवान्का स्मरण करो, प्रार्थना करो। करदर्शन भी करो और धरतीमाताको प्रणाम करो।

सुबहमें करदर्शन करो अर्थात् हाथोंको देखकर सोचो कि मैं इन हाथोंसे आज पवित्र कर्म ही करूंगा। ताकि परमात्माको मेरे घर आनेकी इच्छा हो सके। हाथ क्रियाशक्तिका प्रतीक है, इन हाथोंसे मैं सत्कर्म ही करूंगा।

शिवो भूत्वा शिवं यजेत् ।

कल्याणरूप बनकर उस कल्याणकारीकी पूजा करो ।

प्रातःकालमें इस श्लोकका पाठ करो—

कराग्रे वसति लक्ष्मीः करमूले सरस्वती ।
करमध्ये तु गोविंदः प्रभाते करदर्शनम् ॥

आजकल तो प्रभातमें करदर्शनके बदले कपदर्शन किया जाने लगा है। जागते ही लोग चायका कप मुंहसे लगाते हैं और चायके साथ बिस्कीट खानेके बाद ही अन्य कामोंमें लगते हैं।

प्रातःकाल एकदम बिस्तर छोडनेके बदले प्रथम परमात्माको वंदन करो। उनसे प्रार्थना करो कि मैं आपका हूं और आप मेरे हैं। मेरे हृदयमें विराजिए और मेरे शरीररथका संचालन कीजिए।

प्रातःकालमें दीनतापूर्वक प्रभुसे प्रार्थना करो— हे कृष्ण! आपने जिस तरह अर्जुनका रथ चलाया था, उसी तरह मेरे शरीररथका स्वामी बनिए। भटकनेवाली इंद्रियोंको रोकिए। मेरे इन्द्रियरूपी घोडोंको संभालिए। मेरी रक्षा कीजिए।

यदि श्रीकृष्ण तुम्हारे शरीररथके सारथी बनेंगे, तो रथ नियत स्थानपर पहुंचेगा और अगर तुम्हारा मन सारथी बनेगा तो तुम्हारा रथ गड्ढेमें गिर जाएगा।

भगवान् जीवसे कहते हैं— यदि तू अपना रथ मेरे अधीन करेगा, तो तेरे इन्द्रियरूपी घोडोंको मैं नियंत्रित करूंगा, सम्हालूंगा आर दिव्य मार्गकी ओर तुझे ले जाऊंगा।

जिस प्रकार अपने रथकी बागडोर अर्जुनने प्रभुके हाथोंमें दे दी थी, उसी प्रकार तुम भी अपने रथकी बागडोर उनके हवाले करोगे, तो व तुम्हारा रथ पार ले जाएंगे।

(२) सेवा-पूजा-स्नानादिसे निवृत्त होकर एकांतमें प्रभुकी सेवा और उपासना करो।

(३) स्तुति— नाथ, आपने जब अजामिल जैसे पापीका उद्धार कर दिया तो फिर मेरी ओर ही आप क्यों नहीं देखते?

(४) कीर्तन— स्तुतिके बाद एकांतमें बैठकर प्रभुके नामका कीर्तन करो। आपका कामकाज करते समय भी प्रभुका स्मरण करते रहो।

(५) कथाश्रवण— प्रभुके प्यारे सच्चे संतोंसे समागम करो। उनके श्रीमुखसे कथा-श्रवण करो। हो सके तो रोज कथा सुनो। यदि कथा न सुन सको तो रामायण, भागवतकी कथाका वाचन करो। प्रेमपूर्वक उसका पाठ करो।

(६) स्मरण- समस्त कर्मोंका समर्पण— रातको सोनेसे पहले किए हुए कर्मोंका विचार करो कि क्या प्रभुको पसन्द आएं ऐसे कर्म मेरे हाथसे आज हुए हैं। यदि अंदरसे नकारात्मक उत्तर मिले, तो मान लेना कि वह दिन जीते हुए नहीं, मरते हुए ही गुजर गया है। यदि कोई पाप हो गया तो प्रायश्चित्त करो। और किए हुए सभी कर्मोंका फल परमात्माको अर्पित कर दो।

इन छे साधनोंको विधिपूर्वक करनेसे जीवन सुधरता है और अनन्य भक्ति प्राप्त होती है।

जिसके नयन स्नेहपूर्ण और हृदय विशाल है, भगवान्‌को वह बडा प्यारा है।

जीवकी आदत ही कुछ ऐसी है कि किसीका उपकार तो वह भूल जाता है, किंतु अपकार याद रखता है।

जीव जो चाहता है वह सब कभी नहीं होता। भगवान् जो चाहते हैं वही होता है। ईश्वरसे कुछ भी न मांगना। यदि कुछ मांगोगे तो वह व्यापार-सा ही हो जाएगा।

नृसिंह स्वामीने प्रह्लादसे कुछ वरदान मांगनेको कहा। प्रह्लाद तो निष्काम भक्त थे, अतः वे कुछ भोगादि नहीं मांगते हैं।

जो प्रभुकी सेवा करे और उसके बदलेमें कुछ मांगे, वह तो बनिया है। भगवान्‌की भक्ति भावके लिए करनी है, भोगके लिए नहीं। भोगार्थ भक्ति करनेवाला व्यक्ति भक्त नहीं, बनिया है। बनिया वह है जो देता तो अल्प ही है और अधिक पानेकी इच्छा करता है।

अपने लिए ठाकुरजीको कभी तकलीफ मत दो।

नृसिंह स्वामीने कहा- प्रह्लाद चाहे तेरी इच्छा न भी हो, फिर भी मुझे राजी करनेके लिए तो कुछ मांग।

प्रह्लाद- प्रभु, मुझ पर ऐसी कृपा करें कि संसारका कोई भी सुख पानेका विचार भी मेरे मनमें न आए। किसी भी प्रकारके इन्द्रिय सुखकी भोगैषणा मेरे मनमें न जागे ऐसा कीजिए।

कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्।

मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज ही अंकुरित न हो, मेरे हृदयमें किसी भी कामनाका अंकुर ही न रहे, ऐसा वरदान मुझे दें।

प्रह्लादने भगवान्‌से जो मांगा था, वही तुम भी मांगना। प्रह्लाद 'कामस्य' नहीं, 'कामानाम्' बोले थे। इन्द्रिय सुखकी मनमें इच्छा ही नहीं जगनी चाहिए। ऐसा सादगीपूर्ण जीवन जीओ कि मनमें किसी सुखकी वासना ही न जागे। वासना बुरी है। वासनाके अनुसार विषयसुखका उपभोग न करने पर मन व्यग्र तो होता है, किंतु वासनाको तृप्त करने पर वह और ज्यादा भडकती है।

सांसारिक सुखका उपभोग करनेकी इच्छा ही महादुःख है। जिसे किसी भी सुखकी इच्छा नहीं है, वही सच्चा सुखी है। सांसारिक सुखकी इच्छा कभी हो न पाए, ऐसा समझना ही सुख है। सुखकी इच्छा होते ही मनुष्यकी बुद्धिशक्ति क्षीण होने लगती है। मन पर हमेशा भक्तिका अंकुश रखो।

प्रह्लादने वरदान भी कैसा मांगा! वासनाकी जागृति तेजका नाश करती है, सो ऐसी कृपा करो कि मेरे मनमें वासना जागे ही नहीं।

गीतामें कहा गया है— सर्व काम्यकर्मोंका और सर्व इच्छाओंका त्याग ही संन्यास है, ऐसा महात्मा कहते हैं।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

जीव निष्काम होता है तो उसका जीवभाव नष्ट हो जाता है। और फिर वह भगवान्‌के साथ एक हो जाता है। जीव ईश्वररूप बनता है। पुण्य भी मुक्तिमें बाधक है। विवेकसे पुण्योंका क्षय करो। मेरे स्वरूपका निरंतर ध्यान करो। पाप लोहेकी जंजीर है और पुण्य सुवर्णकी जंजीर है। इन दोनोंको नष्ट करके ही तुझे मेरे धाममें आना है।

इस स्तुतिका पाठ करके मुझे और तुझे जो याद करेगा वह कर्मबंधनोंसे मुक्त हो जाएगा।

प्रह्लाद— नाथ, ऐसी कृपा कीजिए कि मेरे पिताकी भी दुर्गति न होने पाए।

नृसिंह-स्वामी— तेरे पिताको सद्गति देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। तेरे सत्कर्मोंके प्रतापसे ही तेरे पिताकी सद्गति होगी। तेरे जैसे पुत्रसे तो इक्कीस पीढियोंका उद्धार होता है— मातृपक्षकी सात, पितृपक्षकी सात और श्वसुरपक्षकी सात।

प्रह्लाद, आज तक मैंने रावण-शिशुपाल या अन्य किसी भी दैत्यको अपनी गोदमें कभी नहीं बिठाया। पर तुझ जैसे भक्तके कारण मैंने आज तेरे पिताको अपनी गोदमें लिया। तेरे जैसा भगवद्भक्त पिताका भी उद्धार करता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

माता-पिता दुराचारी हों किंतु यदि पुत्र सदाचारी होगा तो उनका भी उद्धार होगा। किंतु यदि माता-पिता सदाचारी हों और पुत्र दुराचारी हो तो उनका उद्धार नहीं हो सकता, उनकी दुर्गति ही होगी।

एक हंस-युगल आनंदसे रहता था। हंसी बडी सुंदर थी। एक बार घूमते-फिरते सांझ ढल गई तो वे एक वृक्ष पर बैठ गए। वहां कौएका एक घोंसला था। हंसने उससे रात गुजारने देनेकी विनति की। हंसिनीकी सुंदरता देखकर कौएकी मति भ्रष्ट हो गई।

शास्त्रमें कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी आंखसे पाप करता है उसे अगले जन्ममें कौआ बनना पडता है।

कौएने हंस- हंसिनीको रातभर रहने दिया। दूसरे दिन वे जाने लगे तो कौआ हंसिनीको रोकने लगा। हंसने कहा— हंसिनी मेरी है, तो कौआ उसे अपनी कहने लगा। अंतमें दोनों न्याय मांगनेके लिए न्यायाधीशके पास पहुंचे।

न्यायाधीशने कहा कि मैं तो दोनोंकी बातें बराबर सुननेके बाद निर्णय करूंगा। वह कौआ बडा चालाक था। कौआ पितृदूत माना जाता है, अतः वह न्यायाधीशके घर जाकर कहने लगा कि "तुम्हारे माता-पिता कौन-सी योनिमें हैं वह मैं जानता हूं। अतः तुम मेरा काम करोगे, तो मैं तुम्हारा काम करूंगा। तुम हंसिनीको मुझे दिला दो और मैं तुम्हें यह बताऊंगा कि तुम्हारे माता-पिता कौन-सी योनिमें हैं।"

"न्यायाधीश कौवेके बातोंमें आ गया। उसने दूसरे दिन न्याय करते हुए कहा– हंसिनी उसीकी है जो उडता हुआ आगे निकल जाए।" हंसकी अपेक्षा कौआ अधिक गतिसे उडता है। कौआ उडता हुआ हंसके आगे निकल गया तो न्यायाधीशने हंसी उसीके हवाले कर दी।

अब न्यायाधीशने कौएसे अपने माता-पिताके बारेमें पूछा। कौएने उसे एक कूडेके ढेरके पास ले जाकर कहा– यह दो जंतु ही तुम्हारे माता-पिता हैं।

अन्यायी पुत्रके माता पिताकी ऐसी ही दुर्गति होती है।

पिताके सिर पर बडी भारी जिम्मेदारी होती है। यदि वह अपने पुत्रको संस्कारी न बनाए तो पुत्र ही उसका वैरी बन जाता है।

प्रह्लाद, तू अशांत न होना। तेरे पिताका उद्धार हो गया है। और साथ साथ तेरी इक्कीस पीढियां भी पवित्र हो गई हैं।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, अब तो तुम्हें विश्वास हो गया होगा कि भगवान्‌के दंडमें भी करुणा है। भगवान् जिन दैत्यादिको मारते हैं, उनका उद्धार भी तो करते हैं।

निष्काम भगवान्‌का कामभावसे चिंतन करनेवाली गोपियां भगवान्‌मय बन गईं, तो शिशुपाल क्रोधभावसे प्रभुका चिंतन करता था फिर भी वह भी प्रभुमय हो गया। कंस भी डरसे, भयसे प्रभुका चिंतन करता हुआ प्रभुमय हो गया।

भगवान्‌के ध्यानमें गोपियां कामभावसे, शिशुपाल वैर-द्वेषभावसे, कंस भयसे तन्मय हुआ था। अटल वैरभाव, वैरविहीन भक्तिभाव, भय, स्नेह या अन्य किसी भी भाव-कामनासे भगवान्‌में पूर्णतः मन लगाना चाहिए। भगवान्‌की दृष्टिसे इन भावोंमें कोई भेद नहीं है।

बात इतनी सी और यही है कि किसी भी रीतिसे भगवान्‌से तन्मयता हो।

भगवान्‌के द्वारपाल जय और विजयके ये तीन अवतार हुए थे।

(१) हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु— यह लोभका अवतार था।

(२) रावण और कुंभकर्ण— यह काम और प्रमादका अवतार था।

(३) शिशुपाल और दंतवक्र— यह क्रोध और अभिमानका अवतार है।

प्रह्लादजीने अपने पिताके मृतदेहका अग्निसंस्कार किया। ब्रह्माजीने प्रह्लादका राज्याभिषेक किया। प्रह्लादने नृसिंह स्वामीको प्रणाम किया। नृसिंह स्वामी प्रसन्न हो गए।

नारदजीने प्रेमसे प्रह्लादकी चरित्रकथा धर्मराजाको सुनाई, फिर भी नारदजीने देखा तो धर्मराजाके मुख पर ग्लानि छाई हुई थी। नारदजी सोचमें डूब गए कि अब भी धर्मराजा उदास क्यों हैं? क्या मेरे कथाके कथनमें कोई क्षति हो गई है, जो कि ये कथासे भी आनंदित नहीं हुए हैं।

धर्मराजासे नारदजीने पूछा— तुम्हारे मुख पर आनन्द क्यों नहीं है? क्या चिंता है तुम्हें?

धर्मराजा— पांच वर्षके प्रह्लादका ज्ञान, वैराग्य और प्रेम तो देखो। धन्य है प्रह्लाद और उसका बचपन और उसका प्रेम कि जिसके कारण प्रभु स्तंभमेंसे प्रकट हुए। मैं पचपन वर्षका हो गया फिर भी एक भी बार प्रभुका दर्शन नहीं कर सका हूं। मेरा जीवन पशु-सा ही बीत गया। धनके पीछे दौडा, भूख लगी तो खाना खाया, नींद आई तो सो गया, वासना जगी तो कामांध हुआ। अवतार मनुष्यका मिला है फिर भी प्रभुके हितार्थ एक भी सत्कर्म नहीं किया। धिक्कार है मुझे। मेरा जीवन कुत्तेके जैसा ही बीत गया। मैं अब भी प्रभुमें लीन न हो सका, प्रभुप्रेममें पागल न हो सका, मुझे अभी तक भगवान् नहीं मिल पाए, जब कि उस पांच वर्षके प्रह्लादने भगवान्‌को पा लिया था।

मुझे जगत्‌में प्रतिष्ठा, मान तो मिले, किंतु मैं भगवान्‌को न पा सका, अतः उदास हूं।

भक्तिके बिना, भगवान्‌के दर्शन बिना मेरा जीवन वृथा ही बीत गया। इसी कारणसे मुझे दुःख हो रहा है, मेरे चेहरे पर ग्लानि छाई हुई है। मेरा जीवन पशुवत् बीत गया। एक भी बार मैं परमात्माका दर्शन न पा सका, इसका मुझे दुःख है। मैंने वैसे तो बहुत किया किंतु जो करना चाहिए था, वही नहीं किया। मैंने भगवान्‌के लिए कुछ भी नहीं किया।

शरीरं सुरूपं नवीनं कलत्रं धनं मेरुतुल्यम् यशश्चारु चित्रम् ।
हरिरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किम् ततः किम् ततः किम् ततः किम् ॥

सुंदर शरीर, नवोढा पत्नी, मेरु पर्वत जितना धन और पुष्कल कीर्ति तो हो किंतु मन प्रभुचरणोंमें न लगा हुआ हो, तो उन सबसे क्या लाभ ? इनसे क्या हुआ ? क्या मिला ? कुछ भी तो नहीं ।

जगत्‌की प्रतिष्ठा, धन या विद्वत्ता अंतकालमें कुछ भी काम नहीं आती ।

जो विद्या अंतकालमें निरर्थक और निरुपयोगी ही रह जाए, उससे लाभ ही क्या ?

एक बार एक नौकामें कुछ विद्वान् सुधारक प्रवास कर रहे थे । बातों ही बातोंमें उन्होंने नाविकसे पूछा— तुम कहां तक पढे–लिखे हो ?

नाविक— कैसी पढाई और कैसी लिखाई ? बस, मैं तो यह नौका चलाना ही जानता हूं ।

विद्वान्— तुम्हें इतिहासकी कुछ भी जानकारी है क्या ? इंग्लैंडमें कितने एडवर्ड हुए हैं ?

नाविक— मैं इतिहास नहीं जानता ।

पंडित— तब तो तेरी एक चौथाई जिंदगी बेकार ही गुजर गई । क्या तुझे भूगोलका ज्ञान है ? लंदन शहरकी आबादी कितनी है ?

नाविक— मैं भूगोल भी नहीं जानता ।

पंडित— ओह ! अब तो तेरी आधी जिंदगी बेकार ही चली गई । तुझे साहित्यका ज्ञान है ? शेक्सपीयरके कौनसे नाटक तूने पढे हैं ?

नाविक— मैंने साहित्य भी नहीं पढा है ।

पंडित— तब तो तेरी तीन चौथाई जिंदगी पानीमें ही चली गई ।

इतनेमें नदीमें तूफान आया और नैय्या इधर–उधर डोलने लगी ।

नाविकने उन विद्वानोंसे पूछा— महाराज, लगता है कि हमारी नौका पानीमें डूब जाएगी । क्या आप सब तैरना जानते हैं ।

सभी पंडितोंने कहा— नहीं, हम तैरना तो नहीं जानते हैं ।

नाविक— हरिहर ! आप तैरना नहीं जानते हैं, तब तो आपकी सारी जिंदगी अभी पानीमें चली जाएगी ।

हुआ भी ऐसा ही, तूफानमें नौका डूब गई और उसके साथ विद्वान् भी डूब गए, पर नाविक तैरता हुआ बाहर आ गया ।

रामकृष्ण परमहंस बार बार इस दृष्टांतको सुनाते रहते थे ।

संसार भी एक समुद्र ही है । इस भवसागरको येन केन प्रकारेण पार करना ही होगा । जो विद्या संसार पार करनेकी कला सिखा सके, वही विद्या सच्ची विद्या है । भव-

सागरको तैरनेके लिए भजन ही एकमात्र साधन है। इस भजनरूपी विद्या सीखनेके बदले मात्र सांसारिक विद्या सीखकर पंडिताईका अभिमान करनेवाला व्यक्ति इस सागरमें डूब ही जाता है।

जो विद्या अंतकालमें परमात्माके दर्शन न करा सके, वह विद्या ही नहीं है।

संयोगमें दोषदर्शन और वियोगमें गुणदर्शन ही जीवका स्वभाव है।

धर्मराजाकी राजसभामें स्वयं द्वारिकानाथ विराजते थे, फिर भी धर्मराजा उनके स्वरूपसे अज्ञात थे। ठाकुरजी अपना स्वरूप छुपाते रहते हैं।

कृष्ण भगवान् कहते हैं—मैं तो माखनचोर हूं। जिसके मनकी मैं चोरी करता हूं वही मुझे पहचान सकता है। कृष्ण गुप्त ही रहना चाहते हैं।

परमात्मा गुप्त रहना चाहते हैं, तो जीव प्रकट। ईश्वरने भांति भांतिके फूल, फल, आदि न जाने कितनी वस्तुओंका सर्जन किया, फिर भी उन पर कहीं अपना नाम नहीं लिखा है। मनुष्य तो मकान आदिसे लेकर अंगूठी जैसी छोटी-सी वस्तुओं पर और अपने शरीर भी नाम लिख देता है। अरे भाई, शरीरपर भी नाम क्यों लिखता है तू? उसे कौन ले जायगा? मकान पर नाम लिखता है मनहरनिवास। पर यह मनहर कितने दिन जीनेवाला है? मकान पर नाम ही लिखना है तो रामनिवास, कृष्णभवन लिखो। यह सभी कुछ तो ठाकुरजीका है, फिर भी मानव नाम-रूपमें फंसा हुआ है।

आजकल लोग सेवा भी नाम कमानेके हेतुसे ही करते हैं, पुण्यलाभके लिए नहीं। मंदिरमें कोई वस्तु देता है तो उस पर भी पहले अपना नाम लिख देता है। याद रखो कि अतिशय प्रसिद्धि पुण्यका क्षय ही करती है।

कृष्ण पांडवोंके बीचमें ही रहते थे, फिर भी उन्हें कोई पहचानता नहीं था। और वे पहचाने भी कैसे जा सकते थे? युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके भोजन समारंभमें झूठी पत्रावलियां (पत्तलें) उठाने जैसा काम वे करते थे।

गीतागायक श्रीकृष्णका यही तो है दिव्य कर्मयोग। उन्होंने अपनी वाणी अपने जीवनमें कार्यान्वित भी की।

प्रभुने धर्मराजासे कहा था— महाराज, अपने यज्ञमें थोडी-सी सेवा करनेका मुझे भी अवसर दीजिए। मैं झूठन साफ करता रहूंगा। कृष्ण ऐसा काम करते थे, अतः धर्मराजाने मान लिया था कि वे मामाके पुत्र हैं अतः यह काम करते हैं।

ईश्वर स्वयं ऐसा अनुभव ही नहीं करते हैं कि वे ईश्वर हैं। यदि ईश्वर ऐसा करें तो उनका ईश्वरत्व ही नष्ट हो जाए।

धर्मराजा इस बातको भूल गए थे कि स्वयं श्रीकृष्ण ही उनके साथ बात कर रहे हैं, अतः वे कहते हैं कि भगवान्‌के दर्शन अभी तक नहीं हो पाए हैं।

नारदजी धर्मराजासे कहते हैं— ये बडे बडे मुनि आपके घर आए हुए हैं। उन्हें दक्षिणाका लोभ नहीं है, ये दुर्वासा और जमदग्नि निस्पृह हैं।

धर्मराजाके यहां विशाल जनसमुदाय एकत्र हुआ था, अतः दुर्वासाको आशंका थी, कि कहीं कुछ अधर्माचरण न हो जाए और ऐसी आशंकाके कारण वे भोजन तक नहीं करते थे।

द्वारिकाधीश दुर्वासाका ब्रह्मविद्याका गुरु मानते हैं।

एक दिवस रुक्मिणीने कहा— नाथ, दुर्वासा आपके गुरु हैं और बडे तपस्वी भी। क्यों न हम ऐसे पवित्र ब्राह्मणको भोजन कराएं ?

कृष्ण— ये दूर रहें वही ठीक है। घर पर आएंगे तो गडबड करेंगे।

रुक्मिणीने अति आग्रह किया। तो कृष्ण-रुक्मिणी दुर्वासाको आमंत्रण देनेके लिए पिंडारक तीर्थ आए। दुर्वासाने कहा— भोजनकी बात जाने दीजिए। मेरे आशीर्वाद हैं आपको। मैं क्रोधी हूं। कहीं क्रोधवश कुछ शाप न दे दूं।

किंतु कृष्ण-रुक्मिणीके अति आग्रहके कारण दुर्वासा आनेके लिए तैयार हुए। रथमें बैठे। दुर्वासाने उनकी परीक्षा करनेका विचार किया और कृष्णसे कहा— मैं हूं ब्राह्मण और तुम हो क्षत्रिय। क्या यह योग्य है कि हम एक ही आसन पर बैठें। अतः इन बैलोंको हटाकर तुम स्वयं रथको खींचो तो मैं आऊं।

कृष्ण और रुक्मिणी रथ खींचने लगे। माताजी थक गईं और प्यासी हो गई। वे बोलीं—ब्राह्मण बडे विचित्र होते हैं। मैं ब्राह्मणोंके घरमें नहीं रहना चाहती। कृष्णने समझाया कि अब अधिक देरी नहीं है, धीरज रखो। तो रुक्मिणीने कहा— मैं धीरज नहीं रख सकती। मैं इस प्रदेशमें नहीं रहूंगी।

कृष्ण— नहीं, नहीं। इस प्रदेशको कभी न छोडना। इस गुजरातमें हमेशा वास करना। और लक्ष्मीजी गुजरातमें रह गईं।

प्रभुकी लीला है। दुर्वासाके हृदयमें भी श्रीकृष्ण हैं। रुक्मिणी जल पीने जा ही रही थीं कि दुर्वासा समाधिमेंसे जाग गए। दुर्वासाने क्रोधसे कहा कि ब्राह्मणको भोजन करानेसे पहले तुम जलपान कर रहे हो, अतः मेरा शाप है कि तुम दोनोंका वियोग होगा। कृष्णने कहा कि आपका शाप सिर-आंखों पर, किंतु आप मेरे घर तो चलिए।

दुर्वासाको लगा कि मैंने शाप देकर कुछ अनुचित-सा कर दिया है। अतः उन्होंने कहा— मैं बारह वर्षके पश्चात् आकर तुम दोनोंका विवाह करवाऊंगा।

नारदजी धर्मराजसे कहने लगे— ये ऋषि तुम्हारे यहां कुछ खाने या लेनेके लिए नहीं आए हैं। ये तो परब्रह्म परमात्माके दर्शन करनेके लिए यहां आए हैं। चिंतन करने पर भी उनके ध्यानमें परमात्माका स्वरूप आ नहीं सका, अतः वे उनका दर्शन करनेके हेतु तुम्हारे यज्ञमें आए हैं। इन्हें तो दर्शनका लोभ है।

राजन्, तुम तो प्रह्लादसे अधिक भाग्यशाली हो। परमात्मा तुम्हारे रिश्तेदार होकर तुम्हारे घरमें रहते हैं।

हमारे घरमें भी भगवान् हैं। किंतु नारदजी जैसे संत द्वारा दृष्टि मिलने पर ही उनका दर्शन हो सकता है।

राजन्, तुम भाग्यशाली हो कि परमात्मा तुम्हारी सभामें ही विराजमान हैं।

नारदजीके वचन सुनकर धर्मराजा राजसभामें चारों ओर निहारने लगे, किंतु कहीं भी वे परमात्माका दर्शन नहीं कर पाए। धर्मराजा परमात्माको पहचान ही नहीं सके। द्वारिकानाथको देखते तो थे, किंतु उन्हें तो वे ममेरा भाई ही मानते थे।

इधर कृष्ण सोचते हैं कि नारदजी अब चुप हो जायें तो अच्छा रहे। अन्यथा वे मुझे प्रसिद्ध कर देंगे। उन्होंने नारदजीसे कहा– नारद, मुझे तुम प्रकट मत करो। अपनी कथा ही पूरी करो।

नारदजीने कहा– इस सभामें जगत्के जन्मदाता उपस्थित हैं। ब्रह्माजीने माना कि नारदजी मेरा नाम घोषित करेंगे और मुझे प्रसिद्धि मिलेगी।

ईश्वर जीवको अपना ले, तो जीव ईश्वर बनता है।

राजन्, जगत्स्रष्टा और ब्रह्माके भी जो पिता हैं वे बैठे हुए हैं इस सभामें।

धर्मराजा नारदजीसे पूछने लगे– कहां हैं भगवान्? कहां हैं परब्रह्म? मुझे क्यों दीखते नहीं हैं? कहां हैं वे?

अब नारदजीसे रहा नहीं गया। आज चाहे अप्रसन्न क्यों न हों, मुझे उन्हें प्रसिद्ध करना ही होगा।

नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णकी ओर इंगित करते हुए कहा– " अयम् ब्रह्म "।
उपनिषद्में " इदम् ब्रह्म " की बातें हैं और इधर " अयम् ब्रह्म " की।

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥
स वा अयम् ब्रह्म ॥

भा. ७–१०–४८

इनके ही दर्शनार्थ ये सारे मुनि यहां आए हुए हैं।

प्रभुने सिर झुका कर मुंह छुपाया। मैं ब्रह्म नहीं हूं। नारद असत्य बोल रहे हैं।

नारदजीने कहा– " अयम् ब्रह्म "। इन्हें असत्य बोलनेका स्वभाव ही है। भगवान् कभी कभी लीला करते हुए असत्य बोलते हैं। उन्होंने बाल्यावस्थामें भी अपनी माता यशोदासे एक बार कहा था कि " नाहं भक्षितवानम्ब "। मैंने मिट्टी खायी ही नहीं। ये सब बालक झूठ बोल रहे हैं।

आत्मानुभूति कई बार होने पर भी दृढता नहीं आती है। दृढता सद्गुरुकी कृपासे आती है।

नारदजीने धर्मराजाको भगवान् नारायणके दर्शन कराए। और सारी बातें खोल कर बताईं।

अब मिश्रवासनाके प्रकरणका आरंभ हो रहा है। सातवें स्कंधके ११ से १५ अध्यायमें मिश्रवासनाकी बातें हैं।

मनुष्यकी वासना मिश्रवासना है। प्रथम मैं स्वयं उपभोग करूंगा और फिर भी यदि कुछ बाकी बचा तो ही दूसरोंको दूंगा। यही है मिश्रवासना। संतकी वासना सद्वासना है

और राक्षसकी असद्‌वासना। दुर्जन जो कहता है वह हमें पसंद नहीं है और वैष्णव जो कहते हैं वैसा हमारा जीवन नहीं है।

प्रह्लादका चरित्र सुननेके बाद धर्मराजाने नारदजीसे मनुष्यधर्म समझानेको कहा।

११ से १५ अध्याय तक धर्मकी कथा है। प्रथम चार अध्यायमें साधारण धर्म और पांचसे पंद्रहवें अध्यायमें विशिष्ट धर्म बताया गया है।

मनुष्यका सच्चा मित्र धर्म ही है। जब कोई साथ नहीं दे पाता तब धर्म साथ देता है। चाहे धनसंपत्ति नष्ट हो जाए, पर धर्मका नाश नहीं होने देना चाहिए। मनुष्य धनको ही सारे सुखोंका साधन मानता है, किंतु यह असत्य है, अज्ञान है। सभी सुखोंका साधन धन नहीं, धर्म है। मानवसृष्टिके संचालनके लिए भगवान्‌ने जो विधिविधान बनाये हैं, वही धर्म है।

आजके कायदे–कानूनोंमें कई बार परिवर्तन करने पडते हैं क्योंकि इनके बनानेवाले विलासी जो हैं। रामराज्यमें तो वसिष्ठका वचन ही धारा बन जाती थी।

प्रथम साधारण धर्मके तीस लक्षणोंका वर्णन है। साधारण धर्म अर्थात् सबका धर्म, मनुष्यमात्रका धर्म।

नारदजी कहते हैं– इस धर्मकी कथा बडी लंबी है। मैंने इसे नारायणके श्रीमुखसे सुना है। धर्मके तीस लक्षण हैं। प्रथम लक्षण है सत्य और अन्तिम लक्षण है आत्मसमर्पण। धर्मकथाका आरंभ सत्यसे होता है और समाप्ति आत्मसमर्पणसे।

सत्य ही ईश्वरका स्वरूप है। धर्मकी गति सूक्ष्म है। असत्यके समान कोई पाप नहीं है।

सत्य वह साधन है जिसके सहारे मनुष्य सत्यनारायणमें लीन होता है।

हरिश्चंद्रने पत्नीका विक्रय करके भी सत्यका निर्वाह किया था।

सत्यमें अटल श्रद्धा रखो। यथार्थका नाम सत्य है। महाभारतके अनुसार जिससे सभीका कल्याण हो सके, ऐसा विवेकपूर्ण वचन ही सत्य है। सभीका कल्याण हो सके, ऐसा विवेकभरा वचन ही बोलो।

सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्।

श्रीकृष्णके असत्य वचन भी सत्य हैं, क्योंकि वे बहुजनहिताय हैं।

महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्यके प्रसंगमें श्रीकृष्णको असत्य बोलना पडा था। द्रोणाचार्य भीषण युद्ध कर रहे थे। उनके हाथमें जबतक शस्त्र था, तबतक उन्हें मार पाना असंभव था। क्या किया जाए? अश्वत्थामा नामक हाथीको मारकर द्रोणसे कहा गया कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मर गया है। द्रोणाचार्यने यह बात झूठी मानी। उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण जैसे भी असत्य बोल सकते हैं, किंतु धर्मराजा कभी असत्य नहीं बोलते। मैं उनसे ही पूछ लूं। उन्होंने युधिष्ठिरके पास जाकर कहा– यदि मेरा पुत्र ही मरा है तो मुझे शस्त्रत्याग करना पडेगा। क्या सचमुच मेरा पुत्र मरा गया है?

श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा था कि बोल देना— अश्वत्थामा हतः। सत्यं वद का नियम मैंने बनाया है अतः इसमें परिवर्तन करनेका मुझे अधिकार है। सत्य वही है कि जिसे विवेकसे बोलनेसे सभीका कल्याण होता हो। द्रोणाचार्यके शस्त्रत्यागसे कौरवोंकी पराजय होगी और पांडवोंको राज्य मिलेगा। दुर्योधनकी हत्यासे पाप अधिक नहीं होगा, अपितु इससे स्वयं दुर्योधनका कल्याण ही होगा।

कोई प्रश्न करेगा कि सभीका तो कल्याण होता किंतु द्रोणाचार्यको क्या लाभ होता?

द्रोणाचार्य वेदसंपन्न ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणको युद्ध करनेका अधिकार नहीं है। यदि उसे कभी युद्ध करना भी पडे तो मात्र धर्मकी रक्षाके हेतु ही करना चाहिए। ब्राह्मण होते हुए भी द्रोणाचार्य युद्ध करते है। अतः उनके शस्त्रत्यागसे उनका ही कल्याण होता।

मैं द्रोणाचार्यको नरसहारके पापकर्मसे रोकना चाहता हूं। अत. मेरी यह आज्ञा है।

धर्मराजाने द्रोणाचार्यको सुनाया— अश्वत्थामा हतः। किंतु दबे होठोंसे आगे बोले— नरो वा कुंजरो वा।

धर्मराजाके शब्द सुनकर द्रोणाचार्यने शस्त्रोंका त्याग किया। श्रीकृष्णने धृष्टद्युम्नको आज्ञा दी कि द्रोणाचार्यका सिर उडा दो। उनकी मृत्यु हुई और सभीका कल्याण हुआ।

दयाभाव धर्मका द्वितीय लक्षण है। जहां तक हो सके, दूसरोंका भला करो। हर रोज सोचो क्या मैंने आज किसीका कुछ काम किया है। क्या मैंने परमात्माको पसद आए, वैसा कोई काम किया है?

तुलसीदासजीने भी कहा है—

तुलसी दया न छोडिए जब लग घटमें प्रान।

जो साधक इसी जन्ममें ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहता है, उसे सोच—समझकर विवेकपूर्वक दया करनी चाहिए। कभी कभी दयाभाव भजनमें विक्षेप करता है।

तीसरी बात है पवित्रताकी। पावित्र्य सभीका धर्म है। आजकल लोग शरीरको बहुत शुद्ध करते है, किंतु मनको शुद्ध नहीं रखते। मनशुद्धि, चित्तशुद्धि आवश्यक है। मन मृत्युके बाद भी साथ साथ आएगा। मनके अलावा और कुछ साथ नहीं आएगा, अतः इसे पवित्र रखना आवश्यक है।

शरीरकी अपेक्षा पाप तो मनसे अधिक होते हैं। जो मनसे पाप करता है, उसका मन ईश्वरके ध्यानमें स्थिर नहीं हो पाता। व्यवहारसे आत्मा इतनी घुल-मिल जाती है, कि मनके पापका उसे ज्ञान तक नहीं रहता।

चौथा धर्म है तपश्चर्या। विचार, वाणी और वर्तनको शुद्ध रखना ही तपश्चर्या है। पांचवा धर्म है तितिक्षा। भगवद्कृपासे जो भी दुःख मिले, उसे सहन कर लो। शत्रुके प्रति भी सद्भाव बनाए रखो। तभी परमात्मा आपके पक्षमें रहेंगे और आपके शत्रुको दड देंगे।

एक महात्मा जप करते हुए जा रहे थे। रास्तेमें किसी धोबीने कपडे सुखानेके लिए फैलाए हुए थे। उस पर महात्माका पांव पड गया। धोबीने यह देखा तो वह महात्माको लकडीसे पीटने लगा।

भगवान्ने सोचा कि वह महात्मा तो मेरा ही नाम जप रहा था, अतः मैं उसकी रक्षा नहीं करूंगा तो मेरी प्रतिष्ठाका क्या होगा ? महात्माकी रक्षाके लिए वे वैकुंठसे धरती पर उतर आए।

इधर महात्माकी सहनशीलताने जवाब दे दिया। उन्होंने सोचा कि इस धोबीसे मैं अधिक सशक्त हूं। उन्होंने धोबीको मारनेके लिए लकडी उठायी। प्रभुने यह देखा तो वे वापस चले गए।

भगवान् तुरंत वापस जा पहुंचे तो लक्ष्मीजीने कारण पूछा। भगवान्ने कहा— अब वहां महात्मा नहीं है। दो धोबी लड रहे हैं। महात्माने सहनशीलताका त्याग करके उस धोबीसा ही आचरण किया है। अब मुझे वहां करना ही क्या था ?

मनुष्य अपमानके कारण तभी दुःखी होता है, जब वह अभिमानी होता है। जीव दीन होकर ईश्वरके चरणमें आश्रय ग्रहण करे तो उस पर अपमानका कोई असर नहीं होगा।

सहनशक्ति ही तितिक्षा है।

(६) अहिंसा– मन, वचन और कायासे किसीको दुःखी न करना ही अहिंसा है। सत वही है कि जिसके संगमें आनेवालेका स्वभाव बदल जाए, सुधर जाए। ऋषियोंके आश्रममें हिंसक पशु भी शांत हो जाते थे।

(७) ब्रह्मचर्य– शारीरिक ब्रह्मचर्यपालन तो कई लोग करते हैं किंतु आंख और मनसे ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले बहुत कम होते हैं। किसी स्त्री या पुरुषका चिंतन करना भी ब्रह्मचर्यका भंग ही है। कामभावके गीतका श्रवण भी ब्रह्मचर्यभंग ही है। ब्रह्मचर्य तो मनको स्थिर करनेका साधन है।

(८) त्याग– कुछ भी त्याग करना धर्म है।

(९) स्वाध्याय– सद्ग्रंथका चिंतन, मनन ही स्वाध्याय है, जो हर किसीका धर्म है।

(१०) आर्जवम्– स्वभावको सरल रखना भी सभीका धर्म है।

(११) संतोष– ईश्वरने जो और जितना दिया है, उससे संतुष्ट रहनेवाला व्यक्ति ही श्रीमंत है और असंतुष्ट रहनेवाला दरिद्र है।

एक भिखमंगेको रास्तेमेंसे एक रत्नखचित अंगूठी मिली। उसने सोचा कि मुझसे भी जो व्यक्ति गरीब होगा उसे मैं यह अंगूठी दे दूंगा। चलते चलते एक स्थान पर उसने देखा कि एक पांच बंगलोंका मालिक सेठ छठा बंगला बनवा रहा है और मजदूरोंके साथ मजदूरीके पैसोंकी बात पर झगडा कर रहा है। काम पूरा लेता है पर पूरा दाम नहीं देता है। उस भिख-मंगेने उस सेठको अंगूठी दे दी। तो सेठ कहने लगा– मेरे पास तो बहुत कुछ है, मैं भिखमगा नहीं हूं। यह अगूठी मुझे क्यों दे रहा है तू ?

तो उस भिखमंगेने कहा– यदि आपके पास बहुत कुछ है, तो फिर मजदूरोंसे झगडा क्यों करते हैं ? लोभ क्यों करते है ? आप संतोषी नहीं है, अतः भिखमंगे ही हैं।

तुम भी तो सोचो कि सच्चा भिखमंगा कौन था और सच्चा सेठ कौन था ?

(१२) समदृष्टि- सर्वमें, सर्वके प्रति समदृष्टिसे देखना सभीका धर्म है। कोई कारण-वशात् व्यावहारिक विषमता चाहे करनी पडे, किंतु भावात्मक विषमता कभी न होनी चाहिए।

(१३) मौन- बिना कारण, व्यर्थ कुछ भी न बोलना ही मौन है और यह भी सभीका धर्म है। मौन मनसे भी होना चाहिए। मौनसे मनको शांति मिलती है और मानसिक पापोंका नाश होता है। वाणी पर बुद्धिपूर्वक अंकुश रखो।

(१४) आत्मचिंतन- प्रतिदिन सोचते रहो कि मै कौन हूं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं परमात्माका ही अंश हूं। जन्मसे पूर्व न तो कोई रिश्तेदार था और मृत्युके पश्चात् न कोई रिश्तेदार रहेगा। इन दोनोंके मध्यावधि समयमें ही रिश्तेदार होते है। ये कौन हैं, कहांसे आते हैं? यह सब भगवान्की ही माया है। आत्मस्वरूपको बराबर जाननेवाला ही आनंद पा सकता है। यह जगत् नहीं है ऐसा अनुभव तो मानवी कर सकता है, किंतु स्वयके अनस्तित्वको मान्य नहीं कर सकता। वह परमात्माका अंश है उसे शरीरसे भिन्न होना है।

दृश्यमेंसे दृष्टिको हटाकर सभीके साक्षीस्वरूप द्रष्टामें मन स्थिर करोगे तो सच्चा आनंद मिलेगा।

आत्मा-अनात्माका विवेक भी सभीका धर्म है। जगत् अपूर्ण है, आत्मा परिपूर्ण। मनुष्य जब तक अपने स्वरूपको स्वयं देख नहीं पाता है, तब तक उसे आनंद नहीं मिल पाता।

वेदकी वाणी अति गूढ है।

एक सेठने अपनी बहीमें लिखा था कि गगा-यमुनाके मध्यमें मैंने लाख रुपये रख छोडे हैं। जब उनके पुत्र दरिद्र हो गए, तो उन्होंने पुरानी बही पढते पढते वह बात भी देखी। किंतु वे इसका अर्थ नहीं जान सके। एक बार उनके पिताके पुराने मुनीम कहींसे आए, तो उनसे उस बहीकी बातोंका अर्थ पूछा गया। तो उन्होंने कहा- तुम्हारी दो गायें हैं यमुना और गंगा। ये जिस स्थान पर बांधी जाती हैं, वहीं ये रुपये गाड कर रखे गए है।

इस दृष्टांतका आध्यात्मिक अर्थ हमें देखना है। गंगा और यमुना हैं हमारी इंगला और पिंगला नाडियां। इन दो नाडियोंके बीच होती है सुषुम्ना नाडी। जबतक किसी सद्गुरुके द्वारा यह सुषुम्ना नाडी जाग्रत नहीं हो पाती, तब तक ब्रह्मका दर्शन नहीं हो पाता।

ज्ञानीजन ललाटमें ब्रह्मका दर्शन करते हैं, तो वैष्णवजन हृदयसिंहासन पर चतुर्भुज नारायणका दर्शन करते है।

साधु होना उतना कठिन नहीं है, जितना कि सरल होना।

(१५) पंच महाभूतोंमें ईश्वरकी भावना करना, ईश्वरका अनुभव करना सभीका धर्म है।

(१६) कृष्णकथाका श्रवण करना भी सभीका धर्म है।

(१७) कृष्णकीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार और उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण- ये भी सभीका धर्म है।

मैं परमात्मा हूं, ऐसा सतत चिंतन करनेसे जीवको वे अपना लेते हैं। हमेशा यह याद रखो कि भगवान् एक भी क्षण मुझसे दूर नहीं रहते हैं। जो ईश्वरको अपने संग रखता है, वह निर्भय बनता है।

परमात्माको आत्मसमर्पण करना सभीका धर्म है।

इसके आगे विशिष्ट धर्मोंका वर्णन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण ईश्वरके अंगोंसे उत्पन्न हुए हैं। ये सब एक ईश्वरके स्वरूपमें हैं, ऐसी भावना रखो। चार वर्ण और चार आश्रमोंका वर्णन है।

ब्रह्ममयी दृष्टि और अद्वैतनिष्ठा सिद्ध होने पर यदि वह व्यक्ति भेदभावका पालन न करे तो कोई आपत्ति नहीं है।

शास्त्रोंमें कहीं भी हरिजनोंकी निंदा नहीं की गई है।

सभीको चाहिए कि वे सब अपने अपने धर्मोंका अर्थात् कर्तव्योंका पूर्णतः पालन करें। ब्राह्मणोंका धर्म है अध्ययन, अध्यापन, दान करना, दान लेना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना। क्षत्रियोंको प्रजाकी रक्षा करनी है। वैश्योंका धर्म है गोपालन, कृषि और व्यापार। शूद्रोंका कर्तव्य है समाजके सभी वर्गोंकी सेवा।

इसके बाद स्त्रियोंके धर्मोंका वर्णन किया गया है। स्त्रीको चाहिए कि पतिमें वह ईश्वरका भाव रखे। उसे तभी मुक्ति भी जल्दी मिलेगी। स्त्रीका हृदय ऊर्मिप्रधान और आर्द्र होता है। वह कृष्णप्रेममें शीघ्र द्रवित होता है। सती अनसूयाकी भांति नारी पतिव्रतका पालन करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे देवोंको बालक रूपमें पा सकती है।

इसके बाद आश्रमधर्मकी बात आती है। आश्रम चार हैं। मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी बतायी गई है। आजके समयकी दृष्टिसे देखें तो मनुष्यको २३ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपालन करके २४ से ४० वर्ष तक गृहस्थाश्रमी और ४१ से ५० वर्ष तक वानप्रस्थाश्रमी रह कर ५१ वर्षकी वयके बाद संन्यस्ताश्रममें प्रवेश करना चाहिए।

ब्रह्मचर्याश्रम वृद्धि है तो गृहस्थाश्रम क्षय। वानप्रस्थाश्रममें संयम बढाकर फिरसे शक्ति बढानी है, शक्तिका गुणाकार करना है। संन्यासाश्रममें भागाकार है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी हमेशाके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करता है।

महाप्रभुने गृहस्थाश्रममें ही प्रवेश करके संन्यास लिया था।

वर्णाश्रमकी रचना क्रमशः धीरे धीरे जीवको ईश्वरके निकट ले जानेका सोपान है।

ब्रह्मचारीको चाहिए कि वह सदा मितभोजी रहे। अधिक भोजन करनेवाला ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। उसका आहार अति सात्त्विक होना चाहिए। उसे इन्द्रियोंका बिलकुल विश्वास न करना चाहिए। बडे बडे ऋषि तक भटक गए हैं, तो साधारण मानवकी तो बात ही क्या? भागवतने भी कहा है जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, उसे नारीका सहवास छोडना होगा।

कामांध व्यक्ति अविवेकी हो जाता है। अतः सावधानीकी आवश्यकता है। ज्ञानी भी कभी कभी मोहित हो जाता है। उसका सयानापन स्थायी नहीं रह पाता। कामका मूल

संकल्प है। लौकिक कामनासे काम बढता है और अलौकिक कामनासे काम कम होता है। काम क्रोधको उत्पन्न करता है। काम एकांतमें सताता है। एकांतमें भजन करो। जगत्मे सभी अनर्थ कामके कारण ही होते हैं। काम यदि मर जाए तो समझो कि कन्हैया दूर नहीं है। जगत्को देखनेकी दृष्टि बदल जाए तो कामका भी नाश होगा।

संन्यास लेनेसे पहले गृहस्थको चाहिए कि वह वानप्रस्थधर्मका पालन करे, और पवित्र ग्रंथोंका अध्ययन करे। वैराग्य दृढ होनेके बाद सन्यास लेना चाहिए।

परमात्माके लिए सभी सुखोंका न्यास, त्याग ही संन्यास है।

प्रह्लाद और दत्तात्रेयका एक प्रसंग है। दत्तात्रेयसे प्रह्लादने पूछा— आप कोई सुख-चैनसे तो रहते नहीं हैं, फिर भी इतने हृष्टपुष्ट कैसे हो पाए ?

दत्तात्रेयने उत्तर दिया— जगत्के किसी भी जड पदार्थमें आनंद नहीं है। सुखकी इच्छा ही दुःख है। मुझमें समाहित आत्मानदका ही मैं उपभोग करता हूं। मै अपना आनद अपने आत्मस्वरूपमेंसे ही प्राप्त कर लेता हूं। प्रारब्धको भुगत कर पूरा करता हूं। अपनी आत्मनिष्ठा दृढ है। मेरे दो गुरु हैं।

मेरा पहला गुरु है मधुमक्षिका। मधुमक्खीकी भांति लोग भी बहुत कुछ कष्ट झेलकर धन तो एकत्रित करते हैं, किंतु मधुमक्खीके शहदकी भांति उस धनका उपभोग तो कोई और ही करता है।

मेरा दूसरा गुरु है अजगर। उसीकी भांति मैं निश्चेष्ट पडा रहता हूं, और प्रारब्ध-योगसे जो भी मिल जाए उससे सतुष्ट रहता हूं।

इन दो गुरुओंसे मैंने वैराग्य और संतोषका नियम प्राप्त किया है। एक ही स्थान पर बैठकर सतत ब्रह्मचिंतन करता हूं। जिससे मनमें विक्षेप आए, ऐसे व्यवहारसे मैं दूर ही रहता हूं। और ॐकारका सतत जप करता हूं।

अब आती है गृहस्थधर्मकी कथा। पति-पत्नी सावधानीपूर्वक पवित्र जीवन जीएं, तो संन्यासाश्रम जैसा ही आनंद गृहस्थाश्रममें भी मिल सकता है। पवित्र जीवन जीनेवाले दंपती साधु-संतोंकी सेवा करके परमात्माको पुत्ररूपमें पाकर अपनी गोदमें उनका लालन-पालन करेंगे। जब कि संन्यासी मात्र ब्रह्मचिंतनमें ही लीन रहेगा।

गृहस्थावस्थामें यह ध्यानमें रखना चाहिए कि पत्नी कामभोगका नहीं, धर्मका साधन है। पत्नी तो गृहस्थाश्रमकी सहायिका है। पत्नीसग सत्सग बने, तभी गृहस्थाश्रम दिव्यता धारण करता है। गृहस्थको धर्म ही बनाये रखता है। संन्यासी ही गृहस्थके आंगनमे आता है, अतः गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है।

पति और पत्नी दोनों सुपात्र हों, तो धर्मपालन हो सकेगा। गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है। गृहस्थको सावधान रहना चाहिए कि कहीं उससे पापाचार न हो जाए उसे अदरसे अनासक्त रहकर बाहरसे सभीसे प्रेम करना चाहिए।

जो पात्रमें, थालीमें है वह सभी कुछ अपना नहीं है, किंतु जितना पेटमें समा सकता है, वही (उतना ही) अपना है। और पेटमें जो गया है उसमेंसे जितना पच सकता है उतना ही अपना है।

गृहस्थाश्रमीको न तो अधिक कठोर होना चाहिए और न तो अधिक सरल। स्त्रीसे अधिक ममता न रखे स्त्रीके आधीन रहना अयोग्य है। जो स्त्रीके आवश्यकतासे अधिक आधीन रहता है उसे देखना भी पाप है।

एक राजा था जो पशु-पंछीकी भाषा भी जानता था। एक बार राजा-रानी भोजन कर रहे थे, तो एक चींटीने भोजनका एक दाना रानीकी थालीमेंसे उठाकर राजाकी थालीमें रख दिया। यह देखकर एक दूसरी चींटीने उस चींटीसे कहा- यह अधर्म है। स्त्रीका उच्छिष्ट अन्न पुरुषको खिलाना अविवेक है।

इन दो चींटियोंकी बात सुनकर राजाको हंसी आ गई। रानीने हंसनेका कारण पूछा। तो राजाने कहा- छोडो इस बातको। सुनोगी तो अनर्थ होगा।

जिस महात्माने राजाको पशु-पंछीकी बोली जाननेकी विद्या दी थी उसने कहा था कि मैंने यह विद्या सिखाई तो है, किंतु तुम यदि किसीसे इसकी बात करोगे या किसीको सिखाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।

राजाने पत्नीको बहुत समझाया किंतु स्त्रीहठ जो था। वह कहने लगी कि चाहे आपकी मृत्यु क्यों न हो जाए, किंतु मैं बात जानना चाहती हूं। राजा भोला और पत्नीके आधीन था, सो उसने कहा हम दोनों काशी चलें। मैं वहीं तुझे सारी बात बताऊंगा। राजाने सोचा कि मरना ही है तो काशीमें मरकर मुक्ति क्यों न पा लूं।

वे दोनों काशीकी ओर चल निकले। रास्तेमें वनमें एक बकरा-बकरीका जोडा मिला। बकरी बकरेसे कह रही थी कि कुंएके पास जाकर मेरे लिए हरी घास ले आओ, नहीं तो मैं डूब मरूंगी। बकरेने समझाया कि मेरा पांव फिसल जाएगा तो कुंएमें गिरकर मर जाऊंगा। बकरीने कहा कि चाहे जो भी हो मैं तो घास खाऊंगी।

तो बकरेने तेवर बदल कर कहा- मैं उस राजाके जैसा मूर्ख नहीं हूं, जो पत्नीके लिए विना कारण जान दे दूं।

राजाने बकरेके ये वचन सुने तो सोचमें पड गया। मैं कितना मूर्ख हूं कि प्रभुभजनके लिए जो शरीर मिला है, उसका इस स्त्रीकी मूर्खताभरी हठके खातिर नाश करनेके लिए तैयार हो गया। धिक्कार है मुझे। मुझसे तो बकरा भी अच्छा है। उसने रानीसे दृढतासे कह दिया- "मैं कुछ भी बताना नहीं चाहता। तू चाहे सो कर सकती है।" रानीको अपनी हठ छोडनी पडी।

हृदयमेंसे राम चले जाते हैं, तो मनुष्य कामांध बन जाता है।

गृहस्थाश्रमीको आज्ञा दी गई है कि वह दान करे, क्योंकि दानसे धनशुद्धि होती है। वर्षमें एक मास गंगा किनारे रहनेकी भी आज्ञा दी गई है। उसे चाहिए कि वह एकांतवासमें नारायणकी आराधना करे। वर्षमें एक मास ठाकुरजीके लिए अनामत रखे।

घरमें ठीक तरहसे भक्ति नहीं हो पाती है, अतः तीर्थमें भक्ति करो। तीर्थमें जाकर घरको और लौकिक बातोंको कभी याद मत करो। वहां मात्र भक्ति ही करनी चाहिए।

भक्ति करनेके लिए स्थानकी शुद्धि भी आवश्यक है। स्थानके वातावरणका मन पर बडा असर पडता है।

मार्कंडेय पुराणमें एक कथा है।

राम-लक्ष्मण वनमें प्रवास कर रहे थे। मार्गमें एक स्थान पर लक्ष्मणका मन कुभावसे भर गया, मति भ्रष्ट हो गई। वह सोचने लगा- कैकेयीने वनवास तो रामको दिया है, मुझे नहीं। मैं रामकी सेवाके लिए क्यों कष्ट उठाऊं?

रामने लक्ष्मणसे कहा, इस स्थलकी मिट्टी अच्छी दीखती है, थोडी बांध ले साथ। लक्ष्मणने एक पोटली बना लीं। मार्गमें जब तक वह इस पोटलीको हाथमें लेकर चलता था तबतक उसके मनमें कुभाव भी बना रहता था। परंतु ज्यों ही वह उस पोटलीको नीचे रख कर दूर हो जाता था। तो उसका मन राम-सीताके लिए ममता और भक्तिसे भर जाता था। लक्ष्मण इस बातसे आश्चर्यचकित हो गया। उसने रामसे कारण पूछा।

श्रीरामने कारण बताते हुए कहा- भाई, तेरे मनके इस परिवर्तनके लिए तू दोषी नहीं है। उस मिट्टीका ही यह प्रभाव है। जिस भूमि पर जैसे काम किए जाते हैं, उसके अच्छे-बुरे परमाणु उस भूमिभागमें और वातावरणमें भी छूट जाते हैं। जिस स्थानकी मिट्टी इस पोटलीमें है, वहां सुंद और उपसुंद नामक दो राक्षसोंका निवास था। उन्होंने कडी तपश्चर्या करके ब्रह्माको प्रसन्न करके अमरताका वर मांगा। ब्रह्माने उनकी मांग तो पूरी करनी चाही किंतु कुछ नियंत्रणके साथ। उन दोनों भाइओंके बीच बडा प्रेम था। अतः उन्होंने कहा कि हमारी मृत्यु केवल आपसी विग्रहसे ही हो सके। ब्रह्माने वर दे दिया।

इन दोनोंने सोचा था कि हम कभी आपसमें झगडनेवाले तो हैं नहीं। अतः अब हम तो मरेंगे ही नहीं।

अपनी इस अमरताके घमंडमें उन्होंने देवोंको सताना शुरु कर दिया। देवोंने ब्रह्माजी-का आसरा लिया। तो ब्रह्माजीने तिलोत्तमा नामकी अप्सराका सर्जन किया और उसे उन असुरोंके पास जानेकी आज्ञा दी। सुंद और उपसुंदने इस सौंदर्यवती अप्सराको देखा, तो दोनों मोहांध हो गए। सुंदने कहा कि यह मेरी है। तो उपसुंदने कहा, सोच-समझके बोल। यह तेरी भाभी अर्थात् मेरी पत्नी है। दोनों झगडने लगे। तिलोत्तमाने कहा मैं तो विजेताके साथ विवाह करूंगी। तो उन दोनों भाईओंने विजेता बननेके लिए ऐसा घोर युद्ध किया कि दोनों मर गए।

वे दोनों असुर जिस स्थान पर झगडते हुए मरे थे, उसी स्थानकी यह मिट्टी है। अतः इस मिट्टीमें भी द्वेष, तिरस्कार और वैरके संस्कारोंका सिंचन हो गया है।

जिस भूमि पर जैसे कर्म किए जाते हैं, वैसे ही संस्कार वह भूमि भी प्राप्त कर लेती है।

घरको गृहस्थ सदा पवित्र रखे।

लोग माथेरान सैर करनेके लिए जाते हैं, किंतु यह नहीं सोचते कि अपने माथे पर रान (ऋण) कितना बढ गया है।

माथेरान जानेके बदले जहां परमात्माने लीला की हो, वैसे भगवद्धाममें रहकर सत्कर्म करो।

गृहस्थको पितृश्राद्ध भी करना चाहिए। दशरथके श्राद्धके प्रसंग पर सीता जब वसिष्ठको भोजन परोस रही थी, तो उसे वसिष्ठमें दशरथके दर्शन हुए थे। पवित्र ब्राह्मणके माध्यमसे पितर घर पर आते हैं। पवित्र ब्राह्मणके हाथों श्राद्ध कराया जाये।

कामका मूल है संकल्प। अतः संकल्पका त्याग करके कामको जीतना चाहिए। मनमें सुखका संकल्प ही नहीं आना चाहिए। संकल्प ही दुःखका कारण है। कामकी इच्छा अपूर्ण रहने पर क्रोध उत्पन्न होता है। कामनाओंका त्याग ही क्रोधको जीतनेका उपाय है। क्रोध दुःखदाता है। क्रोध पर ही क्रोधित होनेका निश्चय करो।

संसारी लोग जिसे अर्थ मानते हैं, वही अनर्थ है, ऐसा समझो और लोभको जीतो। तात्विक विचारसे भयको जीतना चाहिए। अध्यात्म-विद्यासे शोक और मोह पर, संतोंकी उपासनासे दंभ पर; मौन द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

गृहस्थको सद्गुरुका आश्रय लेकर उसकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। सात्त्विक-भोजन, स्थान और सत्संगसे निद्राको पराजित करना चाहिए। सत्त्वगुणकी वृद्धिसे मनुष्यकी देह विलीन हो जाती है। ज्ञानेश्वरने १६ वें वर्षमें और शंकराचार्यने ३२ वें वर्षमें प्रयाण किया था।

तमोगुणकी वृद्धिसे निद्रा बढती है और सत्त्वगुणकी वृद्धिसे नींद उड जाती है। निद्रा तमोगुणका धर्म है।

सदाचार, संयम, सात्त्विक आहार, विहार, आचार आदिसे सत्त्वगुण बढता है। सत्त्वगुणकी वृद्धिसे प्रभुमिलनकी आतुरता भी बढेगी।

हर रोज भगवान्‌का ध्यान करो। ध्यान करनेसे ध्यान करनेवालेमें ईश्वरकी शक्ति आती है। गृहस्थको इन्द्रियरूपी घोडोंको नियंत्रणमें रखना चाहिए।

विद्वान् कहते हैं कि यह शरीर रथ है और इन्द्रियां घोडे। इन्द्रियोंका नियंता मन ही इन घोडोंकी बागडोर है। शब्दादि विषय विभिन्न मार्ग है। बुद्धि इस रथको चलानेवाला सारथी है। इस रथको बांधनेके लिए ईश्वरने चित्तरूप बंधन बनाया है। दस प्राण इस रथकी धुरा हैं। धर्म और अधर्म पहिये हैं। इस रथमें बैठता है हमारा अहंकारी जीव। ॐकार धनुष है और शुद्ध जीव बाण। परब्रह्म लक्ष्य है, निशाना है। राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, असूया, माया, हिंसा, मत्सर, रजोगुण, प्रमाद, क्षुधा, निद्रा आदि शत्रु हैं।

जब तक मनुष्य-देहरूपी रथ अपने वशमें है तथा इन्द्रियां आदि सशक्त हैं, उतने समयमें ही मनुष्यको चाहिए कि वह सद्गुरुओंके चरणोंकी सेवा करके, तीक्ष्ण ज्ञानरूपी तलवार लेकर, श्री भगवान्‌का बल धारण करके रागद्वेषादि शत्रुओंको जीत ले और तत्पश्चात् शांत होकर स्वानंदरूपी स्वराजसे संतुष्ट हो जाए। शरीररथको भी छोड देना चाहिए।

यदि ऐसा न किया जा सका, तो रथमें विराजमान प्रमादी जीवको तथा दुष्ट इन्द्रियों रूपी घोडोंको बुद्धिरूपी सारथी अयोग्य मार्ग पर ले जाकर विषयोंरूपी चोरोंके आधीन कर देगा। वे चोर घोडों और सारथीके सहित जीवरूपी रथको अंधकारव्याप्त और महामृत्युके भयसे पूर्ण संसाररूप कुंएमें फेंक देंगे।

वेदमें दो प्रकारके कर्म बताए गए हैं। प्रवृत्ति-कर्मसे मनुष्य संसारमें वापस आता है। और निवृत्तिकर्मसे मोक्ष प्राप्त करता है।

मैं कमाता हूं ऐसा अभिमान गृहस्थको नहीं रखना चाहिए। द्रव्य मेरा है ऐसा भी अभिमान मत रखो। द्रव्य सभीका है।

गृहस्थ भावाद्वैत सिद्ध करे। पति-पत्नी सत्संग करें।

एकांतमें बैठकर हरि कीर्तन करो। कीर्तनसे कलिके दोषोंका विनाश होता है। धर्मसे अर्थका उपार्जन करो।

मौजमजामें सभी साथ रहते हैं और दंड अकेले जीवात्माको भोगना पडता है।

अनेक गृहस्थ संसार पार कर गए हैं। बडे बडे ऋषि जो ईश्वरको देखनके लिए तरसते हैं, वे आपके घरमें रहते हैं।

इस प्रकार नारदने धर्मराजाको उपदेश दिया। अन्तमें इस प्रकरण की समाप्तिमें धर्मराजाने नारदजीकी पूजा की।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

आठवां स्कंध

हरि तुम हरो जनकी भीर ॥
द्रौपदीकी लाज रखी तुम बढायो चीर–रहि
भक्तकारन रूप नरहरि धार्यो आप शरीर ॥
हिरनकश्यप मार लीन्हों धर्यो नांहिन धीर–हरि
बूडते गजराज राख्यो कियो बाहर नीर ॥
दास मीरा लाल गिरधर दुःख जहां जहां पीर–हरि

प्रथम स्कंधमें शिष्योंका अधिकार बतलाया गया है। अधिकारके बिना ज्ञान शोभा नहीं देता। अनधिकारी मनुष्य ज्ञानका दुरुपयोग करता है। दूसरे स्कंधमें ज्ञानका उपदेश किया है। वहां मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है यह बताया गया है। मनुष्यजीवन भोग भोगनेके लिए नहीं दिया गया है। ईश्वरकी आराधना करके ईश्वरको पानेके लिए मानवशरीर दिया गया है। तृतीय स्कंधमें ज्ञानका जीवनमें किस प्रकार उतारना है, यह कथा सुनाई गई। इस ज्ञानको जीवनमें उतारनेवालेके चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, अतः चौथे स्कंधमें चार पुरुषार्थोंकी कथा सुनाई गई। पांचवें स्कंधमें ज्ञानी परमहंसोंके और भागवत परमहंसोंके लक्षण बतलाए गए। सबके स्वामी परमात्मा है। इसके बाद छठे स्कंधमें पुष्टिका कथा आई है जीव पर परमात्मा अनुग्रह करते है। जीवके पाससे ईश्वर कुछ नहीं मांगते। ईश्वर निरपेक्ष है, तो भी ईश्वर जीव पर कृपा करते हैं। मनुष्य जब अपने किए हुए पापोंको याद करेगा, तो उसको पता लगेगा कि जो कुछ उसे मिला है उसके लिए वह योग्य नहीं है।

जब जन्म हुआ तब जीव शुद्ध था। पर जब उसमें समझ आई, तब वह असत्य बोलने लगा। ईश्वर जीवको अनेक अवसर देते हे और वे आशा रखते है कि जीव अपना जीवन सुधारेगा।

फक्त कथा सुननेसे लाभ नहीं होता। कथा सुनकर मनन करके उसे जीवनमें उतारे।

प्रभुने हमारे लिए चिंता करने जैसा कुछ नहीं रखा। ईश्वरकी जीव पर अनंत कृपा है परन्तु जीव उसका उपयोग नहीं करता। पवित्र विचार करनेके लिए प्रभुने मन दिया है। जो मनशक्तिका दुरुपयोग करता है, वही दैन्य हे। मनमें शक्ति है जब जीव ईश्वरस्वरूपमें लीन होता है, तब मनशक्तिका विकास होता है, पर जब मन विषयोंमें भटकता है तब मन-शक्तिका विनाश होता है।

ईश्वर जीवमात्र पर कृपा करते हैं। उसकी पात्रतासे अधिक उसे देते हैं।

सातवें स्कंधमें वासनाकी कथा सुनाई और बताया कि प्रह्लादकी सद्‌वासना है, मनुष्यकी मिश्रवासना और हिरण्यकशिपुकी असद्‌वासना है।

हिरण्यकशिपुको संपत्ति मिली और समय भी मिला, परन्तु इन सबका उपयोग उसने भोगविलासमें किया। शक्तिका उपयोग दूसरोंको दुःख देनेमें किया।

मर्यादाके बिना भोग मनुष्यको रोगी बनाता है। भोग इन्द्रियोंको रोगी बनानेके लिए नहीं है। इन्द्रियोंको निरोगी रखनेके लिए भोग है। अग्निमें लकडियां न डालना ही अग्निको शांत करनेका उपाय है। इसी तरह इन्द्रियोंको भोग न देनेसे इन्द्रियां शांत होंगी। भोग देनेके बाद ऐसा लगता है कि इन्द्रियोंको शांति मिली है, परन्तु यह बात सत्य नहीं है। उससे तो अशांति ही बढती है।

मुझे जो कुछ मिला है वह फक्त मेरे लिए ही है ऐसा मानना ही असद्‌वासना है। परमात्माने मुझे जो कुछ दिया है वह सबके लिए है, ऐसा सोचना ही सद्‌वासना है। प्रह्लादमें सद्‌वासना थी, अतः उनको देव माना गया। हिरण्यकशिपुको उसकी असद्‌वासनाके कारण राक्षस माना गया। हिरण्यकशिपु, भोगवृत्ति, अहंकार और लोभ है। देव होना या दानव होना यह मनुष्यके हाथोंमें है। जगत्‌के सब लोग पुण्यके फलकी इच्छा तो रखते हैं परन्तु वे खुद पुण्य करते नहीं हैं।

'पुण्यस्य फलं इच्छन्ति, पुण्यं न कुर्वन्ति मानवाः'।

सदा ध्यानमें रखो कि तुम्हारे कर्मके फल तुमको ही भोगने पडेंगे, इसमें दोष किसका? अगर दांतोंके नीचे आकर जीभ कट जाये, तो दोष किसका? वह तो सहना ही पडेगा।

भक्तिमार्गमें आगे बढनेका पहला साधन संयम है। संयमको धीरे धीरे बढाओ और भोगमार्गकी ओर बहती हुई इन्द्रियशक्तिको प्रभुके मार्गकी ओर मोड दो। वासनाका विनाश होने पर ब्रह्मभाव जागता है। जब तक मनमें सूक्ष्म वासना है, तब तक जीव और ईश्वरका मिलन नहीं होता। वासना ज्ञानानुभवमें विघ्नकर्ता है।

वासनाके विनाशके लिए आठवें स्कंधमें चार उपाय बतलाये गए हैं। भागवतका फल है रासलीला। जीवको श्रीकृष्णसे मिलना है। एक बार श्रीकृष्णसे मिल जानेके बाद जीव उनसे अलग नहीं हो पाता। रासमें उसीको प्रवेश मिलता है कि जो वासनाका विनाश करता है। अनेक जन्मोंकी वासना मनमें भरी हुई है। वासना अनेक प्रकारके दुःख देती है। फिर भी मनुष्य उसको छोडता नहीं है। ईश्वरका अनुभव हुए बिना वासना जाती नहीं है। जब तक वासनामें आकर्षण होगा। तब तक वासना नहीं जाएगी। कुंभकको बढाओगे तो वासनाका विनाश होगा। प्राणोंको शरीरमें टिकाये रखोगे तो वासनाका विनाश होगा।

बार बार मनसे ऐसा संकल्प करो कि मुझे परमात्मासे मिलना है। जब दो आत्माएं मिलती हैं, तब उनके मिलनेसे भी यदि आनंद मिलता है, तो सब प्राण सूक्ष्मरूपसे जिन परमात्मामें बसे हुए हैं, उन परमात्मासे मिलते समय कितना आनंद होगा। मुझे ईश्वरसे मिलना है, ऐसी कामना करो। वासनाको अलौकिक बनाओ।

जो दुष्ट संस्कार मनको मिले हुए हैं, वे दूर हों और मनको अच्छे संस्कार मिलें, इसलिए सत्संग जरूरी है। सत्संगसे वासना उच्चतम बनेगी। वासनाको अलौकिक बनाओ। मनुष्य बार बार जैसा बोलता है, और जिसका विचार करता है, वैसा ही वह खुद बनता है।

आठवें स्कंधमें वासनाका विनाश करनेके लिए चार उपाय बतलाये गए हैं। वासनाका विनाश इन चार उपायोंसे होता है। जब जीव ईश्वरसे दूर होता है तब वासना जागती है। सतत हरिस्मरण करनेकी आदत डालोगे, तो वासना नहीं जागेगी। हृदयमें यदि हमेशा रामका वास होगा तो वहां कामवासना नहीं आ सकेगी।

हरिस्मरणकी आदत रखनेसे वासनाका विनाश होगा। यह सब ईश्वरका है और सबके लिए है, ऐसा समझोगे तो वासनाका विनाश होगा। संपत्ति मेरी है ऐसा सोचनेसे वासना बढेगी। जीव लक्ष्मीका मालिक कभी नहीं हो सकता। जीव तो लक्ष्मीका पुत्र है। बालक होनेसे जो आनंद मिलता है, वह मालिक होनेसे नहीं मिलता। बालक बनोगे तो सुखी होगे। सूतजी सावधान करते हैं– बलिराजाने सर्वस्वका दान किया। विपत्तिमें स्ववचनका पालन करो। चौथा उपाय है शरणागति।

यदि जीव भगवानकी शरणमें नहीं जाएगा और भगवान्‌का स्मरण नहीं करेगा, तो वह वासनाका विनाश नहीं कर सकेगा। वासनाका नाश करनेके बाद ही रासलीलामें जाना है। धीरे धीरे राजा परीक्षितके मनकी शुद्धि करके शुकदेवजी उन्हें रासलीलामें ले जायेंगे।

अष्टम स्कंधमें मन्वंतर लीलाका वर्णन है। शुकदेवजी वर्णन करते हैं, हे राजन्, प्रत्येक मन्वंतरमें प्रभुका जन्म होता है। प्रत्येक मनुके राज्यमें प्रभुका एक विशिष्ट अवतार होता है।

इस कल्पमें छै मनु हुए हैं। प्रथम स्वायंभुव मनुकी कथा मैंने तुम्हें सुनायी। स्वायंभुव मनुकी पुत्रियां आकूति और देवहूतिके चारित्रकी कथा मैंने सुनायी।

दूसरे मन्वंतरमें स्वायंभुव मनु तपश्चर्या करनेके लिए वनमें गये। वहां श्री यज्ञ भगवान्‌ने राक्षसोंसे उनकी रक्षा की।

उन्होंने कहा है– यह सारा जगत् और जगत्‌में रहनेवाले सब चर–अचर प्राणी परमात्मामें ओतप्रोत हैं, अतः संसारके किसी भी पदार्थसे मोह न रखकर इनका त्याग करके जीवननिर्वाहके लिए जितना जरूरी हो उतना ही उपभोग करना चाहिए। तृष्णाका सर्वथा त्याग करना चाहिए। इस जगत्‌की सपत्ति किसकी है और कब किसकी हुई है?

अतः, हे मनुष्य! त्याग करके तुम इसका उपभोग करो, अर्थात् सर्व ईश्वरको अर्पण करो और अनासक्त रहकर तुम उपभोग करो। दूसरोंके धनको प्राप्त करनेकी स्पृहा मत रखो।

यह सारा जगत् ईश्वरसे व्याप्त है, अर्थात् प्रभु सर्वव्यापक हैं, ऐसा जो मनुष्य सोचेगा वह कभी भी किसीसे द्रोह नहीं करेगा।

विषयमें मन न फंसे, इस बातका ध्यान रखो। इस जगत्‌के पदार्थ आजतक किसीके नहीं हुए और होंगे भी नहीं। फिर भी मनुष्य उनसे ममता रखता है और उनमें अपनी आसक्ति बढाता है।

ऊपर बतलाया हुआ अद्वैतवाद सुन्दर है। द्वैतवादका त्याग करो। ऋषि भी मोक्ष पानेसे पहले सत्कर्म करते हैं। सत्कर्म करनेवाले मनुष्य ही निष्कामभावको प्राप्त करते हैं।

ईश्वरको भी कर्म करने पडते हैं। परन्तु ईश्वर किसी भी कर्ममें आसक्त नहीं होते। वे तो अनासक्त रह कर कर्म करते हैं। राम, कृष्ण आदि अवतारोंमें मनुष्योंको श्रेष्ठ आचरणोंका आदर्श बतलानेके लिए भगवान्ने सत्कर्म किए हैं।

कर्म किए बिना नहीं चलेगा।

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

अतः अनासक्त रहकर ही कर्म करो।

तीसरे मनु हुए हैं उत्तम। प्रभुने सत्यसेनके रूपमें अवतार धारण किया था। चौथे मन्वंतरमें प्रभुका हरिके रूपमें जन्म हुआ था और उन्होंने गजेन्द्रकी मकरग्राहसे रक्षा की थी। दूसरे अध्यायसे चौथे अध्याय तक गजेन्द्रमोक्षकी कथा कही है। परीक्षित राजा कहते हैं कि मुझे गजेन्द्रमोक्षकी कथा सुनाइए।

शुकदेवजी राजासे कहते हैं– राजन्, त्रिकूट पर्वत पर एक बलवान् हाथी रहता था। वह अनेक हथिनियोंका पति था। गर्मीके दिन थे। कडी गरमीका मौसम था। गजेन्द्र हथिनियोंके साथ सरोवरमें जलक्रीडा करने गया। हथिनियोंसे और बच्चोंसे घिरा हुआ वह आनंद-विहार करने लगा। गजेन्द्र जलक्रीडामें तन्मय है यह जानकर एक मगरने उसका पांव पकड लिया। उसके पंजेमेंसे छूटनेके लिए हाथीने बहुत प्रयत्न किए। हाथी स्थलचर और मगर जलचर है, अतः हाथी जलमें दुर्बल बन गया। मगर हाथीको छोडता नहीं है। गजेन्द्रमोक्षकी यह कथा प्रत्येक घरमें होती है।

संसार ही सरोवर है।
जीव ही गजेन्द्र है।
काल ही मगर है।

संसारके विषयोंमें आसक्त हुए जीवको कालका भी भान नहीं रहता। जीवमात्र गजेन्द्र है। हाथीकी बुद्धि स्थूल है। यदि ब्रह्मचर्यका भंग होगा, तो बुद्धि जड होगी। हाथी अति कामी है। सिंह सालमें एक ही बार ब्रह्मचर्यका भंग करता है। इसलिए उसका बल कम होने पर भी वह हाथीको मार सकता है। कामक्रीडा करनेवालेकी बुद्धि जड होती है।

यह जीवात्मा गजेन्द्र त्रिकूटाचल पर्वत पर रहता है। त्रिकूटाचल शरीर है। त्रिकूटाचलका दूसरा अर्थ होता है काम, क्रोध और लोभ। यह संसार सरोवर है। संसारमें जीव कामक्रीडा करता है। संसार सरोवरमें जीवात्मा स्त्री और बालकोंके साथ क्रीडा करता है। जिस जिस संसारमें जीव खेलता है उसी संसारमें ही उसका काल नियत किया गया है। संसारमें जो कामसुखका उपभोग करता है, उसे काल पकडता है। जिसको काम मारता है, उसे कालभी मारता है। मनुष्य कहता है कि मैं कामसुखका उपभोग करता हूं, यह बात झूठी है। काम मनुष्यका उपभोग करके उसे क्षीण करता है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

इन्द्रियोंको जब भक्तिरस मिलता है, तब वे शांत होती हैं।

अनेक जन्मोंसे जीव कालको मारता चला आ रहा है। मगर और सांपको कालकी उपमा दी गई है।

जिस संसारमें मनुष्य कामक्रीडा करता है वहां काल भी रहता है। जिस समय जन्म होता है, उसी समय मरणका समय भी नियत किया जाता है। मगरने हाथीका पांव पकडा था। काल जब आता है तो सबसे पहले पांव ही पकडता है। पांवकी शक्ति क्षीण हो जाय तो मान लो कि कालने पकड लिया है। पांवकी शक्ति क्षीण हो जाये तो सावधान हो जाना चाहिए कि अब काल समीप आ गया है। उस समय घबडाना नहीं चाहिए, भगवत्स्मरणमें लग जाना जाहिए। जब काल आकर पकडेगा, तब तुम्हें न पत्नी छुडा सकेगी और न पुत्र ही। जब काल पकडेगा, तब कोई भी प्रयत्न काम नहीं आएगा। उस मगरने जब हाथीको पकडा, तब न तो हथिनियां और बच्चे ही उसे छुडा सके और न दूसरे हाथी। मनुष्यको जब काल पकडता है, तब उसको कोई नहीं बचा सकता। पत्नी, पुत्र, संबंधी कोई भी उसे नही बचा सकता। कालके मुखमेंसे वही छूटेगा, जिसको परमात्माका दर्शन होगा। कालके भी काल श्रीकृष्णके दर्शनसे कालका नाश होगा।

काल–मगरके मुखमेंसे तो श्रीहरिका सुदर्शन चक्र ही छुडा सकता है।

मगरके मुखमेंसे छूटनेके लिए हाथीने बहुत प्रयत्न किए, परन्तु कोई प्रयत्न काम न आया। हथिनियां और बच्चोंने भी प्रयत्न किए, परन्तु कुछ काम न आया। जब काल पकडता है, तो कोई भी प्रयत्न काम नहीं आता।

एक महिना इसी प्रकार दोनोंके बीच युद्ध चलता रहा। मगर हाथीको गहरे पानीमें खींचता चला जा रहा है, अतः अब हाथी मर जाएगा ऐसा सोचकर हथिनियां तो उसका त्याग करके चली गईं। मनुष्यके जन्मसे पहले उसका कोई संबंधी नहीं था और न तो मरनेके बाद कोई रहेगा। फिर भी जन्म और मरण दोनोंके बीचमें जो समय है, उस समयमें उसे एक दूसरेके बिना चैन नहीं आता। परन्तु अंतःकालमें कोई भी काम नहीं आता। मनुष्यको ऐसी इच्छा रखनी चाहिए कि मेरी ऐसी हालत हो, कि मुझे प्रभुके बिना चैन न आये।

गजेन्द्र अब मर जायेगा ऐसा सोचकर सब उसको छोडकर चले गए। गजेन्द्र अकेला ही रह गया। मनुष्य भी जब अकेला हो जाता है, तब जाकर ज्ञान जाग्रत होता है। अकेला अर्थात् जब जेबमें पैसा भी न हो, तब ज्ञान जाग्रत होता है और वह ईश्वरकी शरणमें जाता है। निर्बलका बल राम है।

द्रौपदीने जबतक साडीका आंचल पकड रखा, तबतक श्रीकृष्ण नहीं आये। ईश्वर सपूर्ण प्रेम चाहते हैं। जब कि जीव ईश्वरको थोडा प्रेम देता है, अतः ईश्वर मदद नहीं करते।

गजेन्द्र निराधार हो गया। उसको यकीन हो गया, कि अब मेरा कोई नहीं है। जीव जब दुःखसे व्याकुल होता है, तब वह परमात्माको आवाज देता है।

हर रोज गजेन्द्रमोक्षका पाठ करना जरूरी है, बुड्ढा जब बीमार पडेगा और अधिक दिन बीमार रहेगा तो सब ऐसी इच्छा करेंगे, कि अब यह बुड्ढा मर जाये तो अच्छा हो। बेटा छुट्टी लेकर आया हो और बुड्ढेकी बीमारी बढती जाए, तो वह कहेगा, मैं जा रहा हूं, मेरी छुट्टी खत्म हुई है। बुड्ढेको कुछ हो जाये तो खबर देना।

जीव जब मृत्युशैयापर अकेला होता है, तब उसकी हालत गजेन्द्र जैसी होती है। अंतःकालमें जीवको ज्ञान होता है, परन्तु तब वह ज्ञान उसके कुछ काम नहीं आता। मनुष्य घबडाता है और सोचता है कि मैंने मरनेकी कोई तैयारी नहीं की है, अब मेरा क्या होगा? जहां जाकर वापस आना होता है, ऐसे सफरके लिए तो मनुष्य बहुत तैयारी करता है, परन्तु जहां जाकर वापस लौटना नहीं होता ऐसे सफरके लिए वह कुछ भी तैयारी नहीं करता। परमात्माको राजी करोगे तो तुम्हारा बेडा पार होगा। यह गजेन्द्र पशु है। पशु होकर भी वह परमात्माको आवाज देता है। परन्तु मनुष्य तो मृत्युशैया पर पडकर भी हाय हाय ही करता है। पर हाय हाय करनेसे अब क्या मिलेगा?

गजेन्द्र जब अकेला हो गया, तो उसको यकीन हो गया, कि अब ईश्वरके सिवा मेरा कोई नहीं है। ईश्वरके आधारके विना जीव निराधार है। अन्तमें सब छोडकर चले जाते हैं। जिनके लिए सारे जीवनका भोग दिया, वे भी छोडकर चले जाते हैं। अंतःकालमें जीवको यकीन हो जाता है कि ईश्वरके सिवा मेरा कोई नहीं। अतःकालमें जीव पछताता है। हाय हाय करके उसकी जान जाती है। अंतःकालमें हाय हाय करके हृदय जलाना नहीं चाहते हो, तो अभीसे हरिका नाम लेना शुरु कर दो। आजसे श्रीहरिका स्मरण करोगे, तो अंतःकालमें भी श्रीहरि ही याद आयेंगे।

पशु संग्रह नहीं करता है। मनुष्य संग्रह करता है। मनुष्य आनेवाली कलकी चिंता करता है। कालने पांवको पकडा हुआ है, यह भूलना नहीं चाहिए। पांवकी शक्ति क्षीण हो जाये, तो मान लेना कि मरने समय आ गया है।

जब गजेन्द्र बहुत व्याकुल हो गया तब वह स्तुति करने लगा। गजेन्द्रने जो श्रीहरिकी स्तुति की, उसकी बडी महिमा है। संसारी लोगोंको गजेन्द्रकी तरह नित्य श्रीहरिकी स्तुति करनी चाहिए। इस तरह स्तुति करनेसे अज्ञानका नाश होता है और मरण सुधरता है।

काल जब जीवको पकडनेके लिए आता है, तब वह प्रभुको पुकारता है कि, हे नाथ! आपकी शरणमें मैं आया हूं। जीव जब चारों ओरसे निराधार बन जाता है, तब पूर्वजन्मके संस्कारसे और सत्कर्मोंसे वह प्रभुकी शरणमें जाता है। गजेन्द्र स्तुति करता है– भिन्न भिन्न रूपोंमें नाटक करनेवाले अभिनेताके वास्तविक स्वरूपको जिस प्रकार साधारण दर्शक नहीं जान सकता, उसी प्रकार सत्त्वप्रधान देवता या ऋषि भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं जान सके तो फिर दूसरे साधारण लोग तो तुमको पहचान ही कैसे सकेंगे या तुम्हारे स्वरूपका वर्णन कैसे कर सकेंगे? ऐसे दुर्गम चरित्रवाले हे प्रभु, मेरी रक्षा करो।

मेरे जैसा शरणागत पशुतुल्य अविद्याग्रस्त जीवकी अविद्यारूप फांसीको सदाके लिए काटनेवाले, अत्यंत दयालु और दया करनेमें कभी भी देरी न करनेवाले नित्य मुक्त प्रभुको मैं वदन करता हूं। तुम्हारे अंशसे सर्व जीवोंके मनमें तुम अंतर्यामी रूपसे प्रकट हो रहे हो। सबके नियंता और अनंत ऐसे तुमको मैं वंदन करता हूं।

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय।

मैं पशु हूं। कालके पाशमें फसा हुआ हू। जरा विचार करो। जीवमात्र पशु है। सब कालके मुखमें फंसे हुए हैं। मुझे कालसे बचाओ। जहां कालका अस्तित्व न हो, वहां मुझे ले

चलो। जहां काल है, वहां दुःख है। जिसके सिर पर काल है, वह सुखी नहीं है। जहां काल न हो, ऐसे तुम्हारे निजधाममें ले चलो।

जो लोग शरीर, पुत्र, मित्र, घर संपत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं, उनको तुम्हारी प्राप्ति होनी अति कठिन है, क्योंकि तुम स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हो। जीवनमुक्त पुरुष अपने हृदयमें तुम्हारा निरंतर चिंतन करते हैं। सर्व ज्ञानस्वरूप, सर्वसमर्थ परमात्माको मैं नमस्कार करता हूं।

नाथ, इस मगरके पाशसे छूट कर मैं जीनेकी इच्छा नहीं रखता हूं। हाथीका शरीर अंदर और बाहर दोनों ओरसे अज्ञानरूप आवरणसे ढका हुआ था। ऐसे शरीरको रखकर क्या फायदा? मैं तो आत्मप्रकाशको ढक देनेवाले उस अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूं, कि जिसका कालक्रमसे अपने आप नाश नहीं होता है। उस अज्ञान आवरणका तो केवल आपकी कृपासे या तत्त्वज्ञानसे ही नाश होता है।

हे नाथ, मुझ पर कृपा करो। शरणागतकी रक्षा करनेवाले, हे प्रभु, मेरी रक्षा करो। मैं तुम्हारी शरणमें आया हूं।

गजेन्द्र इस तरह दुःखसे आर्द्र होकर श्रीहरिकी स्तुति करता है। बडे बडे महात्मा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करते हैं। जब काल पकडता है, तब जीव भयसे व्याकुल होकर कैसा घबडाता है ऐसा सोचकर गजेन्द्र जैसे आर्द्र बनकर गजेन्द्रमोक्षका पाठ करोगे, तो जीवन सुधरेगा। स्तुतिके एक एक श्लोकमें दिव्य तेज भरा हुआ है। इस स्तुतिका पाठ नित्य करोगे, तो अंतःकालमें परमात्मा लेनेके लिए आएंगे।

प्रातःकालमें पवित्र हो कर जो भी व्यक्ति भगवानकी गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करेगा, उसकी बुद्धि अंतःकालमें भी निर्मल रहेगी। उसे अंतःकालमें भी हरिका स्मरण रहेगा।

इस स्तुतिका पाठ मनुष्यको संकटसे मुक्त करता है। यह स्तुति दुष्ट स्वप्नके फलका नाश करती है। इस स्तुतिका पाठ करनेवालेको बुरे सपने नहीं सताते।

यह जीव अंतःकालमें घबडाता है। जब वह चेतनहीन हो जाता है, तब यमदूत उसे बाहर निकालते हैं। अंतःकालमें जीव अतिशय दुःखी होता है। ऐसे समयमें ईश्वरका स्मरण हो सकना बडा कठिन है। ईश्वरकी कृपा हो, तभी उनका स्मरण हो सकता है। अतः हो सके तो प्रतिदिन गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो। हो सके तो मत्स्यावतार चरित्रका भी पाठ करो। मध्यरात्रिको रासपंचाध्यायीका पाठ करो। ऐसा करनेसे प्रभुकृपासे काम उसे नहीं सताएगा।

गजेन्द्र प्रार्थना कर रहा है। अब तो मुझे अविनाशी दिव्य शरीर दीजिए। यमुना महारानीकी कृपासे अलौकिक शरीरके नूतनतत्त्वका दान मिलता है। नाथ, कृपा करके मुझे अव्यय अविनाशी तेजोमय शरीर दीजिए।

नाथ, आप शीघ्र ही पधारें। हे गोविंद, हे नारायण, मैं दीन हुआ हूं। कालके मुखसे मुझे मुक्ति दें।

जब उस गजराजको बचानेके लिए ब्रह्मा आदि कोई भी देवता न आये, तो परमात्माको चिंता हुई। स्वयं दौडते हुए आए। द्वारिकानाथ निराधारके आधार हैं। अंतःकालमें याद करने पर तो वे दौडते हुए आते हैं।

गजेन्द्रने भगवान्को आते हुए देखा, तो उसने सरोवरमेंसे एक कमल फूल लेकर भगवान्को अर्पित किया।

तुलसी और कमल परमात्माको अति प्रिय हैं। परमात्माकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ है। कमल ब्रह्माका सर्जन नहीं है।

भगवान्ने उस कमल फूलको स्वीकार किया और अपने सुदर्शनचक्रसे मगरमच्छका वध किया।

ज्ञानचक्रसे ही कालका नाश हो सकता है। ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि सबमें भगवान् दिखाई दें। जिसे ब्रह्मदृष्टि प्राप्त होती है वह सभी स्थान और वस्तुमें प्रभुका ही दर्शन करता है।

ब्रह्मज्ञानी तो संसारमें कहीं कभी मिल भी जाएंगे, किंतु शुकदेवजी सी ब्रह्म दृष्टिवाले बहुत अल्प ही मिलेंगे। ऐसे ज्ञानीके लिए संसार बाधक नहीं है। अज्ञानीके लिए संसार बाधक है, ज्ञानीको नहीं। ज्ञानीके लिए जगत् जगत् नहीं है।

मनुष्यको अज्ञानकी पकडसे छूटना है। भगवान्ने सुदर्शनचक्रसे मगरमच्छकी हत्या की थी, अर्थात् सुदर्शन भगवान्के दर्शनसे कालकी हत्या होगी। सर्वमें भगवद्दर्शन ही सुदर्शन है। जब काल पकडता है तो उसकी पकडमेंसे कालके भी काल भगवान् ही छुडा सकते हैं।

सुदर्शनसे कालरूपी मगरमच्छका नाश हुआ। इसका एक अर्थ यही है कि तुम्हारी दृष्टि जब सुदर्शन– अर्थात् सभीमें प्रभुका दर्शन करनेवाली– होगी तभी तुम कालके मुखसे मुक्त होगे। तुम भी तब कालको जीत लोगे। ऐसे ज्ञानी पुरुषका काल क्या बिगाड सकता है? जिसके हृदयमें सर्वके प्रति भगवद्भाव जागृत हुआ है वह कालके मुखसे मुक्त हो जाएगा।

सर्वमें श्रीकृष्णका दर्शन करते करते उसको अपनेमें भी श्रीकृष्णका ही दर्शन होने लगता है। अपने स्वरूपमें भी श्रीकृष्णका दर्शन करोगे, तो काल तुम्हें मार नही सकेगा।

शरणमें आए हुए गजेन्द्रका जिस प्रकार उद्धार किया, उसी प्रकार शरणमें जानेसे सभी जीवका प्रभु उद्धार करते हैं।

वह गजेन्द्र अपने पूर्वजन्ममें इन्द्रद्युम्न नामका राजा था। वह ध्यानमें बैठा हुआ था कि वहां अगस्त्य मुनि आए। राजाने उठ कर उनका स्वागत नहीं किया तो मुनिको यह व्यवहार अपमानजनक लगा।

भगवान्से भी अधिक उनके भक्तका संमान किया जाये। पत्थरकी मूर्तिके प्रति सद्भाव रखनेसे वह चेतनमयी होती है, तो चेतनके प्रति सद्भाव रखनेसे ईश्वरकी प्राप्ति क्यों न होगी?

अगस्त्य मुनिको बुरा लगा तो उन्होंने शाप दिया, चूंकि मेरे आने पर भी तू जड–सा ही बैठा रहा, अतः अगले जन्ममें तुझे पशुका जड अवतार प्राप्त होगा।

पूर्वजन्ममें गजेन्द्रने बहुत भक्ति की थी, अतः गजेन्द्रयोनिमें भी उसे अंतःकालमें प्रभुका स्मरण हुआ और फलतः उसका उद्धार हुआ।

जो भी सस्कार मनमें दृढ होकर जम जाते हैं, वे अंतःकालमें और अगले जन्ममें भी काम आते हैं।

ठाकुरजीका पहले स्वप्नमें अनुभव होता है। गोपाल सहस्रनामावलिमें भगवान्का एक नाम है 'भक्तानाम् स्वप्नवर्धनः।'

भगवान्ने गजेन्द्रको सारूप्य मुक्ति दी, अपने ही जैसा रूप दिया। गजेन्द्रकी भांति तुम भी दीनता और व्याकुलतासे गजेन्द्रस्तुतिका पाठ करो। अंतःकालमें ठाकुरजी गजेन्द्रकी भांति तुम्हें भी लेनेके लिए आएंगे।

छठे अर्थात् चाक्षुष् मन्वंतरमें समुद्रमेंसे जो अमृत मिला, उसे भगवान्ने देवोंको पिलाया। इस मन्वंतरमें भगवान्ने अजीत नामसे अवतार लिया था। समुद्रमंथन करके अमृत निकाला। स्वयं विष्णुने ही कच्छपरूप धारण करके मंदराचल पर्वतको अपनी पीठ पर धारण किया।

परीक्षित राजाने पूछा- भगवान्ने समुद्रमंथन कैसे किया? कच्छपरूप लेकर मंदराचलको अपनी पीठ पर क्यों धारण किया? उन्होंने देवताओंको कैसे अमृत पिलाया? इस समुद्रमंथनकी कथा कृपया मुझे भी तो सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्! एक बार इन्द्र इधर-उधर घूम रहा था, कि मार्गमें ऋषि दुर्वासा मिल गए। दुर्वासाने इन्द्रको पुष्पमाला अर्पित की।

साधु, ऋषि जब कुछ देते हैं तो सद्भावपूर्वक देते हैं। उसे इन्कार न करके आदरसे ग्रहण करना चाहिए।

इन्द्र संपत्तिके मदसे विवेकभ्रष्ट हो गया था। उसने माला हाथीकी सूंड पर फेंक दी और हाथी उसे पांवसे कुचलने लगा। दुर्वासाने सोचा कि इन्द्र मेरा और पुष्पवासी लक्ष्मीका अपमान कर रहा है। तो उन्होंने इन्द्रको शाप दिया- तू दरिद्र होगा।

संपत्तिके मदसे विवेकभ्रष्ट हुआ व्यक्ति दरिद्र हुए बिना फिर विवेकी नहीं बन पाता।

इन्द्र दरिद्र हो गया और स्वर्गका राज्य दैत्योंको मिला। देवगणने भगवान्का आसरा लेकर उनसे प्रार्थना की कि कुछ ऐसा उपाय करें कि जिससे हमें स्वर्गका राज्य वापस मिल जाए। भगवान्ने समुद्रमंथन करनेकी आज्ञा दी और कहा कि इससे प्राप्त होनेवाला अमृत तुम्हें पिलाकर तुम्हें अमर बनाऊंगा। यह काम कोई आसान काम नहीं है। इस काममें शत्रुओंका भी साथ लेना, अन्यथा वे बाधा उपस्थित करते रहेंगे। दैत्योंके साथ मैत्री करके उनकी प्रशंसा करना। वे अभिमानी हैं, अतः अपनी प्रशंसा सुनकर वे मित्र बन जाएंगे।

जिसे ज्ञानरूपी, भक्तिरूपी अमृत मिलता है, वह अमर हो जाता है।

देव और दैत्य अमृतप्राप्तिके लिए समुद्रमंथन करने लगे। मंदराचल पर्वतको मथनी और वासुकि नागको रस्सा बनाया गया।

संसार ही समुद्र है। अपने जीवनका मंथन करो। समुद्रमंथन जीवनका ही तो मंथन है। संसारसमुद्रका मंथन करके ज्ञान और भक्तिरूपी अमृत प्राप्त करना है। ज्ञान और भक्तिरूपी अमृतका पान करनेवाला अमर हो जाता है।

मनको मंदराचल पर्वतकी भांति स्थिर करो। मन ही मंदराचल पर्वत है और प्रेमडोर ही वासुकि नाग है।

सोलहवें वर्षमें मनोमंथन शुरु हो जाता है।

शिवपुराणमें एक प्रसंग है। शिवजीने कामदेवको आज्ञा दी कि बाल्यावस्था और वृद्धावस्थाको छोड कर मनुष्यको तू सताते रहना।

युवावस्थामें पूर्वजन्मके संस्कार धीरे धीरे जागृत होते है। उस समय अपने मनको मंदराचल पर्वतकी भांति स्थिर करना चाहिए। मनको चंचल न होने देना चाहिए। उसके लिए कमसे कम तीन घंटे ठाकुरजीकी प्रतिदिन सेवा करो।

जब मंदराचल समुद्रमें डूबने लगा तो भगवान्ने कूर्मावतार लेकर अपनी पीठ पर उसे धारण कर लिया।

अपने मनको भी तुम ठाकुरजीके किसी भी स्वरूपमें स्थिर कर लो। मनका स्वभाव होता है मात्र साकार वस्तुका ही दर्शन करनेका। सगुणका साक्षात्कार जबतक भलीभांति न हो पाए, तब तक निर्गुणमें दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती। भगवान्के सगुण स्वरूपमें स्थिर हुआ मन उनके निर्गुण स्वरूपमें भी स्थिर हो सकता है।

निराधार मन संसारसागरमें डूब जाता है। मनरूपी मंदराचल आधारके विना स्थिर नहीं रह पाता। उसे भगवत्स्वरूप, भगवन्नामके आधारकी आवश्यकता है। उसे वह आधार मिलेगा, तो वह संसारसमुद्रमें कभी न डूबेगा।

अनेक औषधियोंको समुद्रमें विसर्जित करके समुद्रका मंथन किया गया है।

औषधिका एक अर्थ दवा है तो दूसरा अर्थ है अन्न। जल और अन्न औषधि है। ये दोनों शरीरको आवश्यकतानुसार देना चाहिए। भूख और प्यासको रोग मानो और उन्हें सहनेकी आदत डालो। जिस प्रकार रोगको मिटानेके लिए औषधि ली जाती है, उसी तरह अन्नजलका प्रमाणसर ही सेवन करो। शरीर हलका होगा तो भजन ठीकसे हो सकेगा।

समुद्रमेंसे प्रथम विष निकला था और बादमें अमृत।

मनको स्थिर करके प्रभुके पीछे लग जाओगे, तो वे पहले तो विष ही देंगे। किंतु उसे सह लोगे तो अमृत भी देंगे। महापुरुषोंने विविध कष्टरूपी विषका पान किया था, दुःखोंको सहन किया था, अतः उन्हें ज्ञानामृत मिला।

जीवनमंथनके प्रारंभमें विष ही मिलेगा। मंथन यौवनसे ही शुरु हो जाता है। पहले विषय मिलेंगे और विषय विष जैसे ही तो हैं।

निंदा और कर्कश वाणी विष ही है। निंदा और नरक एक ही है। निंदारूपी विष सह लोगे, तो अमृत मिलेगा। प्रतिकूल परिस्थिति भी विष ही है। दुःख भी विष ही है।

विषकी दुर्गंधि देवोंसे सही न गई, तो प्रभुने विषपानके लिए शंकरको बुला भेजा।

जिसके सिर पर ज्ञानगंगा होती है, वह विषको पचा सकता है। इस संसारका विष सभीको जलाता है, किंतु ज्ञानगंगाधारीको नहीं जला सकता। शंकर भगवान्की भांति ज्ञान-गंगाको सिर पर धारण करोगे तो विष सहा जाएगा। शिवजीकी पूजा विष सहनेकी शक्ति देती है। शिवजी दान देते हैं अतः विष सहनेकी शक्ति मिलती है।

निंदा शब्दरूप होनेके कारण उसका संबंध आकाशके साथ होता है, आत्माके साथ नहीं, ऐसा मान कर निंदा सह लेनी चाहिए।

देवोंने शिवजीसे विष पी जानेके लिए प्रार्थना की। उन्होंने पार्वतीसे अनुमति माँगी। तो पार्वतीने कहा– ये सब तो स्वार्थी हैं। विष पीनेसे आपको अगर कुछ हो गया तो?

शिवजीः— यदि सबका कल्याण हो सकता है तो भले ही चाहे मुझे दुःख क्यों न झेलना पडे।

अन्यको सुखी करनेके लिए जो स्वयं दुःख सह ले, वही शिव है। स्वयंको सुखी करनेके लिए दूसरोंको दुःखी करे, वह जीव है। दूसरोंका हित करनेके लिए जो अपना स्वार्थ भी छोड देता है, वह शिव है और अपने स्वार्थके लिए दूसरोंका काम बिगाडता है, वह जीव है।

शिवजीने भगवत् स्मरण करते हुए विषपान किया।

विषको गलेमें ही रखना है, पेटमें उतारना नहीं। किसीको कटु शब्द सुनानेकी इच्छा हो जाए, तो उसे गलेमें ही रोक दो, मुख पर मत आने दो। विष गलेमें रखा जाता है। इसे न तो बाहर निकालना है और न तो पेटमें उतारना है। निंदाकी ओर ध्यान ही न देना चाहिए। किसीके द्वेषको याद मत करो।

विषको पेटमें कभी मत रखो। कर्कश वाणी विष ही है। शिवजीने विषको कंठमें ही रखा हुआ है।

भागवतमें तो नहीं है किंतु किसी महात्माने कहा है कि जब शिवजी विषपान कर रहे थे तो कुछ छींटे नीचे गिरे थे। और वह विषके छींटे कुछ जीवोंकी आखोंमें और पेटमें पड गए थे।

विषकी जलन अधिक हो जाए तो भगवान्‌के नामका कीर्तन करो। भगवान्‌का नाम विषको भी अमृत बना देता है। शिवजी भी इसीसे तो भगवान्‌का नाम लेकर विष पी गए थे।

संसारमें विष भी है और अमृत भी। जो विषको पचा सकेगा, उसे अमृत मिलेगा।

कृष्ण कीर्तन ही अमृत है।

सोलहवें वर्षसे जीवनमें मंथन शुरु होता है। मनमें वासनाका विष उत्पन्न होता है। उस समय मनको मंदराचल–सा स्थिर कर लोगे, तो उस मनोमंथनमेंसे, संसारमेंसे भक्ति और ज्ञानरूपी अमृत प्राप्त होगा। फिर तो मानव अमर हो जाएगा। इस तरह जिसे भक्ति और ज्ञान मिलेंगे, उसकी मृत्यु नहीं होगी।

शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मीराबाई, तुकाराम आदि न जाने कितने संत–साधु–भक्तोंको कोई भूल नहीं पाया है। वे सब अमर हैं। उन्हें सभी याद करते हैं।

भगवान् पहले विष देते हैं और फिर अमृत। जो उनके पीछे लगता है, उसकी वे परीक्षा करते हैं।

जगत्‌के कल्याणके हेतु, भलाईके लिए शंकरने विषपान किया। साधु–पुरुषोंका ऐसा ही वर्तन होता है। सज्जन पुरुष अपने प्राणका बलिदान देकर भी अन्यके प्राणकी रक्षा करते हैं। जब कि संसारके मानव मोह–मायासे लिपट कर पारस्परिक वैर भावना बढाते रहते हैं।

परोपकारी सज्जन प्रजाके दुःख दूर करनेके लिए स्वयं दुःख सह लेते हैं। वे कहते हैं– सभीके लिए मैं दुःख सह लूंगा, किंतु अपने लिए किसीको भी दुःख सहने न दूंगा। साधु पुरुष अन्य लोगोंके दुःखसे दुःखी होते हैं। किंतु यह दुःख नहीं है। यह तो सभीके हृदयमें विराजमान परम परमात्माकी आराधना है।

साधु पुरुष कैसे होते हैं वह तुलसीदासजीसे सुनिए :—

संत हृदय नवनीत समाना । क्या कहिए ये कहु न जाना ॥
निज परिताप द्रवे नवनीता । परदुःखे द्रवे संत पुनीता ॥

परहित सरस धर्म नहि भाई ।
परपीडा सम नहि अधमाई ॥

मंथन करते करते गायमाता कामधेनु प्राप्त हुई। गायमाता कामधेनुका दान ऋषि-मुनियोंको दिया गया।

जो संपत्ति प्रथम मिले उसका परोपकारमें उपयोग करो।

कामधेनु संतोषका प्रतीक है। संतोष कामधेनुका स्वरूप है। जिसके आंगनमें संतोष रूपी गाय है वह ब्राह्मण ही ब्रह्मनिष्ठ है। असतोषी मनुष्य पाप करता है। ब्राह्मणका जीवन अति सात्त्विक होना चाहिए।

आगे जाकर उच्चैश्रवा नामक घोडा प्राप्त हुआ। इसे देख कर दैत्योंका मन ललचाया तो उन्हें दे दिया गया।

श्रव शब्दका अर्थ है कीर्ति। उच्चैश्रवा कीर्तिका प्रतीक है। मनको जो पर्वत-सा स्थिर कर पाएगा उसे जगत्में कीर्ति मिलेगी और लक्ष्मी भी। जिसका मन कीर्तिमें फँसता है उसे अमृत नहीं मिल पाता।

साधनाके आरंभमें कीर्ति मिलती है। यदि मन इसीमें फँस गया, तो भगवान् नहीं मिलेंगे। जिसे मान अधिक मिलता है, उसके पुण्योंका क्षय होता है। जिस जीवको मानका मोह नहीं है और जो दीनतासे प्रभुकी प्रार्थना करता है उस जीवको ईश्वर अपने जैसा बनाते हैं।

विष्णुसहस्रनामावलिमें भगवान्को 'अमानी मानदो' कहा गया है। भगवान् स्वयं अमानी हैं, किंतु जीवोंको मान देते हैं।

जिसका मन उच्चैश्रवा अर्थात् कीर्तिके मोहमें फँस जाता है, उसे अमृत नहीं मिलता। दैत्योंने उच्चैश्रवाको ले लिया था, अतः उन्हें अमृत नहीं मिला।

बिना कसौटीके परमात्मा कृपा नही करते। जो कीर्ति और प्रसिद्धिमें फँसता है उसे अमृत नहीं मिलता।

आगे चलकर समुद्रमंथनसे जब ऐरावत हाथी निकला तो दैत्य घोडा ले लेनेके कारण पछताने लगे।

हाथी सूक्ष्म दृष्टिका प्रतीक है। हाथीके आंखें छोटी-सी होती हैं। देवोंको यह हाथी दिया गया।

स्थूल दृष्टि देहदृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टि आत्मदृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टिवालेको अमृत मिलता है। सूक्ष्मदृष्टिवालेको कामदेव सता नहीं सकता।

आगे चलकर समुद्रमंथनसे अप्सरा प्राप्त हुई। दैत्योंसे देवोंने कहा कि इसके बाद जो कुछ निकलेगा उसे हम लेंगे। पारिजात और अप्सरा देवोंको मिले।

अब समुद्रमेंसे लक्ष्मीजी प्रकट हुईं। ये तो साक्षात् जगदंबा, महामाया है। दैत्योंने सोचा कि हमें यह मिल जाए तो अच्छा हो। किंतु मांगनेवालोंको, ईच्छा करनेवालोंको लक्ष्मी नहीं मिलती।

लक्ष्मीजीको सिंहासन पर बिठाया गया। इस जगत्में भी लक्ष्मीनन्दनोंको सभी मान देते हैं।

लक्ष्मीजी सोचने लगीं कि किसके गलेमें वरमाला पहनाऊं। वे सर्वगुणसंपन्न पुरुषकी खोजमें निकली।

उन्हें ऋषियोंके मंडपमें लाया गया। ये ऋषि ज्ञानी भी हैं। और तपस्वी भी। किंतु क्रोधी अधिक हैं।

मात्र तप करनेसे कुछ फल नहीं मिलता। तपको भक्तिका भी साथ होना चाहिए। तप करनेसे शक्ति बढती है और इससे क्रोध भी बढ जाता है। तप और ज्ञानसे शक्ति तो बढती है किंतु वह छलकने भी लगती है। अतः ज्ञानके साथ भक्ति भी होनी चाहिए। भक्ति दीनता, नम्रताके सिंहासन पर विराजती है।

लक्ष्मीका मन न माना। आगे देवगण विराजमान थे। वे क्रोधी नहीं हैं किंतु अतिशय कामी हैं।

शास्त्रने क्रोधका लाल, लोभका पीला और कामका काला रंग बताया है।

देव महान् होते हुए भी कामी है अतः वे आगे चलीं। आगे बैठे थे परशुरामजी। वे जितेन्द्रिय हैं, कामी और क्रोधी नही है किंतु निष्ठुर हैं। क्षत्रियोंके छोटे बालकोंको भी मारते हैं, अतः मुझे पसंद नहीं हैं।

आगे मार्कंडेय मुनि बैठे थे। वे सुंदर भी हैं और दीर्घायुषी भी। किंतु भर सभामें आंखें मुंद कर बठे हैं। लक्ष्मीजीकी ओर भी उन्होंने नहीं देखा। लक्ष्मीजीने सोचा कि ये महात्मा तो अनासक्त हैं। मेरी ओर देखते तक नहीं हैं। मैं यदि इन्हें वरूंगी तो भविष्यमें भी शायद मेरी ओर ध्यान नहीं देंगे।

मार्कंडेयने कहाः— तुझे कैसे सुंदर मानुं? तुझसे तो कन्हैया अधिक सुंदर है। जब तक वह तुझे नहीं अपनाएगा, मैं तेरा दर्शन नहीं करूंगा। मुझे लक्ष्मीका मोह है ही नहीं।

जब लक्ष्मीका मोह छूटता है तब प्रभुभक्तिका प्रारंभ होता है।

तुकारामके दारिद्र्यको देख कर शिवाजी महाराजने उनके लिए सुवर्णसे भरा थाल भेजा। तुकारामने कहाः— जब मैं लक्ष्मीके पीछे भाग रहा था, तब वह मुझे मिली ही नहीं। अब मेरा चित्त भगवान्‌से जा लगा है तो वह बाधा डालने आ रही है। उन्होंने वह सुवर्णभरा थाल लौटा दिया।

सारा दिन भजन करनेवाले और कुछ भी उद्यम न करनेवालेको लक्ष्मीजी नहीं मिल पातीं।

आगे चलीं तो वहां शंकर विराजमान थे। लक्ष्मीजी अपनी सखियोंके साथ वहां आईं। शंकर कामी भी नहीं हैं और क्रोधी भी नहीं। लक्ष्मीजीने शंकरको देखा। इनका स्वभाव तो मंगल है किंतु वेश अमंगल है और चेष्टा भयानक। और वे भोले भी बहुत हैं।

शंकरके निकट भगवान् नारायण विराजमान थे। लक्ष्मीजीने सोचा कि ये ही उत्तम हैं। जिसका हृदय कोमल और मृदु होता है उसीके पास लक्ष्मीजी आती हैं। उन्होंने नारायणको वरमाला पहना दी।

लक्ष्मी–नारायणकी जय।

अब तक नारायणकी दृष्टि धरतीकी ओर थी। लक्ष्मीजीने उन्हें वरमाला पहनाई तो वे ईधर–उधर देखने लगे।

जिसके पास लक्ष्मी हो, उसे आसपास भी देखना चाहिए। सामान्यत. धन मिलनेके बाद लोग चारों ओर नहीं देखते हैं। मैं, मेरी पत्नी और पुत्र, बस। यह ठीक नहीं है। धनवानोंको तो चारों ओर देखकर सभी दीन–दुःखीका दु.ख दूर करना चाहिए।

समुद्रमंथनका काम आगे चलने लगा। दैत्योंने सोचा कि एक बार घोडा पाया और सभी कुछ देवताओंको मिल गया। अब तो जो कुछ निकलेगा वह हम ही लेंगे। इस बार मदिरा निकली। दैत्योंको मदिरा मिल गई। पीओ, बस, पीओ।

मंथन आगे चला तो भगवान् धन्वंतरी अमृत कुंभ लेकर प्रकट हुए। दैत्योंने वह घडा छीन लिया तो देवगण दुःखके मारे भगवान्‌की शरणमें गए। तो भगवान्‌ने कहा.— अब शक्ति नहीं, युक्तिसे काम लेना होगा।

जिस दैत्यके हाथमें सबसे पहले अमृतकुंभ आया था, वह कहने लगा कि वही पहले पीएगा। उसके बडे भाईने कहा कि मैं पहले पीऊंगा। और फिर सभी दैत्य इस बातको लेकर एक-दूसरेसे झगडने लगे। आपसी झगडेके कारण उन्हें अमृत मिल नहीं पाया।

जिसके घरमें इन दैत्योंकी भांति गृहक्लेश होने लगता है, उसके घरमेंसे किसीको भी ज्ञानामृत और भक्ति–अमृत नहीं मिल पाता।

झगडते हुए दैत्योंके समूहके बीच भगवान् मोहिनीका रूप लेकर प्रकट हुए। मोहिनीका सौंदर्य देखकर दैत्य चकरा गए। अहा ! क्या सौंदर्य है !

मोहिनी मोहका ही स्वरूप है। जो मोहिनीमें आसक्त है, उसे अमृत नहीं मिलता। संसारकी प्रत्येक वस्तुमें माया है। सौंदर्य तो मात्र कल्पना ही है। एक वस्तु तुम्हें सुंदर लगती है, वही वस्तु, संभव है कि किसीको सुंदर न भी लगे। सौंदर्य आंखोंमें है। वस्तुमें मनुष्य ही सौंदर्यका आरोपण करता है। सुंदर तो मात्र श्रीकृष्ण ही हैं। जगत्‌में जो कुछ सुंदर दीखता है वह सब श्रीकृष्णकी सुदरताके कारण ही सुंदर है।

जिसे मोहिनीका मोह लग जाता है उसे अमृत– भक्तिरूपी अमृत नहीं मिलता। जो ससारकी मोहिनीमें, सौंदर्य और विषयोंके मोहमें फंसता है उसे अमृत नहीं मिलता। किंतु जिसका मन मनमोहन श्रीकृष्णमें फंसता है उसे अमृत मिलता है।

जबतक सांसारिक मोहिनीका मोह है, भगवान् नहीं मिलेंगे। सांसारिक पदार्थोंमें मन जैसे फंसा हुआ है, वैसे ही जब तक श्रीकृष्णके स्वरूपमें न फसे तब तक भक्ति फलवती नहीं होती। और भक्तिकी सिद्धिके बिना भगवान् नहीं मिलते। स्वरूप आसक्तिके बिना भक्ति सिद्ध नहीं हो पाती।

सांसारिक विषयोंका मोह छोडोगे, तो भक्ति हो सकेगी। इसे विवेकसे छोडना है। ज्यों ज्यों प्रभुप्रेम बढता जाएगा, त्यों त्यों विषयोंकी ओरसे अरुचि होती जाएगी। समुद्रके

ज्वार और मोटा परस्पर विरोधी होते हैं। इसी प्रकार प्रभु-प्रेमके बढते जाने पर विषयासक्ति घटती जाएगी। आंखोंमें कामको रखकर जगत्को देखोगे, तो मोह उत्पन्न होगा और आंखोंमें ईश्वरको रखोगे तो मोहका नाश होगा।

सांसारिक स्वरूपमें आसक्ति ही माया है। ईश्वरके स्वरूपमें जो आसक्ति है, वही भक्ति है।

दैत्य कौन है? राह पर चलती हुई किसी भी स्त्रीमें जिसका मन फंस जाए वही दैत्य है। जो परस्त्रीका चिंतन करे वह राक्षस है।

कामातुर दैत्योंने मोहिनीको घेर लिया और पूछने लगेः- देवी, तुम कहांसे आई हो? तुम्हारा गांव कौनसा है? तुम्हारा विवाह हो गया है या नहीं? मोहिनीकी मायामें दैत्य सुधबुध खो बैठे थे।

भगवान् सोच रहे थे कि इन दैत्योंको अमृत न देनेमें ही कल्याण है। यदि इन्हें अमृत मिलेगा तो वे अमरता प्राप्त करके अभिमानी हो कर पाप अधिक करेंगे।

मोहिनीने हंसते हुए कहाः- मैं तो आपके कल्याणके लिए आई हूं। मेरा कोई एक घर नहीं है। मेरे तो कई घर है। जो भी पुरुष मुझसे प्रेम करता है, मैं उसके घर जाती हूं।

मैं तुकारामके घर भी जाती हूं और नरसिंह मेहताके घर भी।

वैष्णवोंके जितने भी घर हैं, सभी ठाकुरजीके भी है।

दैत्य मूर्ख थे अत. मोहिनीके वचनोंका गूढार्थ समझ न सके। जिस दैत्यके हाथमें अमृतकुंभ था, वह ललचायी आंखोंसे मोहिनीकी ओर देख रहा था। उसने कहाः- मैं यह कुंभ तुम्हें भेंट करता हूं। उसने सोचा कि इससे प्रसन्न हो कर मोहिनी उसके घर आयेगी। मोहिनीने उससे पूछाः- इस घडेमें क्या है? तो उसने कहा कि अमृत है।

सौंदर्य किसी जड वस्तुमें नहीं है। जिसे देखनेसे विकार जागे, वह सौंदर्य ही नहीं है।

दैत्यने वह घडा मोहिनीके हाथोंमें दे दिया और बोला- देवीजी बांटेंगी और हम शांतिसे पीएंगे। हाथ जोडकर बैठेंगे, झगडा नहीं करेंगे।

मोहिनीदेवीने देव और दानवोंको अलग अलग दो पंक्तियोंमें बिठलाया। और पहले दैत्योंके पास जाकर उनसे कहाः- मैं आपका कल्याण करना चाहती हूं। किंतु यह उपरका अमृत पानी जैसा है अतः उसे देवोंको पिला दूं और नीचे जो अच्छा अमृत है वह आपको पिलाऊंगी। ठीक है न?

बेचारे मोहांध दैत्य! वे कहने लगे, अच्छा अच्छा। हम नीचेका अच्छा भाग ही पी लेंगे। आपके हाथोंसे मात्र एक बूंद भी मिल जाए तो भी बहुत है। वे मोहांध होकर बुद्धि गवा बैठे थे। अन्यथा एक ही घडेमें अमृत दो प्रकारका कैसे हो सकता है?

दैत्योंने कहाः- देवीजी, आपको जो योग्य लगे वही करें।

मोहिनीदेवी देवोंको अमृत पिलाने लगी। कुछ देर बाद दैत्य घबडा कर सोचने लगे कि इस बातमें छल दिखाई देता है। दैत्य राहुने सोचा कि इसमें कुछ न कुछ कपट है। इस नारीका विश्वास करके हमने बडी भूल की है। ऐसा सोचता हुआ वह देवपक्षमें जा बैठा कि जिससे अपना भाग गंवाना न पडे। राहु देवोंकी पंक्तिमें सूर्य और चंद्रके बीच बैठ गया।

मोहिनीदेवी जान गई कि वह दैत्य है, किंतु पंक्तिभेद न करनेके हेतुसे राहुको भी अमृत दिया।

भोजनमें विषमता कभी मत करो। जो पंक्तिभेद करता है उसे संग्रहणी नामक रोग हो जाता है। जब तक पूर्वजन्मका पुण्य बलवान् है, पापका फल नहीं मिलता।

यह भी तो सोचो। जब इन्द्रादि देवोंको अमृत मिल रहा था तब राहु वहां नहीं आया, किंतु जब राहु सूर्य-चंद्रको अमृत मिल रहा था तो वह आ पहुचा। मनका स्वामी चंद्र है। चंद्र मनका स्वरूप है। बुद्धिका स्वामी सूर्य है। सूर्य बुद्धिका स्वरूप है। हाथोंसे, जीभसे मनुष्य भक्ति करता है तब विषयरूपी राहु बाधा डालने नहीं आता है। किंतु जब मनुष्य मनसे, बुद्धि-से ईश्वरका ध्यान करने लगता है, तो विषयरूपी राहु बाधा डालनेके लिए आ धमकता है। मन-बुद्धिको ईश्वरके ध्यानमें लगाया नहीं, कि राहुको आया हुआ ही समझो। मन और बुद्धिको जो भक्तिरूपी अमृत मिलता है, वह विषयरूपी राहुसे देखा नहीं जाता, अतः विषयरूपी विघ्न डालने आ जाता है। इस विषय राहुको ज्ञानचक्रसे नष्ट कर दो।

राहुने अमृत पीना शुरू किया ही था कि भगवान्‌ने सुदर्शन चक्र चलाकर उसका सिर उडा दिया।

अर्थात् सुदर्शनचक्र-ज्ञानरूपी सुदर्शनचक्रसे विषयराहुका नाश किया जाए। किंतु मात्र ज्ञान और बुद्धिसे विषयराहु मरता नहीं है। ज्ञान और बुद्धिका अधिक विश्वास मत करो। अकेले ज्ञानसे कुछ भी नहीं हो सकता, क्यों कि राहु वैसे तो अमर है। जब तक कोई सच्चे संतकी कृपा नहीं मिल पाती, विषयराहु नहीं मरता।

मात्र ज्ञानसे विषयोंका नाश नहीं हो पाता। ईश्वरके अनुग्रहसे ही मन निर्विषयी होता है। भगवान्‌की कृपाके बिना मन निर्विषयी नहीं हो सकता। ज्ञानका आश्रय लेकर भी अति दीन बनोगे, तो परमात्मा कृपा करके विषयराहुको मारेंगे। मात्र ज्ञानसे ही निर्विषयता नहीं हो पाती। ईश्वरकी कृपासे निर्विषयता आती है।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।

गी. २-५९

परमात्माकी कृपा और साक्षात्कारसे ही विषयासक्ति और विषयानुरागितामेंसे मन निवृत्त हो पाता है।

दैत्य भगवान्‌से विमुख थे, अतः उन्हें अमृत नहीं मिला।

संसारकी मोहिनीमें फंस जाओगे, तो भक्तिरूपी अमृत कभी न मिलेगा।

मोहिनीदेवीने सारा अमृत देवोंको पिला दिया और घडा दैत्योंके सामने रख दिया। दैत्योंने चिल्लाना शुरू कर दियाः- कपट। विष्णु, तुम साडी पहन कर आए। तुम्हें लाज भी न आई?

देव और दानवोंके बीच भयानक युद्ध हुआ। दैत्य पराजित हो गए।

जो मोहिनीके पीछे पागल बन कर दौडने लगता है, वही दैत्य है। संसारकी मोहिनीमें फंसनेवाला दैत्य है। दैत्योंके श्रम और तप सांसारिक सुखके हेतु ही होते हैं। रावण और

हिरण्यकशिपुने क्या कम तप किया था? किंतु उनका सारा तप भोग-विलासके हेतु था, भगवान्के हेतु नहीं।

नारदजीने कैलास पर जाकर शिवजीसे पूछा, क्या आपने नारायणके मोहिनीरूपका दर्शन किया? तो शिवजी मोहिनी स्वरूपका दर्शन करनेके लिए सपरिवार वैकुंठधाममें पधारे।

नारायणने शिवजीका स्वागत करते हुए आगमनका कारण पूछा। शिवजीने बताया कि वे तो उनके दर्शनार्थ पधारे हैं। भगवान्ने कहा कि मैं तो सामने ही उपस्थित हूं। शिवजीने कहाः– मैं आपके मोहिनी स्वरूपका दर्शन करना चाहता हूं।

प्रभुः– आपने तो कामदहन किया है, फिर भी ऐसा मोह क्यों है?

शिवजीः– मैंने आपके सभी जन्म देखे हैं, अतः इस मोहिनी अवतारको भी देखना है। (शिवजी अनादि और अनंत हैं अतः ऐसा कहते हैं।)

प्रभुने लीलाकी रचना की। एक सुंदर उद्यान और उसमें पुष्पगुच्छ खेलती हुई सौंदर्यवती युवती। शिवजीने यह देखा तो पार्वतीकी उपस्थिति भी भूल गए। भगवान्की मायासे शंकर भी मोहित हो गए।

जिसके सिर पर ज्ञानगंगा है और जिसका वाहन ज्ञान है, क्या उसे काम प्रभावित कर सकता है? किंतु शिवजी यह बताना चाहते हैं कि भगवान्की मायाको पार करना बडा ही कठिन कार्य है।

गीतामें कहा गया हैः—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरन्ति ते॥

गी. अ. ७–१४

मेरी इस मायाको पार करना बडा कठिन है। किंतु जो मेरी शरणमें आता है, वह अनायास ही इस मायाको पार कर जाता है।

शिवजी देहभान भूल गए। दर्शन करनेवाला देहभान भूल जाता है।

शिवजी सोच रहे हैं कि जब मात्र दर्शनसे ही इतना आनंद मिलता है, तो मिलन तो कितना अधिक आनंददायी होगा।

आनंद अद्वैतमें ही है।

शिवजी मिलनातुर होकर दौड पडे। वे प्रेमसे आलिंगन देने गए, तो वहां चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। हरि और हरका मिलन हुआ।

हरि और हर वैसे तो एक ही हैं।

शिवजीने कैलास वापस आकर ऋषियोंको उपदेश दिया.– मेरे श्रीकृष्णकी माया सभीको नचाती है। मनका कभी भरोसा न करो। यह माया कब पतनकी गर्तामें फेंक देगी उसका कोई पता नहीं है। मैं जितेन्द्रिय हूं ऐसा गर्व कभी मत करो। मनमें सूक्ष्मतासे छिपे हुए विषय अवसर पाते ही प्रकट हो जाते हैं। मायाके पर्देको हटानेके लिए मनको कृष्णमय बना लो।

बडे बडे ऋषि-मुनि भी भटक गए थे, तो आज तो कलियुग है। कलियुगीन मनुष्य कामका कीडा है। उसे तो और भी अधिक सावधान होना चाहिए।

शिवजी मनुष्यको समझाते हैं कि हरिस्मरण और हरिकीर्तन ही मनुष्योंको मोहिनीके मोहसे बचा सकता है।

सातवें मन्वतरमें श्राद्धदेव नामक मनु हो गए। उनके समयमें कश्यप और अदितिके घर भगवान्का वामन अवतार हुआ।

परीक्षित राजा कहते हैं:- मै सातवें मन्वन्तरके वामन भगवान्की कथा सुनना चाहता हूं। मुझे उनका चरित्र सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्! देवोंके साथ हुए संग्राममें पराजित होने पर दैत्योंने शुक्राचार्यका आश्रय लिया। शुक्राचार्यकी कृपासे दैत्योंका बल बढने लगा। इन्द्र द्वारा पराजित बलिराजा संतोंकी सेवा करके फिरसे बलवान् होने लगा। शुक्राचार्यने उससे विश्वजित यज्ञ करनेको कहा। विश्वजित यज्ञ किया गया तो उस यज्ञसे उन्हें सर्वजित रथ प्राप्त हुआ।

शुक्रकी सेवा करनेवाला बलि बनता है। शुक्र-शक्तितत्त्वसे यह शरीर बना है। ब्रह्मचर्यकी सेवा करनेसे बलि बनोगे। शुक्राचार्य अर्थात् संयम। ब्रह्मचर्यकी सेवा करनेसे, संयमसे दैत्य बलि (बलवान्) बना।

सभी विषयोंका यज्ञमें होम किया गया। संयपरूपी यज्ञमें सर्व विषयोंका होम करके बलि जितेन्द्रिय बनो। बलवान् बने हुए बलिको शुक्राचार्यने अपना ब्रह्मतेज दिया। बलिराजाने देवोंका पराभव किया। स्वर्गका राज्य दैत्योंने हस्तगत किया। बलिराजाको इन्द्रासन पर बिठाया गया।

शुक्राचार्यने सोचा, बलि यदि सौ अश्वमेध यज्ञ करे तो स्वर्गका राज्य उसे हमेशाके लिए मिल जाए। यज्ञ करनेके लिए बलिराजा भृगुकच्छ (भरुच-भडौंच) आए। अश्वमेध यज्ञ किया गया।

बलिराजाने स्वर्ग जीत लिया तो देवगण घबरा कर भागते हुए अपने गुरु बृहस्पतिके पास पहुंचे। बृहस्पतिने कहा, बलि जब भृगुवंशी ब्राह्मणोंका अपमान करेगा, तब वह नष्ट हो जाएगा।

इधर देवोंकी माता अदिति दुःखसंतप्त हो गई। कश्यप ऋषिके कारण पूछने पर उसने सारी बात बताई। अदितिने कश्यपकी अत्यधिक सेवा करके वर मांगा कि मेरे पुत्रोंको स्वर्गका राज्य वापस मिले।

कश्यपने कहा, दैत्य ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। धर्मका कवच पहनते है। नीति ही जिनका शिरछत्र है उन्हें कौन मार सकता है? जीवका पाप ही उसे मारता है, भगवान् नहीं। दैत्य अब तो पवित्र जीवन जी रहे हैं अतः इन्हें भगवान् भी नहीं मार सकते। अतः भगवान् शक्तिसे नहीं, युक्तिसे देवोंको सुखी करनेका यत्न करेंगे।

इसी कारणसे वामनचरित्रमें युद्धकी कथा नहीं है। भगवान्ने भी बलिको नहीं मारा।

कश्यपने कहा– देवी तुम पयोव्रत करो। फाल्गुन मासमें यह व्रत करना है। विधि-पूर्वक व्रत करनेसे स्वयं भगवान् तुम्हारे घर पुत्ररूपसे आएंगे।

पति–पत्नी साथ साथ ईश्वरकी आराधना करें, तो प्रभु शीघ्र प्रसन्न होते हैं।
सभी आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। अदिति कश्यपका गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ था।
गृहस्थ योगाभ्यास करता नहीं है, फिर भी उसे योगका फल मिल सकता है।

यत्र योगोह्ययोगिनाम्।

भा. ८–१६–५

जो लोग योगसाधना नहीं कर पाते हैं, उन्हें गृहस्थाश्रम योगका फल देता है। गृहस्थाश्रममें धर्म ही मुख्य है, काम–सुख तो गौण है।

जबसे वरराजा घोडेके बदले मोटर पर सवारी करने लगा है, गृहस्थाश्रममें गडबड हो गई है। आजकलके वरराजाको डर रहता है कि घोडा कहीं गिरा न दे।

जो एक घोडेको नियन्त्रित नहीं कर सकता है, वह ग्यारह घोडोंको–पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और मनको कैसे नियंत्रित कर सकेगा? गृहस्थको तो इन ग्यारह इन्द्रियोंको नियंत्रणमें रखना पडता है। संयम रखना पडता है। विवाह विलासके लिए नहीं, कामविनाशके लिए है।

सत्संगसे गृहस्थाश्रम सफल होता है। जो आनंद योगीको समाधिमें मिलता है, वही आनंद गृहस्थ घरमें पा सकता है। किंतु इसके लिए पति–पत्नीको चाहिए, कि वे एकांतमें कृष्णकीर्तन करें।

शास्त्रोंमें गृहस्थाश्रमकी तो बडी प्रशंसा की गई है। और जो निंदा की गई है वह तो वासनाकी है। कोई भी स्त्री या पुरुष बुरा नहीं होता, किंतु उसके मनमें छिपी हुई कामवासना बुरी होती है। महात्माओंने तो कई बार कहा है कि गृहस्थोंका आनंद योगीके आनंदसे भी श्रेष्ठ है।

ईश्वरके साथ खेलनेवाला श्रेष्ठ है कि अपनी गोदमें स्वयं ईश्वरको भी खिलानेवाला श्रेष्ठ है? योगी परमात्माके साथ खेलता है अतः श्रेष्ठ तो है, किंतु गृहस्थ भी साधारण नहीं है।

गृहस्थाश्रम बिगडता है कुसंगसे। गृहस्थाश्रमका लक्ष्य ठीकसे समझमें न आनेके कारण ही वह बिगडता है।

कश्यप–अदितिका गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ था, दिव्य था। वे पवित्रतापूर्वक जीते हुए तपश्चर्या करते थे। अतः प्रभुने उनके घरमें जन्म लेनेकी सोची।

आज भी यदि कोई नारी अदितिकी भांति पयोव्रत करे और उसका पति कश्यप–सा बने, तो भगवान् उनके घर जन्म लेनेको तैयार हैं। अदितिका अर्थ है अभेदबुद्धि– ब्रह्माकारवृत्ति। ऐसी वृत्तिमेंसे ही ब्रह्मका प्रकटीकरण होता है।

कश्यपका अर्थ है मन। जिसकी मनोवृत्ति ब्रह्माकार हो गई होती है, वही कश्यप है। यदि पत्नी अदिति बने और पति कश्यप बने तो परमात्मा उनके घर अवतार लेते हैं, प्रकट होते हैं।

योगी ब्रह्मचिंतन द्वारा प्रभुमय हो सकता है, तो पवित्र गृहस्थ प्रभुको पुत्ररूपमें प्राप्त कर सकता है।

पवित्र गृहस्थाश्रमी युगल भगवान्‌को पुत्रके रूपमें पा सकते हैं किंतु पहले उन्हें कश्यप और अदितिके समान बनना पडेगा।

जब तक देहदृष्टि होगी, तब तक काम पीछे पीछे आएगा। कामका नाश करना है, तो देहदृष्टिकी अपेक्षा देवदृष्टि रखो।

शंकराचार्यने शतश्लोकीमें कहा है कि लोग त्वचाकी तो मीमांसा करते हैं, किंतु इस देहके सौंदर्यका कारणभूत जो है, उस आत्माकी मीमांसा कोई नहीं करता है।

जगत् नहीं बिगडा है, मनुष्यकी दृष्टि–बुद्धि–मन बिगड गए हैं। तुम इन्हें सुधारोगे, तो जगत् भी सुधरेगा। किसीको भी भोगदृष्टिसे न देखो, किंतु भगवत् दृष्टिसे ही देखो। दृष्टि सुधरेगी, तो सृष्टि भी सुधर जाएगी। भागवत आंख और दृष्टि देता है। किसीका भी बाह्याकार मत देखो।

एक बार राजा जनककी राजसभामें मुनि अष्टावक्र पधारे। उनके आठ आठ अंग टेढे–मेढे देख कर लोग हंसने लगे। अष्टावक्र लोगोंकी हंसी पर हंसने लगे।

जनक राजाने मुनिसे पूछाः– महाराज, हम तो आपके विचित्र अंगोंको देखकर हंस रहे हैं किंतु आप किस बात पर हंस रहे हैं?

अष्टावक्रने उत्तर दियाः– मैं तो मानता था कि आपकी इस सभामें सभी ज्ञानी विराजते हैं। किंतु मैंने आज देखा कि सबके सब मूर्ख चमार हैं। आप सब मेरी देहको देख रहे हैं। यह तो है ही मिट्टीका। मेरी आत्माको देखो। मैं पवित्र ब्राह्मण हूं। तुम सब मेरी आकृतिको देखकर हंस रहे हो। किंतु मनुष्यकी कृतिको देखना है, आकृतिको नहीं। आकृति तो पूर्वजन्मके प्रारब्धसे प्राप्त होती है। मेरी कृतिको तो देखो।

परमात्मा कृतिको देखते हैं और मनुष्य आकृतिको।

ज्ञानी पुरुष अनेकोंमें एकको देखते हैं।

दिति ही भेदबुद्धि है और अदिति अभेदबुद्धि, ब्रह्माकार वृत्ति है। दिति– भेदबुद्धि राक्षसोंको जन्म देती है जैसे कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। अदिति–अभेद बुद्धि भगवान् वामनको जन्म देती है।

जगत्‌को भेदभावसे नहीं, अभेदभावसे देखो। जिसकी बुद्धिमें भेद है उसके मनमें भी भेद है। भेद विकार–वासनाको जन्म देता है। ज्ञानी सभीको अभेद भावसे देखते हैं। अनेकमें एकका अनुभव करना ही तो ज्ञान है।

मूल्य आकारकी अपेक्षा मूलभूत वस्तुका अधिक हैं। मूल्य सुवर्णका है आभुषण–विशेषके आकारका नहीं।

एक महात्माके पास सुवर्णमेंसे बनाए हुए एक गणपति थे और सोने हीका एक चूहा भी था। महात्मा वृद्ध हुए तो उन्होंने सोचा कि मेरे बाद मेरे शिष्य मूर्तियोंको लेकर शायद

झगडा करेंगे। अतः मैं इन्हें बेच कर भगवानको भोग लगा दूं। वे दोनों मूर्ति बेचने लगे। गणपतिकी मूर्ति दस तोला सोनेकी थी और चूहेकी ग्यारह तोला सोनेकी। सुनार गणपतिकी मूर्तिसे चूहेकी मूर्तिका दाम अधिक देने लगा। महात्माने साश्चर्य पूछाः— अरे भाई, गणपति तो देव हैं और चूहा तो जंतु। फिर भी तुम गणपतिकी मूर्तिका दाम कम क्यों दे रहे हो? सुनारने कहाः— कीमत तो मैं सोनेकी दे रहा हूं, देव या चूहेकी नहीं।

ज्ञानी पुरुष आकर पर ध्यान नहीं देते। वे तो सृष्टिको निर्विकार भावसे देखते हैं। आकारसे विकार उत्पन्न होता है। गोरा-काला जैसा भेद उत्पन्न होता है। जबतक यह भेद-बुद्धि है तब तक विकार-वासनायें भी रहेंगी। अदिति ब्रह्मवृत्ति है। ब्रह्माकार दृष्टि और वृत्ति प्राप्त होने पर परमात्मा मिलते हैं।

सभीमें एक ही वस्तु है। एकमेंसे ही अनेक बने हैं। स्वप्नावस्थाकी भांति जागृतावस्थामें भी एकसे अनेक होते हैं। सभीके मूलमें एक ही है। अतः सभीमें एक ही को निहारो।

मनमें जिस वस्तुका बार बार चिंतन होता है, उसीका आकार मनमें स्थिर होता है। व्यापारीका मन द्रव्याकारमें स्थिर हुआ होता है, सो वह स्वप्नमें भी रुपये-पैसे ही देखता रहता है। इसी प्रकार भक्तकी चित्तवृत्ति भगवदाकार बन जाती है। एक ही स्वरूपका बार बार ध्यान करो, स्मरण करो, चिंतन करो। पूजा सभी देवोंकी करो किंतु ध्यान तो एक प्रभुका ही करो।

जिसकी आंखोंमें (अर्थात् ध्यानमें) पैसा ही है, वह हर स्थान पर पैसा ही देखता रहता है। एक सेठ कश्मीर गया तो वहां उसने गुलाबके पुष्पोंका ढेर-सा देखा। उसके मनमें यह भाव तो नहीं आया कि इन फूलोंमें श्रीकृष्ण विराजते हैं। किंतु उसके मनमें द्रव्यभाव था अतः उसने सोचा कि यहां गुलकंदका उत्पादन शुरू कर दूं, तो बहुत लाभ हो सकता है।

प्रभु अव्यक्त रूपसे फूलमें विराजमान हैं, अत: सुगंधि हैं। वे तो जल, स्थल, आकाश, पाताल सभीमें अव्यक्त रूपसे विराजमान हैं अतः सभी वस्तुमें भगवद्भाव रखो।

दृष्टि भगवतमय होगी, तो हर कहीं भगवान् दिखाई देंगे। गोपीकी दृष्टि परमात्मामें थी। वह जहां जाती थी, कन्हैयाका ही उसे दर्शन होता था। कृष्ण मथुरामें विराजते थे, फिर भी गोपियोंको तो वे गोकुलमें ही दिखाई देते थे।

गोपियोंने उद्धवजीसे भी कहा :— आप किसका संदेश लाए हैं? कन्हैया तो हमारे साथ इधर ही तो है। और संदेशा भी क्या लाए होंगे? गोपियोंकी वृत्ति कृष्णाकार, कृष्णमय थी।

> जित देखो तित श्याम ही है। श्याम कुंज बन जमुना श्यामा,
> श्याम गगन घटा छाई है। सब रंगनमें श्याम भरो है,
> लोग कहत यह बात नई है। नीलकंठको कंठ श्याम है,
> मानो श्यामता फैल गई है।

गोपियां जानती ही नहीं थीं, कि कृष्ण उन्हें छोड गए हैं। वे तो यही कहती हैं कि "मैं जहां भी जाती हूं, कन्हैया तो मेरे संग ही है।" यह है गोपीप्रेम।

जीवको भय रहता है क्योंकि वह ईश्वरके सान्निध्यका अनुभव सतत नहीं कर सकता।
ब्रह्माकार वृत्ति–अदितिका कश्यपके साथ संबंध हुआ।

कश्यप शब्दका अर्थ तो देखो। इस शब्दको उल्टा पढ़ेंगे तो होगा पश्यक। उपनिषद्के अनुसार "क" का अर्थ है ईश्वर और 'पश्य' का अर्थ है देखना। अर्थात् सभीमें एक ईश्वरको देखनेवाला ही कश्यप है।

जब कश्यपकी वृत्ति ब्रह्माकार, ब्रह्ममयी हुई तो परमात्माको प्रकट होना पड़ा।

गृहस्थाश्रम भक्तिमें बाधक नहीं, साधक है। बाधक तो है गृह–आसक्ति। गृहस्थाश्रममें कामासक्ति, द्रव्यासक्ति, विषयासक्ति ही बाधारूप है। संसारकी किसी वस्तुमें सच्चा सुख नहीं है। सच्चा आनंद एक मात्र ईश्वरमें ही है।

संसारमें ही सुख है ऐसा जब तक मानते रहोगे, भक्तिमें मन नहीं लगेगा। यदि सांसारिक विषयमें ही सच्चा सुख हो, तो निद्राकी आवश्यकता ही कैसे उपस्थित होती है? विषयोंको त्याग कर, भूल कर निद्राकी इच्छा होती है, वही बताता है कि विषयोंमें सुख नहीं है।

जिस प्रकार प्रतिदिन अन्नका सेवन करते है, वैसे ही सत्संगकी भी आवश्यकता है।

ईश्वरके प्रकाशके बिना जड प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती।

भगवान् गीतामें कहते हैं :– मैं अविनाशी, अजन्मा और सब भूतप्राणियोंका ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिके अधीन रह कर मैं योग मायासे प्रकट होता हूँ।

स्वरूप चैतन्य प्रकाश देता है, किंतु दुःख दूर नहीं कर सकता।

सर्वस्य चाहम् हृदि सन्निविष्टो।

अंतर्यामीके रूपसे ईश्वर सभीमें बसे हुए हैं, फिर भी जीव दुःखी है। केवल स्वरूप चैतन्य अज्ञान और दुःखका निवारण नहीं कर सकता। अदरका निराकार और बाहरका साकार स्वरूप एकत्र होकर प्रकट होगा, तभी भगवान् वामन अवतरित होंगे।

अदितिने पयोव्रत किया। उसको रात्रिमें स्वप्नमें चतुर्भुज नारायणके दर्शन हुए। अदितिने स्वप्नावस्थामें ही वंदन किया, स्तुति की। जगत्पति, लक्ष्मीपति, तात्त्विक दृष्टिसे तो मेरे भी आप पति हैं।

भगवानने उससे कहा : मेरे चतुर्भुज स्वरूपको निहारो। मेरे इस स्वरूपका अपने पतिमें सतत ध्यान करोगी, तो मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र रूपमें आऊगा।

वेदमें अदिति शब्द बार बार आया है। अदिति अर्थात् अभेदबुद्धि, ब्रह्माकार वृत्ति। एक ही स्वरूपका बार बार चिंतन करने पर वह मनमें जम जाता है।

अदिति और कश्यप नारायणका ध्यान करने लगे। उनकी वृत्ति नारायणाकार हो गई, तो उनके घर नारायण पधारे। अदिति सगर्भा हुई। नव मास पूर्ण हो गए, तो अदिति तन्मयतासे प्रार्थना करने लगी कि भगवान् कब प्रकट होंगे। आतुरताके बिना भगवान्का अवतार नहीं होता। इस जीवके मनमें जब तक कोई अन्य इच्छाका अस्तित्व होगा, तब तक भगवान् नहीं आएंगे।

परम पवित्र समय आया। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन मध्याह्न कालमें माता अदितिके संमुख वामन भगवान् प्रकट हुए। चारों ओर उजियारा छा गया। हृदय आनंदसे भर गया। कश्यप भी वामनका दर्शन करनेके लिए दौड़ते हुए आए।

माता-पिताको सन्मान करनेके लिए वामनने अपने चतुर्भुज स्वरूपका दर्शन कराया। माता-पिताका हृदय आनंदसे छलक रहा था। उनका मूक हृदय भगवानकी जयजयकार कर रहा था।

नारायणका चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया और वे सात वर्षके वटुक बन गए। सुंदर लंगोटी थी। मुख परसे दिव्य तेज झलक रहा था। ब्रह्मादि देव भी वहाँ पधारे। उन्होंने कश्यप-अदितिको बधाई देते हुए कहा- आपका गृहस्थाश्रम सफल हुआ, सार्थक हुआ। आज आप जगत्‌पिताके भी माता-पिता बन गए।

कश्यप-अदितिका गृहस्थाश्रम अत्यंत पवित्र था, अतः भगवान् उन्हींके घर प्रकट हुए।

जब वामनजी प्रकट हुए, तभी वे सात वर्षके थे, अतः उनकी बाललीलाका वर्णन है ही नहीं। उनको यज्ञोपवीत देनेका निश्चय किया गया।

यज्ञोपवीतकी क्रियासे ब्रह्मसंबंध होता है। मंत्रदान करता हुआ पिता पुत्रसे कहता है कि आजसे वह अपना नहीं किंतु ईश्वरका हो गया। उस दिन माताके साथ उसका अंतिम भोजन कराया जाता है। इस पवित्रक विधिके बाद पुत्रके माता-पिता बनते हैं सूर्यनारायण और गायत्रीदेवी। जनेऊ वेदविहित सेवा है। मैं नारायणका सेवक हूँ। जनेऊमें हरेक देवकी स्थापना की गई है।

आजके लोग यज्ञोपवीत संस्कार आदिमें मानते नहीं हैं। संस्कार किए बिना जीव शुद्ध नहीं हो पाता। लोग सभी संस्कार भूल गए। मात्र विवाहसंस्कार ही बाकी रह गया है, क्यों कि इसके बिना किसीसे भी रहा नहीं जाता। संस्कारका लोप होनेके कारण अधार्मिक और पापी प्रजा उत्पन्न हो रही है।

तैत्तिरीय आरण्यकमें जनेऊ बनानेकी विधि बताई गई है। उसे हाथसे ही बनाना चाहिए। सूत्रको ९६ बार लिपटाया जाता है। वेदमें कर्म और उपासना संबंधित ९६००० मंत्र हैं, उन्हें पढ़नेका अधिकार यज्ञोपवीत संस्कारमें मिलता है। वैसे तो वेदके मंत्र एक लाख हैं, किंतु बाकी ४००० मंत्र संन्यासीके लिए है। जनेऊके निर्माता हैं ब्रह्मा और उसे त्रिगुणातीत करनेवाले हैं विष्णु। इसका गठबंधन शिवजी करते हैं और अभिमंत्रित करती हैं गायत्रीदेवी। यह दिव्य तेजसे पूर्ण है। वैसे तो यह संस्कार सातवें वर्षमें देना चाहिए, किंतु ग्यारहवें वर्ष तक देनेकी अनुमति है।

जनेऊके एक एक धागेमें एक एक देवीकी प्रतिष्ठा की जाती है, अतः इसको लोहेका स्पर्श न होना चाहिए, इससे चाबी नहीं बांधनी चाहिए। आजके ब्राह्मण जनेऊसे चाबी बांधकर लटकाए फिरते हैं, जो ठीक नहीं है। ऐसा करनेसे सभी देव-देवियां जनेऊको छोड़कर चले जाते हैं।

संस्कारकी परंपरा नष्ट हो गई है, अतः प्रजामें संयम और सदाचारका अभाव हो गया है। हमारे कल्याणके हेतु ही तो प्राचीन ऋषियोंने संस्कारोंकी रचना की थी।

तो वामनजीको भी यज्ञोपवीत दिया गया। उनको अदितिने लँगोटी, धरतीने आसन, ब्रह्माने कमंडल, सरस्वतीने जपमाला तथा कुवेरने भिक्षापात्र दिया। ब्राह्मणको तीन वार संध्या करनेका आदेश है। महाप्रभुजीने भी तीन वार संध्या करते हुए जगत्के सामने यह आदर्श स्थापित किया कि वे महान् होते हुए भी तीन वार संध्या करते हैं।

प्रातःसंध्यासे रात्रिका पाप नष्ट होता है। मध्यान्हकी संध्यासे अन्नजलका दोप नष्ट होता है। त्रिकाल संध्याका वडी महिमा है। संध्या समय सूर्यका जप करते हुए जगदंवा गायत्रीमाताका ध्यान करना है। संध्यामें गायत्रीमाताका आह्वान करना है, हे माता, मेरे हृदयमें पधारिए, मेरी रक्षा कीजिए।

संध्यामें अघमर्षण करना है, ध्यान करना है। संध्या नियमित और समयसर होनी चाहिए। आकाशमें जव नक्षत्र होते है, उसी समय की जानेवाली संध्या उत्तम है। नक्षत्र न दीखते हों और सूर्यनारायणका उदय न हुआ हो, उस समय की जानेवाली संध्या मध्यम संध्या है। और सूर्योदयके वादकी संध्या अधम संध्या कही जाती है।

वृहस्पतिने वामनजीको उपदेश दिया। अव आजसे माधुकरी (भिक्षा) मांगने जाना है। इस अन्नमें मधुरता होती है। मंत्रोपदेशके साथ साथ ब्रह्मचारीका धर्म भी समझाया।

जवसे ब्रह्मचर्याश्रमकी परंपरा हमारे देशमेंसे नष्ट हुई है तवसे इस देशकी दुर्दशा हो गई है।

ब्रह्मचर्यके पालनके विना न तो कोई महान् हुआ हैं और न तो कोई होगा।

जो ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी इच्छा करता है, उसे सजीव नारीका तो क्या नारीकी काष्ठमूर्तिका भी तनसे या मनसे स्पर्श नहीं करना चाहिए।

न स्पृशेत् दारवीमपि।

यदि ब्रह्मचर्यका पालन करना है तो नारीके मुख या केशकी ओर भी दृष्टि न करो। इनमें कामका वास होता है। यह नारीकी निंदा नहीं है, कामकी निंदा है। परस्त्रीको माता समान मानो। जगत्में जितने भी महापुरुप हो गए हैं, उन सभीने परस्त्रीको माता मान लिया था। वे ब्रह्मचर्यके पालनसे महापुरुष वने थे।

लक्ष्मण चौदह वर्ष तक अपनी भाभीके साथ वनमें रहे, फिर भी उन्होंने सीताके मात्र चरण पर दृष्टि रखी थी। एक वार रामचंद्रने एक चंद्रहार दिखाते हुए उनसे पूछाः– क्या यह हार तेरी भाभीका है?

तव लक्ष्मण वोले– मैं क्या जानूं? मैंने भाभीका मुख कभी देखा ही नहीं है।

रामचंद्रने अन्य आभूषणोंके विषयमें भी वैसा ही प्रश्न किया तो लक्ष्मणने कहा :–

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुंडले।
नूपुरेत्वऽभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात्॥

मैं न तो हारको पहचानता हूँ, न कुंडलको। मैं तो मात्र उनके झांझरको पहचान सकता हूँ, जिसको मैं नित्य प्रणाम करते हुए देख पाता था।

कैसा आदर्श ब्रह्मचर्य–पालन।

कामको पराजिप करना वडा कठिन है, अतः ब्रह्मचर्यकी वडी प्रशंसा की गई है।

जब व्यास भगवान् भागवतकी रचना कर रहे थे तो वे श्लोककी रचना करते हुए वे श्लोक अपने शिष्य ऋषि जैमिनीको जांचनेके लिए देते जाते थे। तो जैमिनीने नवम स्कंधका यह श्लोक देखा :—

बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ।

भा. ९-१०-१७

इन्द्रियाँ इतनी बलवान् होती हैं कि बडे बडे विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं।

इस श्लोकको पढकर जैमिनीने सोचा कि व्यासजीसे इसमें कुछ भूल हो गई है। क्या इन्द्रियां विद्वानोंको कभी विचलित कर सकती हैं? उन्होंने व्यासजीसे कहा :– इस श्लोकमें " विद्वांसमपि कर्षति " के स्थान पर " विद्वांस नापकर्षति " लिखना चाहिए।

व्यासजीने कहा कि मैंने जो लिखा है वह ठीक ही है। इसमें कोई भूल नहीं है।

एक दिवस जैमिनी संध्या समाप्त करके जलादिको बाहर विसर्जित करने जा रहे थे तो वहां उन्होंने देखा कि एक सुंदर युवती वृक्षके नीचे वर्षासे भीग रही है। भीगे हुए वस्त्रों-से झलकते हुए सौंदर्यको देख कर जैमिनी विचलित हो गए।

जैमिनीने उस सुंदरीसे कहा :– यह कुटिया तुम्हारी ही तो है। चली आओ भीतर। आश्रममें विश्राम करो।

सुंदरी :– पुरुष कपटी होते हैं। मैं आपका विश्वास कैसे करू?

तो जैमिनी कहने लगे :– मैं तो पूर्वमीमांसाका आचार्य जैमिनी ऋषि हूं। क्या मेरा भी विश्वास नहीं करोगी? मुझ जैसे तपस्वीका भरोसा नहीं है तो फिर किसका भरोसा करोगी तुम? यह तुम्हारी ही कुटिया तो है। आश्रममें विश्राम करो।

वह सुंदरी आश्रममें आई। बदलनेके लिए कपडे दिये। जैमिनीने फिर रूप देखा तो मन और भी ललचा गया। उन्होंने उस स्त्रीसे पूछा :– तुम्हारा विवाह तो नहीं हुआ होगा? वह स्त्री अविवाहिता थी। अतः जैमिनीने विवाहका प्रस्ताव रखा।

उस युवतीने कहा :– मेरे पिताने प्रतिज्ञा की है कि जो पुरुष घोडा बन कर मेरी पुत्रीको अंबाजी माताके मंदिर दर्शन कराने ले जाएगा उसीके साथ उसका विवाह करूंगा। और मैंने भी पिताजीसे कहा है कि आपके दामादका मुंह काला कर उन्हें ले आऊंगी।

जैमिनीने सोचा, चाहे घोडा बनना पडे और मुंह काला करना पडे किंतु यह सुंदरी तो मेरी ही हो जाएगी न। वे सब कुछ करनेको तैयार हो गए।

पुरुष परस्त्रीको काम भावसे निहारे तो उसका मुंह काला हो जाता है।

जैमिनीने घोडा बन कर उस युवतीको अपने पर सवार करा लिया और यह अनोखी सवारी अंबाजीके मंदिर पर आई। उस मंदिरके बरामदेमें व्यासजी बैठे हुए थे। उन्होंने सारी बात जानकर जैमिनीसे पूछा :– उस श्लोकमें कौन-सा शब्द होना चाहिए– " कर्षति " या " नापकर्षति "?

अब जैमिनीके मन पर मानो बिजली गिर गई। उन्होंने व्यासजीसे कहा आप ही सच्चे हैं।

क्षण मात्र भी असावधान न होना। असावधान हो गए तो काम सिर पर चढ ही जाएगा।

ज्ञानी होते हुए भी जैमिनी असावधान हो गए। उस सुंदरीसे विवाहिता-अविवाहिता-की चर्चा ही क्यों कि उन्होंने? ऋषिका अवतार परोपकारके लिए होता है, अनावश्यक बातोंकी पूछपरछ करनेके लिए नहीं।

कामके कारण बडे बडे ज्ञानी भी भटक गए हैं, तो फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या?

भर्तृहरीने भी तो कहा है :-

विश्वामित्रोपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजसुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् वि ध्यस्तरेत् सागरम्॥

मात्र वृक्षके पत्ते और जल पी कर निर्वाह करनेवाले ऋषियोंको भी कामने विचलित कर दिया है। तो जीभका लालन करनेवाला और सिनेमाकी अभिनेत्रियोंकी रात-दिन पूजा करनेवाला आजका मनुष्य काम जीतनेकी बात करे तो वह निरर्थक ही है।

जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है, उसे अपने पेटमें कभी अजीर्ण नहीं होने देना चाहिए। भेलपूरी और फरसाण-भजिया खानेवाला ब्रह्मचर्यका पालन कैसे कर पाएगा?

श्रीकृष्णको दुर्बलता पसद नहीं है। नरसिंह महेताने कहा है —

हरिनो मारग छे शुरानो, नहीं कायरनुं काम जोने।

हरिका मार्ग शूरवीरोंका है, कायरोंका नहीं।

श्रुति भी कहती है:—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

सो ब्रह्मचर्यका पालन करो और बलवान् बनो।

स्त्रीका मुख या केश कभी घूर घूर कर न देखो आंख या मनमें विकार आते ही गायत्री मंत्रका जप करो। मनरूपी हाथीको सत्कर्मरूपी अंकुश ही वशमें रख सकता है।

वामनजीने जगदंबा पार्वतीके पास जाकर कहा — ॐ भगवति, भिक्षां देहि मे। पार्वतीकी दी हुई भिक्षा उन्होंने गुरुजीके सामने रख दी। गुरुजीने कहा कि भिक्षा बहुत कम है। तो वामनजी किसी बडे यजमानका नाम-पता पूछा। बृहस्पतिने आज्ञा की :— नर्मदा नदीके किनारे पर बलि राजा अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उनसे तुम्हें अवश्य अच्छी-सी भिक्षा मिलेगी। वहां जाओ।

वामनजीने उसी दिशामें प्रयाण किया। वामन लंगोटी पहने हैं। पांवमें पादुका हैं। हाथोंमें कमंडल, छत्र और दंड है। कमर पर मुंजमेखला, बगलमें मृगचर्म, शिर पर जटा, गलेमें यज्ञोपवीत और मुख पर ब्रह्मतेज है।

किसी अपरिचित व्यक्तिको अनायास ही नमन हो जाये तो समझ लो कि उस व्यक्तिमें ईश्वरका अंश है।

अपरिचित होने पर भी वामनजीको मार्गमें सभी नमस्कार कर रहे हैं। वे नर्मदातट पर यज्ञमंडपमें पहुंचे। ब्रह्मतेज छुपाया नहीं जा सकता। यज्ञमंडपमें उपस्थित ऋषि समूह सोचने लगा कि आज तक ऐसा ब्रह्मतेजस्वी कभी नहीं देखा गया। क्या साक्षात् सूर्यनारायण तो इस रूपमें नहीं आए हैं न ? यह कौन-सा ब्राह्मणकुमार होगा ?

शंकर स्वामीसे पूछा गया था कि जगतमें भाग्यशाली कौन है।

शंकर स्वामीने उत्तर दिया था—

कौपीनवंतः खलु भाग्यवंतः।

जो लंगोटी पहनता है, जितेन्द्रिय है, सदा सर्वदा प्रभु ही के साथ बातें करता है, प्रभु ही के साथ खेलता रहता है, वही सर्वाधिक भाग्यशाली है। जो धनसंपत्ति और देहके साथ खेलता रहता है वह भाग्यहीन है।

इस अपरिचित बालकके विषयमें ब्राह्मण सोच ही रहे थे कि यज्ञके प्रधानाचार्य शुक्राचार्यने वामनजीका स्वागत किया। इस महातेजस्वी बटुकका शुक्राचार्य सहित सब ऋषियोंने सत्कार किया।

ब्राह्मण ब्रह्मतेज और ज्ञानके कारण ही सम्मान पाता है। क्षत्रिय बलसे और वैश्य धनसंपत्तिसे सम्मान पाते हैं। शूद्रमें वृद्ध मानके भागी होते है। शेठ-साहुकार चाहे जितनी काली कमाई करे फिर भी उन्हें कथामें भी आगे आसन दिया जाता है। देरसे आने पर भी आगे बिठलाये जाते हैं। यह मान शेठका नहीं, लक्ष्मीका है।

चारों वर्णकी दिवाली भी शायद अलग-अलग-सी हो गयी है। ब्राह्मणोंकी दिवाली है राखीका दिन। क्षत्रियोंकी दिवाली विजयादशमी, वैश्योंकी दिवाली लक्ष्मी पूजादिन और शूद्रोंकी तो होली ही दिवाली है।

ब्राह्मणोंने उस ब्रह्मचारी बटुकका स्वागत किया, तो बलिराजा भी देखने लगे। उन्होंने सोचा कि मैंने आज तक कई ब्राह्मणोंकी सेवा की है किंतु ऐसा तो कोई देखने ही में नहीं आया। वे वामनजी महाराजको महलोंमें ले गए, सिंहासन पर बिठलाया और रानीसे पूजाका सामान तैयार करनेकी आज्ञा दी।

बलिराजाकी पत्नीका नाम था विन्ध्यावली और पुत्रीका रत्नमाला। रत्नमाला बटुकके सौंदर्यसे प्रभावित होकर सोचने लगी कि जिस माताने इसे अपना दूध पिलाया होगा वह कितनी भाग्यशालिनी और सुखी होगी। बटुकजीका स्वरूप देखकर उसके मनमें वात्सल्य भाव उमड़ पड़ा और दूध पिलानेकी इच्छा भी जागी। और आगे चल कर जब वामनजीका पराक्रम देखा तो उसके मनमें वामनजीकी हत्या करनेकी इच्छा हो आई। रत्नमाला अपने इन्हीं दो मनोभावोंको लेकर अगले जन्ममें पूतना बन कर आई कि जिसने कन्हैयाको अपना दूध पिला कर मारनेका प्रयत्न तो किया किंतु उसका अपना ही उद्धार हो गया।

वामनजी महाराजके चरणों पर विन्ध्यावली जलधारा डालने लगी, बलिराजा चरण धोने लगे और सभी ब्राह्मण पुरुषसूक्तका पाठ करने लगे। राजा चरणसेवा करते हुए कहने लगाः— आप जैसे पवित्र ब्राह्मणका चरणोदक मिलनेसे मैं पवित्र हुआ और मेरे पितरोंका भी

सद्गति मिल गई। मेरा यज्ञ सफल हो गया। आज मेरा कल्याण हो गया। मैं आपके चरणोंमें बार बार प्रणाम करता हूं। बडे पुण्यशाली माता-पिताको ही आप जैसा पुत्ररत्न प्राप्त हो सकता है। मै सोचता हूं कि मेरा सब कुछ आपको अर्पित करके मै वनवासी बनकर ईश्वर-भजनमें लीन हो जाऊं।

वामनजीने अपने मन ही मन कहा, मै सब कुछ लेनेके लिए ही तो आया हूं। उनसे राजाने कहाः— महाराज, लगता है आप कुछ मांगना चाहते हैं। जो भी चाहिए वह निःसकोच मांग लीजिए। राज्य, गाय, कन्या, धन-संपत्ति आदि जो मांगेगे, मै दूंगा। बार बार बलिराजाने यही प्रार्थना दुहराई।

शुकदेवजी वर्णन करते है, राजन्, अतिशय आनद हुआ है।

जिसके पास कुछ मागना चाहते हो, उसके पितरोंकी प्रशंसा करो। आज कल तो उसकी पत्नीकी प्रशसा करनेसे भी बहुत कुछ मिल जाता है।

वामनजी भी बलिराजाके आगे प्रशंसाके पुष्प बिखेरने लगे। आपके पितामह प्रह्लादके समान महान् भक्त न तो कोई हुआ है और न कोई होगा। उनका प्रभु प्रेम इतना तो प्रबल था कि भगवान्को स्तंभ चीर कर प्रकट होना पडा था। मैने सुना है कि आपके पिता राजा विरेचन भी बहुत उदार व्यक्ति थे। उनके पास इन्द्र ब्राह्मणका रूप लेकर आए और कहने लगे- राजन्, मेरी आयु अब समाप्त होने आई है। मेरी मृत्युसे मेरी पत्नी विधवा हो जाएगी। आपके आयुष्यका मुझे दान दीजिए। दान मांगने आए हुए ब्राह्मणको निराश कैसे किया जा सकता था? तो आपके पिताने अपने आयुष्यका ही दान कर दिया। आपके प्रपितामह भी महान वीर थे।

बलिराजाने सोचा कि यह बटुक लगता तो है सात-आठ वर्षका और बातें कर रहा है मेरे पिता, पितामह और प्रपितामहकी। उन्होंने वामनजीसे पूछाः- महाराज, क्या आपने मेरे उन पितरोंको देखा है?

वामनजीः- जी, मै तो आठ वर्षका हूं। मै उनको कैसे देख सकता हूं। मैंने तो अपने बडोंसे उनकी कथा सुनी है।

और हां राजन्, आप भी कुछ कम नहीं हैं। आपमें आपके प्रपितामह हिरण्यकशिपु-सा बल, वीरता और शक्ति है। आपमें आपके पितामह प्रह्लाद्-सी भक्ति है और पिता विरेचन-सी उदारता भी। तीनो पितरोंके गुण आपने एक साथ पाये है। आप बडे भाग्यवान् है।

अपनी और अपने पितरोंकी प्रशंसा सुन कर बलिराजाने फिर वामनजीसे कहाः- महाराज, जो भी चाहें, मांग लीजिए। मै अपना कुछ भी देनेको तैयार हू।

बलिराजाको वामनजीने वचनबद्ध कर लिया और कहने लगेः- राजन्, मै लोभी नही, सतोषी ब्राह्मण हूं। मै तो अपने पांवसे नाप कर मात्र तीन कदम जितनी भूमि चाहता हू।

बलिराजाने सोचा कि यह बालक मांगना भी तो नही जानता। ज्ञानी और पढे-लिखे तो है किंतु थोथे ही है। और कहने लगे, महाराज, आपने मात्र इतना ही क्यों मांगा। मै तीन कदम भूमि तो क्या तीन ग्राम दे सकता हूं आपको। यह जगप्रसिद्ध बात है कि पूजन आदि करके जिस ब्राह्मणको मै दान देता हू उसे अन्य किसीसे कुछ भी मागनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। मेरा दान स्वीकार करके किसी अन्यके पास आपको मागना पडे तो मेरा ही अपमान होगा।

मैंने यह तो आपको देखते ही जान लिया था कि आप संतोषी ब्राह्मण हैं। किंतु केवल तीन कदम भूमि देनेमें मुझे बडा संकोच हो रहा है। मैं जानता हूं कि आप लोभी नहीं हैं, संतोषी हैं फिर भी कुछ और मांगिए। तीन कदम भूमि देते हुए तो मुझे बडा संकोच और लज्जा हो रही है।

वामनजीने कहाः– राजन्, धन्य हैं आप! आप तो ऐसा ही कहेंगे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। राजन्, आप तो उदार हैं, किंतु मुझे भी मांगते हुए कुछ सोचना तो चाहिए न? लोभसे लोभ बढता है और संतोषसे संतोष। संसारके सभी भोगपदार्थ प्राप्त कर लेने पर भी संतोष और वैराग्यके अभावमें शांति नहीं मिलेगी। लोभ तो पापका मूल है। संग्रहवृत्तिसे ब्राह्मण दान न लें। ब्राह्मण यदि संग्रहवृत्तिसे दान लेगा तो यजमान भी पापका भागी होगा। अतिसंग्रह विग्रहको जन्म देता है। मुझे अधिककी आवश्यकता नहीं है।

भागवत कहता है कि अपनी आयके पांचवे हिस्सेका दान देना चाहिए। मनु महाराजने दशमांशका दान करनेको कहा है। घरमें आनेवाला सारा धन शुद्ध नहीं होता। दानसे उसकी शुद्धि होती है।

भिखारी (भिखमंगा) मात्र भीख मांगनेके लिए नहीं, उपदेश देनेके लिए भी आता है। "भिक्षुकाः नैव भिक्षन्ति बोधयन्ति गृहे गृहे।" कौन–सा उपदेश है वह? मैंने गत जन्ममें किसीको कुछ भी नहीं दिया था, इसीलिए मेरी ऐसी दशा हुई है। तुम नहीं दोगे तो तुम्हारी भी मेरी जैसी ही दशा होगी।

राजन्, मैं किसी औरके पास दान लेने नहीं गया। मैं तो संतोषी ब्राह्मण हूं। तुम भाग्यशाली हो कि मैं तुम्हारे द्वार पर आया हूं।

आज मैं किसी सेठके बरामदेमें पूजा कर रहा था, तो उसने मुझे वहांसे भगा दिया। मेरी संध्या–पूजा अपूर्ण ही रह गई। कुछ लोग बरामदेमें बैठे हुए लोगोंको भगा देते हैं। उठो यहांसे। मेरा है यह बरामदे। मूर्ख है वह। क्या वह बरामदा अपने साथ ले जाएगा?

इस संसारमें अपना क्या है और क्या नहीं है, यह यदि मनुष्य जान ले तो वह मनुष्य सुखी हो जाएगा।

आंगनमें आए हुए किसी भी आदमीसे पूछना चाहिए कि क्या पानी पीओगे? हां ठग और धूर्तसे सचेत रहना चाहिए। ऐसे लोग दिनमें घर देख कर रात्रिमें चोरी करनेके लिए घुस जाते हैं।

वामन बोले–जब मेरी संध्या अपूर्ण ही रह गई तो मैंने सोचा कि मेरी भी अपनी थोडी–सी भूमि हो तो मैं संध्या–पूजा तो कर सकूंगा। तुम्हें तो इसका भी पुण्य तो मिलेगा ही। मैं ब्रह्मचारी हूं। मात्र तीन कदमभर भूमिका मुझे दान दे दो।

बलिराजाको आनंद हुआ। चलो, मेरी भूमि भी इस पवित्र ब्राह्मणकी संध्या–पूजासे पवित्र हो जाएगी। कैसा विरागी है यह ब्राह्मण। मैं अपना सर्वस्व देनेको तैयार हूं फिर भी नहीं लेता। वामनजीसे वे कहने लगेः– महाराज, जैसी आपकी इच्छा। आपकी इच्छानुसार तीन कदम भूमि मैं आज आपको देता हूं। किंतु भविष्यमें भी आपको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता होने पर आप मुझसे ही मांग लें। आपतो संध्या करनेका अवसर आप मुझे देते रहें।

वामनजीने कहाः– भविष्यकी बात भविष्यमें। आज तो मुझे मात्र तीन कदम भर भूमि दीजिए।

बलिराजा तीन कदम भर भूमिका दान करनेका सकल्प करनेको तैयार हो गए। किंतु यज्ञमंडपके आचार्य शुक्राचार्य जान गए कि यह कोई सामान्य ब्राह्मण नहीं है। उन्होंने बलिराजासे कहाः– शीघ्रता न करो। दवोंके कार्यकी सिद्धिके हेतु साक्षात् नारायण ही आए हैं वामन बनकर। राजन् तुम्हारा सारा साम्राज्य इनके दो कदमोंके नापमें समा जाएगा। तीसरा कदम रखनेके लिए भूमि बचेगी ही नहीं, सो तुम्हें पातालमें डूबा देंगे। जरा सोचकर सकल्प करना। यह वामन तो तुम्हारा सर्वस्व छीन लेगा।

राजन्, दान तो दो किंतु विवेकपूर्वक। इस बालकके कदम कैसे होंगे वह तुम नहीं जानते। दान ऐसा न दो कि तुम्हीं दरिद्र हो जाओ और घरवाले दुःखी हो जायें।

साधु–संतोंको सद्भावसे, ईश्वरभावसे दान करो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। पवित्र सदाचारी ब्राह्मण और सती नारी ही इस धरतीका आधार है।

बलिराजाने पूछाः– दान न दूं तो?

शुक्राचार्यः– दान अवश्य दो। किंतु अपने कदमोंसे नाप कर भूमि दो। यह वामन तो विराट् रूप धारण करेगा। देवोंके हितार्थ स्वय विष्णु ही वामनका रूप लेकर आए हैं।

संकल्पानुसार दान न देनेवाला मनुष्य नरकमें जाता है। भविष्यका विचार करके सोच–समझके दान करो। सर्वस्वका नहीं, पंचमांशका दान करो।

कलियुगकी संतान धन–संपत्तिकी सेवा करती है, माता–पिताकी नहीं। धन होगा तो तुम्हारे रिस्तेदार तुम्हारी सेवा करेंगे।

वृद्धावस्थाके लिए कुछ न कुछका संग्रह अवश्य करो कि जिससे संतानसे मांगनेका प्रसंग ही न आए।

एक बूढा बीमार हो गया। उसने जान लिया कि उसकी मृत्यु निकट है। उसने अपनी सारी संपत्ति अपने तीनों पुत्रोंमें बांट दी। बूढेका दुर्भाग्य तो देखो। मरनेके बदले वह तो भला चंगा हो गया। किंतु अब तो उसके पास कुछ भी न था सो तीनों पुत्र उसे धुत्कारने लगे। बूढा दुःखी हो गया। किसी पुत्रके पास एक बार कुछ मांगा तो वह तो आना–दो आना देनेकी बात करने लगा। बूढेका ही सब कुछ था फिर भी आज उसका ही परिवार उसकी उपेक्षा करने लगा।

एक बार इस बूढेने अपने किसी मित्रके आगे रोना रोया। तो उस मित्रने उससे कहाः– मेरे पास एक संदूक है। उसमें कुछ पत्थर भर कर ताला लगा कर तुम्हें भेज दूंगा। तुम उस संदूकको दिखा कर पुत्रोंसे कहना कि मैं अब इस थोडी–सी बची–खुची पूंजीको लेकर हरद्वारकी यात्रा करने जा रहा हूं। फिर देखो मजा।

संदूक पाते ही उस बूढेने पुत्रोंसे यात्रा करने जानेकी बात कही। अब तो मैं बूढा हो चला हूं। अतः मैं चाहता हू कि इस पूंजीसे यात्रा करूं, साधुसंतोको भोजन कराऊं और तीर्थस्थानोंमें कुछ दिन निवास करू।

किसी पुत्रने पूछाः– कहां जाएंगे आप?

बूढाः– हरिद्वार।

दूसरे पुत्रने पूछाः– यह संदूक आज तक कहां था? क्या है इसमें?

बूढाः– यह संदूक अपने एक मित्रके पास मैंने रख छोडा था। होंगे दस-पंद्रह हजार रुपये इसमें।

संदूक था भी वजनदार। पुत्रोंने मान लिया कि अब भी पिताके पास पूंजी है। बस, फिर तो क्या था? सभी पुत्र पितासे अपने अपने घर रहनेका आग्रह करने लगे। मेरे साथ रहो, मेरे साथ रहो। आप अकेले ही अकेले तीर्थस्थानोंमें रहें यह हमें शोभा नहीं देता! संसार हमें क्या कहेगा? आप मत जाइए। हम आपकी पूरी सेवा करेंगे।

संसार स्वार्थी है फिर भी जीव अविवेकी ही रह गया है। जीव ऐसा दुष्ट होता हो उसका उसे दुःख नहीं है। उसे तो बुरा दीखे इसका ही दुःख है। वह करता तो है बुरा किंतु इच्छा करता है कि अच्छा ही दिखाई दे।

उस बूढेकी सारा परिवार सेवा करने लगा। मित्रने कहा था कि मरते दम तक उस संदूककी चाबी किसीको न देना। आखिर एक दिन उसकी मृत्यु हो गई।

पुत्रोंने सोचा कि पिताजी बहुत कुछ छोड गए हैं हमारे लिए।

लोगोंने भी कहाः– आपके पिताजी तीन पीढियोंको हंसती-खेलती देख कर सुख-संतोषसे गए हैं अतः बिना संकोच उत्तरक्रिया की जाए तो अच्छा होगा।

पुत्रोंने दिल खोल उत्तरक्रिया की। उन्होंने सोचा था कि सारी भीडके चले जाने पर पेटी खोलेंगे। अंतमें खोली गई तो उसमेंसे तो मात्र पत्थर मिले।

जगत्‌में चारों ओर स्वार्थका ही साम्राज्य फैला हुआ है।

सुर नर मुनि सबकी यह रीति।
स्वार्थ लागी कर हीं सब प्रीति ॥

बलिराजासे शुक्राचार्यने कहाः– वामनके तीन कदमसे नाप कर भूमिका दान करोगे तो तुम्हारा सर्वस्व चला जाएगा, अतः तुम्हें सावधान कर रहा हूं।

बलिराजा बोलेः– मैंने तो वचन दे दिया है। अब मना करूं तो असत्य बोलनेका पाप होगा।

शुक्राचार्यने कहाः– विपत्तिके समयका असत्य भाषण क्षम्य है। सत्य बोलना ही धर्म है। असत्य भाषण धर्म है ऐसा कहा नहीं गया है। किंतु ऐसे समयमें क्षम्य है और शायद स्तुत्य भी।

इन चार प्रसंगों पर असत्य कहना क्षम्य माना गया हैः– (१) किसीके विवाहके प्रसंग पर। (२) स्त्रियोंसे (पत्नीसे) बात कहते हुए। महाभारतमें भी कहा है– 'न तु गुप्तं भाषयति।' स्त्रियोंको शाप ही है कि वे कोई भी बात गुप्त नहीं रख सकतीं। (३) जब प्राण संकटमें पड जाए। सत्य बोलनेसे किसीके प्राणकी हत्या होती हो तो असत्य बोला जा सकता है। (४) गाय और साधु, संत, तपस्वी ब्राह्मणोंकी रक्षाके हेतु।

राजन्, तुम्हारे सर पर प्राणसंकट आ खडा है। अपने वचनसे मुकर जाओ। वामन-जीसे मना कर दो। ऐसे समय वचनभंगमें कोई दोष नहीं होता।

बलिराजाने कहाः– गुरुजी, आपने उपदेश तो बडा अच्छा दिया। किंतु मैं तो वैष्णव हूं। पहले मैं मानता था कि कोई ब्राह्मण बालक मुझसे भिक्षा मांगने आया है। अब मैंने जाना कि साक्षात् विष्णु भगवान् मुझसे भिक्षा मांगने आए हैं। तो फिर मैं नारायणको क्यों न अपना सर्वस्व अर्पित कर दूं? मैं वचनका भंग नहीं करूंगा।

हम वैष्णव तो सेवा करते समय ठाकुरजीके चरणोंमें सब कुछ रख देते हैं। आपने बताया कि ये साक्षात् विष्णु हैं। बडी अच्छी बात है यह। मेरे इष्ट देव विष्णु ही हैं। ये मेरे घर आज बाल स्वरूपमें दान मांगने आए हैं तो मेरा सर्वस्व इनके चरणोंमें न्योछावर कर दूंगा। दाताकी महिमा न्यारी है, लेनेवालेकी नहीं। जगत्में मेरी ही प्रतिष्ठा होगी।

शुक्राचार्य समझाने लगे – तीसरा चरण रखनेके लिए भूमि बचेगी ही नहीं अतः वे तुम्हारे सिर पर पांव रख कर तुम्हें नरकमें भेज देंगे।

बलिराजा बोले– मुझे नरकका कोई भय नहीं है। पाप करके नरकमें जाना अच्छा नहीं है, किंतु परमात्माको सर्वस्व अर्पित करके नरकमें जाना भी अच्छा ही है।

संपत्तिका सन्मार्गसे उपयोग होने पर चाहे जितने विघ्न क्यों न उठाने पडें, शांति ही मिलती है।

इस लोकमें और परलोकमें सुखी होना है तो धनका उपयोग विवेकसे करो। धनका सदुपयोग न होगा तो मृत्युपर्यंत शांति नहीं मिलेगी।

बलिराजा बोले– मैं प्रह्लादका वंशज हूं। मैं वैष्णव हूं। मैं गलेमें कंठी धारण करता हूं। मैं ठाकोरजीको सर्वस्व अर्पित करता हूं। आज मैं सर्वस्व दान करूंगा। दान देनेके बाद नरकमें भी जाना पडे तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं पापकर्मसे नरकमें नहीं जा रहा, चाहे दान करनेसे जाना पडे। मैं तो भगवान्का हो जाऊंगा। भगवान्का बन जानेके बाद नरकवास करनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। एक बार ब्रह्मसंबंध स्थापित होनेके बाद तो मेरे प्रभुको भी मेरे साथ नरकवासी बनना पडेगा।

ब्राह्मणको जब दान दिया जाता है, तब उसके शरीरमें विष्णुका आवाहन किया जाता है। यहां तो स्वयं महाविष्णु अपने आप ही आए हैं। गुरुजी, मैं ठाकुरजीको सर्वस्वका दान करूंगा। जीव विश्वासघात कर सकता है! किंतु आपत्तिके समय तो भगवान् दौडते हुए आते हैं। मैं प्रभुका हो जाऊंगा और वे मेरे। फिर मैं जहां जाऊंगा, वे भी साथ साथ आएंगे, नरकमें भी आएंगे।

तुकारामने कहा हैः– "चाहे गर्भवासी होना पडे, चाहे नरकवासी, किंतु यदि मेरे विठ्ठल मेरे साथ हैं, तो कहीं भी जानेको तैयार हूं।" तुकाराम गर्भवास मांगते हैं क्यों कि उन्हें विश्वास है · तुका म्हणे गर्भवासी घालावी आम्हावी। मैं जहां भी जाऊंगा, विठ्ठलनाथ साथ साथ आएंगे।

गुरुजी, हरेक सत्कर्मके समय आप संकल्प कराते हैः—

अनेन कर्मणा भगवान् परमेश्वरः प्रियताम् न मम।

आप सारा कर्म कृष्णार्पण कराते हैं। जब आज श्रीकृष्ण स्वयं दान मांगने आए हैं, तो मैं इन्कार कैसे करूं? आप संकल्प कराए। कृपया दानका संकल्प कराए। अपने भगवान्को मैं सर्वस्व अर्पित करूंगा।

शुक्राचार्यः– मैं संकल्प नहीं कराऊंगा।

वामनजीः– राजन्, आपके पुरोहित इन्कार करते हैं तो मैं संकल्प कराऊंगा। मैं ब्राह्मण-पुत्र हूं। संकल्प कराना मैं जानता हूं।

बलिराजाने अनुमति दी तो वामनजी दानका संकल्प कराने लगे। उन्होंने जलपात्रसे हाथमें जल रखनेको कहा। शुक्राचार्यसे यह देखा न गया। उन्होंने सूक्ष्म देह धारण की और जलपात्रकी नालीके छिन्द्रमें बैठ कर जलका अवरोध किया। उनके वहां बैठ जानेसे जल बाहर नहीं आ सका।

शुक्राचार्यका प्रपंच वामनजीकी समझमें आ गया तो उन्होंने दर्भका एक तृण लेकर जलपात्रकी नालीमें डाला। ऐसा करनेसे शुक्राचार्यकी एक आंख फूट गई।

जब भगवान् कृपा करते हैं तो एक आंख फोड देते हैं। वे कहते हैं कि मेरा दर्शन कर लेनेके बाद जगत्को एक ही आंखसे देखो। जगतको एक ही दृष्टिसे देखो। अनेकमें एक व्याप्त है ऐसी दृष्टिसे देखो। यही समभाव है। एक ही ईश्वर सभीमें है, ऐसा देखना ही समता है। एक ही ईश्वर अनेक रूपोंमें क्रीडा कर रहे हैं ऐसे भावसे देखना ही समानभाव है। दो आंखोंसे देखना विषमता है। एक ही आंखसे, समदृष्टिसे देखो। कुछ भी कपट भाव मनमें न रखो।

भगवान् स्वयं मांगने आए फिर भी शुक्राचार्यके मनसे द्वैतभाव नहीं गया। यह मेरा यजमान है वह भिक्षुक है ऐसा द्वैतभाव उनके मनमें था। उनकी एक आंख फोड दी गई। अर्थात् अद्वैत दृष्टिसे ही देखना है। योगी एक ही दृष्टिसे जगत्को देखते हैं।

परमात्मा सोचते हैं कि दोनों आंखें फूट गईं तो मेरे दर्शन कैसे कर पायगा।

परमात्माके दर्शन होनेके पश्चात् एक ही दृष्टिसे सभी कुछ निहारो। दो आंखोंसे, दो दृष्टियोंसे देखने पर विषमता होगी।

शुक्राचार्य समझ गए कि अधिक बाधा करने पर मेरी दूसरी आंख भी फोड दी जाएगी। और वे वहांसे हट गए।

आंखके विकृत होने पर नाम भी बिगडता है, कलंकित होता है। रावणकी आंख-दृष्टि बिगडी, तभी तो उसका नाम भी बिगड गया।

परमात्मा एक ही आंख फोड देते हैं। रामायणमें भी एक प्रसंग है। रामचंद्रने जयंतकी एक आंख फोड दी थी।

भगवान् कहते हैं कि एक ही दृष्टिसे जगत्को देखो। अपना-पराया भाव छोडो। सभीमें भगवानका अंश है, ऐसा मानो। एक दृष्टिसे देखना समता है, दो आंखोंसे देखना विषमता है।

गीताजीमें कहा गया है:– 'समत्वं योग उच्यते'। सबके प्रति समता रखना ही योग है।

संकल्प पूर्ण होते ही वामनजीका स्वरूप विराट् हो गया।

भगवानने जगत्को आवृत कर लिया। सभी स्थानोंमें उनका ही स्वरूप दीखने लगा। जगत् बाहर (ऊपर) दशांगुल है। दशांगुलका अर्थ शंकराचार्यने किया है कि दस इन्द्रियोंसे प्रभुका वर्णन किया जाता है। परमात्मा अवर्णनीय हैं। वेद भी परमात्माका प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं, वे निषेधात्मक शैलीसे नेति नेति कहते हैं। ईश्वरको जाननेवाला भी उनका साकल्य वर्णन नहीं कर पाता। भगवान अवर्णनीय हैं, अनिर्वचनीय हैं। वे अपनी कृपासे प्रकट हुआ करते हैं तभी उन्हें जाना जा सकता है।

प्रभुके एक ही चरणमें सारी पृथ्वी समा गई। दूसरे चरणने ब्रह्मलोकको व्याप्त कर लिया। तीसरे चरणके लिए स्थान ही न बचा। उस समय सारे दैत्य युद्ध करनेके लिए तैयार हो गए। हमारे स्वामीको छला जा रहा है। मारो, मारो। तो बलिराजाने उन्हें समझाया कि यह समय प्रतिकूल है। शांत रहो नहीं तो तुम्हीं मारे जाओगे।

वामनजी बोलेः– राजन्, तुमने संकल्प किया है कि तीन चरण जितनी भूमि दूंगा। अब मैं तीसरा चरण रखूं तो किधर रखूं। संकल्पानुसार दान न देनेवाला मनुष्य नरकवासी होता है। तुम मुझसे छलना कर रहे हो।

जरा सोचो तो। इस प्रसंगमें कौन किसके साथ छलना कर रहा है? भगवान् दान लेने आए थे, तब सात वर्षके बटुक थे। किंतु दानका संकल्प हो जाने पर विराट् बन गए।

गणेशपुराणमें बलिराजाने भगवान्से पूछा था कि वह निष्पाप है फिर भी उसके साथ ऐसा छल क्यों किया गया?

बलिराजा निष्पाप था सो भगवान्ने उसके साथ युद्ध नहीं किया।

ईश्वर निष्पाप हैं। वे किसीको भी नहीं मारते। मनुष्यका पाप ही उसे मारता है।

आपने कपट किया। मुझे पातालमें उतार दिया। क्या यह योग्य है? आप ही निर्णय करें।

वामनजीने उत्तर दियाः– तुम पूर्ण निष्पापी नहीं हो। यज्ञके आरंभमें गणपतिपूजाकी आज्ञा की गई तो तुमने इन्कार कर दिया था। मैं विष्णुकी पूजा करूंगा। गणपति भी तो विष्णु हैं। किंतु तुम न माने। यह तुम्हारी भेददृष्टि थी।

जब तक अनन्य भक्ति सिद्ध नहीं हो पाई है, तब तक अन्य देवोंमें भी अपने इष्ट देवका अंश मानकर उन्हें वंदन करो और इष्ट देवसे अनन्य भक्ति करो।

तुमने शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन किया। तुमने गणपतिकी पूजा तो की किंतु पूज्यभावसे नहीं की। गणपतिने मुझसे प्रार्थना की कि मैं तुम्हारे यज्ञमें बाधा डालूं। अतः मैं यहां आया हूं।

गणपति महाराज विघ्नहर्ता भी है और विघ्नकर्ता भी।

अब मैं तीसरा चरण कहां रखूं?

भगवान्के विराट् स्वरूपको देख कर बलिराजा भयभीत हो गए। उस समय सत्त्वगुणस्वरूपा विंध्यावली कहने लगीः– यह सब तो तुम्हारी क्रियाभूमि है। इस शरीर पर भी जब जीवका अधिकार नहीं है तो संपत्ति और संतति पर तो कैसे हो सकता है? शरीर मिट्टीसे ही बना हुआ है। जीव व्यर्थ ही ऐसा मान बैठा है कि शरीर, संपत्ति आदि मेरा अपना है। वास्तवमें ऐसा नहीं है।

गीताका आरंभ 'धर्म' शब्दसे किया गया है। गीताका प्रथम शब्द है 'धर्मक्षेत्रे'। गीताकी समाप्ति 'मम' शब्दसे की गई है। गीताका अंतिम शब्द है 'मम'। इन दो शब्दोंके मध्यमें समायी हुई है सारी गीता। 'मम' का अर्थ है मेरा। 'मम धर्मः' मेरा धर्म। धर्म अर्थात् सत्कर्म। मेरे हाथोंसे जो भी सत्कर्म हो पाए, वही और उतना ही मेरा है।

मात्र सत्कर्म ही तुम्हारा है, शरीर नहीं। जितना सत्कर्म जीवने किया होगा उतना ही साथ जाएगा जितना सत्कर्म करोगे उतना ही तुम्हारा होगा।

धृतराष्ट्रने कहा था– 'मामकाः'। ये मेरे पुत्र हैं। इसी कारणसे भगवान्ने उसके पुत्रोंको मारा था। धृतराष्ट्रने कहा था– 'मामकाः पांडवाः'।

अर्जुनने भगवान्से कहा था– 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'। मैं आपका हूं और आपकी शरणमें आया हूं। तो भगवान्को उसे अपनाना पडा और उसके रथको चलाना भी पडा।

मनुष्य यह नहीं जानता है कि उसका अपना क्या है और क्या नहीं है। और फलतः वादविवाद और संघर्ष होता रहता है। यदि वह यह समझ पाए कि वास्तवमें उसका क्या है तो सारे टंटेफसाद मिट जायंगे। द्रव्यके सिवाय भी कोई अन्य सुख है या नहीं और आत्मानंद जैसी भी कोई वस्तु है, यह मनुष्य जानता ही नहीं है।

अपने हाथोंसे किया हुआ सत्कर्म ही अपना है। यह जीव नहीं, प्रभु ही स्वामी हैं। जीव तो मात्र मुनीम है। इस शरीर पर जब जीवकी सत्ता नहीं है तो और किसी वस्तु पर तो कैसे हो सकती है? यमराजकी आज्ञा होते ही शरीरका त्याग करना पडता है। जगत्के कानून वहां नहीं चल सकते। यह कभी मत भूलो कि तन और मनके स्वामी मात्र परमात्मा ही हैं। किसी भी वस्तु पर जीवका अधिकार नहीं है और स्वामी परमात्मा हैं फिर भी जीव मेरा मेरा करता है। जो मेरा मेरा करता है उसे भगवान् मारते हैं। जो तेरा तेरा कहता है उसे भगवान् तारते हैं।

विंध्यावलीने कहाः– हे प्रभु, यह तो आपकी ही लीला है। आपको कोई क्या दान देगा? मेरे पतिने अभिमानवश दान देना चाहा और दिया। आपको कोई कुछ नहीं दे सकता। सर्वस्वके आप ही स्वामी हैं। इसी कारणसे वैष्णव संप्रदायी दानके बदले भेंट शब्दका प्रयोग करते हैं। जो ईश्वरका है वही उन्हें समर्पित करना है।

प्रभु, मेरे पतिके कथनमें गडबडी हो गई है।

बलिमें जो सूक्ष्म अभिमान अब तक रह गया था कि मैंने दान दिया, इस अभिमानको दूर करनेके हेतुसे विंध्यावलीने अपने पतिसे कहाः– ठाकुरजीको प्रणाम कीजिए भगवान्को कौन क्या दे सकता है? उन्होंने जो दिया था वही उन्हें देना है। यह शरीर बच गया है जो मिट्टी ही है। भगवान्से कहिए कि वे अपना तीसरा चरण आपके मस्तक पर ही रखें।

मस्तक बुद्धिप्रधान है। उसमें कामका वास है। मस्तक पर भगवान्का चरण आने पर उस बुद्धिगत कामका नाश होता है। जो तन, मन, धन भगवान्को अर्पित करता है, उसीके मस्तक पर चरण रखनेकी कृपा भगवान् करते हैं। परमात्माका हाथ या चरण मस्तक पर आनेसे मस्तकस्थित सूक्ष्म कामका नाश होता है।

गोपियां भी तो कहती हैं:—

शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।

गोपियां गोपगीतामें कामना करती हैं, भगवान्से कि उनके मस्तक पर उनका करकमल फिरे। गोपी कौन है?

गोभिः = इन्द्रियैः भक्तिरसं पिबति सा गोपी ।

प्रत्येक इन्द्रियसे जो भगवत् रसका पान करे वही गोपी है ।

प्रभुसे प्रार्थना करोः– कि अपने चरण मेरे मस्तक पर रखिए ।

बलिराजाने भगवान्‌से कहाः– 'पदं तृतीय शिर्षिण मे निजम्' । मेरे मस्तक पर ही आप अपना तीसरा चरण रखिए ।

मस्तकमें बुद्धि होती है और बुद्धिमें सूक्ष्म रूपसे काम समाया होता है । उसके नाश करनेके हेतु ही अपने मस्तक पर चरण रखनेकी प्रार्थना की । ऐसा होने पर सकाम बुद्धि नष्ट होती है ।

जीव और ईश्वरके मिलनमें बाधक, अवरोधक काम ही है ।

मैं ठीक तरहसे कह न सका । मुझे क्षमा करें । मेरा तो कुछ भी नहीं है । आपका ही जो है वह आपको दे रहा हूं । अपराध क्षमा करें । सचमुच ही आप हम असुरोंके भी परोक्ष गुरु है, क्योंकि हमारी बडप्पनकी दीवार तोड कर, आपने हमारी आंखे खोल दी हैं ।

इतनेमें बलिराजाके पितामह प्रह्लादजीका वहां आगमन हुआ । वे भगवान्‌से कहने लगेः– आपने मेरे इस पौत्रको दिया हुआ इन्द्रपद छीन लिया और लक्ष्मी विहीन भी कर दिया। मैं मानता हूं कि ऐसा करके आपने उस पर बडा अनुग्रह किया है ।

दाताको कभी अभिमानी नही बनना चाहिए। जो वंदन करता है वह प्रभुको भी बंधनमें रख सकता है ।

शरीरका अर्पण अर्थात् मेरापन, अहंकार, अभिमानका अर्पण । यदि दाता दीन नहीं बनेगा तो उसका दान भी सफल नही होगा ।

बलिराजाके हृदयमें जब दैन्य आया तो परमात्माका हृदय पिघल गया । उन्होंने बलिराजासे कहा– तुमने मुझे सर्वस्वका दान दिया सो मैं तुम्हारा ऋणी हो गया ।

नम्रता, दैन्यके आने पर परमात्मा ऋणी हुए ।

मैंने इन्द्र आदिको स्वर्गका राज्य दिया है, किंतु तुम्हे पातालका राज्य देता हूं। आजसे तुम्हार प्रत्येक द्वार पर मैं चौकी करूंगा ।

बलिराजाके कानोंमें और आखोंमें ईश्वर समा गए। बलिराजाने कहाः– स्वर्गके राज्यकी अपेक्षा यह सुतल पातालका राज्य अधिक अच्छा है । यहां भगवान्‌का सतत सान्निध्य है ।

इस बलिराजाकी कथाका कुछ थोडा–सा रहस्य भी है । बलि जीवात्मा है और वामन परमात्मा । बलिराजाके गुरू हैं शुक्राचार्य । इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति शुक्रकी सेवा वीर्य और ब्रह्मचर्यकी रक्षा करता है और जो सयमी है उसे कोई भी मार नहीं सकता ।

बलिराजाको कोई मार नहीं सकता । कंस आदिको तो मारा था । किंतु वामन भगवान्‌ने बलिको नहीं मारा । बलि निष्पाप है, शुक्राचार्यकी सेवा करता है, सदाचारी है ।

भक्त शुक्रकी सेवा करके जब बलि बनता है तभी भगवान् आंगनमें पधारते हैं । तुम बलि बनोगे तभी भगवान् तुम्हारे भी आंगनमें आएंगे । बलि बलवान् है । बलवान् ही भगवान्‌के मार्ग पर चल सकता है, गति कर सकता है ।

किंतु बलवान् कौन है ? जो अंदरूनी शत्रुओंको—काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सरको मारता है, वही बलवान् है।

जीवात्मा बलि जब बलवान बनता है, तो उसके द्वार पर भगवान् आ खड़े हो जाते हैं। शारीरिक, बौद्धिक और ज्ञानबलकी अपेक्षा प्रेमबल अधिक श्रेष्ठ है। प्रेमबलके सामने सभी अन्य बल गौण हैं। बलि वही है जो एक प्रभुके साथ ही प्रेम करता है। सभी बलोंकी अपेक्षा प्रेमबल श्रेष्ठ होनेके कारण तुम परमात्माके साथ प्रेम ही करो। द्रव्य बल या ज्ञानबलसे प्रभुको जीता नहीं जा सकता। प्रेमबलसे परमात्माको जीता जा सकता है।

यदि परमात्माके साथ प्रेम करना है तो जगतके पदार्थोंके प्रति प्रेम को छोड़ना होगा। परमात्माके साथ तभी प्रेम हो सकता है कि जब जीव जगतके पदार्थोंका प्रेम छोड़ता है। परमात्माके साथ प्रेम करोगे और संयम बढ़ाओगे तभी तुम बलि बन पाओगे। तभी वामन बन कर भगवान् तुम्हारे यहां आएंगे।

भगवान्‌को मांगते हुए संकोच हो रहा था, अतः वामन बनकर आए थे। और प्रेम-भाव बढ़ाए तो भगवान् बटुक बन कर, निर्बल-से बनकर आंगनमें आते हैं।

कोई एक स्त्री कथा सुनने के लिए चली। मार्गमें उसका बालक रोने लगा। माताने उसे कुछ खिलौने दिये, फिर भी वह रोता ही रहा। वह माताका आंचल खींचने लगा और कथामें जानेसे रोकने लगा। बालकके प्रेममें माता दुर्बल हो गई अतः वह स्त्री कथामें नहीं गई। वही बालक युवक बना, विवाहित भी हो गया और माताका प्रेम भी भूल गया। और माताका प्रेम भी समयके साथ साथ कुछ कम-सा हो गया। अब युवक यदि माताको कथामें जानेसे रोकता तो माता नहीं मानती, वह कहती कि अब तुम्हें मुझ पर वह प्रेम नहीं है। युवक जब बालक था, तो उस पर माताका पूरा पूरा प्रेम था।

तुम प्रेमबल बढ़ाओगे, और बलि बनोगे तो परमात्मा तुम्हारे आंगनमें पधारेंगे।

जो सदाचारपूर्ण और संयमित जीवन जीता है, उसके घर ही भगवान बिना मांगे आते हैं।

परमात्मा जब द्वार पर पधारते हैं, तो तीन वस्तुएं मांगते हैं। वे तीन कदम भर पृथ्वी मांगते हैं, अर्थात् वे जीवमात्रसे तन, मन और धन मांगते हैं। इन तीनोंका भगवानको दान करना चाहिए। तनसे सेवा करने पर देहाभिमान नष्ट होता जाएगा। मनसे सेवा करनेसे अहंकार घटता जाता है। धनसे सेवा करने पर धनकी माया-ममता-मोह नष्ट होने लगेगा। मनसे सेवा करनेसे श्रम नहीं होता। तन, मन, धन भगवान्‌को देने पर ही रामचरणोंमें स्थान मिलता है, जीव और ब्रह्मका मिलन होता है। अतः इन तीनोंसे भगवानकी सेवा करो।

सभी वस्तुएं भगवान् ही की हैं और उन्हींको अर्पण करनी है। उन्हींका दिया हुआ उन्हें देना है।

त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।

जो व्यक्ति बलिकी भांति तन, मन, धन भगवान्‌को अर्पित करता है, भगवान् उसके द्वारपाल बनते हैं। ऐसे भक्तके शरीरकी प्रत्येक इन्द्रियके द्वार पर भगवान नारायण विराजते हैं। उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। ये इन्द्रियां शरीरके द्वार हैं। इन सबके द्वार पर रामका पहरा होगा, तो काम अंदर नहीं आ सकेगा।

*

जो व्यक्ति अपना तन, मन, धन परमात्माको अर्पण कर देता है, उसके शरीर और इन्द्रियोंकी वे रक्षा करते हैं। तन, मन और धनसे सेवा करने पर भगवान् तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रियों पर चौकी करेंगे। ऐसे व्यक्तिके कानोंमें, आंखोंमें हृदयमें कन्हैयाका वास होगा।

तीन चरण पृथ्वीका एक और भी अर्थ है: सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंको भगवान्को अर्पण कर दो। शरीरसे ईश्वरसेवा करनेसे तमोगुण घटता जाएगा। ईश्वरसेवामें धनका उपयोग करनेसे रजोगुण कम होगा। तन और धन दोगे किंतु मन नहीं दोगे, तो ईश्वर प्रसन्न नहीं होंगे। तन और धनसे तो सेवा की जाए किंतु मनसे न की जाए, तो प्रभुसेवामें आनंद नहीं आएगा। ईश्वरके साथ मनसे संबध जोडना है। मनुष्य अपना सर्वस्व ईश्वरको नहीं देता है, कुछ अपने पास रख छोडता है अतः प्रभु प्रसन्न नहीं होते।

सत्त्वगुणके क्षयके हेतु मन भी ईश्वरको अर्पण करना है। मनको उनकी सेवामें लगाए रखना है। मन विषयोंमें और तन ठाकुरजीके पास होगा, तो काम नहीं बनेगा। सेवा करते हुए आंखोंमें आंसू आ जाए, तो मान लेना कि ठाकुरजीने कृपा की है। सेवा करनेसे थकावट दूर होती है। ईश्वरके साथ संबंध हो जाये, तो थकावट दूर होती है। ज्ञानी व्यक्ति ईश्वरके साथ शरीरसे नहीं, मनसे संबध जोडता है।

समर्पणकर्ताको अपने आपको भी समर्पण करना चाहिए।

दान देनेके बाद बलिराजाने भगवान्को नमन नहीं किया, सो वे अप्रसन्न रहे। बलिके मनमें सूक्ष्म अभिमान था कि मैंने बहुत कुछ दिया है। अर्पण करके भी उसके मनमें दीनता, नम्रता नहीं आई।

सब कुछ विधिपूर्वक करके भी मानो कि मैंने कुछ भी नहीं किया है।

भगवान्से कहो—

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।

मैं भक्तिरहित, क्रियारहित, मंत्ररहित हूं। मेरी कुछ क्षति हो तो क्षमा करना। और मेरे कर्मोंको परिपूर्ण मान लेना।

सत्कर्म करनेके बाद यदि दैन्य न आए तो सत्कर्म फलता नहीं है। कर्म नहीं किंतु मैंने कर्म किया है, ऐसा अहंकार बाधक है। मैं कुछ करता हूं, मैं ज्ञानी हूं, ऐसा अहंकार होने पर प्रभु उपेक्षा करते हैं।

हृदयसे नमन करोगे तो भगवान्को प्यारे होगे।

बलिके मनमें दैन्य आया तो सेव्यको सेवक बनना पडा। प्रभु द्वारपाल तक बननेको राजी हो गए।

जिसकी हरेक इन्द्रियां भगवान्का नामरटन करती है, उसकी उन सारी इन्द्रियोंमें भगवान् आकर विराजते हैं। सुतलपातालके द्वार परकी भगवान्की चौकीका यही अर्थ है।

सुतलपातालमें बलिने प्रवेश किया। प्रत्येक द्वार पर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्रीकृष्ण विराजमान थे।

तन, मन, धनसे सेवा करनेवालेकी आंखोंमें और कानोंमें, प्रत्येक इन्द्रियोंमें श्रीकृष्ण रहते हैं।

एक बार रावण घूमता-फिरता बलिके पास आया और लडनेको तैयार हो गया। उसने देखा कि बलिके द्वार पर वामनजी चौकीदारी कर रहे हैं। उसने वामनजीसे कहा कि वह बलिके साथ युद्ध करना चाहता है। तो वामनजीने कहा– पहले मुझसे युद्ध कर। मैं सेवक हूं और वे स्वामी। तो रावणने वामनजीके साथ लडना शुरू किया। वामनजीने उसकी छाती पर ऐसी एक लात मारी कि वह समुद्र किनारे जा पडा।

रावण काम है। तुम्हारी इन्द्रियोंके द्वार पर अगर भगवान् चौकीदारी करने लगें, तो काम उसमें प्रवेश नहीं पा सकेगा।

वामनजीने स्वर्गका राज्य इन्द्रको दिया। वामनजी बलिराजाके घर दान लेने गए तो दान लेकर वहां उनको द्वारपाल बनना पडा।

जो दान लेता है, वह बंधनमें फंसता है।

वामनजी बंधनमें फंस गए तो सभीको तो आनन्द हुआ किंतु महालक्ष्मीको दुःख हुआ घरमें सब कुछ था, किंतु नारायणकी अनुपस्थितिमें वे बेचैन थीं। वे सदा यही सोचती रहती थीं कि वे कब आएंगे? कहां होंगे? एक दिन उन्होंने अकुलाहटके मारे नारदजीसे पूछाः– कहां हैं मेरे स्वामी? आप कुछ जानते हैं क्या? तो नारदजीने उत्तर दियाः– सुना है कि नारायण सुतलपातालमें बलिराजाके घर द्वार पर चौकीदारी कर रहे हैं। बलिके पास दान लेने गए थे सो बंधनमें पड गए। सर्वस्वका दान लेकर ऋणी हो गए।

लक्ष्मीजी सुतलपातालमें आईं। घरमें ठाकुरजीको प्रसन्नतासे स्थापित करोगे तो लक्ष्मीजी भी उनके पीछे पीछे बिना आमंत्रणके भी आ जाएंगी। जहां भगवान् होते हैं, वहां लक्ष्मीजी आ ही जाती हैं।

यह कोई आश्चर्य तो नहीं है कि जिस घर पर नारायण द्वारपाल हों, विराजमान हों वहां लक्ष्मीजी भी आमंत्रणके बिना भी आ जाएं। सो लक्ष्मीजीके नहीं, भगवान् ही के पीछे लग जाओ। नारायणकी आराधना करोगे तो लक्ष्मीजी अपने आप आएगी।

लक्ष्मीजीने ब्राह्मण पत्नीका रूप लिया। उन्होंने बलिराजासे कहाः– मैं तुम्हारी धर्म-बहन हूं। जगत्में न तो मेरा कोई भाई है और न तुम्हारी कोई बहन। आजसे मैं तुम्हारी धर्म-भगिनी और तुम मेरे धर्मभ्राता। बलिको आनन्द हुआ। उसने लक्ष्मीको वंदन किया। उसे दुःख था कि आज तक उसकी कोई बहन ही न थी। लक्ष्मीजीके आगमनके साथ सभीको आनन्द हुआ। किंतु स्वयं लक्ष्मीमाताको कोई आनंद नहीं था। उन्हें दुःख था कि उनके स्वामी हाथमें लाठी पकड कर एक सामान्य चौकीदारकी भांति पहरा दे रहे हैं।

श्रावण मास आया। लक्ष्मीने राखीके दिन (पूर्णिमाके दिन) बलिराजासे कहा कि मैं आज तुम्हें राखी बांधूंगी। बलिराजाने राखी बंधवा कर वंदन करते हुए लक्ष्मीजीसे कहा, बहन, आज मुझे तुम्हें कुछ देना चाहिए। जो जीमें आए मांग लो। जरा भी संकोच न रखना।

लक्ष्मीजी बोलीं– मांगते हुए मुझे संकोच हो रहा है।

बलिराजा– आज वही मांग लो जो तुम्हारे घर न हो।

लक्ष्मीजीः– वैसे तो मेरे घरमें सब कुछ है किंतु एक वह नहीं है कि जिसके बिना मैं बेचैन हू। मुझे और कुछ न चाहिए। तुम्हारे इस द्वारपालको ही मुझे दे दो। तुम उन्हें मुक्त कर दो।

बलिराजा.– क्यो ? क्या यह तुम्हारा कोई रिश्तेदार है क्या ?

लक्ष्मीजी – ये तो मेरे नारायण हैं, मेरे सर्वस्व हैं।

और नारायण चतुर्भुज स्वरूपमे प्रकट हुए।

शुकदेवजी वर्णन करते है।

राजन ! माता महालक्ष्मी भगवान नारायणके साथ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके दिन वैकुठ धाममे सिधारे। इन्हीकी स्मृतिमे रामानुजाचार्य पथके मदिरोंमे इस दिन पाटोत्सव मनानेकी प्रणाली चली आई है।

और इस प्रकार लक्ष्मीजीने दानसे बद्ध नारायणको मुक्त किया।

अत भगवान् कहते है.—

ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥

भा ८–२२–२४

ब्रह्माजी, मै जिस पर कृपा करता हू उसका धन छीन लेता हू क्योंकि धनसे व्यक्ति अभिमानी बनता है तथा मेरा और अन्य लोगोंका अपमान करने लगता है।

इसी कारणसे तो प्रह्लादजीने भगवान्से कहा था.– मेरे पौत्र बलिको आपने इन्द्रपद तथा स्वर्गका जो राज्य दिया था वह छीन कर लक्ष्मीभ्रष्ट किया वह उस पर (बलि पर) कृपा करनेके हेतु ही किया है।

इस परम पवित्र वामनकी चरित्र कथा समयानुसार, यथामति कह सुनाई। पितृतिथिके दिनोंमे इसका पाठ करनेसे पितरोंको सद्गति प्राप्त होती है।

अब शरणागतिकी कथा शुरु होती है। रासलीलामें जाना है। यदि मन पर वासनाका आवरण है तो श्रीकृष्णसे मिलन नहीं होगा। वासनाके नाशके लिए भी उपाय बताये गए है।

महाप्रभुने कहा है.– मै भगवान्की शरणमे हू ऐसा जिसे सतत स्मरण रहे वही सिद्ध पुरुष है।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, कूर्म या मत्स्यके गुणदोष परमात्मामे नहीं आते। परमात्मा कूर्म बने या मत्स्य किंतु वे तो सदा परमात्मा ही बने रहते है। जीव जब पशुका अवतार लेता है, तो उस पशुविशेषके गुणधर्म उसमें आ जाते हैं।

महाराज सत्यव्रत मनु एक समय कृतमाला नदीके किनारे तपश्चर्या कर रहे थे। यह नदी त्रिवेन्द्रमकी ओर है। वहां उन्होंने कई वर्ष तक तपश्चर्या की। एक बार वे नदीमें जलतर्पण कर रहे थे।

ऋषितर्पणसे बुद्धि शुद्ध होती है। भारत धर्मप्रधान देश है। ऋषियोंका स्मरण करनेसे दिव्य संस्कार हमारे हृदयमें अवतीर्ण होते है। आज तो शिक्षामे धर्मका कोई स्थान ही नहीं है।

जलतर्पण करते हुए महाराज मनुके हाथोंमें एक मत्स्य आया। मनुने उसे जलमें छोड़ दिया।

मत्स्यने कहा:- मैं आपके हाथोंमें अर्थात् आपकी शरणमें आया हूँ। नदीके अन्य बड़े बड़े मत्स्य मुझे खा जायेंगे अतः आप मेरी रक्षा करें।

तो राजाने उसे कमंडलमें रख लिया। मत्स्य ज्यों ज्यों बड़ा होता गया त्यों त्यों उसके लिए दिनों दिन विशाल स्थानकी आवश्यकता पड़ने लगी। दिनो दिन वह विशाल स्वरूप धारण करता गया। सत्यव्रतको आश्चर्य होने लगा। उन्होंने सोचा कि अवश्य यह कोई असाधारण मत्स्य है।

वस्तुतः वृत्ति ही वह मत्स्य है। वृत्ति विशाल बने, किंतु जब तक वह ब्रह्माकार न हो जाये तब तक शांति नहीं है। मेरापन- 'अहम्' एक ही स्थानमें नहीं रह सकता, नहीं समा सकता। मैं सबमें हूँ और मुझमें सब है मनके आवरणको तोड़नेके लिए ब्रह्माकारवृत्ति आवश्यक है। इस जीवके हृदयमें ईश्वर रहते हैं। फिर भी जीवकी पीड़ा या मृत्यु ईश्वरको स्पर्श नहीं कर सकती। मानो भगवानको इससे कोई संबंध ही नहीं है।

दीपकके प्रकाशमें चाहे कोई भागवत पाठ करे, चाहे चोरी। दीपकके मनमें न तो किसीके प्रति सुभाव होगा, न तो कुभाव। दीपकका धर्म तो एक ही है, प्रकाशित होना, प्रकाश देना, प्रकाशका किसीके कर्मके साथ कोई संबंध नहीं है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

परमात्मा सभीके हृदयमें बस कर दीपककी भांति प्रकाश देते हैं। जीव पाप करे या पुण्य, किंतु साक्षीभूत परमात्मा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ईश्वर न तो निष्ठुर है और न तो दयालु। ईश्वरका अपना कोई धर्म नहीं है। ईश्वर आनंदरूप है, सर्वव्यापी है। इस स्वरूपमें हमें कोई विशेष हानि या लाभ नहीं है। परमात्मा बुद्धिसे परे है। ईश्वर ही बुद्धिको प्रकाशित करते हैं। ईश्वरको प्रकाश देनेवाला कोई नहीं है। ईश्वर तो स्वप्रकाशी है। ईश्वरके सिवाय अन्य सभी परप्रकाशी हैं।

ईश्वरका दीपक-सा यह स्वरूप हमें प्रकाश देता है। इस स्वरूपका अनुभव करनेके लिए ज्ञानी पुरुष ब्रह्माकारवृत्ति धारण करते हैं। जब मन ईश्वरका सतत चिंतन करे, वृत्ति जब कृष्णाकार, ब्रह्माकार बने, तभी शांति मिलती है। ईश्वरको छोड़ कर मनोवृत्तिको कहीं भी रखोगे, वह स्थान उसे समा नहीं पायेगा। ईश्वरको छोड़ कर सभी कुछ अल्प है। अतः अन्य किसी भी वस्तु-प्रवृत्तिमें मनोवृत्तिको शांति नहीं मिलेगी। वृत्ति कृष्णाकार, ब्रह्माकार बनेगी, भगवत् स्वरूप बनेगी, तभी आनन्दकी प्राप्ति होगी।

लकड़ीमें तो अग्नि समायी हुई है, [illegible] आवश्यक है। लकड़ी पर [illegible] अग्नि [illegible] नहीं पड़ेगी। स्वयंप्रकाशी परमात्मा सभीमें [illegible] हुए प्रकाश ही देते हैं, और कुछ नहीं करते। प्रभुके सगुण स्वरूपको हृदयमें बसा कर, वृत्तिको ब्रह्माकार करोगे तभी शांति मिलेगी।

[illegible]

[illegible]

मनु महाराज प्रभुका ध्यान करने लगे। पृथ्वी जलमय हो गई।

तभी वृत्ति ब्रह्माकार होती है कि जब कोई ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिल जाते हैं। मत्स्य नारायण भगवान् सद्‌गुरुका ही स्वरूप हैं। गुरुकृपाके विना मन ईश्वरमें स्थिर नहीं हो पाता।

मैं आपकी शरणमें आया हूं। मेरी नौका आप पार लगा दीजिए।

वृत्तिको ब्रह्माकार बनाओ। सत्यव्रती बनो। सत्यका पालन करो।

सत्यनिष्ठ जीव ही सत्यव्रत मनु है। कृतमालाके किनारे बसनेका अर्थ है सत्कर्मकी परंपरामें जीना ऐसा होने पर ही सत्यव्रत, जीवात्माकी वृत्ति ब्रह्माकार होती है और मत्स्य-नारायण भगवान् उनके हाथमें आते है। ऐसे अधिकारी जीवको ही परमात्मा मिलते हैं।

प्रलयमें चाहे अन्य किसी भी वस्तुका नाश हो जाए किंतु भगवान् सत्यनिष्ठका नाश नहीं होने देते। सत्कर्मी और सत्यनिष्ठ व्यक्ति प्रलयमें भी नहीं मरेगा। जो भगवान्‌को शरणमें जाता है, भगवान् जिसे अपनाते हैं उसका प्रलयमें नाश नहीं होता।

प्रलयमें सारी सृष्टि नष्ट हो गई, किंतु सत्यव्रतका नाश नहीं हुआ क्योंकि उसने मत्स्य-नारायण भगवान्‌के साथ अपना संबंध जोड लिया था।

शरीर नैया है। प्रभुके चरण सींग हैं। इस शरीरको परमात्माके चरणोंके साथ बांध दो।

आदि मत्स्य नारायण भगवान्‌को शुकदेवजी वार वार प्रणाम करते हैं।

मत्स्य नारायणकी स्तुतिको महात्माओंने गुरुष्टकी कहा है।

इस मत्स्यनारायणकथाका जो भी कोई पाठ करता है, उसके सभी पाठकोंका विनाश होता है।

मत्स्य नारायण प्रभुने वेदके चोर दैत्य हयग्रीवका संहार किया। मनु महाराजको मत्स्य संहिताका उपदेश दिया। ऐसे प्रभुको प्रणाम करते हुए हम इस आठवें स्कंधको समाप्त करते हैं।

श्री राम-स्तुति

श्री रामचंद्र कृपालु भज मन हरण भवभय दारुणं,
नवकंज-लोचन, कंज-मुख कर कंज, पद कंजारुणं।
कंदर्प अगणित अमित छवि, नवनील-नीरद सुंदरं,
पट पीत मानहु कडित रुचि शुचि, नौमि जनक सुतावरं।
भज दीनबंधु, दिनेश, दानव-दैत्य-वंश निकंदनं
रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद्र दशरथ-नंदनं।
शिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणं,
आजानुभुज शर-चापधर, संग्रामजित खरदूषणं।
इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि मनरंजनं,
मम हृदय कुंज निवास कुरु, कामादि खल-दल-गंजनं।

सियावर रामचंद्रकी जय

नवम स्कंध

ॐ जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्

तेने ब्रह्म हृदय आदिकवये मुह्यंति यत्सूरयः ।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

भा. १-१-१

श्री कृष्णं वंदे जगद्‌गुरुम् ।

जगत् गुरु श्री शंकराचार्याय नमः ।

प्रथम स्कंध अधिकार लीलासे संबंधित था। शिष्यका अधिकार बताया गया। जिसका अधिकार सिद्ध होता है उसे संत मिलते हैं।

मृत्यु शिर पर सवार होनेवाला है ऐसा सुनने पर राजा परीक्षितके विलासी जीवनका अंत आया और वह सुधर गया।

विलासी जीवनका अंत और भक्ति सिद्ध हो पाये तभी जीव अधिकारी बनता है।

वैराग्य धारण करके जो बाहर निकल पडता है वह संत बनता है और उसे अपने आप सद्‌गुरु आ मिलते हैं। संतके घर ही संत पधारते हैं। तुम संत बनोगे तो तुम्हें भी संत आ मिलेंगे।

द्वितीय स्कंधमें ज्ञानलीला आई। मनुष्यमात्रका कर्तव्य क्या है? आसन्न मृत्यु व्यक्तिका कर्तव्य क्या है? इन जैसे प्रश्नोंकी चर्चा करके ज्ञान दिया गया।

तृतीय और चतुर्थ स्कंधोंमें सर्ग-विसर्ग लीला वर्णित है। इनमें ज्ञानको क्रियात्मक रूप देनेका उपदेश दिया गया है। ज्ञानको किस भांति जीवनमें उतारा जाये, उसे कैसे क्रियात्मक किया जा सके यह ध्रुव आदिके दृष्टांतके द्वारा बताया गया।

ज्ञान जब तक शब्दात्मक है, तब तक शांति नहीं मिलेगी। जब वह क्रियात्मक, सक्रिय होगा तभी शांति मिलेगी।

पांचवा स्कंध स्थिति लीलाका है। गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञानको जीवनमें उतारोगे तभी स्थिरता प्राप्त होगी। यह पांचवें स्कंधमें बताया गया है।

छठे स्कंधमें पुष्टि लीला, अनुग्रह लीलाका वर्णन है। जो साधना करता है उसी पर प्रभु कृपा करते हैं।

मनुष्य जब किसी स्वरूपमें स्थिर (निमग्न) होता है तभी ठाकोरजी कृपा करते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट होना ही पुष्टि मार्ग है। नहीं, ऐसा नहीं है। पुष्टि मार्ग तो यह बताता है कि ठाकोरजीके विरहमें मनुष्यका जीवन कैसा होना चाहिए।

ईश्वरको अपना सर्वस्व अर्पण कर दो। इन्द्रियोंको भक्तिरसमें सराबोर कर दो। वैसा करने पर ही इन्द्रियोंको पुष्टि मिलती है।

मनुष्य यदि पुष्टिका ठीकसे उपयोग न करे और वासनाके वेगमें बह जाए तो वह पुष्ट होनेकी अपेक्षा दुष्ट ही बनता है।

अनुग्रहके बाद भी अगर मनुष्य वासनाके आधीन हो जाय तो वह पुष्ट नहीं बन पाता।

सातवें स्कंधमें असद् वासनाको दूर करनेके संतोंके धर्म बताए गए हैं। सातवां स्कंध वासनालीलाका है। प्रभुकी कृपाका यदि मनुष्य अच्छा उपयोग नहीं करे तो वासना ही जागती है।

जो कुछ है उसका मैं अपने सुखके लिए ही उपयोग करूंगा ऐसा सोचना असद् वासना है। प्रह्लादको जो कुछ मिला था उसका उसने सभीके लिए उपयोग किया था।

मुझे जो सुख मिला है वह प्रभुका ही है। सुख भोग कर जो दूसरोंको सुख देता है वह सज्जन तो है किंतु संत नहीं है। जो स्वयं दुःख उठा कर अन्योंको सुख देता है वही संत है।

रासलीला भागवतका फल है। रासलीलामें वासनाको संग लेकर जाओगे तो वहां प्रवेश नहीं मिलेगा। पुष्टिके बाद जगनेवाली वासना अनर्थ उत्पन्न करती है।

पुष्टिका सुदुपयोग करनेवाला देव है और दुरुपयोग करनेवाला दैत्य।

प्रह्लाद देव माना गया क्यों कि उसने पुष्टिका सदुपयोग किया। हिरण्यकशिपुने पुष्टिका दुरुपयोग किया इसलिये वह दैत्य कहलाया।

प्रह्लादकी वासना सद्वासना है, हिरण्यकशिपुकी असद् वासना है और सामान्य मनुष्यकी मिश्र वासना है। किंतु सभी लोग बुद्धिका सदुपयोग नहीं करते हैं।

ईश्वर द्वारा प्राप्त समय, संपत्ति और शक्तिका जो सदुपयोग करे वह देव है और दुरुपयोग करे वह दैत्य।

ईश्वर तो जीव पर कृपा करते ही हैं किंतु अज्ञानी जीव उसका दुरुपयोग करता है इसलिये वह दुष्ट बन जाता है।

सातवें स्कंधमें बताई गई वासनाका चार उपायोंसे तो नाश हो सकता है। आठवें स्कंधमें संतोंके चार धर्म वर्णित हैं।

(१) आपत्तिमें, दुःखमें हरिका, भगवान्का स्मरण। दृष्टांत : गजेन्द्र।

(२) सपत्तिकी अवस्थामें सर्वस्वका दान। बलिराजाकी भांति इस अवस्थामें सर्वस्वका दान करनेसे वासनाका क्षय होता है।

(३) विपत्तिकी अवस्थामें स्ववचनका पालन। दृष्टांत : बलिराजा।

(४) सभी अवस्थामें भगवत शरणागति। दृष्टांत : सत्यव्रत। सत्यव्रत भगवान् मत्स्य नारायणकी शरणमें गया था।

वासनाको नष्ट करनेके ये चार उपाय हमने देखे।

वासनाको यदि प्रभुके मार्गकी ओर मोड़ दी जाए तो वह वासना ही भक्ति बन जाती है। रासलीलामें हमें प्रभुसे मिलना तो है किंतु वासनाका आवरण जब तक बीचमें है तब तक मिलनमें आनन्द नहीं आ सकता। वासनाका विनाश करके निर्वासन होकर रासलीलामें जाना है। वासनाका क्षय होनेके बाद रासलीलामें ईश्वर और जीवका मिलन होता है। संयम और सदाचारका आसरा लोगे तभी रासलीलामें स्थान मिलेगा।

अष्टम स्कंधमें संतोंके चार धर्म बताए फिर भी शुकदेवजीको लगा कि अब भी परीक्षित राजाके मनमें कुछ थोडी–सी सूक्ष्म वासना रह गई है। यदि राजा उस सूक्ष्म वासनाको मनमें ही लेकर रासलीलामें जाएगा तो वहां भी उसे काम ही दीखाई देगा। मैं राजाको रासलीलामें ले तो जाऊंगा किंतु यदि उसके मनमें काम बाकी रहा होगा तो उसे वहां भी लौकिक कामाचार ही दीखेगा।

जिसके अपने मनमें काम है उसे हर कहीं काम ही दिखाई देता है। एक गृहस्थकी युवान पुत्री ससुराल जाने निकली तो उसे रोना आ गया। पिताका हृदय भी भर आया। रोते रोते पुत्री पिताको वंदन करने लगी तो पिताने उसे हृदयसे लगा ली और सांत्वना देने लगा। यह तो वात्सल्यभरा निर्दोष आलिंगन था किंतु रास्ते परसे चलते हुए किसी व्यक्तिने इसमें विकार देखा। वह नहीं जानता था कि ये कौन हैं।

पिता–पुत्रीका मिलन शुद्ध है किंतु उससे भी लाख गुना शुद्ध है गोपी और कृष्ण-जीव और ईश्वरका मिलन। यह मिलन रासलीलामें होता है। रासलीलामें काम बिलकुल नहीं है। शुकदेवजीके दर्शनमात्रसे अप्सराओंके कामका नाश हुआ था।

जो अतिशय निष्कामी है वह कामकी कथा कैसे कर पाएगा? शुकदेवजी निष्कामी हैं। जिनके दर्शन मात्रसे अन्य लोगोंके मनमें बसे हुए कामका नाश हो जाता है वैसे महात्मा यह कथा कह रहे हैं।

जिस प्रकार सूर्यके निकट अंधकार जा नहीं सकता है वैसे ही काम कृष्णके निकट जा नहीं पाता है।

बुद्धिमें काम होगा तो कृष्णके दर्शन नहीं होंगे। बुद्धिमें जब तक वासनारूपी विष कायम है तब तक ईश्वररूपी रस जम नहीं पाएगा।

राजाकी बुद्धिको स्थिर करनेके लिए, शुद्ध करनेके लिए नवमें स्कंधमें सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओंकी कथा कही गई।

सूर्य हैं बुद्धिके स्वामी और चन्द्र हैं मनके स्वामी। बुद्धिकी शुद्धिके लिए सूर्यवंशी रामचंद्रजीका चरित्र कहा गया और मनकी शुद्धिके लिए चंद्रवंशी श्री कृष्णका।

रामचंद्रकी मर्यादाका पालन करोगे तो तुम्हारे मनका रावण मरेगा। तुम्हारे मनका काम मरेगा तो परमात्मा कृष्ण पधारेंगे। रामके बाद कृष्ण आते हैं। जो रावणको–कामको मार सकता है वही कृष्णलीलाका दर्शन कर सकता है।

रामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन रामायणमें विस्तारसे किया गया है। उसीका संक्षिप्त वर्णन यहां भी कुछ हेतुपूर्वक ही किया गया है। जो रामचंद्रजीकी मर्यादाका पालन करता है उसे ही कन्हैया मिलता है।

मनको शुद्ध करनेके लिए ही ये लीलाएं हैं।

*

इस नवमें स्कंधके दो प्रकरण हैं जो सूर्यवंशी और चंद्रवंशी राजाओंके विषयमें है। सूर्यवंशमें श्री रघुनाथजी और चंद्रवंशमें श्री कृष्ण अवतरित हुए।

सप्तम स्कंधमें वासनाकी कथा थी। उस वासनाका नाश करनेके लिए अष्टम स्कंधमें चार उपाय बताए गए। संतोंके इन चार धर्मोंको जीवनमें उतारनेसे वासनाका नाश हो सकता है।

वासनाको यदि विवेकपूर्वक प्रभुके मार्गमें मोड दी जाए तो वह उपासना बन जाती है। और मनुष्यको मुक्ति भी दिलाती है। वासनाके विनाशके बाद नवम स्कंधमें प्रवेश करना है। मन और बुद्धिकी शुद्धिके लिए यह नवम स्कंध है।

इन्द्रियोंमें बसी हुई वासना स्थूल वासना है और मनोगत वासना सूक्ष्म। संतोंके धर्मोको जीवनमें उतारनेसे स्थूल वासनाका तो नाश होता है किंतु मन और बुद्धिमें बसी हुई सूक्ष्म वासनाका नाश वैसी आसानीसे नहीं हो पाता।

मनके स्वामी हैं चंद्र और बुद्धिके स्वामी हैं सूर्य। सूर्य और चंद्र बुद्धि और मनके देव हैं। इन दोनोंकी आराधना करने पर बुद्धिगत वासनाका क्षय होता है। वासनाका पूर्णतः क्षय हुए बिना मोहका क्षय नहीं हो पाता। और मोहके क्षय बिना मुक्ति नहीं मिलती। मनके सूक्ष्म मलका नाश होने पर ही मुक्ति मिलती है।

ज्ञानी पुरुष बार बार सोचते हैं कि संसारमें सच्चा सुख नहीं है। जब तक शरीर है तब सुख–सुविधाकी अपेक्षा तो रहती है किंतु अंतमें परिणाम तो दुःखमय ही है ऐसा मान कर ही वे भोगोपभोग करते हैं।

सूर्य–चंद्रकी उपासनाके बिना बुद्धिगत वासनाका नाश नहीं हो पाता।

मनमें सूक्ष्म मल भी नहीं रह पाएगा तो मन मरेगा अर्थात् श्री कृष्णमें मिल जाएगा। मन मरेगा तो मुक्ति मिलेगी। आत्मा तो नित्य मुक्त है, मुक्त तो मनको करना है। संत-धर्मके आचरणसे इन्द्रियगत विकारका नाश होता है। जो विकार–वासना मन और बुद्धिमें सूक्ष्म रूपसे व्याप्त है उसका शीघ्र विनाश नहीं हो पाता। जिसका जन्म अंतिम है उसीका मन अति शुद्ध हो सकता है। मेरा मन तो शुद्ध ही है ऐसा विचार कभी न करो क्यों कि ऐसा करनेसे साधन–साधना उपेक्षित हो जानेकी संभावना है।

भोजनसे चाहे संतुष्ट बनो, भजनसे नहीं। सत्कर्मका तो असंतोष ही बना रहना चाहिए।

इन्द्रियगत वासना नष्ट होने पर भी मनोगत वासना बाकी रह जाती है। ईश्वरके साथ एक होना है। मन और बुद्धिमें बसी हुई वासना कृष्णमिलनमें बाधा उपस्थित करती रहती है। हमारा लक्ष्यबिंदु तो है श्री कृष्णमिलन। हमें ईश्वरके साथ एकत्व साधना है। भगवान्के साथ एक होनेके लिए ही यह भागवत कथा है।

भागवत कथा जीवको भगवान्के साथ तन्मय करती है। कथा श्रवण पुण्यका काम है। कर्मोंका फल तो कालांतरमें मिलता है जब कि भागवतकथा श्रवणका फल तो शीघ्र ही मिलता है। इस कथाश्रवणका फल है सांसारिक विषयोंका विस्मरण और ईश्वरके साथ तन्मयता। सभी साधनाओंका यही फल है। कथाकीर्तनमें अनायास ही तन्मयता हो जाती है। जगत्को अन यास भूल कर ईश्वरके साथ तन्मय होना ही सभी साधनाओंका फल है।

हमें जगत्में रहना है किंतु जगत्को अपने मनमें बसाना नहीं है। जिसके मनमें संसारके विषय आते ही नहीं है उसके लिए मुक्ति सुलभ है।

प्रभु द्वारा उत्पन्न जगत् भजनमें विक्षेपकर्ता नहीं है किंतु जीव अपने मनमें जिस जगत्को बसाता है वही भजनमें विक्षेपकर्ता बन जाता है। मनमेंसे संसारके सूक्ष्म स्वरूपको निकाल बाहर करोगे तभी वहां श्री कृष्ण आ बसेंगे।

बुद्धिगत कामके विनाशके हेतु ही यह नवम स्कंधकी कथा है। जिसमें बरसोंसे तेल ही रखा जाता है ऐसे बर्तनको पांच दस बार धोने पर वह स्वच्छ तो होगा किंतु तेलकी बास नहीं जाएगी। अब उस बर्तनमें चटनी-अचार रखोगे तो वह बीगड जाएगा। मनुष्यका मस्तिष्क भी ठीक ऐसा ही है। इसमें कई वर्षोंसे कामवासनारूपी तेल रखा गया है। इस बुद्धिरूपी पात्रमें श्री कृष्णरूपी रस रखनेका है। अब इस मस्तिष्करूपी बर्तनमें कामका अंशमात्र भी होगा तो उसमें प्रेमरस, भक्तिरस जमेगा ही नहीं।

जब बुद्धिमें परमात्माका निवास होता है तभी पूर्ण शांति मिल पाती है। जब तक बुद्धिमें ईश्वरका अनुभव नहीं हो पाता है तब तक आनंदका अनुभव नहीं हो पाता। संसारके विषयोंका ज्ञान बुद्धिमें आने पर विषय सुखरूप बनते हैं। परमात्माको बुद्धिमें रखना है। मस्तिष्कमें जब ईश्वर आ बसते हैं तभी ईश्वरस्वरूपका ज्ञान पूर्ण आनंद देता है। तेलके अंशसे चटनी-अचार बीगडते हैं वैसे ही बुद्धिमें वासनाका अंश रह जाने पर वह अस्थिर ही रहगी।

बुद्धिको स्थिर और शुद्ध करनेके हेतु मनके स्वामी चंद्र और बुद्धिके स्वामी सूर्यकी आराधना करनी है। त्रिकाल संध्या करनेसे बुद्धि विशुद्ध होगी।

वासना विनाशके हेतु संत धर्म बताने पर भी शुकदेवजीको लगा कि परीक्षितके मनमें अब भी सूक्ष्म वासना बाकी रह गई है। राजाको रासलीलामें ले जाना है। मृत्युके पूर्व ही उसे परमानंद देना है। जब तक बुद्धिमें काम-वासना है श्री कृष्णके दर्शन उसे नहीं होंगे अतः राजाके मनमें शेष रही हुई वासनाका पूर्णतः नाश करनेके लिए शुकदेवजीने सूर्य और चंद्रवंशकी कथा सुनाई।

जब तक राम नहीं आते हैं तब तक कृष्ण भी नहीं आते हैं। भागवतमें मुख्य कथा श्री कृष्णकी है। फिर भी रामके आगमनके बाद ही श्री कृष्ण आते हैं। जिसके घरमें राम नहीं आते हैं उसका रावण-काम मरता नहीं है। और जब तक कामरूपी रावण मरता नहीं है तब तक श्री कृष्ण नहीं आते हैं। इस रावणको मारना है। रावण तभी मरेगा जब रामकी मर्यादाका पालन किया जाए। चाहे जिस संप्रदायमें विश्वास हो, किंतु जब तक रामचंद्रकी मर्यादाका पालन नहीं करोगे तब तक आनंद नहीं मिलेगा।

आरंभमें रामचंद्रके चरित्रका वर्णन है। फिर दशम स्कंधकी कथा आएगी। भागवतकी कथाके वक्ता और श्रोताको रामकी मर्यादाका पालन करना चाहिए। मनुष्यको थोड़ी-सी संपत्ति या थोड़ा-सा अधिकार मिलते ही वह रामकी मर्यादा भूल जाता है। रामके आए बिना कृष्ण भी नहीं आते। रामचंद्रकी उत्तम सेवा यही है कि उनकी मर्यादाका पालन किया जाए। उनका-सा ही वर्तन रखो। रामजीका भजन करना अर्थात् उनकी मर्यादाका पालन करना। उनका वर्तन हमें अपने जीवनमें उतारना चाहिए।

यदि रामजीको मनमें बसाओगे, मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्रका अनुकरण करोगे तो भगवान् मिलेंगे। उनकी लीलाका अनुकरण करो। उनका चरित्र सर्वथा अनुकरणीय है।

श्री कृष्णकी सभी लीलाओंका अनुकरण नहीं करना है, श्रवण करना है। उनका चरित्र चिंतनीय है। श्री कृष्णकी लीला चिंतन करनेके लिए और चिंतन करके तन्मय होनेके लिए है।

रामचंद्रने जो किया था वह करना है किंतु श्री कृष्णने जो कहा था वह करना है। राम पूर्ण पुरुपोत्तम होने पर भी मनुष्यको आदर्श दिखाते हैं।

रामचंद्रका मातृप्रेम, पितृप्रेम, बंधुप्रेम, एक पत्नीव्रत आदि सब कुछ जीवनमें उतारने योग्य है। रामायणके सभी पात्र आदर्श हैं। दशरथजीका पुत्रप्रेम, सीताजीकी पतिभक्ति, लक्ष्मण और भरतका बंधुप्रेम आदि सब आदर्शमय है।

श्री कृष्ण जो करते थे वही सब कुछ करना हमारे लिए अशक्य है। उन्होंने तो कालिनागको वशमें करके उसके शिर पर नृत्य किया था। गोवर्धन पर्वतको भी उंगलीसे उठा लिया था। श्री कृष्णके चरित्रका अनुकरण करना ही है तो पूतना चरित्रसे प्रारंभ करना। पूतनाका सारा विप उन्होंने पी लिया था। विषका पाचन होनेके पश्चात् अन्य सभी लीलाका अनुकरण करना।

रामचंद्रने अपना ऐश्वर्य छुपाया था और मनुष्यके जीवनका नाटक किया।

साधकका वर्तन कैसा होना चाहिए वह रामचंद्रजीने बताया है। साधकका वर्तन रामचंद्र जैसा होना चाहिए। सिद्ध पुरुषका वर्तन श्री कृष्णका-सा हो सकता है।

रघुनाथका अवतार राक्षसोंकी हत्याके हेतु नहीं, मनुष्योंको मानवधर्म सीखानेके हेतु हुआ था। वे जीवमात्रको उपदेश देते हैं। उन्होंने किसी भी मर्यादाका भंग किया नहीं है।

रामचंद्रकी लीला सरल है। उनकी बाललीला भी सरल है। जब कि श्री कृष्णकी सारी लीला गहन है।

रामचंद्रकी सरलता तो अंतिम कक्षाकी है। उन जैसा सरल आज तक कोई नहीं हुआ।

अग्निनारायणने सीताजीको निर्दोष घोषित किया। फिर भी उस मूर्ख धोबीके कटु वचन सुन कर रामचंद्रने सीताजीका त्याग किया। जगत्‌के समक्ष आदर्श रखनेके हेतु वे निष्ठुर हो गए। वे जगत्‌को यह बताना चाहते थे कि आदर्श राजाका वर्तन कैसा हो सकता है और कैसा होना चाहिए।

सीताने नारीधर्मका आदर्श प्रस्तुत किया। मेरे पति ही मेरे परमेश्वर हैं।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और श्री कृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम। कृष्ण माखन चोर हैं अर्थात् मृदु मनका चोर हैं। वे सर्वस्व ही मांगते हैं।

राम नाम जैसा सरल है वैसा ही उनका काम, उनकी लीला भी सरल है। रामके नाममें एक भी सयुक्त अक्षर नहीं है। कृष्णके नाममें एक भी अक्षर सरल नहीं है, सभी संयुक्ताक्षर ही हैं।

श्री राम दिनको बारह बजे आए थे तो श्री कृष्ण रात्रिको बारह बजे। एक मध्याह्नमें आए तो दूसरे मध्यरात्रिको। एक राजा दशरथके भव्य राजप्रसादमें अवतरित हुए तो दूसरे कंसके कारागृहमें। रामजीको पहचानना, समझना सरल है किंतु कृष्णको समझना बडा कठीन है। किंतु रामजीकी मर्यादाको जीवनमें उतारनेका काम सबसे कठीन है।

सूक्ष्म वासनाके नाशके हेतु नवम स्कंधमें संतोंके चरित्र कहे गए हैं।

सूर्यवंशके प्रकरणमें रामजीका चरित्र आता है।

रामचंद्र मर्यादा है तो श्री कृष्ण प्रेम। मर्यादा और प्रेमको जीवनमें उतारोगे तो सुखी होगे।

नरसिंह अवतारकी कथामें क्रोधनाशकी, वामन अवतारकी कथामें लोभके नाशकी और रामचंद्रजीके अवतारकी कथामें काम नाशकी रीति बताई गई है। क्रोध, लोभ और कामका जब नाश होता है तभी कृष्ण भगवान् प्रगट होते हैं।

वैसे तो भागवतका लक्ष्य कृष्णलीलाका कथन ही है। तो फिर प्रथम स्कंधसे ही कृष्णलीलाका वर्णन क्यों नहीं है? इसका कारण यही है कि क्रोध, लोभ और काम आदिका नाश होने पर ही परमात्मा कृष्ण मिलते हैं।

अष्टम स्कंधमें समाप्ति अंशमें सत्यव्रत मनु महाराजकी और मत्स्यावतारकी कथा कही गई है।

राजा परीक्षितने कहाः– मुझे इस सत्यव्रत मनुके वंशकी कथा सुनाइए।

शुकदेवजी वर्णन करते हैंः– राजन्! इस कल्पमें राजर्षि सत्यव्रत वैवस्वत् मनु बने थे। विवस्वत्के घर वैवस्वत हुए थे। मनु वैवस्वत सूर्यवंके आदि प्रवर्तक हैं। उनका विवाह श्रद्धा नामक स्त्रीके साथ हुआ था। उनके दश संतान हुई थीं। उनके नाम हैं– इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्टि, करुष, नरिष्यंत, पृषध्न, नभग और कवि।

दिष्टिके वंशमें मरुत्त नामक चक्रवर्ती राजा हुए थे। मरुत्तके गुरु थे बृहस्पति। वे इन्द्रके भी गुरु थे। मरुत्त राजाको यज्ञ करना था। बृहस्पतिने आनेसे इन्कार कर दिया। हरेक कार्यमें पहले कुलगुरुका पूजन तो किया ही जाना चाहिए। अब क्या किया जाए?

एक बार मरुत्तको मार्गमें नारदजी मिल गए तो उन्होंने नारदजीसे अपनी कठिनाई सुनाई। तो नारदजीने कहा कि बृहस्पतिके छोटे भाई संवर्त्तको ही बुला लीजिए। वे भी गुरु समान ही हैं। यज्ञ तो करना ही चाहिए।

राजाः– संवर्त्त तो योगी हैं और उनका कोई पता ही नहीं है।

नारदजीः– उनका पता मैं बताऊंगा किंतु मेरा नाम मत लेना।

कई बार ज्ञानी पुरुष भी संसारसे डरते है। संसारके स्त्री–पुरुषोंका संग होनेसे ब्रह्माकारवृत्तिका भंग हो जाता है।

संवर्त्त योगीका नियम था कि चौबीस घंटेमें एक बार वे काशी आते थे। महापुरुष भजनमें भी नियमका पालन करते हैं। संवर्त्त काशीविश्वनाथके दर्शन करनेके लिए आते थे किंतु मार्गमें शबका यदि दर्शन हो जाता तो उसे ही शिव रूप मान कर, वंदन करके वापस लौट जाते थे।

महाभारतके अनुशासनपर्वमें विस्तारसे यह कथा कही गई है।

मरुत्त राजा शब लेकर रास्तेमें मार्गमें बैठ गए। एक पागल–सा व्यक्ति आया। उसने शबको देखा तो वंदन करके वापस लौटने लगा। मरुत्त राजाको विश्वास हो गया कि यह संवर्त्त योगी ही है। राजाने उनके चरण पकड़ लिए और प्रणाम किया। संवर्त्त कहने लगे– मैं अज्ञानी हूं, मुझे जाने दीजिए।

मरुत्तः– आप संवर्त्त हैं, मेरे गुरु हैं। आप तो गुरु बृहस्पतिके लघुबंधु हैं। बृहस्पति देवोंके गुरु बन गए हैं और मेरे घर आना बंद कर दिया है। मैं यज्ञ करना चाहता हूं। कोई मुझसे यज्ञ ही नहीं करवाता है।

सवर्त्तः– मैं यज्ञ तो कराऊं किंतु तेरा ऐश्वर्य देख कर बृहस्पति तुम्हें कहेंगे कि वे तुम्हारा यज्ञ करनेको तैयार हैं और तुम्हारा गुरु बनना चाहते हैं। यदि वैसा समय आया और तुमने मेरा त्याग किया तो मैं तुम्हें भस्मीभूत कर दूंगा।

राजाने संवर्त्तकी शर्तका स्वीकार किया। संवर्त्तने राजाको मंत्र–दीक्षा दी। यज्ञका आरंभ होने चला। यज्ञके सभी पात्र सुवर्णके थे। राजाके वैभव और यज्ञकी भव्य तैयारी देख कर बृहस्पति लालायित हुए। उन्होंने राजाको संदेश भेजाः– तुम्हारा मैं ही आचार्य हूं। मैं यज्ञ करानेको तैयार हूं। बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा और इन्द्रने अग्निके साथ संदेश भेजा कि बृहस्पतिको ही गुरु बनाया जाए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो इन्द्र यज्ञमें बाधा उपस्थित करेंगे। अग्निने संवर्त्तसे कहाः– मेरी आज्ञाका उल्लंघन करोगे तो मैं तुम्हें भस्मीभूत कर दूंगा।

जिस देवको संवर्त्त योगी आज्ञा करते हैं वह वहां उपस्थित होता है और वह देव प्रत्यक्ष हविर्भाग ग्रहण करता है। जैसा यज्ञ मरुत्तका हुआ था वैसा न तो कभी किसीका हुआ था और न कभी होगा। मरुत्तके इस यज्ञका वर्णन ऋग्वेदमें भी है। भागवतमें तो यह संक्षिप्तमें ही वर्णित है।

मनुपुत्र नभगके घर नाभाग हुए। और भगवान् शंकरकी कृपासे नाभागके घर भक्त अंबरीशका जन्म हुआ। अंबरीश मर्यादा भक्तिके आचार्य हैं। कांकरोलीमें विराजमान द्वारिकानाथ राजा अंबरीशके सेव्य ठाकुरजी हैं। ये ठाकोरजी रोज बावन मन भोग आरोगते थे। कितनी सामग्री इकट्ठी की जाती होगी!

अंबरीश शब्दका अर्थ भी तो देखिए। अंबर अर्थात् आकाश और ईश अर्थात् ईश्वर। आकाश अंदर भी है और बाहर भी। जिसके अंदर और बाहर सभी स्थान पर ईश्वर हैं वही अंबरीश है। चारों ओर जिसे परमात्मा दीखाई दे वही अंबरीश है।

ज्ञानमार्गमें इन्द्रियरूपी द्वारोंको बंद रखने पडते हैं। भक्तिमार्गमें सभी इन्द्रियोंको भगवान्के मार्गमें लगानी पडती हैं। भगवान्के चरणोंमें भक्त अपनी इन्द्रियां अर्पित कर देता है। भक्त अपनी सारी इन्द्रियोंका भगवान्से विवाह कर देता है। भगवान् हृषीकेश हैं, इन्द्रियोंके स्वामी हैं।

राजा अंबरीश महान् भक्त थे। उनका मन भगवान्के चरणकमलोंमें, वाणी भगवद्गुण–वर्णनमें, हाथ हरि मंदिरकी सफाईमें, पांव प्रभुके क्षेत्रादिकी पदयात्रामें, कान भगवान्की उत्तम कथाओंके श्रवणमें, तथा दोनों नेत्र मुकुंद भगवान्की मूर्तियोंके दर्शनमें व्यस्त रहते थे। मस्तकसे वे भगवान् श्री कृष्णको वंदन करते रहते थे।

भगवान्की सेवामें जो व्यक्ति अपना सारा शरीर लगा देता है उसका देहाभिमान कम होता जाता है।

भक्ति मार्गमें धन या तन नहीं, मन ही प्रधान है। जबसे भक्तिमें धनका प्राधान्य हुआ है तबसे भक्ति छिन्न–भिन्न होती जा रही है।

राजा अंबरीश तभी सर्व प्रथम कहते हैंः– मेरा मन सदा कृष्णके चरणकमलोंमें ही रहे।

तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष परमेश्वर।

सेवामें धन नहीं, मन ही मुख्य है। सेवाका अर्थ है सेव्य-श्री कृष्णमें मनको परोए रखना। सेवाका संबंध मनसे है। शरीरसे जो क्रिया की जाए उसमें यदि मनका सहकार नहीं होगा तो व्यर्थ ही हो जाएगी।

सेवाका क्रम अंबरीशने बताया है। सेवाका आरंभ मनसे होता है। मन सूक्ष्म होता है। वह जगत् और ईश्वरके साथ एक साथ संबंध नहीं रख सकता। मनको मनाओगे तो वह मानेगा, किसीके उपदेशसे नहीं। तुम स्वयं अपने मनको समझाओगे तो असर होगा। अपने मनको और कोई क्या और कैसे समझा सकता है?

राजा अंबरीशके इष्टदेव द्वारिकानाथ हैं। राजा होने पर भी वे स्वयं सेवा-पूजा करते हैं। घरमें कई सेवक होने पर भी वे कहते हैं:- मैं तो ठाकोरजीका दास हूं। उनकी सेवा स्वयं मुझे ही करनी चाहिए।

दास्य भावमें सेवा ही मुख्य है।

उसीका पेट भरता है जो स्वयं भोजन करे। जो भजन और सेवा स्वयं करे उसे फल मिलता है। चार काम स्वयं करने पडते हैं- भोजन, विवाह, ठाकोरजीकी सेवा और मृत्यु।

अंबरीश तो चक्रवर्ती राजा था फिर भी वह प्रभुसेवा तो स्वयं ही करता था। ठाकोरजीके मंदिरकी सफाई भी करता था। वैसा करनेसे वैष्णवोंकी चरणरजका लाभ मिलता है। भागवतमें स्पष्ट लिखा है कि अंबरीश भगवान्के दर्शनके लिए खुले पांव पैदल ही जाता था। मानो कि हम अंबरीशका पूरा पूरा अनुकरण नहीं कर सकते। किंतु उनका कुछ न कुछ तो अनुकरण करना ही चाहिए।

एक बार तो अंबरीशने भगवान् श्री कृष्णकी आराधनाके हेतु एक वर्ष तक एकादशी करनेका व्रत लिया था।

एकादशीव्रत सभी व्रतोंसे श्रेष्ठ है। इसके दो प्रकार हैं- निषेध व्रत और परिपालन व्रत। अन्नाहारसे दोष न हो इसके लिए निषेध व्रत किया जाता है। भगवान्की आराधनाके हेतु किया गया भागवतव्रत सुखदायी है। एकादशीका व्रत त्रिदिवसीय है। दशमीके दिन एक बार भोजन करें। हो सके तो हविष्यान्नका भोजन करें, दूध और चावल-सा सात्विक आहार करें। इस दिन अजीर्ण हो जाय उतना भोजन न करें। एकादशी तो यदि शक्य है तो निर्जला ही की जाए। ऐसा न हो सके तो दूध या ऋतुफलका संयमपूर्वक आहार करें। ऐसा करने पर ही इस व्रतका फल मिलेगा, अन्यथा नहीं।

व्रत करनेका विचार दृढ होगा तो भगवान् शक्ति देंगे। एकादशी करनेका संकल्प करोगे तो प्रभु सहाय करेंगे। सत्यनारायणकी कथामें उस कठियारे (लकडी काट कर बेचनेवाला) की बात आती है जिसने अपने पास पैसे न होते हुए भी सत्यनारायणकी पूजाका व्रत लिया और परमात्माने उसका संकल्प परिपूर्ण किया।

परमात्मा सत्कर्ममें हमेशा सहायभूत होते हैं। लोग मानते हैं कि एकादशी क्या आई दीवालीके आगमनका संदेश आ गया। ऐसा कभी न सोचा जाय। एकादशीके दिन घरमें अन्न पकाया तो क्या, उसका दर्शन तक न किया जाय। इस दिन अन्नमें सभी पापोंका वास होता है। वे सब उस अन्न खानेवालेके शिर पर आ पहुंचते हैं। एकादशीके दिन पान-सुपारी भी न खायी जाए, दिनको सोया भी न जाए। रातको एक-दो घंटा भजन अधिक करें। इस दिन पंढरपुरमें विठ्ठलनाथजी भी नहीं सोते।

पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और एक मन-इन सभीको प्रभुमें लगाए रखना ही एकादशी है। यद्यपि आज तो लोग एकादशीमें ग्यारह रसोंको भोगते हैं और उसे दीवालीका लघु रूप ही बना लेते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसी एकादशीसे कोई फल नहीं मिल पाता।

उप : समीप और वास : रहना। उपवासका अर्थ है प्रभुके समीप रहना। और वही है सच्ची एकादशी।

द्वादशीके दिन एक ही बार भोजन करो। सुपात्र ब्राह्मणकी सेवाके बाद प्रसाद ग्रहण करो। द्वादशीके दिन दो बार भोजन करनेसे एकादशीव्रतका भंग हो जाता है।

एकादशीव्रत विधिपूर्वक करो। यदि विधिपूर्वक न किया जा सके तो मर्यादानुसार अन्नाहारका त्याग करके फलाहार करो। यह व्रत आरोग्यकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। लोग आजकलके डॉक्टरोंका विश्वास करते हैं किंतु व्यास जैसे महान् ऋषि-मुनियोंके शब्दोंका नहीं। डॉक्टर टाइफॉइड कह कर इक्कीस दिन अनशन कराए तो लोग कर लेते हैं किंतु एकादशीको मात्र एक दिन अनशन नहीं करते हैं। एकादशी न करनेवालेको ऐसी एक साथ कई एकादशियाँ अनिवार्यतः करनी पडती है।

राजा अंबरीशने विधिपूर्वक एकादशीका व्रत किया और व्रतकी पूर्णाहुतिके समय यमुना किनारे आए। वहां उन्होंने स्नान किया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके व्रतकी पूर्णाहुति करनेकी तैयारी करने लगे। इतनेमें वहां मुनि दुर्वासा अतिथि बन कर आए। भगवान्‌को भोग लगा दिया था। राजाने मुनिका स्वागत करते हुए कहा, पधारिए महाराज। मेरे यहां प्रसाद ग्रहण कीजिए। दुर्वासाने कहा, मैं मध्याह्न कर्म आदिसे निवृत्त होकर आता हूं।

ईश्वरकी धर्ममर्यादा तोडने जैसा कोई और पाप नहीं है। ईश्वरकी धर्ममर्यादाका उल्लंघन करोगे तो भक्ति असफल रहेगी। ईश्वरके साथ तन्मयता होनेके बाद देहभान विस्मृत होने पर यदि धर्ममर्यादा छूट जाए तो कोई आपत्ति नहीं है। किंतु सभानतासे कभी धर्मकी मर्यादाका उल्लंघन होना नहीं चाहिए।

इधर राजाको त्रयोदशीके पहले व्रत छोड कर प्रसाद लेना है और उधर दुर्वासा संध्या-पूजामें ऐसे लीन हो गए हैं कि उन्हें समयका भान ही नहीं रहा है।

राजाको चिंता हो रही है। ब्राह्मणोंको भोजनके लिए आमंत्रण दिया गया है। उन्हें भोजन करानेके पहले तो भोजन किया नहीं जा सकता। यदि मैं प्रसाद ग्रहण कर लूं तो ब्राह्मणकी मर्यादाका भंग होता है और ग्रहण न करू तो त्रयोदशीका आरंभ हो जाने पर व्रत भंग होने जा रहा है। द्वादशीकी समाप्तिमें कुछ ही पल शेष हैं। ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर राजाने प्रसाद ले लिया।

राजाने दुर्वासाका स्वागत किया। दुर्वासाने अनुमान करके मान लिया कि राजाने प्रसाद ले लिया है। उन्होंने राजासे कहा:-राजन्, तूने मुझे आमंत्रण तो दिया किंतु भोजन करके अच्छा नहीं किया। मैं अतिथि और मुझे ही बाकी रख कर तूने भोजन कर लिया? यह कैसी है तेरी विष्णु भक्ति?

राजा:- मैंने तो मात्र जलपान ही किया है, महाराज।

किंतु दुर्वासा कब सुननेवाले थे? उन्होंने क्रोध वश राजाकी एक भी न सुनी।

जब तक दुर्वासना है तब तक क्रोध भी शेष ही है।

दुर्वासाने अपने शिरकेशमेंसे कृत्या उत्पन्न की और उसे राजाको मारनेकी आज्ञा दी।

कृत्या अंबरीशको मारने चली तो अंबरीशकी प्रार्थनासे भगवानने सुदर्शन चक्र छोड़ा और कृत्याकी हत्या की। अब वह सुदर्शन चक्र दुर्वासाके पीछे दौड़ चला। मुनि एक लोकसे दूसरे लोक भागने लगे किंतु चक्रने पीछा न छोड़ा। दुर्वासाकी रक्षा कोई न कर सका। अंतमें वे वैकुंठमें आकर नारायणसे प्रार्थना करने लगेः– भगवान्, मेरी रक्षा कीजिए। नारायणने स्वागत किया तो मुनिने कहाः– मेरे पीछे आपका चक्र दौड़ रहा है, मेरी रक्षा करें।

भगवान् मुनिसे कहने लगेः– जो वैष्णव अनन्य भावसे मेरी सेवा करके मुझे उसका सर्वस्व अर्पण करता है उसे मैं भी अपने सर्वस्वका दान करता हूं। मैं भक्ताधीन हूं। मेरा चक्र इस समय राजा अंबरीशकी आज्ञाके आधीन है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

दुर्वासाजी, मैं तो पूर्णतः भक्ताधीन हूं। मैं लेश मात्र भी स्वतन्त्र नहीं हूं। मेरे भोले भाले सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने वसमें कर रखा है। भक्तजन मुझसे प्रेम करते हैं, मैं भक्तजनसे।

भक्तके आगे न तो मैं अपनी परवाह करता हूं और न तो लक्ष्मीकी। भक्त मेरे लिए सब कुछ छोड़ कर मेरी शरणमें आते हैं। मेरे लिए वे अपने सर्वस्वका त्याग करते हैं। मुझे छोड़ कर उनको अन्य कोई आश्रय नहीं है। ऐसे भक्तोंको त्यजनेका विचार मात्र भी मैं कैसे करुं?

भक्तोंने मेरे हृदयको वशमें कर लिया है। वे मुझे अत्यंत प्रिय हैं। मेरे सिवा अन्य किसी भी प्रकारकी मुक्तिकी वे कभी इच्छा तक नहीं करते हैं। मैं भक्तोंका हृदय हूं और भक्तजन मेरा हृदय है।

भगवान् कहते हैंः—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

भा. ९-४-६५

अपनी पत्नी, पुत्र, घर, स्वजन, धन, इहलोक, परलोक, प्राण आदि सब कुछका त्याग करके जो मेरी शरणमें आए हैं उनका त्याग मैं कैसे करुं?

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

भक्त मुझे भक्तिसे वशमें कर लेते हैं।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।

मेरे भक्तजन मेरा हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूं।

भगवान् कहते हैं : तप और विद्या अति उत्तम है। फिर भी उसे यदि विनय-विवेकका सहारा न हो तो व्यर्थ ही है। आप तपस्वी हैं और आपके पास प्रवल शक्ति भी है। किंतु आपने उसका दुरुपयोग किया। आप ही तो जरा सोचें। क्या अंवरीशने कोई अपराध किया था? उसकी कोई क्षति थी? उसने व्रतके पालनके हेतुसे ही मात्र जलपान ही किया था। फिर भी आप क्रोधित हो गए। आप उसीके पास जाइए और उससे प्रार्थना करके क्षमा मांगिए। यदि भक्तराज अंवरीश क्षमा करेंगे तभी इस सुदर्शन चक्रकी गति रुकेगी।

दुर्वासा अंवरीशके पास आए और क्षमायाचनाके लिए उन्हें प्रणाम करने जा रहे थे कि राजाने कहाः- नहीं, नहीं, महाराज। आप वंदन करें यह शोभास्पद नहीं है। प्रणाम तो मुझे ही आपको करना चाहिए।

राजाने सुदर्शन चक्रसे प्रार्थना कीः- शात हो जाओ। यदि आज दिन तक मैंने कभी कोई दान, पुण्य, यज्ञ, सेवा की है तो उन सवके पुण्यसे तुम्हारा वेग शांत हो जाए। और सुदर्शन चक्र शांत हो कर वापस लौट गया।

अवरीशकी कथामें भी एक रहस्य है। अंवरीश शुद्ध भक्तिका स्वरूप है। अतः चरित्रके आरंभमें सभी इन्द्रियोंकी भक्ति वताई गई है। अंवरीशका चरित्र भक्तिका चरित्र है।

भक्तिमार्गमें दुर्वासा अर्थात् दुर्वासना वाधा उपस्थित करती है। मैं ही वडा हूं। और वाकी सव छोटे हैं, ओछे हैं ऐसी दुर्भावना, दुर्वासना है। सुखको मैं ही भोगुं ऐसी भावना भी दुर्वासना ही है। दूसरोंको दुःखी करनेकी दुर्वासना भक्तिमें वाधारूप है।

भक्ति करते हुए यदि अहंकार हुआ तो मान लो कि दुर्वासना आ गई। दुर्वासनामेंसे अभिमान जागता है और अभिमानसे क्रोध। क्रोध कृत्या-कर्कशा वाणीको उत्पन्न करता है। कृत्या-कर्कशा वाणी भक्तिको मारनेकी तैयारी करती है तो ज्ञानरूपी सुदर्शन चक्र भक्तिको वचाने आ जाता है। ज्ञान कृत्याको विनष्ट करता है। यदि भक्ति शुद्ध है तो कर्कशा वाणी उसे कुछ भी नहीं कर सकती है। भक्तिकी रक्षा सुदर्शन चक्र अर्थात् ज्ञान करता है।

सभीमें श्री कृष्णका दर्शन ही सुदर्शन है। भक्तिके निकट जव कृत्या-कर्कशा वाणी आती है तो वैष्णव उसका ज्ञान-सुदर्शन-चक्रसे नाश करते हैं। यदि मन निंदासे प्रभावित हुआ तो वह सच्चा वैष्णव नहीं है। कर्कशा वाणीको सहन कर लोगे तो सुखी होगे। कर्कशा वाणी वोलनेवाला ही अधिक दुःखी होता है।

यदि भक्ति शुद्ध है तो ज्ञान और वैराग्य दौडते हुए आएंगे। जैसे कि सुदर्शन चक्र आया था। और ज्ञान-वैराग्य कृत्या-कर्कशावाणी, निंदाका नाश करेंगे।

दुर्वासाने राजा अंवरीशको कटु वचन सुनाए फिर भी वे क्रोधित नहीं हुए थे। जिसके मस्तक पर ठाकोरजी विराजते हैं वही अंवरीश है। जव दुर्वासाने प्रशंसा की तव भी राजाको वैसी कोई प्रसन्नता नहीं हुई थी। अर्थात् वे दोनों स्थितिमें एक-से ही रहते थे।

सच्चा भक्त निंदा और स्तुतिको एक समान मानता है। 'तुल्यनिंदास्तुतिः।' यदि भक्तको कोई कुछ कर्कश वात कह दे, उसकी निंदा करे फिर भी अंवरीशकी भांति कोई असर नहीं होता।

भक्ति करो तो अंबरीशकी भांति करो। अंबरीशकी भक्ति ऐसी सच्ची और बलशाली थी कि भगवान्‌को भी कहना पडा था: ' अहं भक्तपराधीनः। '

सभीके प्रति समभाव, समता रखे वही ज्ञानी है। सभीमें ईश्वर है ऐसा ज्ञान होना ही सच्चा ज्ञान है।

ईश्वरस्वरूपके ज्ञान बिना न तो भक्ति होती है या न तो भक्ति दृढ होती है। अतः भक्तिमें ज्ञान भी आवश्यक है।

विषयके प्रति जब तक वैराग्य नहीं उत्पन्न होता तब तक भक्ति हो नहीं सकती। भक्तिके पहले ज्ञान और वैराग्य आते हैं। जहां भक्ति है वहां ज्ञानरूपी सुदर्शन चक्र रक्षा करता है।

भक्ति सिद्ध हुई नहीं कि सभी शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हो गया।

नामकी महिमा भी बहुत बडी है।

नाम लिया उन्होंने जान लिया सकल शास्त्रका भेद।
बिना नाम नरकमें गया पढ पढ चारों वेद ॥

अंबरीशने दुर्वासाको प्रेमसे भोजन कराया और क्षमा मांगी। सच्चा वैष्णव था अंबरीश तो। न तो वे दुर्वासाके क्रोधसे व्यथित हुए और न तो उनकी प्रशंसासे सुखी।

सच्चा वैष्णव कभी दूसरेका दोष नहीं देखते हैं जब कि अपना ही दोष बार बार देखते हैं।

अंबरीशने माना कि जीत उनकी नहीं ईश्वरकी हुई है। जो मानता है कि जीत अपनी हुई है उसकी हार अवश्य होती है।

जरा सोचो तो। इन राजाओंका इतिहास कहनेकी शुकदेवजीको आवश्यकता ही क्या थी? किंतु अंबरीश जैसे राजा शुकदेवजीको बहुत प्रिय हैं। धन्य है राजा अंबरीशको। वे घरमें भी संन्यासी-सा जीवन जीते हैं जब कि मैं (शुकदेवजी) वनवासी होनेके बाद संन्यासी-सा जीवन जी रहा हूं।

शुकदेवजी सोचते थे कि सभी कुछ त्याग कर, वनवासी बन कर संन्यासी हुआ। जब कि यह अंबरीश तो राजप्रसादमें, वैभवयुक्त वातावरणमें रानियोंके साथ रह कर भी संन्यासी-सा जीवन जी रहा है। मैं सभी कुछ छोड कर प्रभुके पीछे दौड रहा हूं जब कि इधर अंबरीश घरमें बस कर भी द्वारिकाधीशके साथ है। निःसंदेह वह मुझसे श्रेष्ठ है। यही कारण है कि मैंने इसकी कथा सुनाई।

ज्ञान प्रभुको परतंत्र नहीं कर सकता, बांध नहीं सकता। भक्ति ही भगवान्‌को बांधती है, परतंत्र करती है। ज्ञानी महात्मा ब्रह्मानुभव तो कर सकते हैं किंतु भगवान्‌को स्वाधीन नहीं कर सकते, पराधीन नहीं कर सकते हैं, बांध नहीं सकते हैं।

भक्ति माता है और ज्ञान-वैराग्य संतान। जहां शुद्ध भक्ति है वहां ज्ञान-वैराग्य दौडते हुए आ जाते हैं।

मनु महाराजको पुत्र हुआ– इक्ष्वाकु। वह वशमें मांधाता हुआ। इस राजा मांधाताकी पचास कन्याओंका विवाह सौभरी ऋषिके साथ हुआ।

सौभरी तपश्चर्या करके सिद्ध बने। सो वहां दर्शनार्थी जनताकी बडी भीड जमती रहती थी। भीड जमा होनेसे भजनमें भंग होना स्वाभाविक है। तो सौभरीने सोच–विचार कर यमुनाजीमें प्रवेश किया और वहां जलमें तप करने लगे।

सौभरीके मनमें एक वार विचार आया– परमात्माकी माया मुझे बिलकुल प्रभावित कर नहीं सकती। तो भगवान्ने मायाकी रचना की। ऋषिने वार वार एक मत्स्ययुगलकी प्रेम-कलि देखी तो उनके मनमें भी काम जागा और वैसा ही सुख भोगनेकी इच्छा करने लगे। तो पचाशी वर्षकी वृद्धावस्थामें भी विवाह करनेकी उन्होंने सोचा और राजा मांधाताके पास आए।

राजाने सोचा कि यदि इस वृद्ध मुनिसे किसी कन्याने विवाह किया तो वह जीवन-भर दुःखी होगी और विवाह न होगा तो वे मुझे ही शाप देंगे। फिर मुनिसे उन्होंने कहाः– आप राजमहलमें पधारें। जो भी कन्या आपको पसंद आएगी, उसीसे आपका विवाह होगा।

भगवान् शंकराचार्यने कहा हैः—

अंगं गलितं पलितं मुंडं दशनविहीनं जातं तुंडम्।
वृद्धो याति गृहित्वा दंडं तदपि नि मुंचति आशा पिंडम्।
भज गोविंदं भज गोविंदं गोविदं भज मूढमते ॥

ऋषि सौभरीके मनमें विवाहभावना जागी तो वे स्वरूप वदल कर गए। वे सिद्ध थे सो सुंदर स्वरूप धारण करके राजमहलमें पहुंचे। उनका स्वरूप देखकर उनसे विवाह करनेके लिए पचासों राजकन्याएं आपसमें झगडने लगीं। ऐसा हाल देख कर राजाने सभी कन्याओंका विवाह इस ऋषिसे ही कर दिया। सौभरी सुखोपभोग करने लगे।

किंतु आगे चल कर ऋषिकी विवेक बुद्धि जाग्रत हुई। वे पछताने लगे। अरे, मैं यह कैसा अनर्थ कर बैठा? मैं था तो तपस्वी किंतु मत्स्यदंपतीकी प्रेमकेलि देख कर मतिभ्रष्ट हुआ और विलासी वन गया।

जो साधना करना चाहता है, जो इसी जन्ममें साध्यकी प्राप्ति करना चाहता है उसे काम सुखके भोगीका संग करना नहीं चाहिए। कामसुखके भोक्ताका संग भी कुसंग ही है। स्त्रीसंगीका संग भी कुसंग है। यह स्त्री–पुरुष संबंधकी नहीं, कामकी निंदा है।

संगके रंगकी यह घटना है। सो मोक्षकी इच्छा करनेवालेको चाहिए कि मैथुनधर्मी स्त्री–पुरुषोंका और उनके संगीका भी सग न करे।

मुमुक्षुः मिथुनव्रतिनां संग त्यजेत्।

नारी और नारीके संगीका संग भी साधकको करना नहीं चाहिए।

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संग त्यजेत्।

सौभरी ऋषिने जगत्को उपदेश दिया है कि कामी और विलासी लोगोंके बीच रह कर ब्रह्मज्ञानी वन पाना वडा कठिन है। मानवके साथ रह कर मानव वनना सरल है। सत्संग न किया जा सके तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु कामीका संग तो कभी न करना।

इसके बाद सगर नामक चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसके यज्ञका घोड़ा इन्द्रने छुपा लिया तो उसके पुत्र घोड़ेकी खोजमें निकल पड़े। उन्होंने अपने घोड़ेको कपिल मुनिके आश्रममें देखा तो मान लिया कि इस ऋषिने ही घोड़ा चुराया है। मारो उसे, यही चोर है ऐसा कहते हुए वे ऋषिकी ओर बढ़ ही रहे थे कि सबके सब कपिलकी तेजोग्निमें जल कर भस्मीभूत हो गए।

अब इनको ढूंढनेके लिए सगरका पौत्र अंशुमान निकला। उसने कपिल भगवान्की स्तुति की तो मुनिने उससे कहाः– यह घोड़ा तेरे पितामहके यज्ञका है। ले जा इसे।

अंशुमानने ऋषिसे अपने चाचओंके उद्धारका उपाय पूछा। तो ऋषिने कहा: इनका उद्धार गंगाजलसे ही हो सकता है। यदि गंगाजी यहा पधारें तभी शक्य हो सकता है। और तो कोई उपाय है ही नहीं।

गंगाको प्रसन्न करनेके लिए अंशुमानने, उसके पुत्र दिलीपने, और दिलीपके पुत्र भगीरथने भी तप किया। तीन पुरुषोंका पुण्य एकत्र हुआ तभी गंगावतरण हुआ।

तीन–चार जन्मका तप, पुण्य एकत्र होने पर ही ज्ञानगंगाका अवतरण होता है।

भगीरथ राजाने भगवान् शंकरको प्रार्थना की तो गंगाकी धाराको शिर पर झेलनेके लिए वे तैयार हुए। शिवजीने अपनी जटामें गंगाजीको उतारा। और वहांसे धरती पर प्रवाहित हुई। गंगाजी अनेक स्थानोंको पवित्र करती हुई पातालमें गई। गंगाजीका स्पर्श होने पर उस भस्ममेंसे दिव्य पुरुष उत्पन्न हुए। इस प्रकार सगरके पुत्रोंको सद्‌गति प्राप्त हुई।

राजन्! गंगाजलका स्पर्श यदि मृत्युके पश्चात् भी मुक्ति देता है तो जीते जी उसका पान करनेसे सद्‌गति मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

जीवको शिव होना है। यदि ज्ञानगंगाको वह अपने शिर पर धारण करे तो शिव बना जा सकता है। गंगा ज्ञानका स्वरूप है।

गंगाजीको भगीरथ राजाने अवतरित किया अतः उनका एक नाम भागीरथी भी हुआ। गंगाजी नारायणके चरणोंमेंसे प्रगट हुई हैं। गंगाजी नारायणके चरणोंमें हैं तो शिवजीके शिर पर।

आगे चल कर इस वंशमें एक खट्वांग नामक राजा हुआ। उसने देवोंकी ओरसे जाना कि दो घटिकाके बाद उसकी मृत्यु होगी तो उसने सब कुछ छोड़ कर भगवान्से मन जोड़ लिया। परमात्माका ध्यान करते हुए उसने देह त्याग किया। उसे सद्‌गति मिली। इस प्रकार मात्र दो घटिका (उनतालीस मीनट) में खट्वांगने आत्म कल्याण कर लिया।

खट्वांगके बाद दीर्घबाहु राजा हुआ और उसके बाद हुआ रघु। रघु महाज्ञानी और उदार था। अंतमें तो उसने सर्वस्वका, धोती तकका त्याग कर दिया था। उनकी बड़ी कीर्ति फैली। इसी कारणसे सूर्यवंशका नाम हुआ रघुवंश। रघु राजाने कई यज्ञ याग भी किए थे।

जो भगवान्के वंशको (संबंधको) सम्भालता है उसके अपने वंशका कभी नाश नहीं होता।

राजा रघुके घर अज नामक राजा हुआ और अजके बाद दशरथ। दशरथ अयोध्यामें राज्य करते थे। वे पूर्वजन्ममें ब्राह्मण थे।

इस पूर्वजन्मके ब्राह्मणका नियम था गांवके बाहर आए हुए मंदिरमें रणछोडरायजीको प्रतिदिन एक हजार तुलसीदल चढाना। वृद्ध हो चले, पचासी वर्षके हो गए। एक बार ज्वर आया तो उन्होंने ज्वरसे कहा, तू आए इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है किंतु मेरी ठाकोरजी-पूजाके बाद आना। मेरी सेवाका क्रम अटूट रहना चाहिए ऐसा संकल्प सुनते ही ज्वर भाग गया।

वे मंदिरमें सेवा–पूजाके लिए आए तो वहां किसीके रोनेकी आवाज सुनाई दी। देखा तो एक पिशाचिनी रो रही थी। वह कहने लगीः– पूर्व जन्ममें मैंने दुराचार किया था। मेरे पतिको मैंने बहुत दुःख दिया था सो मुझे इस जन्ममें पिशाचिनी होना पडा। आप कृपया मेरा उद्धार करें।

ब्राह्मण दयालु था। उसने प्रतिदिनके नियमानुसार विष्णु सहस्र पाठके साथ तुलसी-दल अर्पण करते हुए भगवान्से प्रार्थना कीः– हे प्रभु! यह पापी जीव व्यथित हो रहा है। मैं अपना सारा पुण्य अर्पण करता हूं। आप इसका उद्धार करें। प्रभु प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणसे कहाः– अगले जन्ममें तुम दशरथ होंगे और यह पिशाचिनी कौशल्या। मैं पुत्र रूपसे तुम्हारे घरमें आऊंगा। अपना सारा पुण्य तुमने एक जीवके उद्धारमें लगा दिया है अतः वह अनंत, अमाप हो गया है। ब्राह्मणने वहीं शरीर त्याग दिया।

वही ब्राह्मण अब इस जन्ममें दशरथ हुए। उनकी तीन रानियां थी : कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। कौशल्या धर्मपत्नी थी और सुमित्रा–कैकेयी भोगपत्नी। तीन पत्नियां होने पर भी दशरथ निःसतान थे सो वे वसिष्ठके पास गए। वसिष्ठने कहाः– पुत्रकामेष्टि यज्ञ करो। इस यज्ञमें तुम्हारे चार पुत्र होंगे।

पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया गया तो यज्ञकुंडमेंसे क्षीर लेकर स्वयं अग्निदेव प्रगट हुए। उन्होंने राजासे कहाः– इस प्रसादको अपनी रानियोंको खिला देना। आपके यहां दिव्य संतान होगी।

वसिष्ठ मुनिने राजाको आज्ञा दीः– धर्मपत्नी कौशल्याको इस प्रसादका अर्ध भाग देना। और बाकी रहे प्रसादको कैकेयी–सुमित्राको बांट कर देना। दशरथ राजाने वैसा ही किया।

तुलसीदासने रामचरितमानसमें कैकेयीकी ओरसे बडी सफाई दी है किंतु एकनाथ महाराजने उसे कर्कशा ही बताया है।

कर्कश वाणीसे पतिका अपमान करनेवाली स्त्री ही कैकेयी है।

कैकेयीने दशरथका अपमान किया, झघडा किया कि उसे प्रसाद क्यों अतमें दिया गया। उसने प्रसाद उठा कर बाहर फेंक दिया। उस प्रसादको समडी (गिद्ध जैसा एक पंखी) उठा गई और एक पर्वत पर आई। वहां अंजनीदेवी तपश्चर्या कर रही थीं। उस समडीने अंजनीदेवीके शिर पर छाया की और प्रसाद भी दे दिया।

अंजनीदेवीने प्रसाद खा लिया तो उसको हनुमानजी प्राप्त हुए।

अब कैकेयीको प्रसाद गवानेका दुःख और पश्चात्ताप होने लगा। कौशल्या बडी उदार थी। उसने अपने भागके प्रसादसे कुछ अंश कैकेयीको दिया। सुमित्राने भी कैकेयीको थोडा–सा प्रसाद दिया। इस प्रकार तीनों रानियोंने प्रसाद खाया।

अपने घरको अयोध्या-सा बनाओ। जहां युद्ध, क्लेश नहीं है वहीं अयोध्या है। सरयू नदी अर्थात् भक्ति प्रवाहके किनारे पर रहने पर शरीर भी अयोध्या बनेगा। और ऐसी नगरीमें बसा हुआ जीवात्मा दशरथ-जीतेन्द्रिय बनेगा।

मानव जीवन क्षणभंगुर है ऐसा मान कर मनुष्यको निरपेक्षता और नम्रता धारण करनी चाहिए।

अपने इन्द्रियरूपी अश्वोंको नियंत्रित करके शरीररथको योग्य मार्ग पर चलाओगे तो रामचंद्रजी पधारेंगे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखो, जीतेन्द्रिय बनो।

ईश्वरकी सलाह लेना मनरामकी नहीं। मन विश्वासघाती है।

दस इन्द्रियांरूपी अश्वोंको नियंत्रित करके शरीर रथको लेकर जो रामचंद्रकी ओर जाता है वही दशरथ है। ऐसे दशरथके घर भगवान् पुत्ररूपसे आते हैं।

दशानन रावण-विषयोंके अमर्याद भोक्ता-के घर भगवान् काल रूपसे आता है।

दशरथ जीवात्मा है। इन दस इन्द्रियोंको वशमें करके जो जीतेन्द्रिय बन सकता है वही दशरथ है।

जो सभीको प्रसन्न करता है उसके यहां सर्वेश्वर आते हैं। दशरथ सभी रानियोंकी इच्छा जान लेते थे। सुमित्रा कहती है कि वह तो कौशल्याकी सेवामें ही रहना चाहती है। दशरथने सोचा कि इसका पुत्र महाज्ञानी होगा।

रामके गर्भजन्मके समयसे ही कौशल्या तो ईश्वरके ध्यानमें लग गई। सहज सुमिरन होते है। कौशल्याके तो रोमरोमसे परमात्माके मंगलमय नामका जप हो रहा था।

दशरथने कौशल्यासे पूछाः- महाराणी, आपकी क्या इच्छा है?

कौशल्याः- इच्छा ही तो दुःखका कारण है। मुझे सुखकी इच्छा नहीं है। मैं तो आनंदरूप हूं। मुझे अकेले ही ध्यान करने दें।

दशरथने वशिष्ठसे कहाः- गुरुजी, कौशल्या तो ऐसी बातें कर रही हैं।

वशिष्ठः- यह तो शुभ चिह्न है।

नव मास परिपूर्ण होने आए थे। एक रात्रिको दशरथने स्वप्नमें देखा कि उनके आंगनमें कुछ ऋषि महात्मा आए हैं और जगा रहे हैं। राजाने स्वप्नमें ही सरयू स्नान किया। श्री नारायणका पंचामृतसे अभिषेक किया। स्वप्नमें ही लक्ष्मीनारायणकी आरती और दर्शन कर रहे थे। उन्हें लगा कि प्रभु भी प्रसन्न हैं।

इस सुंदर स्वप्नकी समाप्तिके बाद वे जाग गए। अच्छे स्वप्नके दर्शनके बाद सोना नहीं चाहिए। राजाने सोचा कि इस स्वप्नके विषयमें गुरुजीसे निवेदन करना चाहिए। वे वशिष्ठके पास आए।

वशिष्ठने पूछाः- आप इस प्रातःकालमें क्यों आए हैं?

दशरथः- मैंने आज स्वप्नमें लक्ष्मीनारायणकी आरती की। मैंने यह भी देखा कि नारायणका दिव्य तेज कौशल्याके गर्भमें आ रहा है।

वशिष्ठः- इस स्वप्नका फल उत्तम होगा। तुम्हारे घर भगवान् नारायणके आगमनका इसमें सूचन है। मुझे विश्वास है इस स्वप्नका फल तुम्हें चौवीस घंटोंमें ही मिलेगा।

राजा आनंदसे झूमने लगे। उनके घर स्वयं भगवान् जो आ रहे हैं। उन्होंने सरयूमें स्नान किया और भगवान्की पूजामें लीन हो गए।

इधर कौशल्या भी प्रभुध्यानमें मग्न हैं। आज परम पवित्र रामनवमीका दिन है।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहां चलि आवहिं॥

भगवान् शंकर जोशीके वेशमें अयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे हैं। उनके इष्ट देव हैं बालक राम। प्रातःकालसे ही देव-गंधर्व प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वैष्णव जन जब तक अत्यंत आतुर नहीं होते हैं तब तक भगवान्का जन्म नहीं होता।

परम पवित्र समय आया। चैत्र मास, शुक्ल पक्ष और नवमी तिथि। मध्याह्नका समय हुआ और...

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महातारी मुनिमन हारी अद्भूत रूप बिचारी॥

लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भुषन बनमाला नयन विशाला शोभा सिंधु खरारी॥

कह दुह कर जारी स्तुति तोरी कोहि विधि करौं अनंता।
माया गुन ज्ञानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥

करुना सुख सागर सब गुनआगर जेहि गावहि श्रृति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकांता।

दोहा

विप्र धेनु सुर संत हित लिन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपाल॥

सियावर रामचंद्रकी जय।
रघुपति रामचंद्रकी जय॥

दशरथके घर साक्षात् परब्रह्म श्री हरि प्रगट हुए। जो निर्गुण थे वही भक्तोंके प्रेमके कारण आज सगुण बन गए।

अगुन अरूप अलख अज कोई।
भगत प्रेम-बस सगुन सो होई।

वेदोंने जिनका इस प्रकार वर्णन किया है वही श्री हरि भक्तोंके हितार्थ आज दशरथके घर पुत्रका रूप लेकर आए हैं।

बिनु पद् चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी वक्ता बड जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहई घ्रान बिनु बास अशेषा॥
अति सब भांति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाई नहि बरनी॥
जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोई दशरथ सुत भगत हित कोशलपति भगवान्॥

आकाशमेंसे देव और गंधर्वोंने पुष्प वृष्टि की। आज बताया कि मैं अपने भक्तोंकी चारों ओरसे रक्षा करता हूं। सो चतुर्भुज रूपसे प्रागट्य हुआ।

माताजीने स्तुति की– प्रभु, मेरे लिए आप बालक बन जाइए। मुझे माता कह कर पुकारें। माताजीको उन्होंने दीखाया कि वे परमात्मा है। उनका चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया। और छोटे छोटे दो हाथोंवाले बालक बन गए।

दासियोंमें भी यह शुभ समाचार फैल गया। कौशल्याने दासीको नवलखा हार दिया। मेरा राम सुखी होगा। मैं आनंदसे दे रही हूं। दासीने कहा: मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए। मैं तो रामको खिलाना चाहती हूं। राम दासीकी गोदमें गए। आज उसका भी ब्रह्मसंबंध हो गया।

दासी दौडती हुई राजाके पास आई और बधाई दी। लाल भयो है। लगता है कि साक्षात् नारायण आए हैं। वृद्ध दशरथजीके घर पुत्र जन्म हुआ। और पुत्र भी साधारण नहीं, साक्षात् परमात्मा पुत्रका रूप लेकर आए हैं। दशरथजीने वस्त्रादिसे शृंगार किया।

प्रथम गणपतिकी पूजा की गई। दान तो इतना दिया गया कि सारी अयोध्यामें कोई भी दरिद्र न रहा। वसिष्ठने वेदमंत्रोंका उच्चार करके मानसिक अभिषेक किया। दशरथजी अंतःपुरमें आए। आज रामके दर्शनसे सारी दासियां इतनी हर्षान्वित हो गई थी कि वे देह भान भी भूल गई थीं। देह–भान ही नहीं है तो मान–मर्यादा और लाजकी बात ही किया!

परमानंद हो गया। देव–गंधर्वके आदि भी सूक्ष्म रूपसे पुत्र रामके दर्शन कर रहे हैं।

रामजन्मसे सभी देवोंको आनंद हुआ किंतु एक चंद्रको दुःख हुआ। रामलालाके दर्शनसे सूर्यनारायण आनंदसे स्तब्ध होकर स्थिर हो गए। आगे चलते ही न थे। सूर्यास्तके बिना चंद्र रामका दर्शन कैसे कर सके? तो चंद्रने रामसे प्रार्थना की– इस सूर्यको आदेश कि

वह आगे बढे। वह मुझे आपके दर्शन ही नहीं करने देता है। चंद्रको रोना आ गया। तो रामचंद्रने उसे आश्वासन देते हुए कहाः— आजसे मैं तेरा नाम धारण करूंगा। फिर भी वह प्रसन्न नहीं हुआ।

तो रामचंद्रने उससे कहाः— तू धीरज रख। इस बार मैंने सूर्यको लाभान्वित किया है। किंतु भविष्यमें कृष्णावतारके सबसे पहले तुझे दर्शन दूंगा। कृष्णावतारमें मैं रात्रिके बारह बजे जन्मुंगा। सो तुझे ही लाभ मिलेगा।

कृष्णजन्मके समय तीन व्यक्ति ही जाग रहे थे— वसुदेव, देवकी और चंद्र।

जो रात्रिके समय जागते रहे हैं उसे ही कनैया मिलता है। सोए हुएको कनैया नहीं मिलता। जागनेका अर्थ क्या है?

जानिये जीव तव हिं जग जागा।
जब सब विसव विलास विरागा॥

गीताजीमें कहा गया हैः—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

नित्य शुद्ध परमानंदको प्राप्त करनेकी ओर जो कभी ध्यान नहीं देते हैं उन सभी भूत-प्राणियोंके लिए जो रात्रि है उसी समयमें योगी जाग कर प्रभुस्मरण करते हैं। प्राणी जिस सांसारिक नाशवंत क्षणिक सुखोंमें जागते हैं वह रात्रि समान ही है। वैसे पुरुषोंको परमात्माका ज्ञान नहीं हो सकता।

वसुदेवजी—देवकीकी स्थिति तो देखो। संपत्ति, राज्य, संतति सब कुछ छीन गया। निरपराध होते हुए भी हाथ और पांवोंमें जंजीर लगा दी गई। फिर भी वे हमेशा प्रभुका स्मरण करते रहे।

दुःखमें भी प्रभुके नामका विस्मरण न करना। दुःखमें सचेत रह कर जो व्यक्ति ईश्वरका भजन करता है उसके घर स्वयं भगवान् आते हैं।

स्वामी विद्यारण्यने कहा है कि नल और राम जैसी विभुतियोंके जीवनमें भी दुःखद प्रसंग आए थे तो हम जैसे साधारण जनोंकी तो बात ही क्या करें? सो दुःखसे कभी न डरना।

वियोगमें कथा होती है, संयोग हुआ नहीं कि कथा बंद। जब तक जीवका ईश्वरसे विरह है तब तक कृष्णकथा है। जीव और ईश्वरके मिलनके बाद तो कथाका प्रश्न ही नहीं है।

भागवतके दशम स्कंधके चौदहवें अध्यायमें सुदामा चरित्रके समय शुकदेवजीको प्रेमको नियंत्रित करना पडा था, दबाना पडा था। यदि प्रेममें समाधि—सी लग जाए तो राजाका क्या हो?

दशरथने बाल स्वरूप देखा तो उनका हृदय प्रेमसे भर आया। दशरथके आनंदका वर्णन तो सरस्वती भी कर नहीं सकती है। पिता-पुत्रकी दृष्टि मिली। बालकने हंस दिया। दशरथ रामको मधु चटाने लगे। उन्होंने वसिष्ठजीसे वेदमंत्रोंका पाठ करनेको कहा।

वसिष्ठः- रामके दर्शन करने पर मैं वेदमंत्र तो क्या अपना नाम तक भूल गया हूं। मैं बोलूं तो क्या बोलूं?

दर्शनमें नामरूप भूलने पर दर्शनका बडा आनंद होता है। ब्रह्मदर्शनका आनंद होता है।

तत्र वेदा अवेदा भवन्ति।

ईश्वर दर्शन होनेके बाद तो वेद भी विस्मृत हो जाते हैं। ईश्वरके साक्षात्कारके बाद वेद भी मिथ्या है। ईश्वरके साक्षात्कारके बाद वेदकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रभुका साक्षात्कार होने पर वेद, जगत्के नाम-रूप और अपनापन सभी कुछ विस्मृत हो जाता है। सो वशिष्ठ कहते हैं कि मैं तो अपना नाम तक भूल गया हूं।

कौशल्या बालक रामको गोदमें उठा कर बाहर आई। अयोध्याकी प्रजाने रामलीलाके दर्शन किए। किसीको भूख और प्यास तकका भान नहीं था।

रामके बिना आराम नहीं है। जीवमात्र आराम चाहता है। जीवमात्र शांतिका उपासक है, ऐसी शांतिका जिसका कभी भंग न हो पाए। रामकी मर्यादाका पालन करोगे तो जीवनमें सच्ची शांति मिलेगी। मनुष्य रामकी जीवनमर्यादाको जीवनमें उतारता नहीं है अतः उसे सच्ची शांति नहीं मिलती है।

धर्मका फल है शांति। अधर्मका फल है अशांति। धर्मकी मर्यादा पालन न करने पर शांति नहीं मिलती। स्त्री और पुरुषको अपनी अपनी मर्यादामें रहना चाहिए। मानव जब मर्यादाका उल्लंघन करता है, अशांति आती है। धर्ममर्यादाके बिना ज्ञान, भक्ति या त्याग सफल नहीं हो सकते।

आज कल मंदिरोंमें और कथा-आख्यानोंमें भीड बहुत बढती जा रही है। लगता है कि आज कल ज्ञान और भक्ति बढ गए हैं। फिर भी शांति तो किसीको भी मिल नहीं रही है। इसका यही कारण है कि लोग धर्ममर्यादाका पालन करते ही नहीं हैं। लोग आज धर्मको भूल गए हैं। धर्मके बिना शांति नहीं है। धर्मकी मर्यादा कभी न तोडो। धर्मपालनके बिना ज्ञान और भक्ति व्यर्थ है। चंद्र, सूर्य, समुद्र कभी अपनी मर्यादाका उल्लंघन करते नहीं हैं। जब कि लोग तो थोडा-बहुत रुपया-पैसा, अधिकार या मान मिल जाने पर अपनेको लाट साहब मान लेते हैं। मुझे पूछने-रोकनेवाला है कौन?

तुम्हें ज्ञान दिया है धर्ममर्यादाके पालनके लिए, उल्लंघनके लिए नहीं।

रघुनाथजी मर्यादा पुरुषोत्तम और सभी सद्गुणोंके भंडार हैं। वे स्वयं परमात्मा होते हुए भी धर्ममर्यादाओंका पूर्णतः पालन करते हैं।

सभी दिव्य गुण जिसमें एकत्र होते हैं वही परमात्मा है। लक्ष्मण विवेकरूप, भरत वैराग्यरूप, शत्रुघ्न सद्विचारका स्वरूप है। भरत और शत्रुघ्न अर्थात् वैराग्य और सद्विचार यदि अयोध्यामें नहीं हैं तो दशरथ कैकेयीके आधीन हो जाते हैं।

चंदन और पुष्पसे रामकी सेवा करना अच्छी बात है किंतु उनकी मर्यादाका पालन करना तो सर्वोत्तम सेवा है। उनकी मर्यादाका पालन नहीं करोगे तो संभव है, वे तुम्हारी प्रार्थना नहीं सुनेंगे। भगवान्की आज्ञाओंका पालन करना ही उनकी सर्वोत्तम सेवा है। ऐसा न करने पर ईश्वर कहते हैं कि मेरा कहा तो मानता नहीं है सो तेरी सेवा मुझे स्वीकार्य नहीं है।

श्री रामका जीवन ऐसा तो पवित्र है कि उनके स्मरण मात्रसे हम पवित्र हो जाते हैं। वर्तन यदि रावण-सा है और जप रामके नामका है तो रामजपनका फल कभी नहीं मिलता। राम जैसा वर्तन होगा और रामनामका जाप होगा तभी कंठमेंसे अमृत झरेगा। रामके एक एक गुणको अपने जीवनमे उतारनेका प्रयत्न ही उनकी सर्वोत्तम सेवा है।

रामचंद्रजीका अवतार राक्षसोंके संहारके हेतु नहीं, मनुष्योंको उच्च आदर्श बतानेके लिए हुआ था। वे राक्षसोंको मारने नहीं, मानवको आदर्श मानवधर्म समझानेके लिए आए थे। उनका अवतार जगत्को मानवधर्मके उपदेशके लिए था।

वाल्मीकिने रामके लिए उपमान ढूंढा किंतु एक भी न मिला। राम तो राम ही हैं।

मनुष्य चाहे किसी भी देव या देवीमें श्रद्धा रखे, चाहे वह विष्णुको पूजे चाहे शंकरको, किंतु उसका वर्तन तो राम जैसा ही होना चाहिए। जिसका व्यवहार राम जैसा होगा उसीकी भक्ति सफल होगी।

कृष्णकी लीलाएं अनुकरणके लिए नहीं, श्रवण करके तन्मय होनेके लिए हैं। गोकुल-लीलामें पुष्टि है, द्वारिकालीलामें मर्यादा।

ऐसा नहीं है कि रामकी अमुक लीलाएं अनुकरणीय हैं और अमुक चिंतनीय। उनकी तो सभी लीलाएं अनुकरणीय है। वे सभी गुणोंके भंडार हैं। वे प्रत्येक स्त्रीको मातृभावसे देखते थे। किसी भी स्त्रीको वे कामभावसे नहीं देखते थे।

मनुष्य एक ओर पुण्य तो करता है किंतु दूसरी ओर पाप भी करता रहता है। परिणामतः उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता।

राम माता-पिताकी आज्ञा हमेशा मानते थे। कभी स्वच्छंदी न बनो। वे हमेशा दशरथ-कौशल्याको प्रणाम करते थे। आजकलकी प्रजा अपने मातापिताको प्रणाम करते हुए शर्माती है। तुच्छ है तुम्हारी इस पढाई जो तुम्हें माता-पिताको प्रणाम करनेसे रोकती रहती है। पिताकी धन-संपत्ति लेनेमें तुम्हें कोई शर्म-संकोच नहीं होता और वंदन करनेमें संकोच होता है, लाज आती है। माता पिता तो लक्ष्मी-नारायणका स्वरूप है। उन्हें वंदन करो।

रघुनाथजीकी उदारता और दीनवत्सलता जगतमें अजोड है। उन जैसा कोई राजा पहले न तो हुआ है और न तो कभी होगा।

ऐसा को उदार जग मांही
बिन सेवा जो द्रवे दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति योग विराग जतन करि नहि पावत मुनि ग्यानि।
सो गति देत गीध शबरी कहं, प्रभु न बहुत जियजानि ॥

तुलसीदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो।

राम चरित्र दिव्य है। उनका चरित्र सभीको डोलायमान करता है। सर्पको कान नहीं होते हैं। कारण जानते हैं इसका ?

शेष नाग सर्पोंका राजा है। उसीके फेन पर धरती थमी हुई है। रामकथाके श्रावणसे यदि शेष डोलने लगे तो धरतीका विनाश हो जाय। सो ब्रह्माजीने सोचा कि अच्छाई इसीमें है कि उसे कान दिए ही न जायं। वैसे यह तो कवि कल्पना ही है।

राममें सभी सद्‌गुण इकट्ठे हुए है। उन्होंने एक पत्नी-व्रतका पालन किया। अपने बडोंका जो भी अच्छा लगा उसे जीवनमें उतारा। उन्होंने दशरथसे सभी कुछ लिया किंतु बहुपत्नीत्वको नहीं लिया।

पुरुष यदि एक ही स्त्री (पत्नी) में काम भाव रखे और धर्मानुकुल कामोपभोग करे तो गृहस्थ होने पर भी वह ब्रह्मचारी ही है। कामको व्यापक न होने देना। उसे एक ही पात्रमें संकुचित कर दो। इस हेतुके लिए ही तो विवाहका आयोजन किया गया है। काम-भावको एक ही पात्रमें निहित करके उसका नाश करो।

निर्दोष तो केवल ईश्वर ही है। संभव है, गुरुमें भी कोई दोष हो। किंतु गुरुके दोषका अनुकरण करना नहीं चाहिए। राम किसी स्त्रीको और सीता किसी पुरुषको नहीं देखते थे। शास्त्रकी यह मर्यादा है। ऐसी मर्यादाका पालन करनेसे जीवन सुधरेगा। रामचंद्रने एक-पत्नी-व्रतका और सीताने एक पतिव्रतका पालन किया। ईश्वरकी धर्म-मर्यादाका जो पालन करे वही सच्चा मनुष्य है।

वाल्मीकि-रामायणके सुंदर-कांडका एक प्रसंग है। हनुमानजी सीताजीसे मिलनेके लिए अशोकवनमें आए थे। वापस लौटते समय उन्होंने माताजीसे कहाः- अच्छा, मैं अब जा रहा हूं।

सीताजी- ठीक ही हुआ कि तू मुझे मिलने आया। तेरे जानेके बाद ये राक्षसियां मुझे सताएंगी।

हनुमानजीः- यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको अपने कंधे पर बीठा कर इसी समय रामजीके पास ले चलूं। मैं रामदूत हूं। मुझे कोई मार नहीं सकता।

सीताजीः- नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तू मेरा पुत्र-सा है, बालब्रह्मचारी है, पवित्र है। फिर भी तू पुरुष है और मैं स्त्री। मेरे लिए किसी भी पराए पुरुषका स्पर्श वर्ज्य है। पर पुरुषके स्पर्शसे सतीनारीके पातिव्रत्यका भंग होता है। जगत्‌को स्त्रीधर्मका आदर्श बतलानेके लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मै तेरे कंधे पर बैठ जाऊं तो लोग क्या कहेंगे ?

रघुनाथजी मेरे सिवा अन्य किसी भी स्त्रीका स्पर्श नहीं करते है। मैंने भी उनके सिवा किसी अन्य पुरुषके चरण तकका स्पर्श नहीं किया है।

मनसे भी किसीका स्पर्श न करो। स्त्रीको चाहिए कि पतिके सिवा किसी साधुसंतके चरणका भी स्पर्श न करे। उनको दूरसे ही प्रणाम करो।

बेटे, तू बालब्रह्मचारी है फिर मैं तेरा स्पर्श करुं तो धर्मकी मर्यादा टूटती है।

सीताजी जगत्को आदर्श स्त्रीत्व दीखाते हैं। इसी हेतु ही वे प्रगट हुए हैं। राम सरल हैं किंतु सीताजीकी सरलता तो अलौकिक है।

रामकी मातृपितृ भक्ति अलौकिक है, बंधुप्रेम भी दिव्य है।

बडोंका दिल कभी न दुखाना। कैकेयीने जब रामको वनवास दिया तो उन्होंने उसे प्रणाम करके कहाः- माताजी, मेरा भाई भरत यदि राजा बननेवाला हो तो मैं चौदह वर्ष तो क्या आजीवन वनवासी रहनेको तैयार हूं। तुम्हारा यह तो मेरी ओर ही पक्षपात् है। भरतकी अपेक्षा मुझ पर तुम्हारा प्रेम अधिक ही है। मुझे ऋषिमुनियोंके सत्संगका लाभ मिले ऐसे हेतुसे ही तुमने मुझे यह वनवास दिया है। मेरे कल्याणके हेतु ही तुम मुझे आज वनमें भेज रही हो।

राम कथा तो सागर जैसी है। शिवजीने एक करोड श्लोकोंमें यह कथा वर्णित की है। रामके सभी गुण जीवनमें उतारो। राजा रामकी प्रत्येक मर्यादा जीवनमें उतारोगे तो रामनवमीका उत्सव परिपूर्ण होगा, सफल होगा।

शिवजी हर रोज उमाको इस रामकथाका रसपान कराते थे। हनुमानजी भी हर रोज सुनते थे। इस रामकथाका एक एक श्लोक पापोंका नाशकर्ता है।

एक बार देव, ऋषि और मनुष्य शिवजीके पास रामायण मांगने गए। रामायणके एक करोड श्लोक हैं। शिवजीने तीनोंको बराबर-बराबर बांटा तो एक श्लोक शेष रहा। देव, ऋषि और मनुष्य इस शेष बचे हुए श्लोकके लिए झघडने लगे।

शिवजीको लडाई-झगडा पसंद नहीं है। जहां युद्ध, वैर, स्वार्थ, वासना, विषमता नहीं है वही स्थान अयोध्या है। और राम भी वहीं अवतरित होते हैं। जब कैकेयीने मनमें विषमता, स्वार्थ, वासना जन्मी कि रामने अयोध्याका त्याग किया। विषमता, लडाई-झगडा हुआ नहीं कि राम अयोध्या छोड देते हैं।

शिवजीकी सभामें तो बैल और सिंह, चूहा और सर्प, मोर और सर्प सभी अपना अपना जन्मजात वैर भूल कर एक साथ बैठते हैं। गरुड और सर्प भी अपना वैर भूल कर विष्णु भगवान्के सामने शांत बैठ जाते है। वैरको भूल जाओ।

शिवजीने कहाः- श्लोक एक है और उसकी इच्छा करनेवाले तीन। इस श्लोकमें बत्तीस अक्षर थे। सो शिवजीने तीनोंको दस दस अक्षर दिए। अब शेष रहे दो अक्षर। तो शिवजीने कहा कि इन दो अक्षरोंको मैं ही अपने कंठमें रखुंगा। ये दो अक्षर हैं राम। शिवजीने रामको अपने ही पास, अपने हृदयमें रखा। इसी भांति तुम भी रामको हमेशा अपने हृदयमें ही रखना। शिवजीकी भांति हृदयमें रामका स्थान और नाम हमेशा रहे तो भी ठीक संतोषकी बात है।

श्री रामके नामजपनसे सभी कष्ट दूर होते हैं और सब कुछ शुभ होता है।

भगवान् शंकर रामायणके आचार्य हैं। वे जगत्को बताते हैं कि मैं विष पी गया फिर भी रामनामके प्रतापसे मुझे कुछ भी नहीं हुआ। जीवनमें विष पीनेके कई प्रसंग आते हैं। जब भी ऐसा कटु प्रसंग आए, प्रेमसे श्रीराम श्रीराम बोलो। रामनामसे कंठमेंसे अमृत झरता है जो विषको नष्ट कर देता है।

रामका नाम लेकर शंकर विष पी गए तो वह अमृत बन गया। संसारमें भी निंदा, वैर, व्याधि आदि विष ही हैं। ऐसा सांसारिक विष जब भी जलानेके लिए आ पहुंचे तो रामनामका जप करना। जब भी परिस्थिति प्रतिकूल हो जाए, पंद्रह मीनट रामनामका जप करो इसीसे तो शिवजीको स्मशानमें भी शांति है।

स्मशानेश्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराः।
चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवखिलं।
तथाऽपि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि।

भगवान् शिव रामनामामृतका सदा पान करते हैं अतः वे शिव हैं। वे कहते हैं कि रामकी कथा तो मैं करता हूं फिर भी यह मैं नहीं जानता कि वे कैसे हैं। शिवजीकी यह विनयशीलता है।

जो जान कर भी अज्ञानीसा बन कर जप करता है वही कुछ न कुछ जानता है।

अयोध्यामें रघुनाथजीका प्रागट्य हुआ। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका भी जन्म हुआ। चारों बालक कौशल्याके आंगनमें खेलने लगे। और दिनों दिन बडे होने लगे।

रामचंद्रजी तो खेल-कूदमें भी अपने छोटे भाइयोंको सताते नहीं थे। वे जीत हमेशा अपने छोटे भाइयोंको ही देते थे। वे मानते थे कि मेरे छोटे भाइयोंकी जीत ही मेरी जीत है। यदि उनकी हार होगी तो उन्हें दुःख होगा। सो स्वयं हार स्वीकार लेते थे। भरतकी आंखोंके आंसू उनसे देखे नहीं जाते थे।

आज तो लोग एक ओर रामायण पढते हैं, रामनामका जप करते हैं और दूसरी ओर धन-संपत्तिके लिए भाइयोंके साथ कोर्टमें लडते हैं। यदि बडा भाई राम बनेगा तो छोटे भाई भरत-लक्ष्मण जैसे होंगे। यदि बडा भाई राम जैसा बने और छोटा भाई भरत जैसा बने तो सारा जगत् आज भी अयोध्या बन सकता है और रामराज्य स्थापित हो सकता है। भरतको राज्य मिला फिर भी उसने त्याग दिया। बडे भाई अयोध्यामें नहीं थे सो स्वयं महलोंमें रह कर भी तपश्चर्या करने लगे। भरतजीकी तपश्चर्याकी जगत्के सभी महापुरुषोंने भुरि भुरि प्रशंसा की है।

भारतभूमि तो कर्मभूमि है। इस कर्मभूमिमें जैसे काम करोगे वैसे ही फल पाओगे। जैसा भाव अन्यके लिए तुम रखोगे वैसा ही भाव उसके मनमें तुम्हारे लिए होगा। अभिमान मूर्खोंको नहीं सताता किंतु जिसे जगत् मान-कीर्ति देता है उसे ही सताता है। मानके बिलकुल पीछे ही अभिमान भी खडा रहता है।

विष्णु सहस्र नामावलिमें भगवान्‌को अमानी मानदः कहा गया है। भगवान् मानके दाता है। भरत कैकेयीको कहते हैं कि राम बडे होते हुए भी उसे मान देते हैं। रामने बाल-लीलामें भी मर्यादा भंगकिया नहीं था।

जो अपने भाईमें प्रभुका दर्शन नही कर पाता है उसे जगत्‌में कहीं ईश्वर नहीं दीखेंगे।

रामकी बाललीला सरल है। वे मातासे कुछ भी नहीं मांगते थे। वे बहुत भोले थे। रामने माताको कभी सताया नहीं था। कनैयाने सोचा कि रामावतारमें मैंने मर्यादाका पालन अतिशय किया था सो मुझे बहुत दुःखी होना पडा। अब कृष्णावतारमें मैं मर्यादाका पालन नही करुंगा। कनैया माताको सताता है। माता, मुझे छोड कर कहीं न जाना। तू घरकाम छोड दे और मुझीसे खेला कर।

यशोदा अर्थात् बुद्धि ईश्वरसे दूर हो जाए तो उन्हें दुःख होता है। सो कनैया मातासे कहता है कि मुझे गोदीमें बिठाए रह। मुझे छोडकर कहीं न जाना। यशोदा–बुद्धिको वे अपने साथ ही रखना चाहते हैं।

रामचंद्रजीका अवतार मर्यादा पुरुषोत्तमका है। कृष्णका अवतार पुष्टि पुरुषोत्तमका है। रामकी लीलामें मर्यादा है, कृष्णलीलामें प्रेम।

कनैया कहता है: मैंने रामावतारमें मर्यादाका पूरा पूरा पालन किया, मैं सरल भी बहुत रहा, एक पत्नीव्रत निभाया फिर जगत्‌ने मेरी कोई कदर न जानी। सो मैंने इस कृष्णावतारमें सारी मर्यादा फेंक दीं। अब मैं पुष्टि पुरुषोत्तम हूं। जो भी जीव मेरे निकट आए मैं उसे अपनाऊंगा। कृष्णावतारमें सभीके लिए द्वार खुले हैं। जो चाहे सो आ सकता है।

कनैयाकी वाणीको कोई बांध नहीं सकता। एक एक गोपीको उन्होंने बांध ली। वे सब कृष्णसे प्रार्थना करती हैं कि हमें छोड दो। तो कनैया कहता है कि मुझे तो मेरी माने बांधना ही सीखाया है। छोडना तो सीखाया ही नहीं है। मैं जाता हूं। जय जय। कनैया जिसे बांधता है उसे कभी नहीं छोडता।

ईश्वर जिसे अपने बंधनमें बांधते हैं, अपनाते है वह यदि मायाके प्रवाहमें बहने भी लगे तो भी उसे भगवान् बचा लेते है।

कृष्णकी बाललीला अनेरी है। एक गोपीने देखा कि कनैया माखन चुरा रहा है तो उसने उसे बांध लिया। कनैयाने कहा, छोड दो मुझे। तुम्हे अपने पिताकी कसम, अपने पतिकी कसम। गोपीने कहा, नहीं मैं तो बांधूगी ही। और उसने एक खंभेसे बांध दिया। गोपीने लालासे पूछा, तुझे कोई तकलीफ तो नहीं है न? कनैया रोनेका अभिनय करने लगा। बडी तकलीफ हो रही है। बंधन थोडा–सा खोल दो। गोपीने सोचा कि जकड कर बांधना ठीक नहीं है। लालाको दुःख होगा। उसने बंधन कुछ ढीला किया। ऐसा होते ही कनैया भाग निकला। गोपी कहती है कि दो संतानकी माता होते हुए भी मुझे बांधना नहीं आया।

श्री कृष्ण गोपीको बांधते है। श्री कृष्णका मनसे स्पर्श करने पर भी हृदय द्रवित होता है तो प्रत्यक्ष श्रीअंग स्पर्शसे तो कितना अधिक आनंद होता होगा। गोपीका ब्रह्मसंबंध हुआ। उसने कनैयासे कहा, मुझे छोड दे। तो कनैयाने कहा, छोडना तो मैं जानता ही नहीं हूं। परमात्मा जिसे बांधते हैं उसे कभी नहीं छोडते। वह उस जीवको अपने ही पास रखते हैं।

ईश्वर किसीको शीघ्रतासे अपनाते नहीं हैं और जिसे एक बार अपना लेते हैं उसका कभी त्याग नहीं करते। जीव स्वार्थी है। वह अपनानेके बाद भी छोड देता है। स्वार्थकी समाप्तिके साथ साथ संबंध भी समाप्त करता है। जब कि ईश्वर तो संबंधको सदा बनाए रखते हैं।

दिल कहता है कि कनैया, जब तुम्हारा प्रागट्य हो, मुझे गोपी बनाना।

प्रेम मांगना नहीं, देना चाहिए। सर्वेश्वरको वही पसद आता है जो सभीसे प्रेम करता है। विकार, वासना, स्वार्थ आया नहीं कि प्रेम खंडित हो गया। दूसरोंको सुखी करनेकी भावना करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता।

कृष्णलीलामें प्रेम शुद्ध है। रामजीकी लीलामें विशुद्ध मर्यादा है। कृष्णको वही समझ सकता है। जो रामजीकी मर्यादाका पालन करता है।

लाला कभी सीधा खडा नहीं रहता। वह तो बांका विहारी है। वह बांकेके साथ बांका है। वह तो योगीके साथ योगी, भोगीके साथ भोगी, बालकके साथ बालक और संन्यासीके साथ संन्यासी है।

श्री कृष्णने कहा था कि– जगत् मिथ्या है। सुवर्णकी द्वारिका भी डूब गई।

जिसकी लंगोटी तक छूट गई है वैसे विरक्त शुकदेवजी जैसे महात्मा भी श्री कृष्ण-प्रेममें पागल बन जाते हैं। श्री कृष्णकी बाललीला ऐसी दिव्य है कि शुकदेवजी जैसे भी उसका वर्णन करते हुए आंसूसे भीग जाते हैं, पागल हो जाते हैं। महायोगी हंसते ही नहीं है सो उनके लिए रोनेका प्रसंग ही नहीं आता। श्री कृष्ण भोगी नहीं, योगी हैं।

भक्तिमे दुराग्रह न रखो। रामजी कुछ कम हैं ऐसा कभी न मानना। कृष्ण और राम दोनों अवतार परिपूर्ण हैं। श्री कृष्ण पुष्टि–प्रेमका आनंद देते हैं।

रामचंद्रकी बाललीलाका वर्णन अधिक नहीं है। वे वसिष्ठके आश्रममें पढनेके लिए गए।

संसार माया है। इस मायामे आने पर तो भगवान्‌को भी गुरुकी आवश्यकता रहती है। किसी सद्‌गुरुके अनुग्रहके बिना मन सदाके लिए पवित्र नहीं हो पाता। संसारमें आने पर भगवान्‌को अपने स्वरूपका विस्मरण होता है और गुरुकी आवश्यकता हो जाती है।

श्री राम हैं तो परमात्मा। उन्हें मायाका स्पर्श तक नहीं हो सकता। फिर भी जगत्‌को आदर्श सीखानेके हेतु वे गुरुके पास विद्याभ्यासके लिए गए। गुरुजीकी सेवा भी की। विद्याभ्यास समाप्त किया।

श्री राम सोलह वर्षकी अवस्थामें यात्रा करने गए। यात्रा करनेसे उन्हें वैराग्य आ गया। इस वैराग्यको दूर करनेके लिए वसिष्ठजीने योगवासिष्ठ महारामायणमें उपदेश दिया है। इसका प्रथम प्रकरण वैराग्य संबंधित है। यह प्रकरण सभीको पढना ही चाहिए। इसमें वसिष्ठजी कहते हैं : वैराग्यको अंदर ही रखना। प्रारब्ध तो भुगतना ही चाहिए। किंतु नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो जाय यह भी देखना चाहिए। वनमें संसार साथ साथ आएगा। घर बाधक नहीं है किंतु घरकी वस्तुओंकी आसक्ति बाधक है।

राम, तुम यदि राजप्रासादका त्याग करोगे तो कुटिरकी आवश्यकता उपस्थित होगी। सुंदर वस्त्र छोड दोगे तो लगोटीकी जरुरत होगी। अच्छा भोजन छोड दोगे तो भी कंदमूल तो खाने ही पडेंगे। अतः राज्यका त्याग करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। छोडना तो है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, वासना आदिको।

वैराग्य अंदरका होना चाहिए जगत्‌को दीखानेके लिए नहीं। साधु बननेकी नहीं, सरल होनेकी ही आवश्यकता है।

भजनके लिए भोजन है ऐसा मानो तो भोजन साधन है। कवल भोजनके लिए भोजन बाधक है।

सुखी होना है तो बोलो : जो होगा सो चलेगा, भाएगा, पसंद आएगा। प्रभु मुझे जिस स्थितिमें रखेंगे उसीमें मैं रहूगा। थालीमें जो भी मिलेगा खा लूंगा।

ज्ञानी पुरुषोंको भी भाग्य तो झेलना ही पडता है। रामचंद्रजीका वैराग्य दूर हुआ। वे सोलह वर्षके हो गए हैं अब।

उस समय विश्वामित्रका यज्ञ संपन्न हो रहा था। उसमें मारीच सुबाहु आदि राक्षस बाधा डाल रहे थे। विश्वामित्रने सोचा कि रामचंद्रजी ही मेरे यज्ञकी रक्षा कर सकते हैं। अयोध्या जाकर राम–लक्ष्मणको ले आऊं। दर्शनसे कृतार्थ भी हो जाऊंगा। भागवतमें राम-चरित्रका आरंभ इसी प्रसंगसे किया गया है। विश्वामित्र अयोध्यामें आए। सरयूमें स्नान किया। और फिर महाराज दशरथकी राजसभामें आए। दशरथजीने स्वागत करते हुए नमन किया। मेरे पूर्वजोंके पुण्य प्रतापसे आप जैसे ऋषि मेरे घर आए हैं। क्या सेवा करूं मैं आपकी? विश्वामित्रने आशीर्वाद देते हुए कहा, मेरे यज्ञमें राक्षस विघ्न कर रहे हैं। सो राम और लक्ष्मणको मेरे यज्ञकी रक्षाके लिए मेरे साथ भेजिए। विश्वामित्रकी ऐसी मांगसे राजा घबडा गए।

दशरथजीने कहाः— मुनिवर, आपने ठीक नहीं मांगा। ये बालक मुझे अपनी वृद्धावस्थामें मिले हैं। मुझे तो संतानकी कोई आशा ही नहीं थी किंतु आप सभीके आशीर्वादसे चार संतान मिलीं। मुझे ये सब अत्यंत प्रिय हैं। किंतु राम सर्वाधिक प्रिय है। रामके बिना मैं नहीं रह सकता। उसे मेरी आंखोंसे दूर न करें। मैं आपसे क्या कहूं? राम मुझे प्रतिदिन दो बार साष्टांग प्रणाम करता है। मेरी हर आज्ञाका पालन करता है। ऐसा पुत्र न तो कभी हुआ है और न तो कभी होगा। छोटे भाइयोंसे भी उसे अलौकिक प्रेम है। वह बहुत भोला है। मर्यादाका पूर्णतः पालन करता है।

रामकी प्रशंसा करते करते राजाका हृदय भर आया। जल बिन मछली शायद रह सकती है किंतु रामके बिना दशरथ नहीं जी सकते। गुरुजी, मैं आपसे ठीक ही कहता हूं कि रामके दूर जानेसे मेरे प्राण चले जाएंगे। आप चाहें तो मैं अपना सारा राज्य दे दूं, मेरे प्राण तक दे दूं। किंतु मुझसे मेरे रामको दूर न करें।

राम देत नहि बनइ गुंसाई।

मैं अपने रामके बिना एक क्षण भी जी नहीं सकता। मैं प्राण दे सकता हूं, राम नहीं।

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउ निमिष एक माहीं ॥

जगत्में दशरथ–सा पिता नहीं हुआ है और राम–सा पुत्र भी नहीं। राम जब वनमें गए थे तो दशरथने अपनी अंतिम सांस तक रामका ही नाम लिया था। उन्होंने कौशल्यासे बार बार पूछा कि उनके राम कहां हैं। मुझे कोई रामके पास ले जाओ। मैं रामके बिना जी नहीं सकता। और रामके वनगमनके साथ ही दशरथजीका प्राणपंखेरु उड गया।

रामायणका एक एक पात्र दिव्य है। भरतके जैसा कोई भाई नहीं है। सीता जैसी कोई स्त्री नहीं हुई है। रामजीकी अपेक्षा सीताजीका हृदय अति कोमल था। वाल्मीकि भी सीताजीके चरित्रका वर्णन करते हुए पिघल गए थे। उन्होंने कहा था कि रामायणमें रामजीका नहीं, सीताजीका चरित्र अलौकिक है। रामजी सरल हैं किंतु सीताजीकी सरलता तो अद्भूत है।

वाल्मीकि रामायणमें एक प्रसंग है। रावणके साथके युद्धकी समाप्ति होने पर हनुमानजी अशोकवनमें आए। सभी राक्षसोंका तो विनाश हो गया था औरकी विजय हुई थी। सीताजीने हनुमानजीको बहुत आशिष दी। काल तेरा सेवक बनेगा। अष्ट सिद्धियां तेरी सेवा करेंगी।

हनुमानजी ज्ञानी पुरुषोंके आचार्य हैं।

मनोजवं मारुततुल्य वेगम्
जीतेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यम्
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

हनुमानजीका वर्णन कर ही कौन सकता है?

सीतामाताने आनंदसे आशीर्वाद दिया। फिर भी हनुमानजीको तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने कहाः– आपने मुझे आशिष तो बहुत दी फिर भी दिलमें एक इच्छा बाकी रह गई है।

सीताजीः– वत्स, जो चाहे सो मांग ले।

हनुमानजीः– पहले जब मैं लंका आया था तो देखा था कि राक्षस स्त्रियां आपको बहुत सताती थीं। आपको डराती थीं। अब राक्षसोंका तो प्रभुने विनाश कर दिया किंतु ये राक्षस स्त्रियां बाकी रह गई हैं। मैं चाहता हूं कि आपकी आज्ञा और आशीर्वादसे मैं इनका विनाश कर दूं।

सीताजीः– अरे, यह क्या मांग रहा है तू? ऐसा वरदान मांगना कोई ठीक बात नहीं है।

हनुमानजीः– इन्होंने आपको बहुत सताया है। मैंने अपनी आंखोंसे देखा था।

माताजी हनुमानजीको उपदेश देने लगींः– बेटे, अपकारका बदला जो उपकारसे देता है वही संत है। इन राक्षसियोंका, कोई दोष नहीं है। वे तो रावणकी आज्ञाके कारण ही मुझे

सताती थीं। वह दु ख तो मेरे ही कर्मोंका फल था। मैंने लक्ष्मणका अपमान किया था अतः दुःखी होना पडा। मैं तो सोचती हूं कि इन राक्षसियोंको वर देकर अयोध्या ले चलूं। मैं वैसा आशीर्वाद तुम्हें नहीं दे सकती।

हनुमानजीने वंदन करते हुए कहा · माताजी, आपके सिवा ऐसी दया तो कोई नहीं कर सकता।

राक्षसोंके लिए राम कठोर थे किंतु राक्षसियोंके लिए सीताजी दयालु थीं। राक्षसियोंको सीताजीने आशीर्वाद दिया। सीताजी जैसो दयालु स्त्री कोई हुई ही नहीं है। वे साक्षात् दयाकी मूर्ति है। माताजीके गुणोंको याद करनेसे लगता है रामकी अपेक्षा सीताजी श्रेष्ठ हैं।

जब दशरथने रामको छोडना नहीं चाहा तो उन्हें वसिष्ठजी समझाने लगे। दशरथको उनमें पूर्णतः विश्वास था। वे सद्गुरुके आधीन थे। वसिष्ठने दशरथजीसे कहाः– राजकुमार रामके जन्माक्षर बता रहे है कि इस वर्षमें विवाहका योग है। इस वर्षमें इन कुमारोंके विवाहका योग है। अतः इन्हें भेजनेमें कोई बाधा नहीं है। सब कुशल–मंगल होगा। मैं तो मानता हूं कि विश्वामित्र इन्हें विवाहके हेतु ही लेने आए हैं।

विवाहकी बात सुनकर दशरथ हर्षित हो गए। क्या मेरे रामका विवाह होगा? तब तो मैं आज ही भेजनेके लिए तैयार हूं। और राम–लक्ष्मणको राजसभामें बुलाया गया। उन्होंने आकर प्रणाम किया।

दशरथः– तुम दोनोंको विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिए जाना है।

रामः– जैसी आपकी आज्ञा।

राम–लक्ष्मण तैयार होकर माता कौशल्यासे आज्ञा–आशीर्वाद लेने गए। कौशल्याने भी पिताकी आज्ञाका पालन करनेको कहा। नारदजीने कौशल्याको पहलेसे ही राम–लक्ष्मणके विवाहके योगकी बात बता दी थी।

राम–कृष्णको माखन और शक्करसे बडा प्रेम है। जीवनको मधुर बनाना। शक्कर मीठा बनाना। जीवनमें सद्गुणसे ही मीठापन आता है। सभीको मान दोगे तो तुम्हारा अपना जीवन भी शक्कर–सा मीठा मधुरा बनेगा। सभीको मानका दान करना उत्तम है। दूसरोंको मान देनेसे और अपने जीवनमें संयम बढानेसे जीवन मधुर और उत्तम बनता है।

जिसके जीवनमें मधुरता नहीं है, वह भगवान्को प्यारा नहीं हो सकता। विद्यादान, ज्ञानदान और द्रव्यदानसे भी मानदान अधिक श्रेष्ठ है। मानदान श्रेष्ठ दान है। इसमें एक पैसे तक व्यय नहीं है। सभीको मान दो। जो कर्कश वाणी बोलता नहीं है, जो किसीका अपना नहीं करता है उसके जीवनमें शक्कर–सी मीठाश आती है।

कौशल्याने विश्वामित्रसे कहाः– मेरे रामको माखन मिश्री खिलाइएगा। नहीं तो वह दुर्बल हो जाएगा।

जिस समय विश्वामित्रके साथ रामलक्ष्मण चल दिए उस समय वे कितने शोभायमान थे।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला ।
नील जलज तनु श्याम तमाला ।
कटि पट पीत कसे वर भाथा ।
रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा ॥

विश्वामित्र अर्थात् सारे विश्वके मित्र । विश्वस्य मित्र सः विश्वामित्र । पाणिनीने यह अर्थ दिया है । विश्वामित्रने आशीर्वाद दिया । पाणिनीका व्याकरण अमर होगा । या तो विश्व जिसका मित्र है वही विश्वामित्र है । जगत्का मित्र है जीव । मनुष्य अर्थात् जीव मित्र बनता है तो शब्द ब्रह्म उसके पीछे पीछे आता है । और उसके पीछे परब्रह्म भी आता है । तुम जगत्-मित्र बनोगे तो राम-लक्ष्मण तुम्हारे पीछे पीछे आएंगे । राम ही परब्रह्म है, शब्दब्रह्म है शब्द-ब्रह्मके बिना परब्रह्म प्रगट नहीं होता ।

विश्वामित्रके पीछे पीछे राम-लक्ष्मण चल दिए । मार्गमें ताडकाका उद्धार किया । विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको बला और अतिबला विद्या दी थी सो उन्हें भुख-प्यास लगनी ही नहीं थी ।

आश्रममें आए । रामने विश्वामित्रसे कहाः- गुरुजी, आप अपने यज्ञका आरंभ करें । मैं उसकी रक्षा करूंगा ।

जनकपुरीके निकट ऋषि विश्वामित्रका सिद्धाश्रम है । वहां वे तप और यज्ञ करते हैं ।

विशाल यज्ञमंडप बनाया गया है । राम-लक्ष्मण धनुष्य-बाणसे सज्ज हो कर यज्ञकी रक्षा करने खडे हैं ।

द्वारिकामें द्वारिकानाथ खडे हैं ।
डाकोरमें रणछोडरायजी खडे है ।
श्रीनाथजीमें गोवर्धननाथ खडे हैं ।
पंढरपुरमें विठ्ठलनाथजी खडे हैं ।

भगवान् कहते हैं- जब जीव मेरे दर्शनके हेतु आता है तो मैं खडा हो कर उसे दर्शन देता हूं । मैं जीवको मिलनेके लिए आतुर हूं । मुझे प्रेमसे मिलनेके लिए जो भी आता है उससे मिलनेको मैं भी आतुर हूं । मेरे वैष्णवोंसे, भक्तोंसे मिलनेकी प्रतीक्षामें मैं खडा हूं। मैं खडा खडा भक्तोंकी प्रतीक्षा करता हूं । मुझसे विभक्त हुआ जीव मुझसे मिलनेके लिए कब आएगा ?

ईश्वरकी दृष्टि तो जीवकी ओर अखंड रूपसे है किंतु जीव ही ईश्वरकी ओर दृष्टि करता नहीं है ।

राम तो जीवको अपनानेके लिए तत्पर हैं किंतु यह अभागा जीव ही उनसे मिलनेके लिए आतुर कहां है ?

श्री राम आजानबाहु हैं । किसीने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, मेरे भक्त मुझसे मिलने आते हैं । उनमें यदि कोई भक्त मोटा हो तो उसे भी मैं बाहोंमें भर सकूं इसलिए मैंने अपने हाथ लंबे रख लिए है ।"

मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले भक्तोंको आलिंगन देनेके लिए मैंने अपने हाथ लंबे रखे हैं।

राम वानर आदि पशुओंको भी आलिंगन देते हैं। रामजी सभीसे प्रेम करते हैं। वे हमेशा धनुष्य बाण अपने साथ रखते हैं। धनुष्य बाणके बिना रामके दर्शन कहीं नहीं होते हैं। चाहे राज्यासन पर बैठे हों, चाहे अंतःपुरमें सीताजीके पास, उनके हाथोंमें धनुष्य-बाण होते ही हैं। उपनिषद्में भी कहा है: ' प्रणवो हि धनुः। उपनिषद्में धनुष्यको ॐ कारकी उपमा दी गई है। ॐ कार अर्थात् ज्ञान। ज्ञान ही धनुष्य है।

धनुष्य ज्ञानका स्वरूप है।

बाण विवेक स्वरूप है।

धनुष्य और बाण अर्थात् ज्ञान और विवेकसे सदा सज्ज रहो। क्यों कि कामरूपी राक्षस न जाने कब विघ्न करने आ जाए। काम-राक्षस तुम्हारे पीछे दौड रहा है, तुम्हें पराजित करने आ रहा है। रामकी भांति धनुष्य-बाणसे सदा सज्ज रहना। ज्ञान और विवेकको सतेज रखोगे तो राक्षस बाधा नहीं डाल सकेंगे। धनुष्यबाणसे सज्जित रहोगे तो राक्षस भाग जायेंगे। जिसकी आंखोंमें पाप है वही राक्षस है। राक्षस जीवमात्रके पीछे लगे हुए हैं। काम, लोभ, मोह आदि राक्षस ही हैं जो जीवमात्रको सताते हैं। जो प्रतिक्षण सावध रहता है उसे राक्षस मार नहीं सकते।

रामका स्वरूप अद्भुत है। सुर्पणखा राक्षसी थी फिर भी उसके मनमें रामको पति स्वरूपमें पानेकी इच्छा जागी थी। हमारे हृदय तो उस राक्षसीसे भी कठोर हैं कि हमारे मनमें रामको पानेकी इच्छा ही नहीं होती है।

श्रीधर स्वामीने रामविजय-लीला-कथामें कहा है- यज्ञके चारों द्वार पर राम-लक्ष्मण चौकी करते थे। उन्होंने इतने रूप धारण कर लिए थे कि सभी द्वारों पर राक्षसोंको इनकी उपस्थित दीखाई देती थी।

विश्वामित्र आहुति देते थे यज्ञकुंडमें और निहारते थे राम-लक्ष्मणको। श्रुति वर्णन करती है। अग्नि भगवान्का मुख है। परमात्मा अग्नि मुखसे आहार करते हैं। अग्नि ज्वाला प्रभुकी जिह्वा है। ब्राह्मणगण वेदमंत्रोंका उच्चार करता हुआ अग्निमें आहुति दे रहा है। विश्वामित्र राम-लक्ष्मण पर ही दृष्टि लगाए हुए यज्ञ कर रहे हैं।

मनकी मलीनताको दूर करनेके लिए यज्ञ किया जाए। यज्ञ, स्वाध्याय, तप, ध्यानका फल है मनशुद्धि। मनशुद्धिका फल है परमात्माका दर्शन।

राक्षस जान गए कि विश्वामित्रने यज्ञका आरंभ किया है तो वे बाधा डालने आ पहुंचे। रामचंद्रके बार बार दर्शन होनेसे मारीचका स्वभाव बदल गया। जिसके दर्शनसे स्वभाव बदलता है वही ईश्वर है। मारीचने सोचा कि विश्वामित्रके इस यज्ञमें विघ्न करना ठीक नहीं है। आज मेरे मनमें ऐसे विचार क्यों आ रहे हैं? शायद इन बालकोंको देख कर मेरा मन बदल गया है। आज मेरा मन मेरे बसमें नहीं हैं। इन बालकोंसे मिलनेकी इच्छा हो रही है। मारीच था तो राक्षस फिर भी रामके दर्शनसे उसकी बुद्धि सुधर गई।

आजकलके लोग रामके दर्शनके लिए जाते तो हैं किंतु दर्शनके बाद भी इनकी बुद्धि सुधर नहीं पाती है। रामके दर्शनके बाद भी बुद्धि न सुधरे तो मान लेना कि तुम राक्षससे भी अधम हो। रोज रामायण पढे, देवदर्शन करे फिर भी यदि जीवनमें संयम, सदाचार, सरलता न आ पाए तो मानो कि मारीचसे तुम गए बीते हो।

राम परमात्मा है। उनके प्रत्यक्ष दर्शनसे मारीच बुद्धि बदल जाए तो आश्चर्य ही क्या है? रामकी नकल करते करत और रामका ही चिंतन करते करते रावणका काम मरता है।

रामको याद करनेसे सारा जगत् मातृवत दीखता है।

एकनाथ महाराजने राम-रावण युद्धके समयका एक प्रसंग लिखा है। गहरी नींदमें डूबे हुए कुंभकर्णको जब जगाया गया तो उसने पूछाः- मुझे क्यों जगाया गया है?

रावणः- जानकीको लकर युद्ध जो हो रहा है।

कुंभकर्णः- तेरी इच्छा पूर्ण हुई?

रावणः- ना।

कुंभकर्णः- तू अपनी मायासे रामका रूप धारण करके सीताके पास जा। तुझे राम मान लेगी और तेरे वश हो जाएगी।

रावणः- इस रामके पास कुछ जादू-सा लगता है। मैं उसका रूप धारण करनेके लिए उसके रूपका विचार करता हूं कि तुरंत मेरा मन ही बदल जाता है। जो रूप धारण करनेकी इच्छा होती है उसका विचार तो करना ही पडता है। जब मैं रामका रूप मायासे धारण करके देखता हूं तो सीता मुझे माता रूपसे दीखाई देती हैं। मेरे मनमें काम तक नहीं रह पाता।

तो कुंभकर्ण कहने लगाः- रामका मायावी रूप तेरे कामको मारता है। जिसका नकली रूप भी इतना प्रभावशाली है उसका मूल रूप तो कितना अधिक प्रभावशाली होगा? अतः निश्चय ही राम परमेश्वर हैं। तू अतिशय कामी है फिर भी रामके स्मरणसे निष्कामी बन जाता है। सो राम ईश्वर ही हैं। ऐसे रामके साथ वैर करना ठीक नहीं है। देवाधिदेवसे वैर करनेवाला तू मूर्ख ही है। मैं तूझे सहाय नहीं कर सकता। विभीषणकी भांति मैं भी रामके चरणोंका आश्रय लूंगा।

रावणः- मैं रामकी शत्रुभावसे भक्ति करता हूं। यदि मैं अकेला ही भक्ति करुं तो मात्र मेरा ही कल्याण होगा। किंतु शत्रुभाव रखुं तो मेरे सारे वशका कल्याण होगा। ये सभी राक्षस तामसी है। वे जप, तप, ध्यान, सेवा, पूजा तो कर नहीं सकते। रामचंद्रके साथ शत्रुता होगी तो युद्ध होगा। युद्ध होगा तो रामका प्रत्यक्ष दर्शन होगा। और रामदर्शनसे हम सभीका उद्धार होगा अपने सारे वंशके कल्याणके हेतु ही मैने रामसे शत्रुता की है।

यज्ञ करते समय तुम भी अपने प्रत्येक द्वार पर राम-लक्ष्मणको बिठला देना। जप, कथाश्रवण, नारायणसे मानसिक मिलन आदि यज्ञ ही है जो गरीबसे गरीब व्यक्ति भी कर सकता है।

कुछ यज्ञ ऐसे हैं जिसके लिए कुलकी श्रेष्ठता और अत्यधिक धनकी आवश्यकता रहती है। विधुर और विधवाके लिए निषिद्ध है। प्रायश्चित्त भी करना पडता है। साधारण ब्राह्मण नहीं, अग्निहोत्री ब्राह्मण ही कर सकते हैं। बहुत-सा धन खर्चना पडता है। कुछ यज्ञके लिए देश-कालकी भी मर्यादा निर्दिष्ट है।

उपनिषद्में एक यज्ञ ऐसा बताया गया है जो जाति-समय-स्थल आदिके किसी भी प्रकारके बंधनके बिना किया जा सकता है। वह है जपयज्ञ। यह सभी यज्ञोंसे श्रेष्ठ है। आंखसे दर्शन, कानसे श्रवण और मनसे स्मरण करते हुए जप करोगे तो समाधिकी अवस्था प्राप्त हो सकेगी। कृष्णमिलन महायज्ञ है।

कृष्णमिलन-यज्ञमें श्रद्धा पत्नी है, आत्मा यजमान है, शरीर यज्ञभूमि है और यज्ञफल है परमात्मा विष्णुसे मिलन। परमात्मासे मिलन महानतम यज्ञ है। जीवात्मा और परमात्माका मिलन महायज्ञ है।

यज्ञसे चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धिका फल है परमात्माकी प्राप्ति। सभी इन्द्रियां यज्ञमडपके द्वार हैं। इस यज्ञमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षस बाधा करनेके लिए आते हैं। इस महायज्ञमें विषयरूपी मारीच बाधा डालता है। द्वार पर राम-लक्ष्मणको स्थापित करोगे तो काम, क्रोध, वासना रूपी मारीच-सुबाहु विघ्न करने आ नहीं पाएंगे।

आंखोंमें, कानोंमें, मुखमें सभी इन्द्रियोंके द्वार पर राम-लक्ष्मणको बीठा दो। ऐसा करनेसे मारीच-विषय विघ्न नहीं कर सकेगा। मारीच शीघ्र मरता नहीं है। अपनी प्रत्येक इन्द्रियके द्वार पर राम-लक्ष्मणको, शब्दब्रह्मको, परब्रह्मको आसीन करोगे तभी काम-मारीच तुम्हारे यज्ञमें बाधारूप नहीं हो सकेगा। तभी तुम्हारा जीवनयज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगा। माया-मारीचको रामचद्रजी विवेक-बाणसे मारते है।

जिसका चिंतन मात्र करनेसे कामका नाश होता है वही ईश्वर है।

ज्ञानी महात्मा अपनी इन्द्रियोंके द्वार बंद रखते हैं जब कि वैष्णव जन द्वार पर राम-लक्ष्मणको पधराते है। भागवतका राहु और रामायणका मारीच-विषय-दोनों एकसे है, तुरंत मरते ही नहीं हैं।

विश्वामित्रका यज्ञ समाप्त होने पर था कि जनकपुरसे निमंत्रण-पत्रिका आई कि सीताजीका स्वयवर होने जा रहा है। यज्ञादिसे निवृत्त होकर राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्र जनकपुरकी ओर निकल पडे। मार्गमें अहल्याका उद्धार करनेका प्रसंग आया। विश्वामित्रने रामसे एक शिलाको स्पर्श करनेकी आज्ञा की। इस शिलारूप अहल्याका उद्धार करो।

राम सोचमें डूब गए। क्यों कि जो साधक है वह तो लकडीकी स्त्रीका भी स्पर्श नहीं करता है। 'न स्पृश्येत् दारवीमपि।' एकादश स्कंधके एक श्लोकका यह चरण है।

रामने कहाः- मैं इसे प्रणाम करता हूं।

विश्वामित्रः- प्रणाम करनेसे तो कुछ भी नहीं होगा।

रामः- मैं चरणसे भी स्पर्श कर दू तो पापका भागी हूंगा।

राम पापसे डरते हैं। आजकलके लोग पापसे डरते ही नहीं है। मन चाहे सो कर लेते है। पापसे डर कर चलोगे तभी कल्याण होगा। पाप और ईश्वरसे डरोगे तो मन शुद्ध रहेगा।

मैं परस्त्रीको वंदन करता हूं, स्पर्श नहीं।

राम परस्त्रीका और सीता परपुरुषका स्पर्श करते नहीं थे।

जहां तक हो सके परपुरुष और परस्त्रीका स्पर्श करना नहीं चाहिए। ब्रह्मचर्यका यही आदर्श है।

कवियोंने कल्पना की है। रामने अहल्याका चरणसे भी स्पर्श नहीं किया। बहती हुई हवाने रामके चरणोंकी धूलि उडाई जो उस शिला पर जा पडी। फलतः शिला अहल्या बन गई। एकनाथजीने भी यही कहा है। राम चरणकी रजमें ऐसी शक्ति थी अहल्याका उद्धार हो गया।

अहल्या अर्थात् बुद्धि। मात्र कामसुखका ही विचार करनेवाली बुद्धि जड पत्थर-सी बन जाती है। कोमल बुद्धि ही ईश्वरके पास जा सकती है, जड-पत्थर-सी नहीं। कोमल बुद्धि ही कृष्ण सेवामें द्रवित हो सकती है। कृष्ण-कीर्तनसे आज आनंद नहीं मिलता है क्यों कि काम सुखका चिंतन करते रहनेसे बुद्धि पत्थर-सी हो गई है। जड बुद्धि चेतनमयी कैसे हो सकती है? जब कोई सद्गुरु सत महात्मा मिल जाते है तभी। जब किसी पवित्र संतकी चरण रज पावन करती है तभी। पत्थर-सी जड बुद्धि प्रभुकी चरणरजसे जागृत, चेतनवंती बनती है।

अहल्या-बुद्धि रामचरण रजसे शुद्ध, सचेतन बनी। अहल्याने प्रभुसे प्रार्थना की। मेरे पतिने मुझे शाप देकर ठीक ही किया था क्योंकि इसी कारणसे तो मैं आपका दर्शन पा सकी। उसी समय ऋषि गौतम भी वहां आए। उन्होंने भी भगवान् रामसे कहाः- मेरी पत्नीका आपने उद्धार किया। मैं आपको आशीर्वाद देता हूं कि आपका विवाह सुंदर गुणवती कन्याके साथ हो।

विश्वामित्र राम-लक्ष्मणको लेकर राजा जनककी राजसभामें आए। इन कुमारोंको देख कर जनक सोचने लगे कि ये ऋषिकुमार हैं या राजकुमार।

उन्होंने विश्वामित्रसे पूछाः- ये कौन है?
विश्वामित्रः- तुम तो महाज्ञानी हो। स्वयं ही निर्णय करो कि ये कौन हैं।
जनकका एक और नाम है विदेह। जो देहयुक्त हो कर भी देहधर्मोंसे अस्पृश्य हैं वही विदेह है। विदेह-जीते जी मुक्त। जनक तो शुकदेवजीके भी गुरु हैं।

धर्मराजा कहते हैं कि ब्रह्मानुभवमें जो विषयरसका भान भूल जाए वही ज्ञानी है। आसक्ति और अभिमान जीवको बांधे रहते है। ज्ञानी इन दोनोंका त्याग करते हैं।

सभी इन्द्रियां अपने अपने कार्य और अर्थमें काम करती हैं ऐसा मान कर ज्ञानी किसी भी विषयमें आसक्त नहीं होते।

इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।

इस जगत्में सब कुछ करते हुए भी वे तो ऐसी ही भावना रख कर काम करते हैं कि वे कुछ भी नहीं करते हैं।

जनक राजाने त्राटक किया। ये कोई परब्रह्म हैं। जनक कहते हैं कि मेरी आंखोंसे मैं दूसरोंको देख रहा हूं किंतु मेरा मन किसीकी भी ओर आकर्षित नहीं होता है, मुझमें वैराग्य भरा है। इन कुमारोंको देख कर मेरा मन आकर्षित हो रहा है। मेरे मनको ईश्वरके सिवा अन्य कोई भी आकर्षित नहीं कर सकता। सो ये अवश्य ही ईश्वर हैं। ईश्वरके विना मेरा मन किसी भी विषयमें जा नहीं सकता। उन्हें अपने मन पर कितना विश्वास था?

जनक कहते हैं:–

सहज विराग रूप मन मोरा।
भये थकित जिमि चंद्रचकोरा ॥

सो ये राम ही हैं– 'ब्रह्म जो निगम नेति गावा।'

जनक राजाने रामको पहचान लिया। उन्होंने कहा:– ये ऋषिकुमार नहीं हैं, राजकुमार भी नहीं है। वेद जिसका वर्णन नेति नेति कह कर करते हैं, शंकर जिनका सदासर्वदा चिंतन करते हैं वही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं ये।

ये राम मेरे मनको खींच रहे हैं। सो लगता है कि ये ईश्वर ही हैं। यदि ये प्रभु नहीं होते तो मेरे मनको खींच नहीं पाते।

कण्व मुनिके आश्रममें प्रथम मिलनके समय दुष्यंतने शकुंतलासे पूछा:– कौन हो तुम?

शकुंतला:– मैं महर्षि कण्वकी कन्या हूं।

दुष्यंत:– तुम्हें देख कर मेरा मन चंचल हो गया है। वैसे तो मेरा मन पवित्र है। ब्राह्मणकन्या मेरे लिए माता समान है। तुम्हें देख कर मेरा मन चंचल हुआ है अतः मैं मानता हूं कि तुम मेरी ही जातिकी हो। मेरा मन ही प्रमाण है इस बातका। प्रमाण अतःकरण्य प्रवृत्य.। अपने मन पर उसे कितना विश्वास था।

शकुंतला:– आप पवित्र हैं, महान् हैं। मेरे जनक हैं क्षत्रिय विश्वामित्र। कण्वऋषि तो मेरे पालक पिता हैं। मैं क्षत्रिय कन्या ही हूं।

जनकराजा कहने लगे:– आज तक मैं निराकार ब्रह्मका चिंतन करता था। आज मेरा मन कह रहा है कि निराकार ब्रह्मका चिंतन छोड कर इस सगुण रामका ही चिंतन किया जाए तो अच्छा हो। मुझे अब लगता हैं कि निराकार नहीं, साकारका ध्यान करूं। ये राम ईश्वर ही हैं।

विश्वामित्र कहने लगे:— राजन्, यह तो तुम्हारी दृष्टिका गुण है। ज्ञानी अभेदभावसे चिंतन करते हैं। तुम्हारी वृत्ति ब्रह्माकार है सो तुम्हें ऐसा लगता है अन्यथा ये तो दशरथ राजाके पुत्र हैं।

जनक तो महाज्ञानी हैं। उनकी प्रशंसा गीतामें श्री कृष्णने भी की है —

कर्मणैव हि संसिद्धमास्थिता जनकादयः।

जनक राजाने कर्म द्वारा ही परम सिद्धि प्राप्त की थी, अन्यथा गीतामें और किसीकी भी प्रशंसा नहीं की गई है।

विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण जनकपुरीके बाहर एक उद्यानमें रहे हैं। सायंकालकी संध्योपासना भी नियमित रीतिसे करते हैं। विश्वामित्रके साथ सत्संग किया। रात्रिके समय वे विश्वामित्रकी चरणसेवा करने लगें।

आशीर्वाद मांगनेसे नहीं, अपने आप हृदयसे ही मिल जाते हैं।

विश्वामित्रने भी इन राजकुमारोंको हृदयसे आशीर्वाद दियाः– कल्याण हो तुम्हारा।

लक्ष्मण रामकी सेवा कर रहे हैं। वे सोचने लगे कि संभवतः मैं कलसे चरणसेवाका लाभ पा न सकूंगा। कल बडे भैयाका विवाह होगा अतः उनके चरणसेवाका अधिकार अब तो भाभीको ही मिलेगा। सेवा करनेका यह मेरा अंतिम दिन है। कलसे मैं सेवा कर न पाऊंगा। रामकी सेवाके विना मुझे चैन नहीं हो पाता।

सेवा और स्मरणके विना जिसे चैन न मिले वही सच्चा वैष्णव है। जो सेवा और स्मरणके हेतु जीता है वही वैष्णव है।

लक्ष्मणको बडा दुःख होने लगा कि अब सेवाका अधिकार और अवसर छीना जाएगा। उनका मन अकुलाने लगा। उनका हृदय भर आया। आंखोंसे आंसूकी बौछार होने लगी। प्रभुने देखा कि उनका लक्ष्मण रो रहा है। वे लक्ष्मणसे रोनेका कारण पूछने लगे। क्यों रोते हो? क्या माताकी याद तो नहीं आई है? तुम रोते हो तो मुझे बडा दुःख होता है।

रामचंद्रका प्रेम आदर्श प्रेम था। लक्ष्मण संकोचवश बोल नहीं पा रहा था। राम लक्ष्मणके हृदयको जानते हैं। उन्होंने लक्ष्मणसे कहाः– भाई, मेरे विवाहके बाद दाहिने चरणकी सेवा तुम करना और बांए चरणकी सेवा सीता करेगी। तुम्हें देखे विना मुझे नींद ही नहीं आती। विवाहके बाद भी मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा। चाहे तेरी भाभीको छोडना पडे, तुम्हें नहीं छोडूंगा।

राम सभीके अंतर्यामी है किंतु लक्ष्मण तो रामके भी अंतर्यामी हैं।

तो ऐसा था रामका बंधुप्रेम।

दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ तो लक्ष्मणजी सबसे पहले उठ गए।

स्त्रीका धर्म है कि पतिके भोजनके पहले भोजन और शयनके पहले शयन न करे। यही धर्म सेवकका भी है।

विश्वामित्र शालिग्रामकी पूजा करते थे सो राम–लक्ष्मणको पूजाके लिए पुष्प–तुलसी-दल आदि लेनेके लिए उद्यानमें भेजे।

राम–लक्ष्मण पुष्प और तुलसीदल एकत्र करनेके लिए उद्यानमें घूमने लगे। मालीको चाचा शब्दसे पुकारा। मालीने पीछे देखा तो राम–लक्ष्मण उसे बुला रहे थे। उसने कहा, मैं तो एक अधम सेवक हूं। रामने कहा, सेवक भले हो किंतु हमसे तो आप बडे है। रामके विनयसे माली उन्हें बार बार नमन करने लगा।

राम सभीको एक समान मानते थे। अतः उनके वनगमनमें अयोध्याकी समग्र प्रजाका अश्रुश्रावण कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

राम–लक्ष्मण तुलसीको भी वंदन करते हैं। तुलसीकी नित्य वंदना करनेवालेको कभी बीमार नहीं होना पडता।

प्रणाम किए विना कभी तुलसीदल न लो। उसे नाखूनसे मत तोडो। जब भी तुलसी-दल चुननेका प्रसंग आए, उसे प्रणाम करके कहो कि ठाकोरजीके चरणारविंदमें चढानेके लिए चुननेकी अनुमति दें। तुलसी तो राधाजीका अवतार है। सायंकालके बाद तुलसीका स्पर्श न करो। स्त्रीका धर्म है कि प्रतिदिन तुलसी और पार्वतीकी पूजा करें ऐसा करनेसे सौभाग्य अखंडित रहता है।

उसी समय उद्यानमें सीताजी भी आईं। राम और सीताकी दृष्टिका मिलन हुआ। इस दृष्टिमिलनकी कथा मात्र तुलसीदासजीके रामचरित मानसमें ही है। वाल्मीकि रामायण, भावार्थ रामायण, आनंद रामायण, अध्यात्म रामायण आदिमें नहीं है।

सीताजीने जगदंबाको प्रणाम करके राम जैसा पति मांगा। सीताजी प्रार्थना करती हैं—

जय जय गिरिवर राजकिशोरी।
जय महेश मुखचंद चकोरी।
देवी पुज पदकमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

राम–लक्ष्मण पुष्पादि लेकर वापस आए और विश्वामित्रसे कहा कि जिस कन्याका स्वयंवर होने जा रहा है वह भी उद्यानमें आई हुई थी।

रामका स्वभाव बडा सरल है। उनके मनमें छलकपट नहीं है।

'सरल स्वभाउ छुअत छल नाहिं।'

विश्वामित्रने कहाः– वत्स, मैं जानता हूं कि इसी समय प्रतिदिन वह उद्यानमें आती है। और इसीलिए तो मैंने तुम्हें वहां भेजा था कि वह तुम्हें देख ले।

स्वयंवरका समय आया। राजा जनकने राजसभामें कहाः– मेरी पुत्री जब तीन वर्षकी थी तब इस धनुष्यका घोडा बना कर खेलती रहती थी। इस धनुष्यका भंग जो भी करेगा उससे मैं अपनी पुत्रीका विवाह करूंगा।

इस सभामें रावण भी उपस्थित था। विना कारण क्लेश करे, अपनी जयकार स्वयं ही करे, जो स्वयं आत्मप्रशंसा करता फिरे वही रावण है। इस सभामें भी वह अपनी जयकार कराने लगा। विना कारण ही उसने राजा जनकसे झगडा मोल लिया। धनुष्य उठानेका प्रयत्न करता हुआ वह अपनी जयकार कराने लगा।

अपनी प्रशंसा अपने आप ही करे वह रावण ही है।

पार्वतीने शिवजीसे कहाः– आपका शिष्य रावण बहुत अभिमानी हो गया है। कुछ ऐसा उपाय करें कि वह धनुष्य उठा ही न सके। तीन सौ शिवसेवक सूक्ष्मरूप धारण करके उस धनुष्य पर बैठ गए।

रावण धनुष्य उठा न सका और भर सभामें उसकी धज्जियां उड गईं। ऐसा होने पर अन्य सभी राजा भी सावधान हो गए। जब महा बलवान् रावणको मुंहकी खानी पडी तो हमारी तो हस्ती ही क्या है। धनुष्य उठानेसे सब कतराने लगे।

विश्वामित्रने रामचंद्रको धनुष्य उठानेकी आज्ञा दी तो वे उन्हें प्रणाम करके आशीर्वाद लेकर धनुष्यभंगके लिए चल पडे।

सीताजी प्रार्थना करने लगी कि इस बार धनुष्य पुष्प-सा हो जाय। रामने धनुष्यको वंदन करके उठाया और डोरी बांधनेके लिए खींचा ही था कि दो टूकडे हो गए।

विश्वामित्रने कहाः- अब सीताजी बाहर आए। हम उनका दर्शन करेंगे। सीताजी वरमाला लेकर बाहर आईं।

इधर रामचंद्र सोचमें डूब गए कि मातापिताकी आज्ञाके विना विवाह कैसे करू। सुंदर राजकन्या विजयमाला पहनाने आई किंतु मातापिताकी आज्ञाके विना रामचंद्र उसे स्वीकारनेके लिए तैयार नहीं हैं। सीताजी हार पहनानेका प्रयत्न तो कर रही हैं किंतु रामचद्र उनसे कुछ अधिक लंबे हैं सो पहना नहीं पा रही हैं। हार पहनानेके लिए उन्होंने जो हाथ बढाए तो कंगनमें रामका प्रतिबिंब दीखने लगा तो वे उसे देखनेमें तल्लीन हो गईं। रामचंद्र शिर नंवाते ही नहीं थे। ऐसा देख कर विश्वामित्रने पास आकर कारण पूछा। तो रामने कहाः- मेरा लक्ष्मण अविवाहित है। उसका भी विवाह होना चाहिए और वह भी मुझसे पहले। राम अपने लघुबंधुको भूलते नहीं है।

विश्वामित्र कहते हैंः - मेरे रामकी जितनी भी प्रशंसा की जाए वह कम ही है।

राजा जनकने घोषणा की कि उनकी दूसरी पुत्रीका लक्ष्मणसे विवाह किया जाएगा। रामजीको आनंद हुआ और सीताजीकी वरमालाका उन्होंने स्वीकार कर लिया।

जनक राजाके सेवक कुमकुम-पत्रिका लेकर अयोध्या आए। दशरथजीने पत्रिका पढी। वैदिक विधिपूर्वक विवाह संपन्न करनेके हेतु अयोध्याकी प्रजाके साथ जनकपुर आनेका निमंत्रण था। दशरथजीका हृदय आनंदसे भर गया। वे जनकसेवकोंको पुरस्कार देने लगे तो उन सेवकोंने कहाः- हम इसका स्वीकार नहीं कर सकते क्यों कि हम तो कन्यापक्षके हैं।

प्रातःकालमें वासिष्ठ तथा अयोध्याकी प्रजाके साथ राजा दशरथने जनकपुरीकी दिशामें प्रयाण किया। मार्गमें शकुन भी अच्छे हुए। दो पवित्र ब्राह्मण मिले तथा सर पर पानीकी मटकी और बालकको लेकर आ रही सौभाग्यवती नारी भी मिली।

बरात जनकपुरी आ पहुंची। जनक और दशरथका मिलन हुआ। राम-लक्ष्मणको लेकर विश्वामित्र भी आए। दोनो पुत्रोने पिताको प्रणाम किया।

नारदजीने विवाहका मुहूर्त बताया, मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पंचमी और समय गौरजवेला।

बरात धनतेरसके दिन आई थी और वसंतपंचमीके बाद लौटी थी।

रघुनाथजीकी बरातमें कामदेव घोडा बनकर आया। काम-अश्व पर बैठ कर राम विवाह करने गए। जब साधारण मनुष्य विवाह करने जाता है तो काम उसी पर सवार हो जाता है।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं। राजन्, परमानंद हुआ है।

भगवान्को सुवर्ण-रचित सिंहासन पर बिठलाए गए।

एक एक राजकुमारको एक एक कन्याका दान देना है। सभी ब्राह्मण मंगलाष्टक बोलने लगे।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे ।
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ॥
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं ।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥

विधिपूर्वक रामसीताका विवाह किया गया। जनकने कहाः– मैंने कन्याका दान दिया है।

रामः– प्रति गृह्णामि।' मै इसे स्वीकारता हूं। राम सरल स्वभाववाले हैं।

अब लक्ष्मणजीकी बारी आई। लक्ष्मणजीने कहाः– हम क्षत्रिय हैं। हम दान लेते नहीं, देते हैं। मैं प्रतिगृह्णामि नहीं बोलूंगा।

ब्राह्मणः– आपके बडे भाईने कहा है।

लक्ष्मणः– वे तो भोले हैं। मैं नहीं बोलूंगा।

रामचंद्र उसे समझाने लगे। लक्ष्मण, यह तो बोलना ही पडता है।

लक्ष्मणः– आप और जो चाहे सो करूंगा किंतु मैं कन्याका दानके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकता।

विश्वामित्रने उसे समझाया कि उन शब्दोंके उच्चारके बिना विवाहविधि पूर्ण नहीं कही जा सकती। गुरुजीके समझाने पर लक्ष्मणने कहाः– 'प्रतिगृह्णामि।'

विवाहविधि संपन्न हो गई। वरवधू भोजन करने लगे। भोजनके समय यदि कुछ विनोद किया जाय तो भोजन ठीक तरहसे होता है। जनकपुरीकी स्त्रियां आसपास बैठ कर विनोद कर रही हैं। ये युवक भाग्यशाली हैं। अन्यथा ऐसी रूपवती कन्याएं उन्हें मिलती ही कहां? दशरथजीको तो कोई संतान ही नहीं थी। यह तो अच्छा हुआ कि उनकी पत्नियोंने क्षीरका प्रसाद खाया तो वृद्धावस्थामें भी उन्हें संतान प्राप्त हुई।

लक्ष्मणजीसे यह विनोद सहा न गया। उन्होंने कहाः– अयोध्यामें तो क्षीरके आहारसे संतान प्राप्त होती हैं किंतु जनकपुरीमें आकर हमने यह जाना कि यहां तो स्त्रियोंको ऐसा भी करना पडता नहीं है। यहां तो धरतीमेंसे ही संतान उत्पन्न होती हैं।

विवाहके बाद 'एकी–बेकी' का खेल रखा जाता है। जब तक पति–पत्नीका स्वभाव एक न हो सके तब तक विवाहित जीवन सफल नहीं हो सकता। दो तन किंतु एक मन ही तो विवाह है। विवाहके बाद दोनों एक हो जाते हैं। अद्वैतकी सिद्धिके लिए विवाह पहला सोपान है।

सीताजीने मुठ्ठीमें कौडियां छुपा कर पूछाः– एकी या बेकी? (अर्थात् मुठ्ठीमें एक कौडी है या दो?) रामने कहाः– एकी। सखियां हंसने लगीं। कहने लगीं कि आज तक अकेले थे अब तो बेकी (दो) हो गए फिर भी कहते हो एकी।

लक्ष्मणने कहाः– बडे भैयाकी बात बिलकुल सही है। उनकी भाषामें गूढार्थ है। विवाहके बाद बेकी (दो व्यक्ति) एकी (एक) हो जाती है। राम और सीता अब दो नहीं एक हैं, अभिन्न हैं।

सभीको आनंद हुआ किंतु आनंदकी तृप्ति नहीं हुई। कनक सिंहासन पर रामचंद्रजी और सीताजी विराजमान है।

रामचरित्र अनंत है। रामकी विवाह कथा जो प्रेमसे सुनेगा उसका सदा मंगल होगा।

विवाहकी सभी विधियां पूर्ण होनेके बाद रंग महोत्सव हुआ। और अब सभीने अयोध्याकी दिशामें प्रयाण किया।

चारों भाईओंका विवाह हो गया। आज मेरे आंगनमें तो चार चार लक्ष्मी–नारायण आए हैं ऐसा मान कर कौशल्याने पूजा आदि विधिसे उनका हार्दिक स्वागत किया।

साक्षात् महालक्ष्मी सीताजी जनकपुरी छोड कर जा रही हैं। मेरे जानेके बाद इन लोगोंका क्या होगा? माताजीने अपने आंचलमें चावल भर कर चारों ओर बीखेर दिया। आज भी मिथिलामें चावल बहुत पकते हैं।

अयोध्याकी प्रजा सीतारामका दर्शन कर रही है। अतिशय आनंद हुआ। विश्वामित्रका भी बडा सम्मान किया गया। घर आने पर राजा दशरथने रानियोंके समक्ष जनक राजाकी भुरि भुरि प्रशंसा की।

कन्याके (वधूके) माता पिताकी प्रशंसा करनेसे वह प्रसन्न रहेगी। तुम प्रेम करोगे तो लोग भी तुमसे प्रेम करेंगे। जनक राजाकी प्रशंसा सीताजीने भी सुनी।

दशरथजीने कहाः– यह परायी पुत्री अब हमारे घर आई है। जिस प्रकार हमारी आंखोंकी रक्षा पलके करती हैं उसी प्रकार सीताजीकी भी रक्षा करना।

वधू लरिकनीं पर घर आई।
राखेहु नयन पलककी माई ॥

सूतजी सावधान करते हैं।

आनंदके दिन कुछ शीघ्र ही बीत जाते हैं। रामचंद्रजी २७ वर्षके हुए और सीताजी १८ वर्षकी।

एक दिन राजा दशरथजी राजसभामें विराजमान थे। उनका मुकुट कुछ टेढा हो गया। दर्पणमें देखा। तो मुकुटके साथ साथ उन्होंने यह भी देखा कि अपने कानके कुछ केश श्वेत हो चले हैं। कानके केश श्वेत होने लगे तो मान लो कि वृद्धावस्था बहुत बढ चली है। दशरथने सोचा कि ये श्वेत केश मुझे उपदेश दे रहे हैं कि तुम अब अतिशय वृद्ध हो गए हो। रामका राज्याभिषेक क्यों नहीं करते हो? राम–सीताका राज्याभिषेक मैं अपनी ही आंखोंके आगे कर लूं तो अच्छा रहेगा। वैसे तो मेरी अन्य सभी इच्छाएं पूर्ण हो गई हैं किंतु यही एक बाकी रह गई है।

इच्छाओंका कोई अंत तो है नहीं। सो इनका त्याग करके भगवद् भजन करना उत्तम है।

दशरथ राजाकी इच्छाके विरुद्ध कोई क्या बोल सकता है ? दशरथका राज्य वैसे तो प्रजातंत्र ही है। मंत्रीगण और महाजनोंकी अनुमतिके विना रामका राज्याभिषेक किया नहीं जा सकता। प्रजाकी भी इच्छा थी कि राम राजा बने। राजा दशरथने मंत्रीगण और महाजनोंसे कहा, यदि आप अनुमति दें तो रामको राजापद देनेकी विधि हम करें।

मंत्री सुमंतने कहाः– धन्य है। हम भी यही चाहते थे किंतु संकोचवश बोल नहीं पाते थे।

उसी समय राजसभामें वसिष्ठजीका आगमन हुआ। सभीने उनका सत्कार किया। दशरथने उन्हें प्रणाम करते हुए कहाः– प्रजाकी इच्छा है कि रामका राज्याभिषेक किया जाय। आपकी हम आज्ञा चाहते हैं।

वसिष्ठजीः– राजन्, विचार तो अच्छा है।

दशरथजीः– महाराज, कोई शुभ मुहूर्त बताइए।

वसिष्ठजीने सोचा कि आजका मुहूर्त बताऊं। किंतु वे जानते थे कि आज उनका राज्याभिषेक नहीं हो पाएगा। सो उन्होंने कहाः– राम जिस दिन जब भी राज्यपद ग्रहण करे वही श्रेष्ठ दिन है।

वसिष्ठजीकी गूढार्थ वाणी दशरथजी समझ नहीं पाए। उन्होंने तो अगले ही दिन राज्याभिषेक करना चाहा। उन्होंने मंत्रीगणसे राज्याभिषेककी तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी।

मंत्री सुमंतने कहाः– राजन्, सभी तैयारी हो चुकी है।

दशरथजी :– वसिष्ठजी, रामको यह समाचार आप ही दें तो अच्छा हो। आप कुलगुरु हैं।

तो वसिष्ठजी रामचंद्रके आवासमें पधारे। रामने कहाः– आपने मेरे यहां पधार कर मुझे पावन कर दिया।

वसिष्ठजीः– तुम तो विनयकी मूर्ति हो अतः ऐसी बातें स्वाभाविक हैं। कल तुम्हारा राज्याभिषेक होगा। राज्याभिषेककी बात सुनकर सभी लोग आनंदित हो गए किंतु राम कुछ उदास हो गए। वे वसिष्ठजीसे पूछने लगेः– क्या मुझे अकेले ही राजा बनना है।

वसिष्ठजीः– राजा तो एक ही होता है।

रामजीः– नहीं, नहीं। हम चारों भाईओंका राज्याभिषेक होना चाहिए। मेरे भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको भी राजा बनाइए।

वसिष्ठने मंद मंद स्मित करते हुए कहाः– मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि राजा तो एक ही व्यक्तिको बनाया जा सकता है। जो ज्येष्ठ हो वही राजा बन सकता है और तुम ज्येष्ठ हो। सभीकी यही इच्छा है सीताजीके साथ तुम्हारा राज्याभिषेक किया जाय। कलसे रामराज्यका आरंभ होगा।

वहां लक्ष्मणजी आए। रामने उनसे कहाः– भाई, पिताजी मुझे कल राजा बनाने जा रहे हैं। मैं तो नाममात्रका राजा रहूंगा अन्यथा राज्य तो तुम्हारा सभीका है।

राम सभीके अंतर्यामी हैं किंतु लक्ष्मण रामके भी अंतर्यामी हैं। रामको लक्ष्मण बहुत प्रिय हैं। लक्ष्मण, यह राजलक्ष्मी तुम्हारी ही है। तुम जैसा कहोगे वैसा ही होगा। लक्ष्मणको अत्यंत आनंद हुआ। उसे स्वयं तो राजा होनेकी इच्छा थी ही नहीं। बडे भैया सिंहासन पर विराजेंगे और मैं चमर लेकर उनकी सेवा करूंगा। लक्ष्मणका बंधुप्रेम दिव्य है।

आज सारे [illegible]को सुशोभित किया गया है। वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार दशरथने भी आज्ञा दी। हृदय आनंदसे छलक रहा है। दशरथके राज्यकालकी यह अंतिम राजसभा है। यह तो सूर्यवंशका पवित्र सिंहासन है। जिस राज्यासन पर कभी रघु, भगीरथ, दिलीप आदि भी विराजमान हुए थे उसे उन्होंने प्रणाम करते हुए कहा, आज तक मैं तुम्हारी गोदमें था। कल मेरा राम वहां बैठेगा। उसकी रक्षा करना।

सारे अयोध्यामें बात फैल गई। सारे नगरमें आनंदकी लहर दौड पडी। किंतु देवोंको दुःख हुआ। यदि राम कल राज्यपद ग्रहण करेंगे तो रावणका नाश कौन करेगा? रावण और उसके राक्षस बहुत सता रहे है। देवोंने विघ्नेश्वरी देवीका आवाहन किया। माताजी पधारीं।

देवोंने विघ्नेश्वरी देवीसे कहाः– अयोध्यामें जा कर रामके राज्याभिषेक प्रसंगमें कुछ बाधा उपस्थित कीजिए। राम नो सुखदुःखसे पर हैं। वे तो आनदरूप ही हैं और दशरथकी भी सद्गति होनेवाली है।

महात्माओंने कहा हैः– किसीका संपूर्ण सुख तो कालसे भी देखा नहीं जाता। दशरथ राजाके सुखको कालकी अशुभ नजर लग गई।

कालने माता विघ्नेश्वरीमें प्रवेश किया। विघ्नेश्वरी सोचने लगी कि अब क्या करुं। किसके शरीरमें प्रवेश करुं? सोचते हुए उनके मनमें मथरा याद आ गई। मंथराका जन्म कैकेय देशमें हुआ था। विघ्नेश्वरीने मंथरामें प्रवेश किया। मंथरा अयोध्या नगरीमें घुमती हुई नगरका साज–सिंगार देखने लगी। उन्होंने किसीसे पूछा कि यह कौन–से उत्सवकी तैयारी चल रही है। लोगोंने कहाः– क्या तुझे अभी तक शुभ समाचार मिले ही नहीं हैं? कल राजकुमार रामचंद्रजीका राज्याभिषेक होने जा रहा है।

महात्मा कहते हैं कि कौशल्यासे एक भूल हो गई। जब एक दासी दौडती हुई आई और कौशल्याको राज्याभिषेकका समाचार सुनाया तो उन्होंने आनंदित होकर दासीको एक मोती हार दिया। और कहा कल मेरा पुत्र राम राजा बनेगा तो तुम्हें दो–तीन गांवकी जागीर देगा। राम तुम्हें मुझ–सा ही सम्मान देगा।

दासी आनंदभरी घरकी ओर जाने लगी तो रास्तेमें मंथरा मिली। मंथराने आनंदका कारण पूछा। दासीने कहाः– कल राम राजा बनेंगे। देख तो सही, माता कौशल्याने मुझे यह मोतीमाला दी है। राजा राम कल मुझे दो गांवकी जागीर देंगे। मैं कौशल्याकी दासी जो हूं। तुम्हें तो कुछ भी नहीं मिला।

परमार्थमें यदि कोई भूल हो जाए तो भगवान् शायद क्षमा कर देते हैं किंतु व्यवहारकी छोटी–सी भूल भी लोग क्षमा नहीं कर सकते। परमात्मा बडी भूल भी क्षमा कर देते है। व्यवहार बडा कठोर है। व्यवहारमें अत्यंत सावधान रहना चाहिए।

कौशल्याने अपनी दासीको तो बहुत कुछ दिया किंतु अपनी सखियोंकी दासियोंको कुछ नहीं दिया। मंथरा आदिको भी कुछ न कुछ दिया जाता तो वह विघ्न टल सकता था।

व्यवहार करो किंतु व्यवहारमें ही डूब न जाना। जब तक साधु-महात्माको मुठी भर अन्नकी जरुरत रहती है तब तक उन्हें भी गृहस्थकी भांति ही व्यवहार करना पडता है। जब तक शरीर है, व्यवहार छोडा नहीं जा सकता। व्यवहार करो किंतु उससे परे रह कर।

व्यवहार करते समय आत्मस्वरूपसे संबंध न रखा जाए तो पाप होता है। मनके दो भेद हैं- सूक्ष्म और स्थूल। मनका स्थूल अंश चाहे व्यवहारसे लगा रहे किंतु उसके सूक्ष्म अंशको तो भगवान्से ही लगाए रखना चाहिए। जब पनिहारी अपने सर पर पानीका घडा उठाए चलती है तब उसका स्थूल मन सखियोंकी बातोंमें लगा रहता है किंतु सूक्ष्म मन तो पानीके घडेमें ही अटका रहता है।

परमार्थ सरल है किंतु सांसारिक व्यवहार बडा सकुल है। व्यावहारिक कामकाजके समय भगवान्को कभी न भूलना।

जिस प्रकार स्त्री अपने बालकमें अपना सूक्ष्म मन रख कर घरका कार्यभार संभालती है उसी प्रकार सूक्ष्म मनको परमेश्वरके साथ जोड व्यवहार करोगे तो सफल होंगे।

कौशल्याकी दासीने मंथराको ताना मारा तो उसके दिलमें मत्सर जाग उठा। वह ईर्ष्याकी अग्निमें जलने लगी। वह कैकेयीके पास आई और स्त्री-चरित्र शुरु कर दिया। कैकेयीके आगे वह चारोंसे रोने लगी। कैकेयीने पूछाः- क्यों रोती है रे तू ? क्या लक्ष्मणने तुम्हें कोई सजा दी है क्या ?

मंथरा तो बिना कुछ कहे-सुने रोती ही जा रही थी। कैकेयीके हृदयमें रामके लिए स्नेह है सो वह रामका कुशल-मंगल पूछती है। राम कुशल तो है न? वैसे तो पतिकी कुशलताकी पूछपरछ पहले करनी चाहिए किंतु राम पर अतिशय स्नेह है अतः उन्हींके समाचार पूछ रही है।

मंथरा कहने लगीः- हां, राम तो आनंदमें ही हैं। आनंदमें क्यों न हो ? कल उनका राज्याभिषेक होने जा रहा है। कैकेयीने मंथरासे यह समाचार सुन कर उसे मालाका उपहार दिया। कैकेयीके मनमें अभी तक कलिने प्रवेश पाया नहीं था। किंतु मंथराने तो वह माला फेंक दी। सभी आनंदित थे, किंतु मंथरा तो बेचैन थी।

कैकेयीने कहाः- तू तो मूर्ख है। सूर्यवंशकी यही परंपरा है कि ज्येष्ठ पुत्र राजाका पद पाए। मैंने कई बार रामकी परीक्षा की है। वे कौशल्यासे भी बढ कर प्रेम मुझीसे करते हैं।

कैकेयी तो भोली है। मंथराका स्पर्श होने पर ही उसके भी मनमें पाप जागेगा। मंथराने स्त्रीचरित्र शुरू कर दिया। रोती हुई वह धरती पर जा गिरी। और सीसकियां लेती हुई कहने लगी- चाहे राम राजा बने या भरत। मुझे क्या लेना-देना है ? मैं तो दासीकी दासी ही तो रहूंगी। जिसकी भी भलाई करना चाहती हूं वही मेरे विरुद्ध हो जाता है। मेरा तो कोई स्वार्थ है ही नहीं। बात तो तुम्हारी ही बीगड रही है। मै चाहती हूं कि तेरी बीगडने जा रही बातको सुधार दूं। मेरा स्वभाव ही ऐसा पड गया है।

कैकेयी मंथराकी कपटभरी वाणीमें फंस गई। मेरे लिए उसे प्रेम है तभी तो मुझे कहने आई है। उसने मंथराको थपथपाया। कैकेयीने ज्यों ही मंथराका स्पर्श किया, उसके मनमें कलिने प्रवेश पा लिया।

पापीका कभी स्पर्श न करो। शास्त्रमें दोषोंका वर्णन किया गया है। किसीका स्पर्श विना कारण कभी न करो।

कैकेयीः– मंथरा, सच सच बता। क्या दुःख है तुझे ?

मंथराः– मुझे तो वैसे तो कुछ कहना है ही नहीं। किंतु तुम्हारा जो अहित होने जा रहा है वह मुझसे देखा नहीं जाता है। मैं तेरी बीगड रही बातको बनाना चाहती हूं। मेरा अपना तो कोई स्वार्थ है नहीं।

कैकेयीः– बताव, मुझे क्या करना है ?

मंथराः– कैकेयी, तुम तो बडी भोली हो। तुम मानती हो कि राजा तुम्हारे हाथोंमें हैं। किंतु पुरुष झूठे होते हैं। वे तुम्हारे कहेमें हैं ही नहीं। वे कौशल्याकी बातें ही मानते हैं। कौशल्याने तुम्हें अपने रास्तेसे हटानेका षड्यंत्र रचा है। पंद्रह दिनोंसे रामके राज्याभिषेककी तैयारी चल रही है और तुम्हें तो पता तक नहीं है। दशरथ बडे कपटी हैं। वे कौशल्यासे ही प्रेम करते हैं तुम्हारे साथ तो प्रेमका दीखावा ही करते हैं। रामके राज्याभिषेक करनेमें इतनी शीघ्रता क्यों की जा रही है ? कौशल्याके कहनेसे ही तो भरत–शत्रुघ्नको मामाके घर भेज दिये गये हैं। देशके सभी राजाओंको निमंत्रण भेजा गया है किंतु भरत–शत्रुघ्नको तो कोई याद तक नहीं करता है। तुम्हें तो कुछ खबर ही नहीं है। बस, आरामसे सो रही हो तुम।

कैकेयीः– हां, तेरी बात बिलकुल सही है। मेरा कोई नहीं है। तू ही बता, मैं क्या करुं अब ?

मंथरा अब भी विष उगलती जा रही थी। राम राजा बन जानेके बाद तेरी कोई भी सेवा नहीं करेगा। लक्ष्मणको मंत्रीपद दिया जायगा और भरतको कारावास। तुम्हें कौशल्याकी दासी बनना पडेगा। तुम्हारा रानीपद छीन लिया जाएगा। कौशल्या राजाको तुम्हारे आधीन रहने देना नहीं चाहती है। मुझसे तो यह सब देखा नहीं जाता।

कैकेयीः– मैं कर ही क्या सकती हूं ? तीन दिनसे मुझे बडे अशुभ सपने दीखाई दे रहे हैं। वे अशुभ स्वप्न उसके विधवा होनेकी पूर्वसूचना ही थी किंतु वह समझ नहीं पा रही थी। वह तो इतना ही सोचती थी कि मेरे भरतकी दुर्दशा होने जा रही है।

मंथराः– बाजी अब भी तुम्हारे हाथोंमें है। तुम्हें राजासे दो वरदान मांगने हैं। वे आज ही तुम मांग लो।

कैकेयी :– क्या मांगूं मैं ?

मंथराः– एक वरदान यह मांगो कि अपने भरतको राजा बनाया जाय और दूसरा वरदान यह मांगो कि रामचंद्रको चौदह वर्षका वनवास दिया जाय। वस्त्राभूषणका त्याग करके कोपभवनमें चली जाना। जब दशरथ तुम्हारे इस रूपसे कातर हो जाय तब वे तुम्हें किसी भी वस्तु मांगनेका अनुरोध करेंगे। वे रामकी कसम भी खाएंगे। बडी सावधानीसे काम लेना। वे रामको वनवास देनेके लिए वैसे तो तैयार होंगे ही नहीं। सो उनको रामकी ही कसमसे बांध लेना। भूपति राम शपथ जब कर हीं। जब वे रामकी शपथ लें तभी अपने दो वरदान मांग लेना।

कैकेयी वैसे तो बडी भोली थी। किंतु कुसंग तो हर किसीको बीगाड देता है। कुसंगके कारण ही कैकेयीकी मति भ्रष्ट हो गई और वह अनर्थ करनेको तैयार हो गई।

कैकेयीने क्रोधभवनमें जा कर अपने आभूषण आदि उतार फेंके और क्रोधित मुद्रा धारण करके धरती पर ही सो गई। वह वीरांगना थी सो राजाको प्रिय थी। वे राजसभाकी समाप्तिके पश्चात् प्रतिदिन कैकयीसे मिलनेके लिए आते थे। आज उन्होंने आ कर देखा तो कैकेयीका पता ही नहीं था।

राजाको समाचार मिला कि कैकेयी तो कोपभवनमें पडी हुई है। वे धैर्य धारण करते हुए वहां आए और पास बैठ कर कैकेयीका स्पर्श ही करने जा रहे थे कि उसने बीगड कर कहा, मुझे मत छूना। कैकेयीने अपने पतिका अपमान किया। दशरथजीने कहाः- मैं तुम्हारे लिए आनंददायी समाचार लेकर आया हूं। एक बार तुम्हींने कहा था कि आप अब वृद्ध हो चले हैं सो रामको राज्यासन पर बीठला कर निवृत्त हो जाईए। मैंने तेरी बात मान ली है। कल रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है। क्या राय है तुम्हारी?

भरत स्वरूप है वैराग्यका और शत्रुघ्न स्वरूप है सद्‌विचारका। यदि वे दोनों दशरथके पास होते तो दशरथ कैकेयीके कहनेमें नहीं आते। किंतु वे दोनों पास नहीं थे। सो कैकेयीके कहनेमें आ गए।

सभी प्रकारकी अनुकूलता होते हुए भी यदि मन किसी भी विषयमें नहीं जाए वही सच्चा वैराग्य है। भारतका वैराग्य दिव्य है।

संपत्ति प्राप्त होने पर भी संपत्तिका मोह न जागे वही वैराग्य है।

भोज्य पदार्थ न मिलने पर उपवास करना निरर्थक है। किंतु भोजनके लिए मिष्टान्न सामने हों फिर भी जो संयम निभाये वही वैरागी है।

ईश्वरके चरणोंमें वास करना ही उपवास है। जो ईश्वरके चरणोंमें बसनेकी इच्छा रखता है उसे देहधर्म-भूख-प्यासका भान भूलना ही पडेगा। भूख-प्यास भुला कर ही ईश्वरके चरणोंमें वसा जा सकता है।

भरतजी-वैराग्य-को हमेशा अपने पास रखो। जो अपने पास भरतजी और शत्रुघ्न-सद् विचारको रखता नहीं है वह कैकेयी-कुबुद्धिके आधीन हो जाता है।

कौशल्या निष्काम बुद्धि है, सुमित्रा श्रद्धा है और कैकेयी है कुबुद्धि।

कैकेयीका क्रोध कब उतरनेवाला था? दशरथजीने उससे कहा, जो चाहे सो मांग लो। मैं तेरे ही आधीन हूं। मैंने आज तक कभी रामकी कसम नहीं खायी। आज रामकी कसम खा कर कहता हूं कि तू जो कुछ मांगेगी, मैं अवश्य दूंगा।

दशरथ राजा रामकी कसमसे बंध गए तो कैकेयीने कहा, आपको याद ही होगा कि मेरे दो वरदान आपसे लेने बाकी हैं। मैं आज वही मांगना चाहती हूं।

दशरथः- अरे, दो क्या चार मांग ले।

कैकेयीः- कहीं आप देनेसे इन्कार तो कर दें तो?

दशरथजीः–

रघुकुल रीति सदा चली आई।
प्रान जाए पर वचन न जाई॥

मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। जो चाहे सो मांग ले तू।

कैकेयी जानती थी कि राम कल वनमें जाएंगे। मै आज शृंगार कैसे करुं? मेरा राम रावणका नाश करके राज्य संभाले इसीमें उसकी शोभा है।

झगडा होता है स्वार्थ और लोभके कारण। वनवासके विना जीवनमें सुवास नहीं आनेकी। तपश्चर्याके विना जीवन सुवासित नहीं हो पाता। राम युवावस्थामें ही वनवासी बने।

काम ही रावण है। यह रावण सभीको रुलाता है। सभीको रुलाए वही रावण है। रावण (काम) जीवमात्रको रुलाता है। ऐसे रावणको मारनेके लिए तपश्चर्या द्वारा जीवनमें सात्विकता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

कैकेयीकी कुबुद्धि ही रामके वनवासके लिए कारणभूत है।

कैकेयीने प्रथम वरदान मांगाः– भरतका राज्याभिषेक किया जाए।

मंथराने कैकेयीसे कहा था यदि रामके वनवासकी बात पहले कर देगी तो राजा मूर्च्छित हो जाएंगे। और यदि उनकी मृत्यु हो गई तो दूसरा वरदान बाकी ही रह जाएगा।

दशरथने कहा:– तेरी इच्छा ही है तो भरतका ही राज्याभिषेक करेंगे। अब दूसरा वरदान भी मांग ले।

कैकेयीने कहाः—

तापस वेष विसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी॥

इस दूसरे वरदानको सुन कर राजा निस्तेज हो कर मूर्च्छित हो गए। वे मूर्च्छावस्थामें सीताराम सीताराम बोलने लगे। मूर्च्छासे जब जगे तो कहने लगेः– कैकेयी, तूने यह क्या मांगा? मेरे रामको वनमें क्यों भेज रही है तू? उसने तेरा कौनसा अपराध किया है? राम जैसे सरल बालकको वनमें कैसे भेजें? मेरे रामको मेरी आंखोंसे दूर न कर। मैं रामके विना जी नहीं सकता।

जीए मीन बरु वारि बिहीना।
मनि बिनु फनिकु जिए दु खी दीना॥
कहउं सुभाउ न छल मन माहीं।
जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥

सभव है कि मछली पानीके विना जी सके या सर्प मणिके विना दुःखी, दीन हो कर जी सके। किंतु मैं साफ साफ कहता हूं कि रामके विना जीना मेरे लिए अशक्य है। मेरा जीवन रामदर्शनके आधीन है।

अब मैं कुछ अधिक तो जीऊंगा नहीं। तुम्हें और मुझे लोग क्या कहेंगे? कैकेयी, भरतका राज्याभिषेक चाहे किया जाय किंतु रामको अयोध्यामें ही रहने दे। मुझे लगता है कि तूझे विना कहे ही राज्याभिषेककी तैयारी की जा रही है अतः तू गुस्सा कर रही है। किंतु सच कहता हूं। कौशल्याने मुझसे कुछ भी नहीं कहा है।

कैकेयीः– कौशल्या और राम कैसे हैं वह मैं अच्छी तरह जानती हू। आप अपने वचनका पालन करनेसे क्यों कतराते हैं? आपकी रघुकुल रीति कहां चली गई?

दशरथने कैकेयीको मनानेका वहुत प्रयत्न किया। विनंति की। किंतु वह कव माननेवाली थी।

अंतमें वडे दुःखसे राजा दशरथने कहाः– कैकेयी, तेरा भी क्या दोष? मेरा काल ही तेरा रूप लेकर आया है। अब भी कहता हूं कि मान जा। मेरे रामके विना मैं एक क्षण भी जी नहीं सकुंगा।

किंतु कैकेयी तो अव निष्ठुर ही हो गई थी। वह नहीं मानी सो नहीं मानी।

दशरथजीने कहाः– कलमुखी, हट जा मेरे सामनेसे। मुझे विश्वास है कि भरत कभी राजा वननेवाला नहीं है। चौदह वर्षोके बाद राम ही राजा बनेगा। आज विधाता ही प्रतिकूल है। मैं रामके राज्याभिषेकको देखनेके लिए जीवित नहीं रह पाऊंगा।

दशरथ राजा भगवान् सूर्य नारायणको मनाने लगे। आजकी रात बस कभी समाप्त ही न हो पाए कि जिससे रामको वनमें जाना न पडे।

वे शिवजीसे भी प्रार्थना करने लगे। हे शंकर भगवान् रामको प्रेरणा दीजिए कि मेरी आज्ञाका वह उल्लंघन करे और वनगमन न करे।

प्रातःकाल हुआ। राजा जगे ही नहीं। मंत्री सुमंत आए। उन्होंने कैकेयीके राजमहलमें आकर देखा तो दशरथजी मूर्च्छित पडे थे। वे समझ गए कि कैकेयीने ही कुछ कपट किया है। उन्होंने कैकेयीसे पूछा, महाराज क्यों अब तक जगे नहीं हैं?

कैकेयीने गुस्सा करके कहाः– मैं कुछ नहीं जानती। सारी रात राम राम करते रहे है। सो रामसे ही जाकर पूछो।

तो सुमंतने रामके पास जाकर कहा कि पिताजी तुम्हें याद कर रहे हैं। रामने कैकेयीके आवासमें जा कर पिताकी स्थिति देखी और कैकेयीसे पूछाः– क्या हो गया है मेरे पिताजीको? मुझे समाचार क्यों नहीं भेजे गए।

कैकेयीः– क्या वताऊं मैं तुम्हें? तुम्हारे पिताके दुःखका कारण तुम्हीं हो। मैंने उनसे दो वरदान मांगे। वे पहलेसे ही वचन-बद्ध हो गए थे। वरदान सुनते ही वे अचेत हो गए हैं।

वरदान सुन कर रामचंद्रने माताको प्रणाम किया और कहाः– माता कैकेयी, तुम मेरे लिए कितना पक्षपात करती हो? मुझे वनमें ऋषि मुनियोंके सत्संगका लाभ हो और मेरा कल्याण हो इसी हेतुसे तुम मुझे वनमें भेज रही हो। भरतसे भी अधिक प्रेम तुम मुझसे कर रही हो।

कैकेयीकी निष्ठुरताकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

राम शब्द सुनते ही दशरथजीकी आंखें खुल गईं। रामने प्रणाम किया तो दशरथने उन्हें बांहोंमें भर लिया। राम, मुझे छोड कर कहीं न जाना।

रामचंद्रजी पिताजीको धीरज देते हुए समझाने लगे– आप तो धर्मधुरंधर है। आपको कौन क्या समझा सकता है? चौदह वर्षका समय तो अत्यंत शीघ्र ही बीत जाएगा। और आपके दर्शनके लिए मैं वापस आ जाऊंगा। आपके आशीर्वादसे वनमें मेरा कल्याण ही होगा। मुझे तो बडा आनंद है कि मेरा प्रिय भाई भरत राजा होने जा रहा है।

वहांसे अब रामचंद्र कौशल्याके पास आए। माताका दिल भर आया। सुंदर आसन पर बीठला कर बला उतारी। और कहने लगीः– अच्छा हो हुआ कि तू आ गया। आज तो तेरा राज्याभिषेक होगा। वसिष्ठजी राजतिलक करेंगे। राजसभामें अधिक समय रहना पडेगा सो अभी भोजन कर ले।

रघुनाथजीने गंभीरतासे मातासे कहाः– पिताजीने भरतको अयोध्याका राज्य दिया है और मुझे वनवास।

कौशल्याने सारी बात सुनी तो वह दुःखसे स्तब्ध-सी हो गई। ऐसी बातें उसके हृदयमें बाणकी भांति चूभ गईं। उसे जो दुःख हुआ उसका वर्णन शब्दोंमें कैसे किया जा सकता है?

कहहि न जाइ कछु हृदय विषादु।

किंतु कौशल्याने अपनेको संभालते हुए कहाः– भरत राजा बने और तू वनवासी बने यह तो ठीक है। किंतु तेरे जानेके बाद तेरे पिताजीका क्या होगा? आज तो स्थिति ऐसी हो गई है कि—

अवध अभागी, बनु बडभागी।

मैं तेरे साथ वनमें आ नहीं सकती क्यों कि मेरा पातिव्रत्य धर्म अनुमति नहीं देता है।

पुत्र, वनके देवता तेरी रक्षा करें।

उसी समय सीताजी भी वहां आ पहूंची अपनी सासको प्रणाम करके धरती पर दृष्टि रख कर वहां खडी रह गईं।

कौशल्याने रामसे कहाः– बेटा, यह मात्र मेरी कुलवधू ही नहीं साक्षात् लक्ष्मीजी है। मुझे तो आशा थी कि प्रेमलता फूलेगी, फलेगी।

बेटे, यदि वनमें तूझे जाना है तो जा सकता है। किंतु मेरी सीता मेरे ही पास रहेगी। मेरा अपना पुत्र चाहे जो कष्ट उठाए, पराई पुत्रीको कभी दुःखी नहीं करनी चाहिए। अपनी पलके आंखोंकी रक्षा करती है उसी तरह इस सीताकी भी मुझे रक्षा करनी चाहिए।

राखहुं पलक नयनकी नाईं।

रामने सीतासे कहाः– तुम यहीं घरमें ही रहोगी तो माताको प्रसन्नता होगी। सास-ससुरकी सेवा करना भी तो तुम्हारा धर्म है। वनमें राक्षस भी होते हैं। वनवासमें बहुत कष्ट होता है। वनवास केवल मुझे दिया गया है तुम यहीं रह कर सभीकी सेवा करना।

सीताजी मनमें सोच रही थी कि प्राणनाथके साथ मेरे शरीर और प्राण दोनों जा पाएंगे या केवल प्राण ही।

कि तनु प्राण कि केवल प्राना।

धैर्यसे सीताने कहाः– आपकी बात वैसे ठीक तो है किंतु नारीका आधार मात्र एक पति ही होता है। यदि आपको ऐसा विश्वास है कि आपके विरहमें मैं चौदह वर्ष तक जीवित रहूंगी तो मुझे यहां छोड कर जा सकते है। आपके विरहमे मेरे प्राण चले जाएगे सो मैं तो भाग्यशाली ही हूं। किंतु मेरे शरीर पर भी आप कृपा कीजिए।

और तो क्या कहूं ? आप तो अंतर्यामी हैं।

रामचद्रजीने सोचा कि इसे यहां रहनेका अति आग्रह करुंगा तो वह प्राणत्याग करेगी। ठीक है, मैं तुम्हें अपने साथ ले जाऊंगा।

कौशल्याः– बेटे, मेरी सीताको क्षण मात्र भी अकेली न छोडना। मैं तुम्हारे इस मनोहर युगलका दर्शन अब फिर कब पाऊंगी ?

तभी लक्ष्मणजी वहां आ पहुंचे। रामने उससे कहाः– लक्ष्मण, माता–पिता आदिकी भली भांति सेवा करना।

लक्ष्मणः– मेरे माता पिता तो आप ही है। यदि आप ही मेरा त्याग करेंगे तो मैं किसकी शरणमें जाऊंगा ? मेरा त्याग मत करो। जल विना मछली शायद जी सकती है, किंतु राम सीताके विना मैं जी नहीं सकता।

राम भी जानते थे कि लक्ष्मण उनके बगैर रह नहीं सकेगा। सो उन्होंने लक्ष्मणसे कहाः– माता सुमित्राकी अनुज्ञा ले आ।

लक्ष्मणजीने मातासे सभी बात की। सुमित्राने कहा, कैकेयी तूने तो अयोध्या उजाड दी। लक्ष्मणसे कहा, ‘ गच्छ तात यथा सुखम्। ’

लक्ष्मण, मात्र तुम्हें ही अपनी सेवाका लाभ देनेके लिए राम वनमें जा रहे है। अनन्य भावसे तू राम–सीताकी सेवा करना।

पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुत होई।

लक्ष्मण, मेरी अनुमति है।

अवध तहां जहां राम निवासु।

वहा ऊर्मिला आई। एक भी शब्द बोल न सकीं। मन ही मन प्रणाम किया।

सीता, राम और लक्ष्मण दशरथके पास आए। दुःख संतप्त पिताजीको राम धीरज देते हुए कहने लगे.– पिताजी शांत हो जाइए। हम वनमें जा रहे हैं। हमें आज्ञा दीजिए, आशीर्वाद दीजिए।

इस समयका वर्णन कौन कर सकता है ?

दशरथ तो मूर्च्छित-से ही थे। कैकेयी कहने लगी।- मेरी आज्ञा ही पिताकी आज्ञा है। वे स्वयं तो कुछ भी कह नहीं पाएंगे।

कैकेयीकी आज्ञासे वल्कल लाए गए। राम, लक्ष्मण और सीता अपने राजसी वस्त्र छोड कर वल्कल धारण करनेकी तैयारी करने लगे। इतनेमें वहां वसिष्ठजी आए। उन्होंने सीताजीका वल्कल छीन लीया और कैकेयीसे कहाः- तुमने रामको वनवास दिया है, सीताको नहीं। सीता तो हमारी राज्यलक्ष्मी है।

अयोध्याकी प्रजा दुःखके मारे व्याकुल हो गई है।

रामने जनतासे कहाः- मेरे माता-पिताकी सेवा करो। जो उनकी सेवा करेगा वही मुझे प्रिय होगा। वसिष्ठजी आप सबकी रक्षा करेंगे।

किंतु प्रजा तो कहने लगीः- जहां हमारे राम होंगे वहीं हम भी होंगे।

राम, लक्ष्मण, सीताने वनकी ओर प्रयाण किया। कैकेयीने कहा राम तो गया और साथ साथ अयोध्या भी उजाडता गया।

जहां तेरा-मेरा, अपना-परायाका भेद भाव है वहां भगवान् विराज नहीं सकते।

दशरथ मूर्च्छासे जाग्रत हुए तो उन्हें समाचार मिला कि राम वनकी ओर चले गए हैं। ओह, मेरा राम गया तो मेरे प्राण क्यों अब तक बाकी रह गए हैं।

अज हु न निकले प्राण कठोर।

मंत्रीजी, मेरे सुवर्णरथ ले जाओ। रामसे कहो कि वह पैदल न जाय, रथमें बैठ कर ही जाय। मेरी आज्ञा है। दो-चार दिन उन्हें वनकी सैर कराना। और फिर सभीको अयोध्या वापस लाना। यदि राम वापस न भी आए तो सीताको तो अवश्य ही लेते आना।

दशरथकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके मंत्री सुमंत रथ लेकर रामके पास आए। कहा, आपके पिताकी आज्ञा है कि वनमें पैदल नहीं, रथमें बैठ कर जाइए। अयोध्या उजड गई है।

सभी तमसा नदीके किनारे आए। मध्यरात्रिका समय है। सभी गहरी नींदमें है। रामने मंत्रीजीसे कहा, ये सब सोए हुए हैं। धीरेसे रथ चलाइए कि जिससे कोई जाग न जाए। हम यहांसे चल दें। भगवान् शंकरको प्रणाम करके रामचंद्रजीने वहांसे आगे प्रयाण किया।

प्रातःकाल हुआ तो रामका रथ श्रृंगवेरपुरके पास आ गया था।

इधर प्रजाजनोंने जाग कर देखा तो रामका कहीं पता ही नहीं था। वे सब व्याकुल हो कर विलाप करने लगे।

श्रृंगवेरपुरके राजाको रामके आगमनका समाचार मिला। गुहक वहां आए। प्रभुने गुहकका स्वागत किया। गुहकने रामचंद्रजीसे निवेदन कियाः- मेरा राज्य आपका ही है। मेरे यहां पधारिए। मेरे नगरको पावन कीजिए।

रामचंद्रजीः- चौदह वर्ष तक मैं किसी भी नगरमें प्रवेश नहीं कर सकता।

एक दिन व्रत किया और दूसरे दिन फलाहार। रामचंद्रजी मंत्रीजीसे कहने लगेः– अब आप अयोध्या वापस लौटें। विपत्तिके समयमें भी महापुरुष धैर्यरहित नहीं होते। मेरे पिताजीको मेरा प्रणाम कहना।

सुमंतजीः– सीताजीको तो मेरे साथ भेजिए। सीताजी दशरथजीका बडा आधार होगी।

सीताजीः– मंत्रीजी, मैं नहीं आऊंगी। मैंने जनकपुरीका वैभव भी देखा है और अयोध्याका भी देख लिया। मैं तो वहीं रहूंगी जहां मेरे पतिको रहना है।

सुमंत अकेले ही लौट गए। रामने राजा गुहकसे वटवृक्षका दूध मंगवा कर केशमें डाला और जटा बनाई। रघुनाथजी तपस्वी हो गए। गुहक यह देख न सके और मूर्च्छावश धरती पर जा गिरे।

गंगा पार करनी थी सो गंगा किनारे आए। लक्ष्मणजीने केवटको पुकारा और पूछा, क्या तू हमें पार ले जाएगा? केवट अपनी नौकामेंसे ही कहने लगा मैं तुम्हारा मर्म जानता हूं।

लक्ष्मणजीः– अरे भाई, कौन–सा मर्म जानता है तू?

केवटः– रामके चरणोंकी धूलिके स्पर्शसे पत्थरकी अहल्या सजीव हो गई। मेरी नौका तो लकडीकी है। रामके चरण स्पर्शसे मेरी नौका भी यदि स्त्री बन जाय तो मेरे कुटुंबका परिपालन कैसे करुंगा और इस दूसरी स्त्रीका क्या करुंगा? यदि मेरी नौकामें आप बैठना ही चाहते हैं तो पहले मुझे रामचंद्रजीके चरण धोनेकी अनुमति दी जाय। उनके चरण धो कर धूलि साफ करनेके बाद ही मैं उन्हें मेरी नौकामें बैठने दूगा।

केवटके प्रेमपूर्ण वचनसे रघुनाथजीको प्रसन्नता हुई। उन्होंने केवटको अपने पास बुलाया वह लकडीका बर्तन लेकर आया और कहने लगा कि मेरी इच्छा है कि आपके चरण पखारुं।

रामचंद्र सोच रहे हैं कि मेरे दोनों पांवोंके स्वामी तो यहां हैं ही अब तीसरा आ गया। वसिष्ठजीने न्याय किया था। निर्विकारी लक्ष्मण दक्षिण चरणकी सेवा करेगा और सीताजी वाम चरणकी।

केवट भाग्यशाली था। वह दोनों चरणोंकी सेवा कर सका। गंगाजलसे दोनों पांव पखारने लगा। उसने बडी लगनसे पांव पखारे। मेरी इच्छा पूर्ण करने दीजिए।

जिन चरननी चरनपादुका भरत रह्यो लव लाई।
सोई चरन केवट धोय लीन्हें तब हरि नाव चलाई।
भज मन रामचरण सुखदायी॥

यह केवट पूर्वजन्ममें क्षीर समुद्रमें कच्छप था। वह नारायणकी चरणसेवा करना चाहता था। लक्ष्मीजी और शेषने अनुमति नहीं दी। आज लक्ष्मीजी सीता बनी हैं और शेष लक्ष्मण। अगले जन्ममें तो आपने मुझे नारायणकी चरणसेवा नहीं करने दी थी। आज आप दोनों खडे हैं और मैं सेवा कर रहा हूं।

केवटने राम, लक्ष्मण, सीताको गंगा पार कर दिया। केवटने उनको साष्टांग प्रणाम किया। रामजीने सोचा कि इसे कुछ देना चाहिए, किंतु क्या दूं? मेरे पास कुछ है तो नहीं। सीताजी रामजीका मनोभाव जान गई। उन्होंने अपनी अंगूठी रामको दे दी। रघुनाथ केवटको वह अंगूठी देने लगे। हम तूझे दामके रूपमें नहीं, सेवाके उपहारके रूपमें यह देते हैं।

केवटने कहाः– मेरी प्रतिज्ञा है कि साधुसंतोंको विना दाम ही पार लगाऊं।

श्री रामः– प्रसादके रूपमें ले लो।

केवटः– आजका प्रसंग प्रसाद लेनेके जैसा नहीं है। चौदह वर्षके वनवासकी समाप्तिके बाद जब आपका राज्याभिषेक होगा तभी मैं प्रसाद लूंगा।

केवटने अंगुठी लेनेसे बार बार इनकार किया तो लक्ष्मणजी उससे स्वीकारनेके लिए आग्रह करने लगे। तो केवटने कहाः– मैं और राम एक ही जातिके हैं। मैं अपने जाति भाईसे दाम कैसे लूं?

केवट केवटसे उतराई क्या लेत है।

लक्ष्मणने क्रोधित हो कर कहाः– क्या बकना है तू! क्या हम एक जातिके है?

केवटः– मेरी और आपकी नहीं, किंतु मेरी और रामचंद्रजीकी जाति एक है।

मैं गंगा नदीका केवट हूं, लोगोंको गंगा पार कराता हूं। तो रामचंद्रजी संसारसिंधुके केवट हैं, लोगोंको संसार सागर पार करा देते हैं। इस जीवको भी कभी संसार सागरके किनारे लगा दीजिएगा।

> जासु नाम सुमिरत एक बार।
> उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

राज्याभिषेकके समय केवट आ नहीं सका था क्यों कि रामचंद्र विमान द्वारा अयोध्या लौटे थे। किंतु रामचंद्रने उसे याद करके गुहक द्वारा प्रसाद भेजवाया था।

अब तीनों आगे बढने लगे। सीताजी साहजिक विवेक और संकोचसे चलती थीं। आगे राम चल रहे थे, बीचमें सीताजी और अंतमें लक्ष्मणजी। राम और लक्ष्मणके बीच चल रही सीताजीकी शोभाकी क्या बात करें?

> ब्रह्म जीव बीच माया जैसी।

मानों जीव और ब्रह्मके बीच माया चल रही है।

पगदंडी बडी संकरी थी। लक्ष्मण कांटों पर चल रहे थे। रामसे यह देखा नहीं गया। उन्होंने लक्ष्मणको आगे किया और स्वयं सीताके पीछे चलने लगे।

रास्तेमे मुकाम किया। गांवके लोग दर्शनार्थ आए। स्त्रियां सीताजीको वंदन करती जा रही थीं।

ग्रामजन आपसमें बात कर रहे थेः– ऐसे सुकुमारोंको वनमें भेजते हुए कैकेयीको लाज भी न आई?

गांवकी स्त्रियोंने सीताजीसे पूछाः- ये दोनों आपके क्या लगते हैं ?

सीताजीने कहाः- जो गोरे हैं वह मेरे देवरजी हैं। रामका परिचय शब्दसे नहीं, आंखोंके संकेतसे दिया।

श्रुतिने भी परमात्माका वर्णन निषेधपूर्ण ही किया है- ' न इति, न इति '।

राम-सीताने दर्भासन पर शयन किया। गुहक और लक्ष्मणजी चौकी करने लगे।

गुहकने कैकेयीके विषयमें कटु वचन सुनाए तो लक्ष्मणजी उसे समझाने लगे। यह उपदेश लक्ष्मणगीता नामसे प्रसिद्ध है।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता।

मनुष्यको उसका कर्म ही सुख या दुःख देता है। इस सृष्टिका आधार ही कर्म है। इसी कारणसे तो ज्ञानी-महात्मा किसीको भी दोषित नहीं मानते हैं।

रामचंद्रजी स्वेच्छासे ही वनवासी बने हैं। सीता-रामके चरणारविंदका नित्य स्मरण ही परमार्थ है।

सखा परम परमारथु पहू।
मन कर्म वचन राम पद नेहू ॥

सुख-दुःखका कारण जो अपने अंदर ही खोजे वह संत है। ज्ञानी पुरुष सुख-दुःखका कारण बाहर नहीं खोजते हैं। मनुष्यके सुखदुःखका दाता बाहर जगत्में कोई नहीं है। यह कल्पना ही भ्रामक है कि मुझे कोई सुख-दुःख दे रहा है। ऐसी कल्पना तो अन्योंके प्रति वैरभाव जगाएगी। वस्तुतः सुख या दुःख कोई दे ही नहीं सकता है। यह मनकी कल्पना मात्र है। सुख-दुःख तो कर्मका ही फल है। सदासर्वदा मनको समझाओ कि उसे जो सुख-दुःखानुभव हो रहा है वह उसीके कर्मोंका फल है।

काहु न कोउ सुख-दुःख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

राम तो परमानंद स्वरूप हैं। जो उनका स्मरण करते है उसे दुःख नहीं होता। सुख ही होता है। सो उनको दुःख होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। उनके मनमें कैकेयीके प्रति कोई मनोदुःख नहीं है। रामको कर्मका बंधन तो है नहीं, वे कर्मसे पर हैं। वे अपनी इच्छासे ही प्रगट होते हैं। जीवको अपने कर्मके कारण जन्म लेना पडता है। ईश्वर स्वेच्छासे प्रगट होते हैं।

फिर भी परमात्मा लीला करनेके लिए प्रगट हुए हैं सो कर्मकी मर्यादामें रहते हैं। जगत्के सामने एक आदर्श रखते हैं कि स्वयं परमात्मा होते हुए भी कर्मके बंधनमें हैं। वे स्वेच्छासे ही अवतरित हुए हैं। जीव अपने कर्मसे जन्म लेता है।

रामकथा कई ग्रंथोंमें वर्णित की गई है। कैकेयीने रामको वनवास दिया। कौशल्या माताको अति दुःख हुआ। रामचंद्र कहते हैं यह मेरे कर्मोंका फल है। पूर्वजन्ममें मैंने कैकेयीको दुःख दिया था उसका ही फल है। मैंने परशुरामावतारमें जो किया उसका फल इस अवतारमें पा रहा हूं। पूर्वजन्ममें कैकेयी जमदग्नि ऋषिकी पत्नी रेणुका थी। परशुराम उन्हींके पुत्र थे।

एक वार गंधर्व चित्रसेन कई अप्सराओंके साथ सरोवरमें विहार कर रहा था। रेणुकाने वह दृश्य देखा तो उसके मनमें भी विकार जागा और कुछ असंतोष भी। इन अप्सराओंको जैसा सुख मिल रहा है वैसा तो कभी मुझे मिला ही नहीं है। रेणुकाको लौटनेमें देर हुई। जमदग्नि जान गए कि रेणुकाने मनसे व्यभिचार किया है। जमदग्नि खिन्न हो गए। उन्होंने पुत्रसे कहाः– तेरी माताने पाप किया है, उसकी हत्या कर दे। पिताकी आज्ञा सुन कर, विना कुछ सोचे-विचारे ही परशुरामने रेणुकाका शिरच्छेद कर दिया।

रामचंद्र कौशल्याको समझा रहे हैं कि उस जन्ममें मैंने माताको दुःख दिया था सो इस जीवनमें वह मुझे दुःख दे रही है।

महात्मा तो यहां तक कहते है कि रामने वालीकी हत्या की थी तो वही वाली कृष्णावतारके समय पारधिका रूप लेकर आया और भगवानको उसके बाणसे मरना पडा।

किए हुए कर्मोका फल भुगतना ही पडता है।

सारी रात लक्ष्मणजी और गुहक वातचीत करते हुए चौकी करते रहे। ब्राह्ममुहूर्तमें रामचंद्रजीने स्नानादिसे निवृत्त हो कर शिवजीकी पूजा की।

अपने जीवनमें कुछ नियम होने ही चाहिए। जिसके जीवनमें कुछ शुभ संकल्प नहीं है वह पशुसे भी अधम है। नियमके पालनके अभावमें मनुष्य पशुसे भी वदतर है।

रघुनाथने जगत्के समक्ष आदर्श रखा कि वे स्वयं ईश्वर हैं फिर भी भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं।

गुहकको वापस लौटनेको कहा गया किंतु वह न माना। तो रामजीने कहा ठीक है। हम चित्रकुट पहुंच जाय तब लौट जाना।

भगवान् धीरे धीरे आगे वढते जा रहे हैं। प्रयागराजमें आए और वहां भारद्वाज मुनिके आश्रममें पधारे।

तुम भारद्वाज जाओगे तो तुम्हारे यहां भी भगवान् पधारेंगे। भारद्वाज अर्थात् उपदेशको कानमें भर लेना।

इस जगत्की वातों पर अधिक ध्यान देनेसे कोई लाभ नहीं होता है परंतु भक्तिमें विक्षेप होता है। भारद्वाज अधिक वोलते नहीं हैं। वे वार वार राम कथा सुनते थे और रामचरणके वडे अनुरागी थे। राम-सीता-लक्ष्मणके आगमनसे वे बडे हुए। आसपासके अन्य ऋषि भी आने लगे। भारद्वाज कहते हैं, आज तककी कडी साधनाका फल मिल गया। सभी साधनाका फल है भगवान्का दर्शन। भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शनके विना शांति नही है। भगवान्ने एक रात उनके आश्रममें वीताई।

दूसरे दिन प्रातःकालमें रामने मुनिसे कहा कि वाल्मीकि आश्रमका मार्ग दीखलानेके लिए किसी मुनिकुमारोंको हमारे साथ भेजिए। तो चार ऋषिकुमार साथ साथ आए। सभी वाल्मीकि आश्रममें आ पहूंचे।

वाल्मीकिने समाधिभाषामें रामकथा लिखी है। रामजीके प्रागट्यके पूर्व ही वाल्मीकिने रामायण लिख दिया था। वे तो आदिकवि हैं। उनके मुखसे ही सर्व प्रथम श्लोक प्रगट हुआ

था। इससे पहले कोई श्लोक था ही नहीं। प्रथम श्लोक क्रौंचवध संबंधी है। किसी पारधिने एक क्रीडारत क्रौंचयुगल पर तीर छोडा तो एक पंछी मर गया। वाल्मीकि इस दृश्यको देख कर बडे दु खी हुए। उन्होंने उस पारधिको शाप दिया। इस श्लोकके दो अर्थ हैं, एक सामान्य और दूसरा रामसंबंधी।

वाल्मीकि आश्रममें श्रीराम, जानकी और लक्ष्मण पधारे। श्रीरामने वाल्मीकिसे कहाः– आप तो त्रिकालदर्शी है।

वाल्मीकिः– यह तो सत्संगका फल है। पहले मैं था वालिया भील जो लोगोंको लूटता रहता था। कुटुंबको निभानेके लिए पापाचार करता था। नारदजीके सत्संगने मेरा जीवन वदल दिया।

एक वार नारदजी मार्गमें मिल गए तो मुझसे पूछा, तू किसके लिए पाप कर रहा है ? मैंने कहा कि अपने कुटुंबके लिए।

नारदजीः– क्या तेरे कुटुंबके सभी लोग तेरे इस पापके भी भागीदार है ? मैंने कहा, क्यों नहीं ? वे सव मेरे पापके भागीदार हैं।

नारदजीः– तू अपने घर जा और सभीसे पूछ कि क्या वे तेरे भागमें हिस्सा लेंगे क्या ?

मैंने अपने घर आकर पत्नी और संतानोंसे कहा, तुम सवके लिए मुझे अत्याचार और पाप करना पडता है। सो तुम सव भी मेरे पापके भागीदार है। ठीक है न ? तो उन सभीने कहाः– हम क्यों वने भागीदार ? जो पाप करे उसे ही पापके फल भुगतने पडेंगे। हमें क्या लेना–देना है तुम्हारे पापोंसे ?

तो मेरी आंखें खुल गई। उन सव पर मुझे तिरस्कार आ गया। मेरा मोह, मेरा भ्रम अब नष्ट हो चुका था। मैंने नारदजीके समक्ष सारी बात कह सुनाई। तो उन्होंने मुझे राम नामका मत्र दिया। किंतु मैं पापी और अनपढ था। मेरे मुंहमें " राम राम " के बदले " मरा मरा " शव्द निकलता रहा। राम नामका जप ठीकसे नहीं कर सका। मैं तो उलटा ही जप करता रहा। किंतु प्रभुने मुझ पर कृपा की और मेरा उद्धार किया।

सोई जानई जेही देहु जनाई।
जानत तुम हि तुम्हई होई जाई॥

आप कृपा करके जिसे अपने स्वरूपका ज्ञान कराते हैं वही आपको जान सकता है। आपको जाननेके वाद वह भी आपका ही स्वरूप वन जाता है।

तुलसीदासजीने रामायणमें पूर्णाद्वैतका वर्णन किया है। आगे भगवान् और भक्तमें कोई भेद ही नहीं रह जाता है।

रामचंद्रजीने वाल्मीकिजीको कहाः– हम वनमें रहना चाहते हैं। हम कहां रहें ? हमें कोई अच्छा–सा स्थान वतानेकी कृपा कीजिए।

वाल्मीकिः– वैसे तो आप कहां नहीं हैं ? जहां आप न हों ऐसा एक भी स्थान कहां है ? आप तो सभी स्थानमें है। आप तो भक्तोंके हृदयमें भी है।

इन चौपाइयोंमें बताए गए लक्षण आपमें आयेंगे तो भगवान् आपके हृदयमें भी वास करेंगे।

जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम कहै गृह रूरे ॥
काम, क्रोध, मद, मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिनके कपट दंभ नहि माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी। दुःख, सुख सरिस प्रशंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत, सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुमहि छाडि गति दूसहिं नाहिं। राम बसहु तिनके उरमांही ॥
जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव विप तें विषभारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं परावपत्ति विषेशी ॥
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे। तिन्हके मन शुभवदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितुमातु गुरु, जिन्हके सब तुम्हु तात।
तिन्हके मनमंदिर बसहु, सिय सहित दोउ भ्रात ॥

अध्यात्म रामायणके श्लोकोंका यह भाषांतर है। भक्तोंके चौदह लक्षण इनमें कहे गए हैं।

वाल्मीकि कहते हैं:– प्रभु, आप निवासके लिए मुझसे स्थान पूछते हैं, किंतु आप कहां नहीं हैं? नाथ, आप तो लीला कर रहे हैं। आप चित्रकुट पर्वत पर निवास कीजिए।

श्रीमद् भागवत समाधि भाषामें है। वाल्मीकि रामायण भी समाधि भाषामें है।

चित्त ही चित्रकूट है। अंतःकरण परमात्माके स्वरूपका सतत ध्यान करे तभी उसे चित्त कहते हैं। परमात्माका चिंतन सतत हो तभी चित्त कहा जाता है। चिंतन करना चित्तका धर्म है। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है, संकल्प करना मनका धर्म है। एक ही अंतःकरणके ये भेद हैं। पाप होता है अज्ञानसे। परमात्मा यदि चित्तमें आए तो जीव कृतकृत्य होता है।

लक्ष्मण वैराग्य है। सीताजी पराभक्तिका स्वरूप है। राम परमात्मा है। जब भी संकल्प करो शुभ ही करो। हमेशा मानो कि परमात्मा चित्तमें बसते हैं।

रघुनाथजी मंदाकिनीके किनारे पधारे। वहां अत्रि ऋषिका आश्रम है। वे वयोवृद्ध ऋषि हैं। उनका गंगास्नानका नियम था। किंतु जा नहीं पाते थे। सो अनसूयाने गंगाजीको प्रार्थना की कि वे अपने आश्रममें प्रगट हों। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो कर गंगाजी वहीं प्रगट हुईं।

तुलसीदासजीको चित्रकूटके घाट पर रघुनाथजीके दर्शन हुए।

चित्रकूटके घाट पर भई संतनकी भीर।
तुलसीदास चंदन घिसै तिलक करै रघुवीर ॥

तुलसीदासजी जब रामको पहचान नहीं पाए थे सो हनुमानजीने पोपटका रूप लेकर यह दोहा तीन बार सुनाया था।

सोचिए। पापका मूल चित्तमें है। पाप होता है अज्ञानसे। इस चित्तमें यदि रघुनाथजी आए तो चित्त विशुद्ध होता है।

गुहक सेवा कर रहा है। रामके आगमनका समाचार भील, किरात आदि लोगोंमें फैल गया। रामचंद्रजीके दर्शन करनेके लिए सभी आने लगे। उनके दर्शन करते हुए जड चेतन बन जाता है और चेतन जड-सा। कुशल-मंगल पूछा गया। प्रभुजी, आपके दर्शनसे हमारा कल्याण हो गया। पाप छूट गया, स्वभाव बदल गया, जीवन सुधर गया। यहांके वन, पहाड, गुफा आदि सब हमारा देखा और जाना-पहचाना है। हम आपके सेवक हैं। आप जहां चाहें हम आपको ले जाएंगे।

रामचंद्रजी चित्रकूटमें विराजे। तबसे चित्रकूटके वृक्ष फूल और फलसे भर गए और झूमने लगे। प्रतिदिन कई ऋषि-मुनि रामजीके दर्शनको आते रहते थे।

रामके चरित्रका वर्णन कौन कर सकता है? एक एक अक्षर महापातकका नाशक है।

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिपविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुसां महापातकनाशनम् ॥

मंत्री सुमंतको अयोध्या वापस लौटनेकी आज्ञा दी। गुहक चित्रकूटसे वापस आए तब तक सुमंत गंगा किनारे पर ही रहे थे। अयोध्याकी प्रजा पूछेगी कि रामको कहा छोड आए तो मैं क्या उत्तर दूंगा। राजा दशरथ भी अब तो प्राणत्याग कर ही देंगे।

सुमंतके रथके घोडे भी उसी दिशामें टकटकी लगाते रहे हैं जिस दिशामें रामचंद्रजी गए थे। वे भी समझते हैं कि हमें छोड कर हमारे स्वामी उस ओर कहीं चल दिए हैं। उन्होंने खाना-पीना भी छोड दिया है। जिनके वियोगमें पशु तक इतने दुःखी हो रहे हैं उनके माता-पिताकी व्याकुलताका तो कहना ही क्या? वे अब जी ही कैसे पाएंगे।

गुहक आए और सुमंतसे कहने लगेः- मंत्रीजी, आप तो ज्ञानी हैं। अब आप धैर्य ग्रहण करें और अयोध्या वापस पधारें। साथमें चार भील सेवक भी भेजें।

मध्यरात्रिके समय सुमत अयोध्या पहुंचे। मैं किसीको भी अपना मुंह नहीं दीखाऊंगा। कोई पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूंगा? फिर भी वे कैकेयीके आवासमें गए। महाराज दशरथका दर्शन नहीं हुआ तो कैकेयीसे पूछा, महाराज कहां हैं?

जब रामचंद्रने वनकी ओर प्रयाण किया था तब दशरथने कहा था कि मैं अब कैकेयी-के आवासमें नहीं रह सकता। मुझे कौशल्याके आवासमें ले जाओ। अतः वे कौशल्याके आवासमें थे।

रामविरहमें जिसकी आंखोंसे दो बूंद आंसू भी टपक न सके उसका मन शुद्ध नहीं हो पाता।

एक दासी मंत्री सुमंतजीको कौशल्याके आवासमें ले आई।

रामवियोगमें पांच दिन बीत गए हैं। दशरथजीके मुख पर मृत्युकी छाया पडने लगी है। मंत्रीने पास आकर उनको दडवत् प्रणाम किया। दशरथजीने आंखें खोल कर देखा और पूछाः– मेरा राम कहां है? कहां है मेरा राम? कहा छोड आए मेरे रामको? सीता वापस आई या नहीं? मुझे वहीं ले चलो जहा मेरा राम है।

दशरथजीकी व्याकुलता देख कर सुमंतकी आंखें भी आंसू बहाने लगीं। वे कहने लगेः– महाराज, आप तो ज्ञानी हैं। धीर धरें। मैं रामजीका संदेशा लाया हूं। उन्होंने कहा है कि मेरे पिताजीको मेरा प्रणाम कहना और उनके ही प्रतापसे हम वनमें सकुशल हैं। महाराज, मैं कितना निर्दय हू कि रामको छोड कर वापस जीते जी आया हूं।

सीताजीने भी मुझसे कहा था, मंत्रीजी, आप तो मेरे पिता समान हैं। मैं अयोध्या वापस नहीं जा सकती। मेरे पतिके विना मैं जी नहीं पाऊंगी। मेरे ससुरजीको मेरा प्रणाम कहना।

नाविक केवटने उन सभीकी सेवा की और निषादराजने भी उनकी वडी सेवा की। और मैं वापस आया। मेरे जैसा निष्ठुर और कौन हो सकता है?

सुमंतके वचन सुनते ही राजा हे राम, हे राम, बोलते हुए नीचे गिर गए। कौशल्या व्याकुल हो गई। फिर भी राजाको धीरज दे रही हैं।

रामविरह तो एक बडा सागर है जिसे पार करना बडा कठिन है। आप तो कर्णधार हैं। यदि आप ही धैर्य खो देंगे तो और सबका क्या होगा?

दशरथजीने कहा– मेरे वक्षःस्थलमें वेदना हो रही है। मुझे श्रवणकुमारके मातापिताने शाप दिया था कि पुत्रविरहमें मेरी मृत्यु होगी। सारी बात इस समय उन्हें याद आ गई और कह सुनाई। दशरथजी विलाप करते हुए कहने लगे, मुझे वहीं ले जाइए जहां मेरा राम है। मेरी स्त्रीके कहनेमें आकर मैंने अपने सुयोग्य पुत्रको वनवास दिया।

मध्यरात्रिका समय था। राजाने राम राम कहते हुए देहत्याग कर दिया।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परहारि रघुवर विरह राउ गयउ सुरधाम॥

दशरथजीका रामप्रेम और रामविरह इतना हार्दिक था कि उनका प्राणपंखेरु उड गया।

सभी विलाप करने लगे। सारे नगरमें कोहराम मच गया। गुरु वसिष्ठजी सब सांत्वन देने लगे। उन्होंने सेवकोंसे आज्ञा कीः– कैकेय देशमें जाओ और भरत-शत्रुघ्नसे कहो कि गुरुजीने उनको शीघ्रतः बुलाए हैं।

भरत-शत्रुघ्न आ पहुंचे। उन्हें मार्गमें अपशकुन भी बहुत हुए। सभी बाजार और कारोबार बंद था। लोगोंने श्याम वस्त्र धारण किए हुए थे। भरतजी कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह सब क्या है।

भरतके आगमनका समाचार सुन कर कैकेयी बडे आनंदसे दौडती हुई उसका स्वागत करने आई। भरतने पूछाः– कहां हैं मेरे पिताजी ? कुशल तो हैं न ?

कैकेयीः– क्या बताऊं तुम्हें ? सारा साम्राज्य चला आ रहा था किंतु मैंने बचा लिया। मंथराकी रायके अनुसार तेरे पितासे मैंने वरदान मांगे सो अब यह सारा राज्य तुम्हारा है। और पिताजी तो वरदान देकर व्याकुल हो गए और उन्होंने प्राणत्याग किया।

भरतः– उस समय मेरे बडे भैया राम कहां थे ? अब क्यों दीखाई नहीं देते हैं ? कहां हैं वह ?

कैकेयीः– वह तो वनमें है। मेरे वरदानके अनुसार उसे वनवास दिया गया है।

सारी बातें जान कर भरतका हृदय दुःखसे कातर हो गया। अपनी माताके लिए उनके मनमें बडा क्रोध और तिरस्कार उमड आया। मेरे बडे भैयाको वनवास देते हुए तुम्हें लाज न आई ? ऐसा अशुभ वरदान मांगते हुए तुम्हारी जीभ क्यों न कट गई ?

शत्रुघ्नने मंथराको देखा तो उन्होंने उसे एक लात लगा दी।

भरत–शत्रुघ्न कौशल्याके पास आए। माताका विरहसंतप्त रूप उनसे देखा न गया। भरतजीको तो मूर्च्छा आ गई। भरतजी कौशल्या मातासे कहने लगेः– माता, राम कहां होंगे ? इन सभी अनर्थोंका मूल मैं ही हूं। कैकेयीके वरदानमें यदि मेरी रजमात्र भी संमति है तो मुझे मातृ–पितृ हत्याका फल मिले।

कौशल्याः– बेटे, धीरज रख। शोकका त्याग कर। राम तो हंसता हुआ गया है वनमें। तेरे पिताने प्राणत्याग किया। मेरा भाग्य ही रुठा हुआ है। मैं ही हूं इस अनर्थका कारण। अब भी मेरे प्राण शेष क्यों हैं ?

प्रातः कालके समय सरयू नदीके किनारे महाराजा दशरथकी पार्थिव देहका अग्नि संस्कार किया गया।

दशरथ महाराजाकी आज्ञा थी कि रामको वनवास देनेमें यदि भरतकी भी संमति हो तो उसके हाथों अग्निसंस्कार मत कराना।

दशरथकी पत्नियां भी चितामें जल कर सती होने जा रही थीं। किंतु भरतजीने उन्हें वैसा नहीं करने दिया।

पंद्रह दिनोंके बाद शोकसभाका आयोजन हुआ। वसिष्ठ सहित कई ऋषि भी वहां उपस्थित थे। सबसे पहले वसिष्ठजीने महाराजा दशरथका गुणगान किया और शोकांजलि दी। फिर उन्होंने राजकुमार रामकी भुरि भुरि प्रशंसा की, और भरतसे कहा, पिताजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके रामने वनगमन किया है। दशरथजी स्वर्गमें सिधारे। अतः कल हम तुम्हारा राज्याभिषेक करेंगे।

किंतु भरतको यह बात स्वीकार्य नहीं थी। उन्हें बहुत समझाया गया।

विधानाकी गति अति क्रूर है।

जिसे ब्राह्मणका शरीर मिला है फिर भी जो वेदशास्त्र जानता नहीं हो और अपने धर्मको छोड कर विषय भोगमें ही लीन रहता हो उसका शोक करना चाहिए।

शोक तो उस वैश्यका करना चाहिए जो अपने पास धन होते हुए भी न तो दान करता है, न तो अतिथि सत्कार करता है और न तो भक्ति करता है।

शोक तो उस गृहस्थका करना चाहिए कि जो मोहवश अपने कर्ममार्गका त्याग करता है।

उस संन्यासीका शोक किया जाय जो ज्ञान वैराग्यको छोडकर सांसारिक प्रपंचमें फंसा हुआ है।

वह नारी शोचनीय है जो अपने पतिसे छल करती है, जो कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है।

सर्वाधिक शोचनीय तो वह है जो अपने समय और संपत्तिका दुरुपयोग करता है, दूसरोंका अनिष्ट करता है, अपने शरीरके पोषण और लालनमें ही रत है और जो नाम मात्र भी हरि भक्ति करता नहीं है।

महाराज दशरथके लिए क्यों शोक करें? सच्चा राम प्रेम तो उन्हींका था, कि रामगमनके दुःखसे उनका प्राणपंखेरु उड गया। उनका तो इहलोक भी सुधर गया और परलोक भी।

भरत, वनवासकी अवधि समाप्त होने पर रामका पुनरागमन होनेके बाद तुम जो चाहो सो करना। किंतु कल तो हम तुम्हें राज-सिंहासन पर आरुढ करेंगे ही। आज अयोध्या अनाथ है, उसे सनाथ करना है तुम्हें।

कौशल्याने भी भरतको वैसी ही आज्ञा दी।

भरतजी उत्तर देनेके लिए खडे हुए। राम-सीताके स्मरणसे उनकी आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगी।

पिताजी स्वर्गमें गए और रामचंद्रजी गए वनमें। अब मेरे राज्याभिषेक होने पर मुझे कौन-सा आनंद और सुख मिलेगा? अयोध्याकी प्रजाको भी क्या लाभ होगा? सभी अनर्थका कारण मैं ही हूं। जगत्में मुझ पापीका जन्म ही न हुआ होता तो अच्छा होता। मेरे पिताजीको तो सद्गति प्राप्त हुई है। उनके लिए मुझे अधिक दुःख नहीं है। मुझे जो दुःख है वह तो यह है कि मेरे ही कारण मेरे बडे भैयाको वल्कल धारण करके खुले पांव वनमें भटकना पड रहा है।

रघुनाथजीके विना सब कुछ व्यर्थ है। मुझे तभी शांति मिलेगी कि जब मैं अपने भाई-भाभीका दर्शन पा सकूंगा। कैकेयीका यह पुत्र कैकेयीसे भी अधम है। रामचंद्रजीकी सेवा करनेमें ही मेरे जीवनकी सफलता है।

जिस राज्यासन पर कभी महाराजा भगीरथ विराजते थे उस पर बैठनेकी मेरी पात्रता नहीं है। मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए। मैं कल रामचंद्रके पास जाऊंगा। आप प्रार्थना करें कि वे मेरे ही साथ अयोध्या वापस आएं। मैं उनसे अपने पापोंकी क्षमायाचना करुंगा। वे मेरे स्वामी हैं, मैं उनका सेवक।

राम-सीताका स्मरण करते हुए भरतकी आंखोंसे आंसू वह रह थे। जनताको विश्वास हो आया कि भरतजी तो प्रेमकी मूर्ति हैं। सभी रामका दर्शन करनेके लिए भरतजीके साथ जानेकी तैयारी करने लगे।

भरतचरित्रमें तुलसीदासजी भी समाविस्थ हो गए थे।

सभा विसर्जित होने लगी। नगरके आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी रामचंद्रजीके दर्शनार्थ आतुर थे अतः वनगमनकी तैयारी करने लगे। सभीके मनमें एक ही भाव जग रहा था कि प्रातःकाल हो और कब हम वनकी ओर चल दें।

प्रातःकालमें राजप्रासादके आंगनमें सारा नगर उमड आया। सभीको आशा बंध गई कि राम-सीता आज अयोध्या वापस आयेंगे। भरतजीने कहा, जो भी साथ चलना चाहता है वह आ सकता है।

ऋषि वसिष्ठजी और अरुंधति भी रथमें विराजमान हुए। अब तो कैकेयीके सरसे भी कलिका भूत उतर चुका था और रामके दर्शनके लिए आतुर हो गई थीं। भरतके लिए सुवर्णरथ तैयार किया गया किंतु वे उसमें बैठना नहीं चाहते थे, तो लोग कहने लगे कि यदि आप रथ पर सवार नहीं होंगे तो हम भी पैदल ही चलेंगे। माता कौशल्याने भरतको समझाया, यदि तू रथ पर सवार नहीं होगा तो अयोध्याकी सारी प्रजाको कष्ट होगा। कौशल्याकी आज्ञासे वे रथ पर सवार हुए।

भरतजी आदि शृंगवेरपुरके निकट आए तो गुहकको सेवकोंने समाचार दिया कि भरत अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ आ रहे हैं। गुहकने सोचा कि भरत सेनाके साथ राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने जा रहे हैं। अगर ऐसा नहीं है तो सेनाको भी क्यों साथ लाये हैं। गुहकने भील सेनाको आज्ञा दी कि किसीको भी इस पार आने न दिया जाय।

एक वृद्ध भीलने गुहकसे कहा कि भरत शायद रामचंद्रजीको मनानेके लिए आ रहे हैं। गुहकने सोचा कि यह भी संभवित है। जल्दीमें झघडा करना ठीक नहीं है। वे अपने मंत्रीके साथ भरतसे मिलने आए।

सबसे आगे महर्षि वसिष्ठजीका रथ था। गुहकने उनको साष्टांग प्रणाम किया। वसिष्ठजीने भरतसे कहा, भरत, रामका अंतरंग सेवक गुहक तुमसे मिलनेके आया है।

भरतकी दृष्टि निर्गुण है। उनको प्रसन्नता हुई कि बडे भाईका सेवक मिलनेके लिए आया है।

भरतके मनोभावकी परीक्षाके लिए राजा गुहक अपने साथ सात्त्विक, राजसिक और तामसिक, तीनों प्रकारकी भोजन सामग्री लेकर आए हैं। कंदमूल सात्त्विक भोजन है, मिष्टान्न राजसिक भोजन है और मांस मदिरा तामसिक। इन तीनोंमेंसे जिस पर भरतकी दृष्टि सबसे पहले आकृष्ट होगी वही भाव भरतके मनमें है ऐसा समझूंगा। किंतु देखिए तो। भरतने इन तीनोंमेंसे एक पर भी दृष्टि नहीं डाली। क्यों कि वे तो निर्गुण हैं।

मनुष्यके मनकी परीक्षा आहार-विहारसे हो सकती है।

भरतके मुखसे तो बस राम नाम ही उच्चारित हो रहा। गुहकको विश्वास हो गया कि भरतजी लडने नहीं, मिलनेके लिए ही जा रहे हैं। राजा गुहकने भीलोंसे आज्ञा की, अयोध्याकी प्रजाका भली भांति स्वागत करो। भील लोग जात जातके फल और कंद मूल ले आए और स्वागत किया।

भरतजीने गंगाजीको प्रणाम करते हुए कहा, माता मैं आज कुछ मांग रहा हूं—

जोरि पानि वर मागउं गहु।
साय राम पद सहज सनेहु॥

मेरी यही भावना है। मुझे यही वरदान दो। मुझे रामचरण-प्रेमका दान करो। उनकी प्रार्थना सुन कर गंगाजीने ध्वनित किया- तुम चिंता न करो। सभीका कल्याण होगा।

गुहकने भरतको वह अशोक वृक्ष दीखाया जिसकी छांवमें श्री रामने विश्राम किया था। भरतने उस वृक्षको भी प्रणाम किया। श्री रामकी दर्भकी सेज देख कर तो उनका हृदय भर आया। मेरी भाभीको कितना कष्ट भुगतना पड रहा है। कैकेयी, इन सभी कष्टोंका कारण मैं ही हूं।

सारी रात सभीने वहां विश्राम किया।

प्रभात आया तो भरतजी कहने लगे, इस स्थानसे रामचंद्रजी पैदल ही आगे बढे थे। अतः मैं भी पैदल ही चलूंगा। सभीके रथ आगे ले लो।

आगे आगे सभी रथ चलने लगे और पीछे पीछे भरत, शत्रुघ्न और गुहक राज पैदल चलने लगे। भरतकी दशा करुणाजनक है। वे शत्रुघ्नके कंधेके सहारे हे राम हे राम बोलते हुए आगे बढ रहे हैं।

धन्य है भरतको कि पिताजीसे प्राप्त राज्यका अस्वीकार किया और बडे भाईको मनाने जा रहे हैं।

भरतकी भक्ति दास्य भक्ति है। उनके जैसा बडभागी और कौन होगा? भरतजीको रामचंद्रजी सदा याद करते हैं।

जग जपु राम, राम जपु जेहि।

स्वयं ईश्वर जिसका स्मरण करे उसीकी भक्ति सच्ची भक्ति कही जाएगी।

जीव ईश्वरको याद करे यह तो सामान्य-साहजिक बात हुई। किंतु स्वयं ईश्वर जिस जीवको याद करते हैं उसे धन्य है, उसकी भक्ति धन्य है।

भरतजीके पांवमें चलते चलते छाले पड गए। किंतु वाहनमें न बैठनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा ली है।

वे सब प्रयाग राज आए। भरतजीने प्रणाम करते हुए कहाः- तीर्थराज, मैं और कुछ तो नहीं चाहता। मात्र एक ही मांग है मेरी।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहुं निरवान ।
जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन ॥

लोगोंने भरतजीसे कहा, मुनि भारद्वाजके आश्रममें भी जाना चाहिए। भरतने कैकेयीसे कहाः– कैकेयी, तुमने मेरे मुख पर कालिमा पोत दी है। मैं संतोंको अपना मुंह कैसे दीखाऊंगा?

तीर्थका नियम है कि जब तक वहां साधु सतोंका संग न किया जाय तब तक तीर्थयात्रा फलवती नहीं हो पाती।

भरतजी भारद्वाज मुनिके आश्रममें आए। मुनिने भरतजीसे कहा, शोक न करो। यह तो सब ईश्वरकी ही लीला है। तुम तो बडे भाग्यशाली हो। भगवान् रामचंद्र तुम्हें प्रतिदिन याद करते हैं कि तुम जैसा कोई भाई नहीं है। भ्रातृप्रेमका आदर्श स्थापित करनेके लिए आज तुम रामको मनानेके लिए जा रहे हो यह अच्छी बात है।

सभी साधनाका फल रामदर्शन है। साधन करनेसे हमें रामदर्शनका लाभ हुआ। किंतु रामजीके दर्शनका फल तो भरतजी है। हम तुम्हारे दर्शनसे कृतार्थ हो गए। रामके दर्शनके बाद मैं सोचता था कि उनके दर्शनका फल क्या मिलेगा। मेरी समझमें आ गया कि रामदर्शन का फल है भरतदर्शन।

भरतजीने वहां वार्तालाप किया। इन सभी अनर्थों और दुःखोंका कारण मैं ही हूं।

भारद्वाज ऋषिने भरतसे कहाः– राक्षसोंका वध करनेके हेतु ही रामचंद्रजीने यह सारी लीलाकी रचना की है अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

भारद्वाजने अणिमा आदि रिद्धि–सिद्धियोंका आवाहन करके भरत और उनके साथ आए हुए सभी लोगोंका भली भांति स्वागत किया। रामजीके दर्शनार्थीका भली भांति स्वागत होना कोई आश्चर्यकी बात तो है नहीं।

भरतके भ्रातृप्रेमकी परीक्षा लेनेकी इच्छासे भारद्वाज मुनि रात्रिके समय वहां आए। उन्होंने देखा कि भरतजीने दर्भासन बीछा कर आसन किया है और नासिका पर दृष्टि स्थिर करके सीता–रामका जप कर रहे हैं। अष्टमा सिद्धिने उनसे भोजन और विश्राम करनेकी विनाति की। किंतु भरतजीने कहा, राममिलनके बाद ही मुझे सच्ची विश्रांति मिलेगी।

भरतके रामप्रेमका वर्णन कर ही कौन सकता है? वाणीके सामर्थ्यके बाहरकी वस्तु है यह।

प्रातःकालमें भारद्वाज फिरसे वहां आए। सारी रात भरतने शैयाका स्पर्श तक नहीं किया था। भरतजीकी ऐसी कठोर तपश्चर्यासे मुनिका हृदय भर आया। बोल उठे, भरतदर्शन ही रामदर्शनका फल है।

भारद्वाज मुनिने बहुत–सी सिद्धियां बताई किंतु भरतजी उनमें नहीं फंसे।

चक्रवाक और चक्रवाकी रात्रिके समय साथ–साथ नहीं रहते। यदि इन्हें पींजडेमें रखा जाय तो भी रात्रिके समय वे संयोग नहीं करते। ऋषिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा पींजडा है। सिद्धियां, भोगविलासकी वस्तुएं चक्रवाकी हैं। भरतजी हैं चक्रवाक। भरतजीने उन भोग-विलासकी सामग्रियोंका मनसे भी स्पर्श नहीं किया।

जिसे भक्तिका रंग लग जाता है उसे सांसारिक भोग रोग समान ही लगते हैं। जब तक सांसारिक माया मीठी लगती है तब तक जीवको भक्तिका रंग नहीं लगता है। भोग और भक्ति एक ही स्थान पर रह नहीं सकते।

लोग मानते हैं कि भक्ति करना बडा आसान है। किंतु भक्ति करना तो बडा ही कठिन काम है। यह तो सरका सौदा है। तभी नटवरसे संबंध हो सकता है। जब तक मन संसारके किसी भी विषय-सुखमें फंसा हुआ है, भक्तिका रंग लग नहीं पाता। सांसारिक विषयसुखोंका मनसे भी त्याग करने पर ही भक्ति हो पाएगी।

काम शब्दमें दो अक्षर है। 'क' का अर्थ है सुख और 'आम' का अर्थ है कच्चा। अर्थात् कामका अर्थ है कच्चा सुख। काम सच्चा सुख नहीं है। कामको हृदयसे निकाल बाहर कीजिए। हृदयके सिंहासन पर ठाकोरजीको पधराइए।

एक सेठका पुत्र वेश्याके चक्करमें फंसा हुआ था। सेठने उससे कहाः- यदि तू इस कुसंगको छोड दे तो तेरा विवाह किसी अच्छी-सी कन्यासे हो पाएगा।

पुत्रः- पिताजी, पहले मुझे वैसी कन्या मिलेगी तो बादमें मैं वेश्याको छोड दूंगा।

पिताः- विचार तो कर। वेश्याके संगको छोडे विना किसी खानदान घरानेकी कन्या मिल ही कैसे सकती है?

हमारी भी यही कथा है। हम विषयभोगका त्याग करनेकी इच्छा या प्रयत्न तो करते नहीं है और कहते हैं कि मुझे भक्तिसे आनंद नहीं मिल पाता है। आनंद मिले तो कैसे मिले?

भोग बाधक नहीं है किंतु भोगासक्ति बाधक है। भोगवासनामें फंसा हुआ मन ईश्वरसे दूर भागता है।

भरतका त्याग अति उत्तम है। अष्टसिद्धियां सेवा करनेको तत्पर हैं किंतु भरत उनकी ओर दृष्टि भी नहीं करते हैं। वैराग्यके विना भक्ति रोती है। वैराग्य नहीं है तो भक्ति थोथी है। भरतको तो एक ही इच्छा है- रामके दर्शनकी।

मोहे लागी लगन तेरे दर्शनकी!

यह भागवत कथा ज्ञान और वैराग्यको पुष्ट करनेके लिए है।

भरत सीतारामके विना विकल है। भोगके अनेक पदार्थ अपने समक्ष हैं किंतु उनका मन उनकी ओर जाता ही नहीं है।

सभी भोग पदार्थ सुप्राप्य होने पर भी जिसका मन वहीं जाता नहीं है वही सच्चा वैष्णव है। वही सच्चा भक्त है।

जनम जनम रति रामपद यहि वरदान न आन।

भरतजी त्रिवेणी गंगासे भिक्षा मांग रहे हैं। मुझे और कोई भी इच्छा नहीं है। मैं मोक्ष नहीं मांगता। अर्थ, धर्म, कामकी भी इच्छा नहीं है। अब तो मुझे रामदर्शनकी ही इच्छा है।

ज्ञानी पुरुष मुक्तिकी इच्छा नहीं रखते। जो भक्तिरसमें डूब गया है उसे मोक्षका आनंद तुच्छ लगता है। वेदांत कहता है, आत्मा तो सदा मुक्त ही है, उसकी और मुक्ति क्या होगी? भगवान् मुक्ति तो देते हैं किंतु भक्ति जल्दी नहीं देते।

साधुगण भरतजीकी प्रशंसा करता है। अपने वैराग्यसे भी उनका वैराग्य श्रेष्ठ है।

भरतजी आगे बढे। दसवें दिन उनका रामसे मिलन होने जा रहा है। सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर बढ गए। भरत सीताराम सीताराम बोलते हुए आगे बढ रहे हैं। चित्रकूट पर्वत दृष्टिगोचर हुआ तो लोग साष्टांग प्रणाम करने लगे। लोगोंने चित्रकूटकी तलहटीमें विश्राम किया।

इधर सीताजीने सपना देखा कि भरतजी हमसे मिलने आ रहे हैं। उनके साथ अयोध्याकी प्रजा भी। सासजीका वेश शोकसूचक है। रामजीने सपनेकी बात सुनी तो कहा– यह स्वप्न मंगल नहीं है। कदाचित् कोई दुःखद समाचार सुनने पडेंगे।

प्रातःकाल हुआ तो भरतजीने पर्वत पर जानेके लिए वसिष्ठजीसे अनुज्ञा मांगी। किंतु वे व्याकुल होकर यह भी सोच रहे थे कि मैं अपना काला मुंह रामजीको कैसे दीखाऊंगा। मुझे देखते ही वे मुंह फेर लेंगे तो? नहीं, नहीं। वे ऐसा कभी नहीं करेंगे। वे मुझे अवश्य अपनाएंगे। किंतु यदि भाभी उन्हें मुझसे मिलनेसे रोक लेंगी तो? नहीं, नहीं, वे भी ऐसा तो नहीं करेंगी। भरतजी सीताराम, सीताराम बोलते हुए जाने लगे।

भीलोंने यह देखा तो वे दौडते हुए रामचंद्रजीके पास आए और कहने लगेः– कोई भरत नामका राजा आपसे मिलने आ रहा है। साथमें चतुरंगिणी सेना भी है। यही कारण है कि हमारे पशु भयसे भाग रहे हैं।

रामचंद्रजी सोचमें डूब गए। लक्ष्मणके मनमें प्रश्न जागा कि यदि उसे मिलने ही आना था तो अपने साथ सेनाको क्यों लाया है। वैसे तो वह साधु–सा था किंतु राज्यप्राप्तिके बाद उसकी मति भ्रष्ट हो गई है। वह अपना मार्ग निष्कंटक करनेके लिए ही आ रहा है। सत्ता मनुष्यको स्वार्थी और अंधा बना देती है। लक्ष्मणजी क्रोधित हो गए किंतु रामचंद्रजी उन्हें समझाते हुए और शांत करते हुए कहने लगेः– लक्ष्मण, भरतको यदि ब्रह्मलोकका राज्य प्राप्त हो जाए तो भी उसे सत्ताका मद प्रभावित नहीं कर सकेगा। भरत–सा भाई जगत्में न तो हुआ है और न तो होगा।

भरत सीतारामका जप करते हुए आ रहे हैं। उनके प्रेमसे तो चित्रकूटके पत्थर भी मानो सचेतनसे हो गए हैं। भरतने दूरसे देखा कि राम आगनमें विराजमान हैं और ज्ञानवार्ता कर रहे हैं। सीता और लक्ष्मण सेवामें उपस्थित हैं। भरत असमंजसमें हैं। मैं तो पापी हूं। उनके सामने कैसे जाऊं?

अपने आपको धीरज देते हुए भरतजीने रामके निकट जाकर साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। लक्ष्मणजीने यह देखा तो रामचंद्रजीसे कहा कि भरत आपको प्रणाम कर रहा है। रामचंद्रजी कहने लगे, कहां है मेरा भरत? उन्होंने भरतको उठा कर अपने हृदयसे लगा लिया।

चित्रकूट पर्वत पर जीव और शिवका मिलन हुआ।

चित्रकूटमें भगवान्, लक्ष्मण और जानकीके साथ निवासित हैं। लक्ष्मण वैराग्य है, सीताजी पराभक्ति और चित्रकूट चित्त। तो भगवान् वैराग्य तथा पराभक्तिके साथ चित्तमें–अंतरमें विराजमान हैं। भरत जीव है जो मिलनके हेतु गया है। उस मिलनका चिंतन या कल्पना भी पापनाशक है। प्रभुमिलनकी इच्छा तीव्र होगी तभी सुख होगा।

मेरा भरत दुःखी है इस विचारसे रामके मुखसे एक शब्द भी निकल नहीं रहा है।

दुःख हमारे अपने कर्मोंका ही फल है। चाहे जैसा भी दुःख आ पडे, प्रभुकी मानता न रखो। हमेशा सोचो कि मैं अपने सुखके लिए कृष्णको कभी कष्ट नहीं दूगा। सदा भगवान्की सुविधाका ही विचार करो।

भरतके साथ वसिष्ठजी और माताजी भी हैं। भरतने सीताजीको प्रणाम किया तो उन्होंने आशिष दी। अब भरतको विश्वास हुआ कि इन्होंने मेरे पापको क्षमा कर दिया है।

रामचंद्रजीने वसिष्ठजीको प्रणाम किया और कैकेयीसे मिले। कैकेयी दुःख और पश्चात्तापसे कातर हो गई है। रामजीने उसे समझायाः– मनमें क्लेश न करो। आपका कोई दोष नहीं है। यह तो विधिकी लीला है। वे सभी माताओंसे मिले और सभीको धीरज बंधायी।

सासजीके दुःखसे सीताजी व्याकुल हो गई हैं तो कौशल्याका हृदय सीताजीके तापसी वेशसे भर आया है।

कौशल्याने दशरथजीके महाप्रयाणकी बात सुनायी। रामचंद्रजी विलाप करने लगे। पिताजीके प्रेमको याद करके रो दिए।

रामचंद्रजीने पिताजीका श्राद्ध किया।

भरतको एक ही चिंता है कि राम–सीता लौटेंगे या नहीं। मैं अपने मुंहसे इन्हें कहूं भी कैसे? वसिष्ठजी परीक्षा लेना चाहते हैं भरतकी। सो उन्होंने भरतसे कहा कि तू ही उनसे विनति करना।

भील लोगोंने अयोध्याकी प्रजाका स्वागत किया। लोग उन्हें भेंट दे रहे हैं किंतु भील तो कुछ स्वीकारते ही नहीं है। रामचंद्रके आगमनके पहले यदि उन्हें कुछ दिया जाता तो वे अवश्य ले लेते। किंतु रामचंद्रजीके दर्शन होनेसे उनकी मनोवृत्ति बदल गई है। रघुनाथकी दृष्टि ही चमत्कारी है। रघुनाथजीके दर्शनसे पाप छूट गया है। चोरी, मारफाड, हिंसा आदि भी छूट गए हैं।

रामचंद्रजीके दर्शनसे यदि चित्रकूटके अनपढ आदिम भीलों तकका जीवन सुधरता है तो भी यदि हमारा जीवन सुधर नहीं पाता है तो इससे बडा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। रामचंद्रके दर्शनसे स्वभाव सुधरना आश्चर्यकी बात नहीं है। अरे, उनके नाम जपनसे भी स्वभाव बदल सकता है।

इधर प्रजाजन व्याकुल है। रामचंद्रकी वापसीके विना शांति नहीं होगी। भरत और शत्रुघ्न, तुम वनमें रहिएगा। हम तो राम–लक्ष्मण–सीताको अपने साथ ही अयोध्या ले जाएंगे।

*

भरतजीने कहाः– गुरुजी, मेरे ही मुंहकी वात छीन ली गई है। यदि रामचंद्रजी अयोध्या वापस जानेको तैयार हो जाय तो हम चौदह वर्ष तो क्या पूरा जीवन वनमें बीतानेके लिए तैयार हैं।

कानन करउं जनम भरी वासु।

कौशल्याने सुना तो उन्होंने कहा, यही भी कोई बात हुई? मेरे लिए तो राम और भरत दोनों समान हैं। मैं किसीको भी गंवानेको तैयार नहीं हूं।

वसिष्ठजी कहने लगेः– लोग मुझे ब्रह्मनिष्ठ समझते हैं। आज भरतको देख कर मुझे लगता है कि वह मुझसे कई गुना श्रेष्ठ है। राम, भरतके सुखका उपाय बताओ।

रामः– मैं भरत जो कहे वह करनेको तैयार हूं। वह अपने मनमें कोई संकोच न रखे। मैं उसे अप्रसन्न नहीं करुंगा।

भरतजीको लगा कि बडे भैयाने उसके सभी पाप क्षमा कर दिये हैं। उन्होंने कभी मेरा दिल दुखाया नहीं है। भरतजी कहने लगेः– मैं तो आपका सेवक हूं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपके राज्याभिषेकका सारा प्रबंध हम करके ही आए हैं। आपका ही राजतिलक किया जाय। अयोध्या वापस लौट कर आप सबको सनाथ कीजिए। राम–लक्ष्मण–सीता अयोध्या वापस लौटें और मैं शत्रुघ्नके साथ वनवास करूंगा। या लक्ष्मणके साथ शत्रुघ्नको भी अयोध्या भेजिए और मुझे सेवा लाभ दीजिए। अथवा हम तीनों भाई वनमें रहें और आप सीताजीके साथ अयोध्या जायं। तो रामजीने कहाः– चौदह वर्ष तो अभी पूरे हो जाएंगे।

उसी समय राजा जनकजीका दूत भी वहां आया। प्रातःकालमें महाराजा जनक भी आ गए। उनका स्वागत किया गया। बहुत–सी बातें भी हुई। अपनी पुत्रीका तपस्विनीका वेश देख कर उनका हृदए भर आया।

कौशल्याने कहाः– इस भरतको समझाइए। वह वनमें चौदह वर्ष कैसे रह सकेगा? वह रामविरह सह नहीं पाएगा। भरतको संतोष मिले ऐसा कुछ कीजिए।

जनकजीः– वैसे तो मैं ब्रह्मज्ञानी हूं कि उसके प्रेमके आगे मेरी बुद्धि भी कुंठित हो गई है। मैं सीताजीको अपने साथ ले जाऊंगा। बेटी, तुमने तो दोनों कुलोंको उद्धार किया, दोनों कुलोंको पवित्र कर दिया।

सीताजीः– मेरे पतिका वनवास मेरा भी तो वनवास है। पिताजी, मैं आपके साथ जा नहीं सकती। आप अधिक आग्रह न करें।

अब अंतिम मिलन हुआ। भरत आज्ञा मांग रहा है।

रामचंद्रजीः– भरत, मैंने आज तक कभी तेरा मन नहीं दुखाया। किंतु आजकी बात ही कुछ और है। हम दोनोंको पिताजीकी आज्ञाका पालन करना है। एक आज्ञाका पालन मुझे करना है और दूसरीका तुम्हें।

भरतजीः– नाथ, मैं अकेला कैसे जाऊंगा? मुझे कुछ अवलंबन दीजिए।

भरतको रामचंद्रजीने अपने स्मरणके स्वरूपमें अपनी चरणपादुका दी। भरतने उसे अपने माथेसे लगाया।

बंधुप्रेमका आदर्श स्थापित करनेके लिए भरत सीताराम सीताराम रटते हुए अयोध्या वापस लौटे। भगवान्‌की चरणपादुकाको सिंहासन पर स्थापित किया।

भरतजी गोमुखयावक व्रत करते हैं। गायको जव खिलाया जाय वह गोबरके साथ बाहर आने पर गौमूत्रके साथ उवाला जाता है। वैसे जव वे दिनमें एक बार खाते थे। रामचंद्रजीकी तपश्चर्यासे भी भरतजीकी तपश्चर्या अधिक श्रेष्ठ है। उनका प्रेम ऐसा तो प्रबल है कि जड पादुका भी मानो चेतन हो गई है।

रामवियोगीका जीवन कैसा होना चाहिए उसका आदर्श भरतने जगत्‌के समक्ष प्रस्तुत किया। हम भी रामवियोगी ही हैं। भरत-सा जीवन बन पाए तभी राम मिलते हैं। भरतका जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है।

भरत रामकी पादुकासे हर वातमें आज्ञा मांगते हैं।

किसी उलझनके समयसे किसी जीवसे परामर्श करना अच्छा है किंतु भगवान्‌से परामर्श करना तो अति उत्तम है। जीवकी राय शायद रागद्वेषसे भरी हुई हो सकती है सो ठाकोरजीसे ही सलाह-मश्विरा करना अच्छा है। तुम्हें यदि कोई उलझन सता रही है तो ठाकोरजीका शृंगार, भोग और आरती करके शांतिसे हाथ जोड कर इस महामंत्रका जप करो। यह श्लोक महामंत्र है। इसका जप करते हुए भगवान्‌के चरणमें सो जाओ। यह श्लोक है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेता।

भगवान् तुम्हें स्वप्नमें मार्गदर्शन देंगे।

रामचंद्रजी शैया पर सोते थे, भरतजी धरती पर ही सोते हैं।

रामचंद्रजीने चित्रकूटका त्याग करनेका निश्चय किया। वे अत्रि ऋषिकेआश्रममें आए। अनसूयाने सीताजीकी बडी प्रशंसा की। वहांसे वे सुतीक्ष्णके आश्रममें गए। यह प्रसंग दिव्य है।

सुतीक्ष्ण मुनि अगस्त्यके शिष्य थे। विद्याभ्यासकी समाप्ति होने पर उन्हें गुरुजीसे गुरुदक्षिणा मांगनेकी प्रार्थना की। अगस्त्य ऋषिने कहाः- कल्याण हो तेरा। कुछ पानेकी आशासे मैंने विद्यादान किया है ऐसा नहीं है। यदि हो सके तो मुझे कभी रामचंद्रजीके दर्शन कराना।

सुतीक्ष्णने आज रामचंद्रजीके दर्शन किए। उन्होंने रामजीसे कहा, चलिए, मैं आपको मार्ग दीखाऊं।

रामचंद्रजीने लक्ष्मणसे कहाः- सुतीक्ष्णने मार्ग दीखलानेके लिए नहीं, अपनी प्रतिज्ञा निभानेके लिए हमारे साथ हो लिया है। सुतीक्ष्ण सभीको अगत्स्यके आश्रममें ले आए।

ॐकारका भावार्थ रामनाममें समाया हुआ है।

सुतीक्ष्ण ऋषि अगस्त्य मुनिसे कहने लगेः गुरुजी, प्रणाम। आज मैं आपको दर्शन करानेके लिए रामचंद्रजीको ले आया हूं। ऋषि दौडते हुए आए और दर्शन करके कृतार्थ हो गए।

वहांसे सब चल निकले। गोदावरी नदीके किनारे पर आए तो वहां पंचवटीमें निवास करनेके हेतु आश्रम बनाया।

पचवटीका अर्थ है पांच प्राण । परमात्मा पांच प्राणोंमें विराजमान हैं। संसार-अरण्यमें भटकनेवालेको वासना रूपी शूर्पणखा मिल जाती है। राम तो उसकी ओर देखते तक नहीं हैं। शूर्पणखा मोहका स्वरूप है। वह रावणकी वहन है। वन-ठन कर वह रामके पास आई और कहने लगी, मैं कुमारी हूं। मेरा मन तुम्हींमें खो गया है। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूं। शूर्पणखा कामवासना है।

रामचंद्रजीः- तेरी ही भांति मेरा भाई लक्ष्मण अविवाहित है, उसके पास जा। मैं तो एक पत्नीव्रतका पालन करता हूं।

शूर्पणखा आगबवुला हो गई। तुम अपनी सीताके कारण मेरी उपेक्षा कर रहे हो। उसने अपना विशाल राक्षसी रूप धारण किया।

वासना भी शूर्पणखाकी भांति पहले तो सुंदर ही लगती है। किंतु आगे चल कर उसका वास्तविक रूप सामने आता है और जीव फंस जाता है। वह आरंभमें सुकुमार लगती है, किंतु आगे चल कर भयंकर हो जाती है। उसकी पकडसे छूटना आसान नहीं है।

लक्ष्मणजीने शूर्पणखाके नाक-कान काटके रख दिए। वह रोती-चिल्लाती हुई रावणके पास आई। रावणने पूछाः- क्या हुआ ? कैसे हुई तेरी ऐसी दशा ?

शूर्पणखाः- दशरथके दो पुत्र पंचवटीमें रहते हैं। उनके साथ एक सुंदर स्त्री भी हैं। मैं तुम्हारे लिए उसे लेने गई थी। तो मेरी यह दशा हुई। रावण उसे सांत्वना देने लगा।

इधर रामचंद्रजीने सीताजीसे कहाः- देवी, अव लीलाका समय आ गया है तुम अग्निमें निवास करो।

इसी लिए तो कहा गया है रावण जिस सीताको ले गया था वह सीता नहीं, सीताकी मात्र छाया ही थी।

रावण मारीचके साथ पंचवटी आया। मारीचने कपटसे कनकमृगका रूप धारण किया। सीताजीने वह सुवर्णमृग देखा तो रामजीसे कहा, मुझे इसकी चमडीका वस्त्र पहननेकी इच्छा है। आप इसका शिकार कीजिए।

रामने भागते हुए उस मृग पर वाण चलाया तो वह 'हे लक्ष्मण' वोलता हुआ धाराशायी हो गया।

इधर सीताजीने लक्ष्मणके नामकी पुकार सुनी तो लक्ष्मणको अपने पतिकी सहायताके लिए दौडाया। लक्ष्मण आश्रमसे वाहर निकले तो रावणने भिक्षुकका रूप लेकर सीताजीका हरण किया।

रावण सीताजीको रथ पर बिठला कर आकाशमार्गसे जा रहा था। मार्गमें जटायुने सीताजीकी आर्त वाणी सुनी तो उन्होंने रावणसे युद्ध किया। उन्होंने रावणसे पूछा कि कहां है उसकी मृत्यु। रावणको छल करनेका अवसर मिल गया। उसने झूठ-मुठ कह दिया कि अपने पांवके अंगुठेमें हैं। जटायु ज्यों ही उसका अंगुठा काटनेके लिए झूके कि रावणने पांखें काट दीं।

लक्ष्मणको आया हुआ देख कर रामने उनसे पूछाः- तुम्हें तो अपनी भाभीकी रक्षाके लिए वहीं रहनेको कहा था। यहां क्यों आया ?

लक्ष्मणजीः– मैं तो वहीं रहना चाहता था किंतु भाभीके आग्रहके कारण आना पडा। और उन्होंने बडे भाईसे सारी बात सुनाई।

रामचंद्रकी सेवा करना बडा कठीन है। लक्ष्मणसे रामने कहाः– अगले जन्ममें मैं तेरी सेवा करनेके लिए आऊंगा। लक्ष्मणका दूसरा जन्म हुआ बलरामका।

तो दोनों भाई आश्रम पर वापस लौटे। देखा तो सीताका कोई पता ही न था।

एकनाथजीने सीतावियोगका वर्णन बडा अच्छा किया। रामजी सीते सीते पुकारते हुए विलाप करने लगे। लक्ष्मण उन्हें बार बार धीरज देते हुए समझा रहे थे।

राम कहते हैंः– यह धरती मेरी सासु हैं। जब भी वहीं दृष्टि जाती है तो मानो वह मुझे कोसती है, अपनी पत्नीकी रक्षा करनेकी यदि तुममें शक्ति ही नहीं थी तो विवाह ही क्यों किया था? आकाशकी ओर दृष्टि जाती है, तो मानो भगवान् सूर्यनारायण दुःखसे कहते है कि मेरे कुलमें यह कैसा कुपुत्र जन्मा जो अपनी पत्नीकी भी रक्षा न कर सका।

दोनों भाई सीताको ढूंढते हुए घूम रहे थे कि एक स्थान पर घायल जटायुको देखा। जटायुने कहा, रावण ही ने मेरी यह दशा की है। वह सीताको उठा कर दक्षिण दिशाकी ओर बढ गया है।

रामचंद्रजीः– यदि तुम्हारी इच्छा है तो मै तुम्हें ठीक कर दूं।

जटायु न माना। कहा, मृत्युके समय मुखसे जिनका नाम उच्चारित होने पर अधमको भी मुक्ति मिलती है वैसे आप मेरे समक्ष उपस्थित हैं। तो फिर मुझे कौन–सी इच्छा अब पूरी करनी हैं कि जिसके लिए इस शरीरको बनाये रहूं।

जाकर नाम मरन मुख आवा।
अधमउ मुकुट होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगे।
राख हुं देह नाथ केहि खांगे॥

जटायुने गिद्धकी देह छोड दी और हरिधाम चले गए। जिस गतिकी योगी इच्छा करते हैं वह उत्तम गति रामजीने जटायुको दी।

इसी लिए शिवजी पार्वतीसे कहते हैंः– पार्वती, वे लोग सत्य ही अत्यत दुर्भागी हैं जो हरिको छोड कर सांसारिक विषयोंसे प्रेम करते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी॥

वहांसे वे शबरीकी कुटिया पर आए।

यह शबरी अगले जन्ममें किसी राजाकी रानी थी। वह धनसे तो सेवा कर सकती थी किंतु तनसे नहीं। एक समय वह प्रयागराज गई। वहां कई महात्माओंसे मिलना हुआ। अगले जन्ममें किसी सच्चे संतसे सत्संग हो ऐसी इच्छा करते हुए उसने त्रिवेणीमें आत्मविलोपन कर दिया। वही रानीका भील जातिमें शबरीके रूपमें जन्म हुआ।

शबरीका विवाह दिन आया। उसके पिताने भोजन देनेके लिए तैयारी की। बहुत-सी बकरियां भी लाई गईं जिनके मांसका भी उपयोग किया जाना था। शबरीने सोचा, मेरे कारण ही तो यह हिंसा होने जा रही है। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। उसने मध्यरात्रिके समय घर ही छोड दिया।

शबरी पंपा सरोवरके किनारे आई और मातंग ऋषिके आश्रमके निकट रहने लगी।

यह मातंग ऋषि वर्षमें एक हाथीका शिकार करते थे और उसके मांसका भक्षण करते हुए स ा वर्ष बीताते थे। अन्य ऋषि उनकी निंदा करते तो वे कहते, आप तो कई जीवोंकी हत्या रते हैं। जब कि मैं तो वर्षमें मात्र एक ही जीवकी हत्या करता हूं।

शबरी वहां आई। सारा दिन किसी वृक्ष पर बैठी रहती और रातके समय संतोंकी सेवा रती थी।

सत्कर्मोंकी प्रसिद्धिसे पुण्य नष्ट होता है।

किसीको दीखानेके लिए नहीं, भगवान्को प्रसन्न करनेके लिए ही सेवा करो।

जिस मार्गसे ऋषि-मुनि स्नानार्थ जाते थे उस मार्गकी सफाई रात्रिके समय शबरी कर देती थी। किसीको पता नहीं चलता था। उससे मातंग ऋषिने पूछा, तू कौन-सी जातिकी है? शबरीने सच्ची बात ही कह दी कि वह किरात कन्या है।

मातग ऋषिने सोचा कि यह हीनजातिकी है किंतु हीनकर्मा नहीं है। उन्होंने कहा, पुत्री, तुम मेरे आश्रममें ही रहना। शबरी शुद्ध थी फिर भी लोग निंदा करते थे कि ऋषि होकर भी भील कन्याको अपने पास रखा है। ऋषिने उसे राममंत्रकी दीक्षा दी।

एक दिन मातंग ऋषि ब्रह्मलोकमें जानेकी तैयारी करने लगे तो शबरीको बडा दुःख हुआ। वह कहने लगी, पिताजी, आप मत जाइए। आप चले जाएंगे तो मेरा क्या होगा?

ऋषिने कहा:- मैंने तुम्हें राममंत्रकी दीक्षा दी है। श्रद्धा रखना। एक न एक दिन तेरी कुटिया पर रामचंद्रका आगमन होगा। कब आएंगे वह तो मैं भी नहीं जानता किंतु अयोध्यामें तो उनका प्रागट्य हो चुका है।

जप, तप, दान, तीर्थ आदि सब कुछ करने पर भी यदि किसी सच्चे संतकी कृपा न होगी तब तक भक्ति सफल नहीं होगी।

वैष्णव आशामें ही जीते हैं कि कभी मेरे प्रभु मुझे अपनाएंगे।

बडे उत्साहसे सेवा स्मरण करते रहो। मन न लगे तो सतत सत्कर्म करो।

शबरीको श्रद्धा थी कि राम कभी तो आएंगे ही। वह वनमेंसे बेर आदि फल ले आती थी। सारा दिन प्रतीक्षा करती थी और शामको ही खाती थी। वह सोचती थी कि मैं पापिणी हूं तभी तो वे मेरे यहां आते नहीं हैं।

रामकी प्रतिक्षा करते करते अब तो वह वृद्धा हो गई है फिर भी वह उसी आशामें जी रही है। मेरे गुरुजीने कहा है न। रामजीके लिए लाए गए फल वह ऋषि कुमारोंमें बांट देती थी। घट घटमें राम बसा है। तपश्चर्या करनेसे सिद्धि अवश्य मिलती है।

शबरी सारा दिन राममंत्र जपती रही थी। उसका जीवन संयमी और सेवामय था। उसकी निष्ठा दिव्य थी। ऐसोंके घर राम नहीं जाएंगे तो फिर किसके घर जाएंगे ?

राम-लक्ष्मण पंपा सरोवर आए तो ऋषि-मुनियोंने उनका स्वागत किया। वे सब उनके यहां पधारनेका आग्रह करने लगे। तो रामजीने कहा, पहले मैं शबरीकी कुटिया पर जाऊंगा।

सभी स्थानोंमें हमेशा जो मुझे ढूंढता है, उसे मैं भी ढूंढता हूं और उसके पास जाता हूं।

जिस समय राम-लक्ष्मण शबरीकी कुटिया पर पहूंचे उस समय वह राम मंत्रका जप कर रही थी। शबरीने दोनोंका स्वागत किया और बैठनेके लिए अच्छा-सा आसन दिया। मैं वैसे तो जातिहीन हूं, फिर भी आपकी शरणमें आई हूं।

रामः- मैं और किसी भी प्रकारका संबंध नहीं चाहता। सबसे ऊंची प्रेम सगाई।

शबरी बेरका दोना ले आई और चख-चख कर सभीको देने लगी कि कहीं खट्टे तो नहीं हैं। वह भगवान्‌के दर्शन होने पर इतनी तो भावावेशमें है कि उसे यह भी विचार नहीं आता है कि वह भगवान्‌को जूठे बेर खिला रही है। रामजीने बेरोंकी बडी प्रशंसा की।

मीठाश तो प्रेममें ही है।

प्रेम कलंकित न हो। ईश्वरको मात्र उनके लिए ही प्रेम करो।

महापुरुष वर्णन करते हैं कि शबरीके बेर खाकर रामजीने जो बीज (गुठली) फेंक दिए थे उनमेंसे द्रोणाचल पर्वत पर संजीविनी वनस्पति उत्पन्न हुई। इसी संजीविनीसे लक्ष्मणजीको जीवनदान मिला था।

अतिशय भजन करो। सच्चे साधु-संतोंमें विश्वास रखो। शबरीका चरित्र मानवमात्रके लिए आश्वासन रूप है। भगवान् अवश्य मिलते हैं।

श्री रामने शबरीसे पूछा, तेरी कोई इच्छा है ? शबरीने कहा, इस पंपा सरोवरके बीगडे हुए जलको आप शुद्ध कर दीजिए। किसी समय एक ऋषिने शबरीको लात मारी थी सो इस सरोवरका जल बीगड गया था।

रामजी लोगोंसे कहते हैं कि इस जलको शुद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। यदि शबरीके चरणतीर्थके जलकी इस सरोवरमें अंजलि दी जाए तो बात कुछ बन सकती है।

शबरीको उस सरोवरमें स्नान कराया गया और फलतः सरोवरका जल शुद्ध हो गया। रामने शबरीका भी उद्धार किया। रामका दर्शन करती हुई शबरी योगाग्निमें विलीन हो गई।

रघुनाथजी अब ऋष्यमूक पर्वतके समीप आए। वहां सुग्रीव रहते थे। वहां प्रथम तो हनुमानजीसे मिलन हुआ। हनुमानजीने उनका परिचय जाना और सुग्रीवसे मैत्री करा दी।

जब तक ईश्वरसे जीवकी मैत्री नहीं हो पाती है तब तक जीवन सफल हो नहीं पाता है। और ऐसी मैत्री हनुमानजी अर्थात् ब्रह्मचर्यके विना नहीं हो पाती।

रामनाम तो अमृतसे भी श्रेष्ठ है। रामनाम भवरोगकी दवा है। किंतु संयमके विना वह भी कारगत नहीं हो सकती।

रामनाम तो सब कहे।
दस रीत कहे न कोई ॥

जब तक हनुमानजी सिफारिश नहीं करते हैं तब तक रामचंद्र अपना नहीं बनाते।

परमात्मा जीवमात्रके सच्चे मित्र हैं। ईश्वरके साथ मैत्री करनेसे जीवन सफल होता है। सांसारिक मित्र तो केवल इसी जगत्में सुख दे सकता है किंतु परलोक और अंतकालमें सुख नहीं दे सकता।

जीव यदि ईश्वरके साथ मैत्री करे तो वे उसे अपना लेते हैं। वे उसे भी ईश्वर बनाते हैं। वे तो अति उदार हैं। वे जब देने पर आते हैं तब बहुत उदार हो कर देते हैं। जीवको जब कुछ देनेका प्रसंग आता है तो सोचविचारके, अपने लिए बहुत कुछ बाकी रख कर देता है। विश्वका सर्जक देते समय ऐसा कभी नहीं सोचता है कि अपने लिए भी शेष रखना चाहिए।

मैत्री परमात्माके साथ ही करो। परमात्मासे मैत्री वही कर सकता है जो कामको अपना शत्रु बनाता है। कृष्ण और काम, राम और रावण एक साथ रह नहीं सकते।

रामचंद्रजीने सुग्रीवको अपना मित्र बनाया क्यों कि सुग्रीवको हनुमानजीने अपनाया है।

हनुमानजी ब्रह्मचर्यका स्वरूप है। ब्रह्मचर्यकी मैत्री जितेन्द्रिय बनाएगी। और तभी परमात्माके साथ भी मैत्री होगी। संयम और धर्ममर्यादाका पालन करोगे तो रामराज्यके कालके भांति दाक्तर–वकीलकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

हनुमानजीको जो अपना मित्र नहीं बनाता है उसे राम भी अपना मित्र बनाते नहीं हैं। परमात्मासे प्रेम किए विना जीवन सुंदर नहीं हो पाता। प्रेम किए विना मनुष्य जी नहीं सकता। कोई धनसे, कोई स्त्रीसे, कोई बालकोंसे प्रेम करता है। किंतु प्रेम करने योग्य तो एक परमात्मा ही हैं। परमात्माके सिवाय अन्य किसी भी व्यक्तिके साथ किया गया प्रेम जीवको अंतमें रुलाता ही है।

जगत् अपूर्ण है और जीव भी अपूर्ण है। परमात्माके साथ मैत्री होने पर ही जीवन परिपूर्ण हो पाता है। परमात्माके साथ प्रेम करनेवालेको वे पूर्ण बनाते हैं। ईश्वर उसीको मिलते हैं जो उनसे पूर्णतः प्रेम करते हैं। वैसे व्यक्ति ही प्रभु अपना मानते हैं। ईश्वरके साथ प्रेम करना है तो दूसरोंका प्रेम छोडना पडेगा। लौकिक प्रेमको धीरे धीरे कम करते जाओ और प्रभुके साथ बढाते जाओ।

हनुमानजीके पूछने पर रामजीने अपना परिचय दिया। हनुमानजीने प्रणाम करके स्तुति की और कहा, इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं उनके साथ मैत्री कीजिए। वे आपके दास हैं। और सभी सुग्रीवके पास आए।

रामजीने सुग्रीवसे पूछाः– तुम इतने दुःखी क्यों दीखाई देते हो?

सुग्रीवः– मेरे भाई वालीने मेरी धन–संपत्ति और पत्नी छीन कर मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है।

जो मित्रके दुःखसे दुःखी होता है वही सच्चा मित्र है।

सुग्रीव और वालीके वीच युद्ध हुआ। राम सुग्रीवके पक्षमें थे। उन्होंने एक वृक्षकी आड लेकर वाली पर तीर छोडा। तो वालीने कहाः—

अवगुन कवहु नाथ मोहि मारा।

आपने तो धर्मकी रक्षाके हेतु अवतार धारण किया हैं। मैंने तो कोई अपराध किया नहीं फिर भी आप मेरा वध क्यों करना चाहते हैं? धर्मकी रक्षाके हेतु अवतार धारण करके भी आपने अधर्माचरण किया है।

रामचंद्रजीः– वाली, अपना दोष तो तू देखता नहीं है और मुझ पर ही दोष लगाए जा रहा है।

भाभी, वहन, पुत्रवधु और अपनी कन्या एक समान हैं, फिर भी तुमने अपने भाईकी पत्नी पर कुदृष्टि डाली। सो तू महापापी है। अतः तेरा उद्धार करनेके लिए ही तेरा वध कर रहा हूं।

स्वदोषके दर्शनके विना ईश्वरके दर्शन हो नहीं पाते। परदोष दर्शन परमात्माके दर्शनमें वाधारूप है।

वाली कहने लगाः– प्रभु, यदि मैं पापी हूं तो मुझे वताइए कि कौनसे ग्रंथमें ऐसा लिखा हुआ है पापीको भी आपके दर्शनका लाभ प्राप्त हो सकता है। उलटे कहा गया है—

जनम जनम मुनि जतन कराहीं।
अंत राम कहिं आवत नाहीं॥

मुनिगण जन्म जन्मांतरमें कई प्रकारकी साधना करते रहते हैं फिर भी अंत कालमें उनके मुखसे राम नाम उच्चरित नहीं हो पाता है।

मैं पुण्यशाली हूं तभी आपके दर्शन इस समय कर रहा हूं। आपके दर्शनसे अव मैं पापी तो रहा ही नहीं। आपके दर्शनसे पापोंका नाश होता है। आपके दर्शन देवोंको भी दुर्लभ हैं फिर भी मैं आपके दर्शन कर रहा हूं।

भगवान् रामने कहा – मेरे दर्शन तुम्हें हुए वह तेरे प्रतापसे नहीं हुए हैं। तुम सुग्रीवके भाई हो सो मैं तुम्हारा उद्धार कर रहा हूं। तुम सुग्रीवके कारण ही मेरे दर्शन पा रहे हो।

भगवान्की वात सुन कर वालीने सुग्रीवको प्रणाम किया और कहा, तेरे ही कारण मुझे भगवान्के दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

तो सुग्रीव वालीसे कहने लगाः– नहीं, नहीं। तुम्हारे कारण ही मुझे भगवान्के दर्शन हुए। यदि तुमने मुझे घरसे निकाल न दिया होता तो प्रभुदर्शन मैं भी कैसे पा सका होता।

वाली देह छोड रहा था तो सुग्रीवने भगवान्से प्रार्थना की कि मेरे भाईके पापको क्षमा कीजिए।

वैर और वासना मृत्युको वीगाडते हैं। जो वैर और वासनाको अपने ही मनमें रख कर मरता है उसे सद्‌गति नहीं मिल पाती। अपना कर्तव्य है कि किसीके साथ वैर न रखें।

राम राम जपते हुए वालीने प्राणत्याग किया। सुग्रीवको किष्किंधाका राज्य दिया गया।

रामकी अनासक्ति भी कैसी है।

रावणकी हार हुई और लंकाका राज्य रामको मिला किंतु उन्होंने कहा मुझे धन या राज्यकी आसक्ति नहीं है। लंकाका राज्य कुंभकर्णको दे दिया। कंसकी मृत्यु होने पर मथुराका राज्य कृष्णके हाथोंमें आया किंतु उन्होंने उग्रसेनको दे दिया।

राम और कृष्ण जैसा बोलते हैं वैसा ही आचरण करते हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनको युद्ध-भूमिमें छः शास्त्रोंका सार एक ही घंटेमें सुनाया था। भगवान्‌का ज्ञान भी कैसा है। अर्जुनने कहा था, आप जो कहेंगे वही करुंगा।

ज्ञानकी शोभा व्याख्यान नहीं, क्रियात्मक भक्तियोग है।

रामके समान जगहितार्थी कोई नहीं है। ऐसा भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा। देवता, मनुष्य और मुनि सभीकी यह रीति है कि अपने स्वार्थके हेतु ही वे सभीसे प्रीति करते हैं।

सुर नर मुनि सबकी यह रीति।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति॥

भगवान् राम प्रवर्षण पर्वत पर विराजे। हनुमानजी अपनी वानरसेनाके साथ आए। रामजीने अपनी मुद्रिका हनुमानजीको देते हुए कहा, यह सीताजीको देना और मेरे विरह तथा बलकी सारी वाते सुना कर तुरंत लौट आना। हनुमानजीने अपनी वानरसेनाके साथ दक्षिणकी ओर प्रयाण किया। वे जांबवनके पास आए जहां संपातिने उन्हें समाचार दिया कि सीताजीको अशोकवनमें रखा गया है। समुद्रको पार करना बडा कठिन था। राम नाम और संयमके बलके विना समुद्र पार किया नहीं जा सकता।

हनुमानजीने आवेशपूर्वक कहा, यदि आप कहें तो सारी लंकाको समुद्रमें डूबो दूं।

जांबवानः– धीरज रखो। यदि लंकाको डूबो दोगे तो सीताजी भी डूब जाएंगी।

तो हनुमानजीने उडान किया और उडते हुए समुद्र पार करने लगे। मार्गमें सुरसाने अवरोध करनेका प्रयत्न किया हनुमानजीने उसका नाश किया। हनुमानजी लंका आ पहुंचे। सायंकालका समय था। लंका दर्शन करने निकले। वहांका वैभव अलौकिक है।

मध्यरात्रिके समय लंकामें प्रवेश करने जा रहे थे कि लंकिनीने रुकावट की। तो उन्होंने उसे मार दिया। मरते हुए लंकिनीने कहा, मुझे ज्योतिर्षीने कहा है कि तुझे कोई मारे तब समझ लेना कि रावणकी भी मृत्यु होने जा रही है। हनुमानजीको लंकिनीने यह भी कहा कि लंकामें घूमते समय रामजीको हमेशा अपने हृदयमें रखना। शायद राक्षसियोंके विहारको देख कर मन विकारी हो जाए।

हृदय राखि कोशलपुर राजा।

मानवसमाजमें बस कर मानव बनना आसान नहीं है। एकांतमें बैठ कर ब्रह्मचिंतन करना आसान है। जनसमाजके मध्यमें विलासी लोगोंके साथ रह कर निर्विकार रहना बडा कठिन है। शरीरसे चाहे पाप न हो, मनसे तो हो ही जाता है।

हनुमानजीको कौन उपदेश दे सकता है ? वे तो सकल विद्याके आचार्य हैं। फिर भी लंकिनीके वचन उपेक्षनीय नहीं हैं। हनुमानजीको लगा, मैंने आंखसे यह दृश्य देखा। नहीं, नहीं, आंखसे चाहे देखा है, मनसे चिंतन तो किया ही नहीं है। हनुमानजी तो बालब्रह्मचारी है।

वहांसे वे इन्द्रजीतके आवासमें आए। वहां सुंदरी सुलोचनाको देख कर उन्होंने सोचा, शायद यही सीताजी हैं। नहीं, यह सीताजी नहीं है।

एकनाथजी महाराजने सुंदरकांडमें बडा अच्छा वर्णन किया है।

हनुमानजी साक्षात् शिवजीका अवतार था। पार्वतीजी भी अवतार लेनेका आग्रह करने लगी तो शिवजीने कहा, नहीं, मुझे ब्रह्मचारी रहना है। पार्वतीने कहा, मैं आपके बगैर जी नहीं सकुंगी। सो शिवजीने हनुमानजीका रूप लिया और पार्वतीजी बनी उनकी पूंछ। यह योगमाया सभीके घरमें जाती हैं।

हनुमानजीकी पूंछ बढती ही गई। रावणकी बहुत फजीहत हुई।

हनुमानजीने सारी रात सूक्ष्म रीतिसे भ्रमण किया किंतु सीताजी कहीं भी दीखाई नहीं देती थीं। प्रातःकालमें विभीषणके आवासमें प्रविष्ट हुए। वहां उन्होंने देखा कि विभीषणने नींदसे जागते ही रामका स्मरण और उच्चार किया। हनुमानजी सोचने लगे, इस राक्षसोंकी बस्तीमें यह कौन वैष्णव है ? हनुमानजीने ब्राह्मणका रूप लिया और विभीषणके निकट गए। विभीषणने उनसे पूछा, कौन है आप ? राम तो नहीं है क्या ? प्रभातमें आपके दर्शन हुए सो मेरा सारा दिन अच्छा बीतेगा और कल्याण होगा। हनुमानजीने सारी बात बताते हुए सीताजीका पता पूछा।

विभीषणः– आपके दर्शन होनेसे मुझे विश्वास हो गया है कि रामजीके दर्शन मुझे अवश्य होंगे। मैं तो अधम हूं किंतु आपके कारण राम मुझे अवश्य अपनाएंगे।

रात्रिमें सोनेसे पहले तथा प्रातःकालमें जागते ही प्रभु स्मरण और शुभ विचार करो।

हनुमानजी अशोक वनमें आए। वहां सीताजी समाधि अवस्थामें बैठ कर रामनाम जप रही थीं। उनका शरीर दुर्बल हो गया था। हनुमानजीने उनको मनोमन प्रणाम किया और वृक्षकी डाली पर बैठ कर रामकथा सुनानी शुरु की। आपको ढूंढनेके लिए कई वानर भेजे गए हैं। उनमेंसे मैं भी एक हूं। मैं रामचंद्रजीका दूत हूं। आज मेरा जीवन सफल हो गया। साक्षात् आद्यशक्ति सीताजीको मैं प्रणाम करता हूं।

सीताजीः– भाई, कौन है तू ? प्रत्यक्ष क्यों नहीं आता है तू ? मेरे समक्ष आ।

हनुमानजीने सामने आकर माताजीको प्रणाम किया। माताजी, मैं हूं रामचंद्रजीका दूत। आप मेरी माता हैं। मुझे आज बडा आनंद हुआ। और उन्होंने रामचंद्रजीका संदेश सुनाया। वे आपकी उपेक्षा नहीं करते हैं। वे शीघ्र ही यहां आ रहे हैं।

माताजी, मुझे भूख लगी है, यहां फल तो बहुत हैं किंतु राक्षस लोग निगरानी कर रहे हैं।

सीताजीने कहा, नीचे गिरे हुए फल ही खाना, तोड कर न खाना। हनुमानजीने सोचा कि माताजीने फल तोडनेकी मनाही की है, वृक्षोंका झंझोड कर फल गिरानेकी नहीं। और उन्होंने वृक्षोंको झंझोड कर फल गिराए और आहार किया।

संत तो भोजन करते समय भी भजन चालू ही रखते हैं। अन्नकी निंदा पाप है।

हनुमानजीने दिव्य वानरका स्वरूप धारण किया और पूच्छसे उसका काम करनेकी आज्ञा दी। पूच्छने बहुतोंको मारा, कई राक्षसियोंका संहार किया। इतनेमें इन्द्रजीतने वहां आकर ब्रह्मास्त्र छोडा। हनुमानजीने ब्रह्मास्त्रका संमान किया। इन्द्रजीत हनुमानजीको बांध कर राजसभामें ले आया। रावणने हनुमानजीसे पूछाः- ऐ बंदर कहांसे आया है तू? क्यों आया है?

हनुमानजीः- ऐ दशानन, मैं तो तुम्हें उपदेश देनेके लिए आया हूं। शिवजीको प्रसन्न करनेके लिए तू तपस्वी बना था। फिर भी पराई स्त्री सीताको बंदी बनाया? रामचंद्रजीकी शरणमें आ। वे तेरे सभी पाप क्षमा करेंगे।

किंतु रावण कब समझनेवाला था? वह तो अहंकारी था। उसने अपने सेवकोंसे कहा, इस बंदरकी पूच्छमें ही शक्ति है। जला दो इस पूच्छको। सेवक हनुमानजीकी पूच्छको कपडेसे लपेटने लगे। हनुमानजी अपनी पूच्छको बढाते गए। लंकाकी सारी बाजारका कपडा पूरा हो चूका। कपडोंको घी-तेलसे भीगोया गया और फिर उसे जलाया गया।

हनुमानजीने कहा, यह तो पूच्छ-यज्ञ हो रहा है। रावण, अपने मुंहसे जरा उसे हवा तो दे। रावण फूंक मारने गया तो उसकी दाढी जल गई।

हनुमानजीने कई घरों पर कूदाकूद करके सारी लंकामें आग लगा दी।

राक्षसियां दौडती हुई सीताजीके पास आई और कहने लगी, आपके पास जो पुरुष आया था उसकी पूच्छ सारे लंकाको जला रही है।

सीताजी प्रार्थना करने लगीः- हे अग्नि देव! यदि मैंने अपने पतिके सिवाय अन्य किसी भी पुरुषका चिंतन न किया हो और पतिव्रतका पूर्णतः पालन किया हो तो आप शांत हो जाइए। अग्नि देव चंदनसे शीतल हो गए।

लंका जल रही थी। हनुमानजीने समुद्र किनारे पर आकर देखा तो उन्हें लगा कि यह अच्छा नहीं हुआ। अशोक वन भी यदि जल गया तो? समुद्र स्नान करके वे अशोक वनमें आए। वहां देखा कि एक भी वृक्ष जला नहीं था। सीताजीसे मिले। सीताजीने आशीष दी, अष्ट सिद्धियां तेरी सेवा करेंगी और सारे जगत्में तेरी जयकार होगी। किंतु इन आशीषोंसे हनुमानजीको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने तो रामसेवाकी आशीष मांगी। हनुमानजी अमर हैं। काल उनका सेवक है।

हनुमानजी वहांसे जाने लगे तो ब्रह्माजीने उनके पराक्रमकी सारी बातें पत्रमें लिख दी। हनुमानजी इतने नम्र हैं कि अपने कार्यका वर्णन स्वमुखसे नहीं करेंगे सो पत्र लिख दिया।

हनुमानजी रामजीके पास आए। लक्ष्मणने पत्र पढ कर रामजीको सुनाया। हनुमानजीने कहाः- प्रभु यह तो सब आपका ही प्रताप है। कृपा कीजिए कि मैं अभिमानी न हो जाऊं। रामजीने सोचा कि इस हनुमानजीको मैं दूं तो क्या दूं। उन्होंने हनुमानजीको अपनी बांहोंमें भर लिया।

रामचंद्रजीने वहांसे विजयादशमीके दिन प्रयाण किया और समुद्रके किनारे पर आए। उनका नियम था प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करना। वहां कोई शिवलिंग नहीं मिला तो

हनुमानजीको काशीसे शिवलिंग ले आनेकी आज्ञा दी। हनुमानजीको लौटनेमें देरी हुई तो रामजीने बालूका शिवलिंग बनाया और पूजा की। वही शिवलिंग रामेश्वर है। जो रामेश्वरका दर्शन करेगा वह देहत्यागके बाद मेरे धाममें आएगा।

जे रामेश्वर दरसनु करहिं।
ते तनु तजि मम लोक सिधरहिं ॥

इधर लंकामें रावणने नगरजनोंकी सभा बुलाई। विभीषणने कहा, भैया, रामजीकी शरणमें जाकर सीताजीको सकुशल लौटा दो।

रावणने गुस्सेसे विभीषणको लताड दिया। धन्य है विभीषणको कि लात खा कर भी बडे भाईको वंदन किया। तुमको जो ठीक लगे वही करो। मैं तो श्री रामकी शरणमें आ रहा हूं।

विभीषणके लंकात्याग करते ही सभी राक्षस आयुष्यहीन हो गए।

साधुपुरुषका अपमान सर्वनाशका कारण बन सकता है।

विभीषण वानरसेनाके पास आए। वे सोच रहे थे कि मुझे यहां अपनाया जाएगा या नहीं। रावणका भाई होनेके कारण मेरा तिरस्कार तो नहीं करेंगे न? नहीं, नहीं, प्रभु तो अंतर्यामी हैं। मेरा मनोभाव शुद्ध है अतः वे मुझे अवश्य अपनाएंगे।

सुग्रीवने भगवान्‌को समाचार दिया कि रावणका भाई विभीषण आया है। मुझे तो लगता है कि यह राक्षसोंकी माया है और हमारा भेद जानना चाहते हैं।

रामः– किंतु विभीषण क्या कहता है सो तो बताओ।

सुग्रीवः– वह तो कहता है–

राघवं शरणं गतः।

हनुमानजी वकालत करने लगेः– उसके हृदयमें छलकपट नहीं है। उसको हमें अपनाना चाहिए।

रामः– सुग्रीव, विभीषणका स्वागत करो और यहां ले आओ। जब भी जीव मेरे सन्मुख आता है, उसके करोडों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य मनसे निर्मल है वह मुझे प्राप्त करता है। मुझे छल–कपट और छिद्रान्वेषण पसंद नहीं हैं।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

सुग्रीव विभीषणको ले आया। विभीषणने कहाः– नाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूं। मेरे भाईने मुझे लताड कर तिरस्कृत किया है।

रामजीने अपने आसनसे खडे हो कर विभीषणका सत्कार करते हुए कहा, तुम मेरे भाई लक्ष्मणके समान प्रिय लगते हो। लंकाका राज्य तुम्हें ही दिया जाएगा।

विभीषणने भी सोचा था कि रावणकी मृत्युके पश्चात् प्रभु मुझे ही लंकापति बना-एंगे। आज उनकी इच्छा पूर्ण हो गई।

सुग्रीवने रामजीसे कहाः– आप बडी शीघ्रता करते है। विभीषणको लंकाका राज्य देनेका वचन तो दे दिया किंतु यदि रावण शरणमें आकर सीताजीको सौंप दे तो आप उसे क्या देंगे ?

रघुनाथजीः– मैं जब भी कुछ बोलता हूं सोच–विचार करके ही बोलता हूं। यदि रावण शरणमें आएगा तो मैं उसे अयोध्याका राज्य दूगा।

विभीषन शरण आयो, करयो लंकाधीश ।
यह सुनी रावण शरण आये तो कर हूं कौशलाधीश ॥

रावण यदि शरणमें आएगा तो उसे अयोध्याका राज्य देकर हम सभी भाई वनवास करेंगे।

समुद्र पर पत्थरका सेतु रचा गया। पत्थर पर रामनाम लिखनेसे पत्थर तैरते हैं।

रामनामसे यदि जड पत्थर तैर सकता है तो मनुष्य क्यों तैर न सके? विश्वासपूर्वक, श्रद्धापूर्वक रामनामका जप करोगे तो भवसागर पार कर सकोगे। इस कलियुगमें इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। पत्थर तक रामनामसे तैर जाते हैं।

रामचंद्रजीने लंकामें प्रवेश किया। अगदको विष्टिके लिए भेजा गया। अनेक राक्षस मर गए। लक्ष्मणने कपटसे इन्द्रजीतका मस्तक उडा दिया। सुलोचनाने सती होना चाहा। उसने रावणसे अपने पति इन्द्रजीतके मस्तककी मांग की। तो रावणने कहा, वह मस्तक तो रामके पास है। जा उसके पास।

तो सुलोचनाने कहा, मुझे शत्रुके पास क्यों भेज रहे हो ? मैं सुंदर हूं सो वहां कुछ अनर्थ हुआ तो ?

रावण रामचंद्रजीकी प्रशंसा करते हुए कहने लगाः– राम तो तुम्हें माता समान ही मान देगा। तुम्हारी स्तुति करेंगे। और तो मैं क्या कहूं ? मैं रामको अपना शत्रु मानता हूं किंतु वे मुझे शत्रु नहीं मानते हैं। रामकी शरणमें जा। वे अवश्य तुम्हें इन्द्रजीतका मस्तक लौटा देंगे।

सुलोचना रामजीके पास आई। मेरे पतिका हाथ आंगनमें आया और पत्र लिख दिया। उसे पूछा कि जड हाथ लिख कैसे सकता है। तुम अपने पतिकी प्रार्थना करो और आंखें हंसेगी तो मानेंगे कि जड हाथने पत्र लिखा है।

सुलोचना बहुत मनाती है। मस्तक हंसता नहीं है। नाथ, तुम अप्रसन्न हो। ऐसा सुन कर मस्तक डोलने लगा और स्मित किया।

शेषनाग लक्ष्मणका रूप ले कर आए।

मस्तकने सुलोचनासे कहा, तेरे पिताने मुझे मारा है।

आज श्वसुर और दामादके बीच नहीं किंतु दो पतिव्रताओंके बीच युद्ध हो रहा है। ऊर्मिला और सुलोचनाका संग्राम है। सुलोचनाकी पराजय हुई। सुलोचनाने लक्ष्मणजीसे कहाः– जय आपकी नहीं ऊर्मिलाकी हुई है। उसका पतिव्रत्य मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ है। मेरे पति पापी

रावणके पक्षमें होनेके कारण दुर्बल हैं। मेरे पति पापीकी सहाय कर रहे थे। सो मेरी पराजय हुई और ऊर्मिलाकी जय। परस्त्रीके हरण करनेवालेको मेरे पति सहाय करते थे सो मुझे हारना पडा।

सुलोचना सती हो गई। रामजीने उसकी बडी प्रशंसा की।

राम और रावणके मध्य भयंकर युद्ध छीड गया। रावणकी टुंडिमें जो अमृत था उसे अग्न्यास्त्र द्वारा सुखा दिया गया। रावणकी मृत्यु हुई।

हनुमानजीने सीताजीको रामकी विजयका समाचार दिया।

प्रभुने स्वयं कुछ भी नहीं लिया। लंकाका सारा राज्य विभीषणको सौंप दिया। वानरोंका सम्मान किया गया

अब रामचंद्रजी आदि पुष्पक विमान पर सवार हो कर अयोध्याकी दिशामें लौट चले। मार्गमें उन्होंने सीताजीको रामेश्वरका दर्शन कराया।

विमान प्रयागराज आया। हनुमानजीको आगे बढनेकी आज्ञा की। हनुमानजी भरतके पास आए। भरत रामपादुकाकी पूजा करते हुए सीतारामका जप कर रहे थे। हनुमानजीने कहा, भरतजी, राम-लक्ष्मण-जानकी पधार रहे हैं।

भरतजीने विमान देखा तो आनंदित हो गए। विमानमेंसे सब नीचे उतरे। रामजीने भरतको बांहोंमें भर लिया। दोनोंका मिलन हुआ तो लोग समझ भी नहीं पा रहे थे कि इन दोनोंमेंसे राम कौन है और भरत कौन है। दोनोंका वर्ण श्याम है, वल्कल समान हैं और शरीर कृश है।

वसिष्ठ ऋषिने राज्याभिषेकका मुहूर्त दिया वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी। राज्याभिषेककी विधि संपन्न हुई। भगवान् रामचंद्रजी और सीताजीने कनक सिंहासन पर आसन लिया।

रामराज्यमें कोई दरिद्र, रोगी, लोभी, झगडालु नहीं, था। प्रजा हर तरहसे सुखी थी। उनके राज्यमें वकील वैद्योका कोई काम न था। उस समय वकील-वैद्य बेकार हो गए थे शायद इसी कारणसे उनके धंधेमें आज बडी तेजी है।

रामराज्यमें सारी प्रजा एकादशीका व्रत करती थी।

एकादशीके दिन रसोई पकानेकी बात तो दूर रही, अन्नके दर्शन नहीं करने चाहिए। कथा सुनते तो हैं तो कुछ व्रत भी रख लीजिए। जप करुंगा, एकादशी करुंगा, प्रभुसेवाके पहले भोजन न करुंगा। ऐसा कोई भी नियम अपनाओगे तो कथाश्रवणका फल मिलेगा।

हनुमानजी रामचंद्रजीकी सेवा कर रहे हैं। वे इस प्रकार सेवा करते थे कि अन्य किसीके लिए सेवा करनेका कोई अवकाश ही नहीं रहता था। सीताजी सोचने लगीं कि इस हनुमानके कारण में तो अपने पतिकी कुछ सेवा कर ही नहीं पाती। जब सेव्य एक है और सेवक अनेक तो ऐसी विषमता हो ही जाती है।

दासोहम्‌के बाद सोहम् हो सकता है। ज्ञानी लोग भी पहले दास्यभाव रखते हैं और बादमें सोहम्‌की भावना करते हैं।

सीताजीने अपने पति देवसे कहाः– मैं सेवा करूगी। हनुमानजीको आप मना करें।

रामजीः– हनुमानजीको भी सेवाका अवसर देना ही पडेगा। उसने आज तक मेरी वडी सेवा की है। मैं उसका ऋणी हूं। प्रभुको दुःख हुआ कि लोग हनुमानजीको पहचानते और समझते नही है।

सीता, भरत और शत्रुघ्न हनुमानजीको सेवा करने नहीं देते है। हनुमानजीका रामसेवा ही तो जीवन था।

सेवा और स्मरणके हेतु ही जो जीता है वही सच्चा वैष्णव है। वेशसे वैष्णव होना, वैष्णव कहलाना कठिन नहीं है किंतु हृदयसे वैष्णव बनना बडा कठिन है।

हनुमानजीने सीताजीसे पूछाः– माताजी, क्या आप मुझसे नाराज हो गई है क्या? आप मुझे रामजीकी सेवा क्यों नहीं करने देतीं?

सीताजीः– कल सेवाका सारा काम बांट दिया गया है और तेरे लिए कोई काम बाकी नहीं रहा है।

हनुमानजीः– एक सेवा बाकी है। राम जंभाई लेंगे तो चपटी कौन बजाएंगे? जंभाई आने पर चपटी बजानी चाहिए अन्यथा आयुष्य कम होता है।

सीताजीः– अच्छा, तो यह सेवा तू करना।

हनुमानजी आज तक दास्यभावसे रामजीके चरण ही निहारते रहते थे अब माताजी-की आज्ञाके कारण मुखारविंदके दर्शन करने लगे हैं।

सीताजी और रामजी यदि बातचीत करना चाहें तो भी बीचमें हनुमानजी उपस्थित ही हैं। सारा दिन तो विनोदमें निकल गया। रात्रि आई। रामजीके पास हनुमानजी पहलेसे ही आ गए हैं।

सीताजीः– हनुमान, अब तुम जा सकते हो।

हनुमानजीः– माताजी, आप ही ने तो मुझे यह सेवा सौंप दी है। प्रभु कब जमुहाई ले यह कौन जान सकता है। सो मुझे तो यहीं रहना पडेगा।

सीताजीने रामजीसे कहाः– नाथ, अपने इस सेवकको अब बाहर जानेकी आज्ञा दीजिए।

रामजीः– मैं हनुमानजीको तो कैसे कह सकू? मैं उसका ऋणी हूं। उसके एक एक उपकारके बदलेमें मैं अपना प्राण दूं तो भी कम है।

प्रभुकी ऐसी बात सुन कर भी सीताजीने हनुमानजीको बाहर जानेकी आज्ञा दी। वे बाहर आकर सोचने लगे, एक सेवा मिली थी वह भी छीन ली गई। अब सारी रात मैं चुटकी बजाता रहूंगा कि जिससे रामकी सेवा कभी भी अपने आप ही होती रहे।

इधर रामजी सोच रहे हैं कि मेरे ही कारण हनुमान जग रहा है। वह जागा करे और मैं सोता रहू यह ठीक नहीं है।

कीर्तन-भक्ति भगवान्को अतिशय प्यारी है।

मेरा हनुमान जाग रहा है। मैं अकेला कैसे सो सकता हूं ? मेरे हनुमानको मेरी पत्नीने निकाल बाहर किया है। रघुनाथजीने भी युक्ति सोची। वे बार बार जंभाई लेने लगे और हनुमानके साथ साथ जागते रहे।

सीताजी मन ही मन डर गई। पतिदेव कुछ बोलते नहीं है। वह भागी हुई कौशल्या-के पास गई और कहा, माताजी, उनको शायद् किसी राक्षसकी नजर लग गई है। वसिष्ठजीको बुलाए गए। वे समझ गए कि भगवान्के किसी लाडले भक्तका आज अपमान हुआ है। भक्तके दुःखसे भगवान् दुःखी हो रहे हैं।

वसिष्ठजीने सीताजीसे पूछाः- आजका सारा दिन कैसे बीता था ? कुछ गडबड तो नहीं हुई थी ?

सीताजीः- हनुमानजीसे सेवाभार छीन लिए जानेके कारण यह सब हुआ और ठीक-से भोजन तक नहीं किया।

हनुमानजीकी चुटकी बजानेकी सेवाकी बात बताई।

सभी रामके आवासमें आए। वहां हनुमानजी नाचते हुए रामनामका जप कर रहे थे।

वसिष्ठजीः- महाराज, कीर्तन करो किंतु चुटकी मत बजाओ। वैसा करनेसे रामजीको जमुहाई आएगी।

जगत् रामके आधीन है और राम आपके आधीन।

तो वैसे आप कौन हैं ? हनुमानजी कहते हैः- देहबुद्धिसे मैं रामका दास हूं। जीव-बुद्धिसे रामका अंश हूं। आत्मदृष्टिसे सोचो कि हम एक हैं। मुझमें और राममें कोई भेद नहीं है। भक्त और भगवान् एक हैं।

ब्रह्मका ज्ञाता ब्रह्मसे अलग रह नहीं सकता।

ब्रह्मः विद् ब्रह्मैव भवति।

रामायणकी कथा करुणरस प्रधान है। बालकांडके सिवाय अन्य सभी कांड आंसूओंसे भरे हुए हैं। रामायण समाप्त होने पर वाल्मिकी सोचने लगे कि इसमें तो बस करुणरस ही है। अतः उन्होंने बादमें आनंद रामायणकी रचना की। उसमें शोकपूर्ण प्रसंग नहीं हैं।

महापुरुषोंने तो यहां तक कहा है, हे सीते ! हे देवी, इस जगत्में आप क्यो आई ? यह जगत् आपके लिए अपात्र था।

रामचंद्रजीका चरित्र दिव्य है। रामचंद्रजीकी भांति मर्यादा पालन, माता-पिता सेवा, एक पत्नीव्रत, भ्रातृप्रेम आदि होने पर ही राम मिल पाते हैं। राम मिले तो आराम मिले। रामके विना आराम शक्य नहीं है।

रामायणका एक एक पात्र आदर्श हैः—

श्री राम जैसा कोई पुत्र नहीं हुआ।
वसिष्ठ जैसा कोई गुरु नहीं हुआ।

दशरथ जैसा कोई पिता नहीं हुआ।
कौशल्या जैसी कोई माता नहीं हुई।
श्री राम जैसा कोई पति नहीं हुआ।
सीता जैसी कोई पत्नी नहीं हुई।
भरत जैसा कोई भाई नहीं हुआ।
रावण जैसा कोई शत्रु नहीं हुआ।

रामायणमें बताया गया है कि मातृप्रेम, पितृप्रेम, पुत्रप्रेम, भ्रातृप्रेम, पतिप्रेम, पत्नी-प्रेमका सर्वोच्च आदर्श रूप।

एकनाथजीने भावार्थ रामायणमें लिखा है कि रावणकी भक्ति शत्रुभक्ति, विरोधभक्ति थी। रावणने सोचा कि यदि मैं अकेला ही रामकी भक्ति करता रहूं तो मात्र मेरा ही उद्धार होगा। मेरे ये राक्षस तो कभी प्रभुका नाम लेंगे ही नहीं। सो यदि मै रामसे शत्रुता करुं, तो रामके साथ युद्ध होगा और युद्धभूमिमें सभी राक्षस मरते समय भगवान्‌के दर्शन पा सकेंगे और उनका उद्धार होगा। इस प्रकार सारे राक्षससमुदायके उद्धारके हेतु ही रावणने श्री राम-से शत्रुता मोल ली। रावणने कुंभकर्णसे यही कारण बताया था अपनी राम शत्रुताका।

रामायण श्री रामका नामस्वरूप है। रामायणका एक एक कांड रामजीके अंग हैं।

बालकांड श्री रामका चरण है।
अयोध्याकांड श्री रामकी जंघा हैं।
अरण्यकांड श्री रामका उदर है।
किष्किंधाकांड श्री रामका हृदय है।
सुंदरकांड श्री रामका कंठ है।
लंकाकांड श्री रामका मुख है।
उत्तरकांड श्री रामका मस्तक है।

श्री रामका नाम स्वरूप रामायणग्रंथ जीवमात्रका उद्धारक है। रामचंद्रजी जब भी इस पृथ्वी पर साक्षात् अवतरित होते हैं तभी अनेक जीवोंका उद्धार होता है। इतना ही जब वे प्रत्यक्ष विद्यमान नहीं होते है तब रामायण अनेक जीवोंका उद्धार करती है। श्री रामने तो कुछ ही जीवोंका उद्धार किया था, जब कि रामायण तो अब भी कई जीवोंको प्रभुके मार्गकी ओर ले जा रही है। अनेकोंका कल्याण किया है, कर रही है और करती रहेगी। सो एक दृष्टिसे हम रामायणको रामसे श्रेष्ठ कहें तो कोई आपत्ति नहीं है।

रामचरित्र मार्गदर्शक है। रामायणसे सभीको सीख मिलती है। अपना मन कैसा है यह जानना है तो रामायण पढो। रामायणका मनन करनेसे उसमें अपना मन दीखाई देगा।

रामायण मनोमालिन्यका दर्पण है। जिसका अधिकतर समय निद्रा और आलसमें बीत जाता है वह कुंभकर्ण है। परस्त्रीका कामभावसे चिंतन करनेवाला व्यक्ति रावण है। रावण अर्थात् काम। काम रुलाता है। काम ही दुःखदाता है। जो रुलाता है वह रावण है। परमानंदमें झूलानेवाला राम है।

रामायणके सात कांड हैं। उन सभीकी कथा उपर संक्षिप्तमें कह दी गई है। अब उसका आध्यात्मिक रहस्य देखना है। इसके सात कांड मनुष्यकी उन्नतिके सात सोपान हैं।

एकनाथ महाराजने कहा है कि कांड विशेषके नामोंका भी रहस्य है।

प्रथम कांड बाल कांड है। बालक-से निर्दोष बनोगे तो रामको प्रिय लगोगे। बालक प्रभुको प्रिय है कारण बालक निरभिमानी होते हैं। उनमें छलकपट नहीं होता। विद्या, धन और प्रतिष्ठा बढने पर भी अपना हृदय बालक-सा निर्दोष और भोला भाला ही बनाए रखना। बाल-कांड निर्दोष कांड है। राम किसे मिलते हैं? जो बालक जैसा निर्दोष बन पाता है उसे ही। बालक-से निर्दोष और निर्विकारी बननेका प्रयत्न करो।

आंखोंके द्वारा दोष मनमें प्रविष्ट होता है। सो दृष्टि पर अंकुश रखोगे तो जीवन निर्दोष बनेगा। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। सृष्टि किसीको सुखरूप लगती है तो किसीको दुःखरूप। सृष्टिमें वैसे तो कोई सुख भी नहीं है और दुःख भी नहीं है। सुख और दुःख तो अपनी दृष्टिमें ही होता है। इसी कारणसे तो भगवान् शंकराचार्य संसारको अनिर्वचनीय मानते है। वह वर्णनसे परे है।

बालक जैसी निर्दोष, निर्विकारी दृष्टि रखोगे तो रामके स्वरूपको पहचान सकोगे। जीवनमें सरलता आती है संयमसे, ब्रह्मचर्यसे। जीव मानापमानको भूल जाए तो जीवनमें सरलता आ जाए। बालकके समान निर्मोही और निर्विकारी बननेसे तुम्हारा शरीर अयोध्या बनेगा। जहां युद्ध, वेर, ईर्ष्या नहीं है वही अयोध्या है।

बालकांडके बाद अयोध्याकांड है। अयोध्याकांड मनुष्यको निर्विकार बनाता है। जब जीव भक्तिरूपी सरयू नदीके किनारे हमेशा निवास करता है तभी मनुष्य निर्विकार बनता है।

भक्ति अर्थात् प्रेम। अयोध्याकांड प्रेमका प्रदान करता है। रामका भरतप्रेम, रामका सौतेली मातासे प्रेम आदि सब इसी कांडमें है। रामकी निर्विकारता यहीं दीखाई देती है।

आनंद-रामायणमें प्रत्येक कांडकी भिन्न भिन्न फलश्रुति बतायी गई है। जो अयोध्या-कांडका पाठ करता है उसका घर अयोध्या बनता है। उसके घरमें लडाई झघडे नहीं होते। गृहस्थाश्रमीके लिए यह कांड आवश्यक है। कलहका मूल है धन और प्रतिष्ठा। अयोध्याकांडका फल है निर्वैरता।

शास्त्र कहता है कि सबसे पहले तो अपने घरके ही सभी व्यक्तियोंसे भगवत भाव रखना चाहिए। जो अपने बंधु आदिमें प्रभुको देख नहीं पाता है उसे मंदिरमे भगवान् कैसे दीखेंगे?

जगत्का सर्जन करनेके बाद उसकी प्रत्येक वस्तुमें भगवान्ने वास किया है।

जब कैकेयीने कहा कि उसने भरतको राज्य दिया है तो रामने वन जाते हुए कहा था, माता यदि मेरा भाई इसीमें सुख पा सकता है तो मुझे वनवास स्वीकार्य है। मेरी तो यही भावना है कि मेरा भाई सुखी हो।

जो भाईमें भगवान्‌को देख नहीं पाता उसे मंदिरमें भी भगवान् दीखाई नहीं देते। मूर्तिवासी भगवान् हमारे लिए दौडते हुए नहीं आते फिर भी उसमें भगवतभाव स्थिर करना है। किंतु सजीव देव (कुटुंबीजन) से जो प्रभु–सा भाव जोड नहीं पाता है वह पत्थरकी मूर्तिसे देवत्वका भाव कैसे जोड पाएगा ?

सृष्टि सर्जनके बाद सभी पदार्थोंमें भगवान्‌ने वास किया है। जब तक वे प्रवेश नहीं करते हैं तब तक सृष्टि निरर्थक है।

सभीमें ईश्वर है। मेरे भाई–बहन–माता–पिता आदि सभीमें वही ईश्वर है। रामने अलौकिक आदर्श स्थापित किया कि अपने भाईके सुखके हेतु हंसते हुए वनगमन किया। भरतका भ्रातृप्रेम भी वैसा ही दिव्य था। उन्होंने राज्यका स्वीकार नहीं किया। मेरे बडे भाई वनकी धूल छानते हैं, कंदमूल खाते हैं, दुःखी हो रहे हैं सो मुझे यह राज्य स्वीकार्य नहीं है। मेरे ही कारण वे दुःखी हो रहे हैं।

अयोध्याकांडके पठनसे लडाई–झगडे मीट जाते हैं।

जीवनको विशुद्ध प्रेममय बनाओ।

अयोध्याकांडके बाद आता है अरण्यकांड। वह निर्वासन बनाता है। निर्वैर होनेके बाद भी वासना सताती है। इस अरण्यकांडके मननसे वासना निर्मूल होगी। अरण्यवास करके तप किए बिना जीवनमें दिव्यता नहीं आ पाती। रामचंद्रजीने राजा होते हुए भी सीताजीके साथ वनवास किया और तपश्चर्या भी की। तप करनेके बाद राम राजा बने।

जिसने पहले तपश्चर्या की होगी वह भोगोपभोगके प्रसंगोंमें संयम और सावधानीसे काम लेगा।

सभी महान् व्यक्तियोंने अरण्यवास किया था। महाप्रभुजीने खुले पांव ही भारतकी यात्रा की थी। वे दोसे अधिक वस्त्र तक नहीं रखते थे। जीवनमें तपश्चर्या जरुरी है।

वनवासके बिना जीवनमें सुवास आ नहीं पाती। वनवासके बिना जीवन सत्त्वहीन रह जाता है। अधिक नहीं तो कमसे कम एक मास तो किसी वनमें पवित्र नदीके किनारे वास करना ही चाहिए। जहा भगवान् और तुम्हारे सिवाय अन्य कोई न हो। तीसरा आया नहीं कि गडबड शुरु हो जाती है। वनवास मनुष्यके हृदयको कोमल बनाता है। वनवाससे विश्वास हो पाता है कि भगवान्‌के सिवाय अपना और कोई भी नहीं है।

अरण्यकांड हमें वासनासे रहित बनाता है।

रामचंद्रजीने भगवान् होते हुए भी यह दीखाया कि तपके बिना वासना नष्ट नहीं हो सकती। उत्तम संयम तप ही है। पहले तो जीभ पर संयम रखना है। वनवासके समय रामने अन्नाहार नहीं, फलाहार ही किया था। अन्नमें निहित रजोगुण कामको उत्पन्न करता है। सात्त्विक आहारके बिना कामका नाश अशक्य है। रामने वनमें कंदमूलका सेवन करके तप किया था। वनमें उन्होंने किसी धातुका भी स्पर्श नहीं किया था। श्री फलसे बने पात्रसे ही जलपान किया था। सीताजी संगमें थीं फिर भी राम निर्विकारी ही रहे। वासनाका धीरे धीरे नाश किस प्रकार किया जा सकता है वह अरण्यकांड दिखलाता है।

यदि वासना पर विजय पानी है तो जीवनको सात्त्विक बनाना होगा। तपश्चर्या करोगे तभी रावण मरेगा। काम–रावणको मारनेके लिए अरण्यवास–तपश्चर्या आवश्यक है। इस अरण्यकांडमें सूर्पणखा (मोह) शबरी (भक्ति) भी है। सूर्पणखा अर्थात् वासना, मोहकी ओर भगवान् कभी नहीं देखते हैं। वे तो शबरी अर्थात् शुद्ध भक्तिकी ओर ही देखते हैं। मोहका नाश करो और शुद्ध भक्तिको अपनाओ।

मनुष्य निर्वैर और निर्विकार वासनारहित होता है तभी निष्किंधाकांडमें जीवकी ईश्वरसे मैत्री हो पाती है।

अरण्यकांडमें वासनाके विनाशके बाद किष्किंधाकांडमें सुग्रीवकी रामसे मैत्री हुई। जीव जब तक कामकी मैत्रीका त्याग नहीं करता है तब तक ईश्वरसे मैत्री नहीं हो पाती।

इस किष्किंधाकांडमें सुग्रीव और राम अर्थात् जीव और भगवान्की मैत्रीका वर्णन है। सुग्रीवने कामका त्याग किया सो ईश्वरसे मिलन हो पाया। ईश्वरसे जीवका मिलन तभी शक्य है जब कि हनुमानजी (ब्रह्मचर्य और संयम) मध्यस्थी करते हैं। जिसका कंठ सुंदर है वही सुग्रीव है। कंठकी शोभा आभुषण नहीं, ब्रह्मचर्य और रामजपन है। ईश्वर और जीवकी मैत्री हनुमानजी–ब्रह्मचर्य पर ही आधारित है। हनुमानजी ब्रह्मचर्य और संयमका प्रतीक है।

जिसका कंठ सुंदर है उसीकी रामसे मैत्री होती है। किंतु सुग्रीव अकेला कुछ नहीं कर पाता। उसे हनुमानजी–ब्रह्मचर्यका सहयोग भी आवश्यक है। ब्रह्मचर्यकी शक्तिके बिना भजनमेंसे आनंद नहीं मिल सकता क्यों कि एकाग्रता नहीं हो पाती। हनुमान–ब्रह्मचर्यकी सहायके बिना रामजीसे मैत्री नहीं हो पाती। सुग्रीवको हनुमानके कारण ही रामजी अपनाते हैं।

सुंदरकांडः– ईश्वरसे मैत्री हुई सो जीवका जीवन सुंदर हो गया। सो किष्किंधाकांडके बाद आया है सुंदरकांड। जब तक जीव प्रभुसे मैत्री करता नहीं है तब तक उसका जीवन सुधर नहीं पाता।

किष्किंधाकांडके बाद आया हुआ सुंदरकांड सचमुच ही सुदर है। इसमें राम भक्त हनुमानजीकी कथा वर्णित है। भागवतके दशम स्कंधकी भांति यह सुंदरकांड भी बडा रोचक है। भागवतमें जो स्थान दशम स्कंधका है वही स्थान रामायणमें सुंदरकांडका हैं। सुंदरकांडमें हनुमानजीको सीताजीके दर्शन हुए। सीताजी पराभक्ति है। किंतु उनका दर्शन कब हो सकता है ? जिसका जीवन सुदर बन पाता है उसीको सीताजी–पराभक्तिका दर्शन हो सकता है। संसार समुद्रको पार करनेवालेको ही सीताजी–पराभक्तिके दर्शन हो पाते हैं। अकेले हनुमानजी ही संसार समुद्रको पार करते हैं। ब्रह्मचर्य और रामनामके प्रतापसे उनमें दिव्य शक्तिका संचार हुआ। उनके सिवाय और कोई भी इस समुद्रको पार नहीं कर सका। ब्रह्मचर्य और रामनामने ही उन्हें वह अपार शक्ति दी। समुद्र पार करते समय मार्गमें सुरसा बाधा डालने आ धमकती है। सुरसा सताती है। अच्छे रस ही सुरसा है। सुरसा नई थी। नए नए रसकी वासना करनेवाली जीभ ही सुरसा है। सुरसाको हनुमानजी (संयम) नष्ट करते हैं। जो संसार सागरको पार करनेकी इच्छुक है उसे जीभको वशमें करनी पडेगी, स्वादवासनाको मारनी पडेगी।

जीवनको यदि सुंदर बनाना है तो उसे भक्तिमय बनाओ। सीताजी पराभक्ति है। जहां पराभक्ति हो वहां शोक नहीं रह पाता। सो सीताका जहां वास है वहीं अशोकवन है। ब्रह्म-दृष्टिकी सिद्धि होने पर शोक नहीं रह पाता। वही अशोकवन है।

लंकाकांडः– जीवन भक्तिपूर्ण और सुंदर हो जाने पर लंकाकांडमें राक्षसोंका नाश हुआ। राक्षस मरते हैं तो काम भी मरता है। क्रोध भी नष्ट होता है। भक्तिदेवीके दर्शनसे जीवन सुंदर हो गया। लंकाकांडका रावण ही काम है जो नष्ट हो गया।

भक्तिसे परिपूर्ण होने पर ही जीवन सुदर बनता है। जो कामको मार सकता है वह कालको भी मार सकता है। जिसे काम मारता है उसे काल भी मारता है। लंका शब्दके अक्षरोंको आगे–पीछे पीछे करनेसे होगा कालं। काल सभीको मारता है किंतु हनुमानजी उसे भी मारते हैं। वे लंकाको अर्थात् कालको जलाते हैं। हनुमानजीको काल मार नहीं सकता है क्यों कि वे ब्रह्मचर्यका पालन करते है और पराभक्तिका दर्शन करते हैं।

उत्तरकांडः– तुलसीदासजीने इस कांडमें सब कुछ भर दिया है। इस कांडमें मुक्ति मिलेगी। गरुडजी और काकभुशंडीके संवादको बार बार पढो। जब तक राक्षस, कामका विनाश नहीं पाता तब तक उत्तरकांडमें प्रवेश नहीं मिल पाता। उत्तरकांडमें भक्तिकी कथा है। भक्त कौन है ? भगवान्से जो एक भी क्षण विभक्त नहीं रह पाता वही भक्त है।

पूर्वार्धमें जो रावणको मारता है उसीका उत्तरकांड सुंदर बनता है। वही वृद्धावस्थामें राज करता है। जीवनके पूर्वकांड–यौवनावस्थामें कामको मारनेका प्रयत्न करोगे तभी तुम्हारा उत्तरार्ध–उत्तरकांड सुधर पाएगा। सो जीवनको सुधारनेका प्रयत्न युवावस्थासे ही करना चाहिए।

इस प्रकार ये सात कांड मानवजीवनकी उन्नतिके सात सोपान हैं।

रामकथा सागर जैसी है। रामकथा अमृतकथा है। किंतु इसमें ही उलझे रहेंगे तो कनैया कब आ पाएगा ?

शिवजीकी भांति हृदयमे रामका नाम रखोगे तो भी अच्छा ही रहेगा। सो हमेशा रामका नाम रटते रहो। हनुमानजी कहते हैं कि सबसे बडी विपत्ति वही है कि जब रामका स्मरण न किया जाता हो।

कह हनुमंत बिपत्ति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

रावण आदि राक्षसोंका संहार करके राम अयोध्या वापस लौटे। उनका राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेकके बाद रामजीने अयोध्यावासियोंको–मानवसमाजको उपदेश दिया।

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गहु स्वल्प अंत दुःख दाई ॥
नरतनु पाइ विषय मनदेहीं।
पलटि सुधा ते शठ लेहीं ॥

यह मानव शरीर जो मिला है वह विषय भोगके लिए नहीं। विषय सुख एकाध घडीके लिए स्वर्ग-सा सुखद लगता है किंतु अंतमें तो दुःख, दुःख और दुःख ही हाथ लगता है। मानवशरीर पा कर जो मनुष्य मात्र विषयोंके पीछे ही लगा रहता है वह अमृतके बदलेमें विष ही ग्रहण कर रहा है। सो ऐसा कभी न करें।

'तमे भावे भजी लो भगवान्, जीवन थोडुं रह्युं।' अर्थात् भगवान्को भावसे भजो क्यो कि जीवन अब बहुत कम ही बाकी रह गया है।

भोगोपभोगसे कभी शांति नहीं मिलेगी।

राजा ययातिको ही देखिए। उनका विवाह शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीके साथ हुआ था।

एक बार देवयानीके साथ राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा तथा अन्य कई सखियां स्नानार्थ गई हुई थीं। स्नानादिसे निवृत्त होने पर जब वे सब वस्त्र पहनने लगीं तब शर्मिष्ठाने भूलसे देवयानीके पहन लिए। देवयानीने क्रोधवश शर्मिष्ठाको बहुत-सी जली-कटी सुनाई। तो शर्मिष्ठा भी क्रोधित हो गई और उसने देवयानीके वस्त्र छीन कर उसे कुंएमें फेंक दिया और सब चल दिए।

मृगयाके लिए निकला हुआ राजा ययाति वहां आया। उसने कूएसे चीख-पुकार सुनी तो देवयानीको बाहर निकाला। देवयानीने राजासे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की।

इधर शुक्राचार्यने अपनी पुत्री विषयक समाचार सुने तो वे वृषपर्वाके नगरकी ओर चल दिया। उधरसे वृषपर्वा भी गुरुजीसे क्षमा मांगनेके लिए आ गया। तो गुरुजीने अपनी पुत्रीको प्रसन्न करनेका प्रस्ताव रखा। देवयानीने कहा राजन्, मैं विवाहके बाद जहां भी जाऊं आपकी पुत्री शर्मिष्ठाको मेरी दासीके रूपमें आना होगा। शर्मिष्ठा दासी बन कर राजा ययातिके आवास पर आई।

शुक्राचार्यने राजा ययातिसे शर्मिष्ठाके साथ विषयसुख भोगनेकी मनाही की थी। राजाने शुक्राचार्यकी आज्ञाका उल्लंघन किया तो गुरुजीने उसे वृद्धत्व दे दिया। ययातिने प्रार्थना करते हुए गुरुजीसे पूछा कि उसकी वृद्धावस्था कैसे दूर होगी। शुक्राचार्यने कहा, यदि तेरी वृद्धावस्थाको कोई अपना ले और तुझे अपनी युवावस्था दे तभी बात कुछ बन पाएगी।

राजा ययातिने अपने ही पुत्र पुरुकी युवास्था ले ली और हजारों वर्ष विषय सुखका उपभोग किया। फिर भी उसे तृप्ति न हुई तो उसके मनमें वैराग्य जागा। उसने जगत्को उपदेश दिया।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

भा. ९-१९-१४

विषयोंका उपभोग करते रहेनेसे कामवासना कभी तृप्त या शांत नहीं होती। किंतु जैसे अग्निको घीकी आहुति और भडकाती है वैसे ही वासना उग्र होती जाती है। भोगोपभोगसे वासना अधिकाधिक बढती जाती है।

मनुष्यका शरीर तो वृद्ध होता है किंतु वासना, तृष्णा कभी वृद्ध नहीं होती।

जीर्यतो या न जीर्यते।

भर्तृहरिने भी कहा हैः– भोगोंका नहीं, हमारा ही उपभोग हो जाता है। तृष्णा नहीं, हमही जीर्ण होते जाते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भागवत तो गीताका भाष्य है। गीताजीके सिद्धांतोंके दृष्टांत हमें भागवत देता है।

'काम महाशनो महापाप्मा।' अग्निकी भांति भोगोंसे कभी तृप्त न होनेवाला महापापी और वैरी है।

काम शत्रु है फिर भी राजा ययातिकी भांति कई लोग उसे मित्र बनानेका प्रयत्न करते हैं और अंतमें दुःखी ही होते हैं।

काम और क्रोधको कभी मित्र न बनाना। वे वैरी हैं। उनके साथ वैरी-सा ही व्यवहार किया जाय।

गीतामें कहा गया हैः—

न मे भक्तः प्रणश्यति।

भागवतमें प्रह्लाद्, अंबरीष आदि कई उदाहरण दिए गए हैं।

राजन्, रंतिदेवका चरित्र भी अद्भुत है। उसे जो कुछ मिलता था वह दूसरोंको देता था। उसका जीवन ध्येय था कि चाहे उसे स्वयं कितना भी दुःखी क्यों होना न पडे, दूसरोंको सुखी करता रहेगा।

रंतिदेवने एक वार तो अपने प्राणको भी संकटमें डाल कर अपना भोजन, पानी आदि सब कुछ औरोंको दे दिया था। उसने कहा थाः—

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

भा. ९-२१-१२

मैं ईश्वरसे आठों सिद्धियों-युक्त उत्तम गतिकी इच्छा नहीं करता। मुझे मोक्षकी इच्छा भी नहीं है। मेरी तो मात्र इतनी ही इच्छा है कि मैं सभी प्राणियोंके हृदयमें बस जाऊं, उन सभीके दुःख मैं ही झेलूं कि जिससे उनको दुःख न भुगतने पडे।

मेरी तो बस यही इच्छा है कि सभी प्राणी दुःखमुक्त हो जायं और उनका दुःख मैं झेलूं।

अंतमें यदुराजके वंशका वर्णन है। यदुराजाका वंश दिव्य है। इसी वंशमें श्री कृष्णने जन्म लिया था।

राजन्, सावधान हो जाओ। इस वंशकी कथाका जो भी श्रवण करेगा उसके वंशकी वृद्धि होगी। यह हरिवंशकी कथा है।

आहुकके यहां दो पुत्र हुए– देवक और उग्रसेन। देवकने सात कन्याओंका विवाह वसुदेवके साथ किया। वसुदेव–देवकीके यहां छः बालक हुए। रोहिणीसे सातवीं संतान हुई– बलराम। और आठवीं संतानके रूपमें जन्म लिया भगवान् श्री कृष्णने।

परमात्मा जब पृथ्वी पर आते हैं तब तो बहुत उठाना पडता है किंतु वे धर्मकी संस्थापना और अधर्मके नाशके हेतु अवतार लेते हैं।

भगवान् श्री कृष्ण चौदह वर्ष मथुरामें रहे और द्वारिकामे वास किया, वे द्वारिकानाथ बने। पृथ्वी परसे अधर्मका भार दूर करनेके लिए उन्होंने पांडव–कौरवोंके युद्धका आयोजन किया।

इस प्रकार नवम स्कंधकी समाप्तिमें संक्षिप्त कृष्ण कथा कही गई है।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

दसवां स्कंध (पूर्वार्ध)

मैंने मेंहदी रचाई रे, कृष्णनामकी।
मैंने बींदिया सजाई रे, कृष्णनामकी।
मेरी चुडियों पे कृष्ण, मेरी चुंदडी पे कृष्ण;
मैंने नथनी घडाई रे, कृष्णनामकी.—मैंने

मेरे नयनोंमें गोकुल वृंदावन,
मेरे प्राणोंमें मोहन मनभावन,
मेरे होठों पे कृष्ण, मेरे हृदयमें कृष्ण,
मैंने ज्योति जगाई रे, कृष्णनामकी—मैंने

अब छाया है कृष्ण अंग–अंगमें,
मेरा तन–मन रंगा है कृष्णरंगमें,
मेरा प्रीतम है कृष्ण, मेरा जीवन है कृष्ण,
मैंने माला बनाई रे कृष्णनामकी— मैंने

'द्वारिकाधीश' मेंसे

अब दशम स्कंधका आरंभ हो रहा है। भागवतका फल दशम स्कंध है। दशम स्कंधमें शुकदेवजी मानों, पुरवहारमें खिल गए हैं। यह शुकदेवजीके इष्टदेवकी कथा है।

श्रीमद् भागवत सात दिनोंमे मुक्ति दिलानेवाला ग्रंथ है। अनेक जन्मों तक साधन-साधना करने पर भी नहीं मिलनेवाली मुक्ति, अति दुर्लभ मुक्ति राजा परीक्षितको सात दिनोंमें मिल गई थी।

परीक्षितका प्रश्न था :– आसन्नमृत्यु व्यक्तिका क्या कर्तव्य है? शुकदेवजी यदि यज्ञ करनेकी आज्ञा दें तो सात दिनोंमें मुक्ति पाना संभव नहीं था। जीवनके अंतिम श्वासमें भी विकारका विचार न आए वैसा उपाय करना था। शुकदेवजीने सोचा कि यदि राजा कृष्णकथामें तन्मय हो सके तो उसे मुक्ति मिल सकती है।

मुक्ति मनको मिलती है, आत्माको नहीं। कुछ आचार्य मानते है कि आत्मा और परमात्मा एक हैं। तो कुछ आचार्य आत्मा और परमात्माको भिन्न मानते है। वे मानते हैं कि आत्मा अंश है और परमात्मा अंशी।

शंकर स्वामीका सिद्धांत इस प्रकार है:– जीव और ईश्वर एक हैं। यह जो भेद दीखाई देता है वह अज्ञानके कारण दीखता है। भेद औपाधिक भेद है। उपाधिके कारण भेदका भास होता है किंतु तत्त्वतः भेद नहीं है।

भेदके दो प्रकार हैं :– स्वतः सिद्ध भेद और औपाधिक भेद।

घोडा और गायका भेद स्वतः सिद्ध है। न तो घोडा गाय बन सकता है और न तो गाय घोडा।

औपाधिक भेदः जलका वास्तविक स्वरूप शीतलता है। उष्ण जलकी उष्णताका कारण उपाधि है।

वास्तविकतया, तत्त्वतः आत्मा और परमात्मा, जीव और ईश्वर एक ही है। जो भेद दीखता है वह औपाधिक है। घटकाश और व्यापक आकाश एक ही है किंतु घटकी उपाधिके कारण भेदका आभास होता है। घटके फूट जाने पर घटाकाश और महाकाश एक हो जाते हैं। किंतु मिलता क्या है? वे तो एक ही हैं। वास्तविकदृष्टिसे वे तो मिले हुए ही है।

व्यापक चैतन्य ही ईश्वर है। व्यापकाधिष्ठ चैतन्य ही परमात्मा है। शरीराधिष्ठ चैतन्य ही जीव है। अविद्याके आवरणसे युक्त चैतन्य ही जीव है। अविद्यारूपी आवरणके दूर होने पर जीव और शिव एक बनते हैं। उपाधिके कारण ही शिव और जीवकी भिन्नता भासमान होती है। यह वेदांतका सिद्धांत है।

यह जीव अंश नहीं बन सकता। यदि अंशीमेसे अंश विभक्त हो जाय तो अंशीका स्वरूप खंडित होगा। पुष्पकी एक पंखुरी अलग होने पर पुष्पका स्वरूप खंडित होता है। अंशीमेंसे अंश अलग होने पर अंशीका अखंडित स्वरूप टूट जाएगा। अतः शंकराचार्य कहते हैं, जीव अंश जैसा है, पूर्णांश नहीं है। ईश्वर ऐसे नहीं हैं कि जिसका विभाजन किया जा सके। वे व्यापक चैतन्य हैं, सर्वव्यापी है। आकाशकी भांति वे सर्वत्र हैं।

वैष्णव आचार्य मानते हैं कि जीव और ईश्वर एक नहीं हैं। जीव ईश्वरका अंश है। अंशीसे अंशके विभक्त होने पर भी अंशीका नाश नहीं हो पाता। समुद्रमेंसे एकाध बुंद पानी लेने पर समुद्रका नाश नहीं होता है। इसी प्रकार अशके विभक्त होने पर अंशका नाश नहीं हो पाता, उसके स्वरूपमें भी परिवर्तन नहीं होता।

हम सब मानो एक राजाकी संतान हैं। माया एक दासी है जो हमारा लालन–पालनके लिए ही है, हमें सतानेके लिए नहीं। यदि वह हमें सताएगी तो राजा (प्रभु) उसे छुट्टी दे देंगे। परमात्माके साथ घनिष्टतासे प्रेम करेंगे तो मायाका बंधन छूट जाएगा। गोकुललीलाका यही तो रहस्य है।

अति सूक्ष्म बुद्धिवाला व्यक्ति वेदांतके विवर्तवादको समझ सकता है। ऊर्मिप्रधान व्यक्तिको वैष्णवाचार्योंका सिद्धांत पसद आएगा। ये दोनों सिद्धात दिव्य हैं।

शुकदेवजी सावधान करते हैं।

चाहे जो भी समझा या माना जाय किंतु मुक्ति मनको मिलती है, आत्माको नहीं। आत्मा तो नित्य मुक्त है। जीवको ईश्वररूप मानो या अंश किंतु वह आत्मासे भिन्न है।

सुख और दुःखका अनुभव मनको होता है, आत्माको नहीं। फिर भी आत्मा पर उसका आरोप किया जाता है।

परीक्षितको मात्र सात ही दिनोंमें मुक्ति प्राप्त करानी है। यदि उसका मन श्रीकृष्णके सिवाय अन्य किसी भी वस्तुसे न लगे तो उसे मुक्ति मिलनेकी संभावना है।

मुक्ति उसे मिलती है जिसका मन मरता है। पूर्वजन्मका शरीर चाहे मर गया तो किंतु पूर्वजन्मका मन लेकर जीवात्मा इस जन्ममें आई है। मनःषष्ठानींद्रियाणि प्रकृति स्थानि कर्षति। मनको किसी भी प्रकार मारना ही है। थोडेसे पानीमें मछली न तो बराबर जी सकती है और न मर सकती है।

मन यदि सांसारिक विषयोंका चिंतन छोड दे तो वह ईश्वरमें लीन हो सकता है। कृष्णकथाका आकर्षण मनको ईश्वरमें लीन कर सकता है। मनको संसारके विषयोंकी ओरसे हटा कर कृष्णलीलामें लगा दो। कृष्णकी बाललीला, गोपालनलीला आदिको याद करो।

मानको प्रतिकूल बातोंमेंसे हटाकर अनुकूल विषयोंसे जोड दो। इस कथाका हेतु भी तो यही है। इस कथासे ज्ञान और वैराग्य बढते हैं। इस कथाके श्रवणसे मनुष्यको प्रवृत्तिसे छूटकारा पानेका मन हो जाता है। भागवतकी कथा ज्ञान, वैराग्य और कृष्णप्रेम बढानेवाली है। भागवतकी कथा श्रोताको कृष्णप्रेममें पागल बना देती है।

परीक्षित राजाका संसारमोह नष्ट हो सके और मन कृष्णलीलामें तन्मय हो जाय तभी उसके मनका निरोध हो सकता है।

श्रीकृष्णलीला निरोधलीला है। मनका निरोध करना है। जगत्का विस्मरण और भगवद् आसक्ति ही निरोध है। सांसारीक विषयोंका विस्मरण होने पर ही सच्चा आनंद प्रगट होता है। सांसारिक संबंध छूटने पर ही ब्रह्मसंबंध जुडता है। यदि सांसारिक विषयोंमें सच्चा आनंद होता तो यह सब कुछ छोड कर निद्राकी इच्छा ही नहीं होती।

कृष्णकथा ऐसी है कि जगत्को भी भूला देती है। जगत्में रहना भी है और उसे भूलाना भी है। संसारको छोड कर कहां जाओगे? जहां भी जाओगे, ससार साथ साथ आएगा। संसारको छोडना तो नहीं है किंतु उसे मनसे निकाल बाहर करना है। संसारमें रहते हुई ही उससे अलग भी रहना है। भागवती कथा भूख-प्यास और सांसारिक झंझटोंको भूला देती है।

दशम स्कंधके आरंभमें शुकदेवजीने राजाकी कसौटी की। पांच दिनोंसे एक आसन बैठे हो। यदि कुछ जलपान करना हो, खाना-पीना हो तो कर सकते हो।

परीक्षितने कहा, भगवान् अन्न तो क्या मैंने तो जलका भी त्याग किया है। जिस भूख और प्यासके कारण कभी मैंने मुनिको मृत सर्पका हार पहनाया था वही भूख-प्यास मुझे अब बिलकुल सता नहीं पाते। इसका कारण यही है कि मैं आपके मुखकमलसे बह रहे श्रीहरिकथामृतका पान कर रहा हूं।

कथाके रसपानके कारण मुझे भूख और प्यास सता नहीं सकते।

राजाके वचन सुन कर शुकदेवजीको बडी प्रसन्नता हुई। राजा सुपात्र है और जिज्ञासु भी है।

कथामें ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए। कृष्णकथा अनायास ही संसार भूला देती है। इससे जगत् भूल जाता है। कृष्णकी कथा जगत्का विस्मरण कराती है।

कृष्णकथाकी यही महिमा है कि वह देहभान भूला देती है। कृष्णकथा महिमावंती है। इस कथामें लीन मन जगत्को भूल जाता है।

संसारका संपूर्ण विस्मरण और परमात्माका सतत स्मरण हो तो मुक्ति है।

कथा तुम्हें अपने दोषका मान कराती है। कथा सुनने पर रोना आये तभी मानो कि कथा सुनी गई है। अंबरीशकी भक्ति कैसी दिव्य थी और मेरा जीवन कैसा क्षुद्र है। हाय, मेरा जीवन कुत्तोंकी भांति व्यर्थ ही चला गया।

कृष्णकथा सभीको आनंद देती है क्यों कि इसमें सभी रसोंका समन्वय है। यह कथा बालकको भी आनंद देती है। और संन्यासीको भी। श्रीकृष्ण बालकके साथ बालक हैं। और युवानके साथ युवान। वे ज्ञानीके लिए ज्ञानी हैं और योगीके लिए योगी।

श्री कृष्ण भोगी तो हैं फिर भी रोगी नहीं, योगी ही हैं। सामान्यतः भोगी बन जाता है। किंतु एकादश स्कंधके वर्णनानुसार, श्री कृष्ण जब एक सौ पच्चीस वर्षकी आयु पूर्ण करके स्वर्गमें पधारे तब उनका एक भी शिरकेश श्वेत नहीं हुआ था।

मनुष्यका मन किसी न किसी रसमें फँसा हुआ होता है।

इस कथामें हास्य, शृंगार, करुण, भयानक आदि सभी रस भरे हुए हैं क्यों कि श्री कृष्ण स्वयं ही रसरूप हैं। रसो वै सः।

बाललीलामें हास्य रस है, रासलीलामें शृंगार रस है। चाणुर, मुष्टिक, कंस आदिकी हत्यामें वीर रस है। चाहे जिस रसमें रुचि हो, कृष्णकथा सभीको पसंद आती है। यही विशेषता है इस कथाकी।

कनैया सभीको दशवां रस देता है– प्रेमरस। इस कृष्णकथामें सर्वश्रेष्ठ रस–प्रेमरस छलाछल भरा हुआ है।

जिसने प्रेमरसका आस्वाद किया है उसके लिये अन्य सभी रस अ–रस ही हैं। मीरांबाईके शब्दोंमें कहे तो अन्य सभी रस कडुए हैं—

साकर शेरडीनो रस त्यजीने कडवो ते लीमडो घोळ मा,
राधाकृष्ण विना बीजुं बोल मा।

अर्थात् कृष्णप्रेम शक्कर और इखका मीठा रस है। उसे छोड कर कडुए नीमका (सांसारिक) रस क्यों पिया जाए ? राधाकृष्णके विना और क्या और क्यों बोला जाए ?

हां, इस कृष्णरसका आस्वाद कर पाना सरल नहीं है। नरसिंह मेहता कहते हैं—

ए रसनो स्वाद शंकर जाणे के जाणे शुक जोगी रे।
कंई एक जाणे व्रजनी रे गोपी, भणे नरसैंयो भोगी रे॥

अर्थात् इस रसका आस्वाद शंकर, शुकदेव, जोगी और व्रजकी गोपी जैसे ही कर पाते हैं।

जगत्के सभी रस कटुतासे भरे हुए हैं। शृंगाररस आरंभमें तो मीठा लगता है किंतु अंतमें तो कडुआ ही लगेगा। अन्य किसी भी रसमें मीठाश नहीं है। मात्र प्रेमरस ही मधुर है।

प्रेमके विना प्रभुका साक्षात्कार नहीं हो पाता। श्री कृष्ण प्रेमरूप हैं। वे अलौकिक प्रेमरसका दान करते है। प्रेमरसमे न तो वासना है, न तो विषमता है, न तो स्वार्थ है और न तो मैं और तू है।

गोपी कहती है—

लाली मेरे लालकी जित देखुं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

गोपी कृष्णको ढूंढने गई तो उसका अपनापा नहीं रहा, वह कृष्णसे एकरूप हो गई। श्री कृष्णके समक्ष मैं और मेरापन बाकी नहीं रह सकता।

मानव जीवनकी यही विशेषता और सार्थकता है कि वह कृष्णप्रेममे पागल हो जाए।

प्रतिदिन ठाकोरजीसे प्रार्थना करो, आप मेरे मनको अपनी ओर खींच लीजिए। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मैं आपको खींच सकूं। अतः आप ही मुझे खींच लीजिए।

कृष्ण प्रेममें हृदय लीन हो जाय, सराबोर हो जाय, आंखें प्रेमाश्रुसे भीग जाएं तभी ब्रह्मसंबंध होगा, तभी जीव ब्रह्मरूप होगा।

ब्रह्मसंबंध सतत बनाए रखो। सावध रहना कि कहीं फिरसे मायाके चक्करमें मन फंस न जाय। यदि परीक्षितकी भांति, मायाके साथ विच्छेद और ब्रह्मके साथ संबंध हो जाय तो सात ही दिनोंमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है। ब्रह्मचिंतन करते करते मर जानेसे मुक्ति मिल जाती है।

दशम स्कंध तो भगवान् श्री कृष्णका हृदय है। वे रसस्वरूप हैं अतः जीव भी रस-स्वरूप है। प्रत्येक जीवको किसी न किसी रसमें रुचि होती है। भिन्न रुचिवाले सभीको इस कृष्ण कथा आनंद देती है। श्री कृष्ण भी एक दिव्य रस ही हैं।

प्रेम और विरह दोनोंमें हृदय आर्द्र बनता है तब रसानुभूति होती है।

श्री कृष्ण कथा सभी प्रकारके जीवोंको आकर्षित करती है।

सामान्यतः जीवके चार भेद हैं:–(१) पामर (२) विषयी (३) मुमुक्षु (४) मुक्त।

अधर्मसे धनका अर्जन करे और अनीतिपूर्वक उपभोग करे वह पामर जीव है। धर्मका पालन करके कमाई करके इन्द्रीय सुखका उपभोग करे वह विषयी जीव है। सांसारिक बंधनोंसे मुक्ति पानेकी इच्छा और प्रयत्न करनेवाला जीव मुमुक्षु जीव है। कनक और कांतारूपी मायाके बंधनोंसे मुक्त होकर प्रभुमें तन्मय हुआ जीव मुक्त जीव है।

श्री महाप्रभुजी कहते हैं, रजस, तमस और सात्त्विक, किसी भी प्रकृतिका जीव कृष्ण-कथामेंसे आनंद पा सकता है। इसी कारणसे तो उन्होंने दशम स्कंधके तीन विभाग किये हैं—सात्त्विक प्रकरण, राजसिक प्रकरण और तामसिक प्रकरण।

श्री कृष्ण कथा सभीके लिए उपयोगी और सभीको आनंद देनेवाली है। इसका कारण यह है कि श्री कृष्ण भोगी भी हैं और महान् योगी भी। इसी लिए तो शुकदेवजी जैसे योगीको भी इस कथासे आनंद लाभ होता है।

भगवान् श्री कृष्णने गृहस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रम दोनोंका समन्वय जगत्के समक्ष रखा है। सोलह हजार रानियोंके स्वामी श्री कृष्ण संन्यासीयोंकी व्यासपूजामें अग्रस्थान पाते हैं।

श्री कृष्णकी दिव्यता तो देखो कि सोलह हजार रानियोंके बीच रह कर, उन सभीके साथ प्रेम करते हुए भी वे अनासक्त रहते हैं।

पति-पत्नीको चाहिए कि एक-दूसरेके साथ प्रेम करते हुए भी अनासक्त रहें। श्री कृष्ण सभी रानियोंके साथ प्रेम करते हुए भी किसी भी रानिमें आसक्त नहीं थे। आजकल लोगोंने प्रेम शब्दको भी कलंकित कर दिया है। जहां विकार और वासना है वहां प्रेम नहीं, मोह ही है।

श्री कृष्णके वैकुंठ गमनका शुकदेवजीने वर्णन किया है। उस समय युवानको लज्जित होना पडे वैसी दिव्य कांति भगवान्के मुख पर थी। एक सौ पच्चीस वर्षकी अवस्था होने पर भी उनका न तो एक भी केश श्वेत हुआ था और न तो एक भी दांत टूटा था। ऐसा था उनका दिव्य स्वरूप। इसी कारणसे तो वे योगियोंको भी प्रिय हैं।

सच्चे महायोगीका यही लक्षण है कि वह कभी बीमार नहीं होता। जिस योगीको बीमारी लग जाए उसके योगमें कहीं न कहीं कोई क्षति होगी। श्री कृष्ण योगी और भोगी दोनोंको प्रिय हैं।

श्री कृष्णलीलामें सभी प्रकारके रस दीखाई देते हैं। साधारणतः साहित्यमें नव रस होते है- हास्य, वीर, करुण, शृंगार, बीभत्स आदि। श्री कृष्णका हास्य विनोद भी अद्वितीय है। श्री कृष्णके वीर रसका तो महाभारतमें अनेक स्थानों पर वर्णन है। श्री कृष्ण प्रेमस्वरूप होनेके कारण परिपूर्ण माधुर्य रससे भरे हुए हैं। अतः किसी भी रसकी रुचि पुष्ट होकर अलौकिक प्रेमरसकी प्राप्ति कराएगी। लौकिक आसक्ति धीरे धीरे विनष्ट होगी और अलौकिक श्री कृष्णकी आसक्ति रूप भक्ति प्राप्त होगी और जीवन सफल होगा।

महापुरुष श्री कृष्णलीलाको निरोधलीला कहते हैं। मनका निरोध होने पर मुक्ति सुलभ है।

मनका निरोध ईश्वरमें ही हो सकता है, अन्य किसी वस्तुमें नहीं। क्यों कि संसार जड है, मन नहीं। दूध और मिश्रीली भांति सजातीय एक दूसरेमेंसे मिल जाते हैं। पथ्थर एक रूप नहीं हो सकते। इसी प्रकार मन संसारके जड पदार्थोंके साथ एक रूप नहीं हो सकता। मन न तो पूर्णतः चेतन है और न तो पूर्णतः जड। वह अर्धचेतन है और अर्धजड।

परीक्षित राजाके मनको सांसारिक विषयोंमेंसे अनायास हटाकर, श्री कृष्णके साथ एक रूप करके उसे मुक्ति प्राप्त करानेके लिए ही यह दशम स्कंध रचा गया है।

दशम स्कंध तो भगवान्का हृदय है। इसमें श्री कृष्णकी वह लीला वर्णित है जिसने अनेकोंको प्रेम पागल बना दिया।

सनातन स्वामी कभी किसी राजाके महामंत्री थे। दशम स्कंधकी कथा सुनकर वे साधु हो गए।

श्री कृष्ण योगी भी थे और भोगी भी।

यह कथा राजाओंको भी आकर्षित करती है और योगियोंको भी। इसका कारण है श्री कृष्ण। "चित्त चैन नहीं, चित्त चोर चुरायो" है।

श्री कृष्ण चित्तकी शांति तो क्या, स्वयं चित्तको ही चुराते है।

उनका रूप भी बडा अद्भुत है।

धूरि-भरे अति सोभत स्यामजू, तैसी बनी सिर सुंदर चोटी।
खेलत-खात फिरै अंगना, पगपैजनी बाजतीं, पीरी कछोटी।
वा छबिकों रसखानि बिलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
कागके भागको क्या कहीये, हरि हाथसे ले गया माखन-रोटी॥

युगलप्रियाजीका पद

(राग : मेघरंजनी , ताल झप)

स्याम स्वरूप बस्यो हियमें, फिर और नहीं जग भावैरी।
कहा कहूं को माने मेरी, सिर बीती सो जानैरी॥
रसना रसना सब रस फीकै, द्रगनि न और रंग लागैरी।
स्रवननि दूजी कथा न भावै, सुरत सदा प्रियकी जागैरी॥
बढयो बिरत अनुराग अनोखो, लगन लागी मन नहीं लागैरी।
जुगल प्रियाके रोम रोम तें, स्याम ध्यान नहिं पल त्यागैरी॥

भगवान् कृष्णकी छवि, उनकी लगन, उनके प्रेमकी कसक ऐसी है कि एक बार हृदयमें प्रविष्ट होने पर निकलनेका नाम ही नहीं लेतीं।

मुकुट लटक अटकी मन माहीं॥
नृत्यत नटवर मदन मनोहर, कुंडल झलक बिथुराई।
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौंह चलाई॥
ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर, बांह उठाइ करत चतुराई।
झुनक झुनक नूपुर झनकारत तता थेई थेई रीझ रीझाई॥
चरनदास जो हिय अंतर, भवन करौ जित रहो सदाई॥

राजा परीक्षितने कहा, आपने सूर्यवंश और चंद्रवंशकी कथा सुनाई। चंद्रवंशी श्री कृष्णकी कथा संक्षेपमें ही बताई।

कृष्ण कथा योगी और भोगी दोनोंको आनंद देती है। शुकदेवजी तो महायोगी हैं। ध्यानकी आत्यंतिकताके कारण वस्त्रभान भी नहीं रहा है। वे कृष्णकथामें पागल हो गए हैं।

परीक्षित कहते हैं, आपने वैसे तो सर्वस्वका त्याग किया है किंतु कृष्णकथाका त्याग नहीं कर सके। आपने अपने पितासे भी कह दिया था कि न तो आप उनके पुत्र हैं और न तो वे आपके पिता। आपने पिताका तो त्याग किया किंतु कृष्णकथाका नहीं। आपके लिए भी यह कथा आनंददायीनी है।

शुकदेवजी जैसे वितरागी साधुपुरुष भी कृष्णकथाका मोह छोड नहीं पाए। महापुरुषोंको लगता है कि जब तक नाक पकड कर बैठे हैं (अर्थात् तप कर रहे हैं) तब तक तो ठीक है किंतु आसनसे उठ जाने पर कब मन भागने लगता है उसकी खबर तक नहीं हो पाती।

मनको निर्विषयी बनाओ। उसे कृष्णलीलामें परोए रखो। चिंतन करना है तो कृष्णलीलाका चिंतन करो। मनको निर्विषयी बनानेका आदेश वेदांत भी देता है। यह बडा कठिन काम है। इसी लिए तो वैष्णव कहते हैं कि मनको प्रतिकूल विषयोंमेंसे हटा कर अनुकूल विषयोंमें जोड दो।

वेदांती कहते हैं कि जब आत्माको बंधन ही नहीं है तो फिर मुक्तिका प्रश्न ही कैसे उपस्थित हो सकता है। वैष्णवोंको भगवान्‌की सेवामें ऐसा आनंद मिलता कि मुक्तिकी वे इच्छा ही नहीं करते हैं।

योगी जब तक आंखें मुंद कर समाधिमें बैठे रहते हैं तब तक उनका मन स्थिर रहता है। किंतु योगावस्थामें जागृत होने पर, आंखें खुलते ही उनका मन चंचल हो कर सांसारिक विषयोंमें खो जाता है। ऋषि विश्वामित्रने आंखें मुंद कर साठ हजार वर्ष तपश्चर्या तो की किंतु आंखें खुलते ही वे मेनकाकी मायामें फंस गए।

अजी, खुली आंखों और खुले कानोंसे भी समाधि लगे वही समाधि सच्ची समाधि है।

साधो, सहज समाधि भली।

समाधिके दो प्रकार हैं। जड और चेतन। जड समाधि वह है जिसमें योगी मनको बलपूर्वक वशमें रखनेका प्रयत्न करते हैं। मन पर ऐसा बलात्कार करना कोई अच्छी बात नहीं है। वैसे योगी कभी रोगी भी बन जाते हैं। इसी कारण तो हठयोगकी निंदा की गई है। हठयोगीको भक्तिका सहारा न मिल पाए तो उसका योग निरर्थक है।

मन पर बलात्कार करनेकी अपेक्षा उसे प्रेमसे समझा-बूझा कर वशमें करना अच्छा है।

मन सज्जन है। मनको कोई सत्ता नहीं होती। मन आत्माकी आज्ञामें है। आत्माके आदेशानुसार मनको कार्य करना पडता है। मनको शास्त्रमें नपुंसक कहा गया है। आत्माकी सत्ता और आज्ञानुसार ही मन दौड सकता है। योगी मनको बलपूर्वक ब्रह्मरंध्रमें स्थापित करते हैं। उस समय उनका शरीर जड हो जाता है। जड समाधिमें शरीरकी सभानता नहीं रह पाती।

जड समाधिकी तुलनामें चेतन समाधि श्रेष्ठ है।

गोपियोंकी समाधि चेतन समाधि है। वे कान बंद करके या आंख मुंदके नहीं बैठतीं। वे तो खुले कान और खुली आंखों ही कृष्णके ध्यानमें तन्मय हो जाती है। वे तो अपने कानों

+

और आंखोंमें श्री कृष्णको ही बसाती हैं। इन्हें देखकर तो उद्धव-ऊधो (उल्टा) सीधा (सरल) बन गए थे।

ये गोपियां खुली आंखों भी समाधि लगा सकती हैं। जहां जहां उनकी दृष्टि जाती है वहां वहां उन्हें कृष्णके ही दर्शन होते हैं।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र माधवः।

समाधि ऐसी साहजिक ही होनी चाहिए। इसी लिए तो उद्धवजीकी निर्गुण निराकार ब्रह्मकी आराधनाकी बात सुन कर गोपियोंने कहा था, हमें तो खुली आंखों ही सर्वत्र साकार ब्रह्म श्री कृष्णका दर्शन करती हैं। अतः साकार ब्रह्मको छोड कर तुम्हारे निराकार ईश्वरका ध्यान-चिंतन क्यों करें?

उद्धवजी, जो खुली आंखोंसे ब्रह्मका दर्शन नहीं पा सकता वही अपनी आंखोंको मुंद कर ललाटमें ब्रह्मके दर्शन करनेका प्रयत्न करता है। हम तो श्री कृष्णके दर्शन, चिंतन और ध्यान करती हैं।

आंखें बंद करनेके बाद ही जो समाधिस्थ हो सकता है, उसके लिए संभव है कि आंखें खुलनेके बाद उस मन संसारमें भटक जाए।

गोपियां गृहस्थ होने पर भी महापरमहंस हैं। व्रजवासी ही उत्तमोत्तम परमहंस हैं जो सभी बाह्य विषयोंसे अलिप्त हो कर कृष्ण प्रेममें तन्मय हो जाते हैं।

श्री कृष्ण महागृहस्थ भी हैं और महासंन्यासी भी। घरमें रहते हुए भी संन्यासी जीवन कैसा जिया जा सकता है यह श्री कृष्णने बताया है। वे तेरह बार भोजन करते हैं और सोलह हजार स्त्रियोंके स्वामी हैं फिर भी वे अच्युत, युवान हैं। वे कभी वृद्ध नहीं होते, जीर्ण नहीं होते। वे अर्जुन और दुर्योधन दोनोंको समान दृष्टिसे देखते थे और दोनोंकी सहायता की थी। यदुवंश और सुवर्ण द्वारिकाका विनाश हो गया फिर भी उनकी मनोशांति अविचल रही।

भागवत परमहंसोंकी संहिता है।

परीक्षित कहते हैं:- महाराज, आप वितरागी योगी हैं फिर भी कृष्णकथा नहीं छोड पाए।

कथा मनुष्यकी थकावट दूर करती है। भगवान्‌की कथा आतुरता बढाती है। बार बार इसे सुनने पर भी तृप्ति नहीं होती।

श्रीखंड जैसे मिष्टान्नका आहार करने पर, विषयसुखोंका उपभोग कर लेने पर तृप्ति होती है और अरुचि भी। किंतु वह तृप्ति और अरुचि कायम नहीं रह पाती। यदि कायम रहे तो बेडा पार हो जाए।

महाराज, मुझे कृष्णकथा सुननेकी इच्छा है। विस्तारपूर्वक आप सुनाइए। प्रभुकी बाललीला और अन्य सभी लीला मुझे सुनाइए। आपके चरणोंमें बार बार प्रणाम करके मैं प्रार्थना करता हूं।

शुकदेवजीः- राजन्, कई दिनोंसे आपने कुछ खाया-पिया नहीं है। पहले कुछ जल पान कर लीजिए। फिर कथा सुनेंगे।

परीक्षितः– कुछ दिन पहले तो मैं भुख और प्यासके मारे व्याकुल हो जाता था। एक बार शिकार करने वनमें गया था तो भुख–प्यासकी व्याकुलताके कारण ही मैंने ऋषिका अपमान तक कर दिया था। किंतु आपसे कथा सुननेके बाद न तो मुझे भुख सताती है और न प्यास। बस, आप कथा ही सुनाते रहिए।

शुकदेवजीः– कृष्णकथाके लिए तेरा प्रेम देखकर मुझे बडा आनंद हुआ। राजा, तेरे ही कारण मुझे भी कृष्णकथा गंगाका अमृतपान करनेका लाभ मिला। जबसे कृष्णकथारूपी गंगाका प्रागट्य हुआ है तबसे भागीरथी गंगाका महत्त्व कम हो गया है। भागीरथी गगामें स्नान करनेसे शारीरिक मलीनता तो दूर होती है किंतु मानसिक मलीनता तो कृष्णकथा ही दूर कर सकती है। कृष्णकथा तो जहां चाहों वहां प्रगट हो सकती है किंतु वह भागीरथी गंगा अन्य किसी स्थान पर प्रगट होती नहीं हैं।

शुकदेवजी राजाका आभार मानते है कि उसके कारण कृष्ण स्मरण और दर्शनका लाभ मिला।

महात्मा तो कहते हैं कि नवम स्कंध तककी कथा शुकदेवजीने सुनायी और दशम स्कंधकी कथा स्वयं श्री कृष्णने सुनायी है।

वैयासकिः स भगबान् (भवतासह)

१०–१–४

शुकदेवजीने राधाकृष्णसे प्रार्थना की कि हृदयमें विराजमान हो कर वे ही कथा करें।

ज्ञान पुरुष मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। मृत्युको सुधारते हैं कृष्णकथा, कृष्णनाम, कृष्णभक्ति। जिसकी मृत्यु सुधरती है उसे दुबारा जन्म लेना नहीं पडता।

वेर और वासना जीवनको बीगाडते हैं। उनके दूर होने पर ही जीवन और मृत्यु उजागर होते हैं। वेर और वासनाको मृत्युके पहले ही हटा दो अन्यथा मृत्यु बीगड जाएगी। तुम वेरीको वंदन करो फिर भी वह वेर बनाए रहे तो उसके पापका साझीदार तुम्हें बनना नहीं पडेगा।

दशम स्कंधमें निरोधलीला है। ईश्वरमें मनको लय करना ही निरोध है।

श्री कृष्णको अपने हृदयमें रखोगे या श्री कृष्णके हृदयमें वसोगे तो मनका निरोध होगा। मनका निरोध ही मुक्ति है।

धरती पर दैत्योंका उपद्रव बढ गया, लोग दुःखी हो गए, पाप बढ गया। धरतीसे यह सब सहा न गया तो उसने ब्रह्माजीकी शरण ली। ब्रह्मादि देव ब्रह्मलोकमें नारायणके पास आए और पुरुषसूक्तसे प्रार्थना करने लगे : नाथ, अब तो कृपा कीजिए। आप अवतार लीजिए। भगवानने ब्रह्माजीसे कहा, कुछ ही समयमें मैं वसुदेव–देवकीके घर प्रगट हूंगा। मेरी सेवाके लिए तुम सब देव भी अवतार लेना। ब्रह्माने आकाशवाणी सुनी और सभी देवोंको आश्वस्त किया।

इधर मथुरामें विवाह करनेके लिए वसुदेव आए। वसुदेव देवकीका विवाह हुआ। स्वयं कंसने ही वरवधूका रथ चलाया।

कंस वसुदेवको बहुत सताये तो भगवान्का प्रागट्य शीघ्र हो जाय। भक्तोंके दुःख भगवान्से सहे नहीं जाते। पापीका दुःख भगवान् साक्षीके रूपमें देख लेते हैं और सह लेते हैं। किंतु पुण्यशालीका दुःख उनसे सहा नहीं जाता।

आकाशवाणी सुनाई दीः– हे कंस, देवकीकी आठवीं संतान तेरी हत्या करेगी।

कंसने आकाशवाणी सुनी तो वह तलवार लेकर देवकीकी हत्या करनेके लिए तैयार हो गया। तो वसुदेव उसे समझाने लगे :– जो आया है वह जाएगा। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी होगी। इसी लिए तो महात्माजन मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते है। मृत्युका निवारण अशक्य है। "शीर्यते इति शरीरम्।" शरीरका नाश तो होगा ही। वेर न करो। वेर या सुखकी वासना मृत्यु भ्रष्ट करती है। वेर–वासनाका त्याग करके प्रभुस्मरण करता हुआ जो मरता है उसीकी मृत्यु उजागर होती है। देवकीकी हत्या करनेसे तो तुम अमर हो नहीं सकते। और देवकी तो तुम्हारी मृत्यु कारण है नहीं।

कंसः– हां, यह तो है।

वसुदेवः– तो मैं देवकीकी सभी संतान तुम्हारे हवाले करता रहूंगा।

कंसने भी सोचा कि यह भी ठीक है। स्त्री हत्याके पापसे तो बच जाऊंगा। उसने कहा, अच्छा। मैं देवकीकी हत्या नहीं करूंगा।

वसुदेव शुद्ध सत्त्व गुणका स्वरूप है। विशुद्ध चित्त ही वसुदेव है। देवकी निष्काम बुद्धि है इन दोनोंके मिलन होने पर भगवान्का जन्म होता है।

वसुदेव–देवकी घर आए। प्रथम बालकका जन्म हुआ। वसुदेवने कंसको दे दिया। कंसका हृदय पिघला। इस बालकको मारनेसे मुझे कोई लाभ नहीं होगा। आठवां बालक मुझे मारेगा। यह तो पहला है। मैं इसे मारूंगा नहीं। सातों बालकोंको अपने पास ही रखना। मेरा काल होने वाला आठवां बालक ही मुझे देना। वसुदेवजी बालकको लेकर वापस लौटे।

नारदजीने सोचा कि यदि यह कंस अच्छाई करने लगेगा तो पाप कैसे कर पाएगा। और यह पाप नहीं करेगा तो भगवान् अवतार नहीं लेंगे। कंसका पाप नहीं बढेगा तो वह शीघ्र मरेगा भी नहीं। पाप न करनेवालेको भगवान् जल्दी मारते नहीं हैं।

ईश्वर तो किसीको भी नहीं मारते। मनुष्यको उसका पाप ही मारता है। हमेशा दो वस्तुओंसे डरते रहोः– पापसे और ईश्वरसे।

नारदजी कंसके पास आए और कहा, कंस, तू तो बहुत भोला है। देव तुम्हें मारनेकी सोच रहे हैं। वासुदेवके बालकको छोड कर तुमने अच्छा नहीं किया। कोई भी बालक आठवां हो सकता है। यदि आठवें बालकको पहला माना जाय तो वह पहला बालक आठवां माना जाएगा।

कंसः– तो क्या मैं सभी बालकोंकी हत्या करता रहूं?

नारदजीने सोचा कि यदि मैं संमति दूंगा तो मुझे भी बालहत्याका पाप लग ही जाएगा।

दूसरोंको पापकी प्रेरणा देनेवाला भी पापी है।

नारदजीः- राजन्, मैं तो तुम्हें सावधान करनेके लिए आया हूं। तुम्हें जो ठीक लगे वह करते रहना।

और वे नारायण नारायण बोलते हुए चले गए।

नारदजीने कंसके पापको बढानेके हेतु ही उसे उल्टा-सीधा पढा दिया।

कंसने वसुदेव-देवकीको कारागारमें बंद कर दिया। विना अपराध ही बंधनमें बंध गए फिर भी उन्होंने मान लिया कि शायद ईश्वरको यही पसंद है। यह तो भगवान्की कृपा ही है कि उनका नामस्मरण करनेके लिए एकांतवास मिला है।

अतिशय दुःखको भी प्रभुकी कृपा ही समझनी चाहिए।

कंस अभिमान है। वह जीवमात्रको बंद किए रहता है। सभी जीव इस संसाररूपी कारागृहमें बंद हैं। हम सब बंदी हैं। जीव जब तक कामके आधीन है तब तक वह स्वतंत्र नहीं है। सभी बंदीवान ही हैं।

वसुदेव-देवकी कारावासमें भी जागृत थे जब कि हम तो सोए ही रहते हैं। हमारा जीव कारागृहके एकांतमें जागृत होनेकी अपेक्षा सोया ही रहता है। संसारमें जो जागृत रहता है वही भगवान्को पा सकता है।

> जो जागत है वह पावत है ।
> जो सोवत है वह खोवत है ॥

जो भगवान्के लिए जागता है उसे ही भगवान् मिलते हैं। कबीरजीने कहा हैः—

> सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवै ।
> दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै ॥

कबीर उनके लिए जागे और रोए सो उन्हें भगवान् मिले।

मीरांबाई भी उनके लिए जागीं और रोईं सो उन्हें भी भगवान् मिले।

कंसने देवकीके छः संतानोंकी हत्या कर दी।

मायाका आश्रय लिए विना भगवान् अवतार नहीं ले सकते। शुद्ध ब्रह्मका अवतार हो नहीं सकता। यदि ईश्वर शुद्ध स्वरूपसे आए और जो भी उनका दर्शन पा सके उसका उद्धार हो जाए। दुर्योधनने द्वारिकाधीशके दर्शन तो किए थे किंतु मायासे आवृत्त प्रभुके दर्शन किए थे। जो निरावृत्त ब्रह्मका साक्षात्कार पाता है उसे मुक्ति मिलती है। मायावृत्त ब्रह्मके दर्शककी मुक्ति नहीं होती। संभव है, भगवान्के अवतारके समय हम कीडे-मकोडे होंगे। हमने भगवान्के दर्शन तो किए होंगे फिर भी आज तक हमारा उद्धार नहीं हो पाया है।

योगमायाका आगमन हुआ। उन्होंने सातवें गर्भकी रोहिणीके उदरमें स्थापना की। रोहिणी सगर्भा हुई और दाउजी महाराज प्रगट हुए। भाद्रपद शुक्ल एकादशीके दिन। बलदेव शब्द ब्रह्मका स्वरूप है। पहले शब्द ब्रह्म आता है और बादमें परब्रह्म। बलरामका आगमन होने पर ही परब्रह्म गोकुलमें आते हैं।

दाउजीने आंखें खोलीं ही नहीं। जब तक मेरा कनैया नहीं आएगा मैं आंखें नहीं खोलूंगा। यशोदाजी पूर्णमासीसे बलरामकी नजर उतारनेकी विनंति करती है। पूर्णमासी कहती है कि यह तो किसीका ध्यान कर रहा है। इस बालकके कारण तेरे घर बालकृष्ण पधारेंगे।

यशोदाने सभीको प्रसन्न किया।

यश सभीको दोगे और अपयश अपने पास रखोगे तो कृष्ण प्रसन्न होंगे। जीव ऐसा तो दुष्ट है कि यश अपने पास रखता है और अपयश दूसरोंके सर मढ देता है।

यशोदाः- " यशः ददाति इति यशोदा। " जो दूसरोंको यश देती है वह यशोदा है।

नंदः- जो सभी आनंद देता है वही नंद है।

विचार, वाणी, वर्तन, सदाचारसे जो अन्यको आनंद देता है उसीके घर भगवान् पधारते हैं। जो सभीको आनंद देता है उसीको परमानंद मिलता है।

नंदबाबाने सभीको आनंद दिया सो उनके घर परमानंद-प्रभु आ रहे थे।

सभी गोपाल शांडिल्य ऋषिके पास आए। महाराज, कुछ ऐसा कीजिए कि नंदजीके घर पुत्रका जन्म हो। शांडिल्यके कहने पर सभी एकादशीका व्रत करने लगे।

एकादशी महाव्रत है। एकादशीके दिन पान-सुपारी खाना या सोना भी निषिद्ध है। थोडा-सा फलाहार ही किया जा सकता है। कई लोग साबुदाना और सुरण भर पेट खाते हैं। सुरण-आलू आदि खाने पर अन्न दोष तो नहीं होता है किंतु एकादशीव्रतका पुण्य भी नहीं मिलता है। अगले दिन क्या खाएंगे इस सोच-विचार एकादशीके दिन करनेसे व्रत भंग होगा। एकादशीके दिन तो भगवत स्मरण ही करना चाहिए।

सभी ग्वालोंकी एक ही इच्छा थी कि परमात्मा प्रसन्न हो जायं और नंदबाबाके घर पुत्र जन्म हो। भाद्रपद शुक्ल एकादशीसे सभी गोकुलवासी निर्जला एकादशी आदि व्रत करने लगे सो भगवान् गोकुलमें पधारे।

बालकोंने भी व्रत किया था सो वे कहते हैं कि हमारे व्रतके कारण ही कनैया आए। कनैया तो सबका है। नंद महोत्सवमें सारा गाम आनंदसे नाच रहा था। सभीको लगता है कि कनैया उसीका है। सारे गांवने जो व्रत किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

इधर देवकीने आठवां गर्भ धारण किया तो उधर कंसने सेवकोंको सावधान कर दिया। मेरा काल आ रहा है।

सेवकोंने कहाः- हम तो सदा जागते ही रहते हैं। हम चौकन्ने ही रहते हैं। बालकका जन्म होते ही आपको समाचार दे देंगे।

देवगण देवकी-गर्भवासी भगवान् नारायणकी प्रार्थना करता है। आप तो सत्यस्वरूप त्रिकालाबाधित है। आपका वचन सत्य करनेके हेतु आप पधार रहे हैं। अनेक विद्वानोंकी अधोगति हमने देखी है। किंतु जो व्यक्ति आपकी लीलाओका स्मरण और आपके नामका जपन करता है उसकी कभी अधोगति नहीं होती। नाथ आप कृपा करें।

देवोंने देवकीको भी आश्वासन दिया। नव मास परिपूर्ण होनेको आए। मन, बुद्धि, पंचप्राण आदिकी शुद्धि हुई है। इन सबकी शुद्धि होने पर परमात्माके दर्शनकी आतुरता बढती जाती है। ईश्वरके दर्शनके बिना चैन नहीं आता। अतः जीव तडपता है और अतिशय आतुर होता जाता है। और तभी भगवान् अवतार धारण करते हैं।

जब परम शोभायमान और सर्वगुण संपन्न घडी आई, चंद्र रोहिणी नक्षत्रमें आया, दिशाएं स्वच्छ हुईं, आकाश निर्मल हुआ, नदीका नीर निर्मल हुआ, वनराजीमें पंछी और भंवरे गुनगुनाने लगे, शीतल, सुगंधित, पवित्र हवा बहने लगी, महात्माओंके मन प्रसन्न हुए, स्वर्गमें दुंदुभि बजने लगी, मुनि और देवगण आनंदसे पुष्पवृष्टि करने लगे और परम पवित्र समय आ पहुंचा। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीकी मध्यरात्रिका समय संपन्न हुआ और कमलनयन चतुर्भुज नारायण भगवान् बालकका रूप लेकर वसुदेव-देवकीके समक्ष प्रगट हुए।

भगवान्‌ने अपने श्री हस्तोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं। चारों ओर प्रकाश बिखर गया। उनका चतुर्भुज स्वरूप यह बताता है कि उनके चरणोंकी शरण लेनेवालोंके चारों पुरुषार्थ वे सिद्ध करेंगे।

जो भक्त अनन्यतासे मेरी आराधना करता है उसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ मैं सिद्ध करता हूं और उसकी हर प्रकारसे मैं रक्षा करता हूं।

संपत्ति और संततिका सर्वनाश हो गया था फिर भी वसुदेव-देवकी दीनतापूर्वक ईश्वरकी आराधना करते हैं। प्रभुने कहा, मेरे चतुर्भुज स्वरूपका दर्शन कर लीजिए और ग्यारह वर्ष तक मेरा ध्यान करते रहिए। मैं अवश्य आपके पास आऊंगा।

भगवान्‌का चतुर्भुज स्वरूप अदृश्य हो गया और दो छोटे छोटे हाथोंवाले बाल कनैया प्रगट हुए।

बाल कनैयालालकी जय।

प्रभु प्रत्यक्ष प्रगट हो जाएं फिर भी ध्यानकी तो आवश्यकता बनी ही रहती है।

ज्ञानदीप प्रगट होनेके बाद भी, एकाध इन्द्रिय-द्वार खुला रह जाने पर विषयरूपी पवन प्रविष्ट होकर, ज्ञानदीपको बूझा देता है। इस ज्ञानमार्गमें कई बाधाएं आती रहती है।

भक्तिमार्ग बडा सरल है। प्रत्येक इन्द्रियोंको भक्तिरसमें भीगो दो। फिर विषयरूपी पवन सता नहीं पाएगा।

जब ग्यारह इन्द्रियां ध्यानमें एकाग्र हो जाती हैं तब प्रभुका साक्षात्कार होता है। इसी कारणसे तो गीताजीमें भी ग्यारहवें अध्यायमें अर्जुनको विश्वरूपके दर्शन होते हैं।

प्रभुने कहा, मुझे गोकुलमें नंदबाबाके घर छोड आइए। वसुदेवने उन्हें टोकरीमें बीठलाया किंतु बाहर कैसे निकला जाय? कारागृहके द्वार बंद हैं और बधन भी टूटते नहीं हैं। किंतु ज्योंही टोकरी सर पर उठाई सारे बंधन टूट गए।

मस्तकमें बुद्धि है। जब बुद्धि ईश्वरका अनुभव करती है तब संसारके सारे बंधन टूट जाते है। जो भगवान्‌को अपने मस्तक पर विराजमान करता है उसके लिए कारागारके तो क्या मोक्षके द्वार भी खुल जाते हैं। हाथ पांवकी बेडियां टूट जाती हैं, नदीकी बाढ भी थम जाती है। जिसके सर पर भगवान् हैं उसे मार्गमें विघ्न बाधा नहीं कर सकते।

मात्र घरमें आनेसे नहीं, मनमें भगवान्‌के आने पर ही बंधन टूट जाते हैं।

जो व्यक्ति वसुदेवकी भांति श्री कृष्णको अपने मस्तक पर विराजमान करता है उसके सभी बंधन टूट जाते हैं। कारागृहके-सांसारिक मोहके बंधन टूट जाते हैं, द्वार खुल जाते हैं। अन्यथा यह सारा संसार मोह रूप कारागृहमें ही सोया हुआ है।

वसुदेवजी कारागृहमेंसे बाहर आए। दाउजी दौडते हुए आए। शेषनागके रूपमें बाल-कृष्ण पर छत्र धारण किया। यमुनाजीको अत्यंत आनंद हुआ। दर्शनकी तृप्ति हो पा रही थी। मेरे प्राणनाथसे मिलना है। यमुनामें जल बढ गया। प्रभुने लीला की, टोकरीमेंसे अपने पांव बाहरकी ओर बढा दिये। यमुनाजीने चरणस्पर्श किया और कमल भेंट किया। प्रथम दर्शन और मिलनका आनंद यमुनाजीको दिया। धीरे धीरे पानी कम हो गया।

वसुदेव गोकुलमें आ पहुंचे। योगमायाके आवरणवश सारा गांव गहरी नींदमें डूबा हुआ था। वसुदेवने श्री कृष्णको यशोदाकी गोदमें रख दिया और बालिका स्वरूप योगमायाको उठा लिया। वसुदेवने सोचा कि अब भी उनका प्रारब्ध कर्म बाकी रह गया है तभी तो भगवान्को छोड कर मायाको गले लगानेका अवसर आया है।

वसुदेव योगमायाको टोकरीमें बैठला कर वापस कारागृह आ पहुंचे।

ब्रह्मसबंध होने पर सभी बंधन टूट गए थे। अब माया आई तो बंधन भी आ गए। वसुदेव गोकुलसे मायाको अपने सर पर बैठला कर लाए सो फिर बधन आ पहुंचा और कारागृहके द्वार बंद हो गए। माया बंधनकर्ता है। भगवान्की आज्ञाके कारण ही तो वसुदेवने बधनका स्वीकार किया है।

अब कारागृहमें देवकीकी गोदमें सोई हुई योगमाया रोने लगी। सेवकोंने शीघ्र ही कंसको सतानके जन्मका समाचार दिया। कंस दौडता हुआ आया। कहां है मेरा काल? मुझे सौंप दो उसे।

कंस योगमायाके पांव पकड कर उन्हें पत्थर पर पीटने लगा। किंतु माया कभी किसीके हाथमें आई भी है? आदि मायाने तो कंसके ही सर पर एक लात जड दी। और कंसके हाथोंसे छूट कर आकाशगामी हो गई। आकाशमें उन्होंने अष्टभुजा जगदंबा भद्रकालीका रूप धारण किया। उन्होंने कंससे पुकार कर कहाः- अरे पापी, तेरा काल तो अवतरित हो गया है और सुरक्षित है।

कंसने पश्चाताप करते हुए वसुदेव-देवकीसे अपने अपराधकी क्षमा मांगी।

इधर जन्माष्टमीके दिन नंदजीने बारह बजे तक जागरण किया। शांडिल्यके कहने पर सभी सो गए थे और गहरी नींदमें डूब गए थे। बालकृष्ण जब नंदजीके घरमें आए तब नंदबाबा सोए हुए थे। नदबाबाने स्वप्नमें देखा कि कई बडे बडे ऋषि-मुनि उनके आंगनमें पधारे हुए हैं, यशोदाजीने शृंगार किया है और गोदमें एक सुदर बालक खेल रहा है। उस बालकको मैं निहार रहा हूं। शिवजी भी उस बालकका दर्शन करनेके हेतु आए हुए हैं।

नंदबाबा प्रातःकालमें जाग्रत होने पर मनमें कई संकल्प-विकल्प करते हुए गौशालामें आए। वे स्वय गौसेवा करते थे। गायोंकी जो प्रेमसे सेवा करता है उसका वंश नाश नहीं होता।

नंदबाबाने प्रार्थना की- हे नारायण, दया करो। मेरे घर गायोंके सेवक गोपाल कृष्णका जन्म हो।

उसी समय बालकृष्णने लीला की। पीला चोला पहने हुए, कपाल पर कस्तुरीके तिलकवाले बालकृष्ण घूटनोंके बल बढते हुए गाशालामें आए। इस बालकको नंदजीने देखा तो उनके मनमें हुआ, अरे, यह तो वही बालक है जिसे मैंने स्वप्नमें आज ही देखा है। बालकृष्णने नंदबाबासे कहा, बाबा, मैं आपकी गायोंकी सेवा करनेके लिए आया हूं।

गौशालामें आए हुए कनैयाको नंदजी प्रेमसे निहारते हुए स्तब्धसे हो गए। उन्हें देहभान तक नहीं रहा। बालकृष्णके दर्शनसे वे समाधिस्थसे हो गए। उन्हें कुछ ज्ञात ही नहीं हो रहा था कि वे जाग रहे हैं या सो रहे हैं।

सुनंदाको यशोदाकी गोदमें बालकृष्णकी झांखी हुई तो वह दौडती हुई गौशालामें भाईको खबर करने आई। भैया, भैया, लालो भयो है।

आनंद आनंद हो गया। श्री कृष्ण हृदयमें आ गए।

नंदजीने यमुनाजीमें स्नान किया। आज जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें स्नान किया जाता था। उनको सुवर्णके आसन पर विठलाया गया। शांडिल्य मुनिने उनको दान करनेको कहा। नंदजीने कहा, जो चाहो सो ले जा सकते हो। नंदबाबाने बडी उदारतासे दान दिया। दानसे धनकी शुद्धि होती है।

गायोंका दान दिया गया।

कई वर्षों तक तपश्चर्या करने पर भी महान् ऋषि मुनियोंका काम नष्ट न हुआ, अभिमान निःशेष न हुआ तो वे सब गोकुलमें गायका अवतार ले कर आए। उन्होंने सोचा था कि ब्रह्मसंबंध होने पर वे निष्काम होंगे।

नंदबाबाने दो लाख गायोंका दान किया।

एक ब्राह्मणको दस हजार गाए दानस्वरूप मिलीं। वह घर ले आया। छोटा-सा था घर। उसने घरके कोने-कोनेमें गायें बांध दी फिर भी बहुत-सी बाकी रह गईं। इस ब्राह्मणकी पत्नी बडी कर्कशा थी। वह अपने पतिसे कहने लगी-कोई चाहे इतनी गाय दें, किंतु तुम सबको ले क्यों आए? इतनी सारी गायें देनेवाला कौन निकल पडा?

ब्राह्मण- अरे, तू जानती ही नही है क्या? नंदबाबाके घर पुत्ररत्न जन्मा है। उन्होंने आज हजारों गायोंका दान दिया है।

नंदबाबाके घर पुत्रजन्मकी बात सुन कर ब्राह्मणी आनंदित हो गई। पति-पत्नी आनंदसे मानो, नाचने लगे।

नंद घर आनंद भयो।
जय कनैयालालकी॥

गांवके एक एक व्यक्तिको लगता है कि कनैया उसीका है।

गांवकी सभी गोपियोंमें कनैयाके जन्मकी बात फैल गई तो वे सब भी उसके दर्शनके लिए दौड चलीं। मानों नवधा भक्ति दौडती हुई ईश्वरसे मिलनेके लिए जा रही हो।

गोपियोंका एक एक अंग कृष्णमिलन और कृष्णस्पर्शके लिए आंदोलित हो रहा था। उनकी आंखें कहने लगीं :– हम जैसा भाग्यवान कोई नहीं है, हमें ही कृष्णदर्शनका आनंद मिलेगा। तो हाथोंने कहा :– हम ही भाग्यशाली हैं, हम तो प्रभुको भेंट देंगे। तो गोपियोंके कान कहने लगे :– हमारे ही कारण तुम सब भाग्यशाली हुए हैं क्योंकि कृष्णप्रागट्यके समाचार हमने सबसे पहले जाने हैं। हम तो कनैयाका बांसुरीवादन भी सुनेंगे। तो हृदयने कहा :– जब तक मैं पिघलता नहीं हूं, आनंद आता ही नहीं है। पांव बोल पडे :– हजारों जन्मोंसे हम यौवनसुख और धनसंपत्तिके पीछे भागते आये हैं और आज प्रभुदर्शनके लिये दौड पडे हैं। अब जन्ममृत्युके दुःखसे छुटकारा होगा। सभीको आनंदानुभव हो रहा था।

गोपियोंकी वेणीसे फूल नीचे झड रहे हैं और कह रहे हैं :– तुम कृष्णदर्शनके लिये आतुरतासे दौड रही हो। तुम भाग्यशाली हो। तुम्हारे सर रहनेके लिए हम योग्य नहीं हैं। हम तो तुम्हारे चरणोंमें गिरकर तुम्हारी चरणरजके स्पर्शसे पावन हो जायेंगे।

यशोदाकी गोदमें खेलते हुए सर्वांग सुंदर बालकृष्णको गोपियां दहींका अभिषेक करने लगीं। निर्धन गोपियां दूध और दही लेकर आई हैं। कृष्णलालके दर्शन होने पर आनंदविशसे वे सानभान भूल गई और स्वयंको ही दूध-दहीसे नहलाने लगीं। सभी गोपियोंका मन कनैयाने आकर्षित कर लिया। हृदयमें आनंदका पारावार उमड रहा है। गोपियां जितना लेकर आई हैं उसका दश गुना बढा कर वापस लौटाना है। किसीको चांदीकी थाली दी गई तो किसीको चंद्रहार। यशोदाजीने सोच लिया था कि घरका सर्वस्व क्यों न लूट जाय किंतु सभीका आशीर्वाद और शुभेच्छा पाना है। गोपियां जो कुछ मांगे, दिया जाय।

आनंदमें पागल गोपियां कनैयाकी जयकार कर रही हैं। एकने तो कहीं, यदि देना है तो मुझे तो कनैया ही दीजिए। यशोदाने उसे अपने पास बिठला कर उसकी गोदमें लालाको बिठलाया। आनंद, आनंद, आनंद। हजारों जन्मोंसे बीछडा हुआ जीव आज प्रभुसे मिल पाया। ईश्वरसे मिलन होने पर जीव आनंदसे झूम उठता है।

पुरुष तो सभी बाहर रह गए किंतु गोपियां तो अंदर पहुंच कर आनंदसे नाच रही हैं।

पुरुष अहंकार, अभिमानका रूप है और स्त्री नम्रता, दीनताका। जो गोपीकी भांति नम्र बन कर जाता है उसे ही ईश्वरकी राजसभामें प्रवेश मिलता है। अहंकारीको वहां प्रवेश नहीं मिल सकता।

नंदके घर-सभीको आनंद देनेवालेके घर परमानंद (कनैया) प्रगट हुआ। सभीके आशीर्वाद प्राप्त करोगे तो तुम्हारे घर सर्वेश्वर आएंगे। सभीका आशीर्वाद लेना वैसे तो बडा दुष्कर काम है किंतु किसीके निःश्वास तो कभी न लो। किसीकी भी बददुआ नहीं लोगे तो तुम भी नंदके समान हो सकोगे।

नंदयति सर्वजनान् स नंदः।

वाणी, वर्तन, व्यवहार और विचारसे जो सभीको आनंद देता है वही नंद है।

सभीका आदर करो। उत्तमोत्तम दान आदरदान है। सभी जीवको शिव स्वरूप मान कर सभीका आदर करो।

ज्ञानीका लक्षण ही यह है कि उसके व्यवहारसे किसीको अशांति और उद्वेग न होने पाए।

औरोंके वर्तनसे अपने मनको कभी अशांत और विचलित न करना। नंदबाबा सदा सर्वदा आनंदमें रहते थे और औरोंको आनंद देते थे। ऐसे नंदके घर ही परमानंद पधारते हैं।

सभीको आनद न दिया जा सके तो कोई बात नहीं है किंतु दुःख तो किसीको भी न दो। कोई दुःखी हो जाय ऐसा कभी मत करना।

आज-कल लोग वर्षमें एक ही बार नदमहोत्सव मनाते है। किंतु प्रतिदिन नंदमहोत्सव मनाना चाहिए। रोज प्रातःकाल चार वजेसे साडे पांच बजे तक नंदमहोत्सव मनाया जाय। "उत्" का अर्थ है ईश्वर और "सव" का अर्थ है प्रागट्य। ईश्वरका प्रागट्य ही उत्सव है। उत्सवमें धन या भोगादि नहीं, प्रेम ही मुख्य है।

मंदिरमें नहीं, अपने घरमें ही नंदमहोत्सव मनाया जाय। जीवात्माका घर हमारा शरीर ही तो है।

नदमहोत्सवका अर्थ मीठाई बांटना या दही-दूध उडाना नहीं है। ऐसा करने पर तो आनंदका अतिरेक हो जाएगा। उत्सव तो हृदयमें होना चाहिए, हृदयमें मनाना चाहिए। ईश्वरका प्रागट्य होने पर, मनुष्य देहमें रहते हुए भी देहका भान नहीं रह पाता।

देहधर्म भूलने पर ही उत्सव सफल होता है। परमात्माको हृदयमें पधराओ। हृदयमें परमात्माका प्रागट्य होने पर भूख-प्यास नहीं सताती। जो हररोज नंदमहोत्सव मनाता है उसका सारा दिन आनंदमें बीत जाता है। निर्धन व्यक्ति भी यह महोत्सव मना सकता है। इस उत्सवमें धन नहीं, मन ही प्रधान है।

नंदमहोत्सवकी तैयारी तो करनी ही पडती है। अपने शरीरको मथुरा और हृदयको गोकुल बनाओ और फिर नदमहोत्सव मनाओगे तभी हृदय गोकुलमें परमात्मा प्रगट होंगे। "गो" का अर्थ है इन्द्रियां और कुलका अर्थ है समुह। गोकुलका अर्थ है इन्द्रियोंका समुह अर्थात् हृदय।

शरीर मथुरा है और हृदय गोकुल। नंद जीव है। इस शरीरको मथुरा बनाना। हृदय गोकुलमें बालकृष्णको पधराओ। मनको आसक्तिसे बचाओगे तो शरीर मथुरा बनेगा और हृदय गोकुल। पवित्र काया ही मथुरा है।

महाप्रभुजीकी आज्ञा है। मथुरा और मधुरा एक है। कामसुख और संपत्ति मध हैं। इन दो मधोंसे जो अपनेको बचाता है उसीका शरीर मथुरा बन सकता है। इन दो वस्तुओंमें फंसा हुआ है मन। इस मनको ही बचाना है। मनुष्य कई बार तनसे तो कामसुखका त्याग करता है किंतु मनस नहीं करता है। तनसे तो त्याग करे किंतु मनसे न करे तो वह त्याग दंभ मात्र है। इन दो वस्तुओंमें माया है। इन दोनोंसे मनको बचाना है।

दो वस्तुओंको प्रभुने आसक्तिपूर्ण बनाया है-स्त्री और धन। इन दोआसक्तियों-मधसा आकर्षण है। इन दोनोंसे हमें बचना होगा।

संपत्ति, शक्ति और भोगकी उपस्थिति होने पर भी मनको बचाए रखना सच्चा संयम है। अन्यथा—

धातुषु क्षीयमाणेषु शम कस्य न जायते।

अपनी युवानीमें जो मनको अंकुशित कर पाए वही सयाना है। वृद्धावस्थामें आंखें तेजहीन होने पर यदि कोई व्यक्ति सीनेमाका शौक छोड दे तो उसकी क्या बडाई है? भोग-विलाससे यौवनको भ्रष्ट न करो।

किसी महात्माने कहा है:— कुछ लोगोंका धन पथ्थरकी पूजामें चला जाता है, बनियेका धन प्रसादमें जाता है और जमीनदारका धन विवाह आदिमें चला जाता है।

भक्ति आसान नहीं है। परस्त्री और परसंपत्तिकी आसक्तिको छोडे विना भक्तिका आरंभ नहीं हो सकता। प्रातःकालमें पूजा कर ली और सब कुछ हो गया, भक्ति हो गई ऐसा मानना ठीक नहीं है। जब तक भोगबुद्धि है तब तक ईश्वरकी भक्ति कैसे हो पाएगी? भक्ति-मार्गमें भोग बाधक है। मनको धीरे धीरे भक्तिमार्गकी ओर मोड दो।

द्रव्यका चिंतन करते रहनेसे तो द्रव्य मिलेगा नहीं। द्रव्य और कामसुखका विचार तक छोड दोगे तभी तुम्हारी काया पवित्र होगी। यमुना भक्तिका ही नाम है। शरीरको मथुरा बनाना है और हृदयको गोकुल तो भक्ति यमुनाके किनारे पर बसना होगा। यमुनाका, भक्तिका किनारा कभी न छोडना। चौबीस घंटे भक्तिकिनारे रहोगे तभी तुम्हारा शरीर मथुरा और हृदय गोकुल बन पाएगा।

जब तक मनमें मत्सर होगा, शरीर मथुरा हो नहीं पाएगा। मत्सर तो विद्वान और धनिक दोनोंको सताता है।

परमात्माके राज्यमें अन्याय है ही नहीं। जो कुछ भी हो रहा है, ठीक ही हो रहा है। मनुष्यके शासनमें पाप है, ईश्वरके शासनमें नहीं।

आज-कलके लोग शरीरकी अपेक्षा मनसे अधिक पाप करते हैं।

इस शरीरको मथुरा बनाओ। ऊपर कहे गए मधसे मनको दूर रखोगे तो शरीर मथुरा बनेगा। उस मधसे मनको बचानेका उपाय क्या है? मथुरा शब्दको उल्टानेसे 'राथुम' शब्द बनेगा और बीचमेंसे 'थु' अक्षर निकाल दोगे तो 'राम' रह जाएगा। जिसके मुखमें हमेशा राम शब्द बसा रहता है उसीका शरीर मथुरा बन पाता है। यदि परमात्मासे हमेशा संबंध बना रहेगा तो 'राम' रहेगा नहीं तो 'थु' ही रह जाएगा और सभी यमदूत 'थु थु' करेंगे उस पर।

हम तीर्थयात्रा करें वह तो ठीक है किंतु शरीरको ही तीर्थ-सा पवित्र बनाओ और हृदयको गोकुल बनाओ।

'गो' शब्दके कई अर्थ हैं। 'गो' का अर्थ है इन्द्रिय, भक्ति, गाय, उपनिषद् आदि। इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर बढने देनेकी अपेक्षा प्रभुकी ओर मोड दो। क्यों कि उनके स्वामी प्रभु ही हैं। भक्ति आंखोंसे भी हो सकती है और कानोंसे भी। आंखोंसे भक्ति करनेका अर्थ है आंखोंमें प्रभुको बसा कर जगत्को देखना। इस प्रकार देखनेसे जगत् कृष्ण रूप दिखाई देगा। तुलसीदासजी और हनुमानजीको सीतारामके सिवाय और कोई भी दीखता नहीं था।

मनमें तो भगवद् स्मरण हमेशा चालु रखो। हृदय गोकुल बनते ही कनैया आ जाएगा। एक एक इन्द्रियको भक्तिरसमें सराबोर कर दो। जिसकी प्रत्येकइन्द्रिय भक्ति करती है उसीका हृदय गोकुल बनता है। कई लोग कानोंसे तो भक्ति करते हैं या आंखोंसे भी भक्ति करते हैं। किंतु मनसे नहीं करते हैं। प्रत्येक इन्द्रियसे श्री कृष्ण–रसका पान करो। तभी तुम्हारा मन, तुम्हारा हृदय गोकुल बनेगा। और अंतमें परमानंदका प्रागट्य होगा। जो भी इन्द्रिय भक्ति नहीं करती है वह पापाचार करती है।

गौभिः पिबति इति गोपी।

जो अपनी प्रत्येक इन्द्रियसे श्री कृष्ण–रसका पान करता है वही गोपी है।

ज्ञानी अपनी इन्द्रियोंको निरुद्ध करके प्राणको ब्रह्मरध्रमें स्थिर करके अपने ललाटमें ब्रह्मज्योतिका दर्शन करते हैं।

वैष्णवजन अपने हृदय सिंहासन पर बालकृष्णको विराजित करते हैं। वैष्णव अपने हृदयमें प्रभुके दिव्य प्रकाशको निहारते हैं।

ठाकोरजीके दर्शन करनेके बाद आंखें मुंद कर उनके स्वरूपको अपने भीतर देखो। श्री कृष्णका स्मरण करते समय देह और संसारका भान भूल जाने पर नंदमहोत्सव सफल होता है। परमात्मा ऋषिकेश हैं। एक एक इन्द्रियका श्री कृष्णसे विवाह करो।

भागवतकी भक्तिमें दुराग्रह नहीं है। मात्र स्वरूपमें निष्ठा रखनेसे, एक ही स्वरूपका बार बार सतत चिंतन करनेसे मन वहीं लग जाता है। ऐसा करनेसे मनकी शक्ति भी बढती है।

शरीरसे नहीं तो मनसे हररोज गोकुल जाओ। मनसे मथुरा जाओ। शरीर जहां भी हो, मनको मथुरा और वृंदावन भेजो। मनमें कल्पना और भावना करो कि यशोदाकी गोदमें बालकृष्ण खेल रहे हैं, लालाके दर्शनके लिए सारी गोपियां दौड रही हैं आदि। कनैयाकी एक एक लीलाओंकी कल्पनामें दर्शन करते रहो। ठाकोरजीके दर्शनके बाद भी अपनी आंखें मुंड कर उनके स्वरूपका मनोमन दर्शन करते रहो।

ज्ञानमार्गमें भेदका निषेध है। भक्त भक्तिके द्वारा भगवान्‌के साथ एक हो जाता है। दोनोंका ध्येय एक ही है। भक्तिमें आरंभमें भेद है और आगे चल कर प्रभुके साथ एक हो जाता है।

ध्यानमें, दर्शनमें तन्मयता होने पर नंदमहोत्सव संपन्न होता है। जब तक जगत्‌के प्रति सभानता है तब तक सच्चा आनंद नहीं मिलता है। देहभान होने पर देवदर्शन नहीं हो पाता। देहभान भूले बिना दर्शनमें सच्चा आनंद नहीं मिल पाता। ध्यानके बिना ईश्वरका साक्षात्कार नहीं हो पाता।

वसुदेव और देवकीने ग्यारह वर्ष तक प्रभुका ध्यान किया था।

ध्यान करनेवालेको यह भी भूल जाना चाहिए कि वह ध्यान कर रहा है। अपने आपको और जगत्‌को भूल कर एक ईश्वरभाव ही शेष रहे तभी अद्वैत संपन्न होता है। देह और जगत्‌का भान भूल कर जो ईश्वरभाव शेष रहता है वही अद्वैत है।

संतोंका जीवन पढ़ेंगे तो ज्ञात होगा कि उन्होंने जीवनभर कष्ट सहन किया है। सांसारिक व्यवहारसे तो वे बडे दुःखी हैं किंतु उनका मन अलिप्त रहता था। अपनी पत्नीकी मृत्यु पर नरसिंह मेहताने कहाः—

भलुं थयुं भांगी जंजाळ।
सुखे भजीशुं श्री गोपाळ॥

अर्थात् अच्छा ही हुआ कि जंजाल नष्ट हो गया। अब तो बडे चैनसे मैं श्री गोपालकी भक्ति करूंगा।

नरसिंह मेहताको एक ऐसा तत्त्व मिल गया था कि जिसके कारण दुःखद प्रसंग भी उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते थे। उनके हृदयमें श्री कृष्ण विराजमान थे।

वृंदावनमें कई साधु प्रतिदिन नंदमहोत्सव मनाते हैं। तुम कल्पना और भावनासे वृंदावन जाओ और इस महोत्सवको मनाओ। शरीर चाहे कहीं भी हो किंतु मनसे तो नंदबाबाके घरमें ही निवास करो। भावना करो कि तुम वहां सेवा करते हो और लालाके दर्शन कर रहे हो। यशोदाकी गोदमें कनैया खेल रहा है। गायें उछल-कूद कर रही हैं। गोपियां आनंद मना रही हैं। ऐसी कल्पना और स्मरण करते रहनेसे सारा दिन बडे मजेमें गुजर जाएगा।

यदि एक ही स्वरूपका ध्यान न किया जा सके तो कृष्णलीलाका कीर्तन करो। कीर्तनमें ऐसे लीन हो जाओ कि देहभान और देश-कालका भान भी न रहे।

नंदबाबाका गोकुल शुद्ध प्रेमभूमि है। उसमें स्वयं सुख पानेकी नहीं, औरोंको सुखी करनेकी भावना है। स्वयं सुखी होनेकी और अन्यको सुखी न करनेकी भावना होगी तो सुख तुम्हारा ही त्याग करेगा। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता।

नदमहोत्सवका आरंभ प्रातःकाल चार बजे हुआ था अतः इसे ब्राह्ममुहूर्तमें ही मनाया जाय। ध्यान-धारणाका सर्वोत्तम समय ब्राह्ममुहूर्त (प्रातःकाल ४ से ५॥) का है। प्रातःकालमें प्रभुभजनसे आनंद प्राप्त किए जाने पर सारा दिवस भी बडे आनंदसे व्यतीत हो जाता है। प्रातःकालमें जल्दी उठ कर आधा घंटा ध्यान करो। ईश्वरके साथ एकत्व साधो। बारह वर्ष तक इस प्रकार नियमपूर्वक पूजा करनेसे ईश्वरका अनुभव होगा।

प्रातःकालमें जप, ध्यान, प्रार्थना करनेसे परमात्मा तुम्हें सारा दिन पापकर्मोंसे बचायेंगे। प्रातःकालमें हृदय थोडा-सा पिघलने पर सारा दिन आनंदसे बीत जाएगा। यदि कुछ और न बन पाए तो आंखें बंद करके नंदमहोत्सवका ध्यान धरोगे तो भी मन शुद्ध होगा। वृंदावनमें कई नदमहोत्सवके अठारह श्लोकोंका नित्य पाठ करते हैं।

नवमीके दिन महोत्सव हुआ। श्रावण वदी द्वादशीके दिन भगवान् शंकर गोकुलमें पधारे।

शंकर योगीश्वर हैं और कृष्ण योगेश्वर। योगीश्वर और योगेश्वरका मिलन हुआ। भगवान् शंकर निवृत्तिधर्मका आदर्श दीखाते हैं तो श्री कृष्ण प्रवृत्तिधर्मका। बाहरसे प्रवृत्त और भीतरसे निवृत्त। सभी प्रवृत्ति करते हैं किंतु किसी भी प्रवृत्तिमें आसक्ति नहीं है। प्रवृत्ति करते तो हैं किंतु निवृत्तिकी ही भांति।

भगवान् शंकर कहते हैं कि जिसे ब्रह्मानंदका आस्वाद लेना है उसे थोडी-बहुत निवृत्ति तो लेनी ही पडेगी।

जो चाय-बीडी जैसी मामुली वस्तुका त्याग नहीं कर पाता है वह मोह, माया, काम कैसे छोड पाएगा? जिसे भजनानंद चाहिए उसे विषयानंदको छोडना ही होगा।

शिवजी किसी गांवमें अधिक समय नहीं रहते। वे स्मशानमें ही वास करते हैं। वे कहते हैं कि ध्यानानंद-भजनानंद पाना है तो प्रवृत्ति कम करते जाओ।

एक गृहस्थने अपनी एक कन्या एक किसानको दी थी और एक कन्या एक कुंभारको। एक बार उसने किसानके घर आकर अपनी पुत्रीसे कुशल-मंगल पूछा। कन्याने कहा, वारिश नहीं आ रही है। यदि वारिश आ जाए तो सब कुछ ठीक हो जाए। वह गृहस्थ वहांसे उस कुंभारके घर आया और अपनी वहां रहती हुई कन्यासे हालचाल पूछने लगा। तो इस कन्याने कहा, मीट्टीके बहुत-से बर्तन बना लिए हैं और अब भट्ठीमें पकाना है। मैं चाहती हूं कि वारिश आए ही नहीं।

यह कथा सभीकी है। जीव पिता है और प्रवृत्ति-निवृत्ति दो पुत्रियां। ये दो कन्यायें एक साथ नहीं रह सकती। साथ रहने जायेंगी तो दुःखी हो जायेंगी। निवृत्तिका आनंद लेना है तो प्रवृत्तिका मानसिक त्याग करो। जब तक शारीरिक शक्ति है, प्रवृत्तिका विवेकपूर्वक त्याग करते जाओ। वैसे तो रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बढ जाने पर डॉक्टरके कहने पर शेठ आराम करते हैं किंतु वह सच्ची निवृत्ति नहीं है।

सभी प्रवृत्तियां एक साथ छोड देना असंभव है किंतु प्रवृत्तियोंका ऐसा आयोजन करो कि प्रभुसेवाके लिए पर्याप्त समय मिलता रहे।

वेदांतका अधिकार विरक्तको है, विलासीको नहीं। बातें तो ब्रह्मज्ञानकी करे किंतु प्रेम धन-संपत्ति, नारी, जड पदार्थोंसे करे तो वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी नहीं है। जगत् मिथ्या है ऐसा बोलने मात्रमें नहीं, अनुभव करनेसे लाभ होता है। व्यवहार मिथ्या है ऐसा मानकर व्यवहार करो। मानवको यह भान ही नहीं रहता है कि धन-संपत्तिकी दौडमें वह ईश्वरको भूल रहा है।

भगवान् शंकर श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीके दिन श्री कृष्णके दर्शन करने आए। योगीश्वर और योगेश्वरका मिलन हुआ। शंकर अकेले ही आए।

भक्तिमें यदि संग अच्छा न होगा तो भक्ति कार्यमे विक्षेप होगा। भजन और दर्शन तो अकेले ही किया जाय। औरोंको अपने साथ रखनेसे हम रजोगुणी हो जाते हैं।

कई लोग भजन या दर्शन करनेके लिए औरोंको भी बुलाते जाते हैं। सत्कर्मके लिए औरोंको प्रेरणा देना वैसे तो बडी अच्छी बात है। किंतु साथ हो लेने पर रास्तेमें भली-बुरी बातें भी हो जाती हैं जो ठीक नहीं है।

भजन और दर्शन एकचित्तसे करो। दर्शनके बाद मंदिरके वरंडेमें थोडी देर बैठनेका यही प्रयोजन है कि हमने भगवान्‌के जिस स्वरूपका दर्शन किया है उसे दिलमें उतार लें कि जिससे अगली सुबह तक वह मनमें बना रहे।

कई लोग ऐसे हैं जिन्हें दर्शनके बाद यदि पूछा जाय कि आज ठाकोरजीका शृंगार क्या था, वस्त्रपरिधान कौन-सा था तो वे सर खुजलायेंगे। दर्शनके बाद यदि ठाकोरजीको मनमें बसाकर घर ले जाया जाय तभी वह दर्शन सार्थक है। अधिकतर लोग भगवान्‌को मंदिरमें ही छोड कर अपने-अपने बंगले या दुकान पर चले जाते हैं।

ईश्वरके सिवाय अन्य किसीका भी संग न करो। जीव अभिमानी और विश्वासघाती है।

संतोंकी दृष्टि हमेशा प्रभुके किसी-न-किसी रूपमें अटकी रहती है। बाह्य दृष्टि तो हमेशा झूकी हुई ही होती है।

भगवान् शंकरकी दृष्टि भी ब्रह्ममें ही स्थिर थी।

शंकरके दो विशिष्ट *गण थे- शृंगी और भृंगी*। वे दोनों भी शंकरके साथ साथ चलनेकी हठ करने लगे। वे कहने लगे कि यदि उन्हें साथ नहीं ले जाएंगे तो वे सभीको बता देंगे कि यह कोई साधु नहीं, भगवान् शंकर हैं।

शंकरने कहा, मैं अकेला ही जाऊंगा। तुम्हें साथ ले चलूंगा तो दर्शन- ध्यानमें विक्षेप होगा।

आज आप सदाशिव गोकुलमें। कई महात्माओंने इस लीलाका बडा रसीला वर्णन किया है। जो आज तक निरंजन थे वे आज अपेक्षावाले बन गए।

यदि प्रभुने तुम्हे संपत्ति दी हो तो संकल्प करो कि हररोज सुपात्र साधु-संतों और गरीबोंको भोजन कराओगे। यशोदाजीका नियम था कि सुपात्रोंको रोज भिक्षा दी जाय।

शिवजीका आगमन हुआ। लोग कहने लगे कि यह साधु तो शिवजी-सा लगता है। शिवजी अपने तेजको आखीर कब तक छूपा सकते हैं?

शिवजीके पास दासी आई और कहने लगी, महाराज, यशोदाजीने यह भिक्षा भेजी है। आप इसका स्वीकार करें और लालाको आशीर्वाद दें।

शिवजीः- मैं भिक्षा नहीं लूंगा। मुझे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। मुझे बाल-कृष्णका दर्शन करना है।

दासीने यशोदाको समाचार पहुंचाया कि साधु महाराज और कुछ लेना नही चाहते। वे तो केवल लालाके दर्शनके लिए ही इतनी दूर तक आए हैं।

संतकी परीक्षा वेशभुषा या जातिपांतिसे नहीं, उसकी आंखों और मनोवृत्तिसे की जाती है। ब्रह्मज्ञान सुलभ है किंतु ब्रह्मद्रष्टा, प्रत्येकमें ब्रह्मके दर्शन करनेवाला संत दुर्लभ है।

यशोदाने खीडकीसे झांक कर महाराजको देखा और कहाः- महाराज, यदि भिक्षा कम हो तो मैं कुछ और देनेको तैयार हूं। किंतु मैं लालाको बाहर नहीं लाऊंगी। तुम्हारे गलेमें सर्प है जिसे देख कर मेरा लाला डर जाएगा।

शिवजीः- माता, तेरा कनैया तो "काल कालको, ब्रह्म ब्रह्मको" है। वह न तो किसीसे डर सकता है और न तो उसे किसीकी कुदृष्टि लग सकती है। वह तो मुझे पहचानता भी है।

यशोदाजीः- कैसी बात कर रहे हैं आप? मेरा लाला तो नन्हा-सा है। आप हठ न करें?

शिवजीः– मैं तेरे लालाके दर्शन किए विना यहांसे हट नहीं सकता ।

नंदबाबाके गांवके पास आज भी आशेश्वर महादेवका मंदिर है। आज भी शिवजी वहां लालाके दर्शनकी आश लगाए बैठे हैं । व्रज चोर्यासीकी प्रदक्षिणा कमसे कम एक बार तो करनी ही चाहिए । व्रज चोर्यासी'परिक्रमा महापुण्यदायी है । इससे जीवनके सारे पाप जल जाते हैं । व्रज तो लीलाभूमि है । वहां बैठ कर ध्यान करोगे तो परमात्मा स्वयं लीला रहस्य समझायेंगे।

इधर बाल कनैयाने जाना कि बाहर शिवजी पधारे हैं और माता उसे वहां नहीं ले जाएगी तो जोरोंसे रुदन शुरु कर दिया ।

दासी यशोदासे कहने लगीः– माताजी, उस साधुके होंठ हिल रहे हैं । मानो न मानो, उसीने कुछ मंत्र प्रयाग किया है कि जिससे लाला रो रहा है । ऐसा साधु कभी देखनेमें नहीं आया है । मैं बालकृष्णको बाहर ले आऊं और साधुसे आशीर्वाद मांगू । और उसने कनैयाका शृंगार कर दिया ।

यशोदाने दासीसे कहा– उस महाराजसे कहना कि लालाको देखना किंतु टकटकी लगाकर मत देखना ।

वृंदावनके बांकेबिहारीका स्वरूप दिव्य है । श्री नाथजीका स्वरूप भी अद्भुत है ।

जब तक स्वरूपाशक्ति नहीं हो पाती, भक्ति हो नहीं सकती । लौकिक नामरूपके प्रति जैसी आसक्ति है वैसी ही आसक्ति प्रभुके नाम–रूपसे हो जाय वही भक्ति है ।

बांकेबिहारीके मंदिरमें टेरो होता है । टेरो ही तो माया है । जीव ईश्वरका दर्शन करता है तब बीचमें मायाका टेरो (पर्दा) आ जाता है । मंदिरमें राधाजीका सेव्य स्वरूप है । बांकेबिहारी दो मीनट राधाजीको और फिर जगत्को दर्शन देते हैं । चार आंखें मिलने पर ही दर्शनमें आनंद आता है ।

कनैया हंसता है । इस साधुने जादू किया है । महाराजकी नजरमें जादू है । यह साधारण साधु नहीं है ।

दासी लालाको शिवजीके पास लाई । शिवजीने दर्शन करके प्रणाम किया । दर्शन करके आनंद तो हुआ किंतु तृप्ति नहीं हो पाई । मुझे कनैयासे मिलना है । आनंद अद्वैतमें है, द्वैतमें नहीं । मुझे अपने प्रभुसे मिलना है । श्री कृष्णके साथ एक होना है । जब तक ईश्वरसे जीव थोडा–सा भी दूर होगा, उसके लिये भय बना रहेगा ।

शिवजीने सोचा कि यदि बालकनैया मेरी गोदमें आ जाय तो वडा आनंद हो जाय । शिवजी कहने लगे :– तुम इस बालकके भविष्यके बारेमें पूछती हो । यदि उसे मेरी गोदमें दिया जाय तो मैं उसके हाथोंकी रेखा अच्छी तरहसे देख लूं ।

यशोदाजीने बालकृष्णको शिवजीकी गोदमें रख दिया । शिवजी समाधिमें डूब गए ।

बातें अद्वैतमें नहीं हो पातीं, द्वैतमें ही होती रहती हैं । जब हरि और हर एक हो गये हों वहां कौन क्या बोलेगा ?

शिवजीने यशोदाजीसे कहा : माता, तेरा पुत्र तो सम्राट् होनेवाला है ।

शिवजीने तांडवनृत्य किया। अतिआनंदकी अवस्थामें जीव नाचने लगता है। हाथमें आम्रफल आने पर लोग नाचने लगते हैं तो इधर तो शिवजीके हाथोंमें बालकनैया आ गया है।

शिवजी नृत्यमें तन्मय हैं। वहां नंदबाबा आए। भगवान् शंकरकी जयकार हो गई।

बालकृष्णको हृदयमें बसा कर शिवजी कैलास वापस लौटे।

त्रयोदशीके दिन नंदजी मथुरा आए। चतुर्दशीके दिन पूतना आई।

नंदबाबा प्रति वर्ष कंसको कर देते थे। इस बार भी कर देनेका समय आ गया। नंदबाबाने कहा, कनैयाको संभालना।

परमात्मासे हमेशा संबंध बनाए रहो। सभीके रक्षककी रक्षा तो कौन करेगा? किंतु उन्हें हृदयमें बीठलानेके बाद हमेशा सावध रहना कि कहीं लौकिक भोगकी एषणा मनमें न घूस जाय। और कोई एषणा मनमें आई नहीं कि हृदयमेंसे भगवान् भाग निकलते हैं।

कनैया यदि हमेशाके लिए हृदय गोकुलमें बस जाए तो बेडा पार हो जाए। हृदय गोकुलमें श्री कृष्णका आगमन होनेके बाद नंद (जीव) को बाहर भटकना नहीं चाहिए।

नंदबाबा कंसको कर देनेके लिए मथुरा आए। वे कंसकी राजसभामें आए और उन्होंने कंसको कर, सुवर्ण थाल तथा पंचरत्न भेंट किया। और समाचार भी दिया कि उनकी इस ढलती आयुमें उनके घर पुत्रका जन्म हुआ है।

कंस क्या जाने कि वह कनैया ही उसका काल है। उसको तो साश्चर्य आनंद हुआ। उसने सोचा कि इस भेंटके प्रमाणके अनुसार उस बच्चेको आशीर्वाद भी तो देना पडेगा। उसने बालकको आशीर्वाद भेजा कि बडा होकर वह राजा बने, उसकी जयकार हो, उसके शत्रुओंका शीघ्र ही विनाश हो। कंसने अनजाने ही कृष्णकी जयकार की और आशिष दी।

शत्रु भी जिसे आशीर्वाद दे और वंदन करे वह तो ईश्वर ही होगा न?

भेंटके प्रमाणमें आशीर्वाद देनेवाला कंस ही है।

नंदबाबाने कहा :- सारे व्रजवासिओंने मेरे लिये अेकादशी आदि व्रत किये जिसके फलस्वरूप मुझे पुत्र मिला है। नंदबाबा यश औरोंको दे देते है।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

नंदजी वसुदेवसे मिलने गए। वसुदेवको बडा आनंद हुआ। दोनोंने एक दूसरेको कुशल-मंगल पूछा।

कोई मित्रसे मिलन होने पर अपने सुखकी बात न करो किंतु उसके दुःखकी बात जान कर उसे आश्वासन दो।

नंदजी वसुदेवसे सुख-दुःखकी बात पूछने लगे। सुना है आपके घर पुत्रीका जन्म हुआ था और कंस उसकी हत्या करने आया था?

वसुदेव :- हां यह बात सच है। किंतु इसमें कंसका नहीं, मेरे कर्म ही का दोष है। किंतु आपके घर जो बालक है वह मेरा ही है।

नंदबाबाने भोलेपनसे कह दिया, हां, वह अपका ही है।

वसुदेव मनमें कह रहे थे, कनैया मेरा ही है। मैं ही उसे आपके घर उस रातको छोड गया था। किंतु नंदजी इस गूढार्थ भरी बात समझ नहीं पाए।

नंद (जीव) गोकुल छोड कर कहीं दूर जाता है तो वहां काम, मद, लोभ, मोह, मत्सर आदि राक्षस आ धमकते हैं। नंद कृष्णको छोड कर कंसके पास जाते हैं तो गोकुलमें विपत्ति आती है, उधम मच जाता है।

नंदबाबाने सोचा कि कुछ खिलौने लेता जाऊंगा तो लालाको आनंद होगा।

कहीं बाहर जाना पडे तो वहांसे ठाकोरजीके लिए कोई अच्छी-सी वस्तु लेते आना। तुम्हारा प्रवास भक्तिमय बन जाएगा।

अब पूतनावधकी बात आ रही है।

योगमायाने आकाशवाणी द्वारा कंससे कहा- तेरे कालका जन्म हो चुका है। तो कंस घबडा गया। उसने तुरंतमें जन्मे हुए सभी बच्चोंकी हत्या करनेका आदेश दिया। और इसी हेतुसे उसने पूतनाको गोकुलकी ओर भेज दी। वह चतुर्दशीकी सुबह गोकुल आई।

पूतका अर्थ है पवित्र। जो पूत नहीं है वह है पूतना।

पवित्र क्या नहीं है? अज्ञान। सो पूतनाका अर्थ है अज्ञान, अविद्या। और क्या पवित्र है? ज्ञान। गीताजीमें कहा है—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

भ. गी. ४-३८

इस संसारमें पवित्रकर्ता ज्ञानके सिवाय और कुछ नहीं है। ज्ञान-सा पवित्र कुछ भी नहीं है। ज्ञान धनार्जनका साधन नहीं है। आत्मस्वरूपका ज्ञान ही ज्ञान है।

ज्ञान पवित्र है और अज्ञान अपवित्र। अज्ञानमेंसे वासनाका जन्म होता है। पूतना वासनाका ही स्वरूप है।

पूतना चतुर्दशीके दिन क्यों आई? क्यों कि उसने चौदह ठिकाने वास किया था।

अविद्या-वासना चौदह स्थानोंमें बसती है। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार-ये चौदह स्थान हैं वासना-अविद्या-पूतनाके बसनेके। इसी कारणसे वह चतुर्दशीके दिन आई।

रामायणमें भी हमने देखा है कि कैकेयीने रामके लिए चौदह वर्षके वनवासकी मांग की थी। इसका भी यही कारण है कि उन चौदह स्थानोंमें बसे हुए रावणको मारनेके लिए चौदह वर्ष तककी तपश्चर्याकी आवश्यकता है।

नीति और धर्मके मना करने पर भी यदि आंखें परस्त्रीके पीछे भागे तो मान लो कि अपनी आंखोंमें पूतना आन बसी है। स्त्रीको स्त्रीरूपमें नहीं, ब्रह्मरूपमें देखो। आंखोंमेंसे होता हुआ पाप मनमें दाखील हो जाता है। आंखोंमें पूतना होगी तो काम मनमें भी बसेगा।

जगतके किसी भी व्यक्तिको भगवद्भावसे देखनेमें कोई बुराई नहीं है बल्कि अच्छाई ही है। किंतु किसी भी व्यक्तिको सांसारिक-काम भावसे देखोगे तो समझ लेना कि मनमें पूतना आ बसी है।

धर्म और नीति जिस खाद्य पदार्थका आहार करनेकी मना करें वही खानेकी इच्छा होने लगे तो मान लो कि-तुम्हारी जीभमें पूतना आ बसी है।

बीभत्स और अतिशय कामुक बातेंको सुननेकी इच्छा हुई तो मान लो कि पूतना कानों पर सवार हो गई है।

पूतना हरेक इन्द्रियोंमें बसी हुई है जो बहुत सताती रहती है। सभी इन्द्रियोंके द्वार बंद कर दो कि जिससे पूतना अंदर प्रविष्ट ही न हो सके।

पूतना सज-धज कर, सुदरीका रूप लेकर गोकुल आई।

तीन वर्षकी आयु तक बालक शिशु कहा जाता है। इस शिशुको मारनेके लिए पूतना आई है।

प्रश्न यह है कि पूतना शिशुको ही क्यों मारती है और शिशुवयकी आगेकी अवस्थावाले बालकको क्यों नहीं मारती ?

जीवकी चार अवस्थाएं हैं:- (१) जागृति (२) स्वप्न (३) सुषुप्ति (४) तुर्यगा।

जागृत अवस्थामें पूतना आंखों पर सवार हो जाती है। आंखोंकी चंचलता मनको चंचल करती है। इस प्रकार जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें अज्ञान सताता है। अर्थात् पूतना तीन वर्ष तकके शिशुको मारती है। इन तीन अवस्थाओंको छोड कर तुर्यगा अवस्थामें जीवका संबंध ब्रह्मसे होता है और तब पूतना सता नहीं सकती।

जो व्यक्ति तुर्यगा अवस्थामें प्रभुके साथ एक हो जाता है उसे पूतना-अज्ञान मार नहीं सकता।

पूतना तीन वर्षके अंदरके बालकको मारती है इस बातका अर्थ यह भी है कि जो सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंमें फंसा हुआ है उसे वह मारती है। माया त्रिगुणात्मक है। इस मायामें फंसे हुए व्यक्तिको पूतना मारती है।

संसारके मोह जालमें फंसे हुए सभी जन बालक ही तो हैं, शिशु ही तो है। इनको पूतना-अज्ञान मारता है। किंतु सांसारिक मोहका त्याग करके जो ईश्वरके निर्गुण स्वरूपमें लीन हो गया है, गुणातीत हो गया है उसे पूतना मार नहीं सकती। गुणातीत अर्थात् प्रकृतिसे पर व्यक्तिका पूतना कुछ भी बीगाड नहीं पाती।

जब पूतना आई उस समय गोकुलकी गायें वनमें चरने गई थीं और नंदजी मथुरा गए हुए थे। इस घटनाका सूचितार्थ क्या है ?

गायोंका वनगमन अर्थात् इन्द्रियोंका विषय वनमें गमन। इन्द्रियां इसे विषय वनमें घूम रही होंगी तो पूतना-वासना मनमें आ धमकेगी, अज्ञान मन पर सवार हो जाएगा। जब इन्द्रियां विषयोंमें खो जाती हैं, बहिर्मुख हो जाती है तब वासना आ जाती है।

इन्द्रियोंको प्रभुसेवाकी ओर मोड कर निरुद्ध करोगे तो पूतना-वासना सता नहीं पाएगी।

नंद अर्थात् जीव। जीव जब हृदय गोकुलको छोड कर मथुरा अर्थात् देहसुख, देहदृष्टिमें खो जाय तब हृदय गोकुलमें पूतना-अज्ञान बस जाते हैं।

नंद अर्थात् जीव श्री कृष्णको छोडकर मथुरा जाय अर्थात् देहसुखमें फंस जाय तभी वासना आ धमकती है।

नंद अपने आवासमें नहीं होता है तभी पूतना आती है।

पवित्र शरीर (मथुरा) में पुण्यशाली हृदय ही गोकुल है। नंद जीवात्मा है।

नंद (जीवात्मा) परमानंद परमात्मा श्री कृष्णसे विमुख होकर कंस (काम–कलह) को मिलने जाय और गायें (इन्द्रियां) वन (विषयों) की ओर दौड जाएं तभी पूतना (अविद्या) आ जाती है।

पूतना शृंगार करके आई है। अविद्या अपने साथ कई दोषोंको अपने साथ लेकर आती है।

अविद्या अपने साथ पांच दोषोंको ले आती है। वे पंचदोष इस प्रकार हैं:—

(१) देहाध्यास (२) इन्द्रियाध्यास
(३) प्राणाध्यास (४) अंतःकरणाध्यास
(५) स्वरूप विस्मृति (विवेक भान गंवाना)

पूतनाका स्वरूप देखकर यशोदा आदि छलवामें आ गए। पूतनाकी वेणी देखकर देहाध्यास हुआ, रूप देखकर इन्द्रियाध्यास हुआ। अतः स्वरूपकी विस्मृति हो गई। फलतः उसको किसीने नहीं रोका। वह सीधी नंदबाबाके घरमें घूस गई।

पूतनाको देखते ही कनैयाने आंखें मुंद लीं। पूतनाने उसको अपनी गोदमें ले लिया। पूतना ऊपर ऊपरसे तो बडा अच्छा व्यवहार कर रही थी किंतु उसके हृदयमें कुटिलताका विष भरा हुआ था। पूतनाने अपने स्तनों पर भी विष लगाया था।

संसारसुखका उपभोग करनेके लिए मनुष्य भी अपनी आत्मा पर वासनाका विष आवरित करता है।

पूतनाने लालाको गोदमें बीठला कर उसके मुंहमें अपना विषसे सना हुआ स्तन दे दिया। कनैयाने तो दूध पीना शुरू कर दिया। और उसने इस प्रकार दूध पीना शुरू किया कि पूतना वेदनाकी भारी आक्रंद करने लगी। किंतु कनैया तो दूध पीता ही रहा और पूतना धीरे धीरे निष्प्राण हो गई।

सौंदर्यको देखकर मनुष्य मात्र लुब्ध हो जाता है और सान भान भूल जाता है। सभी व्रजवासी भी पूतनाके बनावसिंगार पर मोहित हो गए थे और उसको किसीने रोका नहीं था।

श्रीमद् शंकराचार्यने शत–श्लोकीमें कहा है: लोग त्वचाकी, रूपरंगकी तो बडी मीमांसा करते हैं किंतु आत्माकी मीमांसा तो करते ही नहीं हैं। जो व्यक्ति चमडीका चिंतन करता रहता है वह अगले जन्ममें चमार बनता है। सो शरीरके शृंगारमें समय मत गंवाओ।

जिसका शरीर तो सुंदर है किंतु हृदय विषसे भरा हुआ है वही पूतना है। पूतना बाहरसे तो बडी सुंदर थी किंतु उसका मन बहुत मैला था। जिसके वस्त्र तो सुंदर हैं किंतु मन अस्वच्छ है वह पूतना ही है।

जिसकी आकृति तो अच्छी है किंतु कृति बुरी है वही पूतना है।

चारित्र्यकी जांच-पडताल किए विना किसीका पानी तक न पिया जाए। चाहे बरतन-प्याले चमचमाते क्यों न हो, किंतु उसका मन मैला हो सकता है। बडे बडे तपस्वी भी सौंदर्यकी मोहजालमें फंस चूके हैं।

आमने-सामने हो जाने पर प्रशंसा करे किंतु उसकी अनुपस्थितिमें निंदा करे वह भी पूतना है। जो भी अच्छा-बुरा कहना है वह उसके सामने ही कह देना चाहिए।

जीवका स्वभाव उस पूतना जैसा ही है। अपनी आत्मा पर अज्ञान-अविद्याका आवरण लगाकर वह विषयानंदमें डूब जाता है।

किसीके बाह्य रूपरंग, बनावसिंगारसे मोहित होना नहीं चाहिए। जो बाहरसे सुंदर हो वह अंदरसे भी सुदर ही होगा ऐसा मान लेना मूर्खता है। पूतना दुष्ट थी फिर भी व्रजवासी उसके रूपरंगके कारण धोखा खा गए थे।

वासना हो आने पर जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। पूतना अज्ञानके कारण ही स्वरूप विस्मृति हो जाती है।

पूतनाको देखकर व्रजवासियोंको इन्द्रियाध्यास हुआ और स्वरूपकी विस्मृति भी हुई।

वासना-पूतनाका विनाश होने पर ही कृष्णमिलन हो पाता है। सो मानों, श्री कृष्ण वासनारूप पूतनाको मार कर शुकुन करते है।

मनुष्य वासनाका दास है अतः उसका पतन होता है।

वासनारूपी पूतनासे कभी आंखें न मिलाना। आंखोंको ईश्वरसे ही लगाए रहोगे तो वासना तुम्हारे हृदयमें कभी आ न पायेगी।

पूतनाको किसीने न रोका। सो वह अंदर आ गई। जब वह अंदर आई तो कनैयाने आंखें मुंद लीं।

साधारणतः पूतना आंखोंके द्वारा ही मनमें घूस जाती है और फिर निकलनेका नाम ही नहीं लेती है। आंखें बीगडी नहीं कि मन भी बीगड जाएगा सो आंखोंको हमेशा बचाए रखना।

दर्शनमें तभी आनंद मिलता है कि जब भगवान् दृष्टि देते हैं अर्थात् आंख मिलाते है पूतना मलीन हृदय लेकर कनैयाके पास गई तो भगवान्ने आंखे मिलाई ही नहीं, मुंद लीं।

भगवान् हमें यह दीखाना चाहते है कि पापीसे वे आंखें नहीं मिलाते, उसके सामने देखते तक नहीं हैं। भगवान् वस्त्र या बनावसिंगार नहीं, मन देखते हैं। बाहरसे सजीले किंतु मनके मैले व्यक्तिसे वे आंखें नही मिलाते हैं।

भगवान्से तो हमें यही प्रार्थना करनी है, नाथ, हम आपकी शरणमें आए हैं। मुझ पापीको भवसागर पार करा दीजिए।

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिनु तनु दियो ताहि विसरायो ऐसो नमक हरामी॥

और

सुर कहे श्याम सुनो, शरण हैं तिहारे,
अबकी बार पार करो, नंदके दुलारे ॥

किंतु जीव बडा अभिमानी है। वह ऐसी प्रार्थना करता ही नहीं है। जीव है तो खाली हाथोंवाला फिर भी वह अकड कर ही चलता है।

नहीं विद्या बल वचन चातुरी। ईश्वरकी कृपासे बिना मनुष्यके पास आ ही क्या सकता है?

जीव भगवान्‌की शरण ले तो उसके सभी पाप दूर हो सकते हैं। क्यों कि भगवान् ही ने तो वचन दिया हैः—

संमुख होय जीव मोहि जब हीं।
जन्मकोटि अध नाश हु तब हीं ॥

गीतामें भी कहा गया हैः—

न मे भक्त प्रणश्यति।

जो मेरा हुआ है उसका कभी कोई विनाश नहीं कर सकता।

शुद्ध प्रेममें तो औरोंको सुखी करनेकी ही भावना होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद्‌में चार सूत्र हैंः—

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव ।
आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव ।

एक महात्माने इन सूत्रोंमें एक और सूत्र भी जोड दिया हैः—

परस्परदेवो भव ।

काल नहीं, कलेजा (मन) बीगड गया है जिसके कारण कलियुग आया हुआ है।

मनुष्य यदि एक-दूसरेको देवरूप मानने लगे तो कलियुग सत्‌युग बन सकता है।

× × ×

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं ।
चराचरात्माऽस निमीलिते क्षणः ॥

पूतनाको देखते ही कनैयाने अपनी आंखें क्यों मुंद लीं? महात्माओंने कई कारण बतायें हैं इसके।

(१) पूतना नारी थी। नारी अवध्य मानी गई है। पूतनाको देखकर भगवान् सोचते हैं कि इसे मारना तो पडेगा ही। स्त्रीकी हत्या करते हुए उन्हें संकोच हो रहा था सो उन्होंने आंखें मुंद लीं। सामने कोई पुरुष हो और वीरता दीखानी हो तो और बात है। किंतु किसी स्त्रीको मारनेमें कौनसी वीरता है?

(२) तो एक महात्माको वह कारण जंचता नहीं है। वे कहते है कि पूतना नारी तो थी किंतु वह राक्षसी थी। उसने कई बच्चोंकी हत्या की थी और यहां भी कनैयाकी हत्याके हेतु ही आई थी।

भगवान्के आंखें मुंदनेका कारण कुछ और ही है। उनकी आंखोंमें वैराग्य है। उन्होंने सोचा कि यदि वे पूतनासे आंखें मिलायेंगे तो उसको ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, वह जान जाएगी कि यह तो ईश्वर हैं। मेरे ईश्वरत्वका उसे ज्ञान हो जाने पर मैं जो लीला करना चाहता हूं वह कर नहीं पाऊंगा।

ऐश्वरका ज्ञान लीलामें बाधा रूप है।

यदि पूतना जान गई कि यह तो ईश्वर है तो वह दुध नहीं पीलाएगी।

कृपा करते हुए भगवान् यदि किसीसे आंखें मिला दें तो उसे ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

खुदा नजर दे तो सब सुरत खुदाकी है ॥

भगवान्ने अर्जुनसे कहा थाः– अर्जुन, मैं जिस पर कृपा करता हूं उसे मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है।

यदि मैं पूतना पर दृष्टि करूंगा तो उसे ज्ञान हो जाएगा कि यह कोई सामान्य बालक नहीं, कालके भी काल हैं। उसे ऐसा ज्ञान हो जाने पर मैं लीला कर नहीं पाऊंगा। यह मुझे सामान्य बालक ही मान कर मारने आई है, सो उसे मेरे वास्तविक स्वरूपका ज्ञान कराना ठीक नहीं है।

इस तरह, पुतनाको अज्ञानी रहने देनेके लिए ही भगवान्ने अपनी आंखें बंद कर ली थीं।

(३) एक महात्मा कहते हैं कि यह कारण भी ठीक नहीं है। दृष्टिमिलन होते ही पूतनाको ज्ञान हो जानेवाली बात ठीक नहीं है। दूर्योधनको ज्ञान हो पाया था क्या?

पूतना विस लेकर आई तो लाला आंखें मुंद सोचने लगा कि इसे गोलोकमें भेजा जाय या वैकुंठमें।

(४) तो एक और महात्मा दूसरा कारण बताते हैं। अपने किसी–न–किसी पुण्यके विना कोई भी जीव ईश्वरके समीप जा नहीं सकता। भगवान् आंखें मुंद कर यह देखने लगे कि इस पूतनाने किसी भी जन्ममें कोई पुण्य किया भी है या नहीं।

जिसके साथ बहुत प्रेम किया जाय, वह, संभव है, किसी छोटेसे कारणसे वेर मोल ले।

(५) एक महात्मा बताते हैं:- कनैया सोच रहा था कि उसने तो माना था कि गोकुलके लोग उसे माखन-मीसरी खिलायेंगे। किंतु यहां तो लोग माखन-मीसरी खिलानके बदले विष पीलाना चाहते है। और डरके मारे उसने आंखें बंद कर लीं।

(६) तो दूसरे महात्मा पूछते है, परमात्मा भी कभी डर सकते हैं क्या ? कनैयाने सोचा कि विष पीनेकी शिवजीको आदत है, मुझे तो विष पसंद ही नहीं है। सो उसने आंखें बंद करके भगवान् शंकरकी प्रार्थना की। आप विष पीनेको पधारें, मैं तो दूध ही पीऊंगा। भगवान् शिवका ध्यान धरनेके हेतु ही कनैयाने आंखें मुंद ली थीं।

कनैयाने आंखें बंद करके शिवजीको याद करके, विष पीनेके लिए बुला रहा है। शिवतत्त्वका आवाहान कर रहा है।

जब किसी देवको याद करना या बुलाना होता है तो आंखें बंद करके ही उसका ध्यान धरना पडता है।

(७) एक अन्य महात्मा कहते है, मुझे यह कारण योग्य नहीं लगता। क्या कृष्ण विषको पचा नहीं सकते थे क्या ? वे तो कालके भी काल हैं।

कृष्णकी आंखें बंद कर लेनेका कारण और ही है। उनकी आंखोमें सूर्य और चद्रका वास है। महा योगी सूर्यमंडलको पार करके ब्रह्मलोकमें जाते हैं।

कृष्ण पूतनाको ब्रह्मलोकमें भेजने जा रहे हैं यह देखकर सूर्य-चद्रको (अर्थात् भगवान्‌के नेत्रोंको) ठीक नहीं लगा। अपने कृष्णको वह तो विषपान कराने आई है। तो फिर उसको ब्रह्मगति क्यों दी जाय ? ऐसा सोच कर आंखोंने पलकें बंद कर लीं।

जीवको लक्ष्मीका उपभोग करनेका कोई अधिकार नहीं है। जीव लक्ष्मीका उपयोग चाहे कर ले, उपभोग नहीं कर सकता। यदि वह उपभोग करनेका प्रयास करेगा तो चांटा मिल जाएगा।

अच्छाई तो इसीमें है कि भगवान्‌को सर्वोत्तम वस्तुएं अर्पित की जाएं। स्वय खानेसे संतोष नहीं मिलता, औरोंको खिलाने पर ही संतोष मिलेगा।

सूर्य-चंद्र (दोनों नेत्र) सोच रहे है कि सर्वोत्तम वस्तु अर्पण करनेकी अपेक्षा यह पूतना तो विष लेकर आई है। यही अच्छा होगा कि उसे सद्‌गति न मिलने पाए। ऐसा सोच कर सूर्य-चंद्ररूपी नेत्रोंने अपने प्रवेश द्वार (पलकें) बंद कर दिए।

(८) एक अन्य महात्मा दूसरा ही कारण बताते हैं।

भगवान् सोच रहे थे कि जब इस विषदायिनी पूतनाको मैं मुक्ति देने जा रहा हूं तो मुझे माखन-मीसरी खिलानेवाले व्रजवासियोंको मैं कौनसी गति दूंगा। क्यों कि मुक्तिसे बढ-कर देने योग्य अन्य कोई वस्तु मेरे पास है ही नहीं। और इस प्रकार सोचमें डूबे हुए भगवान्‌ने आंखें मुंद लीं।

इस प्रकार ये महात्मा, मानों दशम स्कधमें भगवान्‌की लीलामें पागल-से हो गए हैं। जीव गोस्वामी, जो कभी किसी राजाके दीवान थे, कृष्ण प्रेममें पागल होकर लंगोटी भर फिरने लगे। सनातन गोस्वामी बंगालके जमीनदार थे। दशम स्कंधका श्रवण होने पर वे कृष्ण प्रेममें

पागल हो गए और ताडपत्रकी लंगोटी पहन कर लीला निकुंजमें राधेकृष्ण-राधेकृष्ण करते हुए घूमने लगे।

हमने देखा कि भगवान् रामचंद्रने भी सूर्पणखासे आंखें मिलाई नहीं थी। रामायणकी सूर्पणखा और भागवतकी पूतना एक ही हैं। दोनों वासना ही हैं।

कनैया अब तो छः दिनका ही हुआ है। राधाजी अभी आई नहीं हैं। रामजन्ममें तो सीताजी साथ ही थीं सो उनको देखा था। सूर्पणखाको उत्तर दिया था। किंतु इधर राधाजी तो अब तक आई नहीं हैं सो किसको देखूं?

पूतना आंखोंके द्वारा ही मनमें आती है। सुंदर विपयोंको देखकर आंखें उनके पीछे भाग निकलती है। मन जानता है कि यह मेरा नहीं है, मुझे मिलनेवाला नहीं है फिर भी पाप करता है। पूतना- कामवासना पहले आंखोंमें आती है और फिर मनमें उतर जाती है।

पूतनाने यशोदासे कहा, मैं तुम्हारे बालकको दूध पीलाऊंगी तो वह हृष्टपुष्ट हो जाएगा। यशोदाने लालाको पलनेसे बाहर निकाला और पूतनाकी गोदमें दे दिया। पूतनामासी उसे लाड-प्यार करने लगी। कनैया तो जानता ही है कि यह लाड करने नहीं, मारनेके लिए आई हुई है।

पूतनाने यशोदाजीसे कहा, तुम्हें घरमें यदि कुछ कामकाज करना है तो जा सकती हो।

भोली यशोदा घर काममें लग गई। इधर पूतनाने लालाको दूध पीलाना शुरू कर दिया। कनैया तो दोनों हाथोंसे स्तनको पकडकर बलपूर्वक दूध पीने लगा। कनैयाको तो दूधके साथ साथ प्राण भी मानों पीना था। पूतना व्याकुल हो गई। वह रो रोके कहने लगी, मुझे छोड दे कनैया, मुझे छोड दे।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी।

कनैयाने कहाः- पूतना मासी, मेरी माताने तो पकडना ही सीखाया है, छोडना नहीं।

मुझे पकडना ही आता है, छोडना नहीं। मैं आज तुम्हें छोडनेवाला नहीं हूं। मे तो तुम्हारा उद्धार ही करूंगा।

भगवान्के मारमें भी प्यार ही है।

परम आश्चर्य हुआ है।

पूतना दो बार " मुझे छोड दे, मुझे छोड दे " कहा। मानों वह कह रही थी कि इहलोक और परलोकमेंसे छुडा कर गोलोक धाममें ले जानेकी प्रार्थना कर रही थी। वह अहंता और ममतामेंसे छुडा कर कृतार्थ करनेको कह रही थी।

पूतना व्याकुल हो गई अतः स्वरूपानुसंधान नहीं रहा। उसने राक्षसी रूप धारण किया। वह आकाशमार्गसे कृष्णको उडा ले चली। तो कंसके बगीचेके एक वृक्ष पर पूतनाको गिरा दिया।

वह वृक्ष पर गिरी तो और भी कई वृक्ष टूट पडे। पूतना और वृक्षोंके गिरनेसे एक बडा धमाका हुआ।

अविद्याके कारण षड्विकार उत्पन्न होते हैं ।

राक्षसीके वक्षःस्थल पर कनैया विराजमान था। धमाका सुन कर गोपियां दौडती हुई आईं। यशोदाको कोसने लगीं। हमने कितनी मिन्नते मानी थीं तब कहीं तुम्हें पुत्र हुआ और तुम्हें तो कोई कदर-कीमत ही नहीं है ।

यशोदाने गोपियोंकी उलाहना सर-आंखों कर ली। उन्होंने कहा, यह मेरा पहला ही बालक है। मुझे बालकके लालन-पालनका अनुभव नहीं है सो भूल हो जाती है। अब आपका कहना मानूंगी ।

गोपियोंने कहा, किसी अनजानी पराई स्त्रीको अपना बालक कभी न देना चाहिए। होना था सो हो गया। अब हम घर लौटें और कनैयाकी नजर उतारें।

लालाको गायें बडी प्यारी हैं। एक गंगी नामकी गाय तो लालाकी झांकी पाए बिना कभी पानी तक पीती नहीं थी। घास भी नहीं खाती थी। जब गोपाल उसे मनाते हुए थक जाते तो यशोदाके पास आते थे और कहते थे, माताजी, गौशालामें कनैयाको ले जाना है। लालाके दर्शन होनेके बाद गंगी घास खा लेती और पानी पी लेती।

अनशन (उपवास) करनेसे शरीर हलका-फुल्का हो जाताहै और मनमें सात्त्विकभाव जगता है। विधिपूर्वक उपवास करनेसे पाप जल जाते हैं।

बडे बडे ऋषि-मुनि जब हजारों वर्ष तपश्चर्या करनेके बाद भी प्रभुके दर्शन पा नहीं सके तो गायोंका जन्म लेकर गोकुलमें आ बसे। उनकी हजारों वर्षकी तपश्चर्या भी उनका अभिमान और वासना जला नहीं पाई थी। सो उन्होंने सोचा कि गोकुलमें गायोंका अवतार लेकर, अपना काम निष्काम कृष्णको अर्पित कर देंगे और हम निष्काम हो जाएंगे।

गोपियां लालाको लेकर गौशालामें आईं और गंगीकी पूंछ हाथमें लेकर लालाके शरीर पर, सरसे पांव तक, तीन बार फेर ली। मेरे लालाको यदि किसीकी नजर लगी तो इस गंगीकी पूंछमें चली जाय।

गोपियां तो मानो, प्रेमकी ध्वजा हैं। अपने कनैयाको यदि कुछ होना है, तो वह उसे नहीं, हमींको हो जाय। इनका प्रेम विशुद्ध है। लालाको राक्षसीका स्पर्श हुआ वह ठीक नहीं हुआ। कहीं कुछ अनिष्ट हो गया होता तो? इस बार तो हमारा लाला बच गया।

अब लालाको स्नान करा लें। बालकृष्णको राक्षसीकी कुदृष्टिसे कुछ हो न जाय ऐसा सोचकर गोपियोंने कनैयाको गौमूत्रसे स्नान कराया।

भागवतमें लिखा गया हैः —

गौमूत्रेण स्नान यत्वा ।

बाजारी साबुनसे नहीं, गौमूत्रसे स्नान कराया गया।

जीवनको सादगीपूर्ण बनाओ।

गौमूत्रका पान करनेसे और उससे स्नान करनेसे शरीर निरोगी होता है। गौमूत्र बडा गुणकारी है। यह अनुभव सिद्ध बात है।

गौमूत्रका पान करनेसे न केवल शरीर, बल्कि मन भी शुद्ध होता है। गौमूत्रको महीन कपडेसे १०८ बार छानकर पीनेसे मनका मैल दूर होता है, मनके पाप दूर होते हैं और मन शुद्ध होता है। यह प्रयोग छः मास तक किया जाय। गौमूत्रपानके इस प्रयोगसे स्वभावमें बडा परिवर्तन हो जाएगा। गौमूत्रमें दिव्य शक्ति है। वह स्वभावको सुधारता है। वह बुद्धिको भी निरोगी करता है।

गौका गोबर त्वचा पर मले जानेपर शरीरकी अनावश्यक गर्मीको खींच लेता है और त्वचाको मुलायम बनाता है।

जब तक मनुष्यका स्वभाव सुधर नहीं पाएगा तब तक वह ज्ञान मार्ग या भक्ति मार्गमें गति नहीं कर पाएगे।

आज कल तो जीवन ही ऐसा हो गया है कि मनुष्यका समय संपत्ति और शक्ति फैशन और व्यसनमें ही खर्च हो जाती हैं। व्यसन और फैशनमें ही जो अपनी सारी शक्तिका व्यय करता रहता है वह ज्ञान और भक्ति मार्गमें आगे बढ नहीं पाता।

कनैयाको पहले गौमूत्रसे और फिर उष्ण जलसे नहलाया गया। वह तो बडे मजेमें था। ऋषिरूपा गोपियां कनैयाको घेर कर बैठी हुई थीं।

एक गोपी कहती है, आहा, कितनी सुंदर है आँखें हमारे लालाकी ! तो दूसरीने कहा, इसके केश भी बडे सुंदर हैं। तीसरीने कहा, अली, इस चरणकमल तो देख, कितने सुंदर हैं। सारी गोपियां बालकृष्णके एक एक अंगके सौंदर्यका पान करने लगीं।

ये ऋषिरूपा गोपियां तो वेदशास्त्र संपन्न थीं। वे स्तुति करने लगीं।

कनैया ! अज भगवान् तेरे मंगलमय चरणोंकी, यज्ञपुरुष तेरी जंघाकी, अच्युत भगवान् तेरी कटिकी, भगवान् हयग्रीव तेरे पेटकी, भगवान् केशव तेरे हृदयकी, इश भगवान् तेरे वक्षःस्थलकी, सूर्य तेरे कंठकी, भगवान् विष्णु तेरी भूजाकी, भगवान् वामन तेरे मुखारविंदकी और ईश्वर तेरे मस्तककी रक्षा करें।

मेरा कनैया जब खेलता हो तब भगवान् गोविंद, सोया हो तब भगवान् माधव, चलता-फिरता हो तब भगवान् वैकुंठ और बैठा हो तब लक्ष्मीपति रक्षा करें।

छठे अध्यायके २२ से २९ श्लोकोंमें बालरक्षा स्तोत है।

गोपियां वैसे तो जानती ही नहीं थीं जिस भगवान्‌की वे प्रार्थना कर रही है वह तो यह कनैया ही है।

गोपियां अंतमें कहती हैः- भगवान् नारायणका नाम मेरे बालकृष्णकी सदासर्वदा रक्षा करें।

गोपियां बालकृष्णको थपथपाती हुई प्रार्थना कर रही हैं। वे यशोदासे कहती है, इसे दूध पीलाओ। यदि यह ठीक तरहसे दूध पीएगा तो हम मानेंगे कि अब यह डर नहीं रहा है। बालकृष्ण स्तनपान करने लगा तो गोपियां आनंदित हो गई।

चतुर्दशीके दिन शामको नंदबाबा मथुरासे गोकुल वापस आए। इसी दिन पूतनाका अग्नि संस्कार भी किया गया।

जब योगीको श्री कृष्णके स्वरूपकी कल्पना करते हुए प्राण त्याग करनेसे मुक्ति मिलती है तब उनके साक्षात् दर्शन करनेवालेको सद्‌गतिकी प्राप्ति होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

श्री कृष्ण बडे दयालु हैं। विषदायिनी पूतनाको भी अपनी माताकी ही भांति सद्‌गति दी। ऐसा दयालु और कौन हो सकता है?

यह पूतना कृष्ण मिलनमें बाधा उपस्थित करती रहती है। ईश्वर छः गुणोंवाले हैं। उन्होंने षड्दोषोंवाली पूतनाको छठे दिन ही मारा। पूतनाके दोष हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर।

भगवान्‌के छः सद्‌गुण हैं: ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। भगवान्‌के प्रत्येक सद्‌गुणको अपने हृदयमें उतारनेवाला व्यक्ति दोषरहित हो जाता है।

भगवान्‌का नाम तो चिन्मय धाम है। चिन्मय धाममें प्रवेश करना है। इस चिन्मय धाममें प्रवेश कैसे किया जा सकता है?

जब वासनाका नाश होता है तभी चिन्मय धाममें प्रवेश प्राप्त होता है। इन्द्रियोंको श्री कृष्णकी लीलामें नहला दो। इन्द्रियोंको परमात्माके सन्मुख करो।

गोपियां इन्द्रियोंसे मुझे निहार सकें, सुन सकें, मनमें रख सकें इसी हेतुसे यह गोकुल लीला रची है।

भागवतमें इस पूतना चरित्रके सिवाय और कोई बाललीलाकी फलश्रुति बताई नहीं गई है। इसका अर्थ यह है कि मात्र इस एक अज्ञान-काम वासनाको पहचाना जाय तो भी कुछ कम नहीं है। अज्ञान दूर होने पर श्री गोविंदसे प्रीति हो जाती है।

गोविंदे लभते रतिम्।

यह पूतना मोक्ष तो भगवान्‌की अद्‌भुत बाललीला है। इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन करनेवालेको श्री कृष्णके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। इस चरित्रके चिंतनकी आज्ञा दी गई है।

यशोदा बुद्धि है और नंद जीव।

बुद्धि और जीव दोनों ही यदि कृष्णके साथ ही रहें तो कोई विपत्ति नहीं आएगी।

बाललीलाओंकी एक रहस्यमय बात यह है कि नद और यशोदा (जीव और बुद्धि) जब जब गोकुलसे दूर होते थे, कोई न कोई संकट आ ही जाता था। इसका अर्थ यही हुआ कि जब भी जीव ईश्वरसे दूर जाता है दुःखी हो जाता है।

यशोदा अर्थात् बुद्धि जब भी श्री कृष्णसे परे हो जाती है और नंद अर्थात् जीव जब भी श्री कृष्णको भूल जाता है राक्षस आ धमकते हैं।

शरीर और इन्द्रियोंको व्यवहारिक कार्य तो करना ही है किंतु बुद्धि (यशोदा) श्री कृष्णसे दूर होनी नहीं चाहिए।

वह पूतना कौन थी?

राजा बलि और रानी विंध्यावलीकी पुत्रीका नाम था रत्नमाला। जब वामनजी बलिराजाके यज्ञमें भिक्षा मांगने आए थे तब उनके स्वरूपको देख कर रत्नमालाके हृदयमें स्नेह

उमड आया था और उसके मनमें आया था कि कितना अच्छा होता अगर इस बालकको मैं पुत्र रूपसे पा सकती तो। मैं उसे पयपान कराके उसका लालन-पालन करके धन्य हो जाती।

वामनके तेजस्वी स्वरूपको देख कर रत्नमालाके हृदयमें पुत्र स्नेह उमड आया था किंतु उन्होंने अपने पिताकी जो अवदशा की उसे देख कर शत्रु भाव भी उमड आया। और उसके मनमें वामनजीको मारनेकी भी इच्छा हो गई।

अब इस वात्सल्यभाव और शत्रुभाव दोनो लेकर रत्नमाला पुनर्जन्ममें पूतना बन कर आई।

श्री कृष्णकी लीला निरोध लीला है। जिसके मनका निरोध होता है उसे मुक्ति मिलती है। जब तक मनमें वासना और विरोध होगा तब तक निरोध हो नहीं पाएगा। जब तक किसी भी वस्तुमें सूक्ष्म वासना भी रह गई होगी मनका निरोध नहीं होगा और फलतः मुक्ति भी नहीं मिलेगी।

शुकदेवजी वर्णन करते हैं।

राजन्, श्री कृष्णने जब शकटासुरका वध किया तब उनकी आयु एक सौ आठ दिनकी थी।

कृष्णके दर्शन लिए विना गोपियोंको चैन नहीं आतो था। व प्रातःकालमें ही कनैयाका दर्शन करने आ जाती थीं।

यशोदाजीके पास बडे सवेरे गोपियां आ गई तो उन्होंने कहा, अरी बावरी सखियां, क्या मेरे लालाको देखे विना तुम्हें चैन नहीं आता है क्या? वह तो सोया हुआ है। इतनी जल्दी क्यो आ गई तुम सब? उसे देखना हो तो देख लो। किंतु, हां, वहां जोरोंसे बातें मत करना, नहीं तो वह जग जाएगा।

गोपियां कनैयाको देख कर आनंदविभोर हो गई। एकने कहा, सोया हुआ कनैया कितना सुंदर दीखाई देता है! एकने कहा, लालाके केश कैसे घने सांवले हैं। दूसरीने कहा, उसकी उंगलियां कैसी नाजुक हैं! तो एक और गोपीने कहा, लालाके चरण ऐसे कोमल हैं कि पखारनेका मन होता है। एक गोपी लालाकी आंखोंकी बात करने लगी तो दूसरी अधरोष्ठके लालिमाकी।

ये बातें गोपियां नहीं, भक्ति कर रही थी। गोपियां तो भक्ति मार्गकी आचार्या हैं। भक्ति किस तरह की जाय वह गोपियोंने ही दीखाया है। यदि तुम्हें भक्ति करनी है तो परमात्माके अंग-अंगका चिंतन करो।

कृष्णके सभी अंगोंमें दृष्टिको स्थिर करना भी भक्ति ही है। स्वरूपासक्तिके विना भक्ति फलवती नहीं हो पाती। भगवान्का स्वरूपचित्त हृदयमें उतारो। भगवान्का आकार मनमें जम जाता है तो दर्शनमें बडा आनंद आता है।

जब तक भगवान्के स्वरूपसे आसक्ति नहीं हो पाती तब तक संसारकी आसक्तिसे छुटकारा नहीं मिल पाता।

श्री कृष्णने अपने सौंदर्य तेजसे गोपियोंकी दृष्टिको और बांसुरीके मधुर वादनसे कानोंको आकर्षित कर लिया था। गोपियां कृष्णकी ही बातें करती थीं, कथा सुनती थीं।

कृष्णलीलामें, कृष्णकथामें जगत्की विस्मृति हो जाती है। भगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति उनका भजन और सेवा करता है उसके प्रति उन्हें बडा स्नेह हो आता है।

जब यादवोंका विनाश हुआ था तब कृष्णकी आंखोंसे आंसूका एक बूंद तक नहीं टपका था।

लालाके करवट बदलने पर अंग परिवर्तन नामका उत्सव मनाया जाय।

परमात्माको घरमें पधरानेके बाद हमेशा उत्सव करते रहोगे तो वे हमेशा तुम्हारे घरमें रहेंगे। भगवान् श्री कृष्ण तो उत्सव प्रिय हैं। उत्सवके दिन मन, शक्ति और वाणीका सदुपयोग करो। भगवान्का स्मरण भी सारे दिन करते रहो। उत्सवके दिन प्रभु सेवामें देहभान तक भूला देना चाहिए। इस दिन अपनी आंखोंसे प्रभुप्रेमकी व्याकुलतामें अगर दो बूंद आंसू भी न गिर सके तो उत्सव मनाना व्यर्थ ही होगा।

उत्सवके दिन विद्वान्, वेदज्ञाता, सच्चारित्त ब्राह्मणका सन्मान करो। केवल रिश्तेदारोंको ही नहीं, गरीबोंको भी भोजन दो। गरीबोंको संतुष्ट करनेसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। सच्चे साधु-संन्यासीको भी भोजन कराना।

स्वयं भी भोगोपभोग करते रहनेके बदले जरुरतवालोंको भी कुछ न कुछ दे कर पुण्य प्राप्त करो।

'उत्' का अर्थ है ईश्वर और 'सव' का अर्थ है प्रागट्य। तो उत्सवका अर्थ हुआ ईश्वरका प्रागट्य। जब ईश्वरका हमारे हृदयमें प्रागट्य होता है, उत्सव ही है।

उत्सव मात्र लूली (जीभ) के लाड-प्यारके लिए नहीं, परमात्माके साथ एक होनेके लिए किया जाय। उत्सव तो प्रभुके साथ तल्लीन होनेके लिए मनाना है।

यशोदाने अंगपरिवर्तन-उत्सव मनाना चाहा। उन्होंने सोचाः- यह तो ठीक है कि मैं हर रोज ब्राह्मणोंकी पूजा करती हूं। किंतु जिन गोप-गोपियोंके आशीर्वादसे पुत्र मिला है उन्हींकी मैं आज पूजा करूंगी।

यशोदा ऐसा नहीं कहती हैं कि गरीबोंको दान करना है। प्रत्येक जीव ईश्वरका ही अंश है, ईश्वरका ही पुत्र है। अब यदि किसी जीवको गरीब कहनेसे ईश्वर बुरा नहीं मानेंगे क्या?

नम्रतापूर्वक, दीनतापूर्वक, आंखें झूका कर दान किया जाय। लेनेवाला भी एक जीव है, उसके हृदयमें भी परमात्मा ही का वास है ऐसा समझ कर दान दो। इसी कारणसे तो यशोदा दान करनेकी नहीं, पूजा करनेकी, सम्मान करनेकी बात करती हैं।

सहाय करना एक बात है और पूजा करना दूसरी बात है। दोनोंमें भावात्मक अंतर है।

कनैयाके प्रागट्यके दिन यशोदाजी गोपियोंको उपहार देने गई थीं। तो उस दिन गोपियोंने कहा था, आज तो हमें कुछ लेना नहीं, कनैयाको देना चाहिए। उन्होंने उस दिन कुछ भी नहीं लिया था।

जहां लेनेकी इच्छा होती है वहां मोह होता है और जहां देनेकी इच्छा होती है वहां प्रेम।

यशोदा कहती हैं, आज मुझे सभी ब्रजवासियोंकी पूजा करना है। उन्होंने सारे गांवको आमंत्रण दिया। नंदजीने भी कहा, विना संकोच दे दो। जबसे कनैया घरमें आया है, खबर तक नहीं होती है कि घरमें कौन लक्ष्मी रख जाता है।

लक्ष्मीजी तब चली जाती है जब मनुष्य उनको दुरुपयोग करने लगता है।

जीवनमें एक अवसर ऐसा भी आता है जब भाग्य अनुकूल होता है, भाग्योदय हुआ होता है। ऐसे समय बडे प्रेमसे दान करना। निःसंकोच देते रहो। जो भी दोगे वह दुगुना हो कर वापस आएगा। और जब भाग्य प्रतिकूल होगा तब संपत्तिको संजोये रखनेका लाख प्रयत्न करोगे तो भी सब कुछ चला जाएगा।

भाग्य प्रतिकूल हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर भी दरिद्र हो गए थे। और वनमें भटकना पडा था। तो साधारण मनुष्यकी तो चर्चा ही कैसे करें? नलराजाको भी कभी सब कुछ गंवा देना पडा था।

जो भी मिले सत्कर्मोंमें खर्च करते रहो। सुपात्रको दान देते रहो।

आज भाग्य अनुकूल था सो यशोदाजी दिल लगा कर दान करने लगीं। पीतांबर, साडी और आभुषणका ढेर लूटा दिया।

यशोदाने सोचा कि कनैयाके सो जाने पर मैं अच्छी तरह दान दे सकूंगी। अगर वह जाग रहा हो तो मुझे उसे गोदमें ले कर बैठे रहना पडेगा और सेवक सम्मान करते रहेंगे। सभी दानकी अपेक्षा मान दान श्रेष्ठ है। वे सोच रही थीं कि यदि कनैया जागता ही हो तो मैं सभीका आदर कैसे कर पाऊंगी?

जब गरीबों और पवित्र ब्राह्मणोंका जब सम्मान किया जाता है तो परमात्माको बडा आनंद होता है। ईश्वर जब किसीको संपत्ति देते हैं तो ऐसी भी आशा करते हैं कि वह दूसरोंका पालन-पोषण करे।

लालाने आंखें तो बंद कर लीं किंतु वह अंदरसे तो जाग ही रहा था। यदि मेरे सो जानेसे माताको आनंद मिलता है तो मैं सो जाऊं। भगवान्‌को नाटक करनेकी बडी आदत है। इसी कारणसे तो उनका एक नाम नटवर भी है। माताको बता रहा है कि वह सो गया है।

कृष्णके जागने और सोनेके विषयमें शांकरभाष्यमें कहा गया है: वैसे तो ईश्वर निष्क्रिय हैं किंतु जीव मायाके कारण क्रियाका आरोप करता है। ईश्वर क्रिया करता तो नहीं है किंतु मायाके कारण क्रियाका आरोप किया जाता है।

जब हम गाडीमें बैठ कर कहीं जाते हैं तो कहते हैं कि अमुक शहर आ गया। किंतु हम सोचेंगे तो समझमें आ जाएगा कि न तो कोई शहर आता और न तो कोई शहर जाता है। गाडी ही हमें एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाती है।

इसी प्रकार ईश्वर कोई क्रिया स्वयं नहीं करते है। वे तो लीला ही करते हैं। लीला निःस्वार्थ होनेके कारण आनंदरूप होती है।

क्रिया और लीलामें अंतर है। जिसके साथ कर्तृत्वका अभिमान और सुखी होनेकी इच्छा है वह क्रिया है। और जिसके साथ कर्तृत्वका अभिमान नहीं है तथा अन्यको सुखी करनेकी इच्छा है वह लीला है। जीव जो कुछ करता है वह क्रिया है और ईश्वर जो कुछ करते हैं वह सब लीला है।

यशोदाजीने सोचा कि मेरे यहां आज सारा गांव उमडेगा सो लालाका पलना यदि बाहर गाडीके नीचे रख लूं तो घरमें ठीक ठीक जगह बढेगी। सभी गोपियां आनेवाली थीं। सो स्थानाभावके कारण यशोदाजीने कनैयाका पलना गाडीके नीचे रख दिया। उस गाडीमें दही-दूध आदि था।

यशोदा एक एक करके सभी गोपियोंका आदर करने लगीं। गोपबालकोंको भी सुंदर कंठी देती थीं जिससे सभी मातायें प्रसन्न होती जाती थीं। गोपियां कनैयाको हार्दिकतासे आशीर्वाद देती जाती थीं।

बाल कृष्णलालकी जय।

सभी आए हुए व्रजवासियोंका आदर-सम्मान करती हुई यशोदाजी आनंदमें लीन हो गईं।

इधर बालकनैयाकी नींद उड गई। कहां है मेरी माता? वह उत्सव तो मेरा ही मना रही है जब कि मुझे यहां आंगनमें गाडीके नीचे रख छोडा है।

उत्सवके दिन ही भगवान्‌को भूला देना ठीक नहीं है।

यशोदाजीने उत्सवके दिन ही श्री कृष्णको भूला दिया सो विपत्ति आ गई।

व्यवहारसे छूटकारा नहीं मिल पाता। इसे तो निभाना तो पडेगा ही। जब तक कुछ न कुछ अपेक्षा है, व्यवहार भी चलता रहेगा। व्यवहारको छोडना तो है ही नहीं और व्यवहार पालन कोई अपराध भी नहीं है। किंतु मात्र व्यवहार ही निभाए रहना, व्यवहारमय बन जाना, व्यवहारमें भगवान्‌को भी भूल जाना अपराध ही है। धंधा-व्यापार अपराध नहीं है किंतु उसीमें लीन हो कर भगवान्‌को भूला देना अपराध है।

व्यापारी दुकानमें भगवान्‌की छवीकी पूजा करता है किंतु ग्राहकके साथ बातचीतके समय भगवान्‌को भूल जाता है। वह ग्राहकको ईश्वरकी उपस्थिति ही में ठगता है। वह ग्राहकको पांच रुपयेकी वस्तु पच्चीस रुपयेमें बेचता है और फिर भी कहता है, तुम मेरे जाने-पहचाने हो सो मैं बिना नफा कमाये ही बेच रहा हूं। लेनेवाला सोचता है कि यह दूकानदार पहचाना हुआ है सो मूल कीमतमें ही माल दे रहा है। ग्राहक बेचारा क्या जाने कि पडतर भाव (मूल कीमत) का अर्थ व्यापारी तो दूसरा ही कर रहा है। दूकानदारका मतलब है- " तुं पडवानो अने हुं तरवानो " अर्थात् तुम गिरोगे और मैं तर जाऊंगा।

हम सबका लक्ष्य है श्री कृष्णमिलन। इस लक्ष्यको हमेशा ध्यानमें रखकर ही सारा व्यवहार निभाते चलो।

ज्ञानी- महात्मा भी व्यवहार तो करते ही है किंतु ईश्वरको वे कभी नहीं भूलाते।

गोपियोंको सम्मानिन करनेमें यशोदाजी श्री कृष्णको भूल गईं।

कई लोग ऐसे हैं जो उत्सवके समय ठाकोरजी ही को भूल जाते हैं। अरे, ठाकोरजीके निमित्त ही तो उत्सव है फिर उन्हें ही क्यों भूल जाते हो? व्यवहारका कारोबार करते करते भी ठाकोरजीको निहारना चाहिए। घरके कामकाज करते समय भी दृष्टि तो ठाकोरजीसे ही लगी रहनी चाहिए।

जब कोई मेहमान हमारे घर पर आयें तो उनको प्रसन्न करनेके हम उनसे बार बार बातचीत करते है, अन्य सभी कामकाज करते समय भी हमारा ध्यान तो महमानसे ही संबंध रहता है। तब यह तो ठाकोरजी हैं। उनके आगमन पर हमारा मन और ध्यान उन्हींके साथ ही लगा रहना चाहिए।

प्रभुसेवाका कोई अंत ही नहीं है। देह विलय होने पर ही सेवाकी समाप्ति होती है। सत्कर्म करनेमे तो हमेशा असंतुष्ट ही रहो। जीते जी सेवाकी समाप्ति करनेवाला व्यक्ति सच्चा वैष्णव नहीं है।

गोपियोंका सम्मान करनेमें यशोदाजीने लालाको भूला दिया तो उसे बुरा लगा। लालाने मजाक करनेकी सोची। वह रोने लगा किंतु माताको तो सुनाई ही नहीं देता था। वह हाथ-पांव हिलाता हुआ रोने लगा। रोते रोते उसने देखा कि गाडी पर पूतनाका भाई शकटासुर आ बैठा है।

शकटासुर अपनी बहन पूतनाकी मृत्युका बदला लेनेके लिए आया था। कृष्णने तो सोच लिया कि यह शकटासुर भी कंसकी कठपूतली ही है।

लालाने गाडीको जोरसे एक लात लगा दी तो गाडी उलट गई, दूध-दही आदि सब कुछ जमीन पर बीखर गया और शकटासुर भी गाडी नीचे दब कर मर गया।

यह ऐसा भानजा है जो कंस मामाके सभी खिलौनोंको तोड फेंकता है।

गाडी उलट गई तो बडा धमाका हुआ। सभी दौडे हुए आए। बालकोंने बताया कि लालाकी लातने इस गाडीको उलट दिया है।

इस प्रसंगमें भी एक रहस्य है। यदि तुम भी प्रभुको अपनी संसार गाडीके नीचे रखोगे तो तुम्हारी गाडी भी वे उलट देंगे। मुख्य वस्तुको गाडीके ऊपर रखो और गौणको गाडीके नीचे।

जिसके जीवनमें प्रभुका स्थान गौण है उसकी संसार गाडी उलटी ही जाती है।

गृहस्थाश्रमकी एक गाडी है और पति-पत्नी उसके पहिए। इस गाडी पर श्री कृष्णको पधराओ। जीवनरथके सारथी हैं श्री कृष्ण। इस जीवनरथके अश्व हैं हमारी इन्द्रियां।

प्रभुसे प्रार्थना करो, नाथ, मैं आपकी शरणमें आया हूं। जिस प्रकार आपने अर्जुनके रथका संचालन किया था उसी प्रकार आप मेरे जीवनरथके सारथी बनें और सन्मार्ग पर ले जायं।

जिसके शरीररथका संचालन प्रभुके हाथोंमें नहीं है उसका संचालन मन करता है। और मन एक ऐसा सारथी है जो जीवनरथको पतनकी गर्तामें गिरा देता है। यदि तुम्हारी गाडी परमात्माके हाथमें नहीं है, तो इन्द्रियां रूपी अश्व उसे पतनके गढेमें गिरा देंगे।

अर्जुनकी जीत इसी कारणसे हुए थी कि उसने परमात्माको सारथी पद दिया था, मनको नहीं।

कुछ लोग मानते हैं कि आज छुट्टी है तो बस सारा दिन अच्छा अच्छा खायेंगे-पीयेंगे और सोए रहेंगे। वह तो कुंभकर्ण-सी बातें हुई। ऐसा कभी न किया जाय। रविवार तो वीर

होनेका वार है । रविवारके दिन तेल-मीर्ची भजिया आदि खानेके बदले दूध और चावल खाना। सारा सप्ताह बहुत कुछ खाया है । सो छुट्टीके दिन तो सात्त्विक आहार ही किया जाय और दिन जपमाला फिरायी जाय । रविवारके दिन ब्रह्मचर्यका पालन करो ।

रविवारके दिन एक गृहस्थ कथाश्रवण करने चला तो उसका पुत्र रोने लगा । पत्नीने कहा, यह बच्चा जब रो रहा है तो तुम्हारा कथामें जाना ठीक नहीं है । उसे रोता हुआ छोड कर कथामें जाओगे तो कौन-सा पुण्य कमाओगे ? तो उस गृहस्थने सोचा, मैंने सुना है कि किसीके दिलको व्यथित करना अच्छा नहीं है । मैं यदि कथामें जाऊंगा तो मेरी पत्नीको दुःख होगा । उसने ऐसा सोच कर कथामें जानेकी बात छोड दी ।

अच्छा होता अगर वे सब घरमें ही रह कर विष्णुसहस्त्र नामका पाठ करते । किंतु उन्हें याद आया कि अमुक फिलमका यह अंतिम सप्ताह है । कथा तो रोज रोज होती रहेगी किंतु यह फिलम तो चली जाएगी । और वे सब कथामें जानेके बदले फिलममें जा बैठे ।

पति-पत्नीका संबंध केवल विलासिताके लिए नहीं, प्रभु भजनके लिए भी है । गृहस्थके जीवनमें कामसुख नहीं, भागवत सेवा ही मुख्य है । मनुष्यके जीवनमें भोगकी नहीं, भगवान्‌की ही प्रधानता होनी चाहिए । गाडी किसी टेढेमेढे रास्ते पर जाते ही उलट जाती है । भगवान्‌को गाडीके नीचे नहीं, ऊपर ही बिठलाओ।

यशोदाजीने भगवान्‌को तो गाडीके नीचे रख दिया और दूध-दही-माखन आदि सांसारिक भोग पदार्थ गाडीमें रखा । उन्होंने भगवान्‌को गौण स्थान दिया और सांसारिक भौतिक पदार्थोंको मुख्य । सो सारी गाडी ही उलट गई ।

तुम्हारे जीवनमें कामसुख प्रधान बनेगा और भगवान् गौण तो तुम्हारा जीवनरथ उलट ही जाएगा ।

भगवान्‌को गाडीके नीचे रखोगे तो शकटासुर गाडी पर सवार हो जाएगा ।

काम, लोभ आदि ही तो शकटासुर हैं । दूध, दही, माखन आदि भोग पदार्थके प्रतीक है । जिसके जीवनमें भौतिक पदार्थोंकी प्रधानता है उसकी जीवनगाडी पर शकटासुर सवार हो जाता है ।

दांपत्य जीवनमें धर्मका ही प्राधान्य होना चाहिए । पत्नी कामपत्नी नहीं, धर्मपत्नी कहा गया है । प्राथमिकता धन और कामसुखको नहीं, धर्मको दी जाए ।

जबसे हमने धनको ही सब कुछ मान लिया है तबसे जीवनमेंसे शांति गायब हो गई है । धनको मुख्यता देनेसे सदाचार चला गया है । धनकी अपेक्षा संयम और सदाचार ही अधिक सुखदायी है । धन यदि मर्यादासे बाधित होगा तो शांति आएगी ।

जीवनके चार पुरुषार्थ बताए गए हैंः- धर्म अर्थ, काम और मोक्ष । इनके क्रममें भी एक विशिष्ट तारतम्य है । धर्म और मोक्षके बीच हैं अर्थ और काम । अर्थ और कामकी प्राप्ति धर्म और मोक्षकी मर्यादामें रह कर ही की जाय । अर्थ और काम गौण हैं, धर्म और मोक्ष प्रधान । यदि धर्म और मोक्ष गौण हो जायेंगे तो जीवनरथ अधोगतिकी गर्तामें धंस जाएगा ।

जीवनमें लौकिक सुखोंका प्राधान्य हो जाएगा तो शकटासुर सवार हो जाएगा ।

एक संतके मतानुसार, शकटासुर वधकी लीलाके समय श्री कृष्णकी वय एक सौ आठ दिनोंकी थी। जब आपके शिर पर शकटासुर सवार हो जाय, तब एक सौ आठ मोतियोंवाली माला लेकर भगवान्‌के नामका जप करो।

लौकिक व्यवहारको प्रधानता तथा श्री कृष्णको गौणता देते ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शकटासुर आ धमकते हैं। जीवनमें श्री कृष्णको प्रधानता देनेसे शकटासुरका भय निर्मूल हो जाएगा।

कुछ लोग कहते हैं कि कथाश्रवणके बिना ही यौवन गंवा दिया और अब यह शकटासुर नीचे उतरनेका नाम ही नहीं लेता है।

श्री कृष्ण शकटासुरका वध अवश्य करते हैं। जब तुम्हारे हृदय पर काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी शकटासुर सवार हो जाय तब माला लेकर नारायणका नाम जपन करने लगो।

मालाके साथ मैत्री होने पर शकटासुरको निरूपद्रवी होना पडेगा। मालाके साथ संबंध नहीं हो पाएगा तो शकटासुर सवार हो जाएगा। काम, क्रोध आदिका सामना करना है तो परमात्माका आश्रय लेना होगा।

अब आता है तृणावर्तवधका प्रसंग।

किसी एक दिवस यशोदाजी श्री कृष्णको अपनी गोदमें बिठलाकर दुलरा रही थीं। उस समय तृणावर्तको मारनेके लिए भगवान्‌ने अपना वजन बढा दिया। यशोदाजी भारको न सह सकी तो उन्होंने कनैयाको जमीन पर बीठला दिया और घरकाममें जुट गई।

तृणावर्त ववंडरका रूप लेकर आया और श्री कृष्णका हरण करके आकाशमें उड चला। भगवान्‌ने अपना वजन बढा दिया और तृणावर्तको पकडा। तृणावर्तके प्राणपंखेरु उड गए।

तृणावत् जीवं आवर्यती स तृणावर्तः।

रजोगुणका चक्कर ही तृणावर्त है। काम और क्रोध है रजोगुणके पुत्र। रजोगुण मनमें आया नहीं कि मन चंचल हो जाता है। तृणावर्तरूपी आंधी मनमें आते ही वह चंचल हो जाता है। बुद्धि जब ईश्वरसे विमुख हो जाती है तब तृणावर्त–रजोगुण मनमें घूस जाता है और उसे चंचल बना देता है।

यशोदाकी आंखोंमें धूलि जा घूसी।

जब सांसारिक सौंदर्यको निहारनेमें सुख लगने लगे तब मान लेना कि आंखोंमें तृणावर्त आन बैठा है। और फिर भगवान् दिखाई नहीं देते।

कनैया धीरे धीरे बडा होने लगा। घूटनोंके बल चलता हुआ वह गौशालामें भी पहुंच जाता था। सभी गायें भी उसे पहचानती थीं।

कई महान् ऋषि भी गायोंका अवतार लेकर गोकुलमें आ बसे थे। एक छोटा–सा बछडा था। वह भी छोटा था और कनैया भी। कृष्ण उसे अपना दोस्त मानता है। वह बछडा "हम्मा हम्मा" करता था तो लाला बोलता था मैया मैया।

कनैया उस बछडेसे अलग होता ही नहीं था। गाय भी आनंदावेशमें बछडेको भूल कर कनैयाको चाटने लगती थीं।

यशोदाको विश्वास होने लगा कि गायोंकी सेवा की जिसके फल-स्वरूप उनकी आशिषसे हमें पुत्र मिला है जो गायोंकी सेवा करेगा। कनैया तो उन गायों और बछडोंके साथ ही खेलता रहता था। वह गायोंकी पूंछ पकड कर खडा होनेकी कोशीष करने लगा।

माता कहती थी, अरे काना, बडा शरारती है तू। ये गाएं तो तुझे पीटेंगी। कनैयाका एक और नाम कायम हो गया- 'वत्सपूछावलंबनम्'।

एक बार यशोदाजी लालाको स्तनपान करा रही थीं। उसका सुंदर मुख निहार रही थीं। माताका प्रेम देख कर कनैया जोरोंसे दूध पीने लगा। बालक यदि दूध बहुत पी जाय तो माताको चिंता होने लगती है कि कहीं बीमार न हो जाय अपना लाडला।

जब तक वैष्णवके हृदयमें प्रेम उमडने नहीं लगता है तब तक प्रभु भुखे नहीं होते। उनके प्रार्थना करो, नाथ, मैं आपको तो क्या भोजन कराऊं ? आप सारे जगत्‌के अन्नदाता हैं। फिर भी मैंने जो थोडी-बहुत सामग्री बनाई है, आप स्वीकार करें।

कनैयाके अत्यधिक दुग्धपानसे यशोदा चिंता करने लगीं। तो कनैयाने कहा, माता, तेरा दूध मैं अकेला नहीं पी रहा। मेरे मुखमें समाया हुआ सारा विश्व तेरे दूधका पान कर रहा है।

कनैयाने जमुहाई लेनेके लिए मुंह खोला और यशोदाजीको समग्र ब्रह्मांडका दर्शन कराया। कनैया मातासे कहता है, तू एकेले मुझे नहीं, अनंत जीवोंको दूध पीला रही है। समग्र ब्रह्मांडको तू दुग्धपान करा रही है।

भगवान्‌ने सुदामाको अपार संपत्ति दी तो यमराजाको चिंता हुई। उन्होंने भगवान्‌से कहा, सुदामाके भाग्यमें दारिद्र्यका योग है। उसके भाग्यमें संपत्तिका क्षय लिखा हुआ है। आपने इतना सारा ऐश्वर्य उसे देकर ठीक नहीं किया है। कर्ममर्यादाका भंग होगा कर्मानुसार ही सुख-दुःख दिये जाते हैं।

प्रभुने यमराजासे कहा, मैं वेदोक्त कर्ममर्यादा तोडना नहीं चाहता। जो मुझे भोजन कराता है वह समस्त ब्रह्मांडका भोजन कराता है। एक मुठी भर तांदुल मुझे खिला कर सुदामाने सारे विश्वको भोजन कराया है।

जो श्री कृष्णको भोजन कराता है वह सारे विश्वको अन्नदान करता है और उसके नाम पुण्य जमा हो जाता है। भगवान् कर्ममर्यादाका भंग कभी नहीं करते हैं।

लालाने यशोदाजीसे कहा, माता, तू केवल मुझे ही नहीं, समस्त ब्रह्मांडको तृप्त कर रही है।

गर्गाचार्य नामकरणविधि, नामकरण संस्कार संपन्न करनेके हेतु आए।

संस्कारसे मन शुद्ध होता है। संस्कारसे दोष नष्ट होते हैं।

शास्त्रने सोलह संस्कारोंका आयोजन किया है। आजकल तो प्रायः सभी संस्कार भूलाए जा चुके हैं। हां, दो संस्कार बाकी रह गए हैं विवाह और अग्निसंस्कार।

बालकका जन्म होने पर जातकर्म संस्कार किया जाता है। किंतु अब तो बालकका जन्म प्रसुतिगृहमें होता है सो जातकर्म विधि तो कैसे हो पाएगी। वहां मधुप्राशन विधि कैसे हो पाती होगी? डोक्टर न जाने क्या क्या पीलाते होंगे। इसी कारणसे संस्कारोंका लोप हो रहा है फलतः देश दुःखी हो रहा है।

अन्नप्राशन, नामकरण, यज्ञोपवित्र आदि सोलह संस्कार बतलाए गए हैं। जीवकी शुद्धिके लिए संस्कार आवश्यक हैं। आजकल सभी धार्मिक विधियोंको गौण मान ली गई हैं। केवल लौलिक आचारोंको ही महत्व दिया जाने लगा है। ब्राह्मणसे कहा जाता है, गोर महाराज, पूजा जरा जल्दी करा देना, सारे गांवमें बारातको घूमाना जो है।

गर्गाचार्यने कहा, यदि नाम करण संस्कार ठीक तरहसे करना है तो आधा दिन लग जाएगा। बाबा, तुम तो सारे गांवको बुलाओगे। वे सब यहां आकर मुझसे जल्दी करनेको कहेंगे। सो विधि ठीक ढंगसे नहीं हो पाएगी।

नंदजीः– धार्मिक विधि तो ठीकसे होनी ही चाहिए। यदि आप चाहें तो मैं किसीको भी नहीं बुलाऊंगा।

एकांतमें नाम जपन हो सकता है। "एकांत" का भावार्थ है एक मात्र ईश्वरमें ही सभी प्रवृत्तियोंका लय होना। मनको पूर्णतः एकाग्र करके ही नाम जपन करो।

गर्गाचार्यकी ज्योतिषि विद्याकी कसौटी करनेकी बात सोची गई।

श्री कृष्णको रोहिणीकी गोदमें बीठलाया गया और बलरामको यशोदाजीकी गोदमें।

गर्गाचार्यने कहाः– नंदजी, रोहिणीकी गोदमें बैठा हुआ पुत्र तुम्हारा है। वह हमेशा रंग (वर्ण) बदलता आया है। इस बार इसने श्याम वर्ण धारण किया है। वह सभीके मनको आकर्षित करेगा और सभीको आनंद देगा। उसका नाम कृष्ण रखा जाय। यह बालक महाज्ञानी होगा। इसके जन्माक्षर बडे अच्छे हैं। इसके पांच ग्रह उच्चक्षेत्रमें हैं। आठ ग्रह अच्छे हैं, मात्र एक राहु ही बुरे स्थानमें है।

नंदबाबा घबडा गए। राहु बुरे स्थानमें है। क्या होगा मेरे पुत्रको?

गर्गाचार्यः– वैसे डरनेकी बात कोई नहीं है। जिसके सप्तम् स्थानमें नीच क्षेत्रमें राहु हो वह पुरुष कई स्त्रिओंका पति होता है।

नंदजीः– आपकी बातें सच हो सकती हैं। एक ब्राह्मणने मुझे आशीर्वाद दिया था कि तेरा पुत्र सोलह हजार रानियोंका स्वामी होगा।

गर्गाचार्यः– बाबा, और तो मैं क्या कहूं? यह कनैया नारायण जैसा ही है। नारायण मेरे इष्टदेव हैं। प्रेमके कारण पक्षपात हो जानेका डर रहता है।

किसी समय चार व्यक्ति भोजन कर रहे थे। किसीने पूछा कि इनमेंसे दामाद कौन-सा होगा। एकने कहा, कि जो शर्मीला है वही दामाद हो सकता है। तो दूसरीने कहा, वह जो अकड कर बैठा है वही दामाद होगा। तीसरीने कहा, जब सासजी परोसने आएगी तब मालूम हो जाएगा। सासजी जब घी परोसने आई तो उन तीनों व्यक्तियोंमेंसे एकको अधिक घी परोसा। वही तो दामाद जो था।

सनातन गोस्वामी कहते हैं, नारायणके समान श्री कृष्ण हैं ऐसा कहने पर तो नारायण श्रेष्ठ माने जाएंगे। सो ऐसा कहना चाहिए कि नारायणके समान श्री कृष्ण नहीं, श्री कृष्णके समान नारायण हैं। वृंदावनके साधु कहते हैं कि नारायण समान नहीं किंतु नारायण श्री कृष्ण जैसे है।

नारायणके समान कृष्ण हैं। इसका अर्थ होगा नारायण वरिष्ठ हैं। श्री कृष्णके समान नारायण हैं ऐसा कहनेसे नारायण नहीं, श्री कृष्ण वरिष्ठ हो जाएंगे।

वैसे तो श्री कृष्ण और नारायणमें कोई अतर है ही नहीं। यह सब बातें तो मधुर कलह मात्र हैं। नारायणमें साठ और मुरली मनोहर श्री कृष्णमें चौसठ गुण बताए गए हैं। अर्थात् नारायणकी अपेक्षा श्री कृष्णमें चार गुण अधिक हैं। वे गुण इस प्रकार हैं:- (१) रूप-माधुरी (२) लीलामाधुरी (३) वेणुमाधुरी (४) प्रियामाधुरी। श्री कृष्णके ये चार गुण नारायणमें नहीं हैं।

नारायणके चार हाथ होनेके कारण वे कुछ कुरूप-से लगते हैं अतः दो हाथोंवाले श्री कृष्ण श्रेष्ठ हैं।

वैकुंठवासी नारायण राजाकी भांति अकड कर खडे रहते हैं सो वे कुछ अभिमानी-से लगते हैं। वे हमारी साथ बोलते भी नहीं हैं। कनैयामें कोई अकडपन नहीं है। वह हम सबके साथ बोलता, खेलता, घूमता है। अतः हमारा कनैया ही श्रेष्ठ है।

अतिशय आतुरता होने पर परमात्मा दौडते हुए आते हैं।

गोकुलमें एक नववधू आई थी जो कनैयाके दर्शन पानेके लिए बडी आतुर थी। किंतु उसकी सास उसे वहां जाने ही नहीं देती थी। आज जब वह जल भरने गई तो रास्तेमें श्री कृष्णका ही चिंतन कर रही थी। लाला बांकी जुल्फें, मस्तक पर मोरपींछ, होठों पर बांसुरी, कानोंमें मकराकृति कुंडल और कटि पर पीतांबर धारण किए हुए थे। वह छुमक छुमक करता हुआ उस गोपीके पीछे हो लिया। बाल-कनैयाने पीछेसे गोपीका आंचल पकड लिया। गोपीने देखा कि कनैया उसका आंचल पकडे हुए खडा है। तीन बरसके उस कनैयेको गोपीने प्यारसे अपनी छातीसे लगा लिया।

लालाने भी उस गोपीको अपनी छोटी छोटी बांहोंमें भर लिया। और कहने लगा, तू कितनी सुंदर है। लगता हैं मैं ही तेरा स्वामी हूं। रातके समय रासमें आना।

कनैया बडा वाणी चतुर है।

कोई सामान्य पुरुष कभी राह चलती किसी स्त्रीको कभी ऐसा कहता है कि वे दोनों एक दूसरेके हैं।

कनैया तो सभीका पिता है, पति है और संतान भी है।

जरा सोचो तो। ऐसा कोई और देव है भी जो राह पर चलती हुई किसी नारीके गलेमें अपनी बांहोंका हार पहना सके। परस्त्रीसे तो सभी देव डरते हैं। किंतु वैकुंठके नारायण तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और कनैया पुष्टि पुरुषोत्तम है।

कनैयाकी जैसी लीला मनुष्य तो क्या कोई अन्य देव भी नहीं कर पाता। श्री कृष्ण तो देवाधिदेव हैं।

एक सखी दही, दूध और माखन बेचने निकली है। कृष्णप्रेममें वह सुधबुध बिसर गई है। वह बोलना तो चाहती है, दही लो, माखन लो। किंतु उसके अंतरमें माधव छुपा है सो वह बोलने लगी, माधव लो कोई माधव लो।

भोली गोपी हरिको बेचने चली। चौदह भुवनके नाथको मटुकीमें लेकर चली। कृष्ण-प्रेममें ऐसी तो तन्मय हो गई थी कि उसे भान तक नहीं था कि वह क्या बोल रही थी।

लालाने सुना, माधव लो, कोई माधव लो। तो उसने सोचा, अरे वाह, यह तो मुझे ही बेचने चली है।

रास्तेमें श्री कृष्ण प्रगट हुए और सखीसे कहने लगेः– अरी दूधवाली, मैं गोकुलका राजा हूं, जरा माखन तो देना।

प्रेमका बाहुल्य होने पर सतानेमें बडा मजा आता है। गोपीके हृदयमें प्रेम है। वह कनैयाको सताने लगी। अरे तू कैसे हो गया गोकुलका राजा? गोकुलके राजा तो हैं बलराम भैया। मैं तुझे नहीं, उन्हींको माखन दूंगी। न जाने नंदबाबा इस काले–कलूटे कनैयाको कहांसे उठा लाए हैं! नंदबाबा तो गोरे हैं और तू काला। कहांसे लाए हैं वे तुझे?

कनैयाने गोपीकी साडीका आंचल पकड लिया। गोपी कहने लगी, अरे लाला, छोड दे मेरी साडी। मेरे दूध, दही, माखन मीट्टीसे मिल जाएंगे और मेरी सास मेरी खाल उधेड देगी।

गोपीने बलपूर्वक अपना आंचल छुडा लिया और आगे बढने लगी। पीछे मुंड कर देखा तो कनैया मुंह फूला कर बैठा हुआ था। गोपी वापस आकर मनाने लगी। काना, माखन ले, मीसरी भी ले। चाहे सो दूं। मेरी बडी भूल हुई। अब मान भी जा।

किंतु कनैया अब क्यों मान जाय? मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। कनैया न माना तो गोपी आगे बढने लगी। तो पीछेसे कनैयाने पत्थर उठा कर ऐसा तो नीशाना लगा कर मारा कि गोपीकी मटुकी चुर चुर हो गई।

ऐसी लीला श्री कृष्णके सिवाय अन्य कोई भी देव नहीं कर सकता। श्री कृष्ण सबके पति जो हैं।

श्री कृष्ण अब घर आकर चुपचाप माताकी गोदमें छुप गया। वह ऐसा शांत सयाना बैठा हुआ था कि मानो कुछ हुआ ही नहीं है। उस गोपीने यशोदाके पास आकर कनैयाकी शरारतकी शिकायत की। माताजी, तुम लालाको मुंह लगा रही हो किंतु वह बडा शरारती हो गया है। उसने मेरी गगरी फोड दी, मेरे कपडे बीगाड दिये।

लाला कहने लगा, माता, मुझे इसका बडा डर लगता है। उसके चले जानेके बाद मैं सारी बात बताऊंगा।

कनैया मातासे कहने लगाः यह गोपी बडी कंजूस है। वह तीन–चार दिन पहलेका दूध–दही बेच रही थी। मैंने सोचा कि बीगडा हुआ दूध–दही बेचना ठीक नहीं है। यदि कोई गरीब इसे खा कर बीमार हो जाए तो? और ऐसा सोच कर मैंने उसकी मटकी फोड डाली। मै आरोग्य प्रचारक मंडलका प्रधान जो हूं।

यशोदाजी गोपीको लताडने लगी। अली गोपी, बीगडा हुआ दही-दूध क्यों बेचती है रे तू ?

कनैया हंसने लगा और गोपी भी। कनैया बोलनेमें तो बडा चतुर है।

कनैया मटकी फोडता है फिर भी प्यारा लगता है। वह राहमें चलती किसी भी गोपीकी मटकी फोड सकता है। ऐसा अन्य कोई देव है जो रास्ते पर चलती हुई किसी नारी-को छेड सके ? और सब तो डरते हैं कि यदि किसि नारीको हाथ भी लग जाय तो थप्पड खानी पडेगी। हमारी पुजा कोई नहीं करेगा।

श्री कृष्णकी लीलामाधुरी दिव्य है। उनका अनुकरण कोई और देव नहीं कर सकता। श्री कृष्ण-सा आचरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान् नारायण हाथमें शंख रखते हैं। शंख फूंकनेवाला देव श्रेष्ठ है या बांसुरी बजानेवाला ?

अन्य देव तो हाथमें शस्त्रास्त्र लिए हुए हैं। किसीके हाथमें सुदर्शन है तो किसीके हाथमें धनुष्य बाण। तो किसीके हाथमें त्रिशूल है। मानो इन सबको संसारका डर है। कनैया हाथोंमें शस्त्र नहीं रखता। लालाके एक हाथमें बांसुरी है और दूसरेमें मीसरी। शस्त्रधारी देव श्रेष्ठ है या कनैया ? हम तो कनैयाको ही श्रेष्ठ कहेंगे।

लाला रोज बांसुरी बजाता है। लालाकी बांसुरी जिसने भी सुनी हो, संसारके प्रति उदास हो जाता है। बांसुरीकी धून सुनते ही राधेकृष्ण राधेकृष्ण करने लगता है। श्री कृष्णकी वेणुमाधुरी दिव्य है।

गोपी कहती हैः—

मुरली बजाके मेरो मन हरि लिन्हो।

एक गोपी प्रेम भरी उलाहना देती हैः—

मुरहर ! रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।

हे मुरारे ! भोजन पकानेके समय, कृपा करके, बांसुरीकी तान मत छेडो। तुम्हारी मुरलीकी धून सुन कर चूल्हेमें रखी हुई सुखी लकडियां रसभीगीं हो कर रस बहाने लगती हैं। सो अग्नि बूझ जाती है। अग्नि बूझनेसे मैं रसोई कैसे पका सकूंगी ?

लालाकी वंसीकी धून जिसके भी कानोंमें जाती है वह उनका सेवक बन जाता है। सो मैंने मान लिया है कि कनैया ही सर्वश्रेष्ठ है।

कनैयाकी रूपमाधुरीने भी अनेकोंको आकर्षित किया है। निर्गुण ब्रह्मके उपासक स्वामी मधुसुदन भी श्री कृष्णकी मनोहर रूपमाधुरीके पीछे पागल हो गए थे। उन्होंने कहा हैः—

अद्वैतवीथीपकरुपास्याः स्वराज्यसिंहासन लब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

अद्वैत मार्गके अनुयायी द्वारा पूजनीय तथा स्वराज्य रूपी सिंहासन पर प्रतिष्ठित होनेके अधिकार प्राप्त हमको गोपियोंके पीछे पीछे फिरनेवाले किसी शठने अपनी इच्छा न होने पर भी चरणोंका दास बना लिया है।

श्री कृष्णकी रूपमाधुरीके पीछे कवि रसखान भी पागल हो गए थे। उन्होंने कहा हैः-

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिन्हूं पूरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधिको सुख नंदकी गाय चराई विसारौं।

श्री कृष्णकी रूपमाधुरी दिव्य है। वे तो वैकुंठ निवासी नारायणसे भी श्रेष्ठ हैं।

यशोदा गर्गाचार्यसे कहती हैंः- महाराज, भोजनका समय हो गया है। पहले आप भोजन कर लीजिए, फिर आगे बात होती रहेगी।

गर्गाचार्यः- मैं दूसरोंके द्वारा पकाई हुई रसोई खा नहीं सकता। अपना भोजन मैं अपने हाथोंसे ही पकाऊंगा। पहले मैं यमुनासे जल ले आऊं।

गर्गाचार्य यमुनामें स्नान करके जल भी ले आए। उनके इष्ट देव थे चतुर्भुज द्वारिकानाथ। गर्गाचार्यने अपने ठाकोरजीके लिए खीर बनानी चाही। भगवान्को खीर चढाऊंगा और फिर प्रसाद लूंगा।

मात्र अपने ही लिए पकाकर खानेवाला अन्न नहीं, पाप खाता है। सो रसोई पकाना ही है तो ठाकोरजीके लिए पकाओ।

यदि सेवामें उपयोग होगा तभी संपत्ति सार्थक होगी। अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम प्रभुसे करो।

यशोदाने सोचा कि ये गर्गाचार्य भगवान्को खीर चढाए बिना खायेंगे ही नहीं। सो खीरको ठंडी करनेके लिए उन्होंने गर्गाचार्यको सोनेकी थाली दी। खीर ठंडी हुई तो गर्गाचार्यने तुलसीदल बीखरा कर भगवान्की स्तुति शुरू कीः-

सशंखचक्रं सकिरीट-कुंडलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थल कौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

हे नारायण! हे लक्ष्मीपति! हे वैकुंठपति! खीर आरोगिए।

कनैया कहने लगाः- मैं ही लक्ष्मीपति और वैकुंठनाथ हूं। गुरुजी शायद मुझे ही पुकार रहे हैं। अतः खानेके लिए मुझे जाना ही पडेगा। और ऐसा सोच कर वह खीर खानेके लिए भागा हुआ आ पहुंचा और खीर खाने लगा।

बारह बार माला फेरनेमें जितना समय लगे उतने समय तक ठाकोरजीके संमुख थाल रखा जाय। लालाजीको मनाना तो पडता ही है न।

गर्गाचार्य बोल रहे हैंः- ॐ नमः नारायण।

कनैया कहता था, महाराज, आंखें बंद ही रखना।

गर्गाचार्यने बारह बार माला फिरा कर आंखें खोलीं तो देखा कि लाला खीर खानेमें मग्न है। अरे, इस वैश्यके लडकेने तो मेरी खीरको छू लिया। अरे यशोदा, देख तो। तेरा लडका मेरी खीर खा रहा है।

भागी हुई यशोदा आई। देखा तो कनैयाने आधी खीर उडा दी है और उसका मुंह खीरसे रंगा हुआ है।

यशोदा कनैयाको डांटने लगीं। घरमें तुझे खानेको मिलता नहीं है क्या ? महाराजकी खीर क्यों खाई तूने ?

कनैयाः– तू मुझे डांट रही है, किंतु मैं करू भी तो क्या करूं ? महाराजने ही तो मुझे खीर खानेको वुलाया था।

यशोदाजीने गर्गाचार्यसे पूछाः– महाराज, क्या आपने इस लडकेको खीर खानेके लिए वुलाया था ?

गर्गाचार्यः– ना रे ना। मैंने वैकुंठवासी नारायणको वुलाया था।

कनैयाः– मैं ही तो हूं वह वैकुंठवासी नारायण।

यशोदाजीः– छोटे मुंह वडी वात क्यों करता है रे ? तू कहांका नारायण हो गया ? वैकुंठके नारायणके तो चार हाथ हैं। हैं तेरे चार हाथ ?

कनैयाः– मा, यदि तू कहे तो मैं चतुर्भुज हो जाऊं ?

यशोदाने सोचा कि यदि इसने चतुर्भुजका रूप धारण कर दिया तो लोग मानेंगे कि यह लडका यशोदाका नहीं है। कोई जादूगर है। सो उन्होंने कहाः– नहीं, नहीं। चार हाथों-वाले नारायणकी अपेक्षा मेरा दो हाथोंवाला मुरलीधर ही अच्छा है, श्रेष्ठ है। तू जो है वही रहना।

फिर यशोदाजीने गर्गाचार्यसे कहाः– यह नादान लडका है। इसकी वातोंमें न आना। कृपा करके आप फिरसे खीर वना लीजिए।

गर्गाचार्य फिर स्नानके लिए यमुनाकी ओर चल दिए।

लाला यशोदाकी गोदमें वैठ कर कहने लगा, माता, मैं कोयलकी वाणी वोल सकता हूं। और वह कूहु, कूहु, करने लगा। सभीको वडा आनंद हुआ।

कनैया जव आंगनमें खेलता है तो उसे देख कर मोर भी आनंदसे नाचने लगता है। कनैया मातासे कहता है, मैं भी मोरकी भांति नाच सकता हूं। और वह ठुमक ठुमक नाचने लगता है।

यशोदाः– वेटा, तूने यह नाचना किससे सीखा है ?

कनैयाः– मा, मैं तो तेरे पेटमेंसे ही सीख कर आया हूं। मा, उस मोरके पीछे जो है वह कौन है ?

माताः– वह मोरनी है। तू जानता है कि मोरनी किसे कहते हैं ? मोरनी तो है मोरकी वहु।

कनैयाः– मा, मेरी वहु कहां है ?

कनैया अपनी अद्भुत वाललीलासे सभीको आनंद दे रहा है।

गर्गाचार्यने फिर खीर बनाई। लालाने मजाक करनेकी सोची। वह माताकी गोदमें सो गया। यशोदाजीने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ। लाला सो गया है अतः महाराज शांतिपूर्वक भोजन कर सकेंगे।

गर्गाचार्यने खीर पर तुलसीदल बीखेरा और प्रार्थना करने लगे–

त्वदीयं वस्तु गोविंदं...... ।

नाथ, मैं आपका सेवक हूं। हे नारायण, लक्ष्मीपति, आप शीघ्र ही पधारिए और मेरी खीरका प्राशन कीजिए।

कनैयाने यह सुना तो वहां जानेके लिए अधीर हो गया। उसने योगमायाको यशोदाकी आंखोंमें जा बसनेकी आज्ञा दी। यशोदाकी आंखें मिलीं नहीं कि कनैया दौडता हुआ गर्गाचार्यके पास आकर खीर खाने लगा।

गर्गाचार्यने देखा। अरे, यह वैश्य बालकने तो मेरी खीरको इस बार भी जुठी कर दी।

कनैयाने सोचा कि बेचारे इस ब्राह्मणको कब तक भरमाता रहूं। उन्होंने अपना चतुर्भुज स्वरूप प्रगट किया। महाराज, आप जिस नारायणकी आराधना कर रहे हैं वह मैं ही हूं और गोकुलमें कनैयाका रूप लेकर अवतरित हुआ हूं। आपकी तपश्चर्या सफल हुई।

गर्गाचार्यने सानंदाचार्य दर्शन किया और स्तब्धसे हो गए। वे सोचने लगे, कितना अच्छा हो यदि प्रभु मेरी गोदमें आ बैठें।

कनैया गर्गाचार्यकी गोदमें बैठ गया और कहने लगा, महाराज, अब तो आप भोजन कीजिए।

गर्गाचार्यः– जब मेरे इष्ट देव ही मेरे मुंहमें कौर रखेंगे तभी मैं खाऊंगा।

कनैयाने गर्गाचार्यके मुंहमें एक कौर रख दिया। गर्गाचार्यने माना कि उनका जीवन सफल हो गया।

इधर यशोदाकी नींद टूटी तो उन्होंने देखा कि लाला गोदमें नहीं है। अरे, कहां गया है वह? उन्होंने देखा कि कनैया तो गर्गाचार्यकी गोदमें बैठा हुआ है।

गर्गाचार्यः– यशोदा, तूने बडा पुण्य किया है। मेरे नारायण ही तेरे घरमें पुत्र रूपसे पधारे हैं।

लालाने सोचा कि गर्गाचार्यने भंडा फोड दिया। यशोदाका भाव तो वात्सल्यभाव है। वात्सल्यभावमें ऐश्वर्य विरोधी है। कनैयाने सोचा कि गर्गाचार्यकी बात यदि यशोदाके मनमें जम गई तो वह मुझे लाड–प्यार नहीं करेगी।

मैं तो प्रेमदान करने और प्रेमरसका पान करनेके हेतु ही गोकुलमें आया हूं। उन्होंने मायाको आज्ञा दी, माताको मेरे वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होने न पाए। यशोदाको भुलावेमें रखनेके लिए कृष्णने मायाका आवरण ओढ लिया।

आदिमाया तो राधिकाजी ही का स्वरूप है। वह कृष्णका मोह उत्पन्न करती है।

वैष्णव मतानुसार मायाके तीन स्वरूप हैं:–

(१) स्वमोहिका

(२) स्वजनमोहिका (ऐश्वर्यका ज्ञान न होने देनेके लिए)

(३) विमुखजनमोहिका– जो हम सबको फंसाती है, जो ईश्वरके स्वरूपको भूला देती है वही विमुखजनमोहिका माया है।

अब माखनचोरी लीलाका वर्णन भी कर लें।

बाल कृष्ण दिनोंदिन बडे होते जा रहे थे। गांवके अन्य गोपबालक भी खेलनेके लिए आते रहते थे। उनमेंसे कुछ दुर्बल थे। कनैयाने वैसे एक दुर्बल बालकसे कहा:– मधुमंगल, तू बहुत दुबला-पतला है। खा-पीकर मेरे जैसा तगडा बन जा।

मधुमंगल:– कनैया, हम तो बहुत गरीब है। हम दूध-माखन कैसे खा सकते है ?

कंसकी आज्ञा थी कि सारा माखन करके रूपमें उसीको दिया जाय। व्रजवासी बेचारे भोले थे। वे अपने बालकोंको माखन खिलानेके बदले कंसको दे देते थे। कस अपने पहलवानोंको सारा माखन खिला देता था।

कनैयाने अपने बाल मित्रोंसे कहा:– व्रजवासी जो सारा माखन कंसको भेज देते हैं वह अब मैं होने नहीं दूंगा। गांवका माखन गांवके लोगोंके लिए होना चाहिए। हम माखनको मथुरा भेजने नहीं देंगे। मधुमंगल, तू रो मत। मैं ही तुझे माखन खिलाऊंगा।

ईश्वरकी हमेशा अपेक्षा रहती है कि जीव अपने समान ही हो। जीव ईश्वरसे प्रेम करे तो ईश्वर उसे अपने जैसा बनानेका प्रयत्न करता है।

मित्र:– यदि हमें तू रोज रोज माखन देगा तो तेरी माता तुझे पीटेगी।

कनैया:– नहीं, नहीं। मैं अपने घरका नहीं, बाहरसे कमा कर तुम सबको माखन खिलाऊंगा।

मित्र:– क्या तू माखनकी चोरी करेगा ?

कनैया:– हां, चोरी ही करनी पडेगी। हम एक मडली बनायेंगे। उसका नाम होगा बालगोपाल चौर्यविद्या प्रचार मंडल।

मित्र:– यदि चोरी करते हुए हम पकडे जायेंगे तो ?

कनैया:– मेरे गुरुने मुझे एक मंत्र सीखाया हैं। उसका पाठ करनेसे हमें कोई देख ही नहीं पाएगा। और यदि पकडे भी गए तो छूट जायेंगे।

मित्र:– कनैया, कौन-सा है वह मंत्र ?

कनैया:– चोरी करते समय “ कफल्लम् कफल्लम् ” बोलते रहना। कफल ऋषिने चौर्यविद्याका प्रचार किया था। यह मंत्र उन्हीं ऋषिका है।

याद रखो कि वह मत्र कनैयाने अपने मित्रोंको दिया था, हमें नहीं। हमें कहीं भी चोरी करनी नहीं है। चोरी करना पाप है।

अभीसे भगवान्‌की सेवा पूजा, भजन-कीर्तन करो और उनसे प्रार्थना करोः- जब आप अगले द्वापरयुगमें जन्म लें तो मुझे गोपबालक बनाना।

इस प्रकार गोपबालकका जन्म मिलने पर कृष्ण साथ खेलना और कृष्णके ही आदेश मिलने पर चोरी करना पाप नहीं होगा।

अपने ही शरीरसे खेलते रहनेवाला पाप कर्म कर रहा है। आत्माके साथ खेलनेवाले पाप नहीं कर सकता। जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है, ईश्वरके साथ ही खेलता है उसके हाथों पाप हो ही नहीं पाता।

ईश्वरकी उपस्थितिमें मनुष्य पाप कर नहीं सकता। और अगर पाप हो भी जाए तो उसका उत्तरदायित्व ईश्वर पर ही होता है।

शंकराचार्यने शांकरभाष्यमें कहा हैः- परमात्माके साक्षात्कार पानेवाले ज्ञानीके हाथों पाप हो नहीं सकता। और अगर हो भी जाय तो दोष उसका नहीं माना जाता। शास्त्र तो जिसे प्रभुका साक्षात्कार नहीं हुआ है उसीके लिए है। शास्त्रकी आज्ञा और मर्यादा अज्ञानी जीवके लिए है। शास्त्रने चोरीको निषिद्ध बताया है।

परमात्मा जिसे अपनाते हैं उसके लिए तो सारा जगत् ही अपना है। वह चोरी कर ही नहीं सकता। अपरोक्षानुभूतिके बाद शास्त्रका अस्तित्व ही नहीं रह पाता।

ब्रह्म साक्षात्कारके बाद तो क्या शास्त्र और क्या विधि? सब कुछ निरर्थक है।

तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो ईश्वर ही सर्वस्वके स्वामी है। अतः वे चोरी कर ही नहीं सकते। यह तो दिव्य लीला है। गोपियोंको परमानंदका दान करनेके लिए यह लीलाका प्रभुने आयोजन किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

आज मंडलकी स्थापना हो गई। अब मैं इस मंडलका अध्यक्ष बनूंगा। तुम सबको तो इतना ही देखते रहना है कि ये गोपियां दूध-दही-माखन लेकर घरसे कब बाहर जाती हैं, कौन-से रास्तेसे जाती हैं और वापस कब लौटती हैं। बाकी सब मैं संभाल लूंगा।

गोपियां चाहती हैं कि कनैया उनके घर रोज रोज आता रहे। लालाकी झलक पानेके लिए गोपियां किसी न किसी बहाने प्रातःकालमें यशोदाके घर पहुंच ही जाती थीं।

गोपियां यशोदासे शिकायत करती थींः- यशोदा, गायोंको दुहनेका समय होनेसे पहले ही तुम्हारा कनैया बछडोंको छोड देता है। दही-दूध-माखन चुरा जाता है। और अपने मित्रोंमें तथा वानरोंमें बांट देता है। यदि हमारे घरमेंसे उसे कुछ मिल नहीं पाता है तो गुस्सेसे हमारे बालकोंको रुला देता है। हम दुध-दही-माखन चाहें जहां रख दें, शीके पर चढा दें तो भी वह चुरा ही जाता है। माखन अंधेरेमें छुपाना चाहें तो अंधेरा भी उसे रोक नहीं पाता है।

कृष्ण जहां जहां जाते हैं वहां प्रकाश फैल जाता है।

हम यदि कनैयाको चोर कह देती है तो वह हमें कहता है, तू चोर है, तेरा बाप चोर है, तेरी मा चोर है। इस घरका मैं ही स्वामी हूं।

गोपियोंकी शिकायत और यशोदाके उत्तर इस गुजराती गीतमें बडे ही सरस ढंगसे वर्णित है। नरसिंह मेहताका है यह गीत।

जशोदा तारा कानकुंवरने साद करीने वार रे;
आवडी धूम मचावे व्रजमां, नहीं कोई पूछणहार रे ... जशोदा.
शीकुं तोडयुं, गोरस ढोळ्युं, उघाडीने बार रे;
माखण खाधुं, ढोळी नाख्यु, जान कीधुं आ वार रे . जशोदा.
खांखां खोळां करतो हींडे, बीहे नहीं लगार रे;
मही मथवानी गोळी फोडी, आ शां कहीए लाड रे ... जशोदा.
मारो कानजी घर हुतो, क्यारे दीठो बहार रे;
दहीं दूधना माट भर्या छे, बीजे चाखे न लगार रे ... जशोदा.
शाने काजे मळीने आवी, टोळी वळी दशवार रे;
नरसैंयानो स्वामी साचो, झूठी व्रजनी नार रे . जशोदा.

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये।
क्वचिद् असमये वत्सान् जीवान् मुञ्चन्॥
भा १०-८-२८

माता, क्या बताऊं तुम्हें? गायोंके दुहनेके समयके पहले ही कनैया बछडोंको छोड देता है।

समय पर बछडोंको छोडनेवाला तो सामान्य गोपाल है। यह तो श्री कृष्ण जो हैं। श्री कृष्ण तो समयके पहले ही बछडोंको अर्थात् जीवको मुक्त करनेमें समर्थ हैं।

बछडोंका अर्थ है विषयासक्त जीव। वत्स अर्थात् विषयासक्त जीव। "वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये।"

शास्त्रने मुक्तिके दो प्रकार बताए हैं:- क्रममुक्ति और सद्यःमुक्ति।

समय होने पर जीवको जो मुक्त करते हैं वह है मर्यादा पुरुषोत्तम राम। किंतु कनैया तो है पुष्टि पुरुषोत्तम। कनैया क्रमशः मुक्ति देनेकी अपेक्षा, जीव यदि पात्र हो तो, समयके पहले भी मुक्ति दे देता है। जिस जीव पर कनैयाका अनुग्रह होता है उसे मुक्ति पानेके लिए क्रमकी प्रतीक्षा करनी नहीं पडती। यह तो पुष्टिमार्ग-कृपामार्ग है।

क्रममुक्ति इस प्रकार होती है। जीव शूद्र वर्णमें जन्मा हुआ है। अब यदि इस जन्ममें वह चोरी, व्यभिचार आदि न करे, भसी वर्णोंकी भली भांति सेवा करे तो अगले जन्ममें उसे वैश्य जातिमें अवतार मिलता है। वैश्य यदि नीतिपूर्वक जीवन जिएगा तो अगले जन्ममें क्षत्रिय होगा। और अगर क्षत्रिय जन्ममें वह क्षत्रिय धर्मका पूरा पूरा पालन करता है तो अगले जन्ममे वह ब्राह्मण होगा।

अब ब्राह्मण सदाचारी होगा तो वह अगले जन्ममें अग्निहोत्री ब्राह्मण बनेगा। फिर अगले जन्ममें वह होगा ब्रह्मनिष्ठ योगी। ऐसा योगी सद्वर्तन, योगाभ्यास और ब्रह्मचिंतन उत्तरोत्तर बढाता जाए तो भी उसे दो–तीन जन्म और लेने पडते हैं। और इस प्रकार उसके क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध कर्म निःशेष हो जाने पर जीव शुद्ध होगा। और शुद्ध होने पर ही जीवको मुक्ति प्राप्त होगी। तो यह है क्रम मुक्तिका मार्ग।

अब सद्यःमुक्तिकी बात करें। इस प्रकारकी मुक्तिमें जन्मोंका कोई क्रम नहीं होता है। ठाकोरजी जिस किसी जीव पर विशिष्ट अनुग्रह करते हैं उसकी मुक्ति हो जाती है, फिर चाहे वह किसी भी वर्णका क्यों न हो। यदि कोई वैश्य हार्दिकतासे भगवद्‌भक्ति करे तो कृष्ण प्रसन्न हो कर, उसे गोलोक धाममें ले जाते हैं।

श्री कृष्ण दुहनेके समय होनेके पहले भी बछडोंको छोड देते हैं। अर्थात् वे निश्चित समयके पूर्व भी जीवको मुक्त कर सकते हैं।

श्री कृष्ण तो अनुग्रह अर्थात् पुष्टि पुरुषोत्तम हैं। जिस किसी जीव पर वे अनुग्रह करते हैं वह तत्काल मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार कोई राजा जब चाहे तब किसी व्यक्तिको राजा बना सकता है उसी प्रकार श्री कृष्ण जब चाहें तब किसी भी सुपात्र जीवको बंधनमुक्त कर सकते हैं। परमात्मा प्रमेयबलसे किसी भी वैष्णवको तात्कालिक मुक्त कर सकते हैं। श्री कृष्ण सद्यःमुक्तिके दाता हैं।

श्री कृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम हैं अतः वे सद्योमुक्ति देते हैं। अन्यथा वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, अग्निहोत्री, ब्रह्मनिष्ठ योगी आदि उत्तरोत्तर क्रमिक वर्णोंसे गुजरे बिना मुक्ति नहीं मिल पाती। यदि कनैया किसी जीवके प्रति दयालु हो जाय और कृपा कर दे तो वह जीव सीधा वैकुंठमें जा सकता है।

वैसे भगवान्‌की साधारण कृपा तो सभी जीवों पर होती ही है। किंतु किसी जीव पर वे विशिष्ट कृपा भी कर देते हैं। जब कोई जीव परमात्माकी प्रार्थना, धारणा, चिंतन, साधना करते करते थक–हार कर रोने लगता है, दीन हो जाता है उस जीव पर प्रभुकी विशिष्ट कृपा-दृष्टि होती है। और उस जीवकी उसी जन्ममें मुक्ति हो जाती है। कृष्ण तो ब्रह्मांडके स्वामी हैं। वे चाहे सो कर सकते हैं।

जीव जब अतिशय साधना करता हुआ नम्र बनता है तो वह प्रभुका प्रिय पात्र बन कर कृपा पाता है। निःसाधन होकर जो साधन करता है वह श्रेष्ठ है। निःसाधन अर्थ यह है कि सब कुछ साधन करते हुए भी माना जाय कि कुछ भी नहीं किया गया है। निराभिमानी बनो। कई बार ऐसा होता है कि साधन करते करते जीव अभिमानी होने लगता है। ऐसा होनेसे उसका पतन होता है।

यशोदाने गोपियोंसे कहा, यदि मेरा लाला तुम्हारे घर आकर कुछ भी शरारत करे तो उसे डांटते रहना।

गोपीः– माता, अरे हम उसे क्या डांटेंगे? वह हमें डांटता रहता है। कल वह मेरे घर आया था। मैं उसे पकडने गई तो वह ऐसे भागा कि उसके पीछे पीछे दौडती हुई थक गई। और जब मैं उसे पकड न सकी तो दूरसे अंगुठा दिखा कर मुझे चिढाने लगा।

एक और सखीने कहा, माता, तुम्हारा कनैया माखन चोरी करता है।

यशोदाने उससे कानमें कहा, अरे, जरा आहिस्ता बोल। यह बात किसीको न बताना। यह बात अगर फैल गई तो लालाको कन्या कौन देगा?

गोपीः– कनैया जो मांगे सो उसे देंगे। किंतु वह चोरी क्यों करता है?

यशोदाने कनैयाको डांटना चाहा। किंतु फिर सोचने लगी, यदि उसे डांटूंगी तो शायद वह डर जाएगा।

गोपियोंकी सभी इन्द्रियां अपनी और आकर्षित करके, परमानंदमें सराबोर करके, वैकुंठमोक्षका दान करनेके लिए श्री कृष्णकी यह लीला है।

यशोदा मैया कनैयाको समझाने लगी कि उसे अपने घर ही का माखन खाना चाहिए।

कनैयाः– मुझे घरका माखन भाता नहीं है। और घरका माखन खाऊंगा तो कम हो जाएगा। सो मैं बाहर कमा कर खाता हूं। गोपीका माखन बहुत मीठा लगता है।

सखियोंने कहाः– माता, इस माखनचोरको बहुत लाड–प्यार मत करना।

शुकदेवजी बडे विवेकसे कथा करते हैं। श्री कृष्ण चोर है ऐसा कहा नहीं गया है। किंतु इति होचुः व्रजकी गोपियां इस प्रकार यशोदासे माखनचोरी लीला कहती थीं ऐसा कहा गया है।

माताने पूछा : कनैयाका आगमन और माखनचोरीकी तुम्हें खबर हो जाती है क्या?

गोपियांः– हां, कभी कभी तो उसके आनेकी बात सपनेमें भी आ जाती है। जब हम सोनेको जाती हैं तो वहां भी कनैया दिखाई देता है। वह सपनेमें भी आता रहता है।

वैष्णव जब सोते हैं तो कनैयाको भी अपने साथ रखकर सोते हैं। ठाकोरजीको साथ रखनेका अर्थ है, जब तक नींद न आए तब तक हरे कृष्ण, हरे कृष्णका जाप किया जाता रहे।

बीस्तर पर जाने पर यदि कोई वस्तु याद आए तो मान लेना कि तुम्हारा मन उसी वस्तुमें फंसा हुआ है। कई लोग बीस्तर पर सोते सोते अगले दिनके कारोबार, लेन–देन, हिसाब–किताब आदिके बारेमें सोचते रहते हैं। लोभीका मन द्रव्यमें, कामीका मन नारीमें, दुष्ट व्यक्तिका मन लडाई–झगडेमें फंसा रहता है। बीस्तरमें तो वह सब कुछ भूल कर "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" ही करना चाहिए।

एक गोपीने कहा, बीस्तरमें भी मुझे कनैया याद आता रहा। वह घरमें नहीं होने पर भी उसकी छवी आंखोंमेंसे दूर नहीं होती है।

लालाका नाम तो अमृतसे भी अधिक मीठा है।

मुझे तो कृष्ण कृष्ण बोलनेकी आदत–सी हो गई है।

यह तो मनुष्यका स्वभाव ही है कि दिनचर्यासे निवृत्त होनेके बाद बीस्तर पर सोने पर प्रिय विषय–वस्तुकी याद आती रहती है।

मुझे तो कुछ और याद आता ही नहीं है। कृष्ण कृष्ण बोलते हुए और उसका ही दर्शन करते हुए सो जाने पर सपनेमें भी वही आता रहा। सपनेमें मैंने देखा कि कनैया अपने मित्रोंके साथ मेरे घर पर आया, माखन चुराया और मित्रोंके बीच लूटा दिया।

जिस किसी वस्तुमें मन फंसा होगा, सपनेमें वही याद आएगी। मनकी परीक्षा सपनोंसे ही होती है।

सच्चे वैष्णव मन कृष्णसे ही बंधा रहता है अतः सपनेमें वही आता है। सपनेमें जब कनैया दिखाई दे तभी मानो कि तुम सच्चे वैष्णव हो। अधिकारीको प्रभुकी पहली झांकी सपनेमें ही होती है।

गोपीका मन श्री कृष्णमें जा फंसा है। मा, मुझे लगा कि कनैया मेरे घर अवश्य आएगा। सारी सुबहसे मैं तो पागल-सी हो गई थी। आनंदसे मैं ऐसी बावली हो गई थी कि चूल्हेमें लकडीके साथ बेलन भी जला दिया।

एक और गोपीने बताया, मेरे घरमें कनैया सभीका चहेता है। मेरे जेठजीको मैं परोस रही थी। मन कनैयाकी मीठी यादोंमें खोया हुआ था। जेठजीने मुझसे मुरब्बा मांगा। शींके परसे मुरब्बेकी हांडी उतार कर परोसने लगी। मुरब्बा बहुत सरस था और हर किसी अच्छी वस्तुको कनैयाको देनेकी इच्छा हो आती है। कनैयाको कितना भाएगा मुरब्बा! यदि कनैया इस समय आ जाए तो मेरे जेठजी उसे भी खाने पर बीठा देंगे। मैं उसे मुरब्बा दूंगी।

माता, कनैया आए ऐसी इच्छामें मैं ऐसी तो बह गई कि मैं पागल-सी हो गई। और मुरब्बेकी हांडीको शींके पर चढानेके बदले मेरे मुन्नेको ही ऊपर रख दिया।

मेरे पति भी कनैयाके प्रेममें ऐसे पागल हो गए है कि सारा कामकाज छोड कर उसी-की रट लगाए रहते हैं।

ईश्वरके साथ यदि प्रेम करोगे तो वह कभी भूलाया नहीं जा सकेगा।

एक अन्य सखीने कहा, मां, कनैयाने तो आज मेरी लाज रख ली।

यशोदाः- क्या बात हुई थी, सखी?

सखीः- मेरा स्वभाव हो गया है कि रसोई पकाते समय भी मैं 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' जपती रहती हूं। अब आज मेरे घर मेहमान आए हुए थे। मेरे ससुरजी बडे क्रोधी स्वभावके हैं। उन्होंने मुझसे कहा, आज मेहमान भोजन करेंगे सो सावध रह कर पकाना। हम वाडी पर जा रहे है। दो बजे लौट कर भोजन करेंगे। कृष्ण जपनमें कहीं रसोई बीगड न जाए।

मैं भोजन पकाती हुई सोच रही थी कि भोक्ता तो परमात्मा ही है। भोजन तो उस रसरूप प्रभुके लिए पकाया जाय। और मैं हरे कृष्णका जप करती हुई रसोई पकाने लगी।

रसोई तैयार करते समय ऐसी उच्च भावना ही मनमें होनी चाहिए। यदि उस समय फिल्मकी बातें सोची जाएगी तो कामके परमाणुसे भोजन दुषित होगा। भोजन पकाते समय मनके अच्छे-बुरे विचारके परमाणु भोजनमें जा मिलते है। भोजन पकाते समय, रोटी बेलते समय हरे कृष्ण हरे कृष्ण करते रहोगे तो भोजन सात्त्विक बनेगा। पवित्रतासे रसोई पकाओगे तो भोजन करनेवालेका कल्याण होगा।

आजकी नारी तो शामको देखी हुई फिल्मके गीत ही गुनगुनाती रहती है। भोजन पकाते समय वह फिल्मके गीत गाती रहती है। ऐसा करनेसे भोजन अपवित्र हो जाता है। भोजन पकाते समय फिल्मके अमंगल, शृंगारी, वासना सने गीत गाते रहनेसे भोजन दुषित हो जाता है, उसमें संस्कारहीनता उतर आती है। यदि गीत गाना ही है तो कृष्ण भक्तिके गीत गाओ।

प्रेमकी लगनी लागी उसको
क्या मथुरा क्या काशी रे ।
गोविंदके गुन गाते फिरते
वृंदावनके वासी रे ॥

मैं सारी रसोई तो सावध रह कर पकाई। अंतमें मानभोग बनाने लगी तो विचार आया कि कनैयाको यह बडा पसंद आता है। दिलमें कनैयाको मानभोग खिलानेकी इच्छा हो आई। मेरा दिल मानों हाथसे जाने लगा। मुझे भास होने लगा, कनैया आंगनमें आया है, घरमें आ रहा है, रसोईघरमें आ पहुंचा है।

इस प्रकार मन कनैयाकी कल्पनामें डूबा हुआ था सो मानभोगमें चीनीके बदले नमक डाल दिया। भगवान्को भोग लगाया। ससुरजी और मेहमान आए तो उन्हें परोसा। वैसे तो मानभोग नमकीन हो गया था किंतु उसमें भक्तिका पुट लगा हुआ था अतः मेहमानने तो उसकी प्रशंसा करते हुए खाया। यह भोजन नहीं, अमृत है ऐसा कहा। भगवान्के नामामृतके पुटने नमकका स्वाद मीठा हो गया था। मेरे क्रोधी ससुरजीने भी मेरी रसोईकी और मेरी भी प्रशंसा की। यह मेरी पुत्रवधू नहीं, अन्नपूर्णा है, लक्ष्मी है।

अंतमें जब मैंने खाना खाया तो पाया कि मानभोग मीठा नहीं, नमकीन था।

माता, मेरी तो इस कनैया ही ने लाज रख ली।

दूसरी एक गोपी कहने लगीः– माता, क्या बताऊं मैं? मैं दूध–दही बेचने निकली। न जाने कैसे मुझे लगा कि मेरी मटुकीमें कनैया छुपा हुआ है। सरसे मैंने मटुकी उतार कर देखा तो उसमें लालाका दर्शन किया। अब कनैयाको भी कहीं बेचा जा सकता है? मैं कुछ भी बेचे बिना वापस घर लौटी तो घर पर मेरी बडी फजीहत हुई।

अपनी बुद्धिरूपी मटुकीमें जो कनैया समाया होगा तो हर कहीं उसीके दर्शन होते रहेंगे। गोपियां अपनी बुद्धिमें, मनमें ठाकोरजीको हमेशा रखती थीं।

यदि अपने मस्तक, हृदय, मन, बुद्धिमें जड पदार्थ होंगे तो हर कहीं वही दिखाई देंगे और श्री कृष्ण होंगे कण कणमें उनका दर्शन होता रहेगा।

माता, हम जहां भी जाते हैं, कनैयाका ही दर्शन होता रहता है।

ये गोपियां घरका काम करते करते और निवृत्त होनेके बाद भी श्री कृष्णको याद करती रहती हैं।

बडे बडे योगी–महात्माको तो परमात्माका नित्य स्मरण करते रहनेके लिए प्रयत्न करना पडता है। तो व्रजकी गोपियां कनैयाको भूलनेका प्रयत्न करने पर भी भूल नहीं पाती थीं। शायद कनैया भी इन्हें भूल पाता।

गोपियां गेरूए वस्त्र पहनती नहीं है फिर भी उसका मन कृष्णप्रेमसे ही रंगा रहता है। यह तो गोपियोंके प्रेमसंन्यासकी कथा है।

यही है गोपियोंके मनकी तन्मयता और निरोध।

बालकृष्णकी विविध लीलाएं देखती हुई गोपियां घरकाम भूल कर पागल-सी हो जाती थीं। "प्रेक्ष्य त्य इज्झत गृहाः।" घरके काम छोड कर लीलाएं देखती रहती थीं। "मनसोऽनवस्थाम्।" कनैयाकी लीलाओंको देख कर उनका मन अस्थिर हो कर लीलाओंमें ही तन्मय हो जाता था। यह तो गोपियोंकी तन्मयता है।

कृष्णमें ही तन्मयता हो जानेके कारण गोपियां संसार-व्यवहारके कार्य भली भांति कर नहीं पाती थीं। कृष्णप्रेममें सुधबुध खो कर न करने जैसे काम कर बैठती थीं। प्रभुके लिए तो ऐसी ही तन्मयता होनी चाहिए।

कृष्णकथामें-कृष्णलीलामें जो व्यक्ति गोपियोंकी भांति तन्मय हो जाता है वह मुक्त हो जाता है। भागवत मृत्युके पूर्व मुक्ति देता है। हां, तन्मयता गोपीकी जैसी होनी चाहिए। गोपियां घरके कामकाजके समय भी कानाको भूलती नहीं थीं।

भक्ति-मार्गमें व्यवहार और परमार्थ अलग नहीं, एक ही हैं।

प्रत्येक कार्यमें प्रभुका संधान ही पुष्टिभक्ति है।

प्रत्येक कार्यको, व्यवहारको प्रभुमय मानना ही भक्ति है। गोपियां ही इस भक्तिमार्गकी आद्य आचार्या हैं। इसी सिद्धांतको आचार्य महाप्रभुजीने आगे बढाया।

सभी कामकाजसे निवृत्त होनेके बाद भक्ति करना तो मर्यादाभक्ति है।

सुबोधिनीमें महाप्रभुने गोपियोंको प्रेमसंन्यासिनी कहा है। गोपियोंके पास तो था केवल निःस्वार्थ प्रेम। उनका तो प्रेम ही संन्यास था।

वस्त्र-संन्यासकी अपेक्षा प्रेम-संन्यास उत्तम है। कृष्णप्रेममें हृदय पिघलने पर संन्यास हो पाता है और तभी वह उजागर होता है। सभी कर्मोंका न्यास-त्याग संन्यास है। ईश्वरके लिए ही जो जीता है वही संन्यासी है। गोपियां ईश्वरके लिए ही जीती थीं अतः उन्हें प्रेम-संन्यासिनी कहा गया है।

ज्ञान और योग पर भक्तिका विजय बताया गया है। भक्ति भगवान्‌को आबद्ध करती है, वशीभूत करती है।

माखनचोरी लीलाका यही रहस्य है। मन माखन-सा मृदु है। मनकी चोरी ही तो माखनचोरी है। कृष्ण औरोंके चित्त चोर लेते हैं। फिर भी वे पकडे नहीं जाते। पकडा जाने-वाला चोर तो सामान्य चोर होता है। किंतु कनैया तो अनूठा चोर है। गोपियोंके मनका निरोध करना था। किसी भी अन्य विषयोंमें जानेसे बचाना था।

गोपी अर्थात् इन्द्रिय। सभी इन्द्रियां हमेशा ईश्वर ही का चिंतन करती रहें इसी हेतुसे ये सब लीलाओंकी रचना की गई है।

यशोदाजीने गोपियोंसे कहाः- अच्छा हो यदि तुम माखन छुपा कर रखो।

एक गोपीः- माता, तुम हमें क्या सीख दोगी? मैं वैसे तो बडी हूं, फिर भी कैसे बताऊं कि क्या हुआ था। एक बार कनैया मार्गमें मिला तो उसने हंसते हुए मुझसे कहा, अगले दिन तेरे घर आऊंगा। मैंने सारा माखन अपने मायके पहुंचा दिया। कनैयाने दूसरे दिन आकर देखा तो माखनका नामोनिशान नहीं था। वह आगबबुला हो गया। पलनेमें सोए हुए मेरे लालको चूंटी भरते हुए कहने लगा तेरी माता बडी कंजूस है। घरमें कुछ रखती ही नहीं है।

माता, घरमेंसे यदि कुछ मिलता नहीं है तो गुस्सेसे लालपीला हो जाता है और हमारे सोए हुए बच्चोंको चूंटी देकर रुलाता है।

भगवान्का आगमन होने पर यदि तुम सोए हुए पाए जाओगे तो वे तुम्हें रुला देंगे। वे तो किसी भी रूपमें आ पहुंचते है और आवकार न मिलने पर रुला देते हैं।

ईश्वर अपने आगमनके समय सोए हुओंको जगा देता है।

ईश्वर कौनसे रूपमें आयेंगे यह कोई बता नहीं सकता। वे तो बालक-वृद्ध, ब्राह्मण-चमार किसी भी रूपमें आ सकते हैं। सो घर पर आए हुए सभीका सम्मान किया जाय।

वेदांतके अनुसार ईश्वर अरूप है और वैष्णवानुसार अनंत रूपा।

ईश्वरका कोई एक रूप तो है नहीं। वे अनेक रूप धारण करते रहते हैं। अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभाविष्णवे। वे तो आकाररहित भी हैं और अनेक आकारवाले भी। वे अरूप भी हैं और अनेक रूपधारी भी। वे तो किसी भी स्वरूपमें आते हैं। जीव प्रमादवश सोया रहता है सो उसे खबर नहीं हो पाती है।

यशोदाः- सखियां क्यों न तुम सब अपने बच्चोंको नैहर पहुचा दो?

एक गोपीः- मैं माखन और बच्चोंको नैहर रख आई थी। कनैयाने मेरे घरमें कुछ नहीं पाया तो कहा, जिस घरमें मेरे लिए कुछ भी न हो वह स्मशानके जैसा ही है।

जिस घरमें भगवान्के लिए कुछ भी न हो वह घर उजड कर स्मशान हो जाता है।

मौजमजामें संपत्तिका दुर्व्यय करनेवाला राक्षस ही तो है।

जब कनैयाको घरमें कुछ नहीं मिला तो उसने मित्रोंसे कहा, यह घर स्मशान जैसा ही है सो चूल्हा, कमरे, आंगन सब बीगाड दो। और उन्होंने मेरा सारा घर गंदा कर दिया था।

माता, कनैया ऐसा शरारती है।

यशोदाने कहाः- तुम कह रही हो कि लाला शरारती है किंतु वह तो मुझसे कहता है कि उसने तो कुछ भी किया नहीं है। तुम उसे रंगे हाथ पकड लाओगी तभी मैं मानूंगी कि वह चोरी करता है। और तभी मैं उसे सजा दूंगी।

प्रभावती नामकी एक गोपीने कहा, इसमें क्या बडी बात है? मैं ही इसे रंगे हाथ पकड लाऊंगी। वह गोपी कुछ अभिमानी थी।

कनैयाने तय किया कि आज हम प्रभावतीके घर जाएंगे। प्रभावती छुप कर बैठी थी। धीरे धीरे सभी बालक घरमें दाखिल हो गए और "कफलम् कफलम्" बोलने लगे। कनैयाने छींकेसे माखन उतार कर स्वयं खाया, मित्रोंको खिलाया और वानरोंको भी दावत दी।

उपकार चाहे कितना भी हो, भगवान् कभी नहीं भूलते। रामावतारमें वानरोंने वृक्षोंके पत्ते खा कर मेरी सेवा की थी। उस अवतारमें तो मैं तपस्वी था अतः इन्हें कुछ दे नहीं पाया था। सो इस अवतारमें मैं उन्हें दही-माखन खिलाऊंगा।

मनुष्य कई बार वानर जितना भी संयम नहीं रख सकता है। वानर राम और सीताके सेवक हैं सो वे रामफल और सीताफलका आहार कभी नहीं करते। यदि मानव वानर जितनी मर्यादाका भी पालन न कर पाए तो वह उससे भी गया बीता है।

सभीने भरपेट माखन खाया। इतनेमें धीरेसे प्रभावती बाहर निकली। मित्रोंने देखा तो कहने लगे, अरे कनैया, भाग, भाग, वह आ गई है। किंतु कनैयाने कहा, आने भी दो। क्या कर लेगी वह?

प्रभावतीने कनैयाको पकड लिया। वह उससे कहने लगा, अरे छोड दे मुझे, नहीं तो मेरी मा तुम्हें पीटेगी। मुझे न छोडेगी तो तुम्हें अपने ससुरकी कसम, अपने पतिकी कसम।

प्रभावतीः– आज मैं क्यों छोड दूं तुझे? रंगे हाथ पकडा है तुझे। मैं तुझे यशोदाके पास ले जाऊंगी।

कनैयाः– छोड दे मुझे।

प्रभावतीका लडका भी इस माखनचोर मंडलीका सभ्य था। उसने सोचा कि यशोदा लालाको पीटेगी। वह अपनी माता प्रभावतीसे कहने लगा, माता कनैयाने चोरी की ही नहीं है। मैंने ही सबको बुलाया था। मुझे चाहे सो सजा दे किंतु लालाको छोड दे तू। अब मैं चार महिनों तक माखन नहीं खाऊंगा।

प्रभावतीने सोचा, यशोदा हमारी बात कभी सच्ची नहीं मानती है। सो मैं उसे सच्ची बात दिखलाना चाहती हूं। यशोदा लालाको डांटेगी तो कोई बात नहीं है। मैं पीटने दूंगी। लाला मेरा भी तो है।

अभिमानके साथ साथ दुर्गुण भी आ जाते हैं।

प्रभावती मान रही थी कि उसके सिवाय लालाको कोई पकड नहीं सका। सो उसने लालाको नहीं छोडा। सभी बालक रोने लगे। कनैयाने कहा, अजी डरते क्यों हो! मैं बडा अच्छा मजाक करूंगा।

साधना करनेसे प्रभु हाथमें आ तो जाते हैं कि साधनमेंसे यदि श्रद्धा उठ जाए तो प्रभु भी चले जाते हैं।

प्रभावती लालाको पकड कर चली जा रही थी तो मार्गमें एक वृद्ध आ रहे थे। उसको देख कर प्रभावतीने घुंघट खींच लिया। कनैयाने प्रभावतीसे कहा कि उसके इस हाथमें दुःख हो रहा है सो दूसरा हाथ पकडेगी तो अच्छा होगा। प्रभावती हाथ बदलने गई तो कनैयाने ईशारेसे अपने मित्रको पास बुला कर उसका हाथ पकडवा दिया।

इस प्रकार कनैया मुक्त हुआ। वह भागता हुआ माताके पास आया और कहने लगा, माता, एक गोपी मुझे मारने आ रही है। मैंने उसका कुछ भी बीगाडा नहीं है। माताने उसे कमरेमें बैठनेको कहा।

प्रभावती तो बडे उमंगसे चोरको पकड कर चली आ रही थी। उसने बाहरसे ही चिल्लाते हुए कहाः– अरे यशोदाजी, सुनती हो! देखो, तेरे कनैयाको मैं आज रंगे हाथ पकड लाई हूं। इस चोरको सजा देनी ही होगी।

यशोदाने बाहर आकर कहाः– अली पागल है क्या तू? मेरा बेटा तो घरमें ही है। यह किसको पकड लाई है तू?

ईश्वरको खोजना है तो अपने अंदर ही खोजो। उसे जो बाहर खोजता है वह दुःखी होता है। इन्द्रिय रूपी गोपी कहती है कि ईश्वर बाहर है, परमानंद बाहर ही है। तो यशोदा– निष्काम बुद्धि ईश्वरानंदको घर–हृदयमें ही निहारती है। इन्द्रियां ईश्वर–आनंदको बाहर ढूंढती हैं अतः पा नहीं सकतीं। निष्काम बुद्धि ईश्वरको हृदयके भीतर ढूंढती है अतः शीघ्र ही पा जाती है।

जो जीव आनंदको सांसारिक विषयोंमें खोजता रहता है उसकी दशा उस प्रभावतीकी जैसी होती है। सब उसकी खिल्ली उडाते है।

यशोदाः- अली, तू तो देख तो सही कि तेरे हाथमें कौन है ?

प्रभावतीने देखा तो उसके हाथोंमें उसीका पुत्र था। वह असमजसमें पड गई। मैंने तो कनैया ही को पकडा था। रास्तेमें ही कुछ गडबड हो गई होगी।

प्रभावती अभिमानी है। घमंड, अहकारवाली बुद्धि ही प्रभावती है। ऐसी बुद्धि ईश्वरको कभी पा नहीं सकती। निष्काम बुद्धि ही ईश्वरको पा सकती है। ईश्वरको सकाम नहीं, निष्काम बुद्धि ढूंढ पाती है।

ईश्वरकी प्राप्ति होने पर प्राप्तिका अहंकार होगा तो ईश्वर हाथोंसे भाग निकलेंगे। परमात्मा मिल तो सकते हैं किंतु अहंकार आते ही अदृश्य भी हो जाते हैं।

परमात्मा मिलते ही साधकके मनमें अकड पैदा होती है। ऐसी अकड हो जाने पर, अभिमान होते ही साधना उपेक्षित होने लगती है। साधनाकी उपेक्षाके कारण भगवान् अप्रसन्न हो कर वापस चले जाते हैं। साधना करो किंतु साधनाका अभिमान कभी न होना चाहिए। निष्काम बुद्धिमें गर्व उत्पन्न होते ही भगवान् भाग निकलते हैं।

गोपियोंने यशोदासे कहाः- मा, गणपतिका व्रत करो और मिन्नत मानो। वे बुद्धि-सिद्धिके स्वामी हैं सो कनैयाकी बुद्धिको सुधारेंगे।

यशोदाने गोपियोंकी बात मान ली।

कनैया गणपतिकी महिमा बढाना चाहता था। सो उसने अपनी मित्र-मंडलीसे कहा, हम कुछ दिनके लिए बडे शांत रहेंगे। सारी प्रवृत्ति अब हम बंद कर दें।

लाला घरमें बैठा रहता था। यशोदाने सोचा कि गणपतिने मेरे लालाकी बुद्धिको ठीक कर दिया है।

एक बार कुछ गोपालोंने यशोदासे शिकायत कीः- कनैयाने मीट्टी खाई है।

कृष्णः- मा, ये सब झूठ बोलते है। मैंने मीट्टी खाई ही नहीं है।

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः।

लालाने तो मिट्टी नहीं, व्रजरज खाई है। मैंने मीट्टी नही, व्रजरज खाई है। व्रजरज मीट्टी नहीं है।

तुलसीजी सामान्य वृक्ष-वनस्पति नहीं है, गंगाजी सामान्य नदी नहीं है, व्रजरज साधारण मीट्टी नहीं है।

श्री वल्लभाचार्यने कहाः- ज्ञान मार्गके अनुसार कृष्ण कुछ भी नहीं खाते। वैष्णव मार्गके अनुसार भगवान्ने व्रजरज खाई है। भक्त मानते है कि भगवान् भोजन भी करते हैं।

यशोदाने कनैयासे कहा, तेरा मुह खोल, मैं देखूं तो सही कि तूने मीट्टी खाई है या नहीं।

कनैयाने मुह खोला और यशोदाने बेटेके मुंहमें देखा तो पाया कि उसमें तो सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है।

मुखदर्शनके बहाने कनैयाने माताको अपना विश्वरूप दिखलाया।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे है।

ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान लीलामें बाधक है।

वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभः।

पुत्रस्नेहा वैष्णवी माताके हृदयमें कनैयाने योगमायाका संचार कर दिया सो यशोदा कनैयाका वास्तविक स्वरूप भूल गई और फिरसे उसे अपना पुत्र ही मानने लगी।

पूतनाने बहुतसे बालकोंका वध किया था। वे सब बालक पूतनाके स्तन द्वारा प्रभुके पेटमें जा पहुंचे।

अविद्याके संसर्गमें आए हुए जीवोंका उद्धार सच्चे संतोंकी चरण रजके सिवाय हो नहीं पाता।

गोकुलमें बहुतसे ऋषि–मुनि गायोंका अवतार ले कर आए हुए हैं। उनके चरणोंकी रज मेरे पेटमें जानेसे वे सभी जीव मुक्त हो जाएंगे जो मेरे पेटमें हैं। अर्थात् अपने पेटमें बसे हुए उन जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही कृष्णने मीट्टी–व्रजरज खाई थी।

प्रभुके हृदयमें रहना अथवा परमात्माको अपने हृदयमें रखना यह तो कृष्णकी लीला है, निरोधलीला है। आत्मा वैसें तो निराकार और स्वतंत्र– बंधनमुक्त ही है किंतु मनके कारण आबद्ध हो जाता है।

भगवान् तो मृत्युके पूर्व ही मुक्ति देते है। प्रभुप्रेममें हृदयका द्रवित होना ही तो मुक्ति है। प्रभुप्रेममें संसारको भूलना ही तो मुक्ति है। मन मरा कि मुक्ति मिल गई। मनकी मृत्यु होनेसे निरोध होता है और निरोध होने पर मुक्ति मिलती है।

मृत्युके बाद ही नहीं, मृत्युके पूर्व भी मुक्ति मिल सकती है।

जो मृत्युके पहले ही मुक्ति नहीं पा सकता है उसे मृत्युके बाद मुक्ति मिलना बडा कठिन है। शरीर और इन्द्रियोंकी उपस्थितिमें जिसे भजनानंद प्राप्त होता है उसे शरीरत्यागके बाद परमानंदका अनुभव होता है।

भागवत मृत्युके बाद मुक्ति दिलानेवाला शास्त्र नहीं है। वह तो जीते जी मुक्ति दिलाता है। मृत्युके बाद मुक्ति मिले या न मिले वह कौन जान पाता है। इसी कारणसे तो महात्मा जीवनमुक्तिके गुण गाते हैं।

वैसे तो देह और इन्द्रियोंसे संबंध है ही। सो उनकी उपस्थितिमें ही हमें मुक्ति मिलनी चाहिए।

मुक्तिके दो प्रकार है: विदेहमुक्ति और कैवल्यमुक्ति।

पानीमें रह कर भी कमल पानीसे अलिप्त रहता है। ज्ञानी पुरुष भी संसारमें रहते तो हैं किंतु अलिप्तभावसे ही।

जगत् देखा न जाय इस हेतुसे ज्ञानी पुरुष आंखें बंद करके बैठे रहते हैं। किंतु जगत् ऐसा तो शरारती है कि आंखें बंद कर लेनेके बाद भी दिखाई देता है। बाह्य संसारकी अपेक्षा आंतरिक संसार अधिक बाधक है। मनमेंसे उसे मीटा देने पर ही भक्ति ठीक तरहसे की जा सकती है।

नौकाको रहना तो जल ही मे है। किंतु यदि जल नौका पर सवार हो जाए तो नौका डूब जाती है।

बाह्य संसारको मनमें न आने देनेके हेतु ज्ञानी जन बडे सतर्क रहते हैं।

वैसे संसार स्वयं तो बाधक नहीं है किंतु उसका चिंतन, उसकी आसक्ति बड़ी ही बाधक है। संसार तो सुखदाता है ऐसी कल्पना भी भक्तिमार्गमें बाधा रूप है।

ज्ञानी पुरुष शरीरको एक आवश्यकताके रूपमें स्वीकार करते हैं किंतु वे यह भी स्पष्टतः जानते हैं कि सांसारिक सुख भ्रामक है। केवल आभासित सुख है।

दृश्य पदार्थमेंसे हट कर द्रष्टामें जब दृष्टि स्थिर होती है तभी आनंद मिलता है। दृश्य दुःखरूप ही है। दृश्यके द्रष्टाको साक्षी कहते हैं। दृश्य दुःखरूप है। द्रष्टा मात्र आनंदरूप ही है। दृष्टिको दृश्यमेंसे हटा कर द्रष्टामें स्थिर करोगे तो आनंद मिलेगा।

जगत्में रहना है और विषय भी रहेंगे ही। शरीर, मन और जगत्से भागा तो जा नहीं सकता। किंतु आसक्ति छोडनी है।

अज्ञानी जीव जगत्को भोगदृष्टिसे और ज्ञानी भगवद् दृष्टिसे देखता है।

मायाका अर्थ है लौकिक नामरूपसे आसक्ति।

भक्तिका अर्थ है अलौकिक नामरूपसे आसक्ति।

भक्तिमार्गमें भावना और श्रद्धाके बिना सिद्धि मिल नहीं पाती।

आत्माको क्या मुक्त करोगे? वह तो मुक्त ही है। प्रभुके हृदयमें निवास करना ही निरोध है। विरोध और वासना निरोधको प्रतिबंधित करते हैं। जब तक हृदयमें विरोध है तब तक निरोध नहीं हो पाएगा। जीवनमेंसे विरोध और वासना चले जाते ही अपने आप निरोध हो जाता है।

मुक्ति कब मिलती है? शरीरके मरनेसे मुक्ति नहीं मिलती, मनके मरनेसे मुक्ति मिलती है। मनका निरोध ही मुक्ति है।

दशम स्कंधमें निरोध लीला है। सभी सांसारिक विषयोंमेंसे मन हट कर जब ईश्वरसे मिल जाता है तब मुक्ति ही है।

परमात्मा आनंदस्वरूप हैं। मन अर्धचेतन है। मन सांसारिक विषयोंके साथ एक नहीं हो सकता क्यों कि संसार जड है और मन अर्धचेतन है। सजातीय वस्तु ही एक हो पाती है। मन ईश्वरके सिवाय अन्य किसी भी वस्तुसे एक नहीं हो सकता, अभिन्न नही हो पाता।

मनुष्य चाहे जितना कामी क्यों न हो, कामसुखके उपभोगके बाद उसका मन नारी देहसे दूर हो जाता है। कामेषणा दूसरी बार जाग सकती है, किंतु तत्काल तो नारीदेहसे हट ही जाएगी।

अब वह उदासीनता यदि हमेशाके लिए मनमें जम जाय तो बेडा पार है। वैराग्य क्षणिक नहीं, स्थायी होना चाहिए।

विषयभोगके बाद शीघ्र ही उत्पन्न होनेवाला वैराग्य, वैराग्य नहीं, उसका आभास मात्र होता है।

कई बार वैराग्य उत्पन्न तो होता है किंतु माया उसे रहने नहीं देती।

मन संसारके जड पदार्थोंके साथ नहीं, ईश्वरके साथ ही एकाकार हो सकता है।

कृष्णलीला मनका निरोध (हृदयमें प्रभुका निवास) करनेके लिए है।

पूर्वजन्मका शरीर तो मर गया है किंतु मन नया शरीर ले कर आया हुआ है। जीवात्मा मनके साथ जाता है। सो शरीरकी अपेक्षा मनकी चिंता अधिक करनी है।

मृत्युके बाद भी मन साथ ही आता है। पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-परिवार तुम्हारे मरनेके बाद यहीं रह जाएंगे, किंतु मन तो संग ही चलेगा। सो अन्य सभीकी ओरसे आसक्ति कम करके मनकी चिंता अधिक करो।

यदि कोई सांसारिक वस्तु बीगड गई या खो गई तो और मिलेगी, मन यदि बीगड गया तो दूसरा मन किसी भी बाजारमेंसे मिल नहीं पाएगा। जीवात्मा तनको छोडता है किंतु मनको साथ ले चलता है। अतः मनको हमेशा संभालते रहना।

गीतामें कहा है:—

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

गीता १५-७-९

जीवोंमें बसा हुआ मेरा अंश त्रिगुणमयी मायामें स्थिर हो कर मन-सहित पांचों इन्द्रियोंका आकर्षण करता है। मनका आश्रय करके जीवात्मा ही इन विषयोंका उपभोग करता है। सो मनुष्यके मरनेके बाद भी मन तो साथ ही रहता है।

शरीर तो मरता है किंतु मन नहीं मरता। मन तभी मरता है कि जब वह मनमोहनके साथ एकरूप हो जाता है। अर्थात् मुक्ति मिले तभी मन मरता है।

विषयोंकी ओर दौडता हुआ मन मरता नहीं है।

मन यदि ईश्वरका चिंतन, ध्यान, मनन करे तो उन्हें पा भी सकता है।

किसीके गुरु होनेकी इच्छा कभी न करना। पहले अपने मन ही के गुरु बनो। रामदास स्वामीने कहा है:—

मना सज्जना भक्तिपंथेची जावे,
तरी श्रीहरि पाविजेतो स्वभावे।
जनी निंद्य ते कर्म सोडोनी द्यावे,
जनी वंद्य ते सर्व भावे करावे॥

हे मन! जिस भक्ति मार्गसे सज्जन लोग जाते हैं उसीका तू अनुसरण कर। तभी तुम्हें साहजिकतासे श्रीहरि मिलेंगे। संसारके निंदनीय कर्मोंका त्याग किया जाय। संसारके वंदनीय कार्यमें एकाग्र हुआ जाय।

अरे मन, तू पाप क्यों करता है ? तू सज्जन होते हुए भी दुर्जन–सा काम क्यों करता है ? यदि कोई बताए कि इस लड्डुमें जहर है तो उसे तुम खाओगे क्या ? तो इसी तरह मनको भी समझाओ कि ये सारे विषय विषैले हैं, उसका कभी उपभोग न करना।

संसारके विषयोंको हमेशा शंकाशील दृष्टिसे देखो। स्वामी शंकराचार्यने कहा है:—

भवसुखे दोषानुसंधीयताम्।

गुरु बननेकी अपेक्षा किसीका शिष्य होना बडा अच्छा है। यदि तुम किसी व्यक्तिके गुरु हो और वह शिष्य कुछ पाप करे तो उसके लिए तुम्हीं जिम्मेवार माने जाओगे।

आत्मा मनका गुरु है, स्वामी है, मुक्त है। मुक्ति मनको मिलती है। आत्मा तो मुक्त है, स्वतंत्र है।

निद्रा और समाधिमें अंतर है। फिर भी बहुत कुछ साम्य भी है। समाधिमें मन सभी विषयोंसे निवृत्त हो जाता है और चित्तवृत्तिका निरोध होता है। निद्रामें भी मन संसारको भूल जाता है। संसार भूलने पर ही निद्रा आती है। नींदके समय भी मन संसारके विषयोंसे परे हो जाता है। किंतु निद्रावस्थामें मन पूर्णतः निर्विषय नहीं हो पाता। निद्राका सुख तामसी है। उसमें अहम्‌भाव शेष रह जाता है। अहम् भावका लय नहीं होता है।

समाधिकी अवस्थामें मन पूर्णतः निर्विषय हो जाता है, अहम् भाव भी लुप्त हो जाता है।

श्रीमद् शंकराचार्य शिवमानसपूजा स्तोत्रमें कहते हैं:—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोग रचना निद्रा समाधि स्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणाविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्॥

हे शंभु, तुम मेरी आत्मा हो। बुद्धि पार्वती है। प्राण आपके गण हैं। शरीर आपका मंदिर है। सभी विषयभोगोंकी रचना आपकी पूजा है। निद्रा समाधि है। मेरा हलन–चलन आपकी परिक्रमा है। मेरे सभी शब्द आपके स्तोत्र हैं। इस भांति मेरी सभी क्रियायें आपकी आराधनारूप बनें।

योगीजन आत्मस्वरूपमें मनका लय करते है। मनको यदि कोई विषय नहीं दोगे तो वह आत्मस्वरूपमें जा मिलेगा। और वैसा लय ही मुक्ति है।

विषयोंके चिंतनसे मन जीता है और उनके त्यागसे वह मर जाता है। सांसारिक विषयोंमेंसे हट जाने पर मन शांत हो जाता है। दिएमें जब तेल बाकी नही रहता तब वह बूझ जाता है। इसी प्रकार मनमेंसे सांसारिक विषयोंका निष्कासन होने पर वह शात हो जाता है। मनको हमेशा किसी आधारकी आवश्यकता रहती है। सो उसे प्रतिकूल विषयोंसे अलग करके अनुकूल विषयोंकी ओर मोड देना चाहिए।

निद्राके समय भी समाधि–सा ही आनंद मिलता है किंतु वह आनंद तामस है। निद्रामें सब कुछ मीट–सा जाता है किंतु अहंकार बना रहता है। जब कि समाधिकी अवस्थामें नाम, रूप और अहंभाव निःशेष हो जाते हैं।

समाधिके दो प्रकार हैः- जड और चेतन ।

योगी मनको बलपूर्वक वश करके प्राणको ब्रह्मरंध्रमें स्थापित करता है । यह हुई जड समाधि । किंतु जैसे बलात्कारके बदले मनको प्रेमसे समझा-बूझाकर विषयोंमें हटा लेना अधिक श्रेयस्कर है । और यही तो है चेतनसमाधि ।

विश्वामित्रने ६०,००० हजार वर्षो तक तप किया फिर भी वे मेनकाके सौंदर्यको देख कर लोलुप हो गए । इसका कारण यही है कि उनकी समाधि जड थी ।

समाधि तो साहजिक होनी चाहिए । साधो सहज समाधि भली ।

साहजिक समाधि श्री कृष्णलीला ही में है । कृष्णकथा और बांसुरीके श्रवण करते समय, चाहे आंखें खुली ही क्यों न हो, समाधि लग ही जाती है । गोपियोंने आंखें मुंद कर नाक पकड समाधि लगानेका प्रयत्न कभी नहीं किया ।

गोपियोंकी समाधि स्वाभाविक, साहजिक समाधि थी ।

यह भोगी शरीर योगाभ्यास कर नहीं सकता । भोगी यदि योगी बननेका प्रयत्न करेगा तो रोगी बन जाएगा ।

योगका सर्व प्रथम साधन है ब्रह्मचर्य । ब्रह्मचर्यके पालनके बिना योगसिद्धिकी प्राप्तिका प्रयत्न करनेवाला अधोगतिकी गर्तामें गिरता है ।

कृष्णकथा है ही ऐसी कि वह जगत्को अनायास ही भूला देती है । जगत्में बस कर, रह कर भी उसको भूल जाना है ।

यह भागवत ग्रंथ ऐसा दिव्य है कि सात ही दिनोंमें मुक्ति दिलाता है । राजा परीक्षित इस ग्रथका श्रवण करके सात ही दिनोंमें जगत्को भूल कर कृष्णमें तन्मय हो गए थे ।

बडे बडे ज्ञानी महात्माओंको भी यह आशंका थी कि राजा परीक्षित मात्र सात दिनोंमें मुक्ति कैसे पाएगा ।

मात्र सात ही दिनोंमें राजाके ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी अभिवृद्ध करनेके हेतु ही यह कृष्णकथाका आयोजन किया गया था । क्यों कि कृष्णकथामें तन्मयता होने पर ही तो उसे इच्छित मुक्ति मिल पानी थी।

इस जगत्को भूलनेके लिए ही तो योगी आंखे मुंद कर प्राणायाम करते है । किंतु इस जगत्को भूल जाना सरल नहीं है । योगीके लिए जगत्को भूलना आसान नहीं है तो गोपियोंके लिए जगत्को याद करना आसान नहीं है ।

कृष्णकथामें आंखें मुंदने, नाक पकडने या प्राणायाम करनेकी आवश्यकता नहीं है । यह तो जगत्को अनायास ही भूला सकती है ।

मनका निरोध तब होता है कि जब किसका विरोध नहीं होता है । मनमें विरोध और वासना न रखो । विरोध और वासना निरोधमें बाधक है । जगत्के किसी भी जीवके लिए विरोध न रखो । जगत्के भोग्यपदार्थोकी वासना न करो। निरोध होने पर अनायास ही मुक्ति मिल जाती है ।

श्री कृष्णलीलासे अनायास ही मनका निरोध हो जाता है । जगत्की विस्मृति और भगवान्की अखंड स्मृति ही तो निरोध है ।

पूतना-वासना आंखोंमें आ बसती है । सो आंखोंको कृष्णकी रूपमाधुरीमें स्थिर करो और कानको कृष्ण कथासे जोड दो ।

यदि यह संसार सुंदर है तो इस सुंदर संसारका निर्माता तो न जाने कितना सुंदर होगा ! क्या ऐसा विचार तुम्हारे मनमें कभी आया भी है ?

मनुष्य सौंदर्यदर्शनके लिए काश्मीर जैसी दूर दूरके स्थानोंमें घूमता रहता है। अजी, वहां क्यों जाते हो ? सच्चा सौंदर्य तो अंतरमें है, ईश्वरमें है उसे देखनेका प्रयत्न करो।

परमात्माके किसी भी स्वरूपसे तन्मय होने पर मुक्ति मिल सकती है। भागवतका कहना ऐसा है ही नहीं कि मात्र श्रीकृष्णस्वरूपमें ही लीन हो जाओ। तुम चाहो जिस रूपमें तन्मय हो जाओ। ईश्वरके जिस रूपमें तुम्हें श्रद्धा हो उसीको अपनाओ। श्री परमात्माका कोई भी रूप मुक्तिदाता है।

श्री शंकराचार्य भी कहते हैं:- भगवान्‌के किसी भी रूपमें श्रद्धापूर्वक तन्मय हो जाओ। उसकी अनन्य रूपसे भक्ति करो। जिस किसी रूपमें संपूर्ण श्रद्धा हो उसकी अनन्य भक्ति करो और अन्य रूपोंको उसीका अंश मान कर वंदन करो। इस प्रकार अन्य रूपोंमें अंशात्मक प्रेम रखनेसे भक्तिमें रागद्वेष नहीं आएगा। और वही अनन्य भक्ति होगी।

नारी अपने पतिके प्रति अनन्य प्रेम रखती है फिर भी अपने अन्य सभी कुटुंबीजनोंकी भी सेवा प्रेमसे करती है। अर्थात् स्त्रीका पतिप्रेम अनन्य है और अपने अनन्य रिश्तेदारोंके प्रति अंशात्मक प्रेम रखती है। ऐसे अंशात्मक प्रेमसे पतिप्रेममें कुछ न्यूनता तो होती ही नहीं है।

हमें अपने मनपसंद प्रभुरूपसे उस नारीकी भांति ही अनन्य रूपसे भक्ति करनी है और साथ ही साथ ईश्वरके अन्य रूपोंको भी आदर देना है।

श्री कृष्ण अनायास मुक्तिदाता है। मुक्ति आत्माको नहीं मनको मिलती है। आत्मा तो नित्य मुक्त है। बंधन-मुक्त तो मनको करना है। मनको मुक्ति मिलनेके बाद आत्मा मुक्तपनका अनुभव करता है।

आत्माको जब कोई बंधन ही नहीं है तो फिर मुक्तिका तो प्रश्न ही कैसे पैदा हो सकता है ? विषयोंका बार बार चिंतन करते रहनेके कारण मन उनमें फंस जाता है और बंध जाता है।

आत्मा तो परमात्मा ही अंश है अतः उसका बंधन तो एक कल्पना मात्र ही है।

कोई आत्माको परमात्माका अंश मानता है तो कोई इन दोनोंको एक मानता है। कुछ लोग आत्मा-परमात्मामें अंश-अंशीका भाव मानते हैं।

जीव ईश्वरका अंश है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है:—

ममैवांशो जीवलोके।

इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीमद् शंकराचार्यने कहा है:- "अंश इव जीव।" आत्मा ईश्वरका अंश जैसा है, अंश नहीं। जीव ईश्वरका अंश हो नहीं सकता। ईश्वरके टूकडे नहीं हो सकते। हां, परमात्मा और आत्मा एक हैं। शंकर स्वामीने भी कहा है, ईश्वरत्वमेंसे कोई अंश विभक्त नहीं हो सकता।

घडेमें समाया हुआ आकाश और बाहरका व्यापक आकाश एक ही तो है। फिर भी घटकी उपाधिके कारण अंश-अंशी भावका आभास होता है। इसी तरह परमात्मा और जीव एक होते हुए भी अलग-अलग दिखाई देते हैं।

यदि गुलाबके फूलकी एक पंखुरी हम काट दें तो वह फूल अखंड नहीं रहेगा। फूलका स्वरूप भंग हो जाएगा। किंतु ईश्वर नित्य होनेके कारण वे तो अखंड ही रहेंगे।

उपासनाके हेतु अंशी और अंशके भेद किए गए हैं, किंतु तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। व्यवहारमें अंश-अंशी भिन्न हो सकते हैं, तत्त्वतः नहीं।

सागर बिंदुओंसे बनता है, सागरसे बिंदु नहीं। बिंदु सागर नहीं है।

जीव ईश्वररूप है।

रामानुजाचार्य आदि संतोंके अनुसार परमात्मा अंशी हैं और आत्मा अंश।

कुछ और आचार्योंके अनुसार जीव मुक्तावस्थामें अंशी है और आबद्धावस्थामें अंश। अंशी-अंशके भेदमें मानते हुए भी दोनोंको एक ही मानते हैं।

वल्लभाचार्य आदि वैष्णव आचार्योंका कहना है, जीव अंश जैसा नहीं, अंश ही है और ईश्वर अंशी है। ईश्वर सागर हैं और जीव जलबिंदु। सिंधुकी विशाल जलराशिमेंसे कुछ बिंदु निकाल लेने पर भी उसके स्वरूपमें कोई भग नहीं होता। इसी प्रकार जीवके अलग हो जाने पर ईश्वरके स्वरूपमें कोई विकृति नहीं होती।

भक्त पहले द्वैतका नाश करके अद्वैतकी साधना करता है। और फिर ईश्वरकी सेवा करनेके हेतु काल्पनिक द्वैतभाव रखते हैं।

ये दोनों सिद्धांत सच्चे कहे जा सकते हैं। साधकको चाहिए कि इन सिद्धांतोंके खंडन-मंडनके पचडेमें न फंसे।

चाहे सो मनको मान कर आगे बढते चलो।

यदि जीव ईश्वरका अंश है तो माया उसे कैसे बांध पाती है?

माया न तो सत् है और न तो असत्।

जब तक हम स्वप्नसे जगे नहीं हैं तब तक वह सत्य ही होता है। जगनेके बाद स्वप्न असत्य हो जाता है। इस प्रकार जब तक हम मायासे आवरित हैं तब तक माया सत्य होती है। और माया छिन्नभिन्न होते ही वह असत्य सिद्ध हो जाती है।

माया जीवको भरमा सकती है, रुला नहीं सकती। जीवात्माको कोई भी बंधन नहीं होता है। वह तो मुक्त ही है। मनको ही बंधन है। मनके बंधन, अज्ञानके कारण आत्मा मान लेता है कि वह भी बंधा हुआ है। अज्ञानके कारण जीव मान लेता है कि उसे किसीने बांध लिया है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख राशी।
सा माया बस भयउ गुंसाई।
बंध्यो कीट मर्कटकी नाई॥

लोग कहते हैं कि मेरा मन बीगडा मेरा मन फंस गया। कोई ऐसा नहीं कहता कि मैं बीगड गया हूं मेरी आत्मा भ्रष्ट हो गई है।

आत्मा तो मनका द्रष्टा है, साक्षी है। मनको कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, आत्माके आदेशानुसार काम करना पडता है। मन नपुंसक है। वह विषयोंमें फंस कर सुखी-दुःखी होता है किंतु आरोप आत्मा अपने पर करता है।

तुलसीदासजीने एक दृष्टांत दिया है। वानरोंको पकडनेके लिए शिकारीने एक युक्ति की। वनमें जिस वृक्ष पर वानर हों उसके नीचे एक छोटेसे मुंहवाले घडेमें चने भरके रख देता था। वानर अपने दोनों हाथोंसे चने निकालनेका प्रयत्न करते थे कि मुट्ठीमें चने होनेके कारण हाथ घडेसे बाहर निकल नहीं पाते थे। वे मान लेते थे कि किसी भूतने घडेमें छुप कर उनके हाथ पकड लिए हैं। वास्तवमें तो किसी भी भूतने हाथ पकडे ही नहीं थे। यदि मुट्ठी खोल देते तो हाथ बाहर निकल सकते थे।

संसार भी एक वैसा ही घडा है। सांसारिक विषय है चने। और मन है वानर। मन अहंतावश विषयोंको अपनी मुट्ठीमें बंद किए रहता है फिर भी मानता है किसीने बांध लिया है। विषयोंको ममता-अहम् की मुट्ठीसे पकड लिए हैं और स्वयं ही छोड नहीं रहा है।

जीवका बंधन वानरके बंधन जैसा ही है। इन दोनोंका बंधन अज्ञानमूलक है। अज्ञानका नाश होने पर बंधन नहीं रहता। अज्ञानकी उपाधि दूर होते ही परमात्मा और आत्मा एक हो जाते है। मायाने सांसारिक घडेमें विषयोंके चने भर दिए हैं। समझ-बूझ कर यदि इन विषयरूपी चनोंको छोढ दिया जाय तो फिर मुक्ति ही तो है।

अपने पुत्रके घर भी पुत्रका जन्म हुआ फिर बूढा घर छोड कर वृंदावन या काशीवास करना नहीं चाहता। पहले तो वह कहता था कि मेरे पुत्रके विवाह हो जाने पर मैं गृहत्याग करुंगा। अब वह कहता है मेरा छोटा पुत्र मुझे जाने नहीं देता। काशी-वृंदावनमें सेवा-चाकरी भी कौन करेगा ?

इधर बूढेके पुत्र सोचते हैं, यदि यह बूढा वृंदावन चला गया तो उसके पेंशनकी रकमसे हाथ धोना पडेगा क्यों कि वहीं मंगा लेना। वहां वह सारी रकम साधु-संतोंमें लूटा देगा। यदि यहां घरमें ही वह रहे तो वह रकम घरमें ही खर्च होती रहेगी, बाजारसे साग सब्जी भी लाएगा, हमारे बच्चोंकी देख-भाल करेगा और यदि हम रातको सीनेमा देखने जायेंगे तो घर भी संभालेगा।

इस तरह बूढा और उसके बच्चे एकदूजेको छोडते नहीं हैं। दोनोंकी अपनी अपनी वासना है, अपने-अपने स्वार्थ हैं।

मन यदि विषयोंमेंसे हट कर ईश्वरका चिंतन करने लगे तो मुक्ति मिलती ही है। देहाध्यास छूटा और वृत्ति ब्रह्माकार हुई तो मुक्ति ही है।

विषयोंका ही चिंतन करनेवाला मन अशुद्ध है। विषयोंका चिंतन त्यागनेवाला मन शुद्ध है। अनादि कालसे विषयोंका चिंतन करते रहनेकी मनको आदत-सी हो गई है। यदि यही मन श्रीकृष्णकथाका चिंतन, श्रवण, मनन करने लगे तो विषयोंका विचार करनेकी आदत छूट सकती है।

इन्द्रियोंके स्वामी है श्रीकृष्ण। आंखोंका श्री कृष्णसे संबंध जोडो। सर्वत्र और सभीमें ईश्वरके दर्शन करो। इन्द्रियरूपी गोपीका आत्माके साथ मिलन करना है। पांच इन्द्रियोंके विषय भी पांच हैं। यदि इन्द्रियां अपने अपने विषयोंसे अलग हो जाय तो आत्माके साथ उनका मिलन होगा। इन्द्रिय गोपीको प्रभुके साथ विवाहित कर दो।

गोकुल लीलाका तात्पर्य है गोपियोंकी जीते जी मुक्ति। श्री कृष्णने गोपियोंको मुक्त करनेके लिए ही गोकुल लीला की थी। गोपियोंको वे जीते जी मुक्त करना चाहते थे। गोपियां चाहे अपने अपने घरमें रहें, उनका मन मेरेमें ही रखना है।

किसी भी प्रकारकी साधना, धारण किए बिना ही गोपियोंके मनका श्री कृष्णमें निरोध हो गया। गोपियोंने भक्ति-मार्गका आचरण किया था।

महाप्रभु कहते है, मुझे नया कुछ भी कहना नहीं है। मैं तो गोपियोंका मार्ग ही बतलाता हूं।

लौकिक रूपके प्रति जितनी आसक्ति है उतनी यदि भगवान्‌की आसक्ति हो जाय तो ससारके बंधन छूट जायेंगे।

श्री कृष्णका सौंदर्य ही ऐसा है कि उसे देखनेके बाद जगत्‌का सौंदर्य सुहाता ही नहीं है। श्री कृष्ण अति सुदर है। जगत् सुंदर है ऐसा माननेसे कामदृष्टि पैदा होती है।

श्री कृष्ण कथामें तन्मयता अनायास ही हो जाती है। परमात्मा हमारी सभी इन्द्रियोंको विषयोंमेंसे हटा कर अपनी ओर आकर्पित कर लेते हैं। जिसका मन मधुर है उसीके घरका माखन कनैया ग्रहण करता है।

भगवानसे हमेशा प्रार्थना करते रहोः– नाथ, मेरे मनको जड पदार्थोंमेंसे हटा कर अपनी ओर आकर्षित कर लीजिए।

मनको तभी शांति मिलती है कि जब वह ईश्वरमें स्थिर होता है।

वेदांती मनको अर्धचेतन और अर्धजड मानते हैं। संकल्प करनेसे मन हजारों माइल (मील) दूर पहुंच जाएगा। मनका जब भी लय होगा जड पदार्थमें नहीं, ईश्वर ही में लय होगा।

वस्तु सजातीय वस्तुमें ही घुलमिल सकती है। दूधमें मीसरी मिल जाती है, पत्थर नहीं।

संसारके सभी पदार्थ नाशवंत हैं। जो क्षण क्षण सर रहा है (क्षण होता जा रहा है) वही संसार है। और मन ईश्वरमें ही जा मिलेगा, अन्य किसी पदार्थमें नहीं।

हे नाथ, मेरा मन सदा तुम्हींमें लगा रहे।

ईश्वरसे मनका दूर होना ही बंधन है। ईश्वरके चरणोंमें मनका रहना मुक्ति है। मन ईश्वरसे दूर हो जायगा तो बीगड जाएगा। भगवान्‌की लीलाका यही तात्पर्य है।

गोपियां अपने मनमें श्री कृष्णको हमेशा बसाए रख कर ही घर-गृहस्थी निभाती रहती थीं।

मनको मुक्त करना है, उसीका निरोध करना है, ईश्वरके साथ उसे ही एकाकार करना है।

निवृत्तिके समय यदि मनमें किसी भी वस्तुका विचार आए तो मान लो कि मन उसीमें फंसा हुआ है। गोपियां तो निवृत्तिके समय श्री कृष्णकी लीलाका श्रवण, कीर्तन, ध्यान करती थीं। सकटके समयमें जीव विश्वासघात करता है किंतु भगवान् तो दौडते हुए आते हैं।

सभी विषयोंको छोड कर मनका ईश्वरमें लगना मुक्ति है। मनके अनायास प्रभु-स्मरणके लिए यह निरोध लीला है।

दशम स्कंधकी कृष्ण लीला जगत्का विस्मरण और प्रभुका अखंड स्मरण कराती है।

गोपियां सारे जगत्को भूल कर मात्र कृष्णको याद करती रहें इसी हेतु यह कृष्ण लीला है।

कृष्ण लीलामें मनको लगा देनेसे जगत् भूलाया जा सकेगा। शरीर चाहे कहीं भी हो, मनको गोकुल-वृंदावनमें ही बसाए रहो।

जो मर कर जीए और जी कर मरे वही सच्चा शूर है। जो मर कर जीता है वह मुक्ति पाता है। मृत्युकी मृत्यु ही तो मुक्ति है।

गोपियां घरका कामकाज करते हुए भी कृष्णमें ऐसी लीन हो जाती थीं कि न करने जैसा काम भी कर बैठती थीं। चूल्हेमें लकडीके साथ साथ बेलन जला देती थीं वे।

काल धक्के दे कर निकाले और हमें रोते हुए संसार छोडना पडे इसकी अपेक्षा समय-सर सावधान हो कर समझबूझ कर जजालसे मुक्त होना श्रेष्ठ है।

बुद्धि परमात्माको पकड नहीं पाती।

नायमात्मा प्रवचनेने लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूस्याम्॥

परमात्मा न तो वेदाध्ययनसे मिलते हैं और न तो शास्त्रश्रवण या बुद्धिचातुर्यसे। आत्मा जिस पुरुष पर कृपा करता है उसीको उसकी प्राप्ति होती है। अथवा जो उसे प्राप्त करना चाहता है उसे मिलता है।

परमात्मा जिसे अपना मान कर अपनाते हैं उसीको वे मिलते हैं।

अब आगे दामोदर लीलाकी बात भी आएगी।

परमात्मा श्री कृष्ण परम प्रेमका स्वरूप है। सामान्य प्रेम और परम प्रेममें अंतर है। पुत्र, पत्नी, माता, पिता आदिके साथ जो प्रेम है वह सामान्य है। जगत्के सभी पदार्थ और जीवोंके प्रति जो निःस्वार्थ प्रेम होता है वह है परम प्रेम।

जीव बडा अयोग्य है, अपात्र है। वह मनसे, आंखोंसे हमेशा पाप करता रहता है। फिर भी ईश्वर तो उससे प्रेम ही करते हैं। ईश्वर जीवसे प्रेम करते हैं, उस पर प्रेम बरसाते हैं और उससे प्रेम ही की अपेक्षा करते हैं। वे प्रेमसे ही वश हो सकते हैं। वे धनसे वश नहीं होंगे क्यों कि वे स्वयं लक्ष्मीपति हैं।

जब शारीरिकबल, द्रव्यबल, ज्ञानबल आदि सब हार जाते हैं तब प्रेमबल ही जीतता है। प्रेमबल सर्वश्रेष्ठ है। प्रेमबल परमात्माको वश करनेका साधन है। कुछ लोग पूछते हैं, भई परमात्मासे तो प्रेम किस प्रकार किया जा सकता है? घरके लोग हमें सुख-सुविधा देते हैं अतः हम उनसे प्रेम करते हैं। उसी प्रकार मान लो कि परमात्माकी कृपासे ही हम सुखी हैं। उनके नामका बार बार जप-स्मरण करोगे तो उनसे प्रेम हो जाएगा।

यदि भगवान्की इच्छासे तुम्हारी इच्छा भिन्न होगी तो प्रभुके साथ प्रेम हो नहीं पाएगा। अपनी इच्छाका त्याग करो और भगवान्की इच्छाको ही अपनी इच्छा बना लो।

वैष्णव अपनी इच्छाको भगवान्की इच्छाके साथ एकरूप करके उनमें लीन हो जाता है। महात्मा प्रभुको प्रेमसे जीत लेते हैं। जीव पूर्णतः प्रेम करने लगे तो भगवान् वशमें हो जाते हैं। ऐसी प्रेम कथाका ही इस दामोदर लीलामें वर्णन है।

भागवतमें जहां जहां "एकदा" शब्दका प्रयोग किया गया है, वहां कोई न कोई विशिष्ट प्रसंग है। नवें अध्यायके आरंभमें भी "एकदा" शब्द था।

परीक्षित् कृष्णकथासे अभी तृप्त हुए नहीं है। वे अब भी बडे विस्तारसे सुनानेकी प्रार्थना कर रहे हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं। राजन्, अब आगे सुनिए।

गोपियोंने कनैयाका नाम माखन चोर रख लिया तो यशोदाको यह बात अखरने लगी। वह अपने लालासे आग्रह करने लगी कि बाहरका नहीं, घरका माखन खाना ही अच्छा है। कनैया कहता है, मैं यदि घरका ही खाने लगुं तो घरमें घट जाएगा, मैं तो बाहरसे कमा कर ही खाना चाहता हूं।

अजी, स्वाद गोपियोंके माखनमें नहीं, प्रेममें था। मीठापन प्रेममें होता है, वस्तुमें नहीं।

यशोदाजीने सोचा, घरका काम-काज नौकर संभालते हैं इसी लिए शायद लालाको घरका माखन पसंद नहीं है और माखनकी चोरी करता रहता है। आज मैं स्वयं दधिमंथन करके माखन बना कर उसे खिलाऊंगी और तृप्त करूंगी।

रामायणमें कहा गया है कि राजा दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे और सेवकोंकी कोई कमी नहीं थी फिर महाराणी कौशल्या अपने हाथों ही भोजन पकाती थीं।

रसोई ठाकोरजीके लिए है। पाणी बीगडा तो वाणी बीगडेगी। वाणी बीगडने पर वीर्य बीगडता है। वीर्य अर्थात् जीवन। अन्न मनको बनाता है। आपको जिसके चारित्र्यमें पूर्णतः विश्वास न हो उसे अपने रसोईघरमें कभी न आने दीजिए। और यदि वह रसोईघरमें आ भी जाय तो अन्न जल दुषित होने न देना।

एक दिन सभी नौकर घरके अन्य कामोंमें जुटे हुए थे तो यशोदाने अपने ही हाथों दधिमंथन करके माखन बना कर लालाको खिलानेकी बात सोची। मेरा लाला फिर कभी बाहरका माखन खानेकी इच्छा नहीं करेगा।

प्रातःकालमें स्नानादि कार्योंसे निवृत्त होकर, पीला वस्त्र पहन कर यशोदाजी दधि-मंथनके काममें लग गई। यशोदाजी कनैयाके लिए यह कर रही थीं। सो इस काममें भक्ति भी मिली हुई थी।

हमारे प्रत्येक व्यवहारको भक्तिमय बनाना है। घरमें झाडु-बुहारी करना भी भक्ति है क्यों कि हमारा घर ठाकोरजी ही का तो है। यदि घरमें कहीं कुडा-करकट होगा तो ठाकोरजी अप्रसन्न हो जाएंगे। भोजन पकाते समय भी सोचा जाय कि ठाकोरजी खाने जा रहे हैं। भोजन पकाना भी भक्ति ही तो है।

कई बार बहनें पूछती हैं, हमारा कुटुंब बहुत बडा है सो सारा समय रसोई घरमें ही बीत जाता है। प्रभुसेवाके लिए समय बचता ही नहीं है। अरे, बडा कुटुंब तो अच्छे भागवालेको ही मिलता है। घरके सभी लोगोको भगवान् ही का रूप मान कर उनकी सेवा करते रहो।

संसार गागर है और सांसारिक विषय दही। आरंभमें विषय मधुर होते हैं, अंतमें कटु। सांसारिक विषयों विवेकसे मंथन करनेवाला भक्तिरूपी माखन पाता है। ऐसे प्रेमरूप भक्तिरूप माखनको परमात्माको अर्पण करो। परमात्मा प्रेमके सिवाय और कुछ नहीं मांगते।

माता यशोदा पुष्टिभक्तिका स्वरूप हैं। उनके दर्शन पाओगे तो कृष्णके दर्शन पा सकोगे। यशोदाका दर्शन अर्थात् भक्तिकी आराधना। यशोदाजी शुद्ध भक्तिका स्वरूप हैं। और ऐसी शुद्ध भक्ति ही प्रभुको बांध सकती है।

दधिमंथनके समयकी माताजीकी शोभा कैसी थी ? शुकदेवजी वर्णन नहीं, माताजीके उस शोभायमान स्वरूपका दर्शन कर रहे हैं :—

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रति सूत्रनद्धं ।
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूतः ।।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ कुंडले च ।
स्विन्नं वक्त्रं कपरविगलन्मालती निर्ममन्थ ।

सुंदर भृकुटीवाली यशोदाजी दधिमंथन कर रही थीं। रेशमी घाघरा पहना था। सूतरके कंदोरेसे उसे बांधा हुआ था। पुत्रस्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बह रही थी। उनका सारा शरीर डोल रहा था। डोर खींचनेके कारण हाथ थके हुए थे। हाथमें पहने हुए कंगन और कानोंके कुंडल डोलायमान थे। मुख पर पसीनेके बूंद झलक रहे थे और बालोंमें लगाई हुई वेणीमेंसे चमेलीके पुष्पोंकी पंखुरियां झड रही थीं।

आज माता यशोदाके होठों पर, आंखोंमें, मनमे, हृदयमें कनैयाके सिवाय और कोई भी नहीं था।

श्री कृष्णकी सेवाके समय मुखसे उनका उच्चारण होता रहे, मनसे उनका स्मरण होता रहे और सेवाके श्रमके पसीनेसे सारा शरीर, सभी वस्त्र भीग जाने चाहिए।

यह तो भक्तिकी कथा है। धन-संपत्तिके लिए पसीना बहानेवाले तो बहुतेरे मिल जाएंगे किंतु प्रभुसेवाके लिए पसीना बहानेवाले कितने हैं ? ठाकोरजीकी सेवामें पसीना बहाओ। उनकी सेवा स्वयं करो। आजकल तो लोग रुपये-पैसेके लिए अपनी कमर तोडते हैं किंतु ठाकोरजीका चंदन घिसनेके लिए नौकर रखते हैं।

ऊपरके उन श्लोकोंमें भक्तिका निरूपण है। शरीर द्वारा दधिमंथनरूप सेवाकर्म हो रहा है। हृदयमें कृष्णस्मरणकी सरिता बह चली है, वाणी बालचरित्रके गानका गुंजन कर रही है। भक्ति तन, मन, वचनसे अपने प्यारे लालाकी सेवामें संलग्न है।

रेशमी वस्त्र पवित्रताका प्रतीक है। उसकी डोर कसकर बांधी हुई है अर्थात् आलस्य, प्रमादका अंश तक नहीं है।

वैसे तो वस्त्र वासनाका प्रतीक है। सुरतके वस्त्रकी अपेक्षा रेशमी वस्त्र अधिक मुलायम, महीन होता है। तो यह रेशमी वस्त्र है सूक्ष्म वासना। शरीरकी उत्पत्ति और आधार रजोगुण है। सूक्ष्म वासना नहीं होगी तो शरीर भी नहीं रहेगा। वासना निःशेष हो जाने पर जीव ईश्वरसे एकरूप हो जाता है।

सामान्य व्यक्तिकी तुलनामें वैष्णवकी वासना दिव्य होती है। मन पूर्णतः निर्वासनामय होने पर ईश्वरके साथ जा मिलता है। स्वयं ही सुख भोगनेकी इच्छा बाधक है। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा बाधक नहीं है। परायकी सेवा करनेकी इच्छा सूक्ष्म वासना है।

भक्तिमार्ग अपनानेके बाद सुखोपभोगकी इच्छा न करो। औरोंको सुखी करनेकी इच्छा करो। सुखका स्वयं उपभोग करनेकी इच्छा करनेवाला इन्द्रियोंका दास ही होगा।

भगवतसेवामें शरीर खपा दो। शरीर पसीनेसे तर हो जाय तब तक ठाकोरजीकी सेवा करो। ठाकोरजीके उपयोगमें न आनेवाला शरीर वृथा है। तुलसीदलके विना ठाकोरजीकी सेवा हो नहीं पाती।

यह शरीर श्री कृष्णका है, श्री कृष्णके लिए है। यह शरीर धर्मक्षेत्र है। धर्मक्षेत्र अर्थात् विष्णुक्षेत्ररूपी यह देह भोगोपभोगके लिए नहीं है।

यशोदाने शारीरिक सेवा की। शारीरिक सेवा तो करनी ही है किंतु यदि मनसे सेवा नहीं की गई तो आनंदलाभ नहीं होगा। सेवा करते करते आंखें गीली हो जानी चाहिए और हृदय पीघल जाना चाहिए। सेवा आनंदसे करनी चाहिए। ऐसे सद्भावपूर्वक सेवा करनेवाले आज-कल बहुत कम हैं।

सेवारत यशोदाजीकी आंखोंमें श्री कृष्ण हैं और हृदयमें भी। दधिमंथमके समय उनकी दृष्टि तो कनैयाकी ओर ही स्थिर है।

कामकाज करते समय हमारी दृष्टि, यशोदाजीकी भांति, कृष्णकी ओर ही रहनी चाहिए। सभी गोपियां भी खान-पान, काम-काज हर समय गोपाल कनैयाकी ओर ही टकटकी लगाती रहती थीं।

व्यवहार छूटता नहीं है और उसे छोडना भी तो नहीं है। किंतु व्यवहारके साथ साथ परमार्थको याद रखो, अपना लक्ष्य कभी न भूलो। सभा संतमहात्माको कुछ न कुछ कामकाज करना ही पडता था। कामकाज करना नहीं, कामकाजके समय भगवानको भूल जाना अपराध है।

इस ससारमें कोई केवल धनके लिए जीता है तो कोई स्त्रीके लिए, कोई संपत्तिके लिए जीता है तो कोई पुत्रपरिवारके लिए। असा व्यवहार इष्ट नहीं है। पैसा नहीं, परमात्माको देखना है।

आदर्शको, लक्ष्यको ध्यानमें रख कर किया गया व्यवहार ही भक्ति है। व्यवहार शुद्ध होगा तो भक्ति आएगी। लक्ष्यको भूल कर किया गया व्यवहार बाधक होगा। लक्ष्यको भूल जाओगे तो लखचौरासीके फेरेमें फंस जाओगे।

व्यवहार निभाते समय दृष्टि भगवान्की ओर स्थिर रखोगे तो वह व्यवहार ही भक्ति बन जाएगा।

यशोदा है पुष्टिभक्ति। पीला वस्त्र वैष्णवी भक्तिका प्रतीक है। संसार है गागर। मथन करके प्रेम रूप नवनीत पाना है। परमात्माकी मांग है प्रेम।

घरका कारोबार करते समय, यशोदाजीकी भांति, मुखमें प्रभुनाम और दृष्टिमें प्रभुका स्वरूप होना चाहिए।

पुष्टिभक्तिमें भक्ति और व्यवहार भिन्न नहीं हैं। भक्तका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय होना चाहिए। जो कुछ काम करो, भगवान्की आज्ञा समझ कर करो। कामकाज करते करते हर पांच-दस मीनटके बाद भगवान्को निहारते रहना।

जब तक व्यवहार पूर्णतः शुद्ध न होगा तब तक भक्ति भली भांति हो नहीं पाएगी। व्यवहारमें छल, कपट, असत्य न होने चाहिए।

यशोदाकी दृष्टि हमेशा श्री कृष्णकी ओर लगी रहती है। भगवान्का स्मरण करते करते माताका हृदय द्रवित हो गया, वक्षःस्थलका वस्त्र भीग गया है।

बारहवें अध्यायमें कहा गया है कि भगवान्के कुंडलमें सांख्य-योग है। यह यशोदाका नहीं, भक्तिका शृंगार है। सांख्य-योगकी सहायके विना भक्तिकी नहीं जा सकती। महाप्रभुजी-ने कहा है, यशोदाके कुंडल सांख्य-योग हैं। सांख्य-योगकी सहायसे भक्ति स्थिर होती है। दुःखके प्रसंग आने पर मनुष्य भक्ति करने लगता है किंतु उसमें स्थिरता नहीं आ पाती। सो सांख्य-योगके विना भक्ति अपूर्ण है।

योगशास्त्र मनको एकाग्र बनाता है। योग मनको एकाग्र बनानेके लिए उपयोगी है। सांख्यशास्त्रका अभ्यास किए विना चेतन आत्मा जड शरीरसे पृथक् नहीं हो पाता। सांख्यशास्त्र मनको शुद्ध करता है। इन दोनोंकी आवश्यकता है।

यदि भक्ति करनी ही है तो आत्माको शरीरसे पृथक् कर लो और मनको एकाग्र करो। शारीरिक आनंद अपना नहीं है। बार बार सोचो कि चेतन आत्मा और जड शरीर दोनों एक नहीं, भिन्न हैं।

रोज तो मंगलगीत गाने पर लाला जागता था। आज इच्छा थी कि माखन तैयार होने पर उसे जगाया जाय।

बुद्धिको ईश्वरसे दूर न होने दो। बुद्धि-यशोदा विषयोंकी ओर बढेगी तो वहां फंस जाएगी। इसीलिए तो कनैया माताको दूर नहीं जाने देता। बुद्धि यदि ईश्वरसे दूर होकर विषयोंकी ओर जाएगी तो विपत्तिमें फंसेगी। ईश्वर यह नहीं चाहते सो वे यशोदाको कोई और काम करने ही नहीं देते थे।

आज यशोदाजी दधिमंथनमें तन्मय हुई थीं। उनकी वाणीमें, मनमें, हृदयमें श्री कृष्ण हैं। यह यशोदाकी नहीं, भक्तिकी कथा है।

यशोदाका तन, मन, वचन एक हो गये थे। वे मनसा, वाचा, कर्मणा ईश्वरकी सेवा कर रही थीं। अतः कृष्ण स्वयं जग गए। रोज तो श्री कृष्णको जगानेके लिए मंगलगान करना पडता था, आज उन्हें जगानेका उपचार करना नहीं पडा।

अनन्य भक्ति कनैयाको जगाती है। श्री कृष्ण आज अपने आप जग गए।

कनैयाको जगाना है। यशोदाके हृदयमें बसा हुआ कनैया जागा किंतु हमारे हृदयका कनैया तो अभी सोया हुआ है। इसे जगाना है।

ईश्वरको जगाना है। वैसे तो श्री कृष्ण सर्वव्यापी ब्रह्म है। सभीके हृदयमें उनका वास है किंतु सुसुप्तावस्थामें है। उनको जगाना है। यशोदा जैसी भक्ति करोगे तो सुसुप्त कनैया अवश्य जागेगा।

श्री कृष्ण अर्थात् आनंद। हृदयमें आनंद तो है ही। उसे जगाना है। जीव संसारके जड पदार्थोंमें आनंदकी खोज करता रहता है, सो मिल नहीं पाता। ईश्वरके साथ जीवको तन्मय करना है। ईश्वरको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। अंदर सोए हुए भगवान्को जगाना है। भगवान् जागे नहीं कि आनंद आनंद हो जाएगा।

सच्चे वैष्णवका शरीर पसीना बहता है तब ठाकोरजी जगते हैं। वैष्णव दुःखी होता हो तो लाला चैनसे सो नहीं सकेगा।

शुद्ध प्रेमीको परिश्रम सता नहीं सकता। यदि यशोदाकी भांति सेवा करोगे तो तुम्हारी भक्तिको देख कर, तुम्हारे हृदयमें सोया हुआ कनैया अवश्य जागेगा।

यशोदाजीकी निष्काम भक्तिको देख कर भगवान् सकाम बने। भक्ति उमडने लगती है तो भगवान् सकाम स्तन्यकाम बनते हैं।

उपनिषद् भगवान्को निष्काम बताती है। शुकदेवजी भगवान्को सकाम कहते हैं।

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः।

उस समय भगवान् श्री कृष्ण स्तनपान करनेकी इच्छासे माताके पास आए जो दधि-मंथन कर रही थी।

वैसे तो ईश्वर निराहारी है। किंतु यह तो भक्तके हृदयकी भावना है। भक्तका हृदय जब प्रेमार्द्र होता है, तब भगवान् भुखे होते हैं।

कनैया जागा तो माताको ढूंढता हुआ इधर आ पहुंचा। उसने पीछेसे माताका आंचल खींचा। यशोदा तो अपने काममें ऐसी लीन थीं कि उन्हें खबर तक न हुई। कनैया मातासे कहने लगा, मा, मुझे भूख लगी है, पहले मुझे दूध पीला।

यशोदा साधक हैं, दधिमंथन साधन है, श्री कृष्ण साध्य है। साधना ऐसी करो कि साध्य अपने आप आ मिले। साधनातन्मय साधकको साध्य स्वयं जगाता है।

मनुष्य, साधारणतः, सच्चे हृदयसे साधना करता नहीं है अतः वह भगवान्को देख नहीं पाता है। यदि तुम कनैयाके पीछे लग जाओ तो वह अवश्य मिलता है। कनैया तो जीवसे मिलनेके लिए स्वयं आतुर है किंतु जीव ही उसकी उपेक्षा करता रहता है। साधना ऐसी तन्मयतासे करो कि देहभान तक बाकी न रहे और साध्य स्वयं तुम्हारे पीछे दौडने लगे।

यशोदाकी भक्ति देख कर कृष्णने पीछेसे आकर आंचल पकड लिया। तुम भी सेवासाधनामें ऐसे डूब जाओ कि साध्य स्वयं तुम्हारे द्वार पर आ जाए। यही तो है पुष्टि भक्ति।

शरीरसे भक्ति करते समय आंखोंमें और मनमें श्री कृष्णको बसाए रखो। यशोदा सर्वांग भक्ति करती हुई श्री कृष्णका नाम जप रही हैं।

शरीरसे सेवा करोगे, वाणीसे कीर्तन करोगे और मनको श्री कृष्णमें रमाए रहोगे तो तुम्हारे हृदयमें भी कनैया जाग जाएगा।

घरका सारा कामकाज कृष्ण कीर्तन करते हुए ही करो। उनका कीर्तन करनेसे, आंखें खुली होने पर भी जगत् भूलाया जा सकेगा।

योगीजन आंखें मुंद कर, ब्रह्मचिंतन करते हुए जगत्‌को भूलनेका प्रयास करते हैं फिर भी वे उसे भूला नहीं पाते।

वाणीसे कीर्तन, आंखोंसे दर्शन, शरीरसे सेवा करनेके कारण यशोदाके हृदयमें श्री कृष्ण जाग गए।

प्रेमसे स्मरण करने पर हृदय द्रवित होता है और आनंद प्राप्त होता है। आनंद ब्रह्मका स्वरूप है। निद्रावस्थाके आनंदकी भांति जागृत अवस्थामें मुक्ति पाई जाती है।

कनैया घूटनोंके बल माताके पास आया और आंचल पकड कर कहने लगा, मुझे भूख लगी है, मुझे खानेको दो। अब यशोदा कामको अधुरा छोडना नहीं चाहती।

यह जीव बडा दुष्ट है। फिर भी भगवान् उसे धन-संपत्ति, प्रतिष्ठा देते हैं। जीव अधम है फिर भी भगवान् आशा रखते हैं कि वह कभी तो सुधरेगा।

भूखा कनैया रोने लगा। माताने काम छोड दिया और अपने पुत्रको गोदमें बिठलाकर दूध पीलाने लगी। दूधकी धारा बह चली। भक्तिमें हृदय द्रवित हो जाय तो आनंद अवश्य मिलता है। और यह आनंद ही तो ईश्वर है।

क्या शुकदेवजी स्तनपानकी कथा कह रहे थे? श्रीधर स्वामी कहते हैं कि यह कथा बालकको दूध पिलाने जैसी सामान्य नहीं है। यह तो ब्रह्मसंबंधकी कथा है। यशोदा जीव है और कनैया परमात्मा। माता-पुत्रका मिलन कैसा है वह और कौन जान सकता है? यशोदा बालकको दूध पीला रही हैं इतनी बात नहीं है। यह तो ब्रह्मसंबंध स्थापित हुआ है। यह तो अद्वैतकी कथा है। माता यशोदा बालकृष्णको गोदमें लेकर परमात्माके साथ एक हो गई हैं।

यह तो जीव और ब्रह्मका मिलन है। ऐसे मिलनके समय बाहरके संसारको मनमें घूसने न देना। ब्रह्ममिलनके समय, ईश्वरमिलनके समय सांसारिक विषयोंसे दूर ही रहना। यशोदाका ब्रह्मसंबंध हुआ और अलौकिक आनंदकी वृष्टि हो रही थी।

स्तनपान करते करते कनैयाने सोचा, आज जरा माताकी कसौटी भी तो करुं कि उसे मैं अधिक प्यारा हूं या यह संसार। उसे मुझसे ज्यादा लगाव है या सांसारिक व्यवहार से।

परमात्मा कसौटी किए विना किसी भी जीवको अपना नहीं बनाते।

क्षुद्र मनुष्य दो-चार पैसोंके लिए भी पाप करता रहता है। छोटे छोटे पाप मिल कर महापाप होता है। पाप न करना ही सबसे बडा पुण्य है।

कसौटीमेंसे पार उतरने पर परमात्मा कृपा भी करते हैं। वे सभी जीवको कसौटी करनेके बाद ही अपनाते हैं। वे चाहते हैं कि जीव उनसे सबसे अधिक प्रेम करे।

ईश्वरकी माला पहन लेनेके बाद यदि जीव दूसरोंसे प्रेम करने लगे तो ईश्वर अप्रसन्न हो जाते हैं। ईश्वर चाहते हैं कि जीव एकमात्र उन्हींसे प्रेम करे। प्रेम करने योग्य तो ईश्वर ही हैं क्यों कि जगत्‌के पदार्थोंका प्रेम कभी न कभी रुलाता ही है।

कनैयाने माताकी परीक्षा लेनेकी सोची। मैं अग्निको आसा दूंगा। वह प्रज्वलित होगा तो चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफनता हुआ चूल्हेमें बहने लगेगा। अब यदि माता मुझे छोड कर दूधको बचाने दौडेगी तो मैं मान लूंगा कि उसे मैं नहीं, सांसारिक संपत्ति ही अधिक प्यारी है।

कई लोग सोचते हैं कि संसारव्यवहारके सभी काम अच्छी तरहसे पूरे होने पर भक्ति करेंगे। अरे, संसारका व्यवहार न तो कभी अच्छी तरहसे समाप्त हुआ है और न तो कभी होगा।

महापुरुषोंने कहा है, इस जगत्में हर तरहसे सुखी न तो कोई हुआ है और न कोई होगा। और यदि सुखी होगा भी तो वह अपनी शानभान गंवा देगा।

संसारमें कठिनाइयां तो आती ही रहेंगी। किंतु एक भी क्षण परमात्माका स्मरण न छोडनेकी प्रतिज्ञा करनी होगी। ऐसा करने पर ही पापसे पुण्य बढ जाएगा। जब मनुष्यजन्म मिलता है तो पाप और पुण्य दोनों झेलने पडते हैं। दुःखद प्रसंग आने पर मनको समझाया जाय कि पाप घट रहा है।

कनैयाकी आज्ञासे अग्नि प्रज्वलित हुआ और दूध उफनता हुआ बाहर बहने लगा।

ये साधु लोगोंको और कोई काम तो है नहीं। दिवसमें स्वादरहित अन्न एक बार खा कर सारा दिन राधेकृष्णका चिंतन करते रहते हैं। तो इस दूधके उफननेके प्रसंगके वे कुछ इस प्रकार कारण बताते हैं।

(१) वह दूध ऋषिरूपा गायका था। ऋषि तप और साधना करते करते थक गए फिर भी उनके मनमें बसे हुए कामका नाश नहीं हो पाया। उस बुद्धिवासी कामका नाश करनेके लिए ऋषि गायोंका रूप लेकर गोकुलमें आ बसे थे। दूध कनैयाके उदरमें जाना चाहता था। यदि श्री कृष्ण मेरा आहार करेंगे तो मेरा कल्याण होगा। जड पदार्थ भी भगवान्की इच्छा रखते हैं। कामीके उपयोगमें आने पर भोगविलाससे विनाश होता है।

तुम स्वयं यदि कृष्णके उदरमें–हृदयमें बस पाओगे या उनको तुम अपने हृदयमें बसा पाओगे तभी तुम्हें शांति मिलेगी। योगीजन परमात्माके स्वरूपमें मिल जाते हैं। वैष्णव श्री कृष्णको अपने स्वरूपमें उतार देते है। दोनों मार्ग एक ही हैं।

यदि यशोदाजी कृष्णको बहुत स्तनपान कराएंगी तो उसे भूख नहीं रहेगी और मेरा आहार नहीं करेंगे। यदि भगवानकी सेवा मैं नहीं कर पाऊंगा तो मेरा अस्तित्व वृथा ही रहेगा। अतः मुझे तो अग्निमें कूद कर अपने आपको समाप्त कर देना है।

जीना है उसका भला जो इन्सानके लिए जीए,
मरना है उसका भला जो अपने लिए जीए।

अपने लिए जीना कोई जीना नहीं है। वैसे तो कौआ भी अच्छा है जो अपने कुटुंबके लिए भी जीता है अपने जात भाइओंको भी बुलाता है। परोपकारके लिए जीना ही जीना है।

स्वयं सुखोपभोग करनेकी वासना भक्तिके लिए बाधक है, औरोंको सुखी करनेकी भावना भक्तिसाधक है।

समयका नाश सर्वस्वका नाश है।

दूधने मान लिया कि कनैया मुझे नहीं पीयेगा सो वह अग्निमें कूदने लगा।

(२) दूध चाहता था और मानता था कि यशोदा थोडा-सा अपना दूध पीलाएगी और भूख बाकी रह जाएगी तो उसे पीएगा। किंतु लाला तो माताका दूध ही पीए जा रहा था। तो दूधनें सोचा कि लाला मुझे नहीं पीएगा। तो वह " मुझे भी पी, मुझे भी पी " ऐसी विनति करता हुआ वर्तनसे वाहर दौड पडा।

(३) तो एक महात्मा कहते हैं- दूध यशोदाजीके घरका था अतः उसे कृष्णकीर्तन, कृष्णकथाश्रवण, सत्संगका लाभ मिला था। एक करोड जपमाला दिव्यताका संचार करती है तो दूध स्वयं कनैयाके घरका वासी था। और वह दूध तो ऋषिरूपा गायका था। दूधने बाल-कृष्णका दर्शन पाया तो वह उनसे मिलनेके लिए आतुर होकर, अधीर होकर दौड पडा।

ऐसी लीला तो सभीके घरमें रोज रोज होती रहती है। विषय-सुखका छलकना ही तो दूधका छलकना है। दूधकी उफान विषयसुखोंकी याद है। संसारके सुखोंका उपभोग इस प्रकार करो कि मनसे चिमट न जाय, याद बाकी न रह जाय। ठाकोरजीकी सेवा करनेके समय विषय-सुखोंकी याद आना दूधके छलकने जैसा ही है। और ऐसा होने पर भक्ति मीट जाती है।

आज लोगोंको घरका कामकाज करते समय कुछ भी याद नहीं आता है, किंतु माला हाथमें लेते ही घर-गृहस्थीके सभी झंझट मनमें उभर आते हैं। कुछ प्राप्त करनेका समय निकट आते ही साधकके मनमें संसार आ खडा होता है। परीक्षा लेनेके हेतु ही कनैया ऐसी माया रचता रहता है। ब्रह्मसंबंध बंधनेके समय वासनाकी याद-दूधके छलकनेकी भांति-आनी नहीं चाहिए। प्रभुस्मरण करते करते विषयसुखोंका स्मरण हो आने पर भगवान् विस्मृति-के अंधेरेमें छुप जाते हैं।

सेवा करते करते जगत्की याद आना या करना इष्ट नहीं है। लोग डाकोरके रणछोड-रायजीको याद नहीं करते किंतु वहांका गोटा (एक खाद्य विशेष) याद करते रहते हैं। डाकोरजीकी सुंदरताकी नहीं, गोटाकी सुस्वादुताकी याद सताती रहती है।

ईश्वरकी सेवा करते करते यदि विषयसुख याद आ जाए तो मान लेना कि दूध छलकने लगा है। सेवाके समय आंखें, कान और मन किसी औरको न दो, किसीसे बातचीत न करो। आंखें झूकाकर " जय श्री कृष्ण " कह कर अपनी सेवामें लगे रहो। यदि इस समय किसीसे नजर मिलाओगे तो मन चंचल हो जाएगा, सेवाका काम अधुरा छूट जाएगा।

(४) एक अन्य महात्माने कुछ इस प्रकार कहा है। यशोदाजीको वैसे तो कनैया ही अधिक प्यारा था। किंतु चूल्हे पर जो दूध था वह गंगी नामकी गायका था। कनैयाको इस गायका दूध बडा प्रसंद था और वही पीता था। सो यशोदाने सोचा कि यदि यह दूध छलक जाएगा और कनैया गंगी गायका ही दूध मांगेगा तो मैं उसे क्या पीलाऊंगी। इस प्रकार यशोदा दूधको बचानेके लिए नहीं, किंतु कनैयाके प्यारे भोजनको बचानेके लिए दौडी थी।

प्रियजनकी अपेक्षा प्रियजनकी वस्तु अधिक प्रिय लगती है।

(५) एक और महात्मा कुछ इस प्रकार कहते है- दूधने, परमात्माको यशोदाकी गोदमें देखा। ईश्वरदर्शनके बाद भी मुझे अग्निकी आंच सहनी पडती है। मेरा दुःख, ताप अभी तक कम नहीं हो पाया है। मेरे पाप बहुत हैं। मैं जीने योग्य नहीं हूं। मुझे अग्निमें कूद कर मर ही जाना चाहिए। ऐसा सोच कर दूध छलकने लगा।

यशोदाजी लालाको एक ओर रख कर चूल्हे पर दूधका बर्तन उतारने दौडीं।

जीव भी बडा विचित्र है। अपना व्यावहारिक कार्य करते समय ईश्वरको याद करता रहता है किंतु जब ईश्वर उसकी गोदमें आ बैठते हैं, ईश्वरसे संबंध जुड जाता है तब वह ईश्वरको एक ओर रख कर, छोड कर, उस सांसारिक कार्योंके पीछे दौड लगाता है। ब्रह्मसंबंध होने पर संसारका स्मरण हो आना तो उस दुधका छलकना ही है। कई लोग माला तो फेरते हैं किंतु उनका मन तो साग-सब्जीकी खरीदीमें, घर-गृहस्थीकी चितामें लगा होता है। ऐसे जपमें प्रभुका नहीं, उन वस्तुओंका ही जप होता रहता है।

वियोगमें अपेक्षाका जागना गुणदर्शन है। संयोगमें उपेक्षाका भाव दोषदर्शन है। कनैया दूर था तो यशोदा उसे गोदमें उठानेके लिए लालाचित थी और अब गोदमें आया तो उसकी उपेक्षा करके दूधके पीछे भागने लगी।

सुलभ वस्तुकी उपेक्षा करना तो जीवका स्वभाव ही है। भगवानने सोचा कि यशोदाने कई व्रत-जप किए तो मैं उसे मिला। किंतु अब सेर-दो सेर दूधके लिए मुझे छोड चली है।

लालाको छोडकर यशोदाजी सांसारिक काम करने गई। लालाने सोचा कि माताको वह नहीं, संसार ही अधिक प्यारा है। तो माताको सीख देनेके हेतु लालाने पत्थर मार कर एक मन दहीका हांडा फोड दिया।

श्री महाप्रभुने आज्ञा की है श्री कृष्णकी सेवा लौकिक भावसे कभी न करना। अलौकिक सेवा छोड कर लौकिक कार्य सुधारने जाओगे तो भगवान् उसे और बीगाडेंगे।

प्रभुको अलौकिक और लौकिक दोनोंकी चिंता है। उनको हमारी बडी चिंता रहती है। यदि मनुष्य चिंता करके अपने हृदयको जलाता रहेगा तो मेरा क्या होगा?

मैं समर्थ हूं और मेरा स्वामी तो सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान है ऐसा मान कर, निश्चिंत हो कर भगवान्का स्मरण, मनन, चिंतन करते रहो।

भगवत् स्मरण, सेवा करते समय घरमें यदि कुछ नुकसान हो रहा हो तो होने दो। तन ठाकोरजीके पास हो और मन रसोईघरमें, तो वह सेवा, सेवा कैसे कही जाएगी?

भगवत् सेवाको अधूरी छोड कर लौकिक काम सुधारने जाओगे तो वह और भी बीगडेगा। इसीलिए तो श्री कृष्णने दहीका हांडा फोड दिया।

श्री कृष्णने विषयासक्ति रूपी हांडा फोड दिया। यशोदाकी विषयासक्ति नष्ट करनेके हेतु दहीका बर्तन फोड दिया।

संसारासक्तिके नाशके विना भगवद् प्रेम नहीं उत्पन्न होता।

हरि पर विश्वास रख कर ईश्वरसेवा, श्री कृष्णभक्ति करनी चाहिए। श्री कृष्णभक्ति, प्रभुसेवा करनेवालेकी लाज प्रभु हमेशा रखते हैं।

हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे,
जेनी सुरता शामळिया साथ वदे वेद वाणी रे।..हरिने.

वहाले उगार्यो प्रह्लाद, हिरणा, कंस मार्यो रे,
विभीषणने आप्युं राज, रावण संहार्यो रे।....हरिने.

वहाले नरसिंह मेहताने हार हाथो हाथ आप्यो रे,
ध्रुवने आप्युं अविचल राज, पोतानो करी स्थाप्यो रे। ...हरिने.

वहाले मीरां ते बाईनां झेर हलाहल पीधां रे,
पांचालीनां पूर्यां चीर, पांडव काम कीधां रे।...हरिने.

आवो हरि भजवानो लहावो, भजन कोई करशे रे
कर जोडी कहे प्रेमलदास, भक्तोनां दुःख हरशे रे।....हरिने.

जब तक संसारासक्ति नहीं जाती तब तक भगवद् भक्ति सिद्ध नहीं होती।

संसारके विषयभोगोंसे कभी तृप्ति नहीं मिलेगी। लोग साग-सब्जी और चटनी-अचारमें तेलकी धार करते हैं। तेलसे सराबोर होने पर ही वे चावसे खाते हैं। अब जरा सोचो, आज तक हमारे पेटमें तेलके न जाने कितने डिब्बे पहुंच गए और अनाजकी भी अनगिनत बोरियां हमारे उदरने स्वाहा कर ली, फिर भी हम तृप्त हुए भी हैं क्या?

ईश्वरको ताक पर रख कर लौकिक कार्योंमें लगे रहना बिलकुल अच्छा नहीं है। सांसारिक कार्योंके पीछे यदि इसी प्रकार लगे रहोगे तो वे और भी बीगडते जाएंगे।

इतने कुछ बालमित्रोंने आकर कनैयासे पूछा, लाला, आज कौनसे घरको नीशाना बनाना है हमें? कनैयाने कहा, आज तो मेरे ही घरका माखन हमें उडाना है। आज भगवान् अपने ही घरका दही-माखन खिला रहे हैं।

किए हुए उपकारोंको भगवान् कभी नहीं भूलाते। रामावतारमें वानरोंने उनकी बडी सेवा की थी सो श्री कृष्ण आज उनको भी दही-माखन खिला रहे हैं।

यशोदाने वापस आ कर देखा तो मटकी फूटी हुई थी, दही इधर-ऊधर बीखरा हुआ था और कनैया गायब था। कनैयाने रुठ कर यह पराक्रम किया था। लाला शीकेपरसे माखन उतारकर बालमित्रोंको और वानरोंको खिला रहा था।

वानर अर्थात् मन। मन वानर-सा चंचल है। किंतु श्री राम और श्री कृष्णके सामने तो वह हाथ जोड कर सर नवां कर खडा रह जाता है। उनके विना चंचल मनवानर शांत नहीं होता। वानर फलाहार करते हैं और निर्वस्त्र रहते हैं। वे तो साधु जैसे हैं। कनैया उन्हें माखन खिला रहा है।

यशोदाने लालाको चोरी करते हुए देखा तो मान लिया कि गोपियोंकी बात सच्ची थी। लालाको चोरी करनेकी आदत है। लालाको पकड कर बांधना होगा। जिस ओखली पर वह खडा है उसके साथ ही मैं उसे बांध दूंगी। यशोदा लकडी लेकर कृष्णके पीछे दौडीं।

मित्रोंने लालासे कहा, मा आई, भागो। आगे लाला दौड रहा है और उसके पीछे यशोदा। जिस ईश्वरको योगी पकड नहीं पा रहे हैं उन्हींको पकडनेके लिए आज यशोदा दौड रही हैं। यशोदा दौडते दौडते थक कर चुर हो गई। फिर भी कनैया हाथ नहीं आया। ऐसा क्यों हुआ?

श्रीधर स्वामी कहते हैं:- अपनी एक भूलके कारण यशोदा उस कनैयाको पकड नहीं पाती थीं। कृष्णके पीछे दौडनेके समय यशोदाकी दृष्टिमें कृष्णका मुखारविंद और चरणकमल नहीं, पीठ थी। तृतीय स्कंधमें कहा गया है, लालाकी पीठमें अधर्म है। अधर्म वहीसे उत्पन्न हुआ है। अधर्मको दृष्टिमें रख कर दौडनेवाला ईश्वरको कैसे पकड पाएगा ?

भक्ति धर्मकी मर्यादामें रह कर करो। भक्ति धर्मानुकूल होनी चाहिए। भक्तिमें अधर्म आया नहीं कि वह भ्रष्ट हो गई। कर्ताने जिसे जो कर्तव्य दिया है उसको बराबर निभाया जाय। जो अपना कर्तव्य, अपना धर्म छोड देता है उसकी भक्ति सफल नहीं हो पाती। संध्याकर्म किए बिना सेवा करनेवाले ब्राह्मणकी सेवा ईश्वर कभी नहीं स्वीकारते। यदि घरमें पतिदेव बीमार हैं और उनकी उपेक्षा करके स्त्री मंदिर जाए तो उसकी भक्ति, पूजा भगवान् क्यों स्वीकारने लगें ? अपने पति और संतानकी उपेक्षा करके कथा-कीर्तन करनेवाली या मंदिर जानेवाली स्त्रीकी सेवा कभी सफल नहीं होती।

प्रभु कहते हैं, मुझे कर्तव्यकी, धर्मकी मर्यादा बडी प्रिय है। उनकी भक्ति करते समय कर्तव्य और धर्मकी सभी मर्यादाओंका पालन करना ही चाहिए।

यशोदा लालाको पकड पा नहीं रही है क्यों कि वह (भक्ति) अधर्मके पीछे दौड रही है।

तो एक महात्मा दूसरा ही कारण बताते हैं। यशोदाके हाथमें लकडी थी। लकडी लिए पकडने दौडे यह लालाको पसंद नहीं है, उसे डर लगता है। लकडी अभिमानका प्रतीक है। पुष्टि संप्रदाय तो लालाकी सेवा करनेको कहता है। लकडी ले कर दौडनेका अर्थ है अभिमानको साथ लेकर दौडना। अभिमानी सेवा नहीं कर सकता। कृष्ण कहते हैं, अपना अभिमान छोड कर ही मेरे पास आना।

तो वल्लभाचार्यजी कहते हैं, भक्ति यदि अभिमानको अपने साथ ही ले कर भगवान्को पाने चलेगी तो सफल नहीं होगी। यशोदाजी-बुद्धि-भक्ति लकडी-अभिमानको लिए हुए कनैयाको पकडने चली है सो पकड नहीं पा रही।

सत्कर्म किए जानेके बाद भी यदि आंतरिक अभिमान बढता जाता हो तो वह सत्कर्म किस कामका ? भगवान् सभी दोषोंको क्षमा करते हैं किंतु अभिमानको नहीं। अभिमान होनेसे भगवान्की उपेक्षा होती है। अभिमान करने जैसा जब कुछ है ही नहीं फिर हम अभिमान करें ही क्यों ? राजाको रंक बनने, रंकको राजा बनते, लाखको खाक होते कुछ देर नहीं होती। अभी तो बहुत-सा वैभव है और कुछ ही क्षणोंमें "अच्युतम् केशवम्" भी हो जाता है। फिर भी हम अभिमान क्यों करते हैं ?

यशोदा दौडते दौडते थक गई फिर भी कनैया हाथ न लगा। अब लकडी भी बोझ सी लगने लगी। उन्होंने लकडी फैंक दी। कनैया भी तो यही चाहता था कि माता लकडी-अभिमान छोड दे। माताने लकडी फैंक दी तो कनैया न केवल रुक गया अपितु वापस आने लगा। यशोदाने श्री कृष्णका मुख देखा। मुख दर्शन हुआ और लाला पकडा गया। लालाके मुखमें धर्म निहित है।

त्यक्त्वा यष्टिं।

माता यशोदाने लकडी-अभिमानका त्याग किया, साधनरहिता हुई तो कनैया पकडा गया। व्यवहारमें, भक्तिमें दैन्य भावकी आवश्यकता है। जब जीव अहम्-ममताको नहीं छोडता तब तक भगवान् मिल नहीं पाते। जब तक " मैं " कायम है तब तक भगवत्‌दर्शन हो नहीं पाता। जहां " मैं " है वहां हरि नहीं है।

कनैया रोने लगा तो माताने कहा, हां, मुझे खबर है कि झूठ-मूठ रो रहा है।

बाल मंडलीको दुःख हुआ कि उसका अध्यक्ष पकडा गया। सभी बालक यशोदाके पास आए और कहने लगे, माताजी, लालाको बाधना मत। उसने कुछ भी नहीं खाया है। सारा माखन हमींको खिला दिया है। उसका दिल तो बडा कोमल है। यशोदाने सोचा, सभीके चहेते कनैयाको बाधना ठीक तो नही है फिर भी मैं करुं तो क्या करुं? लालाकी चोरीकी आदत छूडानी जो है। कुछ समय उसे बांध कर रखूं, फिर छोड दूंगी। यशोदाने सभी बालकोंको भी डांटा। बालकोंने सोचा कि यशोदा लालाको पीटेगी। सो वे न बांधने और न मारनेकी विनति करने लगे।

यशोदा कनैयाको मुशलके साथ बांधने लगी।

उधर सभी बालक दौडते हुए अपने अपने घर पहुंचे और अपनी अपनी मातासे कहने लगे, मा, यशोदा कनैयाको बांध कर मारने जा रही है।

सभी गोपियां दौडती हुई यशोदाके घर आई और कहने लगीं, माताजी, जब तुम्हें पुत्र नहीं था तब पुत्रके लिए तरस रही थी और आज उसे बांध कर मारने चली है? हम गरीब हैं। हमारे लाला आ कर रोज मटकी फोडता है, दधि-माखन लूटाता है फिर भी हमने कभी उसको बांधनेकी सोची तक नहीं है। हम तुम्हें पांच मटकी भर कर दही देंगी। तुम उसे छोड दो। उसने एकाध मटकी फोड भी दी तो क्या हुआ? उसे छोड दो।

किंतु आज यशोदा आपेसे बाहर हो गई थी। उसने गोपियोंसे कहा, लडका मेरा है, मैं चाहे सो करुंगी। तुम कौन होती हो बीचमें बोलनेवाली?

शुकदेवजी वर्णन करते हैं :- राजन्! कालके भी काल श्री कृष्ण आज माताका क्रोध देख कर कांप रहे है।

यशोदाजी बालकृष्णको मुशलसे बांधने लगी। अब अचरजकी बात यह हुई कि उन्होंने डोरियां आजमाई किंतु सबकी सब दो अंगुलिभर छोटी निकलीं। एक-दूसरेके साथ जोडती गई तो भी दो अंगुलि भर छोटी ही रहती थीं।

तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद् यदादत्त बन्धनम् ॥

भा १०-९-१६

एकके साथ दूसरी, दूसरीके साथ तीसरी इस प्रकार बहुत-सी डोरियां जोडी गई। किंतु दो अंगुलि भर छोटी ही रहती थीं।

श्री कृष्णके स्पर्श होनेके कारण मानों, डोरीका स्वभाव बदल जाता था।

यज्ञ करनेसे, तीर्थयात्रा करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे स्वभाव सुधरता नहीं है। किंतु जो हृदयपूर्वक भगवान्‌का ध्यान करता है, जो मनसे परमात्माको मिलता है उसीका स्वभाव बदलता है। भगवत् स्पर्शके विना स्वभाव नहीं बदलता। ब्रह्मसंबंधके बाद और कोई बंधन हो भी सकता है क्या?

डोरीने बांधनेका स्वभाव छोड दिया। डोरियोंको श्री कृष्णकी दया आई। वैष्णव कहते हैं कि डोरीमें ऐश्वर्यशक्तिने प्रवेश किया था। जहां ईश्वर है वहां ऐश्वर्य भी है। ऐश्वर्य-शक्तिको दुःख हो रहा है कि एक साधारण गोवालन प्रभुको बांध रही है।

गोपियां यशोदासे कहने लगीं, मा, चाहे कुछ भी कहे तू, किंतु इस लालाके भाग्यमें बंधन लिखा ही नहीं है। वह तो हम सबको सांसारिक बंधनोंसे छुडानेके लिए ही आया है।

ऐश्वर्यशक्ति परमात्माको स्वामी मानती है। वात्सल्यभक्ति परमात्माको बांधने चली है। ऐश्वर्यशक्ति अपने पतिको बंधनमें देख नहीं सकती। ऐश्वर्य और वात्सल्य शक्तिका यह मीठा झघडा है। प्रभुने ऐश्वर्यशक्तिसे कहा, मैं यहां गोकुलमें ईश्वर नहीं, यशोदाका बालक मात्र हूं। मैं द्वारिका तेरा पति हो कर आऊंगा। तू चली जा। माताको बांधनेकी इच्छा है तो बांधने दे। गोकुलमें प्रेमका प्राधान्य है और द्वारिकामें ऐश्वर्यका। व्रजमें तेरी आवश्यकता नहीं है।

गोकुल लीलामें वात्सल्य भाव और पौगंड लीलामें सख्य भाव प्रधान है। गोपी लीलामें माधुर्य भाव मुख्य है।

तो ऐश्वर्य शक्तिने डोरीमेंसे विदाय ली। घरमें जितनी भी डोरियां थी, सभी समाप्त हो गई। फिर भी कनैया बंध नहीं पाया। यशोदाजी साश्चर्यमें डूब गई और गोपियां हास्यमें। गोपियां, मानो कह रही थीं, भगवान् इस तरह कभी बंधते भी हैं?

भगवान् सभीसे कह रहे हैं:– हमारे बीच मात्र दो अंगुली भरका अंतर है। ये दो अंगुलियां हैं अहम् और ममता। जिसके मनमें अहम् और ममता शेष है वह मुझे कभी बांध नहीं सकता।

परमात्माको त्रिगुणात्मक माया डोरी बांध नहीं सकती। भगवान् तो केवल प्रेम डोरीसे बंधते हैं और वह भी उनकी इच्छा होने पर ही।

श्री कृष्णने देखा कि माता थक कर पसीना पसीना हो रही है तो दया वश हो कर बंधनमें बंध गए। भगवान् कहते हैं, जब मैं कृपा करता हूं तभी बंधता हूं।

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽसीत् स्वबंधने।

भगवान् लौकिक डोरीसे नहीं, प्रेमकी डोरीसे ही बांधे जा सकते है।

भक्तोंके प्रेमके सिवाय और कुछ भी मुझे बांध नहीं सकता।

जब तक ईश्वर कृपा नहीं करते तब तक उसे कोई भी जीव बांध नहीं पाता।

कृष्ण स्वेच्छासे बंध गए।

जीव अपने स्वार्थके हेतु विविध बंधनोंमें फंसता रहता है। परमात्माने निस्पृह होने पर भी आज बंधनका स्वीकार किया।

जब भगवान् बंधते हैं तब जीव बंधनमुक्त हो जाता है, उसका उद्धार हो जाता है।

ज्ञान और योग नहीं, शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्ति ही ईश्वरको बांध पाती है।

ईश्वर जब तक प्रेमडोरसे बंध नहीं पाते तब तक जीवका मायाका बंधन छुट नहीं पाता।

ईश्वरको उनके पेटके परसे बांधा गया सो उनका नाम दामोदर पड गया।

दामोदर भगवान्की जय।

जब तक परमात्माको प्रेमसे बांधा न जाय तब तक संसारका बंधन बना रहता है।

जो ईश्वरको बांध सकोगे तो जन्ममृत्युके बंधनसे छुटकारा होगा। जो ईश्वरको बांध सकता है वह स्वयं छुट जाता है।

ईश्वर सर्वश्रेष्ठ क्यों हैं? कारण यह है कि वे अपना कोई आग्रह या ममत नहीं रखते। जीव आग्रही होता है, ईश्वर अनाग्रही। जीव दुराग्रही है, अपनी जक छोडता ही नहीं है। जीव यदि अनाग्रही बन सके तो ईश्वर बन सकता है।

भगवान् भक्तोंके आग्रहके आगे झूक जाते हैं। भक्तोंके आग्रहका वे आदर करते हैं। जीव अपना आग्रह गलेसे चिपकाए रखता है।

माताके परिश्रमको देख कर कनैया बंध गया। इस प्रकार उन्होंने बताया है कि वे भक्ताधीन हैं। ईश्वरने अपना आग्रह छोड दिया।

भीष्म पितामहकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके हेतु, श्री कृष्णने अपनी प्रतिज्ञाका भंग करके शस्त्र धारण किए थे। वे हाथमें चक्र लेकर भीष्म पितामहको मारने दौडे। इस दृश्यको देख कर भीष्मने भावविभोर होकर धनुष्य बाण फेंक दिए और बोले, वाह, मेरे प्रभु वाह। धन्य है! मेरी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिए आपने अपनी प्रतिज्ञाका भंग कर दिया।

पूर्ण प्रेमके विना परमात्मा बंध नहीं पाते। मनुष्यका प्रेम कई हिस्सोंमें बंटा हुआ होता है। वह पत्नी, संतान, धन, संपत्ति, बनावसींगार सभीसे प्रेम करता है। यदि वह अपना सारा प्रेम भगवान्को ही दे तो भगवान् बंध सकते हैं।

दामोदर लीलाके द्वारा भगवान् बतलाते हैं कि जब तक जीव ममता और अहम् छोडता नही है तब तक दो अंगुली भर अंतर बना ही रहता है। वे जीवको मिल नहीं पाएंगे।

वालकृष्णने दयावश सोचा कि यदि मुझे बांधनेसे माता प्रसन्न हो रही हो तो भले मुझे बांध ले। वालकृष्ण बंध गए और यशोदाकी इच्छा पूरी हुई।

परमात्माको ज्ञानी पुरुष बांध सकता है और भक्त प्रेमसे बांध सकता है। बिल्वमंगल जैसे भगवान्को हृदयमें बंद कर देते हैं।

अध बिल्वमंगल चलते चलते मार्गमें एक गढेमें फिसल पडे। श्री कृष्णने गोप बालकका रूप लेकर उसको हाथ पकड कर बाहर निकाला। श्री कृष्णके कोमल हस्त स्पर्शसे बिल्वमंगलको लगा कि यह साक्षात् भगवान् हैं। उसने परिचय पूछा तो अपनेको एक गोप-बालक बता कर कृष्ण भागने लगे।

बिल्वमगलने कहा, मेरा हाथ छोड कर तो तुम जा रहे हो किंतु मेरे हृदयसे भी भाग निकलो तो जानूं। मैंने तुम्हें अपने हृदयमें बंद कर लिया है।

हाथ छूडाके जात हो, निर्बल जानके मोहि,
जाओगे जब हृदयसे, सबल कहूंगा तोहि।

दामोदर लीलाके वर्णनमें महा-प्रभुजी पागलसे हो गए हैं। वे कहते हैं कि ज्ञान और तप पर भक्तिकी विजयकी कथा है यह।

श्री कृष्णके मथुरागमनके समय यशोदाजीने उनसे विनति की कि उस डोरीसे बांधनेका प्रसंग भूल जाना। मनमें न रखना। श्री कृष्णने कहा, मैं तो कबका भूल चूका हूं, किंतु तुम भी भूल जाना। मैं तो यही याद रखूंगा कि तुमने कभी मुझे प्यारकी डोरसे बांधा था। मैं द्वारिकाधीश बनूंगा, छप्पन कोटि यादवोंका सम्राट बनूंगा, सोलह हजार रानियोंका पति बनूगा। फिर भी मैं तो तेरे प्यारके बंधनमें बंधा रहूंगा। तेरे सिवा मुझे और कौन बांध सकता है ? मुझे और कोई भी बांध नहीं पाएगा। मै किसी औरका नहीं, सोलह हजार रानियोंका नहीं, केवल तेरा हूं। तेरे प्रेमके बंधनको मैं सदा याद रखूंगा। तेरा प्रेम मैं कभी भूल नहीं सकता।

इस चरित्रमें यशोदाकी विजय है। ज्ञान–तपश्चर्या नहीं, भक्तिकी विजय है। अपने तपके प्रभावसे ज्ञानीजन परमात्माका दर्शन तो पा लेते है किंतु उन्हें बांध नहीं पाते। तपस्वी भगवान्को पहचान सकते हैं, बांध नहीं सकते। मात्र विशुद्ध भक्ति ही उनको बांध सकती है। इसीलिए तो भगवान् कहते हैः– मैं मुक्ति तो देता हूं किंतु भक्ति नहीं देता। यदि भक्ति दान करुं तो मुझे ही बंधना पडेगा।

एक बार भक्त दामाजी कर न भर सके तो यवन सैनीक उनको बांध कर राज दरबारमें ले जाने लगे। दामाजीने सैनिकोंसे प्रार्थना की कि मार्गमे मुझे पंढरपुरके विठ्ठलनाथजीका दर्शन कर लेने दो। सैनीक उन्हें मंदिरमें ले गए। अपने भक्तकी ऐसी दयनीय दशाको देख कर विठ्ठलनाथजी द्रवित हो गए। अरे, मेरा दामा बंधनोंमें जकडा हुआ है।

तो विठ्ठलनाथजी एक हरिजनका रूप लेकर राज दरबारमें पहुंचे। वहां उन्होंने अपना नाम विठु चमार बतलाया और दामाजीकी सभी बाकी भर देनेकी इच्छा व्यक्त की।

इस प्रकार विठ्ठलनाथजीने अपने भक्त दामाजीको बंधनमुक्त किया।

भगवान्ने दामाजीको भक्ति दी थी सो उनको चमारका रूप लेना पडा। भक्ति भगवान्को बांधती है।

लालाको बांध कर यशोदाजी रसोई घरमें तो गई किंतु उनका मन तो लालामें ही लगा था। कनैयाको बांध कर अच्छा तो नहीं किया है किंतु मैं करुं भी तो क्या करुं ? उसकी चोरीकी आदत भी तो छुडानी है।

लाला बंधनमें है सो सभी बालक भी वहीं बैठे हुए हैं। लाला, हमारे कारण तुम्हें बंधना पडा। तुम्हें कहीं पीडा तो नहीं हो रही है न ? लालाने सोचा कि यदि हां कहूंगा तो सभीको दुःख होगा। सो उसने कहा, नहीं रे, मैं तो जरा मजाक कर रहा हूं।

जिस प्रकार वैष्णव प्रभुको दुःख न होने देनेके लिए सावध रहते है उसी प्रकार प्रभु भी वैष्णवको दुःखी न होने देनेके लिए सावध रहते हैं।

श्री कृष्णने सोचा कि आज बैलगाडी की लीला करनी है। मैं बैल बनूं और मुशल गाडी। इस मुशलको मै बैलगाडीकी भांति खींचूंगा। और लाला वैसा ही करने लगा।

भगवान् दामोदर चाहते हैं कि उनको चाहे बंधनमें बंधना पडे, अन्य कई जीवोंको बंधन मुक्त कर पाऊंगा।

यशोदा पुष्टि भक्ति है। पुष्टि भक्ति भगवान्‌को बांधती है। जब वे बंध जाते हैं तब जीव मुक्त हो जाता है। जब तक उनको प्रेम डोरसे बांधा नहीं जाय, मायाका बंधन नहीं टूटेगा। ईश्वरको प्रेमसे बांधो।

नवें अध्यायमें बंधन लीला है, दशवें अध्यायमें मोक्ष लीला–यमलार्जुन मोक्ष कथा है।

लाला मुशलको खींचता हुआ उन दो यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमेंसे आगे बढा। मुशल दो वृक्षोंके बीचमें टेढा हो गया। लालाने डोरको इतने जोरसे खींचा कि मुशलने उन दोनों वृक्षोंको उखाड कर गिरा दिये।

यमलार्जुन वृक्ष गिरते ही दो तेजस्वी पुरुष प्रगट हुए। ये पुरुष अपने पूर्वजन्मोंमें राजा कुबेरके पुत्र थे–नलकुबेर और मणिग्रिव। इन दो लक्ष्मीनंदन यक्षोंको नारदजीके शापके कारण वृक्षोंका अवतार लेना पडा था।

परीक्षितने पूछाः– नारदजीने उनको शाप क्यों दिया था?

शुकदेवजी वर्णन करने लगे। राजन्! सुनिए। नारदजीने क्रोध वश नहीं, कृपापूर्वक शाप दिया था।

नलकुबेर और मणिग्रीव कुबेरके पुत्र थे। पिताकी अपार संपत्ति उन्हें मिल गई। संपत्तिका अतिरेक अच्छा नहीं है।

संपत्तिका अतिरेक द्युत (जुआ), व्यभिचार, मांसमदिरा आदि दुर्गुणोंका जन्मदाता है। संपत्तिकी अतिशयता और सन्मति प्रायः साथ साथ रह नहीं सकते। संपत्तिका अतिरेक होने पर लोग तामस आहार, मदिरापान, व्यभिचार आदि दुर्गुणोंमें फंस जाते है और सद्-वर्तनका उच्छेद्–सा हो जाता है।

पति–पत्नीका संबंध केवल काम सुखके लिए नहीं, धर्माचरणके लिए है। सुशीला पत्नी अपने पतिको पापाचार करनेसे रोकती है।

ये दोनोंकुबेर पुत्र धनके मदमें सुधबुध खो बैठे थे। मदिरापान करके गंगा किनारे आए और गंगाके पवित्र जलमें युवान स्त्रियोंके साथ नग्नावस्थामें जल क्रीडा करने लगे।

विलासी तो तीर्थकी मर्यादाका भी पालन नहीं करता है। महाप्रभुने बडे दुःखसे कहा है, जबसे विलासी लोग तीर्थमें बसने लगे हैं तबसे देवगण तीर्थमेंसे विदा हो गए हैं।

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥

अब देवर्षि नारदजी वहांसे जा रहे थे तो उनको ऐसा दृश्य देखकर दुःख हुआ। नारदजीको देख कर भी उन्होंने अपने शरीरको नहीं ढंका। नारदजीने सोचा, इतना सुंदर शरीर मिला है, फिर ये उसका दुरुपयोग ही कर रहे हैं।

यह शरीर भगवान्‌का है, भगवान् ही की सेवा करनेके लिए जीवको दिया गया है।

नारदजी कहते हैं, इस शरीरकी अंतमें क्या दशा होगी? या तो इसे पशु–पंखी खा जायेंगे या तो खाकका ढेर बन जाएगा।

संपत्तिके मदमें लोग अपने शरीरको अजरामर मानने लगते हैं और अन्य लोगों और प्राणियोंको सताने लगते हैं ?

यह शरीर है किसका ? इस पर किसका अधिकार है ? क्या यह माताका है ? क्या पिताका है ? क्या यह शरीर अपना है ?

पिताः– मेरे वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण यह शरीर मेरा है।

माताः– मेरे गर्भमें जन्मा था अतः मेरा है।

पत्नीः– इस शरीरको अपना बनानेके लिये तो मैं अपने माता–पिताको छोड कर यहां आई हूं। इसके साथ मेरा विवाह हुआ है। वह मेरा अर्धांग बना है। अतः यह शरीर मेरा ही है।

अग्निः– यदि इस शरीर पर माता–पिता–पत्नीका अधिकार है तो प्राण निर्गमनके पश्चात् वे इसे अपने ही पास रखनेके बदले बाहर क्यों निकाल देते हैं ? इस शरीर पर मेरा ही अधिकार होनेके कारण तो इसे स्मशानमें लाकर मुझे सौंप दिया जाता है।

श्याल–कुत्ताः– अग्नि संस्कार न किए जाने पर यह शरीर हमें खानेको मिल जाता है अतः उस पर हमारा भी तो अधिकार है।

इस प्रकार इस शरीर पर हर कोई अपना अधिकार जमाता है। कुछ समझमें नहीं आता कि इस पर वस्तुतः किसका अधिकार है।

प्रभु कहते हैः– यह शरीर किसीका भी नहीं है। मैंने जीवको दिया है। यह शरीर मेरा है क्यों कि मैंने कृपा करके दिया है।

देवदत्तमियं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः॥

भा. १०–६३–३१

यह मानव शरीर आपने अत्यंत कृपा करके संसारके मानवोंको दिया है। जो मनुष्य इसे प्राप्त करनेके बाद अपनी इन्द्रियोंको नियंत्रणमें नहीं रखता है तथा आपके चरणोंकी शरण नहीं लेता है उसका जीवन अत्यंत शोचनीय है। वह स्वयं अपने आपको धोखा दे रहा है। यह शरीर सांसारिक सुखोपभोगके लिए नहीं दिया गया है।

श्री रामचरित मानसमें कहा गया हैः—

आकर चारि लच्छ चौरासी जोनी भ्रमत यह जीव अविनाशी।
कबहुंक करि करुना नर देही देत ईश बिनु हेतु सनेही।
नर तनु भव वारिधि कहुं बेरो संमुख मरुत अनुग्रह मेरो।
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाई।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाई।

सो रुपयेकी नोट यदि फट गई और तेलके दाग वाली हो गई हो, किंतु उसका नंबर साबुत हो तो उसे कोई फेंक नहीं देता है। इसी प्रकार यह शरीर मैला होने पर भी उसका नंबर तो ठीक है। इसी शरीरसे तो भगवान्‌का जाप किया जाता है। भगवान्‌के जापका आनंद मात्र मनुष्य ही को तो मिल सकता है, कुत्ता-बील्ली भजन नहीं कर सकते। पशुओंको अपने ही शरीरका, अपने ही स्वरूपका तो भान नहीं है तो भगवान्‌के स्वरूपकी जानकारी तो कैसे पा सकते हैं। केवल मनुष्य ही भगवान्‌के स्वरूपको जान सकता है।

इस अनित्य शरीरसे भी नित्य परमेश्वरको प्राप्त किए जा सकते हैं।

यह शरीर परमात्माके कार्यके लिए है, प्रभुकी कृपा ही से मिला है। मदांध लोग इस बातको या तो जानते ही नहीं हैं या तो भूल जाते हैं।

उन कुबेर पुत्रोंकी अवदशा देख कर नारदजीको दया आई। उनको सन्मार्ग पर ले जानेके लिए शाप दिया।

इस शरीरका उपयोग मात्र भोगविलासके लिए करनेवाला व्यक्ति अगले जन्ममें वृक्ष बनता है। भोग ऐसे तो न किए जाय कि शरीर रोगिष्ठ हो जाय। भोग इन्द्रियोंको रोगी बनानेके लिए नहीं, उनको प्रसन्न करनेके लिए है।

समय और संपत्तिका उपयोग मात्र भोगविलासमें करनेवाला व्यक्ति अगले अवतारमें वृक्ष बनता है। पापीको वृक्षका जन्म मिलता है। वृक्ष जड नहीं है। यह तो पाप योनी है। वृक्षको छः ऋतुओंके भांति भांतिके प्रहार सहने पडते हैं।

नारदजीने शाप दियाः- ये दोनों यक्ष संपत्तिके कारण मदांध, स्त्री भोगी, विलासी हो गए हैं सो स्थावरपन प्राप्त करने योग्य हुए हैं। तो ऐसे भागियोंको वृक्षका जन्म मिले।

शाप सुनते ही नलकुबेर और मणिग्रीव पछताने लगे। वे नारदजीकी शरणमें आए। क्षमा करो, मुनिवर, क्षमा करो।

नारदजीने कृपा करके उन दोनोंको गोकुलमें वृक्षावतार दिया। नंदबाबाके आंगनमें तुम दोनोंका जन्म होगा और कनैयाका चरणस्पर्श तुम्हारा उद्धार करेगा।

वह शाप था या आशीर्वाद ? उद्धव जैसे साधुजन तो वृंदावनमें वृक्षके रूपमें जन्म लेना चाहते हैं।

विषय भोगमें रममाण रहनेवालेको अगले जन्ममें वृक्षका अवतार लेना पडता है।

नारदजीने शाप तो दिया किंतु संतोंका क्रोध, संतोंका शाप भी हमेशा आशीर्वाद-सा होता है। गोकुलमें वृक्षोंका अवतार लेनेकी झंखना तो महान् ऋषियोंकी भी होती है। उद्धवजी कहते हैंः—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधिनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्य पथं च हित्वा भेजुर्मुकुंदपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

भा. १०-४७-६१

अहो ! अत्याज्य स्वजन और आर्यमार्गका त्याग करके, वेदोंके लिए भी खोजने योग्य श्री कृष्णकी पदवी इन गोपियोंने पायी है। ऐसी गोपियोंकी चरणरजसे लाभान्वित वृक्ष राशि, लता, औषधि, आदि किसी भी रूपमें वृंदावनमें मेरा जन्म हो ऐसी मेरी प्रार्थना है।

कृष्णका चरण स्पर्श पाते ही नलकुबेर और मणिग्रीवने अपना मूल स्वरूप प्राप्त किया। दोनों वृक्षोंका उद्धार हुआ। अब नलकुबेर और मणिग्रीव प्रभुकी स्तुति करने लगेः—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

भा. १०–१०–३८

हे प्रभु ! आपसे हम कुछ और तो मांगते नहीं हैं। अपनी वाणी आपके गुण–गानमें रत रहे। अपने कान आपकी कथाके श्रवणमें लीन रहे। अपने हाथ आपके सेवाकर्ममें, अपना मन आपके चरण स्मरणमें, अपना मस्तक आपके निवासरूप जगत्को प्रणाम करनेमें और अपनी दृष्टि आपकी मूर्तिरूप संत पुरुषोंके दर्शन करनेमें तत्पर रहे। हे नाथ ! बस यही कृपा आप हम पर करें।

यह प्रार्थना हम सबको भी करनी चाहिए।

हमारी वाणी श्री कृष्णका कीर्तन करती रहे, आंखें श्री कृष्णका दर्शन करती रहें और मन श्री कृष्णका ध्यान करता रहे। हमें अपनी प्रत्येक इन्द्रियको भक्ति रसका दान करना चाहिए।

नलकुबेर और मणिग्रीवने अपनी हरेक इन्द्रियके लिए भक्तिरसकी मांग की और स्तुति करते हुए गोलोकवासी हो गए।

गोलोक धाममें श्री कृष्णलीला नित्य होती रहती है। वे दोनों स्निग्ध और मधुकंठ बने। वे दोनों वहां रोज कीर्तन करते हैं। स्निग्ध मधुकंठने कहा, अक्रुर श्री कृष्णको मथुरा ले जा रहे हैं। यशोदा यह सुन कर व्यग्र हो गई। तो स्निग्ध मधुकंठने कहा, माता, यह तो पृथ्वी पर रची गई लीला है। लाला तो तुम्हारी गोदमें ही है।

योगमायाने दोनों वृक्षोंको गिरने नहीं दिया था। नलकुबेर और मणिग्रीव गोलोकधाममें पहुंचते ही दोनों वृक्ष धमाकेके साथ जा गिरे। धमाका सुन कर गोपियां दौडती हुई आई। भगवान्की दयासे कनैया बच गया है।

नंदबाबा भी दौडते हुए आ पहुंचे। उन्होंने देखा तो कनैया मुशलके साथ बंधा हुआ था। किसने बांधा है ? कोई उसे छोडता क्यों नहीं है ? उन्होंने लालाको बंधनमुक्त किया।

नंदबाबा लालासे कहने लगे, बेटे, तुझे अपनी मांने बांधा था न ? देख तो, मैंने तुझे छोड दिया। तू किसका बेटा है ?

लालाः– आज तक मैं अपनी माताका बेटा था, अब मैं आजसे तुम्हारा बेटा हू।

नंदबाबाकी इच्छा थी कि कनैया एकबार कह दे कि वह उनका बेटा है। आज उनकी इच्छा पूरी हुई।

नंदबाबा यशोदाको डांटने लगे। लालाको तूने बांधा ही क्यों ? तुझे दया भी न आई ! यशोदाने सोचा कि आज सभी उसी पर गुस्सा करते रहेंगे। मेरी वैसे तो कोई इच्छा नहीं थी उसे बांधनेकी। किंतु इसे चोरी करनेकी आदत हो गई है। ऐसी बुरी आदतसे छुडानेके लिए ही मैंने उसे बांधा था। मैंने उसे स्नेहवश ही तो बांधा था।

यशोदा बेटेको अपने पास बुलाने लगी तो उसने आनेसे इन्कार कर दिया। मै तेरा नहीं, नंदबाबाका बेटा हूं।

यशोदा विचार करने लगी, गोपियों और बालकोंने रो रो कर मना किया था फिर भी मैंने निष्ठुर होकर पुत्रको बांध दिया। कनैया रुठ गया है। वह रोने लगी कि बेठा कब मेरी गोदमें आएगा।

लालाने देखा कि माता रो रही है।

वैष्णवका रोना भगवान्से देखा नहीं जा सकता। श्री कृष्ण-सा प्रेम और कोई नहीं कर सकता। श्री कृष्णके लिए जो एकांत रुदन करता है उसे वे आ मिलते हैं।

माताका रोना लालासे देखा नहीं गया। वह दौडता हुआ माताकी गोदमें आया और पीतांबरसे माताके आंसू पोंछने लगा। मेरा बेटा कितना सयाना है। मैंने तुझे बांध कर अच्छा नहीं किया था। तू अपने मनमें न रखना। बेटे, इस प्रसंगको तू मनसे भूला देना।

कनैयाः- माता, मैं सब कुछ भूल जाऊगा किंतु तेरा प्यार नहीं भूल पाऊंगा। मैं कुछ ही समयमें द्वारिका नगरीका राजा बनूंगा। वहां भी मैं तेरा यह प्यारका बंधन याद रखूंगा। रुक्मणी आदि किसीके भी बंधनमें मैं नहीं रहूंगा किंतु तेरे प्यारके बंधनको भूला नहीं सकूंगा।

यह तो गोकुलकी एक मुख्य लीला है। ज्ञानी ईश्वरका साक्षात्कार तो कर सकता है किंतु उनको बांधनेकी शक्ति ज्ञानमें नहीं है। भगवान्को तो केवल भक्ति ही बांध पाती है। ज्ञानी ब्रह्मका चिंतन करता हुआ ब्रह्ममय तो हो पाता है किंतु भगवान्को वशमें तो भक्ति ही कर पाती है। तप और ज्ञानकी अपेक्षा भक्ति ही श्रेष्ठ है।

परमात्मा जीव मात्रको अपने प्रेमसे सराबोर करते हैं। किंतु जीव वैसा दुष्ट है कि प्रभुके साथ ही प्रेम नहीं करता है। प्रभुके प्रति प्रेमको जगानेके लिए प्रभुके उपकारोंका बार बार स्मरण करो। मैं परमात्माका ऋणी हूं। उन्हींकी कृपासे ही यह थोडा-बहुत सुख पा सका हूं। ऐसा विचार बार बार करोगे तो प्रभुसे प्रेम हो सकेगा।

प्राप्त स्थितिमें संतोष मानोगे तो प्रभुप्रेम जन्मेगा। परमात्मासे कुछ न मांगो। परमात्मा भी किसीसे प्रेमके सिवाय और कुछ भी नहीं मांगते हैं। जीव मुझे प्रेम दे तो बस।

प्रभुसे कुछ भी न मांगो। उनके उपकारोंको हमेशा याद रखो। मनुष्यका प्रेम धन, संपत्ति, घर-गृहस्थी, कुटुंब आदिमें विभक्त होता है अतः परमात्मा प्रसन्न नहीं होते। लोग भगवान्को प्रणाम करते समय भगवान्का नहीं अपने वस्त्रोंका ही विशेष ध्यान रखते हैं। अरे, वस्त्र बीगड जाएगा तो बाजारसे दूसरा लाया जा सकेगा किंतु हृदय तो बाजारमें मिलता नहीं है।

ज्ञानी भक्त प्रेम डोरसे प्रभुको बांधते हैं। भगवान् केवल प्रेमके ही वश हो पाते हैं अन्य किसी भी बलके नहीं।

भागवतमें हास्य, करुण, शृंगार, वीर आदि सभी रस तो है ही इतना ही नहीं दशवां रस भी छलो छल भरा हुआ है- भक्ति रस।

भक्ति रस अन्य सभी रसोंसे उत्तम है। राम चरितमें रामचंद्रजी कहते हैं, मात्र भक्ति ही मुझे आर्द्र कर पाती है। भक्तिको अन्य किसी भी आलंबनकी आवश्यकता नहीं है, वह तो स्वतंत्र ही है। ज्ञान-विज्ञान आदि सभी कुछ इस भक्तिके आधीन है।

जाते बेगिद्रवउं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलंबन न आना। तेहि आधीन ग्यान–बिग्याना॥
—राम चरित मानस

ऐसी है भक्तिकी महिमा। ज्ञानी मायाके आवरणयुक्त ब्रह्मका दर्शन करते हैं। ज्ञानीको कीर्ति आदिकी झंखना होती है।

निरावरित, आवरणरहित ब्रह्मका साक्षात्कार तो केवल गोपियों हीमे पाया है। जब तक जीव निर्दोष नहीं हो पाता तब ईश्वरका दर्शन पा नहीं सकता।

साधु होनेकी नहीं, सरल होनेकी आवश्यकता है। अंदरके विकारोंको दूर करना ही होगा।

दोनों वृक्षोंका तो उद्धार हुआ किंतु उस मुशलका उद्धार क्यों न हुआ?

श्री कृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे उस पार निकल गए थे जब कि मुशल तो टेढा हो कर इस ओर ही रह गया था। प्रभुने वृक्षोंके अंदर प्रवेश किया सो उनका उद्धार हो गया। जिसके अंतर्देशमें भगवान्‌का प्रवेश होता है उसका उद्धार हो जाता है। यदि वे हमारे अंतरमें आयेंगे तो हमारा भी उद्धार हो जाएगा।

दामोदर लीला द्वारा भगवान् जगत्‌से कहते हैं, जब जीव मुझे बांधता है तब मैं उसको बंधनसे छुडाता हूं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

कई बार गोपियां यशोदाके घर आकर कनैयाको अपने घर ले जानेको कहती थीं। कनैया, तू मेरे घर आएगा? तो कनैया पूछता, तुम्हारे घर तो आऊं किंतु तुम मुझे क्या दोगी? गोपियां पूछतीं, क्या चाहिए तुझे? कनैया कहता, माखन। कितना दोगी? गोपियां पूछतीं, कीतना चाहिए तुझे? तो कनैया अपनी दोनों बांहे फैला कर कहता, इतना। तो गोपी पूछती, इतना सारा माखन तू कैसे खा सकेगा।

कनैयाः– मैं तो कुछ भी नहीं खाऊंगा। मुझे तो अपने मित्रोंमें बांटना है। अपने मित्रोंको खिलाना है।

ईश्वर औरोंको देकर प्रसन्न होते हैं। खानेवालेकी अपेक्षा औरोंको प्रेमसे खिलानेवालेको अधिक आनंद मिलता है।

मन माखन–सा कोमल हो पाए और जीवन मीसरी–सा मधुर, तो कनैया अवश्य आएगा।

गोपीने सोचा, इसे माखन दूंगी तो वह तो उसे लेकर तुरंत चला जाएगा। उसे कुछ देर रोकना चाहिए। उसने कहा, लाला, माखन मुफ्तमें नहीं मिलेगा। तुझे मेरे घरका कुछ न कुछ काम भी करना होगा। कनैयाने पूछा, कौन–सा काम करना होगा मुझे? गोपीने कहा, जा वह पाट ले आ। वैसे वह था तो बडा वजनदार, किंतु कनैयाने सोचा कि उसे उठा लाऊंगा तो सभी बालकोंको माखन खिला सकूंगा। वह पाट वजनदार था सो हाथसे छुट गया और कनैयाका पीतांबर भी निकल गया।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेके बाद भी अविद्याका अंश बाकी रह जाता है। क्यों कि प्रारब्ध कर्म तो भुगतना ही पडता है। अज्ञान पूर्ण नाश हो जाय तो प्रारब्ध कौन भोगेगा? ब्रह्मज्ञानसे प्रारब्ध कर्मका नाश नहीं हो पाता। ब्रह्मज्ञानसे क्रियमाण और संचित कर्मोंका नाश होता है। जब तक इस देहका प्रारब्ध है तब तक अविद्या शेष रहती है। प्रारब्ध कर्मकी भुगतानके बाद उसका नाश होता है। ज्ञानीको ब्रह्म साक्षात्कार होने पर अविद्याका अंश बाकी रह जाता है और कुछ आवरणके साथ साक्षात्कार होता है। किंतु इन व्रजभक्तोंको तो निरावरित श्री कृष्णके दर्शन होते हैं।

वैसे तो दुर्योधनको भी श्री कृष्ण भगवान्‌के दर्शन हुए थे। किंतु बीचमें मायाका आवरण था सो उसका उद्धार नहीं हो पाया।

पाट लाया और माखन मांगा तो गोपीने कहा, लाला, तू नाच तो सही जरा। माखनके लोभसे कनैया अब नाचने लगा। जगत्‌को नचानेवाला नटवर कनैया गोपीके प्रेमके वशीभूत हो कर स्वयं नाच रहा है।

कवि रसखान कहते है—

शेष, महेश, गणेश, दिनेश, सुरेशहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवैद बतावैं।
नारदसे शुक व्यास रटै पचिहारे तउ पुनी पार न पावै।
ताहि अहीरकी छोहरिया छछिया भरी छाछ पै नाच नचावै॥

गोपियोंके प्रेमसे बंधे हुए श्री कृष्ण उनके घरोंका काम कर रहे है। गोपियोंके सर पर पानीकी गगरिया चढाते हैं, सामान इधर-उधर करनेमें मदद करते हैं, उनके मनोरंजनके लिए नाचते भी हैं।

व्रजकी इन लीलाओंमें ज्ञान-वैराग्य नहीं, प्रेमभाव ही मुख्य है।

एक मालनका प्रसंग भी है इन लीलाओंमें। व्रजमें एक सुखिया नामकी मालन थी जो रोज रोज कृष्ण कथा सुनती थी। भक्ति उसके लिए एक व्यसन-सी हो गई थी।

तुकारामको भी व्यसनरूपा भक्ति सिद्ध हुई थी। उन्होंने कहा है—

पडले इन्द्रिया सकळा वळण।

सभी इन्द्रियोंको ऐसी आदत-सी हो गई है कि ईश्वरके भजन किए बिना वे रह नहीं सकती।

मालनका प्रेम धीरे धीरे बढने लगा। श्रवण भक्ति व्यसन-सी हो गई।

भक्तिका व्यसन सिद्ध करो। अन्य सभी व्यसन भक्ति मार्गमें बाधा रूप हैं अतः भक्तिको ही व्यसन बना दो। "विद्या व्यसनम्" अथवा "हरिपादसेवनम् व्यसनम्।" जिसको सेवा और स्मरणका व्यसन हो वही सच्चा वैष्णव है। कनैया कानमेंसे, आंखोंसे हृदयमें उतर जाता है। बार बार सुनने पर ही कृष्णके दर्शनकी उत्कंठा होती है।

लालाके दर्शनके लिए सुखिया आती है।

अधिकारके बिना भगवान्के दर्शन नहीं हो पाते। यदि सुख-सुविधाकी इच्छा बनी रही है तो भगवान्के दर्शन नहीं होंगे। जीव जब पूर्णतः निष्काम और निर्वासनामय बनता है तभी वे दर्शन देते है। ईश्वरदर्शनके सिवाय अन्य कोई भी वासना सूक्ष्म रूपसे भी शेष रह गई होगी तो ईश्वर दर्शन नहीं देंगे।

सुखिया मालन हर रोज नंदबाबाके आंगनमें आती-जाती थी किंतु कनैया बाहर निकलता ही नहीं था। तो उसने एक भूदेवसे कृष्णदर्शनका उपाय पूछा। भूदेव प्रसन्न हुए कि यह एक जीज्ञासु और सुपात्र जीव है। तो उन्होंने सुखियासे कहा, अपने घरमें बालकृष्ण-की सेवा, साधना, स्मरण करती रहोगी तो वह प्रसन्न होगा।

ईश्वरको वश करनेका एक अच्छा-सा साधन है- सेवास्मरण। आग्रह सेवास्मरणका रखो, ईश्वरदर्शनका नहीं। जीव पात्रता पाते ही ईश्वर उसे दर्शन देते हैं। लंबी लंबी दाढीवाले साधु भी दर्शनके लिए आते रहते थे। कनैया सोचता था कि इन साधुओंकी दाढी जितनी बाहर उतनी ही अंदर भी हो सकती है। अंदरके कामविकार शायद अब भी बाकी ही होंगे। यशोदाजी कभी उसे जबरन् बाहर खींच लाती तो वह अपना मुंह फेर कर माताकी साडीमें छुपा लेता था। वे साधु अभी सुखदर्शन पानेके योग्य नहीं हो पाए थे।

भगवान् तो तनकी बात भी जानते हैं और मनकी। पात्रता पाए बिना जीव ईश्वरका दर्शन पा नहीं सकता।

मालनने कहा, मैं सेवा कैसे करूं? मैं तो बडी गरीब हूं।

भूदेवः- तू रोज २१००० बार माला फेरना। कुछ साधन तो करना ही होगा। साधन करते करते जीव जब नम्र होकर आंसू बहाने लगता है तब ईश्वर कृपा करते हैं।

कथाश्रवणके बाद कुछ व्रत-नियम लिया जाय। कथा मार्गदर्शिका है। कथाश्रवण करने पर कुछ तो व्रत करो।

मालनको भांति भांतिके साधन बताए किंतु वे सब उसके अनुकूल नहीं थे। तो भूदेवने कहा, यदि तू कुछ भी नहीं कर सके तो कम-से-कम नंदबाबाके घरकी हररोज १०८ बार प्रदक्षिणा कर।

प्रणाम साष्टांग किए जाते है और प्रदक्षिणा चतुरंग। प्रदक्षिणा करते समय हाथ जोड वंदन करते हुए प्रभुका नाम जपते रहना। कीर्तन करते करते धीरे धीरे प्रदक्षिणा की जाय। कुछ लोग इस तरह दौडते हुए प्रदक्षिणा करते हैं मानो, उनके पीछे कोई भूत दौडा हुआ आ रहा हो। प्रदक्षिणामें ऐसी भाग दौड अच्छी नहीं है।

तीन वर्षो तक प्रदक्षिणाका यह नियम बनाए रखना। कनैया अवश्य दया करेगा। तो मालन इस प्रकार रोज प्रदक्षिणा करने लगी।

मनुष्य प्रायः अपने दैनिक कार्य तो नियमसर करता है। निद्रा और भोजनमें तो वह बडा नियम रखता है किंतु भजनमें उसकी नियमितता न जाने कहां हवा हो जाती है।

भजन किए बिना खानेवाला पाप खाता है। मनुष्य जितनी देखभाल अपने कपडोंकी करता है यदि उतनी ही देखभाल अपने मनकी भी करे तो वह मलिन नहीं हो पाए।

सत्कर्ममें नियमितता होनी चाहिए। नियमित सत्कर्म करनेवाला ही संत है। नियम रखनेवालेकी ठाकोरजी परीक्षा भी लेते हैं।

मालन रोज परमात्माको मनाती रहती थी, नाथ, दर्शन दीजिए।

तीन वर्ष पूरे हो गए। अब तो कृष्णविरह असह्य हो गया है। उसका मन भी शुद्ध हो गया है। आज उसने निश्चय किया है, जब तक कनैयाका दर्शन न कर पाऊं तब तक मैं नंदबाबाके आंगनसे नहीं हटूंगी।

जीव जब प्रभुके वियोगाग्निमें छटपटाने लगता है, भगवान् आ मिलते हैं।

अपने शिर पर फूल-फलकी टोकरी उठाए सुखिया मालन प्रदक्षिणा करने लगी। परमात्माको शबरीके बेर याद आ गए। दर्शनातुर मालनको मुझे दर्शन देना होगा। कटि पर सोनेका कंदोरा, हाथमें बाजु बंद, गलेमें कंठी, पगमें पैजनियां और मस्तक पर मोर पीच्छसे विभूषित बालकनैया छुमक छुमक करता हुआ आंगनमें आया।

दर्शनातुर मालनके सामने आकर, हाथ फैला कर लाला फल मांगने लगा। बालकनैयासे मालन भी बातें करनेके लिए आतुर थी।

अपने सुख-दुःखकी बातें कनैयासे एकांतमें कहना। अपने दुःखकी कथा कृष्णके सिवाय किसी औरसे न कहना। वह तुम्हें सुख देगा।

मालनने सोचा कि यदि लालाके हाथमें फल रख देगी तो तुरंत ही वह भीतर लौट जाएगा। सो वह उसको बातोंसे रोकने लगी। मैं फल देने नहीं, बेचने आई हूं। फल ले और मुझे अनाज दे। फिर उसे दुःख भी हुआ कि अनाज मांगा ही क्यों। उसे कोई संतान न थी। यदि मेरे घर पुत्र हुआ तो? मैं बडी पापिणी हूं। कनैया बडा दयालु और प्रेमी है। वह मेरी गोदमें आएगा तो मैं उसे प्यार करूंगी।

बाणकृष्ण दौडता हुआ दो मुट्ठी भर चावल ले आया और मालनकी टोकरीमें रख दिया। अब तो फल दो। मालनने कहा, मेरी गोदमें तो बैठ बेटा। मैं तुमसे सुख-दु.खकी बातें करना चाहती हूं। तो कनैया उछल कर उसकी गोदमें जा बैठा। मालनकी इच्छा परिपूर्ण हुई। ब्रह्मसंबंध संपन्न हुआ। हजारों वर्षोंका विरही जीव आज ईश्वरसे जा मिला।

प्रेममें कभी तृप्ति होती भी है क्या?

कनैया कहने लगाः- मैं तो सभीका बालक हूं, पिता हूं और माता भी हूं। मेरे साथ जो जैसा प्रेम करेगा वह वैसा ही पाएगा।

मालनने लालाको बडे अच्छे मीठे फल दिए। दोनों आनंदित हो गए। फल मिलते ही लाला भागा हुआ घरमें चला गया।

मालनने प्रभुसे प्रार्थना की कि कहीं अपने कनैयाको अपनी ही नजर न लग जाय।

अपनी टोकरी लेकर सुखिया घर वापस आई। टोकरी सरसे उतारी तो देखा कि वह तो रत्नोंसे भरी हुई है। उसे सुखद आश्चर्य हुआ। मेरे जन्मजन्मांतरका दारिद्रय दूर हो गया।

ईश्वरको फल दोगे तो वे तुम्हें रत्न देंगे। परमात्मा जब देते हैं तो छप्पर फाड कर देते हैं। मनुष्य देते समय कुछ संकोच रखता है किंतु प्रभु तो कई गुना बढ कर देते है।

जो व्यक्ति अपने सत्कर्म–रूपी फल भगवान्‌को अर्पित करता है उसकी जीवन टोकरीको भगवान् सुख–सुविधाके रत्नोंसे भर देते है। भगवान् उसे ब्रह्मविद्यारूपी दिव्य रत्न भी देते है। सुखिया मालन जीवका प्रतीक है। जीवसे परमात्मा सत्कर्म, पुण्यके फल मांगते हैं। जो तुम सत्कर्मरूपी फल भगवान्‌को दोगे तो वे तुम्हें कई गुना करके देंगे।

भगवान् किसीके भी ऋणका बोझ अपने सर पर नहीं रखते। वे तो ब्याज सहित अदा कर देते हैं।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म, भोजन, हवन, दान, तप आदि करे वह सब मुझे अर्पण कर दे। तभी तू मुझे पा सकेगा– " माम उपैप्यासि। "

सभी कर्म भगवान्‌को अर्पण कर दो। किए हुए कर्मोका पुण्य फल कृष्णार्पण करो। फल स्वयं भोगनेकी इच्छा न करो। जो अपना कर्मफल भगवान्‌को अर्पण करता है उसकी बुद्धि रूपी टोकरी ब्रह्मज्ञानके रत्नोंसे छलक जाती है। कनैया सभीको फल देता है।

भगवान्‌की गोकुल लीला यहां परिपूर्ण हुई है।

बाललीलाका श्रवण श्रद्धा उत्पन्न करता है और किशोरलीलाका श्रवण भक्ति।

अब वृंदावन लीलाका आरंभ हो रहा है।

भारतभूमि कर्मभूमि है। अन्य देश भोगभूमि। हमारे यहां कर्मानुसार फल मिलते हैं। प्रत्येक कर्मको परमात्माकी आज्ञा मान कर पूर्ण करो।

भक्ति और कर्ममें वैसे कोई अंतर नहीं है। प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए किया गया कर्म ही भक्ति है। कर्ममें फलेच्छा कपट है। फल इच्छा किए विना किया गया कर्म ही भक्ति है। जो प्रत्येक कर्म ईश्वरके हेतु करता है उसके वे सारे कर्म भगवान्‌की भक्ति बन जाते हैं। कर्म करते समय भगवान्‌के लिए ही करनेकी निष्ठा रखनी चाहिए। कर्म करते समय मन ईश्वरसे संलग्न रहे तो प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाएगी। व्यवहारोंको अतिशय शुद्ध रखोगे तो वे सब भक्ति ही बन जाएंगे।

पाप करते समय मनुष्य ईश्वरको भूल जाता है। ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वत्र हैं ऐसा मानोगे तो पाप नहीं कर पाओगे। व्यवहार और भक्तिमें अधिक अंतर नहीं है। ईश्वरकी भावना रख कर किया गया व्यवहार भक्ति है। जब तक शरीर है तब तक व्यवहार अनिवार्य है। प्रत्येक कर्मको भक्तिमय बना दो। भोजन करते समय भी मान लो कि नारायण ही आहार कर रहे हैं। ऐसा संधान होने पर भोजन भी भक्ति ही है।

व्यवहारको भक्ति और ज्ञानमय बनाओ। ईश्वरसे कभी दूर मत जाओ। कभी निठल्ले मत रहना। निठल्ला हाथ पाप कर बैठता हैं। कामकाज करनेकी आदतका यकायक त्याग कर दोगे तो शरीर पापाचार करने लगेगा। सो प्रवृत्तिरत रहो और सभी प्रवृत्तियोंको ईश्वरमय बना दो।

निठल्ले व्यक्तिके मनमें पाप और विकार जागते हैं सो सतत सत्कार्य करो। घर-गृहस्थी चलानेके लिए कामकाज-नौकरी-धंधा तो करना ही पड़ता है। किंतु उन प्रवृत्तियोंके समय ईश्वरको मत भूला देना। प्रत्येक घंटेके आरंभमें कुछ क्षणोंके लिए ईश्वरका ध्यान करते रहोगे तो पापसे दूर रह सकोगे।

ईश्वर द्वारा दी गई स्थितिमें आनंद और संतोष मानो। अपनी सभी प्रवृत्तियोंका ईश्वरसे संधान बनाए रखो। सभी कार्योंको ईश्वरकी आज्ञा समझ कर करते रहो। कर्मके फलकी इच्छा न रखो। कर्मका कैसा, कितना, कब फल दिया जाय वह भगवान्‌के सोचनेकी बात है।

कर्म सद्भावसे करो। जैसा ध्वनि वैसा प्रतिध्वनि। जो वर्तन तुम्हें अपने लिए प्रतिकूल लगता हो, वैसा वर्तन किसी औरके प्रति भी न किया जाय। जो तुम किसी जीवके प्रति कुभाव, द्वेष, असूया रखोगे तो वह तुम्हें भी बदलमें वही सब कुछ देगा।

शरीर थक कर चुर चुर हो जाय तब तक काममें लगे रहो। यदि शरीर अच्छी तरह नहीं थक जाएगा तो नींद नहीं आएगी और बीस्तर-पर करवटें बदलते समय मनमें बुरे विचार आते रहेंगे। सत्कर्म करते हुए थक जानेसे निद्रा भी बड़ी अच्छी आएगी। और ऐसी नींद भी भक्ति बन जाएगी।

यदि कर्मफल ईश्वरको देते रहोगे तो ईश्वर उसे अनंत गुना बना कर वापस देंगे। इस बातका अनुभव न होने पाए तो मान लेना कि तुम्हारे ही कर्ममें कुछ कमी है। पूर्वजन्मके संस्कार और वासना जल जाने पर कर्ममेंसे आनंदकी प्राप्ति होगी। कर्मका फल कब मिलेगा यह कहा नहीं जाता। उस सुखिया मालनकी तरह अपने सभी कर्म ईश्वरको अर्पण करते रहो। वे तुम्हारी टोकरी (बुद्धि) में सद्भाव और ज्ञानके रत्न भर देंगे।

ठाकोरजी मंदिरमें नहीं, अपने हृदयमें विराजने चाहिए। उनको मंदिरमें स्थापित किए जानेसे हमारा मन शांत नहीं हो पाएगा। बुद्धिमेंसे विषयादिका कूडा-करकर साफ करके हमें ठाकोरजीको बिठलाना है। हम जिस प्रकार सांसारिक विषयोंको मनमें जमाए रहते हैं उसी प्रकार प्रभुको भी वहीं स्थान देंगे तो शांति मिलेगी और तभी जीवन कृतार्थ होगा।

बालकृष्ण पांच बरसके हुए और उन्हें वृंदावन जानेकी इच्छा हुई।

गोकुलमें जो उत्पात हो रहे थे उनसे व्यथित होकर चाचा उपनदने सोचा कि बालकोंके साथ दूसरे गांवमें चले जाना चाहिए। यहांसे कुछ ही दूरी पर आया हुआ गांव वृंदावन रहने योग्य है। वनं वृंदावनं नाम। सभीने इस प्रस्तावका स्वीकार किया। बलराम और कनैया भी राजी हो गए। वहां खेलकूदका मजा आएगा। तो सब वृंदावन आ बसे।

वृंदाका अर्थ है भक्ति। सो भक्तिका वन वृंदावन है। बालकके पांच वर्षके होने पर उसे गोकुलमेंसे वृंदावन ले जाया जाय। अर्थात् लाड-प्यारकी अवस्था, प्राथमिक अवस्थामेंसे अब उसे भक्तिके वनमें ले जाया जाय। पांच वर्ष समाप्त होने पर लाड-प्यारमें कुछ कमी की जाय।

बालकको धर्मभीरु, संस्कारी बनानेके लिए बचपनसे ही धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। एकादशीके दिन उसे अन्नाहार न दिया जाय। अपने बालकको अच्छे संस्कार न देने-वाले मातापिता उसके बैरी हैं। भक्ति और धर्मकी शिक्षा न देनेवाले माता-पिता उस बालकके शत्रु ही हैं।

बालकका हृदय, मन बडा कोमल होता है अतः उसे दिए गए संस्कार उसके मनमें अच्छी तरह जम जाते हैं। उसे बचपनमें अच्छे संस्कार दोगे तो उसका यौवन भ्रष्ट नहीं होगा और जीवनभर संस्कारी बना रहेगा।

चाचा उपनंद कृष्णको वृंदावन ले गए।

जिसे ज्ञानवृद्ध संतका सहारा हो वह पतनकी गर्तामें गिर नहीं सकता। किसका हाथ पकड कर चलनेसे गिरनेका डर नहीं रहता। ईश्वरका ही हाथ पकड कर चलो।

वृंदावनमें अकेले नहीं, वृंद लेकर जाओ। औरोंको भी सत्कार्यकी प्रेरणा देते रहो।

गोप-गोपियां सब वृंदावन गए। वृंदावनमें यमुनाके किनारे और गोवर्धन पर्वतको देख कर राम-कृष्ण और सभी बालकोंको बडा आनंद हुआ। वहां आकर भगवान् वत्सपाल हुए। बालमित्रोंके साथ बछडे चराने जाने लगे। यमुना किनारे वे सब भांति भांतिके खेल खेलते रहते थे।

कृष्ण ग्यारहवें अध्यायमें वत्सपाल हैं और आगे गोपाल।

कृष्ण कभी कभी बंसी बजा कर तथा भात भातके खेल रचा कर गोपबालोंको आनद देते थे।

जीव मात्रको कृष्णकी बांसुरीकी मधुर तान पुकारती रहती है। किंतु मोहक विषयोंमें फंसा हुआ जीव बंसीकी पुकार सुन नहीं पाता है।

यमुना (भक्ति) के किनारे दो बाधाएं उपस्थित होती हैं। एक है वत्सासुर (अज्ञान, अंध श्रद्धा) और दूसरी है बकासुर (दंभ)।

बगुला दंभका प्रतीक है। बगभगत अर्थात् दंभी।

भक्तिके किनारे दंभ आ बसता है। उसकी घातमें मत फंसाना। दंभके समान कोई पाप नहीं है। अन्य पापोंके लिए प्रायश्चित्त किया जा सकता है, दंभके लिए नहीं। जिसका बाहरी चोला तो अच्छा हो किंतु भीतर तथा करनी मैले हों वह बकासुर ही है।

बगुलेकी चोंच है लोभ। कीर्ति और धनका लोभ अपने साथ दंभ भी ले आता है।

यमुना-भक्तिके किनारे बगुलादंभके आते ही सारा खेल बीगड जाता है।

भगवान्‌ने वत्सासुर और बकासुरका वध किया।

एक बार श्री कृष्ण अपने बालमित्रोंके साथ वनमें बछडे चराते हुए खेल रहे थे।

उन बालकोंके सद्भाग्यका वर्णन किन शब्दोंमें करें कि जिनको श्री हरिके साथ खेलनेका सुअवसर मिला है। जिसके दर्शनके लिए योगी और ऋषि-मुनि तरस रहे हों उसी परब्रह्मके साथ वे गोपबालक खेल रहे हैं।

सभी बालक खेल-कूदमें लगे हुए थे। इतनेमें वहां अघासुर आया। उसे कंसने भेजा था। वह बकासुर और पूतनाका छोटा भाई था।

जहां अज्ञान और दंभ हो वहां पाप आ धमकता है।

अघासुर अजगरका रूप लेकर आया और सभी गोपबालकोंको निगल जानेकी इच्छासे मार्गमें सो गया। उसके खुले हुए विशाल मुखको उन बच्चोंने पर्वतकी गुफा मान लिया और उसमें प्रवेश करनेकी सोची। उन्होंने कनैयासे कहा, यदि तू भी हमारे साथ आए तो हमें डर नहीं लगेगा।

आजकलके लोग धनको तो अपनी सीनेसे चिपकाए रहते हैं किंतु प्रभुको दूर ही रखते हैं। अकेले कहीं भी न जाओ। ठाकोरजीको हमेशा अपने साथ रखो। ठाकोरजीको अपने साथ रखनेका यह अर्थ नहीं है कि उनकी मूर्ति या छबीको जेबमें रख लिया जाय। किंतु उन्हें अपने हृदयमें बसाए रहो। उनका सतत स्मरण करो। उनके ही सांनिध्यका अनुभव करते रहो।

बालक जानते हैं कि यदि कनैया उनके साथ होगा तो कुछ डरनेका नहीं है। कृष्णको साथ ले कर वे सभी गोपबाल नाचते-कूदते अंदर चले गए। उनकी रक्षाके हेतु कृष्ण भी अघासुरके मुंहमें, उदरमें गए।

भागवतमें समाधिभाषाका प्रयोग भी बहुत किया गया है। लौकिक और परमत भाषा गौण है। समाधिभाषाका अभ्यासी भागवतका अर्थ समझ पाएगा। विलासीके लिए भागवत समझना बडा कठिन है। जब नादब्रह्म और नामब्रह्म एक होता है तब परब्रह्मका प्रागट्य होता है।

पेटमें जाकर भगवान्‌ने विशाल रूप धारण किया तो अजगरका शरीर फट गया। अघासुरके प्राण ब्रह्मरंध्रसे बाहर निकल गए। सभी बालक भी लालाके साथ बाहर आ गए।

अघ शब्दका अर्थ है पाप। अघासुर पाप ही का स्वरूप है। जो पापमें रममाण रहता है वही अघासुर है। पाप करनेमें सुख माननेवाला व्यक्ति अघासुर है। कई बार पापी व्यक्ति सुखमें जीता हुआ दीखाई देता है। किंतु पापके कारण नहीं किंतु उसके किसी पूर्वजन्मके पुण्यके कारण ही उसे वह सुख मिल रहा होता है। अन्यथा पापका परिणाम तो दुःख ही है।

पापी न तो कभी सुखी हुआ है और न तो कभी होगा।

कोई पुण्यशाली दुःखी होता हुआ दीखाई दे तो मान लेना कि उसके किसी पूर्वजन्मके पापका फल उसे मिल रहा है। पुण्यका फल दुःख नहीं है।

पापकी जालसे छूटना आसान नहीं है। पापका भान होने पर भी मनुष्य पाप-कर्म छोड नहीं पाता है। जब तक पुण्यका बल बढता नहीं है तब तक पापकी आदत छूटती नहीं। पापकी आदत बडी बुरी है। पापको मनमें कभी न बसने देना। मनुष्य शरीरकी अपेक्षा जीभसे, जीभकी अपेक्षा आंखोंसे और आंखोंकी अपेक्षा मनसे अधिक पाप करता है। जब तक इन्द्रियां पाप करनेकी आदी हैं तब तक भक्तिरस मिल नहीं पाता। इन्द्रियोंकी गगरीमें भक्ति रस भरना है तो पहले उसे निष्पाप करो। यदि पानीसे भरे हुए घडेमें दूध भरना है तो पानीको पहले निकाल देना होगा।

आत्मा और इन्द्रियां इतनी एकाकार हो जाती हैं कि इन्द्रियोंका पाप आत्मा देख ही नहीं पाता।

मनमें पापका विचार आते ही उसे निकाल बाहर करो। यदि पाप हो भी जाय तो बडी ही नम्रतासे भगवान्‌से माफी मांगो।

अघासुर अजगरका रूप लेकर आता है और असावध व्यक्तिको निगल जाता है।

औरोंकी निंदा, कानाफूसी जैसा कोई पाप नहीं है। मनुष्य अपना ही सुधारनेमें लगा रहता है फिर चाहे औरोंकी कितनी भी हानि होती हो। यह पाप और हिंसा ही है।

यदि पाप तुम्हारे शरीर और मनमें एक बार घूस गया तो तुम्हें छोडेगा ही नहीं। जिसके घरमें, मनमें पाप आ बसता है उसके घरमें, मनमें परमात्मा कभी नहीं आते।

अजगरके मुंहमें घूसे हुए गोपबाल अपने आप बाहर निकाल नहीं पाते। श्री कृष्ण ही उनको बाहर निकालते हैं।

पापके अघासुरके उदरमें पहुचा हुआ व्यक्ति अपने आप बाहर नहीं आ सकता। कोई बाहरका पुण्यशाली संत या प्रभु ही उसे बाहर खींच सकते हैं।

पाप और सांप एक समान है। सांप द्वारा काटे जाने पर यदि उस अंगको हम शीघ्र ही काट दें तो उसका विष सारे शरीरमें फैल नहीं पाएगा। इसी प्रकार पापका विचार आते ही उसे उसी क्षण नष्ट कर दोगे तो बच पाओगे। सांपके विषकी भांति यदि पाप कुछ समयके लिए भी अंदर रह जाएगा तो फिर बचना मुश्कील हो जाएगा।

पापका चिंतन करनेसे वह जम जाएगा। पाप धरतीसे आकाश तक व्याप्त है। अघासुरका एक होंठ धरती पर था और दूसरा आकाश तक पहुंचा हुआ था।

मन संग संग चलता है अतः पाप तो तुम्हारे साथ वन-पर्वत या जहां भी जाओगे वहां साथ ही आएगा।

वासनाके प्रवाहमें बहा जा रहा जीव अंतरात्माके मना करने पर भी पाप करता रहता है। वासनाके वेगमें ज्ञान बह जाता है और पाप हो जाता है। जो पापके अजगरके उदरमें चला जाता है वह बाहर आ नहीं सकता। पाप बडा आकर्षक होता है। पाप करनेका प्रसंग आए और पापाचार किए बिना कोई चारा ही न रहे तो भगवान्‌को साक्षीभूत रख कर ही पाप करना। इसका अर्थ यह नहीं है कि पापाचार करते रहो। किंतु ऐसे समय भगवान्‌का स्मरण अवश्य करते रहना।

जब तक पाप हृदयमें होगा उसका नाश नहीं होगा। उसकी तो जड ही काटनी होगी।

सभी क्रिया प्रगट-अप्रगट शब्दोच्चारके साथ ही होती है। पापाचारके पहले, मनमें उसका उच्चार होते ही उसका नाश करो। पहले विचार भ्रष्ट होता है, फिर वाणी भ्रष्ट होती है और फिर आचारमें भ्रष्टता आ जाती है। मनमें पाप आते ही मनको डांटो, उसे सजा करो। पाप मनमें आते ही शीतल जलसे स्नान करके कीर्तन करो, प्रार्थना करो। हे प्रभु, यह काम, यह वासना, यह लोभ मुझे सता रहा है, मुझे छोडता नहीं है। कृपा करो। मेरी सहाय करो। सच्चे हृदयकी प्रार्थना वे अवश्य सुनेंगे।

संत प्रभु नामका उच्चार सतत करते रहते हैं अतः उनसे पाप नहीं किया जा सकता। अघासुरके उदरमें जाते समय ताली बजाते हुए अर्थात् मनको जागृत करते हुए जाओ।

सभी जानते-समझते हैं कि असत्य बोलना, किसीको सताना, हिंसा करना आदि पाप है फिर भी पाप करते ही रहते हैं। पापको भूलसे ही उखाड फेंको। जब भी ऐसा लगे कि अपना शरीर या मन पाप करने जा रहा है तब तुरंत ही भगवान्‌के नामका कीर्तन करने लगो। परमात्माको याद करते हुए पापकी वासना छूट जाएगी। पापकी आदत छुडानेका उपाय है प्रभुप्रार्थना।

प्रभु, मेरी पापवासनाका नाश करो। मैंने जब पाप किया था तब आप भी वहां उपस्थित थे। मुझे सजा भी दीजिए और क्षमा भी।

मनुष्य स्वयं जानता तो है कि वह क्रोधी है, कामी है।

जानबूझ कर पाप करनेवाला, पापमें सुख माननेवाला, पाप ही में रममाण रहनेवाला अघासुर ही है।

पाप किए विना रहा ही न जाय तो भगवान्‌को साक्षीमें रखना। वे तुम्हें बचायेंगे। यद्यपि यह नियम कनिष्ट है।

उत्तम बात तो यही है कि पापका विचार तक न किया जाय।

विना भोगे हुए जिसका नाश नहीं हो सकता है वह पाप है। पुण्य तो विना भोगे भी नष्ट हो सकता है। पुण्य भोगनेके लिए तो जन्म लेना पडता है। साधु-संतोंको भी पुण्य तो अंतमें कृष्णार्पण ही करना पडता है।

पुण्य कृष्णार्पण किया जा सकता है, पाप नहीं। पापका दंड तो स्वयं ही भुगतना पडता है।

प्रारब्धकर्मणाम् भोगादेव क्षयः।

किसी महा पुरुष, सुपात्र साधु-संतकी कृपा होने पर ही पापकी वासना नष्ट हो सकती है।

कई वार तो अंतरात्माकी अनिच्छा होने पर भी पाप हो जाता है।

गीतामें अर्जुनने भगवान् श्री कृष्णसे एक सनातन प्रश्न पूछा हैः—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

अनिच्छा होते हुए भी जीव पापमें क्यों प्रवृत्त होता है? वह पाप क्यों करता है? इच्छा न होने पर भी उसे पाप क्यों करने पडते हैं?

भगवान् कहते हैंः—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

रजोगुणमेंसे उत्पन्न हुए काम और क्रोध मनुष्यके प्रमुख शत्रु हैं। वे ही उसे पापकी ओर घसीटते रहते हैं।

रजोगुणको कम करो और सत्त्वगुण बढाते जाओ।

ताली बजाते हुए बालक पहले नादब्रह्ममें लीन हुए और बादमें उनका मन परब्रह्मसे जा मिला।

वैसे तो सभी बालक सारे दिनकी लीला अपनी माताओंको उसी दिन सुनाते रहते थे। किंतु इस अघासुर-वधका प्रसंग एक वर्षके बाद सुनाया। अर्थात् कृष्णने अपने पांचवें वर्षमें अघासुरका वध किया था किंतु बात छठे वर्षमें बातायी।

परीक्षित राजाने पूछाः- उन बालकोंने ऐसा क्यों किया? एक बरस तक छुपाए रखनेका क्या कारण था?

परीक्षितके इस प्रश्नसे शुकदेवजीको उस प्रसंगका, उस रहस्यमयी लीलाका स्मरण हो आया। वे समाधिमें लीन हो गए। कुछ देरके बाद धीरे धीरे जब बाह्यदृष्टि प्राप्त हुई तो कहने लगेः– सुनो राजन्! ब्रह्माने उन गोपबालकोंका अपहरण किया था। वहांसे वे एक वर्षके बाद लौटे सो एक वर्षके बाद ही वे अपनी सारी बात कह पाए।

शुकदेवजीने तेरहवें और चौदहवें अध्यायमें विस्तारसे समझाया है।

भगवान् चारों प्रकारसे रास खेलते हैं। उनका नाम ही रस है। 'रसो वै सः'। परमात्मा दिव्य रस स्वरूप हैं। उनके साथ मिलना रास है। रासका अर्थ है ब्रह्मसे मिलन। रासका अर्थ है कृष्णसंबंध, ब्रह्मसे संबंध।

जीव जब ईश्वरके साथ एक हो पाता है तभी कृतार्थ होता है।

गोकुलकी गायोंकी इच्छा थी कि वे प्रभुके साथ एक बनें। अब यह कैसे हो पाएगा? तो उन्होंने इच्छा की कि जिस प्रकार बछडे उनका दूध पीते हैं उसी प्रकार कृष्ण भी पीए। प्रभुने उनकी इच्छा पूरी की। इस अध्यायमें गायरास वर्णित है।

गोकुलकी वृद्धाओंकी इच्छा थी कि कनैयाको वे लाड–प्यार करें, दुलरा पाएं। वे सब लालासे मनसे मिलती थीं। मानसिक मिलन भी आनंददायी है फिर भी प्रत्यक्ष मिलनकी उत्कंठा बनी रहती थी। इस अध्यायमें वृद्धा गोपियोंका रास वर्णित है।

अघासुरके उदरमेंसे सभी गोपबाल और बछडे बाहर आए। बालकोंने कनैयासे भोजन करनेकी इच्छा प्रगट की। तो कनैयाने कहा, हां, चलो यमुनाके इस सुंदर किनारे पर हम पंक्ति लगा कर भोजन करें। और ये बछडे भी हरा घास चरते रहेंगे।

कनैया और सभी बालक एक साथ मिल कर पद्मव्यूह–चक्रव्यूह रच कर भोजन करने बैठ गए। यह समाधि भाषा है। कमलकी पंखुरिया बिलकुल पास पास होती हैं, एक–दूसरीसे लग कर होती है। कमलके मध्यमें कोमल पदार्थ होता है और छोटी–सी पंखुरियां वहां होती हैं। बडी पंखुरियां उन छोटी–सी पंखुरियोंसे लग कर होती है। सभी बालकोंकी इच्छा श्री कृष्णसे लग कर बैठनेकी है। सभी अपने अपने घरकी सामग्री कनैयाको खिलाना चाहते हैं। सभी कनैयाके मुंहमें कौर रखना चाहते हैं। दूर बैठ कर तो वैसा किया नहीं जाता। श्री कृष्णने बीचोंबीच बैठ कर सभी बालकोंके मनकी इच्छा पूरी की।

रासलीलामें भी प्रत्येक गोपीको वैसा अनुभव कराया कि वे उसीके साथ हैं। प्रत्येक गोपबाल और गोपीको कृष्णने सान्निध्य और स्पर्शका अनुभव कराया।

ईश्वरके सामीप्यके बिना चैन नहीं आता। ब्रह्मस्पर्शके बिना आनंद नहीं मिल पाता।

प्रेम इतना शक्तिशाली है कि निराकारको भी साकारता दे देता है। निष्काम ईश्वर भी प्रेमके कारण सकाम बन जाते हैं।

कनैया अपने मित्रोंसे समझाता है, कभी अकेले न खाना। अकेले खानेवाला बिल्ली बनता है। चोरी छीपे अकेलेमें खाना पशुधर्म है। अकेले कभी न खाया जाय।

ईश्वर सभीको समान आनंद देते हैं। मनुष्य विषमता देता है, विषमता बनाए रखता है। ईश्वर सुपात्र जीवको इतना तो देते हैं कि लेनेवाला लेते लेते थक जाय।

यज्ञ भुग। ईश्वर यज्ञका भोक्ता है। यज्ञमें आवाहन करने पर भी कई बार जो ईश्वर भोजन नहीं करते है वही आज गोपबालकोंके हाथों भोजन कर रहे हैं।

परमात्माको वश करनेका सर्वोत्तम साधन है प्रेम। भगवान्‌को उत्तमोत्तम वस्तु दी जाय। और वैसी वस्तु है भक्ति। भक्ति ही शुद्ध प्रेमभाव है।

कोई बालक जलेबी लाया था तो कोई बरफी तो कोई दही बडा। सभी बालक मिल कर खा रहे हैं।

भोजनके समय विनोद करना चाहिए, आनंद करना चाहिए।

कनैयाने कहा, अजी, इसकी मा दही बडे-सी गोलमटोल और बाप दुबला-पतला। सभी हंस पडे। इस प्रकार कनैया और सभी बालक आनंद-प्रमोद करते हुए खाने और खिलाने लगे।

जीव जब अपनापन, जीवत्व, अभिमान छोड कर परमात्मासे प्रेम करने लगता है तब ईश्वर भी अपना ईश्वरत्व छोड कर जीवके साथ खेलने चले आते हैं। अभिमानी जीव अपनेको शास्त्री, पंडित, ज्ञानी मानता है। वह भगवान्‌को भी ललकारने लगता है। भगवान् कहते हैं:- यदि इस जीवको मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है तो मैं भी क्यों उसका ध्यान रखूं ?

यदि परमात्माको प्रसन्न करना है तो बालक बन कर उनके पास जाओ।

गोपबालोंके साथ भोजन करते हुए भगवान्‌की शोभा तो देखिए—

> बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे ।
> वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
> तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिस्वैः ।
> स्वर्गलोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग बालकेलिः ॥
>
> भा. १०-१३-११

उस समय श्री कृष्णकी छटा सबसे निराली थी। उनकी कमरमें बांसुरी बंधी हुई थी, बगलमें सिंग और लकडी थीं, बांए हाथमें घीयुक्त दही मिले हुए चावलका ग्रास था। अंगुलियोंमें फलोंका अचार था। चारों ओर गोपबाल बैठे हुए थे। वे सभीके मध्यमें बैठ कर, सभी बालकोंके साथ विनोद करते हुए भोजन कर रहे थे। स्वर्गके देवता भी इस अद्भुत लीलाको आश्चर्यसे देख रहे थे।

इस लीलाको मनमें देख कर आनंद करो। वृंदावन, यमुनाका किनारा, फलोंसे झूके हुए वृक्षोंकी घटा, नीचे बैठे हुए कृष्ण और गोपबाल आदिकी मनमें कल्पना करोगे तो आनंद मिलेगा।

सच्चा वैष्णव मनसे तो हमेशा वृंदावनमें ही रहता है। तन चाहे जहां हो, मन तो वृंदावनमें ही होना चाहिए।

भावना भक्तिको सफल करती है।

खाना कोई पाप नहीं है। खानेके लिए ही तो भगवान्‌ने ये सारे खाद्य पदार्थ उत्पन्न किए हैं। किंतु भगवान्‌को भूलाकर, भगवान्‌को अर्पण किए विना ही खाना पाप है। कई लोग कहते हैं कि आज तो उनको एकादशीका उपवास है। किंतु अकेलेमें ढेर सारा खा लेते हैं। खाना नहीं, किसीसे छुपा कर, चोरी–छीपे खाना पाप है।

अघासुरको जब कनैयाने मोक्ष दिया तब ब्रह्माको आश्चर्य हुआ। वे इधर देखनेके लिए आए कि यह कनैया कौन है। यहां आकर देखा तो कनैयाको गोपबालकोंके साथ भोजन करते हुए पाया।

इन व्रजबालकोंमेंसे एक था ऋषि शांडिल्यका पुत्र मधुमंगल। उससे कनैयाने कहा, तू हमारे घरका तो खाता रहता है किंतु अपने घरका तो हमें कभी नहीं खिलाता। पवित्र ब्राह्मणोंके घरका भोजन खानेसे बुद्धि पवित्र होती है। इसी कारणसे कनैयाने मधुमंगलके घरका भोजन खाना चाहा।

यशोदाजीने शांडिल्य ऋषिसे कहा था कि मधुमंगलको रोज भोजन करने भेजना। यशोदाजी उसका वडा आदर करती थीं।

सो आज कनैया उस ऋषि पुत्रसे कह रहा है, रोज तू मेरे घर खाता है, आज मुझे तू अपने घरका खिला।

मधुमंगलने दौडते हुए अपने घर आकर अपनी माता पूर्णमासीसे बात की। माताको वडा आनंद हुआ। किंतु अभी तक रसोई बनाई ही नहीं थी।

शांडिल्य ऋषि ब्राह्ममुहूर्तमें शय्यात्याग करते थे किंतु उनका नित्य कर्म रात्रिके आठ बजे समाप्त होता था। प्रातःकालमें वे गायत्री मंत्रकी चौबीस माला फेरते, पंचायतन देवोंकी पूजा, पंच देवोंका अभिषेक, विश्वदेव, यज्ञ–होम, मध्याह्न संध्या, विष्णुसहस्रनाम पाठ, भागवत पाठ, और अंतमें भगवान्‌के नामोंका इक्कीस हजार जप। इतना सब करते करते सांझ ढल जाती थी। इस तपस्वी ब्राह्मणको खाने तकका समय मिलता नहीं था। सो वे रात्रिके समय फलाहार करते थे।

एक बार भजनानंद मिला नहीं कि फिर भोजनानंद, सांसारिक सुख निरस लगते हैं। हमारे जीवको भजनमें आनंद नहीं मिलता है सो अन्य विषयोंमें आनंद ढूंढता रहता है।

ब्राह्मणका अवतार तप करनेके लिए है, विलासके लिए नहीं। भगवान् नहीं चाहते हैं कि ब्राह्मण विलासी हो जाय। वैश्य और क्षत्रियका विलास तो कुछ अंशोंमें क्षम्य है किंतु ब्राह्मणका विलास अक्षम्य है। यदि अंतकाल तक ब्राह्मण पवित्र रहे, विलासकी कामना तक न करे तो भगवान् उसे दिव्य आनंद देते हैं।

पतिव्रताका धर्म है कि जब तक पतिने भोजन न किया हो तब तक वह भी भोजन न करे।

शांडिल्य और पूर्णमासी अत्यंत पवित्र थे। पूर्णमासी भी पतिके साथ साथ फलाहार ही करती थी। उनका एक मात्र पुत्र मधुमंगल तो यशोदाके घर भोजन कर लेता था। अतः पूर्णमासी कभी रसोई बनाती ही नहीं थी।

यदि स्त्री अपने पतिके प्रति ईश्वरत्वका अनुभव नहीं करती है, ईश्वरका भाव नहीं करती है तो उसे पत्थरकी मूर्तिमेंसे कभी भगवान् नहीं मिलेंगे।

जीवनकी आवश्यकताओंके घटने-बढनेके साथ साथ पाप-पुण्य घटते-बढते जाते है। "चाहिए" का तो कभी अंत नहीं आता। सो अपनी आदत और जरूरत कम करते रहो। निश्चय करो कि मुझे भगवान्के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहिए।

पवित्र ब्राह्मण अपने घरमें किसी भी वस्तुका संग्रह नहीं करता।

अब पूर्णमासीके घरमें तो कुछ भी नहीं था। घरमें देखा तो बस थोडी-सी छाछ थी। खट्टी होगी तो कनैयाको पसंद नहीं आएगी ऐसा सोच कर उसकी कढी बनाई। मधुमंगलसे कहा, मुझ गरीब ब्राह्मणीके घर और तो कुछ है नहीं। बस यही दे देना।

परमात्मा कभी यह नहीं देखते कि जीव उनके लिए क्या लाया है। वे तो मात्र यह देखते हैं कि वह कौन-से भावसे लाया है। ईश्वर केवल भाव देखते हैं। वस्तुको देखनेवाला जीव है और केवल भावको देखनेवाले हैं भगवान्।

भगवान्को हमेशा सर्वोत्तम वस्तुका भोग लगाओ।

तो मधुमंगल वह छाछ लेकर आया। अन्य सभी बालक तो भांति भांतिकी मीठाई लाए हुए थे। सो मधुमंगल ऐसी छाछ देते हुए शर्माने लगा। यदि मैं ऐसी छाछ कनैयाको दूंगा तो मुझे सारा जन्म ऐसी खट्टी छाछ ही पीनी पडेगी। काना मजाक भी करेगा कि उसकी मा खट्टी है सो छाछ खट्टी है। ऐसा सोच कर मधुमंगल स्वयं ही पी जाने लगा।

भगवान्की दृष्टि उसपर पडी। अरे मधुमंगल, तेरी माने यह छाछ मेरे लिए भेजी है और मुझे देनेके बदले तू ही पिए जा रहा है। मेरी मौसी पूर्णमासीने यह मेरे लिए बडे प्यारसे भेजी है। मुझे भी तो पीने दो। मधुमंगल जल्दी जल्दी पी जाने लगा। कनैया झपट कर उसके पास आया और मटकी अपने हाथमें ले ली किंतु वह तो खाली हो गई थी। तो कनैयाने देखा कि मधुमंगलके मुंह पर थोडी-सी छाछ लगी हुई तो उसका मुंह चाटने लगा। यह सब चल रहा था उसी समय वहां ब्रह्माजीका आगमन हुआ।

कनैया कह रहा था, मधुमंगल, तेरे पिता तपस्वी ब्राह्मण हैं। सो तेरी झूठी छाछ मेरी बुद्धि सुधारेगी।

श्री कृष्ण बालकके साथ बालक, भोगीके साथ भोगी, योगीके साथ योगी और ज्ञानीके साथ ज्ञानी हैं। बालक ब्रह्मज्ञानकी बातें समझ नहीं सकते हैं अतः वे उनका खाने-पीनेकी बातों, माखनचोरी लीला आदिसे मन हरते हैं। वे बालकोंके मित्र बन कर अनायास ही ब्रह्मानुभव कराते हैं।

कनैयाको मधुमंगलका मुंह चाटता हुआ पाया तो ब्रह्माजीको आश्चर्य हुआ। यह कैसा भगवान् है? लोग श्री कृष्णको ईश्वर मानते हैं और यह तो इधर गोपबालकोंका मुंह चाटता फिरता है। ईश्वर कभी ऐसा भी हो सकता है क्या? ब्रह्मा पशोपेशमें डूब गए हैं। यह वही ब्रह्मा हैं जिन्होंने क्षीर सागरमें जाकर शेषशायी भगवान्को अवतार लेनेकी प्रार्थना की थी और देवकीजीके गर्भमें उनके आने पर गर्भस्तुति की थी। आज ये ब्रह्माजी श्री कृष्णकी सगुण लीलाको देख कर चकरा गए हैं।

सगुण ब्रह्मकी चित्रविचित्र लीलाको देख कर ब्रह्माजी सरीखे भी असमंजसमें पड जाते हैं तो सामान्य जीवकी तो बात ही क्या करें?

निर्गुण ब्रह्मको समझना कुछ अज्ञान है किंतु सगुण ब्रह्मकी लीलाओंका पार पाना बडा कठिन है।

तुलसीदासजीने भी कहा हैः—

निरगुन रूप सुलभ अति सोई, सगुन न जाने कोई।

ब्रह्माजीने परीक्षा लेनेकी सोची कि यह कृष्ण ईश्वर है या कोई साधारण देव। यदि मुझ जैसी सृष्टि बना पाएगा तो मैं मानूंगा कि यह कृष्ण ईश्वर है। यदि मेरी कसौटीमें वह पार उतरेगा तो मैं इसे ईश्वर मानूंगा।

ब्रह्माजी मायाके बलसे सभी बछडोंको ब्रह्मलोकमें उठा ले गए।

भोजन करते करते बालकोंको अपने बछडोंकी याद आई। देखा तो बछडे वहां थे ही नहीं। कनैयासे बात की।

कनैयाने मित्रोंसे कहा, तुम भोजन करो, मैं बछडोंको ले आऊं।

कृष्ण बछडोंको ढूंढने चले।

इस प्रसंगमें एक और भी रहस्य है।

जब तक बच्चे भगवान्को ही दृष्टिमें रख कर भोजन कर रहे थे तब तक आनंद मिला। किंतु बछडोंकी चिंता हुई, विषयोंमें मन जा लगा तो ब्रह्मा बछडोंको उठा ले गए और ईश्वर ही दूर हो गए। कनैयाको ढूंढनेके लिए दूर जाना पडा। गोपबालक ब्रह्माके आधीन हो गए, ब्रह्माकी मायाके आधीन हो गए।

ब्रह्मा भी कालका एक रूप हैं। सांसारिक विषयोंकी ओर मन गया नहीं कि जीवको ब्रह्मा–काल पकड लेते हैं।

भोजन करते समय यदि दृष्टि भगवान्की ओर रहेगी तो भोजन भी भजन हो जाएगा।

भोजन अतिशय स्वादिष्ट न होना चाहिए। स्वादिष्ट अधिक होगा तो भरपेट खाया जाएगा। बहुत खानेसे मन आलसी हो जाता है। स्वादरहित भोजन होगा तो मात्र भुखके जितना ही खाया जा सकेगा। जिसे परमात्माका भजन करना है उसे आलसी न बनना चाहिए। भोजन एक अनिवार्य शरीरधर्म हैं, भोजन करना पाप नहीं है। किंतु भोजन हीके साथ तन्मय होना पाप हैं।

श्री कृष्ण बछडोंको ढूंढ न पाए तो वापस लौटे। इधर आकर देखा तो गोपबालक गायब थे। श्री कृष्ण समझ गए कि यह सब ब्रह्माजी हीके करतुत हैं। ब्रह्माजी शायद भूल गए हैं कि मैं भी उनका दादा हूं।

कहीं पर विष्णुको ब्रह्माका पिता कहा गया है तो कहीं पर पितामह।

देवी भागवतके नौवें स्कंधमें सृष्टिकी उत्पत्तिकी कथा है। सृष्टिकी उत्पत्तिके बारेमें सभी शास्त्र एकमत नहीं है। जगत्की उत्पत्तिके विषयमें की गई विचारणा भिन्न भिन्न है। महात्माओंने तो ईश्वरके स्वरूपके बारेमें ही अधिक विचार किया है। ईश्वरके स्वरूपके विषयमें अधिक मतभेद नहीं है।

वैकुंठधाममें विराजमान लक्ष्मीनारायणकी नाभिमेंसे कमल उत्पन्न हुआ और उस कमलमेंसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

भगवान् तो 'कर्तुम् अकर्तुम्' और 'अन्यथाकर्तुम्' समर्थ हैं। कृष्णकी यह इच्छासृष्टि है। कनैयाने ही उन सभी बालकों ओर बछडोंका रूप धारण किया। वे अपने ही स्वरूपसे खेलते हैं।

ज्ञानी अपने शरीर नहीं, आत्मासे खेलते हैं। एक है भोगार्थ सृष्टि जिसे जीव सृष्टि कहते हैं। ईश सृष्टि तो पंचभौतिक रहिता है, भगवान्की लीलासृष्टि है। मात्र अन्यको आनंद देनेकी दृष्टिसे की गई सृष्टि लीला सृष्टि है। ब्रह्मा पंचमहाभूतकी सहायतासे जगत्की सृष्टि करते हैं।

भगवान् कहते हैं, मैं पंचमहाभूतकी मददके सिवाय सृष्टि उत्पन्न करता हूं।

परमात्मा जब भी संकल्प करते है, सृष्टि उत्पन्न होती है। जब ईश्वर पंचमहाभूतको उत्पन्न करते हैं तब उनके आधारसे ब्रह्मा जगत् उत्पन्न करते है।

द्रौपदीकी साडी कौन-सी मिलकी थी? स्वयं कृष्ण ही ने वस्त्रका रूप लिया था। भगवान्के संकल्पने साडी उत्पन्न की थी। जिसे ईश्वर ढंकते हैं उसे कौन निर्वस्त्र कर सकता है? यह तो श्री कृष्णका संकल्प था, लीला थी।

श्री कृष्णने गोपबालकोंकी कमली, लकडी आदि अनेक रूप धारण किए।

वैष्णव ब्रह्मके परिणामवादमें मानते है और वेदांती विवर्तवादमें। जगद्गुरु शंकराचार्यका वाद विवर्तवाद है। यह जगत् मिथ्या है, असत्य है। इसके अधिष्ठाता सत्य होनेके कारण यह जगत् सत्यरूप भासमान होता है। वस्तुतः ईश्वर तो एक ही है एक ही परमात्मा अनेक रूप धारण करते हैं। किंतु वे स्वरूप सत्य नहीं हैं। अविद्याके कारण असत्य जगत् सत्य आभासित होता है।

फीलममें तो हम देखते हैं हनुमानजी लंकाको जला रहे हैं किंतु परदेका तो एक धागा भी जल नहीं पाता। क्यों कि यह आभासी सृष्टि है। चित्र नहीं, पर्दा सत्य है।

अधिष्ठान सत्य है, ब्रह्मस्वरूप फलक-सा है और जगत् चित्र-सा। मायाके कारण यह सब दीखाई दे रहा है।

श्री महाप्रभुजी कहते हैं, ब्रह्म निर्विकार रह कर भी ब्रह्मका परिणाम होता है। दोनों सिद्धांत सत्य हैं। श्री कृष्ण ही लाठी हैं। श्री कृष्ण सत्य हैं और उनके कारण ही लाठीका भास होता है। ब्रह्म निर्विकार रहते हुए भी विकारी होते हैं।

परमात्मासे मिलनेकी गायोंकी इच्छा थी। सो कृष्णने बछडेका रूप धारण किया। असल बछडे तो ब्रह्मलोक थे। जिन बछडोंने स्तनपान छोड दिया था वे भी आज स्तनपान कर रहे हैं। गाएं भी बडे बडे बछडोंको स्तनपान कराने लगीं। यह दृश्य देख कर बलरामको पहले आश्चर्य हुआ किंतु उन्होंने अंतर्मुख हो कर देखा तो पाया कि ये सब बछडे तो कृष्णके ही रूप हैं।

जिन वृद्धा गोपीयोंको श्री कृष्णसे मिलनेकी इच्छा थी उनके साथ आज श्री कृष्णने गोपबाल लीला की। गोपियों अपने बालक रूपी कनैयाको उठा कर गले लगाने लगीं।

गोपियोंको परकीया नहीं माना गया। परकीया भाव माना गया है। श्री कृष्ण सभीके पति हैं। सो गोपियोंके भी पति हैं। इस दृष्टिसे रासलीलामें कोई भी गोपी परकीया नहीं थी।

किसी संतने कहा है कि व्रज और गोकुलमें कोई परकीया गोपी थी ही नहीं। कारण यह है कि प्रभु जब वत्सलीला कर रहे थे तब ऋषि शांडिल्यने आज्ञा की थी कि इस वर्ष भगवान् श्री कृष्णने गोपबालकोंका रूप धारण किया है। अतः यह समय बडा उत्तम है। सब अपनी अपनी कन्याओंका विवाह कर दे। तो सभीने अपनी कन्याओंका विवाह उन गोपबालों-के साथ कर दिया। अर्थात् सभी गोपियोंका विवाह श्री कृष्णके साथ ही हुआ। सो रास लीलामें परकीया नारीका प्रश्न ही नहीं उठता। श्री कृष्णके लिए कोई भी स्त्री परस्त्री नहीं थीं। वे तो सभीके स्वामी है, सर्वेश्वर हैं।

भगवान् श्री कृष्णने बछडों और बालकोंका रूप धारण करके गायों और वृद्धा गोपियोंको ब्रह्मसंबंधसे लाभान्वित किया। सभीको ब्रह्मसंबंधरूपी ब्रह्मानंद कराया।

भगवान् श्री कृष्णने प्रसिद्ध वेद वाक्य " सर्वं विष्णुमयं जगत् " को आज इस प्रकार चरितार्थ किया।

नरसिंह मेहताने भी गाया है—

" ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे "।

सर्वं विष्णुमय गिरोऽङ्गवदजः सर्व स्वरूपो बभौ।

भा. १०-१३-१९

उस समय " यह संपूर्ण जगत् विष्णु रूप है " यह वेद वाक्य मानों मूर्तिमंत हुआ।

निज इच्छानिर्मित तनु ईश्वर है और कर्मनिर्मित तनु जीव।

भगवान्ने इस प्रकार पूरे एक वर्ष तक लीला की।

भागवतने व्रजवासियोंकी लीलाके चार प्रकार बताए हैं। रासलीला चार हैं।

(१) वेणुगीत प्रसंग – कुमारिका गोपियोंके साथ रास।
(२) यज्ञपत्नी प्रसंग – विवाहिता गोपियोंके साथ रास।
(३) गोवर्धन लीला – वृद्धा गोपियोंके साथ रास।
(४) संन्यासी प्रसंग – संन्यासिनी गोपियोंके साथ रास।

मुख्य रास लीलायें इस प्रकार हैं।

(१) गोप बालकोंके साथ।
(२) गायोंके साथ।
(३) गोप युवतियोंके साथ।

अब रासका अर्थ भी देख लें। परमात्मा रसस्वरूप हैं। " रसो वै सः। " इस रस रूप ईश्वरके साथ तादात्म्य होना ही रास है। परमात्मासे जीवका मिलन रास है। रसात्मक ईश्वरके साथ अभिन्न भाव होना, संबंध होना रास है।

ऐसा कौन-सा जीव होगा जो ईश्वरसे मिलनेकी इच्छा न करता हो?

इन लीलाओंसे प्रभुने सभीको मुग्ध करके रस बांटा, आनंदका आविर्भाव किया।

भागवतके टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती तेरहवें–चौदहवें अध्यायमें लीलामें तन्मय हो गए हैं। उनका कहना है कि यह तो सर्वोदय लीला है, प्रभुने सबको समान रूपमें आनंद दिया है।

श्री कृष्णने आज जब बालकों और बछडोंका रूप धारण किया तो वे गोपियां और गाएं पहलेसे भी अधिक प्यार करने लगीं। अपनी अपनी संतानोंको प्यारसे नहलाने लगीं। गाएं अपने बछडोंको दूध पीला रही हैं, चाट रही हैं किंतु तृप्त ही नहीं होती। ब्रह्मानंदमें तृप्ति मिलती ही कब है?

ब्रह्माजी पृथ्वी पर यह देखनेके लिए दूसरी बार आए कि बालकों और बछडोंके विना इधर क्या हो रहा है। उन्होंने देखा तो पाया कि सब कुछ पूर्ववत् चल रहा है। वही बालक और वही बछडे। और श्री कृष्ण उन सबकेसाथ खेल–कूदमें मग्न। ब्रह्माजी सोचमें डूब गए। ये बालक–बछडे सच्चे हैं या वे जिन्हें मैं ब्रह्मलोक ले गया हूं? " इत एतेऽत्रसत्याः के। "

अन्यके साथ खेलनेवाला दुःखी होता है। ज्ञानी पुरुष अपने आत्मस्वरूपमें ही रममाण रहते हैं। भगवान् अपने ही स्वरूपके साथ खेल रहे हैं। श्री कृष्ण तो योगेश्वर हैं।

कृष्णने एक और लीला करनेकी सोची। उन्होंने ब्रह्माका रूप धारण किया और सेवकोंसे कहा, एक नकली ब्रह्मा आज–कल इधर उधर घूमता रहता है। वह यदि यहां आ जाय तो उसकी भली भांति मरम्मत कर देना।

सोचमें डूबे हुए ब्रह्माजी जब ब्रह्मलोकमें पहुंचे तो सेवकोंने उनकी मरम्मत करनी शुरु कर दी। तू तो नकली है। सच्चे ब्रह्माजी तो राजप्रासादमें बैठे हुए हैं।

ब्रह्माजीने आंखें बंद करके ध्यानावस्थित हो कर देखा तो अपने सिंहासन पर श्री कृष्णको बैठा हुआ पाया। सभी बालक और बछडोंमें भी उन्हींको पाया। परब्रह्मका दर्शन हुआ।

ब्रह्माजी बाल कृष्णकी परीक्षा लेने चले थे, किंतु स्वयं उन्हींकी परीक्षा हो गई। कृष्णमें नारायण स्वरूपका दर्शन हुआ। मेरे नारायण ही श्री कृष्णका रूप लेकर आए हैं। ब्रह्माजी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माकी वह स्तुति बडी अद्भुत है। व्यासजीने इसमें चारों वेद एकत्र कर दिए हैं।

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरि पच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

आपका स्वरूप वर्षाकालीन मेघके समान श्याम है। उस पर पीतांबर बीजलीकी भांति दमक रहा है। कानोंमें चणोठीके कुंडल और शिर पर मोर पीच्छका मुकुट है। सो आपके मुखकी शोभा अनोखी है। वक्षःस्थल पर वनमाला झूल रही है। हाथमें दही भातका ग्रास, बगलमें लकडी और सिंग तथा कमर पर बांसुरी बंधी हुई है। कमलसे भी कोमल चरणोंवाले और मधुर गोपबालवेशी आप परमात्माको मैं वंदन करता हूं।

श्री कृष्ण मेघ समान श्याम हैं। परमात्माने मेघ समान वर्ण धारण किया है क्यों कि मेघ संत है। मेघ नमकीन पानी पी कर लोगोंको मधुर जल देता है। नमकीन पानी दुःखका

और मीठा पानी सुखका प्रतीक है। अतिशय दुःख सह कर भी दूसरोंको जो सुख देता है वह संत है। स्वयं सुख भोग कर दूसरोंको सुखी करनेवाला सज्जन तो है किंतु संत नहीं।

कृष्णके गलेमें गुंजामाला है। माता यशोदा द्वारा पहनाई गई मोतीकी माला कनैयाने दूसरे गोपबालको दे दी थी। घर आकर मातासे कहा, मा, मैं यह कंठी लाया। मोतीकी माला तो मैंने अपने एक मित्रको दे दी। लालाको तो गुंजाकी माला ही बडी प्यारी लगती है। इसी कारणसे तो शृंगारकी समाप्ति गुंजामालासे की जाती है।

थोडा-सा देने पर भी उसे अधिक मान ले वह ईश्वर है। बहुत-सा मिलने पर भी कम माने, असंतुष्ट रहे वह जीव है। प्रभु जो कुछ भी दो, प्रेमसे दो।

कनैयाके मस्तक पर मोर-पीच्छ है। प्रभुको कामसुखत्यागी बडा प्रिय है। उसे परमात्मा अपने सर पर रखते है। लौकिक कामसुखोंका त्याग करोगे तो प्रभु तुम्हें अपने मस्तक पर बिठलायेंगे। मोर शारीरिक संबंधसे प्रजोत्पत्ति करता नहीं है सो उसे भगवान्ने यह सम्मान दिया है।

ब्रह्माजी परमात्माकी स्तुति कर रहे है। आपका स्वरूप पंच महाभूतोंका नहीं किंतु स्वयंसर्जित है। परमात्माका स्वरूप अप्राकृत अलौकिक है। जीवको तो उसके पूर्वजन्मके प्रारब्ध कर्मानुसार शरीर मिलता है। परमात्मा स्वेच्छासे शरीर धारण करते हैं। मनुष्यको उसके कर्मानुसार शरीर मिलता है।

परमात्मा स्वेच्छासे शरीर धारण करते है या तो भक्तोंकी इच्छाके कारण। निराकार निजानंदने आज श्री कृष्णके रूपमें अवतार लिया है। परमात्माके अंग अंग आनंदरूप हैं। उनका स्वरूप अलौकिक अप्राकृत है।

परीक्षा लेनेके किए गए प्रयत्नके कारण ब्रह्माजीने प्रभुसे क्षमा प्रार्थना की।

गर्भमें रहे हुए सतानका प्रहार माताको क्रोधित नहीं कर पाता। माताके तो क्रोधकी अपेक्षा आनंद ही होता है। इसी भांति मेरे अपराधको क्षमा कर दीजिए।

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।

ब्रह्माजी कहते हैं, मेरा शरीर पंचतत्त्वोंसे बना हुआ है, किंतु आपका शरीर तो केवल आनंदमय है।

मीसरीके खिलौने मीसरी ही हैं, हाथी-घोडे नहीं। उसकी टांग तोड कर दूधमें डालोगे तो दूध मीठा हो जाएगा। इसी तरह निर्गुणमेंसे सगुण बने हुए परमात्मा भी आनंद रूप हैं।

भगवान् श्री कृष्णका शरीर पूर्ण आनंदमय है। उनसे आनंद अभिन्न है।

निराकार आकार धारण भी कर ले फिर भी तत्त्व तो वही रहता है।

व्रजकी गायों और स्त्रियोंको धन्य है जिनके दूध रूपी अमृतको पीनेके लिए आपने बछडे और गोप बालकोंका रूप धारण किया। आप वह हैं जिनको संतुष्ट करनेके लिए कई यज्ञयागादि कार्य असमर्थ रहे।

गोकुल-वृंदावनमें जन्म पानेवाले सभी महाभाग्यशाली हैं।

जब तक मनुष्य प्रभुके भक्त नहीं होते हैं तब तक उनके लिए राग-द्वेष आदि चोर समान हैं, घर कारागृह है और मोह पांवोंमें पडी हुई जंजीरके समान है। भक्त बननेके बाद वह सब कुछ मोक्ष दाता बन जाते हैं।

सभी प्राणियोंका आत्मा है श्री कृष्ण। समग्र जगत् श्री कृष्णसे व्याप्त है।

जो मनुष्य मुरारि भगवान्के चरण पल्लवरूप नौकाका आश्रय लेता है उसके लिए यह संसारसमुद्र केवल बछडेके कदमोंके निशान जितना ही गहरा है अर्थात् गहरा नहीं है। वे इसे अनायास ही पार कर जाते हैं।

भक्तिके बिना मात्र ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न तो छालेको ओखलीमें रख कर कूटने जैसा है जो निष्फल ही रहता है। मात्र भक्ति ही मोक्षदायिनी है।

ब्रह्माजीने वंदन और स्तुति करके क्षमायाचना की। ब्रह्माजीने भोजनमें विक्षेप किया था अतः स्तुति समाप्त होने पर भी कृष्ण मौन रहे।

किसीके भोजन और नींदमें बाधा डालना पाप है।

ब्रह्मलोकमें नींदमें सोए हुए बालक एक वर्षके बाद जागे। उन्होंने सोचा कि आज ही लीला हुई है।

यह लीला एक वर्ष तक चली सो वे अघासुरवधकी कथा अपनी माताओंको जल्दी कह न पाए।

कुछ महात्मा इसे ब्रह्मामोह-निवारण लीला कहते हैं। श्रीधर स्वामीने इसे सर्वोदयलीला कहा है। जैसा आनंद यशोदाको दिया वैसा ही आनंद गोपियोंको, गोपबालकोंको, गायोंको और बछडोंको दिया। अतः यह सर्वोदय लीला है।

साधन करनेसे चित्त शुद्धि होती है और बादमें ईश्वरकी प्राप्ति।

श्री कृष्ण परमात्माका पूर्ण स्वरूप है अतः सभी शक्तियोंका प्रागट्य हुआ है।

अन्य सभी अवतार अंशावतार हैं किंतु राम और कृष्णका अवतार पूर्ण है।

नृसिंहावतारमें क्रियाशक्ति प्रगट हुई और ज्ञान शक्ति गुप्त रही थी। अन्य अवतारोंमें मात्र एक एक शक्ति प्रगट हुई थी और अन्य शक्तियां गुप्त रही थीं।

श्री कृष्णने प्रत्येक लीलामें एक एक देवका पराभव किया। वत्सलीलामें ब्रह्माका अभिमान उतार दिया। गोवर्धन लीलामें इन्द्रका और रासलीलामें कामदेवका पराभव किया।

एक दिन कनैया कहने लगाः- मां, अब मैं बडा हो गया हूं। गायोंको चरानेके लिए जाऊं?

यशोदाः- अभी तो तू छोटा ही है। जरा और बडा हो जा। फिर अच्छा-सा मुहूर्त देख कर मैं तुझे गोपाल बनाऊंगी।

इतनेमें वहां शांडिल्य ऋषिका आगमन हुआ। तो यशोदाने कनैयाका जन्माक्षर देते हुए गोपाल बनानेका मुहूर्त पूछा। तो ऋषिने कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीका मुहूर्त दिया। कनैया उस दिन गोपाल बननेवाला था। उसे इतनी तो उतावली थी कि उसकी नींद भी गायब हो गई।

माता, मुझे गायोंसे बडा प्यार है। मैं इनकी पूजा करुंगा।

प्रातःकालमें स्नानादिसे कनैया निवृत्त हुआ ही था कि शांडिल्य ऋषि आ गए। कनैयाने गायोंकी पूजा की तो उनको बडा आनंद हुआ क्यों कि उनका स्वामी पूजा कर रहा था। गायोंको फूल माला पहना कर मीठाई खिलाई। गोयोंने आशीर्वाद दिया, हमारे लालाकी जय जयकार हो।

यदि प्रभुने सपत्ति दी हो तो गायोंका पालन करो। आजके धनवान् तो घरमें कुत्तेको पालते हैं और अपने साथ मोटरमें बीठा कर घूमने भी ले जाते हैं। ऐसे लोगोंके लिए यही कहेंगे कि वे अगले जन्मकी तैयारी कर रहे हैं। कुत्तेसे अति स्नेह किया जाएगा तो मृत्युके समय उसमें वासना रह जायेगी। और अगले जन्ममें कुत्तेकी योनीमें जन्म लेना पडेगा। कुत्तेका तिरस्कार न किया जाय, उसे रोटी भी दी जाय किंतु उसके पीछे पागल मत बनो।

गायमें सभी देवोंका वास है। गायकी सेवा करनेसे अपमृत्यु टल जाती है। उसकी पूजा करनेका अर्थ हैं उसे भर पेट खिलाना-पीलाना। तीलक भर कर देनेसे उसका पेट कैसे भरेगा? गाय तो व्रजभक्त है।

एकनाथ महाराजने एकनाथी भागवतमें एक विनोद किया है। रामजीने क्या क्या नहीं किया था? कई राक्षसोंका वध किया, अनेक यज्ञ याग किए, प्रजाका भली भांति लालन-पालन किया। किंतु वे राजाधिराज थे सो गायोंकी सेवा न कर पाए। सो उनके मनमें गौसेवाकी वासना रह गई। अतः वे कृष्णका अवतार लेकर गायोंकी सेवा करने आए। अर्थात् राम और कृष्ण एक ही हैं।

प्रातःकालमें ब्राह्मणोंने आकर गणपतिकी पूजा करवायी। कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम हैं अतः धर्मकी सभी मर्यादाओंका वे पालन करते हैं। गायोंकी पूजा करके प्रदक्षिणा की। यह तो श्री कृष्णकी पौगंडावस्था है। शांडिल्य ऋषिकी आज्ञा होने पर कनैयाने माताको प्रणाम किया। यशोदाकी आंखोंसे हर्षाश्रु टपक पडे। कनैयाने मातासे रोनेका कारण पूछा। तो यशोदाने कहाः- तू सारी सुबहसे गायोंको लेकर वनमें जाएगा और शामको लौटेगा। तेरे मनोहर चेहरेको देखे विना मेरा सारा दिन कैसे बीतेगा?

जब जीव ईश्वरके विना एक भी क्षण जी न सके ऐसी स्थिति पर पहुंचे तब ईश्वर शीघ्र ही उसकी गोदीमें आ जाते हैं।

यशोदाने कनैयाको पगरखे पहनाने चाहे तो उसने इन्कार करते हुए कहाः- मैं गोपाल हूं, गायोंका सेवक हूं। और सेवक कभी जूते पहन सकता है क्या?

यशोदाः- बेटा, गाय तो पशु है।

कनैयाः- मा, ऐसा कभी नहीं बोलो। गाय पशु नहीं हम सबकी माता है। उसमें सभी देवोंका वास है। मैं तो गायोंका सेवक हूं।

जब तक कृष्ण गोकुलमे रहे थे उन्होंने चार प्रकारके संयमोंका पालन किया था।

(१) गोकुलमें उन्होंने सीले हुए कपडे कभी नहीं पहने क्यों कि उनके साथी गोप-बाल बडे गरीब थे।

(२) जब तक गोकुलमे रहे उन्होंने कोई शस्त्रास्त्र धारण नहीं किया। एक हाथमें माखन-मीसरी थी और दूसरेमें बांसुरी। बांसुरीकी मधुर तानसे ही वह सारे गोकुलको घायल कर देता था।

(३) अपने शिरकेश कभी नहीं उतारे। गोकुलका कनैया प्रेम मूर्ति है।

(४) कभी जूते नहीं पहने।

श्री कृष्णने गायोंकी जैसी सेवा की वैसी न तो कोई कर सका है और न कोई कर सकेगा। गायोंको खिलाने-पीलानेके उसने कभी कुछ खाया-पिया तक नहीं था। ऐसा कनैया जब गोकुल छोड कर चला जाए और गायें आंसू बहाने लगे इसमें आश्चर्य ही क्या है? पशु होने पर भी सभी गायें श्री कृष्णके पास ही रहना चाहती थीं।

कनैया अपने पीतांबरसे ही गायोंको पोंछता था और अपनी मीठाई भी उन्हें खिला देता था। माता, कभी पूछती तो कहता, मुझे गाय बडी प्यारी है। उसके खानेसे मुझे बडा आनद मिलता है।

अब हम धेनकासुर वधकी लीला देखेंगे। तालवनमें एक राक्षस गधेके रूपमें रहता था।

एक बार श्रीदामा और अन्य गोपबालोंने शिकायत की कि तालवनमें फल तो बहुत है किंतु धेनकासुर किसीको लेने नहीं देता।

भगवान्ने प्रह्लादको वचन दिया था कि उसके किसी भी वंशजको वे नहीं मारेंगे। सो बलभद्रने धेनकासुरका वध किया था।

वनमें फल सड जाय फिर भी किसीको न दे वही धेनकासुर है। अपने पास बहुत-सा होने पर भी किसीको कुछ न दे वह धेनकासुर है, गधा है। देहको ही सर्वस्व माननेवाला, अतिशय संग्रह करनेवाला धेनकासुर ही है।

धेनकासुर तालवनका मालीक तो नहीं था किंतु बरसोंसे वह वहां रहता था और जबरन् कब्जा जमा दिया था। कई लोग सावजनिक संस्थाओंका वहीवट करते करते उस पर कब्जा जमा लेते हैं। कुछ ऐसी संस्थामें गोलमाल करते हैं, रुपये-पैसे डकार जाते हैं। इस तरह समाजका धन उडानेवाला अगले जन्ममें गधा बनता है।

धेनकासुर देहाध्यास है, अविद्याके कारण होता है। अविद्या जीवको संसारके बंधनोंमें फंसाती है। ऐसा होने पर सांसारिक पदार्थोंके लिए जीवके मनमें ममता, राग द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं। जब तक अविद्या नष्ट नहीं हो पाती तब तक संसार छूट नहीं पाता।

अविद्या जीवको पांच प्रकारसे बांधती हैः- (१) स्वरूप विस्मृति (२) देहाध्यास (३) इन्द्रियध्यास (४) प्राणाध्यास (५) अंतःकरणाध्यास।

देहाध्यासमें जीव अपनेको बडा, स्वरूपवान्, विद्यावान्, संपत्तिवान् मानने लगता है, देहाभिमानी हो जाता है। ऐसे लोग दूसरोंका अपमान करने लगते हैं, दूसरोंको सताते हैं। ऐसे देहाध्यासको बलभद्रने मारा। भगवान्की आधिदैविक शक्तिसे ही देहाध्यासका नाश हो सकता है।

अब आती है कालीयनाग-दमनकी बात।

प्रभुने कालीयनागका उद्धार करनेका विचार किया। सो वे सभी बालकोंके साथ उस जलाशयके किनारे गेंद खेलने लगे कि जिसमें कालीयनाग रहता था। खेल-खेलमें गेंद उस जलाशयमें जा गिरी। बाल मित्रोंने कहा, लाला, इसमें नाग रहता है सो कोई भी उसका पानी नहीं पीता है।

भगवान् जलाशयमें कूद पडे। कालीयनाग उन्हें डंसने लगा। ज्यों ज्यों वह डंसता जाता था, विष अमृत बनता जा रहा था। कनैयाने एक हाथमें फेन पकडी, दूसरेमें पूंछ। फिर फेन पर आरुढ हो गए।

सभी बालक भयभीत हो गये किंतु कनैयाने ढाढस बंधाई और फेन पर नृत्य करने लगा। कनैया अपना वजन बढाता जाता था अतः कालीयनाग व्याकुल हो गया। नाग पत्नियां शरणमें आकर प्रार्थना करने लगीं। आपने हमारे पतिको जो दंड दिया है वह उचित ही है। क्यों कि इससे दुर्जनके पापका नाश होगा। आप तो कर्मानुसार सभीको दंड देते हैं।

रावणवधके समय मंदोदरीने भी ऐसा ही कहा था। उसने रामचंद्रजीसे प्रार्थना करते हुए कहा था, मेरे पतिके कुकर्म ही उनकी इस अवदशाके लिए कारणभूत हैं। इनको मारनेमें आपका कोई दोष नहीं है।

नाग पत्नियां कहती हैं, वैसे तो हमारा पति दुष्ट नहीं है क्यों कि उसके मस्तक पर आपने चरण रखे हैं।

श्री कृष्णने कालीयनागसे कहा, तेरे कारण यह सारा जलाशय विषैला हो गया है, सो तू यहांसे कहीं दूर दूर चला जा।

नागः- प्रभु, मैं जानेसे इन्कार नहीं करता हूं किंतु मुझे गरुडजीका डर लगता है।

भगवानः- मेरे मंगलमय चरणोंके स्पर्शके कारण गरुडजी तुझे कभी नहीं सतायेंगे।

कालीयनाग गरुडजीके भयके कारण ही पानीमें छीपा हुआ था।

कालीयनागकी फेन तो मर्यादीत थीं, हमारी तो हजारों हैं। हमारे संकल्प-विकल्प फेन ही हैं। भगवान्से प्रार्थना करो, मेरे मनके कालीयनागका दमन करो। उस पर आपके चरण पधराओ।

कालीयनागके तो मुखमें ही विष था, हमारी एक एक इन्द्रियमें और मनमें भी विष भरा पडा है। एक व्यक्ति हमें आंखोंका कांटा लगता है तो दूसरा रतन। ऐसे रागद्वेष, विषय, विकार आदि विष ही तो है। जब इन्द्रियां वासनारूप विषसे भरी हुई हैं तब तक भक्ति नहीं हो पायेगी। इन्द्रियोंको नहीं, इन्द्रियोंमें समाहित विषको नष्ट करना है। इस विषको सत्संगसे कम करते रहो।

कालीयनाग इन्द्रियाध्यास है।

यमुना-भक्तिमें इन्द्रियाध्यास आए तो शुद्ध भक्ति की नहीं जायेगी।

भोग और भक्ति पारस्परिक शत्रु हैं।

भक्तिके बहाने इन्द्रियोंको बहलानेवाला कालीयनाग है।

न केवल इन्द्रियोंसे, किंतु मनसे भी विषयोंका त्याग करोगे तो भक्ति सिद्ध होगी।

भक्तिमें विलासिता–विषधर घूस जाने पर भक्ति नष्ट हो जाती है। भक्ति मार्गके आचार्य वल्लभाचार्यजी, रामानुजाचार्यजी, चैतन्य महाप्रभुजी आदि सब परिपूर्ण वैरागी थे। पूर्ण वैराग्यके बिना भक्ति हो नहीं पाती। भक्ति ज्ञान–वैराग्यकी जननी है।

भक्ति मार्गके वे आचार्य तो केवल एक ही वस्त्र धारण करके सारे जगत्में विचरण करते थे। किंतु आगे चल कर इस मार्गमें बहुतसे कालीयनाग–विलासी लोग घूस गए और भक्ति मार्गको विषाक्त कर दिया, अपमानित कर दिया।

सेवा करना आसान नहीं है। संसार सुखका मनसे भी त्याग करनेवाला ही देवसेवा और देशसेवा कर सकता है। महा प्रभुजीने कहा है, ईश्वरमे, प्रभु सेवासे अनुराग और शारीरिक सुख–विलाससे वितराग रखोगे तभी भक्ति मार्गमें आगे बढ सकोगे। देवसेवा और देश सेवामें इन्द्रियोंके लालन–पालनका कोई स्थान नहीं है। इन्द्रियोंका सेवक देवसेवा कभी कर नहीं पाएगा।

सभी इन्द्रियां वासनाविषसे भरी हुई है। भगवान्ने सभी दैत्योंका नाश किया था किंतु कालीयनागका केवल दमन किया था, उसे नियंत्रित किया था।

इन्द्रियोंका नाश नहीं, दमन करना है। उन्हें विवेकसे वश करना है। इन्द्रियोंको सत्संग कराओ। वहां उन्हें भक्ति रसकी प्राप्ति होगी और वे शुद्ध होंगी।

इन्द्रिओंमेंसे विषको निचोड दो और सत्संग मंडलीमें भेज दो। कालीयनागको भगवान्ने विषरहित करके रमणक द्वीप पर भेज दिया था। इन्द्रियोंको शुद्ध कर लोगे तो वे भक्ति रसमें लीन हो सकेंगी।

भोगसे इन्द्रियोंका क्षय होता है और भक्तिसे पोषण।

जो आनंद योगी समाधिमें पाते हैं वही आनंद वैष्णवोंको कृष्ण कीर्तनमें मिलता है। कीर्तन करते समय दृष्टि हमेशा कनैयासे लगाए रहो।

वाणी कीर्तन करेगी, मन स्मरण करेगा और आंखें दर्शन करेंगी तभी जप सफल हो पायेंगे।

जब तक इन्द्रियोंमें वासना विष भरा हुआ होगा, भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो पाएगी।

इन्द्रियाध्यास आने पर भक्ति अशुद्ध हो जाती है।

विषरहित करके इन्द्रियोंको रमणक द्वीप–सत्संगमें भेज दो। वहां उन्हें भक्ति रस मिलेगा।

इन्द्रियोंको भोगसे नहीं, भक्ति रससे सींचना–पोषना है। भक्ति द्वारा इन्द्रियोंको रमणक द्वीप–सत्संगमें रमण कराओ।

भक्तिमार्ग अत्युत्तम है। इसमें इन्द्रियपुष्पको भगवान्के चरणोंमें रखना है। ज्ञान मार्गमें इन्द्रियोंसे संघर्ष करना पडता है, उन्हें मारनी पडती हैं। ऐसा न करो। समझा–बूझाकर इन्हें प्रभु मार्गकी ओर मोड दो।

श्री कृष्णने दो बार दावाग्नि पान भी किया था।

यमुनाके अलमेंसे कनैया सकुशल बाहर निकला तो हर्ष हुआ। उन्होंने यमुना किनारे ही रात्रि वास किया। उस समय दावाग्नि फैली और व्रजवासी घिर गए तो भगवान्ने दावाग्निका पान करके सबको बचा लिया।

एक बार सभी गोप बाल खेल-कूदमें मशगुल हो गए तो गायें चरती चरती दूर निकल गई। सभी उन्हें ढूंढने लगे। इतनेमें वहां दावाग्निने सबको घेर लिया। सभी बालक बचावके लिए कनैयाको पुकारने लगे। लालाने उनसे कहा, सब अपनी अपनी आंखें बंद कर लीजिए। मैं मंत्र जाप कर रहा हूं। कनैयाने विराट रूप धारण किया और दावाग्नि पान किया।

जब भी तुम प्रतिकूल अवस्थाके दावाग्निसे घिर जाओ, आंखें बंद करके प्रभुका ध्यान धरो। प्रतिकूल परिस्थितिमें जीका जलाना ही दावाग्नि है। ईश्वर ऐसे व्यक्तिको सांत्वना देते हैं कि वे भी साथ ही हैं।

संसार रूपी दावाग्नि चारों ओरसे धधक कर जीवको घेर लेती है। कचेरीमें ऊपर-वालोंसे झगडा हो जाता है और घर पर आकर देखता है कि अपनी माता और पत्नी हाथा पाईमें जुटी हुई हैं। पक्ष किसका लिया जाय, माताका या पत्नीका ? यह सांसारिक दावाग्नि सभीको घेरे हुए हैं। ऐसे समय तो उन गोप बालोंकी भांति, आंखें बंद करके भगवान्की शरण लो। वे सब दुःखोंको पी जायेंगे, दूर कर देंगे। प्रभुका नाम जपन सांसारिक दावाग्निको बूझा देगा।

भगवान्ने प्रलंबासुरका भी वध किया था। प्रलंबासुर अर्थात् बडी बडी वासना। इन वासनाओंके कारण जीव ईश्वरसे मिल नहीं पाता। शब्द ब्रह्मका चिंतन करोगे तो अंतःकरणकी वासनाओंका धीरे धीरे क्षय होगा।

रास लीलामें जाना है सो सभी दुर्गुणोंका नाश करो। दुर्गुणरहित होकर शुद्ध होने पर ही जीव रास लीलामें स्थान पा सकता है।

कनैयाकी बांसुरी सुन कर, उसकी मधुर तानका गोपियोंने जो वर्णन किया वही वेणु गीत है।

सुहावनी शरद ऋतु आई। वृंदावनकी शोभा अनेरी हुई है। मंद मंद सुगंधी पवन बह रही थी। भगवान्ने गायों और गोपालोंके साथ वृंदावनमें प्रवेश किया। गायोंको चराते हुए कृष्ण वंसी बजाने लगे। गोपियां वंसीके संगीतमें लीन हो गई।

बांसुरीवादन तो नादब्रह्मकी उपासना है। बांसुरी जब तक नहीं बजती, कृष्णके दर्शन भी हो नहीं पाते।

वेणुनादः - व = विषयानंद, इ: ब्रह्मानंद।

वेणुश्रवणका आनंद वह आनंद है जिसके सामने विषयानंद और ब्रह्मानद भी तुच्छ है। इस नादब्रह्मके समक्ष सभी आनंद निकृष्ट हैं।

गोपियां घरमें रह कर बांसुरी सुन सकती थीं और भगवान्की लीला भी देख सकती है। गोपियोंको दूरदर्शन और दूरश्रवणकी सिद्धियां प्राप्त हुई थीं।

वेणु गीतके श्लोक भिन्न भिन्न गोपियोंके है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि श्लोक की वक्ता भिन्न भिन्न गोपियां होने कारण सभी श्लोक एक-दूसरेसे कोई संबंध नहीं रखते।

गोपियां कहती हैं:– हमारे नयन तथा नयनयुक्त जीवनकी यही सफलता है कि जब श्यामसुंदर श्री कृष्ण और गौरसुंदर बलराम गोप बालकोंके साथ वनमें गायें चरानेके लिए आते–जाते हों, अपने ओष्ठद्वय पर मुरली धारण किए हों, और हमारी ओर प्रेम भरी तीरछी चितवनसे देख रहे हो उस समय हम उनकी मुख माधुरीका पान कर सकती हैं।

बलराम– श्री कृष्ण उत्तम नटोंकी भांति अत्यंत शोभायमान हैं।

ऐसे श्री कृष्णके दर्शन करनेवाली आंखें ही सार्थक हुई हैं। ऐसे दर्शनके सिवा नेत्रोंकी और कोई सार्थकता नहीं है। जिस प्रकार नेत्रोंकी सफलता श्री कृष्णके दर्शन पानेमें है वैसे ही देहकी सफलता सभी इन्द्रियां कृष्ण सेवामें जुटनेमें है।

अरे सखी ! कनैया बंसी बजा रहा है। जरा सुन तो ! यह बंसी नहीं, कृष्णकी पटरानी है। मैंने सुना है कि जब वह भोजन करने बैठता है, तब बांसुरीको कमरकी भेटमें ही रखता है। और जब सोता है तब उसे अपने साथ सेज पर ही रखता है। बांसुरी उसकी पटरानी जो है !

प्रभुके अधर बांसुरीका तकिया है, हाथ गादी हैं, आंखें दासियां हैं, पलकें पंखे हैं, नथनी छत्र है। इस बांसुरीका परमात्माके साथ विवाह हुआ है अतः उसे नित्य संयोग प्राप्त हुआ है।

इस वेणुने अपने पूर्वजन्ममें न जाने कौन–सी तपश्चर्या की है उसे कृष्णके अधरामृतका नित्य पान करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक गोपीने बांसुरीसे पूछा, अरी सखी, तूने ऐसा कौन–सा पुण्य कमाया था कि प्रभुने तुझे अपनाई है ?

बांसुरी:– मैंने बडी तपश्चर्या की थी। मेरा पेट पोला है। मैं अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती।

बांसुरी अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती है सो वह भगवान्‌की प्यारी है। डंडा सारा वेर, द्वेष, कटुता अपने पेट ही में रखता है। यह सब पेटमें संजोए रखनेकी वस्तु नहीं हैं। जो बांसुरी जैसा बन पाता है वह भगवान्‌को भाता है।

मुझमें कई गुन हैं। मैंने कई कष्ट झेले हैं। छ ऋतुओंकी मार भी सह ली। किसीने मेरा पेट कुरेद कर पोला कर दिया फिर भी मैं चुप रही। उसने कई कष्ट झेले सो भगवान्‌ने उसे पसंद किया।

चाहे जितने दुःखद प्रसंग आते रहें, धीरज न गंवाना। कम खानेवालेका शरीर निरोगी रहता है तो गम खानेवालेका मन।

बांसुरी अपने स्वामीकी इच्छानुसार ही बोलती है। इसी तरह भगवान्‌की जो इच्छा हो वही बोलो। गप लडानेवाला अविवेकी हो जाता है। उसका वह स्वयं ही विनाश करता है और दूसरोंको भी हानि पहुंचाता है। हम सबके स्वामी हैं ईश्वर। उनकी इच्छाको ही वाचा दी जाय।

मैं अपने स्वामीकी इच्छाको ही सुरोंमें ढालती हूं सो सो सज्जन, दुर्जन, छोटा–बडा, नाग, कस्तुरीमृग, गाय सभी डोलने लगते हैं। सभी आनंद हो वैसी मधुर तान छेडती हूं।

बांसुरीने बहुत कुछ सहन किया तभी प्रभुके सम्मुख हो पाई है। जो सोच-विचार कर दुःख सह लेता है उसके पाप जल जाते हैं। मधुर बोलनेका निश्चय करो। किसीके दिलको चोट आए ऐसा कभी न बोलो। लकडीकी मार तो भुलाई जा सकती है किंतु शब्दोंकी मार हमेशा याद रह जाती है। टकोर करनी पडे तो प्रेमसे करो।

बांसुरीका एक गुण यह भी है कि जब वह अकेली होती है तब मौन ही रहती है। तुम भी ईश्वरके ध्यानके समय मौन पालन करो। कई लोग शरीरसे तो सावध रहते हैं, मुंह बंद रखते हैं किंतु मनसे चलते-फिरते और बोलते रहते है। मौनका अर्थ है मनसे भी कुछ न बोला जाय। मनका मौन ही सर्वोत्तम मौन है।

महारानी बांसुरी बोल देनेके बाद अपने पेटमें कुछ भी नहीं रखती।

अरी सखी, देख तो सही, बांसुरीके स्वरको सुन कर ये वृक्ष भी मदकी धारा बहा रहे हैं।

कनैयाके बांसुरीवादनसे वृक्षोंको आनंद होता है। उनकी बेटी परमात्मासे विवाहित हुई है।

श्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽर्याः।

एक महात्मा कहते हैं कि ये तो तरुओंके हर्षाश्रु हैं। उनकी कन्या श्री कृष्णकी पटरानी जो हुई है।

एक संत कहते हैं कि ये वृक्ष दुःखसे रो रहे हैं। वे सोचते हैं कि बांसका मुख्य काम घरोंका खपरैल बन कर परोपकार करनेका है जब कि यह तो बांसुरी बन कर घरोंको उजाड रही है। लालाकी बंसीकी धुन जो भी सुनता है उसका घरमें रहनेमें मन ही नहीं लगता है। वह राधेश्याम राधेश्याम रटता हुआ कृष्ण-मिलनकी धुनमें घरके बाहर निकल पडता है। हमारी इस कन्याने घरोंकी रक्षा करनेके बदले उजाडनेका काम शुरु कर दिया है। इस विचारसे सभी वृक्ष शोकातुर हो कर आंसू बहाने लगते हैं।

एक और संत कहते हैं कि ये वृक्ष ऐसा सोच रहे है पानीमें डूबते हुए लोगोंका अपना जातिगत काम छोड कर यह बांसुरी सभीको (आनंद रसमें) डूबोनेमें लगी हुई है।

धन्याः हरिण्य आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः।

अरी सखी, देख तो सही। कनैयाका बांसुरी वादन सुन कर हिरनियां पागल हो कर दौडी आई हैं और अपलक दृष्टिसे कनैयाको निहार रही हैं। गोपियोंकी दृष्टि इतनी तीक्ष्ण है कि अपने घरमेंसे ही हिरनियोंकी स्थिर पलकें देख सकती है।

हिरनी अपने पतिको भी प्रभुके समक्ष ले जाती है। उसका पति उसे सहकार देता है। इनके पति अनुकूल हैं जब कि मेरे पति देवसेवामें प्रतिकूल हैं। और तो मैं क्या कहूं? मेरी अपेक्षा ये हिरनियां धन्य ही है, भाग्यशाली भी हैं कि कृष्णकी पूजा नयनकमल चढा कर करती है। और कुछ तो उनके पास है नहीं। यदि पति-पत्नी एक हो कर पूजा करे तो भगवान् जल्दी प्रसन्न होते हैं।

" सहकृष्णसाराः " अर्थात् पतिको सत्संगमें, परमात्माके निकट ले जानेवाली हिरनी-पत्नी सही अर्थमें पत्नी है।

पतिको परमात्माके सांनिध्यमें ले जानेवाली, पतिसे सत्कर्म करानेवाली पत्नी पतिकी मित्र है। पतिको केवल भोगविलासमें डूबाए रखनेवाली पत्नी पतिकी शत्रु है।

कृष्णसेवामें हिरनियोंको उनके पति सहयोग देते हैं। और इधर हमारे पति सहयोग तो देते ही नहीं है किंतु बाधा भी डालते हैं। सो ये हिरनियां बडी भागवान् हैं।

हमसे तो वृंदावनकी हिरनियां भी श्रेष्ठ हैं कि कृष्णसेवामें अपने पतिका सहयोग पा सकती हैं।

सखी, मैं तुम्हें क्या क्या बताऊं ? बंसीनाद सुनते ही गौमातायें घास खाना छोड कर, अपने कान रूपी दोनेके द्वारा, बंसीके नादामृतका बडे ध्यानसे पान करने लग जाती हैं। भगवान्की प्रेमरसी वंसीकी धुन सुन कर गायें घास चबाना भूल कर आनंदके अश्रु बहाने लग जाती हैं। बछडे भी दूध पीना भूल जाते हैं। कनैयाका बांसुरीवादन मनुष्य, पशु, पंछी, वृक्ष सभी शांतिसे सुनते हैं वृंदावनकी वन्यसृष्टि दिव्य है।

जब कनैया बांसुरी बजाने लगता है तो पंछी भी शांत हो जाते है। कई ऋषि भी पंछीका रूप लेकर वृंदावनकी लीला निकुंजमें राधेश्याम राधेश्याम करते करते इधर-उधर उडते फिरते हैं। ये पक्षी प्यास लगने पर भी राधेश्यामका जप करते करते पानी पीने जाते हैं। उनको गंगाके किनारे मौन रखनेकी आदत है सो यहां भी मौन रह कर लालाकी बांसुरी सुनते हैं। कुछ पंछी ऐसे भी हैं जो जमुनाजीका जलपान करनेके किए भी वृक्षसे नीचे नहीं उतरते। जलपान करने जानेसे कृष्णसे विरह जो होगा। वृंदावनके पंछी सामान्य पंछी नहीं, पूर्वके मुनि हैं। अतः वे वृक्षों पर मौन रह कर भगवान्की वंसी सुन कर आत्माको आनंद देते हैं। धन्य है इन पंछियोंको।

यशोदा आ कर कहने लगीं, रोज रोज कहती हूं फिर भी कनैया जूता पहनता ही नहीं है।

सखीः- चिंता न करो। उसका एक मित्र उसके सर पर छाता रख कर चलता है।

माताः- कौन है वह ?

गोपियांः- वह मेघराजा कनैयाका मित्र है। अतः जहां जहां कनैया जाता है वह छाया करता है। कनैयाकी लीला ही अनेरी है। ताप लगते ही झर झर बरखा आ पहुंचती है।

धरती पर नंगे पांव चलनेमें उसको कष्ट होता होगा। नहीं, गिरिराज कनैयाके लिए माखन-से कोमल हुए हैं। कनैयाके चरणस्पर्शसे गिरिराजकी कठोरता चली जाती है। गिरिराज सर्वश्रेष्ठ हरिदास है। गायोंको घास देता है। गिरिराज कनैयाके साथ उसकी प्रिय गायोंकी भी सेवा करता है। अतः वह कनैयाको प्रिय है।

ठाकोरजीकी सेवा करनेवाला वैष्णव है किंतु गायोंकी, गरीबोंकी सेवा करनेवाला तो महावैष्णव है।

परमात्माके चरणस्पर्शसे गिरिराजको रोमांच हो आता है। सो कहीं कहीं पर गढे पड जाते हैं। किंतु उन्हें पाठ देनेका उपाय कनैयाके पास है। वह बांसुरी बजाने लगता है तो गिरिराज आनंदसे फूलने लगता है और गढे पट जाते हैं।

अरी सखी, कनैया तो कदमके वृक्ष पर चढ कर वहांसे गायोंको पुकार रहा है। वंसीमेंसे गायोंको नाम लेकर पुकार रहा है, गंगी, गोदावरी, यमुना। गाएं आनंदसे दौडने लगी हैं। देख तो, गायें उस वृक्षको घेर कर आनंदध्वनि कर रही हैं। मेरे लालाको निहार रही हैं। कैसा मनोहर दृश्य है यह! एक अपनी बात भी मैं बता दूं? यहांसे लालाको निहार रही हूं तब मुझे लगता है, मानो मैं भी पागल होकर लालाको मिलनेके लिए दौड रही हूं। जब लोकलज्जाका खयाल आता है तब रास्तेमें रुक कर सोचती हूं, हाय, मैं कहांसे कहां दौड आई?

ये गोपियां स्त्री और पुरुषका भेद भूल जाएगी तब उन्हें रासलीलामें प्रवेश मिलेगा। अभी लोकलज्जाका–देहाध्यासका क्षीण भान है। देहाध्यास मीट जाने पर रासलीलामें प्रविष्ट हो जाएंगी। देहाध्यासके नष्ट होने पर गोपीभाव प्राप्त होता है।

जब श्री कृष्ण गायोंको बुलाते हैं उस समय नदियोंको भ्रांति हो रही है कि उन्हींको बुलाया जा रहा है। वे बेचारी स्वयं तो जा नहीं सकती हैं सो तरंगरूपी हाथोंमें कमल पुष्प लेकर वेणुनादकी दिशामें फेंक कर भगवान्का अभिवादन करती हैं।

जड–चेतन सभी बंसीनादसे मोहित हैं। मुरलीकी मधुर ध्वनिसे आज समस्त सृष्टि आनंदमग्न हो गई है। श्यामकी उस मधुरी बंसीके सीतमकी बात कहें तो क्या कहें? ब्रह्मानंदसे ही सुनिए:—

ऐ श्याम तेरी बंसरीने क्या सीतम किया?
तनकी रहा न होश, मेरे मनको हर लिया—ऐ श्याम ...

बंसरीकी मधुर टेर सुनी प्रेम रस भरी,
व्रजनारी लोकलाज कामकाज तज दिया—ऐ श्याम...

नभमें चढे बिमान, खडे देवगण सुन,
मुनियोंका छूटा ध्यान, प्रेम भक्तिरस पिया—ऐ श्याम....

पशुओंने तजा घास, पक्षी मौन हो रहे,
यमुनाका रुका नीर, पवन थिर हो गया—ऐ श्याम ...

ऐसी बजाई बंसरी, सब लोक वश किया,
ब्रह्मानंद दरश दीजिए, अभी देर क्यों किया—ऐ श्याम....

नादब्रह्म और नामब्रह्मका ऐक्य होने पर रासलीला होती है।

वेणुगीत नादब्रह्मकी उपासना है। नाममें नामका लय हुए बिना नादब्रह्म नहीं हो पाता।

गोपियां कितनी तन्मय हो गई थीं ! वनमें हो रहा वेणुनाद वे घरमें रहते हुए भी सुन सकती हैं।

जब दृश्य, दर्शन और द्रष्टा एक हो जाते हैं तब दर्शनमें एकाग्रता, तन्मय हो पाती है।

ईश्वर तो रोज रोज बंसी बजा कर जीवको अपनी ओर बुलाते रहते हैं किंतु यह बधीर जीव सुनता ही नहीं है।

वृंदावनकी बातें और कृष्णकी कथा करते करते गोपियां अनायास समाधिस्थ हो गईं।

वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययु।

भा. १७-२१-२०

कृष्णक्रीडाओंके वर्णन करती हुई गोपियां श्री कृष्णमय हो गईं। उनके हृदयमें लीलाओंकी स्फुरणा होती रहतीं। उन्हें ध्यान, धारणा आदिकी जरूरत ही नहीं थी।

योगीजन नाक पकड कर प्राणायाम करके ब्रह्मदर्शन करनेका प्रयत्न करते हैं। फिर भी वे सफल नहीं होते हैं। किंतु वही ब्रह्मदर्शन गोपियोंको अनायास हो जाता है। गोपियां योगियोंसे भी श्रेष्ठ हैं।

जा आनंद योगी प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणासे जो आनंद मिलता है वही आनंद गोपियां अनायास पाती हैं। योगियों-सा कष्ट भी इन्हें सहना नहीं पडता है। सभी इन्द्रियोंको भक्तिरसका दान करती हुई गोपियां श्री कृष्णमें तन्मय हो गई हैं। इस लीलामें अनायास ही उनका निरोध हो पाता है। गोपियों द्वारा कष्टसाध्य ब्रह्मानंद गोपियोंको अनायास ही मिल जाता है।

गोपियोंकी समाधि दिव्य है वह तो प्रेम संन्यासिनी है। उन्होंने श्री कृष्णके लिए सांसारिक सुखोंका त्याग किया है। शुकदेवजी जैसे योगी भी इनकी कथा करते हैं। उन्हें लगता है कि वे संसार और वस्त्रोंका त्याग करके संन्यासी बने हैं जब कि वे तो संसारमें रह कर और साडियां पहन कर भी संन्यासिनी बनी हैं। शुकदेव इनकी लीलाका वर्णन करते हुए पागल हो गए हैं। यह गोपियोंकी नहीं, ज्ञानीकी, योगीकी कथा है।

ज्ञान और भक्ति बढाओगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा। ज्ञान और भक्ति बढानेसे क्या ? व्रजवासी गोवर्धन पर्वत पर गए थे। तुम भी वर्षमें एकाध महिनेकी छुट्टी लेकर पवित्र तीर्थमें वास करो। प्रवृत्तिको कम करके निवृत्त लो। ग्यारह महिने नौकरी-धंधा किया अब एक मास तापी-नर्मदा जैसी किसी भी पवित्र नदीके किनारे बस कर जप-ध्यान-कीर्तन करो। हर बरसमें एक महिना ठाकोरजीके लिए निवृत्त होकर तीर्थवास करो। सारा वर्ष घर ही में रहना अच्छा नहीं है। गृहस्थका घर भोगभूमि है, वहां छोटे-बडे पाप हो ही जाते हैं। ममता विसमता लाती है और विषमता पाप।

पंद्रह सौ विष्णुसहस्र पाठ करनेसे एक विष्णुयागका फल मिलता है। पवित्र तीर्थमें बस कर वही पाठ करो। सांसारिक प्रवृत्तियोंमें लगे रहने पर ठीक तरहसे भक्ति कर पाना असान नहीं है। घरमें तो भगवान्‌के साथ साथ स्त्री-संतान धन-संपत्तिकी भी पूजा होती रहती है। सो भक्ति पूर्णतः सफल नहीं हो पाती।

रासलीला भागवतका फल है। रासलीलामें पुरुष और नारीका नहीं, पूर्ण पुरुषोत्तम और शुद्ध जीवका मिलन है।

सभी इन्द्रियोंसे भक्तिरसका पान करता हुआ अपना स्त्रीत्व या पुरुषत्व भूला दे वही गोपी है। अपना पुरुषत्व या नारीत्व याद आता रहेगा तो गोपीभाव नहीं जागेगा। इस सर्वोच्च गोपीभावमें तो अपना देहभान, अपना नारीत्व या पुरुषत्वका विस्मरण करना है। यदि देह भान शेष होगा तो काम नष्ट नहीं होगा। काम भूलाए जाने पर ही गोपीभाव जागता है। परमात्माका इस प्रकार स्मरण करो कि अपना देहभान ही न रहे।

ज्ञानमार्गके अनुसार, अज्ञानके कारण भेदका आभास होता है जिसका नाश करना है। भक्तिमार्ग भेदका नाश करके अभेद सिद्ध करनेको कहता हैं। भक्त भक्तिके सहारे भेदका नाश करके श्री कृष्णके साथ एक हो जाता है।

वासनाका क्षय होने पर जीवन सुधरता है। पूतना–वासना और तृणावर्त–रजोगुणका नाश होने पर जीवन सात्त्विक होगा।

भक्तिरस सभी इन्द्रियोंको पुष्ट करता है। दावाग्नि शांत होने पर वेणुगीत सुना जा सकेगा। यह सब तैयारी रासमें जानेके लिए है।

ईश्वरका प्रत्यक्ष स्वरूप है नादब्रह्म। इसमें तन्मयता होने पर परब्रह्मकी प्राप्ति होगी।

वेणुगीतमें ब्रह्मचारिणी गोपियोंका रास है। यज्ञ पत्नीयोंके प्रसंगमें विवाहिता और गोवर्धन लीलामें वानप्रस्थान गोपियोंके साथ रास है।

वेणुनादमें नादब्रह्मकी उपासना करतीं हुई गोपियां तन्मय हो गईं। गोपियोंने कात्यायनी व्रत किया सो श्री कृष्णने उन्हें दिव्य वस्त्रोंका दान दिया।

एक बार गोप बालकोंको भूख लगी तो कनैयासे बात की। कनैयाने उनको यज्ञ कर रहे ब्राह्मणोंके पास भेजा। ब्राह्मणोंने कुछ भी नहीं दिया। किंतु ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने उन्हें भोजन कराया। यही है यज्ञ पत्नियोंके उद्धारकी संक्षिप्त कथा।

अन्नदान सर्वोत्तम दान है। भगवान् गरीबों और परम पवित्र ब्राह्मणोंके मुखसे भोजन करते हैं। सभीको यथाशक्ति भोजन कराओ।

अब आती है गोवर्धन लीला। गोवर्धन लीलाके पश्चात् आएगी रासलीला।

गोका अर्थ है ज्ञान और भक्ति। ज्ञान और भक्तिको वृद्धिगत करनेवाली लीला ही गोवर्धन लीला है। ज्ञान और भक्तिके बढनेसे देहाध्यास नष्ट होता है और जीवको रास–लीलामें प्रवेश मिल सकता है।

ज्ञान और भक्तिको बढानेके लिए क्या किया जाय? घर छोडना पडेगा। गोप–गोपियोंने घर छोड कर गिरिराज पर वास किया था। हमारा घर भोगभूमि होनेके कारण राग–द्वेष, अहोभाव–तिरस्कार, वासना आदि हमें घेरे रहते हैं। घरमें विषमता होती है और विषमता भी। भोगभूमिमें भक्ति कैसे बढ पाएगी? सात्विक भूमिमें ही भाक्तित बढ सकती है।

साधारण गृहस्थका घर विविध वासनाओंके सूक्ष्म परमाणुसे भरा हुआ होता है। ऐसा वातावरण भक्तिमें बाधक है। ऐसे वातावरणमें सारा बरस रह कर न तो भक्ति बढाई जा सकती है और न तो ज्ञान। सो एकाध मास किसी नीरव पवित्र स्थल पर जाकर, किसी पवित्र नदीके किनारे वास करके भक्ति और ज्ञानकी आराधना करना श्रेयस्कर है।

वैसा न हो सके तो घरको ही तीर्थ बनाओ। प्रवृत्ति छोडना तो अशक्य है किंतु उसे कुछ कम करके निवृत्ति बढाओ। प्रभुने जो भी दिया हो उससे संतुष्ट रहो। प्रवृत्तिकी अतिशयता न होनी चाहिए। प्रवृत्तिमें निवृत्तिका आनंद तो होना ही चाहिए। निवृत्तिका आनंद जीवको प्रवृत्तिके चिंतनकी ओर घसीट जाता है सो निश्चय करो कि निवृत्तिका आनंद न भी मिले तो भी प्रवृत्तिके विषयानंदको भोगना नहीं है। निवृत्तिके समय भजनानंद पाना है तो लौकिक सुखोंका विषयानंद छोडना ही होगा।

कूडेमेंसे अत्तरकी सुगंध कैसे मिलेगी? प्रवृत्तिमें नीरव और सात्त्विक आनंद कहां? प्रवृत्तिमयता छोडे विना भक्तिका उदय कैसे होगा?

गोका अर्थ इन्द्रिय भी है। इन्द्रियोंका संवर्धन त्यागसे होता है, भोगसे नहीं। भोगसे इन्द्रियां क्षीण होती हैं। भोगमार्गसे हटा कर उनको भक्तिमार्गमें ले जाना है। हां, उस समय इन्द्रादि देव वासनाकी बरसात कर देते हैं। मनुष्यकी भक्ति उनसे देखी नहीं जाती। प्रवृत्तिमार्ग छोड कर निवृत्तिकी ओर बढते समय विषय वासनाकी बरसात बाधा करने आ जाती है। सो निवृत्ति लेने पर भी निवृत्तिका सात्त्विक आनंद दुर्लभ-सा हो जाता है। इन्द्रियोंका देव इन्द्र प्रभुभजन करने जा रहे जीवको सताता है। उपनिषद्में भी कहा गया है। कि निवृत्ति लेकर प्रभुभक्ति करते हुए जीवको इन्द्र सताता रहता है। वह सोचता है कि उसके सर पर पांव रख कर, उसको कुचल कर यह जीव आगे बढ जाएगा। सो ध्यान, सत्कर्म, भक्ति आदिमें जीवकी अपेक्षा देव अधिक बाधक है। जीव सतत ध्यान करे तो स्वर्गके देवोंसे भी श्रेष्ठ हो जाता है। सो जब भी इन्द्र-इन्द्रियोंका अधिपति भक्तिमार्गमें विघ्न करने आए, गोवर्धननाथका आश्रय लेना।

गोवर्धनलीलाका बडा आनंद है। गोवर्धनलीला रासलीलाका उपोद्घात है। इसमें पूज्य और पूजक एक हो जाते हैं। पूज्य और पूजक जब तक एक न हो पाए तब तक आनंद नहीं आता। पूजा करनेवाले श्री कृष्णने गिरिराज पर आरोहण किया। वह तो अद्वैतका प्रथम सोपान है, रासलीलाका फल है।

गोवर्धनलीला ज्ञान और भक्तिको बढाती है। उनके बढनेसे रासलीलामें प्रवेश मिलता है। किंतु उस अवस्थामें इन्द्रिय वासनाकी बरसातसे बचना बहुत जरूरी है।

पूज्य और पूजक, सेव्य और सेवक एक हो जाते हैं तब सेवा भली भांति हो पाती है। परमात्माके समान पवित्र बने विना प्रभुपूजाका अधिकार नहीं मिलता। शास्त्रोंमे अंगन्यास, करन्यास आदि विधियां बताई गयी हैं। दीपावलीके दिन गोवर्धनपूजा की जाती है क्यों कि पीछले सभी दुःखोंको भूला कर वेरको मीटाना है। विरोध जब तक नहीं जाता, पूजा नहीं हो पाती।

गोवर्धन पूजाके समय कनैया सात बरसका था।

पूज्य और पूजक जब एक होते हैं तब रासफल मिलता है। इसी कारणसे तो रासलीला गोवर्धनलीलाके बाद आती है।

हर बरस नंदबाबा इन्द्रयाग करते थे। यज्ञकी तैयारी होने लगी तो कनैयाने पूछा, बाबा, यह सब क्यों हो रहा है? कौन-से देवके लिए और किस उद्देशसे यह यज्ञ किया जा रहा है?

नंदबाबा समझाने लगेः वर्षाका देव है इन्द्र। इंद्र बरसात बरसाओ, धान्य और घास उग सके और सभी जीव चैनसे जी सके। इन्द्र हमारे ईश्वर हैं। उनको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ कर रहे हैं हम।

कनैया किसी भी देवका न तो अपमान करते हैं और न तो उपेक्षा।

कनैयाने कहाः इन्द्रका यज्ञ करना तो ठीक है, किंतु उसे ईश्वर क्यों माना जाय? कोई भी व्यक्ति सौ यज्ञ करके इन्द्रपद पा सकता है। इन्द्रके इन्द्रको जानते हो?

नंदबाबाः– बेटे, कौन है वह?

कनैयाः– यह मेरा गोवर्धननाथ इन्द्रका इन्द्र है। वह चारों दिशाका देव है। पूर्वमें जगन्नाथजी, दक्षिणमें रामेश्वर, पश्चिममें द्वारिकानाथ और उत्तरमें बद्रिनाथ हैं। और इन चारोंके मध्यमें है गोवर्धननाथ। वह सबका स्वामी है अतः मध्यमें बेठा हुआ है। बाबा, उसीकी पूजा करो। कई बरससे तुम इन्द्रकी पूजा करते आए हो। किंतु उसका कभी दर्शन भी हुआ है क्या?

नंदबाबा.– नहीं तो।

कनैयाः– इतने बरसोंकी पूआके बाद भी वह दर्शन नहीं देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह अभिमानी है। जिस देवको कभी देखा तक नहीं है उसकी पूजा क्यों करते हो? यह गोवर्धन तो हमारा प्रत्यक्ष देव है। जो पर्वत दिखाई दे रहा है वह तो उसका आधिभौतिक स्वरूप है। उसका आधिदैविक स्वरूप तो और ही है, सूक्ष्म है। गोवर्धनाथ इस पर्वतमें सूक्ष्म रूपसे बसे हुए है। वह हम सभीके रक्षक हैं। मुझे कई बार दर्शन हुआ है। गोवर्धन-नाथ दीपककी जीवंत ज्योति हैं। तुम सब उन्हींकी पूजा करो। तुम सबको उनका दर्शन होगा।

इन्द्रिके अभिमानको मीटानेका श्री कृष्णने निश्चय किया है सो सबको समझा रहे हैं कि इन्द्रदेवके बदले गोवर्धननाथकी पूजा की जाय।

नंदबाबाः– गोवर्धननाथकी पूजाविधि हम जानते ही नहीं है सो पूजा करेंगे कैसे?

कनैयाः– बाबा, मैं जानता हूं। तुम चिंता न करो। गोवर्धनाथकी पूजाकी तैयारी करो। गरीबोंके लिए अन्नकूट करना है। गरीबों, गायों और सदाचारी ब्राह्मणोंकी पूजा ईश्वरकी पूजा है।

सभी घरमें खाने–पीनेकी वस्तु मंगाई गई। गायोंका जूलुस निकाला गया। जिसके घरसे खाद्यसाम्रगी नहीं आएगी उसके घरमें अन्नपूर्णा नहीं आएगी।

नंदबाबाः– तेरा ठाकोर भोजन करता हुआ मुझे दीखाई देगा क्या?

कनैयाः– हम सब देख सकेंगे।

व्रजवासियोंको अत्यंत आनंद हुआ। कनैयाने गोवर्धनपूजाके लिए दीवालीका दिन तय किया था। वे सब गाडियां भर भरके खाद्य सामग्री लेकर गोवर्धनके पास आए। सभी ब्राह्मणोंको भी आमंत्रण दिया गया था। ब्राह्मण वेदोच्चार करने लगे और कनैया अभिषेक। आज भगवान् कृष्ण पूजा कर रहे हैं। गोप बालकोंसे यमुनाजल मंगाया गया।

बालक थक गए पानी लाते लाते तो कहने लगेः– कनैया, जमुनाजी बडी दूर है और तेरा देव है बडा लंबा–चौडा। अभिषेकके लिए इतना सारा पानी हम कैसे ला सकेंगे?

कनैयाः– अरे मित्रो, मेरा यह गोवर्धननाथ तो बडा दयालु है। तुम चिंता न करो।

अब कनैया प्रार्थना करने लगाः– हे गोवर्धननाथ, मेरे मित्र थक गए हैं। गंगा–यमुना तो आपके चरण ही में है। कृपा करके किसीको प्रगट करो।

उसी समय गोवर्धनसे गंगाजी प्रकट हुई। इसे मानसी गंगा कहते हैं।

सभी बालक आनदसे उछलने लगे, नदी आई, नदी आई। कनैयाने समझाया कि यह कोई सामान्य नदी नहीं, गंगाजी हैं। गोवर्धनका अभिषेक पूर्ण हुआ तो शृंगार किया गया। व्रजवासी कहते हैं, अभिषेक दर्शनमें हमें वडा मजा आता है। यह ठाकोर तो हमें देख कर हंस रहा है।

व्रजवासी चदन लाए तो कनैयाने कहा, ठंडीकी ऋतु है सो चंदनसे तो मेरे भगवान्‌को कष्ट होगा। बालकोंने कुमकुमका तिलक करनेकी सोची।

कनैयाः– कुमकुम तिलक कर सकते हैं, किंतु वह कहीं नाकमें न चला जाय। नहीं तो छींक आएगी।

सेवा-पूजा करते समय मूर्तिको चेतन मानो, जड नहीं। मूर्तिमें साक्षात् परमात्मा हैं ऐसा मानो। अपने देहके प्रति जो प्रेम रखते हो वैसा ही प्रेम भगवान्‌के प्रति भी रखो।

प्रभु भी वडे मजाकिए हैं। कानाने अपना एक स्वरूप नंदबाबाके पास रखा और दूसरेसे गिरिराजमें प्रवेश किया।

सब कहने लगेः कनैया, यह पर्वत तो सांस ले रहा है!

भगवान्‌के तीन स्वरूप हैंः– आध्यात्मिक, आधिदैवीक और भौतिक।

ठाकोरजीने दहीका तिलक किया। दही नाक या मुंहमें चला जाय तो भी कुछ हरकत नहीं होगी।

कनैया, अब हम ठाकोरजीका चावलसे अभिवादन करें।

कनैयाः– नहीं, नहीं, चावल कहीं ठाकोरजीको लग गए तो?

तो फिर हम क्या करें?

कनैयाः– मोतीसे पूजा करो। यदि प्रेमसे मोतीसे अभिवादन करोगे तो तुम्हारा घर मोतियोंसे भर जाएगा।

भगवान्‌का एक स्वरूप चतुर्भुज भी है। वह आधिभौतिक स्वरूप है।

कनैया आज अपनेको ही प्रणाम कर रहा है।

बाबा, यह हैं साक्षात् परमात्मा।

सब पूछने लगे, कनैया, अब हमें क्या करना है? तो कनैयाने कहा, मेरे प्रभुको भूख लगी है, भोग लगाओ।

भगवान्‌को भोग लगाए विना कभी न खाना। भोग न लगानेसे वे तो भूखे नहीं रह जायेंगे किंतु कभी तुम्हें भूखे रहना भी पडे, इस जन्ममें या किसी भी जन्ममें।

व्रजवासीः– क्या गोवर्धननाथ भी भूखे होते हैं? क्या वे सचमुच खायेंगे?

कनैयाः– हां, मेरा नाथ तो दीपककी ज्योति-सा जीवंत है, प्रत्यक्ष है। वे हमारे सामने ही खायेंगे।

सभी खाद्य सामग्री प्रकोष्ठके आकारमें रखी गई। ऊपर तुलसीदल भी अर्पण किया गया।

हे गोवर्धननाथ, आपको तो कौन खिला सकता है ? आप तो समग्र जगत्के अन्नदाता हैं । हमारी भावना है, प्रार्थना है कि आपको भोजन करते हुए निहारें ।

ठाकोरजी थाली उठा कर खाने लगे । गोपबालक आनंदसे नाचने लगेः– लाला, यह ठाकोरजी तो सचमुच खा रहे हैं ।

सभी बोल उठेः– कनैयाके ठाकोरजी तो सचमुच दीपककी ज्योतिके समान जीवंत और प्रत्यक्ष हैं ।

गोवर्धननाथने खाना चालु ही रखा तो गोपबाल चिंतीत होने लगेः– लाला, ये तो लगता है, सब कुछ खा जायेंगे । लंबे अरसेसे भूखे लगते हैं । हमारे लिए भी कुछ रख छोडेंगे या नहीं ? तू तो कभी अकेले नहीं खाता है । और ये तो अकेले ही खाए जा रहे हैं । प्रसाद भी नहीं मिलेगा क्या ?

कनैयाः– मेरे ठाकोरजी जितना खायेंगे उतना ही हमें भी देंगे । देखो, गोवर्धननाथके पास लक्ष्मीजी आ गई हैं । वे जिसके घरका भोजन करते हैं उसके घर महालक्ष्मीजीकी कृपा होती है ।

गोवर्धननाथकी पूजा और आरतीके बाद सभी व्रजवासी भोजन करने बैठ गए । छोटा कनैया परोस रहा है और सभीको आग्रह कर करके खिला रहा है ।

गोपबाल कहते हैंः– आज तो इतना अच्छा भोजन है कि एकके तीन–चार पेट हो जांय तो मजा आ जाये ।

कनैयाः– चाहे जितना खाओ, किंतु बगाड मत करना । अन्न तो ब्रह्म है । जो उच्छिष्ट खाएगा वह तुम्हारा पुण्य भी खा जाएगा । प्रसादका अपमान करोगे तो गोवर्धननाथ क्रोधित हो जायेंगे ।

अन्नका कभी अनादर न करो । भीखमंगोंको भी झूठा अन्न न दिया जाय । भीखमंगा है तो क्या ? वह भी ईश्वर ही का तो अंश है ।

सभीको प्रसाद दिया गया । सभीने रात्रिके समय तलहटीमें मुकाम किया ।

इधर नारदजी इन्द्रके पास आएः– नारायण, नारायण । उस गोपालके बच्चेने तेरा अपमान किया है । तेरी पूजा करानेके बदले गोवर्धननाथकी पूजा करवाई ।

इन्द्रने कोपायमान होकर बारहों मेघोंको आज्ञा दीः– उस गोपालके बच्चेने मेरा अपमान किया है । व्रज पर टूट पडो और सभीका नाश कर दो ।

मेघोंने व्रजमें हाहाकार मचा दिया । कार्तिक मासमें इतनी भारी वर्षा कभी नहीं होती । सभी भयभीत हो गए । नंदजी भी व्याकुल हो गए ।

कनैया कहने लगाः– मेरे प्रभु गोवर्धननाथ सभीकी रक्षा करेंगे । उनमें विश्वास रखो । उन्होंने मुझसे स्वप्नमें कहा है कि वे मेरी पूजासे प्रसन्न हुए हैं । सात दिनों तक वर्षा होती रहेगी । उसके बाद उनकी शरणमें जानेसे वे हमारी रक्षा करेंगे ।

मैं भाररहित होकर तेरी उंगली पर खडा रह कर सभीकी रक्षा करूंगा ।

लाला, ऐसी बात है ? तो तो जल्दी उठा गोवर्धनको ।

कनैयाः– मैं अकेला कैसे उठा पाऊंगा ? तुम सब भी मेरी सहाय करना।

गोवर्धननाथ हल्के फूलसे हो गए और कनैयाकी उंगली पर खडे हो गए।

श्री गिरिराजधारीकी जय।

परम आश्चर्य हुआ है। व्रजवासी दर्शनमें तृप्ति ही नहीं पा रहे हैं।

सात दिनों तक मूशलधार वर्षा होती रही। गोपालोंने सोचा कि कनैया अकेला थक जाएगा। उन्होंने अपनी लकडीका आधार दिया। कनैया, हमने अपनी लकडी पर गोवर्धनको उठा लिया है। तू थक गया होगा, हटा ले अपनी उंगली।

कनैयाः– तुम्हारी लकडियों पर खडा है ? अच्छा, तो मैं उंगली हटा लेता हूं।

ज्यों ही कनैयाने उंगली हटाई पर्वतका भार असह्य हो गया। गोपाल पुकार उठेः– अरे काना, यह तो नीचेकी ओर धंस रहा है। जल्दी आधार दे।

आधार लेना ही पडे तो केवल ईश्वरका लो, किसी औरका नहीं।

जिसे जो चाहिए, गोवर्धननाथ उसे वही देते हैं।

कनैया अलौकीक शक्तिका दर्शन करा रहा है। वह बंसी बजाने लगा तो गोवर्धनाथ डोलने लगे। सभीको अतिशय आनंद हुआ।

गिरिराजधारीका स्वरूप ऐसा तो दिव्य था कि व्रजवासी सात दिनों तक देहधर्म भूल गए, भूख-प्यास भी भूल गए।

इस प्रकार सात दिनों तक भगवान् श्री कृष्णने गोवर्धन पर्वतके तले सभी व्रजावासियों और गायों आदिकी रक्षा की।

अब इन्द्रको कनैयाके वास्तविक स्वरूपका भान हुआ। यह तो हैं साक्षात् परमात्मा। उसका अभिमान हवा हो गया। वह प्रार्थना करने लगा, मेरी भूल हो गई। नाथ, मुझे क्षमा करें। उसने मेघोंको भी रुक जानेकी आज्ञा दी।

सभी व्रजवासी बाहर आए और व्रजमें गए। इन्द्रने श्री कृष्णका दूधसे अभिषेक किया। उस दूधको जहां इकठ्ठा किया गया था उसे सुरभिकुंड कहते हैं।

कुछ लोगोंको आशंका हुई कि यह कनैया शायद ईश्वर है। एक सभा–सी हुई और चर्चा चल पडी। कहां यह सात बरसका लडका और कहां वह भारी भरकम गोवर्धन पर्वत ? यह नंदजीका ही पुत्र है या किसीका उठा लाया गया है ? हम नंदजीको बुलाकर उन्हींसे पूछें।

नंद बाबा आए तो पूछा गयाः– यह लडका किसका है ?

नंदबाबाः– यह मेरा ही पुत्र है। गर्गाचार्यने बताया था कि कनैयामें नारायण जैसे गुण हैं।

यशोदाने वह चर्चा सुनी तो कनैयासे पूछाः– तू किसका है रे ?

कनैयाः– तेरा ही तो हूं मैं।

यशोदाः– लोगोंका कहना है कि मैं और तेरे पिताजी गोरे हैं फिर भी तू काला क्यों है ?

कनैयाः– मा, जन्मके समय तो मैं गोरा ही था किंतु तेरी भूलके कारण मैं काला हो गया। मेरा जब जन्म हुआ था तब बडा अंधेरा छाया हुआ था और सभी नींदमें डूबे हुए थे। मैं अंधेरेमें सारी रात करवटें बदलता रहा सो अंधेरा मुझसे चीमट गया और मैं काला बन गया।

भोली यशोदाने कनैयाकी बात सच्ची मानी। बारह बजे तक मैं जाग रही थी और उसके बाद न जाने क्या हुआ था। मेरी ही भूलके कारण कनैया काला हो गया।

एकनाथ महाराज और ही कारण बताते हैं। मनुष्यका कलेजा काला है। क्यों कि उसमें काला काम रहता है। जो बार बार श्री कृष्णकीर्तन, ध्यान, धारणा, स्मरण, चिंतन करनेवालेकी कालिमा कनैया खींच लेता है। वैष्णवोंके हृदयोंको उज्ज्वल करते करते कनैया काला हो गया है।

विषयोंके बारमें ही जो सोचता रहता है उसका अंतर काला हो जाता है। कनैया उसे उज्ज्वल करनेमें लगा है।

गोपियोंका कहना है, हम आंखोंमें काजल लगाती हैं। कनैया हमारी आंखोंमें बसा रहता है सो काजलसे काला हो गया है।

महाभारतके उद्योग पर्वमें एक प्रसंग है। विष्टिके हेतु आए हुए कृष्णसे दुर्योधनने कहाः– तेरे माता–पिता कौन है वह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। नंद–यशोदा तेरे माता–पिता हैं तो तू काला क्यों है?

श्री कृष्णः– मै कौरवोंका काल बन कर आया हूं सो काला हूं।

किंतु दुर्योधनसे ऐसी बात करनेवाले कृष्ण राधासे कुछ और ही कहते हैं। लीला–निकुंजमें दोनों रमण कर रहे थे। राधाने प्यारसे पूछाः नाथ, वैसे तो तुम सुंदर हो, किंतु श्याम क्यों हो?

श्री कृष्णः– वैसे तो मैं गौर ही था किंतु तेरी शोभाको वृद्धिगत करनेके लिए श्याम हुआ हूं। तेरा सौंदर्य बढेगा तो लोग तेरी प्रशंसा करेंगे। यदि हम दोनों ही गोरे होते तो तेरी प्रशंसा कौन करता?

इन्द्रादि देव श्री कृष्णकी पूजा करने आए। आपके वास्तविक स्वरुपको हम जान न सके, पहचान न सके। हमें क्षमा करें। सुरभिने कनैयाका अभिषेक किया।

गोवर्धनलीला रहस्यमयी है। इस लीलाके बाद रासलीला आती है। गोवर्धनलीला ज्ञान और भक्ति बढाती है। जब ईश्वरके व्यापक स्वरूपका अनुभव हो पाता है तभी ज्ञान और भक्ति बढते हैं।

गोवर्धनलीलामें पशु–पंछी सहित सभीको प्रसाद दिया गया।

ईश्वर जगत्में व्याप्त है सारा जगत् ईश्वरमें समाहित।

" शिवः केवलोऽहम्। " यह तो वेदांतकी चरमसीमा है। किंतु आरंभमें तो सभीमें ईश्वरको निहारो।

उपासनाके दो भेद हैं : व्यक्त और अव्यक्त।

प्रत्येकमें ईश्वरको देखोगे तो वासना नहीं जागेगी। सुंदरीको मातृदृष्टिसे देखनेसे कामना कैसे जाग सकती है? इसी प्रकार सभीके प्रति ईश्वरभावसे देखो।

जड-चेतन सभीमें कृष्णका अंश है ऐसा अनुभव करानेके हेतु भी यह गोवर्धनलीला रची गई थी।

इन्द्रियां जब ज्ञान और भक्तिकी ओर बढने लगती हैं, वासना बाधक बन कर आ खडी होती हैं। दूध उबलने लगता है तो उस पर पानीके छींटे डालनेसे शांत हो जाता है। वासनाके वेगको हटानेके लिए श्री कृष्णका आश्रय लो। भगवताश्रय कामवासनाके मारको सहनेकी शक्ति देता है।

भगवान्‌ने हाथकी सबसे छोटी उंगली पर गोवर्धन धारण किया था। यह उंगली सत्त्वगुणका प्रतीक है। इन्द्रियोंकी वासना-वर्षाके समय सत्त्वगुणका आश्रय लो, सद्‌ग्रंथका सेवन करो। सद्‌ग्रंथ और संतोंका संग वासनासे लडनेकी शक्ति देगा।

जीव लकडीका आधार लेता है किंतु प्रभुका आधार ही जीवन सफल बनाता है। संसार-गोवर्धन प्रभुके सहारे है। भगवान्‌का आधार होनेके कारण आनंद ही आनंद है। उनका सहारा न हो तो क्षण मात्रमें लाख खाक हो जाते हैं।

दुःखमें, विपत्तिमें मात्र प्रभुका ही आश्रय लो, सहारा लो। गोपालोंने भी गोवर्धन-नाथका ही आशरा लिया था।

शरणमें जाने पर प्रभु दुःखमेंसे बचा कर रक्षा करते हैं। सभी व्रजभक्त अन्य देवोंका आशरा छोड कर श्री कृष्णकी शरणमें गए तो उनके सारे सुख-दुःख भगवान्‌ने उठा लिए। गिरिराजधरनकी लीलामें यही भाव है।

गीतामें भी भगवान्‌ने कहा हैः- हे अर्जुन, जो अनन्य प्रेमसे मेरा भजन करता है, सर्वस्व समर्पित करके मेरी भक्ति करता है उन सभी जीवोंको सांसारिक और भौतिक दुःखोंमेंसे मुक्त करनेका दायित्व मैं स्वीकारता हूं। उनके योगक्षेमका मैं वहन करता हूं।

ज्ञान और भक्ति बढने पर रासलीलामें प्रवेश मिलता है। उस समय इन्द्रियां वासनाकी बरसात बरसाने चली आयेंगी।

सभी प्रयत्नोंके अंतमें तो ईश्वरकी कृपा मांगनी ही पडती है। गोवर्धनलीलामें अद्‌भुत तत्त्व है। उसमें पूज्य और पूजक एक बनते हैं, सेव्य और सेवक एक हो जाते हैं।

कहा भी तो है- " शिवो भूत्वा शिवं यजेत्। " शिव बन कर शिवकी पूजा करो।

ईश्वर जैसे बननेका, ईश्वरके साथ एक होनेका अर्थ है अपनी इच्छाको उनकी इच्छामें मिला देना। जब जीव अपनी इच्छाको भगवान्‌की इच्छामें मिला देता है तब वह भक्तिमार्गमें आगे बढता है। सतत ब्रह्मसंबंध बनाए रखोगे तो तुम ब्रह्मरूप हो सकोगे।

गोवर्धनलीलामें पूजा करनेवाले भी कृष्ण हैं और जिसकी पूजा हो रही है उस गोवर्धनमें भी वही हैं।

गोवर्धनलीलामें सेवक-सेव्य, भक्त-भगवान्‌की तद्रुपता बताई गई है। कन्हैया गोवर्धनकी अर्थात् स्वयंकी पूजा कर रहा है। जीव और ईश्वर यहां एक हुए हैं। यही " सः अहम्-सोऽहम् " भाव है।

हम भी गिरिराजधारीको वंदन करके स्तुति करें—

भक्ताभिलाषी चरितानुसारी दुग्धादि चौर्येण यशोविसारी ।
कुमारतानन्दित घोषनारी मम प्रभुः श्री गिरिराजधारी ॥

भक्त इच्छानुसारी, बाललीलामें दुग्धादि चोर कर यश विस्तारनेवाले, व्रजवनिता-रंजक ऐसे गिरिराजधारी श्री कृष्ण मेरे प्रभु हैं ।

वृंदावने गोधन वृंदचारी, मम प्रभुः श्री गिरिराजधारी ।

गोवर्धनलीलासे गोपियोंको विश्वास हो गया कि कनैया तो ईश्वर है। तो उनसे एकाकार होनेकी भावना जागी और रासलीला हुई ।

भक्तिरसमें इन्द्रियोंको सराबोर करोगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा ।

श्री कृष्णकी देवाधि देवत्व सिद्ध करनेके हेतु ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदिका पराभव किया गया । ब्रह्माजीको सृष्टिके सर्जक होनेका अभिमान था । भगवान्‌ने अनेक स्वरूप धारण करके, अपने उन स्वरूपोंसे स्वयं क्रीडालीला करके ब्रह्माजीके अभिमानको दूर कर दिया। इन्द्रका स्वर्गके राजा होनेका अभिमान गोवर्धनलीलासे दूर किया । इन्द्रने मान लिया कि उसे स्वर्गके सिंहासन पर कृष्ण ही ने बिठलाया है ।

श्री कृष्ण अवतार नहीं, अवतारी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं ।

२८ वे अध्यायमें वरुणदेवके पराभवकी कथा रास पंचाध्यायीसे शुरू होती है । रास-लीलाके पहले आई हुई इस कथाकी अगत्य विशिष्ट है ।

ये व्रजवासी गौसेवा, एकादशी व्रत, कृष्णकीर्तन आदि करते थे सो श्री कृष्ण मथुरासे गोकुल आए । व्रजवासी तो भोले थे और बहुत पढे-लिखे भी नहीं थे। वे योग-विद्यासे भी अज्ञात थे । फिर भी उनके भोलेपनके कारण उनको भगवान् मिले ।

व्रजवासी एकादशी व्रत विधिपूर्वक करते थे अर्थात् उन्होंने कृष्णकी सच्ची सेवा की और आनंद दिया ।

शास्त्रने एकादशी व्रत विधिपूर्वक करनेको कहा है । उस दिन सारा दिन प्रभुसेवामें बीताओ और सारी रात जागते रह कर कृष्णकीर्तन करते रहो। कमसे कम रातके बारह बजे तक तो कृष्णकीर्तन अवश्य किया जाय । परमात्माके चरणमें रहना ही तो एकादशी है ।

परमात्माके चरणोंमें शरीरसे नहीं, मनसे रहना है ।

एकादशीके दिन मन श्री कृष्णके सिवाय अन्य किसी भी विषयकी ओर नहीं जाना चाहिए ।

व्रजवासी एकादशीके दिन रात्रिको जागरण करते थे । नंदजी मध्यरात्रिके समय यमुनास्नान करने गए ।

रात्रिके ग्यारहसे साढे तीन बजे तकका समय भोजन, स्नान आदिके लिए निषिद्ध माना गया है । आज-कल तो लोग रसोई बना कर फील्म देखने जाते हैं और रातके बारह बजे खाने बैठते हैं । यह तो अगले जन्ममें राक्षस योनिमें जानेकी तैयारी है । रात्रिको ग्यारह बजे राक्षस तीर्थोंमें प्रवेश करते हैं सो स्नानादिकी मना ही की गई है ।

नंदजीने सोचा था कि मध्यरात्रि पूरी हो चुकी है और प्रातःकाल हो गया है। सो उन्होंने तो स्नान करनेके लिए जलमें गोता लगाया। आसुरी समयमें स्नान करते हुए देखकर वरुणदेवके सेवक नंदजीको पकड कर वरुणलोकमें ले गए। वहांसे उन्हें श्री कृष्ण छुडा लाए।

अब इस कथाका रहस्य भी देखें। रासलीलाके पहले आई है यह वरुणदेव पराजयकी कथा।

वरुणदेव जीभके स्वामी हैं और उनके सेवक-दूत हैं षड्रस। जब तक रसना पर काबु नहीं हो पाएगा तब तक रासलीलामें प्रवेश नहीं मिल पाता। षड्रस विषयीको रासरस मिलता है।

नंद है जीव। जीव जब चित्तनदीमें स्नानके लिए गोता लगाता है तब वरुणसेवक-षड्रस उसे सतानेको उपस्थित हो जाते हैं।

जब तक जीव लौकिक रसके आधीन है, वह तब तक अलौकिक रस पा नहीं सकता। वैसा जीव भक्तिरस, प्रेमरस पा नहीं सकता।

आनंद किसी वस्तुमें नहीं, मनकी एकाग्रतामें है। आनंद ईश्वरसे तदाकार होनेमें है। षड्रस पर विजय पानेके लिए भक्तिरसकी साधना करो। भक्ति करना सरल नहीं है। जिसे भक्ति करनी हो उसे मन और जीभको वशमें करना होगा। लुली (जीभ) का दास भक्ति कैसे कर पाएगा? महा प्रभुजीने सुबोधिनीमें कहा है, ठाकोरजीकी सेवासे अनुराग करो और शरीर-भोगके प्रति वितराग। जीभको नहीं, जीवको समझाना है। मनुष्यका बहुत-सा समय इस जीभके लालन-पालनमें बीत जाता है। काल निकट आ रहा है उसका भी तो विचार करो।

अब चीरहरण और रासलीला आ रही है।

गोपियोंके दो भेद हैं:- नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। साधनसिद्धा गोपीके कई भेद हैं:- श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, संकीर्णरूपा, अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा आदि।

श्रुतियां ईश्वरका वर्णन करतीं करती थक गई फिर भी उनका अनुभव नहीं हो पाया। ईश्वर केवल वाणीका विषय नहीं हैं. जो वेदाभिमानी देव ब्रह्मसंबंध सिद्ध करके, ब्रह्मसाक्षात्कारके हेतु गोकुलमें प्रगट हुए वही हैं श्रुतिरूपा गोपियां।

तपस्वी होने पर भी ऋषियोंका काम बना रहा और ईश्वरका अनुभव न हो पाया।

दर्शन और अनुभवमें अंतर है। दर्शनमें दृश्य और द्रष्टाका भेद है। अनुभवमें वे दोनों एक हो जाते हैं। उसमें पूर्णतः अद्वैत है। सो बुद्धिगत कामका नाश करके ब्रह्मसंबंध सिद्ध करके, ब्रह्मात्मक रूप मुक्तिका अनुभव करनेके लिए जो ऋषि गोपी बन कर आए थे उन्हें ऋषिरूपा कहते हैं।

संकीर्ण मंडलमें प्रभुके मनोहर रूपको देख कर, मनमें कामभाव जागृत होनेसे जिन स्त्रियोंने गोपीका रूप लिया वे कामरूपा हैं। उदाहरण- सुर्पणखा।

विवाहके बाद संसार सुखोंका उपभोग करते हुए अरुचि होने और प्रभुप्रति प्रेम-भाव हो जाने पर जिन पुरुषों या स्त्रियोंने गोपीका रूप लिया उन्हें अन्यपूर्वा कहा जाता है। तुलसीदासके वैराग्यकी कथा बडी प्रसिद्ध है।

वस्तुगत आसक्तिको प्रभुगत आसक्तिका रूप दिया जाय तो वस्तुकी आसक्ति छूट जाती है। अनेक वस्तुओंके प्रति आसक्तिका होना व्यावहारिक दृष्टिसे अशक्य है।

तुलसीदास केवल पत्नीकी ओर ही आसक्त थे। संसारकी अन्य सभी नारियां उनके लिए माता समान थीं। पत्नी रत्नावलीकी एक ही टकोरने उनकी आसक्तिको प्रभुभक्तिमें बदल दिया। कामासक्ति ईश्वरासक्तिमें परिवर्तीत हो गई। बहुतोंको तो रोज थप्पड पडती है फिर भी सुधर नहीं पाते हैं।

अनन्यपूर्णाः– जन्मसिद्ध पूर्ण वैरागी। शुकदेव, मीरां आदि।

एक बार व्रजकी कुमारिकायें यमुना किनारे नग्नावस्थामें स्नान कर रही थीं तो उनके वस्त्र उठा कर श्री कृष्ण कदंबके वृक्ष पर चढ गए। और कुमारिकाओंसे कहने लगे, जिसे वस्त्र पाना है वह यहां आ कर ले जा सकती है।

कृष्णने कहाः– नग्नावस्थामें स्नान करके तुमने जलदेवका अपराध किया है। सो दो हाथ जोड कर वंदन करके वस्त्र ले जाओ।

उन कुमारिकाओंने वैसा किया तो उनके वस्त्र कृष्णने लौटा दिए।

इस चीरहरण लीलामें भी एक रहस्य है। कुमारियोंके मनमें ऐसी भावना थी कि वे नारी हैं। ऐसा भाव अहंकारका द्योतक है। उनका वह अहम्‌भाव दूर करनेके लिए श्री कृष्ण वैसा व्यवहार किया। इस लीलामें अहकारका परदा हटा कर प्रभुको सर्वस्व अर्पण करनेका उद्देश है।

भगवान् कहते है.– तुम ‘ अपनापन ’, स्वत्व भूला कर मेरे पास आओ। संसार शून्य और सांसारिक सस्कार शून्य हो कर, निरावरित हो कर मेरे पास आओ।

द्वैतका आवरण दूर करोगे तो भगवान् मिलेंगे।

शरीरको वस्त्र छुपाता है और आत्माको वासना। भगवान् तुम्हारे पास ही हैं किंतु तुम देख नहीं पाते हो। वासनाका परदा फटते ही भगवान् दीखाई देंगे।

आत्मा और परमात्माके बीच वासनाका परदा है सो भगवान्‌का अनुभव नहीं हो पाता है। आत्मा अंदर है और ऊपर है अज्ञान और वासनाका परदा। अज्ञान और वासनाके उस आवरणको चिर कर भगवान्‌से मिलने जाना है। सिद्ध सद्‌गुरुकी या परमात्माकी कृपासे बुद्धिगत् वासना दूर होती है। बुद्धिमें रहा हुआ काम कृष्ण–मिलनमें बाधक है।

अज्ञान–वासना–वृत्तियोंके आवरणका नष्ट होना ही चीरहरण लीला है। और आवरणनाशके पश्चात् जीवके आत्माका प्रभुसे मिलन है रासलीला। इसी कारणसे रासलीला चीरणहरणके बाद आती है।

कामवासनाके नष्ट होने पर ईश्वरके साथ अद्वैत हो जाता है।

भगवान् कभी लौकिक वस्त्रोंकी चोरी नहीं करते हैं। वे तो बुद्धिगत अज्ञान, काम-वासनाकी चोरी करते हैं?

कनैया क्या गोपियोंको नग्नावस्थामें देखना चाहता था? सोचो तो। श्री कृष्ण तो सर्वव्यापी हैं सो जलमें हैं। वे तो गोपियोंसे मिले हुए ही थे। किंतु गोपियां अज्ञान और वासनासे आवृत्त होनेके कारण श्री कृष्णका अनुभव कर नहीं पाती थीं। सो उस बुद्धिगत अज्ञान और वासनारूप वस्त्रोंको भगवान् उठा ले गए। वैसी प्रभु तय करते हैं कि जब जीव उनका हो जाता है।

भगवान् कहते हैं:—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ॥

जिसने अपनी बुद्धि मुझमें स्थापित की है उनके भोगसंकल्प सांसारिक विषयभोगके लिए नहीं होते। वे संकल्प मोक्षदायी होते हैं। भूंजे हुए धान्यका बीजतत्त्व नष्ट हो जाता है और कभी अंकुरित नहीं हो पाता। इसी प्रकार जिसके बुद्धिमेंसे कामवासनाका अंकुर उजड गया है वहां वह फिरसे अंकुरित नहीं हो पाएगा।

प्रभुने गोपियोंसे कहाः– हे व्रजकुमारिकाओ! मैं जानता हूं तुम्हारी कामवासना नष्ट हो जानेके कारण तुम्हारे हृदय शुद्ध हो गए हैं। फिर तुम्हें मेरा ध्यान अब भी धरते रहना है। ऐसा करनेसे तुम्हारे मनमें समाया हुआ सूक्ष्म मल नष्ट होगा और मुझसे मिलन होगा। शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ रमण कर पाओगी।

शरद् ऋतुकी रात्रि निर्मल होती है। तुम भी हर तरहसे शुद्ध, निर्मल, शुभ्र हो पाओगे तो ईश्वरके साथ क्रीडा कर पाओगे, जीव ईश्वरसे मिल सकेगा। तभी रासलीला होगी।

जीव–ईश्वर मिलनके लिए पहले तो पूतना-वासनाका नाश किया जाय।

अविद्या नष्ट होनेसे जीवनकी गाडी राह पर आने लगती है और शकटासुरका नाश होता है।

जीवन सही रास्ते पर चलने लगा तो तृणावर्त–रजोगुण नष्ट हो गया और सत्त्वगुण बढने लगा।

रजोगुण मीट चुका तो कनैयाने माखन–मनकी चोरी की और जीवन सात्त्विक बना।

जीवन सात्त्विक होने पर आसक्तिकी मटकी फूट जाती है। दहीकी मटकी–संसारासक्तिकी मटकी कनैयाने फोड दी।

संसारासक्ति नष्ट हुई तो प्रभु जीवके पाशसे बंध गए। यही है दामोदर लीला।

प्रभु बंध चुके तो दंभ–बकासुर और पापताप–अघासुरका वध हुआ।

सांसारिक ताप नष्ट हुआ तो दावाग्नि नष्ट हुई, शांत हो गई। अतः इन्द्रियां शुद्ध हुई, अंतःकरणकी वासनाका क्षय हुआ। यही है नागदमन लीला और प्रलंबासुरवधकी कथा।

जीव ईश्वरसे मिलने योग्य हो पाया तो कृष्णकी मधुर मुरलीकी मधुरिम तान सुन सका।

वेणुगीत गाया गया अर्थात् नादब्रह्मकी उपासना हुई।

फिर आई गोवर्धन लीला। गो–इन्द्रियोंका संवर्धन हुआ, पुष्टि हुई तो भक्ति रस उत्पन्न हुआ। इन्द्रियोंकी पुष्टि होने पर षड्रसका और वरुणदेवका पराभव हुआ।

षड्रसका पराभव होनेसे जीव शुद्ध होनेको आया। तो चीर हरण लीला आई, अज्ञान और वासनाके आच्छादान भगवानने मीटा दिए।

चीरहरणलीला-वाह्यावरण, उपाधि नष्ट हुई तो रास लीला हुई, जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देहको ढंकता है उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्माको ढंक देते हैं और परमात्माको दूर रखते हैं। जब यह अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर नहीं हो पाता तब तक जीव शिवसे मिल नहीं पाता।

वस्त्राहरणलीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उडा ले जानेकी लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु मिलनमें बाधक है। इन्द्रियोंके कामको हटाना सरल है किंतु बुद्धिगत कामको देशनिकाल करना वडा कठिन है।

प्राण और प्रकृति एक साथ जाते हैं। इस प्रकृति पर विजय पाना टेढी खीर है।

योगियोंका शारीरिक काम तो भाग जाता है किंतु बौद्धिक काम कई बार ज्यों का त्यों बना रहता है।

वृद्धावस्थामें इन्द्रियां शिथिल हो जाने पर शारीरिक काम तो चला जाता है किंतु बौद्धिक बना रहता है।

ऋषि भी कामके आगे हार मान गए थे। सो उन्होंने कामभावको श्री कृष्णार्पण करके निष्काम होनेका विचार किया और गोपी बन कर गोकुलमें आ पहुंचे।

अब आ रही है रास लीला।

महाप्रभुजीने दशम स्कंधको गोवर्धननाथका हृदय कहा है और रासलीलाको प्राण। हृदयमें पंच प्राण होते हैं। रास पंचाध्यायी श्रीमद् भागवतके पंचप्राण हैं। इसे फल-प्रकरण भी कहते हैं। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि रास पंचाध्यायी निवृत्त धर्मका परम फल है।

शुकदेवजी सोचने लगे कि समाजमें रासलीला-श्रवणके अधिकारी कितने होंगे। जो अधिकारी नहीं होगा वह इस लीलामें काम ही देखेगा।

श्री राधाजी शुकदेवजीकी गुरु हैं। उन्होंने शुकदेवको ब्रह्मसंबंध कराया था। श्री राधाजीकी कृपाके विना रासलीलाका गूढ तत्त्व, रहस्य समझ पाना आसान नहीं है।

शुकदेवजी अपने पूर्वजन्ममें पोपट थे और लीलानिकुंजमें राधाका नाम रटते हुए उडते फिरते थे। उसके राधा नामके अखंड कीर्तनको सुन कर दयामूर्ति राधाजी वहां पधारीं। उन्होंने देखा तो एक पोपट उनके नामका जप कर रहा था। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और हथेली पर रख कर सहलाते हुए कहाः- " वत्स, कृष्णं वद, कृष्णं वद, राधेति मा वद।" कृष्ण ही तेरे सच्चे जनक है, उन्हींके नामका कीर्तन कर।

राधाजी इस प्रकार पोपटको मंत्रदीक्षा दे रही थीं कि श्री कृष्ण वहां पधारे।

श्री राधाजी आद्य, संयोजिका और आह्लादिका शक्ति है। बीछडे हुए जीवोंको वह श्री कृष्णसे मिला देती हैं। व्रजकी अधीश्वरी देवी श्री राधाजी ही है। तभी महात्मा वृंदावनमें राधे राधे करते रहते है। राधाजीकी कृपा होने पर जीव भगवान्‌के दर्शन पा सकता है। उनकी कृपा ही जीवको प्रभुसे मिलाती है।

शुकदेवजी पूर्वजन्ममें पोपट थे सो भागवतमें "शुकदेवजी उवाच" लिखनेके बदले "श्री शुक उवाच" लिखा है। श्री का अर्थ है राधा। "श्री शुक" में गुरु-शिष्य दोनोंका नाम समाया हुआ है।

भागवतमें अन्य किसी भी व्यक्तिके नामके आगे "श्री" शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है। ब्रह्मा उवाच, सनतकुमार उवाच, व्यास उवाच ऐसा ही लिखा गया है। व्यासजीके नामके आगे भी श्री विशेषण नहीं है।

केवल कृष्ण और शुकदेवके नामके आगे ही "श्री" विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भगवान् कृष्ण राधाजीके हृदयेश्वर है और शुकदेवजी कृपा पात्र शिष्य। अतः इन दोनोंके नामके आगे "श्री" विशेषण प्रयुक्त हुआ है।

राधाजीने श्री कृष्णको पोपट देते हुए कहा, यह पोपट मुझे बडा प्यारा लगता है।

अंतरंगमें राधाजी शुकदेवजीकी गुरु हैं। जो परमात्माके साथ संबंध जोड कर आता है वह महा प्रभु। उसका नाम प्रगट रूपसे कैसे लिया जाय? भागवतमें शुकदेवजीने राधाजीका प्रगट रूपसे नाम लिया नहीं है। राधाजीके नामकी भांति किसी गोपीका भी नाम नहीं बताया गया है। शुकदेवजी सारी रासलीला बडे विवेकसे की है। गोपी प्रेमकी बातें अधिकतर अप्रगट ही रखी हैं।

राजा परीक्षितको सात ही दिनोंमें मोक्ष देना है। राधे राधे करने लग जायं तो शुकदेवजी समाधिस्थ हो जायेंगे तो राजाका क्या होगा?

बातें, कथा, विवरण वियोगावस्थामें ही अधिक हो सकते हैं, पूर्ण संयोगावस्थामें नहीं।

यह तो कामरहित अंतरंग लीला है। ग्यारह वर्षके बालकके प्रति काम भाव कैसे जाग सकता है? सपत्नी मत्सर गोपियोंमें नहीं था। यह साधारण स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं था। यदि होता तो शुकदेवजी जैसे महायोगी इसका वर्णन ही नहीं करते।

ऐसी कल्पना ही न करो कि गोपी नामकी कोई स्त्री है। गोपी तो शुद्ध जीवका ही नाम है। शुद्ध हृदयका भाव, प्रेमभाव ही गोपी है। देहभान भूल कर, प्रत्येक इन्द्रियोंसे भक्तिरसका पान करनेवाला विशुद्ध जीव ही गोपी है।

साधारण जीव गोपीकी कथा करने या सुननेका अधिकारी नहीं है।

उपर नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा गोपियोंकी चर्चा की गई है।

कुछ ज्ञानी ब्रह्मरूप होना चाहते हैं। कुछ गोपियां ईश्वरके साथ एक होना नहीं चाहतीं। एक होंगी तो ईश्वरको रसा स्वादका अनुभव नहीं कर पायेंगी। जीव ईश्वरके साथ एक हो जाय तो उनके रसात्मक स्वरूपका अनुभव नहीं किया जा सकता।

ईश्वर रस स्वरूप होनेके कारण ज्ञानी पुरुष उसमें डूब जाते हैं। फिर भी वे रसात्मकताका अनुभव नहीं कर पाते है क्यों कि वे ईश्वरसे कुछ भिन्न नहीं रहते हैं। ईश्वरसे पृथक रहनेसे ही उनका रसानुभव किया जा सकता है।

नित्यसिद्धा गोपियां वे हैं जो कनैयाके साथ आई हुई हैं।

साधनसिद्धा गोपियोंके कई भेद हैं:—

(१) श्रुतिरूपाः– वेदके मंत्र गोपी बन कर आए हैं। वेदोंने ईश्वरका वर्णन तो अतिशय किया हैं फिर भी अनुभव नहीं हो पाया है। ईश्वर केवल वाणीका नहीं ध्यानका विषय है। ससारका विस्मरण हुए विना ईश्वरसे साक्षात्कार नहीं हो पाता। वे वेदाभिमानी देव गोकुलमें गोपी बन कर आए हैं।

(२) ऋषिरूपाः– जीवका सबसे बडा शत्रु है काम। ऋषियोंने बहुतेरा प्रयत्न किया फिर भी वह मर नहीं पाया।

तप करनेसे शरीर और इन्द्रियोंका काम तो चला जाता है किंतु मनमें बसा हुआ काम, बुद्धिगत काम जाता नहीं हैं। ब्रह्मसंबंध स्थापित किए बिना बुद्धिगत बना रहता है। उस कामको कृष्णार्पण करना है।

विश्वामित्र और पराशर जैसे शक्तिशाली ऋषि भी कामके आगे झूक गए। सूर्यको तिरोहित करनेवाले मुनि कामको दूर न कर सके। काम मर न पाया तो ऋषि थक-हार कर गोपी बन कर गोकुलमें आए। हम श्री कृष्णको काम अर्पण करके निष्कामी बनेंगे।

जो कामको मार सकता है, उसके लिए कृष्ण दूर नहीं है। काम तो अनंग है, वह जीवको, आत्मशक्तिको धीरे धीरे मारता है। सात्त्विक भोजनके विना वह नहीं मर पाएगा।

काम श्री कृष्णको दूषित नहीं कर सकता। श्री कृष्णकी चिंता करनेवालेको काम कुछ नहीं कर सकता तो स्वयं कृष्णका तो वह क्या बीगाड सकता है?

गर्भसंहितामें एक कथा है। एक वार श्रावण मासमें रासके समय भगवान् कृष्ण वडे विलंबसे आए तो गोपियोंने उनसे कारण पूछा। कृष्णने कहाः– मेरे गुरु मुनि दुर्वासा आए हैं। मैं उनके दर्शनार्थ गया था। गोपियोंको आश्चर्य हुआः– आपके गुरु? तो कृष्णने कहाः– हां, दुर्वासा मुनि मेरी ब्रह्मविद्याके गुरु हैं।

गोपियोंने सोचा, भगवानके गुरु कितने महान् होंगे! हम उन्हें भोजन करायेंगी। श्री कृष्णने कहा, मेरे गुरु भूख लगने पर दिनमें एक ही वार दुर्वारस पीते हैं, भोजन नहीं करते हैं। तुम्हारा प्रेम शुद्ध होगा तो वे आहार करेंगे।

गोपियोंने भांति भांतिके मिष्टान्न बनाए। अब दुर्वासाको बुला लायें। मुनिका आश्रम तो यमुनाके सामनेके किनारे पर था। बाढ आई हुई थी। करें तो क्या करें? उन्होंने श्री कृष्णसे पूछा तो उन्होंने कहाः– यमुनाजीसे कहना कि यदि श्री कृष्ण बालब्रह्मचारी और बालउपवासी हों तो हमें मार्ग दीजिए।

गोपियां तो जानती ही थीं कि कृष्ण दूसरोंको परमानंद देनेके लिए ही क्रीडा करते है। गोपियां अधिकारी थीं।

यमुनाजीने मार्ग दिया। गोपियां आश्रममें आई और दुर्वासासे भोजन करनेका आग्रह किया। दुर्वासाने कहाः– वैसे तो खानेकी कोई इच्छा ही नहीं है। फिर तुम्हारी इच्छा ही है तो मेरे मुंहमें ग्रास रखती जाओ। गोपियोंने जो कुछ खिलाया वह सब कुछ उनके पेटमें चला गया। गोपियोंने सोचा कि ऋषिको संतान होगी ही नहीं सो खाते समय याद न आई। उन्होंने दुर्वासाजीसे पूछाः– आपने भोजन तो भली भांति किया है न?

दुर्वासाः– नहीं तो, मैं नित्य उपवासी हूं। यदि मेरी बात जंचती नहीं है तो यमुनाजीसे कहना कि यदि दुर्वासा नित्य उपवासी हो तो वह हमें मार्ग दें। बिलकुल वैसा ही हुआ। गोपियोंने श्री कृष्णसे भी सब कुछ बताया।

गुरु–शिष्य दोनों बराबरके हैं। इतनी सारी रानियां होते हुए भी कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं और मिष्टान्नका ढेर डकार जानेवाले ऋषि दुर्वासा नित्य उपवासी। यह कैसा ब्रह्मचारी है और यह तो कैसा उपवासी?

दुर्वासाको किसी भी प्रकारकी वासना नहीं है। उन्होंने खाया तो बहुत किंतु बिलकुल स्वाद लिए बिना ही। खानेवाला और खिलानेवाला नारायण है। दुर्वासाकी यह ब्रह्मोपासना है। खानेवाला और खिलानेवाला ब्रह्म ही है सो उन दुर्वासाकी बात सच है कि वे नित्य उपवासी हैं।

कृष्ण और दुर्वासाको किसी भी वस्तुके प्रति कोई आसक्ति या वासना थी ही नहीं। सब कुछ भोग कर भी वे निष्कामी थे। श्री कृष्णने गृहस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रमका समन्वय कर दिखाया। वे निष्काम ही हैं।

निष्काम श्री कृष्णका ध्यान करनेवाला व्यक्ति स्वयं भी निष्काम हो जाता है। चीरहरण लीलाकी ऋषिरूपा गोपियां पांच–छ वर्षकी कुमारी थी। उन कुमारिकाओंकी इच्छा है कि श्री कृष्ण उनको पति रूपमें मिले। इसमें भाग तो लौकिक है किंतु रहस्य अलौकिक है। जब तक जीव आवरणके अंदर होता है तब तक वह ईश्वरसे मिल नहीं पाता है।

श्री कृष्णने सखियोंसे योग्य समयमें मिलनेका वचन दिया था। ध्यान रहे कि रासमें गोपियोंके देहसे मिलन नहीं है। गोपियोंने पंचभौतिक शरीरका त्याग कर दिया है। इन गोपियोंका स्वरूप अप्राकृत चिंतनमय आनंद रूप है। पंच महाभूतके शरीरको परमात्मा स्पर्श नहीं करते। भागवतमें स्पष्टतः कहा है कि रासलीला पंचभौतिक शरीरके त्यागके बाद ही हुई थी।

किसीको शंका होगी, गोपियोंका पंचभौतिक शरीर कैसे छूट गया? श्री कृष्णका वियोग तो अग्नि है। पतिके विरहमें जिस प्रकार पतिव्रता पत्नी जलती है उसी प्रकार परमात्माका विरह जीवको जलाता है। प्रभुके विरहके समय जीवका संसारमें रममाण रहना पाप है। श्री कृष्णकी विरहाग्निने गोपियोंके पंचभौतिक शरीरोंको जला दिया। और उनको श्री कृष्णकी भांति अप्राकृत रसात्मक शरीर प्राप्त हुआ। पंचभौतिक शरीर साथ होगा तो परमात्मासे मिलन नही हो पाएगा।

गोपियां कृष्ण विरहमें जलती है। हमारी यह करुणता ही है कि यह जीव भगवान्के वियोगके समय सांसारिक वासनाओंसे खिलवाड करता रहता है। संसारके भोग रोग समान ही हैं। गोपियां तो परमानंद रूप परमात्मासे मिलना चाहती है। श्री कृष्णके दर्शन मात्रसे अब उनको तृप्ति नहीं हो पाती। दर्शनमें द्वैत है। गोपियां परमात्मासे एक रूप होना चाहती हैं।

गोपियोंको जबसे गोवर्धनलीलामें श्री कृष्णके परमात्मास्वरूपका दर्शन हुआ था तबसे उनमें प्रेमभावका बीजारोपण हुआ था। उन्होंने कनैयाकी बांसुरी भी सुनी।

प्रेमको आरभ द्वैत होता है। प्रेयसी और प्रियतम अलग–अलग होते हैं। समयके साथ प्रेम बढता जाता है तो दोनोंको एक हो जानेकी इच्छा होती है। "मैं" अब "तू" होनेकी इच्छा रखता है। अद्वैतकी इच्छा जाग उठती है।

“मैं” मीट कर “तू” होना, स्वयंको प्रिय पात्रसे मिला देना, प्रिय पात्रसे सायुज्य सिद्ध करना ही प्रेम है।

कई बार गोपियोंको उनकी सास बाहर नहीं निकलने देती थीं। उनकी व्याकुलताको देख कर कनैया उनके रसोई घरमें प्रगट हो जाता था। जीव जब अति आतुर होता है तब ईश्वर उसे मिलनेके लिए आते हैं। गोपियोंका प्रेम धीरे धीरे बढता जा रहा है। श्री कृष्णसे मिलना है, एक होना है। अब पल भरका भी विरह सहा नहीं जाता। कृष्ण विरहसे वे मूर्छित हो जाती थीं। अब उनको और कोई वासना नहीं है। जीव शुद्ध होकर ईश्वरसे मिलनेके लिए आतुर हो गया है। अब रासलीला होगी।

कृष्णने अपने बाल मित्रोंसे कहा था कि जब भी किसीको मूर्छा आए, उन्हें बुलाया जाय। गोपियोंकी मूर्छा उतारनेका उपाय वे जानते हैं। गोपियोंके मन और प्राण उन्हींमें हैं। गोपी मूर्छित हुई तो कनैयाको बुलाया गया। वे समझ गए कि गोपियोंका प्रेमभाव बढता जा रहा है। कनैयाने गोपीको सहलाते हुए, कानमें कहा, शरद्पूर्णिमाकी रात्रिको तुझसे मिलूंगा तब तक धीरज रख कर मेरा सतत ध्यान करती रहना।

वैष्णव तो प्रेमीसे मिलनेकी आशामें ही जीते हैं। कनैया अवश्य मिलेगा।

गोकुलकी सभी गोपियां रासमें नहीं गई थीं। जिन गोपियोंको अधिकार प्राप्त हुआ था वे ही जा सकी थीं।

युवावस्थासे ही भक्तिका रंग लगना चाहिए। वृद्धावस्थामें भक्तिका रंग चढे वह ठीक तो है किंतु उत्तम नहीं है। जो केवल वृद्धावस्थामें ही भक्तिका आरंभ करता है उसे युवावस्थाके कामसुखोंका स्मरण सताता रहता है। वृद्धावस्थामें यदि अंदरसे भक्ति उत्पन्न न होने पाए तो दूसरोंकी टीका-टीप्पणी करनेका जी हो आता है।

परायोंकी, दूसरोंकी रहन-सहन, घर-गृहस्थी, व्यवहार आदिकी चूं-चपड करते रहना सबसे बडा पाप है। जब भी स्त्रियां एक-दूसरेसे मिलती हैं तो पति, संतान, बहु, कपडे-लत्ते आदि बातोंमें लगी रहती हैं। जो भक्तिके रंगमें रंग जाते हैं वह ऐसी फालतु बातोंमें भाग नहीं लेता। बाल पक जानेके बाद माला न फेरे तो उसका कलेजा और काला हो जाता है। बालके साथ कलेजा उजला न हो सके यह बडी दुःखद बात है।

कनैया उस गोपीके कानोंमें कुछ कह रहा था और गोपीकी मूर्छा दूर हो रही थी। एक वृद्धाने यह देखा तो उसको दालमें कुछ काला नजर आया। मुझे यह मंत्र जानना ही होगा। उस बूढीने ढोंग किया। घरका काम करते करते जानबूझ कर जमीन पर लेट गई। बहुको दुःख हुआ। उसने श्री कृष्णके पास जा कर कहा, नाथ, पधारिए। मेरी सासजी मूर्छित हो गई है। बेचारी भोली बहुको क्या खबर थी कि उसकी सास कपट कर रही है।

कनैयाने कहा, जिसके बाल पक गए हों उसको मेरे मंत्रसे कोई लाभ नहीं हो पाता। सो मैं नहीं आऊंगा। किंतु गोपीने बडे प्रेमसे आग्रह किया तो वे इन्कार न कर सके। कनैयाने वृद्धाका निदान किया कि इस बूढीके सर पर भूत सवार हो गया है। किंतु चिंता न करना। मैं भूत उतारनेकी विद्या जानता हूं। एक लकडी तो ला दो कोई। बूढीने मनोमन कहा, अरे, बाप रे! इतनेमें तो लकडी आ गई और कनैयाने उस बूढीको दो फटके मार दिए। बूढी तुरंत बोल पडी, मुझे मूर्छा नहीं आई थी, मैं ढोंग कर रही थी। कनैयाने कहा, हां, देखो भूत बोल रहा है। दो फटके और जड दिए।

जरा सोचो तो। मनुष्यका बाह्य वेश तो वैष्णवका होता है और मनमें काम, क्रोध, कंचन, कामिनीको रमाता रहता है। बाहरसे भक्त होनेका ढोंग करता है। यह ढोंग, यह अभिमान ही तो वह भूत है जो जीवकी पीटाईके लिए कारणभूत है।

ऐसे भी बहुतेरे लोग हैं जिनकी आकृति तो बडी आकर्षक, सुंदर, लुभावनी होती है किंतु कृति भयंकर, घृणाजनक।

उस बुढियाकी भांति कभी ढोंग न करना। दंभ, ढोंग ही भूत है। भक्ति औरोंको दीखानेके लिए नहीं, प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए करनी है। कई लोग ज्ञान और भक्तिका जितना ढोंग करते हैं उतने ही वे अंदरसे पोले होते हैं। श्री कृष्ण तो अंतर्यामी हैं। उनसे कोई बात छुपी नहीं है।

रासलीलाके तीन सिद्धांत हैः—

(१) इसमें गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है।
(२) इसमें लौकिक काम नहीं है।
(३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ईश्वरका मिलन हैं।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शुद्ध जीवका अर्थ है मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐसा जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है।

शुकदेवजी कहते है, इस लीलाका चिंतन करना है, अनुकरण नहीं। शृंगार और करुण रस ऐकयता सिद्ध करनेके लिए प्रधानरूपसे आवश्यक है। पतिके वियोगमें छटपटाती पत्नीकी भांति ईश्वरके वियोगमें जीव छटपटाता है ऐसा बताना ही रासलीलाका हेतु है। ठाकोरजीके विरहमें जिसकी काया तप्त नहीं हुई है उसे वे मिल नहीं पाते। उस आतुरताका यथार्थ वर्णन करनेके लिए ही शृंगाररसका आश्रय लिया गया है।

रासमें आत्मा और परमात्माका निर्लेप, निर्विकार मिलन है। श्री कृष्णकी यह काम-विजय लीला है।

शरद्ऋतुकी पूर्णिमाकी रात्रि आ गई।

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्लमल्लिकः।

रासलीला कामलीला नहीं है। यह तो कामविजयलीला है। श्री कृष्णके पास काम जा ही नहीं सकता। लौकिकका आभास होने पर भी यह क्रिया कामविकाररहित है। श्रीधर स्वामी इसे कामविजयलीला कहते हैं।

ब्रह्मादि जय संरूढ दर्प कंदर्प दर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमंडलमंडितः॥

श्री कृष्ण कोई सामान्य देव नहीं, साक्षात् परमात्मा हैं। उन्होंने अपनी लीलाओं द्वारा सभी देवोंका पराभव किया। वत्सलीलामें ब्रह्माका गर्व उतार दिया। ब्रह्मासे उन्होंने कहा, आप पंचमहाभूतके सहारे जगत्का निर्माण करते हैं, मैं संकल्प मात्रसे जगत्का सर्जन करता हूं। भगवान्को सृष्टिकी रचना करनेके लिए किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। संकल्प मात्रसे

उन्होंने गोपबालकों और बछडोंका निर्माण किया था। वह रूप उन्होंने स्वयं ही लिया था। अग्निका भी गर्व नष्ट किया इन्द्रका अभिमान भी गोवर्धनलीलामें उतारा गया। वरुण देवका पराभव किया।

ब्रह्मादि देवोंकी पराजय हुई तो कंदर्प-कामदेवका अभिमान जाग उठा कि अब तो मैं ही सबसे बडा देव हूं। उसने कृष्णके पास आकर मल्लयुद्धका प्रस्ताव रखा। कामका एक नाम मार भी है। उसे सभी मारते हैं। कृष्णने कामदेवसे पूछाः- शिवजीने तुझे भस्मीभूत कर दिया था वह क्या भूल गया है तू?

कामदेवः- हां, वह तो ठीक है। मुझसे जरा गडबड हो गई थी। शिवजी समाधिस्थ थे और तेजोमय ब्रह्मका चिंतन कर रहे थे। उस समय मैं उनसे लडने गया तो मैं जल गया। यह कोई विशेष बात नहीं है।

श्री कृष्णः- रामावतारमें भी तो तू हार गया था!

कामदेवः- आपने उस अवतारमें मर्यादाका अतिशय पालन करके मुझे हराया था। उस अवतारमें आप एकपत्नी-व्रतका पालन करते थे सो मैं हार गया था।

जीव यदि मर्यादाका पालन करे तो कामको साधारण जीव भी मार सकता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम किसी पराई स्त्रीकी ओर कभी दृष्टि तक नहीं करते थे। वे हमेशा धनुष्यबाणसे सज्ज रहते थे! फिर चाहे वे दंडकारण्यमें हों, चाहे सीताजीके पास हों, चाहे सुवर्ण सिंहासन पर। धनुष्य ज्ञानका स्वरूप है और बाण विवेकका। ज्ञान और विवेकसे हमेशा सज्ज रहना अन्यथा काम-रावण सर पर चढ जाएगा।

श्री कृष्णः- तो अब तेरी इच्छा क्या है?

कामदेवः- आप इस कृष्णावतारमें तो किसी भी मर्यादाका पालन करते नहीं हैं और वृंदावनकी युवतियोंके साथ विहार किया करते हैं। मैं चाहता हूं कि आप पर तीर चलाऊं। यदि आप निर्विकारी रहेंगे तो विजय आपकी रहेगी और कामाधीन होंगे तो मेरी। आप निर्विकारी रहेंगे तो आपको ईश्वर मानूंगा और कामाधीन हो गए तो मैं ईश्वर बन जाऊंगा।

कृष्णावतारमें श्री कृष्ण पुष्टिपुरुषोत्तम हैं। भगवान्‌ने रामावतारमें शरीरसे तो क्या मनसे भी किसीका स्पर्श नहीं किया था। मानसिक स्पर्श भी वे नहीं करते थे।

कामदेवने श्री कृष्णसे कहाः- मर्यादाका पालन तो साधारण जीवके लिए है, ईश्वरके लिए नहीं। शरदपूर्णिमाकी रात्रिमें आप युवतियोंके साथ विहार कीजिएगा। उस समय मैं बाण चलाऊंगा। जो जीतेगा वह ईश्वर कहलाएगा।

कामने तो सोचा था कि कृष्णको हराना बडा आसान है क्यों कि वे सारा दिन गोपियोंके साथ मुक्त सहचार करते रहते हैं।

श्री कृष्णः- तेरी यही इच्छा है तो वैसा ही होगा।

रासलीलाके मंगला चरणमें श्रीधर स्वामीने कहा हैः- ब्रह्मादि देवोंका पराभव हुआ तो कामदेवको गर्व हुआ और भगवान्‌से युद्ध करने आया। भगवान्‌ने उसको हरा दिया। यह रासलीला कामके पराभवके हेतु ही है। श्री कृष्ण विहार तो गोपियोंके साथ ही कर रहे थे किंतु उनका मन तो निर्विकारी ही था।

वनमें किसी वृक्षके नीचे एकांतमें समाधिस्थ होना, संयमका पालन करना, कामको हराना कोई विशिष्ट बात नहीं है। किंतु श्री कृष्णने तो अनगिनत सुंदरियोंके साथ रह कर कामका पराभव किया। कामने धनुष्य-बाण फेंक दिए और श्री कृष्णकी शरण ली। इसीसे श्री कृष्णका एक नाम मदनमोहन है। श्री कृष्ण तो योगयोगेश्वर हैं।

कामने प्रायः सभीको हरा दिया था सो उसका गर्वीष्ठ होना साहजिक था। रासलीलामें भगवान्ने उसके गर्वका भी नाश कर दिया।

देवी भागवत्में व्यासजी कहते हैं कि एक वार वे भी कामाधीन हुए थे।

पराशरने ६०, ००० वर्ष तक तपश्चर्या की। वे एक बार यमुना पार कर रहे थे तब नाव खेती हुई माछीकन्या मत्स्यगंधाका सौंदर्य देख कर वे मोहित हो गए। उन्होंने उस कन्याका हाथ थामा। उस कन्याने कहा, कहां आप जैसे पवित्र ब्राह्मण और कहां मैं शूद्र माछीकन्या? किंतु काम कभी जाति देखता भी है? ऋषिने कामेच्छा व्यक्त की। मत्स्यगंधाने कहा, यह दिवसका समय है सो हमें सब लोग देख लेंगे। दिवसमें ऐसा कर्म निषिद्ध है। तो पराशरने अपने तपोबलसे अंधकारका बादल रचके सूर्यको आवृत्त करके चारों ओर अंधकार फैला दिया।

पराशर ऋषि सूर्यको तो ढांक सकते थे किंतु अपने कामको न रोक सके।

कामको जीतना बडा दुष्कर कार्य है। जो कामके आधीन हो कर उसकी मार खाता है वह साधारण जीव है। जो कामको मार कर उसको स्व-आधीन करता है वह ईश्वर है।

इस रासलीलाका चिंतन करनेसे कामवासना नष्ट होती है। इस लीलामें जीव और ईश्वरके मिलनका निरूपण है। यह मिलन उच्च कक्षाका है।

प्रेमका आरंभ द्वैतसे होता है और अंत अद्वैतसे।

श्री महाप्रभुजी कहते हैं:- रासलीला तो भागवतका फल है। जीव और ईश्वरका मिलन ही वह फल है।

भागवतका उद्देश है ईश्वरका जीवन सीखाना तथा उसकी प्राप्ति कराना।

रासलीलामें शुकदेवजीने किसी भी गोपीका नाम न बता कर काश्चित्, अन्या, अपरा आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। इसी कारणसे तो श्रीधर स्वामी कहते हैं:- जीवमात्रको प्रभुका आवाहन है। वे सभीको बंसी बजा कर पुकारते है, बुलाते हैं। वे ही सबके सच्चे स्वामी है।

श्रीधर स्वामी कहते हैं:- रासलीलाके पांच अध्याय पंचप्राणोंका सूचक, प्रतीक है। पंचप्राणोंका ईश्वरके साथ रमण ही रास है।

रासपंचाध्यायी कामविजयके लिए है। जो शस्त्रसे घायल नहीं हो पाता वैसा योद्धा भी कामके पुष्प-बाणसे घायल हो जाता है। जो कामको मार सकता है वह कालको भी मार सकता है।

कामविजयके हेतु बहुतसे महात्मा केवल चावल और दूधका आहार करके रात्रिके दूसरे प्रहरमें रासलीलाका पाठ और चिंतन करते हैं। वे मनोमन कल्पना करते हैं कि वे वृंदावनमें हैं। रासमंडलीके मध्यमें राधाकृष्ण है। कृष्णने एक हाथमें बांसुरी पकडी है और दूसरा हाथ राधाजीके कंधे पर रखा हुआ है। एक एक राधाके साथ एक एक कृष्ण है। इस रासलीलाके चिंतनसे कामवासना नष्ट होगी।

काम विशेषतः रात्रिके दूसरे प्रहरमें अधिक सताता है। तो उस समय स्नानादि करके पवित्र होकर रासलीलाका चिंतन करोगे तो काम नहीं सताएगा।

रासलीला अनुकरणीय नहीं, चिंतनीय है। उसका चिंतन कामनाशी है।

वेणुगीतकी बांसुरी तो पशु, पंछी, नदी सबको सुनाई देती है। किंतु रासलीलाकी बांसुरी तो ईश्वरमिलनातुर अधिकारी जीव-गोपीको ही सुनाई देती है।

निशम्य गीतं बदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसः।

जिनका चित्त श्री कृष्णने हर लिया था वे व्रजनारियां बांसुरी सुनकर आतुरतापूर्वक श्री कृष्णसे मिलने दौड चलीं। गोपियां अपने सांसारिक कार्योंको एक ओर छोडकर भगवान्से मिलने दौडती हैं। वे तो अपनी सखियोंको भी बुलानेके लिए रुकती नहीं है।

जिस गोपीका नाम लेकर बांसुरी बजायी जाय वह गोपी सुन लेती है।

गोपियोंकी आतुरता तो देखोः—

दुहन्त्योऽभियुयुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।

जो गोपियां गायोंको दोह रही थीं वे भी बांसुरीकी तान सुनते ही काम छोड कर उत्सुकतासे दौड चलीं।

उनकी तन्मयता तो देखोः—

व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।

कुछ गोपियां बेढंगे वस्त्रालंकार पहन कर कृष्णसे मिलने निकल पडीं। जब देहाध्यास छूट जाता है तब ऐसी ही दशा होती है।

शृंगार करती हुई एक गोपीने कनैयाकी बांसुरी सुनी तो व्याकुलताके कारण चंद्रहार गलेके बदले हाथमें पहन लिया।

घरकी लीपाई-पुताई करती हुई एक गोपी गोबरसे गंदे हुए हाथों सहित दौड पडी।

रासलीलामें अगर लौकिक कामकी बात होती तो उसमेंकी गोपियां कुछ और ही होतीं। इस प्रकार दौड निकलनेके बदले वे दो घंटों तक शृंगार करके, दर्पणमें अपना निखार देख कर बनठन कर निकलतीं। किंतु ऐसा नहीं है। शुकदेवजी वर्णन करते हैं—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्याः।

कुछ गोपियां घर लिप रही थीं वे गोबरसे गंदे हाथोंको धोए बिना ही कृष्णसे मिलने दौडीं। यही बताता है यह लौकिक कामकी बात नहीं है।

ईश्वरसे मिलनेके लिए वैसी ही आतुरता होनी चाहिए।

रामकृष्ण परमहंस हमेशा सदृष्टांत बातें करते थे।

एक शिष्यने अपने गुरुसे पूछाः— ईश्वरप्राप्तिके लिए जिज्ञासा और व्याकुलता कैसी होनी चाहिए?

गुरुजीः- यह विषय वर्णनका नहीं शब्दातीत अनुभवका है। रामबाण जिसे लगा हो वही उसकी वेदना जान सकता है। किसी प्रसंगके समय मैं सब कुछ समझाऊंगा।

एक बार वे दोनों स्नान करने गए। ज्यों ही शिष्यने जलमें गोता लगाया कि गुरुने उसका मस्तक भी बलसे पानीमें घंसा दिया। सांस लेनेकी तकलीफ हो गई तो वह शिष्य छटपटाने लगा, बाहर निकलनेके लिए व्याकुल हो गया। गुरुने हाथ उठा लिया तो शिष्यने पानीसे ऊपर उठ कर चैनकी सांस ली। गुरुने पूछाः- कैसा रहा अनुभव? शिष्यने कहाः- अरे, मेरे तो प्राण ही निकले जा रहे थे। लगता था प्राणवायुके विना मैं मरने ही जा रहा था।

गुरुजीः- हां, तो ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए भी वैसी ही छटपटाहट, तडप, व्याकुलता, आतुरताकी आवश्यकता है। ऐसा होगा तभी ईश्वर मिलेंगे।

मीरांबाईने कहा हैः—

तुम देख्या बिन कल न पड़त है, तडप तडप जीव जासी।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देहभान भूली हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होने पर प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है।

गोपियोंको रिश्तेदारोंने रोका किंतु वे कब रुकनेवाली थीं? उनका मन मनमोहनने मोह जो लिया था।

सूरदास कहते हैंः—

मोहन मन मोहि लियो ललित वेनु बजाई री।
मुरली धुनि श्रवन सुनन बिबस भई माई री॥
लोक लाज, कुलकी मरजादा बिसराई री।
घर घर उपहास सुनन नेकु ना लजाई री॥
जप तप वेद अरु पुरान, कछु ना सुहाई री।
सूरदास प्रभुकी लीला निगम नेति गाई री॥

गोपी यह हृदयका शुद्ध भाव है।

गोभिः इन्द्रियैः भक्तिरसम् पिबति इति गोपी।

इन्द्रियों द्वारा जो भक्तिरसका पान करे वही गोपी है।

घरमें रह कर भक्ति करना आसान नहीं है। अपनी पत्नीके प्रति भी मातृभाव रखा जा सके तभी घरमें रह कर भक्ति की जा सकती है। भक्तिकी तन्मयतामें स्त्री-पुरुषका देहभान मीटना ही चाहिए।

दर्शनके समय अपना स्त्रीत्व और पुरुषत्वका भान भूल जाय वही गोपी है। जब तक देहकी सभानता है, मनमेंसे काम निकलता ही नहीं है।

यह गोपियां कौन थीं? जब ऋषि-मुनि हजारों वर्ष तक तपश्चर्या और ब्रह्मचिंतन करते रहने पर भी मनमें बसे कामको मार न सके तो उस कामको श्री कृष्णार्पण करनेकी इच्छासे गोपियोंका अवतार लेकर गोकुलमें आ बसे। इनमें साधनसिद्धा, ऋषिरूपा, श्रुतिरूपा, स्वयंसिद्धा, अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा आदि कई प्रकारकी गोपियां थीं। सांसारिक भोगोंका उपभोग करनेके पहले ही जिसे वैराग्य आ जाता है वह अनन्यपूर्वा गोपी है।

केवल वृक्षोंके पत्ते खानेवाले तपस्वी ऋषिको भी काम सताता है तो लूलीके लाड करनेमें ही लगे रहते हम जैसे साधारण मानवकी तो चर्चा ही क्या करें?

तपश्चर्या और योगसाधना करनेवाले ऋषि थक-हार कर, अपना काम कृष्णार्पण करनेके लिए गोपी बन कर आए। ईश्वरको काम अर्पण करके निष्कामी बनो। पराशर मुनि सूर्यको बसमें कर सके किंतु अपने कामको नहीं।

मनुष्यका सबसे बडा शत्रु काम ही है। इसमेंसे अन्य बहुतसे दुर्गुण उत्पन्न होते हैं।

कामात् क्रोधऽभिजायते। क्रोधात् भवति संमोहः ॥

और अंतमें होता है बुद्धिनाश। यदि काम ईश्वरको अर्पित किया जाय तो वह कभी अंकुरित नहीं होगा।

संसारके सभी सांसारिक सुखोंका मनसे त्याग करके, ईश्वरको मिलनेके लिए, गोपीकी भांति, निकल पडनेवालेको धन्य है। इसी कारणसे तो भगवान् गोपियोंका स्वागत करते हैं— महाभाग्यशाली नारीओ, आओ!

स्वागतं वो महाभागाः।

भागवतकार गोपियोंको महाभाग्यशाली कहते हैं। नारदजी भी अपने भक्तिसूत्रमें गोपियोंका दृष्टांत देते हैं—

यथा व्रजगोपिकानाम्।

यही बताता है कि ये गोपियां कोई सामान्य स्त्रियां नहीं, भगवान्‌की महान् भक्त थीं।

भगवान्‌ने प्रत्येक गोपिको महाभाग्यशाली कहा है। 'महाभागाः।' मोटर-विमानमें घूमनेवाला, बंगलोंमें रहनेवाला भाग्यशाली नहीं है। जिसके सर पर कालका साया हो वह भाग्यशाली कैसे माना जाएगा?

भाग्यशाली तो वह है जो सांसारिक सुखोंको और कालके डरको छोड कर भगवान्‌की ओर दौड पडता है। ईश्वरसे मिलनेके लिए अतिशय व्याकुल हुआ हो वह जीव महाभाग्यशाली है। इसी कारणसे वंसीनाद अधिकारी गोपी-जीवको सुनाई दिया था। वंसीका मधुर नाद तो सभीने सुना था।

सांसारिक विषयोंके उपभोगसे कभी तृप्ति नहीं होती। ईश्वरसे मिलनेके लिए दृढ निश्चय करो। संसारसुख तो सबसे बडा महा दुःख है। और इस बातको सच मान कर जिसने संसारसुखोंका त्याग किया हो उसे भगवान् अपनाते हैं।

प्रभुप्रेममें जो पागल बना है वह भाग्यशाली है। परमात्मा ऐसे जीवका ही स्वागत करते हैं।

श्री कृष्णने गोपियोंसे पूछाः– ऐसे दौडी दौडी क्यों आई हैं तुम सब? क्या व्रज पर कोई संकट आ गया है क्या? वहां सब कुशल-मंगल तो है न? तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए मैं क्या करूं? रात्रिके समय ऐसे घोर वनमें स्त्रीका रहना अच्छा नहीं है। क्या वृंदावनकी शोभा निहारने आई हैं? क्या इस सुंदर रात्रिका सौंदर्य निहारने आई है? शोभा निहार कर घर शीघ्र ही लौट पडो। वहां तुम्हारे पति, संतान आदि प्रतीक्षा करते होंगे। अपने पतिकी सेवा और संतानका लालन-पालन करो।

अंतर्मुख दृष्टि करके जीव जब भगवान्के पास पहुंचता है तो वे उससे पूछते हैंः— मेरी पास क्यों आया है। संसारमें रत रह, वहां तुम्हें सुख मिलेगा। मैं सुख नहीं, केवल आनंद ही दे सकता हूं। तुम सब वापस जाओ। वहां सब तुम्हारी प्रतीक्षा करते होंगे।

एक अर्थ है घर जाओ। दूसरा अर्थ ऐसा भी निकल सकता है कि जो जीव भगवान्के स्वरूपसे जा मिलता है वह कभी घर लौट नहीं सकता। जीवको परमात्मा सहसा नहीं मिलते। जीवको भ्रांति होती है कि भगवान् उसे संसारमें लौटनेको कह रहे है।

वैसे तो भगवान् चाहते नहीं हैं कि गोपी-शुद्ध जीव संसार वापस जाय। किंतु वे उसके प्रेमकी परिपूर्णताकी कसौटी करना चाहते हैं। सो वे कह रहे हैं कि सुख संसारमें है।

भगवान् तो आदर्श बतलाते है कि पतिकी सेवा करना पत्नीका धर्म है। पतिमें ईश्वर-भाव न रखनेवाली नारीके इहलोक और परलोक दोनों बीगडते हैं।

कलियुगमें स्त्रियोंको और शुद्रोंको मुक्ति जल्दी मिलती है। शुद्र आचारविचारका पालन न करे और केवल राम नाम लेते रहे तो भी चलेगा। किंतु ब्राह्मणको तो आचार-विचारका पालन करना ही पडेगा। अन्यथा उसका पतन होगा। यदि स्त्री घरका काम और कुटुंबके सभी लोगोंकी सेवा करते करते रामनाम लेती रहे तो मंदिरमें जानेकी जरूरत नहीं रहेगी। जो मुक्ति योगियोंको मिलती है वही मुक्ति उन स्त्रियोंको अनायास मिलेगी। पतिव्रता नारी तो अनसूयाकी भांति भगवान्को भी बालक बना सकती है।

प्रभुने अपने समुख आई हुई गोपीयोंको धर्मोपदेश दिया। स्त्रीको बाहर जानेकी जरूरत नहीं है। बाहर भटकनेवाली स्त्री स्वेच्छाचारिणी होकर पतीत होगी।

जो स्त्री घर ही में रह कर भली भांति गृहिणीधर्मका पालन करती है उसे पवित्र रहनेकी अनुकूलता रहती है। अपने पति, पतिके संबंधी तथा अपने पुत्र-पुत्रियोंमें ईश्वरकी भावना रख कर उनकी सेवामें अपना तन, मन, धन न्योछावर कर दे और परमात्माका स्मरण करती रहे तो मंदिरमें न जाने पर भी अनायास ही उसे वही सद्गति प्राप्त होती है जो योगियों और संन्यासियोंको मिलती है।

पतिमें और पुत्र-पुत्रियोंमें ईश्वरका अंश देखो और उनकी जी-जानसे सेवा करो। उनके साथ साथ रह कर ही ईश्वरका चिंतन करो। पतिमें ही ईश्वरकी भावना करके वियोगा-वस्थाका अनुभव करके स्मरण और ध्यानसे चित्त एकाग्र करो।

तुम सब अपने अपने घर जाओ। माता अनसूयाने पतिसेवाके बलसे ही तो ब्रह्मा, विष्णु, महेशको बालक बना दिया था। पतिव्रता धर्म सबसे बडा है।

एक पतिव्रता नारी अपने पतिकी जी जानसे सेवा करती थी। एक दिवस काम धंधेसे निवृत्त हो कर बडी रात बीते आये। बहुत थक गये थे तो पत्नीने अपनी गोदमें उनका सर रख कर उन्हें सुला दिया। पति तुरंत ही गहरी नींदमें डूब गए। एक खाट पर इसका दो सालका लडका सोया हुआ था, खाटके नीचे अंगारे रखे हुए थे कि जिससे लडकेको शर्दी न लगे। लडका नींदमें करवट बदलने लगा। इधर माता सोचने लगी कि कहीं लडका अंगारों पर जा पडा तो क्या होगा। मैं उसे उठा लूं? किंतु वैसा करनेसे तो नींदमें बाधा होगी। मैं पतिको कैसे तकलीफ दे सकती हु? मैं नहीं उठा लूंगी बेटेको। पति सेवा करते हुए वह ईश्वरस्मरण करने लगी बेटा अग्निमें गिर पडा किंतु वह सच्ची पतिव्रता नारीका पुत्र था। अग्नि उसे कुछ न कर सका। अग्नि तो चंदन सा शीतल हो गया। अग्निकी ज्वाला सारे विश्वको जला सकती है किंतु पतिव्रता नारी अग्निको भी जला सकती है। महापतिव्रता नारीसे तो अग्नि भी डरता है।

श्री कृष्ण उन गोपियोंसे कहते हैं:— अपने घर जाओ। उस महान् पतिव्रत धर्मको छोड कर यहां क्यों आई हो? अपने पति और संतानको भगवान्का अंश मान कर उनकी प्राणार्पणसे सेवा करोगी तो घरमें रहने पर भी तुम्हारा कल्याण ही होगा।

कृष्ण कहते है:— मेरे संयोगकी अपेक्षा मेरे वियोगमें तुम्हें कई गुना अधिक सुख मिलेगा। वियोगावस्थामें मेरा भली भांति ध्यान, स्मरण होता रहेगा और प्रेम भी अधिक पुष्ट होगा। संयोगावस्थामें दोष दर्शन शुरु हो जाता है, वियोगावस्थामें गुणोंका ही स्मरण, चिंतन होता रहता है। तुम्हारा प्रेम शुद्ध होगा तो तुम मेरे स्वरूपको प्राप्त कर सकोगी। अपने पति और संतानोंको छोड कर यहां दौड आना ठीक नहीं है, योग्य नहीं है।

ध्यानकी आरंभावस्थामें साधकका चित्त चंचल होनेके कारण उसे चारों ओर अंधेरेका ही दर्शन होता है, ईश्वर रूपी प्रकाशका नहीं। यदि वह निराश न हो कर प्रयत्न करता रहे तो अंधकार चीर कर प्रकाश अवश्य आएगा।

भगवान्ने गोपियोंको घर लौटनेकी आज्ञा दी तो उन्हें दुःख हुआ। आज भगवान् ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हैं? उन्होंने भगवान्से पूछा कि आज आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। भगवान्ने उनसे कहाः— देहका स्वामी पति है। इस शरीरका कोई पिता होगा, पति होगा किंतु आत्माका पिता-पति कोई नहीं होता। आत्माका धर्म है प्रभुसे मिलन। इस प्रकार भगवान्ने उनको देहधर्मका उपदेश किया।

तो गोपियां प्रभुको आत्मधर्मका उपदेश देने लगीं। आप आज ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हैं? आप ही ने तो गीतामें कहा है कि जो भी बडे भावसे आपकी सेवा-पूजा करता है उसे आप मिलेंगे। तो फिर अब हमें घर क्यों लौटाया जा रहा है? आप तो पतितपावन और दयासागर हैं ऐसी श्रद्धावश हम आपके चरणोंमें आई थीं। आप ऐसे कठोर क्यों हो गए हैं? हमने संसारके सभी विषयोंका मनसे त्याग करके आपके चरणोकी शरण लेनेका अटल निश्चय किया है।

सभी विषयोंका मनसे भी त्याग करके भगवान्के चरणमें आनेवाला जीव ही गोपी है।

सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तवपादमूलम्।

त्यक्त्वा शब्द विषयोंका शारीरिक त्याग दर्शाता है और सन्त्यज्य शब्द विषयोंका मानसिक त्याग, असाधारण त्याग दर्शाता है।

हम सभी विषयोंका शारीरिक और मानसिक त्याग करके आपके चरणमें आई हैं। आपके लिए हमने सर्वस्वका त्याग किया है। सांसारिक विषयोंका विवेक पूर्वक त्याग करके, केवल आपसे मिलनेके लिए ही हम आई हैं। हमारी उपेक्षा न करें। हमारे मनमें आपके सिवाय और कुछ भी शेष नहीं है।

जिसके मनमें ईश्वरके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है वही गोपी है। इस संसारके विषयोंका जब तक मनसे त्याग न किया जाय, भक्ति नहीं हो सकती।

सच्चा त्याग कबीरका, मनसे दिया उतार।

शारीरिक त्याग तो जीव तुरंत कर सकता है किंतु मानसिक त्याग करना बडा कठिन है। मानसिक त्याग न करे और केवल शारीरिक त्याग ही करे तो वह दंभी हो जाएगा। मानसिक त्याग ही मुख्य है। तन चाहे जहां हो किंतु मनको ईश्वरसे दूर कभी न होने देना।

वृत्त-अवृत्त नामके दो साधुओंका दृष्टांत देखें। वे दोनों यात्रा कर रहे थे। प्रयागराजकी दिशामें जा रहे थे। जन्माष्टमीके दिन वेणीमाधवका दर्शन करना चाहते थे। चलते चलते रात हो गई थक भी गए थे। एक वेश्यागृह देखा तो अवृत्तने कहा, जोरोंकी बरसात हो रही है, अंधेरा भी है, रास्ता दीखता नहीं है। और मैं थक भी गया हूं सो मैं तो आज यहीं रहूंगा। तुझे आगे जाना है तो जा।

वृत्तने माना कि इसका मन शायद बीगड गया है। मैं यहां नहीं रुक सकता। वह चलता रहा और प्रयागराजके मंदिरमें ठहरा।

अवृत्त वेश्यागृहमें ठहरा तो था किंतु अब उसे पछतावा होने लगा। वह अपने आपको कोसने लगा। धिक्कार है मुझे। मैं कैसा शुद्र, हीनभागी हूं कि जन्माष्टमीके दिन कृष्णके मंदिरमें ठहरनेके बदले यहां पडा रहा। मेरा मित्र वृत्त कितना भाग्यशाली है कि इस समय वह प्रभुके मुखारविंदका दर्शन कर रहा होगा। मंदिरमें उत्सव हो रहा होगा, वैष्णव लोग प्रभुका दर्शन कर रहे होंगे, वहां भजन-कीर्तन-आरती-वंदन हो रहा होगा। कितना भव्य और पवित्र होगा वह दृश्य! इस प्रकार अवृत्त वेश्यागृहमें था किंतु उसका मन तो वेणीमाधवके पास था। बडी तन्मयतासे वह मन ही मन जन्माष्टमीका पवित्र प्रसंग निहार रहा था।

उधर मंदिरमें बैठा हुआ वृत्त भी पछता रहा था। क्यों? वह सोच रहा था कि वह इतने सारे कष्टोंको झेल कर यहां क्यों झख मारनेके लिए आया। वहां मेरा मित्र सौंदर्यवती वेश्याके साथ क्रीडा कर रहा होगा। और मैं यहां भीडमें पीसा जा रहा हूं। कितना भाग्यशाली है मेरा मित्र। उसका जी उत्सवमें लगता ही नहीं था। उसे उस वेश्याके सौंदर्यकी ही झांकी हो रही थी। उसका शरीर तो था माधवके मंदिरमें किंतु मन वेश्याके पास।

अवृत्तको मोक्ष मिला और वृत्तको नरक अवृत्तको लेनेके लिए भगवान्‌ने विमान भेजा क्यों कि तनसे चाहे वह वेश्यागृहमें था किंतु मनसे तो वेणीमाधवरायके पास था। वृत्त था तो मंदिरमें किंतु वासनासुखको सोच रहा था सो उसे नरकमें जाना पडा।

केवल देहशुद्धि नहीं, मनःशुद्धि भी आवश्यक है। केवल देहशुद्धि तो दंभ ही है।

गोपियां भगवान्‌से कहती हैं:-, पतिके पास तो वह स्त्री जाएगी जिसके मनमें विकार वासना अभी शेष है। विकार-वासना त्यागी तो प्रभुके निकट ही आएगा। हम निर्विकारी हैं सो आपके पास आई हैं।

भगवान्:- क्या प्रमाण है तुम्हारी निर्विकारिताका ?

गोपियांः- आप ही तो हैं प्रमाण, क्यों कि हमारे हृदयमें आप ही तो विराज रहे हैं।

को देवो या मनः साक्षी।

जो मनको साक्षीरूप निहारता है वह ईश्वर है। वे मनके भावकुभाव तो परख लेता है। यदि हममें कोई विकार है भी तो वह आपसे छुपा तो होगा ही नहीं। आप किल बंधुरात्मा हैं। हम निर्विकारी हैं। अब तो एक ही इच्छा एक ही वासना बाकी है, आपसे मिलनकी।

ईश्वर परिपूर्ण वैराग्य, प्रेम-भक्ति और ज्ञान मांगते हैं। उनको ओछा-अधूरा स्वीकार्य नहीं है।

पतिसेवाकी जो आज्ञा आपने हमें दी है वह शिरोधार्य है। हमारे शरीरके पति घरमें हैं किंतु आत्माके प्रति तो आप हैं। आप पतिमें ईश्वरकी भावना रख कर उसकी सेवा करनेको कहते हैं। किंतु पतिमें ईश्वरकी भावना तो उस स्त्रीके लिए आवश्यक है जो आपको देख नहीं पाती हो। हमने आपके प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं सो अन्य किसी व्यक्तिमें ईश्वरका आरोप करनेका प्रश्न ही नहीं उठता है।

भावना, कल्पना, आरोपण तो वियोगावस्थामें करना पड़ता है, संयोगावस्थामें नहीं। परमात्माके या किसी व्यक्तिके प्रत्यक्ष दर्शनका अवसर न मिलता हो तभी उससे संबंधित मूर्ति। छबी या अन्य किसी वस्तुमें उसका दर्शन हम करते रहते हैं।

हमने तो आपके प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं, तो फिर आपको छोड कर अन्यमें भावना क्यों करें ? और पति कौन है ? पाति इति पतिः। मृत्युके भयसे जो रक्षा करे वही पति है। मृत्युकी जालसे मुक्त कराए वही पति है। ऐसा तो एक मात्र आप ही हैं। जीवमात्रके सच्चे पति तो ईश्वरही हैं। आप सबके अनन्य स्वामी हैं। अतः हमने सोच-समझ कर ही आपके चरणोंका आश्रय लिया है।

नाथ, एक प्रश्न पूछें ? प्रभुने अनुमति दी।

गोपियांः— पतिव्रता नारीका जो धर्म आपने बतलाया उसका फल क्या है ?

कृष्णः— मन शुद्ध होता है।

गोपियाः— मन शुद्ध होने पर क्या मिलता है ?

कृष्णः— उस शुद्धमना जीवको परमात्मा मिलते हैं।

धर्मका पालन चित्त शुद्धिके लिए है और चित्त शुद्धिका फल है प्रभुमिलन।

गोपियांः- आप तो हमको मिल ही गए तो हैं तो फिर हम उस चक्करमें फिर क्यों फंसे ? आप ही हमारे सच्चे पति हैं। हमारा त्याग न कीजिए।

कृष्णः- मैंने पतिव्रता नारीका दृष्टांत सुनाया। तुम भी घरमें रह कर, कुटुंबीजनोंकी सेवा करते करते वही सिद्ध प्राप्त करती सकती हो

पुरुषकी अपेक्षा नारीके लिए सिद्धिप्राप्ति अधिक सुलभ है। घरमें ही रह कर, घरके प्रत्येक जीवको ईश्वररूप मान कर अपना तन-मन-धन न्योछावर कर देना चाहिए। शास्त्र तो यहां तक कहते हैं कि पतिके धनार्जनके लिए किए गए पापमें स्त्रीका कोई भाग नहीं है किंतु पतिके पुण्यमेंसे उसे आधा हिस्सा मिल जाता है। किंतु नारीको पतिके पुण्यमेंसे हिस्सा कब मिलता है ? यदि स्त्री अपने पति और संतानोंको परमात्माका ही स्वरूप मान कर उनकी सेवा करे तो उसे पतिके पुण्यका आधा हिस्सा प्राप्त होता है।

स्त्री धर्म सर्वश्रेष्ठ है। वह अपने पति और संतानोंकी सेवा करे, संतानोंको धर्मकी शिक्षा दे यही उसकी सबसे बड़ी सेवा है, कथा-आख्यानोंमें बैठे रहना नहीं। पतिसेवासे चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धिसे परमात्माकी प्राप्ति।

गोपियाँ :-नाथ, अैसा मत मान लें कि आप ही कथा कर सकते हैं। हम भी कर सकती हैं। हमारे विगत जन्मोंमें हमने वह सब-कुछ किया है। कथा-आख्यान-कीर्तन-भजन सुनते-सुनाते हम थक-हार गअे फिर भी आपकी अेक झांकी तक न मिली। सो हमने ऋषियोंका चोला उतार गोपियोका रुप धारण किया है। आपने तो बहुत-कुछ सुनाया। अब आप हमारी भी तो सुनिअे।

अेक पतिव्रता नारीके लिअे अपने पतिका वियोग असह्य था। वह पतिसे हमेशा साथ रहनेका ही आग्रह किया करती थी। संयोगवश पतिको परदेश जानेका अवसर आया। वह भी पतिके साथ जानेके लिअे तैयार हो गअी। मुझे छोड़ कर न जाओ। नाथ, मुझे अपने संग ही ले चलिअे।

पति उसे समझाने लगा :-देवी, मै कामकाजके लिअे बाहर जा रहा हूँ, वहाँ तुझे कैसे ले जाअूँ? मेरे वियोगमें जलना न पडे अैसा अेक उपाय है। घरमें मेरा वह जो चित्र है न उसकी दृढ भावसे सेवा-पूजा करती रहना और मानना कि मै घरमें ही हूँ। जब भी मेरी याद सताने लगे उस चित्रका दर्शन-पूजन करना। वह पतिव्रता नारी बड़ी तन्मयतासे पतिकी छवी की पूजा करने लगी। दो महिने बीत गअे। अेक दिन पति लौट आअे। उस समय वह नारी चित्रकी सेवामें लीन थी।

अब प्रभु, हमारा प्रश्न यह है कि पतिकी आवाज़ सुनने पर भी वह स्त्री चित्रकी सेवा करती रहेगी या पतिके स्वागतके लिअे दौड़ती हुअी द्वार पर पहुँचेगी।

श्री कृष्ण :-अरे यह भी कोअी पूछनेकी बात है? वह दौडती हुअी द्वार पर ही पहुचेंगी।

गोपियां :-क्यों?

श्री कृष्ण :-चित्त तो कागज़का अेक टूकडा ही है जब कि द्वार पर तो साक्षात पतिदेव पधारे हुअे हैं।

गोपियाँ :-नाथ, हम जीत गअी। आपने बराबर न्याय किया। हमारा भी यही कहना है कि जब परमात्मा मिल गअे हैं तो फिर लौकिक पतिसे हमें क्या लेना-देना है। लौकिक पति तो उस चित्रमें आलेखित पति-सा ही तो है। प्रत्येक जीवके प्रति निःस्वार्थतासे अेक समान प्रेम करनेवाले सच्चे पति जब हमको मिल गअे हैं तो उस लौकिक पतिको हम क्यों अपनाअे? लौकिक व्यक्तिके प्रेममें तो हमेशा कपट और स्वार्थ ही होता है।

किंतु यह बात आजकलकी साधारण नारीके लिअे अनुसरणीय नहीं है। जब तक परमात्मासे साक्षात्कार न हो पाअे तब तक तो पतिमें ही परमेश्वरकी विभावना करनी होगी। परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन होनेके बाद पतिमें प्रभुकी विभावना न की

जाय तो कोअी विशेष बाधा नहीं है। भावना वियोगमें ही करनी पड़ती है, संयोगमें नहीं।

गोपियाँ :–नाथ, हमने स्त्रीत्व सहित सर्वस्वका त्याग किया है और आपकी शरण ली है। जो न तो स्त्री है और न तो पुरुष अैसे शुद्ध चेतन आत्माका विशेष कौन–सा धर्म हो सकता है? उसका न तो कोअी नारीधर्म होता है और न तो कोअी पुरुषधर्म।

नाथ, जो जीव स्त्री हो उसके लिअे नारीधर्मका पालन आवश्यक है, हम तो शुद्ध चेतन आत्मा हैं। आत्माका धर्म है प्रभुसे मिलन। जब तक प्रभु न मिल पाअे तब तक अपने अपने धर्मका पालन करना चाहिअे। धर्मके पालनसे मन शुद्ध होता है। धर्मपालनसे पाप जल जाते हैं। पाप जल जाने पर मन शुद्ध होता है। और मन शुद्ध होने पर परमात्मासे साक्षात्कार हो पाता है।

आप तो प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। आप तो हमको मिले हुअे ही हैं। हमें अपना सच्चा पति प्राप्त हो गया है। अब हमारे लिये स्त्रीधर्म पालनकी कोअी आवश्यकता ही नहीं है। अब हमें भीतरमें आपकी भावना करनी नही है। जब तक आपके दर्शन नही हुअे थे हम अन्यमें आपकी विभावना करती रहती थी। अब हम आपको छोड़ कर कहाँ जाअें, क्यों जाअें? अब आपको छोड़ कर जड धर्मका सहारा क्यों ढूँढें?

धर्म तो साधन है। साध्य तो आप स्वयं ही हैं। हमने आज तक स्वधर्मका पालन किया तभी तो आपसे साक्षात्कार हो पाया है। हम तो आपके चरणोंकी दासी हैं। नाथ, अब निष्ठुर होकर हमारा त्याग न करें। हमें अपना लीजिअे।

भगवान कहते हैं: यदि मुझे ही तुम अपना सच्चा पति मानती हो तो मेरा कहा तुम्हें मानना होगा। जाओ, घर जाकर पति–संतानकी सेवा करो। यदि लौकिक पति स्वार्थी हो, फिर भी मेरी आज्ञा है कि उसीकी सेवा करो।

गोपियाँ :–हजारों जन्मों तक यह सब कुछ झेल कर हम थक गअी हैं। बादमें जब आप अीश्वर मिले हैं तो हम वापस क्यो लौटे? फिर भी आपकी आज्ञा है सो जाना तो पड़गा ही। किंतु अपने लौकिक पतिकी सेवा करनेके लिअे मन तो चाहिअे ही। अब मनकी तो आपने चोरी कर ली है। आप हमारा मन लौटा दे तो घर घर जाकर लौकिक पतिकी सेवा करेंगी। अपना चित लौटा दीजिअे।

जो अपना मन अीश्वरको दे देता है वह तो अीश्वरसे तदाकार हो जाता है। अीश्वर स्वयं भी उस मनको वापस कर नही सकते।

श्रीकृष्ण: जिसके चित्तकी मैं चोरी करता हूँ उसका वह चित्त तो मुझमें अेकाकार हो जाता है। उसे मैं वापस नही कर सकता। तुम्हारे मनकी भी यही दशा है।

दूधमें मिल गअी मीसरी कभी अलग हो सकती है क्या? किसी प्रकार नहीं किया जा सकता।

श्रीकृष्ण :–तुम्हारा मन मुझसे कब और कैसे मिल गया यह मैं नहीं जानता हूँ। सो कैसे लौटाऊं ?

गोपियाँ :–तो फिर हम मनके विना अपने घर कैसे लौट सकती हैं ? आप मन दे नहीं सकते हैं सो हम भी घर जा नही सकतीं।

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

हमारे पांव आपके चरणकमलोको छोड़ कर अेक कदम भी हटनेको तैयार नहीं हैं तो हम व्रज तो लौटें ही कैसे ? और यदि हम लौटें भी तो मनके विना वहाँ हम क्या करें ?

प्रभुः मैं योगशक्तिसे तुम सबको उठा कर वहाँ पहुँचा दूँ तो ?

गोपियाँ : हमारे शरीरको घर पहुँचा देंगे किंतु मन तो साथ आअेगा नहीं। हम वहाँ क्या करेंगी ?

हमारा मन तुम्हींसे मिल गया है। हम भी आपके स्वरुपसे तदाकार होना चाहती हैं।

जहाँ मन होगा वही जीवात्मा भी होगी। मन तो ओश्वरसे ही जा मिलेगा। संसारके जड पदार्थोंमें मनका लय नहीं हो सकता। मन और संसार विजातीय हैं, मन और ओश्वर सजातीय। सजातीयसे तो सजातीय ही मिल पाअेगा। मन जड नही, चेतन है सो वह चेतन परमात्मासे ही जा मिलेगा। मन ओश्वरमें ही स्थिर हो सकता है। ओसी कारणसे तो ज्ञानी लोग अपना मन ओश्वरको देते हैं। मन किसी स्त्री या पुरुषको नहीं, केवल श्रीकृष्णको ही दिया जाय। मन जहाँ मिल जाअेगा वहाँ आत्मा भी मिल जाअेगी।

नाथ, हमारा मन आपसे जा मिला है। हम आपके लिअे ही जी रही हैं। आपको छोड़ कर जानेकी हमें ओिच्छा ही नहीं है।

प्रभु : मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ फिर भी आज तो तुम अपने अपने घर लौट जाओ।

गोपियाँ :–अब तो हम कभी नहीं जा सकतीं चाहे प्राण क्यों न चले जायं।

अब प्रभु निरुत्तर–से हो गये। उन्होंने पूछा :–क्या ओिच्छा है तुम्हारी ? क्या स्वागत करुं तुम्हारा ?

गोपिया :–नाथ, बस, केवल आपके अधरामृतका दान दीजिअे कि जिससे आपका कभी वियोग ही न हो सके। हमें नित्य संयोगका दान चाहिअे।

गोपियोंने अधरामृतकी मांग की।

आरंभमें ही कहा गया है कि भागवतमें समाधिभाषा प्रधान है, लौकिक नहीं। अधरामृतका भी विशिष्ट अर्थ है।

पृथ्वीका अेक नाम है धरा।
धरति इति धरा।
धरायाः अमृतं धरामृतं।
धरामृतं न भवति इति अधरामृतं।

पृथ्वीको धरा कहते हैं क्यों कि वह सभीका धारण और पोषण करती है। पृथ्वीका अमृत धरामृत है। जो अिस पृथ्वीका नही है ऐसा अमृत अधरामृत है। अधारामृतका अर्थ हुआ प्रेमामृत, ज्ञानामृत। जिस अमृतका कभी नाश नहीं हो पाता है वह प्रेमामृत और ज्ञानामृत ही है।

हे नाथ! हे प्रभु, हमें अुस ज्ञानामृतका दान करें कि जिसे पाकर ओश्वरसे-आपसे पृथकता-द्वैतका भाव ही न रहे। अैसा ज्ञान दीजिअे कि आपसे हमें कदी वीछड़ना न पड़े।

जब तक अ-धरामृत-प्रेमामृत-ज्ञानामृत न मिला हो तब तक हृदयमें अग्नि धधकती रहती है। सो अैसा ज्ञान दीजिअे-कि सभीमें हम आपका ही दर्शन करती रहें।

प्रत्येकमें ओश्वरका अस्तित्व है अैसा मानकर व्यवहार करोगे तभी सारा जगत गोकुल बन जाअेगा, वैकुंठ बन जाअेगा।

परस्पर देवो भवः।

गोपियोको सांसारिक सुखोंकी कोओी अपेक्षा नहीं थी। ये तो सभी लौकिक सुखोंका त्याग करके आओी थीं। उनकी मांग लौकिक अमृत-धरामृतकी नहीं, अधरामृत-अलौकिक अमृतकी है।

नाथ, मैं अैसा ज्ञानामृत चाहता हूँ कि जिससे हम दोनोंका कभी वियोग न हो सके, नित्य संयोग रहे। आपसे दूर होंगे तो माया फिर सर पर सवार हो जाअेगी।

आप अैसा ज्ञानामृत दें कि आपके स्वरुपसे नित्य संयोगका ही अनुभव होता रहे। आपका वियोग ही करुणतम दुःख है और आपका संयोग चरम सुख।

प्रभुने कहा :-नित्य संयोगरुप अधरामृत देना या न देना मेरी अिच्छा पर निर्भर है। अैसा दान मैं तुम्हें देना नही चाहता। तुम्हें अधरामृत न हूँ तो?

सखियाँ :-अधिक अकड़ मत दीखाअिअे। अंतिम उपाय हमारे हाथोंमें ही है। हम आपको अपने लिअे नही किंतु आपकी कीर्ति कलंकित न हो जाय अिसीलिअे मना रही हैं। आपकी कीर्तिकी वृद्धिके लिये ही हम आपसे प्रार्थना कर रही हैं। यदि हमें नित्यसंयोगरुप अधरामृत देंगे तो आपकी ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अन्यथा हम विरहाग्निसे शरी को भस्मीभूत कर देंगी।

हमने सुना है कि मृत्युकी अंतिम पलोंमें जिसका चिंतन किया जाय वह उसे मिलता है। शास्त्रानुसार, अंतकोलमें जिसका स्मरण करते हुअे देहत्याग किया जाय उसीमें जीव लीन हो जाता है। हमारे मनमें अन्य कोओी भी नही है। हम अपनी अंतिम सांस तक आपका ही स्मरण, ध्यान चिंतन करेंगी और आपका नाम जपते

हुअे प्राणत्याग करेंगी। सो आप तो हमें मिलेंगे ही। हम जीते जी चाहे आपको न पा सकें, मरनेके बाद तो पाअेंगी ही। किंतु लोग क्या कहेंगे? वे कहेंगे कि यह कृष्ण कितने निष्ठुर हैं कि गोपियोंने विरहाग्निमें जलते हुअे प्राण त्याग किअे फिर भी कृपा न की। उन गोपियोंका प्रेम तो हार्दिक था किंतु कृष्ण पत्थरहृदयी, कठोर था।

नाथ, प्राणत्याग करनेमें हमें कोअी आपत्ति नहीं है। किंतु हम चाहती हैं कि आपकी अपकीर्ति न हो। अिसीलिअे हम आपको मना रही हैं।

प्रभु, आप ता सर्वज्ञ, सर्वव्यापी हैं अतः आपसे मिलन तो होना ही है। ज्ञानमार्गमें प्राप्तकी प्राप्ति है और भक्तिमार्गमें भक्तिकी। किंतु हम यह नहीं चाहते कि आपकी जगहंसाअी हो।

गोपियोंके ये वचन सुनकर श्रीकृष्णने पराजय मान ली। अिसी कारणसे तो गोपियोंके उन वचनोंकी महाप्रभुजीने जयकार की है।

तासां वाचो जयंति हि।

वैसे तो भगवानकी पराजय न तो कभी हुअी और न कभी होगी। किंतु गोपियोंके साथ बातचीतमें गोपियोंकी विजय हुअी है।

यह तो जीव और अीश्वरका वार्तालाप है। जीवकी कसौटी कर लेने के बाद ही वे उसे अपनाते हैं। गोपियोंकी हर प्रकारसे परीक्षा कर लेने पर ही श्रीकृष्णने उनको अधराकृत-दिव्यरस-अद्वैतरसका दान दिया।

प्रभुने सोचा कि अिन गोपियोंका प्रेम सच्चा है। यदि मैं आज अिन्हें दूर हटाअुगा तो वे प्राणत्याग करेंगी। प्रभुको विश्वास हो आया कि जीव शुद्ध भावसे मुझे मिलने आया है तो उसे अपना लिया।

प्रभुने अेक साथ अनेकस्वरुप धारण किअे। जितनी गोपियाँ थीं उतने स्वरुप बना लिअे और प्रत्येक गोपीके साथ अेक अेक स्वरुप रख कर रासका आरंभ किया। अष्ट सखियाँ सेवामें उपस्थित थीं। हज़ारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके संमुख उपस्थित हो सका है। प्रभुने हरेक गोपियोंको छातीसे लगा कर प्रगाढ़ आलींगन दिया। गोपियोंको-शुद्ध जीवोंको परमानंद प्राप्त हुआ।

जीव आज अीश्वरमय हो गया। वे दोनों अेक हो गअे। अिस मिलनसे जीव और अीश्वर दोनोंको आनंद हुआ।

गोपियाँ कृष्णमय, भगवानमय हो गअीं। सभी हाथोंसे हाथ मिला कर नाचने लगे।

यह तो ब्रह्मसे जीवका मिलन हुआ है। अिस प्रकार अद्वैत सिद्धांतके आचार्य शुकदेवजीने रासलीलामें अद्वैतका वर्णन किया है।

रासमें साहित्य, संगीत और नृत्यका समन्वय होता है। अिस रासलीलामें कामका अंश मात्र भी नहीं है। देव, गंधर्व, नारदजी आदिने भी आकाशसे अिस लीलाको निहारा। निहारते निहारते ब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ

निष्काम तो हैं फिर भी देहभान भूल कर अिस प्रकार पराअी नारीसे लीला करना शास्त्रमर्यादाका भंग ही है। कृष्णावतार धर्ममर्यादाके पालनके लिअे है, स्वेच्छाचार करनेके लिअे नहीं। ब्रह्माजी रजोगुणके अधिष्ठाता देव हैं। जिसकी आँखोंमें रजोगुण है वह हर कहीं वैसा ही देखता रहता है। ब्रह्मा सशकीत हुअे।

श्री कृष्ण अिधर सोच रहे हैं कि अिस बूढ़ेको धर्म मैंने ही तो सीखाया था। और अब वह आज मुझे सीखाने जा रहा है। ब्रह्मा यह नहीं जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं, धर्मका फल है।

प्रभुने अेक और खेल रचा। सभी गोपियोंको भी अपना स्वरुप दे दिया। अब कृष्ण ही कृष्ण दीखाअी दे रहे थे। गोपी थी ही नही। सभी पीतांबरधारी कृष्ण हैं और अेकदूजेसे रास खेल रहे हैं। रमा रमेशो।

ब्रह्माजीने अब मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नही है। श्री कृष्ण गोपीरुप हो गअे हैं। ब्रह्माजीने कृष्णको प्रणाम किया।

रासविहारी लालकी जय।

वह विजातीय तत्त्वका, स्त्रीत्व और पुरुषत्वका नही, अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्री कृष्णमय, प्रभुरुप बन गअीं। ब्रह्मरुप हो जानेके बाद जीवका स्वत्व कहाँ रहा? ब्रह्माजीने क्षमायाचना की।

फिर जितनी ग पियाँ थीं उतने ही स्वरुप प्रभुने धारण किअे और सभी गोपियोंको दिव्यानंदका दान दिया।

यदि अिस लीलामें कामका हेतु होता तो बंद कमरेमें की जाती। किंतु यह तो खूले मैदानमें हुअी थी।

यदि अिस लीलामें लौकिक कामाचार हाता तो देवगण अिसे निहारनेके लिअे न आता।

ब्रजमें रासलीलामें ग्यारह वर्षसे कम उम्रके लड़के-लडकियाँ हिस्सा लेते हैं। क्यों कि अिस उम्रसे उपरके लड़के-लड़कियोंमें काम-विकारका आरंभ होने लगता है।

शक्तिके साथ साथ कामवृत्ति भी बढ़ती जाती है। मनमें काम जागते ही रासविहारी श्री कृष्णका ध्यान करोगे तो काम नष्ट होगा। कामको मारनेका और कोअी भी उपाय नही है।

गोपियाँ चाहती हैं कि श्री कृष्ण उनके सर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दें कि जिससे कामका नाश हो जाय।

अीश्वरकी कृपा होने पर लौकिक काम, रतिपतिका नाश होता है।

तन्नौ निधेहि करपङ्कजमार्तबंधो शिरस्सु च किंकरीणाम्।

पुरुषत्व तो अभिमान और अहम्का सूचक है। अीश्वरके घरमें पुरुष अर्थात् अभिमानता कोअी स्थान नहीं है। जो जीव गोपीभाव-नम्रतासे जाता है उसे प्रवेश मिल जाता है।

नारदजी अफसोस करने लगे कि वे पुरुष रूपमें आनेके बदले स्त्रीरुपसे आजे होते तो उन्हें रासरसकी प्राप्ति हो जाती। नारदजी क्या जाने कि-

पुरुष तो अेक पुरुषोत्तम
और सब व्रजनारी है।

अितनेमें राधाजीने नारदजीके म्लान वदनको देखा। वृंदावनकी अधीश्वरी राधिका यह नहीं चाहिती कि वृंदावनके किसी भी अतिथिको किसी प्रकारका भी कष्ट या दुःख हो। उन्होंने नारदजीसे कारण पूछा।

नारदजी :-मुझे श्री कृष्णसे रास खेल कर गोपियों-सा आनंद पाना है।

राधाजी :-आप राधाकुंडमें स्नान करेंगे तो रासलीलामें प्रवेश मिलेगा।

राधाकुंडमें स्नान करनेसे नारद नारदी बन गअे। उन्होंने सोच लिया था कि यदि परमात्मा मिलते हों तो नारी बननेमें क्या आपत्ति है। आज तक पुरुषत्वके अभिमानने ही तो मुझे प्रभुसे अितना दूर रखा है। आज तक मैं अिसी अभिमानमें डूबा रहा कि मैं पुरुष हूँ, बड़ा कीर्तनकार हूँ।

गोपियोंने अपना स्त्रीत्व छोड़ दिया और नारदजीने अपना पुरुषत्व।

सांसारिक धर्मोंका त्याग करके प्रभुकी ओर जाना ही तो जीवका धर्म है। देहभान, पुरुषत्व-स्त्रीत्वकी भावना प्रभुमिलनमें बाधक है। अैसा देहभान छोड़े बिना जीव अीश्वरके निकट जा नहीं पाता। अभिमानी जीव रासलीलामें प्रवेश पा नहीं सकता। गाय समान नम्र, गोपी बन कर जाओ। वैसे तो पुरुषत्व अहंभावका प्रतीक है और स्त्रीत्व नम्रताका। फिर भी प्रभुसे मिलनके लिअे तो ये दोनों आवरणोंका त्याग करके शुद्ध जीव बनना आवश्यक है।

अपनी विद्या, ज्ञान, कीर्तनकारत्वका अभिमान नष्ट हुआ तो नारदजीको रासलीलामें प्रवेश मिला। वे गोपी बन कर रासलीलामें गअे।

गोपी-नम्रको प्रभु रासलीलामें प्रवेश देकर आनंद देते हैं। गोपी-नम्र जीवको ही प्रभु अपनाते हैं।

गोपियोंको श्री कृष्णसे प्रेम था, मोह नहीं।

आत्माका चिंतन प्रेम उत्पन्न करता है और शरीरका चिंतन मोह। अपने प्रिय पात्रके आत्माका स्मरण, चिंतन, ध्यान कीर, शरीरका नहीं।

प्रेममें अतिशय धीरज आवश्यक है। धीरज भी कैसी? रुक्मणीने अपने अेक पत्रमें श्री कृष्णसे लिखा था, चाहे कितने भी जन्म मुझे लेने पड़े, किंतु वरुंगी तो आपको ही।

यर्ह्यम्बुज क्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्।
भा. १०-५२-४३

भागवत त गोवर्धननाथजीका वाङ्मय स्वरुप है।

जब तक नामके साथ संबंध नहीं हो पाअे तब तक नामी-प्रभुके साथ संबंध कैसे हो पाअे ?

भागवत परमात्माका प्रत्यक्ष नामस्वरुप है जो भगवानसे संबंध जोड़ देता है।

दशम स्कंध तो भागवतका हृदय है। मानवजीवनका अंतिम लक्ष्य है रासलीला। अीश्वरको प्राप्त किअे बिना जीवको शांति मिल नहीं पाअेगी। जीव अीश्वरके साथ अेक हुआ नहीं कि मुक्त हो गया।

यदि तुम भगवानसे मैत्री करोगे तो वे तुम्हें भी सुदामाकी भांति भगवान बनाअेंगे।

यह जीव कुछ साधन करता नही है फिर उसे अनुभव कैसे हो पाअे ?

केवल चित्तशुद्धिके लिअे सत् कर्म करना है। सत् कर्म करनेके लिअे कोअी विशेष मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं है। अिसी क्षणसे आरंभ करो सत्कर्मोंका।

बातोंमें, चर्चा-विचारणामें समयका व्यय न करो। विचारमें समय गंवाओगे तो आचारके लिअे समय कहाँसे लाओगे ?

आज तक रुपये-पैसेके पीछे भागते रहे। अब ज़रा भगवानके पीछे भी तो दौड़ो।

आजकी अशांतिका यही कारण है कि जीवने अीश्वरको भूला दिया है। मनुष्य राजा बने या स्वर्गका देव, राय हों या रंक, विद्वान हो या मूर्ख. उसके लिअे शांति नहीं है। जीव अीश्वरसे जा मिलेगा तभी शांति प्राप्त होगी।

भगवान तो स्वयं आनंदस्वरुप हैं। उन्होंने अपने आनंदके लिअे नही, गोपियोंको आनंददान करनेके लिअे रासलीलाका आयोजन किया था। गोपियोंको परमानंद मिला। जीव और अीश्वरका मिलन हुआ।

परमात्माके साथ मिलन हो जानेके बाद भी साधना तो करते ही रहना होगा। साधन करनेसे कअी सिद्धियाँ मिलेंगी और परमात्मा भी। किंतु साधन न छोड़ा जाय।

मनका तो अंतिम सांस तक कभी विश्वास न करना। यदि भगवान सेवा और जप बंद कराना चाहें तो उनसे भी कह देना, नाथ, मैं आपकी सभी आज्ञाओंका पालन करुंगा किंतु जप-सेवा नहीं छोड़ूंगा।

सेवाकी जीते जी तो कोअी समाप्ति ही नही है। सेवा तो अंतिम साँस तक करनी ही पड़ेगी। अंत तक नियमित रुपसे जप, सेवा, कीर्तन करते रहो।

थोडी-सी साधना कर लेने पर मनुष्यको सिद्धि मिलती है, उसके वचन सच होने लगते हैं। सिद्धिके साथ प्रसिद्धि और लोगोंकी भीड़ आती है। अैसा होने पर गर्व, अभिमान आ जाता है। और अभिमान लाता है पतन। साधुओंको कअी बार उनके शिष्य चापलुसी करके बीगाड़ते हैं। मेरापन आते ही साधना उपेक्षित होती

है। साधु सोचता है, हां सेवा तो होती रहेगी फुरसदके समय। अभी तो मैं सेवकोंकी सेवाका लाभ ले लूं। मैं सिद्ध हूँ सो मनसे सेवा कर लूंगा। यह बात ठीक नहीं है।

तुकाराम महाराजने कहा है—

आधी केला सत्संग
तुका झाला पांडुरंग
त्यांचे भजन राही ना,
भूल स्वभाव जाओी ना।

मेरे प्रभुने मुझे अपना लिया है। प्रेम बढ़ता आ रहा है। हम दोनों अेक ही तो हैं। किंतु भजन करनेकी आदत छूटती ही नहीं है।

अीश्वरके दर्शन हो जानेके बाद भी जपसेवा-ध्यान आदि साधनोंका त्याग न करना। अन्यथा माया आ घेरेगी।

कुछ लोग साध्यकी प्राप्ति हो जाने पर साधनकी उपेक्षा करने लगते हैं। यह ठीक नहीं है। साधनमें शिथिलता आअेगी तो मन गरबड़ करेगा।

बलवान हाथीके लिअे भी अंकुश ज़रुरी है। मनका भी वैसा ही है। उसे अंकुशमें रखनेका साधन है भजन।

भक्तिमें दैन्यभाव आवश्यक है।

चमत्कार होने पर नमस्कार करनेवाले तो बहुतेरे हैं। तुम्हें तो बिना चमत्कारके ही नमस्कार करना है। वही तो भक्ति है। भक्तिमें श्रद्धा होगी तो अनुभव भी मिलेगा और ज्ञान भी। और वैसा होने पर भक्ति दृढ होगी।

गोपियोंको अभिमान हो आया। उन्होंने कहा, सभी विषयोंका त्याग करके हम आपके पास आओी हैं। गोपियोंमें अभिमान कहाँसे आया? अरे वह तो उनके मन ही में सूक्ष्म रुपसे छुपा हुआ था।

मनुष्य मानता है कि वह शुद्ध हो गया। किंतु हर तरहसे शुद्ध हो पाना बड़ा दुष्कर काम है।

साधकको तो बड़ा सावधान रहना पड़ता है। जिसका बहुमान किया जाता है वह अभिमानी बन जानेकी संभावना है।

श्रीकृष्णने गोपियोंको मान दिया तो उनको अभिमानसे घेर लिया। गोपियाँ मानने लगीं कि वेसे तो श्रीकृष्ण हमारे प्रति आसक्त थे ही किंतु आसक्त न होनेका दीखावा कर रहे थे। गोपियोंमें अभिमानवश अैसा लौकिक भाव जागा कि तुरंत ही श्रीकृष्ण अदृश्य हो गअे।

भगवानके अंतर्धान होनेका अर्थ क्या है। वैसे तो भगवान सर्वत्र सर्वव्यापी हैं, वे अदृश्य तो हो नहीं सकते। तो अंतर्धान होनेका अर्थ है कि जीवकी आँखों पर अभिमानका परदा छा जाने से प्रभुका दीखाओी न देना।

गोपी-जीव अभिमानसे फूल गअी तो श्रीकृष्ण अदृश्य हो गये।

व्रजवासी मानते हैं कि उस समय श्रीकृष्णने पीतांबरका घूंघट खींच लिया था सो सखियाँ भ्रममें फँस गअी कि वे भी अेक सखी ही हैं।

परमात्मा तो सर्वव्यापक हैं। गोपियाँ उनको बाहर ढूंढ रही हैं किंतु रासमंडलीमें नहीं। भगवानको तो अपने हृदयमें ही ढूंढ़ना है। जीवको अज्ञानवश कुछ सूझता ही नहीं है।

अेक बार विद्याभ्यासके हेतु निकले हुअे दश पंडीतोंको अेक नदी पार करनी पड़ी। सामने पहूँच कर किसी अेक पंडीतने सोचा कि उनमेंसे अेक या तो उस पार रह गया है या तो डूब गया है। उसने गिनती की तो नव ही निकले। सभीने बारी बारीसे गिना। वही परिणाम आया। अब अैसा होनेका कारण यह था कि गिननेवाला अपनेको ही गिनना भूल जाता था।

अब तो बात पक्की हो गअी कि अेक बह गया है। सब रोने लगे।

वहाँसे अेक महात्मा जा रहे थे। उन्होंने पंडीतोंसे रोनेका कारण पूछा। पंडीतोंने बताया तो महात्माने गिन कर बताया कि वे तो दशके दश ही हैं।

अज्ञानके कारण जीव अपने आपको भूला जा रहा था। ज्ञानीने सही स्थिति बताअी। अज्ञानके कारण जो नहीं हो वह दीखाअी देता है और जो है वह नहीं दीखता है।

परमात्मासे साक्षात्कार होने पर भी सावधान रहना। कअी बार ज्ञानी भी साक्षात्कार हो जाने पर अपने आप पर काबु नहीं रख पाता है क्यों कि सिद्धि प्रसिद्धि देती है और प्रसिद्धि अभिमान। अैसा होने पर साधन छूट जाता है और परिणामतः जीव अीश्वरसे विमुख हो जाता है।

परमात्माकी अनुभूति होनेके पश्चात् भी यदि जीव साधन छोड़ दे तो उसका पतन ही होता है।

अब पुंडलीक चरित्र देखें।

पुंडलीककी माता-पिता प्रतिकी अविरास, अतिशय भक्तिको देखकर द्वारिकाधीश उसका दर्शन करनेके लिअे पंढरपुर पधारे।

पिता और माता कुष्ठरोगसे पीडित थे और चिडचिडे स्वभावके हो गअे थे। पुत्र बड़ी लगनसे सेवा करता था फिर भी वे उसका अपमान करते रहते थे। फिर भी पुंडलीक बड़ी नम्रतासे सेवा करता रहता था।

भगवानने आंगनमें आकर पुंडलीकको पुकारा :-पुंडलीक, तेरी मातृ-पितृसेवासे मैं प्रसन्न हो कर तुझे दर्शन देने आया हूँ।

पुंडलीक :-भगवान, अिस समय तो मैं उनकी सेवामें लगा हुआ हूँ। सो कुछ देरके लिअे आप बाहर ही प्रतीक्षा कीजिअे। मैं सेवामेंसे निवृत्त हो कर आपसे मिलने बाहर आअुंगा।

पुंडलीक मानता है कि माता-पिता तो भगवानसे भी बढ़ कर हैं। उनकी सेवा की तभी तो भगवान उससे मिलने आअे हैं। जब साधन हाथमें है तो साध्य कहाँ भाग जाअेगा?

सुख-संपत्ति मिलने पर भी भगनानका भजन मत छोड़ो।

यह तो भक्त ही है जो भगवानसे भी प्रतीक्षा करा सकता है।

भगवानको विश्राम करनेके हेतु पुंडलीकने अेक अींट दी और उस पर खड़े रहनेको कहा। पुंडलीकको बाहर आनेमें देर लगी। भगवान प्रतीक्षा करते हुअे थक गअे तो कमर पर हाथका सहारा लेकर खड़े रहे।

भगवानकी उस मुद्राका अर्थ यह है कि उनके चरणोंका आश्रय लेनेवालेके लिअे संसारसागर कटि भर ही गहरा है। अन्यथा आज तक अिसमें न जाने कितने जीव डूब गअे हैं।

मातापिताकी सेवा पूरी कर लेनेके बाद पुंडलीक बाहर आ कर भगवानसे मिला। उसे प्रत्यक्ष परमात्मा मिले फिर भी उसने साधन नहीं छोड़ा।

यदि साधन छूट जावेगा तो प्रभु अंतर्धान हो जाअेंगे।

रासके समय गोपियोंके मनमें अभिमान आया सो श्रीकृष्ण अदृश्य हो गअे।

अभिमान जागते ही साधन उपेक्षित हो जाता है।

गोपियोंने सोचा कि वैसे तो कृष्ण हमारे सौंदर्यमें लुब्ध थे ही किंतु अनासक्त होनेका दीखावा कर रहे थे।

भगवान अंतर्धान हुअे। वे वहीं थे किंतु गोपियाँ उन्हें देख नहीं पाती थी। भगवान तो उनके हृदयमें समा गअे थे किंतु गोपियाँ उन्हें बाहर ढूंढ़ रही थीं सो मिल न पाअे।

अीश्वरको जाने और आनेकी क्रियाका बंधन नहीं है क्यों कि वे तो सर्वव्यापी हैं।

वैसे अीश्वर तो आपके निकट आते तो हैं किंतु वासनाके आच्छादनके कारण वे दीखाअी नहीं देते हैं।

अीश्वर सभीके हृदयमें हैं फिर भी सब उन्हें देख क्यों नहीं पाते?

जीव जब तक भगवानकी ओर देखता नही है तब तक उसकी वे भी सुध नहीं लेते हैं। भगवान सभी जीवोंसे कहते हैं:-मैं तो तुम्हें अपनानेके लिअे तैयार हूँ किंतु तुम भी तो मेरे पास आओ।

जीव भी गोपियोंकी भाँति बाहर आनंद ढूंढता है, अंदर नहीं। तभी तो भगवान उसे मिल नहीं पाते हैं।

यदि स्त्री, वस्त्र, धन आदि तुम्हें आनंद देते हैं तो उनके वियोगके समय तुम्हें दुःख भी तो होगा। तुम्हारा आनंद स्वाधीन होना चाहिअे, पराधीन नही। पराधीन आनंद दुःखदायी होता है।

दृष्टिको अंतर्मुख करो और परमात्माको अपने हृदय हीमें निहारो।

मात्र भगवान ही आनंदरुप हैं। यह सारा विश्व तो दु:खरुप ही है। गीताने भी अिस संसारको अनित्यम् असुखम् कहा है।

वियोगका अर्थ है विशिष्ट योग। बहिरंगमें वियोग और अंतरंगमें संयोग।

गोपीका मन श्रीकृष्णमें है। वृत्ति कृष्णाकार होनेके कारण अंतरंगमें संयोग और बहिरंगमें वियोग है। सखियाँ वनके हर पत्ते पत्ते और फूल फूलसे कृष्णका पता पूछ रही हैं। कही मेरे श्यामसुंदरको तो नही देखा? कोअी तो बताओ।

वियोगके कारण गोपियाँ अैसी तो बावरी हो गअी हैं कि उन्हें यह भी याद नहीं है कि फूल-पत्ते-वृक्ष तो जड हैं, बोल नहीं पाते। व्याकुल गोपियाँ श्रीकृष्णकी लीलाओंका अनुकरण कर रही हैं।

विरह व्याकुल गोपियोंकी दशा भी तो देखिअे। वह कहती है—

लाली मेरे लालकी जित देखुं तित लाल।
लाली देखन मै गई, मै भी हो गअी लाली ॥

अरे सखी, मैं ही तो हूँ कनैया।

जीवका प्रभुमय हो जाना ही तो ध्यान और भक्तिकी पराकाष्ठा है और फल भी। ध्यान करते करते संसारका विस्मरण हो जाता है। ध्यानमें तन्मयता हो जाने पर 'मेरापन' मीट जाता है और ध्याता, ध्यान तथा ध्येय अेक बन जाते हैं। यही तो है मुक्ति।

गोपियाँ श्रीकृष्णका चिंतन करते हुअे कह रही हैं, अली सखी, मैं ही कृष्ण हूँ।

कृष्णोऽहम् पश्यत गति।
मैं ही तो कृष्ण हूँ।

पहले गोपियाँ अपने आपको कृष्णकी दासी कहती थीं। पहले दासोऽहम् था, अब कृष्णोऽहम् हो गया।

ध्यानमें तन्मयता हाने पर गोपियाँ सभी कुछमें श्रीकृष्णका दर्शन करने लगीं।

सभी देवोंने वाहनके हेतु पशुओंको ही क्यों चुना है? पशु-पंछीके प्रति भी मनुष्य अीश्वरत्वका अनुभव करे अिसी लिअे।

पहले तो सभीमें अीश्वरकी भावना की जाय।

मैं सेवक सचराचर रुप स्वामी भगवान।

सभीमें अीश्वरका अनुभव करनेवाला स्वयं भी अीश्वरमय बन जाता है।

उस गोपीका मुख भी श्रीकृष्णके मुख-सा तेजस्वी हो गया।

जीव जिस व्यक्तिका सतत ध्यान करता है उसकी छायाकृति उस व्यक्तिके मुख पर झलकने लगती है।

अेक गोपीने बालकृष्णका रुप लेकर कालीयनागका दमन करना चाहा।

दूसरी गोपी नाग बनी।

तो पहली गोपी अुस नाग बनी हुअी गोपीके सर पर चढ़ गअी और कहने लगी, दुष्ट कालीय, चला जा यहाँसे। मैंने दुष्टोंका दमन करनेके लिअे ही जन्म लिया है।

यह तो रासकी कथा है। साधारण वक्ता या श्रोता अिसका अधिकारी नहीं है।

शुकदेवजीके दर्शन मात्रसे स्वर्गकी अप्सराओंका काम नष्ट हो गया था। शुकदेवजीने अप्सराओंमें स्त्रीत्वका नहीं, ब्रह्मका ही दर्शन किया था। ब्रह्मज्ञानी तो सुलभ हो सकता है किंतु ब्रह्मदृष्टि रखनेवाला महात्मा मिलना तो अशक्य-सा ही है। जिसकी दृष्टिमेंसे काम नष्ट हो चुका है और जिसका देहभान भूल चुका है, लंगोटी तक छूट गअी है वैसे महायोगी शुकदेवजी अिस कथाके वक्ता हैं।

गोपियाँ भागवतरूप बन गअीं। राधा और कृष्ण अेक ही हैं। वे दोनों अभिन्न हैं। सूर्य और उसकी प्रभाकी भाँति कृष्ण और राधा अेक ही हैं। वे दोनों कभी विभक्त हो ही नहीं सकते। यह विरह तो लीला मात्र थी।

अंतर्धान होनेके समय श्रीकृष्णने राधाजीको भी साथमें लिया। चलते चलते राधाजी थक गअी। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, मुझसे अब चला नहीं जाअेगा। यदि आपको गरज हो तो मुझे आपके कंधों पर उठा लीजिअे। कृष्णने उनको कंधों पर बीठा दिया और स्वयं अंतर्धान हो गअे। राधाजी अेक वृक्षकी डाली पकड़ कर लटक रही थीं। राधाजीके अभिमानको उतारनेके लिअे अैसा किया गया।

वैसे तो राधाजी अभिमानी हो नहीं सकती। यह तो लीला है। वैसे अभिमानी तो जीव ही हुआ है।

अभिमान आते ही जीव उस राधाकी भाँति बीचमें ही लटक जाता है। मनुष्यका शत्रु अभिमान अपने साथ कअी और दुर्गुणोंको भी ले आता है। अभिमानके कारण जीव दुःखी होता है। दैन्य आना सरल नहीं है। जब मनुष्य गुमानमें होता है तब कर्कश शब्द उसे भडका देता है। अीश्वरके ही चरणोंमें बसे रहो कि जिससे मनमें कोअी भी विकार उत्पन्न न होने पाअे।

राधाजीका श्रीकृष्णने बड़ा आदर किया, अपने साथ ले गअे तो राधाजीको अभिमान हुआ।

बहुमान होने पर जीव बहुत अभिमानी होने लगता है। मान, धन मिलने पर तो और भी नम्र बनना चाहिअे।

कृष्ण अंतर्धान हो गअे तो राधाजी पछताने और रोने लगीं। हे नाथ। हे प्यारे। दर्शन दीजिअे।

प्यारे दर्शन दिज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।

जलबिन कमल, चंदबिन रजनी, अैसे तुम देख्या बिन सजनी।

आकुल व्याकुल फिरुं रैनदिन विरह कलेजो खाय।

दिवस न भुख, नींद नहीं रैना, मुख सु कहत न आवै बैना।

क्या कहुं कुछ कहत न आवे, मिलकर तपन बुझाय।

क्युं तरसाओ अंतरयामी, आय मिलो किरपाकर स्वामी।

मीरां दासी जनम जनमकी, पड़ी तुम्हारे पाय ॥

राधाजी कृष्णको पुकारती हुअीं, पछताती हुअी, रोती हुअीं अचेतन-सी हो गअीं। कृष्णको ढूंढ़ती हुअी कुछ गोपियाँ अिधर आ गअीं तो राधाजीको अचेत पाया।

ज्ञानमार्गमें ध्यान प्रधान है। भक्तिमार्गमें भगवानके गुणगान, भजन-कीर्तन प्रधान हैं। अपने दोषोंका निवेदन करते हुअे प्रभुके गुणोंका गान करोगे तो उनको तुम्हारी दया आअेगी।

माधव तो गानप्रिय हैं।

अेक बार वैष्णवोंने देखा कि जगन्नाथजीके नअे नअे वस्त्र रोज रोज फट जाते हैं। भक्तोंने भगवानसे कारण पूछा। जगन्नाथजीने बताया, गीतगोविंदका गान करती हुअी अेक कन्या वनमें घूम रही है। उसको सुननेके लिअे मैं उसके पीछे मारा मारा फिरता रहता हूँ सो वनकी झाड़ियोंमें उलझ जानेसे मेरे वस्त्र फट जाते हैं।

भगवानने भागवतमें कहा है:-मै अपने निष्काम भक्तोंके पीछे पीछे चलता रहता हूँ कि जिससे उनकी चरणरज उड़ती हुअी मेरे उपर आती रहे।

विरहव्याकुला गोपियाँ श्रीकृष्णके गुणगान करने लगीं। यही है गोपीगीत।

गोपियोंने सोचा, यदि जमुना किनारे जाकर स्तुति की जाय तो श्रीकृण अवश्य प्रकट होंगे।

गोपीगीतका पाठ तो बहुतेरे लोग करते हैं किंतु यह पाठ गोपीभावसे करना चाहिअे।

अीश्वरसे मिलनेके लिअे व्याकुल हुआ जीव अिस जगतमें कहीं भी चैन पा नहीं सकता। यदि अत्यंत आर्तस्वरोंसे भगवानको पुकारोगे तो वे आ मिलेंगे। अतिशय आर्द्रतासे गोपीगीत गाया जाय।

दिवसमें हमेशा तीन बार स्तुति करो। गोविंद दामोदर स्तोत्रमें कहा गया है, सुखावसाने, दुःखावसाने और देहावसाने स्तुति करो।

दुःखके प्रसंगोंमें सोचो कि दुःख पहाड़ जितने होते हैं फिर भी भगवानने तो तुम्हारे पापके प्रमाणमें अपेक्षाकृत कम ही सजा दी है।

गोपीगीतका छंद है अिंदिरा। इन्दिरा अर्थात लक्ष्मी। गोपियाँ लक्ष्मी हैं सो गोपीगीत इन्दिरा छंदमें निबद्ध है।

सखियाँ परमात्माकी स्तुति कर रही हैं। कनैया, तेरे ही कारण तो अपनी और वृंदावनकी शोभा बढ़ गअी है। पहले यहाँ सौंदर्य नही था। नाथ, तेरे ही आगमनसे व्रज भूमि शोभायमान हो गअी।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः।

मानव शरीर ही तो व्रज है। यदि अिस शरीरव्रजमें प्रभु प्रगट होंगे तो

उसकी शोभा और बढ़ जाअेगी, उसकी कीमत बढ़ जाअेगी, उसकी जयकार होगी।

व्रज शब्दके अर्थ अिस प्रकार हैः

व्रजति भगवत् समीपं स व्रजः।
ते जन्मना व्रजः अधिकं जयति॥

भगवानके पास ले जानेमें हमें जो सहायभूत होता है वैसा यह शरीर भी तो व्रज ही है।

अिस शरीरकी शोभा वस्त्राभुषणोंसे नहीं, भगवत् भक्तिसे ही बढ़ती है।

नाथ, आपके ही कारण मेरे व्रजशरीरकी शोभा है। आपका प्रागटय होने पर ही हमारी शोभा बढ़ पाअी है।

शरीरका सिंहासन जब काम क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सरसे मुक्त होगा तभी परमात्मा दौड़ते हुअे आअेंगे। तुकाराम और मीराबाअीकी आज भी जयकार होती है कारण उनके शरीर व्रजमें पांव तक नहीं रखा था। उन्होंने अपने शरीर और हृदयको ही व्रज बना लिया था।

बड़े सम्राटोंको जगत भूल जाअेगा किंतु शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मीरांबाअी, तुकाराम, नरसिंह मेहताको कौन भूल सकता है? अिन महापुरुषोंने अपने हृदयगोकुलमें श्रीकृष्णको पधराया था। जगतगुरु शंकराचार्य-सा ज्ञानी आज तक कोअी और हुआ नहीं है। फिर भी वे अपने हृदयमें श्रकृष्णको हमेशा बसाये रखते थे।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर श्री मुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरदनिन्धता नेह किं वधः॥

कनैया, हम तो केवल तेरे लिअे ही जी रही हैं। तेरे बिना काल हमें सताता है।

नाथ, वैसे तो हमें कोअी गरज नहीं है फिर भी शरणागतकी रक्षा करना क्या तेरा कर्तव्य नहीं है?

शरणागत जीवकी उपेक्षा न करें। हर कहीं, हर किसीमें हम आपको ही ढूंढती हैं। त्वां विचन्वते।

भक्त तो सर्वमें अेक अीश्वरको ही ढूंढता है। त्वाम् श्रीकृष्ण सर्वत्र विचिन्वते।

सभीमें जो अीश्वरको ढूंढे वह गोपी है।

हे नाथ। हम आपकी दासी हैं। हम आपकी हैं। दिक्षु तावकाः। हमें दर्शन देनेकी कृपा कीजिअे।

पहला श्लोक प्रभुके गुणगानका, कीर्तनभक्तिका है। प्रभुके दर्शनकी अपेक्षा है सो उसमें दर्शनभक्ति भी है। प्रभुके हेतु ही प्राण धारण किअे हैं अतः आत्मनिवेदन भी है अिसमें। 'दयित'से सख्य, आपकी शब्दसे दास्य आदि साधनरुपा भक्तिके भेद सुचित हैं।

हे नाथ, आपने अजामिलसे पापी पर भी कृपा की थी, तो क्या हम पर नहीं करेंगे ? क्या हमें ही दर्शन नहीं देंगे ?

हे नाथ, आपका चिंतन करती हुअी हम अँधेरी रातमें वनमें मारी मारी भटक रही हैं। हमारी उपेक्षा करना आपको शोभा नही देता।

हे नाथ, हम और तो कुछ मांगती नहीं हैं। हम तो आपकी अशुल्कदासी (विना मोलकी चेरी) हैं। अपनी भक्ति निष्काम भक्ति है। तेऽशुल्क दासिका।

अिन गोपियोंकी बातोंमें आत्मतिरस्कार नही, दैन्य है।

आपके नेत्रोंसे हम बींध गअी हैं। नेत्रबाण द्वारा किया गया वध ही तो है।

हम समझ गअीं। आप दयालु नहीं हैं। आप निष्ठुर हैं। यशोदाजी भोली हैं। उनका अेक भी सद्‌गुण आपमें नहीं आया है। सो आप हमें तडपाते रहें यह कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है।

लाला, तू माखनचोर है। हमारे मनको भी तूने चोर लिया है। और अव हमें यहाँसे दूर करना चाहता है।

कनैया :–मैं तो चोर हूँ, फिर मुझे क्यों पुकारा जा रहा है? चोरकी मैत्री भी कोअी करता है क्या ?

गोपियाँ :–चोरी करनेके लिअे ही तो हम तुझे पुकार रही हैं। तू तो चोरी करता ही है, तेरी आँखें भी चोर ही हैं।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वधुतानलात्।
वृषभयात्मजाद् विश्वतोभयादुषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥

विषमय यमुनाजलसे, अजगर रुपा अधासुरसे, अिन्द्रकी वर्षासे, बीजलीसे, बवंडरसे, दावानलसे, वृषभासुरसे, व्योमासुरसे आदि अनेक प्रसंगों पर सभी प्रकारोंके भयसे आपने हमारी बार बार रक्षा की है।

तो फिर हे कनैया। आज तू क्यों निष्ठुर बन गया है? यदि हमें मारना ही था तो उन आपत्तियोंसे हमारी रक्षा ही क्यों की ?

कनैया, क्या हमारी रक्षा करनेका उपकार नहीं करेगा ?

तूने कालियनाग, अधासुर, बकासुर आदि राक्षसोंसे हमारी रक्षा की और आज विरहासुरसे हमें मारने चला है। उस कालियनागके विषसे भी अिस विरह–विष अधिक दाहक है। अब तो सहा नही जाता। दर्शन दे काना दर्शन दे।

यदि हमें मारना ही था तो पहले प्रेमदान क्यों दिया ?

यदि मुझे दर्शन नहीं देगा तो मैं लोगोसे कह दूंगी कि कनैया नंदयशोदाका पुत्र नहीं है। मैं जानती हूँ कि तू कौन है।

कनैया :–जरा मुझे भी तो बता कि मैं कौन हूं।

सखियाँ ज्ञानभक्त हैं, ज्ञानी हैं सो परमात्माके स्वरुपको भली भाँति जानती हैं। वे सो कहने लगीं, हम आपको जानती हैं और जान कर ही प्रेम करती हैं।

न खलु गोपिकानंदनो भवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक।
विखनसार्थितो यिश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतांकुले ॥

आप सभीके हृदयोंमें अंतर्यामीके रूपसे विराजमान नारायण हैं। समस्त शरीर-धारिओंके हृदयमें बसे हुअे साक्षीभूत हैं।

कनैया :–क्या अिच्छा है तुम सबकी ?

गोपी :–हे कांत ! हे प्यारे ! आपके वरद् हस्त अैसे शक्तिमान हैं कि हमारे अभिमानको दूर कर सकते हैं। आप अपना मंगलमय हस्त हम सबके मस्तक पर रखिअे।

अिस पाँचवें श्लोकका तात्पर्य शरणभक्ति है। अिसके पहलेके श्लोकमें प्रभुके माहात्यका वर्णन था। भगवान महान, समर्थ, अप्रतिम प्रभावी हैं अैसी प्रतीति होने पर हृदय उनकी शरणयाचना करे यह स्वाभाविक है। जीव शरणभावसे उनको अधिक पहचान सकता है। प्रभुप्रेमके मार्ग पर गोपीजन आगे बढ़ता हुआ शरणयाचना करता है कि जिससे सभी प्रकारके भयोंसे मुक्ति मिल पाअे।

श्रीकृष्ण :–अितनी सारी सखियोंमेंसे मैं किस किसके सर पर हाथ रखूँ ? समय भी बहुत लगेगा। सो मैं पहले मेरे दूसरे भक्तोंके काम निपटा लूँ, फिर तुम सबको स्पर्शलाभ दूंगा।

गोपी :–नहीं, काना ! उनका काम बादमें कर लना। पहले हमीं पर कृपा कर। हम तेरी हैं, तू हमारा है। तुझ पर सबसे पहला अधिकार हमारा ही है। तू व्रजजनार्तिहन् है। व्रजवासीके दुखोंका नाशकर्ता है। अन्य भक्त तो व्रजवासी हैं नहीं। कनैया, हम अेक ही गाँवके वासी हैं। सो तुझ पर पहला अधिकार हमारा है। तेरा अवतार ही तो हम व्रजवासियोंके उद्धारके लिअे हुआ है।

व्रजभक्त किसे मानेंगे ? क्या गोकुल–मथुरा–वृंदावनमें रहनेवालोंको ही ? नहीं। अैसा नहीं माना जा सकता। जो निःसाधन भक्त है वही व्रजभक्त है। साधन करते हुअे, साधनसे कभी तृप्त न होना ही निःसाधनता है। अैसी भक्ति करनेवाला हर कोअी व्रजवासी है। अपने पाप पर्वत जितने हैं और साधन अल्प। सभी पाप कैसे जल पाअेंगे ? भगवत् कृपासे ही पाप जल सकते हैं। अैसी नम्रता आनी चाहिअे। सभी प्रकारके साधन करते हुअे भी अपनेको निःसाधन माननेवाला जीव ही व्रजभक्त है। दीनहृदयी ही व्रजभक्त है।

कनैया, तेरे और भक्त तो कुछ न कुछ साधन करते ही होंगे। वे तो योगी, ज्ञानी या कर्मनिष्ठ होंगे। उनको तो किसी न किसी साधनका अवलंबन है और हम तो निरावलंबा हैं। हम तो तेरे ही सहारे हैं। हम तो गाँवकी अनपढ गोपियाँ हैं। तू ही हमारा आधार है।

जीव निराधार बन नहीं पाता है अतः वह भगवानको पा नहीं सकता है। गोपियाँ तो ध्यानादि सब कुछ करते रहने पर भी मानती हैं कि वे कुछ भी नहीं

कर पाती हैं। अैसी भावना रखनेवाला ही व्रजभक्त है। साधनकी अकड़ रखनेवाला भक्त व्रजवासी हो नहीं सकता।

कनैया, हम तो यह भी नही जानती हैं कि तेरा ध्यान किस प्रकार किया जा सकता है।

हम गाँवकी अनपढ़ अबला तेरी शरणमें आअी हैं। हम निःसाधन हैं, तुझ पर पहला अधिकार हमारा है।

सभी साधन करने पर भी जिसे साधनका अभिमान न हो वही निःसाधन भक्त है।

सत्कर्म और साधन अभिमान वढ़ा देता है सो सत्कर्म और साधनकी पूर्णाहूतिमें मंत्र बोला जाता है।

मंत्रहीनं क्रियाहीनं।

साधन करो किंतु हृदयसे नम्र बनो। उद्धत जीव कृष्णको पसंद नही है।

मैं तो निरभिमानी हूँ अैसा मानना और कहना भी अभिमान ही है। जब हृदय नम्र बनता है तब हरकहीं भगवानके दर्शन हो पाते हैं।

तेरा अवतार व्रजभक्तोंके लिअे ही है। सो तेरा परम सुंदर सांवला मुखकमल हमें दीखा।

जलरुहाननं चारु दर्शय।

मेरे दर्शनके बाद तुम्हारी क्या अिच्छा बाकी रहेगी?

अंतरंगके संयोग और बहिरंगके वियोगकी यह बात है। अतः श्री कृष्ण प्रत्यक्ष बातचीत कर रहे हों अैसा भास होता है।

गोपियाँ:—हे कामविनाशक। अपनी सभी कामनाअें तू नष्ट कर सकता है।

न कृन्धि हृच्छयम्।

अपने कामका नाश करो। गोपियॉ कामसुखकी नहीं, कामनाशकी अिच्छा करती हैं।

संत्-गुरुके हाथोंमें कामनाशकी शक्ति है।

आपका हाथ अपने मस्तक पर फिरते ही अपनी बुद्धिमेंसे कामवासना नष्ट हो जाअेगी। आपके चरण अपने हृदय और मस्तक पर पधराअिअे।

कृष्ण: क्या मेरे चरण अितने सुलभ हैं कि हर किसीके हृदय पर पधराता फिरुं?

गोपियाँ: तेरे चरण गायोंके लिअे सुलभ हैं तो क्या हमें ही लाभ न मिल पाअेगा? हम तो गायोंसे भी अधिक दीन बन कर आअी हैं। तेरे चरण तो तृणचरानुगं है। गायोंके लिअे तेरे चरण सुलभ हैं क्यों कि तुम दोनों अेक-दूसरेके आगेपीछे चलते रहते हो। क्या गायोंके लिअे सुलभ और हमारे लिअे ही तेरे चरण दुर्लभ?

भगवान :-क्या मुझे गोपाल मानते हो तुम ?

गोपियाँ : नहीं नहीं। तुम तो श्रीनेकेतनम् हो। तुम्हारे चरण तो लक्ष्मीजीके निवासस्थान रुप हैं। तुम्हारे चरण तो लक्ष्मीजी नित्य अपनी गोदमें रख कर सेवा करती हैं।

श्रीकृष्ण :-मैं मेरे चरण तुम्हारे हृदय पर पधरानेके लिअे तैयार तो हूँ किंतु अेक डर भी है मुझे। तुम्हारे अभिमानसे विषैले हृदय पर मैं चरण पधराअूं तो अुसका असर मेरे चरणों पर भी हो जाय तो ?

गोपियाँ :-आप तो हमारी भावनाकी हँसी उडाते हैं। आप तो फणि फणार्पितं, विषैले कालियनागके मस्तक पर आरुढ होकर नर्तन करनेवाले हैं। कालियनागका विष कुछ असर न कर पाया तो हमारे हृदयका विष आपको क्या कर पाअेगा ? और अगर हमारे हृदय विषैले हों भी फिर भी तुम्हारे चरण उसे अमृत बना देंगे।

तुम्हारे चरण तो सभी प्रणाम करनवालोंके पापको मीटा देनेवाले हैं।

प्रणदेहिनां पापाक्तर्शनं।

गोपियाँ विनति करती हैं :-हे नाथ, तुम्हारे अधरामृतका पान करा कर हमें जीवतदान दो।

ऽधरसीधुना ऽउणाययस्व

श्रीकृष्ण :-तुम जी रही हो फिर भी कैसा जीवतदान मांग रही हो ? तुम्हारे प्रेममें कुछ कपटभाव है। हमने तो सुना है कि दशरथजीने रामजीके वियोगके कारण प्राणत्याग किया था।

राम राम कहि राम कहि राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरहँ राउ गयउ सुरधाम॥

दशरथजीका रामप्रेम हार्दिक था सो उनका विरह होते ही प्राण त्याग दिया। यही है सच्चा प्रेम।

मेरे वियोगमें तुम जी रही हो, मुझसे बातें भी कर रही हो। तुम्हारे प्राण चले नहीं गये हैं सो मुझे लगता है कि तुम्हारा प्रेम सच्चा नहीं है। यदि तुम्हारा प्रेम सच्चा होता तो तुमने दशरथकी भाँति प्राणोंका त्याग किया होता।

कृष्णके अैसे वचन सुन कर गोपियाँ आर्तस्वरसे गाने लगीं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं
भुविगुणति ते भुरिदा जनाः॥
भा. १०-३१-९

गोपी :-क्या कह रहे हो तुम ? हमारे प्राण तो सबके जा रहे थे किंतु तुम्हारे कथामृतपानके लोभसे अब तक रुके हुअे हैं। तुम्हारा कथामृत और नामामृत अिन्हें रोके हुअे हैं। तुमने हमसे मिलनेका वचन दिया था। उस वचनके पूरे होनेकी

आशामें हम जी रहे हैं। वैष्णव तो जीवनकी अंतिम साँस तक परमात्मासे मिलनेकी आशामें जीता रहता है।

प्रभु! तुम्हारी लीलाकथा तो अमृतस्वरुपा है जो श्रवण मात्रसे पापोंका नाश करती है। उसका श्रवण मंगल, आनंददायी है। यज्ञकथा सुननेसे आनंद नहीं होता है। विरहाकुल जीवके लिअे रासलीला जीवनरुप है, जीवनसर्वस्व है। बड़े बड़े ज्ञानी महात्माओंने, भक्त कवियोंने अिसका गान और श्रवण किया है। यह कथा सभी पाप-ताप तो मीटाती ही है और सुनने मात्रसे परम कल्याण भी करती है। यह अतिसुंदर, मधुर और शांतिदायक है। स्वर्गका अमृत तो पुण्योंको जलाता है जब कि यह कथा तो पापोंको जलाती है। जो व्यक्ति अिस लीलाकथाका गान करता है वही अिस जगतमें सबसे बड़ा दानी है।

रामजीने हनुमानजीसे पूछा था कि जानकी उनके विरहमें अपने प्राणोंकी रक्षा किस प्रकार कर रही है। तब हनुमानजीने उत्तर दिया—

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥

आपका नाम रात-दिन रक्षा कर रहा है। आपका ध्यान द्वार है। नेत्र अपने चरणों ही में लगाअे रहती हैं। तो फिर प्राण बाहर निकले भी तो कैसे? वैसे तो विरहके कारण प्राण निकल ही जाते किंतु बाहर निकलनेका कोअी मार्ग भी तो नही है। यदि आपका ध्यान और नाम छूट गया तो प्राण भी निकल जाअेंगे। किंतु उनको आपसे अितना तो प्रेम है कि आपका नाम और ध्यान छूट नहीं पाअेगा। और नाम-ध्यान गअे विना प्राण जा नही सकते। जानकीके मन, वचन और कर्म तीनों आपसे ही संबद्ध हैं सो उनके प्राण जा नहीं सके हैं।

कृष्णका कथामृत प्राणको विरहावस्थामें भी रोके रखता है। भगवानकी कथा भी उनके छ गुणोंसे युक्त है। वह मोक्षदा है, परमानंदरुप है, अमृत है, तप्तोंका जीवन है। संसारतापसे पीडितोंकी पीडाका निवारण करती है। ज्ञानी भी कथामृतकी स्तुति करते हैं। पापको दूर करनेवाली है। अिसमें वीर्यधर्मका सूचन है। श्रवणके लिअे कल्याणकारी है। कथामृतमें यश धर्म है, लक्ष्मीयुक्त है। सर्वत्र व्याप्त है। भगवानके छ गुण अैश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, वैराग्य और श्री अिस कथामृतमें भी हैं।

वस्त्रदानसे अन्नदान बढ़कर है किंतु कथादान सर्वश्रेष्ठ है। निरपेक्षतः कथा करनेवाला ही सच्चा भक्त है। ज्ञानदानसे जीवन सुधरता है। जीवको हमेशाकी शांति मिलती है।

कनैया, तेरे लिअे हमने सर्वस्वका त्याग किया है। नाथ, तेरे लिअे तो हमने लोकलाज तक छोड़ दी है और आज तू निष्ठुर हो गया है।

भाअी छोड़ा, बंधु छोड़ा, छोड़ा सगा सोई।
मेरे तो गिरधर गोपाल, दुसरा न कोअी॥

पति सुतान्वय भ्रातृबांधवान ति विलघय
तेऽन्त्यच्युता गताः। गतिविदस्तवोद्गीत मोहिताः।

अिस श्लोकमें गोपियोंका संन्यास प्रगट हुआ है।

अपना चित्त अब अेक क्षण भी किसी अन्य वस्तुमें नहीं लगता है।

कोअी वस्तुमें क्षण चित्त नव चोंटे,
अलबेलो आवी बेठो हैये जी रे;
दयाना प्रीतमजीने अेटलुं जइ कहेजो,
क्यां सुधी आवां दुःख सहीअे जी रे॥

सो हमें शीघ्र ही दर्शन देनेकी कृपा करें।

मुझे दो दर्शन गिरिधारी,
तोरी सांवरी सुरत पर वारी रे।

यह विरहवेदना असह्य है जिसे मीरांबाअीने अिन शब्दोंमें प्रगट किया है—

एसी लगन लगाय कहाँ तुं जासी,
कहाॅ तु जासी अैसी लगन लगाय।
तुम देखे बिन कल न पडत है,
तड़प तड़प जीव जासी॥ ॥

गोपियोंकी कृष्णदर्शन लालसा भी कैसी है?

गोपियाँ आॅखोंकी पलकें बनानेवाले ब्रह्माको भी कोसती हैं। क्यों कि ये पलकें हिलतीं रहनेके कारण दर्शनमें बाधा हो जाती है। पलकें झपकनेसे अेक क्षण तक हम आपके दर्शनसे वंचित हो जाती हैं। अेक क्षणका विरह भी हमारे लिअे तो असह्य है। आॅखोंकी पलकें बनानेवाला ब्रह्मा जड है। यदि उसने पलकें बनाअी ही न होतीं तो हम आपके दर्शन निरंतर कर सकी होतीं।

कुटिल कुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम।

नाथ, आपके दर्शनके लिअे प्रतीक्षा ही कराते रहेंगे आप?

तुझे ढूंढ़ते ढूंढ़ते तो मेरी आँखें भी थक-हार गअी हैं। जबसे तू गया है, हम बड़ी बेचैन हैं, हमें शांति नहीं है।

दरस बिन दुखत लागे नैन।
जब तें तुम बिछुड़े पिव प्यारे, कबहु न पायो चै।
शब्द सुनत मेरी छतियाँ कांपै, मीठे लागें बैन।
एक एकटकी पंथ निहारुँ, भई छमाहि रैन।
बिरह बिथा कासों कहुँ सजनी, बह गई करवत अेन।
मीरांके प्रभु कब रे मिलोगे, दुःख मीटन सुख दैन॥

दुखहर्ता और सुखकर्ता तुम हमें कब मिलोगे, दर्शन कब दोगे?

असह्य विरहवेदनाके कारण गोपियाॅ रोने लगी। अकेले गीतसे तो कुछ भी बन नहीं पाया। केवल गुणगान नहीं, रुदन भी आवश्यक है। गोपियाँ रोने लगीं तो परमात्मा प्रगट हुअे।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः।

कृष्णदर्शनकी अिच्छुक गोपियाँ थक-हार कर बड़े जोरसे रोने लगीं। प्रभुके लिअे साधन करके थका हुआ जीव रोने लगता है तो प्रभु दयावश प्रगट होते हैं।

गोपियोंकी भाँति रो रो कर तुम भी प्रभुको प्राप्त कर सकते हो।

रामकृष्ण परमहंसने कहा है:-पत्नी, पुत्र आदिकी मृत्युके समय या धनसंपत्तिको पानेके लिअे लोग आँसूकी सरिता बहा देते हैं। किंतु अीश्वरके दर्शन न हो पानेके दुःखसे भगवानके लिअे आँसूकी अेक बूंद तक गिरानेवाले कितने हैं?

अपने अनुभवका वर्णन करते हुअे उन्होंने कहा है: संध्या समय भी मुझे माके दर्शन नहीं हो पाते तो मैं रो उठता, मा! आजका दिन भी तेरे दर्शनके विना ही चला गया। मैं रोता हुआ धरती पर गिर जाता। तो अंतमें उनका दर्शन हुआ। दर्शनप्राप्तिके लिअे अतिशय व्याकुलतासे, आँखोंसे आँसूधारा बहाओ। वे अवश्य दर्शन देंगे।

गोपियोंका आक्रंद कृष्णसे देखा न गया। गोपियाँ अभिमान रहित होकर नम्र बन कर रो रही थीं सो कृष्ण प्रगट हुअे। भक्त जब भगवानके लिअे आक्रंद करता है तो वे प्रगट होते हैं।

तुम दीनतासे, रो रोके पुकारोगे तो भगवान प्रगट होंगे और अभयदान देंगे। भगवानसे गोपियोंको वचन दिया-मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी न जाअूंगा।

वृंदावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

दशम स्कंधके अिकतीसवे अध्यायको गोपीगीत कहा जाता है। अिसमें भिन्न भिन्न उन्नीस गोपियोंने गीत गाअे हैं। अिन गोपियोंके प्रकार वल्लभाचार्य महाप्रभुजीने बताअे हैं। पहला श्लोक बोलनेवाली गोपी सात्त्विक राजसी थी सो उसने प्रभुकी प्रशंसा की। दूसरा श्लोक गानेवाली गोपी सात्त्विक तामसी थी सो उसने श्रीकृष्णको उलाहना दिया। अेक श्लोक तामस गोपी बोली, उसने कृष्णको निष्ठुर कहा। सात्त्विक गोपीने भगवानके उपकार याद किअे।

चौथी गोपी श्रुतिरुपा निर्गुण थी सो उसने कहा:-आप तो समस्त देह धारियोंके हृदयमें बसनेवाले साक्षी हैं, अंतर्यामी हैं।

पाँचवे श्लोकमें अनन्यपूर्वा सात्त्विक गोपीने भगवानकी कृपा मांगी। आपका हाथ हमारे मस्तक पर पधराअिअे।

छठे श्लोककी अनन्यपूर्वा सात्त्विक तामसी गोपीने कृष्ण पर अपना अधिकार बताते हुअे धृष्टतापूर्वक प्रार्थना की।

गोपीगीतके उपसंहार करते हुअे महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजीने सुबोधिनीमें कहा है:-

नहि साधनसम्पत्या हरिस्तुष्यति कस्यचित्।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम्॥

भगवान साधन-संपत्तिसे संतुष्ट और प्रसन्न नहीं होते। भक्तोंकी दीनता ही अेक मात्र साधन है जो उन्हें प्रसन्न कर सकता है।

गान और प्रलाप निष्फल रहे तो गोपियोंमें दैन्यभाव जागा और वे रोने लगीं।

गोपीगीत सुन कर श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष उपस्थित हुअे थे। सो वैष्णव लोग अिस गोपीगीतका पाठ करते हैं। किंतु कुछ संप्रदायोंके अनुसार भगवानने प्रत्यक्ष दर्शन होने पर गोपीगीतका गान निषिद्ध है। गोपीगीत विरहगीत है, मिलनगीत नहीं।

गोपियोंने कृष्णको कपटी कहा था। हमें अैसा नहीं कहना चाहिअे।

भगवानको दया न आअी और प्रगट न हुअे तो भगवत विरहमें प्राण छटपटाने लगा। लोकलाजका त्याग करके गोपियाँ रुदन करती हुअी पुकारने लगीं, हे गोविंद! हे दामोदर! हे माधव!

परमात्मा पूरा प्रेम चाहते हैं। पागल बने विना परमात्मा नहीं मिल पाते कामांध कामके पीछे, लोभी धनके पीछे और भक्त भगवानके पीछे पागल बनता है। जब तक जीव संसारके जड पदार्थोंके साथ प्रेम करता रहता है तब तक अीश्वरको दया नहीं आती। परमात्माको प्रसन्न करनेका साधन यही है कि जीव विरहव्याकुलतासे भगवानके लिअे अेकांतमें आँसू बहाता रहे।

कृष्ण प्रगट हुअे तो सबको आनंद हुआ।

कुछ लोग प्रेम करनेवालेसे प्रेम करते हैं, कुछ प्रेम न करनेवालेके साथ भी प्रेम करते हैं और कुछ अैसे भी हैं जो किसीसे भी प्रेम नहीं करते।

प्रेमदाताके साथ प्रेम करनेवाला स्वार्थी है। बालक प्रेम न भी करे फिर भी माता-पिता तो उससे प्रेम करते ही हैं।

अवधूत कोटिके महात्मा सतत ब्रह्माकारवृत्ति रखते हैं। अतः वे अीश्वरके सिवाय अन्य किसीसे भी प्रेम नहीं करते।

गोपियोंने कृष्णसे पूछा : आप अिन तीनोंमेंसे कौनसे प्रकारके प्रेमी हैं?

कृष्ण :-सखी, मैं तो अिन सभी प्रकारोंसे पर हूँ। तुम्हारा प्रेम मैं जानता हूँ। मेरे वियोगसे तुम्हें दुःख तो हुआ किंतु विशिष्ट योगका दान करनेके लिअे ही वियोग दिया था।

संयोगावस्थाकी अपेक्षा विरहावस्थामें प्रेमपात्रके साथ तादात्म्य अधिक होता है सो वियोगको अेक विशेष प्रकारका योग कहा गया है। अिस योगका दान करनेके लिअे ही श्रीकृष्ण अदृश्य हो गअे थे और अिस प्रकार गोपियोंयो अधिक निकट लाया गया। गोपियाँ अैसी तल्लीन हो गअीं कि विरह होने पर भी अंतरंगमें संयोग है।

अिस वियोगमें तुम्हारी अपेक्षा मुझे ही अधिक व्यथित होना पड़ा। तुम सब तो अेक-दूसरोंको सांत्वना देती थीं। व्याकुल ललिताको विशाखा सांत्वना देती थी तो विशाखाको चंद्रावली। किंतु अिधर मैं तो अकेला ही रोता रहता था। मुझे सांत्वना देनेवाला तो कोअी भी न था।

सखी, तुम सब मेरी ही हो। किंतु तुम्हें अभिमान हो आया था। उस अभिमानको मीटा कर तुम्हारा मन मुझमें केंद्रित करनेके हेतु ही तुमको विहराग्निमें जलाना पड़ा। मेरे प्रति कुभाव न रखो। देवोंकी आयु लेकर भी तुम्हारी सेवा करूं तो भी तुम्हारे प्रेमका ऋण चुका नहीं पाऊँगा। अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी न जाऊँगा।

जीव मात्र गोपी है। वह विशुद्ध हो कर नम्रतासे प्रभुके पास जाअे तो वे अवश्य दर्शन देंगे।

मैं तो तुम सबका जन्म-जन्मांतरका ऋणी हूँ। मैं तुम सबके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो पाऊँगा।

मेरी सखिओ, तुमने मेरे लिअे घरगृहस्थीकी वे जंजीरें तोड़ डाली हैं जिन्हें योगीजन भी आसानीसे नहीं तोड़ पाते। हमारा यह मिलना सर्वथा निर्मल और निर्दोष है। यदि मैं अमर जीवन और अक्षर देहसे अनंतकाल तक तुम्हारी सेवा-प्रेम-त्यागके ऋणको मीटाना चाहूँ तो भी नही मीट पाअेगा। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो।

न पारयेऽहं गिरवधसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या मा भजनदुर्जरगेहशृङ्खला: संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥
भा. १०-३२-३२

भगवान रामावतारमें हनुमानजीके ऋणी रहे और कृष्णावतारमें गोपियोके। श्री रामचंद्रजीने हनुमानजीसे कहा थाः

प्रति उपकार करौका तोरा।
सन्मुख हो न सकत मन मोरा॥

भगवानको अपना ऋणी बना लो। उनके पास कुछ भी न मांगोगे तो वे तुम्हारे ऋणी हो जाअेंगे।

श्रीकृष्ण गोपियोंके ऋणी हैं तभी तो वृंदावन छोड़ कर जा नही सकते हैं।

वृंदावनं परित्यज्य पादमेकम् न गच्छति।

द्वारिकालीलामें मर्यादा हे, गोकुललीलामें प्रेम।

श्रीकृष्ण रसस्वरुप हैं। यह मिलन पंचभौतिक शरीरका नहीं था क्यों कि वह तो वियोगाग्निमें जल गया था। यह तो आत्माका रसात्मासे मिलन था। गोपियाँ ईश्वरसे मिलनेके लिअे छटपटाती थीं। वियोगमें प्राण छटपटाते हैं तब जीव ईश्वरसे मिल पाता है। परमात्मासे वियोग ही सबसे बड़ा रोग है। श्रीकृष्णका विरह ही कठिनतम दुःख है। प्रभुके विरहमें संसारसे खिलवाड़ करने जैसा महापाप और कौन होगा? विष्टाका कीडा विष्टामें ही आनंद अनुभव करता हैं। जीवकी भी यही दशा है। उसे विषयमें ही सुख दीखाअी देता रहता हैं। जीव भोगी है सो दुःखी होता रहता है।

जीव जब तक मिलनके लिअे व्याकुल नहीं होता तब तक अीश्वर मिल नहीं पाते हैं।

रासलीलामें अद्वैत है।

योगका अर्थ है जीव और अीश्वरका संयोग। रासलीला महायोग है।

वियोगाग्निमें गोपियोंके पंचभौतिक शरीर जल गये। वे रसस्वरुप प्रभुका चिंतन करती थीं। अैसा होने पर ही प्रभुसे मिलन हो पाता है। शरीर मलिन है सो जले विना मिलन नहीं होता। सतत भजन करते रहनेके कारण भक्तोंका शरीर दिव्य वनता है और वे अीश्वरको प्राप्त कर सकते हैं।

अिस लीलामें प्रेम है, मोह नहीं। प्रेम अंतरंगमें होता है, मोह बहिरंगमें। प्रेमको त्यागकी अपेक्षा है, मोहको उपभोगकी। प्रेम विरहसे पुष्ट होता है, मोह संयोगसे। वियोगमें प्रियपात्रका सतत स्मरण होता रहता है। वियोग तो विशिष्ट प्रकारका योग है। श्रीकृष्णने अिसी विशिष्ट योगका दान गोपियोंको दिया।

रासलीलामें लौकिक कामाचार नहीं था। मभीकी वय ग्यारह बरसके नीचेकी थी। अैसे छोटे बालकोंके मनमें कामवासना कैसे हो सकती हैं?

भागवतके कथाकार श्री शुकदेवजी ब्रह्मनिष्ठ महापरमहंस मुनि हैं जो लौकिक कामकी वात कर ही नहीं सकते। भागवतका श्रोता था परीक्षित जो मृत्यके किनारे वैठ कर कथाश्रवण कर रहा था। उसके लिअे भी कामाचारकी बातें सुननेका कोअी विशेष प्रयोजन नही हो सकता था। आसन्नमृत्यु व्यक्ति कामाचारकी बातें क्यों सुने?

रासलीलामें श्रीकृष्ण और गोपियोंका दैहिक मिलन नहीं था। गोपियोंका पंचभौतिक शरीर तो उनके अपने अपने घरमें था। यहाँ तो उनका सूक्ष्म देहसे मिलन था, आत्ममिलन था।

व्रजोकस' स्वान् स्वान् दारान्
स्वपार्श्वस्थान् मन्थमाना कृष्णाय न असूयन।
भा. १०-३३-३८

हे राजन्! भगवानकी मायासे मोहित व्रजवासी गोपाल अपनी पत्नियोंको अपने पास ही मान कर श्रीकृष्णकी ओर दोष दृष्टिसे देखते नही थे। उनको भी आज श्रीकृष्णके प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ।

अिस लीलामें गोपियोंके सूक्ष्म, आध्यात्मिक शरीरोंका अीश्वरसे मिलन था।

सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्त्वोंसे वना हुआ है। प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ पाँच पाँच हैं तथा मन और बुद्धि ये दो मिल कर सत्रह तत्त्व हुअे। जब मन मरता है तब सूक्ष्म शरीर भी मरता है और भक्तिरस मिलता है। शुकदेवजीने स्पष्टत. कहा है कि भौतिक देहविलयके पश्चात् ही गोपियोंको रासलीलाका लाभ मिला था। यह तो जीवका मनसे परमात्माके साथ मिलन था।

गोपियोंके लिअे प्रयुक्त विशेषण देखिअे —व्रजस्त्रिठः कृष्णगृहीतमानसाः।

यहाँ मन शब्दका प्रयोग है, शरीर शब्दका नहीं। श्रीकृष्णने जिनका मन हर लिया है वे गोपियाँ।

अिस लीलाका चिंतन करनेसे कामविकार नष्ट होता है। भागवतके दसवें स्कंधके तैंतीसवे अध्यायका चालीसवाँ श्लोक देखिअे—

भक्तिं परां भागवति प्रतिलभ्य काम।
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

व्रजवासी नारियोंकी भगवानके साथकी क्रीडाको जो धीर मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्रवण और वर्णन करता है वह भगवानकी परमभक्ति पाकर हृदयके रोगरुप कामदेवसे मुक्त हो जाता है।

आरंभमें गोपियोंने कहा है, हम सभी विषयोंका त्याग करके आओी हैं, यहाँ तक कि अपने स्त्रीत्वका भी त्याग किया है। उन्होंने अंतमें कहा है, हमारे हृदयमें यदि कुछ मालिन्य, काम हो तो उसे मीटा देना। गोपियोंके काम संबंधी वचन कुछ लोगोंको अखरते हैं किंतु उनके आरंभ और अंतके वचन भी ध्यानमें रखने चाहिअे।

रासलीलाका श्रद्धापूर्वक श्रवण और वर्णन करनेसे भगवानके चरणोंमें पराभक्ति प्राप्त होती है। और शीघ्र ही वह हृदयरोग-कामविकारतासे मुक्ति दिलाती है। उनका कामभाव हमेशाके लिअे नष्ट हो जाता है।

रासलीलाके पहले अध्यायमें परमात्माका आत्माके साथ रमण है। जिस प्रकार प्रभुका सर्वांगोंके साथ रमण है।

भागवतकार जानते थे कि लोग कअी आशंकाअें करेंगे। सो उन्होंने स्पष्टता भी की है। राजा परीक्षितने भी कुछ प्रश्न किअे थे।

परीक्षितने शुकदेवजीसे पूछा :-गोपियाँ तो श्रीकृष्णको अपना परम प्रियतम मानती थीं। उनमें ब्रह्मभाव नहीं था अर्थात् वे प्राकृत गुणोंमें आसक्त थीं। तो गुणोंके प्रभावरुप अिस संसारसे उनकी निवृत्ति कैसे हो पाअी ?

शुकदेवजी :-अीश्वरका चिंतन करते करते जीव स्वयं अीश्वर बन जाता है।

शिशुपाल द्वेषभावसे प्रभुका चिंतन करता हुआ प्राकृत शरीरका त्याग करके उनका पार्षद बन गया था। तो गोपियोंका कृष्णमय बन जाना कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है।

राजन्! रासमें श्रीकृष्णका रमण गोपियोंके शरीरोंके साथ नहीं था। उनके पंचभौतिक शरीर तो अपने अपने घरमें थे। यहाँ तो परमात्माके साथ गोपियोंके आधिदैविक, आध्यात्मिक स्वरुपका मिलन है।

शरीर चाहे जहाँ रहे, मिलन तो मनसे होना है।

शरीर जहाँ भी हो, अगत्य मनकी भावनाकी है। हमने अिस विषयमें वृत्त और अवृत्त नामक दो ब्राह्मणोंका दृष्टांत देखा है।

तैंतीसवे अध्यायमें राजा परीक्षितने अेक और प्रश्न पूछा है :-पूर्णकाम होते हुअे भी श्रीकृष्णने अैसा निंदनीय कृत्य क्यों किया ?

शुकदेवजी :-तेरे मनमें असी अमंगल बात कैसे आओी ? यह कोओी स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं था, जीव और ओश्वरका मिलन था।

यह रासलीला छ मास तक चली थी। क्या छ-छ मास तक व्रजनारियाँ अपने घरसे बाहर रह सकती थीं क्या ? अिसी बातसे सिद्ध होता है कि यह तो जीवका प्रभुसे मिलन था। परमात्माकी लीला अगम्य है।

ब्रह्मका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है।

कृष्ण तो गोपियोंमें ही नहीं, गोपियोंके पतिमें और सभी देहधारियोंमें आत्मारुपसे विराजीत हैं। वे तो अीश्वर हैं, सभीके साक्षी और परम पति हैं।

भगवान श्रीकृष्ण आत्मा हैं। राधाजी आत्माकार वृत्ति हैं। गोपियाँ आत्माभिमुख वृत्तियाँ हैं।

छोटा बालक निर्विकार भावसे दर्पणमें दीखाअी देते हुओ अपने प्रतिबिंबसे खेलता है। अिसी प्रकार अिस लीलामें आत्माका आत्माके साथ रमण है।

रमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥

अिस रासलीलाका चिंतन-मनन करनेसे बुद्धि स्थिर होती है। बुद्धि तो चंचल है। पांच विषय उस पर अधिकार जमाना चाहते हैं। किंतु बुद्धि तो अेक अीश्वरको ही अर्पण की जानी चाहिये। जीवका सच्चा पति अीश्वर ही है।

गीतामें अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा है :- अपनी बुद्धि तू मुझे दे दे।

काम अदृश्य है। अिस अदृश्य कामको मारना है। वह सबको मारता रहता है।

क्रोध-लाभ आदि जाते हैं किंतु अनेक अनर्थोंका मूल कामका जाना बड़ा कठिन है। जिसका काम मरा उसका संसार भी मर जाता है, वह मुक्त हो जाता है।

अगर कामको जीतना है तो केवल दूध और चावलका ही भोजन करो। रात्रिके समय गोपालजीकी पूजा और रासलीलाका पठन करो।

रात्रिके दूसरे प्रहरके समय अधिक सताता है सो उस समय बारह बजे श्रीकृष्णका स्मरण और पूजा करोगे तो काम नष्ट हो जाअेगा।

किसी भक्तने पूछा :-श्री कृष्णने रातको बारह बजे ही क्यों जन्म लिया था ?

भगवानने स्वयं उत्तर दिया :-यदि मेरा कोअी भक्त उस समय मेरी सेवा-पूजा करेगा तो वह कामके अधीन नहीं हो पाअेगा। जीवको कामसे बचानेके लिअे ही मैंने रातके बारह बजे जन्म लिया है।

भागवत तो भवरोगकी औषधि है। किंतु सभी व्रत-नियमोंका विधिपूर्वक पालन करना चाहिये। महापुरुष वेदशास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लंघन कभी नहीं करते हैं। स्वयं श्रीकृष्ण भी ब्राह्म मुहूर्तके समय (प्रातः चार बजे) शैयाका त्याग कर देते थे।

महाप्रभुजी वल्लभाचार्यजी त्रिकाल संध्या हमेशा करते थे। अेक बार वे जगन्नाथजीके मंदिर गअे। अेकादशीका व्रत था। प्रसाद मिला सुखडी (लड्डु विशेष)का। अब करें तो क्या करें ?

समस्या आ पड़ी। प्रसादके प्राशनसे अेकादशीका व्रत खंडीत हो रहा है और प्राशन न करने पर प्रभुके प्रसादका अपमान होने जा रहा है।

उन्होंने सारी रात प्रसादको हाथोंमें ही रखा और उसका गुणानुवाद करते रहे। द्वादशीका प्रभात प्रगट हुआ तो प्रसाद ग्रहण किया।

महाप्रभुजी वल्लभाचार्य कहते हैं:-विषयसुखमें फँसे हुअे विलासीके लिअे यह पुष्टि मार्ग निषिद्ध है।

विषयाक्रांतचिनाम् नावेश· सर्वथा हरेः।

श्रीकृष्ण कैसे संयमी थे उसका वर्णन हमने उपर बड़े विस्तारसे पढ़ा है। वे गोकुलमें जूतों, सीले हुअे कपड़ों, अस्त्र-शस्त्रोंका उपक्योग नहीं करते थे और मुंडन भी नहीं कराते थे।

प्रभुकी गोकुल-वृंदावनलीला अिस प्रकार शुद्ध प्रेमकी लीला है। वृंदावनमें केवल बांसुरी बजाते हैं। वह बंसी शुद्ध प्रेमकी ही है।

कुछ महात्मा केवल रासलीला तककी ही भागवतकथा सुनना चाहते हैं। क्यों कि अिससे आगे तो मथुराकी राजलीला है जिसमें युद्ध, वध, विवाह आदिकी बातें हैं। मथुरा और द्वारिकामें श्रीकृष्ण मधुर बांसुरी नही बजाते, शंख फूंकते हैं।

वेदोंके मंत्र भोगपरक होते हुअे भी उनका तात्पर्य त्यागपरक है, प्रभुके साथ तादात्म्य पानेसे है।

वेदांत अनुभवका विषय है, केवल वाणीविलासका नहीं।

यदि जेबमेंसे पाँच रुपयेकी नोट गुम हो जाअेगी तो परीक्षा हो जाअेगी कि वेदांतके मंत्रोंको पोपटकी भाँति बोल लेनेवाला वह वास्तवमें वेदांती है भी या नहीं। पाँच रुपयेकी नोटकी कोअी कीमत ही नहीं है अैसा नहीं है। किंतु उस नोटके लिअे अतिशय आसक्तिका होना बुरा होना है।

वेदांतके सिद्धांतोंका अनुभव सरल नहीं है। जब कि गोपियोंने भक्तिका सरलमार्ग बतलाया है। लोगोंको प्रेमलक्षणा भक्तिका मार्ग दीखानेके लिअे ही कृष्णावतार है।

प्रतिदिन रात्रिको अिस रासलीलाका चिंतन करो। बड़े बड़े महात्मा भी कामनाशके हेतु रात्रिको स्नान करके अिस रासपंचाध्यायीका पाठ करते हैं। यह लीला चिंतनीय है, अनुकरणीय नही। अिस लीला द्वारा ही भगवानने कामका पराभव किया है। काम सबसे बड़ा हृदयरोग है। काम क्रोधको जन्म देता है। कामका विनाश होने पर कृष्ण निकट आ जाअेंगे।

रात्रिको सोनेसे पहले स्नान करो। गृहस्थकी शैया शुद्ध नही होती हैं। पवित्र कमली पर शयन करके, रासलीलाका पाठ किया जाय तो काम मरता है।

जो वक्ता-श्रोता अिस लीलाका मनन करेगा उसके कामका नाश होगा।

रासलीलाके बाद विद्याधर सुदर्शनकी कथा आती है। अैसा क्यों है?

अपने सौंदर्यका अभिमान कभी न करो। सत्कर्म दीनता लानेके लिअे है। प्रभुको दीनता प्यारी है। उद्धत व्यक्ति प्रभुको पसंद नहीं है। किसी भी जीवको

क्षुद्र माननेवाले व्यक्तिकी भक्ति कभी फलवती नहीं होती। जहाँ जहाँ दृष्टि दौड़े, वहाँ अीश्वरका दर्शन करना ही दीनता है। दीनता तो प्रभुको प्रसन्न करनेका साधन है।

रावणकी तपश्चर्या भी कुछ कम न थी, किंतु उसमें भोगलालसा थी, दीनता नहीं।

अपनेको निरभिमानी बतलानेवाला भी सूक्ष्म रीतिसे अभिमानी ही है।

३४ वें अध्यायमें सुदर्शन विधाधरकी कथा है।

शिवरात्रिका पर्व था। नंदबाबा अम्बिकावनकी यात्रा पर गअे हुअे थे। ब्राह्मणकों पुष्कल दान दिया गया। रात्रिके समय सबने सरस्वतीके किनारे मुकाम किया। वहाँ रहनेवाला अेक अजगर नंदबाबाको निगलने लगा- श्री कृष्णके चरण-स्पर्शसे वह मर गया। और उसमेंसे अेक देवपुरुष प्रगट हुआ।

भगवानने अनजाने बन कर उससे पूछा :-कौन हो तुम ?

उस देवपुरुषने कहा -मैं अगले जन्ममें सुदर्शन नामक विद्याधर था। मुझे अपनी सुंदरता पर अभिमान था। कुरुपोंको देख कर मुझे हँसी आती थी। मैंने अेक बार काले कूबड़े ऋषि अंगिराको देखा तो मै अपनी हँसी रोक न सका।

ऋषि क्रोधसे भड़क उठे :-रे उद्धत ? मेरा शरीर भले ही काला-कूबड़ा है किंतु मन, हृदय तो उज्ज्वल है। किंतु तेरी बात तो ठीक उल्टी है। किंतु मैंने तो सत्सगसे अपनी कृति सुधार ली है। तेरा तन तो उजला है किंतु मन काला-कलूटा है। मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू अजगर बनेगा।

शरीरमें कौन-सी सुंदरता है ? यह रुधिर, मांस, हाड, चामसे बना हुआ है। यदि रास्तेमें हड्डी पडी हो तो लोग कतरा कर निकल जाअेंगे। सो शरीरको सुंदर मत मानो।

किसीकी आकृति और त्वचाका रंग मत देखो। त्वचाका चिंतन करना पाप है। महात्मा रंग-रुप-आकृति नहीं, कृति देखते हैं। आकार तो मनमें विकास उत्पन्न करता है।

संसारके, शरीरके सौंदर्यका चिंतन करनेसे मन चंचल हो जाता है। परमात्माके सौंदर्यका विचार करनेसे मन शांत होता है।

शरीर और संसारको सुंदर माना नहीं कि पाप शुरु हो जाता है। अीश्वरके सौंदर्यकी कल्पनासे भक्ति शुरु होती हैं। ज्ञानीकी दृष्टिसे सौंदर्य किसीकी देह या संसारमें नहीं है। सौंदर्य तो अंदर है।

सौंदर्य तो मनमें होता है, हृदयमें होता है, रुप-रंग-आकृतिमें नही। व्यक्तिके हृदयका सौंदर्य देखो, शरीरका नहीं।

सत्कर्म करनेके बाद नंदबाबा सो गअे तो अजगर उन्हे निगलने लगा। अिसका अर्थ यह है कि सत्कर्म करनेके बाद जागृत रहना चाहिअे। सत्कर्म कर लेनेके बाद

लोग आत्मप्रशंसा, प्रमाद, निष्क्रियतामें डूब जाते हैं सो अभिमानरुपी अजगर उन्हें निगलने लगता है। रात्रिके समय जागनेका अर्थ है स्वयं कुछ भी नहीं किया है ऐसा मानना और अनुभव करना। सत्कर्म हो जाय तो मान लो कि प्रभुकी कृपाके कारण ही वह सब कुछ हो सका है। प्रभुने मुझे निमित्त बना कर वह सत्कर्म किया है।

आगे शंखचूडके वधकी कथा आती है।

गोपियाँ रात्रिके समय श्रीकृष्णके साथ रासलीला करती थीं और दिवसके समय भी श्रीकृष्णलीलामें लीन रहती थीं। युगलगीत और वेणुगीतके भाव समान हैं।

मनुष्य जब निठल्ला, बेकार बैठा होता है तब उसके मनमें पाप आता है। रातको जप करो। निवृत्तिके समय मनको कामसुख द्रव्य आदिकी ओर न जाने देना।

यह मन तो चंचल वानर जैसा है। अकेला और निठल्ला हुआ नहीं कि कूदाकूद करने लग जाता है। उसे हमेशा सत्कर्म, शुभ चिंतनमें लगाये रहो। कुछ काम न होगा तो वह बूरे विचारोंमें उलझ जायेगा। सो हमेशा भगवानका स्मरण और सत्कार्य करते रहो। आँख, नाक, कान, जीभ, मन सभीको भक्तिमें लगाये रहो।

अेक ब्राह्मणकी पत्नीकी मृत्यु हो गअी तो वह बेचारा दुःखी हो गया। घरमें छोटे बच्चे थे और देखभाल करनेवाला कोअी न था। उसने थक-हार कर अपने मित्रसे अपनी रामकहानी सुनाअी। तो मित्रने भूत प्रसन्न करनेका मंत्र दिया। ब्राह्मणने मंत्रजाप करके भूतको प्रसन्न कर लिया।

भूतने प्रसन्न हो कर कहा, मैं तुम्हारे सभी कामकाज करुंगा किंतु मै बेकार नही बैठ सकूंगा। यदि मुझे कुछ काम न दिया गया तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा। भूत तो सभी काम कुछ ही मीनटोमें खत्म कर देता था। ब्राह्मण चितीत हुआ कि यह बेकार हो गया तो मुझे खा जायेगा। उसने मित्रसे बात की। मित्रने उत्तर दिया, अपने आंगनमें अेक बड़ा-सा बाँस गाड़ दो और भूतसे कहो कि कामकाजसे निवृत्त होने पर अिस बाँस पर चढ़-उतर करते रहना ब्राह्मणने वैसा ही किया। भूत समझ गया कि यह तो मेरा भी गुरु है। वह शांत हो गया।

मन भी उस भूत जैसा ही है। अिसे काम न दोगे तो वह तुम्हें खा जायेगा जब तक नींद न आने लगे बीस्तरके पास तक न जाना और काममें लगे रहना चाहिये।

जिसे मनकी चंचलताका भान हो जाय उसे आत्मदर्शन हुआ है ऐसा माना जाय तो कोअी आपत्ति नहीं है। क्यो कि

एको देवो मनः साक्षी।

गोपियाँ सारा दिन घरका कामकाज करती थीं और रातको अिकट्ठी हो कर कृष्णलीलाका चिंतन करती थीं, कीर्तन करती थीं।

ध्यान अकेले किया जाय किंतु कीर्तन तो सारे घरके लोग मिल कर करें। लोग घरको तो स्वच्छ रखते हैं किंतु मनकी स्वच्छताकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। रातको सोनेसे पहले घरके सभी छोटे-बड़े अेक साथ बैठ कर भजन-कीर्तन करें तो बड़ा अच्छा है। घर पवित्र हो जाअेगा।

कथा कीर्तनभक्ति है। कीर्तनके तीन प्रकार हैं, नामसंकीर्तन, गुणसंकीर्तन और लीलासंकीर्तन। घरमें हर दिन संकीर्तन होना चाहिअे।

अली सखी, मेरा कनैया भी कअी तरहसे बांसुरी बजाता है। जब वह दाहिने गालकी ओर रख कर बांसुरी बजाता है तब गोपियाँ तन्मय हो जाती हैं, आकाशकी ओर दृष्टि करके बजाता है तब पातालकी नागकन्याअें डोल उठती हैं।

दिवसमें कृष्णलीलाका वर्णन और कीर्तन करके गोपियाँ ब्रह्मसंबंध बनाअे रखती हैं।

ब्रह्मसंबंधको सतत बनाअे रखनेके लिअे सतत प्रयत्न किया जाय। अेक क्षणमात्र भी जड वस्तुकी ओर ध्यान न जाना चाहिअे।

अब अक्रूरागमनका प्रसंग आता है।

अेक बार नारदजीने कंसके पास जाकर कहा, तू तो बड़ा भोला है। अिस वसुदेवने तुझे उल्लू बनाया है। वह अपने आठवें पुत्रको नंदजीके पास छोड़ आया और नंदजीकी पुत्रीको यहाँ ले आया है। श्रीकृष्ण देवकीका पुत्र है और बलराम रोहिणीका। उन दोनोने मिल कर तेरे कअी सेवकोंको मार डाला है। कंसने यह सब सुना तो वह आगबबुला हो गया और वसुदेवको मारनेके लिअे तैयार हो गया।

जो वैरभाव बढ़ाता है वह वैष्णव नहीं है।

नारदजी सुलगाना भी जानते हैं ओर बूझाना भी। जब कि हम जैसे तो मात्र सुलगाते ही रहते हैं। नारदजी कंसको समझाने लगेः वसुदेवको मारनेसे क्या लाभ होगा? तेरा काल तो श्रीकृष्ण है। यदि तू वसुदेवको मारने जाअेगा तो कृष्ण समाचार पाते ही भाग निकलेगा। सो तू उस कृष्णको ही मारनेकी सोच।

कंस सोचने लगा कि अब कृष्णको किस उपायसे मौतके घाट उतारा जाय। ब्राह्मणने राजासे कहा, तुम धनुष्य यज्ञ करो। अिस यज्ञसे यजमानकी आयु बढ़ती है और शत्रु मर जाते हैं। किंतु यदि यज्ञके आरंभके पांच दिनोंमें विघ्न आअे तो यजमान मरता है। उस समय कंसके कुछ मल्ल आअे। उन्होंने कहा, अरे वह छोकरा क्या करेगा? तुम्हारे कालके भी काल हैं हम तो।

कंसने यज्ञके बहाने नंदको पुत्रसहित आमंत्रण भेजनेकी बात सोची। और मल्लोंसे कहा, वे अिधर आते हो काम तमाम कर देना। वे मेरे शत्रु हैं।

विनाशकाले विपरित बुद्धि। कालके समीप आने पर पुण्यशाली पुण्यकार्योंमें जुट जाता है और पापी क्रोधी हो जाता है।

रामकृष्णको बुलानेके लिअे किसे भेजूं ? हां, अक्रूरको ही भेजूं। अक्रूर विश्वास-घात नहीं कर सकते।

जो क्रूर है वह तो श्रीकृष्णको कैसे ला सकता है ? कामसुखका चिंतन करनेवाला मन क्रूर है। अक्रूर बन कर जाय वही श्रीकृष्णको अपने साथ ले आ सकता है। जो क्रूर नहीं है वह है अक्रूर।

कंसने अक्रूरजीको बुलाया और कहा :–चाचाजी, अेक काम करना है तुम्हें। नारदजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही देवकीका वह आठवाँ पुत्र है जो मुझे मारनेवाला है। मै मेरे अिस कालको मारना चाहता हूँ। तुम नंदबाबाको धनुष्य यज्ञमें पधारनेका आमंत्रण दो और कृष्ण–बलरामको अपने साथ लेते आओ। हां, किसीको कहीं अिस बातका पता न लग जाय कि मैं उसे मारना चाहता हूँ। बस, मेरा यह छोटा–सा काम कर दो।

कंस साक्षात् मृत्युको ही आमंत्रण भेज रहा है। मनुष्यके बुलाने पर मृत्यु अवश्य आती है। कंस मरनेके लिअे अधीर हो गया है सो कालको बुला रहा है। अधिक जीने या जल्दी मरनेकी अिच्छा न करो। कब मरुंगा अैसा कभी नहीं सोचो। जीवन कैसा रहेगा यही सोचो।

व्यासके शिष्य दासकी कथा सुनिअे।

व्यासका शिष्य दास गुरुजीकी बड़ी सेवा करता था। उसने अेक बार गुरुजीसे पूछा, मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं कब मरुंगा ? व्यासने उससे कहा, क्या करेगा जानकर ? जाने भी दे। किंतु दास कब माननेवाला था ? तो वे दोनों यमराजाके पास पहूँचे। यमराजाने भी अपना अज्ञान बताया। मेरे मंत्री मृत्युदेव ही बता सकते हैं। चलो, उसीके पास चलें। तीनों मृत्युदेवके पास आअे। मृत्युने कहा, यह तो प्रारब्ध ही बता सकता है। अब वे चारों विधाताके पास आअे।

विधाताने कहा, दासके प्रारब्धमें लिखा है कि जब वह व्यास, यमराज और मृत्युदेवको लेकर मेरे पास आअेगा तब उसकी मृत्यु होगी। व्यासजी, यह आपका शिष्य है। वह मर न पाअे अिसीलिअे मैंने अैसा लिखा था। अब तो कोअी उपाय नहीं है। बस, अब तो कुछ ही क्षण बाकी रह गअी हैं उसके मरनेमें।

मृत्यु कब होगी अैसा सोचना व्यर्थ है। यह शरीर तो हर क्षण मरता जा रहा है। मरने–जीनेका विचार अधिक न करो। ये दोनों विचार बाधक हैं। सो अितना ही सोचो कि अपने हाथ कुछ पाप न हो, परोपकार और पुण्यकार्यमें ही जीवन व्यतीत हो जाय।

कंस :–अक्रूरजी, तुम कल गोकुल जाओ और कृष्ण–बलरामको ले आओ। यह बात गुप्त ही रखनी होगी।

अक्रूरजी :–तेरी आज्ञा है तो कल गोकुल चला जाऊँगा।

कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी सो उसने श्रीकृष्णको आमंत्रण भेजा।

अक्रूर राजसभासे निवृत्त हो कर घर लौटे। सारी रात नींद न आओी। वे कृष्णका दर्शन करनेके लिअे अधीर हो गये।

मुझे लागी लगन मुझे लागी लगन;
मुझे लागी लगन तेरे दर्शनकी ॥
जैसे बनमें पपीहा मनमें
आश करे नित बरसनकी ॥.. मुझे...
गले बनमाला मुकुट विशाला
पीतवसन सुंदर तनकी ॥. .मुझे...
मणिकटि उपर चरणन नुपूर
करमें गदा सुदर्शनकी ॥ मुझे..
ब्रह्मानंद प्यास मनमांही
चरणकमल युग परसनकी ॥ मुझे..

प्रातः कालमें अक्रूरजी शीघ्रतासे संध्यादि कर्मोंसे निवृत्त हो गये। कंसका सुवर्णरथ आया तो अक्रूरजी सवार हो कर गोकुलकी दिशामें चल निकले। रास्तेमें वे श्रीकृष्णके ही विचार करते जा रहे हैं। मेरा भाग्य उदित हुआ कि आज भगवानके दर्शन होने जा रहे है। मैं अधम, पापी, अपात्र आपकी शरणमें आ रहा हूँ। मुझे अपना कर मेरा जन्म सफल कीजिये।

अक्रूरजीकी भाँति मार्गमें प्रभुका ही चिंतन करते रहना चाहिये। हर कदम पर कृष्णको याद करो। आजकल तो लोग चलते चलते दूसरे लोगोंके चेहरे, कपड़े, मोटर, दुकान आदि देखते चलते हैं और उन्हींके बारेमें सोचते रहते हैं। अैसा करनेसे कौन-सा लाभ होगा? मन और बीगड़ता जाअेगा। मन बीगड़ता तो जल्दी है किंतु सुधरते बड़ी देर लगती है। सो भगवानका ही स्मरण करते हुअे कदम पर प्रदक्षिणाका पुण्य मिलेगा।

अक्रूरजी मार्गमें प्रभुको मनाते जा रहे हैं। तुम भी वैसा ही करो। जो व्यक्ति मार्गमें भजन नहीं करता है वह आँखोंसे और मनसे पाप कर रहा है।

पापी चलते चलते भी पाप करता चलता है और पुण्यशाली पुण्य। आते-जाते लोग, उनके चिकने-चूपड़े चेहरे, रंगबिरंगे कपडोकी भभक, मोटर, गाड़ी, दुकान आदि तो रोजके हैं। अुनकी ओर दृष्टि कभी न करो।

जो भागवतकी कथा सुनता है उसका भगवानसे संबंध जुड़ता है।

मार्गमें अक्रूरजी परमात्माका स्मरण करते हुअे अपने भाग्योदयके बारेमें सोचते जा रहे हैं। मुझसे कामीको भगवानके दर्शन कैसे हो सकते हैं? किंतु कृष्णने मुझे अपनाया है अिसीलिअे कंसने मुझे भेजा है। लगता है कि सांझके समय गौशालामें कनैयाका दर्शन होगा। वे वहाँ गोपालोंके साथ होंगे। मैं पहले बलरामको वंदन करुंगा और श्रीकृष्णसे कहूँगा, हजारों वर्षोंसे बीछड़ा हुआ मेरा जीव आज आपसे मिल पाया है।

हे नाथ, अिस जीवको अपना लो। अेक बार अिस अधम जीव पर कृपा करो। अेक बार कह दीजिअे कि तू मेरा है। मेरे भगवानकी दृष्टि तो प्रेमसे भीगी हुअी है। उनके स्नेहभरे नयन मुझे पवित्र कर देंगे। जब मैं वंदन करूंगा, वे मुझे कृपादृष्टिसे देखेंगे। मेरी ओर देख कर मेरे मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराअेंगे।

अक्रूरजी अैसे तो कल्पनामें डूब गअे हैं कि मन ही मन मान लिया कि वे गोकुल पहूँच गअे हैं और श्रीकृष्ण उनके मस्तक पर हाथ फेर रहे हैं। अैसा सोचकर स्वयं अपना हाथ अपने शिर पर रख दिया। प्रभुस्मरणमें अैसी अेकाग्रता होगी तभी प्रभु प्रसन्न होंगे।

पवित्र विचार करते रहनेसे ही जीवन सफल होता है। मेरे पास अितना धन है, अब अितना और अिकठ्ठा हो जाय तो मोटर दौडाने लगूं। दो वर्ष धूमधामसे धंधा चलेगा तो मोटर आ जाअेगी। अिस प्रकारके सुखोपभोगके विचार करनेवालेकी आत्मशक्ति नष्ट होती जाती है। पवित्र विचार ही जीवनको सुधार सकते हैं। सभी अपने मनकी नहीं, अीश्वरके मनकी होती है। पवित्र विचार करनेसे, प्रभुसे प्रेम करनेसे हृदय पवित्र बनता है।

आत्मामें जो शक्ति है वह तो परमात्माकी है। आत्मा और परमात्मा अेक ही हैं। पवित्र विचारोंसे हृदय पवित्र और शुद्ध बनता है। अिसीलिअे तो कहा गया है।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

मेरा मन हमेशा शुभ संकल्प करे। किसीका भी बूरा न चाहो, सभीका ही भला चाहो।

भगवानने अक्रूरके सभी शुभ संकल्प पूर्ण किअे थे। भगवान शुभ विचारों और संकल्पोंको पूर्ण करते हैं।

वेदांत संकल्पका निषेध करता है। संकल्परहित बन पाना बड़ा कठिन है। अिसीलिअे तो वैष्णवाचार्य भगवानके लिअे संकल्प करनेको कहते हैं।

अक्रूर सोचते हैं कि कनैया उन्हें नाम लेकर पुकारेगा या नहीं। वैसे तो मैं पापी हूँ, अधम हूँ किंतु वयोवृद्ध हूँ। वसुदेवका चचेरा भाअी भी हूँ और मित्र भी। सो कनैया मुझे शायद चाचा कहके पुकारेगा। यदि वह मुझे चाचा कह कर उठने-बैठनेको कहेगा तभी मैं उठूंगा-बैठूंगा। वह मुझे चाचा कहेगा तो मेरा जन्म सफल हो जाअेगा।

भगवान जिसका आदर नहीं करें उसका जीवन वृथा है। जीव मान मानका भूखा है। जगतकी बातों पर ध्यान न दो। कोअी प्रशंसा करेगा तो सद्भाव जागेगा और कटु बोलेगा तो कुभाव। सो लोगोंके कहनेकी चिंता छोड़ कर, भगवान क्या कहेंगे अैसी चिंता करते रहो। भगवान हमसे सद्भावकी अपेक्षा करते हैं। वे सोचते हैं कि अिस जीवने पंद्रह दिनों तक कथा सुनी है सो कुछ तो सुधार हुआ होगा उसके मनका।

ओीश्वरके साथ कोओी न कोओी संबंध जोड़ना ही पड़ेगा।
गोस्वामी तुलसीदास स्वयंको रामजीका सेवक मानते थे।

ब्रह्म तु हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू, सब विधि हि तू मेरो ॥
तोहिं माहिं नाते अनेक मानिये जो भावि।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावे ॥

वृंदावनके वासी ओेक निःसंतान महात्माने सोचा, जब तक योगाभ्यास क्रिया जाता है, मन स्थिर रहता है। प्राणायामकी समाप्ति होते ही मन चंचल हो कर कूदाकूद करना शुरु कर देता है। उसने संसारको भूलनेकी युक्ति की। उसने कनैयाको अपना बालक मान लिया। मैं नंद हूँ और वह मेरा पुत्र है। वह मरी गोदमें बैठा है, मेरी दाढ़ी खींच रहा है। अिस प्रकार अिस महात्माने वात्सल्य भावसे भक्ति करना आरंभ कर दिया।

संसारका विषयावेश उतरने पर भगवानके लिओे भाव जागता है। पुत्र दुःख भी देता है और सुख भी।

यह साधु परमात्मासे पिता-पुत्रका संबध जोड़ कर संसारको भूला कर प्रभुमय हो गया। मांकी भाँति पुत्र-कनैयाको लाड़ लड़ाने लगा। वह मन ही मन कल्पना करता था कि कान्हा आम मांग रहा है। अिस प्रकार वह मन ही मन कनैयाकी सेवा करने लगा। कनैया तो ओैसा भोला है कि मनसे देनेवाले पर भी प्रसन्न होता है।

साधु गंगास्नान करनेको तैयार होता है तो उसे लगता है कि कनैया उससे कह रहा है, बाबा, मुझे छोड़ कर कहीं न जाना। मानसी सेवामें लीन साधु यात्रा करनेके लिओे भी नहीं जा सकता क्यों कि उसका बेटा कनैया अभी छोटा-सा बच्चा ही है। उसकी देखभाल कौन करे ?

अिस प्रकार वह साधु मानसी सेवा करता हुआ मर गया। शिष्य शवको स्मशानमें ले गओे। अग्निसंस्कारकी तैयारी चल रही थी। अितनेमें ओेक सात वर्षका बालक गंगाजल लेकर आया और लोगोंसे कहने लगा, मै अिनका पुत्र हूँ सो अिनके अग्निसंस्कारका अधिकार मेरा है। मेरे पिता गंगास्नान करना चाहते थे। सो मैं गंगाजल ले आया हूँ। उसने साधुको स्नान कराके पुष्पमाला पहना कर प्रणाम किया और अग्निसंस्कार किया। वहाँ सब शिष्य और साधु खड़ेके खड़े रह गओे।

अग्निसंस्कार संपन्न होते ही वह बालक अंतर्धान हो गया। अब सभीको होश आया कि साधु तो निःसंतान था। स्वयं भगवान ही बालकका रुप लेकर आओे थे और महात्माकी अंत्येष्टि कर गओे। महात्माकी अिच्छा संतुष्ट हुओी।

कओी बार ओैसा होता है कि लाखोंकी संपत्तिका वारिस पुत्र धन बटोर कर चला जाता है। जब कि प्रभु ओैसा नहीं करते। वे कभी विश्वासघात नहीं करते। वे तो मानवीके अंतकालमें दौड़ते हुओे आते हैं। जीव जीवके विश्वासका घात करता है, प्रभु ओैसा कभी नहीं करते।

जीव जिस भावसे श्रीकृष्णका स्मरण करता है उसी भावसे वे आ मिलते हैं।

ये यथा माम् प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

तथा जैसी भावना होगी वैसी ही सिद्धि होगी।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

भगवान कहते हैं :-तू चाहे जिस भावसे मुझे भजे किंतु मुझे ही भजता रह। स्त्री-पुत्रादिका भजन कोअी काम नहीं आअेगा।

यह क्षुद्र जीव परमात्मासे क्या प्रेम कर पाअेगा? परमात्मा जैसा प्रेम जीवसे करते हैं वैसा प्रेम वह भी कभी प्रभुसे कर पाता है क्या? भगवान कहते हैं, अरे जीव! तू कभी मुझसे प्रेम करता भी है? मै तो सारा दिन तेरी झाँखी करता रहता हूँ जब कि तू तो दिनमें दो बार भी मेरे दर्शन नहीं करता है।

अपने अपने कुटुंबके लिअे तो कौआ और कुत्ता भी जीता है। जो अीश्वरके लिअे जीता है उसीका जीवन सार्थक माना जाअेगा।

अक्रूरजी मनमें भाँति भाँतिकी कल्पना करते जा रहे हैं। 'हाँ, कनैया मुझे चाचा ही कहेगा। किंतु मैं तो कामी और विलासी हूँ। वह मुझे दर्शन भी नहीं देगा तो?

जिसका जीवन भोगविलासमें बीता जा रहा है उसे प्रभु शीघ्र दर्शन नहीं देते।

मैं यौवनके नशेमें चूर था। उस समय मैंने बहुत पाप किअे थे। यदि अिस कारणसे कनैया मुझे न अपनाअेगा तो? मेरे पहूँचनेका समाचार पाते ही वह कहीं छुप जाअेगा तो?

अपनी युवावस्थाके समयके पापाचारको याद करके अक्रूरजी धीरज खो रहे हैं। फिर भी वे सोचते हैं कि श्रीकृष्ण तो पतीतपावन हैं, वे अवश्य मुझे अपनाअेंगे। यदि मुझ जैसे पापीको नहीं अपनाअेंगे तो फिर उन्हे पतीतपावन कौन कहेगा?

हे नाथ, मैं पतीत हूँ और आप पतीतपावन! मुझे अपना लीजिअेगा।

विचार करना ही है तो पवित्र विचार करो। बुरे विचार मनको विकृत करते हैं।

मार्गमें शुभ शकुन हुअे तो अक्रूरजीने सोचा, भगवान मुझे अवश्य अपनाअेंगे।

अक्रूरजीने मार्गमें श्रीकृष्णके चरणचिह्न देखे। कमल, ध्वजा और अंकुशयुक्त चरण तो मेरे श्री कृष्णके ही हो सकते हैं। अिसी मार्गसे कनैया गया होगा। वह खूले पाँव ही गायोंको चराता फिरता है।

आदिनारायणका चिंतन हो रहा है। यदि वे खूले पाँव पैदल घूमते हैं तो मैं तो उनका सेवक हूँ, मैं रथमें कैसे बैठ सकता हूँ? में सेवा करने योग्य नहीं हूँ, अधम हूँ, पापी हूँ। मै तो वैष्णवका दास हूँ। मैं तो श्रीकृष्णकी शरणमें जा रहा हूँ। मुझे रथ पर सवार होनेका क्या अधिकार है? अैसा सोच कर वे पैदल चलने लगे।

गोकुल पहूँच कर वहाँकी रज सारे शरीर पर अर्चित कर ली। व्रजरजकी बडी महिमा है क्यों कि प्रभुके चरणोंसे पवित्र जो हुअी है।

अक्रूरजी परमात्माके लिये पागलसे हो गये हैं। जैसे पैसोंके लिअे पागल हुअे बिना पैसा नहीं मिलता है उसी तरह प्रभुको पानेके लिये उनके पीछे पागल बनना पड़ता है। पागल किसी वस्तुके लिये नहीं, प्रभुके लिअे बनो। कामांध व्यक्ति शरीरके लिये पागल होता है और लोभी धनके लिअे। कामांध व्यक्तिको स्थल-कालका भी भान नहीं रहता है।

भगवानको पानेके लिअे भी देहभान और स्थल-कालको भूल कर पागल बनना ज़रुरी है।

भगवान पैदल चलते हैं तो तो मुझे तो दंडवत् करते करते चलना चाहिअे। तभी मेरे पाप जलेंगे। और अक्रूरजी दंडवत प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ने लगे।

अक्रूरजी वंदनाभक्तिके आचार्य हैं।

बद्रिनाथ जाते हुअे मार्गमें हनुमानचट्टी नामक स्थान आता है। वहाँ पहुँचने पर यात्रीका हृदय भर भर आता है। मैं परमात्मासे मिलने जा रहा हूँ। कल उनके दर्शन होंगे। मुझ पापीको वे अपनाअेंगे क्या? मुझसे जाने-अनजाने बहुतसे पाप हुअे होंगे। मुझे दंडवत करते हुअे जाना चाहिअे। तभी मेरे पाप नष्ट होंगे। मैं साष्टांग प्रणाम करते करते आगे बढ़ूँगा। अैसा सोचते हुअे कअी यात्री दंडवत प्रणाम करते करते आगे बढ़ते हैं और हनुमानचट्टीसे बद्रिनाथका मार्ग अिसी प्रकार काट देते हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

राजन्! अक्रूरजी आदिनारायाणके दर्शनके लिअे दंडवत प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ रहे हैं।

परमात्माको प्रसन्न करनेका अेक अच्छा-सा साधन है दंडवत वदन।

मथुरासे निकले हुअे अक्रूरजीको गोकुल पहुँचते पहुँचते शाम हो गअी क्यों कि वे मार्गमें बड़े भक्तिभाघसे दंडवत् प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ते थे।

भगवानने अक्रूरजीके मनोरथ पूर्ण किअे।

भगवानके लिअे किये जाते शुभ संकल्प वे अवश्य पूर्ण करते हैं।

रोज भावना करो कि मृत्युके समय भगवान तुम्हें लेने आअे।

जब बुरे संकल्प सिद्ध होते हैं तो शुभ संकल्प सिद्ध क्यों न होंगे?

दंडवत प्रणाम करते करते अक्रूरजी गौशालामें आअे। उन्होंने सोचा था कि श्रीकृष्णके वहीं दर्शन होंगे। दर्शन हुअे। वे तो कहना चाहते थे कि वे पापी हैं और श्रीकृष्णकी शरणमें आअे हैं। किंतु उनका गला भर आया, वे अेक शब्द भी बोल न सके और भावावेशसे अचेत-से हो कर भगवानके चरणोंमें जा गिरे। श्रीकृष्णको प्रणाम किया।

परमात्माकी आँखें तो सदा सर्वदा प्रेमभीगी ही होती हैं। उन्होंने देखा कि अक्रूरजी अपनी शरणमें आया है।

अक्रूर चाहते थे कि जब वे प्रणाम करें उसी समय ठाकोरजीकी दृष्टि उन

जीव जिस भावसे श्रीकृष्णका स्मरण करता है उसी भावसे वे आ मिलते हैं।

ये यथा माम् प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

तथा जैसी भावना होगी वैसी ही सिद्धि होगी।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।

भगवान कहते हैं:-तू चाहे जिस भावसे मुझे भजे किंतु मुझे ही भजता रह। स्त्री-पुत्रादिका भजन कोअी काम नहीं आअेगा।

यह क्षुद्र जीव परमात्मासे क्या प्रेम कर पाअेगा? परमात्मा जैसा प्रेम जीवसे करते हैं वैसा प्रेम वह भी कभी प्रभुसे कर पाता है क्या? भगवान कहते हैं, अरे जीव! तू कभी मुझसे प्रेम करता भी है? मैं तो सारा दिन तेरी झाँखी करता रहता हूँ जब कि तू तो दिनमें दो बार भी मेरे दर्शन नहीं करता है।

अपने अपने कुटुंबके लिअे तो कौआ और कूत्ता भी जीता है। जो अीश्वरके लिअे जीता है उसीका जीवन सार्थक माना जाअेगा।

अक्रूरजी मनमें भाँति भाँतिकी कल्पना करते जा रहे हैं। "हाँ, कनैया मुझे चाचा ही कहेगा। किंतु मैं तो कामी और विलासी हूँ। वह मुझे दर्शन भी नहीं देगा तो?

जिसका जीवन भोगविलासमें बीता जा रहा है उसे प्रभु शीघ्र दर्शन नहीं देते।

मै यौवनके नशेमें चूर था। उस समय मैंने बहुत पाप किअे थे। यदि अिस कारणसे कनैया मुझे न अपनाअेगा तो? मेरे पहूँचनेका समाचार पाते ही वह कहीं छुप जाअेगा तो?

अपनी युवावस्थाके समयके पापाचारको याद करके अक्रूरजी धीरज खो रहे हैं। फिर भी वे सोचते हैं कि श्रीकृष्ण तो पतीतपावन हैं, वे अवश्य मुझे अपनाअेंगे। यदि मुझ जैसे पापीको नहीं अपनाअेंगे तो फिर उन्हें पतीतपावन कौन कहेगा?

हे नाथ, मैं पतीत हूँ और आप पतीतपावन! मुझे अपना लीजिअेगा।

विचार करना ही है तो पवित्र विचार करो। बुरे विचार मनको विकृत करते हैं।

मार्गमें शुभ शकुन हुअे तो अक्रूरजीने सोचा, भगवान मुझे अवश्य अपनाअेंगे।

अक्रूरजीने मार्गमें श्रीकृष्णके चरणचिह्न देखे। कमल, ध्वजा और अंकुशयुक्त चरण तो मेरे श्री कृष्णके ही हो सकते हैं। अिसी मार्गसे कनैया गया होगा। वह खूले पाँव ही गायोंको चराता फिरता है।

आदिनारायणका चिंतन हो रहा है। यदि वे खूले पाँव पैदल घूमते हैं तो मैं तो उनका सेवक हूँ, मैं रथमें कैसे बैठ सकता हूँ? मैं सेवा करने योग्य नहीं हूँ, अधम हूँ, पापी हूँ। मै तो वैष्णवका दास हूँ। मै तो श्रीकृष्णकी शरणमें जा रहा हूँ। मुझे रथ पर सवार होनेका क्या अधिकार है? अैसा सोच कर वे पैदल चलने लगे।

गोकुल पहूँच कर वहाँकी रज सारे शरीर पर अर्चित कर ली। व्रजरजकी बडी महिमा है क्यों कि प्रभुके चरणोंसे पवित्र जो हुअी है।

अक्रूरजी परमात्माके लिअे पागलसे हो गअे हैं। जैसे पैसोंके लिअे पागल हुअे बिना पैसा नहीं मिलता है उसी तरह प्रभुको पानेके लिअे उनके पीछे पागल बनना पड़ता है। पागल किसी वस्तुके लिअे नहीं, प्रभुके लिअे बनो। कामांध व्यक्ति शरीरके लिअे पागल होता है और लोभी धनके लिअे। कामांध व्यक्तिको स्थल-कालका भी भान नहीं रहता है।

भगवानको पानेके लिअे भी देहभान और स्थल-कालको भूल कर पागल बनना ज़रुरी है।

भगवान पैदल चलते हैं तो तो मुझे तो दंडवत् करते करते चलना चाहिअे। तभी मेरे पाप जलेंगे। और अक्रूरजी दंडवत प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ने लगे।

अक्रूरजी वंदनाभक्तिके आचार्य हैं।

बद्रिनाथ जाते हुअे मार्गमें हनुमानचट्टी नामक स्थान आता है। वहाँ पहुँचने पर यात्रीका हृदय भर भर आता है। मैं परमात्मासे मिलने जा रहा हूँ। कल उनके दर्शन होंगे। मुझ पापीको वे अपनाअेंगे क्या? मुझसे जाने-अनजाने बहुतसे पाप हुअे होंगे। मुझे दंडवत करते हुअे जाना चाहिअे। तभी मेरे पाप नष्ट होंगे। मैं साष्टांग प्रणाम करते करते आगे बढूँगा। अैसा सोचते हुअे कअी यात्री दंडवत प्रणाम करते करते आगे बढ़ते हैं और हनुमानचट्टीसे बद्रिनाथका मार्ग अिसी प्रकार काट देते हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

राजन्! अक्रूरजी आदिनारायाणके दर्शनके लिअे दंडवत प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ रहे हैं।

परमात्माको प्रसन्न करनेका अेक अच्छा-सा साधन है दंडवत वदन।

मथुरासे निकले हुअे अक्रूरजीको गोकुल पहुँचते पहुँचते शाम हो गअी क्योंकि वे मार्गमें बड़े भक्तिभावसे दंडवत् प्रणाम करते हुअे आगे बढ़ते थे।

भगवानने अक्रूरजीके मनोरथ पूर्ण किअे।

भगवानके लिअे किये जाते शुभ संकल्प वे अवश्य पूर्ण करते हैं।

रोज भावना करो कि मृत्युके समय भगवान तुम्हें लेने आअे।

जब बुरे संकल्प सिद्ध होते हैं तो शुभ संकल्प सिद्ध क्यों न होंगे?

दंडवत् प्रणाम करते करते अक्रूरजी गौशालामें आअे। उन्होंने सोचा था कि श्रीकृष्णके वहीं दर्शन होंगे। दर्शन हुअे। वे तो कहना चाहते थे कि वे पापी हैं और श्रीकृष्णकी शरणमें आअे हैं। किंतु उनका गला भर आया, वे अेक शब्द भी बोल न सके और भावावेशसे अचेत-से हो कर भगवानके चरणोंमें जा गिरे। श्रीकृष्णको प्रणाम किया।

परमात्माकी आँखें तो सदा सर्वदा प्रेमभीगी ही होती हैं। उन्होंने देखा कि अक्रूरजी अपनी शरणमें आया है।

अक्रूर चाहते थे कि जब वे प्रणाम करें उसी समय ठाकोरजीकी दृष्टि उन

पर पड़े कि जिससे उनका हृदय शुद्ध हो जाय और पाप करनेकी अिच्छा ही न जागे। उनकी यह भी अिच्छा थी कि प्रभु उनके सर पर हाथ पसारे।

प्रभुने अक्रूरजीके मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराते हुअे उनको खड़ा किया। अक्रूरजीने तो सोचा था कि जब कनैया उन्हें चाचा कह कर पुकारेगा तभी वे खड़े होंगे। किंतु मुझसे पापीको भला वे चाचा क्यों कहेंगे? वे मुझे नहीं अपनाअेंगे तो ब्रह्मसंबंध पक्का नहीं होगा।

भगवान किसीको भी जल्दी अपना नहीं लेते हैं। जीव मंदिरमें जाकर भगवानसे कहता है कि वह उन्हींका है। किंतु घर आकर वह अपनी पत्नीसे कहता है कि वह उसीका है। किंतु जीव बड़ा मूर्ख है। वह यह नहीं जानता है कि "प्रेमगली अति सॉकरी, तामें दो न समाय"।

भगवानने अक्रूरजीका मनोभाव जान लिया। उन्होंने सोचा कि यदि चाचा कहनेसे अक्रूरजीको सुख मिलता हो तो अैसा कहनेमें कोनसी आपत्ति है। जीव जिस भावसे मुझे भजता है उसी भाव और संबंधसे मैं भी उसको भजता हूँ। मैं जीवका पिता भी हूँ और पुत्र भी।

अीश्वरको महान क्यों माना जाता है? अिसका कारण यह है कि वे दुराग्रही नहीं, अनाग्रही हैं। जीव ही दुराग्रही है। जीवको कुछ सम्मान या संपत्ति मिलते ही वह दुराग्रही बन जाता है।

अीश्वरके साथ चाहे जिस प्रकारका संबंध जोड लो। वे कभी विश्वासघात नहीं करेंगे। उनके साथ पिता-पुत्र-पति-सखा-बंधु-सेवक या अन्य जो चाहो सो संबंध कायम कर लो। किसी भी प्रकारका संबंध कायम किअे बिना जीवन सफल नहीं होगा।

अक्रूरजी चाहते थे कि श्रीकृष्ण चाचा कह कर पुकारे। श्रीकृष्णने उनके मस्तक पर हाथ पसारते हुअे कहा, चाचाजी, अब उठिअे भी। उनको उठा कर आलींगन दिया। जीव जब शरणमें आता है तो भगवान उसको अपनी बांहोंमें भर लेते हैं।

आज जीव भगवानकी शरणमें आया है। भगवानने अक्रूरजीकी सभी मनोकामना संतुष्ट की।

प्रभु शुभ संकल्पको हमेशा साकार करते हैं। उस लकड़ी काट कर बेचनेवालेने सत्यनारायणकी कथा करनेका संकल्प किया तो प्रभुने उसे भी सहाय की थी। शुभ विचार हमेशा साकार होते हैं। अक्रूरजीकी अिच्छाअें पूर्ण हुअीं। जिस जीवको अक्रूरजीकी भॉति आदर मिले वही धन्य है अन्यथा जगतके मानपत्र तो सब बेकार हैं।

जगतके मान-अपमानसे प्रसन्नअप्रसन्न होना निरर्थक है। मृत्युके समय जगतके मानापमान कुछ काम नहीं आअेंगे। भगवान जिसका आदर करते हैं उसीका मान चिरस्थायी रहता है।

गौशालासे सब नंदजीके घर पर आअे। नंदजीने अक्रूरजीका स्वागत किया। भोजनादिसे निवृत्त होने पर नंदजीने अक्रूरजीसे आगमनका कारण पूछा।

अक्रूरजी :–नंदजी, मैं तो आप सबको राजा कंसकी ओरसे आमंत्रण देने आया हूँ। मथुरामें धनुष्ययज्ञ किया जा रहा है। आप सबको दर्शनार्थ बुलाया गया है। आप चाहे गाड़ीसे आयें किंतु बलराम-श्री कृष्णके लिये तो सुवर्णरथ भेजा है।

नंदजी बहुत भोले थे। वे आमंत्रण पा कर प्रसन्न हो गये। मै कंसको कर देता हूँ सो मेरे बेटोंके लिये सुवर्णका रथ भेजा होगा। मेरे पुत्रोंसे कंस कितना प्यार करता है।

नंदबाबा क्या जाने कि विश्वास उत्पन्न करनेके हेतु ही कंसने सोनेका रथ भेजा था।

नंदबाबा कहते हैं, मैं भी चाहता था कि मेरे पुत्रोंको कभी मथुरा भी दीखाऊं।

गाँवके बालकोंने यह बात जानी तो वे भी साथ चलनेको तैयार हो गये। हम नहीं होंगे तो कनैयाकी देखभाल कौन करेगा? वे मानते थे कि बेचारे कनैयाको वे ही संभाल सकते हैं। जगतकी देखभाल करनेवालेकी आज बालक देखभाल करने चले हैं। नंदबाबाने सभी बच्चोंको साथ चलनेकी अनुमति दे दी।

यह सारी बात जब यशोदा तक पहुँची तो उनका तो दिल ही बैठ गया। यह अक्रूर अक्रूर नहीं, क्रूर ही है। मेरे लालाको मत जाने दो। वह चला जायेगा तो गोकुल उजड़ जायेगा। वह नहीं होगा तो गायें भी खानापीना छोड़ देंगी। यदि ले जाना हो है तो बलरामको ले जाओ, कनैयाको नहीं। सुना है कि मथुराकी नारियाँ जादूगरनी होती हैं। कुछ ऐसा टौना कर देंगी कि मेरा कनैया वापस नहीं आ सकेगा।

यशोदा नंदजीसे भी विनति करने लगी :–यदि तुम्हें मथुरा जाना हो तो जाओ, किंतु लालको न ले जाओ। वहाँ उसकी देखभाल कौन करेगा? वह बड़ी शर्मीला है। वह भूखा होने पर भी कुछ मांगता नहीं है। उसे मनाकर कौन खिलायेगा?

दो-तीन दिन पहले ही मैंने बुरा सपना देखा था। मेरा लाला मुझे छोड़ कर हमेशाके लिये मथुरा जा रहा है। यह अक्रूर मुझे काल जैसा लगता है। मै लालाको मेरी दृष्टिसे दूर नहीं होने दूँगी।

नंदबाबा यशोदाको ढाढ़स बंधाते हुये समझाने लगे :–कनैया ग्यारह बरसका तो हुआ। अब कितने दिनों तक तू उसे अपने घरमें रखोगी? उसे बाहरका जगत भी देखना चाहिये। मैं अब उसे गोकुलके राजा बनने योग्य बनाना चाहता हूँ। हम दो-चार दिन मथुरामें घूमधाम कर वापस आ जायेंगे। तू चिंता न कर।

फिर भी यशोदाका दिल नहीं मानता है। मेरे लालको मेरी आँखोंसे मैं कैसे दूर करुं? मैं इस वृद्धावस्थामें कनैयाके लिये ही तो जी रही हूँ। यही तो है आधार मेरा।

रात आयी। सब सो गये किंतु यशोदाकी आँखोंसे नींद आज दूर दूर चली गयी थी। न जाने कल क्या होगा। कनैया चला जायेगा तो मैं अकेले कैसे जी पाऊंगी? वह बाहर आंगनमें आ कर सीसकियाँ भरने लगी।

कनैयाकी आँखे अचानक खुल गआीं तो सेज पर माता नहीं थी। वह उसे अिधर-उधर ढूंढने लगा। उसने माताको वाहर आंगनमें रोते हुअे पाया। वह माताके पास वैठ गया और माताके गलेमें हाथ डाल कर, उसके आँसू पोछते हुअे रोनेका कारण पूछने लगा। तू क्यों रोती है? तू रोती है तो मुझे वड़ा दु:ख होता है।

कनैयाकी वातें सुन कर माताको कुछ तसल्ली हुअी। वह कहने लगी, वैसी तो कोअी खास वात नहीं है। तू कल जा रहा है सो मेरी आँखें वरस रही हैं। मुझे छोड़ कर तू कहीं भी न जाना। तेरे ही सहारे तो मै जी रही हूँ।

कनैया माताको आश्वासन देने लगा। क्यों चिंता करती है तू? मैं ज़रुर वापस आअूंगा। यधपि लालाने यह नहीं वताया कि वह वापस कव लौटेगा। माताने भी नहीं पूछा। वह तो लालाके वापस आनेकी वात सुन कर प्रसन्न हो गअी। मेरे वेटेकी हर वात सच होती है। वह अवश्य लौटेगा। वापस आनेकी वात सुन कर वह आनंदमें अितनी तो मग्न हो गअी कि यह पूछना भी भूल गअी कि वह लौटेगा तो कव लौटेगा।

यशोदाने लालासे कहा, चल, अव हम सो जायँ। दोनों अेक ही सेज़ पर सो गअे। आज श्रीकृष्णने यशोदाके हृदयमें प्रवेश किया। अव कनैया वाहर नहीं, भीतर ही दीखाअी देगा।

वसुदेव-देवकी कारागृहमें ग्यारह वर्षोंसे तप कर रहे हैं। अव यदि कृष्ण वहाँ न जाअेंगे तो उन दोनोंके प्राण चले जाअेंगे।

प्रात:काल हुआ। मंगल स्नान समाप्त हुआ तो माता कनैयाका शृंगार सजाने लगी। तेरा मनोहर रुप अव मैं कव देख पाअूंगी? कनैयाने वापस आनेका वचन दिया।

यशोदाजीका मन आज अधीर हो उठा है। उसने स्वयं भोजन पकाया और कनैयाको खिलाया।

अक्रूरजी रथ लेकर आँगनमें आ गअे।

जव गोपियोंको समाचार मिला तो वे दौड़ती हुअी आ पहूँचीं। उनमें राधिकाजी भी थीं। उनके मुख पर दिव्य तेज फैला हुआ था और सादगीभरा शृंगार था। आज तक कभी वियोग हुआ ही नहीं था सो आज वियोगका प्रसंग उपस्थित हुआ तो राधिकाजी अचेत-सी हो गअीं। वे अचेतावस्थामें ही कहने लगीं- हे प्यारे, हे कृष्ण, मेरा त्याग न करो। हमें छोड़ कर मत जाओ।

गोपियाँ अक्रूरजीसे भीड़ गअीं। हमारे कनैयाको क्यों ले जा रहे हो? श्याम-सुंदरके दर्शन विना हम जीअेगी ही कैसे? कनैयाको मत ले जाओ। तुम्हारा नाम अक्रूर किसने रखा है? तुम तो क्रूर हो। हमें रुलानेके लिअे आअे हो। हम तुम्हारे घरका हरकोअी काम करनेको तैयार हैं किंतु कृष्णविरहमें हमें मत मारो। कृष्णविरहसे वड़ा और कौन दु:ख होगा?

कक्रूर! कनैयाके विना गोकुल स्मशान-सा हो जाअेगा। चाहे वलरामको तुम

ले जाओ किंतु कनैयाको हमसे मत छीनो। मथुराकी पढ़ी-लिखी नारियाँ कृष्णकी अैसी सेवा करेंगी कि वह हमें भूल जाअेगा। वे तो चतुरा हैं और हम अनपढ़। वे न जाने कनैयाको क्या क्या उल्टा-सीधा पढ़ा कर वहीं रोक लेंगी। हमारे भाग ही फूटे हुअे हैं।

गोपियाँ विलाप कर रही हैं। हे विधाता! तू भी कैसा निर्दय है! जीवोंसे परस्पर स्नेह कराता है और तुरंत अलग करके विरहाग्निमें जलाता है। अपने कनैयाके विना हमसे कैसे जिया जाअेगा?

अक्रूरको सुझाअी ही नहीं दे रहा है कि अिन गोपियोंको कैसे समझाया जाअे।

कृष्णने गोपियोंसे कहा:-मैं तुम सबको प्रसन्न रखनेके लिअे बांसुरी बजाता था और खेल रचाता था। अब मुझे जाना ही होगा।

कृष्णने मूर्छित राधाजीको देखा तो उनके पास जाकर कानमें कहने लगे:-राधे, पृथ्वी पर असुर बहुत बढ़ गअे हैं। उन पापी राक्षसोंका नाश करके पृथ्वीका बोझ हल्का करना है। आज तक तेरे साथ प्रेमसे नाचता-खेलता रहा। अब जगतको नचाने जा रहा हूँ। मैं तुम सबके साथ ही नाच सकता हूँ, औरोंके साथ नहीं।

सखीओ, मैं जा तो रहा हूँ किंतु मेरे प्राण तो यहाँ तुम्हारे पास ही रहेंगे। मैं अपने प्राण तुम्हारे हृदयमें रख कर जा रहा हूँ। मेरे प्राणोंकी रक्षाके लिअे तुम अपने प्राणकी रक्षा करना।

राधे, मैं आज तक तो तेरे समीप ही था। अब कुछ दूर जा रहा हूँ। किंतु हम तो अभिन्न हैं। लीलाके हेतु ही हमने अलग अलग शरीर धारण किअे हैं। मुझे अपने प्राणोंसे भी यह बांसुरी अधिक प्यारी है। तू जब भीयह बांसुरी बजाअेगी, मैं दौड़ा हुआ चला आअूंगा।

गोपी -कनैया, विरहाग्निमें हमें मत जलाना। हमें कहीं भूल न जाना।

बाहरके पानीसे नहीं, आँखोंसे बरसते प्रेमाश्रुसे ही मन धोया जा सकता है।

गोपियाँ रो रही हैं। कृष्ण उन्हें धीरज बँधा रहे हैं। मेरे मंगलमय प्रयाणके समय रोनेसे अपशकुन होंगे। मै अवश्य लौटूंगा।

गोपियोंका रुदन कुछ कम हुआ तो कृष्ण और बलराम नंदजीके साथ रथारुढ हुअे। रथ चलने लगा तो गोपियाँ भी पीछे पीछे चलने लगीं। कनैयाके मना करने पर आँसू रुक तो गअे थे किंतु फिर बह निकले। न जाने कनैया अब कब लौटेगा? न जाने कब दर्शन होंगे फिर उसके? वे बड़े ज़ोरोंसे रोने लगी।

विसृज्य लज्जां रुरुदु: स्म सस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति।

भा. १०-३९-३१

कैसी थीं वे गोपियाँ? कृष्ण विरकत मानसा। श्रीकृष्णसे ही मन लगा हुआ था।

हे गोविंद! हे माधव! अिस गोकुलको मत उजाड़ो। नाथ, अिस गोकुलको अनाथ न करो। हमको भूल न जाना।

अेक गोपी कह रही है, नाथ, तुम्हारे दर्शन किअे विना पानी तक न पीनेका मेरा नियम था। मेरे यहाँ कुछ क्षणोंके लिअे भी आते रहना।

सारा गाँव रो रहा था। अक्रूरजी भी द्रवित हो गअे। ग्रामजनोंका कृष्णप्रेम और कृष्णविरहका दुःख देख कर अक्रूरकी आँखें भी आँसू बहाने लगीं। गायें भी रो रही थीं। कोअी गोपी रथके पीछे दौड़ रही है तो कोअी मूर्छित हो कर गिर रही है।

श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे कहा, ये प्रेमसे छलकते हुअे हृदयवाले ग्रामजन मुझे आगे बढने ही नहीं देंगे। सो रथ ज़रा जल्दी चलाओ।

अधीरतासे यशोदा रथके पीछे दौड़ने लगी। प्रभुने दौडती हुअी माताको देखा तो रथ रुकवाया। माताने पुत्रकी नजर उतारी, आरती की। बेटे, तेरे जानेसे मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं तो चाहती थी कि मेरी आँखोंसे तू कभी दूर न होने पाअे। किंतु मैने केवल अपने लिअे ही तुझसे प्यार नहीं किया है। मैं प्रार्थना करती हूँ कि जहाँ भी रहे, सुखी रहे।

काना, मैं आज अेक रहस्य खोल रही हूँ। तू मुझे मा कहता है, मैं तुझे बेटा कहती हूँ। किंतु तू मेरा पुत्र नहीं है। तू तो देवकीका पुत्र है। मै तो तेरी पालक माता हूँ, तेरा लालन-पालन करनेवाली दासी हूँ।

कृष्ण :-अरे मा, क्या कह रही है तू? लोग चाहे सो कहें मै तो सारे जगतसे यही कहूँगा कि मै यशोदाका ही बेटा हूँ।

यशोदा :-बेटे, मथुरामें तू यह भूल जाना कि तुझे मैने कभी मुशलसे बाँधा था।

कनैया :-मैं सब कुछ भूल सकता हू किंतु तेरे बंधनोंको कैसे भूल जाअूँ? मै मात्र तुझसे ही बँध पाया हूँ।

यशोदा :-तू कहीं मुझे भूल तो नही जाअेगा न? मुझे मिलनेके लिअे आअेगा न?

कनैया :-अवश्य आअूँगा। तू अपने शरीर और हमारी गायोंकी पूरी पूरी देखभाल करना।

माता :-तू जहाँ भी रहे, सुखी रहे यही मेरे आशीर्वाद हैं।

रथ आगे बढ़ने लगा। गोपियाँ पीछे दौड़ने लगी। उन्होने कनैयाकी आरती उतारनी चाही तो रथ फिरसे रोका गया।

श्रीकृष्ण गोपियोंसे कहने लगे :-दुष्टोंकी हत्या, दैत्योंका संहार तो मेरे जन्मका गौण प्रयोजन है। मेरे अवतारका मुख्य प्रयोजन तो है गोकुलमें प्रेमलीला करना। मेरा अेक स्वरुप यहाँ तुम्हारे पास रहेगा और दूसरा स्वरुप मथुरामें।

पहले मात्र यशोदाके घर ही अेक कनैया था। अब हर गोपीके घरमें अेक अेक कृष्ण है। कृष्णने सभी गोपियोंके हृदयमें प्रवेश किया है।

महाप्रभुजी कहते हैं कि यह अंतरंगका संयोग है और बहिरंगका वियोग। प्रत्येक गोपी अनुभव कर रही है कि श्रीकृष्ण उसके पास ही बसे हुअे हैं और मथुरा नहीं गअे हैं।

श्रीकृष्णको लेकर रथ चला गया और गोपियाँ चित्तलिखीत-सी खड़ीकी खड़ी रह गयीं।

कनैयाने गोकुलका त्याग नहीं किया है। वह तो हर अेक गोपीके हृदयमें बसा हुआ है। भगवानने वचन दिया था—

वृंदावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

वियोगके विना तन्मयता आ नहीं सकती। विना वियोगके ध्यानमें अेकाग्रता नहीं आ पाती और साक्षात्कार नहीं होता। व्रजवासीको अपने विरहके सहारे तन्मय बनानेके हेतुसे ही भगवान मथुरा गये।

वियोगसे, विरहसे प्रेम पुष्ट बनता है। अिसीलिये श्रीकृष्णने गोपियोंको अिस वियोग रुपी विशिष्ट योगका दान किया।

गोपियोंकी दशा भी देखिये—

श्याम बिनु व्रज सूनो लागै।
सूनी कुंज, तीर जमुनाकी सब सुनो लागै।
श्याम बिनु चैन नहीं आवै॥

रथ बढ़ता हुआ यमुना किनारे आया। अक्रूरजी स्नानार्थ जलमें उतरे। तो जलमें श्रीकृष्ण और बलरामके दर्शन हुअे। बाहर आ कर देखा तो दोनोंको रथमें बैठा हुआ पाया। बार बार अैसा अनुभव हुआ। अक्रूरको भगवान नारायणके दर्शन हुअे।

कुछ वैष्णवोंका मानना है कि मथुराकी ओर जाते समय श्रीकृष्णने यमुनाजीमें स्नान किया और नारायणका रुप लेकर प्रगट हुअे। अर्थात् श्रीकृष्ण स्वयं वृंदावन वापस आये और उनका नारायण स्वरुप लीला करनेके लिये मथुरा गया। वैसे तो श्रीकृष्ण और नारायण दोनों अेक ही हैं। जो भेद है वह तो उपासनाके हेतु है।

अक्रूरजीने यमुनामें स्नान करके परमात्माकी स्तुति की।

रथ मथुराकी सीमा पर आया तो श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे कहा, चाचाजी, आप आगे बढ़िये, हम यहीं उद्यानमें विश्राम करेंगे।

जिस नगरीमें कंस हो, वहाँ श्रीकृष्ण कैसे रह सकते हैं? यदि वे अंदर जायँ तो कंसका नाश हो जाय। प्रकाश और अंधकार अेक साथ कैसे रह सकते हैं?

विषयानंद और ब्रह्मानंद अेक साथ नहीं रह सकते।

मथुरा-मानवकायामें श्री कृष्ण-ब्रह्म और कंस-काम अेक साथ कैसे रह सकते हैं?

जहाँ काम तहाँ राम नहीं, जहाँ राम वहाँ नहीं काम।
तुलसी दोनों ना रहे, रवि-रजनी अेक ठाम॥

यशोदाजीने दही-दूध तथा अन्य खाद्य सामग्री अिनको दी थी। जब भोजन करने बैठे तो व्रजवासी, गोपियाँ, गायें और यशोदा आदि याद आ गये। हाथ रुक गया। नंदजीने यह देखा तो कारण पूछा। कनैयाने कहा, मेरी सखियाँ,

और माताजी मेरे वियोगके कारण भूखे होंगे। मै खाऊँ तो कैसे खाऊँ ?

प्रभुके साथ अैसा तो प्रेम करो कि वे तुम्हें याद करें। जब तक प्रभुकी यादोंमें तुम बस नहीं पाओगे, तुम्हारी भक्ति अधूरी ही रहेगी। जब तक वे याद नहीं करते, जीवका बंधन बना रहता है। भक्ति अैसी करो कि भगवानको तुम्हारे विना चैन न आअे।

यशोदाजी और गायोंका प्रेम अैसा तो गाढा था कि कृष्णवियोगमें वे खा-पी भी न सके।

संध्या आअी तो दोनों भाअी मथुरा देखने चले। महाद्वारमेंसे प्रवेश किया। आदतके कारण गोकुलके बालक कनैयाको साथ चलते हुअे उसकी जय पुकारने लगे। मथुराकी नारियोंने भी सुना।

शुकदेवजी वर्णन नहीं करते, मानो प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

जिस लीलाकी कथाका प्रसंग चल रहा हो उसका यदि प्रत्यक्ष अनुभव करनेकी कल्पना की जाअे तो वक्त और श्रोताको बड़ा आनंद आअेगा।

स्तनपान कराती हुअी अेक माता बालकको वहीं छोड़ कर कृष्णके दर्शनार्थ दौड़ निकली। अपना बालक तो घरमें ही रहनेवाला है किंतु कृष्णके दर्शन फिर शायद न हो सके तो ? अिसी प्रकार नगरके छोटे-बड़े सभी अपना अपना कामकाज छोड़ कर श्रीकृष्णके दर्शनके लिअे दौड़ चले।

भगवानके दर्शनके लिअे वैसी ही लगन होनी चाहिअे। आतुरताके विना दर्शन हो नही पाते। दर्शनमें लीन हो जानेसे बडा आनंद आता है। अैसी व्याकुलता, आतुरता, लगन होगी तो अीश्वर दर्शन देनेकी कृपा करेंगे।

मथुराकी स्त्रियाँ श्रीकृष्णके दर्शन करती हुअीं आपस-आपसमें बातें करने लगीं।

रास्तेमें राजा कंसका धोबी मिला जो राजाके कपड़े लेकर जा रहा था। यह वही धोबी था जिसने रामावतारमें जानकी माताकी निंदा की थी।

निंदा और नरक अेक-से हैं। किसीकी निंदा कभी न करो।

श्रीकृष्णने उस धोबीसे कुछ वस्त्र मांगे। वह मूर्ख धोबी अकड़से कहने लगा, यह तेरा गँवार गाम नहीं, नगर है नगर। ये वस्त्र तो राजाके हैं। तूने तो क्या तेरे बापदादोंने भी अैसे कीमती पडे कभी देखे भी हैं ? ज्यादा गरबड़ करेगा तो राजाके सिपाहियोंके हवाले कर दूँगा। बचना है तो भाग जाओ अिधरसे।

धोबीकी धृष्टता बलरामसे सही न गअी। कनैया, लगता है अिस धोबीकी मृत्यु मंडरा रही है। लगा दे अेक झापड अिसे। कनैयाने पल भरमें उसका मस्तक उड़ा दिया। धोबीकी अैसी दशा देखी तो धोबीके साथी कपडोंकी गठरियाँ वहीं छोड़ कर भाग निकले।

अीश्वर पापी अिन्द्रियोंको दंड देते हैं। अंतकालमें वह पापी अिन्द्रिय बड़ी दुःखी हो जाती है। वाणीसे पाप करने पर वागदेवी अंतकालमें रुठ जाती हैं। अैसे पापीका बोलना बंद हो जाता है।

धोबीने मुखसे निंदा की तो भगवानने उसके मुख पर चाँटा जड़ दिया।

अीश्वर सरल जीवके साथ सरल हैं और कुटिलके साथ कुटिल। जिसका मन पवित्र नहीं होता है उसे अंतकालमें बड़ी मनोव्यथा होती है।

कनैया तो चोरीका आदी था। उसने अपने गोपमित्रोंसे उन गठरियोंके कपड़े ले लेनेको कहा। बालक कुछ डर रहे थे सो कनैयाने स्वयं कपड़े बाँट दिअे। जिसे जो कपड़ा दिया वह उसीके नापका निकला। बालक तो आनंदसे नाच उठे। उन्होंने माना कि अिन कपडोंके सीनेवाला कितना कुशल कारीगा होगा। वैसे तो अैसा दरजी कभी हुआ ही नही है। यह तो अपने मित्रोको बड़े सुंदर वस्त्र पहनानेकी कृष्णकी प्रतिज्ञा थी जो आज उन्होने पूरी की।

गरीब बालक तो अच्छे अच्छे कपड़े पाकर खुश हो गअे। वे कनैयासे कहने लगे, अैसे अच्छे वस्त्रोंके कारण हमारा चटपट ब्याह हो जाअेगा। हमारे ब्याहमें तू भी आअेगा न? कनैयाने कहा, हाँ, ज़रुर आअूँगा।

अैसी भावना करो कि तुम कृष्णके हो और वे तुम्हारे हैं।

श्री कृष्णने अपने गरीब मित्रोंको वस्त्र पहनाअे और बादमें स्वयं पहने। उनकी प्रतिज्ञा आज पूरी हुअी। पहले वे विना सीले हुअे कपड़े-पीतांबर और कमली-पहनते थे।

राम और कृष्णने आदर्श मित्र-प्रेमके दृष्टांत जगतके समक्ष रखे हैं।

मार्गमें सुदामा मिला जिसने अिनको माला पहनाअी। कृष्णके साथियोंको भी माला पहनाअी।

आगे बढ़े तो कंसकी दासी कुब्जा मिली। उसके तीन अंग बेढंगे थे। वह चंदनपात्र लेकर जा रही थी। उसने प्रभुका चंदन दिया तो वे प्रसन्न हुअे। प्रभुने सोचा, अिस कुब्जाने मुझे चंदन देकर मेरी शोभा बढ़ाअी है तो मैं भी उसकी शोभा बढा दूं। सभी अंग अच्छे हो गअे और वह सुंदर बन गअी।

चंदन और वंदन मनुष्यको नम्र बनाते हैं।

अिस कुब्जा प्रसंगमें अेक रहस्य है। हमारी बुद्धि ही कुब्जा है जो काम, क्रोध और लोभसे वक्र हो गअी है। प्रभुकी पूजा अिन तीनों दोषोंको नष्ट करके बुद्धिको शुद्ध करती है। बुद्धि यदि कंस-कामकी सेवा करेगी तो विकृत हो जाअेगी। बुद्धि अीश्वरके संमुख आकर सरल बन सकती है। यदि अैसा नहीं हुआ तो पाँचों विषय जीवको सताते रहते हैं।

कंसकी सेवा करनेवाली बुद्धि भ्रष्ट, वक्र होगी और कृष्णकी सेवा करनेवाली सरल। विषयोंका चिंतन करनेसे बुद्धि वक्र होगी। जिसकी बुद्धि वक्र हो उसका मन भी वैसा ही हो जाअेगा। विकृत मनवालेकी आँखे भी दुषित ही हो जाअेंगी। जिसकी आँखें दुषित हों उसका जीवन भी तो दुषित होगा।

मथुराके बनियाओंने सुना कि अिन दो लड़कोंने धोबीको मारा और कुब्जाकी क़ायापलट कर दी तो उन्होंने सोचा कि ये दोनों पराक्रमी हैं। हो सकता है कि

ये मथुराके राजा बन जायँ। सो उनका आजसे आदर-सत्कार करना चाहिअे। समय आने पर उनसे कुछ काम करवाना भी पड़े। अगम बुद्धि बनिया। थोड़ा-सा देकर ज्यादा लेनेकी आशा रखे और प्रयत्न करे वही बनिया है। कम लेकर अधिक दे वह संत। संत और ब्राह्मण थोड़ी-सी दक्षिणा मिलने पर भी आशीर्वाद देते हैं कि आयुष्यमान भव, लक्ष्मीवान भव।

तो उन बनियोंने आज सेवा करके कल लाभ पानेकी बात सोच ली। उन्हांने कृष्णको कुछ पान-सुपारी देते हुअे कहा, ये सब आपका ही है। दुकान आपकी ही है। बनिया बोलनेमें बड़ा मीठा होता है किंतु बील बनाते समय, धन बटोरते समय कुछ और ही हो जाता है। वह अपनेको बुद्धिमान मानता है। धन कमानेमें ही बुद्धिका उपयोग करनेवाला बुद्धिमान कैसे कहा जाअेगा?

अपनी बुद्धिका उपयोग जो व्यक्ति प्रभुकी प्राप्तिके लिअे करे वही बुद्धिमान है।

उन बनियोंने भगवानको और कुछ भी नहीं दिया। भागवतमें लिखा है- व्रजानुमार्गे वणिक पथै तांबूल स्रग गंधेः। उन्होंने केवल पान और फूलमाला ही प्रभुको दी।

फिर भी कृष्ण तो भगवान थे। वे अैसे स्वागतसे भी प्रसन्न हुअे। उन्होंने मेरा अैसा भी स्वागत तो किया ही है न? तो उन्होंने बनियोंसे वर मांगनेको का।

बनिये :-प्रभु, हम चाहते हैं कि लक्ष्मीजी हमेशा हमारे घरों ही में वास करें, किसी औरोंके घर न जायँ।

श्रीकृष्ण :-क्या तुम लोगोंको ज्ञान, भक्ति, सदाचार, वैराग्यकी कोअी आवश्यकता नहीं है?

बनिये :-अजी, उन चीजोंसे हमें क्या लेना-देना है। हमें तो बस धन चाहिअे, फिर वह कैसे भी मिले और कहाँसे भी मिले।

भगवान मथुरा पधारे तो बनियोंने पानसुपारीसे स्वागत किया किंतु ब्राह्मण अकड़ कर स्वागत करने नहीं गअे। तो लक्ष्मीजीने सोचा कि कैसे भी हो किंतु बनियोंने मेरे पतिकी सेवा की है और ब्राह्मणोंने तो कुछ नहीं किया है। अत लक्ष्मीजी बनियोंके घर गअीं किंतु ब्राह्मणोंके घर न गअीं।

लोग मानते हैं कि संपत्ति आअी तो सारे सुख आ गअे। किंतु अैसा सोचना ठीक नहीं है। संस्कारी बननेका प्रयत्न करो।

भगवान बनियोंकी दुकान पर ही थे कि अितनमें कुछ खरीदार आअे। तो बनिये उनसे मोल-तोलमें लग गअे। भगवानने उनसे धनुषयागका मार्ग पूछा तो कहने लगे, अजी, हम अिन घिराकोंसे कारोबार करें या तुमसे ही बातें करते रहें? जाओ, आगे किसीसे रास्ता पूछ लेना। कितने स्वार्थी हैं ये बनिये। लक्ष्मी मिली नहीं कि लक्ष्मीपतिको ही भूल गअे।

भागवत मृत्यु सुधारती है। अैसा न मानो कि तक्षक नाग केवल परीक्षितको ही काटने आया था। तक्षक नाग-काल सभीको किसी न किसी दिन काटेगा।

तक्षक नाग-काल नोटीस देकर आता है। शिरकेश सफेद होने लगें, दांत

गिरने लगें तो मान लो कि तक्षककी नोटीस आ पहूँची है। कालकी सूचना ध्यानमें लेनी चाहिअे और सब कुछ छोड़ कर भगवानकी भक्तिमें लग जाना चाहिअे।

यज्ञका आरंभ हुअे चार दिन समाप्त हो कर आज पाँचवा दिन आया है। यदि आजका दिन निर्विघ्न समाप्त हो जाये तो कंसका कोअी कुछ भी बीगाड़ नहीं सकेगा।

अिधर धनुष्ययागका स्थान ढूंढ़ते-पूछते कृष्ण-बलराम आ पहूँचे। कृष्णने धनुष्य उठा कर उसके टूकड़े टूकड़े कर दिये। उन्होंने कंसके सेवकोंकी भी भली भाँति मरम्मत कर दी।

तो कुछ सेवकोंने भाग कर राजाके पास आकर यज्ञभंगका समाचार दिया। वे राजासे कहने लगे, अब तो तुम्हारा यज्ञ अपूर्ण ही रह गया। उन प्रतापी बालकोंको राज्य दे दो और अीश्वरका भजन शुरु कर दो। तुमने कृष्णके माता-पिताको बंदी बना कर पाप किया है। तुम दुष्ट हो।

कंस आगबबुला हो गया। अरे मूर्खों, तुम्हें भान है कि तुम क्या बक रहे हो? राजा मैं हूँ, अपना राज्य मैं कभी किसीको नही दूँगा। समझे?

सूर्यास्त हुआ तो दोनों भाअी अपने मित्रोंके साथ नंदबाबाके पास लौट आअे।

नंदजीने बालकोंसे सुबहमें कहा था, देखो, यह हमारा गोकुल नहीं, मथुरा है। शांतिसे, सयाने हो कर धूमना-फिरना, कही उधम न मचाना।

अब वे वापस आअे तो नंदजीने उनसे पूछा, क्या नगर देख आअे? कहीं कुछ उधम तो नही मचाया था न?

कृष्ण :-जी नही, हमने तो कुछ भी नहीं किया है। लोग मेरा परिचय पूछते थे तो बता देता था कि मैं नंद-यशोदाका पुत्र हूँ। बाबा, मेरा परिचय पाते ही लोगोंने हमें ये अच्छे अच्छे कपड़े दिअे और फूलमाला पहनाअीं।

बेचारे भोले नंदबाबा! उन्होंने पुत्रोंकी बात सच मान ली। मैं अिस नगरीके यादवोंके साथ शुभ-अशुभ प्रसंगो पर योग्य व्यवहार करता आया हूँ, वे मेरे मित्र-से ही हैं। सो वे मेरे बच्चोंको कुछ दे यह अस्वाभाविक नही है।

कनैयाने बार बार कहा, बाबाजी, मै तुम्हारा पुत्र हूँ अिसीलिअे ये सब कुछ हमें मिला है। श्रीकृष्णने नंदजीकी पुत्र भावना बनायी रखी है।

रात्रिके समय भोजन करने बैठे। व्रजवासी अपने साथ खाने-पीनेकी बहुतसी सामग्री लाअे थे। कृष्णको यशोदा और अपनी गंगी गाय याद आ रही हैं। मेरे बिना मेरी माता और गंगीकी क्या दशा हुअी होगी? कृष्णको भोजनमें दिल नहीं लगता है।

दूसरे दिन प्रातःकालमें राजसभाका आरंभ हुआ। कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी। उसने अपने मल्ल चाणुर-मुष्टिकसे कृष्ण-बलरामको मार ड़ालनेकी आज्ञा दी।

किसी भी तरह उनसे कुस्ती करना और पछाड़ देना।

नंदबाबा भी कृष्ण-बलराम और अन्य गोपबालकोंके साथ राजसभामें पधारे कुवलयापीड हाथीके उद्धारसे ही कृष्णका प्रवेश हुआ।

ये मथुराके राजा बन जायें। सो उनका आजसे आदर-सत्कार करना चाहिये। समय आने पर उनसे कुछ काम करवाना भी पड़े। अगम बुद्धि बनिया। थोड़ा-सा देकर ज्यादा लेनेकी आशा रखे और प्रयत्न करे वही बनिया है। कम लेकर अधिक दे वह संत। संत और ब्राह्मण थोड़ी-सी दक्षिणा मिलने पर भी आशीर्वाद देते हैं कि आयुष्यमान भव, लक्ष्मीवान भव।

तो उन बनियोंने आज सेवा करके कल लाभ पानेकी बात सोच ली। उन्होंने कृष्णको कुछ पान-सुपारी देते हुये कहा, ये सब आपका ही है। दुकान आपकी ही है। बनिया बोलनेमें बड़ा मीठा होता है किंतु बील बनाते समय, धन बटोरते समय कुछ और ही हो जाता है। वह अपनेको बुद्धिमान मानता है। धन कमानेमें ही बुद्धिका उपयोग करनेवाला बुद्धिमान कैसे कहा जायेगा?

अपनी बुद्धिका उपयोग जो व्यक्ति प्रभुकी प्राप्तिके लिये करे वही बुद्धिमान है।

उन बनियोंने भगवानको और कुछ भी नहीं दिया। भागवतमें लिखा है- व्रजानुमार्गे वणिक पथै तांबूल स्रग गंधैः। उन्होंने केवल पान और फूलमाला ही प्रभुको दी।

फिर भी कृष्ण तो भगवान थे। वे ऐसे स्वागतसे भी प्रसन्न हुये। उन्होंने मेरा ऐसा भी स्वागत तो किया ही है न? तो उन्होंने बनियोंसे वर मांगनेको का।

बनिये :-प्रभु, हम चाहते हैं कि लक्ष्मीजी हमेशा हमारे घरों ही में वास करें, किसी औरोंके घर न जायें।

श्रीकृष्ण :-क्या तुम लोगोंको ज्ञान, भक्ति, सदाचार, वैराग्यकी कोई आवश्यकता नहीं है?

बनिये :-अजी, उन चीजोंसे हमें क्या लेना-देना है। हमें तो बस धन चाहिये, फिर वह कैसे भी मिले और कहाँसे भी मिले।

भगवान मथुरा पधारे तो बनियोंने पानसुपारीसे स्वागत किया किंतु ब्राह्मण अकड़ कर स्वागत करने नहीं गये। तो लक्ष्मीजीने सोचा कि कैसे भी हो किंतु बनियोंने मेरे पतिकी सेवा की है और ब्राह्मणोंने तो कुछ नहीं किया है। अतः लक्ष्मीजी बनियोंके घर गयीं किंतु ब्राह्मणोंके घर न गयीं।

लोग मानते हैं कि संपत्ति आयी तो सारे सुख आ गये। किंतु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। संस्कारी बननेका प्रयत्न करो।

भगवान बनियोंकी दुकान पर ही थे कि इतनेमें कुछ खरीदार आये। तो बनिये उनसे मोल-तोलमें लग गये। भगवानने उनसे धनुषयागका मार्ग पूछा तो कहने लगे, अजी, हम इन घिराकोंसे कारोबार करें या तुमसे ही बातें करते रहें? जाओ, आगे किसीसे रास्ता पूछ लेना। कितने स्वार्थी हैं ये बनिये। लक्ष्मी मिली नहीं कि लक्ष्मीपतिको ही भूल गये।

भागवत मृत्यु सुधारती है। ऐसा न मानो कि तक्षक नाग केवल परीक्षितको ही काटने आया था। तक्षक नाग-काल सभीको किसी न किसी दिन काटेगा।

तक्षक नाग-काल नोटीस देकर आता है। शिरकेश सफेद होने लगें, दांत

गिरने लगें तो मान लो कि तक्षककी नोटीस आ पहूँची है। कालकी सूचना ध्यानमें लेनी चाहिये और सब कुछ छोड़ कर भगवानकी भक्तिमें लग जाना चाहिये।

यज्ञका आरंभ हुये चार दिन समाप्त हो कर आज पाँचवा दिन आया है। यदि आजका दिन निर्विघ्न समाप्त हो जाये तो कंसका कोओी कुछ भी बीगाड़ नहीं सकेगा।

अिधर धनुष्ययागका स्थान ढूंढ़ते-पूछते कृष्ण-बलराम आ पहूँचे। कृष्णने धनुष्य उठा कर उसके टूकड़े टूकड़े कर दिये। उन्होंने कंसके सेवकोंकी भी भली भाँति मरम्मत कर दी।

तो कुछ सेवकोंने भाग कर राजाके पास आकर यज्ञभंगका समाचार दिया। वे राजासे कहने लगे, अब तो तुम्हारा यज्ञ अपूर्ण ही रह गया। उन प्रतापी बालकोंको राज्य दे दो और अीश्वरका भजन शुरु कर दो। तुमने कृष्णके माता-पिताको बंदी बना कर पाप किया है। तुम दुष्ट हो।

कंस आगबबुला हो गया। अरे मूर्खों, तुम्हें भान है कि तुम क्या बक रहे हो? राजा मैं हूँ, अपना राज्य मैं कभी किसीको नही दूंगा। समझे?

सूर्यास्त हुआ तो दोनों भाअी अपने मित्रोंके साथ नंदबाबाके पास लौट आये।

नंदजीने बालकोंसे सुबहमें कहा था, देखो, यह हमारा गोकुल नहीं, मथुरा है। शांतिसे, सयाने हो कर घूमना-फिरना, कहीं उधम न मचाना।

अब वे वापस आये तो नंदजीने उनसे पूछा, क्या नगर देख आये? कहीं कुछ उधम तो नहीं मचाया था न?

कृष्ण :-जी नही, हमने तो कुछ भी नहीं किया है। लोग मेरा परिचय पूछते थे तो बता देता था कि मैं नंद-यशोदाका पुत्र हूँ। बाबा, मेरा परिचय पाते ही लोगोंने हमें ये अच्छे अच्छे कपड़े दिये और फूलमाला पहनाअीं।

बेचारे भोले नंदबाबा! उन्होंने पुत्रोंकी बात सच मान ली। मैं अिस नगरीके यादवोंके साथ शुभ-अशुभ प्रसंगों पर योग्य व्यवहार करता आया हूँ, वे मेरे मित्र-से ही हैं। सो वे मेरे बच्चोंको कुछ दे यह अस्वाभाविक नही है।

कनैयाने बार बार कहा, बाबाजी, मै तुम्हारा पुत्र हूँ अिसीलिये ये सब कुछ हमें मिला है। श्रीकृष्णने नंदजीकी पुत्र भावना बनायी रखी है।

रात्रिके समय भोजन करने बैठे। व्रजवासी अपने साथ खाने-पीनेकी बहुतसी सामग्री लाये थे। कृष्णको यशोदा और अपनी गंगी गाय याद आ रही हैं। मेरे बिना मेरी माता और गंगीकी क्या दशा हुअी होगी? कृष्णको भोजनमें दिल नहीं लगता है।

दूसरे दिन प्रातःकालमें राजसभाका आरंभ हुआ। कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी। उसने अपने मल्ल चाणुर-मुष्टिकसे कृष्ण-बलरामको मार डालनेकी आज्ञा दी।

किसी भी तरह उनसे कुस्ती करना और पछाड़ देना।

नंदबाबा भी कृष्ण-बलराम और अन्य गोपबालकोंके साथ राजसभामें पधारे कुवलयापीड हाथीके उद्धारसे ही कृष्णका प्रवेश हुआ।

रंगभूमि पर श्रीकृष्ण पधारे। मल्लोको वे वज्रसे, सामान्य पुरुषोको नररत्नसे, स्त्रियोको मूर्तिमंत कामदेवसे, गोपालकोंको स्वजनसे, राजाओंको शासकसे, वृद्धोको बालकसे, कंसको कालसे, अज्ञानीको विराटसे, योगियोको परमतत्वसे और यादवोको परमदेवसे लगे।

> मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
> गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
> मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
> वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥

कृष्णका दर्शन करके सभी लोगोने अपने अपने भावानुसार रौद्र, अद्भुत, शृंगार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शांत तथा प्रेमभक्ति रसका अनुभव किया। जिस व्यक्तिकी जैसी भावना थी उसीको उसी रुपमें भगवान दीखाओ दिये।

जब रामचंद्रजी राजा जनककी राजसभामें पधारे थे तब भी वैसा ही हुआ था।

> जिन्हकी रही भावना जैसी।
> प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

चाणुर और मुष्टिक तो मदिरापान करके लडनेके लिये तयार ही बैठे हुये थे। श्रीकृष्ण और बलराम राजसभामें पधारे तो उन मल्लोने ललकारते हुये कहा :- अरे बालको, आओ हम कुश्ती करें। महाराज कुश्तीके बडे शौकीन हैं। जो जीतेगा उसे महाराज अिनाम देंगे।

कृष्ण :-अच्छा, राजाको प्रसन्न करना हमारा कर्तव्य है। किंतु हम तो ठहरे बालक। हम तुम कैसे करेंगे?

मदिरापानसे उन्मत्त चाणूर बोला :-अरे तू बालक है ही नहीं। तू तो बड़ा हो गया है। तूने तो बड़े बड़े राक्षसोको मार डाला है। और उसने कृष्णका हाथ पकड़ कर घसीटनेका प्रयत्न किया।

कृष्ण :-यह तो अधर्मका युद्ध होगा।

चाणूर : लड़नेमें धर्म क्या और अधर्म क्या?

कृष्ण :-यदि तुझे लडना ही है तो मै कुछ डरनेवाला नही हूँ। मेरी माताने दूध-माखन खिला कर मुझे भी हृष्टपुष्ट बनाया है।

तो चाणूरके साथ कृष्णकी और मुष्टिकके साथ बलरामकी कुश्ती शुरु हो गयी। कंसके सेवक मल्लोको प्रोत्साहित करनेके लिये नगाड़े बजाने लगे।

संसार अखाड़ा है, काम चाणूर है और क्रोध मुष्टिक। संसाररुपी अखाडेमें काम-क्रोध रुपी मल्लोसे हमें लड़ना है। वे अनादि कालसे जीवोको पछाड़ते आये हैं। यदि सावधानीसे काम लोगे तो काम-क्रोधको मार सकोगे अन्यथा वे ही तुम्हें पछाड़ देंगे। मनुष्यका अवतार ही काम-क्रोध पर विजय पानेके लिये है।

कुश्ती शुरु हुई तो नंदबाबा घबड़ाने लगे। ये मल्ल मेरे छोटे-से बच्चोको मार डालेंगे। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं किंतु नंदजीके लिये तो वे बालक ही थे

नंदबाबाने आँखें मुंद कर नंदेश्वर महादेवकी मन्नत मानी, यदि आप मेरे कनैया-बलरामकी रक्षा करेंगे तो ग्यारह मन लड्डु चढाऊँगा। फिर उनको ध्यान आया कि कुश्तीके स्वामी तो हनुमानजी हैं। तो उन्होंने हनुमानजीकी भी वैसी ही मन्नत मानी। मेरे बालकोंकी रक्षा करो।

जय जय हनुमान गुंसाई
कृपा करो गुरुदेवकी नांई ॥

कनैयाने देखा कि पिताजी भयभीत होकर देवोंकी मन्नत मान रहे हैं तो उन्होंने शीघ्रतासे काम पूरा करना चाहा। अिधर चाणूर भी जान गया कि कनैया कोअी सामान्य बालक नहीं, उसका काल ही है। यदि वह भागनेकी कोशिष करेगा तो कंस मार डालेगा। सो बेहतर है कि कृष्ण ही के हाथो अपनी जान जाअे। असावधको काम मार सकता है, सावधको नहीं। श्रीकृष्णने चाणूरको मार डाला और बलरामने मुष्टिकको।

उधर कंसके सेवक तो आँखें मुंद कर नगाड़े बजाते जा रहे थे। तो कंसने गुर्रा कर कहा, अरे मूर्खो, मल्ल मेरे मर गअे फिर भी तुम नगाड़े बजा रहे हो? बंद करो यह हंगामा। नगाडोंका शोर बंद हो गया।

कंसकी मृत्यु निकट आ रही थी। उसे सन्निपात हो गया। वह उलजुलुल बकने लगा, अिन लडकोंको मार डालो, नंदजीको बंदी बना दो, वसुदेवका वध करो।

भगवानने अनुग्रह शक्तिसे कुब्जाका और निग्रह शक्तिसे चाणूरका उद्धार किया।

श्रीकृष्णने कंसके बालोको पकड़ कर कहा, कंस, मै ही हूँ देवकीका आठवाँ पुत्र, तेरा काल। कृष्णने उसे अिस तरह झंझोड़ कर भूमि पर पटक दिया कि उसके प्राण निकल गअे।

कंसवधसे सभीको प्रसन्नता हुअी किंतु उसकी रानियोंको दुःख हुआ। तो कनैया मामियोंके पास आ कर रोनेका नाटक करने लगा। मैं ग्यारह वरसोंमें पहली बार मिलने आया तो मामाजी तो हमें छोड़ कर चल बसे। ओ मामा रे...।

मामी :—कनैया, तू मत रो। जो होना था सो गया। वे बालहत्याओंके पापके कारण ही मर गअे। तेरा कोअी दोष नहीं है।

श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। परमात्मा निर्दोष हैं। वे किसीको मारते नहीं, तारते (मुक्त करते) हैं। वे सभीको आनंद देते हैं।

रामायणमें मंदोदरीने भी श्री रामको निर्दोष बता कर रावणको ही दोषी ठहराया है। रावण उसके अपने पापोंके कारण ही मरा था।

अूपरकी कथाका रहस्य भी देख लीजिअे।

कुवलयापीड हाथी अर्थात् दर्प, मद, मोहको श्रीकृष्णने मारा।

चाणूर अर्थात् काम। कामको परब्रह्म-कृष्णने मारा।

मुष्टिक अर्थात् क्रोध। उसको बलराम-शब्दब्रह्म-नादब्रह्मने मारा।

कंसके उन तीनों मित्रोंसे हमेशा बच कर रहो।

कंस अभिमानका ही रुप है। उसकी रानियोंके नाम भी सूचक हैं, अस्ति और प्राप्ति। सारा दिन अस्ति और प्राप्तिकी सोचमें डूबा रहनेवाला जीव ही कंस है। नीति-अनीतिसे धनोपार्जन करके मौज उड़ानेकी अिच्छा करनेवाला, ससार सुखोंका उपभोग करनेवाला कंस ही तो है। कंस उग्रसेनको बंदी बना कर राजा बन बैठा था। उस समय अेक कंस था आज तो जहाँ देखो वहाॅ कंस ही कंस मिलेंगे।

जीव हमेशा काम-क्रोधसे पीटता आया है। उनको मारना है। शब्दब्रह्मकी उपासनासे क्रोध मरता है और परब्रह्मकी उपासनासे काम।

कंसका उद्धार हो गया। क्यों कि भगवानका नाम लेकर मरनेवाला चाहे दुष्टात्मा क्यों न हो, उसका उद्धार हो ही जाता है।

संबंधके बिना स्नेह उत्पन्न नहीं हो पाता सो परमात्मासे संबंध जोड़ लो। उनसे जो चाहो सो संबंध स्थापित कर लो। परमात्माके किसी भी स्वरुपको अिष्टदेवके रुपमें अपना कर उनसे संबंध जोड़ लो। लौकिक स्नेहमें भी संबंधकी ज़रुरत रहती है। कोअी बीमार होगा तो उसका जानपहचानवाला ही उसे देखने आअेगा। संबंध ही स्नेहको जन्म देता है।

लोग धनिकों, अफसरों, मंत्रियोंके साथ तो तुरंत ही संबंध जोड़ लेते हैं किंतु परमात्मासे संबंध जोड़नेमें अलसाते रहते हैं। सच्चा संबंधी अीश्वर ही है। अीश्वरसे संबंध कायम करनेवालेको सब कुछ मिलता है। श्रुतिके अनुसार, अेक ही परमात्माके अनेक स्वरुप हैं।

वंदन और पूजन तो सभी देवोंका करना है किंतु ध्यान तो मात्र अीश्वरका ही करना है। अेक ही स्वरुपमें मन लगाअे रखनेसे ध्याशक्ति बढ़ती है और मन उसमें स्थिर होता है। कंस वैरभावसे कृष्णका विचार करता था। फिर भी उसके मनमें शत्रुरुपसे भी वास तो कृष्णका ही था सो उसका उद्धर हो गया।

अीश्वरकी मारमें भी प्यार होता है। अीश्वर जिसे मारते हैं उसे तारते (उद्धार करते) भो हैं। कंसका वध नही किया, उद्धार किया।

भगवान जब अपने शत्रुको मुक्ति देते हैं तो प्रेमसे सेवा-पूजा-स्मरण करनेवालेको मुक्ति क्यों नहीं देंगे?

श्रीकृष्ण वसुदेव-देवकीको प्रणाम करनेके लिअे कारागृहमें आअे। दोनोंको बंधन मुक्त किया। सेवक जंजीर शीघ्र तोड़ न सके तो कृष्णने अपने दांतोंसे तोड़ डाली। वसुदेव-देवकीकी संतति लूट गअी किंतु वे भगवानका ध्यान धरते रहे सो उनको मुक्ति मिली।

तन्मयता, तल्लीनताके बिना सिद्धि नहीं मिल पाती। ध्यानके बिना साक्षात्कार नहीं हो पाता। वसुदेव-देवकीने ग्यारह वर्षों तक कठोर तपश्चर्या की तो कनैया मिला।

आज अितने बरसों बाद पुत्रको देखा तो वसुदेव-देवकीका दिल भर आया। वे बोलना तो बहुत कुछ चाहते थे किंतु प्रेम और भावावेशसे निहारते ही रह गअे। सभी परस्परको प्रेमसे, संतोषसे देख रहे हैं।

तब कनैयाने कहा :-मेरे पिताजी और माताजी, चारों पुरुषोंको सिद्ध करनेवाला यह मानवशरीर आपने ही मुझे दिया है। मेरे अपराधको क्षमा करें। अब मैं कभी आपसे दूर नहीं जाऊंगा। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

कनैयाको हाथी पर बिठला कर सारे नगरमें फिराया गया। नंदबाबा सोचते हैं कि कनैयाका अितनी धूमधामसे सम्मान तो किया गया किंतु किसीने यह नहीं पूछा कि वह भूखा भी हुआ है। वे माखन-मीसरी ले आअे और कनैयाको हाथी परसे नीचे उतार कर डट कर खिलाया रास्तेमें अिस प्रकार जहाँ भी विश्राम किया वहाँ विश्रामघाट हो गया।

कंसका वध होने पर श्रीकृष्णके हाथोंमें मथुराका राज्य आ गया किंतु उन्हें तो कोअी आसक्ति थी ही नहीं। सो उन्होंने राज्य उग्रसेनको सौंप दिया।

वाणी और वर्तन अेक हुअे विना वाणी शक्तिशाली नहीं हो पाती। ज्ञानको क्रियात्मक स्वरुप देना है। बंगलेमें रह कर विलासी जीवन जीनेवाला व्यक्ति वेदांतकी चर्चा किस अधिकारसे कर सकता है? अधिक पढ़नेकी अपेक्षा जीवनमें उतारनेकी आवश्यकता अधिक है। श्रीकृष्णने अपना उपदेश जीवनमें उतारा भी था। उन्होंने गीतामें निष्काम कर्मका उपदेश दिया है तो उन्होने मथुराका राज्य उग्रसेनको देकर आदर्शको चरितार्थ भी कर दीखाया है।

युद्धभूमिमें कृष्णने अर्जुनको अनासक्तिका उपदेश दिया था। वह अनासक्ति जीवनकी परिपूर्णताके लिअे आवश्यक है और संसारके लिअे बाधक नहीं है। संसार नहीं, उसकी आसक्ति बाधक है।

लोगोने श्रीकृष्णसे मथुराका राज्य स्वीकारनेका आग्रह किया तो उन्होने कहा, मैंने राज्यके लोभसे नहीं किंतु लोगोकी पीडा दूर करनेके लिअे कंसका वध किया है। कंसके पिता उग्रसेनको ही राजा बनाना होगा। मैं तो आप सबका सेवक हूँ।

गर्गाचार्यजीने नंदजीसे कहा, श्रीकृष्ण तो वसुदेवका पुत्र है, आपका नहीं। यशोदाने तो पुत्रीको जन्म दिया था। अब कनैया गोकुलमें नहीं, मथुरामें ही रहेगा। नंदबाबा व्याकुल हो गअे।

बलराम और श्रीकृष्ण भी नंदजीसे मिलने आअे और कहने लगे :-बाबा, जब हम उन मल्लोसे लड़ रहे थे तब हमें हनुमानजी के दर्शन हुअे थे।

नंदजीने मान लिया कि उन्होंने हनुमानजीकी मन्नत मानी थी सो उन्होंने बालकोकी रक्षा की। अगर अैसा नहीं होता तो मेरे ये बालक उन मल्लोंको कैसे पकड़ सकते थे? नंदबाबा बड़े भोले हैं।

श्रीकृष्ण नंदजीसे कहने लगे :-लोग चाहे जो कहे हम तो आपके ही हैं। आप ही मेरे पिता हैं। मैंने कंसका वध किया है सो जरासंध, दंतवक्त्र आदि राजा मेरे शत्रु हो गअे हैं। यदि मैं गोकुल जाऊँगा तो वे सब वहाँ मुझसे लड़नेके लिअे आअेंगे और सभी गोकुलवासियोको भी सताअेंगे। सो मैं कुछ समयके लिअे यहीं रह कर उन राजाओंका पराभव करके गोकुल आऊंगा। आपके आशीर्वादसे सब कुछ ठीक हो जाअेगा। मैं यहाँका अपना काम पूरा करके आपके पास चला आअगा। आप

गोकुल पधारिये और मेरी माता, सखियाँ और गायोंकी देखभाल करें। मेरी मातासे कहना कि उसका कनैया अवश्य लौटेगा।

प्रेममें आग्रह हो सकता है, दुराग्रह नहीं।

नंदबाबा कहने लगे :-बेटे, मैं दुराग्रह तो कैसे करुं? मैंने तेरी नहीं, तेरे सुखकी ही कामना की है। हमने अपने सुखके लिये नहीं, तेरे सुखके लिये ही प्रेम किया है। मैं नारायणसे हमेशा प्रार्थना करता रहूँगा कि वे तुझे सुखी रखें। कभी व्रजमें अवश्य आना।

कनैया :-हां, हां, मेरा काम पूरा करके मैं अवश्य लौटूंगा। मेरी मातासे भी यही कहना। मेरी गायोंकी भी देखभाल करना। यह प्रसंग भागवतमें नहीं है किंतु अन्य ग्रंथोंमें है।

गोकुलके कृष्ण अनुपम हैं। उनका स्वरुप दिव्य है और आनंद अलौकिक। किंतु तत्त्वतः गोकुल और मथुराके श्रीकृष्ण अेक ही हैं।

सद्गुरुकी सेवा तो ईश्वरको भी करनी पड़ती है। गुरुसेवाका आदर्श स्थापित करनेके हेतु श्रीकृष्ण क्षीप्रा नदीके किनारे उज्जैन क्षेत्रमें सांदिपनि ऋषिके आश्रममें विद्या प्राप्त करने गये।

सुपात्र संतकी सेवा किये विना ईश्वरकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। किसी तपस्वी पवित्र संतकी धन, तन, मनसे सेवा करोगे तो उनके अंतरके आशीर्वाद मिलेंगे। मनुष्यके लिये अैसी संतसेवा आवश्यक है। सेवा द्वारा प्राप्त विद्या सफल होती है। पुस्तक पढ़ कर प्राप्त किया गया ज्ञान धन और प्रतिष्ठा दिला सकता है किंतु मनकी शांति नहीं। संत न केवल बोल कर किंतु मौन रह कर भी उपदेश देते हैं। संतका प्रत्येक व्यवहार ज्ञान और भक्तिसे भरा हुआ होता है। केवल स्व प्रयत्नसे प्राप्त विद्या अभिमान भी लाती है। पवित्र संतकी सेवा करके प्राप्त की गअी विद्या विनय और विवेक लाती है।

श्रीकृष्ण गुरुके लिये वनमेंसे लकडी लाते थे और पानी भी भरते थे।

प्राचीन कालके गुरु विरक्त थे सो उनके शिष्य भी वैसे ही बन पाते थे। वैराग्यके विना विद्या शोभा नहीं देती। यदि विद्याभ्यासके समय विद्यार्थी विलासी जीवन जीये तो विद्या नष्ट हो जाती है। भगवानका विद्यार्थीजीवन बडा संयमी था।

गुरुके अच्छे-बुरे विचार, संस्कार आदि सब कुछ विद्यार्थीके जीवनमें उतर आता है। आजकलके तो प्रोफेसर ही विलासी होते हैं सो विद्यार्थीका विलासी बन जाना स्वाभाविक है। विलासी शिक्षकका शांकरभाष्य पढ़ाना निरर्थक है। प्राचीन गुरु तो स्वयं संयमी थे सो शिष्य भी संयमी बन जाते थे। संयम ही सुखदायी है। विद्यार्थी अवस्थामें संयम बड़ा आवश्यक है।

आजकल पैसा कमानेकी विद्या पढाअी जाती है, सांसारिक बंधनोंसे मुक्त करानेवाली विद्या नहीं। गांवमें पढ़ाअीकी योग्य व्यवस्था नहीं है और शहरमें तो मात्र रुपया कमाना ही सीखाया जाता है। आज आत्मविद्या, अध्यात्म-विद्याका तो नामोनीशान तक मीटा दिया गया है। आत्मा, परमात्मा, उन दोनोंका

संबंध, जीवनका सच्चा लक्ष्य आदि कुछ भी समझाया-पढ़ाया नहीं जाता है। ज्ञान तो बढ़ता जा रहा है किंतु विद्या घटती जा रही है। ज्ञानका उपयोग छल-कपटके लिअे ही किया जाता है।

सा विद्या या विमुक्त ये। विद्या वही है जो प्रभुके चरणोंमें ले जाय, मुक्ति दिलाअे।

गुरुकुलमें पढ़ने आअे हुअे अेक गरीब ब्राह्मणपुत्रके साथ श्रीकृष्णकी मैत्री हो गअी। वह सौराष्ट्रका था और उसका नाम सुदामा था। श्रीकृष्णके अन्य किसी भी मित्रका भागवतमें उल्लेख नहीं है।

सुदामाका अर्थ है इन्द्रियोंका दमन, निग्रह करनेवाला। इन्द्रियोंके निग्रहके बिना न तो विद्या मिलती है और न तो फलती है। विद्यार्थीके लिअे इन्द्रियदमन बड़ा आवश्यक है। अैसी सूचना देनेके लिअे ही शायद सुदामाके सिवाय अन्य किसी सहपाठीका निर्देश भागवतमें नहीं है।

सुदामाके साथ मैत्री करनेवाला ही सरस्वतीकी उपासना कर सकता है। सुदामा उस संयमी व्यक्तिका प्रतीक है जो परमात्माको प्राप्त करना चाहता है।

परमात्माके दर्शन करनेके लिअे संयमके बिना विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। संयमके बिना जीवन दिव्य नहीं बन पाता। संयम और वैराग्यको बढ़ाते चलो। जिस सुखका त्याग किया गया हो उसीका फिरसे उपभोग करनेकी अिच्छा हो आअे वह तो थूकको चाटने जैसा है। त्याग किअे हुअे विषयकी अिच्छा कभी न की जाय।

शास्त्र अीश्वर, जीव और पशुके लिअे नहीं, मनुष्यके लिअे है।

सुदामाके साथ मैत्री करोगे तो द्वारिकानाथ मिलेंगे। सुदामा सर्वोत्तम संयमका साक्षात् रुप है। मनको अंकुशमें रखो।

जो आत्मतत्त्वका संदीपन करा सके वही सांदीपनि है, वही गुरु है। सद्गुरु बाहरसे कुछ नहीं ला देते। वे तो जो भीतर है उसीको जाग्रत करते हैं। ज्ञानमार्ग तो प्राप्तकी ही प्राप्ति कराता है।

श्रीकृष्णको पृथ्वी पर गरुजीकी भी आवश्यकता रहती है। भगवानने सुदामा-संयमके साथ मैत्री करके सदाचारपूर्ण जीवन जिया। आजका विद्यार्थी भी यदि सुदामाकी मैत्री करके विद्याभ्यास करे तो उसकी विद्या सफल हो सकती है किंतु वह बात आज कहाँ?

संसारमें रह कर ब्रह्मचर्यका पालन करना बड़ा दुष्कर है। सात्त्विक वातावरण हृदयको सुधारता है और दुषित वातावरण बीगाड़ता है।

स्वयं अीश्वर हो कर भी कनैयाने गुरुसेवा करके जगतके सामने अेक आदर्श स्थापित किया।

पिता-पुत्रके वंशको बिंदुवंश और गुरु-शिष्यके वंशको नादवंश कहते हैं। नादवंश बिंदुवंशकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

विद्याभ्यासकी समाप्ति हुअी तो कनैयाने गुरुदक्षिणा देनेकी अिच्छा प्रगट की।

सांदीपनिने कहा, क्षीप्रा नदीके किनारे बसे हुअे मेरे अिस आश्रममें फल और जलकी कुछ कमी नहीं है। और दूसरी किसी वस्तुकी तो मुझे आवश्यकता ही क्या है?

कनैया :–गुरुजी, वह तो ठीक है, किंतु गुरुदक्षिणा दिये बिना मेरी विद्या असफल रह जाअेगी, सो आपको कुछ न कुछ मांगना ही होगा।

सांदीपनि –यदि कोअी सुपात्र विद्यार्थी मिल जाअे तो कुछ भी पानेकी आशा न करके विद्यादान करके विद्यावंश बढ़ाते रहना। ज्ञानदानमें कृपणता न करना। शिष्यपरंपरा बढाते हुअे विद्यादान करते रहना। बस, यही मेरी अिच्छा है।

कृष्णने गुरुको दिअे वचनका पूर्णतः पालन किया। उन्होने अर्जुनको युद्धक्षेत्रमें गीताका दिव्य ज्ञान तो दिया किंतु उससे लिया तो कुछ भी नहीं। उन्होंने न केवल अर्जुनको ज्ञान दिया अपितु उसकी और उसके अश्वोंकी सेवा भी की। महाभारतमें लिखा गया है कि रात्रिके समय श्रमित अर्जुन सो जाता था तो श्रीकृष्ण उसकी सेवा करते थे और घोड़ोंकी भी देखभाल करते थे। घोड़ोंके घावोंकी मरहमपट्टी भी करते थे।

अर्जुन श्रीकृष्णको अपना गुरु मानता था किंतु श्रीकृष्णने उसे कभी शिष्य नहीं माना, सखा ही माना। ज्ञानोपदेश तो किया किंतु गुरुदक्षिणा या और कोअी बदला नहीं मांगा।

गुरु निरपेक्ष होना चाहिअे और शिष्य निष्काम। किंतु आजकल तो छोटे–बडे सभी लोग दो दो हाथोंसे सब कुछ बटोरना चाहते हैं। लोग चाहते हैं कि किसी संत–महात्माके आशीर्वादसे संपत्ति, संतति मिल जाअे तो कितना अच्छा हो। किंतु जो सच्चा संत होता है वह कभी सांसारिक झंझटका आशीर्वाद नहीं देता। सच्चा संत तो विकारवासना नष्ट करनेवाले अलौकिक भजनानंदका ही दान करता है।

कनैयाने गुरुपत्नीसे कहा :–गुरुजी कुछ मांगना ही नहीं चाहते हैं। किंतु आपकी कोअी अिच्छा हो जो मांग सकती हैं।

गुरुपत्नी :–मेरा अेक पुत्र था जो प्रभासयात्राके समय समुद्रमें बह गया था। यदि तुझे गुरुदक्षिणा देनी ही है तो वह मेरा खोया हुआ पुत्र ला दे।

श्रीकृष्णने समुद्रमें गोता लगाया। वहाँसे उनको पंचजन्य शंख भी प्राप्त हुआ और गुरुपुत्र भी। वे मुरलीधर थे, अब शंखधारी भी बन गअे।

पुत्र मिलनेसे गुरुदंपती प्रसन्न हो गअे। उन्होंने आशीर्वाद दिया–बेटे, तेरे मुखमें सरस्वतीका और चरणोंमें लक्ष्मीका वास होगा और तेरी कीर्ति विश्वव्यापी हो जाअेगी। मेरी विद्याके वंशको बढ़ाते रहना।

गोपियोंने भी भगवानसे कुछ भी नहीं मांगा था। सो वे स्वयं उनके ऋणी रहे। भगवानसे कुछ भी न मांगो।

भगवानकी गोकुललीला ग्यारह वर्षोंकी, मथुरालीला चौदह वर्षोंकी और द्वारिकालीला सौ वर्षोंकी थी। वे पृथ्वी पर अेकसौ पचीस वर्ष तक सशरीर रहे थे।

विद्याभ्यास समाप्त करके श्रीकृष्ण मथुरा आअे। यादवोंको परम आनंद हुआ।

मथुराके राजप्रासादमें भगवानने निवास किया।

अब उद्धवागमनका प्रसंग आ रहा है।

उद्धवागमनकी कथा वकताके लिये अेक आवाहन है अैसा दक्षिणके महात्माओंका मत है। अिस प्रसंगमें ज्ञान और भक्तिका मधुर कलह है। अिसमें ज्ञान और भक्तिका समन्वय भी है। उद्धवजी निर्गुण ज्ञानके पक्षकार हैं तो गोपियाँ शुद्ध प्रेमलक्षण सगुण भक्तिकी। वैसे तो भक्ति और ज्ञानमें कोओ अंतर नहीं है। भक्तिकी ही परिणति है ज्ञान।

ज्ञानके अभावमें भक्ति अंध है और भक्तिके अभावमें ज्ञान पंगु। भक्तिके लिये ज्ञान और वैराग्य दोनोंकी आवश्यकता है। ज्ञान और वैराग्यके विना भक्ति वंध्या रह जाती है।

आरंभमें यदि स्वयंको प्रभुका दास मान कर–दासोहमूकी भावनासे–ओश्वरकी आराधना की जाय तो भगवानसे लगाव हो सकता है। मान लो कि तुम भगवानके हो और वे तुम्हारे हैं। अैसी अनुभूति होने पर ही देहभान भूलता है। और तब "मैं" का अस्तित्व मीट जाता है तथा मात्र भगवानका ही अस्तित्व अनुभूत होने लगता है। और आगे चल कर भगवानसे तादात्म्य बढ़ता जाता है, दासोहम् की अवस्थासे सोहम् की अवस्थाकी ओर प्रगति होती है।

भक्ति ज्ञान है और ज्ञान भक्ति। वे जब अेक हो पाते हैं तभी जीवन सार्थक हो जाता है।

कुछ ज्ञानी मानते हैं कि उनको भक्तिकी आवश्यकता नहीं है। वे भक्तिका तिरस्कार करते हैं। अिसी प्रकार कुछ भक्तजन ज्ञान और वैराग्यकी उपेक्षा करते हैं। अिन दोनोंके दृष्टिकोण गलत हैं। भक्ति और ज्ञान परस्परके पूरक हैं। अेकके अभावमें दूसरा पंगु बन जाता है। भक्ति और ज्ञान उभयकी आवश्यकता है।

ज्ञान–वैराग्यके सहित भक्ति होनी चाहिये। वैराग्यके विना भक्ति कच्ची रह जाती है। दोनोंको अेक–दूसरेकी अपेक्षा है।

उद्धव ज्ञानी तो थे किंतु उनके ज्ञानको भक्तिका साथ नहीं था। भक्तिरहित ज्ञान अभिमानी बनाता है। भक्ति ज्ञानको नम्र बनाती है। भक्तिका साथ न हो तो ज्ञान अभिमानके द्वारा जीवको उद्धत बना देगा। ब्रह्मज्ञान होने पर भी यदि स्वरुपप्रीति न होगी तो ब्रह्मानुभव नहीं होगा। सच्चा ज्ञानी वह है जो परमात्मासे प्रेम करता है। ज्ञानी होनेके बाद धन, प्रतिष्ठा, आश्रम आदि आ गये तो पतन ही होगा। ज्ञानीको भी भक्तिकी आवश्कता है।

जीव अीश्वरसे जब प्रगाढ प्रेम करने लगे तभी वे उसको अपने मूल रुपका दर्शन कराते हैं।

मनुष्य अपनी सारी धनसंपत्ति केवल निजी व्यक्तिको ही बताता है। भगवानका भी वैसा ही है। वे भी अपने सच्चे भक्तको ही अपना सच्चा स्वरुप दिखलाते हैं। जब साधारण व्यक्ति भी अपने प्रेमीके विना किसीको अपना अंतर नहीं दीखलाता है तो भगवान भी अपने भक्तके विना किसी दूसरेको अपना कुछ क्यों दीखलाये?

भक्तिके विना ज्ञान और ज्ञानके विना भक्ति अपूर्ण हैं। भक्तिको यदि ज्ञानका साथ न होगा तो ईश्वरकी सर्वव्यापकताका अनुभव नहीं हो पायेगा। एक ही स्थान पर, एक ही वस्तुमें ईश्वरका अस्तित्व माननेवाला वैष्णव अधम है। हर कहीं ईश्वरको ही देखनेवाला महान वैष्णव है।

वैराग्यका साथ न होगा तो भक्ति घरके किसी एकाध गोखमें ही ठाकोरजीको देखती रहेगी। यदि भक्तिको ज्ञानका साथ होगा तो कण कणमें भगवानके दर्शन होंगे।

उद्धवजीका तत्त्वज्ञान और गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति दोनों अपने आपमें महत्वपूर्ण हैं किंतु उभयका समन्वय आवश्यक है। उद्धवजीकी निष्ठा ज्ञानमें है और गोपियोंकी प्रेममें ज्ञान प्रेमके विना शुष्क है, निरर्थक है। परमात्माका ज्ञान होने पर भी यदि उनके साथ प्रेम न हो पायेगा तो परमात्माका अनुभव नहीं हो पायेगा। ज्ञानप्राप्ति होने पर भी प्रेमकी प्राप्ति तो करनी ही होगी।

गोपियाँ प्रेमकी ध्वजा हैं तो उद्धवजी ज्ञानकी मूर्ति।

ज्ञान, भक्ति और वैराग्य तीनोंका समन्वय होने पर ही परमात्मासे साक्षात्कार होगा।

उद्धव ज्ञानी तो थे पर उनका हृदय प्रेमशून्य था, शुष्क था। अतः उन्हें अलौकिक आनंद नहीं मिलता था।

ज्ञान चर्चाका नहीं, अनुभवका विषय है। ज्ञानी कभी कभी अभिमानी बन जाता है।

भक्त हमेशा नम्र बना रहता है। भक्तिका आसन ही नम्रता है।

भक्त स्वयंको जगतका सेवक मानता है।

मैं सेवक सचराचर रुप स्वामी भगवंत।

यह जगत वासुदेवमय है, भगवानका ही एक स्वरुप है।

वासुदेवः सर्वमिति।

गोपियोंकी भक्ति ज्ञानोत्तर थी। जब कि उद्धवजी तो यह भी नहीं जानते थे कि ज्ञानोत्तर भक्ति भी हो सकती है।

उद्धवजी ज्ञानको ही सबकुछ मानते थे। सो उनको प्रेमलक्षणा भक्तिका पाठ पढ़ानेके लिये भगवानने उन्हें व्रज भेजा।

श्रीकृष्णने सोचा कि यदि गोपियोंको ज्ञानका अनुभव हो पायेगा तो उनको दुःख आदि नहीं सतायेंगे और उद्धवको भक्तिका अनुभव हो जायेगा तो उनका ज्ञान सफल हो जायेगा। उद्धवके ज्ञानमें अभिमानका अंश था। गोपियोंकी प्रेमलक्षणा भक्तिके पुटसे ज्ञान सँवर जायेगा। और उद्धवजीका कल्याण भी हो जायेगा। उनका ज्ञानाभिमान नष्ट करके उनका कल्याण करना है।

गोपियोंको उद्धवसे ज्ञानार्जन हो जाय तो मेरा विरह उन्हें नहीं सतायेगा। उनको अनुभव होगा कि मैं उनके समीप ही हूँ। मुझे गोपियोंका भी कल्याण करना

है और उद्धवजीका भी।

उद्धवागमनका पाठ करते हुओे अकनाथ महाराज तीन दिनोंतक समाधिस्थ हो गओे थे।

गुरुकुलमें विद्याभ्यास पूर्ण करके श्री कृष्ण मथुरा आओे। राजा अुग्रसेन बड़ा विवेकी था। उसने भगवानसे कहा, यह सारा राज्य आपका ही है। मैं आपका सेवक हूँ। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य होगी।

श्री कृष्णकी गोकुललीला समाप्त हो कर मथुरालीलाका आरंभ हो गया। अब वे मथुरानाथ हैं। यहाँ अैश्वर्यका प्राधान्य है। गोकुलके गोपाल अब मथुराके अधिपति हैं। गायें चरानेवाले कनैयाकी अब कअी दासदासियाँ सेवा कर रहे हैं। उद्धवजी भी श्रीअंगकी सेवा करते हैं। सभी प्रकारका सुख और अैश्वर्य चरणोंमें उपस्थित है।

जीवन अैश्वर्यमय हो गया किंतु भगवानने व्रजवासियोंके प्रेमको भूलाया नहीं है। राजप्रासादकी अटारीमें बैठ कर वे गोकुलकी झाँकी करते रहते हैं। वे बार बार यशोदाजीको याद करते हैं। वह मेरी प्रतीक्षामें रोती रहती होगी। भोली माता मेरे वचनको याद करके राह निहारती होगी।

मेरी प्यारी गायें और उनके बछड़े क्या करते होंगे? मथुराकी ओर मुँह करके मुझे पुकारती होंगी।

मेरे बाबा भी तो मुझे याद करते होंगे।

अिस प्रकार वे बारी बारीसे सभीको याद करते थे और आँसू भी बहा लेते थे।

मथुरामें अैश्वर्य तो था किंतु प्रेम नहीं था। प्रभुको तो उनसे प्रेम करनेवाले जीवकी आवश्यकता है, उनके अैश्वर्यके प्रेमीकी नहीं।

श्री कृष्ण बार बार व्रजवासियोंको याद करके रोते रहते थे। माता, पिता, गोपियाँ, गायें याद आ जातीं और वे रो लेते।

प्रेमीके विरहमें बहनेवाले अश्रु सुखदायी-से लगते हैं। विरहमें आँसू ही तो साथ देते हैं।

जीवका ओश्वरस्मरण तो साधारण भक्ति है। किंतु जिस जीवका स्वयं भगवान स्मरण करे वह तो असाधरण भक्त है। अैसा भक्त ही श्रेष्ठ है। भक्ति करो तो अैसी करो कि स्वयं भगवान भी तुम्हारा स्मरण करे।

सायंकाल होने पर अटारीमें बैठ कर व्रजवासियोंकी यादमें आँसू बहानेका नियम-सा हो गया था। वे गोपियोंको याद करते, गायोको भी याद करते और माताको भी याद करते थे। रोती हुअी माताको कौन धीरज बँधाता होगा? व्याकुल गायोंको कौन खिलाता होआ? सभीको याद करके उनका हृदय भर आता था।

प्रेमीके विरहमें स्मरणमें तल्लीन होकर आँसू बहानेसे दुःख कुछ कम होता है, जी हल्का होता है।

उद्धवजीने यह जाना तो वे सोचमें डुब गअे। सुवर्णका राजप्रासाद, सेवामें अनेक दासदासियाँ उपस्थित, छप्पन भोगकी सामग्री, अितना अैश्वर्य फिर भी उन्हें कौन-सा दुःख रुलाता होगा? क्या हमारी सेवामें कुछ कमी रह जाती होगी?

सेवक यदि स्वयं सुख भोगनेकी अिच्छा करे तो वह ठीकसे सेवा नहीं कर पाअेगा। सेवा वही कर सकता है जो आत्मसुखका बलिदान कर देता है।

मेरे सुखके हेतु मैं प्रभुको कभी कष्ट नही दूँगा। यदि कुछ दुःखद प्रसंग आअेंगे तो मैं मानूँगा कि यह तो मेरे ही कर्मोंका फल है। अपना दुःख दूर करनेके लिअे मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।

उद्धवजीने सोचा कि प्रभुसे उनके दुःखका कारण पूछना ही चाहिअे। वे अटारीमें आअे। उस समय भगवान गोकुलको याद करके रो रहे थे। उद्धवजीको आते हुअे देखा तो उन्होने अपने दुखके आवेगको वश करके स्वस्थ होनेका प्रयत्न किया। और आगे बढ़ कर उद्धवजीका स्वागत किया। उद्धवजी वंदन करके बैठे।

प्रेम प्रदर्शनकी अपेक्षा नहीं रखता। वह तो हृदयमें ही समाये रहना चाहता है। प्रेम केवल अपने प्रियपात्रके समक्ष ही प्रगट होना चाहता है, अन्य किसीके आगे नहीं।

सो प्रभुने शांत होकर उद्धवजीका स्वागत किया।

उद्धवजी :-प्रभुजी, अेक विशेष बात पूछनेकी अिच्छासे आया हूँ।

कृष्ण -तुम तो मेरे अंतरंग मित्र हो। जो चाहो सो पूछ सकते हो।

उद्धवजी -मैं और अन्य सभी सेवक-सेविकाअें यथामति और यथाशक्ति आपकी सेवा कर रहे हैं फिर भी आप प्रसन्न नहीं रहते है। भोजनके समय भी आपका हृदय भर आता है। कल आप सोअे हुअे थे और मै चरणसेवा कर रहा था। तो उस समय स्वप्नावस्थामें आप 'राधे राधे' पुकार रहे थे। कौन है वह राधा जो आपके हृदयसिंहासन पर आसन जमा कर आपको सताती रहती है? आपका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता।

श्री कृष्ण :-उद्धव, सारे मथुरामें मेरा दुःख पूछनेवाले अेक तुम ही निकले। क्या क्या बताऊँ मैं तुमसे? मेरे सच्चे माता-पिता तो देवकी-वसुदेव है किंतु गोकुलमें रहनेवाले यशोदा-नंदजी भी तो मेरे मातापिता हैं। मेरी माता मुझे कितने दुलारसे खिलाती-पिलाती थी! मुझे अपनी सखियाँ, अपने मित्र और अपनी गायें भी याद आती रहती हैं। सभी ग्वालबाल मुझे अपने अपने घरोसे लाअी गअी खाद्य सामग्री खिलाते थे, कोमल पत्तोकी सेज बना कर सुलाते थे और मेरी गायोकी रखवाली करते थे। मैं अपने माता-पिता, मित्रों, सखियोंको कैसे भूला दूँ?

जब मैं कालियनागके दमनके लिअे यमुनामें कूद पड़ा था तो सभी गायें रोने लग गअी थीं और जब मैं सकुशल बाहर निकला तो आनंदसे बावली हो गअी थी। उद्धव, वे गायें मुझे बार बार याद आती हैं।

उद्धव, वृंदावनकी प्रेमभूमि छोड़ते हुअे मुझे बड़ा दुःख हुआ है। यहाँ मुझे मथुराधिपति बनाया गया है, सब मुझे वंदन करते हैं, सेवाके लिअे मारे मारे

फिरते हैं। किंतु यहाँ मुझसे प्रेम करनेवाला कोअी नहीं है। मैं व्रजको भूल नहीं सकता। मेरी माता, सखियाँ आदि जैसा प्रेम करनेवाला यहाँ है ही कौन? मुझे मान, अैश्वर्यकी नहीं, प्रेमकी, स्नेहकी अपेक्षा है।

जीव अपात्र है फिर भी प्रभु उसे धन, प्रतिष्ठा और प्रेम देते हैं। जीव दुष्ट है किंतु प्रभु दयालु हैं। हमारे पापके प्रमाणमें तो भगवान हमें बहुत ही कम सजा देते हैं। मनुष्य आँख और मनसे अितना तो पाप करता रहता है कि यदि उन सारे पापोंकी सजा भगवान हमें दें तो हमको पीनेका पानी तक न मिले। फिर भी दुःख और आश्चर्यकी तो यह बात है कि लोग दिनोंदिन नास्तिक होते जा रहे हैं।

उद्धव! यशोदा-सा प्रेम मेरे लिअे यहाँ दुर्लभ है। जब तक मैं न खाता था वह भी भूखी ही रहती थी। यहाँ पर भोजन सामग्रीका तो ढ़ेर है किंतु कोअी प्रेमसे खिलानेवाला नहीं है। यहाँ तो मेरी भूख ही मर गअी है। जब कोअी हजार बार मनाअे तब मैं खाता था। यहाँ तो अैसा मनानेवाला कोअी है ही नहीं। भोजन करन बैठता हूँ तो अपनी माता याद आ जाती है। मैं भोगका नहीं, प्रेमका भूखा हूँ। जो आनंद गोकुलमें था वह यहाँ नहीं है। वहाँ सखा, सखियाँ, गायें सभी मुझे याद करके रोते रहते होंगे। मैं व्रजको नहीं भूला पाता।

> उधो मोहि ब्रज बिसरत नाहिं।
> वृंदाबन गोकुल वनउपवन, सघन कुंजको छाँही ॥
> प्रात समय माता जसुमती अरु नद देखि सुख पावत ॥
> माखन रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत ॥
> गो ग्वाल बाल संग खेलत, सब दिन हँसत सिरात ॥
> सूरदास धनि-धनि ब्रजवासी, जिन सौ हित जदुतात ॥

उद्धव ज्ञानी तो हैं किंतु प्रेमलक्षणा भक्तिकी महिमासे अज्ञात हैं। विना गुरुकृपाके प्राप्त ज्ञान विवेकयुक्त नहीं होता है। जिसने गुरुकृपाके विना प्रत्यक्ष ज्ञान पाया है उसे अभिमान घेर लेता है। उद्धवकी भी यही दशा थी। सो भगवान उन्हें उपदेश देना चाहते थे।

उद्धव कहते हैं:-बचपनमें गोपबालोंके साथ खेलते रहनेकी बात तो ठीक है। किंतु अब तो आप मथुराके राजा हैं और राजाको गोपबालोंके साथ खेलनेका विचार शोभा नहीं देता। आप व्रजको और सभी व्रजवासियोंको भूला दोगे तो मथुराका अैश्वर्य आनंददायी बन जाअेगा।

ज्ञानाभिमानी उद्धव यह नहीं जानता है कि वह किसको उपदेश दे रहे हैं।

श्रीकृष्ण:-अरे उद्धवजी, तुम मुझे व्रजको भूलनेको कह रहे हो? मैं सब कुछ भूल सकता हूँ किंतु व्रजको नहीं भूल सकता। व्रजवासी भी तो मुझे बहुत याद करते होंगे। प्रेम अन्योन्य होता है। हां, व्रज भूलनेका अेक उपाय है। यदि वे मुझे भूल जायें तो मैं उन्हें भूल सकता हूँ।

उद्धवजी! तुम व्रज जाओ। वहाँ उनको वेदांतका उपदेश दो और उनसे कहो कि वे मुझे भूला दें। यदि वे मुझे भूला नहीं पाअेंगे तो मैं भी उन्हें भूला नहु

पाऊँगा। संसारके सभी सुखोंका त्याग करके वे सब मेरे ही लिअे जी रहे हैं। मैंने वापस जानेका वादा किया था सो वे मेरी प्रतीक्षामें प्राण टिकाओ रहे हैं। तुम उनको उपदेश देकर निराकार ब्रह्मके उपासक बना दो। वैसा होने पर वे मुझे भूल जाअेंगे और मैं उनको।

मोह अेकपक्षीय होता है किंतु प्रेम पारस्परिक होता है, अन्योन्य होता है।

भक्तिहीन ज्ञानी वाचाल होता है। भक्तियुक्त ज्ञानी मौन रह कर अध्ययन करता है।

उद्धवजीके पास ज्ञान तो था किंतु भक्ति नहीं थी। वे कहने लगे :-मुझे वहाँ भेजनेके बदले प्रति सप्ताह अेक अेक पत्र भेजते रहिये। वे आपको पत्र लिखेंगे। अिस तरह पत्रव्यवहारसे प्रत्यक्ष मिलनसा आनंद होगा।

प्रेमका संदेश पत्रसे पूर्णतः तो कैसे पहुँचाया जा सके? प्रेम तो प्रत्यक्ष मिलन पर ही पूर्णत व्यक्त किया जा सकता है।

प्रेमका संदेशा उधो पाति ना पठाय।

पत्रमें अिच्छानुसार सब कुछ कैसे लिखा जा सके? पत्रमें लिखते समय बहुत-सी मर्यादाअें बाधक हो जाती हैं।

प्रेमतत्त्वसे उद्धवजी परिचित नहीं हैं। पत्रमें लिखा जाता है "हमेशा याद करनेवाली"। अरे, अैसा कभी हो सकता है? विचार और व्यवहारमें अंतर होता है। सो पत्रमें सब कुछ खुल कर और सच्चा लिखा नहीं जा सकता।

उद्धवजी क्या जाने कि श्रीकृष्ण और गोपी तो अेक ही हैं। वे पत्र लिखनेका आग्रह करते हैं। ज्ञानी पुरुष भक्तहृदयकी बातें नहीं जानते। उद्धवजी प्रेमका रहस्य जानते ही नहीं थे।

श्रीकृष्ण :-उद्धवजी, पत्र लिखनेका तो मैंने कअी बार प्रयत्न किया किंतु लिख ही नही पाया। लिखूँ तो क्या लिखूँ? मैं अपनी माताको पत्रके टूकड़ेसे कैसे धीरज बँधाऊँ? वह तो मुझे निहार कर, गले लगा कर, खिला-पिला कर ही शांत और संतुष्ट हो सकती है।

श्रीकृष्णने कअी बार यशोदाको पत्र लिखना चाहा। किंतु वे अैसा सोच कर रुक जाते कि पत्र पढ़ कर माता और अधिक याद करके दुःखी होगी। अेक तो वह अिधर आता नहीं है और पत्र भेज कर और दुःखी करता है। कृष्ण पत्रमें यशोदा शब्द लिखने ही रुक जाते। आगे कुछ लिखने जाते कि आँखोंमें आँसू आ जाते।

प्रेमकी भाषा ही न्यारी है। प्रेम भाषा और शब्दकी सीमासे पर है। सच्चा प्रेम तो हृदय ही हृदयको सुना सकता है, पत्र द्वारा भेजा नहीं जा सकता।

उद्धवजी, मेरी समझमें ही नहीं आता कि मै क्या और कैसे लिखूँ। सो तुम वृंदावन जा कर गोपियोको ब्रह्मज्ञान देकर समझा-बूझा कर मुझे भूलवा दो। मेरे माता-पिताको भी सांत्वना देना। व्रजमें जाकर सभीसे कहना :

उधो इतनो कहियो जाई।
हम आयेंगे दोऊ भैया मैया जनि अकुलाई॥

याको विलग बहुत हम मान्यो जो कहि पठयौ धाई ।
वह गुन हमको कहा विसरी है बड़ किये पय प्याई ॥
ओर जु मिल्यो नंद बाबा सो तो कहियो समुझाई ।
तौलौं दुःखी हे न नहि पावै धवरी धूमरी गाई ॥
जद्यपि यहाँ अनेक भाँति सुख तदपि रह्यो न जाई ।
सूरदास देखौ व्रजवासिन तब हिं हियो हरखाई ॥

उद्धवजी ! यहाँ संसारके सभी वैभव तो हैं किंतु हृदयका शुभ प्रेम यहाँ कहाँ है ? मुझे यहाँ कोअी आनंद नहीं है ।

उद्धवने माना कि वे ज्ञानी हैं सो उनको व्रज भेजा जा रहा है । वे ज्ञानी तो थे, साथ साथ अभिमानी भी थे । वे कहते हैं :—महाराज, वहाँ जानेमें मुझे कोअी आपत्ति तो नहीं है किंतु गाँवके अनपढ़ गॅवार लोग मेरे वेदांतका ज्ञान समझ कैसे पाअेंगे ? मेरी वेदांतकी चर्चा ये अनपढ़ गोपियाँ कैसे समझेंगी ? मेरे तत्त्वज्ञानका उपदेश बड़ा गहन है सो मेरा वहाँ आना निरर्थक ही है ।

ये वचन उद्धवजीके नहीं, उद्धवजीके ज्ञानके अभिमानके हैं । उन्हें अभिमान था कि वे बृहस्पतिके शिष्य हैं और वेदांतके आचार्य हैं ।

श्रीकृष्ण गोपियोंकी बुराअी सह न सके । उन्होंने उद्धवसे कहा :—उद्धवजी ! मेरी गोपियाँ अनपढ़ नहीं, ज्ञानसे पर हैं । वे पढ़ी-लिखी तो अधिक नहीं हैं किंतु शुद्ध प्रेमकी तो ज्ञाता हैं । अिसी कारणसे तो वे मुझे प्राप्त कर सकी हैं । और क्या कहूँ ? वे तो हैं :—

ता मन्मनस्का मत्प्राण मदर्थे त्यक्तदेहिकाः ।

भा. १०-४६-४

गोपियोंका मन निरंतर मुझीसे लगा हुआ है । उनका प्राण और जीवन मैं ही हूँ । मेरे लिअे तो उन्होंने अपने पति-संतान, रिश्तेदारोंका त्याग कर दिया है । वे मुझे अपनी आत्मा मानती हैं ।

उद्धव, मेरी गोपियाँ अनपढ़ होते हुअे भी प्रेमीकी मूर्ति हैं, स्नेहकी ज्योति हैं । प्रेमकी रीति वे भली भाँति जानती हैं ।

उद्धव, मेरी गोपियोंको ज्ञानकी आवश्यकता है और तुम्हें प्रेमकी, भक्तिकी । सो तुम्हें वहाँ आना ही होगा ।

मात्र अकेले ज्ञानसे या अकेले भक्तिसे मनुष्य पूर्ण नही होता । जीवनमें ज्ञान और भक्ति दोनोंका समन्वय करके प्रेममय जीवन जी कर प्रभुकी प्राप्ति करनी है ।

शब्दज्ञानीको नम्र बननेमें कुछ समय लगता है । उसके दिलमें ज्ञानकी अकड़ होती है । अभिमान उसे नम्र बननेसे रोकता है । विनय अपने साथ सद्गुण लाती है और अभिमान दुर्गुण ।

भगवान जानते थे कि अभिमानी उद्धव गोपियोंको वंदन तक नहीं करेंगे । वंदन किअे विना कल्याण कैसे होगा ? सो उन्होने आदेश दिया कि गोपियोंको वंदन करना ।

उद्धवजीकी तो अिच्छा नहीं थी फिर भी भगवानके आग्रहके कारण व्रज जानेको तैयार हुअे। आपका आदेश ही है तो मैं वहाँ नंदजी, यशोदाजी, गोपियों और गोपालकोंको उपदेश दे आअूँ।

प्रभु :–उन सबसे कहना कि उनका कनैया उन सबको याद करता है। मातासे कहना कि वह मेरे बिछोहमें रोअे नहीं।

प्रभुने अिस प्रकार सारी रात उद्धवको समझाया। प्रातःकालमें उद्धवजी जाने लगे तो श्रीकृष्णने अपना पीतांबर और वैजयंतीमाला प्रसादके रुपमें देते हुअे कहा :– उद्धवजी! तुम मेरी अिन प्रसादियोंको धारण करके ही गोपियोंसे मिलने जाना। मेरी गोपियाँ न तो किसी परपुरुषको देखती हैं या न तो परपुरुषसे बोलती हैं। वे मेरा यह पीतांबर देख कर तुम्हें मेरा दूत मानेंगी। उन्हें विश्वास हो जाअेगा कि तुम मेरे हो। वे मान लेंगी कि यह तो अपने श्यामसुंदरका अंतरंग सखा है। अैसा विश्वास हो आने पर ही वे तुमसे बातें करेंगी। सो अिन दोनो वस्तुओंको धारण करके ही उनके पास जाना।

उद्धव! तुम भाग्यशाली हो कि व्रजभूमिमें जा रहे हो। व्रज प्रेमभूमि है जो सभीका कल्याण करती है। तुम्हारे कल्याणके हेतु ही मैं तुम्हें वहाँ भेज रहा हूँ।

उद्धवजीका रथ चलने लगा तो श्रीकृष्णने उद्धवजीसे कहा :–मेरे मात–पिताको मेरा प्रणाम कहना और उन्हें आश्वासन देना कि उनका कनैया अवश्य वहाँ आअेगा। अितना कहते कहते तो श्रीकृष्णको रोना आ गया।

उद्धवजीकी समझमें ही नहीं आ रहा है कि व्रजको याद करते ही प्रभुकी आँखें क्यों वह निकलती हैं।

जीव जब अपना जीवत्व छोड़ कर ओश्वरके साथ प्रेमसे तन्मय हो जाता है तब ओश्वर भी अपना ओश्वरत्व, अैश्वर्य भूल जाते हैं।

श्रीकृष्ण, मथुराके अधिपति अपना पद, अैश्वर्य भूल कर प्रेममें पागल होकर अुस रथके पीछे दौड़ रह हैं और उद्धवजीसे संदेश देते जा रहे हैं। उद्धवजीने कहा :–मैं रथमें बैठा हूँ। आप राजा हैं और मैं सेवक। आपका अिस प्रकार रथके पीछे दौड़ना शोभास्पद नहीं है। आप कल्पांत न करें। मैं सबको भली भाँति उपदेश दूँगा।

अब प्रभु रुक गअे। मेरा उद्धव भाग्यशाली है जो प्रेमभूमि पहुँच रहा है। वे रथको देखते ही रहे।

अिस ओर जबसे कनैया गोकुल छोड़ गया है वनकी सघन कुंजें वीरान सी हो गअी हैं। यमुनाके जल गोपियोंके आँसूओंकी धारासे लग रहे हैं। गायोंने घास खाना छोड दिया है और मथुराकी दिशा निहारती रही हैं। श्यामविरहमें हर कोअी व्यथित है, व्याकुल है।

अेक सखीने व्यथाको अिन शब्दोंमें वाचा दी है :

विनु गोपाल बैरिन भई कुंजें।
तब वे लता लगति अति शीतल
अब भई विषम ज्वालकी पुंजें ॥
वृथा वहति जमुना, खग बोलत,
वृथा कमल फूलै अलि गुंजें ॥
पवन, पानि, धनसार, सजीवनि,
दधि सुत-किरन भानु भई भुंजें ॥
ये ऊधो कहियो माधवसों,
विरह करद कर मारत लुंजें ॥
सूरदास प्रभुको मग जोवत,
अँखियाँ भई बरन ज्यों जंगुं ॥

जबसे कनैया मथुरा गया है नंदयशोदाने अन्नका अेक दाना भी मुँहमें नहीं रखा है। जब तक वह नहीं लौटेगा, हम नहीं खायेंगे। न रातकों नींद आती है और न दिनको चैन।

कृष्णविरहमें जीव अकुलाअेगा, छटपटाअेगा और आँखे बरसने लगेंगी तो मनकी मलीनता धुल जाअेगी। बाहरका जल शरीरको धोता है।

विरहाश्रु हृदयकी मलीनताको धोते हैं। विरहाश्रु हृदयको शुद्ध, पवित्र करते हैं।

यशोदाजी सोचती रहती थीं कि अपना कनैया जब लौटेगा तो मैं उसे अपने गले लगा लूंगी और गोदमें बीठला कर भोजन कराऊँगी। उसे खिला कर ही मै खाऊँगी। घरकी हर वस्तु कनैयाकी याद दीलाती थी। अिस खाटकीमें लाला माखन-मीसरी खाता था, अिस पलनेमें सोता था, उस सेज पर आराम करता था। नंद-यशोदा अिस प्रकार लालाकी यादमें डूबे रहते, आँसू बहाते रहते और परस्पर आश्वासन देते-लेते रहते थे।

यशोदाजी आंगनमें बैठे हुअे नंदको उलहना दे रही हैं। आप ही के कारण लाला व्रज छोड़ गया है। आप उन्हें गायोंको चरानेके लिअे भेजते थे तो वह कहता था कि उसे अन्य गोपबाल नचाते और दौडाते रहते थे। व्रजवासी उसे रुखी-सुखी रोटी खिलाते थे। सो वह परेशान हो कर रुठ गया और गोकुल छोड़ कर चला गया। वह गायोंके पीछे दौड़ दौड़ कर थक-हार गया सो यहाँसे चला गया है।

व्रजसे जाते समय उसने वापस आनेका वचन दिया था। मेरे आँसू वह देख नहीं पाता था। जब भी मैं रोती वह बड़े प्यारसे मुझे मनाने लगता था। आज वह अैसा निष्ठुर क्यों हो गया है? मथुराके लोगोंने कुछ जादू-टौना कर दिया होगा। मैंने सुना है कि मेरा लाला मथुराका राजा बन गया है। अिस समाचारसे मुझे बड़ा आनंद हुआ। किंतु तुम उसे गायोंके पीछे दौड़ाते रहते थे उसी कारणसे वह मुझे मिलने तक नहीं आ रहा है। और यशोद रोने लगीं।

नंदजी :-मैंने कब भेजा था उसे गायें चरानेके लिअे? वही कहता था कि वह गायोंकी सेवाके लिअे ही जन्मा है। उसे गायोंके विना चैन ही नहीं आता था। वह जब यहाँ था तब गायें खा-पीकर कैसी हृष्ट-पुष्ट रहती थीं। किंतु अब तो लालाके विरहमें गायोंने खाना-पीना भी छोड़ दिया है। हाथीके बच्चोंसी हृष्ट-पुष्ट मेरी गाये आज दुबली-पतली हो गअी हैं। मुझसे तो यह दशा देखी नहीं जाती। मैं दु:खके मारे गौशालामें पाँव तक नहीं रख सकता हूँ।

लगता है अब तो लाला भी मथुराका राजा बनते ही अपनी गायोंकी भूल गया है। यदि वह अेक बार भी अिधर आअे तो व्रज सनाथ हो जाअे। मुझे क्या खबर थी कि वह मथुरा जाते ही अैसा निष्ठुर हो जाअेगा। कनैयाकी गाय गंगी तो भूखी-प्यासी वृंदावनमें ही मारी मारी घूमती-फिरती है, घर आती ही नहीं है।

कनैया, तेरे माता-पिताके लिअे नहीं तो कम-से-कम अपनी गायोंके लिअे तो अेक बार अिधर आ। तेरे विना ये गायें मरियल-सी हो गयी हैं।

तुझे गायें प्यारी थीं सो तू उसे चराने ले जाता था। मुझे लगता है कि अेक बार मैंने तुझे मूशलसे बाँधा था अिसीलिअे तू रुठ गया है और यहाँ नहीं आता है।

अिसी प्रकार नंद-यशोदा सारा समय कनैयाकी यादमें व्याकुल हो कर, आँसू बहा कर पूरा करते थे। किसीके आग्रह पर कभी-कभार कंदमूल खा लेते थे।

अेक दिन वे दोनों आँगनमें बैठ कर कृष्णकी बाललीलाओंकी यादमें खोअे हुअे थे कि अेक कौआ वहाँ आकर का-का करने लगा। कौअेकी बोली शुकनवंती मानी जाती है। कौअेको सुना तो यशोदाने सोचा कि आज मथुरासे शायद कोअी आअेगा। वह कृष्णके वचनको याद करते हुअे कौअेसे कहने लगी, मेरा कनैया यदि आ जाअे तो तेरी चोंच मैं सोनेसे मढ़वाअूगी। तुझे मिष्टान्न खिलाअूँगी। कनैयाके आगमनके समाचार देनेवालेकी मैं जन्मोजन्म सेवा करुंगी। कौअे, मेरा लाला कब आ रहा है?

अिधर उद्धवजीके रथने मथुराकी सीमा पार करके व्रजभूमिमें प्रवेश किया। व्रजभूमि तो दिव्य है, सात्विक है, प्रेमभूमि है। यहाँके पशु, पंछी, वृक्ष. सब कुछ दिव्य है। ये सब भी राधाकृष्णका कीर्तन करते हैं। वृंदावनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है?

कृष्णके जानेके बाद मथुराके ग्वालबाल भी रोज प्रतीक्षा करते रहते थे। लालाने शामको लौटनेका वादा किया था। वह आता नहीं था सो सब बच्चे रोते हुअे घर लौट जाते थे। रोजका यही क्रम था।

अेक दिन श्रीदाम, मधुमंगल आदि सब ग्वालबाल रास्ते पर बैठे हुअे लालाकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि दूरसे अेक रथ आता हुआ दीखाअी दिया। बालकोंने सोचा कि लाला ही आया होगा। वे दौड़ते हुअे रथके पास पहूँचे। किंतु रथमें जो बैठा था वह नीचे नहीं उतरा। यदि कनैया होता तो कूद कर नीचे आकर गले लग जाता।

उद्धवजी बालकोंको देख कर भी रथमें ही बैठे रहे और बच्चोंसे कहने लगे, मैं श्रीकृष्णका संदेश ले कर आया हूँ। वह आनेवाला है। मै उद्धव हूँ।

बालक कहने लगे :–उद्धवजी, हम कनैयाको सुखी करनेके लिअे उसकी सेवा करते थे। कभी हमने अैसा तो नहीं सोचा था कि वह अैसा निष्ठुर हो जाअेगा। कनैयाके विना यहाँ सब सुना सुना लगता है। बंसीवट, यमुनाका किनारा, वृंदावन सब कुछ सुना और उदास हैं। यहाँ था तब तो वह हमसे बड़ा प्यार करता था किंतु लगता है वहाँ जाकर वह हमें भूल गया है। उद्धवजी, उससे कहना कि गोवर्धननाथ, व्रजमें सभी उसे याद करते हैं। उसके विना व्रज उजड़ गया है। वह कब आअेगा अिधर ?

बालक उद्धवजीको नंदबाबाके घरका रास्ता दीखलाते हुअे कहने लगे, अच्छा हुआ कि तुम आ गअे। हमें भी कनैयाको संदेशा भेजना है किंतु तुम पहले नंद-यशोदाके पास जाकर उनको सांत्वन दो। वे रात-दिन लालाकी प्रतीक्षामें रोते आये हैं। हम फिर मिलने आअेंगे।

अिधर यशोदा कौअेके साथ बात कर रही थी कि वह रथ आंगनमें आ पहुँचा। नंद-यशोदाने माना कि कनैया ही आ रहा है। दोनोंकी जानमें जान आ गअी। दोनों रथकी ओर दौड़ पड़े। दोनों पुकार उठे, कनैया आया, लाला आया। वे दोनों दौड़ते हुअे रथके पास पहुचे। किंतु उसमें कनैया नहीं, कोअी और ही था। कृष्णको न देखा तो कृष्णको पुकारते हुअे नंदजी मूर्छित हो गअे। उद्धवजीकी तो समझमें ही नहीं आ रहा था कि ये लोग कृष्णका नाम लेकर क्यों रो रहे हैं।

यशोदाजी धीरज घर कर अेक दासीसे कहने लगी : यह कोअी बड़े व्यक्ति लगते हैं। अिनका स्वागत करो।

उद्धवजी स्नान और भोजन आदिसे निवृत्त हो कर आराम करने लगे। दासीने नंदजीसे कृष्णके मित्रके आनेका समाचार कहा तो उनकी मूर्छा दूर हो गअी। नदबाबाने आँखें खोलीं।

नंदजीको प्रणाम करते हुअे उद्धवजीने कहा :–मै आपके कनैयाका मित्र उद्धव हूँ और उसका संदेश लेकर आया हूँ।

नंदजीने भी कुशलमंगल पूछा। उन्होने सोचा कि कनैया स्वयं नहीं आ सका होगा सो अपने मित्रको भेजा होगा। उद्धवजी, अच्छा हुआ कि आप आअे। कंसकी मृत्युसे सब यादव सुखी हुअे होगे।

उद्धवजी, सच सच बतलाना, क्या कनैया कभी हमको याद भी करता है क्या ?

> अपि स्मरति नः कृष्ण मातरं सुहृदः सखीन्।
> गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृंदावन गिरिम्॥
> भा. १०-४६-१८

उद्धवजी, यहाँके गोप-गोपियां, तरुवर, गिरि, गायें, वन सभी कनैयाको ही अपना सर्वस्व मानते हैं। क्या कनैया कभी हम सबका स्मरण करता भी है ?

उद्धवजी, कनैयासे कहना कि यह गिरिराज, यह जमुना उसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसकी गंगी गाय तो वनमें घूमती रहती है।

यह वही जमना हैं जिसमें कृष्ण जलक्रीडा करता था। यह वही गिरिराज है जिसको उसने अपनी अुंगली पर उठा लिया था। यह वही वनप्रदेश है जहाँ श्रीकृष्ण गायोंको चराता हुआ बंसी बजाता था। वह मैदान देखो, जहाँ कनैया अपने मित्रोंके साथ खेलता रहता था। उद्धवजी, अिन सबको देख कर मेरा मन श्रीकृष्णमय हो जाता है और मैं पागल-सा हो जाता हूं।

मुझे लगता है कि कनैया मथुरामें नहीं, यहीं है। मैं देख रहा हूं कि वह पलनेमें सोया हुआ है। कल सारी रात मैं उसे पलनेमें झुलाता रहा और उससे बातें करता रहा। सुबह हुअी तो मैंने सोचा कि उसे जगा दूँ नहीं तो गायें चराने जानेमें देरी हो जाअेगी। ज्यों ही मैंने पलनेमें झाँक कर देखा तो वहाँ कुछ भी नहीं पाया। मैं उसे कैसे भूलुं ?

मुझे रोज रोज उसकी बांसुरीकी मधुर तान सुनाअी देती रहती है। कल मैंने देखा कि वह कदंबकी डाली पर बैठा हुआ बंसी बजा रहा था। मुझे लगा कि वह कअी घंटोंसे बंसी बजा रहा है सो उसे भूख लगी होगी। मैं माखन-मीसरी लेकर उस कदंब पर चढ़ा तो वहाँ तो कोअी था ही नहीं।

उद्धवजी, कअी बार मुझे लगता है कि वह मेरी गोदमें बैठा हुआ खेल रहा है, मेरी दाढ़ी खींच रहा है। यमुनामें स्नान करनेके लिअे जाता हूं तो लगता है कि वह मेरे पीछे पीछे चला आ रहा है।

उद्धवजी, मैं उसे अपने कंधों पर बीठला कर घूमाता था सो मुझे कअी बार आभास होता है कि वह मेरे कंधो पर बैठ गया है। वह समय अब कब वापस आअेगा ?

उद्धवजी, मेरा कनैया कब लौटेगा ?

उसने कंस जैसे राक्षसोंका वध किया सो लोग उसे अीश्वर मानते हैं। उन्हें जो ठीक लगे वह माने। किंतु मेरा तो वह पुत्र है। कनैया मेरा है, मेरा ही है। नंदजीकी आँखोसे आँसू बहने लगे।

मुझे तो पलनेमें, घरके कोने कोनेमें, आँगनमें, यमुनाके किनारे हर कहीं कनैया ही दीखाअी देता है। उद्धवजी, वह कब लौटेगा ? मैंने उसका कौन-सा अपराध किया है जो वह रुठ गया है।

उद्धवजी, वसुदेवजीसे कहना कि कनैया उन्हींका पुत्र है। मै तो उनका दास हूं। लालासे कहना कि उसकी माता सारा दिन रोती रहती है। वह जब यहाँ था तो माताको मना लेता था। अब उसे कौन मनाअे ? नंदजी अितना बोलते बोलते तो व्याकुल हो गअे।

उद्धवजी उलझनमें पड़ गअे। मैं अिन्हें क्या उपदेश दूं ? अिन्हें तो हर कहीं कृष्ण ही दीखाअी देते हैं। पलनेमें, घरमें, आंगनमें, वनमें, यमुना किनारे, कदंबकी डाली पर कृष्णके ही दर्शन करते हैं यह नंदजी तो। ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका

उपदेशक हो कर भी मै वैसा अनुभव आज तक नहीं कर पाया हूँ। मैं अैसी ब्रह्मदृष्टिवाले नंदजीको क्या उपदेश दूँ? उन्होंने नंदजीसे कहा, बाबा, धन्य हैं आप। आपका जीवन सफल हो गया। आप कृष्णमय हो चूके हैं।

अितनेमें वहाँ यशोदाजी आ पहूँचीं। उद्धवजी, सच सच बतलाओ कि मेरा लाला कुशल तो है न। वह खानेके समय बड़ी जीद करता था। वह कहीं दुबला तो नहीं हो गया है न? क्या वह आनंदमें तो है? कभी वह मुझे याद भी करता है क्या? यहाँ उसे कौन मनाता होगा? गोकुलमें था तब तो वह मेरे आँसू देख न सकता था। वह मुझे मना लेता था।

जब मैं यमुनाजी जाती हूँ तो उसका श्याम रंग कनैयाकी याद दीला देता है। मुझे लगता है कि अभी वह यमुनाजीके जलमेंसे बाहर निकल कर मेरी गोदमें आ बैठता। उससे पूछना कि उसकी माताने अैसा कौन-सा अपराध किया है कि वह यहाँ आनेका नाम तक नहीं ले रहा है। मैंने उसे अेक बार मुशलके साथ बाँधा था अिसीलिअे तो वह रुठा नहीं है न?

वह कभी मुझे याद भी करता है क्या? मै उसकी माता तो हूँ नहीं। उसकी माता तो देवकी है। देवकीसे कहना कि सेविकाकी आवश्यकता हो तो मुझे बूला ले। कृष्णविरहमें हम मरे जा रहे हैं। वह जहाँ हो वहाँ हमें ले चलो। हमें वहाँ ले चलोगे तो भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मैं नारायणसे प्रार्थना करती हूँ कि कनैया चाहे यहाँ न आअे किंतु जहाँ भी रहे, सुखी रहे।

उद्धवजी :-माताजी, श्रीकृष्ण तुम सबको बार बार याद करते हैं। वे स्वयं यहाँ आनेवाले थे किंतु मथुराका शासन उन्होंने संभाला है सो उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता है। मुझसे कहा, मै मथुरामें आ कर अिस कारोबारमें डूब गया हूँ, तू माताको मेरा कुशलमंगल दे आ।

नंद-यशोदाका कृष्णप्रेम देख कर उद्धवजीका आधा अभिमान तो हवा हो गया। जो व्यक्ति पलनेमें, घरमें, आंगनमें, वृक्षों पर, वनमें हर कहीं कृष्णको ही देख रहा हो उसे ब्रह्मकी व्यापकताका कोरा उपदेश कैसे दूँ? ये दोनों तो हर कहीं बुद्धि और मनसे ब्रह्मके सर्वव्यापी रुपका अनुभव कर रहे हैं।

बातों ही बातोंमें प्रभात हो गया।

ब्राह्ममुहूर्तमें गोपियाँ स्नानादिसे निवृत्त हो कर कृष्णकीर्तन करती हुआीं दधिमंथन करने लगीं। उनकी आँखें भीगी हो जाती थीं।

उद्धवजी यशोदाजीसे अनुज्ञा लेकर यमुनास्नान करने चले। सखियोको भी कनैयाका संदेशा देना था। गोपियोका कृष्णकीर्तन सुना तो उन्होंने सोचा कि जिनके कंठ अितने मधुर हैं वे कैसी अद्भुत स्वरुपा होंगी। उन्होने अब तक किसी भी गोपीका दर्शन पाया नहीं था। ब्राह्ममुहूर्तमें कृष्णकीर्तन करनेवाले अिन व्रजवासियोंको धन्य है। कृष्णके स्मरण मात्रसे अिनके हृदय द्रवित होते हैं।

उद्धवका ज्ञानगर्व अब धीरे धीरे मीट रहा था। उधो भयो सीधो। उद्धवका

ज्ञान भक्तिरहित था सो कृष्णने उनको व्रज भेजा था। उद्धवजी नंद-यशोदा-सी प्रेममूर्तिको देख कर आनंदित हो गये।

दधिमंथनके बाद नंदजीके आवासकी ओर देख कर प्रणाम करनेका गोपियोंका नियम था। आज नंदके आंगनमें ये सब प्रणाम करने आयीं तो वहाँ रथ देखा। रथको देखा तो उनको अक्रूरप्रसंग याद आ गया। हमारे कनैयाको ले जानेवाला अक्रूर, लगता है, फिर आया है। क्यों आया होगा वह ?

विहरव्याकुला ललिता कृष्णका नाम रटती जा रही थी तो विशाखाने कहा :- अरी, कृष्ण तो स्वार्थी और कपटी था, राजा बनते ही हम सबको भूल गया। अब मन लगा कर घरके कामकाज करने हैं।

ललिता :-मैं कृष्णको ज्यों ज्यों भूलनेका प्रयत्न करती हूँ, वे उतने ही याद आ जाते हैं। कल मैं कूअे पर जल भरने गअी थी तो बांसुरीका सुर सुनाअी दिया। मैंने अिधर-उधर देखा तो पाया कि लाला वृक्षकी डाली पर बैठा हुआ बांसुरी बजा रहा है। मैं लालाके दर्शनसे अैसी बावरी हो गअी कि घड़ेको रस्सीसे बांधनेके बदले मैंने अपने बच्चेको बांध कर कूअेमें उतार दिया। लालाने यह देखा तो वह कूद कर आया, बच्चेको बाहर निकाला और मुझे उलाहना देने लगा। वह मुझे घर तक पहुँचा गया। मैं उसे कैसे भूल सकती हूँ ?

अेक अन्य गोपी कहने लगी :-लोग चाहे कुछ भी कहें, किंतु मुझे तो कृष्ण यहीं दीखाअी देता है। वह मथुरा गया ही नहीं है। कल सायंकालको जल भरने यमुनाजी जाना पड़ा। अँधेरा होनेको आया था और मैं डर रही थी कि घड़ा मेरे सर पर रख दिअे और बातें करता हुआ घर तक छोड़ गया। वह कहता था कि वह यहाँ व्रजमें ही रहता है। मुझे उसकी बातें बार बार याद आती हैं। मैं उसका स्वरुप भूल नहीं सकती। उसके साथ बातें किअे बिना चैन ही नहीं आता है मुझे।

बड़े बड़े साधु और योगीजन समाधि लगा कर संसारको भूलनेका भगीरथ प्रयास करते हैं फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिलती। उनकी वृत्ति प्रभुमय नहीं हो पाती है। तो अिधर ये गोपियाँ प्रयत्न करने पर भी संसारको याद नहीं रख सकती हैं। अेक पल भी कनैयाको भूला नहीं पातीं। प्रभुको भूलनेके प्रयत्नमें निष्फल रहती हैं।

हर किसी वस्तुका अभाव अनुभव किया जा सकता है किंतु आत्माका नहीं। श्रीकृष्ण गोपियोंकी आत्मा है सो वे उन्हें कैसे भूला पाअें ?

गोपियाँ अिस प्रकार कृष्णके विषयमें बातें कर रही थीं कि उद्धव स्नानादिसे निवृत्त हो कर, भगवान द्वारा दिअे गअे पीतांबर और वैजयंतीमाला धारण करके आअे। गोपियोंने उनको प्रणाम किया तो उद्धवजीने अपना परिचय देते हुअे कहा :- मैं तुम्हारे मथुरावासी श्रीकृष्णका अंतरंग सखा उद्धव हूँ और तुम्हारे लिअे उनका संदेश लेकर आया हूँ।

गोपियाँ :-तुम थोथे पंडीत ही हो। क्या श्रीकृष्ण केवल मथुरा ही में बसते हैं क्या ? वे तो सर्वत्र हैं। तुम्हें मात्र मथुरामें ही भगवान दीखाअी देते हैं और

हमको तो यहाँके कण कणमें उनका दर्शन हो रहा है।

यहाँ देखो। कदंबके वृक्ष पर बैठा हुआ कनैया बांसुरी बजा रहा है। क्या तुम्हें दीखाओ नहीं देता, सुनाओ नहीं देता?

उद्धवजी! यदि तुम्हें श्रीकृष्णसे साक्षात्कार हुआ होता तो तुम उन्हें वहाँ छोड़ यहाँ आओ ही नहीं होते। अथवा तुम्हें यहाँ भी कृष्णके दर्शन हुओ होते।

दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि तथा कल्याणके अन्य सभी साधनोंसे ओश्वरसे साक्षात्कार करनेका ही प्रयत्न करना चाहिओ। ये सब साधन भगवानकी प्राप्तिके ही हैं।

ेअन गोपियोंने तो जपतप आदि किओ विना ही केवल प्रेमभक्तिसे भगवानको पा लिया है। उन्होंने अनायास ही सब कुछ पा लिया है।

दान, जप, तप, व्रत आदि तो मनको ओश्वरमें ओकाग्र करनेके हेतु ही हैं। यदि ओिन साधनोंके प्रयोगके बाद भी मन ओश्वरसे न जा लगे तो सब कुछ व्यर्थ ही रहेगा।

उद्धवने गोपियोंको व्यापक निर्गुण ब्रह्मका उपदेश देनेका विचार किया। वे कहने लगे :—निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करो।

गोपियाँ :—उद्धवजी, जो आनंद हमको प्रभुने दिया है वह आनंद तुम्हारा कोरा ज्ञान नहीं दे सकता। हम कृष्णके जापके सिवाय और कुछ भी करना नहीं जानतीं। हम तो गांवकी अनपढ़ गोपियाँ हैं। अपना सगुण-निर्गुण ब्रह्मका विवेक तुम्हें मुबारक हो। हम तो कृष्ण प्रेममें ही तन्मय रहती हैं सो वह हमें प्रत्यक्ष दर्शन देता रहता है। तुम्हारे उस निर्गुण ब्रह्मकी आराधनाके हेतु हम मन, चित्त कहाँसे लाओं? अपना जो चित्त था वह तो कानुडाने चुरा लिया है।

चितचैन नहि चित चौर चुरायो है।

उद्धवजी, भगवानने कोओी दशबीश मन तो बनाओ नहीं हैं। और जो ओक था वह तो श्यामसुंदर उड़ा ले गया है। अब तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मकी उपासना कौनसे मनसे करें?

ऊधो मन न भये दश बीश।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधैं ईश।
इन्द्रियाँ शिथिल भई केशव विनु, ज्यों देही विनु शीश॥
आसा लागि रहित तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा श्याम सुंदरको, सकल जोगके इश।
सूर हमारे नंद नंदन विनु और नहीं जगदीश॥

उद्धवजी, उस नंदनंदनके सिवाय अपना अन्य कोओी ओश्वर नहीं है। वही हमारा सर्वस्व है।

उद्धवजी, उस कृष्णकी बातें ही जाने दीजिओ। उस काले कपटी कनैयाकी मित्रता हमें नहीं चाहिओ। उसने तो अपना कलेजा कुरेद दिया है।

भक्त कवि दयाराम कहते हैं :—

कालजुं कोर्युं ते कोने कहिअे जी रे .
वेरी जो होय तो वढतां रे फावीअे, प्राणथी प्यारो अेने लहीअे
सोडनो धाव मार्यो स्नेही शामलिअे, किया राजाने गावे जइअे जी रे. .
कल न पड़े, कांई पेर न सूझे, रात-दिवस घेलां रहीअे जी रे. .
कोअी वस्तुमां क्षण चित्त न चोंटे, अलबेलो आवी बेठो हैये जी रे..
दयाना प्रीतमजीने जई अेटलु तो कहेजो, क्यां सुधी दु:ख सहीअे जी रे

श्यामने अपने हृदयमें ही धाव किया है फिर भी उनको भुलाना, उसकी उपेक्षा करना हमारे लिअे अशक्य है।

दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ।

उद्धव, और तो हम क्या कहें? सबसे पहले श्रीकृष्णका दर्शन हमने नंदमहोत्सवके दिन किया था। और तबसे उन्होंने अैसा जादू डाला है कि हम उनकी हो गअी हैं।

उद्धवजी, अब अिस हृदयमें किसी औरके लिअे स्थान है ही नहीं। चलते-फिरते, जगते-सोते, विचारमें-सपनेमें उस श्यामकी ही मूर्ति हृदयमें समायी रहती है।

नाहीं न रह्यो हियमें ठौर
नंद नंदन अछत कैसे आनिय उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत, स्वप्न सोवत रात ।
हृदयतें वह श्याम मूरति, छिन न इत उत जात ॥
श्याम गात सरोवर आनन, ललित गति मृदु हास ।
सूर अैसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास ॥

उद्धवजी, कृष्णने हमें रासलीलाके महानंदका अनुभव कराया और अब विसार दिया। अैसे निष्ठुर क्यों हो गअे हैं वे?

उद्धवजी :-नहीं, नहीं। अैसा नहीं है। मेरे स्वामी तुम सभीको बहुत याद करते रहते हैं।

गोपियाँ :-उद्धवजी, तुम्हें यदि श्रीकृष्णके मूल स्वरुपका ज्ञान होता तो तुम यहाँ आअे ही नहीं होते। तुम्हें ब्रह्मज्ञानकी बातोंने भरमा दिया है। जो उनके असली रुपका दर्शन कर पाया है वह उनको कभी छोड़ नहीं सकता है। तुम उन्हें छोड़ कर आअे हो सो लगता है कि तुमने उन्हें पहचाना ही नही है।

हे उद्धव, तुम किसका संदेशा ले कर आअे हो? अिस अनाथ व्रजको वे कब सनाथ करेंगे?

गोपियाँ पागल-सी हो कर प्रलाप करने लगीं। वृक्षोंमें श्रीकृष्णका रुप निहार कर वृक्षोंको आलींगन देने लगीं। ये रहे मेरे श्रीकृष्ण।

अब उद्धवजी गहरी सोचमें डूबे जा रहे हैं। ये गोपियाँ, ये नंद-यशोदा पलनेमें, घरमें, आंगनमें, वृक्षोमें, जलमें, धरतीके कण कणमें श्रीकृष्ण-ब्रह्मके अस्तित्वका अनुभव कर रहे हैं। ये अनपढ़ गँवार हो कर भी ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका अनुभव

कर रहे हैं। अिधर अेक मैं हूँ जो वरसोंसे व्यापक ब्रह्मके वेदांतका रटन-चिंतन करता आया हूँ फिर भी उसका दर्शन और अनुभव पा नहीं रहा। मेरा शुष्क ज्ञान निष्फल ही रहा। मेरा ज्ञान, पंडीताअी निरर्थक ही रही।

मैं बुद्धि लड़ाता रहा, वेदांतके सिद्धांतोंमें उलझता रहा किंतु ब्रह्मका अनुभव नहीं कर पाया।

ज्ञानार्जन अेक वात है और ज्ञानानुभव दूसरी। और ज्ञानार्जनका महत्त्व होते हुअे भी ज्ञानानुभवका महत्त्व अधिक है।

सखियाँ उद्धवजीको राधिकाजीका दर्शन कराने ले गअीं। सखियोंकी मंडलीमें विराजमान श्री राधिकाजीकी शोभा अवर्णनीय है। नव वर्षकी निर्दोष वय, सादगीभरा शृंगार, मुख पर दिव्य तेजकी आभा, सात्त्विकता और प्रेमकी मूर्ति, जगतके आनंददाता श्रीकृष्णकी आनंददायिनी श्री राधिकाजीको उद्धवजीने साष्टांग प्रणाम किया।

किंतु राधिकाजीका शरीर श्रीकृष्णके विरहके कारण सुखे काँटे जैसा हो गया था। मन व्याकुल और व्यथित था। केश रुखेसुखे और बीखरे हुअे थे। चंद्रमुख शुष्क-सा हो गया था। मुखसे वेदनाभरी आहें निकल रही थीं और आँखोंसे अश्रुधारा वह रही थी। अिस प्रकार वे दुखवल्लरी-सी दीखाअी दे रही थी।

सुखकर काँटा हुआ तन, था विकल बेहाल मन।
बाल बिखरे शुष्क थे मुरझा हुआ था विधु-वदन॥
मुख निकलती आह थी, थीं आँख आँसूसे भरीं
वसन अस्तव्यस्त थे, थी दुःखलता पूरी हरी॥

श्री राधाजी उद्धवजीसे पूछने लगीं :-तुम कौन-से श्रीकृष्णका संदेशा लाअे हो? मेरे श्रीकृष्ण तो यहीं हैं। मैं वियोगिनी नहीं हूँ। अंतरकी संयोगिता राधा श्रीकृष्णके चिंतनमें लीन हो गअीं।

उद्धवजीने फिर वंदन किया और कहा :-मैं मथुरासे आया हूँ। श्रीकृष्ण यहाँ आनेवाले हैं।

श्री राधाजी :-क्या तुम मेरे स्वामीका संदेश लेकर आअे हो? किंतु अुस संदेशसे मुझे कोअी शांति नहीं मिलेगी। विरहिणीके दुःखको कौन समझ पाअेगा? "रामबाण वाग्यां होय ते जाणे।" मुझे शांति दे सके अैसा कोअी शास्त्र, मंत्र या ज्ञान अिस जगतमें नहीं है। मैं त प्रतिक्षण श्रीकृष्णका भजन, ध्यान और दर्शन कर रही हूँ।

राधाजीकी कातर दशा देख कर सभी गोपियाँ, वृक्ष-वेलियाँ, फूल-कलियाँ, पशु-पंछी रोने लगे। राधाजीके दिव्य प्रेमने उद्धवजीको भी रुला दिया। मैं अिस राधिकाजीसे क्या उपदेश दूँगा?

श्री राधाजीके मुखकमलकी सुवाससे अेक भ्रमर आकर्षित हो कर मंडराने लगा। राधिकाजी उसे दूर करने लगी। तू तो कपटी है, काले कृष्णका कपटी बंधु है, मेरे पास मत आ। उद्धवजीने फिर राधिकाजीको प्रणाम किया।

सैंतालीसवे अध्यायके बारहसे अिक्कीसवें श्लोक भ्रमरगीतके नामसे जाने जाते हैं। भ्रमरगीतमें वैसे तो राधिकाजी भ्रमरको उलाहना देती हैं किंतु उसका लक्ष्य तो है उद्धवजी। और साथ साथ कुछ कृष्णको भी सुनाया है। भ्रमरगीत अेकवचनमें है और वेणुगीत, युगलगीत आदि बहुवचनमें।

उद्धवजी कहते हैं:–श्रीकृष्णको कपटी मत कहो। वे तो दया और प्रेमके सागर हैं। वे तुममेंसे किसीको भी नहीं भूल पाअे। वे तुम सभीको बार बार याद करते हैं।

राधाजी:–उद्धव, तुम उन्हें अच्छी तरह पहचान ही नहीं पाअे हो। यदि उनके मूल स्वरुपका ज्ञान और अनुभव तुम्हें हुआ होता तो तुमने उनको छोड़ा ही नहीं होता। तुम्हें ज्ञान और शास्त्रकी बड़ी बड़ी बातें करके उन्होंने छला है। तुम्हारे शुद्ध ज्ञानसे अिस शुद्ध प्रेमकी भूमिको क्या लेना-देना है? ज्ञान और योगकी चर्चा यहाँ अप्रस्तुत हैं। प्रेमराज्यमें अेक ही प्रियतमका शासन होता है। अपना तो ज्ञान, शास्त्र, कर्म, धर्म सब कुछ श्रीकृष्ण ही है। अपनी सांस तक श्रीकृष्णमय है। तो फिर तुम्हारे ज्ञानको हम कहाँ स्थान देंगे? अिस प्रेमकी भूमिमें तुम प्रेमकी बात कर सकते हो, शुष्क ज्ञानकी नहीं।

उद्धवजी:–मै तो मथुरावासी श्रीकृष्णका संदेशा लेकर आया हूँ कि वे तुम्हें भूले नहीं हैं। तुम्हें और तुम्हारे प्रेमको बार बार याद करते हैं।

श्री राधाजी उद्धवजी, तुम यह क्या कह रहे हो? भगवान सर्वव्यापी हैं फिर भी तुम उन्हें केवल मथुरावासी ही बता रहे हो। षड्शास्त्रोंका तुमने अभ्यास तो किया किंतु कोरे ही रहे तुम। शास्त्रोंमें डूब गये किंतु मोती पा न सके।

उद्धवजी, मेरे कृष्ण केवल मथुरामें नहीं, हर कहीं बसते हैं। मुझे तो चारों ओर वही दीखाअी दे रहे हैं। श्रीकृष्ण यहाँके कण कणमें हैं, हमारे मनमें हैं, हमारे हृदयमें हैं। हमारे रोमरोममें वे बसे हुअे हैं। वह कपटी कभी सामने आ जाता है तो कभी छूप जाता है। तुम तो उसकी दो-चार महीनोंसे सेवा कर रहे हो। मैं तो उसकी जन्मजन्मांतरकी दासी हूँ। तुम उसके विषयमें क्या जानते होगे? कृष्ण स्वार्थी था तभी तो सुग्रीवका पक्ष लिया था उसने अपने रामावतारमें। वह कपटी है तभी तो हमें छोड़ गया है।

तुम मुझे बार बार वंदन क्यों कर रहे हो? यहाँ क्यों आअे हो? तुम्हें अपने कनैयाने भेजा है सो हम तुम्हारा स्वागत तो करते हैं किंतु हम अनपढ़ोंको तुम्हारे शास्त्रज्ञानसे क्या वास्ता?

उद्धवजीने मान लिया कि उनके अपने ही शब्द गोपियाँ वापस दे रही हैं। उन्होंने कृष्णसे गोपियोंको अनपढ़ कहा था।

उद्धवजी:–मुझे क्षमा करो राधिकाजी! मैंने तुम्हारा अपमान करके अपराध किया था। तब मैं ही अज्ञानी था। राधाकृष्ण अभिन्न हैं यह आज मैंने प्रत्यक्ष देखा।

बिना राधे कृष्ण आधे।

राधाजी:–उद्धवजी, मैं और कृष्ण अभिन्न हैं। तुम क्या चाहते हो? हमारे अतिथि होनेके नाते तुम्हारी अिच्छा पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है।

उद्धवजी :-मेरी बुद्धि ज्ञानके अभिमानसे कुंठित और कठोर हो गअी है। ज्ञानने मुझे जड, शुष्क बना दिया है। मुझे तुम प्रेमलक्षणा भक्तिका दान करो।

राधाजीने उद्धवजीकी अिच्छा पूर्ण की। उनको प्रेमलक्षणा भक्तिका ज्ञान मिला।

गोपियाँ बाहर और भीतर कृष्णके अस्तित्वका अनुभव कर रही हैं। राधाजीने बंसरी बजाअी तो 'राधेगोविंद राधेगोविंद' की सुरीली तान बह चली। गोपियाँ भी कृष्णकीर्तनमें लीन हो गअीं।

गोपियोंकी भावविह्वलताको देख कर कृष्ण भी मथुरासे दौड़ते हुअे आ पहुँचे। सखियोंकी मंडलीमें राधिकाजीके साथ विराजमान हुअे। गोपियों और उद्धवजीने राधाकृष्णके मनोहर स्वरुपका दर्शन किया। उन्हें अब यह भी ज्ञात नहीं है कि वे कौन हैं, कहाँ हैं, कहाँसे क्यों आअे हैं।

उद्धवजीका ज्ञानाभिमान निर्मूल हो गया। वे दो-चार दिनोंके लिअे गोकुल थे किंतु वहाँ छ महिने बीत गअे। उनको विश्वास हो गया कि श्री कृष्ण गोपियोंसे दूर भी नहीं हैं और भिन्न भी नहीं। जब भी गोपियाँ कृष्णकीर्तन करती हैं वे मथुरासे आ जाते हैं।

उद्धवजी, अेक प्रसंग सुनाअूँ? अेक बार कनैया अपने मित्रोंके साथ आँख-मिचौली खेल रहा था। श्रीदामा ढूंढ रहा था। पहले कनैया अिस कुंडमें छूप गया और फिर भागता हुआ मेरे घर आ कर कहने लगा, मुझे कहीं छुपा दे नहीं तो श्रीदामा मुझे घोड़ा बनाअेगा। मैंने उसे अपनी गोदमें छुपा कर आंचल ओढ़ा दिया। अब जब भी मैं सोने जाती हूं तो लगता है कि कनैया मेरी गोदमें छुपा हुआ है। और मैं पागल-सी हो जाती हूं।

भगवानकी लीलाकथा सुनते सुनते उद्धवजीकी आँखोंसे आँसू छलक आते हैं। ये गोपियाँ धन्य हैं जो प्रतिक्षण ब्रह्मका अनुभव कर पाती हैं।

कृष्ण गोपियोंसे कहते हैं : गोलोकधाममें हमारा नित्य संबंध है। हम वियोगी हो नहीं सकते। ज्ञानदृष्टिसे देखें तो मैं यहाँ हूँ, सर्वत्र हूँ, तुम्हारे साथ ही हूं। मैंने विरहका दान अिसलिअे तुम्हें दिया है कि तुम हमेशा मेरे स्वरुपका ध्यान और स्मरण करती रहो। मेरा दूरत्व ही तुम्हें मेरा ध्यान करा रहा है।

विरहावस्थामें चित्त प्रियपात्रमें अेकाग्र हो जाता है और उसीका ध्यान, स्मरण करता रहता है। विरहावस्थामें प्रियपात्रका सतत सान्निध्य अनुभूत होता है।

मेरा तुम अविरत ध्यान करती रहो अिसीलिअे मैंने तुम्हें विरह दिया है।

संयोगावस्थामें चाक्षुषदर्शन होता है, वियोगावस्थामें मनोदर्शन। वियोग तो अेक विशिष्ट प्रकारका योग ही है। पति कहीं बाहर गया हुआ हो तो पत्नी बड़ी लगनसे उसीका ध्यान धरती रहती है।

गोपियोको विशिष्ट योगका दान करनेके लिअे ही भगवानने वियोग दिया।

हम विभक्त हो ही नहीं सकते। मैं तुम्हारे समीप हूं। तुम मेरे स्वरुपको याद करते रहना। तुम तो गोलोककी नित्यसिद्धा गोपियाँ हो।

गोपियोंको भी उद्धवजीके साथ रहनेसे ज्ञानलाभ हुआ। उनकी भक्ति ज्ञानके कारण दिव्य बन गअी। विरहावस्थामें वे मानने लगीं कि श्रीकृष्ण तत्त्वतः उनके निकट ही हैं।

प्रेमलक्षणा भक्ति पाँचवा पुरुषार्थ है। भक्ति अभेद सिद्ध करती है। ज्ञान भी अभेद सिद्ध करता है। किंतु ज्ञानकी तुलनामें भक्तिमार्ग अधिक सरल है।

प्रभुसे कहा, तुम मेरे नहीं, मैं तुम्हारा हूँ। समुद्रकी तरंग हो सकती हैं, तरंगका समुद्र नहीं।

नंदबाबा, यशोदाजी, राधाजी तथा अन्य गोपियोंके तीव्र कृष्णप्रेमको प्रत्यक्ष देख कर उद्धवजीका ज्ञानाभिमान जल कर खाक हो गया। उन्हें स्पष्टतः ज्ञान हो गया कि प्रेमभक्तिके विना ज्ञान निरर्थक है, प्रेम ज्ञानसे श्रेष्ठ है।

गोकुल छोड़नेकी अिच्छा ही नहीं हो रही थी अुद्धवजीकी। वे आअे तो थे गोपियोंके गुरु बनने किंतु उन्हींके शिष्य बन गअे। अब तो वे भगवानसे मात्र प्रेमलक्षणा भक्ति ही मांगनेकी सोचने लगे।

जिन्हें महान मुनि भी पा नहीं सकते हैं अैसे भगवानको अिन गोपियोने सहज ही पा लिया है। मैं उनकी चरणरजसे स्नान कर लूँ कि जिससे अगले जन्ममें चाहे मनुष्य न हो पाअूँ किंतु वृंदावनके वृक्ष, लता, पशु, पंछी कुछ भी बननेका लाभ मिल सके। अैसा होने पर भी मैं कृतार्थ हो जाअूँगा।

गोपियोके सत्संगसे उद्धवजीको ज्ञानोत्तर प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। उन्होंने सभी गोपियोकी चरणरज अपने मस्तक पर चढ़ाअी। सभीको वंदन किया।

कृष्णविरही जीवका वर्तन और व्यवहार कैसा होना चाहिअे उसका आदर्श अिन गोपियोंने जगतके समक्ष रखा है। धन्य है उन व्रजवासी नरनारियोंको!

उद्धवने अब मथुरा जानेकी अनुज्ञा मांगी। राधाजीने कहा, उद्धवजी, कृष्णसे कहना कि वे शीघ्र ही यहाँ आ कर गोकुलको सनाथ करे। कृष्णके लिअे कुछ भेंट भी दी।

अिस समय यशोदा और नंदजी भी आ गअे। उन्होंने संदेशा भेजा—

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां नायस्तत्प्रह्वणादिषु॥
कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गला चरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे॥

भा. १०-४७-६६-६७

उद्धवजी, हम तो यही चाहते हैं कि अपनी सभी वृत्तियाँ और संकल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आश्रित रहें और उनकी सेवामें ही लगे रहें। अपनी वाणी उन्हींका नामोच्चार करती रहे। अपना शरीर उन्हींकी सेवा करता रहे। हमें मोक्षकी अिच्छा नहीं है। अपने कर्म और प्रभुकी अिच्छा अनुसार हमें जिस किसी योनिमें

जन्म मिले हम शुभाचरण, दानधर्म करते रहें, अीश्वरके प्रति हमारी प्रीति उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती रहे।

संदेश सुनाते सुनाते नंद, यशोदा और गोपगोपियोंका हृदय भर आया।

अिन दो श्लोकोंमें समग्र भागवतका हार्द समाहित है। विषयोंके प्रति वैराग्य और कृष्णके प्रति प्रीति उत्पन्न करनेवाले ये दो श्लोक भागवतकी आत्मा हैं।

उद्धवजी, कृष्णसे कहना कि मेरा मन सदासर्वदा उन्हींमें रमता रहे। मेरा मन संसारके किसी पदार्थकी ओर न चला जाय। मेरी वाणी कृष्णका जप करती रहे और दृष्टि उसका दर्शन।

यदि प्रारब्धकर्मानुसार जन्म देना ही हो तो किसी पवित्र वैष्णवके घरमें देना कि जिससे कृष्णकीर्तन सुननेका लाभ सदा मिलता रहे। कृष्णकीर्तन सुनकर मैं कृतार्थ होता रहूँ और सेवामें तन्मय होनेका अवसर मिले।

यशोदाजी कहने लगी :—उद्धवजी, कनैयासे कहना कि उसे अिच्छा हो तो यहाँ आओे, केवल हमारे लिअे आनेका कष्ट न करे। यदि उसे वहीं सुख-आनंद मिलता हो तो वहीं रहे। हमारे वियोगसे यदि उसे सुख होता हो तो वह मथुरासे यहाँ आनेका कष्ट न करे। हम तो यहाँ उसके विरहमें जलने और आँसू बहानेमें भी सुख ही मानेंगे। हमारे सुखके लिअे उसे श्रम करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। वह जहाँ भी रहे, सुखी रहे। अितना कहते यशोदाजीको भी रोना आ गया।

यशोदाजीकी भक्ति पुष्टि भक्ति है। पुष्टिभक्त अपने सुखका नहीं, अपने आराध्यके सुखका ही विचार करता है।

राधाजीने कहा :-उद्धवजी, कृष्णकी यह बांसुरी और कमली भी लेते जाओ। अिन्हें मैं यहाँ रख कर क्या करुंगी? तुम कृष्णको ही दे देना।

उद्धव, कृष्ण तो अब तो बड़ा राजा बन गया है। उके मैं क्या भेजूँ? मैंने माखन-मीसरी तैयार किअे हैं सो तुम उसे मेरी ओरसे खिलाना। किंतु मेरा नाम मत देना।

उद्धवजीने सबको धीरज देते हुअे कहा, आप सब चिंता न करें। मैं कृष्णको शीघ्र ही यहाँ ले आअूँगा।

उद्धवजीका रथ मथुराकी दिशामें बढ़ने लगा। उनका मन भी विचारोंकी गहराअियोंमें गोता लगाने लगा। मैं आज तक मानता था कि कृष्ण करुणानिधि, कृपासागर हैं। किंतु लगता है कि वे तो बड़े कठोर हैं। अिन भोले व्रजवासियोंको विरहाग्निमें जला रहे हैं। मैं उनको उपालभ दूंगा।

उद्धवजी मथुरा आ पहूँचे। कृष्णके पास आअे। अंतर्यामी श्रीकृष्ण जानते हैं कि उद्धव क्या कहने जा रहे हैं। सो वे कहने लगे :-उद्धव, जब तुम अिधर थे तो मेरी प्रशंसा करते थे। अब गोकुल हो आअे तो गोपियोंकी प्रशंसा करने लगे हो। मैं निष्ठुर नहीं हूँ।

भगवानने उद्धवजीके मस्तक पर अपना वरद हस्त पधराया। उद्धवजी समाधिस्थ हो कर देखने लगे कि वह तो सब कृष्णकी लीला मात्र है। वे तो मथुरामें भी हैं और गोकुलमें भी। भगवानने अपनी सभी गोकुललीलाओंका दर्शन कराया। अेक स्वरुप मथुरामें दीखाओी दिया तो दूसरा गोकुलमें। अेक स्वरुप यशोदाकी गोदीमें था तो दूसरा राधाजीके साथ रास खेल रहा था। उद्धव, मेरी यशोदा माताने प्रेमबंधनसे मुझे अिस प्रकार बांध दिया है कि मैं वृंदावन छोड़ ही नहीं सकता। चाहे मैं मथुरामें दीखाओी दूं किंतु मैं होता तो हूं गोपियोंके पास ही। मैं गोपियोंसे अभिन्न हूं। राधा-कृष्ण अेक ही हैं।

उद्धवका गोकुलागमन प्रसंग ज्ञान और भक्तिके मधुर कलहका चित्रण है। उद्धवके ज्ञान और गोपियोंकी भक्ति-निर्गुण और सगुण-का यहाँ संघर्ष और समन्वय है।

भगवानकी गोपीप्रेमलीलाकी कथा दशम स्कंधके अडतालीसवें अध्यायसे समाप्त होती है। अब भगवानकी राजसलीलाका आरंभ होने जा रहा है।

राजस भक्तोंके मनके निरोधके लिये राजसलीला कथा है।

कृष्णकथा सभी प्रकारके जीवोंको आनंद देती है। कृष्ण सभी जीवोंको अपनी ओर आकर्षित करके परमानंदका दान करते हैं। कुब्जाको भी कृतार्थ की थी।

भगवानने अक्रूरजीके घर आकर उनको आज्ञा दी:-धृतराष्ट्र पांडवोंको लाक्षागृहमें भस्मीभूत करना चाहता है सो तुम धृतराष्ट्रके घर दो-चार दिन ठहर कर यह देख आओ कि वह पांडवोंके लिये कैसी भावना रखता है। तुम वहाँ प्रत्यक्ष जाकर परीक्षा कर आओ।

अक्रूरजी हस्तिनापुर आ कर धृतराष्ट्रके पास दो मास तक रहे और उसको उपदेश भी दिया :-हे धृतराष्ट्र, जीव अकेला जन्म लेता है और मरता भी अकेला ही है। सो कुटुंबके लिये पाप करना अत्यंत अनुचित है।

आँखोंका अंधा अंधा नहीं है। किंतु जिसकी आँखें होते हुये भी जो लोभ, मोह, मद, कामकी पट्टीके कारण देख सकता नहीं हो वही अंधा है। धृतराष्ट्रकी आँखें मोह और लोभसे अँधी हो गयी थीं। जिसकी आँखोंको रुपये-पैसोंने घेर लिया है वही धृतराष्ट्र है। धृतराष्ट्र-सा लोभी अक्रूर जैसोंके सत्संगसे भी सुधर नहीं पाता।

मृत्युके समय धन नहीं, धर्म और सत्कर्म ही साथ जाते हैं। फिर भी विचित्रता तो देखो कि मनुष्य विषय सुखोंके पीछे ही भागता रहता है। वह संसारके सिवाय अन्य कहीं आनंद ढूंढनेका प्रयत्न ही नहीं करता है।

अक्रूरजीने धृतराष्ट्रसे पूछा -तुम जान-बूझ कर यह पाप, यह कपट क्यों कर रहे हो?

धृतराष्ट्र :-आपकी बात तो पतेकी तो है किंतु दुर्योधन मेरे पास आते ही मेरा सारा ज्ञान, विचार, विवेक हवा हो जाता है।

जो सच्ची और योग्य बात समझ कर भी पाप करता है, जान-बूझ कर पाप करता है वह धृतराष्ट्र है।

भगवानकी भी अब तो अिच्छा है कि कौरवोंका विनाश हो जाय।

बीज शुद्ध होने पर भी कुसंगके कारण जो बीगड़ता है वह शठ है। जिसका बीज ही दुष्ट है वह खल है। शठ सत्संगसे सुधर सकता है किंतु खल सुधर नहीं पाता।

मंदारमूले वदनाभिरामं बिम्बाधरे पूरितवेणूनादम्।
गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविंद दामोदर माधवेति॥

जिनका मुखारविंद अतिशय मनोहर है, जो बिंब समान लाल अधरों पर बांसुरी रख कर मधुर तान छोड़ रहे हैं, जो कदंब वृक्षके नीचे गायों, गोपों और गोपियोंके मध्य विराजमान हैं अैसे भगवानका "हे गोविंद, हे दामोदर, हे माधव" अैसे संबोधनोंसे सदासर्वदा स्मरण करना चाहिये।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे॥

दशमः स्कंधः (उत्तरार्ध)

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमोनमः ॥

प्रणाम करनेवालोंके दुखहर्ता, श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, गोविंदको बार बार नमस्कार हो।

सभी साधनोंका फल है मनशुद्धि। असके लिअे मनुष्य भात भातके साधन करता है। जगत विकृत नहीं हुआ, मनकी अशुद्धिके कारण ही जगत भी विकृत लगता है। अिस जगमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। ज्ञानीके लिअे यह जगत आनंददायी है और अज्ञानीके लिअे दुःखदायी। ज्ञानीका मन अति शुद्ध होता है और अज्ञानीका मन पशु-सा जड।

कामक्रोधादि विकार मनको अशुद्ध करते हैं। मन निर्विकारी, निर्वासनामय बनेगा तभी शुद्ध होगा। शुद्ध हुआ मन निष्काम बनेगा और तभी ज्ञानका उदय होगा। मनशुद्धिके लिअे योगीजन ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, प्राणायाम आदि करते हैं। किंतु कअी बार अैसा करने पर भी मन पूर्णतः शुद्ध नहीं हो पाता।

जब श्रीकृष्णविरहसे व्याकुल हो कर कृष्णदर्शनके लिअे प्राण छटपटाने लगते हैं तब मन शुद्ध होता है। विरहाग्निमें मनकी मलीनता जल जाती है। साधारण जन तो प्रभुविरह सह लेता है किंतु संतोंके लिअे तो प्रभुविरह असह्य है। उनकी दर्शनातुरता शरीरको जला कर मनको तन्मयकर देती है। तब वे अीश्वरका अनुभव करते हैं।

वैसे तो अीश्वर सर्वत्र हैं। कृष्णविरहमें जलते हुअे व्रजवासी आंसू बहाने लगते हैं। उन्हें वृंदावन स्मशान-सा लगता है।

विरहमें जब जीव बेचैन हो जाता है तब अपने प्रियपात्रकी मधुर छवि उसकी दृष्टिमें तैरने लगती है। संयोगकी अवस्थामें तो वह प्रिय अेक ही दीखाअी देता है जब कि विरहावस्थामें स्थान स्थान पर कअी रूपोंमें वह दीखाअी देता है। वियोगावस्थामें तो जहाँ जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ वहाँ अपना प्रियपात्र दृष्टिगोचर होता है।

गोपीप्रेमकी कथा उद्धवजीके प्रसंगके साथ समाप्त हुअी। गोपियाँ प्रेमलक्षणा भक्तिकी आचार्या हैं। संसारव्यवहार निभाते हुअे भी किस प्रकार प्रभुभक्ति की जा सके वह उन्होंने बतलाया है।

भागवतमें हर चरित्रके अंतमें उसका रहस्य भी निर्देशित है। कंस और कंसकी रानियाँ अस्ति और प्राप्तिकी बातें हमने देख लीं। नीति-अनीतिसे, किसी भी प्रकारके हथकंडे करके धन कमानेवाला व्यक्ति कंस है। जबसे लोगोंने धनको ही सभी सुखोंका आधार माना है और बेंकबेलेंसकी चिंतामें खोअे रहने लगे हैं तभीसे पाप बढ़ता ही जा रहा है, कंस बढ़ते ही जा रहे हैं। पैसा चाहे कुछ सुख दे सकता हो, शांति नहीं दे सकता।

दशम स्कंधके उत्तरार्धमें पचासवे आध्यायमें जरासंधके आक्रमणकी कथा है।

जब तुम पचास वर्षकेके हो जाओगे जरासध-काल तुम्हारी मथुरानगरी-शरीर पर आक्रमण करेगा। जरासंध वृद्धावस्था है। हमारी उत्तरावस्थाः ही जरासंध है जो जरीरके कअी अंगो पर धावा बोल देती है।

पचास वर्ष पूरे होने पर जरासध आता है। जीवनका पूर्वार्ध समाप्त हुआ और अब उत्तरार्ध आया है। वृद्धावस्था शुरु हो रही है। जरासंधके आने पर मथुराका गढ़ टूटने लगता है। आँखोंकी, कानोंकी, हाथ-पांवकी शक्ति क्षीण होती जाती हैं।

चालीसवाँ वर्ष शुरु होते ही प्रवृत्तिमें कटौती करनी शुरु करनी चाहिअे। प्रभुकी सेवाका समय बढ़ाते जाना चाहिअे।

श्रीकृष्णने जरासंघको सत्रह बार पराजित किया तो वह अठारहवीं बार कालयवनको साथ ले कर आया। उसने कालको पहले भेजा।

जब जरासंध-वृद्धावस्था अपने साथ कालयवन-कालको भी ले आता है तब बचना आसान नहीं है। जरासंध और कालयवन अेक साथ आ धमके तो श्रीकृष्णको मथुरा छोड़ कर द्वारिका जाना पड़ा।

द्वारिका अर्थात ब्रह्मविद्या। द्वारिक ब्रह्म यस्या सा ब्रह्मविद्या। अर्थात् श्रीकृष्णने ब्रह्मविद्याका आश्रय लिया।

मथुरा-मानवकाया छोड़ कर ब्रह्मविद्याका आश्रय भगवानको भी लेना पड़ा।

जब वृद्धावस्था अपने साथ कालको भी ले आअे तब द्वारिका-ब्रह्मविद्याका आश्रय ले लो। ब्रह्मविद्या-द्वारिकाके द्वार काल और जरासंधके लिअे खुल नहीं सकते।

ब्रह्मनिष्ठको कामभोग, काल या वृद्धावस्था सता नहीं सकते।

वृद्धावस्थामें बूढा सत्रह बार बीमार होकर बच जाता है किंतु अठारहवीं बार तो काल उसे नहीं छोड़ता।

जरासंधका त्रास अर्थात् जन्ममृत्युका त्रास। जन्म लिया है तो जरा और मृत्युकी व्यथा सहनी ही पड़ेगी।

नरक क्या है?

शंकर स्वामी कहते हैं: यह शरीर ही नरकवास है। जन्म धारण करना ही नरकवास है। किसी भी समय गर्भवास न करना पड़े अैसा प्रयत्न करो।

भगवानकी प्रेरणाके कारण कुछ महापुरुष भगवानके कार्योंके लिअे जन्म लेते हैं वह उत्तम है। किंतु वासनाके बंधनोके कारण जन्म लेना नरकवास है।

जरासंध और कालयवनके धक्के खाते हुअे मथुरा-शरीर छोड़नेकी अपेक्षा समझ-बूझ कर छोड़ना अधिक अच्छा है। प्रवृत्ति हमें छोड दे अिससे पहले ही हम ही उसे क्यो न छोड़ दें?

अपने पति कंसकी मृत्यु हो गअी तो अस्ति और प्राप्ति अपने पिता जरासंधके घर आ गअीं। जरासंधने कंसहत्याकी सारी बात जानी तो उसने मथुरा पर आक्रमण किया। उसके सत्रह आक्रमण श्रीकृष्ण और बलरामने मार हटाअे। जब वह अठारहवीं

बार लड़नेके लिये आया और अपने साथ कालयवनको भी ले आया तो श्रीकृष्णने मथुरात्यागका निश्चय किया। अब तो मैं आनर्तदेश (वर्तमान ओखा प्रदेश)में समुद्र किनारे शांतिसे रहूँगा।

भगवानने विश्वकर्मासे द्वारिकानगरीके निर्माणका आदेश दिया। बड़े बड़े भव्य राजप्रासादोंका निर्माण किया गया। कहते हैं कि ये महल अितने तो विशाल थे कि लोगोंको द्वार ढूंढ़ने पड़ते थे। द्वार कहाँ हैं अैसा बार बार पूछा जानेके कारण ही अिस नगरीका नाम द्वारिका पड़ा। 'का' अर्थात् ब्रह्म। उपनिषदके अनुसार 'क' अक्षर ब्रह्मसूचक है। जहाँ प्रत्येक द्वार पर परमात्माका वास है वह नगरी द्वारिका है।

अिस शरीररुपी नगरीके अिन्द्रियाँ रुपी द्वारों पर परमात्माको स्थान दोगे तो जरासंध और कालयवन तुम्हें सता नहीं सकेंगे। द्वारिकामें ये दोनों धुस ही नहीं सकते। प्रत्येक अिन्द्रियोसे भक्ति करनेवाला जीव कालयवन पर विजय पाता है।

यदि जरासंध तुम्हारा पीछा कर रहा है तो प्रवर्षण पर्वत पर निवास करो। प्रवर्षण पर्वत अर्थात् जहाँ ज्ञान और भक्तिकी मुशलाधार वर्षा हो रही ह वह स्थान। जहाँ कथाश्रवणका लाभ मिले, भक्ति रस की धारा बहती रहे वहाँ जाओ। अिक्यावनवें वर्षमें प्रवर्षण पर्वत पर निवास करो। वहाँ जरासंध सता नहीं पावेगा। श्रीकृष्ण भी जरासंधके त्राससे छूटनेके लिये प्रवर्षण पर्वत पर चले गये थे।

अिक्यावन-बावन वर्षकी वय होते ही गृहस्थाश्रमके लिये तुम पात्र नहीं रहते। तुमने वनमें प्रवेश पा लिया है। अर्थात् घरकी आसक्ति अब छोड़नी है। विलासी लोगोंके बीचमें रह कर विरकत जीवन जीना आसान नहीं है। जहाँ भक्ति और ज्ञानकी सतत वर्षा हो रही हो वैसी पवित्र भूमिमें बस कर ही तुम जरासंधका पीछा छुड़ा सकोगे। भोगभूमिमें भक्ति ठीकसे नहीं हो पाती। सो शहरको छोड़ कर गंगा-सी पवित्र नदीके किनारे बस कर भक्ति करो।

आज नगरोंमें बड़ी भीड़ हो गअी है। पघड़ी ब्राह्मणोंके मस्तकसे उड़ कर मकानोंके उपर बैठ गअी है। यदि ये बूढ़े लोग शहर छोड़ कर नदियोंके किनारे जा बसे तो शहरमें भीड़ कुछ कम होगी और वे लोग वहाँ भक्ति भी अच्छी तरह कर सकेंगे।

जन्ममृत्युकी व्यथा ही तो जरासंध है। संकल्प करो कि अब मुझे न तो पुरुष बनना है और न तो स्त्री। मुझे पुनर्जन्म ही नहीं लेना है। जरासंध-जन्म, जरा, मृत्युके त्राससे छूटनेके लिये प्रतिदिन अिककीस हजार जप नियमित करते रहो। जपके बिना पाप और वासना छूट नहीं पाअेंगे।

कथाश्रवण पापको जला कर मार्गदर्शन देता है। कथा सुन कर जपका, भगवानकी भक्ति करनेका, सत्कर्म करनेका संकल्प करो। कथाश्रवण करनेसे भगवानसे संबंध जुड़ जाअेगा सो ब्रह्मचर्यपालनका, ध्यान-जपका, सेवा-स्मरणका व्रत लो।

अेक बनिया कथाश्रवण करने जाता था। कथाकार महाराजने उससे कहा, तुम कथा तो सुनते हो सो कुछ अच्छा-सा संकल्प करो। सत्य बोलनेका संकल्प करो। तो बनियेने कहा कि वह तो व्यापारी है, सत्य ही बोलेगा तो सारा कारोबार चौपट हो जाअेगा। तो महाराजने कहा, तो किसीकी निंदा न करनेका व्रत लो। बनिया कहने लगा, महाराज, जब तक रातको मैं दो तीन घंटे बातोंमें न गुजारुं, मुझे नींद ही नहीं आती। सो मै यह व्रत भी नहीं ले सकता। महाराज, मै संकल्प करता हूँ कि रोज सुबहमें मेरे सामने रहनेवाले कुम्हारका मुंह देखूँगा।

देखा अिस बनियेका संकल्प! वह हर सुबह कुम्हारका मुंह देख लेता था। अेक दिन वह कुम्हार सुबहमें कुछ जल्दी उठ कर गांवके बाहर मीट्टी लेने चला गया तो बनिया उसका मुंह देख न पाया। वह बनिया अपना नियम निभानेके लिअे उस कुम्हारको ढूंढने निकला।

अब भाग्यकी बात तो देखो कि उस दिन कुम्हार मीट्टी खोद रहा था तो उसके हाथ सोनेसे भरा हुआ अेक घड़ा आ गया। वह उस घड़ेको बाहर निकाल रहा था उसी समय वह बनिया आ पहूँचा। बनियेने कुंम्हारका मुँह देख कर कहा, चलो मैंने देख लिया।

उधर कुम्हारने समझा कि बनियेने सोना भरा घड़ा देख लिया है। यदि वह राजासे कह देगा तो सब कुछ जप्त हो जाअेगा। सो उसने बनियेसे कहा, तूने देखा तो है लेकिन किसीसे कहना मत। मैं तुम्हें आधा भाग देता हूँ। बनियेको सोना मिल गया।

अब बनिया सोचने लगा, मैंने अिस कुम्हारके मुखदर्शनका व्रत लिया तो लक्ष्मीजीका आगमन हुआ। यदि मैंने स्वयं प्रभुके दर्शनका व्रत लिया होता तो कितना अच्छा होता! अैसे क्षुल्लक और मजाकिये संकलपसे अैसा लाभ हुआ तो शुभ संकल्प किया होता तो कितना अच्छा होता।

दो संकलप तो सभीको करने चाहिअे। अेक, पापकर्मोंसे बचनेका और दूसरा, सत्कर्मोंमें ही लगे रहनेका।

अिक्कीस हजार जप करनेको अिसलिअे कहा गया है कि मनुष्य सामान्यतः दिनमें २१,६०० बार सांस लेता है। अर्थात् प्रत्येक श्वासोच्छवासके साथ भगवानका नाम जपते रहना है। अैसा होने पर ही जरासंधके त्राससे बच पाओगे।

कालयवनका नाश तो करना था किंतु श्रीकृष्ण उसे स्वयं मार नहीं सकते थे। कालयवनको ब्रह्माजीने वर दिया था कि यदुवंशका कोअी भी व्यक्ति उसे मार नहीं पाअेगा। तो कालयवनने जब श्रीकृष्णका पीछा किया तो वे भागते-छूपत प्रवर्षण पर्वतकी उस गुफामें जा पहूँचे जहाँ राजा मुचुकुंद तपश्चर्या कर रहे थे। कालयवनने गुस्से से मुचुकुंदको ठोकर मारी। मुचुकुंदकी आँखें खुलीं और उनकी दृष्टि कालयवन पर पड़ते ही वह जल कर भस्म हो गया।

परमात्माके ध्यानमें लगे हुअे व्यक्तिको काल मार नहीं सकता। उल्टे काल स्वयं मर जाता है।

भा. ८९

जब मुचुकुंदने जाना कि श्रीकृष्ण आये हैं तो वे प्रार्थना करने लगे।

जीवको मनुष्यकी देह मिली है किंतु विषयासक्त होनेके कारण वह भगवानके चरणारविंदकी सेवा करता ही नहीं है। मनुष्य कितना प्रमादी है? जीवकी स्थिति तो सर्पके मुँहमें फँसे हुअे मेंढक-सी है। सर्पके मुँहमें फँसा हुआ मेंढक अपनी मृत्युकी तो सोचता ही नहीं है, उल्टे यदि कोअी जंतु निकट आया तो उसे निगल जानेके लिअे जीभ लंबी करता है। मनुष्य भी कालके मुँहमें फँसा है फिर भी उसकी विषयासक्ति मीटती नहीं है।

पचास वर्षकी वय पूरी होते ही समझ लो कि तुम कालके मुँहमें आधे तो जा चूके हो। काल तो हमेशा सावध ही रहता है, जीव ही असावध रहता है। सत्संगके विना ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

मुचुकुंद प्रार्थना कर रहे हैं। नाथ, कृपा कीजिअे कि मेरा मन सांसारिक जड पदार्थोंकी ओर न जाय। मुझे अनन्य भक्ति दीजिअे।

भगवान कहते हैं, मुचुकुंद, अिस जन्ममें तो तुझे अनन्य भक्ति नहीं मिल पाअेगी। तू युवावस्थामें बड़ा कामी और विलासी था। जो कामके हाथो पीटता है उसे कालके हाथो भी पीटना पड़ता है। तुझे अेक जन्म और लेना पड़ेगा। तेरा वह जन्म ब्राह्मण योनिमें होगा और उस जन्ममें तुझे अनन्य भक्ति प्राप्त होगी।

मुचुकुंदने कठोर तपश्चर्या की और क्षत्रिय शरीर छूट गया। अगले जन्ममें वे ब्राह्मण बने। द्वापर युगके क्षत्रिय राजा मुचुकुंद कलियुगमें नरसिंह मेहताका रुप लेकर अवतरित हुअे। वे द्वारिकाधीशके बडे प्यारे थे। भगवानने उनके बावन कार्य परिपूर्ण किअे थे।

मुचुकुंद राजाकी कथा अिस तथ्यकी द्योतक है कि अपनी युवावस्थाको विलासीतामें बीता देनेवालेको मुक्ति मिलना बड़ा दुष्कर है। अैसोको अनन्य भक्ति भी नहीं मिल पाती। सो धीरे धीरे संयमको बढ़ाते जाना चाहिअे और भगवद्‌मय जीवन जीना चाहिअे। प्रभुसे अनन्य भक्तिकी मांग करो। युवानीमें भी सतत अीश्वरस्मरण करो। युवावस्था भी प्रभुभजनमें बीताओ। अैसा करने पर ही अिस जीवनमें अनन्य भक्ति प्राप्त होगी।

मात्र वृद्धावस्था ही में अीश्वरकी सेवा-स्मरण-भजन करनेसे तो अगला जन्म ही सुधर पाअेगा, चालू नहीं।

अब आगे रुक्मिणी हरणका प्रसंग आअेगा।

परमात्मा लक्ष्मीजीके स्वामी हैं। लक्ष्मीजी जीवमात्रकी माता हैं। अतः जीवको तो लक्ष्मीका विवेकपूर्ण उपयोग मात्रका अधिकार है, उपभोगका नहीं। लक्ष्मीके उपभोगका अधिकार तो मात्र नारायण ही को है। उपयोग और उपभोगमें अंतर है। अिन्द्रियोको अनिवार्य वस्तु-विषयोका देना उपयोग हुआ। किंतु अिन्द्रियोंकी विना आवश्यकताके भी विषय देते रहना, उसे बहलाते रहना उपभोग है, स्वेच्छाचार है। अिन्द्रियोके अधीन हो कर विषयोको देते रहना, उपभोग है। धनके दुरुपयोगसे अिहलोक और परलोक दोनो बीगड़ते हैं।

संपत्ति और शक्तिका सदुपयोग करनेवाला देव है और दुरुपयोग करनेवाला दैत्य।

भागवतकी कथा मानवको देव बनानेके हेतु है।

समय, शक्ति और संपत्तिका सदुपयोग करो। मनुष्य अपना बहुत-सा समय संपत्ति और संततिके पीछे गँवा देता है। जीव बहुत-सा समय फेशन और व्यसनमें नष्ट कर देता है। शरीर और संततिको अतिशय व्यथा देना या अतिशय दुलारना अच्छा नहीं है। यदि परमात्माने तुम्हें अधिक दिया है तो सदुपयोग करनेका अधिकतर अुत्तरदायित्व तुम पर है। यदि भगवान अप्रसन्न होंगे तो जीवमात्रकी दुर्गति होगी।

शास्त्रोंने लक्ष्मीके तीन भेद बताये हैं–लक्ष्मी, महालक्ष्मी और अलक्ष्मी।

(१) लक्ष्मी : नीति और अनीति दोनों तरहसे प्राप्त धन साधारण लक्ष्मी है जिसका कुछ सदुपयोग भी होगा और कुछ दुरुपयोग भी।

(२) महालक्ष्मी : धर्मानुसार प्राप्त धन महालक्ष्मी है। श्रमकी मात्रासे अधिक लाभ उठाना, मुनाफा लेना पाप और चोरी है। जीवनमें धन नहीं, धर्म मुख्य है। धर्म ही मृत्युके पश्चात् भी साथ आता है।

धर्मानुसार, श्रमपूर्वक, नीतिसे प्राप्त धन महालक्ष्मी है। अैसा धन हमेशा शुभ कार्योंमें ही खर्च होगा।

(३) अलक्ष्मी : पापाचरण, अनीतिसे प्राप्त धन अलक्ष्मी है। अैसा धन विलासितामें ही वह जाअेगा और जीवको शांति देनेके बदले रुलाता जाअेगा।

मृतात्माके साथ धर्मके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं जाता। नीति, धर्म, सदाचारसे प्राप्त धन ही महालक्ष्मी है जो शांतिदायी भी है।

महालक्ष्मी नारायणको ही प्राप्त हो सकती है, शिशुपालको नहीं। रुक्मिणी-हरणकी कथाका यही तात्पर्य है। रुक्मिणी महालक्ष्मी ही है जो शिशुपालका नहीं, नारायणको ही वरण करती है।

शिशुके ही लालन–पालनमें जिसका धन और समय लगा रहता है वह कामी पुरुष ही शिशुपाल है। जो हमेशा सांसारिक और भौतिक सुखोंके पीछे ही भागता रहता है वही शिशुपाल है।

भगवानने मथुरामें अेक भी विवाह नहीं किया था। उनके सभी विवाह द्वारिकामें ही संपन्न हुअे।

प्रत्येक अिन्द्रियोको वशमें करके, ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति कर लेनेके बाद ही विवाह करो। बिना योगका भोग अपने साथ रोग ले आअेगा। तप न होगा तो भोग शरीरको रोगी बना देगा। सभी अिन्द्रियाँ शरीरके द्वार हैं और कृष्ण सभी अिन्द्रियोंके स्वामी हैं। जीतेन्द्रिय बन कर विवाह करो, अिन्द्रियोंका सेवक बन कर नहीं। अिसी कारणसे तो गृहस्थाश्रमके पूर्व ही ब्रह्मचर्याश्रमका आयोजन किया गया है।

राजा परीक्षित :—महाराज, मैं रुक्मिणी विवाहका प्रसंग विस्तारसे सुनना चाहता हूँ।

शुकदेवजी : राजन्, सुनो।

विदर्भदेशके राजा भीष्मकके पांच पुत्र और अेक कन्या थी। ज्येष्ठ पुत्रका नाम रुक्मी था और कन्याका रुक्मिणी। भागवतने उनकी माताका नाम नहीं बताया है किंतु अन्य ग्रंथोंके अनुसार उनकी माताका नाम शुद्धमति था। जहाँ मति शुद्ध होती है वहीं महालक्ष्मीका आगमन होता है। रुक्मिणी लक्ष्मीका अवतार थी।

भीष्मक राजाकी अिच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह श्रीकृष्णसे किया जाय। किंतु राजाका पुत्र रुक्मी अपनी बहनका विवाह गोपालके साथ नहीं, राजा शिशुपालके साथ करना चाहता था। रुक्मिणीने भाअीकी अिच्छा जानी तो उसे बड़ा दुःख हुआ।

रुक्मीने शिशुपालको बारात लेकर आनेका आमंत्रण दिया। कामी शिशुपाल बारातसहित आ पहूँचा। गणपतिपूजाके समय भी अिस कामीका ध्यान तो रुक्मिणीकी ओर ही लगा हुआ था। उसका ध्यान कन्याके दैहिक सौंदर्यकी ओर था।

जब साधारण जीव विवाह करने जाता है तो कामाधीन होकर जाता है। प्रभु तो गोपाल अर्थात् गो (अिन्द्रियों)को नियंत्रणमें रखनेवाले हैं। भगवान जीतेन्द्रिय बन कर विवाह करने जाते हैं।

शुद्धमतिके अंतःपुरमें अेक सुदेव नामक ब्राह्मण आता-जाता था। रुक्मिणीने उस ब्राह्मणसे कहा, मैं श्रीकृष्णसे विवाह करना चाहती हूँ। सात श्लोकोंमें लिखा हुआ मेरा यह पत्र तुम श्रीकृष्णको पहुँचा दो।

अेकनाथ महाराजने रुक्मिणी स्वयंर पर भाष्य लिखा है। वे कहते हैं कि रुक्मिणी-श्रीकृष्णका विवाह शुद्ध जीव और अीश्वरका विवाह है। भागवतकथाके अंतिम दिनको अिस विवाहकी कथा आती है। जिसे तक्षक नागके दंशसे मरना है क्या वह लौकिक विवाहकी बातें सुनेगा? योगीश्रेष्ठ परमहस शुकदेवजी यह कथा कह रहे हैं। भाषा विवाहकी है जब कि तात्पर्य तो जीवका अीश्वरसे मिलनका है।

श्रीकृष्ण कहते हैं, मुझे सांसारिक सुखोपभोगकी अिच्छा नहीं है। मुझे किसी भी वस्तुकी पेक्षा नहीं है। मैं निरपेक्ष हूँ, मैं निष्काम हू। रुक्मिणी भी तो कहती है कि उसे भी विषसुखकी अिच्छा और अपेक्षा नही है।

रुक्मिणीने अपने पत्रमें लिखा था कि वह निष्काम है और उसके मनमें कोअी विकार-वासना नहीं है। सामान्य कन्या अैसी बात कसे कह पाअेगी? श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनों निष्काम, निर्विकार हैं।

अर्थात् यह प्रसंग लौकिक विवाहका नहीं, आध्यात्मिक मिलनका है। अलौकिक सिद्धांतको समझानेके लिअे लौकिक शब्दावलीका प्रयोग किया गया है। भागवतके श्लोक यही अर्थ बताते हैं। लग्नके पूर्व भी रुक्मिणीने निर्विकारिताकी बात कही थी। लग्नके पश्चात् भगवान उससे कहते हैं, मुझे स्त्रीकी और वंशवृद्धिकी अिच्छा नहीं है। क्या कोअी साधारण पुरुष विवाहके बाद अैसी बात करेगा?

जो व्यक्ति ओश्वरके साथ विवाह करना चाहता है उसे उसके रिश्तेदार बहुत सताते हैं। रुकमी भी अपनी बहनके विवाह भगवानसे होने देनेकी विरुद्ध था। किंतु यदि जीव सद्गुरुकी शरण ले तो बेडा पार हो जाता है। रुक्मिणीने भी सुदेवकी सहाय ली थी।

जो ओश्वरसे मिलना चाहता है उसे अपना जीवन सादा रखना चाहिये। राजकन्या होते हुअे भी रुक्मिणी पार्वतीके दर्शनके लिअे पैदल ही गओी। शु देवजी यह कथा कह रहे हैं। परीक्षितकी अिस अलौकिक विवाहकथामें तन्मयता ही बताती है कि यह विवाह साधारण मनुष्योंका नहीं था।

यदि रुक्मिणी लौकिक सुख चाहती होती तो वहाँ उपस्थित अन्य किसी भी राजाके साथ ब्याह कर सकती थी। किंतु उसने बड़े विवेकसे श्रीकृष्णका वरण किया। जीव जब ओश्वरके साथ विवाहित होता है तब कृतार्थ होता है। रुक्मिणी श्रीकृष्णका विवाह जीव और ओश्वरका मिलन है जो सुदेव-से सद्गुरुकी कृपासे हुआ है।

रुक्मिणी भगवानकी आद्यशक्ति है। संत ही ब्रह्मसंबंध करा सकता है। किसी सुयोग्य सद्गुरुकी मध्यस्थीके विना जीव ओश्वरसे मिल नहीं पाता।

रुक्मिणीका पत्र लेकर सुदेव द्वारिका आया। भोजनादिसे निवृत्त हो कर द्वारिकानाथने सुदेवसे कुशलमंगल पूछा। आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हुआ। क्या सेवा करुं मैं आपकी ?

सुदेवने भगवानको रुक्मिणीका पत्र दिया और कहा :-प्रभु, यह रुक्मिणी अेक सुपात्र कन्या है। वह सुंदरी तो है ही, सद् गुणी, चतुरा और सुशीला भी है। अिसके साथ यदि आपका विवाह होगा तो आपका जीवन सुख-संतोषसे बीतेगा।

श्रीकृष्णने रुक्मिणीका पत्र पढ़ा। अक्षर और भाषासे ही मनुष्यकी परीक्षा हो जाती है। पत्र चाहे विस्तृत न हो, भावार्थ तो पूरा पूरा होना ही चाहिअे उसमें। रुक्मिणीने भी उस छोटे से पत्रमें, मात्र सात श्लोकोंमें मानो गागरमें सागर भर दिया था। दोनोंका सप्तपदी संबध शीघ्र ही जुड़ जाना चाहिअे अैसा सूचीत करनेके लिअे ही सात श्लोक लिखे थे। छ श्लोकोंमें रुक्मिणीने श्रीष्णके छ सद्गुणोंका वर्णन किया। उन श्लोकोंमें अैश्वर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य कूट कूट कर भरा है। जीव यदि दीन बन कर भगवानकी शरणमें जाता, है तो वे उसकी उपेक्षा नहीं करते, उसे अपना लेते हैं। जीवका धर्म भी शरणागति लेना है।

पत्रमें कृष्णको सुंदर-सा संबोधन किया गया था। यह जगत नहीं, जगतका सर्जनहार सुंदर है। संसारमें जो कुछ सुंदरता है वह श्रीकृष्णके सौंदर्यका अंश मात्र है। ससार कार्य है और कृष्ण कारण। सौंदर्यकी कल्पनामेंसे विकारका भी जन्म हो सकता है।

हमेशा यही सोचो कि मनुष्यकी सुंदरता ओश्वरकी सुंदरताके कारण ही है। भागवत सुंदर दृष्टि देता है। 'अहम्' की दृष्टिको बदलना है। जगत जैसा है वैसा ही रहेगा। प्रश्न दृष्टिका है। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

नाथ, आप अतिशय सुंदर हैं। आपके सौंदर्यके साथ साथ आपके सद्‌गुणोंकी कथा भी मैंने महात्माओंसे सुनी है और अिसी कारणसे आपसे विवाह करनेका निश्चय किया है। आपके सद्‌गुणोंने मेरा मन मोह लिया है, मेरा चित्त चोर लिया है। आपके सौंदर्य और सद्‌गुणोंका वर्णन सुन कर मेरा मन निर्लज्ज हो गया है।

बार बार श्रीकृष्ण कथा सुननेवालेका मन श्रीकृष्ण हर लेते हैं। शुकदेवजी जैसे निरपेक्ष वक्ता भी कृष्ण-कथा कहनेकी अिच्छा रखते हैं। यदि कोअी श्रोता नहीं मिल पाता था तो वे वृक्षोंको ही रासपंचाध्यायी सुनाते थे।

नाथ, मैं किसी कामी पुरुषके साथ विवाह करना नहीं चाहती। मैंने अपनी आत्मा आपके चरणोंमें समर्पित कर दी है।

परमात्मा सोचेंगे कि अैसी निर्लज्ज कन्यासे कैसे विवाह किया जाय। सो रुक्मिणीने आगेके श्लोकमें लिखा, नाथ, अिसमें मेरा अपना कोअी दोष नहीं है कि मैं निर्लज्ज हो गअी हूँ। मैं वैसे तो लज्जायुक्त ही थी किंतु आपके सद्‌गुणोंने ही मुझे निर्लज्ज बना दिया है। मेरी निर्लज्जताके दोषी आप ही के सद्‌गुण हैं। आप तो सभीके अंतर्यामी हैं। मैं और लिखूँ तो क्या लिखूँ? मेरी मनोभावनासे आप सुपरि चत हैं।

रुक्मिणी शिशुपालका नामोल्लेख करना चाहती नहीं थी किंतु उसने सोचा कि संभव है कि कृष्ण अैसा सोचेंगे कि यदि हरण करके मुझसे विवाह करेंगे तो उन्हें और तो कुछ मिलेगा ही नहीं। जो कन्या अपने साथ कुछ संपत्ति न लाये उससे विवाह करनेसे क्या लाभ होगा? सो रुक्मिणीने आगेके श्लोकमें लिखा कि वह अपनी निजी संपत्ति श्रीकृष्णको दे देगी। कौन-सी है वह संपत्ति? मैंने हमेशा नियमित सत्कर्म किया हैं। तुलसीकी पूजा किये बिना मैं पानी तक नहीं पीती।

आज तो नारी तुलसीकी पूजा करती हो नहीं है। और यदि कोअी नारी करती भी होगी तो चायपानके बाद। संयम और सदाचारके बिना जीवन कैसे सुधरेगा? सदाचारका अर्थ है शास्त्र संमत, धर्म द्वारा निर्देशीत आचार, स्वेच्छार नहीं।

मैंने कअी व्रत-नियम आदि किये हैं। मैंने गरीबोंको वस्त्र और अन्नदान भी दिये हैं। मैं अपनी पुण्यसंपत्ति साथ ले आअूँगी। मैं अपनी अलौकिक संपत्ति साथ ले आअूँगी। आप मेरा स्वीकार करें।

पतिव्रता, पुण्यशाली नारीका पति कभी दुखी नहीं होता, सुखी ही होता है।

अपनी संपत्तिकी चर्चा करनेके बाद रुक्मिणीने स्वयंको प्राप्त करनेका उपाय भी बताया। मैं प्रतिदिन पार्वतीकी पूजा करनेके लिअे मंदिर जाती हूँ। आप मुझे वहाँसे हर जाना। मुझे विश्वास है कि आप अिस दासीका स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं आपको प्राप्त करनेके लिअे हजारों जन्म लेती रहूँगी। मैं आप निष्काम प्रभुसे ही विवाह करुंगी, अन्य किसी भी पुरुषके साथ नही।

यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसाद
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभि स्यात् ॥

चाहे सौ जन्म क्यों न लेने पडे किंतु मैं वरुंगी तो आप ही से।

रुक्मिणी जैसे अटल निश्चयी को ही परमात्मा मिलते हैं।

यदि आप मेरा स्वीकार नहीं करेंगे तो मै अिस शरीरका त्याग करूँगी। आपके सिवाय अन्य कोअी भी व्यक्ति मेरा पति नहीं हो सकता।

रुकिमणीका पत्र पढकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुअे। सुना है कि उसने मेरे लिअे अन्न और निद्राका भी त्याग किया है। सो मैं उससे अवश्य विवाह करुंगा।

मन और क्रियाको, मन और वचनको अेक बनाओ। वैसी व्यक्ति ही भगवानको पसंद आता है। वे कहते हैं:

मोहे छल छिद्र कपट नहि भावा।

रुकिमणी श्रीकृष्णकी आद्यशक्ति हैं। वह श्रीकृष्णके सिवाय अन्य किसीसे भी विवाह नहीं कर सकतीं।

भगवानने अपने सारथी दारुकसे रथ तैयार करवाया और ब्राह्मण सुदेवको वंदन करके गणपतिका स्मरण किया और रथारुढ हुअे।

घरसे बाहर निकलते समय गणपतिकी अिन शब्दोंमें स्तुति करोगे तो कोअी भी बाधा उपस्थित नहीं होगी।

सुमुखश्चैकदंतश्च कपिलो गजकर्णकः।
लंबोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायक ॥

धुम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचंद्रो गजाननः।
द्वाद्शैतानि नामानि यः पठेच्छृणुचादपिः॥

भगवान जगतको यह बताते हैं कि वे स्वयं भगवान होते हुअे भी मर्यादाका पालन करते हैं। मर्यादाका अनुचित भंग करनेवाला दु.खी होता है। यदि तुम्हें अधिक सुख-सुविधा मिले हैं तो मर्यादाका पालन भी अधिक किया जाना चाहिअे।

भगवानने पहले सुदेवको रथमें बिठलाया। सुपात्र ब्राह्मणका सम्मान करो। साधुसंतोका सम्मान करनेसे लक्ष्मीजी आपके घरमें पधारेंगी।

अेक ही रातमें श्रीकृष्णका रथ विदर्भ नगरीमें आ पहूँचा। लोगोको प्रभुके दर्शनसे बड़ा आनंद हुआ। सभी कहने लगे कि रुकिमणीके योग्य तो यही वर है। दोनों लक्ष्मीनारायण-से शोभायमान होगे।

उधर ब्राह्मण सुदेव हँसता हुआ रुकिमणीके पास पहुँचा। मैं भगवानको ले आया हूँ, उन्होंने तेरा स्वीकार किया है। रुकिमणीने प्रणाम करते हुअे पूछा, क्या सेवा करुं मै आपकी? सुदेवने कहा कि उसको किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। तेरी जय हो।

रुकिमणी भगवानसे मिलानेवाले उस सुदेवकी जन्मजन्मांतरकी ऋणी हो गअी।

अिधर शिशुपाल भी जरासंध आदि राजाओके साथ आ पहूँचा। उसने श्रीकृष्णके आगमनका समाचार सुना तो वह कुछ डर-सा गया। उसने जरासंधसे कहा, यह चोर कहीं मेरी होनेवाली पत्नीकी चोरी कर गया तो? जरासंधने उसे ढाढ़स बँधाते हुअे कहा, हम यहाँ केवल खाने-पीने नहीं आअे हैं। समय आया तो

तेरे लिअे लड़ेंगे भी। रुकमीने भी कहा, मैंने अैसी व्यवस्था की है कि मेरी बहनके निकट कोअी मानवी तो क्या पंछी तक नहीं जा सकता। जब वह पार्वतीके मंदिर जाअेगी तो उसके आगे-पीछे सोलह कन्या और मेरे कअी पहलवान भी साथ होंगे यह सब सुन कर शिशुपालको कुछ शांति हुअी।

उधर रुक्मिणीने स्नान-शृंगारसे निवृत्त होकर तुलसी और मातापिताकी पूजा की। माताने कहा, तेरा विवाह होने जा रहा है सो यही उचित है कि तू पैदल ही पार्वतीके मंदिर पहूँचे। रुक्मिणीने दूसरी बार प्रणाम किया तो माताने तैसा करनेका कारण पूछा। पुत्रीने आशीर्वाद मांगे। पुत्री जानती थी कि वह तो पार्वतीके मंदिरसे सीधे द्वारिका जानेवाली है, घर लौटनी नहीं है।

कअी राजाओने रुक्मिणीके दर्शनकी, माताजीके सौंदर्यको निहारनेकी अिच्छा थी किंतु उन्हें कुछ नहीं दीख पाया।

रुक्मिणी मंदिरमें पूजा तो पार्वतीकी मूर्तिकी कर रही थी किंतु उस मूर्तिमें उसे द्वारिकानाथके ही दर्शन हो रहे थे। क्योंकि उसकी भक्ति अनन्य थी। रुक्मिणीने गणपति और पार्वतीकी पूजा की और प्रार्थना की, मै हमेशा आपकी पूजा करुंगी मेरा श्रीकृष्णसे विवाह हो जाय अैसा कीजिअे। पार्वतीजीने उसे आशीर्वाद दिया।

रुक्मिणी पूजा समाप्त करके मंदिरसे धीरे धीरे नीचे आ रही थी तो कामांध राजागण उसके सौंदर्यकी प्रशंसा करने लगा।

माताजीको तो वंदन करने चाहिअे। रुक्मिणीने सोचा कि वह तो जीव मात्रकी माता है, ये अपने ही बालक उसको कामभावसे निहार रहे हैं। रुक्मिणीने अपनी दृष्टिसे वह तेज प्रगट किया कि सभी कामांध राजा मूर्छित हो गअे। माताजीको जो कामभावसे देखेगा उसका पतन ही होगा।

प्रभुने दारुकसे रथको आगे बढ़ानेगी आज्ञा दी। दूरसे गरुडध्वजको देख कर रुक्मिणी प्रसन्न हो गअी। प्रभुने उसका हाथ पकड़ कर अपने रथमें उसको बिठला दिया और रथ द्वारिकाकी दिशामें दौड़ चला।

धाराशायी राजाओंको जब सुध आअी तो अपने कपड़ोंको झाड़ते हुअे वे खड़े हुअे। अेक कहता था उसे चक्कर आअे थे तो दुसरा कहता था कि तेजके मारे गिर गया था। उन्होने जब जाना कि श्रीकृष्ण रुक्मिणीका हरण कर गअे हैं तो उन्हें साश्चर्य आघात हुआ। क्या अितनी क्षणोंमें वह सुंदरीको ले भागा? हम उससे युद्ध करेंगे।

माता लक्ष्मीको भोगेच्छाकी दृष्टिसे देखनेवालेका पतन ही होता है

शिशुपालको तो रोना-सा आ गया। मेरी नाक कट गअी। जरासंध आदिने कहा, नारीकी भाँति विलाप करनेकी यह घडी नहीं है। हम सबकी नाक कट गअी है। हमें उस गोपालसे युद्ध करना होगा। शिशुपाल, जरासंध, दंतवक्र आदि अपनी सेनाको ले कर श्रीकृष्णका पीछा करने दौड़े।

उधर शाम तक कनैया वापस घर न पहूँचा तो बलरामको चिंता हुअी। पूछताछ करने पर उन्हें सारी बातका पता चला। वह भी कैसा शर्मीला है कि मुझसे बात तक न की? वे तुरंत सेनाको ले कर विदर्भ आ पहूँचे और शिशुपाल, जरासंध आदिकी सेनाको तीतर-बीतर कर दिया। साथ निभानेका वादा करनेवाले राजा भी भाग निकले। शिशुपाल अकेला अपनी किस्मतको रोता रह गया।

शिशुपाल रोता तो रहा किंतु लड़ने नहीं गया। कामी व्यक्ति भीरु ही होता है। उसके पास जरासंध आया और कहने लगा, यदि श्रीकृष्ण अकेला होता तो मैं उसे हरा देता। किंतु बलरामको हराना आसान नहीं है। समय ही हमारे विपरीत है। यदि तू जीवीत रहेगा तो हज़ारों कन्याअें मिल जाअेंगी। अिस बार तो हम भाग चलें।

रुकमी श्रीकृष्णसे लड़ने आया तो उन्होंने उसे अेक खंभेसे बांध दिया। रुकिमणीने प्रार्थना की, मेरे भाअीको मत मारो। बलरामने भी कहा, जो भी हो, अब तो यह तेरा साला है, उसे नहीं मारा जा सकता। उन्होने रुकमीको बंधनमुक्त किया। रुकमा वैसे तो उद्धत था किंतु बहनको प्रसन्न करनेके लिअे उसने बलरामको प्रणाम किया। रुकिमणी आनंदसे सोचने लगी, मेरे जेठजी कितने दयावान हैं। मेरे पापी भाअीको क्षमा कर दिया।

आज तो विवाहके बाद भाअी-भाअी अेक साथ रह नहीं पाते। यदि मन विशाल रखोगे तो झघड़े नहीं होंगे। हमारे देशका आदर्श तो सयुंक्त कुटुंबका ही है। राम-लक्ष्मणादि तथा पांडव भी अेक ही घरमें रहते थे।

कृष्णने उद्धवके साथ गोकुल पत्र भेजा कि यदि नंदबाबा पधारेंगे तभी वह विवाह करेगा। नंदबाबाको आनंद तो हुआ। किंतु उन्होने सोचा कि यह तो यहाँ आता नहीं है और अूपरसे मुझे वहाँ बुला रहा है। मैं द्वारिका नहीं जाअूँगा। उसके विवाहके दिन मैं यहाँ ब्रह्मभोजन करा दूँगा।

श्रीकृष्णने यह बात जानी तो वे स्वयं गोकुल पधारे। मैया, मैं आ गया। मेरे साथ द्वारिका चल। नहीं तो तेरा कनैया अविवाहीत ही रह जाअेगा। नंद-यशोदा, गोपियाँ तथा अन्य सभी ब्रजवासी द्वारिका पधारे।

श्रीकृष्ण और रुकिमणीके दर्शन करके, भगवानका स्मरण करते हुअे गोपियोंने वहाँ देहोत्सर्ग कर दिया। गोपियोंके श्रीअंगकी मीट्टीसे ही गोपीचंदन बना। वहाँ गोपीसरोवर भी है। गोपीचंदनकी महिमा न्यारी है। वहाँ महाप्रभुजीकी बैठक है। वहाँ उन्होने भागवतपाठ किया था।

फिर वहाँ राजा भीष्मक भी आअे। दुर्वासाके शापके कारण कृष्ण रुकिमणीके साथ द्वारिकामें तो रह नहीं सकते थे सो माधवपुरमें विवाहविधि संपन्न हुअी। ब्रह्माने विवाहविधिका मुहूर्त दिया मार्गशीर्ष मासको पंचमी। रुकिमणीको मंडपमें लाअी गअी। ब्राह्मणसमुदाय स्वस्ति वचनोंका उच्चार कर रहे थे।

कस्तुरीतिलक ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्
नासाग्रे वरमौकिकं करतले वेतुः करे कंकणं।

सर्वाङ्गे हरिचंदनं सुललितं कंठे च मुक्तावली
गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते कुर्यात् सदा मंगलम् ॥

मेरे प्रभुके भाल पर कस्तुरीका तिलक है, वक्षःस्थल पर कौस्तुभमणी है, नाकके अग्रभागमें सुंदर मोतीकी बाली है, हथेलीमें बांसुरी है, हाथोंमें कंगन हैं, समग्र शरीर पर हरिचंदनका लेप है, गलेमें मनोहर मोतीमाला है और गोपियोंसे घिरे हुअे हैं। अैसे प्रभु हमेशा सभीका कल्याण करें।

लक्ष्मीनारायणके दर्शनसे यादवोंको परमानंद हुआ। रुक्मिणी महालक्ष्मी हैं और कृष्ण नारायण।

जीव यदि लक्ष्माका लाल बन कर उन्हें नमन करेगा तो वे उसे भगवानकी गोदमें बीठलाअेंगी। यदि लक्ष्मीको माताका स्थान दोगे तो सुखी होगे किंतु स्वामी बननेका प्रयत्न करोगे तो पतनकी गर्तामें गिरना पडेगा। लक्ष्मीका स्वामी जीव नहीं, अीश्वर है। लक्ष्मीको माता स्वरुप मानने ही में कल्याण है।

रुक्मिणीके यहाँ प्रद्युम्नका प्रागट्य हुआ। उसने शंबरासुरका वध किया और रतिके साथ द्वारिका आया। शम्बरासुर कल्याणको ढंकनेवाला लौकिक काम है। प्रद्युम्न अलौकिक काम है। लौकिक कामको अलौकिक कामसे ही नष्ट किया जा सकता है।

जगतके किसी जीवसे नहीं, केवल परमात्मा ही से मिलनेकी आशा और अिच्छा करो। नारायणधाममें जानेकी अिच्छा करो। प्रभुसे मिलन होने पर जीवको अलौकिक आनंद मिलता है। भगवानसे मिलनकी आतुरता जागृत होगी तो लौकिक कामका नाश होगा।

वह रति कौन है? भगवानकी कथाके प्रति रुचि ही रति है। अिस रतिके साथ विवाहित होनेसे जीव प्रभुमिलनके लिअे आतुर हो जाता है।

भगवानने फिर सत्यभामा, जांबवती, यमुनाजीके अंशसे उत्पन्न कालिंदी आदिके साथ भी विवाह किया। भगवानकी आठ पटरानियाँ थीं।

अष्टधा प्रकृति ही आठ पटरानियाँ हैं। अीश्वर अिन सभी प्रकृतियोंके स्वामी हैं। ये प्रकृतियाँ परमात्माकी सेवा करती हैं। गीतामें प्रकृतियोंका वर्णन अिस प्रकार है-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धि रेव च।
अहंकारे इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥

जीव प्रकृतिके अधीन है। अीश्वर प्रकृतिके अधीन नहीं हैं। जीव अष्टधा प्रकृतियोंके वशमें आ जाता है जब कि अीश्वर उनको अपने वशमें करते हैं। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। तुम स्वभावके अधीन होनेके बदले स्वभावको ही अपने अधीन कर लो।

मनुष्य अपने स्वभावके आगे हार जाता है। अपने स्वभावको, प्रकृतिको वशीभूत करनेवाला जीव सुखी हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

वैसे तो प्रकृति और प्राण साथ साथ ही जाते हैं। फिर भी यदि जपध्यान, सेवा-स्मरण, सत्संग, सत्कर्म किया जाय, सद्ग्रंथोंका अध्ययन किया जाय तो स्वभाव सुधर सकता है। सत्संगका अर्थ है कृष्णभक्तोंका, साधु-संतोंका और सद्ग्रंथोंका संग।

अक्रूरजी वंदन भक्तिके आचार्य थे फिर भी कुसंगने उनकी बुद्धि विकृत कर दी सो उन्होंने सत्राजीतकी हत्या करनेके लिअे शतधन्वाको उकसाया।

सत्संग और भक्ति दोनोंको अेक-दूजेकी आवश्यकता है। सत्संग करनेवाला यदि परमात्माका भजन न करेगा तो उसका सत्संग निरर्थक ही रहेगा। पथ्थर नर्मदाजीमें हमेशा स्नान करता रहता है फिर भी वह पथ्थर ही बना रहता है। अिसी प्रकार कअी मनुष्य कथाश्रवण तो करते हैं किंतु भक्तिमय न हो पानेके कारण उनका जीवन सुधर नहीं पाता है।

पहले अपने मनको सुधारो और फिर जगतको सुधारने निकलो।

अपने चारित्र्यसे यदि अपनी आत्माको संतोष मिले तभी मानो कि तुम्हारा स्वभाव सुधरा है।

कथाश्रवण करने पर श्रीकृष्णके प्रति प्रेम न जागे, पापकी ओर घृणा न जागे, धर्मकी ओर अभिमुखता न हो पाअे तो मान लो कि तुमने कथा सुनी ही नहीं है।

कथा कहती है, पापकर्मोंका त्याग करो और प्रभुसे प्रेम बढ़ाओ। कथा सुन कर भगवानसे विवाह कर लो। अपनी वृद्धावस्थामें, उत्तरावस्थामें अेक मात्र भगवानसे ही संबंध बनाअे रखो। तुलसीविवाहका यही रहस्य है।

अेक अध्यायमें कहा गया है कि प्रभुने सोलह हज़ार युवतियोंके साथ विवाह किया। भौमासुरने सोलह हज़ार कन्याओंको बंदी बना रखा था। ये सोलह हज़ार कन्याओंको बंदी बना रखा था। ये सोलह हज़ार कन्याअें तो वेदोंकी ऋचाअें हैं। वेदके तीन कांड और लाख मंत्र हैं।

१ कर्मकांड : अिसके अस्सी हज़ार मंत्र हैं जो ब्रह्मचारीके लिअे हैं।

२ उपासनाकांड : अिसके सोलह हजार मंत्र हैं जो गृहस्थके लिअे हैं।

३ ज्ञानकांड : अिसके चार हज़ार मंत्र हैं जो वानप्रस्थके लिअे हैं।

वेदांतका ज्ञान विरक्तके लिअे है, विलासीके लिअे नहीं। विलासी उपनिषद्का' तत्त्वज्ञान समझ नहीं पाता।

भागवत तो सभीके लिअे है।

वेदोंने अीश्वरके स्वरुपका वर्णन तो अधिक किया किंतु उनको पा न सके। सो वेदोंकी ऋचा कन्या बन कर श्रीकृष्णसे विवाह करने आअीं। वेदोंके मंत्र केवल शब्द रुप नहीं हैं। प्रत्येक मंत्र ऋषि है, देव है। वेदमंत्रके देव, तपश्चर्या करके थक-हार गअे फिर भी ब्रह्मसंबंध नहीं हो पाया। सो वे कन्याका रुप लेकर आअे। वेदकी ऋचाअें कन्या बन कर प्रभुसेवा करने आअीं। गृहस्थाश्रमधर्मका वर्णन वेदके सोलह हज़ार मंत्रोंमें किया गया है सो श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ कही गअी हैं।

सोलह हज़ार कन्याओंको मुक्त तो किया किंतु वे सब भौमासुरके कारागृहमें बंद थीं सो जगतका कोअी पुरुष उनसे विवाह करनेके लिअे तैयार नहीं हुआ। वे सभी कन्या श्रीकृष्णके शरणमें आअीं। भगवानने सोचा कि रामावतार में मर्यादाका अत्यधिक पालन किया था अब अिस कृष्णावतारमें वैसा नहीं करना है। सो उन्होंने उन सभी कन्याओंके साथ विवाह कर लिया।

वेदमंत्रोंको भौमासुरने कारागृहमें रखा था। भौमका अर्थ है शरीर। शारीरिक सुखमें ही रमा रहे वह है भौमासुर। विलासी जीव ही भौमासुर है।

विलासी भौमासुरने उन राजकन्याओंको बंदी बनाया था। अर्थात् अनधिकारी कामी व्यक्तिने मंत्रोंका अनर्थ किया था। कामी व्यक्ति मंत्रका अपने विलासी मतकी पुष्टिके लिअे विकृत अर्थ करता है। वैसे व्यक्ति मंत्रोका दूरुपयोग करते हैं।

विलासी कहता है कि भगवानने गीतामें मौज उड़ानेको कहा है। सो हम मौज क्यो न उड़ाअें? वैसे लोग 'सिद्धिभवति कर्मणा' वाले श्लोकका हवाला देते हैं। अिस श्लोकका सही अर्थ यह है कि कर्मोंसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। जब कि विलासी लोग और ही अर्थ करते हैं। वास्तवमें तो यह श्लोक अनासक्तिका उपदेश देता है।

सर्वस्य चाहम् का कुछ लोग अर्थ करते हैं कि मैं सभीमें चायके रुपमें हूँ। चाय मिले तो स्मृति अन्यथा अपोहन अर्थात् विस्मृति। गीताके श्लोकोंका अैसा विकृत अर्थ करनेवाले भी हैं।

वेदका तात्पर्य भोगमें नहीं, त्यागमें है। वेदको भोग नहीं, त्याग ही अिष्ट है। वेदोंका तात्पर्य भोगपरक नहीं, निवृत्तिपरक है। प्रवृत्तियोंको अेक साथ और हमेशाके लिअे छोड़ा तो नहीं जा सकता। किंतु जो कुछ भी करो, धर्मकी मर्यादामें रह कर करो। धर्मकी मर्यादामें रह कर ही अर्थोपार्जन और कामोपभोग करो।

वेदका कहना है कि भोगोंको धीरे धीरे कम करते जाओ, संयमको बढ़ाते चलो।

वेदोने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोकी चर्चा की है किंतु उसका निर्देश निवृत्तिका ही है।

भोगोपभोगकी आदत जीवको अनेक जन्मोंके संस्कारोके कारण है। अैसे संस्कार जल्दी छूट नहीं पाते। अिसीलिअे वेदोंने धीरे धीरे निवृत्ति बढ़ानेका आदेश दिया है। वैसे तो वेदोंमें सुरापानकी भी चर्चा है। किंतु अिसका अर्थ यह नहीं है कि वेद सुरापानका आदेश देते हैं। यह मनुष्य ही है जो मनघडंत अर्थ उपजा लेता है।

गीतामें प्रधानतः अनासक्तिका ही अुपदेश है फिर भी लोग अपना अपना अर्थ बताते रहते हैं। कोअी गीताको कर्मप्रधान बताता है, कोअी भक्तिप्रधान बताता है तो कोअी ज्ञानप्रधान। वैसे तो गीतामें तीनोंका प्राधान्य है।

शंकराचार्यने कहा है कि चित्तशुद्धिके लिअे कर्म आवश्यक है। चित्तकी अेकाग्रताके लिअे उपासना आवश्यक है। भक्तिपूर्वक कर्म करनेसे चित्त अेकाग्र होगा। भक्ति, उपासना मनको अेकाग्र करती है। अीश्वरमें मन अेकाग्र होगा तो ज्ञान अवश्य मिलेगा। ज्ञान परमात्माका अनुभव कराता है।

गीतामें कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनोंका समन्वय है।

गीताके प्रथम छ अध्याय भक्तियोगके हैं तथा तेरहवेंसे अठारहवें अध्यायमें ज्ञानयोग है।

भक्ति, कर्म और वैराग्यमें से कौन प्रधान है और कौन गौण? सभी तो प्रधान हैं। जीवनमें तीनोकी समान आवश्यकता है। गीता केवल कर्मपरक नहीं हैं।

विलासी तो वेद और गीता सभीमेंसे विलासी कर्मपरक अर्थ निकालेगा।

भगवानके विवाहोंके वर्णनके बाद भगवानकी अनासक्ति भी बतायी गयी है।

स्नेह सभीसे करो किंतु किसीमें भी आसक्त न बनो, वासनाके अधीन न हो जाओ।

अेक बार ग्रीष्म ऋतुमें रुक्मिणी श्रीकृष्णकी सेवा कर रही थी। वह सोच रही थी कि वह सबसे अधिक सुंदर है अतः श्रीकृष्ण उसीमें आसक्त हैं, उसीके अधीन हैं। सेवाके समय मन सेव्य (श्रीकृष्ण) में ही लगा रहना चाहिअे। रुक्मिणी सेवा तो कृष्णकी कर रही थी किंतु उसका मन अपने सौंदर्यके विचारमें फँसा हुआ था। अपने सौंदर्यके लिअे उसके मनमें अभिमान आया सो सेवामें क्षति हो गअी।

भगवान जान गअे कि रुक्मिणीके मनमें उसके सौंदर्य और शृंगारके लिअे आसक्ति और अभिमान है। तो उन्होंने उसके अभिमानको नष्ट करना चाहा। वे रुक्मिणीसे कहने लगे, देवी! तुझ जैसी सौंदर्यवतीकी योग्य प्रशंसा और कद्र तो कोअी सम्राट ही कर सकता है, मुझ जैसा गोपाल नहीं। किसी साधुसंतोंने मेरे विषयमें तुझे चकमा दिया। तू राजकन्या है और मैं गोपाल। तू गोरी है, मैं श्याम। हमारा युगल बेमेल है। राजाओंको छोड़ कर मुझसे क्यों विवाह किया? मैं तुझे कौन-सा सुख दूँगा? मैं तो निरपेक्ष और उदासीन हूँ। मुझे नारीके सौंदर्य या सुवर्णकी द्वारिकासे कोअी लगाव नहीं है। मुझे तो अेकांत ही बड़ा प्रिय है। अब भी कुछ बीगड़ा नहीं है। मुझे छोड़ कर किसी सम्राटसे विवाह करके सुख प्राप्त कर ले।

रुक्मिणीने भगवानके ये वचन सुने तो वह घबड़ा गअी। मेरा त्याग न करो मेरे नाथ। उसे मूर्छा आ गअी। श्रीकृष्णने उसे पलंग पर सुलाते हुअे कहा, देवी, मैं तो मजाक कर रहा था। तू तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है।

रुक्मिणी जान गअी कि उसके अभिमानको नष्ट करनेके हेतु ही प्रभुने वह सब कुछ कहा था। मैं मानती थी कि वे मुझमें आसक्त होंगे किंतु ये तो उदासीन हैं। भगवान, यह सच ह कि हमारा युगल बेमेल है। कहाँ आप हैं और कहाँ मैं? ज्ञानीजन आपका भजन करते हैं और मूर्ख मेरा। ज्ञानीजन आपको ढूंढते हैं और मूर्ख मुझे।

मेरे स्वामी, आजसे मैं आपके घरमें महाराणी नहीं, दासी बन कर रहूँगी। आपकी यह बड़ी कृपा है कि मुझे आपने अपनी दासी बनाया है। संसारके जीव तो कालके अधीन हैं। उसके साथ क्यों विवाह किया जाय? मैं तो आपके चरणोंकी सेवा करनेका अवसर पाकर धन्य हो गअी हूँ। मैंने लौकिक और भौतिक सुखकी अिच्छासे विवाह नहीं किया है। आजसे मैं आपकी महाराणी नहीं, दासी हूँ।

रुक्मिणीमें नम्रता आअी। जब वह मानिनी थी तब भगवानने कहा था, मैं तेरे योग्य नहीं हूँ। अब अभिमान निर्मूल हो गया तो रुक्मिणी भगवानसे कहने लगी, मैं आपके योग्य नहीं हूँ। मैं रानी नहीं, दासी हूँ। जब वह नम्र हो गअी तो प्रभु उसका सम्मान करने लगे।

जीव जब हर प्रकारसे नम्र बन कर भगवानकी शरणमें जाता है तब भगवान उसे आदरसे अपना लेते हैं।

अिस अध्यायका भाव दिव्य है। स्त्री नहीं, स्त्रीकी आसक्ति बाधक है। पतिपत्नीको अेक साथ रह कर परस्पर प्रेम तो करना ही चाहिअे किंतु आसक्ति नहीं होनी चाहिअे। शुद्ध प्रेममें विकार वासनाका अभाव होता है। सेवा करते समय आँख और मनको सेव्य ही में पिरोअे रखो। जो आत्माके सिवाय अन्य किसी स्थान पर या अन्य किसी वस्तुमें आनंद ढूंढ़ता है वह सुखी नहीं हो सकता।

भगवानने जिस अनासक्तिका गीतामें उपदेश दिया है उसे अपने जीवनमें भी पूर्णतः चरितार्थ किया था। श्रीकृष्ण भोगी होने पर भी त्यागी हैं। अनासक्तिपूर्वक किया गया उपभोग बाधक नहीं है। भगवानको किसीमें भी आसक्ति नहीं है। जब उनकी १६,१०८ रानियाँ थीं और सुवर्ण द्वारिका भी थी उस समय उनकी जो मनोस्थिति थी वही मनोस्थिति द्वारिकाके नष्ट होने पर भी बनी रही। उस समय भी वे उद्धवसे कहते हैं, उद्धव ! यह जगत असत्य है। सत्य तो केवल ब्रह्म ही है। यही अनासक्ति योग है।

केवल कृष्ण ही सत्य है।

राजा परीक्षितने उषा और अनिरुद्धके विवाहकी बात सुननेकी अिच्छा प्रगट की।

शुकदेवजी वर्णन करने लगे।

महान शिवभक्त राजा बाणासुरकी उषा नामकी अेक सुंदर पुत्री थी। उषाको स्वप्नमें अनिरुद्धके दर्शन हुअे और उसने स्वप्नमें विवाह भी कर लिया। जब वह जागृत हुअी तो नाथको पुकारने लगी। उसकी सखी चित्रलेखाने सारी बात जान कर कहा, सखी, तू चिंता न करना। हम उस पुरुषको कहीं से भी ले आअेंगे। चित्रलेखाने कअी पुरुषोंके चित्र बना बना कर उषाको दीखाअे किंतु उसका प्रेमी नहीं निकला। किंतु जब चित्रलेखाने अनिरुद्धका चित्र बनाया तो उषा लजा गअी। अब चित्रलेखाने जान लिया कि अनिरुद्ध ही अपनी सखीका प्रियतम है।

चित्रलेखा अनिरुद्धका हरण करनेके लिअे द्वारिका आअी। किंतु वहाँ तो सुदर्शन चक्र चौकी कर रहा था। वह सोचने लगी कि क्या किया जाय। अितनेमें वहाँ नारदजी आ पहुँचे। तो चित्रलेखाने उनसे कहा, महाराज, आप तो साधु हैं। दूसरोंकी साधना पूर्ण करे वही साधु है। मैं चोरी करने जा रही हूँ, आप भी मेरे साथ चलिअे।

नारदजीके पूछने पर चित्रलेखाने बताया कि वह अनिरुद्धकी चोरी करने जा रही है।

चोरी करो किंतु चोरी अनिरुद्धकी करो। अनिरुद्ध मनके स्वामी हैं। चित्रलेखा है चित्रविचित्र संकल्प करनेवाली बुद्धि। अनिरुद्ध मनका स्वरुप है। बुद्धि–चित्रलेखा मन–अनिरुद्धको हरने जा रही है। किंतु उसे सफलता तभी मिलती है जब नारद अर्थात ब्रह्मचर्यसे सहाय मिले। बुद्धि मनसे पर है। यदि ब्रह्मचर्यका साथ हो तो वह मनको नियंत्रित कर सकती है। यदि ब्रह्मचर्य–संयमका पालन करोगे तो मन वश हो पाअेगा।

नारदजीने सुदर्शनसे बातें करना चाहा तो उसने कहा कि उसे समय नहीं है, सारे नगरकी चौकी जो करनी है। नारदजीने कहा, यह तो ठीक है किंतु तुझे सत्संग भी तो करना चाहिअे। तू किसकी रक्षा करेगा? रक्षक तो हैं श्रीकृष्ण। तू अज्ञानी है। सत्संगसे ही तेरा अज्ञान मीट सकता है।

अिस प्रकार नारदजीने सुदर्शनको बातोंमें उलझाया तो उधर चित्रलेखाने अवसर पाकर अनिरुद्धके आवासमें प्रवेश किया। अपनी योगविद्याके बलसे वह अनिरुद्धको पलंग सहित उडा ले चली। किंतु उसकी अेक पुष्पमाला नीचे गिरी जो सीधी सुदर्शन पर ही जा पड़ी। सुदर्शनने उपर देखा तो विभान जा रहा था। उसने नारदजीसे पूछा, अरे यह क्या? कुछ चोरी तो नहीं चला गया?

नारदजी :–तुझे तो अैसे निरर्थक विचार ही आते रहते हैं। मुझे कथा करनेमें कोअी आपत्ति नहीं है किंतु अपने स्वामीकी आज्ञाके विना सत्संग करना ठीक नहीं है। हो सकता है कुछ चोरी हुअी भी हो। तू जा कर देख। हां, मेरा नाम मत लेना। नारायण, नारायण और अिस प्रकार नारदजी वहांसे चल पड़े।

प्रातःकालमें जब अनिरुद्धकी आँखें खुलीं तो उसने अपरिचित आवास देखा।

अिधर द्वारिकामें भी गडबड़ मच गअी। श्रीकृष्णने सुदर्शनको बुला कर आड़े हाथों लिया। उसने कहा, मैं नारदजीके साथ सत्संग कर रहा था उसी समय अनिरुद्धको कोअी उढा ले गया होगा। भगवानने कहा, तेरा काम चौकी करनेका था या सत्संग करनेका?

जब तक नारदजी–ब्रह्मचर्यका साथ न हो बुद्धि–चित्रलेखा अनिरुद्ध–मनका हरण नहीं कर सकती।

चित्रलेखा अनिरुद्धको उषाके आवासमें ले आअी। बाणासुरने सारी बात जानी तो उसने अनिरुद्धको कारागृहमें बंद कर दिया। कृष्णने सारी बात जानी तो वे सेना लेकर शोणितपुर आ पहूँचे।

बाणासुर शिवजीका सेवक था सो श्रीकृष्णने उसका वध तो नहीं किया किंतु उसे सहस्रबाहुके स्थान पर चतुर्भुज बना दिया।

उषा–अनिरुद्धका विवाह हो गया।

सकाम कर्म पापोंका नाश नहीं करता - केवल प्रभुके हेतु किया गया सत्कर्म ही पापोंका नाश कर सकता है।

नृगराजाने सत्कर्म तो किअे थे किंतु सकाम किअे थे सो उसके पापोंका नाश नहीं हो पाया। ब्राह्मणको दान की गअी गायका उसने फिर दान किया सो उसे कांचीडाका अवतार लेना पड़ा। प्रभुने उसका उद्धार किया।

दान की गअी वस्तु वापस नहीं ली जा सकती। देवधनका उपयोग विलासके हेतु नहीं किया जाय।

आनंद रामायणमें अेक प्रसंग है। रामचंद्रने सुना कि अेक कुत्ता रो रहा है तो उन्होंने लक्ष्मणसे कारण जाननेकी आज्ञा की। लक्ष्मणने कुत्तेको बुला कर रोनेका

कारण पूछा। उसने कहा कि उसे अेक संन्यासीने पथ्थर मारा है। उस संन्यासीको बुला कर कूत्तेको मारनेका कारण पूछा गया।

संन्यासी : मैं भिक्षा ले कर जा रहा था तो अिस कूत्तेने मेरा पीछा किया। मैंने सोचा कि वह मुझे छू लेगा तो मैं दुषित हो जाअूँगा। सो मैंने उसे दूर भगानेके लिअे पथ्थर मारा।

रामचंद्रजी :–तुमने संन्यास लेनेमें कुछ अधिक शीघ्रता कर दी है। कूत्ता तो पशु है। तुम मनसे संन्यासी नहीं हो पाअे हो। यह कूत्ता जो भी दंड देगा वह तुम्हे भुगतना ड़ेगा।

कूत्तेसे दड देनेको कहा गया तो उसने कहा :–प्रभु, अिस संन्यासीको लाखोंकी आयवाले मंदिरका महंत बनाया जाय।

सभी सोचने लगे कि कूत्ता दंड दे रहा है या पुरस्कार।

कूत्तेने स्पष्टता की :–गत जन्ममें मैं अेक बड़े मंदिरका महंत था। मैंने देवधनका उपयोग विलासके लिया किया सो मुझे अिस अवतारमें कूत्ता बनना पडा और पथ्थरकी मार भी खानी पड़ी है।

देवधन, संनिष्ठ ब्राह्मणोंका, संतोंका धन हडपनेका प्रयत्न कभी न करना। सच्चा ब्राह्मण प्रभुको प्रिय होता है, उसका अपमान न किया जाय। आज तो यदुवंशी ही संतोंका अपमान करता है।

बलरामने वनमें द्विविद वानर, पौंड्रक तथा काशीराजका वध किया।

शुकदेवजीने दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाका शांबसे विवाहका प्रसंग भी कह सुनाया।

नारदजीके परिहासका प्रसंग भी सुनाया।

ब्रह्मचारीको चाहिअे कि वह गृहस्थका संसार देखनेकी अिच्छा न करे। किंतु नारदजीको श्रीकृष्णका संसार देखनेकी अिच्छा हुअी। श्रीकृष्ण १६,१०८ रानियोंके साथ किस प्रकार व्यवहार निभाते होंगे? वे किसके साथ ? ब भोजन करते होंगे, बातें करते होंगे, विहार करते होंगे? वे द्वारिका आकर कृष्णके आवासमें प्रविष्ट हुअे। उस समय श्रीकृष्ण रुक्मणीके पास थे। उन्होंने नारदजीका स्वागत किया।

श्रीकृष्ण नारदजीके आगमनका कारण तो जान गअे थे फिर भी पूछा :–कहिअे महाराज, क्यो आगमन हुआ है आपका?

स्वयं प्रभु होते हुअे भी संन्यासी नारदके उन्होने पाँव पखारे। श्रीकृष्ण-सा गृहस्थ और संन्यासी आज तक दूसरा कोअी नहीं हुआ है। उन्होने अपना गृहस्थधर्म निभानेके हेतु नारदजीकी पूजा की।

वहाँसे नारजी भगवानके दूसरे आवासमें गअे। वहाँ उन्होने देखा कि श्रीकृष्ण उद्धवजीके साथ शतरंज खेल रहे हैं। यहाँ भी श्रीकृष्णने उनका भलीभाँति स्वागत किया।

अिस प्रकार नारदजी अेकके बाद अेक आवासमें गअे। तो उन्होने पाया कि कहीं पर कृष्ण बालकोसे खेल रहे हैं तो कहीं पर भोजन कर रहे हैं, कहीं पर सोअे हुअे हैं तो कहीं पर जप कर रहे हैं। अेक आवासमें वे कथा सुनते हुअे पाअे गअे।

जिस प्रकार घरको प्रति दिन झाड़-बुहार कर साफ करनेकी जरुरत है उसी प्रकार प्रति दिन सत्संगसे मनको शुद्ध करनेकी भी आवश्यकता है।

नारदजी जहाँ भी जाते थे श्रीकृष्णको घरगृहस्थीके काममें लगे हुअे पाते थे। अब तो वे चलते-चलते थक गअे। वे सोचने लगे कि अब तो किसी आवासमें जलपान करनेको मिले तो अच्छा हो।

जिस किसी आवासमें वे जाते थे, कृष्ण उनसे पूछते थे कि कब आअे हैं। कअी घंटोसे वे घूम रहे थे फिर भी कहना पड़ता था, बस अभी आया हूँ।

यह तो महा योगेश्वरकी माया थी। भगवानने कहा, नारदजी, मैं तेरी पूजा करता हूँ अिसका अर्थ यह नहीं है कि तू मुझसे बढ़ कर है। मैं तो गृहस्थधर्मके पालनके लिअे ही तेरी पूजा कर रहा हूँ। वैसे तो तू मेरा पौत्र है क्यों कि तेरा पिता ब्रह्मा मेरा पुत्र है। मेरा वैभव देख कर तुझे तो आनंद होना चाहिअे था।

नारदजीने भगवानसे क्षमाप्रार्थना की।

भगवान गृहस्थके सामने आदर्श रखते हैं कि सच्चे संतोका, पवित्र ब्राह्मणोका आदर करो।

अिस प्रसंगसे अेक उपदेश यह भी मिलता है कि ब्रह्मचारीको गृहस्थके जीवनमें चंचुपात न करना चाहिअे। शरीरसे ब्रह्मचर्यका पालन सरल है किंतु दृष्टि और मनसे ब्रह्मचर्यका पालन करना बड़ा कठिन है। गृहस्थके जीवन व्यापारका विचार करनेसे ब्रह्मचर्यभंगकी संभावना है।

सत्तरवें अध्यायमें भगवानकी दिनचर्याका वर्णन है। वे ब्राह्ममुहूर्तमें ही शैय्या-त्याग करते थे। स्नानादिसे निवृत्त हो कर त्रिकाल संध्या, गायत्रीजप, दान आदि करते थे और फिर व्यावहारिक कामकाज करते थे।

द्वारिकामें आज भी ठाकोरजी दो बार संध्या करते हैं। वे संध्योपासना, माता-पिताकी पूजा, गरीबो और पवित्र ब्राह्मणोंको दान आदि भी करते थे। गायकी सेवा भी करते थे।

गृहस्थको चाहिअे कि वह प्रतिदिन संध्यापूजा, गाय और गरीबोकी सेवा आदि करे।

अेक बार नारजीने भगवानसे विनति की कि जरासंध द्वारा बंदी बनाअे गअे राजाओको मुक्त करो। उसी समय युधिष्ठिरकी ओरसे आमंत्रण आया कि राजसूय यज्ञमें पधारिअे। भगवान सोचने लगे कि पहले कौनसा काम किया जाय। नारदजीने कहा कि वे प्रथम यज्ञमें ही जायँ।

राजसूय यज्ञके समय भीमने दुर्योधनका अपमान किया कि अंधके पुत्र अंध ही होते हैं। अिस कर्कशवाणीने कलहका प्रारंभ किया जिसकी अंतिम परिणति महाभारतके दारुण युद्धमें हुअी।

पांडवोंने वनवासका समय गुजरातमें बीताया था। संखेडाके निकट पंचेश्वर महादेवके पास वे रहे थे। वर्तमान धोलका शहर ही प्राचीन विराटनगरी था।

राजसूय यज्ञके निमित्त योद्धाओका नाश हो गया किंतु अेक जरासंध शेष रह गया। वह महान शिवभक्त था सो उसे जीतना आसान नहीं था। तो भगवानने युक्ति की। वे स्वयं अर्जुन और भीमके साथ ब्राह्मणका वेश धारण करके जरासंधके पास गये।

जरासंध ब्राह्मणोको भोजन कराअे विना स्वयं भोजन महीं करता था। सो उसने अिन ब्राह्मणोंसे दान मांगनेको कहा। श्रीकृष्णने भीमको बताते हुअे कहा कि मेरे अिस शिष्यसे द्वंद्वयुद्ध करो।

सत्ताअीस दिन हो गये लड़ते लड़ते, किंतु जरासंध मरता ही नहीं था। भीम श्रीकृष्णसे कहने लगा: आप दोनो तो खा-पीकर मौज मना रहे हैं और अिधर लड़ते-लड़ते मेरा शरीर चूर हो रहा है।

श्रीकृष्ण:-जरासंध मर नहीं पाता हैं क्यो कि लड़ते समय तू मेरी ओर दृष्टि ही नहीं करता है। लड़ते समय मेरी ओर देखना, मैं जो युक्ति बताअूँगा वैसा करनेसे वह मर जाअेगा।

अर्जुन जीवात्मा है।

भीम प्राण है।

श्रीकृष्ण परमात्मा हैं।

वृद्धावस्थामें प्राण व्याकुल हो जाता है। जरावस्थामें प्राण यदि श्रीकृष्णकी ओर दृष्टि करे तो वह भी भीमकी भांति जराको मार सकता है।

प्राण यदि परमात्माके सम्मुख हो पाय, प्रतिश्वास उन्हींका स्मरण करे तो जरासंध मर सकता है। जन्म-मृत्युकी पीडा ही जरासंध है।

जरासंधका वध कराके प्रभुने सभी राजाओंको मुक्त किया।

राजसूय यज्ञके आरंभमें श्रीकृष्णकी पूजा सर्वप्रथम की गअी तो शिशुपाल अीर्षासे जल उठा। वह श्रीकृष्णके लिअे अपशब्द बोलने लगा तो भगवानने सुदर्शन चक्रसे उसका मस्तकछेदन करके उसका उद्धार किया। सभीको आनंद हुआ किंतु दुर्योधन अकड़ गया। अैसे व्यक्तिका भी नाश शीघ्र हो जाता है।

शिशुपाल अर्थात् क्रोध। भगवानने शिशुपाल-क्रोधका सुदर्शनचक्र-ज्ञानसे नाश किया। क्रोधको मीटानेका उपाय ज्ञान ही है।

दुर्योधनने कपटसे पांडवोंको द्युतमें हराया। पांडवोने विराटनगरीमें अज्ञातवास किया। वनवास समाप्त होने पर पांडव-कौरवोंके युद्धका प्रसंग आया।

बलरामने सोचा कि उन्हें भी किसी अेकके पक्षमें रह कर लड़ना पड़ेगा। सो वे तीर्थयात्रा करने निकल पडे।

घरमें जब भी मतभेद मन दुखका प्रसंग उपस्थित हो जाय, तीर्थयात्रा करने चले जाओ।

शुकदेवजीने बलरामकी तीर्थयात्राका भी बड़ा अच्छा वर्णन किया है।

शुकदेवजीने सुदामाचरित्र भी सुनाया। यह चरित्र भागवतका अेक महत्वपूर्ण अंश है।

भागवतकी कथा करते हुअे शुकदेवजी दो बार समाधिस्थ हो गअे थे। उस समय अन्य ऋषियोंने वेदमंत्रोच्चारसे उनको सचेत किया था।

शुकदेवजीकी समाधिके वे दो प्रसंग अिस प्रकार थे।

(१) श्रीकृष्णने गोपबाल, गाय, बछड़ों आदिका रुप ले कर ब्रह्याको अपनी मायाका दर्शन कराया था अुस प्रसंगके वर्णनके समय।

(२) सुदामाचरित्रके कथनके समय।

राजा परीक्षित सुदामाचरित्रके आरंभके समय शुकदेवजीसे कहते हैं:-अिस कृष्णकथाको सुनते हुअे तृप्ति ही नहीं हो पा रही है।

वही वाणी धन्य है जो भगवानका गुणवर्णन करती है। वही हाथ सच्चा हाथ है जो भगवानकी सेवा करता है। वही मन सच्चा मन है जो स्थावर-जंगम सभीमें व्याप्त प्रभुका स्मरण करता है। वही कान सच्चे कान हैं जो भगवानकी पवित्र कथाका श्रवण करते हैं।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

पोरबंदरवासी महाज्ञानी, जीतेन्द्रिय, निष्किचन और पवित्र ब्राह्मण सुदामा श्रीकृष्णके परम मित्र हैं। वे सारा दिन प्रभुसेवामें बीताते थे और अयाचक व्रतका पालन करते थे।

ज्ञानका फल धन या प्रतिष्ठा नहीं, परमात्मासे मिलन है। विद्याका उपयोग केवल अर्थोपार्जनके लिअे करना ठीक नहीं है।

सुदामा अपनी विद्याका उपयोग भोगके लिअे नहीं, भगवानके लिअे करते थे।

सुदामाके घरमें दरिद्रताका राज था। उनकी पत्नीका नाम था सुशीला।

आज तो नामके विपरीत गुण देखे जाते हैं। शांतिबहन कर्कशा होती है, गंगाबहन पीनेका पानी तक नहीं देती।

सुशीलाके पास अेक ही वस्त्र था। वह महापतिव्रता थी।

धनसंपत्तियुक्त पतिसे प्रेम करनेवाली पत्नीकी कोअी महत्ता नहीं है। पहननेके लिअे वस्त्र और खानेके लिअे अन्न न हो फिर भी पतिसे प्रेम करती रहे वही पत्नी सच्ची पतिव्रता है।

सुशीलाको कअी दिनो तक भूखा रहना पड़ता था फिर भी वह कलेश नहीं करती थी। वह कभी सुदामासे अैसा नहीं कहती थी कि विद्वान हो कर भी कमाते क्यों नहीं हो। यदि कोअी साधारण स्त्री होती तो सुदामासे कहती, यदि कुछ कामकाज नहीं करना था तो मेरे साथ विवाह करके मेरा जीवन क्यो बीगाड़ दिया?

पति यदि धन-संपत्ति, सुख-सुविधा दे और पत्नी वैसे पतिकी सेवा करे तो उसमें कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। अैसी पत्नीको धन्य है जो दरिद्र पतिको भी परमेश्वर माने और सेवा करती रहे। पति-पत्नी यदि साथ-साथ रह कर भी कृष्णकीर्तन, प्रभुसेवा करते रहें तो वैसा गृहस्थाश्रम संन्यस्ताश्रमसे भी श्रेष्ठ है।

सुशीला पतिसे प्रभुकथा सुनती रहती थी। कअी बार बालकोंको भी खानेको नहीं मिलता था। सुशीलासे अपनी संतानोंकी दुर्दशा नहीं देखी गअी। अेक दिन

व्याकुलतासे वह अपने पतिसे कहने लगी :–अेक प्रार्थना करनी है आपसे। आप कथामें कहते हैं कि कनैयाको अपने मित्रोंसे बड़ा प्रेम है। वह मित्रोंके लिअे चोरी भी करता था।

सुदामा :–हां, सच है यह बात। वह अपने मित्रोंको खिलानेके बाद ही खाता था।

सुशीला :–तो फिर क्यों न उससे मिल कर अपना यह दुःख दूर किया जाय?

सुदामा :–मैं दरिद्र हूं। सो वहाँ जाअूँगा तो लोग कहेंगे कि यह ब्राह्मण भीख मांगने आया है। मेरा नियम है कि परमात्मासे कुछ भी मांगने नहीं जाअूँगा।

सुशीला :-मैं तुम्हें मांगनेके लिअे नही भेज रही हूं। वे तो हज़ार आँखोंवाले हैं। अपने आप ही सब कुछ समझ जाअेंगें। केवल उनके दर्शन तो कर आओ।

सुदामा :–मेरे पास वहाँ जानेका समय नहीं है।

सुशीला :–वहाँ जा कर भगवानके दर्शन तो कर आओ।

सुदामा –मैं यहीं बैठ कर भी मनसे उनका हमेशा दर्शन करता रहता हूं। शारीरिक मिलनकी अपेक्षा मानसिक मिलन बड़ा सुखदायी है।

सुशीला –दर्शन कभी प्रत्यक्ष भी तो करने चाहिअे। आपकी प्रतिज्ञा तो है किसी जीवके द्वार पर न जानेकी। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। उनके द्वार सभीके लिअे खुले हैं। वहाँ जानेमें संकोच कैसा? मित्रसे मिलना ही चाहिअे।

ज्ञानी और तपस्वी सुदामा तो घर बैठे ही कृष्णका दर्शन कर लेते थे। किंतु पत्नीके अत्याग्रहके कारण द्वारिका जानेको तैयार हुअे। उन्होंने सोचा कि पत्नी हर बात मान लेती है तो मुझे भी उसकी यह बात माननी चाहिअे। वे पत्नीसे कहने लगे :–कल्याणी, मित्रसे मिलने जा तो रहा हूं किंतु खाली हाथों जानेमें हमारी कोअी शोभा नहीं है।

घरमें तो कुछ भी नहीं था। सो सुशीला पडोसीके घरसे दो मुठी भर तांदुल मांग लाअी। धन्य है सुशीलाको कि तांदुलका अेक दाना भी घरमें न रखा और सारेके सारे अेक चीथड़ेमें बांध कर भगवानके लिअे दे दिअे। अैसी भेंट देनेमें तुम्हें संकोच तो होगा किंतु कहना कि भाभीने यही भेजा है।

पत्नीके आग्रह और प्रभुके दर्शनकी अिच्छासे सुदामा द्वारिकाकी दिशामें चल दिअे। फटी हुअी धोती, अेक हाथमें लकड़ी और बगलमें तांदूलकी पोटली थी।

सुशीला सोच रही है कि कअी दिनोंके भूखे मेरे पति वहाँ तक कैसे पहूँच पाअेंगे। मैंने ही उनको जानेके लिअे विवश किया। किंतु और कोअी उपाय भी तो नहीं था। अपने बालकोंकी दुर्दशा भी तो देखी नहीं जाती। वह भगवान सूर्यनारायणसे प्रार्थना करने लगी :-मेरे पतिकी रक्षा करना।

सुदामा पोष शुक्ल सप्तमीके दिन द्वारिका गअे। अतिशय ठंडीके कारण शरीर कांप रहा था। सात दिनोंके भूखे दुर्बल सुदामा दो मील चलते ही थक गअे। वे सोचते जाते हैं कि द्वारिकानाथके दर्शन होंगे भी या नहीं। रास्तेमें दुर्बलता और चिंताके कारण मूर्छा भी आ जाती थी।

उधर द्वारिकाधीशको समाचार मिला कि सुदामा आ रहा है। उन्होंने सोचा कि अैसे निष्ठावान, सदाचारी अयाचक तपस्वीको पैदल चलाना मुझे शोभा नहीं देता है। उन्होने गरुडजीको भेज कर सुदामाको आकाशमार्गसे द्वारिकानगर तक ला दिया। सुदामाने लोगोंसे पूछ कर जाना कि वे द्वारिकामें आ पहूँचे हैं। उन्होंने सोचा कि द्वारिका वैसे कुछ दूर नहीं है। सुबहमें निकला था और शामको तो मैं यहाँ आ भी पहूँचा। वे जानते ही नहीं थे कि उन्हें गरुडजी उठा कर ले आअे हैं।

भगवानके लिअे यदि तुम दश कदम आगे बढोगे तो वे वीश कोश चल कर तुमसे मिलनेके लिअे आअेंगे।

सुदामा लोगोसे द्वारिकाधीशके प्रासादका मार्ग पूछते हैं। वे मेरे मित्र हैं। लोग हँस देते हैं कि अैसा भीखारी जैसा भी कभी द्वारिकाधीशका मित्र हो सकता है।

सुदामा प्रभुस्मरण करते हुअे भगवानके द्वार पर आ पहूँचे। द्वारपाल उन्हें भीखमंगा मान कर रोकते हुअे कहने लगे, जो चाहे सो हमींसे मांग ले। तू अंदर नहीं जा सकता।

सुदामा :-मैं द्वारिकाधीशसे कुछ मांगने नहीं, मिलने आया हूँ। वे मेरे मित्र हैं।

विशुद्ध प्रेम बस देता ही है, कुछ भी मांगनेकी अिच्छा नहीं करता।

द्वारपाल हँसने लगे : क्या अैसा भीखमंगा कुछ पानेकी अिच्छा किअे विना ही यहाँ आया होगा?

सुदामा :-तुम श्रीकृष्णसे जाकर कहो कि उनका मित्र सुदामा उनसे मिलने आया है।

सेवक अंदर गया और प्रणाम करके प्रभुसे कहने लगा : प्रभु, द्वार पर अेक भीखमंगा-सा दुर्बल ब्राह्मण आया है। आँखें अंदर धँसी हुअी हैं, हड्डियाँ दीखाअी दे रही हैं, फटेहाल है। मुख पर दिव्य तेज है। वह हमसे कुछ भी लेना नहीं चाहता। यह कहता है कि वह आपका मित्र सुदामा है और आपसे मिलने आया है।

सुदामा शब्द सुनते ही भगवान द्वारकी ओर दौड़े।

द्वार पर खड़े हुअे सुदामा सोच रहे थे कि आज तक उनके मनमें अपने ज्ञान और तपका तथा किसीके द्वार पर न जानेका अभिमान था। सुशीलाने वह अभिमान दूर कर दिया।

सुदामा वैसे तो फटेहाल थे, कपड़े धुलधूसर थे किंतु उनका हृदय अत्यंत स्वच्छ और पवित्र था।

भगवान मानवीके वस्त्र नहीं, हृदय देखते हैं। जीव यदि अपना जीवत्व, अहम् भूला दे तो अीश्वर भी अपना अीश्वरत्व अेक ओर रख देते हैं।

भगवान सुदामाको पुकारते हुअे दौड़ कर द्वार पर आअे। उनकी रानियोंको आश्चर्य हुआ कि आज तक न जाने कितने लोग अिनसे मिलने आ गअे किंतु वे कभी अैसे विह्वल नहीं हुअे थे।

श्रीकृष्णने सुदामाको अपने हृदयसे लगा लिया। अपने मित्रकी अैसी विषम दशा देख कर उनको अत्यंत दुःख हुआ। मुझे ही उससे मिलनेके लिअे, उसकी दशा जाननेके लिअे जाना चाहिअे था। मित्र, अच्छा हुआ कि तू अिधर आ गया।

सुदामाने सोचा कि वैभव प्राप्त होने पर भी कनैया उसे भूला नहीं है। संपत्तिके नशेमें सानभान भूलनेवालेको कभी अीश्वर कहा जा सकता है क्या?

रुक्मिणी चरण धोनेके लिअे जल ला ही रही थी कि श्रीकृष्णने अपने अश्रुजलसे सुदामाके चरण धो दिअे। नरोत्तम कवि लिखते हैं :-

देखी सुदामाकी दीन दसा, करुना करके करुनानिधि रोअे।
पानी परातको हाथ छुयो नाहि, नैननके जलसो पग धोअे॥

तपस्वी सुदामाके पाँवोमें जूते तो थे नहीं सो बहुतसे कांटे चूभे हुअे थे। श्रीकृष्ण कांटे निकालने लगे। अेक काँटा निकल नहीं रहा था तो प्रभुने रुक्मिणीसे सुअी लानेको कहा। रुक्मिणीको देर हो गअी तो प्रभु अपने दाँतोसे वह काँटा निकालने लगे। सुदामा कहने लगे, अरे प्रभु, यह क्या कर रहे हैं आप? कहीं रानियोने देख लिया तो? राजाधिराज हो कर अिस प्रकार काँटा निकालना आपको शोभा नही देता।

कृष्ण :-तू भी कौसी बातें कर रहा है? मैं तो तेरा सेवक हूँ। तेरा कनैया संपत्तिवान होने पर भी विवेकभ्रष्ट नहीं हुआ है।

श्रीकृष्ण आज भूल गअे हैं कि वे परमात्मा हैं, राजाधिराज हैं। उन्हाने काँटा निकाल दिया। सुदामा गरीब थे किंतु निष्पाप थे, पवित्र थे सो भगवानने उनकी वैसी सेवा की।

दरिद्र होना अपराध नहीं है, दरिद्रतामें भगवानको भूल जाना अपराध है।

सुदामा स्नानादिसे निवृत्त हुअे तो उन्हे पहननेके लिअे पीतांबर दिया गया। भोजनविधि भी हो गअी। सुदामाको पलंग पर बीठला कर श्रीकृष्ण उनकी चरणसेवा करने लगे।

श्रीकृष्ण :-मित्र, मार्गमें तुम्हे बहुत कष्ट हुआ होगा। सच कहता हूँ, मैं अिस सांसारिक जंजालसे उकता गया हूँ। अपने गुरुकुलके दिनो जैसा आनंद अब कहाँ?

प्रवृत्तिधर्म अपने साथ वासना-विकार भी ले आता है सो भगवान निवृत्त होनेकी अिच्छा कर रहे हैं।

मित्र सुदामा, बचपनमें तुम्हे खेलनेकी आदत तो थी नहीं, मैं तुम्हे खेलनेके लिअे बरबस ले जाता था। वह दिन भी तुझे याद है कि जब हम समिध लेने गअे थे आर मूशलधार वर्षा हुअी थी और हमें अेक वृक्ष पर आशरा लेना पड़ा था?

उस दिन सुदामाके पास कुछ चने थे जो वे अकेले खाने लगे। आवाज़ सुन कर कृष्णने पूछा कि वे क्या खा रहे हैं। सुदामाने सोचा कि यदि सचसच कह दूँगा तो कृष्णको भी कुछ चने देने पड़ेगे। सो उन्होंने कहा, खाता नहीं हूँ, यह तो ठंडके मारे दाँत बज रहे हैं। अकेले खानेवाला दरिद्र हो जाता है। सुदामाको अिसी कारणसे दरिद्र होना पड़ा।

श्रीकृष्णको सुदामाकी चरणसेवा करते देख कर रानियोको बड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक पतिने अैसा प्रेम किसीकी भी ओर नहीं दीखाया है। यह ब्राह्मण बड़ा भाग्यशाली है।

कृष्ण :-विवाह किया है या नहीं ? कैसी हैं मेरी भाभी ?

सुदामा : पत्नी तो सुशीला है, संतान भी हैं।

सुदामाने सब कुछ बताया किंतु अपनी दरिद्रताके बारेमें कुछ भी नहीं बताया।

तेरी भाभीकी अिच्छा और अनुरोधसे ही मैं तुझे मिलने आया हूँ।

श्रीकृष्ण : भाभी अितनी सुपात्र हैं तो उन्होंने मेरे लिअे भी कुछ भेजा तो होगा ही।

लक्ष्मीने बीचमें कहा :-यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके अिस मित्रके घर कुछ भेज हूँ।

कृष्ण :-मैं देना नहीं, अिससे लेना चाहता हूँ।

लक्ष्मीजी :-यह दरिद्र ब्राह्मण आपको क्या दे पाअेगा ?

श्रीकृष्णको बुरा लगा। मेरे मित्रको दरिद्र कहनेवाली तू कौन होती है ? लक्ष्मीजीने सोचा कि श्रीकृष्णके तेवर आज कुछ और ही हैं। उन्होने प्रभुसे क्षमा मांगी।

सुदामा तांदुलकी पोटली संकोचवश छुपा रहे थे। भगवान मनमें हँसते हैं कि अिसने उस दिन चने छुपाअे थे और आज तांदूल छुपा रहा है। जो मुझे कुछ देता नहीं है, उसे मैं भी कुछ नहीं देता। सो मुझे छीनना ही पाड़ेगा। भगवानने तांदूलकी पोटली छीन ली।

स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान्।
भा. १०-८१-८

लौकिक दृष्टिसे तो दो मुट्ठी भर तांदूल ही थे किंतु सुदामाका तो. वह सर्वस्व था। सुदामा प्रारब्धकर्मानुसार दरिद्र थे। विधाताने उनके भाल पर लिखा था-श्री क्षयः। जब श्रीकृष्ण उनके भाल पर तिलक करने लगे तो उन्होंने वह विधाताका लेख पढा और उसे उलटा भी दिया-यक्ष श्रीः। जो संपत्ति कुबेरके पास भी नहीं है वह मैं सुदामाको दूँगा। भगवानने सुदामाके प्रारब्धकर्मोंको क्षीण करनेके हेतु तांदूलभक्षण किया। उन्होंने तांदूल आहार किया तो उनके द्वारा सारे विश्वने आहार किया। क्यो कि वे तो सर्वात्मा हैं न ? श्रीकृष्णने सारे विश्वको अन्नदान करनेका पुण्य सुदामाको दे दिया।

श्रीकृष्ण सुदामासे कहते हैं, गोकुलमें मेरी माता अिसी प्रकार मुझे तांदूल खिलाती थी। यशोदाके स्मरणने भगवानकी आँखोंको गिला कर दिया। सुदामाके तांदूल प्रेमरससे भीगे हुअे थे। अेक मठ्ठीभर तांदूलके बदलेमें प्रभुने समग्र द्वारिकाका अैश्वर्य सुदामाके घर भेज दिया।

सुदामाने अपने दारिद्र्यकी बात भगवानसे न बतायी सो भगवानने भी अैश्वर्यदानकी बात सुदामाको न बतायी।

सुदामा अगल दिन अपने गाँव लौटनेकी तैयारी करने लगे। उन्होंने सोचा था कि कृष्ण दो-चार दिन और ठहर जानेका आग्रह करेंगे।

किंतु भगवानने वैसा आग्रह नहीं किया। कारण अुधर सुशीला सारा वैभव पाकर भी व्रत लिये बैठी थी कि पतिके मुख-दर्शन किअे विना भोजन नहीं करेगी भगवानने सोचा कि यदि सुदामाको जाने न दूँगा तो भाभीको उतने दिन भूखों मरना पड़ेगा। सो उन्होंने सुदामाको आग्रह नहीं किया।

निरपेक्ष पवित्र सुदामा अपनी पुरानी धोती पहन कर जानेके लिअे तैयार हो गअे। जाते जाते भी उन्होंने कुछ नहीं मांगा। श्रीकृष्ण द्वार तक उन्हें छोड़ने गअे और कहने लगे, मित्र, अबकी बार भाभीको भी साथ ले आना। उनको मेरी याद कहना, मेरे वंदन कहना।

सारा विश्व श्री कृष्णको वंदन करता है और वे अेक दरिद्र ब्राह्मणकी पत्नीको वंदन करते हैं। जैसी वस्तु माता कभी मुझे देती थी वैसी ही वस्तु भाभीने भेजी है। सुदामाको गले लगा कर विदाय दी। दोनोंकी आँखोंमें आंसू जलक आअे।

सुदामा सुदामापुरी पहुँच कर अपनी टूटी-फूटी झोंपडी ढूंढ़ने लगे। वहाँ झोंपडीका तो नामोनीशान नहीं था, बड़ा प्रासाद खड़ा था। सुदामा सोच रहे हैं कि मेरी झोंपडीको कौन उठा ले गया।

उधर सुदामाके आगमनके समाचार सुशीलाको मिले तो वह दौड़ती हुअी बाहर आअी और पतिका स्वागत करती हुअी कहने लगी, आपके मित्रकी कृपासे यह सब हुआ है।

सुदामाका मन कृतज्ञतासे भर गया। वे प्रार्थना करने लगे, मुझे धनकी अपेक्षा नहीं है। मैं तो यही चाहता हूँ कि जन्मजन्मांतर मुझे श्रीकृष्णकी भक्ति करनेका अवसर मिलता रहे, उनके चरणोंमें मुझे स्थान मिले।

सुदामाके चरित्रमें भी अेक सार है। परमात्मा जीवमात्रके निस्वार्थ मित्र हैं। जगतमें परमात्माको छोड़ कर अैसा अन्य कोअी नहीं है जो अपना सर्वस्व किसीको दे दे। यदि सेवा और स्तुति करनी ही है तो भगवानकी करो। जीव जब अीश्वरसे प्रेम करता है तब अीश्वर जीवको भी अीश्वर बना देते हैं। जीवका सच्चा मित्र, परम पिता अीश्वर ही है।

सुदामाने अीश्वरसे निरपेक्ष प्रेम किया तो उन्होंने सुदामाको अपना लिया और अपने जैसा वैभवशाली भी बना दिया। सुदामापुरीको भी द्वारिका-सी समृद्ध बना दी।

भगवान तो उनके चरणकमलका स्मरण करनेवालेको अपना स्वरुप दे देते हैं तो तुच्छ धनके दानका तो आश्चर्य ही क्या है?

स्मरत पादकमलमात्मानमपि यच्छति किं न्वर्थकामान्।

भा. १०-८०-११

शारीरिक मिलन तुच्छ है, मनका मिलन दिव्य है। यदि श्रीमंत व्यक्ति दरिद्रोंको हृदयसे आवकार दे तो आज भी सभी नगर द्वारिकासे समृद्ध हो सकते हैं।

सूर्यग्रहणका प्रसंग आया। वसुदेव-देवकी तथा अन्य सभी यादव कुरुक्षेत्र गअे।

सकाम भावसे किया गया काम स्वर्ग तो दिलाता है किंतु मुक्ति नहीं दिलाता। नेष्काम कर्म पापको जजा देता है। मनुष्यका शरीर ही वह कुरुक्षेत्र है जहाँ निवृत्ति और प्रवृत्तिका युद्ध होता रहता है। अिस शरीररथको जो श्रीकृष्णके हाथोंमें दे देता है उसीकी जीत होती है।

कृष्ण कथा हमें अपने दोषोंसे भली भाँति अवगत कराती है। कृष्णकथाके श्रवणसे हमें भजन करनेकी प्रेरणा मिलती है और वैसा होने पर हमारी अिन्द्रियाँ शुद्ध होती हैं। गंगास्नान शरीरको शुद्ध करता है अतः गंगास्नानकी अपेक्षा कृष्ण कथास्नान अधिक श्रेष्ठ है।

वासना ही पुनर्जन्मका कारण है अतः मृत्युके पहले ही वासनाका त्याग करो। धेर और सुखकी अेषणा वासनाको जन्म देती है। उनका त्याग करना ही चाहिये।

कुरुक्षेत्रमें आअे हुअे माता-पितासे श्रीकृष्णने अेक दिन पूछा :-आपके मनमें कुछ अिच्छा है? यदि है तो मैं पूर्ण करूं।

वसुदेव :-वैसे तो मेरी और कोअी अिच्छा या वासना नहीं है। मेरी अेक यही अिच्छा है कि मैं अंतकालमें तेरा ही स्मरण करता रहा हूँ और तेरा नाम लेता हुआ ही देहत्याग करूं।

शरीरत्यागके समय बड़ी वेदना होती है। सो मनको अैसी शिक्षा दो कि मृत्युके समय, उस वेदनाके बीच भी भगवान ही की याद आअे। मृत्युके समय भगवानका स्मरण करनेवाले व्यक्तिको धन्य है। वैसे ही व्यक्तिका जीवन है सार्थक है। मृत्युकी चिंता करनेसे पापसे बचा जाअेगा।

अेक बार अेकनाथ महाराजसे किसीने पूछा :-आप तो हमेशा अीश्वरमग्न और आनदित रहते हैं। मेरा मन तो अीश्वरसे लग ही नहीं पाता है। अैसा क्यो है?

अेकनाथ महाराजने स्वगत कहा कि मन संसारमेंसे हटेगा तो प्रभुमें लगेगा। किंतु प्रगट कहा :-आज तो मैं कुछ नहीं कह सकता। आजसे सातवें दिन तेरी मृत्यु होगी। उसी दिन तू मेरे पास आना, मैं तुझे सब कुछ बताऊँगा।

मृत्युको निकट देखा तो वह मनुष्य घबड़ा गया। अपने पुत्रोंको अपनी सारी धन-संपत्ति तथा कारोबार सौंप दिया और प्रभुभजनमें लग गया। मृत्युकी तैयारी करने लगा।

सातवें दिन वह अेकनाथ महाराजके पास आया तो उन्होंने उससे पूछा :-क्या कैसी रही? अिन दिनों कौन-सी मौज उड़ायी?

वह गृहस्थ कहने लगा :-मस्तक पर मृत्युको मंडराते देखा तो भोगविलासको भूल गया और अीश्वरका भजन करते रहा।

अेकनाथजी :-अब तो मेरी अीश्वरमग्नताका रहस्य तूने जान लिया न? मैं हमेशा मृत्युको दृष्टि समक्ष रखता हूँ अतः मन अीश्वरभजनमें लगा रहता है।

भगवानने देवकीकी अिच्छा जाननेकी अिच्छा की। देवकीने कहा -मुझे कहते हुअे संकोच तो हो रहा है किंतु मेरी अिच्छा यह है कि कंस द्वारा मृत्युप्राप्त अपनी सभी संतानोंको मैं देखना चाहती हूँ।

भगवानने अेक बार यशोदासे भी उसकी अिच्छा पूछी थी। तो यशोदाने कहा था -मेरी तो यही अिच्छा है कि मैं निरंतर तेरे दर्शन करती रहूँ। अेक भी

क्षण तू मेरी दृष्टिसे दूर नहीं हो पाओे।

कहाँ यशोदाकी अिच्छा और कहाँ देवकीकी ?

अिच्छा भक्तिमें विघ्नकर्ता है। अिच्छा ही पुनर्जन्मका कारण है।

कृष्ण सुतलपातालमेंसे अपने सभी बंधुओको ले आओे। देवकीने उनको देख लिया और कहा, बस, अब मेरी यही अिच्छा है कि मेरी मृत्यु सुधरे।

ज्ञानी महात्मा ही नहीं, अीश्वरके मातापिता तकको आशंका रहती है कि उनकी मृत्यु कहीं बीगड़ न जाय।

उसी व्यक्तिको मृत्यु उजागर होती है जो अपनी प्रतिक्षण सुधारता है।

प्रभुने वसुदेव-देवकीको दिव्य तत्त्वज्ञान समझाया।

दशमस्कंधके अंतमें सुभद्राहरणका वर्णन है।

भद्र अर्थात् कल्याण। कल्याण करनेवाली ब्रह्मविद्या ही सुभद्रा है। अद्वैतदर्शी ब्रह्मविद्या ही सुभद्रा है। जिसके घरमें सुभद्रा हो उसका जीवन कल्याणमय, सुखी होता है।

अर्जुनकी भाँति संन्यास लेकर तप करनेवालेको ही सुभद्राकी प्राप्ति होती है। अर्जुनने त्रिदंडी संन्यास ले कर चार मास तक कठिन तपश्चर्या की और प्रतिदिन अठारह घंटे ॐकारका जप किया तभी प्रभुने अुसे सुभद्रा-ब्रह्मविद्या दी।

चंचल आँखोवालेका मन भी चंचल ही होगा और सुस्वादु भोजन करनेवाला भलीभाँति भजन नहीं कर पाओेगा। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिओ त्रिदंडी संन्यासी बनना पड़ता है।

प्रभुके लिओ सर्वस्वका त्याग करना ही संन्यास है। सांसारिक सुखोंका उपभोग करते हुओे भक्ति करनेवाले पर भगवान जल्दी कृपा नहीं करते। संसार सुखके त्यागी पर भगवान जल्दी प्रसन्न होते हैं।

परीक्षितने पूछा -शब्दरुप वेद निराकार वेदका प्रतिपादन किस प्रकार करता है ?

शुकदेवजीने वेदस्तुतिकी कथा सुनायी।

सृष्टिके आरंभमें शेषशैयाशायी नारायणकी वेदोने स्तुति की। परमात्माको वेदोंने मंगलगान करके जगाया। नाथ! तेरी जय हो। वेद प्रभुकी जयकार करते हैं तब लगता है कि जीवकी हार हुओी है। जीवको मायाने पकड़ रखा है सो मेरी भी जय हो, मैं भी मायाके बंधनसे मुक्त हो पाअूँ। परमात्माकी जयकार करके वेद मायाबंधनसे मुक्तिकी प्रार्थना करते हैं।

अनादि कालसे जीव और मायाका संग्राम चल रहा है। माया उसे जगतको विषयोंमें फँसाओे रहती है सो वेद परमात्माकी स्तुति करते हैं कि मायाके बंधनोंको काट दीजिओे।

माया जीवको स्त्री, धन आदिमें फँसा कर परमात्माकी ओर जाने ही नहीं देती है। नाथ, हम आपकी शरणमें आओे हैं। अिस मायाके बंधनोको काट दीजिओे।

प्रभुने पवित्र विचार करनेके लिओे ही बुद्धि और मन दिओे हैं। पवित्र विचार करनेसे ही मन शुद्ध होता है।

वेद सगुण और निर्गुण ब्रह्मका वर्णन करते हैं। अीश्वर साकार और निराकार

दोनों रुपोंसे लीला करते हैं। अीश्वरकी निराकारताका यही अर्थ है कि उनका हम जैसा कोअी आकार नहीं है।

निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म वस्तुतः अेक ही हैं। निर्गुण भक्तवश हो कर सगुण बनते हैं। भक्तबस सगुण सो होई।

नाथ, अिस जगतमें जो कुछ दीखाअी देता है और अनुभूत होता है वह वस्तुत आपका ही स्वरुप है। लौकिक नामरुप सत्य नहीं हैं।

मीट्टीके पात्रमें भी मीट्टी ही होती है और बर्फमें भी जल ही होता है। अिसी प्रकार प्रभु सभीमें व्याप्त हैं।

ज्ञानकी अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है सो अीश्वरके किसी भी स्वरुपका वारवार चिंतन, ध्यान, स्मरण और दर्शन करो। वैसा करने पर मनकी शक्ति बढ़ेगी। मनको परमात्माके किसी भी स्वरुपमें विवेकपूर्वक स्थिर कर दो।

आगे शिवतत्त्व और विष्णुतत्त्वका रहस्य भी समझाया।

वेदस्तुतिके कअी विद्वान अपने अपने अर्थ बताते हैं। आरंभवाद, परिणामवाद, आदि कअी मत विद्वानोंने प्रगट किये हैं और अपनी अपनी दृष्टिके अनुसार करते हैं।

वेद अीश्वरका निषेधात्मक वर्णन करते हैं। ज्ञानमार्ग 'नेति नेति' कह कर अीश्वरका वर्णन करते हैं। भक्तिमार्ग 'इति इति' कह कर भगवानका वर्णन करता है। वैसे दोनोंका लक्ष्य अेक ही है।

अर्जुनको अपने वीरत्वका अभिमान था सो प्रभुने नष्ट कर दिया।

प्रभुके अनंत गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है?

प्रभुने ग्यारह वर्षों तक गोकुलमें लीला की। फिर मथुरा गये। वहांसे द्वारिका जा कर कअी बार विवाह किया। उद्धवको ज्ञानोपदेश देकर स्वधाम पधारे।

भगवानकी लीलाअें अनंत हैं और गुण भी अनंत। उनकी लीलाओंका चिंतन करनेसे मन उनमें लीन हो जाता है, तद्रुप हो जाता है।

सुंदरं गोपालं उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरं।
वृंदावनचंद्रं आनंदकंदं परमानंदं धरणिधरम्॥
वल्लभघनश्यामं पूर्णकामं अर्थभिराम प्रीतिकरं।
भजनंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥
सुंदर वारिजवदनं निर्जितमदनं आनंदसदनं मुकुटधरं।
गुंजाकृतिहारं विपनिविहारं परमोदारं चीरहरम्॥
वल्लभ पटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरं।
भजनंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥
शोभित मुखधूलं यमुनाकु निपटअतधं सुखदकरं।
मुखमंडितं रेणु चारित धेनुं वादितवेणु मधुसुरम्॥
वल्लभअति विमलं शुभपदकमलं नखरुचिकमलं तिमिरहरं।
भजनंदकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्॥

❀

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

अेकादशः स्कंधः

श्रीकृष्णाय नमः

अिस ग्यारहवें स्कंधमें पहले दश सकंधोका उपसंहार है। अिसमें कपिलगीता, पुरंज आख्यान, भवाटवी वर्णन आदि भी है। अेकादश स्कंध भगवानका मुख है।

नवें स्कंधमें ईशानुकथालीला थी और दसवें स्कंधमें निरोधलीला की। श्रीकृष्णकी कथा और लीला अनंत है। अिस कथाके प्रागटयके साथ ही गंगास्नानका महिमा कम हो गया है। भागीरथीमें स्नान करने जानेके लिये रुपये-पैसोकी ज़रुरत रहती है, वहाँ तक जाना भी पड़ता है। जब कि कृष्णकथामें स्नान करनेके लिअे न तो कहीं दूर जाना पड़ता है और न तो रुपयोकी ज़रुरत होती है। गंगास्नानसे केवल शरीरकी शुद्धि होती है जब कि कृष्णकथास्नानसे तो मनकी, हृदयकी शुद्धि हो जाती है। अेकादश स्कंधमें मुक्तिलीला है क्यों कि मन भगवानसे जा मिला है।

जिसके मनका निरोध होता है उसे शीघ्र ही मुक्ति मिलती है। दशवें स्कंधमें निरोध होनेके कारण अिस स्कंधमें मुक्ति हुअी।

मुक्त तो मनको करना है क्यो कि आत्मा तो मुक्त ही है। विषयोका चिंतन छोड़ कर अीश्वरका चिंतन शुरु कर दे तो जीव मुक्त हो जाअे। जीव अज्ञानके कारण बंधनका अनुभव करता है। वस्तुतः उसे किसीने बांधा है ही नहीं। विवेक, तत्वज्ञान और वैराग्यसे मोहको नष्ट किया जाय तो मुक्ति ही है।

मनको वर और वासनासे मुक्त रखोगे तो निरोध जल्दी होगा। जिसका वैराग्य दृढ हुआ हो उसे ही मुक्ति मिलती है।

ग्यारहवें स्कंधका प्रथम अध्याय वैराग्य संबंधित है। वैराग्यके विना भक्ति नहीं हो पाती। मनको समझाओ कि सुखका, धन-संपत्तिका, भोगका चिंतन विषमय है। उससे कभी तृप्ति और शांतिका अनुभव नहीं हो पाता। अीश्वरके चिंतनके विना, पवित्र विचार-आचारके विना वैराग्य नहीं आ पाता। जब तक संसारके प्रत्येक विषयोके पति वैराग्य न आवे, शुद्ध भक्तिका आरंभ नही हो पाता।

सद्‌असद्‌का विचार करनेसे विवेक उत्पन्न होगा और वैराग्य भी। संसारके सभी जड पदार्थ दुःखरुप और असत् हैं। मात्र चेतन परमात्मा ही आनंद और सत् हैं। निश्चय कर लो कि जगतके पदार्थ भ्रम मात्र हैं, दुःखदायी हैं, क्षणिक हैं। विषयोंका संयोग वैसे तो सुख देता है किंतु उनका वियोग बड़ा दुःखदायी है।

भगवानको अब वैराग्य आने लगा है। जीवको जब वैराग्य होता है तभी वस्तुस्थितिकी कटुताका भान होता है। जीवनमें जब कोअी झटका-सा लगता है तो वैराग्य आता है।

तुलसीदास अपनी युवानीमें पत्नीकी ओर बड़े ही आसक्त थे। अेक बार पत्नी अपने मायके गअी हुअी थी। तुलसीदाससे विरह सहा न गया तो ससुरालकी ओर चल दिअे। रात्रिका समय था, मूशलाधार वर्षा हो रही थी। नदीमें जोरोकी बाढ़

आओ थी। अेक शवको लकड़ीका टुकड़ा मान कर उसी पर सवार हो कर नदी पार कर दी। ससुरालके द्वार बंद थे तो उन्होंने खीडकीमेंसे अंदर जाना चाहा। अेक सर्प लटक रहा था उसको रस्सी मान कर अूपर चढ गअे और पत्नीके कमरेमें पहुँचे। पत्नीने पतिके पराक्रमकी बात सुनी तो वह उलाहना देने लगी। जैसा प्रेम मेरी अिस हाडचामकी देहसे करते हो अुतना प्रेम यदि प्रभुके लिअे करते और उनके लिअे अितने कष्ट झेलते तो आपका उद्धार हो जाता।

हाड मांसकी देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो रामप्रति अवसि मिटिहि भवभीति ॥

पत्नीके वचन सुनते ही तुलसीको जैसे अेक धक्का-सा लगा। उनके ज्ञान चक्षु खुल गअे। और उसी क्षण उन्होने संसार त्याग दिया। सारा जीवन रामचंद्रजीकी सेवामें व्यतीत किया।

भगवानको लग रहा था कि ये सब सांसारिक प्रवृत्तियाँ अब बधारुप बनती जा रही हैं।

अेक बार पिंडारक तीर्थमें विश्राम कर रहे साधुओकी मजाक करनेकी युक्ति यादवकुमारोने की। उन्होंने शांबको नारीका वेश पहनाया और ऋषियोके पास ले जाकर उनसे पूछा: महाराज, अिस गर्भिणी नारीको पुत्र होगा या पुत्री?

ऋषि जान गअे कि सच्ची बात क्या है। भगवानकी प्रेरणासे उन्होंने कहा:- सांबके गर्भसे मुशल उत्पन्न होगा जो तुम्हारे समग्र युदुवशका नाश करेगा।

अब यादवकुमार भयभीत हो गअे। उन्होने उस मुशलकी रजकण बना कर समुद्र किनारे फेंक दिया और अेक टूकडा बचा था वह भी फेंक दिया। उन रजकणोसे उत्पन्न लकड़ियोसे यादव आपस-आपसमें लड़ कर मर गअे। और उस टूकडेसे पारधिने तीर बनाया जो कृष्णके लिअे प्राणघातक सिद्ध हुआ।

भगवानने सोचा था कि ये यादवकुमार भविष्यमें जनताको सताअेंगे अतः अिस प्रकार उनका नाश कर दिया। वह मुशल काल ही तो था।

ऋषियो, पविञ्र संतोंका अपमान करनेवालेका अहित ही होता है।

बुद्धि विकृत होते ही काल आ धमकता है।

जीवको उत्पत्ति और स्थितिमें आनंद आता है, लयमें नहीं। भगवानको लयमें भी आनंद आता है। क्यों कि वे स्वयं आनंदरुप हैं।

अेक बार नारदजी वसुदेवके यहाँ पधारे तो उन्होने नारदजीकी विधिवत पूजा करके कहा:-कृपया मुझे वह उपदेश दीजिअे कि जिससे मैं अिस जन्ममृत्यु-रुप भयानक संसारको अनायास ही पार कर सकूँ।

नारदजीने वसुदेवको नव योगेश्वर और निमिराजाका संवाद सुनाया।

अेक बार विदेहराज निमिकी राजसभामें नव योगेश्वर पधारे। तो राजाने उनसे पूछा:-परमकल्याणका स्वरुप कैसा है? उसका साधन क्या है? क्या आप मुझे भागवतधर्मका उपदेश करेंगे?

आधी क्षणका सत्संग भी मनुष्यके लिअे परम निधि बन सकता है।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवनम्
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

भगवानमें आसक्त संतोंका क्षणभरका संग भी स्वर्ग और मोक्षकी तुलनामें अधिक महत्वपूर्ण है। तो अन्य पदार्थोंकी तो चर्चा ही क्या?

योगेश्वर कहने लगे: राजन्, ध्यानसे सुनो।

श्रीकृष्ण अंशी हैं और जीव अंश। कोअी पूछेगा कि ये दोनों कब और कैसे विभक्त हुअे। अज्ञानका आरंभ कब हुआ यह कैसे कहा जा सकता है? अज्ञानका तो नाश करना है।

जीव-अंश अीश्वर-अंशीमें मिलने पर ही सुख और शांति पा सकता है। यह विरह ही महादुखका कारण है। जबसे जीव परमात्मासे विभक्त हुआ है, दुखी हो रहा है। निर्भय होना हो तो परमात्माकी शरणमें जाओ।

जीव अीश्वरसे किंचित् भी विभक्त होगा, दुःखी ही होगा। जीव मात्र रोगी है क्यों कि वियोगी है। अिस वियोगदुखको मीटानेका उपाय क्या है? निश्चय करो कि तुम्हें अीश्वरसे मिलना है। यह शरीर तो मलिन है। अिस शरीरके द्वारा ब्रह्मसंबंध नहीं हो पाअेगा। शरीर तो दुर्गंधयुक्त है अतः देव दूर भागते हैं। मनको अीश्वरसे जोड़ लो।

काल सभीके सिर पर मॅंडराता रहता है। यदि उससे बचना है तो श्रीकृष्णकी शरणमें जाओ। सभी कार्य प्रभुकी आज्ञा मानकर, प्रभुको प्रसन्न करनेके लिअे और प्रभुकी ओर उन्मुख रह कर ही करो। सभी व्यवहार प्रभुसे आंतरिक सधान रख कर ही करो। वैसा करने पर सभी क्रियाअें भक्ति बन जाअेंगी।

कर्कश वाणीका प्रयोग कभी न करना।

सभीमें प्रभुका अंश है अैसा मान कर व्यवहार करनेसे वह व्यवहार भक्ति बन जाअेगा। जड-चेतन अेक है, सभी जड-चेतन अीश्वरमय है अैसा माननेसे पापोंसे बचा जाअेगा और मनको शांति भी मिलेगी।

सभी संत भी जीवन निभानेके हेतु कोअी-न-कोअी कामकाज तो करते ही थे। सेना नायीने सोचा कि वह लोगोंके सिरसे तो मैल (बाल) उतारता है किंतु अपने ही मनका मैल दूर नहीं करता है। वह सोचमें डूब गया। धीरे धीरे उसका जीवन ही पलट गया और वह संत बन गया।

कारोबार करते समय प्रभुको हमेशा याद करते रहो। सांसारिक व्यवहार और भक्तिको अेक कर दो।

ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे सत्संग भी आवश्यक है सो प्रतिदिन सत्संग भी करना चाहिअे। सत्संगसे मनकी अशुद्धि दूर हो जाती है। जीव जन्मके समय तो शुद्ध होता है किंतु संगका रंग उस पर चढ़ता जाता है। सो हमेशा श्रेष्ठ संतोंके संगमें रहो।

संत वह है जो हर कहीं सौंदर्य देखता तो है किंतु उसमें मनको रमने नहीं देता। संत हमेशा प्रभु ही का स्मरण-चिंतन करता है। त्रैलोक्यका राज्य मिलने पर भी जो भगवानको न भूले वही व्यक्ति सच्चा संत है। संत वह है जो प्रेमडोरसे हृदयके साथ परमात्माको बाँध रखता है। अैसे संतोका ही संग करो।

जब तक सांसारिक विषय प्रिय लगते हों तब तक तुम वैष्णव नहीं बन पाअे हो। और मुक्तिके लिअे पात्र भी नहीं हो।

सुंदर विषयोंका उपभोग करनेकी शक्ति और सुविधा होने पर भी मन उसमें न जाने दे वही सच्चा वैष्णव है।

दो मार्ग हैं : त्यागका और समर्पणका। जो त्याग न कर सके वह समर्पण करे। सभीके साथ प्रेम करो। सब कुछ कृष्णार्पण करनेका भाव करो। अथवा न तो मैं किसीका हूँ और न तो कोअी मेरा है अैसा मान कर सर्वस्वका त्याग करके प्रभुसे प्रेम करो।

शरीर, वाणी, मन, अिन्द्रियों, बुद्धि तथा स्वभावसे किअे जानेवाले सभी कर्मोंको नारायणको समर्पित करना ही सीधा सरल भागवत धर्म है।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयाऽत्मना वा नुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणयेति समर्पयेत्तत् ॥
भा. ११-२-३६

अिस प्रकार प्रतिक्षण प्रत्येक वृत्ति द्वारा भगवानके चरणकमलोंका भजन करनेवाला व्यक्ति प्रभुकी प्रीति, प्रेममयी भक्ति तथा संसारके प्रति वैराग्य और भागवत स्वरुपका अनुभव ये सब अेक साथ प्राप्त करता है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवभद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भगवतोत्तमः ॥

आत्मस्वरुप भगवान समस्त प्राणियोंमें आत्मरुपसे-नियंतारुपसे स्थित हैं। जो व्यक्ति कहीं भी अधिकता या न्यूनता न देख कर सर्वत्र भगवत सत्ताको ही देखता है, समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरुप भगवानके कारण स्थिर हैं, भगवत स्वरुप हैं अैसा अनुभव करता है उसे भगवानका परमप्रेमी भक्त मानो।

जो मनसे अेक मात्र भगवानमें निवास करता है वह उत्तम भागवत भक्त है।

तीसरे योगेश्वर अंतरीक्षने मायाके लक्षण बताअे तो योगेश्वर प्रबुद्धने मायाको पार करनेके उपाय बताअे।

जो मायाको पार करना चाहता है उसे स्वतंत्र रहनेके बदले किसी सच्चे संतको गुरु बनाना चाहिअे और उसे सद्गुरुकी आज्ञामें रहना चाहिअे। विलासी और पाखंडी गुरु शिष्यका कल्याण करनेके बदले अहित ही करेगा। सो पहले तो ब्रह्मनिष्ठ गुरुको ढूढ़ना चाहिअे।

जिसे मात्र ब्रह्म शब्दके प्रति ही लगाव है किंतु स्वयं ब्रह्मनिष्ठ नहीं है वह गुरुपदके लिअे अपात्र है। संत अैसा ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिअे कि जिसकी स्मृति

मात्र भी शिष्यको पापकर्मकी और बढनेसे रोक दे।

युवानी अंधी और उच्छृखल होती है। सो अिस अवस्थामें सतोंकी, सद्गुरुकी आज्ञामें रहना चाहिये।

जो मायासे छूटना चाहता है वह ब्रह्मचर्यका पालन करे—आँखोंसे भी और मनसे भी। रोज अेकांतमें अेक ही बैठकमें तीन घंटे तक प्रभुनामका जप करो।

वाणीसंयम भी आवश्यक है। प्रतिदिन कमसे कम तीन घंटे तक मौन रखो। मौन मनको अेकाग्र करके चित्तकी शक्तिको बढ़ाता है।

वाणी और पाणीका दुरुपयोग करनेवाला अीश्वरका अपराधी है।

मन-वचन-कर्मसे किसीको भी न सताओ।

स्वधर्ममें, भगवतधर्ममें निष्ठा रखो किंतु अन्य धर्मोंके प्रति कुभाव नहीं, आदर रखो।

रोज प्रार्थना करो। जीव और अीश्वरका पहला संबंध वाग्दानसे होता है। रोज प्रार्थना करो, नाथ, मैं आपका ही हूँ, मेरे अपराधोंको क्षमा करना।

विवेकपूर्वक विचार करनेसे मायाका मोह कम होता है अन्यथा मनुष्य अपना बहुत सा समय और धन व्यसन और फैशनमें गँवाता रहता है।

मायाको पार करनेके यों तो कअी साधन हैं किंतु भक्ति अनायास और सहजप्राप्त साधन है।

मामेव ये प्रपद्यते मायामेतां तरन्ति ते।

जो मेरी शरणमें आता है वह मायासागर तर जाता है।

कलियुगमें श्रीकृष्णका नाम जपनेसे सद्गति मिलती है। सेवा केवल क्रियात्मक नहीं, भावात्मक भी होनी चाहिये।

कलियुगका मनुष्य विलासी है। शरीरकी उत्पत्ति ही काम द्वारा होती है। सो अिस युगमें योग और ज्ञानमार्गसे अीश्वरको प्राप्त करनेकी अपेक्षा हरिकीर्तनसे उनको पाना सरल है।

वैसे तो सिद्धांत और यमनियम जानते तो सभी हैं किंतु पुण्यशाली व्यक्ति ही उसे अपने जीवनमें उतार सकता है।

नामजप सरल है क्यों कि जीभ तुम्हारे अधीन है। भगवानका नाम सर्व सुलभ होने पर भी अधिकांश जीव नरकगामी होते हैं यह बडे आश्चर्यकी बात है।

नारायणेति मन्त्रोऽस्ति वागस्ति वशवर्तिनी।
तथापि नरके घोरे पतन्तीत्येतदद्भूतम्॥

महाभारतके वनपर्वमें यक्ष युधिष्ठिर संवाद आता है। यक्ष युधिष्ठिरसे पूछते हैं: अिस जगतका सबसे बड़ा आश्चर्य कौन-सा है?

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं:

अहन्य हनि भूतानि गच्छन्ति यममंदिरम् ।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

मनुष्य प्रतिदिन हजारो जीवोंको यमसदन जाते हुअे देखता है फिर भी वह स्वयं तो अिस प्रकार व्यवहार करता है कि वह अमर हों । वे सब यहाँ हमेशा के लिअे रहना चाहते हैं । अिससे बढ़ कर और क्या आश्चर्य होगा ?

दूसरोंको मरते देख कर भी स्वयंको अमर मान कर भोग विलासमें डूबा रहना सबसे बड़ा आश्चर्य हैं ।

पाँचवे योगेश्वरने भगवान नारायणका स्वरुप दर्शाया ।

निमिराजाने कहा अब कुछकर्मयोगके विषयमें भी बताअिअे । यह कर्म अकर्म और विकर्ममें मेरा मन उलझ–सा गया है ।

छठ्ठे योगेश्वर आविर्होत्रने कहा : सत्य है तेरी बात । बहुत से विद्वान भी अिसमें उलझ जाते हैं ।

किं कर्म किमकर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

वेद कर्मकी आसा देते हैं और स्वर्गादिनी लालच भी देते हैं किंतु उनका उद्देश्य तो कर्म छुडनेका ही है ।

कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्मका दर्शन करे अर्थात अनाशक्ति भावसे कर्म करे वही श्रेष्ठ है ।

कर्म करो किंतु अनासक्ति भावसे—मा फलेषु कदाचन । सभी कर्म औश्वरार्पण करो ।

सातवें योगेश्वर द्रुमिलने प्रभुकी लीलाओंका वर्णण किया । सभी अवतारोकी कथा सुनाअी ।

आठवें योगेश्वर चमसने भक्तिहीन पुरुषकी अधोगतिका वर्णन किया ।

और करभारजन नामके योगेश्वरने परमेश्वरकी पूजाविधि बताअी ।

अंतमें नारदजीने वसुदेवजीसे कहा : अब अधिक समय नहीं है । श्री कृष्णको अपना पुत्र न मानो । वह तो साक्षात् परमात्मा है ।

उधर देवगण भी प्रभुसे स्वधाम लौटनेके लिअे प्रार्थना करने लगे । प्रभुने भी पृथ्वीलोकसे जानेका निश्चय किया ।

द्वारिकामें अपशकुन होने लगे । वृद्ध यादवों भगवानके पास आ कर कहा : प्रभु, यहाँ रहना अिष्ट नहीं है क्यों कि ऋषियोने शाप दिया है । प्रभासक्षेत्रमें बसना ठीक रहेगा । और सब यहाँ जानेकी तैयारी करने लगे ।

उद्धवजीने सुना तो वे समझ गअे कि भगवान यादवोंका संहार करके अिस लोकका त्याग करनेकी तैयारी कर रहे हैं । वे प्रभुके पास आअे और कहने लगे : मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आपके विरहमें मैं कैसे जी सकूँगा ? जहाँ आप जाअेंगे, मैं भी वहीं चल दूँगा ।

भगवान :—अरे उद्धवजी, जब तुम मेरे साथ आओ ही नहीं थे तो फिर साथ चलनेका प्रश्न ही कैसा ? यह संसार तो सपनोका खेल है, माया है, भ्रम है, असत्य है। सत्य तो केवल आत्मा ही है।

भगवानने अुद्धवजीको त्याग और संन्यासका उपदेश दिया।

उद्धवजी त्याग और सन्यासका मार्ग बड़ा ही कठिन है। कोअी सरल मार्ग दीखाअिअे। मुझे कृपा करके ज्ञान दीजिअे।

भगवान -मैने तुम्हें मनुष्य जन्म देकर क्या कम कृपा की है ? अब तो तुम्हें स्वयं ही तुम पर कृपा करनी होगी। स्वयं अपना गुरु बन कर अपना उद्धार करना।

आत्मा ही गुरुरात्मैव।

आत्मा ही आत्माका गुरु है।

अीश्वरने तो कृपा की ही है। अब तो स्वयं जीवको ही अपने पर कृपा करनी है। जीवनका लक्ष्य निर्धारित करके लगनसे उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करोगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। अधिकतर जीवोंको अपने लक्ष्यका ज्ञान ही नहीं है। जीवनका लक्ष्य है प्रभुकी प्राप्ति।

कृष्णकथाके श्रवणसे पाप जल जाते हैं और चित्त शुद्ध होता है। नियमित भजन करोगे तो ओश्वर अवश्य कृपा करेंगे।

उद्धलजी, मैंने तो तुम पर कृपा की ही है। अब तुम स्वयं अपने पर कृपा करो।

अजामिल जैसे वेश्यागामी और पापी पर भी प्रभुने कृपा की थी। फिर तुम पर क्यों न कृपा करेंगे ?

संकल्प करो कि अिसी जन्ममें भगवानके दर्शन करने हैं।

अब भयंकर कलिकाल आअेगा। विधिपूर्वक कर्म नहीं होंगे। मनुष्यका जन्म तो मिलेगा किंतु संगका दोष लगेगा।

उद्धवजी। तुम ही तुम्हारे गुरु हो। अपने लिअे भावपूर्वक प्रयत्न करो। जब तक अंदरसे प्रेरणा नहीं होगी, उद्धार भी नहीं होगा। स्वयं अपना गुरु बन कर अपने उद्धारका प्रयत्न करो। मेरे सिवाय जो कुछ भी दीखाअी देता है वह मिथ्या है।

उद्धव, मैं तुम्हारा धन नहीं, मन मांगता हूँ। सभीमें अेक अीश्वरका दर्शन करना। तुम्हारा मन मुझे दे दो।

उद्धव भगवानसे कहते हैं :—मुझे आपके सिवाय आत्मतत्वका ज्ञान और कौन देगा ?

भगवान : मैंने कअी प्रकारोंके शरीरोंका निर्माण किया है किंतु मनुष्य शरीर मुझे अधिक प्रिय है। अिस मनुष्य शरीरमें जीव तीक्ष्ण और अेकाग्र बुद्धियुकत होकर अीश्वरका साक्षात अनुभव कर सकता है। अिस संबंधमें अवधूते दत्तात्रेय और यदुराजाका सवाद सुनने योग्य है।

उद्धवजी, यदुराजाने श्री दत्तात्रेयसे अैसे ही प्रश्न पूछे थे। यदुराजाने देखा कि त्रिकालदर्शी अवधूत ब्राह्मण निर्भयतासे विचार रहे हैं। सो उन्होंने पूछा :— दत्तात्रेयजी, आपकी भाँति मेरा शरीर पुष्ट नहीं है। जिस काम और लोभकी

अग्निमें संसारके अधिकांश लोग जल रहे हैं उससे आप बिलकुल प्रभावित नहीं होते हैं। आप अपने ही स्वरुपमें स्थित रहते हैं। आप अपनी आत्मामें अनिर्वचनीय आनंदका अनुभव किस प्रकार कर पाते हैं ?

दत्तात्रेयजी :—राजन्, मैंने जान लिया है कि सांसारिक जड वस्तुओंमें आनंद नहीं है। जड वस्तूओंमेंसे मैं मनको हटा कर सभीके द्रष्टा आत्मस्वरुपमें दृष्टिको स्थिर करके द्रष्टाका दर्शन करता हूँ। दृश्यमें से दृष्टिको हटा कर जो द्रष्टामें स्थिर करता है उसीको आनंद मिलता है।

राजन्, आनंद बाहरके विषयोंमें नहीं, भीतर है। मैने अपनत्वको भूला कर दृष्टिको अंतर्मुख कर ली ह। मैं अपने ही स्वरुपमें स्थित हूं। प्रारब्ध जो भी देता है उसका आनंदसे स्वीकार करता हूँ। अपने मनको स्वयं सुधार लो।

दीक्षा गुरु अेक होता है किंतु शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। मैंने अेक नहीं, चौबीस गूरुओंसे ज्ञान पाया है। मेरे गुरुके नामादि अिस प्रकार हैं।

(१) धरती मेरा पहला गुरु है। मै प्रभातमें उसे वंदन करता हूं। हाथ क्रियात्मक शक्तिके प्रतीक हैं। निश्चय करो कि परमात्माको पसंद आअे वैसे ही काम करुंगा। माताकी भाँति मेरी रक्षा करना।

धरती बहुत कुछ सह कर भी सबको सुख ही देती है। मैंने धरतीसे सबके प्रति सद्भाव और सहनशक्ति सीखे हैं।

(२) वायुसे मैंने संतोष और निःसंगता सीखी है।

(३) आकाशने मुझे सीखाया है कि आत्मा आकाशकी भाँति अनादि और अविनाशी है। अीश्वर उसीकी भाँति सर्वव्यापी हैं।

(४) जलसे मैंने शीतलता और मधुरताका उपदेश पाया है। जलकी भाँति साधकको भी शुद्ध रहना चाहिअे। मधुरभाषी और शीतल स्वभावा होना चाहअे।

(५) अग्निसे मैंने पवित्रता सीखी है। हृदयमें यदि विवेकरुपी अग्नि होगा तो पाप नहीं आअेगा। विवेक ही अग्नि है। किसी भी व्यक्तिके दुष्यवहारको मनमें न रखना। दूसरोके पापोके बारेमें सोचना भी पाप ही है। दूसरोंके पापोंकी बात मनमेंसे निकाल दो, विवेकाग्निसे जला दो।

(६) चंद्रने मुझे क्षमता सीखायी है। वृद्धि और ह्रास तो शरीरके होते हैं आत्माके नहीं संपत्तिमें शान-भान न भूलाना और विपत्तिमें दुखी मत होना।

(७) सूर्यकी भाँति परोपकारी होना है किंतु अभिमानी नहीं। अेक ही सूर्यने प्रतिबिंब कअी जल पात्रोंमें कअी दीखाअी देते है। आत्मा भी अेक है किंतु विविध देहादि उपाधियोके कारण अनेक स्वरुपोवाला दीखता है। वास्तवमें आत्मा उपाधिरहित है।

(८) कबुतरके प्रसंगसे मैंने सीखा है कि किसी भी वस्तु या व्यक्तिके प्रति अतिशय आसक्ति नहीं होनी चाहिअे। वह पत्नी और पुत्रकी आसक्तिके कारण मर गया। किसीकी भी मृत्यु पर विलाप न करो। रोनेवाला स्वयं भी अेक दिन जाने वाला ही है। तो फिर दूसरोंके लिअे क्यो रोते हो, अपने लिअे ही रोओ।

(९) अजगरकी भाँति प्रारब्धकर्मानुसार जो कुछ मिले उसमें संतुष्ट रहो।

(१०) समुद्र वर्षाऋतुमें बहुतसा जल मिलने पर भी छलकता नहीं है और ग्रीष्मऋतुमें जल न मिलने पर सुखा नहीं हो जाता। सुख-दुखमें हमें भी समुद्रकी भाँति ही रहना चाहिये।

(११) पतंगा भी गुरु है। वह अग्निसे मोहित हो कर उसके पास जाता है और जल कर मर जाता है। मनुष्य भी मायासे मोहित हो कर उसमें फँस कर अपना सर्वनाश मोल लेता है।

पतंगेकी भाँति सौंदर्यके पीछे पागल होनेसे अपना अहित ही होता है। जगतके विषय बाहरसे सुंदर हैं, भीतरसे नहीं, सुंदरता तो कल्पना मात्र है।

अेक मात्र श्री कृष्ण ही सुंदर हैं। उन्हींसे प्रेम करो।

(१२) भ्रमरकी भाँति सार ग्रहण करो किंतु आसक्त न बनो। भ्रमरने कमलमें आसक्त होकर अपने प्राणोंसे हाथ धो दिये। वह लकड़ी तो छेद सकता है किंतु कमलकी कोमल पांखुरीको नहीं। क्यों कि उसे कमलके प्रति आसक्ति है।

यह संसार भी कमल जैसा है जो अपनी विषयगंधमें जीवभ्रमरको फंसा देता है। भ्रमर कमलकी पंखुड़ियोंके खुलनेकी सोचता है किंतु हाथीने उसके सारे सपने उजाड़ दिये। मनुष्य भी सांसारिक विषयोंमें फँस कर अपनेको लूटा देता है। सो विषय-सुखमें मत फँसो।

हाथी-काल कुचल कर नष्ट कर दे उससे पहले ही सर्वस्वका मोह छोड़ कर प्रभुसे मनको जोड़ लेनेवाला जीव कालको हरा सकता है।

जिस प्रकार भ्रमरमें लकड़ीको कुरेदनेकी शक्ति है उसी प्रकार मनुष्य भी बड़ा शक्तिशाली है। मनुष्य यदि चाहे तो नारायण बन सकता है। किंतु पहले आसक्तिका त्याग करना होगा।

मधुकृतके दो अर्थ हैं भ्रमर और मधुमक्षिका। भ्रमरसे जो सीखा वह मैंने उपर बता दिया। मधुमक्षिकासे मैंने सीखा कि किसी भी वस्तुका अतिशय संग्रह न किया जाय। मधुमक्षिका मधका संग्रह करती है तभी तो लोग उसे मार कर मध छीन लेते हैं।

(१३) हाथी भी मेरा गुरु है। स्पर्शसुखकी लालसाके कारण हाथी जान गँवाता है। लोग अेक बड़ा-सा गढा खोद कर ऊपर घास-पान रख कर नकली हथिनी रख देते हैं। हाथी उसे असली हथिनी मान कर स्पर्शसुखकी अिच्छासे वहाँ जाता है कि तुरंत उस गढ़ेमें फंसे जाता है।

साधक पुरुषको चाहिअे कि वह नारीका संग न करे और स्त्री साधिका को चाहिये कि वह पुरुषका संग न करे मूर्ति तक स्पर्श न किया जाय।

पदापि युवती भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।

(१४) मधुमक्खी द्वारा अेकत्रित मध शिकारी छीन ले जाता है। योगी भी विना उद्यम किये ही भोग पा सकता है। धनका संग्रह करने के बदल दान करो।

(१५) जिस प्रकार स्पर्शसुखकी लालसासे हाथीका नाश होता है उसी प्रकार संगीतश्रवणकी लालसासे हरनका नाश होता है। सो योगीको गीत, नृत्य, संगीत आदि विषयोंका त्याग करना चाहिअे।

(१६) रससुखकी, जिह्वा स्वादकी लालसा मछलीको मारती है। कांटेसे लगाया गया मांस मछली खाने जाती है और मर जाती है। मनुष्यको भी यह जिह्वा बड़ी परेशान करती है। सभी अिन्द्रियोंको जीत कर भी यदि जीभको जीता नहीं होगा तो नाश ही होगा। जो रसनाको जीतता है वह सर्वस्वको जीत लेता है।

जितं सर्वं जिते रसे।

दत्तात्रेयजीने अिस प्रकार शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध अिन पाँचो विषयोंकी चर्चा की। अेक ही विषयका सेवन करने पर भी हाथी, भ्रमर आदिका नाश होता है तो सभी विषयोंका सेवन करनेवाले मनुष्यकी तो कैसी दुर्गति होती होगी?

मृत्यु पश्चात सुनाया जानेवाला गरुड पुराण मनुष्यको मृत्युके पूर्व ही सुनना चाहिअे—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हता पंचभिरेवपञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेवपञ्च॥

पतंगा, हाथी, हरण, भ्रमर और मछली मात्र अेक विषयकी आसक्तिके कारण मर जाते हैं तो पाँचों विषयोंका उपभोग करनेवाला प्रमादी मनुष्य क्यो न मरे?

(१७) राजन, मैंने अेक वेश्याको भी गुरु माना है।

पिंगला नामकी अेक वेश्या धनवान ग्राहककी प्रतीक्षामें सारी रात जागा करती थी। अेक बार उसने सोचा कि कामी पुरुषके लिअे जागनेकी अपेक्षा प्रभुके लिअे जाग कर उनको ही क्यो न पा लूँ। और उसने विषयोका त्याग किया। उसने कामी पुरुषकी प्रतीक्षामें जागते रहना छोड़ दिया। अब मैं केवल प्रभुको ही प्रसन्न करनेका प्रयत्न करूँगी।

कालसर्पके ग्रास जीवात्माकी रक्षा प्रभुके सिवाय और कौन कर सकता है?

ग्रस्तं कालाहिनाऽत्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः।

अिस जगतमें आशा परम दुःख है और निराशा परम सुख। सो सुखकी आशा न करो।

आशा हि परम् दुखं नैराश्य परम् सुखं।

आशाकी जंजीर मनुष्यको किस हद तक जकड़ रखती है उसका वर्णन स्वामी शंकराचार्यके शब्दोंमें सुनिअे :—

अंगं गलितं पलितं मुडं दशनविहिनं जातं तुंडम्।
वृद्धो याति गृहित्वा दंडं तदपि न मुंचत्याशापिंडम्॥

शरीर गला जा रहा है, केश श्वेत हो गअे हैं, दांत जा चूके हैं, अशक्ति कारण लकड़ीके सहारा चलना पड़ता है फिर भी बूढ़ा आशाका पिंड छोडता ही नहीं है!

अैसे बूढ़ेकी भाँति करनेके बदले भगवानका भजन करो।

भज गोविंदं, भज गोविंदं, गोविंदं भज मूढमते॥

कामकी भोगेषणा सबसे बड़ा दुख है।

(१८) कुरर पंछी (टीटोडी)की भाँति संग्रह करनेके बदले त्याग करते रहो।

(१९) बालकसे भोलापन, निर्दोषता ग्रहण करो।

(२०) अेक गरीब कुमारीकी मंगनीके लिअे कुछ मेहमान आये। अरमें चावल तैयार न थे तो वह मुशल ले कर बैठ गअी। किंतु उसने सभी चुडियाँ उतार दीं क्यों कि यदि चुडियाँ रहने देती तो मुशलके धाव करते समय खनक होती रहती और मेहमान जान जाते कि अिस घरमें तो चावल तक नहीं है।

अिसी प्रकार बस्तीमें रहनेसे कलह-कलेश होनेकी संभावना है सो साधुको अेकांतवास करना चाहिअे।

(२१) बाण बनानेवाला लौहार भी मेरा गुरु है। वह अपने काममें अिस प्रकार मग्न रहता था कि रास्ते परसे धूमधामसे जानेवाली राजाकी सवारीकी ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता था।

लौकिक कार्यमें तन्मयताके विना सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। तो फिर पारलौकिक कार्यमें, अीश्वरकी आराधनामें तो तन्मयताके विना सिद्धि मिल ही कैसे पायेगी? ध्याता, ध्यान और ध्येय जब अेकरुप हो जाते हैं तभी जीव कृतार्थ हो सकता है।

(२२) सर्पकी भाँति मुनिको भी अकेले ही विचरण करना चाहिअे।

(२३) मकड़ी अपने मुँहसे लार टपकाता है, उससे खेलता भी है और उसे निगल भी जाता है। अीश्वर भी अपनी मायासे सृष्टिका सर्जन करते हैं और अंतमें संहार भी।

(२४) कीटक भी मेरा गुरु है। भँवरी उसको पकड़ कर अपने बीलमें कैद कर देती है। कीटक भँवरीके भयसे उसीक चिंनत करता रहता है और अंतमें स्वयं भँवरी बन जाता है।

मनुष्य भी अीश्वरका चिंतन करते करते अीश्वर बन सकता है। विषयोंका चिंतन करनेसे उसका मन विषयी हो जाता है और प्रभुका चिंतन करनेसे प्रभुमय।

यदुराजाने गुरु दत्तात्रेयको साष्टांग दंडवत प्रमाण किया।

आगे चल कर श्री कृष्णने उद्धवजीको बंधन और मोक्षका स्वरुप समझाया।

बंधन और मोक्ष शरीरके नहीं मनके धर्म हैं।

हे उद्धव, यह जीव मेरा ही अंश है फिर भी अविश्वाके कारण बंधनोंमें फँसता है। साथ ही उसे मुक्त कर सकता है। अीश्वर बंधन और मोक्षसे पर हैं।

जीव कर्मोंसे बंधा हुआ है, अीश्वर नित्य मुक्त हैं। अिस संसारमें आत्मज्ञान वाला मुक्त है और अन्य सब बँधे हुअे हैं।

जिस व्यक्तिके प्राण, अिन्द्रियाँ, मन, वृत्तियाँ तथा बुद्धि संकल्परहित हैं वह देहधारी होते हुअे भी देह गुणोंसे मुक्त है।

साधुपुरुषो और भक्तिके लक्षणोंका भी वर्णन किया।

उन्होने सतसंगकी महिमाका वर्णन करते हुअे कहा:-वृत्रासुर, प्रह्लाद, बलिराजा, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ आदि सतसंगके द्वारा ही मुझे प्राप्त कर सके थे। वे वेदोंसे भी अज्ञात थे और उन्होंने तप भी तो नहीं किया था। फिर भी सतसंग प्रेरित भक्तिके कारण मुझे पा सके।

सत्संगसे पशु-पंछी तकका जीवन भी सुधरता है। कामीके साथ रह कर ध्यानादि नहीं हो पाअेगा।

उद्धव, मनुष्योंके संगमें बस कर मनुष्य बन पाना सरल है किंतु ब्रह्मनिष्ठ हो पाना बड़ा कठिन है। सो हमेशा सत्संगमें रहनेका ही प्रयत्न करना।

फिर भगवानने संसारवृक्षका वर्णन किया। संसारवृक्षके बीज हैं पाप और पुण्य, वासनाअें मूल हैं, सत्त्व, रज और तम गुण तना है, अिन्द्रियाँ और मन डालियाँ हैं, विषय रस है, सुख और दुःख फल हैं।

विषयोंमें फँसा रहनेवाला भोगी दुखी होता है। विवेकी परमहंसको योगी कहते हैं जो सुख भोगते हैं।

उद्धवजीने पूछा :-मनुष्य जानता है कि विषय दुखदायी है फिर उसे भोगनेकी अिच्छा क्यों करता है? विषय मनकी ओर जाते हैं या मन विषयकी ओर?

भगवान :-यह रजोगुणी मन मनुष्यको विषयोंमें फँसाता है। पहले मन विषयोंकी ओर जाता है और फिर मन उन विषयोंका आकार धारण करके विषयोंको मनमें बसा लेता है। मन विषयाकार हो जाता है। मन स्वयं विषययुक्त बन कर जीवको सताता है।

विषयोंका चिंतन प्रभुभक्तिमें बाधक है। अीश्वरस्मरण चाहे न हो पावे, सांसारिक विषयोंका चिंतन तो कभी न करो।

मनको विषयोंकी ओर जाने न दो, उसे वशमें करके मुझीमें अेकाग्र कर दो।

अीश्वरमें मनका लय करना ही महान योग है।

उद्धव, वैसे तो कर्म, यश, सत्य, दम, शम, अैश्वर्य, यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम, यम आदि कल्याणके कअी साधन हैं। किंतु सर्व श्रेष्ठ साधन तो मेरी भक्ति ही है। भक्ति सभी पापोंको जला कर भस्म कर देती है।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥
भा. ११-१४-२०

मुझे प्राप्त करनेमें अनन्य भक्तिमें जितनी सामर्थ्य है उतना सामर्थ्य योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप, त्याग आदिमें नहीं है।

भक्तियोगकी महत्ताके बाद प्रभुने ध्यानयोगकी विधि बतायी।

ध्यानके दो प्रकार हैं। अेक ही अंगके चिंतनको ध्यान कहते हैं और सर्वांगोंके चिंतनको धारणा। ध्यान करते करते वह ध्येयसे अेकरुप हो जाता है। रोज अीश्वरका ध्यान करोगे तो घर, शरीर, संसारका विस्मरण हो सकेगा। जो प्रभुसे तन्मय हो गया है उसे देहभान नहीं रहता।

उद्धव, व्यर्थ भाषण भी पाप ही है सो सोच-समझके ही बोलना चाहिअे।

भक्तिसे सिद्धि प्राप्त होती है किंतु वे मेरी प्राप्तिमें बाधक है सो उनसे दूर ही रहना। सिद्धि प्रसिद्धि लाती है और प्रसिद्धि प्रमाद। परिणामतः मेरे भजनमें विक्षेप होने लगता है। सो सिद्धियोंसे दूर ही रहना।

आगे भगवानने अपनी विभूतियोंका वर्णन किया। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यस्ताश्रमके धर्म भी समझाअे।

भक्ति, ज्ञान, यमनियमादि साधनोंका भी वर्णन किया।

जगतमें किसी भी जीवको हीन मत समझना।

फिर उद्धवजीने कुछ शब्दोंका अर्थ और व्याख्या पूछी जो भगवानने अिस प्रकार बताया।

मुझीमें बुद्धिकी स्थापना करना शम है। अिन्द्रियोंको वशमें करना दम है। किसी भी प्राणीका द्रोह न करना दान है।

जगतमें किसी भी जीवके प्रति कुभाव न रखना और सद्‌भाव रखना सबसे बडा दान है। भूतद्रोहका त्याग दान है। चेतन और जड किसीका भी द्रोह न करो, सबको समान भावसे देखो।

सभी कामनाओंका त्याग तप है। कामसुखका विचार तक न करनेवाला सबसे बड़ा तपस्वी है। वासना और स्वभावको जीतना शौर्य है।

ब्रह्मका ही विचार करना श्रेष्ठ सत्य है और धर्म ही सर्वोत्तम धन है।

धर्म इष्टं सर्वं नृणां।

मेरी भक्ति प्राप्त करना ही सर्वोत्तम लाभ है।

बंधन और मोक्षके तत्त्वका ज्ञाता ही पंडीत है और ग्रंथोमें लिखे हुअे सिद्धांतोको जीवनमें उतार कर भक्तिमय जीवन जीनेवाला उत्तम ज्ञानी है।

देहको ही आत्मा मान कर देहमें अहम् वृद्धि रखनेवाला महामूर्ख है।

सद्‌गुणोसे संपन्न व्यक्ति धनवान है और असंतुष्ट व्यक्ति दरिद्र।

मायाके अधीन हो कर, सांसारिक विषयोंमें फंस कर अिन्द्रियोका दास बननेवाला जीव है।

जो अिन्द्रियोको अपने अधीन करके सांसारिक विषयोंसे अनासक्त रहता है वह अीश्वर है।

न केवल बाहरके किंतु भीतरके शत्रुओका भी नाश करनेवाला, जीतेन्द्रिय ही सच्चा वीर है।

जो निंदासे लेश मात्र भी प्रभावित नही होता है वही सच्चा भक्त है।

उद्धवजी! मनुष्यके कल्याणके हेतु मैंने तीन उपाय बताअे हैं—

१ ज्ञानयोग

२ निष्काम कर्मयोग

३ भक्तियोग

मनुष्य शरीर ज्ञान और भक्ति प्राप्त करनेका साधन है अतः श्रेष्ठ है। यह मनुष्य शरीर उत्तम नौका समान है, सभी फलोका मूल है, करोडो उपायोसे भी अलभ्य है। फिर भी दैवयोगसे मिल पाया है। गुरु रुपी माझीके द्वारा तथा मुझ

वायुसे बढ़ रहा है। फिर भी यदि अिस अमूल्य देहनौकाका सदुपयोग न कर, भवसागर पार करनेका प्रयत्न न करे तो वह मनुष्य स्वयं अपना ही नाश करता है, आत्मघाती है।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
भा. ११-२०-१७

उद्धव, यदि सत्संग न किया जा सके तो कोअी बात नहीं किंतु कामी-विषयीका संग तो कभी न करना।

सत्संगकी प्राप्ति अीश्वरकी कृपा पर आधारित है, कामीका संगत्याग मनुष्यके अपने बसकी बात है।

मन केवल प्रभुको ही दो, किसी स्त्री-पुरुष या रिश्तेदारोंको नहीं।

हे उद्धव, तुम अपना मन मुझे ही देना। मैं तुम्हारा धन नहीं, मन ही मांगता हूँ।

हे उद्धव, अिस अखिल विश्वमें मैं ही व्याप्त हूँ अैसी भावना करना।

भक्तिके द्वारा सभीके आत्मारूप मेरे दर्शन करके मनुष्यके हृदयकी अहंकारकी गांठ छूट जाती है, सभी संशय नष्ट होते हैं और सभी कर्म भी नष्ट होते हैं।

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः।
क्षीयंते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि॥
भा. ११-२०-३०

उद्धव, किसीकी प्रशंसासे प्रसन्न न होना और किसीकी निंदासे अप्रसन्न भी न होना। स्तुति और निंदाको अेक समान मानना।

उद्धवजी कहने लगे : निराधार निंदाको कसे सहा जाय?

भगवान :-जो निंदा सह न सके वह कच्चा है। निंदक तो मित्र है, वह हमें दोषदर्शन कराता है। अिसी कारणसे तो साधुजन हमेशा निंदकको अपने साथ ही रखते हैं। निंदाके शब्द तो आकाशमें विलीन हो जाते हैं।

निंदक मित्र समान, साधो, निंदक मित्र समान।

फिर भगवानने उद्धवजीको भिक्षुगीताका उपदेश दिया।

सुखदुख तो मनकी कल्पना है। मनकी निद्राकी-सी स्थिति यदि जागृतिमें भी हो जाय तो मुक्ति है। लोग भिक्षुकी निंदा करते हैं किंतु वह मन पर असर होने ही नहीं देता। भिक्षु कहता है—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम्॥

धनार्जनमें, धनके उपभोगमें, उसे बढाने और रक्षा करनेमें, उसका नाश होने पर परिश्रम, चिंता, त्रास होते हैं फिर भी मनुष्य वैसे धनके पीछे भागता फिरता है। धन हर प्रकारसे, हर स्थितिमें मनुष्यको सताता है फिर भी उसे विवेक नहीं आ पाता।

पुरुरवा-उर्वशीके दृष्टांतके द्वारा यह भी बताया कि स्त्रीके सतत संगसे पुरुषकी दशा कैसी होती है।

दुष्टोंकी संगति मनुष्यकी अधोगति करती है और सज्जनोंकी संगति उर्ध्वगति।

सत्संग तो अीश्वरकृपासे ही मिल पाता है। बिनु हरिकृपा सत्संग न होई। किंतु कुसंग न करना तो तुम्हारे बसकी बात है।

अैलगीतामें देहकी चर्चा की गअी जो हमने उपर देख ली है। यह शरीर मांस, हड्डी, चमड़ीवाला और दुर्गंधयुक्त है। अिसी देहमें रत व्यक्ति पशु और कीड़ेसे भी हीन है।

अंतमें उद्धवजी भगवानसे पूछते हैं: प्रभुजी, आपने योग, ज्ञान और भक्ति मार्ग आदिका उपदेश तो दिया किंतु जो व्यक्ति अपने मनको बसमें कर सकता है उसीको योगमार्ग सिद्ध होता है। किंतु अिस मनको बसमें करना ठेढ़ी खीर है। वायोरिव दुष्करम्। तो हे प्रभु, जो व्यक्ति मनको जल्दी बसमें न कर सके वह भी सिद्धि कैसे प्राप्त करे यह बतलाअिअे।

श्रीकृष्ण :–उद्धवजी, अर्जुनने भी मुझसे यही पूछा था। मनको अभ्यास और वैराग्यसे बसमें किया जा सकता है। किंतु सरल मार्ग तो है मेरी अव्यभिचारी भक्ति।

भक्तजन अनायास ही ज्ञानी, बुद्धिमान, विवेकी और चतुर हो जाता है तथा मुझे प्राप्त करता है।

भक्तिके साधन कहौं बखानी।
सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी॥

अिस सरलतम भक्तिमार्गकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम ही है।

भक्ति स्वतंत्र है। उसे किसी क्रियाकांड, अवलंबन आदिका सहारा नहीं लेना पड़ता है। वह सबको अपने अधीन कर लेती है। ज्ञानी और कर्मयोगीको भी अिस भक्ति–उपासनाकी आवश्यकता रहती है। उन दोनोंमें भक्तिकी मिलावट हो पाये तभी वे मुक्तिदायी बन सकते हैं।

सो स्वतंत्र अवलंबन आना।
ते हि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

हे उद्धवजी,

भगतिहीन विरंचि किन होई। सब जीवहु समप्रिय मोहि सोई।
भगतिवंत अति निचउप्रानी। मोरि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

सो मनुष्य जब सब कर्मोंका त्याग करके अपनी आत्मा मुझे समर्पित कर देता है तब उसे सर्वोत्कृष्ट बनानेकी मुझे अिच्छा हो आती है। वे मुझसे तद्रुप होनेके योग्य बन कर मोक्ष पाते हैं।

औरोंकी निंदा न करना। जगतको सुधारनेका व्यर्थ प्रयत्न भी न करना। अपने आपको ही सुधारना।

समाजको तो स्वयं प्रभु भी सुधार नहीं पाअे थे, तो साधारण मनुष्य क्या कर पाअेगा? कृष्णके समयमें भी दुर्योधन, शिशुपाल आदि बहुत–से दुष्ट मानवीओंका अस्तित्व था।

जगतको प्रसन्न कर पाना बड़ा कठिन है जब कि परमात्माको प्रसन्न कर पाना उतना कठिन नहीं है।

हे उद्धव, मैं तुम्हारा धन नहीं, मन मांगता हूँ। मन देने योग्य तो केवल मैं (परमात्मा) ही हूँ। मैं तुम्हारे मनकी बड़ी लगनसे रक्षा करुंगा। मैं सर्वव्यापी हूँ। तुम मेरी ही शरण लो।

उद्धव, मैंने तुम्हें समग्र ब्रह्मज्ञानका दान दिया है। अिस ब्रह्मज्ञानके दाताको मैं अपना सर्वस्व देता हूँ।

अब तो तुम्हारा-मोह, शोक आदि दूर हो गये न? उद्धवने भगवानको प्रणाम किया और कहा, अब मैं और कुछ भी सुनना नहीं चाहता। जितना सुना है उस पर मनन करना चाहता हूँ।

श्रीकृष्ण :-उद्धव, अब तुम अलकनंदाके किनारे बद्रिकाश्रममें रह कर अिन्द्रियों-को संयमित करके ब्रह्मज्ञानका चिंतन करो। अपना मन मुझीमें स्थिर करना। वैसा करने पर तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे।

बद्रिकाश्रम योगभूमि है, वहाँ प्रभुकी प्राप्ति शीघ्र होती है।

उद्धवजी :-प्रभु, आप भी मेरे साथ चलिये।

भगवान :-उद्धव, मै अिस शरीरके साथ तो अब वहाँ आ नहीं सकता। मैं चैतन्य स्वरुपसे तुम्हारे हृदयमें ही हूँ, तुम्हारा साक्षी हूँ। सो चिंता न करना। तुम जब आतुरता और अेकाग्रतासे मेरा स्मरण करोगे, मैं उपस्थित हो जाअूँगा। अन्यथा वैसे तो अकेले ही आना-जाना है।

जगतमें सभी जानते हैं कि अकेले ही जाना है फिर स्त्री-पुरुष अेकदूजेमें आसक्ति रखते हैं। अिस ससारके सभी संबंध मिथ्या हैं, असत्य हैं।

अेक श्रीमंत नगरशेठका युवान पुत्र रोज अेक महात्माकी कथा सुननेको जाता था किंतु समयसे पहले ही उठ कर चला जाता था। तो महात्माने अेक दिन उससे अैसा करनेका कारण पूछा।

युवान :-महाराज, मैं अपने मात-पिताका अेक मात्र पुत्र हूँ। यदि घर लौटनेमें कुछ देरी हो जाय तो वे मुझे ढूंढ़ने निकलते हैं और मेरी पत्नी भी मेरे लिये अपने प्राण बीछाती है। आप संसारियोंके संबंधको मिथ्या बतलाते हैं। किंतु आपको कोअी अनुभव तो है नहीं।

महात्मा :-यदि अैसा ही है तो हम उनके प्रेमकी परीक्षा क्यों न कर देखें? यह जडीबूटी तू खा ले। तेरा शरीर गर्म हो जायेगा। मैं उपचार करने आअूँगा। फिर वहाँ जो होता रहे वह तू देखते रहना।

उस युवकने महात्माके आदेशानुसार किया। शरीर अेकदम गर्म हो गया। माता-पिताने घबड़ा कर कअी डाकटरों और वैद्योंको बुलाया किंतु उनके उपाय कारगत न रहे। युवककी पत्नी भी कल्पांत कर रही थी।

अितनेमें वह महात्मा आ पहुँचे। सभीने उनसे पुत्रका अिलाज करनेकी प्रार्थना की। महाराजने चिकित्सा करते हुये कहा, किसीने जादू-टौना कर दिया है। मैं उपाय कर सकता हूँ। उन्होंने अेक बर्तनमें पानी मंगवाया और उस पुत्रके मस्तक परसे उतार कर कहा, मैंने मंत्रशक्तिसे उस जादू-टौनेको अिस पानीमें उतार लिया है। अब यदि अिस युवकको बचाना है तो यह पानी किसीको पीना होगा।

सभीने अेक साथ पूछा :-महाराज़, किंतु अिस पानी पीनेवालेकी क्या दशा होगी?

महात्मा :-वह शायद मर भी जाय किंतु यह युवक बच जायेगा। सो तुममेंसे कोअी यह पानी पी जाओ।

युवककी माताने कहा, मैं अपने लाड़लेका प्राण बचानेके लिअे यह पानी पीनेको तैयार हूँ किंतु मैं पतिव्रता हूँ। मेरी मृत्युके बाद मेरे वृद्ध पतिकी सेवा कौन करेगा ?

युवकके पिताने कहा : मैं यह पानी पी तो लूँ किंतु मेरी मृत्युके बाद मेरी यह बेचारी पत्नीकी क्या दशा होगी ? यह मेरे बिना जीअेगी ही कैसे ?

महात्माने विनोद किया :-तुम दोनों आधा-आधा पानी पी लो, दोनोंके सभी क्रियाकांड अेकसाथ हो जाअेंगे।

युवककी पत्नीसे अनुरोध किया गया तो उसने कहा :-मेरी वृद्धा सासने तो संसारके सभी सुख भोग लिअे हैं। मैं तो अभी युवान हूँ। मैंने तो अभी संसारके सुख देखे तक नहीं हैं। मैं क्यों मरुं ?

अिस प्रकार युवकके सभी रिश्तेदारोंने पानी पीनेसे अिन्कार कर दिया। उल्टे वे सब महात्मासे कहने लगे : महाराज, आप ही पी जाअिअे। आपके पीछे रोनेवाला तो कोअी है नहीं। आप हमेशा कहते हैं कि परोपकार सबसे बड़ा धर्म है सो आप स्वयं परोपकार कर दीजिअे। हम आपके पीछे हर साल श्राद्ध और ब्रह्मभोजन करेंगे।

महात्माने पानी पी लिया। पुत्रको अपने रिश्तेदारोंके व्यवहार और प्रेमका अनुभव ठीकसे हो चूका। उसने उठ कर महात्माके साथ ही घर छोड़ दिया। महाराज, मैंने संसारकी असारता देख ली। कोअी किसीका नहीं है। सभी संबंध स्वार्थपरक ही हैं।

वास्तविक संबंध तो अेक अीश्वरका ही है। महात्मा कबीर भी कहते हैं :

मन फूला फूला फिरे जगतमें कैसा नाता है,।
पेट पकड कर माता रोवे, बांह पकडकर भाई,
लपटझपट कर तिरिया रोवे, हंस अकेला जाई....मन...
जब तक जीवे माता रोवे, बहन रोवे दस मासा,
तेरह दिन तक तिरिया रोवे फिर किये घर बासा ...मन...

हे उद्धव, मैं हमेशा तुम्हारे साथ ही हूँ। हमेशा मेरा स्मरण करते रहना भी सिद्धि ही है। सिद्धि स्मरण ससिद्धिः।

किंतु उद्धवका उद्वेग मीटता नहीं है। सो भगवानने उनको अपनी चरणपादुका दी। अब उद्धवको लगा कि भगवान उनके साथ हैं।

श्रीकृष्णको हमेशा अपने साथ रखो। परमात्माके सांन्निध्यका सतत अनुभव करो।

तुकारामने कहा था :-चाहे मेरा वंश न रहे, चाहे मुझे भूखों मरना पडे किंतु प्रभु सदा मेरे साथ रहे।

उद्धव बद्रिकाश्रम आअे। उनको सद्‌गति मिल गअी और कृतार्थ हो गअे।

फिर यादवोंके विनाशकी कथा भी सुनाअी।

द्वारिकालीलाकी समाप्तिके समय पंढरपुरमें पुंडलिक भक्त हुआ जिसे कृतार्थ करनेके लिअे द्वारिकानाथ विठ्ठलनाथ बने। पुंडलिक घरमेंसे जल्दी बाहर नहीं आया, भगवानकी कमरमें वेदना होने लगी सो वे कमर पर हाथ रख कर खड़े रहे।

भगवान कहते हैं : कभी निराश न होना। मेरी शरणमें आओ। मैं तुम्हारे लिअे हमेशा खड़ा ही हूँ। वे कटि पर हाथ रख कर यही सूचित करते हैं कि

उनकी शरणमें आनेवालेके लिये संसार केवल कटिभर ही गहरा है। उतने जलमें कोओी डूब नहीं सकता।

अपने पापोंका प्रायश्चित करके मेरी शरणमें आओगे तो संसारसागर तर जाओगे।

श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। वे पुंडलिकके लिये द्वारिकासे पंढरपुर तक गये थे। वे अब भी पंढरपुरमें विद्यमान हैं। विठ्ठलनाथके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है?

नेति नेति कह वेद पुकारे
सो अधरन पर मुरलीधारे।
शिव सनकादिक अंत न पावै। सो सखियन संग रास रचावै ॥
सकल लोकमें आप पुजावै। सो मोहन व्रजराज कहावै ॥
महिमा अगम-निगम जिहि गावै। सो जसोदा लिये गोद खिलावै ॥
जपतप संयम-ध्यान न आवै। सोइ नंदके आंगन धावै ॥
शिव-सनकादिक अंत न पावै। सो गोपनकी गाय चरावै ॥
अगम अगोचर लीला धारी। सो राधावश कुंजविहारी ॥
जो रस ब्रह्मादिक न पायो। सो रस गोकुल-गलिन बहायौ ॥
सूर सुयश कहि कहा बखानै। गोविंदकी गति गोविंद जानै ॥

❖

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

❖

द्वादश: स्कंध

श्रीकृष्णाय नमः

बारहवे स्कंधमें आश्रयलीला है। भागवतका प्रतिपाद्य तत्त्व आश्रय ही है।

राजा परीक्षितने पूछा :-अब अिस पृथ्वी पर किसका राज होगा?

शुकदेवजी :-जरासंधके पिता बृहद्रथके वंशका अंतिम राजा होगा पुरंजय और उसके मंत्रीका नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामीको मार कर अपने पुत्र प्रद्योतको राजसिंहासन पर बिठलायेगा। बादमें अिस भरतखंडमें नंद, चंद्रगुप्त, अशोक आदि राजा होंगे। उसके बाद आठ यवन तथा दस गोरे राजा राज करेंगे।

कलियुगके दुष्ट राजवी भारतके टूकड़े-टूकड़े करके देशको छिन्नभिन्न कर देंगे। कलियुगके दुष्ट शासक गायोंकी हत्या करेंगे, प्रजाका धन हड़प कर स्वयं विलास-वैभवसे रहेंगे।

कलियुगके ब्राह्मण वेद तथा संध्यासे विहीन हो जायेंगे।

अपने कुटुंब मात्रका पालन-पोषण करना ही चतुराओी मानी जायेगी और धर्मका सेवन मात्र कीर्तिके हेतु ही किया जायेगा। —दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम्।

भागवतमें बताओे गये कलियुगके लक्षण आज प्रत्यक्ष दीखाओी दे रहे हैं।

हे राजन्! कलियुगके अंतमें धर्मकी रक्षाके हेतु भगवान कल्कि अवतार धारण करेंगे।

पृथ्वी पर आज तक न जाने कितने सम्राट आये और चले भी गये।

कलियुगके पुरुष नारीके अधीन रहेंगे-स्त्रैणाः कलौ नरा·।

मनुष्यको चाहिये कि अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये किसीका द्रोह न करे।

अिस स्कंधमें कलियुगके लक्षण, दोष तथा उनसे बचनेके उपाय बताये गये हैं। सबसे श्रेष्ठ उपाय है भगवानके नामका संकीर्तन।

कलियुगके कभी दोष होने पर भी अेक लाभ भी है। कलियुगमें जो भी कृष्णकीर्तन करेगा उसके घर कलि कभी नहीं जायेगा। कलिसे बचनेका अेक मात्र उपाय है कृष्णकीर्तन।

शुकदेवजी कहते हैं :-

हे राजन्! कलियुगके अपलक्षण अनेक हैं। किंतु श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे सभी दोषोसे, पापोंसे छूट कर प्रभुको पाया जा सकता है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग· परं व्रजेत॥ भा. १२-३-५१

और

कृते यद् ध्यायतो विष्णु त्रेतायाम् यजतो मखैः।
द्वापरे मरिचर्यायाम् कलौ तद् हरिकीर्तनात्॥

सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंसे, द्वापरमें विधिपूर्वक विष्णुपूजासे जो फल मिलता था वही फल कलियुगमें भगवानके नामकीर्तनसे मिलता है।

मृत्युके समय परमेश्वरका ध्यान करनेसे वे जीवको अपने स्वरुपमें समाहित कर देते हैं।

हे राजन्! तुम आसन्नमृत्यु हो अत· अपने हृदयमें भगवान केशवकी स्थापना करो। वे तुम्हें परमगति देंगे।

हे राजन्, जन्म, जरा और मृत्यु शरीरके धर्म हैं, आत्माके नहीं। आत्मा तो अजर और अमर है। सो मैं मर जाऊँगा अैसी पशुबुद्धिका त्याग करो।

घडा फूट जाने पर उसमें समाया हुआ आकाश महाकाशसे जा मिलता है अिसी प्रकार देहोत्सर्ग होने पर जीव ब्रह्ममय हो जाता है।

राजन्। आज तक्षक तुम्हें डँसेगा। वह तेरे शरीरको मार सकेगा, आत्माको नहीं। तुम्हारी आत्मा तो परमात्मासे जा मिलेगी। तुम शरीरसे भिन्न हो। आत्मा परमात्माका अंश है।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।

राजन्! मैं ही परमात्मारुप ब्रह्म हूँ और परमपदरुप ब्रह्म भी मे ही हूँ अैसा सोच कर अपनी आत्माको ब्रह्मसे जोड लो।

तक्षक-काल भी श्रीकृष्णका ही अंश है। शरीर नाशवंत है, आत्मा तो अमर है।

जब तक मैं यहाँ हूँ, तक्षक नहीं आ पायेगा। सो यदि कुछ और सुननेकी अिच्छा हो तो बताओ।

परीक्षित :-महाराज, आपने मुझे व्यापक ब्रह्मके दर्शन कराये हैं सो मैं निर्भय हो गया हूँ।

श्रीमद् भागवत श्रवणके पाँच फल हैं :—

१ निर्भयता २ निःसंदेहता
३ हृदयम प्रभुका साक्षात् प्रवेश

४ सभीमें भगवद्दर्शन
५ परमप्रेम

गुरुजी ! मैने पाँचों फल प्राप्त कर लिअे हैं।

प्रभु ! भागवतका प्रथम स्कध सुन कर परमात्माके दक्षिण चरणके, द्वितीय स्कंध सुननेसे वामचरणके, तीसरे और चौथे स्कंधोंको सुन कर दोनों हस्तकमलके, पंचम और छठे स्कंधको सुनकर दोनो जंघाके, सातवें स्कंधके श्रवणसे कटिभाग, अष्टम और नवम स्कंघ सुन कर–प्रभुके विशाल वक्ष स्थलके दर्शन हुअे। दशम स्कंधके श्रवणसे प्रभुके मुखारविंद और नयनोंके दर्शन हुअे। अेकादश स्कंधको सुन कर श्रीनाथजीका अूपर उठा हुआ हस्त दीखाअी दिया। बारहवें स्कंधके श्रवणसे मुझे लग रहा है कि श्रीकृष्ण दोनों हाथोंसे मुझे बुला रहे हैं।

अब तो मै प्रभुका ही ध्यान धर रहा हूँ। मै उनकी ही शरणमें हूँ। मुझे सर्वत्र वे ही दीखाअी दे रहे हैं। मैं उनके पास जा रहा हूँ। वे मुझे बुला रहे हैं। मैं कृतार्थ हो गया।

महाराज, आपने न केवल कथाश्रवण कराया, प्रभुके दर्शन भी मुझे करा दिअे। आपने बतलाया कि सारा जगत ब्रह्मरुप है। तक्षक जगतसे पृथक नहीं है वह भी ब्रह्मरुप ही हैं। मैं आपको बार बार प्रणाम करता हूँ। आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है।

शुकदेवजी :–राजन्, तुम्हारे साथ साथ मै भी कृतार्थ हो गया क्यो कि मुझे भी कथाश्रवणका लाभ मिला है। तुम्हारे कारण मैं भी प्रभुमें लीन हो सका। वे मेरे हृदयमें विराजमान हुअे। राजन्, मै अब आगेका कोअी प्रसंग देखना नहीं चाहता। यदि कोअी शंका हो तो पूछ सकते हो। मैं ब्रह्मनिष्ठ होनेके कारण मेरी दृष्टि तक्षकके विषको अमृत बना देगी।

परीक्षितने गुरुदेवको वंदन किया और कहा :–अब मेरे मनमें कोअी शंका शेष नहीं है। आपकी कृपासे मैं निर्लेप और निर्भय हो गया हूँ।

शुकदेवजीने जानेकी अनुमति चाही. तो राजाने उनकी पूजा करनेकी अिच्छा व्यक्त की।

राजाने शुकदेवजीकी पूजा की तो उन्होंने राजाके मस्तक पर अपना वरद् हस्त पधराया। उसी क्षण राजाको परमात्माके दर्शन हुअे। जीव और ब्रह्म अेक हो गअे।

सत्रमें भाग ले रहे सभी महर्षियोंको परम आश्चर्य हुआ।

व्यासजी सोचते हैं, मैंने अपने पुत्रको भागवतका अभ्यास कराया किंतु जो तत्त्व शुकदेवजी जान सके वह तो मैं भी जान नहीं पाया हूँ। व्यासजीने शुकदेवजीको प्रणाम किया।

गुरुदेव शुकदेवजी अतर्धान हो गअे।

राजा परीक्षितके शरीरमेंसे अेक ज्योति प्रगट हुअी और महाज्योतिके साथ मिल गअी।

तक्षकने आ कर राजाको दंश दिया किंतु वे तो कबके भगवानके धाममें सिधार चुके थे।

परीक्षितकी भाँति, कालके आगमनके पूर्व ही परमधाममें जानेवालेको धन्य है।

सूतजी कहते हैं : परीक्षितका मोक्ष मैंने स्वय देखा था।

अिस प्रकार, सभी पापोंके नाशकर्ता और अिन्द्रियोंके नियंता भगवान श्रीहरिका भागवतमें वर्णन है।

कथा सुन कर जीवनमें उतारोगे तो कथाश्रवण सार्थक होगा।

सत्कर्मका कोअी अंत नहीं होता। जीवनके अंत तक सत्कर्म करते रहो।

कथाश्रवणके समय वक्ता और श्रोतासे जाने-अनजाने कुछ दोष हो जानेकी संभावना है। अतः तीन बार श्री हरेय नमः जिस प्रकार बोलो। अैसा जप करनेसे सभी दोष जल जाअेंगे।

मनुष्य ठोकर लगते समय, छींकते समय, दुखद अवस्थामें, विपदामें यदि श्री हरेय नमः का सस्वर पाठ करे तो उसके दोष और दुख दूर हो जाते हैं। तथा उसके पाप नष्ट होते हैं।

पतीतः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन् ।
हरये नमःइत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ भा. १२-१२-४६

अंतमें, जिनका नामसंकीर्तन सभी पापोका नाश करता है और जिनको किअे गअे प्रणाम सभी दुखोको शांत करते हैं अुन परमात्माको, श्री हरिको हम प्रणाम करें।

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥ भा. १२-१३-२३

❀

आरती

जयदेव जयदेव वंदे गोपालं वंदे भुपालं ।
मृगमदशोभितभालं भुवनत्रयपालं ॥
निर्गुणसगुणाकार संभृतभुभारं ।
मूरहर नंदकुमारं स्मरहरं सुखकारं ।
वृंदावन सचारं कौस्तुभमणिहारं ।
कृपया पाराधारं गोवर्धनधारं ॥
जयदेव जयदेव..............
मुरलीवाहनलोलं सप्तस्वरगीतं ।
स्थलचर वनचर गोचर जलचर सहगीतं ।
स्तंभित यमुनातोयं अगणित तव चरितं ।
गोपीजन मनमोहन दातु श्रीकांतं ॥
जयदेव जयदेव....... .....
रासक्रीडामंडित विष्टित व्रज लालनं
मध्ये तांडवमंडित कुवलय दलनयनं ।
कुसुमितकाननरंजित मदस्मित वदनं ।
फणिवरकालियदमनं यक्षेश्वरगमनं ॥
जयदेव जयदेव..............
अभिनवनीत चोरं करधृतदधिगोलं ।
लीला नटवरखेलं धृतकांचनचैलं ॥
निर्जर लक्ष स्वरुपं विहलितरिपुकुलं ।
भगवत परिपालय जय जय जय गोपालम् ॥
जयदेव जयदेव.... ....

❀

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥